तीसरा अध्याय

भगवान् के लीला-वर्णन के द्वारा प्रेम तथा गुह्य ज्ञान का निरूपण

सूत बोले—प्राणियों की सृष्टि करने की इच्छा से पहले भगवान् ने महत्तत्व आदि निर्मित तथा सोलह कलाओं से युक्त पुरुष का रूप धारण किया ॥ १ ॥ जल में सोए हुए और योग-निद्रा का विस्तार करते हुए जिस (भगवान्) के नाभि-सरोवर के कमल से जगत् के सृष्टि करनेवालों के स्वामी ब्रह्मा उत्पन्न हुए थे ॥ २ ॥ जिसके अंगों के विभाग से चतुर्दश-लोकों का विस्तार हुआ, उस परमात्मा का स्वरूप रजोगुण आदि से रहित, सत्वगुण-संपन्न तथा अत्यंत शुद्ध है ॥ ३ ॥ भगवान् के उस रूप को योगी लोक ज्ञानदृष्टि से देखते हैं, जिसमें अनंत-पैर, जाँघ, भुजा और मुख हैं; हजारों श्रवण, मूर्द्धा, नेत्र और नासिका हैं तथा वस्त्र और कुण्डल आदि से सुशोभित असंख्य ललाट हैं ॥ ४ ॥ यह भिन्न-भिन्न अवतारों का निक्षेप और कार्य-सृष्टि का अविनाशी बीज है, जिसके अंशों के अंश से देवता, पशु, पक्षी और मनुष्य-आदि उत्पन्न होते हैं ॥ ५ ॥ उन्हीं देवाधिदेव ने सब से पहले सनत्कुमार नामकी सृष्टि के द्वारा ब्रह्म-रूप से दुष्कर और अखंड ब्रह्मचर्य धारण किया ॥ ६ ॥ इस विश्व की रचना के निमित्त रसातल में गई हुई पृथ्वी के उद्धार के लिए यज्ञपति (भगवान्) ने वाराह रूप से दूसरा अवतार धारण किया ॥ ७ ॥ तीसरा अवतार ऋषि-सृष्टि के सहारे देवर्षि नारद-रूप से हुआ, जिससे निष्काम-भाव का प्रतिपादक वैष्णव-तंत्र प्रकट हुआ ॥ ८ ॥ चौथे अवतार धर्मकला अर्थात् स्त्री की सृष्टि में नर-नारायण दोनों ने ऋषि होकर आत्मा को पूर्ण शांति प्रदान करनेवाली कठिन तपस्या

सूतउवाच—

१—जगृहेपौरुषंरूपभगवान्महदादिभिः । सम्भूतंषोडशकलमादौलोकसिसृक्षया ॥

२—यस्याम्भसिशयानस्ययोगनिद्रांवितन्वतः । नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्माविश्वसृजांपतिः ॥

३—यस्यावयवसंस्थानैःकल्पितोलोकविस्तरः । तद्वैभगवतोरूपंविशुद्धंसत्वमूर्जितं ॥

४—पश्यन्त्यदोरूपमदभ्रचक्षुषासहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ।
सहस्रमूर्द्धश्रवणाक्षिनासिकंसहस्रमौल्यम्बरकुंडलोल्लसत् ॥

५—एतन्नानावताराणांनिधानंबीजमव्ययं । यस्यांशांशेनसृज्यन्तेदेवतिर्यङ्नरादयः ॥

६—सएवप्रथमंदेवःकौमारंसर्गमास्थितः । चचारदुश्चरंब्रह्माब्रह्मचर्यमखण्डितं ॥

७—द्वितीयंतुभवायास्यरसातलगतांमहीम् । उद्धरिष्यन्नुपादत्तयज्ञेशःसौकरंवपुः ॥

८—तृतीयमृषिसर्गंचदेवर्षित्वमुपेत्यसः । तंत्रंसात्वतमाचष्टनैष्कर्म्यंकर्मणांयतः ॥

की ॥ ९ ॥ ईश्वर के पाँचवें अवतार सिद्धराज कपिल नामक मुनि हुए। उन्होंने काल के प्रभाव से विलुप्त हुए तत्वों के समूह का विशेप रूप से निर्णय करनेवाले सांख्यशास्त्र को आसुरि नामक ब्राह्मण के लिए कहा ॥ १० ॥ छठवाँ अवतार अनुसूयाजी के वर माँगने से अत्रि के पुत्र दत्तात्रेय के रूप मे हुआ, जिन्होंने आन्विक्षिकी विद्या (अध्यात्म विद्या) का उपदेश अलर्क और प्रह्लाद आदि के लिए किया ॥ ११ ॥ पश्चात् रुचि के द्वारा आकूति नामकी स्त्री के गर्भ से यज्ञ (अवतार) उत्पन्न हुए, जिन्होंने यामादि देवगणों के साथ स्वायंभुव मनु का पालन किया॥१२॥ आठवें अवतार नाभि नामक आग्नीध्रपुत्र के द्वारा मेरुदेवी के गर्भ से उत्पन्न हुए। उनका नाम ऋषभदेव था। वे उरू (जाँघ) से चलते थे। उन्होंने परमहंस मार्ग को विद्वानों के लिए बतलाया ॥१३॥ विप्र, नवाँ अवतार पृथुरूप से हुआ, जिसे ऋषि लोग चाहते थे। पृथु ने पृथ्वी से सभी वस्तुओं का दोहन किया, जिससे यह अवतार अत्यंत सुन्दर हुआ ॥ १४ ॥ दसवाँ अवतार भगवान् ने मत्स्यरूप से लिया। चाक्षुप मन्वंतर के अंत में जब समुद्र में प्रलयकारी बाढ आई तो उन्होंने नौकारूपी पृथ्वी पर चढाकर वैवस्वत मनु की रक्षा की ॥ १५ ॥ ग्यारहवाँ अवतार कच्छपरूप से हुआ। देवताओं और दानओं ने जब समुद्र-मंथन किया, उस समय उन्होंने अपनी पीठ पर मंद्राचल को धारण किया ॥ १६ ॥ बारहवाँ अवतार धन्वन्तरि का हुआ और तेरहवाँ अवतार मोहिनी नामक स्त्री-रूप से हुआ, जिन्होंने असुरों को मोहित किया और देवताओं को अमृत पिलाया ॥१७॥ चौदहवाँ अवतार नृसिंह रूप से हुआ, जिन्होंने बलवान् दैत्यराज हिरण्यकशिपु के उदर को नखों से फाड़ डाला, जैसे लकड़हारा बिना गाँठवाली लकडी को फाड़ डालता है ॥ १८ ॥ पंद्रहवाँ अवतार वामनरूप से हुआ। राजा बलि की यज्ञशाला मे जाकर उन्होंने उनसे स्वर्ग ले लेने की इच्छा से तीन पग भूमि की याचना की ॥ १९ ॥ सोलहवें अवतार मे

९—तुर्येधर्मकलासर्गेनरनारायणावृषी। भूत्वात्मोपशमोपेतमकरोद्दुश्चरतपः ॥

१०—पञ्चम:कपिलोनामसिद्धेश:कालविप्लुतम्। प्रोवाचासुरयेसांख्यतत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥

११—षष्ठेअत्रेरपत्यत्वंवृतःप्राप्तोऽनसूयया। आन्वीक्षिकीमलर्कायप्रह्लादादिभ्यऊचिवान् ॥

१२—ततःसप्तमआकूत्यांरुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत। सयामाद्यैःसुरगणैरपात्स्वायंभुवान्तरम् ॥

१३—अष्टमेमेरुदेव्यांतुनाभेर्जातउरुक्रमः। दर्शयन्वर्त्मधीराणांसर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥

१४—ऋषिभिर्याचितोभेजेनवमंपार्थिवंवपुः। दुग्धेमामौषधीर्विप्रास्तेनायंसउशत्तमः ॥

१५—रूपंसजगृहेमात्स्यंचाक्षुपोदधिसंप्लवे। नाव्यारोप्यमहीमय्यामपाद्वैवस्वतंमनुम् ॥

१६—सुरासुराणामुदधिंमथ्नतांमंदराचलं। दध्रेकमठरूपेणपृष्ठएकादशेविभुः ॥

१७—धान्वंतरंद्वादशमंत्रयोदशममेवच। अपाययत्सुरानन्यान्मोहिन्यामोहयन्स्त्रिया ॥

१८—चतुर्दशंनारसिंहंबिभ्रद्दैत्येंद्रमूर्जितं। ददारकरजैर्वक्षस्येरकांकटकृद्यथा ॥

१९—पंचदशंवामनकंकृत्वागादध्वरंबलेः। पदत्रयंयाचमानःप्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपं ॥

परशुराम प्रकट हुए। वे ब्रह्मद्रोही राजाओं को देखकर बड़े क्रुद्ध हुए और उन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से विहीन किया॥ २०॥ सत्रहवें अवतार में श्री पराशर ऋषि के द्वारा सत्यवती नामकी स्त्री के गर्भ से वेदव्यासजी हुए, जिन्होंने मनुष्यों की अल्पज्ञता देखकर वेदरूपी वृक्ष का शाखारूप से विभाग किया॥ २१॥ अठारहवाँ अवतार रामचंद्र के रूप से हुआ, जिन्होंने देवताओं का उपकार करने की इच्छा से समुद्र में पुल बाँधने-जैसे कठिन कार्यों को किया॥ २२॥ उन्नीसवाँ और बीसवाँ अवतार यदुकुल मे बलराम और श्रीकृष्ण रूप से हुआ, जिन्होंने पृथिवी का भार हरण किया॥ २३॥ अनंतर इक्कीसवें अवतार में कलियुग का आरंभ हो जाने के कारण असुरों मे मोह उत्पन्न करने के लिये मगध देश मे जिन देव के पुत्र बुद्ध के नाम से उत्पन्न होंगे॥ २४॥ कलियुग के अंत में सब राजा चोर के समान हो जायँगे। उस समय जगत्पति भगवान् विष्णुयशस् नामक ब्राह्मण के घर कल्कि नाम से बाईसवाँ अवतार धारण करेंगे॥ २५॥ द्विज! जैसे क्षीण न होनेवाले सरोवर से हजारों छोटी-छोटी नदियाँ निकलती है, वैसेही सत्त्व के भांडार भगवान् के अगणित अवतार हैं॥ २६॥ ऋषि, मनु, देवता, महापराक्रमी मनु के पुत्र और प्रजापति—ये सब भगवान् की ही कला हैं॥ २७॥ ये सभी परमेश्वर के अंश और उनकी कला से उत्पन्न हैं, किंतु श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् ही हैं, जो प्रत्येक युग मे असुरों से व्याकुल हुए जगत् को आनंदित करते हैं॥ २८॥

जो मनुष्य भगवान् के इस जन्म-रहस्य को पवित्र होकर साँझ-सवेरे भक्तिपूर्वक पढ़ता है, वह सब प्रकार के दु:खों के समूह से छूट जाता है॥ २९॥ स्वरूपरहित इस चेतन जीव का स्थूल शरीर भगवान् की माया के महदादि गुणों से बना है, जो आत्मा के स्थान में कल्पित

२०—अवतारेषोडशमेपश्यन्ब्रह्मद्रुहोनृपान्। त्रि:सप्तकृत्व:कुपितोनि:क्षत्रामकरोन्महीं॥

२१—तत:सप्तदशेजात:सत्यवत्यांपराशरात्। चक्रेवेदतरो:शाखादृष्ट्वापुंसोऽल्पमेधस:॥

२२—नरदेवत्वमापन्न:सुरकार्यचिकीर्षया। समुद्रनिग्रहादीनिचक्रेवीर्याण्यत:परं॥

२३—एकोनविंशेविंशतिमेवृष्णिषुप्राप्यजन्मनी। रामकृष्णावितिभुवोभगवानहरद्भरं॥

२४—तत:कलौसंप्रवृत्तेसंमोहायसुरद्विषां। बुद्धोनाम्नाऽजनसुत:कीकटेषुभविष्यति॥

२५—अथासौयुगसन्ध्यायांदस्युप्रायेषुराजसु। जनिताविष्णुयशसोनाम्नाकल्किर्जगत्पति:॥

२६—अवताराह्यसंख्येयाहरे:सत्वनिधेर्द्विजा:। यथाऽविदासिन:कुल्या:सरस:स्यु:सहस्रश:॥

२७—ऋषयोमनवोदेवामनुपुत्रामहौजस:। कला:सर्वेहरेरेवसप्रजापतयस्तथा॥

२८—एतेचांशकला:पुंस:कृष्णस्तुभगवान्स्वयं। इन्द्रारिव्याकुलंलोकंमृडयंतियुगेयुगे॥

२९—जन्मगुह्यंभगवतोयएतत्प्रयतोनर:। सायंप्रातर्गृणन्भक्त्यादु:खग्रामाद्विमुच्यते॥

चौथा अध्याय

व्यासदेव की चिंता का निरूपण

व्यास बोले—दीर्घ काल तक यज्ञ करनेवाले मुनियों मे वृद्ध, ऋग्वेदियों के कुलपति (मुखिया) शौनक सूत की स्तुति करके उनसे बोले ॥ १ ॥

शौनक बोले—महाभाग, पौराणिक श्रेष्ठ सूत, भगवान् शुकदेव ने जिस कथा को कहा था, उस पुण्यरूप भागवत की कथा आप हमसे कहें ॥ २ ॥ यह संहिता किस कारण, किस स्थान में, किस युग में और किसकी प्रेरणा से व्यासजी ने बनाई ? ॥ ३ ॥ उन व्यासजी के पुत्र महायोगी श्रीशुकदेव थे । वे समदर्शी थे, भेदरहित थे तथा एक ब्रह्म मे ही उनकी मति थी । वे अपने स्वरूप को छिपाकर अज्ञानी की तरह प्रतीत होते थे, वे माया की निद्रा से परे थे ॥ ४ ॥ वे सब कुछ त्यागकर नगे ही वन मे जा रहे थे, व्यासजी भी पुत्रस्नेह के कारण उन्हें लौटा लाने के लिए उनके पीछे-पीछे दौडे आ रहे थे, मार्ग मे कुछ नगी स्त्रियाँ जल-विहार कर रही थीं, उन स्त्रियों ने नंगे शुकदेवजी को देखकर तो कपडे नहीं पहने, पर वस्त्रयुक्त व्यासजी को देखकर लज्जा से कपड़े पहन लिए, इससे व्यासजी को आश्चर्य हुआ। पूछनेपर उनस्त्रियों ने उत्तर दिया कि आप स्त्री-पुरुष मे भेद समझते हैं, यह भेद आपके पुत्र शुकदेव मे नहीं है, क्योंकि वे पूरे परमहंस हैं ॥ ५ ॥ नगर-निवासियों ने शुकदेवजी को कैसे पहचाना ? कुरुदेश और जांगल देशों मे तथा हस्तिनापुर मे वे कैसे पहुँचे ? ॥ ६ ॥ राजर्षि परीक्षित का सवाद शुकमुनि के साथ कैसे हुआ, जहाँ भागवत संहिता प्रकट हुई ? ॥ ७ ॥ एक गौ को दुहने मे जितना समय

व्यासउवाच—

१—इतिब्रुवाणसस्तूयमुनीनांदीर्घसत्रिणाम् । वृद्धःकुलपति.सूतबह्वृच.शौनकोऽब्रवीत् ॥

शौनकउवाच—

२—सूतसूतमहाभागवदनोवदतांवर । कथाभागवतींपुण्यायदाहभगवान्शुक' ॥

३—कस्मिन्युगेप्रवृत्तेयस्थानेवाकेनहेतुना । कुत:सचोदित'कृष्ण'कृतवान्सहितामुनि ॥

४—तस्यपुत्रोमहायोगीसमदृङ्निर्विकल्पक. । एकातमतिरुन्निद्रोगूढोमूढइवेयते ॥

५—दृष्ट्वानुयातमृषिमात्मजमप्यनग्नं देव्योह्रियापरिदधुर्नसुतस्यचित्रम् ।
तद्वीक्ष्यपृच्छतिमुनौजगदुस्तवास्तिस्त्रीपुम्भिदानतुसुतस्यविविक्तदृष्टे. ॥

६—कथमालक्षित:पौरै.सप्राप्त.कुरुजांगलान् । उन्मत्तमूकजडवद्विचरन्गजसाह्वये ॥

७—कथवायाण्डवेयस्यराजर्षेर्मुनिनासह । सवाद.समभूत्तातयत्रैषासात्वतीश्रुति ॥

लगता है, उतनी ही देर तक शुकदेवजी एक स्थान में ठहरते थे, वह भी गृहस्थों के आश्रम को पवित्र करने के लिए ॥ ८ ॥ सूत, ऋषिलोग अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को परम भागवत कहते हैं, आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले उनके जन्म और कर्मों को हमें सुनाइए ॥ ९ ॥ पांडवों की प्रतिष्ठा को बढ़ानेवाले चक्रवर्ती राजा परीक्षित ने राज्यलक्ष्मी का त्याग कर गंगा के किनारे आमरण अनशन क्यों किया ? ॥ १० ॥ सूत, अपनी भलाई के लिए शत्रु लोग भी जिनके चरणों में रत्नादि धन अर्पण करते थे, उन्हीं वीर राजा परीक्षित ने युवावस्था में ही परम प्रिय प्राणों के साथ राज्य-लक्ष्मी का त्याग करना चाहा, इस प्रकार का त्याग आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला है ॥ ११ ॥ महापुरुष अपने लिए नहीं जीते, उनका जीवन संसार की भलाई, संसार की उन्नति तथा लोक-कल्याण के लिए होता है। विरक्त होकर भी राजा परीक्षित ने अपने परोपकारी शरीर का त्याग कैसे किया, अर्थात् जो शरीर दूसरों का अवलंबन था, उसका त्याग करना उचित नहीं था ॥ १२ ॥ सूत, जो मैंने आपसे पूछा है, वह सब आप मुझसे कहें, क्योंकि वेद के अतिरिक्त आप सभी शास्त्रों के ज्ञाता हैं ॥ १३ ॥

सूत बोले—तीसरे युग के परिवर्तन होने पर, द्वापर युग में, उपरिचर वसु की कन्या सत्यवती के गर्भ से पराशर ऋषि के द्वारा वेदव्यासजी उत्पन्न हुए। ये श्रीभगवान् के कलावतार तथा योगी थे ॥ १४ ॥

वे एक दिन सूर्योदय के समय सरस्वती नदी में स्नान करके एकांत स्थान में बैठे थे ॥१५॥ सर्वज्ञ वेदव्यास ने देखा कि काल का वेग बड़ा प्रबल है, उसके प्रभाव से प्रत्येक युग में धर्म का

८—सगोदोहनमात्रंहिगृहेषुगृहमेधिनाम् । अवेक्षतेमहाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमम् ॥

९—अभिमन्युसुतंसूतप्राहुर्भागवतोत्तमम् । तस्यजन्ममहाश्चर्यकर्माणिचगृणीहिनः ॥

१०—ससम्राट्कस्यवाहेतोःपाण्डूनांमानवर्धनः । प्रायोपविष्टोगंगायामनादृत्याधिराट्श्रियम् ॥

११—नमंतियत्पादनिकेतमात्मनःशिवायहानीयधनानिशत्रवः ।
कथंसवीरःश्रियमंगदुस्त्यजांयुवैषतोत्स्रष्टुमहोसहासुभिः ॥

१२—शिवायलोकस्यभवायभूतयेयउत्तमश्लोकपरायणाजनाः ।
जीवंतिनात्मार्थमसौपराश्रयंमुमोचनिर्विद्यकुतःकलेवरं ॥

१३—तत्सर्वंनःसमाचक्ष्वपृष्टोयदिहकिंचन । मन्येत्वाविषयेवाचांस्नातमन्यत्रछांदसात् ॥

सूतउवाच—

१४—द्वापरेसमनुप्राप्तेतृतीयेयुगपर्यये । जातःपराशराद्योगीवासव्यांकलयाहरेः ॥

१५—सकदाचित्सरस्वत्याउपस्पृश्यजलंशुचि । विविक्तदेशआसीनउदितेरविमंडले ॥

१६—परावरज्ञःसऋषिःकालेनाव्यक्तरंहसा । युगधर्मव्यतिकरंप्राप्तंभुवियुगेयुगे ॥

ह्रास होता जा रहा ॥ १६ ॥ शरीर आदि की शक्ति का ह्रास हो चुका है, किसी में श्रद्धा नहीं है, सबलोग अधीर और अल्पायु हैं ॥ १७ ॥ व्यासजी की दृष्टि अमोघ थी, उन्होंने मनुष्यों की दरिद्रता को देखकर दिव्यदृष्टि से वर्ण और आश्रमों की रक्षा के लिए ध्यान किया ॥ १८ ॥ अनंतर इस विचार से कि पवित्र चातुर्होत्र (चार ऋत्विकों वाला यज्ञ) वैदिक कर्म है, यज्ञों की परंपरा को सुरक्षित रखने के लिए उन्होंने एक वेद का चार विभाग किया ॥ १९ ॥ ऋक्, यजुः, साम और अथर्व के नाम से वेद का चार विभाग करके उन्होंने वेदों का उद्धार किया । इतिहास और पुराण पाँचवे वेद कहे जाते हैं ॥ २० ॥ ऋग्वेद को धारण करनेवाले पैल ऋषि और यजुर्वेद में वैशंपायन निपुण हुए तथा सामवेद का जैमिनि कवि ने गान किया ॥ २१ ॥ अंगिराओं मे से सुमंतु नामक तीक्ष्ण स्वभाववाले मुनि अथर्ववेद के ज्ञाता हुए और मेरे पिता रोमहर्षण इतिहास और पुराणों के पारंगत हुए ॥ २२ ॥ उन्हीं पैल आदि ऋषियों ने अपने-अपने वेद को अनेक भागों में विभाजित किया, तथा अपने शिष्य-प्रशिष्यों को पढाया, वे ही वेदों की शाखाएँ कहलाईं ॥ २३ ॥ दीनों पर दया करनेवाले व्यासदेव ने वेदों का ऐसा विभाग इसलिए किया, जिससे थोड़ी बुद्धिवाले भी इन वेदों का ज्ञान प्राप्त कर सकें ॥ २४ ॥ स्त्री, शूद्र तथा वैश्य को वेदत्रयी का अधिकार नहीं है, उत्तम कर्मों में इनकी प्रवृत्ति भी नहीं है, इनके कल्याण के लिए व्यासदेव ने कृपा पूर्व महाभारत की कथा का निर्माण किया ॥ २५ ॥ महाभारत में मुनि ने वेदार्थ का वर्णन किया है ।

द्विज ! सब जीवों का कल्याण करने में तत्पर व्यासदेव का हृदय जब पूर्ण सन्तुष्ट नहीं हुआ, तब सरस्वती नदी के पवित्र तटपर एकात स्थान में वे उदास होकर बैठ गए । वे मन में

१७—भौतिकानांचभावानांशक्तिह्रासंचतत्कृतं । अश्रद्दधानान्निःसत्त्वान्दुर्मेधान्ह्रसितायुषः ॥

१८—दुर्भगांश्चजनान्वीक्ष्यमुनिर्दिव्येनचक्षुषा । सर्ववर्णाश्रमाणांयद्दध्यौहितममोघदृक् ॥

१९—चातुर्होत्रंकर्मशुद्धंप्रजानांवीक्ष्यवैदिकं । व्यदधाद्यज्ञसंतत्यैवेदमेकंचतुर्विधं ॥

२०—ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यावेदाश्चत्वारउद्धृताः । इतिहासपुराणंचपञ्चमोवेदउच्यते ॥

२१—तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगोजैमिनिःकविः । वैशंपायनएवैकोनिष्णातोयजुषामुत ॥

२२—अथर्वांगिरसामासीत्सुमन्तुर्दारुणोमुनिः । इतिहासपुराणानांपितामेरोमहर्षणः ॥

२३—तएतऋषयोवेदंस्वंस्वंव्यस्यन्ननेकधा । शिष्यैःप्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्तेशाखिनोऽभवन् ॥

२४—तएववेदादुर्मेधैर्धार्यंतेपुरुषैर्यथा । एवंचकारभगवान्व्यासःकृपणवत्सलः ॥

२५—स्त्रीशूद्रद्विजबंधूनांत्रयीनश्रुतिगोचरा । कर्मश्रेयसिमूढानांश्रेयएवंभवेदिह ॥
इतिभारतमाख्यानंकृपयामुनिनाकृतं ॥

२६—एवंप्रवृत्तस्यसदाभूतानांश्रेयसिद्विजाः । सर्वात्मकेनापियदानातुष्यद्धृदयंततः ॥

अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क करते हुए अपने-आप कहने लगे—॥ २६-२७ ॥ मैंने नियम से वेदों का अध्ययन किया, अग्नि में हवन किया, निष्कपट भाव से गुरुजनों की पूजा की तथा उनकी आज्ञाओं का पालन किया ॥ २८ ॥ मैंने महाभारत-संहिता के द्वारा वेदों के अर्थों को प्रकाशित किया, जिससे स्त्री और शूद्र आदि भी अपने धर्म का ज्ञान प्राप्त करते है ॥ २९ ॥ इतना होने पर भी शरीर को धारण करनेवाली आत्मा, जो अपने स्वरूप से व्यापक तथा ब्रह्मचर्य और वेदाध्ययन के कारण उन्नत है, तेजोहीन-सी मालूम पड़ती है ॥ ३० ॥ क्या मैंने अभी भागवत-धर्म अर्थात् भक्ति-तत्वों का निरूपण नहीं किया है?—क्योंकि भागवत धर्म ही भगवान् तथा परमहंसों को प्रिय है ॥ ३१ ॥ सरस्वती नदी के तट पर इस प्रकार कृष्णद्वैपायन (व्यासजी) अपनी आत्मा को शून्य मानते हुए दुखी हो रहे थे, इसी समय वहाँ नारद आए ॥ ३२ ॥ देवर्षि नारद को देखते ही व्यासदेव आसन से उठकर खड़े हो गए और उन्होंने उनकी विधिपूर्वक पूजा की, जिनकी पूजा देवता किया करते हैं ॥ ३३ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पहले स्कंध का चौथा अध्याय समाप्त

२७—नातिप्रसीदद्धृदयःसरस्वत्यास्तटेशुचौ । वितर्कयन्विविक्तस्थइदंप्रोवाचधर्मवित् ॥

२८—धृतव्रतेनहिमयाछन्दांसिगुरवोऽग्नयः । मानितानिर्व्यलीकेनगृहीतंचानुशासन ।

२९—भारतव्यपदेशेनह्याम्नायार्थश्चदर्शितः । दृश्यतेयत्रधर्मादिस्त्रीशूद्रादिभिरप्युत ॥

३०—अथापिबतमेदैह्योह्यात्माचैवात्मनाविभुः । असपन्नइवाभातिब्रह्मवर्चस्यसत्तमः ॥

३१—किंवाभागवताधर्मानप्रायेणनिरूपिताः । प्रियाःपरमहंसानांतएवह्यच्युतप्रियाः ॥

३२—तस्यैवंखिलमात्मानमन्यमानस्यखिद्यतः । कृष्णस्यनारदोऽभ्यागादाश्रमंप्रागुदाहृत ॥

३३—तमभिज्ञायसहसाप्रत्युत्थायागतंमुनिः । पूजयामासविधिवन्नारदंसुरपूजित ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेप्रथमस्कंधेचतुर्थोऽध्याय. ॥४॥

पाँचवाँ अध्याय

नारद का व्यासदेव से भगवान् के कीर्तन की महिमा कहना

सूत बोले—परम यशस्वी देवर्षि नारद हाथ मे वीणा लिए हुए सुख से बैठे थे। वे समीप बैठे हुए व्यास को लक्ष्य करके मुस्कुराते हुए बोले ॥ १ ॥

नारद बोले—महाभाग व्यास, शरीर का अभिमान रखनेवाली आपकी आत्मा उस शरीर से, तथा मन का अभिमान रखनेवाली आत्मा उस मन से प्रसन्न तो है? ॥ २ ॥ जिन धर्मादि तत्वो को आप जानना चाहते थे, उन्हे आपने अच्छी तरह जान लिया; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से परिपूर्ण महाभारत-संहिता की भी रचना कर डाली ॥ ३ ॥ प्रभो, आपने उस सनातन ब्रह्म को जान लिया, जो जिज्ञासा की वस्तु है, फिर भी आप ऐसा सोचते हैं, मानो आपने कुछ किया ही नहीं ॥ ४ ॥

व्यास बोले—आपने जो कुछ कहा, वह सब ठीक है, फिर भी मेरी आत्मा संतुष्ट नहीं होती, इसका कारण मैं आपसे पूछता हूँ, क्योंकि आप ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न हैं, आपका ज्ञान बड़ा गभीर है ॥ ५ ॥ आपने पुराणपुरुष विष्णु की उपासना की है, जो कार्य-कारण दोनो के स्वामी है, जो अपने संकल्प के द्वारा गुणो से इस विश्व की सृष्टि करते, पालन करते और संहार करते हैं, अतएव आप सभी गुप्त बातो को जानते हैं ॥ ६ ॥ सूर्य के समान आप तीनों लोको का भ्रमण करते हैं, शरीर में विचरण करनेवाली वायु के समान आप सब के साक्षी हैं, अत: नियमपूर्वक योगबल से जिसने परब्रह्म के स्वरूप को जान लिया है तथा व्रत अर्थात्

सूतउवाच—

१—अथतंसुखमासीनउपासीनंबृहच्छ्रवा: । देवर्षिप्राहविप्रर्षिं वीणापाणिःस्मयन्निव ॥

नारदउवाच—

२—पाराशर्यमहाभागभवतःकच्चिदात्मना । परितुष्यतिशारीरआत्मामानसएववा ॥

३—जिज्ञासितंसुसंपन्नमपितेमहदद्भुतं । कृतवान्भारतंयस्त्वंसर्वार्थपरिबृंहितं ॥

४—जिज्ञासितमधीतंचयत्तद्ब्रह्मसनातनं । अथापिशोचस्यात्मानमकृतार्थइवप्रभो ॥

व्यासउवाच—

५—अस्त्येवमेसर्वमिदंत्वयोक्तंतथापिनात्मापरितुष्यतेमे ।

तन्मूलमव्यक्तमगाधबोधंपृच्छामहेत्वात्मभवात्मभूतं ॥

६—सवैभवान्वेदसमस्तगुह्यमुपासितोयत्पुरुषः पुराणः । परावरेशोमनसैवविश्वंसृजत्यवत्यत्तिगुणैरसंगः ॥

स्वाध्याय के द्वारा वेदों का पार पा लिया है, उस-मुझमे जिस बात की अत्यंत न्यूनता (कमी) है, उसे आप समझ लीजिए ॥ ७ ॥

नारद बोले—आपकी न्यूनता को मैंने जान लिया। आपने भगवान् के विमल यशों का वर्णन प्रायः नहीं किया, जिसके विना साधारण धर्म आदि के आचरण से वे प्रसन्न नहीं होते ॥ ८ ॥ मुनिश्रेष्ठ, आपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का जैसा वर्णन किया है, वैसा श्रीवासुदेव की महिमा का नहीं किया ॥ ९ ॥ जिस वाणी मे चातुर्य भरा है, किंतु जगत् को पवित्र करनेवाला श्रीहरि का यश वर्णित नही है, वह काक के समान वाणी कामी पुरुषों के मनोरंजन की वस्तु है ; मान-सरोवर मे विहार करनेवाले हंसो के तुल्य ब्रह्मज्ञानी विद्वान् उस वाणी मे आनंद का अनुभव नहीं करते ॥ १० ॥ वह वाणी का विस्तार असंबद्ध होने पर भी जनता के पापों को धोनेवाला है, जिसके प्रत्येक श्लोक मे अनंत भगवान् के नाम तथा यश अंकित हैं ; महापुरुष उसका श्रवण, कीर्तन तथा स्वयं उसका गान किया करते है ॥ ११ ॥ भगवान् की भक्ति से वर्जित उपाधिरहित निर्मल ब्रह्मज्ञान भी शोभा नहीं देता। परिणाम मे दुःख देनेवाला काम्य कर्म तथा निष्काम कर्म यदि ईश्वर को अर्पण नहीं किया गया तो उसकी शोभा कहाँ ? ॥ १२ ॥

महाभाग, आपकी दृष्टि अमोघ है, आपका यश निर्दोष है, आपने परोपकारादि नियमों का पालन किया है तथा आप सत्यवक्ता है, अतः समस्त प्राणियो को बन्धन से मुक्त करने के लिए महापराक्रमी भगवान् की लीला का समाधि के द्वारा स्मरण कीजिए ॥ १३ ॥ भगवान् की

७—त्वपर्यटन्नर्कइवत्रिलोकीमन्तश्चरोवायुरिवात्मसाक्षी ।
परावरेब्रह्मणिधर्मतोव्रतैःस्नातस्यमेन्यूनमलंविचक्ष्व ॥

नारदउवाच—

८—भवताऽनुदितप्रायंयशोभगवतोऽमलं। येनैवासौनतुष्येतमन्येतद्दर्शनंखिलं ॥

९—यथाधर्मादयश्चार्थामुनिवर्यानुकीर्तिताः । नतथावासुदेवस्यमहिमाह्यनुवर्णितः ॥

१०—नयद्वचश्चित्रपदंहरेर्यशोजगत्पवित्रंप्रगृणीतकर्हिचित् ।
तद्वायसंतीर्थमुशन्तिमानसानयत्रहंसानिरमन्त्युशिक्क्षयाः ॥

११—तद्वाग्विसर्गोजनताघविप्लवोयस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।
नामान्यनन्तस्ययशोऽङ्कितानियच्छृण्वन्तिगायन्तिगृणन्तिसाधवः ॥

१२—नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितंनशोभतेज्ञानमलंनिरंजनं ।
कुतःपुनःशश्वदभद्रमीश्वरेनचार्पितंकर्मयदप्यकारणं ॥

१३—अथोमहाभागभवानमोघदृक्शुचिश्रवाःसत्यरतोधृतव्रतः ।
उरुक्रमस्याखिलबंधमुक्तयेसमाधिनाऽनुस्मरतद्विचेष्टितं ॥

लीला के अतिरिक्त वर्णन किए गए नाम-रूपो से बुद्धि चञ्चल हो जाती है, जैसे वायु के झकोरों से नौका किसी निर्दिष्ट स्थान पर नहीं ठहरती ॥ १४ ॥ आपने धर्म के अनुशासन के लिए जिन नियमों को लिखा है, वे धर्म से विपरीत ही हुए हैं, क्योंकि साधारण मनुष्य उससे केवल प्रवृत्ति अर्थ ग्रहण करते हैं, निवृत्तिमूलक परम धर्म को वे नहीं समझते ॥ १५ ॥ देश-काल आदि से अपरिच्छिन्न परमात्मा के अनुभवरूपी सुख को निवृत्ति के द्वारा ही कोई विद्वान् जान सकता है, अत. सत्वादि गुणो से प्रकट होकर देहाभिमान रखनेवाले उस व्यापक परमेश्वर की लीलाओं का वर्णन आप कीजिए ॥ १६ ॥

जो मनुष्य अपने साधारण धर्मों का त्याग करके श्रीभगवान् के चरण-कमलों की सेवा करता है, वह यदि भक्ति के दृढ हुए बिना भी मर गया तो उसकी कुछ हानि नहीं होती अर्थात् भक्ति की वासना से उसकी सद्गति ही होती है। जो भगवान् की भक्ति किए बिना ही अपने नित्य-नैमित्तिक धर्मों का अनुष्ठान करते हैं, उन्हें किसी अच्छे फल की प्राप्ति नहीं होती ॥ १७ ॥ सामान्य धर्मों के अनुष्ठान से मिलनेवाले फलों के लिए क्या विद्वानों को यत्न करना चाहिए ? नहीं, वे सुख-दु.ख आदि तो प्रबल वेगवाले काल के प्रभाव से स्थावर से लेकर ब्रह्मा तक की योनियो में अपने आप ही मिलते रहते हैं ॥ १८ ॥ भगवान् की सेवा करनेवाला दूसरों की तरह (कर्मनिष्ठों की तरह) कुयोनि मे पहुचने पर भी सांसारिक दु:खो से दुखी नहीं होता। वहाँ भी वह श्रीभगवान् के चरणो के आलिंगन का ध्यान करता रहता है, परमेश्वर में आग्रह होने के कारण वह उनकी भक्ति का परित्याग नहीं करता ॥ १९ ॥

१४—ततोऽन्यथाकिंचनयद्विवक्षत.पृथग्दृशस्तत्कृतरूपनामभिः ।
नकुत्रचित्क्वापिचदुस्थितामतिर्लभेतवाताहतनौरिवास्पदं ॥

१५ – जुगुप्सितधर्मकृतेऽनुशासतःस्वभावरक्तस्यमहान्व्यतिक्रम. ।
यद्वाक्यतोधर्मइतीतरस्थितोनमन्यतेतस्यनिवारणंजन. ॥

१६—विचक्षणोऽस्यार्हतिवेदितुविभोरनंतपारस्यनिवृत्तित.सुखं ।
प्रवर्त्तमानस्यगुणैरनात्मनस्ततोभवान्दर्शयचेष्टितविभोः ॥

१७ – त्यक्त्वास्वधर्मंचरणांबुजहरेर्भजन्नपक्वोऽथपतेत्ततोयदि ।
यत्रक्वाऽभद्रमभूदमुष्यकिंकोवाऽर्थआप्तोभजतास्वधर्मतः ॥

१८ – तस्यैवहेतोःप्रयतेतकोविदोनलभ्यतेयद्भ्रमतामुपर्यधः ।
तल्लभ्यतेदुःखवदन्यतःसुखकालेनसर्वत्रगभीररंहसा ॥

१९ – नवैजनोजातुकथचनाव्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्गसंसृतिम् ।
स्मरन्मुकुन्दाङ्घ्र्युपगूहनपुनर्विहातुमिच्छेन्नरसग्रहोयतः ॥

यह संसार दूसरा भगवान् ही है, क्योंकि जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार भगवान् के द्वारा ही होता है। ये बातें आप स्वयं जानते हैं, फिर भी मैं आपको थोड़ा बतलाता हूँ ॥ २० ॥ अमोघदृष्टि, संसार के कल्याण के लिए आप स्वयं परमपुरुष भगवान् वासुदेव की कला से अवतीर्ण हैं, अतः भगवान् की, पराक्रम आदि, लीलाओं का आप अधिकाधिक वर्णन करें ॥ २१ ॥ उत्तमश्लोक भगवान् विष्णु के गुणानुवाद को ही ज्ञानी लोग श्रेष्ठ कहते हैं, क्योंकि मनुष्य के तप, यज्ञ, प्रवचन, शास्त्र-श्रवण, ज्ञान और दान का अक्षय फल भगवान् का गुण-कीर्तन ही है ॥ २२ ॥

मुनि, पूर्वजन्म में मैं एक वेदज्ञ ब्राह्मण की दासी का पुत्र था। वर्षाकाल में एकत्र निवास करने की इच्छा से आए हुए ऋषियों की सेवा के लिए मैं नियुक्त किया गया ॥ २३ ॥ समदर्शी उन ऋषियों ने मुझ पर बड़ी कृपा की, क्योंकि मैं बिलकुल शांत और जितेंद्रिय था, सदा उनकी सेवा में तत्पर रहता था और बहुत कम बोलता था ॥ २४ ॥ ऋषियों की आज्ञा से उनके बर्तनों में लगे हुए जूठे अन्न को मैं खाता था। इससे मेरे समस्त पाप दूर हो गए और भगवद्भजन में मेरी रुचि उत्पन्न हुई ॥ २५ ॥ ऋषिलोग प्रतिदिन श्रीकृष्ण की कथा कहते थे। उन कथाओं को श्रद्धापूर्वक सुनने के कारण मुझे श्रीकृष्ण के चरणों में प्रीति उत्पन्न हुई ॥ २६ ॥ मुनिश्रेष्ठ, जब श्रीभगवान् में मेरी मति दृढ़ हो गई तो मुझे जान पड़ा कि यह स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर मुझ ब्रह्म

---

२० – इदंहिविश्वभगवानिवेतरोयतोजगत्स्थाननिरोधसम्भवाः ।
तद्धिस्वयंवेदभवांस्तथाऽपितेप्रादेशमात्रंभवतःप्रदर्शितं ॥

२१ – त्वमात्मनात्मानमवेह्यमोघदृक्परस्यपुंसःपरमात्मनःकलां ।
अजंप्रजातंजगतःशिवायतन्महानुभावाभ्युदयोऽधिगण्यतां ॥

२२ – इदंहिपुंसस्तपसःश्रुतस्यवास्विष्टस्यसूक्तस्यचबुद्धिदत्तयोः ।
अविच्युतोऽर्थःकविभिर्निरूपितोयदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनं ॥

२३ – अहंपुराऽतीतभवेऽभवंमुनेदास्यास्तुकस्याश्चनवेदवादिनां ।
निरूपितोबालकएवयोगिनांशुश्रूषणेप्रावृषिनिर्विविक्षतां ॥

२४ – तेमय्यपेताखिलचापलेऽर्भकेदान्तेधृतक्रीडनकेऽनुवर्तिनि ।
चक्रुःकृपायद्यपितुल्यदर्शनाःशुश्रूषमाणेमुनयोऽल्पभाषिणि ॥

२५ – उच्छिष्टलेपाननुमोदितोद्विजैःसकृत्स्मभुञ्जेतदपास्तकिल्बिषः ।
एवंप्रवृत्तस्यविशुद्धचेतसस्तद्धर्मएवात्मरुचिःप्रजायते ॥

२६—तत्रान्वहंकृष्णकथाःप्रगायतामनुग्रहेणाशृणवंमनोहराः ।
ताःश्रद्धयामेऽनुपदंविशृण्वतःप्रियश्रवस्यङ्गममाभवद्रुचिः ॥

में अविद्या से कल्पित है, यथार्थ नहीं है ॥ २७ ॥ महात्मा मुनिलोग प्रातःकाल, सायंकाल तथा मध्याह्न में भगवान् के यश का कीर्तन किया करते थे। इस प्रकार तीनों कालों में भगवान् के निर्मल यश को सुनते-सुनते मुझे भी रजोगुण और तमोगुण को दूर करनेवाली भगवद्भक्ति प्राप्त हुई ॥ २८ ॥ अनुरागी, विनीत, निष्पाप, श्रद्धालु, जितेंद्रिय तथा सेवा करनेवाले मुझ बालक पर कृपा करके जाते समय दयालु ऋषियों ने अत्यंत गोपनीय ज्ञान का उपदेश किया, जिस ज्ञान को साक्षात् भगवान् ने अपने श्रीमुख से कहा था ॥ २९-३० ॥ इसी ज्ञान के द्वारा मैंने सृष्टिकर्ता भगवान् वासुदेव की लीला को जान लिया, जिसके द्वारा विद्वान् लोग परम पद को प्राप्त करते हैं ॥ ३१ ॥

विप्र, आध्यात्मिक आदि तीन प्रकार के तापों को नष्ट करनेवाले और सब को नियम में रखनेवाले ब्रह्मरूप भगवान् को जो कर्म अर्पित हैं, उन्हें मैंने आपसे कहा ॥ ३२ ॥ जो रोग जिस द्रव्य से उत्पन्न होता है, वही द्रव्य उसे नष्ट नहीं कर सकता, किंतु अन्य द्रव्यों से प्रभावित होने पर रोग को नष्ट करता है ॥ ३३ ॥ यों तो मनुष्यों के सभी कार्य सांसारिक बंधन के कारण हैं; किंतु भगवान् को अर्पित होने पर वे ही कर्मों के विनाशक बन जाते हैं ॥ ३४ ॥ इस कर्मभूमि में भगवान् की प्रसन्नता के लिए भक्तियोग से सम्मिलित जो कर्म किया जाता है, ज्ञान उस कर्म के अधीन रहता है ॥ ३५ ॥ भगवान् की आज्ञा से जो कर्म बार-बार किए जाते हैं, वे भगवान् के नामों और गुणों को प्रकट करते तथा उनका स्मरण कराते हैं ॥ ३६ ॥ ओंकार-सहित भगवान् को मैं मन से प्रणाम करता हूँ तथा प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षण को भी नम-

---

२७—तस्मिंस्तदालब्धरुचेर्महामुने प्रियश्रवस्यस्खलितामतिर्मम ।
यथाहमेतत्सदसत्स्वमायया पश्येमयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ॥

२८—इत्थं शरत्प्रावृषिकावृतू हरेर्विशृण्वतो मेऽनुसवं यशोऽमलं ।
संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभिर्भक्तिः प्रवृत्तात्मरजस्तमोपहा ॥

२९—तस्यैवं मेऽनुरक्तस्य प्रश्रितस्य हतैनसः । श्रद्दधानस्य बालस्य दान्तस्यानुचरस्य च ॥

३०—ज्ञानं गुह्यतमं यत्तत्साक्षाद्भगवतोदितं । अन्ववोचन्गमिष्यतः कृपया दीनवत्सलाः ॥

३१—येनैवाहं भगवतो वासुदेवस्य वेधसः । मायाऽनुभावमविदं येन गच्छंति तत्पदं ॥

३२—एतत्संसूचितं ब्रह्मंस्तापत्रयचिकित्सितम् । यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम् ॥

३३—आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत । तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम् ॥

३४—एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः । त एवात्मविनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे ॥

३५—यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणं । ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम् ॥

३६—कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगवच्छिक्षयाऽसकृत् । गृणन्ति गुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरन्ति च ॥

३७—नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥

स्कार करता हूँ ॥ ३७ ॥ इस प्रकार मूर्तियों के नाम से निराकार और मंत्र के मूर्तिरूप यज्ञरूप (सब के लिए हितकर) पुरुष ईश्वर की जो पूजा करता है, वह आत्मदर्शी (अपने हृदय में परमात्मा को देखनेवाला) हो जाता है ॥ ३८ ॥ ब्रह्मन्, भगवान् के इस उपदेश को पाकर मैंने इसका अनुष्ठान किया था, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् ने अपना ज्ञान, ऐश्वर्य तथा भक्ति मुझे दी ॥ ३९ ॥ बहुश्रुत, आप भी भगवान् के प्रसिद्ध यश का वर्णन करें, जिसके द्वारा विद्वानों की जिज्ञासा (जानने की इच्छा) मिट जाती है, क्योंकि दुःखों से बार-बार सताए गए प्राणियों के क्लेशों की शांति अन्य उपायों से नहीं होती ॥ ४० ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पहले स्कंध का पाँचवाँ अध्याय समाप्त
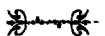
छठवाँ अध्याय

नारद के द्वारा हरिकीर्तन की महत्ता का निरूपण

सूत बोले—ब्रह्मन् ! सत्यवती के पुत्र भगवान वेदव्यास ने इस प्रकार देवर्षि नारद के जन्म और कर्म को सुनकर पुनः उनसे पूछा ॥ १ ॥

व्यास बोले—पहले जन्म में आप को जिन्होंने विज्ञान का उपदेश दिया था, उन महात्माओं के दूर देश चले जाने पर आपने क्या किया ? ॥ २ ॥ स्वायंभुव ! आपकी उत्तर अवस्था

---

३८ – इतिमूर्त्यभिधानेनमन्त्रमूर्तिममूर्तिकं । यजतेयज्ञपुरुषंससम्यग्दर्शनःपुमान् ॥

३९ – इमंस्वनिगमंब्रह्मन्नवेत्यमदनुष्ठितम् । अदान्मेज्ञानमैश्वर्यंस्वस्मिन्भावंचकेशवः ॥

४० – त्वमप्यदभ्रश्रुतविश्रुतंविभोःसमाप्यतेयेनविदांबुभुत्सितम् ।
आख्याहिदुःखैर्मुहुरर्दितात्मनासंक्लेशनिर्वाणमुशंतिनान्यथा ॥

इतिश्रीभा० म० प्र० व्यासनारदसंवादेपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

——:*-*:——

सूतउवाच—

१– एवंनिशम्यभगवान्देवर्षेर्जन्मकर्मच । भूयःपप्रच्छतंब्रह्मन्व्यासःसत्यवतीसुत ॥

व्यासउवाच—

२ – भिक्षुभिर्विप्रवसितेविज्ञानादेष्टृभिस्तव । वर्तमानोवयस्याद्येततःकिमकरोद्भवान् ॥

किस वृत्ति (प्रकार) से व्यतीत हुई ? काल प्राप्त होने पर आपने इस शरीर का त्याग कैसे किया ? ॥ ३ ॥ देवताओं में श्रेष्ठ नारद ! पूर्व कल्पवाली आपकी इस स्मृति को इस काल ने खंडित क्यों नहीं किया ? क्योंकि यह काल सबका नाश करनेवाला है ॥ ४ ॥

नारद बोले—जिन्होंने मुझे ज्ञान का उपदेश दिया था, उनके दूर देश चले जाने पर पहली अवस्था में मैंने यह कार्य किया ॥ ५ ॥ मैं अपनी माता की एक मात्र संतान था, वह एक ब्राह्मण की दासी थी और मुझ से बड़ा स्नेह रखती थी ॥ ६ ॥ मेरे योगक्षेम (भरणपोषण) (योग=अप्राप्य वस्तु को प्राप्त करना, क्षेम=प्राप्त वस्तु की रक्षा करना) की चिंता किया करती थी, वह स्वतंत्र न थी, क्योंकि सब लोग स्वामी के ही वश में रहते हैं, जिस प्रकार काठ की पुतली नचानेवाले के वश में रहती हैं ॥ ७ ॥ माता के स्नेह बंधन से मैं मुक्त हो जाऊँ, इस आशा से मैंने उसी ब्राह्मण कुल में निवास किया। मैं पाँच वर्ष का बालक था मुझे देश और काल का ज्ञान नहीं था ॥ ८ ॥

एक समय रात्रि में वह गो दुहने के लिए घर से बाहर निकली, रास्ते में उसके पैर के नीचे साँप दब गया। काल प्रेरित साँप के काटने से मेरी दीना माता मर गई ॥ ९ ॥ उस समय मैंने इसे भक्तों की भलाई करनेवाले भगवान का अनुग्रह समझ कर उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया ॥ १० ॥ वहाँ के प्रदेश, नगर, ग्राम, गोशालाएँ, रत्नों की खानें, किसानों की बस्ती, पहाड़ के समीप वाले गाँव, बगीचे और वन, उपवन सभी समृद्धिशाली थे ॥ ११ ॥ अनेक प्रकार के धातुओं से विचित्र पर्वत थे, वृक्षों की शाखाओं को हाथियों ने नष्ट कर दिया था, जलाशयों में स्वच्छ जल था, उसमें कमलिनी खिली हुई थी, देवता लोग उस पर निवास

---

३ – स्वायम्भुवकयावृत्त्यावर्तितम्तेपरवयः। कथचेदमुदस्राक्षीत्कालेप्रातेकलेवर ॥

४ – प्राक्कल्पविषयामेतास्मृतिंतेसुरसत्तम। नह्येपव्यवधात्कालएपसर्वनिराकृत. ॥

नारदउवाच—

५ – भिक्षुभिर्विप्रवसितेविज्ञानादेष्टभिर्मम। वर्त्तमानोवयस्याद्येततएतदकारप ॥

६ – एकात्मजामेजननीयोषिन्मूढाचकिंकरी। मय्यात्मजेऽनन्यगतौचक्रेस्नेहानुबन्धनं ॥

७ – साऽस्वतन्त्रानकल्पासीद्योगक्षेमंममेच्छति। ईशस्यहिवशेलोकोयोपादारुमयीयथा ॥

८ – अहंचतद्ब्रह्मकुलऊषिवांस्तदवेक्षया। दिग्देशकालाव्युत्पन्नोबालकःपंचहायनः ॥

९ – एकदानिर्गतागेहाद्दुहन्तीनिशिगांपथि। सर्पोऽदशत्पदास्पृष्टःकृपणांकालचोदितः ॥

१० – तदातदहमीशस्यभक्तानांशमभीप्सतः। अनुग्रहंमन्यमानःप्रातिष्ठंदिशमुत्तरां ॥

११ – स्फीताञ्जनपदांस्तत्रपुरग्रामव्रजाकरान्। खेटखर्वटवाटीश्चवनान्युपवनानिच ॥

१२ – चित्रधातुविचित्राद्रीनिभभग्नभुजद्रुमान्। जलाशयाञ्छिवजलान्नलिनीःसुरसेविताः ॥

करते थे ॥ १२ ॥ पक्षियों के विचित्र शब्दों से चौंककर भ्रमर उड़ रहे थे, इससे नालिनी की शोभा और बढ़ रही थी। इन सबों को अकेले पार करके आगे मैंने नल-वेणु और शरकंडों के स्तंबों, कुशाओं और एक प्रकार के बाँसों के कारण दुर्ग एवं विशाल वन को देखा। वह वन साँप, उल्लू और गीदड़ों की क्रीड़ा का स्थान तथा अत्यंत भयंकर था ॥ १३-१४ ॥ मेरा मन खिन्न था, मेरी इंद्रियाँ थक गई थीं, मैं भूख और प्यास के मारे एक दम व्याकुल हो गया था, अतः मैंने नदी में स्नान करके जलपान तथा आचमन किया, और अपनी थकावट को दूर किया ॥ १५ ॥ उस निर्जन वन में मैं पीपल के पेड़ के नीचे बैठ गया। जैसे मैंने ब्राह्मणों से सुना था, उसी भाँति मैंने एकाग्रचित्त से अपने हृदय में परमात्मा का ध्यान किया ॥ १६ ॥ अनन्य भाव से भगवान के चरण-कमल का चिंतन करते, उत्कंठा के कारण मेरी आँखों में आँसू भर आए। उस समय श्रीभगवान मेरे हृदय में प्रकट हुए ॥ १७ ॥ मुनिवर ! प्रेम की अधिकता से मेरे शरीर में रोमांच हो आया। मैं बिलकुल शांत होकर आनंद के समुद्र में ऐसा डूबा कि दोनों को (अपने को तथा भगवान को भी) नहीं देख सका ॥ १८ ॥ शोकों को हरनेवाले भगवान के उस मनोहर रूप को न देखकर मैं विकल हो गया और अन्य मनस्क हो (घबराकर) सहसा उठ बैठा ॥ १९ ॥ उस रूप को पुनः देखने की इच्छा से मैंने मन को हृदय में स्थिर किया, परंतु जब बहुत देर तक ध्यान करने पर भी वह रूप मुझे फिर दिखाई नहीं पड़ा, तो मैं आतुर की तरह व्याकुल हो गया ॥ २० ॥ निर्जन वन में इस प्रकार चेष्टा करनेवाले मुझको सांत्वना देते हुए भगवान ने, जो वाणी से परे हैं, गंभीर तथा सुन्दर वाणी में कहा—॥ २१ ॥

वत्स ! इस जन्म में तुम हमको नहीं देख सकते। उन योगियों को मेरा दर्शन दुर्लभ है, जिन्होंने अपने काम, क्रोधादि दोषों को नष्ट नहीं किया है ॥ २२ ॥ एकबार रूप मैंने इस—

१३ – चित्रस्वनैः पत्ररथैर्विभ्रमद्भ्रमरश्रियः । नलवेणुशरस्तम्बकुशकीचकगह्वरं ॥

१४ – एकएवातियातोऽहमद्राक्षंविपिनंमहत् । घोरंप्रतिभयाकारंव्यालोलूकशिवाऽजिरं ॥

१५—परिश्रांतेंद्रियात्माहंतृट्परीतोबुभुक्षितः । स्नात्वापीत्वाह्रदेनद्याउपस्पृष्टोगतश्रमः ॥

१६—तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्येपिप्पलोपस्थआस्थितः । आत्मनात्मानमात्मस्थंयथाश्रुतमचिंतयं ॥

१७—ध्यायतश्चरणांभोजंभावनिर्जितचेतसा । औत्कंठ्याश्रुकलाक्षस्यहृद्यासीन्मेशनैर्हरिः ॥

१८—प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकांगोऽतिनिर्वृतः । आनंदसम्प्लवेलीनोनापश्यमुभयंमुने ॥

१९—रूपंभगवतोयत्तन्मनःकांतंशुचाऽपहं । अपश्यन्सहसोत्तस्थेवैक्लव्याद्दुर्मनाइव ॥

२०—दिदृक्षुस्तदहंभूयःप्रणिधायमनोहृदि । वीक्षमाणोऽपिनापश्यमवितृप्तइवातुरः ॥

२१—एवंयतंतंविजनेमामाहागोचरोगिरां । गम्भीरश्लक्ष्णयावाचाशुचःप्रशमयन्निव ॥

२२—हंतास्मिञ्जन्मनिभवान्मामांद्रष्टुमिहार्हति । अविपक्वकषायाणांदुर्दर्शोऽहंकुयोगिनां ॥

लिए दिखाया है कि मुझ मे तुम्हारी अभिलाषा हो। मनुष्य की कामना जब मुझ में होती है, तो वह हृदय में रहनेवाले कामादि दोषों का त्याग कर देता है ॥ २३ ॥ महात्माओं की थोड़े ही समय तक सेवा करने से तुम्हारी मुझ मे दृढ़भक्ति हुई है तथा तुमने निंदित कर्म का त्याग कर इस नीच शरीर को मेरी सेवा के योग्य बनाया है ॥ २४ ॥ मेरी ओर झुकी हुई तुम्हारी यह बुद्धि कभी नहीं नष्ट होने की। मेरी कृपा से प्रजासृष्टि का नाश होने पर भी तुम्हारी पूर्वजन्म की स्मृति (याद) बनी रहेगी ॥ २५ ॥ इतना कह कर रुक गये। उनकी मूर्ति आकाश में थी, पर दीख न पड़ती थी। उसने मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया था ॥ २६ ॥ लज्जा, मत्सर, मद और स्पृहा का मैंने त्याग कर अनंत भगवान् के नाम और कल्याण देनेवाली उनकी शुभ लीलाओं का स्मरण करता हुआ मैं पृथ्वी पर विचरने लगा, साथ ही मैं अपनी मृत्यु की भी प्रतीक्षा करता रहा ॥ २७ ॥ मेरी आत्मा निर्मल थी, मुझमे किसी प्रकार की आसक्ति नहीं थी, श्रीकृष्ण के चरणों में मेरा अनुराग था, समय पाकर मेरी मृत्यु सहसा बिजली की तरह उत्पन्न हुई ॥ २८ ॥ पूर्व जन्म के कर्मों के क्षीण होने पर पचभूतों से बना हुआ यह मेरा शरीर नष्ट हो गया और भगवान् की सेवा के योग्य शुद्ध शरीर मुझे मिला ॥ २९ ॥

कल्प के अंत मे जब भगवान् ने इस विश्व को समेट कर क्षीर-समुद्र में सोने की इच्छा की; उस समय मैं उनके प्राणवायु के साथ, उनके उदर में घुस गया ॥ ३० ॥ सहस्र युग बीत जाने पर, वे उठे और इस विश्व के निर्माण की इच्छा से उन्होंने मरीचि आदि ऋषियों को उत्पन्न किया तथा प्राणों के द्वारा मुझे उत्पन्न किया ॥ ३१ ॥ महाविष्णु की कृपा से मेरी गति कहीं नहीं रुकती थी, तीनो लोकों मे बाहर-भीतर, मै चाहे जहाँ

२३—स्त्रद्दर्शितंरूपमेतत्कामायतेऽनघ। मत्कामःशनकैःसाधुःसर्वान्मुचतिहृच्छयान् ॥

२४—त्सेवयादीर्घयातेजातामयिदृढामतिः। हित्वाऽवद्यमिमलोकगतामज्जनतामसि ॥

२५—मतिर्मयिनिबद्धेयनविपद्येतकर्हिचित्। प्रजासर्गनिरोधेऽपिस्मृतिश्चमदनुग्रहात् ॥

२६—एतावदुक्त्वोपररामतन्महद्भूतंनभोलिंगमलिंगमीश्वरं।
अहंचतस्मैमहतामहीयसेशीर्ष्णाऽवनामंविदधेऽनुकंपितः ॥

२७—नामान्यनंतस्यहतत्रपःपठन्गुह्यानिभद्राणिकृतानिचस्मरन्।
गांपर्यटंस्तुष्टमनागतस्पृहः कालंप्रतीक्षन्विमदोविमत्सरः।

२८—एवंकृष्णमतेर्ब्रह्मन्नसक्तस्यामलात्मनः। कालःप्रादुरभूत्कालेतडित्सौदामनीयथा ॥

२९—प्रयुज्यमानेमयितांशुद्धांभागवतींतनुं। आरब्धकर्मनिर्वाणोन्यपतत्पाचभौतिकः।

३०—कल्पांतइदमादायशयानेऽम्भस्युदन्वतः। शिशयिषोरनुप्राणंविविशेऽन्तरहंविभोः ॥

३१—सहस्रयुगपर्यंतउत्थायेदंसिसृक्षतः। मरीचिमिश्राऋषयःप्राणेभ्योऽहंचजज्ञिरे ॥

चला जा सकता था। मेरा ब्रह्मचर्यव्रत भी अखंडित था॥ ३२॥ यह वीणा मुझे भगवान् ने ही दी है, यह स्वर ब्रह्म से मंडित है, इसे बजा-बजा कर मैं भगवान् की कथा (गुणगाथा) गाता हूँ और संसार में विचरता रहता हूँ॥ ३३॥ भगवान् के चरण ही तीर्थ हैं, उनके गुण-गान कानों को प्रिय लगनेवाले है; जब मैं उनके गुणों का गान करता हूँ, तभी वे मेरे हृदय में बुलाए हुए की तरह शीघ्र आकर दर्शन देते हैं॥ ३४॥ बारंबार विषयों के भोग से जिनका चित्त चंचल हो गया है, उनके लिए भगवान् की लीलाओं का वर्णन ही भवसागर पार करने वाली नौका है॥ ३५॥ मुकुंद की सेवा के द्वारा मन को जैसी शांति मिलती है, वैसी योगशास्त्र मे-वर्णित यम, नियमादि से बार-बार काम और लोभ का नाश होने पर भी नहीं मिलती॥ ३६॥ निष्पाप! आपने जो मुझ से पूछा था, वह मन को संतोष देनेवाला अपने जन्म और कर्मों का रहस्य मैंने आप से कह सुनाया॥ ३७॥

सूत बोले—इच्छागामी भगवान् नारद सत्यवती के पुत्र वेदव्यास से इस प्रकार कह कर वीणा बजाते हुए चले गए॥ ३८॥ देवर्षि नारद धन्य हैं, क्योंकि शार्ङ्गपाणि (अपने शस्त्रादि को हाथों मे धारण किये हुये) भगवान् की कीर्ति का, अपनी वीणा के द्वारा, गान करते हुए, वे इस आतुर जगत् को आनंदित करते रहते है॥ ३९॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पहले स्कंध का छठवाँ अध्याय समाप्त।

३२—अतर्वहिश्चलोकांस्त्रीन्पर्येम्यस्कंदितव्रतः। अनुग्रहान्महाविष्णोरविघातगतिः क्वचित्॥

३३—देवदत्तामिमांवीणांस्वरब्रह्मविभूषिता। मूर्च्छयित्वाहरिकथांगायमानश्चराम्यहं॥

३४—प्रगायतःस्ववीर्याणितीर्थपादःप्रियश्रवाः। आहूतइवमेशीघ्रं दर्शनयातिचेतसि॥

३५—एतद्ध्यातुरचित्तानामात्रास्पर्शेच्छयामुहुः। भवसिंधुप्लवोदृष्टोहरिचर्याऽनुवर्णनं॥

३६—यमादिभिर्योगपथैःकामलोभहतोमुहुः। मुकुंदसेवयायद्वत्तथात्माऽद्धानशाम्यति॥

३७—सर्वंतदिदमाख्यातयत्पृष्टोऽहत्वयाऽनघ। जन्मकर्मरहस्यंमेभवतश्चात्मतोषणं॥

सूतउवाच—

३८—एवंसंभाष्यभगवान्नारदोवासवीसुतं। आमंत्र्यवीणांरणयन्ययौयादृच्छिकोमुनिः॥

३९—अहोदेवर्षिर्धन्योऽयंयत्कीर्तिंशार्ङ्गधन्वनः। गायन्माद्यन्निदंतन्त्र्यारमयत्यातुरंजगत्॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेप्रथमस्कंधेव्यासनारदसंवादेषष्ठोऽध्यायः॥६॥

सातवाँ अध्याय

पाडव-पुत्रों के वध से अश्वत्थामा का शिक्षा ग्रहण करना

शौनक बोले—सूत ! नारद के चले जाने पर उनके अभिप्राय को सुन कर भगवान् व्यासदेव ने क्या किया ? ॥ १ ॥

सूत बोले—ब्रह्मनदी-सरस्वती के पश्चिम तट पर ऋषियों के यज्ञों को बढानेवाला शम्याप्रास नाम का प्रसिद्ध आश्रम है ॥ २ ॥ बेर के वृक्षों से घिरे अपने उस आश्रम मे बैठे हुए वेद-व्यास ने जल से आचमन कर स्वयं मन को स्थिर किया अर्थात् नारद के उपदेशानुसार उन्होंने भगवान् का ध्यान किया ॥ ३ ॥ भक्तियोग के द्वारा व्यासजी का मन जब पूर्णरूप से निर्मल और शांत हो गया, तब उन्हें भगवान् और उनकी आश्रित माया का दर्शन हुआ ॥ ४ ॥ जिस माया के द्वारा मोहित होकर, तीनों गुणों से रहित, यह जीव अपने को त्रिगुणात्मक मानता है और गुणों के द्वारा उत्पन्न होनेवाले अनर्थ को भी भोगता है ॥ ५ ॥ सब प्रकार के अनर्थों की शांति का उपाय भगवान् मे भक्तियोग का होना ही है, अत. अज्ञानी ससार के लिए विद्वान् व्यासदेव ने "सात्वत-सहिता" अर्थात् श्रीमद्भागवत की रचना की ॥ ६ ॥ जिसके सुनने से परमपुरुष श्रीकृष्ण के चरणों में भक्ति उत्पन्न होती है। वह भक्ति मनुष्य के शोक, मोह और जरा को दूर करनेवाली है ॥ ७ ॥ व्यासमुनि ने इस भागवत-सहिता को शुद्ध कर निवृत्ति-परायण अपने पुत्र शुकदेव को पढाया ॥ ८ ॥

शौनकउवाच—

१—निर्गतेनारदेसूतभगवान्बादरायणः । श्रुतवांस्तदभिप्रेततत:किमकरोद्विभुः ॥

सूतउवाच—

२ – ब्रह्मनद्यासरस्वत्यामाश्रम'पश्चिमेतटे । शम्याप्रासइतिप्रोक्तऋषीणासत्रवर्द्धन. ।

३ – तस्मिन्स्वआश्रमेव्यासोबदरीखडमण्डिते । आसीनोऽपउपस्पृश्यप्रणिदध्यौमनःस्वय ॥

४ – भक्तियोगेनमनसिसम्यक्प्रणिहितेऽमले । अपश्यत्पुरुषपूर्वमायाचतदपाश्रया ॥

५ – ययासमोहितोजीवआत्मानत्रिगुणात्मक । परोऽपिमनुतेऽनर्थंतत्कृतचाभिपद्यते ॥

६ – अनर्थोपरमसाक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे । लोकस्याजानतोविद्वाश्चक्रेसात्वतसहिता ॥

७ – यस्यावैश्रूयमाणायाकृष्णेपरमपूरुषे । भक्तिरुत्पद्यतेपुसःशोकमोहजरापहा ॥

८ – ससंहिताभागवतींकृत्वाऽनुक्रम्यचात्मजं । शुकमध्यापयामासनिवृत्तिनिरतमुनिः ॥

शौनक बोले—निवृत्तिपरायण शुकदेव मुनि सर्वत्र उपेक्षा रखते थे। वे आत्माराम (सर्वतंत्रस्वतंत्र) थे, फिर उन्होंने इस बड़ी संहिता का अभ्यास किस लिए किया ॥ ९ ॥

सूत बोले—बंधनरहित आत्माराम मुनि लोग भी भगवान् की अहैतुकी भक्ति करते हैं, क्योंकि भगवान् के गुण ऐसे ही अलौकिक हैं ॥ १० ॥ बादरायण (व्यासजी) के पुत्र शुकदेवजी की श्रीहरि के गुणों में बड़ी श्रद्धा थी, भगवान के भक्त उन्हें बड़े प्रिय थे, अत: उन्होंने इस कथा का अभ्यास किया, जिससे महात्मा लोग इस कथा के ब्याज से उनके पास जायँ ॥ ११ ॥ अब मैं राजर्षि परीक्षित के जन्म, कर्म और मरण, युधिष्ठिरादि का स्वर्गारोहण तथा श्रीकृष्ण की कथा की उत्पत्ति का वर्णन करता हूँ ॥ १२ ॥

युद्ध में पांडव और सृञ्जयों (सृञ्जयवंश का धृष्टद्युम्न पाडवों का सेनापति था, इसलिये यहाँ पांडवों को सृञ्जय कहा गया है) की गदा से दुर्योधन की जाँघे चूर-चूर हो गईं, तो अपने स्वामी दुर्योधन का प्रिय करने की इच्छा से अश्वत्थामा ने सोये हुए द्रौपदी के पाँचों पुत्रों का सिर काट लिया, (अश्वत्थामा का यह निंदित कर्म दुर्योधन के लिये अप्रिय ही हुआ, क्योंकि सत्पुरुष इसकी निंदा करते हैं) ॥ १४ ॥ अपने बालकों की मृत्यु सुनकर माता द्रौपदी को घोर दुःख हुआ, आँसुओं की बूँदों से उनकी आँखे भर आईं, वे रोने लगीं। उन्हें शांत करते हुए किरीटमाली अर्जुन ने कहा—॥१५॥ भद्रे! तेरे आँसुओं को मैं अभी पोंछता हूँ। गांडीव से निकले हुए बाणों के द्वारा मैं उस आततायी नीच ब्राह्मण का सिर काट लाता हूँ। दग्धपुत्रा (जिसके पुत्र मर गए हैं) तू उसपर बैठकर स्नान करेगी ॥१६॥ इस तरह मनोहर और अनेक प्रकार

शौनकउवाच—

९—सवैनिवृत्तिनिरतःसर्वत्रोपेक्षकोमुनिः। कस्यवाबृहतीमेतामात्मारामःसमभ्यसत् ॥

सूतउवाच—

१०—आत्मारामाश्चमुनयोनिर्ग्रंथाअप्युरुक्रमे। कुर्वंत्यहैतुकींभक्तिमित्थंभूतगुणोहरिः ॥

११—हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान्बादरायणिः। अध्यगान्महदाख्याननित्यंविष्णुजनप्रियः ॥

१२—परीक्षितोऽथराजर्षेर्जन्मकर्मविलापनं। संस्थाचपाडुपुत्राणांवक्ष्येकृष्णकथोदय ॥

१३—यदामृधेकौरवसृंजयानांवीरेष्वथोवीरगतिंगतेषु।
वृकोदराविद्धगदाभिमर्शभग्नोरुदंडेधृतराष्ट्रपुत्रे ॥

१४—भर्तुःप्रियंद्रौणिरितिस्मपश्यन्कृष्णासुतानांस्वपतांशिरांसि ॥
उपाहरद्विप्रियमेवतस्यजुगुप्सितंकर्मविगर्हयंति ॥

१५—माताशिशूनांनिधनंसुतानांनिशम्यघोरंपरितप्यमाना।
तदाऽरुदद्बाष्पकलाकुलाक्षीतांसांत्वयन्नाहकिरीटमाली ॥

१६—तदाशुचस्तेप्रमृजामिभद्रेयद्ब्रह्मबंधोःशिरआततायिनः।

की बातों से अर्जुन ने द्रौपदी को शात किया। अर्जुन के मित्र और सारथी श्रीकृष्ण थे, उनका धनुष उग्र था, उनके रथ की ध्वजा पर हनूमानजी विराजते थे, ऐसे रथ के द्वारा अर्जुन ने गुरु के पुत्र अश्वत्थामा का पीछा किया ॥ १७ ॥ अपने पीछे रथपर दौडे आते हुए अर्जुन को दूर से ही देखकर बालघाती, कंपित हृदयवाला और प्राणों की रक्षा चाहनेवाला अश्वत्थामा अपनी शक्ति भर भूमि पर दौडने लगा, जैसे रुद्र के भय से ब्रह्मा भागे थे ॥ १८ ॥ भागते-भागते उसके घोडे थक गये, उसे कहीं भी शरण नहीं मिली, तब उसने ब्रह्मास्त्र को अपना रक्षक समझा ॥ १९ ॥ ब्रह्मास्त्र का उपसंहार (निवारण करना) उसे ज्ञात न था, एकाग्रचित्त हो उसने ब्रह्मास्त्र का संधान किया ॥ २० ॥ उस ब्रह्मास्त्र से निकला हुआ प्रचण्डतेज समस्त संसार मे व्याप्त हो गया। प्राणों पर आई हुई आपत्ति को देखकर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा ॥ २१ ॥

अर्जुन बोले—कृष्ण! कृष्ण! महाभाग! तुम्हीं भक्तों को अभय करते हो, संसाररूपी अग्नि से जलनेवालों के लिये एकमात्र तुम्हीं रक्षक हो ॥ २२ ॥ प्रकृति से परे तुम आदिपुरुष हो, चित्त-शक्ति के द्वारा माया का निराकरण कर तुम कैवल्यरूपी आत्मा मे स्थित रहते हो ॥ २३ ॥ वहाँ तुम माया से मोहित चित्तवाले जीवो का धर्मादि लक्षणों से युक्त कल्याण, अपने पराक्रम के द्वारा करते हो ॥ २४ ॥ तुम्हारा अवतार भी पृथ्वी का भार हरण करने की इच्छा से बार-बार अपने भक्तों और आत्मीयजनो की रक्षा के लिये ही हुआ है ॥ २५ ॥ देवदेव श्रीकृष्ण! ·

गांडीवमुक्तैर्विशिखैरुपाहरे त्वाक्रम्य यत्स्नास्यसि दग्धपुत्रा ॥

१७—इति प्रियां वल्गुविचित्रजल्पैः स सान्त्वयित्वाच्युतमित्रसूतः ।
अन्वाद्रवद्दंशित उग्रधन्वा कपिध्वजो गुरुपुत्रं रथेन ॥

१८—तमापतन्तं स विलक्ष्य दूरात्कुमारहोद्विग्नमना रथेन ।
पराद्रवत्प्राणपरीप्सुरुर्व्यां यावद्गमं रुद्रभयाद्यथा कः ॥

१९—यदाऽशरणमात्मानमैक्षत श्रान्तवाजिनम् । अस्त्रं ब्रह्मशिरो मेन आत्मत्राणं द्विजात्मजः ॥

२०—अथोपस्पृश्य सलिलं सन्दधे तत्समाहितः । अजानन्नुपसंहारं प्राणकृच्छ्र उपस्थिते ॥

२१—ततः प्रादुष्कृतं तेजः प्रचण्डं सर्वतो दिशम् । प्राणापदमभिप्रेक्ष्य विष्णुं जिष्णुरुवाच ह ॥

अर्जुन उवाच—

२२—कृष्ण कृष्ण महाबाहो भक्तानामभयङ्कर । त्वमेको दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः ॥

२३—त्वमाद्यः पुरुषः साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परः ।
मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि ॥

२४—स एव जीवलोकस्य मायामोहितचेतसः । विधत्से स्वेन वीर्येण श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥

२५—तथायं चावतारस्ते भुवो भारजिहीर्षया । स्वानां चानन्यभावानामनुध्यानाय चासकृत् ॥

यह कौन-सा परम भयानक तेज है, जो सभी ओर से मुँह उठाये आ रहा है ? इसे मैं पहचानता नहीं हूँ ॥ २६ ॥

श्रीभगवान बोले—यह अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र है। वह इसका उपसंहार नहीं जानता, प्राण-बाधा उपस्थित होने पर उसने इसका प्रयोग किया है। इसके तेज को कम करनेवाला कोई दूसरा अस्त्र नहीं है, अतः तुम इस उत्कट तेजवाले ब्रह्मास्त्र को ब्रह्मास्त्र के ही द्वारा नष्ट करो, क्योंकि तुम ब्रह्मास्त्र का उपसंहार भी जानते हो ॥२७-२८ ॥

सूत बोले—शत्रुपक्ष के वीरो का संहार करनेवाले अर्जुन ने भगवान की बात सुनकर जल का आचमन किया, उनकी परिक्रमा की और ब्रह्मास्त्र की निवृत्ति के लिये ब्रह्मास्त्र चलाया ॥ २९ ॥ वे दोनों ब्रह्मास्त्र आपस मे भिड़कर लडने लगे, उनका तेज बाणों से भरा हुआ था। महाप्रलय में शिव के नेत्र की ज्वाला और सूर्य—दोनो एक होकर भस्म करते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मास्त्र के तेज ने पृथ्वी अंतरिक्ष और आकाश को भस्म करना आरंभ कर दिया ॥ ३० ॥ तीनों लोकों को जलानेवाले ब्रह्मास्त्र के तेज को देखकर तथा स्वयं उस तेज से जलती हुई प्रजा ने समझा कि यह प्रलयकाल की अग्नि है ॥ ३१ ॥ प्रजाजनों की व्याकुलता और लोको का नाश देखकर अर्जुन ने भगवान् की आज्ञा से दोनों ब्रह्मास्त्रों को निवृत्त कर लिया ॥ ३२ ॥ क्रोध के मारे अर्जुन की आँखे लाल हो गई थीं। जैसे पशु को रस्सी से बाँधा जाता है, वैसे ही झपटकर अर्जुन ने गौतमी के पुत्र दुष्ट अश्वत्थामा को बाँध लिया ॥ ३३ ॥ रस्सी से शत्रु को बाँध कर शिविर की ओर ले जाते हुए अर्जुन से कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण ने क्रोधित होकर कहा—॥ ३४ ॥ अर्जुन ! तुम इस नीच ब्राह्मण की रक्षा न करो, इसका

२६—किमिदंस्वित्कुतोवेतिदेवदेवनवेद्म्यहम् । सर्वतोमुखमायातितेजःपरमदारुणं ॥

श्रीभगवानउवाच—

२७—वेत्थेदंद्रोणपुत्रस्यब्राह्ममस्त्रंप्रदर्शितं । नैवासौवेदसंहारंप्राणबाधउपस्थिते ॥

२८—नह्यस्यान्यतमंकिंचिदस्त्रंप्रत्यवकर्शनं । जह्यस्त्रतेजउन्नद्धमस्त्रज्ञोह्यस्त्रतेजसा ॥

सूतउवाच—

२९—श्रुत्वाभगवताप्रोक्तंफाल्गुनःपरवीरहा । स्पृष्ट्वाऽपस्तंपरिक्रम्यब्राह्मंब्राह्मायसंदधे ॥

३०—संहत्यान्योऽन्यमुभयोस्तेजसीशरसंवृते । आवृत्यरोदसीखंचववृधातेऽर्कवह्निवत् ॥

३१—दृष्ट्वास्त्रतेजस्तुतयोस्त्रींल्लोकान्प्रदहन्महत् । दह्यमानाःप्रजाःसर्वाःसांवर्तकममंसत ॥

३२—प्रजोपद्रवमालक्ष्यलोकव्यतिकरंचतं । मतंचवासुदेवस्यसंजहारार्जुनोद्वयं ॥

३३—ततआसाद्यतरसादारुणंगौतमीसुतं । बबन्धामर्षताम्राक्षःपशुंरशनयायथा ॥

३४—शिबिरंनिनीषंतंरज्ज्वाबध्वारिपुंबलात् । प्राहार्जुनंप्रकुपितोभगवानम्बुजेक्षणः ॥

वध शीघ्र करना चाहिए, क्योंकि इस दुष्ट ने रात्रि में सोते हुए निरपराध बच्चों का वध किया है ॥ ३५ ॥ धर्मज्ञ व्यक्ति मत्त, (मदिरा आदि के नशे मे मतवाला) प्रमत्त (असावधान), उन्मत्त (पागल), सोए हुए, बालक, स्त्री, जड़, शरणागत, रथ से हीन और भयभीत शत्रु को नहीं मारता ॥ ३६ ॥ जो दुष्ट दूसरों के प्राणों से अपने प्राणों को पुष्ट करता है, ऐसे निर्दयी का वध कर देना ही उसका कल्याण करना है, नहीं तो वह इस पाप से अधोगति को प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ तुमने मेरे सामने द्रौपदी से प्रतिज्ञा की है कि मैं तेरे पुत्रों को मारनेवाले का सिर काट लाऊँगा ॥ ३८ ॥ अतः इस आततायी पापी को तुम मार डालो। अपने बंधुओं का वध करनेवाले इस कुल कलंकी ने अपने स्वामी का भी हृदय दुखाया है ॥ ३९ ॥

श्रीकृष्ण अर्जुन के धर्म की परीक्षा ले रहे थे, अतः उन्होंने अर्जुन को अश्वत्थामा का वध करने के लिए बहुत उत्साहित किया, परंतु धर्मवीर अर्जुन ने गुरु के पुत्र को मारना न चाहा, यद्यपि उसने अर्जुन के पुत्रों का वध किया था ॥ ४० ॥ भगवान् श्रीकृष्ण जिनके प्रिय साथी थे ऐसे अर्जुन ने शिविर में प्रवेश किया और अपने पुत्रों के लिए शोक करतीं हुई द्रौपदी के आगे अश्वत्थामा को उपस्थित किया ॥ ४१ ॥ अश्वत्थामा उस समय पशु की तरह कस कर बँधा हुआ था, निंदित कर्म के कारण उसका मुँह नीचे की ओर झुक गया था, इस अवस्था में गुरु के पुत्र अपकारी अश्वत्थामा को देखकर साधु स्वभाव होने के कारण द्रौपदी को दया आ गई। उसने अश्वत्थामा को प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ सती द्रौपदी से अश्वत्थामा को बाँधकर लाना सहा नहीं गया। वह अर्जुन से बोली—अश्वत्थामा का बंधन शीघ्र खोल दिया जाय, क्योंकि यह ब्राह्मण हमलोगों का परम गुरु है ॥ ४३ ॥ जिनकी कृपा से आपने रहस्यों के सहित धनुर्वेद और विसर्ग (छोडना) तथा उपसंहार (निवृत्त करना) के साथ अनेक प्रकार के

३५—मैनपार्थार्हसित्रातु ब्रह्मबंधुमिमजहि । योऽसावनागसःसुप्तानवधीन्निशिबालकान् ॥

३६—मत्तप्रमत्तमुन्मत्तसुप्तंबालस्त्रियजड । प्रपन्नविरथभीतनरिपुहंतिधर्मवित् ॥

३७—स्वप्राणान्यपरप्राणैःप्रपुष्णात्यघृणःखलः । तद्वधस्तस्यहिश्रेयोयद्दोषाद्यात्यधःपुमान् ॥

३८—प्रतिश्रुतचभवतापाञ्चाल्यैश्रृण्वतोमम । आहरिष्येशिरस्तस्यचस्तेमानिनिपुत्रहा ॥

३९—तदसौवध्यतापापआततायात्मबंधुहा । भर्तुश्चविप्रियवीरकृतवान्कुलपासन ॥

४०—एवपरीक्षताधर्मंपार्थःकृष्णेनचोदितः । नैच्छद्धतु गुरुसुतयद्यप्यात्महनमहान् ॥

४१—अथोपेत्यस्वशिबिर गोविंदप्रियसारथिः । न्यवेदयत्तंप्रियायैशोचन्त्याआत्मजान्हतान् ॥

४२—तथाहृतपशुवत्पाशबद्धमवाङ्मुखकर्मजुगुप्सितेन ।
निरीक्ष्यकृष्णाऽपकृतंगुरोःसुतवामस्वभावाकृपयाननामच ॥

४३—उवाचचासहत्यस्यबंधनानयनसती । मुच्यतामुच्यतामेषब्राह्मणोनितरांगुरुः ॥

४४—सरहस्योधनुर्वेदःसविसर्गोपसयमः । अस्त्रग्रामश्चभवताशिक्षितोयदनुग्रहात् ॥

अस्त्रों को सीखा है, वही भगवान् द्रोणाचार्य अश्वत्थामा रूप से विराजमान हैं। उनके शरीर का आधा अंग पत्नीरूप से कृपी है, वीरपुत्र वाली होने के कारण उसने पति का अनुगमन नहीं किया है ॥ ४४-४५ ॥ धर्मज्ञ! महाभाग! आपलोगों के द्वारा गौरवयुक्त यह गुरुकुल दुखी नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह कुल वंदनीय और सब प्रकार से पूज्य है ॥ ४६ ॥ बालकों के मर जाने से दुखी होकर मैं जिस प्रकार बार-बार रो रही हूँ, वैसे ही अश्वत्थामा की पतिव्रता माता गौतमी न रोने पावे ॥ ४७ ॥ जिन अधर्मी राजाओं ने ब्राह्मण कुल को कुपित किया है, शोक से संतप्त ब्राह्मण कुल के द्वारा उनका समूल नाश हो गया है ॥ ४८ ॥

सूत बोले—ब्राह्मण! द्रौपदी के धर्मयुक्त, पक्षपात रहित तथा करुणा पूर्ण वचनों का अनुमोदन धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर ने किया ॥ ४९ ॥ नकुल, सहदेव, युयुधान, धनंजय, देवकी के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण तथा और जो स्त्रियाँ वहाँ थीं, सबों ने द्रौपदी के वचनों का समर्थन किया ॥ ५० ॥ उस समय भीमसेन अपने क्रोध को सँभाल न सके। उन्होंने अर्जुन से कहा इसका वध कर देना ही उचित है। इसने सोए हुए बालकों का वृथा ही वध किया है, जिससे न इसकी भलाई हुई, न इसके स्वामी दुर्योधन की ॥ ५१ ॥ भीमसेन और द्रौपदी की बातों को सुनकर चार भुजावाले श्रीकृष्ण अपने सखा अर्जुन का मुँह देखकर हँसते हुए बोले ॥ ५२ ॥

श्रीभगवान् बोले—ब्राह्मण नीच हो तोभी उसे न मारना चाहिए तथा आततायी का अवश्य वध करना चाहिए, इन दोनों बातों का उपदेश मैंने शास्त्रों में किया है, अतः तुम मेरी आज्ञाओं का पालन करो ॥ ५३ ॥ अर्जुन द्रौपदी को समझाते समय तुमने जो प्रतिज्ञा की है,

---

४५ – सएपभगवान्द्रोणःप्रजारूपेणवर्त्तते ।।तस्यात्मनोर्धपत्न्यास्तेनान्वगाद्वीरसूःकृपी ॥

४६ – तद्धर्मज्ञमहाभागभवद्भिर्गौरवंकुलं । वृजिननार्हतिप्राप्तुंपूज्यंवन्द्यमभीक्ष्णशः ॥

४७ – मारोदीदस्यजननीगौतमीपतिदेवता॥ यथाऽहंमृतवत्साऽऽर्त्ताऽरोदिम्यश्रुमुखीमुहुः ॥

४८ – यैःकोपितंब्रह्मकुलंराजन्यैरकृतात्मभिः । तत्कुलंप्रदहत्याशुसानुबन्धंशुचार्पितं ॥

सूतउवाच—

४९ – धर्म्यंन्याय्यंसकरुणंनिर्व्यलीकंसमंमहत् । राजाधर्मसुतोराज्ञ्याःप्रत्यनन्दद्वचोद्विजाः ॥

५० – नकुलःसहदेवश्चयुयुधानोधनञ्जयः । भगवान्देवकीपुत्रोयेचान्येयाश्चयोषितः ॥

५१ – तत्राहामर्षितोभीमस्तस्यश्रेयान्वधःस्मृतः । नभर्तुर्नात्मनश्चार्थेयोऽहन्सुप्तान्शिशून्वृथा ॥

५२ – निशम्यभीमगदितंद्रौपद्याश्चचतुर्भुजः । आलोक्यवदनंसख्युरिदमाहहसन्निव ॥

श्रीभगवानुवाच—

५३ – ब्रह्मबंधुर्नहन्तव्यआततायीवधार्हणः । मयैवोभयमाम्नातंपरिपाह्यनुशासनं ॥

उसे सत्य करो ; तुम ऐसा कार्य करो, जिससे भीमसेन, द्रौपदी और हम-तीनों प्रसन्न हो जायँ ॥ ५४ ॥

सूत बोले—अर्जुन ने श्रीकृष्ण का अभिप्राय जान लिया, अतः उसने शीघ्रता से अश्वत्थामा के सिर के मणि को बालों के समेत काट लिया ॥ ५५ ॥ बाल-हत्या के कारण अश्वत्थामा की कांति मलिन हो गई थी, इधर मस्तक के मणि के निकल जाने से वह और भी निस्तेज हो गया। अर्जुन ने उसका बंधन खोलकर उसे अपने शिविर से बाहर कर दिया ॥ ५६ ॥ सिर मुड़ा देना, धन छीन लेना, स्थान से निकाल देना, अपराध करने पर यही ब्राह्मणों का वध है, ब्राह्मण को दैहिक दंड नहीं दिया जा सकता ॥ ५७ ॥ पुत्र शोक से व्याकुल युधिष्ठिर आदि ने द्रौपदी के साथ अपने मृत कुटुम्बियों का अग्नि-सस्कारादि श्राद्ध किया ॥५८॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पहले स्कंध का सातवाँ अध्याय समाप्त

आठवाँ अध्याय

गर्भस्थ राजा परीक्षित की रक्षा; कुंती का श्रीकृष्ण की स्तुति करना और युधिष्ठिर का शोक

सूत बोले—द्रौपदी के साथ अन्य स्त्रियों को आगे कर युधिष्ठिर आदि मरे हुए अपने कुटुम्बियों को जल देने के लिये गङ्गा किनारे गये ॥ १ ॥ कुटुम्बियों को जलाञ्जलि देकर इन

---

५४ – कुरुप्रतिश्रुतंसत्यंयत्तत्सान्त्वयताप्रिया । प्रियंचभीमसेनस्यपांचाल्यामह्यमेवच ॥

सूतउवाच—

५५ – अर्जुनःसहसाज्ञायहरेर्हार्दमथासिना । मणिंजहारमूर्धन्यंद्विजस्यसहमूर्धजं ॥

५६—विमुच्यरशनाबद्धंबालहत्याहतप्रभं । तेजसामणिनाहीनंशिबिरान्निरयापयत् ॥

५७ – वपनंद्रविणादानंस्थानान्निर्यापणंतथा । एषहिब्रह्मबन्धूनांवधोनान्योऽस्तिदैहिकः ॥

५८ – पुत्रशोकातुरास्सर्वेपाण्डवाःसहकृष्णया । स्वानामृतानांयत्कृत्यंचक्रुर्निर्हरणादिकं ॥

इतिश्रीभा० म० प्र०द्रौणिनिग्रहोनामसप्तमोऽध्यायः ॥७॥

सूतउवाच—

१ – अथतेसंपरेतानांस्वानामुदकमिच्छतां । दातुंसकृष्णागंगायांपुरस्कृत्ययधुःस्त्रियः ॥

लोगों ने अत्यन्त विलाप किया और भगवान् के चरणों की धूल से पवित्र गंगाजल में पुनः स्नान किया ॥ २ ॥ गंगा के तट पर अपने छोटे भाइयों के साथ बैठे हुए युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, पुत्र शोक से व्याकुल गांधारी, पृथा और द्रौपदी आदि को मुनियों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण ने सांत्वना दी, जो बंधु-बांधवो की मृत्यु से शोकाकुल हो रहे थे । भगवान् ने कहा कि काल के वशीभूत प्राणी इसी तरह मरते रहते हैं, इसके निरोध का कोई उपाय नहीं है ॥ ४ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने धूर्तों के द्वारा छीन लिये गये युधिष्ठिर के राज्य को पुनः उन्हें दिला दिया, द्रौपदी के केशों को पकड़ने से जिनकी आयु क्षीण हो चुकी थी, उन दुष्ट राजाओं का संहार कराया ॥ ५ ॥ युधिष्ठिर से उन्होने तीन उत्तम अश्वमेध यज्ञ कराये, जिनके द्वारा युधिष्ठिर का यश इंद्र के समान सभी दिशाओं मे फैल गया ॥ ६ ॥ पांडु के पुत्र युधिष्ठिर आदि से परामर्श करके भगवान् श्रीकृष्ण सात्यकि और उद्धव के साथ रथ पर सवार होकर द्वारका जाने के लिये उद्यत हुए । उस समय पूजनीय द्वैपायन आदि ऋषियों ने श्रीकृष्ण की पूजा की । इसी समय भय से व्याकुल उत्तरा दौड़कर आगे आई ॥७-८॥

उत्तरा बोली—देवदेव ! महायोगी ! जगत्पति ! आप मेरी रक्षा करें, क्योंकि आपके अतिरिक्त अभयदान करनेवाला दूसरा कोई नहीं दिखाई देता, जहाँ सभी की परस्पर मृत्यु होतीं है ॥ ९ ॥ तपा हुआ लोहे का यह बाण मेरी ओर दौडा आ रहा है । हे नाथ ! यह बाण मेरे शरीर को भले ही जला दे, परंतु मेरा गर्भ नष्ट न करे ॥ १० ॥

सूत बोले—उत्तरा की बातें सुनकर भक्तवत्सल भगवान ने जान लिया कि इस विश्व को पांडवों से हीन करने के लिए यह अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र है ॥ ११ ॥ उसी समय अपने सामने

२—तेनिनीयोदकंसर्वेविलप्यचभृशपुनः । आप्लुताहरिपादाब्जरजःपूतसरिज्जले ॥

३—तत्रासीनंकुरुपतिंधृतराष्ट्रंसहानुजं । गांधारींपुत्रशोकार्त्तांपृथांकृष्णांचमाधवः ॥

४—सांत्वयामासमुनिभिर्हतबंधूनशुचाऽर्पितान् । भूतेषुकालस्यगतिंदर्शयन्नप्रतिक्रिया ॥

५—साधयित्वाऽजातशत्रोःस्वराज्यंकितवैर्हृतं । घातयित्वाऽसतोराज्ञःकचस्पर्शक्षतायुषः ॥

६—याजयित्वाऽश्वमेधैस्त त्रिभिरुत्तमकल्पकैः । तद्यशःपावनंदिक्षुशतमन्योरिवातनोत् ॥

७—आमन्त्र्यपाण्डुपुत्रांश्चशैनेयोद्धवसंयुतः । द्वैपायनादिभिर्विप्रैःपूजितैःप्रतिपूजितः ॥

८—गंतुंकृतमतिर्ब्रह्मन्द्वारकारथमास्थितः । उपलेभेऽभिधावन्तीमुत्तराभयविह्वलाम् ॥

९—पाहिपाहिमहायोगिन्देवदेवजगत्पते । नान्यंत्वदभयपश्येयत्रमृत्युःपरस्परम् ॥

१०—अभिद्रवतिमामीशशरस्तप्तायसोविभो । कामदहतुमांनाथमामेगर्भोनिपात्यताम् ॥

सूतउवाच—

११—उपधार्यवचस्तस्याभगवान्भक्तवत्सलः । अपांडवमिदंकर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥

आते हुए पाँच तेजस्वी बाणों को देखकर पाडवो ने अपना अस्त्र-सँभाला ॥ १२ ॥ अनन्य भक्ति करनेवाले पांडवो पर आई हुई इस विपत्ति को देखकर भगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा आत्मीयजनो की रक्षा की ॥ १३ ॥ सब भूतों में व्याप्त रहनेवाले योगेश्वर श्रीकृष्ण ने कुरुवंश की परंपरा की रक्षा के लिये अपनी माया से उत्तरा के गर्भ को छिपा दिया ॥ १४ ॥ भार्गव ! यदि ब्रह्मास्त्र अमोघ है, उसका कोई प्रतिकार नहीं है तथापि वह वैष्णवतेज (सुदर्शन) को पाकर एकदम शात हो गया ॥ १५ ॥ इसे आप लोग आश्चर्य न माने ! भगवान् अच्युत सभी आश्चर्यों से भरे-पूरे है। वे अजन्मा होते हुए भी माया देवी के द्वारा इस जगत को बनाते-बिगाडते और इसका पालन करते हैं ॥ १६ ॥ अनतर द्वारका जाने के लिए उद्यत भगवान् श्रीकृष्ण से ब्रह्मास्त्र के तेज से रक्षा पाए हुए अपने पुत्रों और द्रौपदी के साथ सती कुन्ती ने यह कहा ॥ १७ ॥

कुन्ती बोली—प्रकृति से परे आदि पुरुष ! जगदीश्वर ! श्रीकृष्ण ! मैं आपको प्रणाम करती हूँ। सब भूतो के बाहर-भीतर आप व्याप्त हैं तथापि आप जाने नहीं जाते ॥ १८ ॥ माया की यवनिका से आप ढके हुए है, इन्द्रियजन्य ज्ञान से आपको कोई जान नहीं सकता, आप अविनाशी हैं, स्त्री आदि का वेश धारण करनेवाला नट जिस प्रकार पहिचाना नहीं जाता, उसी प्रकार देहाभिमान रखनेवालों के द्वारा आप नहीं पहिचाने जाते ॥ १९ ॥ विवेकी परमहसों और शुद्धचित्तवाले मुनियो को भी आपका दर्शन दुर्लभ है, फिर भक्तियोग के द्वारा हम मूढ स्त्रियाँ आपको कैसे देख सकती है ? ॥ २० ॥ वसुदेव के पुत्र, देवकी के आनद को बढानेवाले श्रीकृष्ण को नमस्कार है ॥ २१ ॥ जिनकी नाभि मे कमल उत्पन्न हुआ है, जिन्होंने पकज की माला

१२—तमेवायमुनिश्रेष्ठपाडवा.पञ्चसायकान् । आत्मनोभिमुखान्दीप्तानालक्ष्यास्त्राण्युपाददुः ॥

१३—व्यसनवीक्ष्यतत्तेषामनन्यविषयात्मना । सुदर्शनेनस्वास्त्रेणस्वानारक्षान्व्यधाद्विभु ॥

१४—अतःस्थ सर्वभूतानामात्मायोगेश्वरोहरि । स्वमाययावृणोद्गर्भंवैराट्या कुरुतन्तवे ॥

१५—यद्यप्यस्त्रंब्रह्मशिरस्त्वमोघंचाप्रतिक्रिय । वैष्णवतेजआसाद्यसमशाम्यद्भृगूद्वह ॥

१६—मामंस्थाह्येतदाश्चर्यंसर्वाश्चर्यमयेऽच्युते । यइदमाययादेव्यासृजत्यवतिहन्त्यज ॥

१७—ब्रह्मतेजोविनिर्मुक्तैरात्मजै.सहकृष्णया । प्रयाणाभिमुखकृष्णमिदमाहपृथासती ॥

कुन्त्युवाच—

१८—नमस्येपुरुषत्वाद्यमीश्वरप्रकृते पर । अलक्ष्यसर्वभूतानामतर्बहिरवस्थित ॥

१९—मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाधोक्षजमव्ययम् । नलक्ष्यसेमूढदृशानटोनाट्यधरोयथा ॥

२०—तथापरमहंसानांमुनीनाममलात्मना । भक्तियोगविधानार्थंकथपश्येमहिस्त्रियः ॥

२१—कृष्णायवासुदेवायदेवकीनदनायच । नदगोपकुमारायगोविंदायनमोनम. ॥

धारण की है, लाल कमल के समान जिनके नेत्र है, कमल के सदृश जिनके चरण है, उन-आपको नमस्कार है ॥ २२ ॥ हृषीकेश ! जैसे आपने बहुत दिनों तक विपत्ति में पड़ी हुई देवकी का कंस के हाथ से उद्धार किया, वैसे ही विपत्तिजाल से पुत्रों के सहित मेरा उद्धार बार-बार किया है ॥ २३ ॥ हे हरि ! विष से, अग्नि से, हिडिंब आदि राक्षसों के भय से, जूआ खेलनेवाली सभा से, वनवास के दु:ख से और प्रत्येक सग्राम मे महारथियों के अस्त्र से तथा अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से, आपने हमलोगों की भलीभाँति रक्षा की है ॥ २४ ॥ जगद्गुरु ! जहाँ-जहाँ विपत्तियाँ हम लोगों पर आईं, वहाँ-वहाँ आपने दर्शन दिया। आपका दर्शन जन्म-मरण के दुःखों से मुक्त करनेवाला है ॥ २५ ॥ सत्कुल मे जन्म, ऐश्वर्य, शास्त्रों का श्रवण तथा धर्म के द्वारा जिस पुरुष का अभिमान बढ़ जाता है, वह दीनों पर दया करनेवाले आपके नामों का उच्चारण नहीं करता ॥ २६ ॥ भक्तों को ही अपना सर्वस्व माननेवाले आपको नमस्कार। गुणों की वृत्तियों (अर्थ-काम आदि) से निवृत्त रहनेवाले, आत्माराम, शांतपुरुष, कैवल्य (मोक्ष) को देनेवाले आपको बार-बार प्रणाम ॥ २७ ॥ आदि-अंत से रहित, संसार के नियामक, व्यापक, कालपुरुष आप ही हैं; आप सभी प्राणियों मे समान रूप से विराजते है, भूत-प्राणियों के कलह में तो आप निमित्त-रूप हैं ॥ २८ ॥ भगवन् ! मनुष्यों का अनुकरण करनेवाले आप क्या करना चाहते हैं, इसे कोई जान नहीं सकता। न आप किसी के मित्र है, न किसी के शत्रु, आपके विषय मे मनुष्यो की विषम बुद्धि रहती है। अर्थात् आपके सबध मे मनुष्य की कल्पना भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है ॥ २९ ॥ विश्वात्मन्, अजन्मा और अकर्त्ता आपका पशु, पक्षी, मनुष्य, ऋषि, और जलचर आदि योनियों में जन्म धारण करके कर्म करना केवल विडबना (लीला) मात्र है ॥३०॥

२२—नमःपंकजनाभायनमःपकजमालिने। नम.पकजनेत्रायनमस्तेपकजाङ्घ्रये ॥ २२ ॥

२३—यथाहृषीकेशखलेनदेवकीकंसेनरुद्धाऽतिचिरंशुचार्पिता।
विमोचिताऽहंचसहात्मजाविभोत्वयैवनाथेनमुहुर्विपद्गणात् ॥

२४—विषान्महाग्नेःपुरुषाददर्शनादसत्सभायावनवासकृच्छ्रतः।
मृधेमृधेऽनेकमहारथास्त्रतोद्रौण्यस्त्रतश्चास्महरेऽभिरक्षिताः ॥

२५—विपदःसन्तुनःशश्वत्तत्रतत्रजगद्गुरो। भवतोदर्शनंयत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥

२६—जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदःपुमान्। नैवार्हत्यभिधातुंवैत्वामकिंचनगोचरम् ॥

२७—नमोऽकिंचनवित्तायनिवृत्तगुणवृत्तये। आत्मारामायशान्तायकैवल्यपतयेनमः ॥

२८—मन्येत्वांकालमीशानमनादिनिधनंविभुम्। समंचरन्तंसर्वत्रभूतानांयन्मिथःकलिः ॥

२९—नवेदकश्चिद्भगवंश्चिकीर्षितंतवेहमानस्यनृणांविडम्बनम्।
नयस्यकश्चिद्दयितोऽस्तिकर्हिचिद्द्वेष्यश्चयस्मिन्विषमामतिर्नृणाम् ॥

३०—जन्मकर्मचविश्वात्मन्नजस्याकर्तुरात्मनः। तिर्यङ्नृषिषुयादस्सुतदत्यन्तविडम्बनम् ॥

यशोदा ने अपराध करने पर जब आपको बाधने के लिए रस्सी हाथ मे ली, उस समय आपकी दशा विचित्र हो गई, काजल और आँसुओं से मिली हुई आपकी आँखे व्याकुल हो गईं, यद्यपि आप से भय को भी भय होता है, किंतु फिर भी आपने डर के मारे मुँह नीचा कर लिया; आपकी वह दशा मेरे हृदय मे मोह उत्पन्न कर रही है ॥ ३१ ॥ कुछ लोग कहते हैं कि अजन्मा आपने महाराज युधिष्ठिर की कीर्ति बढाने के लिए यदुकुल में जन्म ग्रहण किया है, जैसे मलयाचल का यश बढाने के लिए चदन का जन्म होता है ॥ ३२ ॥ दूसरे कहते हैं कि वसुदेव और देवकी की याचना से अजन्मा जगदीश्वर ने ही वसुदेवजी के द्वारा देवकी के गर्भ से संसार के कल्याण तथा देवताओं के द्रोही असुरों का विनाश करने के लिए अवतार लिया है ॥ ३३ ॥ अन्य लोग कहते हैं कि समुद्र मे नौका की तरह दैत्यों की मार से व्याकुल हुई पृथ्वी के प्रार्थना करने पर उसका भार उतारने के लिए भगवान् ने अवतार लिया है ॥ ३४ ॥ और कुछ लोगों का मत है कि इस ससार मे अविद्या, काम और कर्मो के द्वारा दुःख पानेवाले मनुष्यों की अविद्या से निवृत्ति के लिए श्रवण और स्मरण के योग्य कर्मो का संपादन करने के लिए उन्होंने जन्म ग्रहण किया है ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य आपके चरित्रों को गाते हैं, सुनते हैं, स्मरण करते हैं, बार-बार आपके नामों का उच्चारण करते हैं तथा उसकी प्रशसा करते हैं, वे ही मनुष्य संसार के प्रवाह से शाति देनेवाले आपके चरण कमल को शीघ्र प्राप्त करते हैं ॥ ३६ ॥

प्रभो ! स्नेही अनुचर हमलोगों को आज आप त्याग देंगे क्या ? राजाओं को दु ख देने वाले हमलोगों का मनोरथ आप ही ने पूर्ण किया है, आपके अतिरिक्त हमे शरण देनेवाला कोई नहीं है ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार इन्द्रियों का स्वामी जीव जब उनसे अलग हो जाता है तो नाम और रूप आदि तुच्छ हो जाते हैं, उसी प्रकार जब आपके दर्शन न होंगे अर्थात् आप हम

३१—गोप्याददेत्वयिकृतागसिदामतावद्यातेदशाऽश्रु कलिलाञ्जनसम्भ्रमाक्ष ।
वक्त्रनिनीयभयभावनयास्थितस्यसामांविमोहयतिभीरपियद्बिभेति ॥

३२—केचिदाहुरजजातपुण्यश्लोकस्यकीर्त्तये । यदो प्रियस्यान्ववायेमलयस्येवचदन ॥

३३—अपरेवसुदेवस्यदेवक्यायाचितोऽभ्यगात् । अजस्त्वमस्यक्षेमायवधायचसुरद्विषा ॥

३४—भारावतरणायान्येभुवोनावइवोदधौ । सीदन्त्याभूरिभारेणजातोह्यात्मभुवाऽर्थितः ॥

३५—भवेऽस्मिन्क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभि । श्रवणस्मरणार्हाणिकरिष्यन्नितिकेचन ॥

३६—शृण्वन्तिगायन्तिगृणन्त्यभीक्ष्णशःस्मरन्तिनन्दन्तितवेहितजना. ।
तएवपश्यन्त्यचिरेणतावकभवप्रवाहोपरमपदाम्बुज ॥

३७—अप्यद्यनस्त्वस्वकृतेहितप्रभोजिहाससिस्वित्सुहृदोऽनुजीविन. ।
येषानचान्यद्भवत'पदाम्बुजात्परायणराजसुयोजितांहसा ॥

३८—केवयनामरूपाभ्यायदुभि.सहपाण्डवा । भवतोऽदर्शनयर्हिहृषीकाणामिवेशितु' ॥

लोगों को न देखेंगे, उस समय यादवों के सहित पांडव क्या रह जायँगे ? अर्थात् कुछ भी न रह जायँगे ; तुच्छ हो जायँगे ॥ ३८ ॥ गदाधर ! आपके असाधारण लक्षणों से युक्त चरणों के द्वारा अंकित भूमि आज जैसी शोभती है ; आपके चले जाने पर इसकी शोभा वैसी न रहेगी ॥ ३९ ॥ ये समृद्धिशाली देश, सुंदर पकी हुई औषधियाँ, लताएँ, वन, पर्वत, नदियाँ और समुद्र आपकी दृष्टि से वृद्धि पाते है ॥ ४० ॥ विश्वेश ! विश्वात्मन् ! विश्वमूर्त्ति ! अपने आत्मीय पांडवों और यादवों मे जो मेरा दृढ़ स्नेह बंधन है, उसे आप काट दीजिए ॥ ४१ ॥ मधुपति ! आप अपने मे मेरी ऐसी प्रीति उत्पन्न कीजिए, जिससे आपमे मेरी जो अनन्य बुद्धि है, वह कभी नष्ट न हो । जिस प्रकार गंगाजल के पूर की परवाह न करके समुद्र मे प्रीति करती है, उसी प्रकार मै भी केवल आप ही मे प्रीति रखूँ ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्ण ! अर्जुन के सखा ! वृष्णियों में श्रेष्ठ ! पृथ्वी पर द्रोह करनेवाले राजाओं के वश के लिए अग्निरूप ! अ[पू]र्थ प्रभाववाले ! गोविंद ! योगेश्वर ! सब के गुरु ! भगवान् ! आपको नमस्कार है ॥ ४३ ॥

सूत बोले—कुंती ने मनोहर पदवाले वाक्यों से भगवान् की स्तुति की। इससे उनके सभी गुण प्रकट हो गए । उस समय अपनी माया से मोह उत्पन्न करते हुए वैकुंठनाथ धीरे-धीरे हँसे और 'ठीक है' कहकर उन्होंने कुती की प्रार्थना स्वीकार की तथा जहाँ रथ खड़ा था, वहाँ से पीछे हस्तिनापुर के अंत.पुर मे जाकर उन्होने सुभद्रा आदि स्त्रियो से विदा माँगी । पुनः जब वे द्वारका जाने को प्रस्तुत हुए, उस समय महाराज युधिष्ठिर ने उन्हे प्रेम-पूर्वक रोक लिया ॥ ४४-४५ ॥ ईश्वर की चेष्टाओं को जानने में असमर्थ व्यास आदि ने तथा अद्भुत कार्य करने वाले श्रीकृष्ण ने अनेक इतिहासों का दृष्टांत देकर युधिष्ठिर को समझाया, पर शोक-संतप्त युधिष्ठिर को किसी प्रकार बोध नहीं हुआ ॥ ४६ ॥ विप्रगण ! साधारण जीव की तरह स्नेह एवं

३९—नेयशोभिष्यतेतत्रयथेदानींगदाधर । त्वत्पदैरङ्किताभातिस्वलक्षणविलक्षितैः ॥

४०—इमे जनपदाःस्वृद्धा.सुपक्वौपधिवीरुध. । वनाद्रिनद्युदन्वतो ह्येधंतेतववीक्षिते. ॥

४१—अथविश्वेशविश्वात्मन्विश्वमूर्त्तेस्वकेपुमे । स्नेहपाशमिमंछिंधिदृढपाडुपुवृष्णिपु ॥

४२—त्वयिमेऽनन्यविपयामतिर्मधुपतेऽसकृत् । रतिमुद्वहतादद्धागंगेवौघमुदन्वति ॥

४३—श्रीकृष्णकृष्णसखवृष्ण्यृपभावनिध्रुग्राजन्यवशदहनानपवर्गवीर्य ।
गोविंदगोद्विजसुरार्तिहरावतारयोगेश्वराखिलगुरोभगवन्नमस्ते ॥

सूतउवाच—

४४—पृथयेत्थकलपदैःपरिणूताखिलोदयः । मंदंजहासवैकुंठोमोहयन्निवमायया ॥

४५—तांबाढमित्युपामन्त्र्यप्रविश्यगजसाह्वय । स्त्रियश्चस्वपुरयास्यन्प्रेम्णाराज्ञानिवारितः ॥

४६—व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञै.कृष्णेनाद्भुतकर्मणा । प्रबोधितोपीतिहासैर्नाबुद्ध्यतशुचार्पितः ॥

मोह के वशीभूत धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर कुटुम्बियों के वध की चिंता करते हुए बोले—॥ ४७ ॥

मैं दुरात्मा हूँ, मेरे हृदय के दृढ़ अज्ञान को आप लोग देखें। इस शरीर के लिये कई अक्षौहिणी सेनाओं का मैंने संहार किया, जो शरीर कुत्ते और शृगालो का भोजन है ॥ ४८ ॥ बालक, ब्राह्मण, सुहृद्, मित्र, पिता, भाई और गुरुजनो से मैंने द्रोह किया है। इस पाप से मेरा उद्धार करोड़ वर्षों मे भी नहीं हो सकता ॥ ४९ ॥ प्रजा की रक्षा करनेवाले राजा को धर्मयुद्ध मे शत्रुओं का वध करने का अपराध नहीं होता, इस आज्ञा-वचन से मेरा सतोष नहीं होता ॥ ५० ॥ जिन स्त्रियो के पति को मारकर मैंने अपराध किया है, उस अपराध को गृहस्थाश्रम में विहित कर्मों के द्वारा नहीं मिटाया जा सकता ॥ ५१ ॥ जैसे कीचड से कीचड़ और मदिरा से मदिरा का पात्र शुद्ध नहीं किया जा सकता, वैसे ही ज्ञानपूर्वक की गई जीवहत्या का पाप यज्ञो के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता ॥ ५२ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पहले स्कंध का आठवाँ अध्याय समाप्त

नवाँ अध्याय

पितामह भीष्म के द्वारा धर्म का निरूपण

सूत बोले—प्रजा के द्रोह से भयभीत युधिष्ठिर सब धर्मों को जानने की इच्छा से विनशन नामक स्थान को गए, जहाँ पितामह भीष्म शरसय्या पर पडे हुए थे ॥ १ ॥ युधिष्ठिर के

४७—आहराजाधर्मसुतश्चिंतयन्सुहृदांवधम्। प्राकृतेनात्मनाविप्राःस्नेहमोहवशंगतः ॥

४८—अहोमेपश्यताज्ञानहृदिरूढदुरात्मनः। पारक्यस्यैवदेहस्यबह्व्योमेक्षौहिणीर्हताः ॥

४९—बालद्विजसुहृन्मित्रपितृभ्रातृगुरुद्रुहः। नमेस्यान्निरयान्मोक्षोह्यपिवर्षायुतायुतैः ॥

५०—नैनोराज्ञःप्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धेवधोद्विषाम्। इतिमेनतुबोधायकल्पतेशासनंवचः ॥

५१—स्त्रीणांमद्धतबधूनांद्रोहोयोऽसाविहोत्थितः। कर्मभिर्गृहमेधीयैर्नाहंकल्पोव्यपोहितुम् ॥

५२—यथापंकेनपंकाम्भःसुरयावासुराकृतम्। भूतहत्यांतथैवैकांनयज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेप्रथमस्कंधेकुन्तीस्तुतियुधिष्ठिरानुतापोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

सूतउवाच—

१—इतिभीतःप्रजाद्रोहात्सर्वधर्मविवित्सया। ततोविनशनंप्रागाद्यत्रदेवव्रतोऽपतत् ॥

पीछे-पीछे सुवर्ण के गहनो से विभूषित, घोड़ो से युक्त, रथो पर सवार होकर व्यास और धौम्यादि ऋषियों के सहित अर्जुन आदि भी गये ॥ २ ॥ विप्रर्षि ! धनंजय के साथ भगवान् श्रीकृष्ण भी रथ पर सवार होकर गये। इन लोगों के बीच युधिष्ठिर की वैसी ही शोभा हुई, जैसी सिंहों के बीच कुबेर की होती है ॥ ३ ॥ आकाश से पृथ्वी पर गिरे हुए सूर्य के समान भीष्म को देखकर अनुचरों के साथ पांडवों ने उन्हें प्रणाम किया तथा श्रीकृष्ण ने भी प्रणाम किया ॥ ४ ॥ श्रेष्ठ ! वहाँ भरतपुगव भीष्म को देखने के लिये ब्रह्मर्षि, देवर्षि और राजर्षि सभी लोग पहुँचे थे ॥ ५ ॥ पर्वत, ऋषि, नारद, धौम्य, भगवान वेदव्यास, बृहदश्व, भरद्वाज और शिष्यों के साथ परशुराम, वशिष्ठ, इंद्रप्रमद, त्रित, गृत्समद, असित, कक्षीवान, गौतम, अत्रि, कौशिक और सुदर्शन नामक ऋषि तथा अन्य शुद्ध चित्तवाले शुक, कश्यप, बृहस्पति आदि ज्ञानी ऋषि लोग अपने शिष्यों के सहित वहाँ पधारे ॥ ६-८ ॥

देशकाल का विभाग जाननेवाले धर्मात्मा भीष्म ने आये हुए इन बड़भागी महानुभावों का पूजन किया ॥ ९ ॥ कृष्ण के प्रभाव को जाननेवाले भीष्म ने हृदय मे रहनेवाले जगत के स्वामी श्रीकृष्ण का पूजन किया, जो माया के द्वारा शरीर धारण करके भीष्म के सामने बैठे थे ॥ १० ॥ अपने समीप बैठे हुए विनयी और स्नेहयुक्त पाण्डवों को प्रेम के आँसुओं से तथा धुँधली हुई आँखो से भीष्म ने देखा और उनसे प्रेमपूर्वक कहा—॥ ११ ॥ धर्म की वृद्धि करनेवाले तुम लोग जीवित नहीं रहना चाहते, यह बड़े आश्चर्य, शोक तथा अन्याय की बात है, क्योंकि ब्राह्मण, धर्म और अच्युत तुम्हारे आश्रय है ॥ १२ ॥ अतिरथी पाडु के मरने पर बालकों की माता

२—तदातेभ्रातरःसर्वेसदश्वैःस्वर्णभूषितैः ।
अन्वगच्छन्रथैर्विप्राव्यासधौम्यादयस्तथा ॥

३—भगवानपिविप्रर्षेरथेनसधनंजय । सतैर्व्यरोचतनृप कुबेरइवगुह्यकैः ॥

४—दृष्ट्वानिपतितभूमौदिवश्च्युतमिवामरम् । प्रणेमुःपाडवाभीष्मसानुगाःसहचक्रिणा ॥

५—तत्रब्रह्मर्षय सर्वेदेवर्षयश्चसत्तम । राजर्षयश्चतत्रासन्द्रष्टुंभरतपुगवम् ॥

६—पर्वतोनारदोधौम्योभगवान्बादरायण । बृहदश्वोभरद्वाजःसशिष्योरेणुकासुतः ॥

७—वसिष्ठइंद्रप्रमदस्त्रितोगृत्समदोऽसितः । कक्षीवान्गौतमोऽत्रिश्चकौशिकोऽथसुदर्शन

८—अन्येचमुनयोब्रह्मन्ब्रह्मरातादयोमलाः । शिष्यैरुपेताआजग्मुःकश्यपांगिरसादयः ॥

९—तान्समेतान्महाभागानुपलभ्यवसूत्तमः । पूजयामासधर्मज्ञोदेशकालविभागवित् ॥

१०—कृष्णंचतत्प्रभावज्ञआसीनजगदीश्वरम् । हृदिस्थंपूजयामासमाययोपात्तविग्रह ॥

११—पाडुपुत्रानुपासीनान्प्रश्रयप्रेमसंगतान् । अभ्याचष्टानुरागास्रैरन्धीभूतेनचक्षुषा ॥

१२—अहोकष्टमहोऽन्याय्ययद्यूयंधर्मनंदनाः । जीवितुनार्हथक्लिष्टंविप्रधर्माच्युताश्रयाः ॥

पुत्रवती कुंती ने तुम लोगों के लिए वार-वार वडा क्लेश उठाया है ॥ १३ ॥ जिससे तुम लोगों को दुःख हो रहा है, वह सव काल का ही किया हुआ है। लोकपालो के सहित सभी लोक उसी काल के वश में हैं, जैसे वायु के वश मे मेघ-मडल है ॥ १४ ॥ जहाँ धर्म-पुत्र युधिष्ठिर राजा हों, हाथ मे गदा लिए भीम जैसे वीर हो, शस्त्रधारी अर्जुन हो, गाडीव ऐसा धनुप हो और भगवान् श्रीकृष्ण मित्र हो, वहाँ भी विपत्ति ! आश्चर्य है ॥ १५ ॥ राजन् ! इन श्रीकृष्ण की लीलाओं को कोई नहीं जानता, जिनको जानने की इच्छा रखनेवाले ब्रह्म रुद्रादि भी मोहित हो जाते हैं ॥ १६ ॥ अत. इस सुख-दुःखादि को दैव के आधीन जानकर तुम ईश्वर के अनुगामी बनो। प्रभो ! इन अनाथ प्रजा की रक्षा करो ॥ १७ ॥

यही आदि पुरुप भगवान् साक्षात् नारायण हैं, जो अपनी माया से लोकों को मोहित करते हुए गुप्त रूप से यदुवश में विचरण करते हैं ॥ १८ ॥ राजन् ! इनके अत्यन्त गुप्त प्रभाव को शंकर, देवर्पि नारद तथा स्वय भगवान् कपिल मुनि जानते हैं ॥ १९ ॥ धर्मराज ! जिन्हें तुम अपना ममेरा भाई, अत्यत सुहृद्, प्रियमित्र मानते हो, जिन्होंने तुम्हारा मन्त्रित्व और दूत-कार्य किया है तथा प्रेमवश जो तुम्हारे सारथी वने हैं, ये सव के अतर्यामी, समदर्शी तथा अहंकार रहित हैं। इनके समान दूसरा कोई नहीं है। ये राग-द्वेपादि से परे हैं। अतः सारथी आदि नीच और ऊँचे कर्मों के करने से इनकी बुद्धि में किसी प्रकार का भेद उत्पन्न नहीं होता ॥ २०-२१ ॥ राजन् ! तथापि भक्तों पर इनकी कृपा तो देखो, मरते समय इन्होंने स्वयं आकर मुझे अपना दर्शन दिया ॥ २२ ॥ भक्तियोग के द्वारा जिनमें अपना मन लगा कर तथा वाणी से जिनके नामों का कीर्तन करते हुए शरीर त्याग करके योगी लोग ससार के कर्म वधनों से मुक्त

१३—संस्थितेऽतिरथेपाण्डौपृथाबालप्रजावधू । युष्मत्कृतेबहून्क्लेशान्प्राप्तातोकवतीमुहुः ॥

१४—सर्वंकालकृतमन्येभवताचयदप्रिय । सपालोयद्वशेलोकोवायोरिवघनावलिः ॥

१५—यत्रधर्मसुतोराजागदापाणिर्वृकोदर. । कृष्णोऽस्त्रीगाण्डिवचापसुहृत्कृष्णस्ततोविपत् ॥

१६—नह्यस्यकर्हिचिद्राजन्पुमान्वेदविधित्सित । यद्विजिज्ञासयायुक्तामुह्यन्तिकवयोपिहि ॥

१७—तस्मादिददैवतन्त्रंव्यवस्यभरतर्षभ । तस्यानुविहितोऽनाथानाथपाहिप्रजाःप्रभो ॥

१८—एषवैभगवान्साक्षादाद्योनारायण'पुमान् । मोहयन्माययालोकगूढश्चरतिवृष्णिषु ॥

१९—अस्यानुभावभगवान्वेदगुह्यतमशिव । देवर्पिर्नारद.साक्षाद्भगवान्कपिलोनृप ॥

२०—यमन्यसेमातुलेयप्रियमित्रसुहृत्तम । अकरो.सचिवदूतसौहृदादथसारथिं ॥

२१—सर्वात्मन'समदृशोह्यद्वयस्यानहङ्कृते. । तत्कृतमतिवैषम्यनिरवद्यस्यनक्वचित् ॥

२२—तथाप्येकान्तभक्तेषुपश्यभूपानुकम्पित । यन्मेऽसूंस्त्यजत:साक्षात्कृष्णोदर्शनमागत ॥

२३—भक्त्यावेश्यमनोयस्मिन्वाचायन्नामकीर्तयन् ।

त्यजन्कलेवरयोगीमुच्यतेकामकर्मभि ॥

हो जाते हैं, वे भगवान् श्रीकृष्ण तब तक यहीं रहे, जबतक मैं इस कलेवर का त्याग करता हूँ, तथा प्रसन्नता की हँसी से विकसित, लाल नेत्रवाले उनके मुख को मैं देखता रहूँ, जिसे योगी ध्यान में देखते हैं ॥ २३-२४ ॥

सूत बोले—शरशय्या पर सोए हुए पितामह भीष्म की बातें सुनकर महाराज युधिष्ठिर ने उनसे सभी ऋषियों के सामने विविध धर्मों को पूछा ॥ २५ ॥ वर्ण का धर्म, आश्रम का धर्म, वैराग्य और रागरूप उपाधि से जिसके निवृत्ति-प्रवृत्ति रूपी लक्षण ज्ञात होते हैं, मनुष्य के उस साधारण धर्म, दानधर्म, राजधर्म, भिन्न-भिन्न प्रकार के मोक्षधर्म, स्त्री-धर्म, भगवद्धर्म तथा उपायों के सहित धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष—ये सब जिस प्रकार से अनेक कथाओं तथा इतिहासों में हैं, उन्हें उसी प्रकार तत्वज्ञ भीष्म पितामह ने संक्षेप तथा विस्तार के सहित कहा ॥ २६-२७-२८ ॥

धर्मोपदेश करते हुए भीष्मपितामह के लिए वह उत्तरायणकाल उपस्थित हुआ, जिसकी प्रतीक्षा इच्छानुकूल मृत्युवाले योगी किया करते है ॥ २९ ॥ उस समय हजार रथियों की रक्षा करनेवाले भीष्मपितामह ने, अपनी वाणी को संयत करके अपने आसक्तिरहित मन को, खुले हुए नेत्रों के द्वारा सामने बैठे हुए पीत पटवाले चतुर्भुज आदिपुरुष श्रीकृष्ण में लगाया ॥ ३० ॥ विशुद्ध चित्त की एकाग्रता से उनके सभी अशुभ कर्म नष्ट हो गए, श्रीकृष्ण की दृष्टिमात्र से आयुधों (जहाँ जहाँ शस्त्रास्त्र के घाव लगे थे, वहाँ वहाँ) की पीडा दूर हो गई, इन्द्रियों की वृत्तियाँ संसार से अलग हो गईं। उन्होंने शरीर छोड़ते हुए भगवान् जनार्दन की स्तुति की ॥३१॥

२४—सदेवदेवोभगवान्प्रतीक्षताकलेवरयावदिदंहिनोम्यहं ।
प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसन्मुखाम्बुजोध्यानपथश्चतुर्भुजः ॥

सूतउवाच—

२५—युधिष्ठिरस्तदाकर्ण्यशयानशरपञ्जरे । अपृच्छद्विविधान्धर्मानृषीणांचानुशृण्वतां ॥

२६—पुरुषस्वभावविहितान्यथावर्णंयथाश्रमं । वैराग्यरागोपाधिभ्यामाम्नातोभयलक्षणान् ॥

२७—दानधर्मान्राजधर्मान्मोक्षधर्मान्विभागशः । स्त्रीधर्मान्भगवद्धर्मान्समासव्यासयोगतः

२८—धर्मार्थकाममोक्षांश्चसहोपायान्यथामुने । नानाख्यानेतिहासेषुवर्णयामासतत्त्ववित् ॥

२९—धर्मंप्रवदतस्तस्यसकालःप्रत्युपस्थितः । योयोगिनश्छन्दमृत्योर्वाञ्छितस्तूत्तरायणः ॥

३०—तदोपसंहृत्यगिरःसहस्रणीर्विमुक्तसङ्गमनआदिपूरुषे ।
कृष्णेलसत्पीतपटेचतुर्भुजेपुरःस्थितेऽमीलितदृग्व्यधारयत् ॥

३१—विशुद्धयाधारणयाहताशुभस्तदीक्षयैवाशुगतायुधश्रमः ।
निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रमस्तुष्टावजन्यंविसृजन्जनार्दनं ॥

भीष्मपितामह बोले—सात्वतों के मुखिया भगवान् श्रीकृष्ण मे मेरी निष्काम भक्ति हो। वे ही सबसे श्रेष्ठ है। अपने स्वरूप मे ही सुख का अनुभव करनेवाले श्रीकृष्ण कदाचित् विहार करने के लिये प्रकृति को स्वीकार करके ससार की रचना करते हैं॥ ३२॥ जो तीनो लोकों में एकमात्र सुदर हैं, तमाल के समान जिनका श्याम वर्ण है, जो सूर्य की किरणो के समान पीला वस्त्र धारण किये हुए हैं, जिनके मुखकमल पर सिरके वाल लटक रहे है, उन अर्जुन के सखा श्रीकृष्ण मे मेरी अहैतुकी भक्ति हो॥ ३३॥ मेरा मन उन श्रीकृष्ण मे रम जाय, जिनके सिर के बिखरे हुए वाल सग्राम मे घोडो के टापों से उडी हुई धूल से धूसर हो गये हैं, परिश्रम के कारण जिनके मुखमडल पर पसीने की बूँदे चमक रही है, मेरे तीखे-तीखे वाणों से जिनके शरीर की त्वचा और कवच दोनो विदीर्ण हो गये है, जिन्होंने अर्जुन की वात सुनकर शीघ्र ही दोनो सेनाओं के बीच में रथ को स्थापित किया और दृष्टिमात्र से ही कौरवों की आयु को नष्ट कर दिया था, उन अर्जुन के सखा श्रीकृष्ण मे मेरी प्रीति हो॥ ३४-३५॥

दूर खडी कौरवो की सेना को देखकर आत्मीयजनों के मारने से दोप होगा, इस वुद्धि से खिन्न हुए अर्जुन के अज्ञान को आत्मविद्या के द्वारा हरनेवाले श्रीकृष्ण के चरणो में मेरा अनुराग हो॥ ३६॥ भगवान् अपनी प्रतिज्ञा को भङ्ग करके मेरी प्रतिज्ञा को पूर्ण तथा सत्य करने के लिये सहसा हाथ मे रथ का पहिया लेकर और रथ से उतरकर मुझपर दौड पडे, जैसे हाथी को मारने के लिये सिंह दौडता है। उस समय पृथ्वी कॉप उठी और उनका दुपट्टा नीचे

भीष्मउवाच—

३२—इतिमतिरुपकल्पितावितृष्णाभगवतिसात्वतपुगवेविभूम्नि।
स्वसुखमुपगतेक्वचिद्विहर्त्तुं प्रकृतिमुपेयुषियद्भवप्रवाह:॥

३३—त्रिभुवनकमनतमालवर्णंरविकरगौरवराम्बरदधाने।
वपुरलककुलावृताननाब्जविजयसखेरतिरस्तुमेनवद्या॥

३४—युधितुरगरजोविधूम्रविष्वक्कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये।
ममनिशितशरैर्विभिद्यमानत्वचिविलसत्कवचेऽस्तुकृष्णआत्मा॥

३५—सपदिसखिवचोनिशम्यमध्येनिजपरयोर्वलयोरथनिवेश्य।
स्थितवतिपरसैनिकायुरक्ष्णाहृतवतिपार्थसखेरतिर्ममास्तु॥

३६—व्यवहितपृतनामुखनिरीक्ष्यस्वजनवधाद्विमुखस्यदोषबुद्ध्या।
कुमतिमहरदात्मविद्ययायश्चरणरति:परमस्यतस्यमेऽस्तु॥

३७—स्वनिगममपहायमत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुंमवप्लुतोरथस्थ:।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गुर्हरिरिवहन्तुमिभगतोत्तरीय:॥

गिर पड़ा ॥ ३७ ॥ मुझ आततायी के पैने बाणों की मार से उन श्रीकृष्ण-का कवच फट गया, उनका शरीर रक्त से तर हो गया, वे मुझे मारने के लिये दौड़े। वही भगवान् मुकुन्द मेरी गति हो ॥ ३८ ॥ अर्जुन के रथ की रक्षा के लिये एक हाथ मे चाबुक और दूसरे में घोड़ों की बागडोर लेकर शोभित होते हुए भगवान् श्रीकृष्ण मे मरने की इच्छा रखनेवाले मुझ भीष्म की प्रीति हो, जिन्हे देखकर इस सग्राम मे मारे गये वीरों ने उन्हीं के समान रूप प्राप्त किया है ३९ ॥ मनोहर चाल, विलास, ललित हास, प्रेमपूर्वक अवलोकन आदि के द्वारा जिनका सत्कार किया गया था, ऐसी गोपियों ने उत्कट प्रेम-मद से अंधी होकर जिसकी लीलाओं का अनुकरण किया और जिसके स्वरूप को प्राप्त किया, ऐसे श्रीकृष्ण मे मेरी भक्ति हो ॥ ४० ॥ मुनियों और राजाओं से भरी हुई युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ की सभा में ऋषियों के लिये दर्शनीय जिन भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा पहले हुई, वही श्रीकृष्ण मेरी आँखों के आगे प्रगट हुए, अतः आज मेरा अहोभाग्य है ॥ ४१ ॥ जैसे प्रत्येक मनुष्य की दृष्टि मे एक ही सूर्य अनेक दिखाई देता है, वैसे ही अजन्मा परमेश्वर भी प्रत्येक मनुष्य के हृदय मे निवास करने के कारण अनेक ज्ञात होते है, परन्तु भेद-बुद्धि और अज्ञान के नष्ट हो जाने के कारण इस अजन्मा ब्रह्म को मैंने यथार्थ रूप से जान लिया ॥ ४२ ॥

सूत बोले—इस प्रकार मन, वाणी और दृष्टि की वृत्तियों के द्वारा पूर्ण ब्रह्म परमात्मा

३८—शितविशिखहतोविशीर्णदंशःक्षतजपरिप्लुतआततायिनोमे ।
प्रसभमभिससारमद्वधार्थंसभवतुमेभगवान्गतिर्मुकुन्दः ॥

३९—विजयरथकुटुम्बआत्ततोत्रेधृतहयरश्मिनितच्छ्रियेक्षणीये ।
भगवतिरतिरस्तुमेमुमूर्षोर्यमिहनिरीक्ष्यहतागताःस्वरूप ॥

४०—ललितगतिविलासवल्गुहासप्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः ।
कृतमनुकृतवत्यउन्मदान्धाःप्रकृतिमगन्किलयस्यगोपवध्वः ॥

४१—मुनिगणनृपवर्यसंकुलेऽन्तःसदसियुधिष्ठिरराजसूयएषा ।
अर्हणमुपपेदईक्षणीयोममदृशिगोचरएषआविरात्मा ॥

४२—तमिममहमजंशरीरभाजांहृदिहृदिधिष्ठितमात्मकल्पितानां ।
प्रतिदृशमिवनैकधार्कमेकसमधिगतोस्मिविधूतभेदमोहः ॥

सूतउवाच—

४३—कृष्णएवंभगवतिमनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः ।
आत्मन्यात्मानमावेश्यसोऽन्तःश्वासउपारमत् ॥

भगवान् श्रीकृष्ण मे अपनी आत्मा को विलीन करके भीष्म ने अंतिम श्वास लिया ॥ ४३ ॥ उपाधि रहित ब्रह्म में पितामह भीष्म को विलीन जानकर सब लोग मौन हो गए, जैसे दिन के अन्तमे (सन्ध्या-समय) पक्षिगण मौन हो जाते हैं ॥ ४४ ॥ वहाँ पर देवता और मनुष्यो ने दुन्दुभी बजाई, राजाओं के मध्य में जो साधु स्वभाव वाले थे, उन्होंने भीष्म की प्रशंसा की, आकाश से पितामह भीष्म के ऊपर फूलों की वर्षा हुई ॥ ४५ ॥ भार्गव ! मुक्तपुरुप भीष्म का दाह-संस्कार आदि युधिष्ठिर ने किया और मुहूर्त मात्र के लिये वे दुःखी हुए ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्ण को हृदय में रखनेवाले मुनियो ने श्रीकृष्ण के गुप्त नामों के द्वारा उनकी स्तुति की। प्रसन्नतापूर्वक ऋषि लोग पुन अपने आश्रम को लौट गए ॥ ४७ ॥ अनंतर श्रीकृष्ण के साथ हस्तिनापुर जाकर युधिष्ठिर ने पितृव्य (ताऊ) धृतराष्ट्र और तपस्विनी गांधारी को सांत्वना दी ॥ ४८ ॥ धृतराष्ट्र और श्रीकृष्ण की अनुमति से राजा युधिष्ठिर ने पिता-पितामह के द्वारा भोगे हुए राज्य को स्वीकार किया ॥ ४९ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पहले स्कंध का नवाँ अध्याय समाप्त

४४—सपद्यमानमाज्ञायभीष्मंब्रह्मणिनिष्कले । सर्वेबभूवुस्तेतूष्णींवयासीवदिनात्यये ॥
४५—तत्रदुन्दुभयोनेदुर्देवमानववादिताः । शशंसु साधवोराज्ञांखात्पेतुःपुष्पवृष्टय. ॥
४६—तस्यनिर्हरणादीनिसंपरेतस्यभार्गव । युधिष्ठिर.कारयित्वामुहूर्तंदु.खितोभवत् ॥
४७—तुष्टुवुर्मुनयोहृष्टा.कृष्णंतद्गुह्यनामभि. । ततस्तेकृष्णहृदया.स्वाश्रमान्प्रययु:पुन ॥
४८—ततोयुधिष्ठिरोगत्वासहकृष्णोगजाह्वय । पितरंसान्त्वयामासगांधारींचतपस्विनीं ॥
४९—पित्राचानुमतोराजावासुदेवानुमोदित. । चकारराज्यंधर्मेणपितृपैतामहंविभुः ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेप्रथमस्कंधेयुधिष्ठिरराज्यप्रलम्भोनामनवमोऽध्याय. ॥९॥

दसवाँ अध्याय

पाण्डवों से विदा हो श्रीकृष्ण का द्वारका आना

शौनक बोले—जो पांडवों के धन की इच्छा रखते थे, उन आततायियों को मारकर (बधु-वध के दु ख से) धन की जिसे स्पृहा न थी-ऐसे धर्मात्माओं में श्रेष्ठ युधिष्ठिर ने अपने भाइयों के सहित किस प्रकार राज्य किया और पुन. क्या किया ? ॥ १ ॥

सूत बोले—वंश की दावाग्नि मे जलते हुए कुरुवश के अकुर (राजा परीक्षित) की रक्षा करके संसार की वृद्धि करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण महाराज युधिष्ठिर को राज्य-सिंहासन पर बिठा कर प्रसन्न हुए ॥ २ ॥ भीष्म और श्रीकृष्ण के उपदेशों से युधिष्ठिर का भ्रम दूर हो गया, उन्होंने जान लिया कि समस्त ससार ईश्वराधीन है, अतः उन्होंने अपना आश्रय श्रीकृष्ण को बनाया और इन्द्र के समान समुद्र पर्यंत फैली हुई इस पृथ्वी का भाइयो के साथ शासन किया ॥ ३ ॥ युधिष्ठिर के राज्य मे इच्छानुकूल मेघ बरसते थे, पृथ्वी सभी वस्तुएँ उत्पन्न करती थी, बडे-बड़े थनोवाली गाएं दूध की वर्षा से बथान (गायों के बाँधने का स्थान) को गीला कर देती थीं ॥ ४ ॥ नदियाँ, समुद्र, वनस्पतियाँ और लताओं के सहित पर्वत तथा औषधियाँ प्रत्येक ऋतु में इच्छानुकूल फल देती थीं ॥ ५ ॥ अजातशत्रु युधिष्ठिर के राज्य मे किसी भी जीव को दैवी, भौतिक तथा आत्मसबंधी शारीरिक एव मानसिक पीड़ाएं नहीं होती थीं ॥ ६ ॥ मित्रों के

शौनकउवाच—

१– हत्वास्वरिक्थस्पृधआ:ततायिनोयुधिष्ठिरोधर्मभृतांवरिष्ठः ।
सहानुजै.प्रत्यवरुद्धभोजन.कथप्रवृत्तःकिमकारषीत्तत' ॥

सूतउवाच—

२—वशंकुरोर्वंशदवाग्निनिर्हृतसरोहयित्वाभवभावनोहरिः ।
निवेशयित्वानिजराज्यईश्वरोयुधिष्ठिरप्रीतमनावभूवह ॥

३—निशम्यभीष्मोक्तमथाच्युतोक्तप्रवृत्तविज्ञानविधूतविभ्रम' ।
शशासगामिंद्रइवाजिताश्रय'परिध्युपातामनुजानुवर्तितः ॥

४ – कामववर्षपर्जन्य सर्वकामदुघामही । सिषिचु.स्मव्रजान्गाव:पयसोधस्वतीर्मुदा ॥

५ – नद्य.समुद्रागिरयःसवनस्पतिवीरुधः । फलन्त्योषधयःसर्वा.काममन्वृतुतस्यवै ॥

६ – नाधयोव्याधय क्लेशा.दैवभूतात्महेतव' । अजातशत्रावभवन जन्तूनाराज्ञिकर्हिचित् ॥

शोक को दूर करने के लिए तथा अपनी बहन सुभद्रा को प्रसन्न करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर मे कई महीने बिताए ॥ ७ ॥ अनतर महाराज युधिष्ठिर से परामर्श करके उन्होंने उनसे आज्ञा ली तथा उनको आलिंगन करके प्रणाम किया, पुनः रथ पर सवार हुए। उस समय अन्य लोगों ने भी भगवान् को आलिंगन करके प्रणाम किया ॥ ८ ॥ सुभद्रा, द्रौपदी, कुती, उत्तरा, गाधारी, धृतराष्ट्र, कृपाचार्य, नकुल, सहदेव, भीम, धौम्य तथा उत्तर आदि श्रीकृष्ण के वियोग को सह न सके ॥ ९ ॥ सत्सङ्ग के द्वारा दु सग से मुक्त हुए विद्वान्, सत्पुरुषों से भगवान् श्रीकृष्ण के रमणीय यश को एक बार भी सुनकर, उसका त्याग करने के लिए उत्सुक नहीं होते ॥ ११ ॥ फिर दर्शन, स्पर्श, संभाषण, सोना, बैठना, और साथ-साथ भोजन करने से जिन अर्जुन आदि का मन श्रीकृष्ण मे रम चुका था, भला वे श्रीकृष्ण का वियोग कैसे सह सकते थे ? ॥ १२ ॥ सबका चित्त श्रीकृष्ण मे लग गया था, अतः सभी लोग निर्निमेष दृष्टि से उनको देखने लगे तथा उनकी पूजा के लिये वस्तुओं को लाने के निमित्त इधर-उधर दौड़ने लगे ॥ १३ ॥ घर से बाहर जाते समय श्रीकृष्ण का अमंगल न हो, अतः बन्धुओं की स्त्रियों ने उत्कंठा के कारण प्रगट हुए आँसुओं को आँखों में ही रोक लिया ॥ १४ ॥ मृदग, शख, भेरी, वीणा, पणव, गोमुख धुन्धु, मानक, घंटा और दुन्दुभी आदि बाजे बजने लगे ॥ १५ ॥ श्रीकृष्ण को देखने की इच्छा से कौरवों की स्त्रियाँ कोठे पर चढ गई। प्रेम और लज्जा से उनकी आँखें विकसित हो गई। उन्होंने कृष्ण के ऊपर फूलो की वर्षा की ॥ १६ ॥ अपने अत्यन्त प्रिय सखा श्रीकृष्ण के लिये अर्जुन ने मोतियों की माला से विभूषित श्वेत छत्र हाथ में लिया, जिसके दण्ड में रत्न जडे हुए थे ॥ १७ ॥ उद्धव और सात्यकि ने अलौकिक पखे हाथ मे लिए,

---

७ — उषित्वा हास्तिनपुरे मासान्कतिपयान्हरिः । सुहृदां च विशोकाय स्वसुश्च प्रियकाम्यया ॥

८ — आमन्त्र्य चाभ्यनुज्ञातः परिष्वज्याभिवाद्य तम् । आरुरोह रथं कैश्चित्परिष्वक्तोऽभिवादितः ॥

९ — सुभद्रा द्रौपदी कुन्ती विराटतनया तथा । गान्धारी धृतराष्ट्रश्च युयुत्सुर्गौतमो यमौ ॥

१० — वृकोदरश्च धौम्यश्च स्त्रियो मत्स्यसुतादयः । न सेहिरे विमुह्यन्तो विरहं शार्ङ्गधन्वनः ॥

११ — सत्सङ्गान्मुक्तदुःसङ्गो हातुं नोत्सहते बुधः । कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ॥

१२ — तस्मिन्न्यस्तधियः पार्थाः सहेरन्विरहं कथम् । दर्शनस्पर्शसंलापशयनासनभोजनैः ॥

१३ — सर्वे तेऽनिमिषैरक्षैस्तमनुद्रुतचेतसः । वीक्षन्तः स्नेहसम्बद्धा विचेलुस्तत्र तत्र ह ॥

१४ — न्यरुन्धन्नुद्गलद्बाष्पमौत्कण्ठ्याद्देवकीसुते । निर्यात्यगारान्नोऽभद्रमिति स्याद्बान्धवस्त्रियः ॥

१५ — मृदङ्गशङ्खभेर्यश्च वीणापणवगोमुखाः । धुन्धुर्यानकघण्टाद्या नेदुर्दुन्दुभयस्तथा ॥

१६ — प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्यो दिदृक्षया । ववृषुः कुसुमैः कृष्णं प्रेमव्रीडास्मितेक्षणाः ॥

१७ — सितातपत्रं जग्राह मुक्तादामविभूषितम् । रत्नदण्डं गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ॥

मार्ग में फूलों की वर्षा से मधुपति (श्रीकृष्ण) की शोभा और बढ़ गई ॥ १८ ॥ स्थान-स्थान पर ब्राह्मणों के द्वारा दिए गए सत्य आशीर्वादों को श्रीकृष्ण ने सुना, जो निर्गुण ब्रह्म के प्रतिकूल और अवतार धारण करनेवाले सगुण ब्रह्म के अनुकूल थे ॥१९॥ भगवान् श्रीकृष्ण में मन लगानेवाली कुरुराज की राजधानी की स्त्रियाँ आपस में बातें करने लगीं, जो सुनने में मनोहर थीं ॥ २० ॥

स्त्रियाँ बोलीं—यही वह एकमात्र पुराणपुरुष है, जो गुणों के विक्षोभ (विकार उत्पन्न होने) के पूर्व प्रपंच रहित निज रूप में स्थित थे और जिन जगत की आत्मा ईश्वर में, जीव लीन होता है, जैसे प्रलयकाल में जीवों की उपाधिरूप सत्व आदि शक्तियाँ लुप्त हो जाती हैं ॥ २१ ॥ पुनः नाम-रूप से रहित जीवों को नाम और रूप देने की इच्छा से, वेदों के कर्त्ता जिन ईश्वर ने, अपनी काल-रूप शक्ति के द्वारा प्रेरित अपने अंशरूप जीवों को मोहित करनेवाली और सृष्टि करने की इच्छा रखनेवाली प्रकृति का पुनः आश्रय लिया, वे ही ये श्रीकृष्ण हैं ॥ २२ ॥ यही वह पुरुष हैं, जिनके चरणों का जितेंद्रिय विद्वान् भक्ति की उत्कंठा सहित निर्मल हृदय से प्राणवायु को रोक कर दर्शन करते हैं। सखी ! ये ईश्वर ही सत्वबुद्धि को शुद्ध कर सकते हैं ॥ २३ ॥ सखी ! ये वही हैं, जिनकी कथा वेदों और रहस्यग्रंथों में रहस्य निरूपण करनेवालों के द्वारा गाई गई है तथा जो अकेले अपनी लीला से इस जगत् की सृष्टि करते, इसका पालन करते और संहार करते हैं, परंतु उसमें आसक्त नहीं होते ॥ २४ ॥ जब तामसी राजा अधर्म से अपना जीवन बिताने लगते हैं, तब संसार की रक्षा के लिए प्रत्येक युग में सत्त्वगुण के द्वारा अवतार लेकर भगवान् ऐश्वर्य, सत्य, सत्य उपदेश, दया, अद्भुत कर्म आदि गुणों को धारणकरते हैं।।२५।।

१८—उद्धवःसात्यकिश्चैवव्यजनेपरमाद्भुते । विकीर्यमाणःकुसुमैरेजेमधुपतिःपथि ।

१९—अश्रूयताशिषःसत्यास्तत्रतत्रद्विजेरिताः । नानुरूपानुरूपाश्चनिर्गुणस्यगुणात्मनः ॥

२०—अन्योन्यमासीत्संजल्पउत्तमश्लोकचेतसाम् । कौरवेंद्रपुरस्त्रीणांसर्वश्रुतिमनोहरः ॥

२१—सवैकिलायंपुरुषःपुरातनोयएकआसीदविशेषआत्मनि ।
अग्रे गुणेभ्योजगदात्मनीश्वरेनिमीलितात्मन्निशिसुप्तशक्तिषु ॥

२२—सएवभूयोनिजवीर्यचोदितास्वजीवमायाप्रकृतिंसिसृक्षतीं ।
अनामरूपात्मनिरूपनामनीविधित्समानोऽनुससारशास्त्रकृत् ॥

२३—सवाअयंयत्पदमत्रसूरयोजितेन्द्रियानिर्जितमातरिश्वनः ।
पश्यन्तिभक्त्युत्कलितामलात्मनानन्वेषसत्त्वंपरिमार्ष्टुमर्हति ॥

२४—सवाअयंसख्यनुगीतसत्कथोवेदेषुगुह्येषुचगुह्यवादिभिः ।
यएकईशोजगदात्मलीलयासृजत्यवत्यत्तिनतत्रसज्जते ॥

२५—यदाह्यधर्मेणतमोधियोनृपाजीवन्तितत्रैषहिसत्त्वतःकिल ।
धत्तेभगंसत्यमृतंदयांयशोभवायरूपाणिदधद्युगेयुगे ॥

सखी ! यदुकुल धन्य है ! मथुरापुरी उससे भी धन्य है, जिसे लक्ष्मीपति पुरुषोत्तम ने अपने जन्म और कोमल चरणों के द्वारा पवित्र बना दिया है ॥ २६ ॥ स्वर्ग के यश को तिरस्कार करनेवाली, पुण्य और यश को देनेवाली द्वारकापुरी भी धन्य है, जहाँ की प्रजा, प्रजा-प्रेम से प्रेरित तथा मुस्कराते हुए अपने स्वामी श्रीकृष्ण को नित्य देखती है ॥ २७ ॥ सखी ! पाणिगृहीता श्रीकृष्ण की स्त्रियों ने पूर्वजन्म मे व्रत, स्नान, और हवन आदि के द्वारा निश्चय ही ईश्वर का पूजन किया था, जिससे वे इनके अधरामृत का बार-बार पान करती हैं, जिसकी आशा से व्रज की गोपियाँ मुग्ध हो गई थीं ॥ २८ ॥ स्वयवर मे शिशुपाल आदि बलवान् राजाओं को जीतकर पराक्रम के मूल्य से इन्हें प्रद्युम्न, साम्ब और अम्ब की माताएं, रुक्मिणी, जाम्बवंती और नाग्नजिती तथा भौमासुर के वध मे अन्य जो हजारो स्त्रियाँ प्राप्त हुई थीं, उनका, स्वतंत्रता तथा पवित्रता से रहित स्त्रीत्व भी शोभित हो रहा है, क्योंकि कमल-नयन उनके पति श्रीभगवान् अपनी बातों से उन्हें आनंदित करते हुए कभी उनके घर से बाहर नहीं निकलते ॥ २९-३० ॥

इस प्रकार की बातों से जो भगवान् का गुणगान कर रही थीं, उन हस्तिनापुर की स्त्रियों को मधुर स्मित के सहित देखते हुए भगवान् ने उनका अभिनन्दन किया और पुन. वहाँ से प्रस्थान किया ॥ ३१ ॥ अजातशत्रु युधिष्ठिर ने शत्रुओं के द्वारा भय की आशका से श्रीकृष्ण की रक्षा के लिए चतुरगिणी सेना को प्रेमपूर्वक उनके साथ कर दिया ॥ ३२-३३ ॥ प्रेमवश साथ-साथ दूर तक आए हुए, विरह के कारण व्याकुल प्रेमी पांडवों को लौटाकर भगवान् श्रीकृष्ण

---

२६ – अहोअलश्लाघ्यतमंयदो'कुलअहोअलपुण्यतममधोर्वन ।
यदेषपुसामृषभ.श्रियःप्रिय स्वजन्मनाचक्रमणेनचांचति ॥
२७—अहोबतस्वर्यशसस्तिरस्करीकुशस्थलीपुण्ययशस्करीभुवः ।
पश्यतिनित्यंयदनुग्रहेषितस्मितावलोकस्वपतिंस्मयत्प्रजाः ॥
२८—नूनमतस्नानहुतादिनेश्वर'समर्चितोह्यस्यगृहीतपाणिभिः ।
पिबंतियाःसख्यधरामृतमुहुर्व्रजस्त्रियःसमुमुहुर्यदाशयाः ॥
२९—यावीर्यशुल्केनहृता.स्वयवरेप्रमथ्यचैद्यप्रमुखान्हिशुष्मिणः ।
प्रद्युम्नसाम्बाम्बसुतादयोऽपरायाश्चाहृताभौमवधेसहस्रश' ॥
३०—एता.परंस्त्रीत्वमपास्तपेशलनिरस्तशौचबतसाधुकुर्वते ।
यासांगृहात्पुष्करलोचनःपतिर्नजात्वपैत्याहृतिभिर्हृदिस्पृशन् ॥
३१—एवविधागदतीनासगिरःपुरयोषिता । निरीक्षणेनाभिनदन्सस्मितेनययौहरि' ॥
३२—अजातशत्रु पृतनागोपीथायमधुद्विप. । परेभ्य.शकित स्नेहात्प्रायुक्तचतुरगिणीम् ॥
३३ – अथदूरागतान्शौरि'कौरवान्विरहातुरान् । सन्निवर्त्यदृढस्निग्धान्प्रायात्स्वनगरींप्रियै' ॥

अपने प्रिय उद्धव आदि के साथ द्वारकापुरी को गए ॥ ३४ ॥ कुरु, जांगल, पांचाल, शूरसेन, यमुना और सरस्वती के तट के प्रदेश, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, मरुदेश और धन्वदेश को पार करके सौवीरदेश और आभीरदेश के आगे आनर्तदेश में श्रीकृष्ण पहुँचे, जिनके रथ के घोड़े थक गए थे ॥ ३५ ॥ वहाँ के निवासियों के द्वारा दिये हुये भेंट को स्वीकार करके वे रथ से उतरे और सायंकाल की संध्या के लिए जलाशय को गए ॥ ३६ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पहले स्कंध का दसवाँ अध्याय समाप्त

ग्यारहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण के द्वारा ईश्वर-तत्व का निरूपण

सूत बोले—आनर्त देश को पार करके अपने समृद्ध देश में श्रीकृष्ण पहुँचे। वहाँ के निवासियों के विषाद को शांत करने के लिए उन्होंने पांचजन्य शंख बजाया ॥ १ ॥ शंख का भीतरी भाग श्वेत था, परंतु श्रीकृष्ण के अधरों की लालिमा उस पर दौड़ गई, अतः उसकी शोभा अत्यंत बढ़ गई। श्रीकृष्ण के करकमलों के संपुट में शब्दायमान उस शंख की वैसी ही मनोहर ध्वनि हुई, जैसे लाल कमल के समूह में राजहंस की होती है ॥ २ ॥ जगत् के भय को भी भयभीत करनेवाले उस शब्द को सुनकर स्वामी के दर्शन की लालसा से समस्त प्रजा दौड़

३४—कुरुजांगलपांचालान्शूरसेनान्सयामुनान्। ब्रह्मावर्त्तंकुरुक्षेत्रंमत्स्यान्सारस्वतानथ ॥

३५—मरुधन्वमतिक्रम्यसौवीराभीरयोपरान्। आनर्त्तान्भार्गवोपागाच्छ्रान्तवाहोमनाग्विभुः ॥

३६—तत्रतत्रहतत्रत्यैर्हरिःप्रत्युद्यतार्हणः। सायंभेजेदिशंपश्चाद्गविष्ठोगागतस्तदा ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेप्रथमस्कंधेदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

सूतउवाच—

१—आनर्त्तान्सउपव्रज्यस्वृद्धान्जनपदान्स्वकान्। दध्मौदरवरंतेषांविषादंशमयन्निव ॥

२—सउच्चकाशेधवलोदरोदरोऽप्युरुक्रमस्याधरशोणशोणिमा।
दाध्मायमानःकरकंजसंपुटेयथाऽब्जखंडेकलहंसउत्स्वनः ॥

३—तमुपश्रुत्यनिनदंजगद्भयभयावहम्। प्रत्युद्ययुःप्रजाःसर्वाभर्तृदर्शनलालसाः ॥

पड़ीं ॥ ३ ॥ आत्माराम, पूर्णकाम तथा अपने स्वरूप की प्राप्ति के द्वारा नित्य धाम को देनेवाले श्रीकृष्ण को वहाँ के लोगों ने भेंट दी, जैसे सूर्य की पूजा दीपक से की जाती है ॥ ४ ॥ प्रेम से उनके मुखकमल खिले हुए थे, जैसे सब प्रकार से रक्षा करनेवाले अपने पिता से बालक कहते हैं, उसी प्रकार वे लोग श्रीकृष्ण से गद्-गद् स्वर में कहने लगे ॥ ५ ॥

हे नाथ ! हम लोग आपके चरण कमलों की वंदना करते हैं, जिनकी वंदना ब्रह्मा और सनक आदि ने की है, जो इस संसार में कल्याण चाहनेवालों के लिए एक मात्र शरण तथा प्रभु हैं और जिन पर काल का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता ॥ ६ ॥ जिनकी सेवा से हम लोग कृत-कृत्य हुए हैं, हे विश्वभावन ! हमलोगों की वृद्धि करनेवाले वह आप ही हैं। हमारे आप ही माता, पिता, सुहृद्, स्वामी, सच्चे गुरु और परम आराध्य देव हैं ॥ ७ ॥ आपने हम लोगों को सनाथ कर दिया है। देवताओं को तो आपका दर्शन दूर से होता है, किंतु हम लोग प्रेम भरी चितवन से मंद-मंद मुस्कुराते हुए आपके सुंदर स्वरूप को सदा देखते रहते हैं ॥ ८ ॥ कमल लोचन ! सुहृदों को देखने के लिए हम लोगों का त्याग करके जब आप ही हस्तिनापुर तथा मथुरा चले गए, उस समय हम लोगों की दशा वैसी ही हुई, जैसी सूर्य के बिना आँखों की होती है। उस समय हमारा एक क्षण करोड़ों वर्षों के समान बीतता था ॥ ९ ॥ भक्तों पर दया करनेवाले श्रीकृष्ण प्रजा की बातें सुनकर प्रेम भरी दृष्टि के द्वारा अनुग्रह का विस्तार करते हुए द्वारकापुरी में पधारे ॥ १० ॥ आपके ही द्वारा, समान बलवाले मधु, भोज, दशार्ह, कुकुर, अंधक और वृष्णियों से द्वारकापुरी सुरक्षित थी, जैसे नागों द्वारा भोगवती ॥ ११ ॥

४—तस्योपनीतबलयोरवेर्दीपमिवादृताः । आत्मारामपूर्णकामनिजलाभेननित्यदा ॥

५—प्रीत्युत्फुल्लमुखाःप्रोचुर्हर्षगद्गदयागिरा । पितरंसर्वसुहृदमवितारमिवार्भकः ॥

६—नताःस्मतेनाथसदाङ्घ्रिपङ्कजंविरिञ्चवैरिञ्च्यसुरेन्द्रवन्दितं ।
परायणंक्षेममिहेच्छतांपरंनयत्रकालःप्रभवेत्परःप्रभुः ॥

७—भवायनस्त्वंभवविश्वभावनत्वमेवमाताथसुहृत्पतिःपिता ।
त्वंसद्गुरुर्नःपरमंचदैवतंयस्यानुवृत्त्याकृतिनोबभूविम ॥

८—अहोसनाथाभवतास्मयद्वयंत्रैविष्टपानामपिदूरदर्शनं ।
प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणाननंपश्येमरूपंतवसर्वसौभगं ॥

९—यर्ह्यम्बुजाक्षापससारभोभवान्कुरून्मधून्वाथसुहृद्दिदृक्षया ॥
तत्राब्दकोटिप्रतिमःक्षणोभवेद्रविंविनाऽक्ष्णोरिवनस्तवाच्युत ॥

१०—इतिचोदीरितावाचःप्रजानांभक्तवत्सलः । शृण्वानोऽनुग्रहंदृष्ट्यावितन्वन्प्राविशत्पुरीं ॥

११—मधुभोजदशार्हार्हकुकुरान्धकवृष्णिभिः । आत्मतुल्यबलैर्गुप्तांनागैर्भोगवतीमिव ॥

वह (द्वारकापुरी) सब ऋतुओं में पुष्प आदि समस्त संपत्तियों के सहित सुन्दर वृक्ष तथा लता-मंडपों से युक्त उद्यान (जिसमे फल हों), उपवन (जिसमें पुष्प अधिक हों) और आरामों (क्रीड़ा के लिए बनाया हुआ बगीचा) से घिरे हुए तालाबों से शोभित थी ॥ १२ ॥ नगर के और गृहों के द्वारों पर उत्सव के निमित्त तोरण बने हुए थे। अनेक प्रकार की ध्वजा और पताकाओं के अग्रभाग के कारण सूर्य की किरणे अंदर नहीं आने पाती थीं, अर्थात् ध्वजा-पताकओं से आकाश इस प्रकार भर गया था कि सूर्य का प्रकाश उनके कारण पृथ्वी पर नहीं आने पाता था, वह ऊपर ही रुक जाता था ॥ १३ ॥ द्वारकापुरी के सड़क, बाजार, गली और चौराहे सभी स्वच्छ थे। सर्वत्र सुगंधित जल का छिड़काव हुआ था। जगह-जगह फल, पुष्प, अक्षत और अंकुर लगाए गए थे ॥ १४ ॥ प्रत्येक गृह के द्वार पर दही, अक्षत, फल, ईख, नारियल तथा फल, धूप और दीप से सुसज्जित भरे हुए कलश रखे थे, जिससे द्वार की शोभा बढ़ रही थी ॥ १५ ॥ अंतर के आत्मारूप भगवान् श्रीकृष्ण का आगमन सुनकर महामना वसुदेव अक्रूर, उग्रसेन, अद्भुत पराक्रमवाले बलराम, प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सांब और जांबवंती के पुत्र आदि आनंद की अधिकता के कारण शयन, आसन और भोजन का परित्याग करके और हाथी को आगे करके, हाथों मे मांगलिक पुष्पादि लिए हुए, शंख, बाजा और वेद ध्वनि के साथ रथ पर सवार हो प्रसन्नता पूर्वक श्रीकृष्ण की अगवानी के लिए चले ॥ १८ ॥ हिलते हुए कुंडलों के कारण जिनके कपोल शोभित हो रहे थे, ऐसी हजारों वेश्याएँ भी भगवान् के दर्शनों की उत्कंठा से वाहन मे बैठ कर आगे की ओर चलीं ॥ १९ ॥ नट, नाचनेवाले, गंधर्व, सूत, मागध और बंदीजन उत्तम श्लोक श्रीकृष्ण के अलौकिक चरित्रों का गान करने लगे ॥ २० ॥ नगर-निवासी बंधुओं से यथायोग्य मिलकर भगवान् ने वहाँ सब का सम्मान किया ॥ २१ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण

१२—सर्वर्तुसर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः । उद्यानोपवनारामैर्वृतपद्माकरश्रिय ॥

१३—गोपुरद्वारमार्गेषुकृतकौतुकतोरणा । चित्रध्वजपताकाग्रैरतःप्रतिहतातपा ॥

१४—संमार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वरा । सिक्तागंधजलैरुप्ताफलपुष्पाक्षताङ्कुरैः ॥

१५—द्वारिद्वारिगृहाणाचदध्यक्षतफलेक्षुभिः । अलङ्कतापूर्णकुम्भैर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥

१६—निशम्यप्रेष्ठमायातंवसुदेवोमहामनाः । अक्रूरश्चोग्रसेनश्चरामश्चाद्भुतविक्रमः ॥

१७—प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्चसाम्बोजाम्बवतीसुतः । प्रहर्षवेगोच्छ्वसितशयनासनभोजनाः ॥

१८—वारणेंद्रपुरस्कृत्यब्राह्मणैःससुमंगलैः । शङ्खतूर्यनिनादेनब्रह्मघोषेणचादृता ॥

प्रत्युज्जग्मूरथैर्हृष्टाःप्रणयागतसाध्वसाः ॥

१९—वारमुख्याश्चशतशोयानैस्तद्दर्शनोत्सुकाः । लसत्कुंडलनिर्भातकपोलवदनश्रियः ॥

२०—नटनर्त्तकगंधर्वाःसूतमागधवंदिनः । गायतिचोत्तमश्लोकचरितान्यद्भुतानिच ॥

२१—भगवांस्तत्रबंधूनापौराणामनिवर्त्तिनाम् । यथाविध्युपसगम्यसर्वेषांमानमादधे ॥

ने किसी को सिर से नमन किया और किसी को वचन से, किसी से हाथ मिलाया और किसी की ओर हँसते हुए देखकर सभी का उचित सम्मान किया तथा चाडाल आदि को भी इच्छित दान और अभय देकर उन्हे सम्मानित किया। अनतर गुरुओं, स्त्रियों के सहित ब्राह्मणों, बडे-बूढों तथा अन्य वदीजनो का आशीर्वाद ग्रहण करते हुए उन्होंने द्वारकापुरी में प्रवेश किया॥ २२-२३ ॥

शौनक ! श्रीकृष्ण जब राजमार्ग मे पहुँचे, तब द्वारकापुरी की कुलीन स्त्रियाँ (उन्हे देखने के लिए) मकान के छतों पर चढ गईं। श्रीकृष्ण का दर्शन ही उनलोगों के लिए महान उत्सव था ॥ २४ ॥ यद्यपि द्वारका के निवासी नित्य ही श्रीकृष्ण को देखा करते थे, तथापि शोभाओं के धाम उन अच्युत को देखने से उनकी आँखे तृप्त नहीं होती थीं। अर्थात् निरतर उनका दर्शन करते रहने पर भी उन्हें सतोप नहीं होता था, जिनकी छाती मे लक्ष्मी का निवास है, जिनका मुख, नेत्रों को (सौंदर्यरूपी) अमृत का पान कराने के लिए पात्र है, जिनकी भुजाओं में लोक-पालों का तथा चरण-कमलों में भक्तों का निवास है ॥ २५-२६ ॥ धारण किए हुए श्वेत छत्र, झूले जाते हुए पखे, बरसती हुई फूलों की वर्षा, पहने हुए पीले वस्त्र तथा वनमाला के द्वारा मार्ग में श्रीकृष्ण की वैसी ही शोभा हुई, जैसी सूर्य, चद्रमा, नक्षत्र (तारा) इंद्र-धनुप और बिजली की चमक से मेघ की होती है ॥ २७ ॥ गृह मे प्रवेश करके श्रीकृष्ण ने देवकी आदि सात माताओं को तथा वसुदेव को सिर झुका कर प्रणाम किया। पिता और माताओं ने श्रीकृष्ण का आलिंगन किया ॥ २८ ॥ पुत्र-स्नेह की अधिकता से उन माताओं के स्तनों में दूध भर आया, उनकी आत्मा प्रेम से विह्वल हो गई, प्यारे पुत्र श्रीकृष्ण को गोद मे लेकर उनलोगों ने नेत्रों के जल से उन्हे सिक्त कर दिया ॥ २९ ॥ अनतर जिसमे समस्त भोग के पदार्थ भरे हुए थे, जो अत्यत उत्तम था और जिसमे उनकी सोलह हजार एक सौ आठ पट-रानियों के महल थे, ऐसे

२२—प्रह्वाभिवादनाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः । आश्वास्यचाश्वपाकेभ्योवरैश्चाभिमतैर्विभुः ॥

२३—स्वयचगुरुभिर्विप्रैः सदारैः स्थविरैरपि । आशीर्भिर्युज्यमानोन्यैर्वंदिभिश्चाविशत्पुर ॥

२४—राजमार्गं गतेकृष्णेद्वारकाया.कुलस्त्रिय. । हर्म्याण्यारुरुहुर्विप्रतदीक्षणमहोत्सवाः ॥

२५—नित्यनिरीक्षमाणानायदपिद्वारकौकसां । नवितृप्यतिहिदृश श्रियोधामागमच्युत ॥

२६—श्रियोनिवासोयस्योर:पानपात्रमुखदृशा । बाहवोलोकपालानासारगाणापदाबुज ॥

२७—सितातपत्रव्यजनैरुपस्कृत प्रसूनवर्षैरभिवर्षित पथि ।

पिशगवासावनमालया बभौघनोयथाऽर्कोडुपचापवैद्युतैः ॥

२८—प्रविष्टस्तुगृहपित्रो.परिष्वक्त:स्वमातृभि । ववदेशिरसासप्तदेवकीप्रमुखामुदा ॥

२९—ता पुत्रमंकमारोप्यस्नेहस्नुतपयोधरा. । हर्षविह्वलितात्मान सिषिचुर्नेत्रजैर्जलं ॥

अपने भवन में श्रीकृष्ण ने प्रवेश किया ॥ ३० ॥ देशाटन करके घर आए हुए पति को दूर से ही देखकर, जिनके मन मे अत्यंत आनंद हुआ था तथा लज्जा के कारण जिनकी आँखे और मुँह झुका हुआ था और जिन्होंने व्रत धारण कर रखा था (जिनके पति प्रवासी हों, उन स्त्रियों के लिए हास्य-कौतुक और श्रृङ्गार आदि कतिपय विधानों का निषेध है) वे श्रीकृष्ण की स्त्रियाँ अंतःकरण के सहित (अभिप्राय यह कि उनके हृदय भी भगवान् के निकट चले गए) आसन छोड़कर उठ खड़ी हुईं ॥ ३१ ॥

भृगुश्रेष्ठ ! अत्यंत स्नेहवाली उन स्त्रियों ने पहले मन के द्वारा, पुनः दृष्टि के द्वारा और तदनंतर अपने पुत्रों के आलिंगन के द्वारा उनका (अपने पति श्रीकृष्ण का) आलिंगन किया। उस समय लज्जित उन स्त्रियों की आँखो से, रोकने पर भी, विवशतापूर्वक आँसुओं की कुछ बूँदे गिर पड़ीं ॥ ३२ ॥ यद्यपि श्रीकृष्ण उन स्त्रियों के निकट रह चुके थे, उनके साथ एकांत मे क्रीडा कर चुके थे, किंतु फिर भी उनके लिए भगवान् के चरणों की शोभा नित्य नवीन थी। चंचला होने पर भी लक्ष्मी जिनके चरणों का आश्रय कभी नहीं छोड सकतीं, उनके चरणों का आश्रय और कौन छोड सकता है ? ॥ ३३ ॥ इस प्रकार पृथ्वी के लिए भार-भूत परम तेजस्वी राजाओं को आपस मे ही लडाकर भगवान् श्रीकृष्ण शस्त्र को त्याग कर शांत हो गए, जैसे वायु बाँसों की रगड़ से अग्नि उत्पन्न करके और वन को जलाकर शांत हो जाती है ॥ ३४ ॥ ये भगवान् इस मर्त्यलोक मे अपनी माया के द्वारा अवतार धारण करके, सामान्य पुरुषों की तरह, उत्तम स्त्रियो के सहित क्रीड़ा करते है ॥ ३५ ॥ जिन रमणियो के गंभीर अभिप्रायो को सूचित करनेवाले निर्मल हास्य और लज्जा सहित अवलोकन से ताड़ित भगवान् शंकर ने भी मोहित हो कर अपना धनुष त्याग दिया, वे ही अपने कपटमय विलासों के द्वारा जिनकी इंद्रियों को क्षुब्ध

३०—अथाविशत्स्वभवनंसर्वकाममनुत्तमं । प्रासादायत्रपत्नीनांसहस्राणिचषोडश ॥

३१—पत्न्य.पतिंप्रोष्यगृहानुपागतंविलोक्यसंजातमनोमहोत्सवाः ।
उत्तस्थुरारात्सहसासनाशयात्साकंव्रतैर्व्रीडितलोचनाननाः ॥

३२—तमात्मजैर्दृष्टिभिरंतरात्मनादुरंतभावाःपरिरेभिरेपतिम् ।
निरुद्धमप्यास्रवदम्बुनेत्रयोर्विलज्जतीनांभृगुवर्यवैक्लवात् ॥

३३—यद्यप्यसौपार्श्वगतोरहोगतस्तथापितस्यांघ्रियुगंनवंनवं ।
पदेपदेकाविरमेततत्पदाच्चलापियच्छ्रीर्नजहातिकर्हिचित् ॥

३४—एवंनृपाणांक्षितिभारजन्मनामक्षौहिणीभिःपरिवृत्ततेजसां ।
विधायवैरंश्वसनोयथाऽनलंमिथोवधेनोपरतोनिरायुधः ॥

३५—सएषनरलोकेऽस्मिन्नवतीर्णःस्वमायया । रेमेस्त्रीरत्नकूटस्थोभगवान्प्राकृतोयथा ॥

नहीं कर सकीं, वे भगवान् श्रीकृष्ण व्यापक और संगरहित हैं, किंतु उन्हें (लीला से) मनुष्य के समान आचरण करते हुए देखकर लोग उन्हें संगवाला और मनुष्य ही समझते हैं, क्योंकि वे तत्व को नहीं जानते ॥ ३७ ॥ शरीर के आश्रय मे रहनेवाली बुद्धि जिस प्रकार शरीर के गुणों से युक्त होती है उस प्रकार माया का आश्रय लेकर स्थित भगवान् माया के सुख-दुःख आदि गुणो से युक्त नहीं होते, यही ईश्वर की ईश्वरता है ॥ ३८ ॥ ईश्वर की महिमा को न जाननेवाली उन मूढ स्त्रियों ने अपने अधीन श्रीकृष्ण को कामी-पुरुष समझा, जैसे अहंकारादि वृत्तियाँ, क्षेत्रज्ञ (आत्मा) को अपने अधीन समझती हैं ॥ ३९ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पहले स्कंध का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त

बारहवाँ अध्याय

राजा परीक्षित के जन्म की कथा

शौनक बोले—अश्वत्थामा द्वारा चलाए गए ब्रह्मास्त्र से उत्तरा का गर्भ नष्ट हो गया, परंतु भगवान ने उसे पुनः जीवित कर दिया ॥ १ ॥ अत्यंत बुद्धिमान उन राजा परीक्षित के जन्म और कर्मो को मैं सुनना चाहता हूँ । वे अपने शरीर को त्याग कर स्वर्ग कैसे

३६—उद्दाममावपिशुनामलवल्गुहासव्रीडाऽवलोकनिहतोऽमदनोपियासां ।
संमुह्यचापमजहात्प्रमदोत्तमास्तायस्यैंद्रियविमथितुकुहकैर्नशेकुः ॥

३७—समयमन्यतेलोकोप्यसगमपिसगिनम् । आत्मौपम्येनमनुजव्यापृण्वानयतोबुधः ॥

३८—एतदीशनमीशस्यप्रकृतिस्थोपितद्गुणैः । नयुज्यतेसदात्मस्थैर्यथाबुद्धिस्तदाश्रया ॥

३९—तंमेनिरेऽबलामूढा स्त्रैणंचानुव्रतरहः । अप्रमाणविदोभर्त्तुरीश्वरमतयोयथा ॥

इतिश्रीभागवते म० प्र० श्रीकृष्णद्वारकाप्रवेशोनामैकादशोध्यायः ॥ ११ ॥

शौनकउवाच—

१—अश्वत्थाम्नोपसृष्टेनब्रह्मशीर्ष्णोरुतेजसा । उत्तरायाहतोगर्भईशेनाजीवितःपुनः ॥

गए ? जिन्हें शुकदेवजी ने ज्ञानोपदेश दिया था, उनके चरित को आप यदि कहने के योग्य समझते हों तो उसे हम लोगों को सुनाइये, क्योंकि हमारी बड़ी श्रद्धा है ॥ २-३ ॥

सूत बोले—सब प्रकार की कामनाओं से रहित धर्मराज ने भगवान् के चरणों की सेवा के द्वारा अपने पिता की तरह प्रजारंजन करते हुए उसका पालन किया ॥ ४ ॥ संपत्ति से, यज्ञ करने से प्राप्त होनेवाले लोक, स्त्री, पृथ्वी, भाई, जंबूद्वीप का राज्य और स्वर्ग तक पहुँचा हुआ यश--ये सब ऐसी चीजे है जिनकी कामना देवता भी किया करते हैं, किंतु जिनका चित्त भगवान् श्रीकृष्ण में लगा हुआ था, ऐसे राजा युधिष्ठिर को ये बातें प्रसन्न न कर सकीं, जैसे भूखे को अन्य वस्तुएँ प्रसन्न नहीं कर सकतीं ॥ ५-६ ॥

भृगुनंदन ! माता के गर्भ में स्थित ब्रह्मास्त्र के तेज से जलते हुए उस वीर (परीक्षित) ने किसी पुरुष को देखा ॥ ७ ॥ अंगुष्ठमात्र का उसका निर्मल शरीर था, उसके माथे पर सोने का मुकुट चमक रहा था, देखने मे वह अत्यंत सुंदर था, वह बिजली के समान पीले वस्त्र धारण किए हुए था, विकार रहित था, तथा श्यामवर्ण वाला था ॥ ८ ॥ शोभायुक्त उसकी लंबी चार भुजाएँ थीं, तपाए हुए सोने के कुंडल (उसके कानों मे) चमक रहे थे। उसकी आँखे लाल थीं। वह हाथ मे गदा लिए परीक्षित के चारों ओर घूम रहा था ॥ ९ ॥ उल्का के समान तेजस्वी अपनी गदा को वह बार-बार घुमा रहा था और उससे अस्त्र का तेज नष्ट कर रहा था। उस पुरुष को निकट देखकर वह (परीक्षित) सोचने लगे कि यह कौन है ! ॥ १० ॥ धर्म की रक्षा करनेवाले महात्मा भगवान् विष्णु ब्रह्मास्त्र के तेज को नष्ट करके दस महीने बितानेवाले उस परीक्षित के देखते-देखते वहीं अंतर्धान हो गए ॥ ११ ॥

२—तस्यजन्ममहाबुद्धेःकर्माणिचगृणीहिनः । निधनंचयथैवासीत्सप्रेत्यगतवान्यथा ॥

३—तदिदंश्रोतुमिच्छामिगदितु यदिमन्यसे । ब्रूहिनःश्रद्दधानानांयस्यज्ञानमदाच्छुकः ॥

सूतउवाच—

४—अपीपलद्धर्मराजःपितृवद्रंजयन्प्रजाः । निस्पृहःसर्वकामेभ्यःकृष्णपादाब्जसेवया ॥

५—सपदःक्रतवोविप्रामहिषीभ्रातरोमही । जम्बुद्वीपाधिपत्यंचयशश्चत्रिदिवंगतम् ॥

६—किंतेकामाःसुरस्पार्हामुकुन्दमनसोद्विजाः । अधिजह्रुर्मुदंराज्ञ क्षुधितस्ययथेतरे ॥

७—मातुर्गर्भगतोवीरःसतदाभृगुनंदन । ददर्शपुरुषंकंचिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा ॥

८—अंगुष्ठमात्रममलंस्फुरत्पुरटमौलिनम् । अपीच्यदर्शनंश्यामंतडिद्वाससमच्युतम् ॥

९—श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुंतप्तकांचनकुंडलम् । क्षतजाक्षंगदापाणिमात्मनःसर्वतोदिशम् ।
परिभ्रमंतमुल्काभांभ्रामयंतगदांमुहुः ॥

१०—अस्त्रतेजःस्वगदयानीहारमिवगोपतिः । विधमंतंसन्निकर्षेपर्यैक्षतकइत्यसौ ॥

११—विधूयतदमेयात्माभगवान्धर्मगुब्विभुः । मिषतोदशमास्यस्यतत्रैवान्तर्दधेहरिः ॥

सब प्रकार से उत्तम फल देनेवाले अनुकूल ग्रहों के उदयकाल में, पराक्रम में पांडु के समान ही पाण्डुवंश की वृद्धि करनेवाला पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥ प्रसन्न चित्त महाराज युधिष्ठिर ने धौम्य तथा कृपाचार्य आदि ब्राह्मणों के द्वारा मंगलाचार कराकर उसका जातकर्म संस्कार कराया ॥ १३ ॥ तीर्थ (काल) की महिमा को जाननेवाले महाराज युधिष्ठिर ने पुत्रोत्पत्ति रूपी पवित्रकाल में सुवर्ण, गौ, पृथ्वी, ग्राम, हाथी, घोड़े और सुंदर अन्न ब्राह्मणों को दिया ॥ १४ ॥ संतुष्ट हो ब्राह्मणों ने विनय से नम्र राजा युधिष्ठिर से कहा—राजन्! दुर्निवार दैव ने शुद्ध कुरुवंश की प्रजातंतु को नष्ट कर दिया था, परंतु भगवान् विष्णु ने आपलोगों पर अनुग्रह करके यह पुत्र दिया है ॥ १५ ॥ इसलिए इसका नाम लोक में विष्णुरात होगा, इसका यश समस्त संसार में फैल जाएगा। यह बालक भगवान् का बड़ा भक्त होगा ॥ १६-१७ ॥

युधिष्ठिर बोले—पूज्य ब्राह्मणो! पुण्यचरित्रवाले मेरे पूर्वज महात्मा राजर्षियों की सुकीर्ति का अनुकरण करनेवाला यह बालक होगा क्या? ॥ १८ ॥

ब्राह्मण लोग बोले—युधिष्ठिर! यह बालक मनुपुत्र इक्ष्वाकु के समान प्रजा की रक्षा करनेवाला तथा दशरथ के पुत्र श्रीराम के समान ब्राह्मणों का हित करनेवाला और सत्यप्रतिज्ञ होगा ॥ १९ ॥ यह उसी नरदेश के राजा शिवि के समान दानी और दीनों को शरण देनेवाला होगा तथा यज्ञ करनेवालों के यश को बढ़ानेवाले महाराज भरत के समान अपनी जाति की कीर्ति को बढ़ानेवाला होगा ॥ २० ॥ धनुर्धारियों में यह अर्जुन और कार्तवीर्य के समान अग्रगण्य होगा। यह अग्नि के समान दुर्धर्ष और समुद्र के समान गंभीर होगा ॥ २१ ॥ सिंह के

१२—ततःसर्वगुणोदर्केसानुकूलग्रहोदये। जज्ञेवंशधरःपाण्डोर्भूयःपाण्डुरिवौजसा॥

१३—तस्यप्रीतमनाराजाविप्रैर्धौम्यकृपादिभिः। जातककारयामासवाचयित्वाचमंगलम्॥

१४—हिरण्यंगांमहींग्रामान्हस्त्यश्वान्नृपतिर्वरान्। प्रादात्स्वन्नंचविप्रेभ्यःप्रजातीर्थेसतीर्थवित्॥

१५—तमूचुर्ब्राह्मणास्तुष्टाराजानंप्रश्रयान्वितं। एषह्यस्मिन्प्रजातन्तौपूरूणांपौरवर्षभ॥

१६—दैवेनाप्रतिघातेनशुक्लेसंस्थामुपेयुषि। रातोवोऽनुग्रहार्थायविष्णुनाप्रभविष्णुना॥

१७—तस्मान्नाम्नाविष्णुरातइतिलोकेबृहच्छ्रवाः। भविष्यतिनसन्देहोमहाभागवतोमहान्॥

युधिष्ठिरउवाच—

१८—अप्येषवंश्यान्राजर्षीन्पुण्यश्लोकान्महात्मनः। अनुवर्तितास्विद्यशसासाधुवादेनसत्तमाः॥

ब्राह्मणाऊचुः—

१९—पार्थप्रजावितासाक्षादिक्ष्वाकुरिवमानवः। ब्रह्मण्यःसत्यसंधश्चरामोदाशरथिर्यथा॥

२०—एषदाताशरण्यश्चयथाह्यौशीनरःशिबिः। यशोवितनितास्वानांदौष्यन्तिरिवयज्वनाम्॥

२१—धन्विनामग्रणीरेषतुल्यश्चार्जुनयोर्द्वयोः। हुताशइवदुर्धर्षःसमुद्रइवदुस्तरः॥

समान पराक्रमी, हिमालय के समान सत्पुरुषों के सेवन करने योग्य, पृथ्वी के समान क्षमाशील और माता-पिता के समान प्रेमपूर्वक सहनशील होगा ॥ २२ ॥ यह पितामह ब्रह्मा अथवा युधिष्ठिर के समान समदर्शी, शंकर के समान आशुतोष और लक्ष्मीपति विष्णु के समान सब जीवों का आधार होगा ॥ २३ ॥ यह सभी अच्छे गुणों की महिमा में श्रीकृष्णचन्द्र का अनुकरण करनेवाला, राजा रन्तिदेव के समान उदार और ययाति के समान धार्मिक होगा ॥ २४ ॥ यह बालक बलि के समान धैर्य-शाली, प्रह्लाद के समान श्रीकृष्ण मे सच्ची निष्ठा रखनेवाला, अश्वमेध नामक यज्ञों को करनेवाला, वृद्धों की सेवा करनेवाला, जनमेजयादि ऋषियों को उत्पन्न करने-वाला, कुपथगामियों का शासक, धर्म की रक्षा के लिए कलि का निग्रह करनेवाला होगा ॥ २५,२६ ॥ ऋषिकुमार के शाप से तक्षक द्वारा मेरी मृत्यु होगी, यह जानकर यह संसार से अलग हो जाएगा और अपने मन को श्रीहरिचरणों में लगा देगा ॥ २७ ॥ राजन् ! व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी से आत्मा के यथार्थ स्वरूप को जानकर गंगा किनारे इस नश्वर शरीर का त्याग कर यह मुक्तिपद को प्राप्त करेगा, जहाँ किसी प्रकार का भय नहीं है ॥ २८ ॥

जातक के गुणों को जाननेवाले ब्राह्मण राजा को इस प्रकार बतलाकर तथा भरपूर विदाई ले-लेकर अपने-अपने घर गए ॥ २९ ॥ वही-यह बालक लोक में परीक्षित नाम से प्रसिद्ध हुआ, क्योंकि गर्भ मे उसने जिस पुरुष (भगवान्) को देखा था, उत्पन्न होने पर उसे ही वह सांसारिक पुरुषों मे ढूँढ़ने लगा अर्थात् यह देखने लगा कि मैंने गर्भ मे जिस पुरुष को देखा था, वह इन सांसारिक पुरुषो मे है या नहीं ॥ ३० ॥ शुक्लपक्ष मे चंद्रमा जैसे कलाओं से परिपूर्ण होकर बढ़ता है, वैसे ही वह राजकुमार भी पिता आदि तथा चौसठ कलाओं के द्वारा परिपूर्ण होकर शीघ्र बढ़ने लगा ॥ ३१ ॥

२२—मृगेन्द्रइवविक्रान्तोनिषेव्योहिमवानिव । तितिक्षुर्वसुधेवासौसहिष्णुःपितराविव ॥

२३—पितामहसमःसाम्येप्रसादेगिरिशोपमः । आश्रयःसर्वभूतानांयथादेवोरमाश्रयः ॥

२४—सर्वसद्गुणमाहात्म्यएषकृष्णमनुव्रतः । रन्तिदेवइवोदारोययातिरिवधार्मिकः ॥

२५—धृत्याबलिसमःकृष्णेप्रह्लादइवसद्ग्रहः । आहर्तैषोऽश्वमेधानांवृद्धानांपर्युपासकः ॥

२६—राजर्षीणांजनयिताशास्ताचोत्पथगामिनाम् । निग्रहीताकलेरेषभुवोधर्मस्यकारणात् ॥

२७—तक्षकादात्मनोमृत्युंद्विजपुत्रोपसर्जितात् । प्रपत्स्यतउपश्रुत्यमुक्तसङ्गःपदंहरेः ॥

२८—जिज्ञासितात्मयाथार्थ्योमुनेर्व्याससुतादसौ । हित्वेदंनृपगङ्गायांयास्यत्यद्धाऽकुतोभयम् ॥

२९—इतिराज्ञउपादिश्यविप्राजातककोविदाः । लब्धोपचितयःसर्वेप्रतिजग्मुःस्वकान्गृहान् ॥

३०—सएषलोकविख्यातःपरीक्षिदितियत्प्रभुः । गर्भेदृष्टमनुध्यायन्परीक्षेतनरेष्विह ॥

३१—सराजपुत्रोववृधेआशुशुक्लइवोडुपः । आपूर्यमाणःपितृभिःकाष्ठाभिरिवसोऽन्वहम् ॥

अनतर जाति-द्रोह को मिटाने की इच्छा से युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ करना चाहा, किंतु कर और दण्ड से प्राप्त हुए धन के अतिरिक्त अन्य द्रव्य न होने के कारण उनको चिंता हुई ॥ ३२ ॥ उनके अभिप्राय को जानकर भगवान् की आज्ञा से अर्जुन आदि चारो भाई उत्तर दिशा से बहुत सा धन ले आए ॥ ३३ ॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने उस धन से यज्ञ की सामग्रियाँ एकत्रित कीं और उन्हो ने तीन अश्वमेध यज्ञो के द्वारा यज्ञपुरुष श्रीभगवान् का पूजन किया ॥ ३४ ॥

श्रीमद्भागवत महा पुराण के पहले स्कंध का बारहवाँ अध्याय समाप्त

तेरहवाँ अध्याय

यात्रा से विदुर का लौटना; गांधारी और धृतराष्ट्र का गृह-त्याग, योगमार्ग से धृतराष्ट्र की मुक्ति

सूत बोले—तीर्थ यात्रा मे विदुर जी मैत्रेय मुनि से अपनी गतिरूप भगवान् श्रीकृष्ण को जानकर हस्तिनापुर आए। भगवान् को जानकर उन्होंने वह सब जान लिया था, जो जानने

३२—यक्ष्यमाणोऽश्वमेधेनज्ञातिद्रोहजिहासया। राजाऽलब्धधनोदध्यावन्यत्रकरदण्डयोः॥

३३—तदभिप्रेतमालक्ष्यभ्रातरोऽच्युतचोदिताः। धनमहीणमाजह्रुरुदीच्यादिशिभूरिशः॥

३४—तेनसम्भृतसम्भारोधर्मपुत्रोयुधिष्ठिरः। वाजिमेधैस्त्रिभिर्भीतोयज्ञैःसमयजद्धरिं॥

इति श्रीभा० म० प्र० परीक्षिज्जन्मोत्कर्षोनामद्वादशोऽध्यायः॥१२॥

सूतउवाच—

१—विदुरस्तीर्थयात्रायांमैत्रेयादात्मनोगतिं। ज्ञात्वाऽगाद्धास्तिनपुरंतयावाप्तविवित्सितः॥

योग्य है ॥ १ ॥ मैत्रेय से विदुर ने जितने प्रश्न किए उन्हींसे उसके मन में गोविंद की भक्ति उत्पन्न हुई, अत: उन्होंने अधिक प्रश्न नहीं किए ॥ २ ॥ विदुर को आया हुआ जानकर अपने भाइयों के साथ महाराज युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, संजय, शारद्वत, पृथा, गांधारी, द्रौपदी, सुभद्रा, कृपी (द्रोणाचार्य की भार्या) तथा अपने पुत्रों के सहित अन्य स्त्रियाँ प्रसन्न होकर उठ खड़ी हुई, जैसे प्राण के आने पर (अर्थात् प्राण संचार होने पर) हाथ-पैर आदि शरीर के अवयव उठ खड़े होते हैं ॥ ३-४ ॥ अनतर यथोचित आलिंगन तथा प्रणाम आदि से विदुरजी का सत्कार करके वे विरह उत्कंठा से विवश होकर प्रेमाश्रु बरसाने लगे ॥ ५ ॥ महाराज युधिष्ठिर ने आसन पर बिठा कर उनका पूजन किया ॥ ६ ॥ अनतर जब भोजन आदि से निवृत्त होकर विदुरजी उत्तम आसन पर विश्राम कर रहे थे, विनय से नम्र राजा युधिष्ठिर ने सब लोगों के सम्मुख उनसे पूछा—॥ ७ ॥

युधिष्ठिर बोले—चिड़ियाँ जैसे अपने बच्चों को पख की छाया से बढ़ाती हैं, उसी प्रकार आपने अपने पक्षपात की छाया में हमलोगों का पालन-पोषण किया है, (विप एवं अग्नि आदि विपत्तियों के समूह से आपने माता समेत हम पाँचों भाइयों की रक्षा की है) आप क्या कभी हम लोगों को भी याद करते है ॥ ८ ॥ किस वृत्ति से आप अपना जीवन निर्वाह करते है ? भूमडल पर घूमते हुए आपने कौन-कौन से तीर्थ किए हैं ? ॥ ९ ॥ आपके समान भगवान् के भक्त तो स्वयं तीर्थरूप हैं। वे अपने हृदय में निवास करनेवाले गदाधर भगवान् के द्वारा तीर्थ को पवित्र बना देते है ॥ १० ॥ हमारे बाधव यादव लोग जिनके मुखिया श्रीकृष्णजी हैं, अपनी

२—यावतःकृतवान्प्रश्नान्क्षत्ताकौषारवाग्रतः । जातैकभक्तिर्गोविंदेतेभ्यश्चोपरराम ह ॥

३—तंबधुमागतदृष्ट्वाधर्मपुत्रःसहानुजः । धृतराष्ट्रोयुयुत्सुश्चसूतःशारद्वतःपृथा ॥

४—गाधारीद्रौपदीब्रह्मन्सुभद्राचोत्तराकृपी । अन्याश्चजामयःपाडोर्ज्ञातयःससुताःस्त्रियः ॥

प्रत्युज्जग्मुःप्रहर्षेणप्राणंतन्वइवागत ॥

५—अभिसगम्यविधिवत्परिष्वगाभिवादनैः । मुमुचुःप्रेमबाष्पौघविरहौत्कठ्यकातराः ॥

६—राजातमर्हयाचक्रेकृतासनपरिग्रह । तंभुक्तवंतमासीनविश्रातसुखमासने ॥

प्रश्रयावनतोराजाप्राहतेषाचश्रृण्वता ॥

युधिष्ठिरउवाच—

७—अपिस्मरथनोयुष्मत्पक्षच्छायासमेधितान् । विपद्गणाद्विषाग्न्यादेर्मोचितायत्समातृकाः ॥

८—कयावृत्त्यावर्तितवश्चरद्भिःक्षितिमडलं । तीर्थानिक्षेत्रमुख्यानिसेवितानीहभूतले ॥

९—भवद्विधाभागवतास्तीर्थभूताःस्वयविभो । तीर्थीकुर्वंतितीर्थानिस्वांतस्थेनगदाभृता ॥

१०—अपिनःसुहृदस्तातबाधवाःकृष्णदेवता. । दृष्टाः श्रुतावायदवःस्वपुर्यांसुखमासते ॥

द्वारिकापुरी मे सुख से तो हैं, यह आपने देखा अथवा कहीं सुना है ? ॥ ११ ॥

इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर के पूछने पर विदुरजी ने जो देखा अथवा सुना था क्रमशः सब का वर्णन किया, केवल यदुकुल के विनाश का वर्णन नहीं किया ॥ १२ ॥ दयालु विदुर ने मनुष्यों के लिए दुःसह तथा अप्रिय स्वयंप्राप्त यदुकुल के विनाश का वर्णन धर्मराज से नहीं किया, क्योंकि इससे युधिष्ठिर आदि को बड़ा दुःख होता । उनका वह दुःख विदुरजी देख नहीं सकते थे ॥ १३ ॥ अनंतर अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र को कल्याणकारी उपदेश देते हुए तथा सबलोगो के मन में प्रीति उपजाते हुए, देवता के समान सत्कार पाते हुए विदुरजी ने कुछ समय तक सुखपूर्वक वहाँ निवास किया ॥ १४ ॥ शाप के कारण यमराज ने सौ वर्षो तक (विदुर के रूप में) शूद्रयोनि धारण की थी और इतने समय तक अर्थात् जबतक यमराज शूद्रयोनि मे रहे, तबतक अर्यमा ने पापियों को यथोचित शिक्षा देने के लिए दंड धारण किया था ॥ १५ ॥ जिन्हें राज्य मिल चुका था, ऐसे राजा युधिष्ठिर लोकपालों के समान कांतिवाले अपने भाइयो के सहित अपने वंशधर पौत्र परीक्षित को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥ इस प्रकार गृह-कार्यो में आसक्त असावधान पांडवों का अत्यंत दुस्तर समय अनायास ही बीत गया ॥ १७ ॥ इसे जानकर विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा—राजन् ! आए हुए को देखो और शीघ्र ही घर से निकल चलो ॥ १८ ॥ जिसके रोकने का यहाँ अथवा और कहीं भी कोई उपाय नहीं है, वही काल हमलोगों के लिए आ गया है ॥ १९ ॥ इस काल के द्वारा मनुष्य अपने परम प्रिय प्राणों से भी अलग हो जाता है फिर अन्य धन आदि की तो बात ही क्या है ? ॥ २० ॥ आपके पिता, भाई, मित्र और पुत्र सभी संग्राम में मारे गए, आपकी अवस्था भी बीत गई है, शरीर बुढ़ापे से जीर्ण हो गया है, फिर भी आप दूसरों के घर

११—इत्युक्तोधर्मराजेनसर्वंतत्समवर्णयत् । यथाऽनुभूतक्रमशोविनायदुकुलक्षयं ॥

१२—नन्वप्रियंदुर्विषहंनृणांस्वयमुपस्थितं । नावेदयत्सकरुणोदुःखितान्द्रष्टुमक्षमः ॥

१३—कञ्चित्कालमथावात्सीत्सत्कृतोदेववत्सुखं । भ्रातुर्ज्येष्ठस्यश्रेयस्कृत्सर्वेषांप्रीतिमावहन् ॥

१४—अबिभ्रदर्यमादंडयथावदघकारिषु । यावद्दधारशूद्रत्वंशापाद्वर्षशतंयमः ॥

१५—युधिष्ठिरोलब्धराज्योदृष्ट्वापौत्रंकुलंधरं । भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्मुमुदेपरयाश्रिया ॥

१६—एवंगृहेषुसक्तानांप्रमत्तानांतदीहया । अत्यक्रामदविज्ञातःकालःपरमदुस्तरः ॥

१७—विदुरस्तदभिप्रेत्यधृतराष्ट्रमभाषत । राजन्निर्गम्यतांशीघ्रंपश्येदंभयमागतं ॥

१८—प्रतिक्रियानयस्येहकुतश्चित्कर्हिचित्प्रभो । सएषभगवान्कालःसर्वेषांनःसमागतः ॥

१९—येनचैवाभिपन्नोयंप्राणैःप्रियतमैरपि । जनःसद्योवियुज्येतकिमुतान्यैर्धनादिभिः ॥

२०—पितृभ्रातृसुहृत्पुत्राहतास्तेविगतंवयः । आत्माचजरयाग्रस्तःपरगेहमुपाससे ॥

२१—अहोमहीयसीजंतोर्जीविताशायथाभवान् । भीमेनावर्जितंपिंडमादत्तेगृहपालवत् ॥

मे पड़े हुए हैं ॥ २१ ॥ जीवन की आशा विलक्षण होती है, जैसे आप उस भीम का दिया हुआ अन्न घर के पालतू कुत्ते की तरह खाते हैं, जिसने आपके पुत्रों का संहार किया है ॥ २० ॥ जिन पांडु के पुत्रों को आपने अग्नि को सौंपा तथा जिनको विष दिया, आपके पुत्रों ने जिनकी स्त्रियों का अपमान किया, जिनका धन और भूमि छीन ली, उन्हींके दिए हुए अन्न से पलनेवाले शरीर का क्या प्रयोजन है ? अर्थात् कोई प्रयोजन नहीं है ॥२३॥ आप इस प्रकार की दीनता भोग रहे हैं, फिर भी आपके मन मे जीवन का मोह बना हुआ है । आपका शरीर वृद्धावस्था के कारण पुराने कपड़े की तरह जीर्ण होता जाता है, अतः आप धीर हों ॥ २४ ॥ जिसके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ हो, जो सासारिक बंधनों से छूट गया हो, तथा जिसके अंत करण की गति जानी न जाती हो, ऐसा मनुष्य यदि स्वार्थ रहित होकर इस शरीर का त्याग करे तो वह धीर कहा जाता है ॥ २५ ॥ जिसके मन मे स्वयं अथवा किसी दूसरे के उपदेश से वैराग्य उत्पन्न हुआ हो, ऐसा आत्मज्ञानी यदि हृदय मे श्रीहरि को रखकर घर से निकल जाय, तो वही सब पुरुषों मे उत्तम कहा जाता है ॥ २६ ॥ अब आप आत्मीयजनों को अपने जाने की सूचना दिए बिना ही उत्तर दिशा की ओर चलिए, क्योंकि इसके आगे पुरुषों के गुणों को नष्ट करनेवाला भयंकर काल आनेवाला है ॥ २७ ॥

इस प्रकार छोटे भाई विदुर के समझाने पर आजमीढ के वंशधर प्रज्ञाचक्षु (अन्धे) राजा धृतराष्ट्र अपने दृढ़ स्नेहपाश को काटकर अपने भाई के बताए मार्ग से निकल गए ॥ २८ ॥ राजा सुबल की पुत्री सती गांधारी ने भी हिमालय की ओर जाते हुए अपने पति का अनुगमन किया, जिस प्रकार युद्ध का प्रहार दुःखदायी होने पर भी शूरवीरों को आनन्द देता है, उसी

२२—अग्निर्निसृष्टो दत्तश्च गरो दाराश्च दूषिताः । हृतं क्षेत्रं धनं येषां तद्दत्तैरसुभिः कियत् ॥

२३—तस्यापि तव देहोऽयं कृपणस्य जिजीविषोः । परैत्यनिच्छतो जीर्णो जरया वाससी इव ॥

२४ गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबन्धनः । अविज्ञातगतिर्जह्यात् स वै धीर उदाहृतः ॥

२५—यः स्वकात्परतो वेह जातनिर्वेद आत्मवान् । हृदि कृत्वा हरिं गेहात्प्रव्रजेत्स नरोत्तमः ॥

२६—अथोदीचीं दिशं यातु स्वैरज्ञातगतिर्भवान् । इतोऽर्वाक्प्रायशः कालः पुंसां गुणविकर्षणः ॥

२७—एवं राजा विदुरेणानुजेन प्रज्ञाचक्षुर्बोधित आजमीढः ।

छित्त्वा स्वेषु स्नेहपाशान्द्रढिम्नो निश्चक्राम भ्रातृसंदर्शिताध्वा ॥

२८—पतिं प्रयान्तं सुबलस्य पुत्री पतिव्रता चानुजगाम साध्वी ।

हिमालयं न्यस्तदण्डप्रहर्षं मनस्विनामिव सत्सम्प्रहारः ॥

२९—अजातशत्रुः कृतमैत्रो हुताग्निर्विप्रान्नत्वा तिलगोभूमिरुक्मैः ।

गृहं प्रविष्टो गुरुवन्दनाय न चापश्यत्पितरौ सौबलीं च ॥

प्रकार अत्यन्त दु.खदायी होने पर भी त्यागियों के लिए वन का मार्ग सुखकर ही होता है ॥ २९ ॥ अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर सध्या-वदन तथा अग्निहोत्र से निवृत्त होकर तिल, गौ, भूमि और सुवर्ण के द्वारा ब्राह्मणों को नमस्कार करके गुरुजनों की वंदना के लिए घर में गए। उन्होंने अपने चाचा विदुर, धृतराष्ट्र तथा चाची गांधारी को वहाँ नहीं देखा ॥ ३० ॥ राजा युधिष्ठिर ने दु.खी होकर वहाँ बैठे हुए संजय से पूछा—संजय ! नेत्रों से विहीन मेरे वृद्ध पिता धृतराष्ट्र कहाँ गए ? ॥ ३१ ॥ अपने पुत्रों के मारे जाने के कारण दुःखित माता गांधारी कहाँ गईं ? तथा मेरे प्रिय चाचा विदुर कहाँ गए ? मैंने उनके पुत्रों को मारा है, अत. मुझ मदमति में अपराध की आशका करते हुए दु.खी होकर वे कहीं गङ्गा में डूब तो नहीं गए ? ॥ ३२ ॥ पिता पांडु के मरने पर जिन्होंने बचपन में हमलोगों को अनेक दु.खों से बचाया, वे मेरे पितृव्य (चाचा) यहाँ से कहाँ गए ? ॥ ३३ ॥

सूत बोले—कृपा तथा स्नेह की विकलता से विरह के कारण खिन्न सजय पहले तो युधिष्ठिर को कुछ उत्तर न दे सके ॥ ३४ ॥ पश्चात् उन्होंने अपने को सँभाला। हाथों से आँसुओं को पोंछ कर अपने स्वामी के चरणों का स्मरण करते हुए उन्होंने राजा युधिष्ठिर से कहा ॥३५॥

सजय बोले—हे कुरुकुल को आनंद देनेवाले ! मैं आपके दोनों पितृव्यों तथा माता गांधारी के निश्चय को नहीं जानता। उन लोगों ने मुझे भी धोखा दिया ॥ ३६ ॥

इसी समय तुम्बुरु के साथ नारद वहाँ आए। युधिष्ठिर ने अपने भाइयों के साथ उठकर नारद को प्रणाम किया तथा उनका पूजन करके पूछा ॥ ३७ ॥

३०—तत्रसजयमासीनपप्रच्छोद्विग्नमानसः । गावल्गणेक्वनस्तातोवृद्धोहीनश्चनेत्रयो' ॥

३१—अम्बाचहतपुत्रार्तापितृव्यःक्वगत सुहृत् । अपिमय्यकृतप्रज्ञेहतबधु समार्यया ॥
आशसमान.शमलगगायाद्दुःखितोपतत् ॥

३२—पितर्युपरतेपाडौसर्वान्न सुहृद शिशून् । अरक्षताव्यसनत.पितृव्यौक्वगताविंत' ॥

सूतउवाच—

३३—कृपयास्नेहवैक्लव्यात्सूतोविरहकर्शित' । आत्मेश्वरमचक्षाणोनप्रत्याहातिपीडित' ॥

३४—विमृज्याश्रूणिपाणिभ्याविष्टभ्यात्मानमात्मना । अजातशत्रुप्रत्यूचेप्रभो.पादावनुस्मरन् ॥

सजयउवाच—

३५—नाहवेदव्यवसितपित्रोर्वः कुलनदन । गान्धार्यावामहाबाहोमुषितोऽस्मिमहात्मभिः ॥

३६—अथाजगामभगवान्नारद सहतुबुरुः । प्रत्युत्थायाभिवाद्याहसानुजोऽभ्यर्चयन्निव ॥

युधिष्ठिरउवाच—

३७—नाहवेदगतिंपित्रोर्भगवन्क्वगताविंत. । अम्बावाहतपुत्रार्ताक्वगताचतपस्विनी ॥
कर्णधारइवापारेभगवान्पारदर्शक. ॥

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! मेरे चाचा विदुर और धृतराष्ट्र कहाँ गए तथा पुत्र-शोक से व्याकुल तपस्विनी माता गांधारी कहाँ गईं ? यह मैं नहीं जानता। इस अपार शोक-सागर से हमें पार करनेवाले कर्णधार आप ही हैं ॥ ३८ ॥

अनंतर देवर्षि नारद युधिष्ठिर से बोले—राजन् ! तुम शोक मत करो, क्योंकि यह संपूर्ण जगत ईश्वर के वश में है ॥ ३९ ॥ लोकपालों सहित समस्त लोक जिस भगवान् को बलि देते हैं, वही समस्त प्राणियों को एकत्र और अलग करता है ॥ ४० ॥ जैसे नाक में नकेल देकर रस्सियों से बँधा हुआ बैल अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करता है, वैसे ही भगवान् की आज्ञारूपी रस्सी के द्वारा ब्राह्मणादि नामों से बँधा हुआ मनुष्य, भगवान् की आज्ञाओं का पालन करता है ॥ ४१ ॥ जिस प्रकार खेलनेवाले की इच्छा से खेल के साधनों का संयोग और वियोग होता है, उसी प्रकार ईश्वर की इच्छा से मनुष्यों का संयोग और वियोग होता है ॥ ४२ ॥ यदि आप प्राणियों को जीवरूप से नित्य तथा देहरूप से अनित्य अथवा दोनों नहीं मानते तो भी उनके लिए आपका शोक करना व्यर्थ है। शोक करने की वस्तु स्नेह है, जो सर्वथा अज्ञान से उत्पन्न है ॥ ४३ ॥ "वे दीन और अनाथ वनवासी मेरे बिना अपना निर्वाह कैसे करेंगे ?" अज्ञान से उत्पन्न इस प्रकार की अपनी व्याकुलता को आप छोड़ दीजिए ॥ ४४ ॥ पृथ्वी आदि पाँच भूतों से बना हुआ यह शरीर, काल-कर्म तथा गुणों के अधीन है। अजगर जिसको निगल रहा है, वह मनुष्य जिस प्रकार दूसरे की रक्षा नहीं कर सकता, उसी भाँति इसकी रक्षा भी दूसरे से नहीं हो सकती ॥ ४५ ॥ बिना हाथ वाले हाथवालों के, बिना पैरवाले चार पैरवालो के, तथा छोटे प्राणी बड़े प्राणियों के भोजन हैं, इस प्रकार सभी जीव जीवों के ही भोजन हैं, अर्थात मृत्यु का भय सर्वत्र है ॥ ४६ ॥ राजन् ! हाथ रहित और हाथवाले प्राणियो रूप यह जगत् अपने ही समान सबका द्रष्टा भगवत्स्वरूप ही है। वे भगवान्

३८—अथाबभाषेभगवान्नारदोमुनिसत्तमः । माकंचनशुचोराजन्यदीश्वरवशंजगत् ॥

३९ – लोकाःसपालायस्येमेवहन्तिबलिमीशितुः । ससंयुनक्तिभूतानिसएववियुनक्ति च ॥

४० – यथागावोनसिप्रोतास्तन्त्यांबद्धाःस्वदामभिः । वाक्तन्त्यांनामभिर्बद्धावहन्तिबलिमीशितुः ॥

४१ – यथाक्रीडोपस्कराणांसंयोगविगमाविह । इच्छयाक्रीडितुःस्यातांतथैवेशेच्छयानृणां ॥

४२ – यन्मन्यसेध्रुवंलोकमध्रुवंवानचोभयं । सर्वथानहिशोच्यास्तेस्नेहादन्यत्रमोहजात् ॥

४३ – तस्माज्जह्यङ्गवैक्लव्यमज्ञानकृतमात्मनः । कथंत्वनाथाःकृपणावर्त्तेरंस्तेचमांविना ॥

४४ – कालकर्मगुणाधीनोदेहोऽयंपाञ्चभौतिकः । कथमन्यांस्तुगोपायेत्सर्पग्रस्तोयथापरं ॥

४५ – अहस्तानिसहस्तानामपदानिचतुष्पदां । फल्गूनितत्रमहतांजीवोजीवस्यजीवनं ॥

४६ – तदिदंभगवान्राजन्नेकआत्मात्मनांस्वदृक् । अन्तरोऽनन्तरोभातिपश्यतंमाययोरुधा ॥

समस्त भोगों को भोगनेवालों की आत्मारूप एक ही हैं, फिर भी माया के द्वारा भोग भोगनेवाले और भोग के रूप में भिन्न-भिन्न जान पड़ते हैं, इसे आप देखिए ॥ ४७ ॥

महाराज ! वही भूतभावन भगवान् इस पृथ्वी पर असुरों के विनाश के लिये कालरूप से अवतीर्ण हुए हैं ॥ ४८ ॥ वे देवताओं का कार्य तो कर चुके, बचे-खुचे कार्यों की (यदुकुल के नाश की) प्रतीक्षा कर रहे हैं। जब तक श्रीकृष्ण पृथ्वी पर हैं, तब तक आप लोग भी उनकी लीलाओं को देखते रहें ॥ ४९ ॥ धृतराष्ट्र अपने भाई विदुर और अपनी स्त्री गान्धारी के साथ हिमालय के दक्षिण की ओर ऋषियों के आश्रम की ओर चले गए हैं ॥ ५० ॥ सप्त ऋषियों की प्रसन्नता के लिए जहाँ पर गंगाजी अपनी सात धाराओं से बहती हैं, जिसे सप्त-धारा कहते हैं, धृतराष्ट्र उस आश्रम में त्रिषवन नामक तीर्थ में स्नान करके विधिपूर्वक अग्निहोत्र करते हैं। सब प्रकार की अभिलाषाओं का उन्होंने त्याग कर दिया है। वे केवल जल पीकर रहते हैं ॥ ५१-५२ ॥ उन्होंने आसन, श्वास और छओ इन्द्रियों को जीतकर भगवान के ध्यान के द्वारा रज, सत्व और तम की मलीनता को दूर कर दिया है ॥ ५३ ॥ उन्होंने अहंकार एवं मन को विज्ञानात्मा में तथा विज्ञानात्मा को क्षेत्रज्ञ में और क्षेत्रज्ञ को साक्षात् आधारब्रह्म में विलीन कर दिया है, जैसे घट का आकाश अपनी उपाधि को छोड़कर महदाकाश में मिल जाता है ॥ ५४ ॥ उन्होंने माया के गुणों की वासना को नष्ट कर दिया है, इन्द्रियों तथा मन को रोक लिया है, सब प्रकार के आहारों का त्याग करके वे ठूँठ के समान निश्चल भाव से बैठे हैं ॥ ५५ ॥

राजन्, उन्होंने सम्पूर्ण कर्मों का परित्याग कर दिया है, आज से पाँचवें दिन वे अपने शरीर को छोड़ देंगे और वह शरीर योगाग्नि के द्वारा भस्म हो जाएगा, अतः आप किसी प्रकार

---

४७ – सोऽयमद्यमहाराजभगवान्भूतभावनः । कालरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभवायसुरद्विषा ॥

४८ – निष्पादितदेवकृत्यमवशेषंप्रतीक्षते । तावद्यूयमवेक्षध्वमभवेद्यावदिहेश्वरः ॥

४९ – धृतराष्ट्रःसहभ्रात्रागान्धार्याचस्वभार्यया । दक्षिणेनहिमवतऋषीणामाश्रमंगतः ॥

५० – स्रोतोभिःसप्तभिर्यावैस्वर्धुनीसप्तधाव्यधात् । सप्तानांप्रीतयेनानासप्तस्रोतःप्रचक्षते ॥

५१ – स्नात्वानुसवनंतस्मिन्हुत्वाचाग्नीन्यथाविधि । अब्भक्षउपशान्तात्माआस्तेविगतैषणः ॥

५२ – जितासनोजितश्वासःप्रत्याहृतषडिंद्रियः । हरिभावनयाध्वस्तरजःसत्त्वतमोमलः ॥

५३ – विज्ञानात्मनिसंयोज्यक्षेत्रज्ञेप्रविलाप्यतम् । ब्रह्मण्यात्मानमाधारेघटाम्बरमिवाम्बरे ॥

५४ – ध्वस्तमायागुणोदर्कोनिरुद्धकरणाशयः । निवर्तिताखिलाहारआस्तेस्थाणुरिवाचलः ॥
तस्यान्तरायोमैवाभूःसंन्यस्ताखिलकर्मणः ॥

५५ – सवाअद्यतनाद्राजन्परतःपंचमेऽहनि । कलेवरंहास्यतिस्वंतच्चभस्मीभविष्यति ॥

५६ – दह्यमानेऽग्निभिर्देहेपत्युःपत्नीसहोटजे । बहिःस्थितापतिंसाध्वीतमग्निमनुवेक्ष्यति ॥

की चिंता न करे ॥ ५६ ॥ झोपड़ी के साथ-साथ पति के शरीर को जलते देखकर बाहर बैठी हुई सती गांधारी भी उस अग्नि मे प्रवेश कर जाएँगी ॥ ५७ ॥ कुरुनन्दन ! इस आश्चर्य को देखकर हर्ष और शोक से युक्त विदुर तीर्थों का सेवन करने के लिए चले जावेंगे ॥ ५८ ॥ यह कहकर तुम्बुरु को लिए हुए नारदजी स्वर्ग लोक को चले गए। महाराज युधिष्ठिर ने भी नारदजी के वचनों को हृदय मे रखकर शोक त्याग दिया ॥ ५९ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पहले स्कंध का तेरहवाँ अध्याय समाप्त
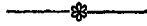
चौदहवाँ अध्याय

अशकुन देखकर युधिष्ठिर का अर्जुन से प्रश्न करना

सूत बोले—बन्धुओं को देखने की इच्छा से तथा पुण्यश्लोक भगवान् श्रीकृष्ण के कार्यों को जानने के लिये अर्जुन द्वारका गये थे ॥ १ ॥ कई महीनों के बाद भी जब अर्जुन नहीं लौटे, तब महराज युधिष्ठिर को अनेक प्रकार के अशकुन दिखलाई पड़े ॥ २ ॥ उन्होंने देखा कि काल की गति बड़ी भयानक हो गई है, ऋतुओं के धर्मों में भी महान उलट-फेर हो

५७—विदुरस्तुतदाश्चर्यंनिशम्यकुरुनंदन । हर्षशोकयुतस्तस्माद्ग तातीर्थनिषेवकः ॥

५८ – इत्युक्त्वाथारुहत्स्वर्गंनारदःसहतुंबुरुः । युधिष्ठिरोवचस्तस्यहृदिकृत्वाऽजहाच्छुचः ॥

इतिश्रीमागवतेमहापुराणेप्रथमस्कंधेत्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

सूतउवाच—

१ – सम्प्रस्थितेद्वारकायांजिष्णौबंधुदिदृक्षया । ज्ञातुंचपुण्यश्लोकस्यकृष्णस्यचविचेष्टितं ॥

२ – व्यतीताःकतिचिन्मासास्तदानायात्ततोऽर्जुनः । ददर्शघोररूपाणिनिमित्तानिकुरूद्वहः ॥

३ – कालस्यचगतिंरौद्रांविपर्यस्तर्तुधर्मिणः । पापीयसींनृणांवार्तांक्रोधलोभानृतात्मनां ॥

गए हैं, क्रोध, लोभ और असत्य के कारण सभी मनुष्यों की प्रवृत्ति पापमयी हो गई है ॥ ३ ॥ व्यवहार कपट का है, मित्रता शठता के साथ है, पिता, माता, मित्र, भाई, स्त्री, पुरुष-सभी में परस्पर कलह मचा हुआ है ॥ ४ ॥ मनुष्यों के लिये आए हुए इस भयंकर काल में राजा युधिष्ठिर इन अत्यंत दुष्ट अशुभ लक्षणों को तथा लोभादि अधार्मिक प्रकृति को देखकर अपने छोटे भाई भीमसेन से बोले ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर बोले—अपने बंधुओं को देखने तथा पुण्यश्लोक श्रीकृष्ण के कृत्यों को जानने के लिए मैंने अर्जुन को द्वारका भेजा ॥ ६ ॥ भीमसेन ! आज कई महीने बीत गए, परन्तु तुम्हारा छोटा भाई अर्जुन नहीं आया । क्या कारण है ? इसे मैं समझ भी नहीं सका ॥ ७ ॥ जिन भगवान के प्रताप से हमलोगों को संपत्ति मिली, राज्य मिला स्त्रियाँ मिलीं, हमलोग जीवित रह सके, कुलवान् हुये, संतानवान हुये, हमने शत्रुओं को पराजित किया और जिनके प्रताप से हमें अनेक देश मिले, वे भगवान् श्रीकृष्ण जिस समय क्रीडा करने का साधन-रूप मनुष्य-शरीर छोड़ देने वाले हैं, नारद का कहा हुआ वह समय आ गया क्या ? ॥ ८-९ ॥ हे नरव्याघ्र ! जो दूर से ही हमारी बुद्धि को चकरानेवाले भय की सूचना दे रहे हैं, उन दैविक, भौतिक तथा दैहिक उत्पातों को तुम देखो ॥ १० ॥ मेरे ऊरु, भुजा और नेत्र फड़क रहे हैं, हृदय काँप रहा है, जान पड़ता है कि ये मुझे शीघ्र ही दु ख देंगे ॥ ११ ॥ उदय होते सूर्य की ओर मुँह करके मुँह से आग उगलती हुई सियारिन बोली है और यह कुत्ता भी हम को लक्ष्य करके निडर की तरह भूँकता है ॥ १२ ॥ श्रेष्ठ प्राणी गौ आदि मुझे बाईं ओर छोड़ तथा अशुभ प्राणी गदहा आदि दाहिनी ओर छोड़ कर चलते हैं ।

नर-श्रेष्ठ ! सवारी के घोड़ों को मैं रोते हुए देख रहा हूँ ॥ १३ ॥ यह कबूतर, मृत्यु की

---

४ – जिह्मप्रायंव्यवहृतंशाठ्यमिश्रंचसौहृदम् । पितृमातृसुहृद्भ्रातृदम्पतीनांचकल्कनम् ॥

५ – निमित्तान्यत्यरिष्टानिकालेत्वनुगतेनृणाम् । लोभाद्यधर्मप्रकृतिंदृष्ट्वोवाचानुजंनृपः ॥

युधिष्ठिरउवाच—

६ – सम्प्रेषितोद्वारकायांजिष्णुर्बन्धुदिदृक्षया । ज्ञातुंचपुण्यश्लोकस्यकृष्णस्यचविचेष्टितम् ॥

७ – गताःसप्ताधुनामासाभीमसेनतवानुजः । नायातिकस्यवाहेतोर्नाहंवेदेदमञ्जसा ॥

८ – अपिदेवर्षिणादिष्टःसकालोऽयमुपस्थितः । यदात्मनोऽङ्गमाक्रीडंभगवानुत्सिसृक्षति ॥

९ – यस्मान्नःसम्पदोराज्यंदाराःप्राणाःकुलंप्रजाः । आसन्सपत्नविजयोलोकाश्चयदनुग्रहात् ॥

१० – पश्योत्पातान्नरव्याघ्रदिव्यान्भौमान्सदैहिकान् । दारुणाञ्शंसतोऽदूराद्भयंनोबुद्धिमोहनम् ॥

११ – ऊर्वक्षिबाहवोमह्यंस्फुरन्त्यङ्गपुनःपुनः । वेपथुश्चापिहृदयेआराद्दास्यन्तिविप्रियम् ॥

१२ – शिवैषोद्यन्तमादित्यमभिरौत्यनलानना । मामङ्गसारमेयोऽयमभिरौत्यभीरुवत् ॥

१३ – शस्ताःकुर्वन्तिमांसव्यंदक्षिणंपशवोऽपरे । वाहांश्चपुरुषव्याघ्रलक्षयेरुदतोमम ॥

सूचना देनेवाला उल्लू और काग मन को कंपायमान करते हुए अपने भयानक शब्दों में सर्व-नाश की सूचना दे रहे हैं ॥ १४ ॥ दिशा-मंडल धूसर हो गए हैं, पर्वतों के साथ पृथ्वी काँप रही है और मेघ-गर्जन के साथ-साथ वज्रपात भी हो रहा है ॥ १५ ॥ धूल से अँधेरा फैलाती हुई रूखी हवा वह रही है। चारों ओर वीभत्स की तरह मेघ खून बरसा रहे हैं ॥ १६ ॥ देखो, सूर्य की प्रभा कम हो गई है, ग्रह आपस में टकरा रहे हैं, भूतल और आकाश भूत-गणों से से व्याप्त हो जल रहा है ॥ १७ ॥ नदी, नद, सर तथा मनुष्यों के मन-सभी क्षुब्ध हो उठे हैं, घृत से आग नहीं जलती है, न जाने यह कारण क्या करेगा? ॥ १८ ॥ न बछड़े थन का दूध पीते हैं और न उनकी माताओं के थनों में दूध ही भरता है। गोठों में गाएँ रो रही हैं, उनकी आँखों में आँसू भरे हैं। साँड़ प्रसन्न नहीं होते ॥ १९ ॥ देवताओं की प्रतिमाओं में पसीना निकलता है, वे रोती हैं और हिलती हैं। ये देश, ये नगर, ये ग्राम, ये वाटिकाएँ, ये खानें (सुवर्ण आदि की खानें) और ये आश्रम श्रीहीन तथा आनंद रहित हो गए हैं। ये हमें किस अशकुन की सूचना देते हैं, यह जान नहीं पड़ता ॥ २० ॥ इन महा उत्पातों से जान पड़ता है कि लोकोत्तर शोभावाले भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों के बिना इस पृथ्वी का सौभाग्य निश्चय ही नष्ट हो गया है, अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण का शरीर इस पृथ्वी पर अब नहीं रहा ॥ २१ ॥

अशकुन देखने के कारण राजा युधिष्ठिर मन ही मन चिंता कर रहे थे, इसी समय द्वारका से लौटकर अर्जुन उनके सामने उपस्थित हुए ॥ २२ ॥ अर्जुन युधिष्ठिर के चरणों पर गिर पड़े। वे मुँह नीचा किए कमल के समान नेत्रों से आँसुओं की बूँदें टपका रहे थे। इससे पहले अर्जुन को किसी ने ऐसा दुखी नहीं देखा था ॥२३॥ अपने छोटे भाई को कांतिहीन देखकर

---

१४ – मृत्युदूतःकपोतोऽयमुलूकःकंपयन्मनः । प्रत्युलूकश्चकुह्वानैर्विश्वंवैशून्यमिच्छतः ॥

१५ – धूम्रादिशःपरिधयःकंपतेभूःसहाद्रिभिः । निर्घातश्चमहांस्तातसाकंचस्तनयित्नुभिः ॥

१६ – वायुर्वातिखरस्पर्शोरजसाविसृजंस्तमः । असृग्वर्षन्तिजलदाबीभत्समिवसर्वतः ॥

१७ – सूर्यंहतप्रभंपश्यग्रहमर्दंमिथोदिवि । ससंकुलैर्भूतगणैर्ज्वलितेइवरोदसी ॥

१८ – नद्योनदाश्चक्षुभिताःसरांसिचमनांसिच । नज्वलत्यग्निराज्येनकालोऽयंकिंविधास्यति ॥

१९—नपिबंतिस्तनंवत्सानदुह्यंतिचमातरः । रुदन्त्यश्रुमुखागावोनहृष्यन्त्यृषभाव्रजे ॥

२०—दैवतानिरुदंतीवस्विद्यंतिह्युच्चलंतिच । इमेजनपदाग्रामाःपुरोद्यानाकराश्रमाः ॥
भ्रष्टश्रियोनिरानंदाःकिमघंदर्शयंतिनः ॥

२१—मन्यएतैर्महोत्पातैर्नूनंभगवतःपदैः । अनन्यपुरुषश्रीभिर्हीनाभूर्हतसौभगा ॥

२२ – इतिचिंतयतस्तस्यदृष्टारिष्टेनचेतसा । राज्ञःप्रत्यागमद्ब्रह्मन्यदुपुर्याःकपिध्वजः ॥

२३ – तंपादयोर्निपतितमयथापूर्वमातुरं । अधोवदनमब्बिन्दून्सृजंतंनयनाब्जयोः ॥

उद्विग्नचित्त युधिष्ठिर ने नारद की बातों का स्मरण करते हुए सब लोगों के सम्मुख (अर्जुन से) पूछा ॥ २४ ॥

युधिष्ठिर बोले—हमारे आत्मीय मधु, भोज, दशार्ह, सात्वत, अंधक और वृष्णिवंश के लोग द्वारकापुरी में सुख से तो हैं ? ॥ २५ ॥ मेरे नाना शूरसेन कुशलपूर्वक तो हैं ? द्वारकापुरी में ढोल और नगाड़े बजते तो हैं ? ॥ २६ ॥ सातों सहेलियों, पुत्रियों और बहुओं के साथ मामी देवकी आदि कुशल से तो है ? ॥ २७ ॥ दुष्ट कंस के पिता उग्रसेन जीवित तो हैं ? उनके छोटे भाई अक्रूर, हृदीक और कृतवर्मा के साथ प्रसन्न तो हैं ? श्रीकृष्ण के भाई जयंत, गद और सारण सुख से तो हैं ? ॥ २८ ॥ शत्रुओं को जीतनेवाले महारथी अन्य यादव सकुशल तो हैं ? सात्वत के प्रभु श्रीकृष्ण और बलराम सुख से तो हैं ? ॥ २९ ॥ यादवों के महारथी प्रद्युम्न और संग्राम में तीव्र वेगवाले अनिरुद्ध प्रसन्न तो है ? ॥ ३० ॥ सुषेण, चारुदेष्ण, जाम्बवंती के पुत्र सांब और श्रीकृष्ण के अन्यपुत्र ऋषभादि अपने पुत्रों के साथ प्रसन्न तो हैं ? ॥ ३१ ॥ शौर के अनुचर श्रुतदेव और उद्धव आदि तथा सात्वतों के मुखिया सुनंद, नंद एवं शीर्षण्य, ये सब सकुशल तो हैं ? ॥ ३२ ॥ बलराम और श्रीकृष्ण की भुजाओं के आश्रय में पलनेवाले तथा हम लोगों से मित्रता करनेवाले सभी लोग प्रसन्न तो हैं ? वे क्या कभी हमलोगों का भी स्मरण करते हैं ? ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणों का हित करनेवाले भक्तवत्सल भगवान् गोविंद अपनी नगरी की सुधर्मा नामक सभा में अपने सुहृदों के साथ सुख से तो हैं ? ॥ ३४ ॥ जिनके भुजदंडों से रक्षित अपनी

२४—विलोक्योद्विग्नहृदयो विच्छायमनुजं नृपः । पृच्छति स्म सुहृन्मध्ये संस्मरन्नारदेरितम् ॥

युधिष्ठिर उवाच—

२५—कच्चिदानर्तपुर्यां नः स्वजनाः सुखमासते । मधुभोजदशार्हार्हसात्वतान्धकवृष्णयः ॥

२६—शूरो मातामहः कच्चित्स्वस्त्यास्ते वाऽथ मारिष । मातुलः सानुजः कच्चित्कुशल्यानकदुन्दुभिः ॥

२७—सप्त स्वसारस्तत्पत्न्यो मातुलान्यः सहात्मजाः । आसते सस्नुषाः क्षेमं देवकीप्रमुखाः स्वयम् ॥

२८—कच्चिद्राजाहुको जीवत्यसत्पुत्रोऽस्य चानुजः । हृदीकः ससुतोऽक्रूरो जयन्तगदसारणाः ॥

२९—आसते कुशलं कच्चिद्ये च शत्रुजिदादयः । कच्चिदास्ते सुखं रामो भगवान्सात्वतां प्रभुः ॥

३०—प्रद्युम्नः सर्ववृष्णीनां सुखमास्ते महारथः । गम्भीररयोऽनिरुद्धो वर्धते भगवानुत ॥

३१—सुषेणश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः । अन्ये च कार्ष्णिप्रवराः सपुत्रा ऋषभादयः ॥

३२—तथैवानुचराः शौरेः श्रुतदेवोद्धवादयः । सुनन्दनन्दशीर्षण्या ये चान्ये सात्वतर्षभाः ॥

३३—अपि स्वस्त्यासते सर्वे रामकृष्णभुजाश्रयाः । अपि स्मरन्ति कुशलमस्माकं बद्धसौहृदाः ॥

३४—भगवानपि गोविन्दो ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः । कच्चित्पुरे सुधर्मायां सुखमास्ते सुहृद्वृतः ॥

द्वारकापुरी में यादव लोग भगवान् के अनुचरों की तरह आनंदपूर्वक क्रीडा करते हैं, जिन भगवान् के चरणकमलों की सेवारूपी मुख्य कर्म के द्वारा सत्यभामा आदि (श्रीकृष्ण की) सोलह हजार स्त्रियाँ युद्ध में जीतकर लाए हुए इंद्राणी के भोगने योग्य वैभवों को भोगती हैं, तथा जिनके भुजदंड के प्रभाव से जीनेवाले यादव लोग, सब ओर से निशंक होकर बलपूर्वक भेंट कराई हुई और देवताओं के योग्य सुधर्मा सभा में पैरों से फिरा करते हैं और जिनके सहायक बलदेव जी हैं, वे आदिपुरुष भगवान् लोकों का कल्याण करने, लोकों की रक्षा करने तथा लोकों को उत्पन्न करने के लिए यदुकुलरूपी समुद्र में सुख से बैठते तो हैं ? ॥ ३५-३८ ॥

अर्जुन ! तुम तो निरोग थे, फिर इतने तेजहीन क्यों हो रहे हो ? वहाँ क्या तुम्हारा ठीक तरह से सम्मान नहीं हुआ ? अथवा बहुत दिनों तक रहने के कारण किसी ने निरादर किया है ? ॥ ३९ ॥ किसीने तुमको प्रेमशून्य कठोर शब्दों के द्वारा आघात तो नहीं पहुँचाया ? अथवा तुम्हींने जिसे कुछ देने को कहा था, उस याचक की आशा को भंग तो नहीं किया ? ॥४०॥ क्या तुमने शरण में आए हुए ब्राह्मण, बालक, गौ, वृद्ध, रोगी और स्त्री-इनकी रक्षा नहीं की ? ॥ ४१ ॥ क्या तुमने अगम्या स्त्री के साथ सहवास किया अथवा गमन करने योग्य स्त्री जो स्नानादि से रहित होने के कारण मलिन थी, उसके साथ सहवास किया ? मार्ग में उत्तम अथवा अधम पुरुषों से तुम पराजित तो नहीं हुए ? ॥ ४२ ॥ पहले भोजन कराने योग्य बूढ़ों और बालकों को छोड़कर तुमने अच्छे पदार्थों को खाया है क्या ? अथवा तुमने कोई बड़ा ही निंदित

३५—मंगलायचलोकानांक्षेमायचभवायच ।
आस्तेयदुकुलाम्भोधावाद्योऽनन्तसखःपुमान् ॥

३६—यत्पादशुश्रूषणमुख्यकर्मणासत्यादयोद्व्यष्टसहस्रयोषितः ।
निर्जित्यसंख्येत्रिदशांस्तदाशिषोहरन्तिवज्रायुधवल्लभोचिताः ॥

३७—यद्बाहुदण्डगुप्तायांस्वपुर्यांयदवोऽर्चिताः ।
क्रीडन्तिपरमानंदंमहापौरुषिकाइव ॥

३८—यद्बाहुदण्डाभ्युदयानुजीविनोयदुप्रवीराह्यकुतोभयामुहुः ।
अधिक्रमन्त्यङ्घ्रिभिराहृतांबलात्सभांसुधर्मांसुरसत्तमोचिताम् ॥

३९—कच्चित्तेऽनामयंतातभ्रष्टतेजाविभासिमे ।
अलब्धमानोऽवज्ञातःकिंवाताततिरोषितः ॥

४०—कच्चिन्नाभिहतोऽभावैःशब्दादिभिरमंगलैः । नदत्तमुक्तमर्थिभ्यआशयायत्प्रतिश्रुतम् ॥

४१—कच्चित्त्वंब्राह्मणंबालंगांवृद्धंरोगिणंस्त्रियम् । शरणोपसृतंसत्त्वंनात्याक्षीःशरणप्रदः ॥

४२—कच्चित्त्वंनागमोऽगम्यांगम्यांवाऽसत्कृतांस्त्रियम् । पराजितोवाथभवान्नोत्तमैर्नासमैःपथि ॥

कर्म किया है ? ॥ ४३ ॥ अथवा परम प्रिय अपने बंधु भगवान् श्रीकृष्ण के विना मैं शून्य हूँ, तुम ऐसा मानते हो ? क्योंकि ऐसा न होता तो तुम्हे ऐसी पीड़ा कदापि नही होती ! ॥ ४४ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पहले स्कंध का चौदहवाँ अध्याय समाप्त
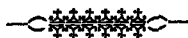
पंद्रहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का महाप्रस्थान सुनकर युधिष्ठिर का परीक्षित को राज्य देना और द्रौपदी तथा भाइयों के सहित हिमालय की ओर जाना

सूत बोले—इसप्रकार अनेक शकाएं उत्पन्न करनेवाला अर्जुन का स्वरूप देखकर, उनके भाई युधिष्ठिर ने कृष्ण के वियोग से दुर्बल हुए अर्जुन से अनेक प्रकार के प्रश्न किए ॥ १ ॥ शोक से अर्जुन का मुँह सूख गया, हृदय-कमल मुरझा गया, वे उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगे, युधिष्ठिर को कुछ उत्तर न दे सके ॥ २ ॥ अनतर बड़े कष्ट से उन्होंने शोक को रोका, हाथों से आँखों के आँसू पोंछे, श्रीकृष्ण के वियोग से उनका प्रेम और उत्कठा [अधिक बढ़ गई, वे अत्यत कातर हो गए ॥ ३ ॥ श्रीकृष्ण के सख्य, मित्रता, सौहार्द और

४३—अपिस्वित्पर्यभुक्थास्त्वसमोज्यान्वृद्धबालकान् । जुगुप्सितकर्मकिंचित्कृतवान्नयदक्षमम् ॥

४४ —कच्चित्प्रेष्ठतमेनाथहृदयेनात्मबधुना । शून्योऽस्मिरहितोनित्यमन्यसेतेऽन्यथानरुक् ॥

इतिश्रीभा० म० प्र० युधिष्ठिरवितर्कोनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

सूतउवाच—

१—एवकृष्णसख.कृष्णोभ्रात्राराजाविकल्पितः । नानाशकास्पदरूपकृष्णविश्लेषकर्शितः ॥

२—शोकेनशुष्यद्वदनहृत्सरोजोहतप्रभः । विभुतमेवानुध्यायन्नाशक्नोत्प्रतिभाषितुं ॥

३—कृच्छ्रेणसस्तभ्यशुच.पाणिनामृज्यनेत्रयो. । परोक्षेणसमुन्नद्धप्रणयौत्कठ्यकातर' ॥

सारथीपन आदि की याद आने से उनका गला भर आया, वे गद्गद कंठ से अपने बड़े भाई युधिष्ठिर से कहने लगे ॥ ४ ॥

अर्जुन बोले—महाराज! बंधुरूपी भगवान् श्रीकृष्ण ने हमको ठग लिया। इसीसे देवताओं को भी चकित करनेवाला मेरा तेज नष्ट हो गया है ॥ ५ ॥ जिनके क्षणमात्र के वियोग से यह लोक भयङ्कर बन गया है, जैसे प्राण के बिना शरीर मृतक अर्थात् लोथ कहलाता है ॥ ६ ॥ जिनकी कृपा से राजा द्रुपद के यहाँ स्वयवर मे आये हुए दुरभिमानी एवं कामाध राजाओं का तेज मैंने नष्ट किया; धनुष के द्वारा घूमती हुई मछली का वेध किया तथा द्रौपदी को प्राप्त किया ॥ ७ ॥ जिनकी सहायता से मैंने खाडववन अग्नि मे जलाया, जिनके बल से मैंने देवताओं के सहित इन्द्र को जीता, मय दानव की बनाई हुई विचित्र कारीगरी से युक्त राजसभा हमे मिली और राजसूययज्ञ के लिये सभी दिशाओं के राजाओं से हमने कर वसूल किया ॥ ८ ॥ जिनके प्रभाव से हजारो हाथियों के समान बली आपके अनुज आर्य भीम ने, जिसके पैरों पर राजालोग मस्तक झुकाते है, उस जरासध को जीतकर उन राजाओं को छुड़ाया, जिन्हे महाभैरव का यज्ञ करने के लिये जरासध ने बॉध रखा था तथा (छूटे हुए) जो राजा इस उपकार के बदले मे आपके राजसूय यज्ञ मे सामग्रियाँ लेकर आये थे ॥ ९ ॥ राजसूययज्ञ के निमित्त किये गये श्रेष्ठ अभिषेक के द्वारा अत्यन्त सराहनीय तथा सुदर द्रौपदी के केशों को जब सभा मे धूर्त दुःशासन आदि ने उखाड़ा तथा खींचा था, उस समय (द्रौपदी के द्वारा) स्मरण किये जाने से ही जो भगवान् पधारे थे और ऑसुओं से भीगे हुए मुखवाली द्रौपदी उनके चरणों पर गिरी थी, इसलिये जिन्होंने शत्रुओं की स्त्रियों को केशरहित विधवा बना दिया

४—सख्यमैत्रींसौहृदचसारथ्यादिषुसस्मरन् । नृपमग्रजमित्याहबाष्पगद्गदयागिरा ॥

अर्जुनउवाच—

५—वचितोऽहमहाराजहरिणाबंधुरूपिणा । येनमेऽपहृततेजोदेवविस्मापनमहत् ॥

६—यस्यक्षणवियोगेनलोकोह्यप्रियदर्शनः । उक्थेनरहितोह्येषमृतकःप्रोच्यतेयथा ॥

७—यत्सश्रयाद्द्रुपदगेहमुपागतानाराज्ञास्वयवरमुखेस्मरदुर्मदानाम् ।
तेजोहृतखलुमयाऽभिहतश्चमत्स्यःसज्जीकृतेनधनुषाऽधिगताचकृष्णा ॥

८—यत्सन्निधावहमुखाडवमग्नयेदामिद्रंचसामरगणतरसाविजित्य ।
लब्धासभामयकृताद्भुतशिल्पमायादिग्भ्योऽहरन्नृपतयोबलिमध्वरेते ॥

९—यत्तेजसानृपशिरोऽघ्रिमहन्मखार्थेआर्योऽनुजस्तवगजायुतसत्त्ववीर्यः ।
तेनाहृताःप्रमथनाथमखायभूपायन्मोचितास्तदनयन्बलिमध्वरेते ॥

१०—पत्न्यास्तवाधिमखक्लृप्तमहाभिषेकश्लाघिष्ठचारुकबरंकितवैःसभायाम् ।
स्पृष्टंविकीर्यपदयोःपतिताश्रुमुख्यायस्तत्स्त्रियोऽकृतहतेशविमुक्तकेशाः ॥

था ॥ १० ॥ दुर्योधन के द्वारा एक हजार शिष्यो के सहित भेजे हुए तथा उन शिष्यों की पक्ति मे प्रथम बैठकर भोजन करनेवाले दुर्वासा के द्वारा उत्पन्न हुए कठिन दु ख से अर्थात् उनके शाप से, वन मे पधारकर तथा बचे हुए शाक को खाकर जिन्होंने हमारी रक्षा की थी, जिसके खाने से नदी में स्नान करते हुए दुर्वासा और उनके शिष्यों के सहित समस्त त्रैलोक्य तृप्त हो गया था ॥ ११ ॥ जिनके तेज से सग्राम में भगवान् शिव ने पार्वती के सहित विस्मित होकर मुझे अपना पाशुपत अस्त्र दिया था और अन्य लोकपालों ने भी अपना-अपना अस्त्र दिया था तथा इसी शरीर से मुझे स्वर्ग में आधा इन्द्रासन प्राप्त हुआ था ॥ १२ ॥ उस स्वर्ग में विहार करते हुए गांडीव धनुप के चिह्नवाले तथा जिन भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा बलवान् बनाये गये मेरे भुजदंडों की शरण, दैत्यों का नाश करने के लिये देवताओं के सहित इन्द्र आए थे, महाराज ! उन समर्थ पुरुप भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा मैं ठगा गया हूँ ॥ १३ ॥ जिनकी सहायता से मैं अकेला ही भीष्म आदि ग्राहों को परास्त करके कौरवों की सेनारूपी अपारसमुद्र को रथ के द्वारा पार कर गया, मैंने जिनसे बहुत-सा धन छीन लिया तथा जिनके सिर की रत्नजटित बहुमूल्य पगड़ियाँ उतार लीं ॥१४॥ श्रेष्ठ राजाओं के रथमडलो से शोभित भीष्म, कर्ण, द्रोण और शल्य आदि की सेनाओं मे जो भगवान् श्रीकृष्ण मेरे सारथि बनकर आगे चलनेवाले हुए थे तथा जो अपनी दृष्टि-मात्र से ही शत्रुओं की आयु, मन, बल और शस्त्र-कुशलता हरण कर लेते थे ॥ १५ ॥ जिन भगवान् ने मुझे अपनी भुजाओं मे रखा था और इसी कारण द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण, अश्वत्थामा, सुशर्मा, शल्य, जयद्रथ, तथा बाह्लीक आदि के मुझपर छोड़े हुए अमोघ अस्त्र वैसे ही नि'फल हुए, जैसे प्रह्लाद पर हिरण्यकशिपु के हुए थे, उन भगवान के द्वारा मैं ठगा गया हूँ

११—योनोजुगोपवनमेत्यदुरतकृच्छ्राद्दुर्वाससोऽरिविहितादयुताग्रभुग्य. ॥
शाकान्नशिष्टमुपयुज्ययतस्त्रिलोकींतृप्ताममस्तसलिलेविनिमग्नसघ: ।

१२—यत्तेजसाथभगवान्युधिशूलपाणिर्विस्मापितः सगिरिजोऽस्त्रमदान्निजमे ॥
अन्येपिचाहममुनैवकलेवरेणप्राप्तोमहेंद्रभवनेमहदासनार्धम् ॥

१३—तत्रैवमेविहरतोभुजदडयुग्मंगाडीवलक्षणमरातिवधायदेवाः ।
सेंद्रा श्रितायदनुभावितमाजमीढतेनाहमद्यमुषित.पुरुषेणभूम्ना ॥

१४—यद्बांधव कुरुबलाब्धिमनंतपारमेकोरथेनततरेऽहमतीर्यसत्वम् ।
प्रत्याहृत बहुधनचमयापरेषांतेजस्पद मणिमयचहृतशिरोभ्यः ॥

१५—योभीष्मकर्णगुरुशल्यचमूष्वदभ्रराजन्यवर्यरथमडलमडितासु ।
अग्रेचरोममविभोरथयूथपानामायुर्मनांसिचदृशासहओजआच्र्छत् ॥

१६—यद्दो.षुमाप्रणिदिवगुरुभीष्मकर्णद्रौणित्रिगर्तशलसैधवबाल्हिकाद्यै' ।
अस्त्राण्यमोघमहिमानिनिरूपितानिनोपस्पृशुर्नृहरिदासमिवासुराणि ॥

॥ १६ ॥ हाय, मैंने अपनी कुबुद्धि से उस आत्माराम जगदीश्वर को अपना सारथि बनाया, जिसके चरणों की सेवा सिद्धलोग मुक्ति पाने के लिये किया करते है। जब मेरे रथ के घोड़े थक गये थे, मै पृथ्वी पर खड़ा था, तब उन्हींकी माया से महारथी शत्रु मुझ पर शस्त्र न चला सके थे ॥ १७ ॥

राजन्, गंभीर, सुंदर तथा हास्यपूर्वक कहे गये भगवान् के परिहास के वाक्यों तथा "हे पार्थ! हे अर्जुन! हे कुरुनदन! हे सखा" आदि मधुर तथा मनोहर वचनों का जब मैं स्मरण करता हूँ, तो मेरा हृदय व्याकुल हो उठता है ॥ १८ ॥ शय्या, आसन, भ्रमण बातचीत तथा भोजन-आदि में साथ-साथ प्रवृत्ति होने के कारण कभी उसमे विपर्यय होने पर मै 'हे मित्र! तुममें समान-भाव तो बहुत है' कहकर उनका परिहास करता था, मेरे उन अपराधों को वे अपनी महानता से सहन कर लेते थे, जैसे मित्र अपने मित्र के तथा पिता अपने पुत्र के अपराधों को सहन करता है ॥ १९ ॥ राजन्! उस अपने प्रिय सखा से रहित हो जाने के कारण मेरा हृदय शून्य हो गया है। राजन्! मैं भगवान् श्रीकृष्ण की सोलह हजार स्त्रियों की रक्षा करता हुआ आ रहा था, मार्ग मे दुष्ट ग्वालों ने मुझे अबला के समान पराजित कर दिया ॥ २० ॥ वही धनुष है, वे ही बाण हैं, वही रथ है, वे ही घोड़े है और वही रथी मैं हूँ जिसे राजा लोग नमन करते हैं, किंतु श्रीकृष्ण के वियोग से ये सभी निष्फल हो गये, जिस प्रकार राख मे किया हुआ हवन, वंचक से मिला धन और ऊसर में बोया हुआ बीज निष्फल होता है ॥ २१ ॥

राजन्, द्वारकापुरी के हमारे जिन सुहृदों की कुशल आपने पूछी है, उनमें केवल चार ही पाँच जीवित है, शेष सभी वारुणी (मदिरा) पीकर इतने अचेत हुये कि एक दूसरे को पहचान भी नहीं सके। ब्राह्मण के शाप से वे इतने मूढ हो गए कि आपस मे ही घूंसेबाजी करके

१७—यौत्येवृतःकुमतिनात्मदईश्वरोमेयत्पादपद्ममभवायभजतिभव्याः ॥
माश्रान्तवाहमरथोरथिनोभुविष्ठंनप्राहरन्यदनुभावनिरस्तचित्ताः ॥

१८—नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानिहेपार्थहेऽर्जुनसखेकुरुनन्दनेति।
संजल्पितानिनरदेवहृदिस्पृशानिस्मर्तुर्लुठन्तिहृदयममममाधवस्य ॥

१९—शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादिष्वैक्याद्वयस्यऋतवानितिविप्रलब्धः।
सख्युःसखेवपितृवत्तनयस्यसर्वंसेहेमहान्महितयाकुमतेरघंमे ॥

२०—सोऽहन्नृपेन्द्ररहितःपुरुषोत्तमेनसख्याप्रियेणसुहृदाहृदयेनशून्यः।
अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमंगरक्षन्गोपैरसद्भिरबलेवविनिर्जितोऽस्मि ॥

२१—तद्वैधनुस्तइषवःसरथोहयास्तेसोऽहंरथीनृपतयोयतआनमन्ति।
सर्वंक्षणेनतदभूदसदीशरिक्तंभस्मन्हुतंकुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम् ॥

२२—राजंस्त्वयाऽभिपृष्टानांसुहृदांनःसुहृत्पुरे। विप्रशापविमूढानांनिघ्नतांमुष्टिभिर्मिथः ॥

२३—वारुणींमदिरांपीत्वामदोन्मथितचेतसाम्। अजानतामिवान्योन्यंचतुःपञ्चावशेषिताः ॥

लड़ मरे ॥ २२-२३ ॥ यह समस्त कार्य प्राय: ईश्वर के ही किए हुए है, क्योंकि वे ही प्राणि-मात्र का परस्पर पालन और नाश करते है ॥ २४ ॥ जिस प्रकार जल मे रहनेवाले बड़े-बड़े जीव-जंतु छोटे प्राणियों का नाश करते है, जिस प्रकार बलवान् दुर्बल की हत्या करता है तथा जिस प्रकार बलवान् और बड़े आपस मे एक-दूसरे का भक्षण करते हैं ॥ २५ ॥ उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने बड़े और बलवान् यादवों को समान बलवाले यादवों से लड़ाकर एक-दूसरे का नाश कराया और पृथ्वी का भार उतारा ॥ २६ ॥ देश-काल के अनुकूल अर्थवाले और अंत:करण के ताप को नष्ट करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण के वचनों का जब मैं स्मरण करता हूँ तो वे मेरे चित्त को हर लेते है ॥ २७ ॥

इस प्रकार प्रगाढ प्रेम से भगवान् के शरीर का चिंतन करते हुए अर्जुन की बुद्धि शांत तथा निर्मल हो गई ॥ २८ ॥ इस प्रकार भगवान् के चरणों के ध्यान से तीव्र हुई भक्ति के द्वारा अर्जुन की बुद्धि के समस्त कामादि दोष नष्ट हो गए ॥ २९ ॥ और भगवान् ने महा-भारत के युद्ध के समय अर्जुन को गीता का जो ज्ञान दिया था तथा जो काल, कर्म और लौकिक व्यापारों में आसक्ति के कारण विस्मृत हो गया था, उसे अर्जुन ने पुन: प्राप्त किया ॥ ३० ॥ ब्रह्मज्ञान होने के कारण उनका शोक नष्ट हो गया, उनकी भेद-बुद्धि जाती रही। द्वैत की प्रतीति ही जन्म-मरण का कारण है, अत: महावाक्य के द्वारा अपरोक्ष ज्ञान से द्वैत बुद्धि का नाश हो जाने पर, जिस प्रकार मनुष्य अविद्या के कार्य शरीरादि को मिथ्या जानकर, जन्म-मरण से रहित हो जाता है, उसी प्रकार अर्जुन भी हो गए, अर्थात् अज्ञान मिटने के कारण वे निर्गुण हो गए, और निर्गुण होने के कारण स्थूल शरीर का अभिमान छोड़कर वे मुक्त हो गए। इसी प्रकार यह जानकर कि भगवान् अपने धाम को पधार गए और यदुकुल का नाश हो गया, स्थिर चित्तवाले राजा युधिष्ठिर ने भी स्वर्ग का रास्ता लेने का निश्चय किया ॥ ३१-

२४—प्रायेणैतद्भगवतईश्वरस्यविचेष्टितं । मिथोनिघ्नंतिभूतानिभावयन्तिचयन्मिथ: ॥

२५ – जलौकसांजलेयद्वन्महांतोऽदत्यणीयस: । दुर्बलान्बलिनोराजन्महांतोबलिनोमिथ: ॥

२६ – एवंबलिष्ठैर्यदुभिर्महद्भिरितरान्विभु । यदून्यदुभिरन्योन्यंभूभारान्संजहारह ॥

२७ – देशकालार्थयुक्तानिहृत्तापोपशमानिच । हरंतिस्मरतश्चित्तंगोविंदाभिहितानिमे ॥

२८ – एवंचिंतयतोजिष्णो: कृष्णपादसरोरुहम् । सौहार्देनातिगाढेनशांतासीद्विमलामति: ॥

२९ – वासुदेवांघ्र्यनुध्यानपरिबृंहितरंहसा । भक्त्यानिर्मथिताशेषकषायधिषणोऽर्जुन: ॥

३० – गीतंभगवताज्ञानंयत्तत्संग्राममूर्द्धनि । कालकर्मतमोरुद्धंपुनरध्यगमत्प्रभु: ॥

३१ – विशोकोब्रह्मसंपत्यासंछिन्नद्वैतसंशय: लीनप्रकृतिनैर्गुण्यादलिंगत्वादसंभव: ॥

३२ – निशम्यभगवन्मार्गंसंस्थांयदुकुलस्यच । स्व:पथायमतिंचक्रेनिभृतात्मायुधिष्ठिर: ॥

३२ ॥ कुन्ती ने भी अर्जुन के मुख से यदुकुल का नाश और भगवान् की उस गति (शरीर-त्याग) को सुनकर दृढ़ भक्ति से अधोक्षज भगनान् में चित्त लगाकर जन्म-मरण से मुक्ति पाई ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार मनुष्य काँटा निकालने के लिये, लिए हुए काँटे को, उस काँटे के निकल जाने पर, फेक देता है, उसी प्रकार भगवान् ने जिस शरीर के द्वारा पृथ्वी के भाररूप शरीरों का नाश किया था, उसका भी त्याग कर दिया अर्थात् अपने शरीर का भी त्याग कर दिया ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार नट अनेक प्रकार के रूप धारण करता और उन रूपों का त्याग कर देता है, उसी प्रकार भगवान् भी मत्स्य आदि के भिन्न-भिन्न रूप धारण करते और उनका त्याग कर देते हैं, उसी प्रकार उन्होंने जिस शरीर से पृथ्वी का भार उतारा, उसका भी त्याग कर दिया ॥ ३५ ॥ जिनकी सुंदर कथा सुनने योग्य है, उन भगवान् श्रीकृष्ण ने जिस दिन इस लोक का त्याग किया, उसी दिन से विवेकहीन मनुष्यों को अधर्म मे प्रवृत्त करानेवाले कलियुग ने प्रवेश किया ॥ ३६ ॥

बुद्धिमान् युधिष्ठिर ने जब देखा कि लोभ, असत्य, कपट और हिंसा आदि अधर्म की सेना के सहित कलियुग नगरों, देशों और घरों मे फैलता जा रहा है, तब उन्होंने स्वर्ग को जाने की तैयारी की ॥ ३७ ॥ स्वतंत्र राजा युधिष्ठिर ने विनयी और गुणो मे अपने ही समान अपने ही समान अपने पौत्र परीक्षित का, उन्हे समुद्रपर्यंत पृथ्वी का स्वामी बनाने के लिए, हस्तिना-पुर में अभिषेक किया अर्थात् उनको राज्य सौंप दिया ॥ ३८ ॥ उसी प्रकार मथुरा मे उन्होंने अनिरुद्ध के पुत्र वज्र को सूरसेन देश का स्वामी बनाया, अनंतर समर्थ युधिष्ठिर ने प्राजापत्य यज्ञ करके गार्हपत्य आदि अग्नियों का अपने मे सन्निवेश किया ॥ ३९ ॥ उत्तरीय (पिछौटी) और कड़े आदि समस्त आभूषणों का त्याग करके तथा समस्त बंधनों से रहित होकर वे

३३.– पृथाप्यनुश्रुत्यधनंजयोदितनाशंयदूनाभगवद्गतिंचता ।
एकांतभक्त्याभगवत्यधोक्षजेनिवेशितात्मोपररामसह्रुते. ॥

३४ – ययाऽहरद्भुवोभारंतांतनुविजहावजः । कटकंकंटकेनेवद्वयचापीशितुःसम ॥

३५ – यथामत्स्यादिरूपाणिधत्तेजह्याद्ययानटः । भूभारःक्षपितोयेनजहौतच्चकलेवर ॥

३६ – यदामुकुंदोभगवानिमामहींजहौस्वतन्वाश्रवणीयसत्कथः ।
तदाहरेवाप्रतिबुद्धचेतसामधर्महेतुःकलिरन्ववर्त्तत ॥

३७—युधिष्ठिरस्तत्परिसर्पणबुधःपुरेचराष्ट्रेचगृहेतदात्मनि ।
विभाव्यलोभानृतजिह्महिंसनाद्यधर्मचक्रंगमनायपर्यधात् ॥

३८—स्वराट्पौत्रविनयिनमात्मनःसुसमगुणैः । तोयनीव्याःपतिंभूमेरभ्यषिंचद्गजाह्वये ॥

३९—मथुरायांतथावज्रं शूरसेनपतिंततः । प्राजापत्यांनिरूप्येष्टिमग्नीनपिबदीश्वरः ॥

ममत्वहीन तथा निरहंकार हो गए ॥ ४० ॥ उन्होने इन्द्रियों को मन मे, मनको प्राण में और प्राण को अपान से लय किया, क्रिया के सहित अपान को मृत्यु मे लय किया और मृत्यु को पंच महाभूतों में लय कर दिया ॥ ४१ ॥ पच महाभूतो को त्रिगुणो मे और त्रिगुणों को एक अविद्या में लय किया, समस्त आरोपो के मूल अविद्या को जीव मे लय किया और जीव को ब्रह्मचैतन्य मे लय कर दिया ॥ ४२ ॥ अनतर युधिष्ठिर ने चीर वस्त्र पहन लिए, भोजन का त्याग कर दिया, बोलना छोड दिया, बालों को बिखरा दिया और (इस प्रकार) उन्होंने अपने रूप को मूर्ख, पागल तथा पिशाच की तरह बना लिया ॥ ४३ ॥ किसीकी प्रतीक्षा किए बिना, बहरे की तरह किसी की बात को न सुनते हुए, मन ही मन ईश्वर का ध्यान करते हुए, वे उत्तर दिशा की ओर चले गए, जिस ओर महात्मा लोग पहले जा चुके थे और जिधर जाकर मनुष्य वापस नहीं लौटता ॥ ४४ ॥ पृथ्वी की प्रजा को अधर्म-मित्र काल ने स्पर्श कर लिया है, ऐसा जानकर (युधिष्ठिर के) स्थिर बुद्धिवाले भाई भी उनके पीछे-पीछे चले ॥ ४५ ॥ जिन्होंने विधि-पूर्वक धर्म आदि समस्त पुरुषार्थो का अर्जन किया था, ऐसे पाडवो ने भगवान् के चरणों को सनातनशरण जानकर उनका ध्यान किया ॥ ४६ ॥ इस ध्यान के द्वारा जिनकी भक्ति बढ़ गई थी, बुद्धि शुद्ध हो गई थी और जिनके अतःकरण रजोगुण से रहित हो गये थे, उन सभी पांडवो ने श्रीकृष्ण में अनन्य भाव रखकर निष्पाप पुरुषो के पाने योग्य उस गति को प्राप्त किया, जिसे विषयी पुरुष प्राप्त नहीं कर सकते ॥ ४७-४८ ॥

विदुर ने भी * श्रीकृष्ण में चित्त लगाकर प्रभासतीर्थ ने शरीर का त्याग किया और उस

४०—विसृज्यतत्रतत्सर्वंदुकूलवलयादिकम् । निर्ममोनिरहंकार.संछिन्नाशेषबंधनः ॥

४१—वाचंजुहावमनसितत्प्राणइतरेचतम् । मृत्यावपानसोत्सर्गंतपंचत्वेह्यजोहवीत् ॥

४२—त्रित्वेहुत्वाथपंचत्वंतच्चैकत्वेऽजुहोन्मुनि. । सर्वमात्मन्यजुहवीद्ब्रह्मण्यात्मानमव्यये ॥

४३—चीरवासानिराहारोबद्धवाङ्मुक्तमूर्धजः । दर्शयन्नात्मनोरूपजडोन्मत्तपिशाचवत् ॥

४४—अनवेक्षमाणोनिरगादशृण्वन्बधिरोयथा । उदीचींप्रविवेशाशागतपूर्वांमहात्मभिः ॥
हृदिब्रह्मपरंध्यायन्नावर्तेतयतोगत: ॥

४५—सर्वेतमनुनिर्जग्मुर्भ्रातरःकृतनिश्चयाः । कलिनाऽधर्ममित्रेणदृष्ट्वास्पृष्टा प्रजाभुवि ॥

४६—तेसाधुकृतसर्वार्थाज्ञात्वात्यंतिकमात्मन' । मनसाधारयामासुर्वैकुंठचरणाम्बुजं ॥

४७—तद्ध्यानोद्रिक्तयाभक्त्याविशुद्धधिषणा.परे । तस्मिन्नारायणपदेएकांतमतयोगतिं ॥

४८—अवापुर्दुरवापांतेअसद्भिर्विषयात्मभि । विधूतकल्मषा'स्थानविरजेनात्मनैवहि ॥

---

* शाप के कारण धर्मराज विदुर के रूप में उत्पन्न हुए थे । इस समय शाप से छूटकर वे पुनः अपने लोक को गए ।

समय उन्हें लेने के लिए आए हुये पितरो के साथ उन्होंने अपने स्थान को प्राप्त किया ॥ ४९ ॥ द्रौपदी ने भी शरीर की अपेक्षा न रखनेवाले पतियों को देखकर भगवान् में चित्त लगाकर उन्हें. प्राप्त किया ॥ ५० ॥ जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक कल्याण-करनेवाले तथा पवित्र भगवान् के प्रिय पांडवों के महाप्रस्थान (की कथा) को सुनता है, वह ईश्वर की भक्ति और सिद्धि को प्राप्त कर लेता है !

श्रीमद्भागवत महापुराण के पहले स्कंध का पंद्रहवाँ अध्याय समाप्त

——:#–#:——

सोलहवाँ अध्याय

पृथ्वी और धर्म का संवाद तथा वहाँ परीक्षित का आगमन

सूत बोले—जन्म-काल के समय अभिजात-कुशल (जन्म-काल में होनेवाले संस्कारों में प्रवीण) ब्राह्मणों ने जैसा बतलाया था, उन समस्त उत्तम गुणों से युक्त श्रेष्ठ भागवत (भगवान् के भक्त) राजा परीक्षित ब्राह्मणों की आज्ञा के अनुसार पृथ्वी का शासन करने लगे ॥ १ ॥ उन्होंने राजा उत्तर की कन्या इरावती से विवाह किया और उसके द्वारा जनमेजय आदि चार

४९—विदुरोपिपरित्यज्यप्रभासेदेहमात्मवान् । कृष्णावेशेनतच्चित्त.पितृभिःस्वक्षययौ ॥

५०—द्रौपदीचतदाज्ञायपतीनामनपेक्षता । वासुदेवेभगवतिह्येकातमतिराप्तं ॥

५१—यःश्रद्धयैतद्भगवत्प्रियाणापाडो.सुतानामितिसंप्रयाणं ।
श्रृणोत्यलंस्वस्त्ययनंपवित्रलब्ध्वाहरौभक्तिमुपैतिसिद्धिं ॥

इति श्री भा० म० प्र० पाडवस्वर्गारोहणनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥

सूतउवाच—

१—तत.परीक्षिद्द्विजवर्यशिक्षयामहींमहाभागवतःशशासह ।
यथाहिसूत्यामभिजातकोविदाःसमादिशन्विप्रमहद्गुणस्तथा ॥

२—सउत्तरस्यतनयामुपयेमइरावतीं । जनमेजयादींश्चतुरस्तस्यामुत्पादयन्सुतान् ॥

पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥ कृपाचार्य को गुरु बनाकर उन्होंने प्रभूत दक्षिणावाले तीन अश्वमेध-यज्ञ, गंगा के किनारे किए, जिन यज्ञों मे देवताओं ने भी प्रत्यक्ष दर्शन दिया था ॥ ३ ॥ किसी समय दिग्विजय के लिये निकले हुए पराक्रमी राजा परीक्षित ने अपने बल से राजा का चिह्न धारण किए हुए और गाय के जोडे (गाय और सॉड) को पैर से मारते हुए शूद्ररूपी कलि को पकडा ॥ ४ ॥

शौनक बोले—राजचिह्न धारण करनेवाले अत्यन्त कुत्सित कलि को, जिसने गाय को लात मारी थी, परीक्षित ने पकड क्यों लिया, अर्थात् मार क्यों नहीं डाला ? ॥ ५ ॥ महाभाग ! यदि इसमें श्रीकृष्ण की कथा का भाग हो तो आप मुझसे कहें ! जिससे जीवन का व्यर्थ उपयोग होता हो ऐसी व्यर्थ की बातों से भगवान् के चरण-कमलो के रस की इच्छा रखनेवाले सत्पुरुषों को क्या लाभ है ? ॥ ६ ॥ अंग ! परब्रह्म की इच्छा रखनेवाले, अल्पायु तथा मरणशील हमलोगों को श्रीकृष्ण की कथाओ के अतिरिक्त अन्य व्यर्थ की बातो से क्या लाभ है, जिनसे आयु का अपव्यय होता है ॥ ७ ॥ यहाँ भगवान् मृत्यु-शामित्र कर्म (पशु-वध-संबंधी यज्ञ) मे बुलाये गए हैं। जब तक वे यहाँ रहते है, किसी की मृत्यु नहीं होती ॥ ८ ॥ इसीलिये श्रेष्ठ ऋषियों ने भगवान् मृत्यु को यहाँ बुलाया है, जिससे मनुष्य इस लोक में (जीवित रहकर)-भगवान् की लीलाओ की अमृत-कथा का पान कर सके ॥ ९ ॥ अल्पायु और मन्द बुद्धिवाले आलसी पुरुषों की आयु रात को सोने में तथा दिन को व्यर्थ के कामो मे बीत जाती है ॥ १० ॥

३—आजहाराश्वमेधांस्त्रीन्गंगायांभूरिदक्षिणान् । शारद्वतगुरुंकृत्वादेवायत्राक्षिगोचराः ॥

४—निजग्राहौजसावीरःकलिंदिग्विजयेक्वचित् । नृपलिंगधरंशूद्रंघ्नंतंगोमिथुनंपदा ॥

शौनकउवाच—

५—कस्यहेतोर्निजग्राहकलिंदिग्विजयेनृप । नृदेवचिह्नधृक्शूद्रकोऽसौगांयःपदाऽहनत् ॥

६—तत्कथ्यतांमहाभागयदिकृष्णकथाश्रयं । अथवाऽस्यपदांभोजमकरंदलिहांसतां ॥

किमन्यैरसदालापैरायुषोयदसद्व्ययः ॥

७—क्षुद्रायुषांनृणामंगमर्त्यानामृतमिच्छतां । इहोपहूतोभगवान्मृत्युःशामित्रकर्मणि ॥

८—नकश्चिन्म्रियतेतावद्यावदास्तइहांतकः । एतदर्थंहिभगवानाहूतःपरमर्षिभिः ॥

अहोनृलोकेपीयेतहरिलीलाऽमृतंवचः ॥

९—मंदस्यमंदप्रज्ञस्यवयोमंदायुषश्चवै । निद्रयाह्रियतेनक्तंदिवाचव्यर्थकर्मभिः ॥

सूतउवाच—

१०—यदापरीक्षित्कुरुजांगलेवसन्कलिंप्रविष्टंनिजचक्रवर्तिते ।

निशम्यवार्तामनतिप्रियांततःशरासनंसंयुगशौंडिराददे ॥

सूत बोले—जब युद्ध-कुशल राजा परीक्षित ने अपनी सेनाओं के द्वारा रक्षित कुरु-जागल प्रदेश मे कलियुग के प्रवेश की किंचित् प्रिय वार्ता सुनी, तब उन्होने धनुष धारण किया ॥ ११ ॥ रथ, घोडे, हाथी और पैदल सेना के सहित वे काले घोडो से सुशोभित रथ में बैठकर दिग्विजय करने के लिये निकले ॥ १२ ॥ अनंतर भद्राश्व, केतुमाल, भारत, उत्तर कुरु और किंपुरुष आदि देशो को जीतकर वहाँ के राजाओं से कर उगाहा ॥ १३ ॥ स्थान-स्थान पर उनके महात्मा पुरखों के यश का वर्णन हो रहा था, वह वर्णन श्रीकृष्ण के माहात्म्य का सूचक था, राजा परीक्षित ने उसे सुना ॥ १४ ॥ अश्वत्थामा के अस्त्र के तेज से अपनी रक्षा की कथा और यादवों तथा पांडवों के स्नेह तथा श्रीकृष्ण मे उनकी भक्ति की बात भी, उन्होने सुनी ॥ १५ ॥ इससे परीक्षित बड़े संतुष्ट हुए। प्रसन्नता से उनकी आँखे खिल गई। उन्होंने उन लोगो को अत्यन्त मूल्यवान वस्त्र तथा हार दिये ॥ १६ ॥ राजा परीक्षित ने जब यह सुना कि यह समस्त जगत् जिन भगवान् के निकट झुकता है, उन्होने अपने पर भक्ति रखनेवाले पाडवों का सारथीत्व किया (रथ हाँका), सभा में उसकी अध्यक्षता की, उनका मन जुगाते रहे, मित्रता निभाई, दूत बने, रात में हाथ में तलवार लेकर उनकी चौकीदारी की तथा उनकी स्तुति की और उन्हे प्रणाम आदि किया, तो भगवान् के चरण-कमलों मे उनकी भक्ति हुई ॥ १७ ॥ इस प्रकार सर्वदा पूर्वजों की कथा के अनुसार आचरण करनेवाले राजा परीक्षित के निकट शीघ्र ही जो आश्चर्य हुआ, वह आप मुझसे सुने ॥ १८ ॥ एक पैर से चलनेवाले धर्मरूपी बैल ने पृथ्वीरूपी गाय से, जिसका तेज नष्ट हो गया था और विवत्सा (जिसका बच्चा मर गया हो) माँ की तरह जिसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे, पूछा ॥ १९ ॥

११—स्वलंकृतंश्यामतुरंगयोजितरथमृगेंद्रध्वजमाश्रितःपुरात्।
वृतोरथाश्वद्विपपत्तियुक्तयास्वसेनयादिग्विजयायनिर्गतः ॥

१२—भद्राश्वंकेतुमालंचभारतंचोत्तरान्कुरून्। किंपुरुषादीनिवर्षाणिविजित्यजगृहेबलिं ॥

१३—तत्रतत्रोपशृण्वान:स्वपूर्वेषांमहात्मनां। प्रगीयमानंचयशःकृष्णमाहात्म्यसूचकं ॥

१४—आत्मानंचपरित्रातमश्वत्थाम्नोऽस्त्रतेजसः। स्नेहंचवृष्णिपार्थानांतेषांभक्तिंचकेशवे ॥

१५—तेभ्यःपरमसंतुष्टःप्रीत्युज्जृंभितलोचनः। महाधनानिवासांसिददौहारान्महामनाः ॥

१६—सारथ्यपारषदसेवनसख्यदौत्यवीरासनानुगमनस्तवनप्रणामान्।
स्निग्धेषुपाण्डुषुजगत्प्रणतिंचविष्णोर्भक्तिंकरोतिनृपतिश्चरणारविंदे ॥

१७—तस्यैवंवर्तमानस्यपूर्वेषांवृत्तिमन्वहं। नातिदूरेकिलाश्चर्यंयदासीत्तन्निबोधमे ॥

१८—धर्मःपदैकेनचरन्विच्छायामुपलभ्यगां। पृच्छतिस्माश्रुवदनांविवत्सामिवमातरं ॥

१९—कच्चिद्भद्रेऽनामयमात्मनस्तेविच्छायासिम्लायतेषन्मुखेन।

धर्म बोले—भद्रे ! तुम कुशल से तो हो ? तुम्हारी कांति नष्ट हो गई है और मुँह विवर्ण (उतरा हुआ) हो रहा है, इससे मुझे लगता है कि या तो तुम्हारे मन मे कोई दु ख है, अथवा तुम दूर रहनेवाले किसी सबधी का शोक कर रही हो ॥ २० ॥ तुम क्या तीन पैरों से हीन तथा एकही पैरवाले मेरा शोक कर रही हो ? अथवा इस समय तुम शूद्र के अधीन हो, इसका शोक कर रही हो ? पृथ्वी मे यज्ञ बंद हो गए हैं, इससे देवताओं को यज्ञ का भाग नहीं मिलता, तुम क्या इसका शोक कर रही हो ? अथवा वर्षा न होने के कारण कष्ट पाती हुई प्रजा के लिए दुखी हो ? ॥ २१ ॥ हे पृथ्वी ! पति अपनी स्त्रियों की रक्षा नहीं करते, माता-पिता अपनी सतान का पालन नहीं करते और राक्षसों के समान उन्हें कष्ट देते हैं, क्या तुम इसका शोक कर रही हो ? ॥ २२ ॥ तुम क्या कलि जिनमें व्याप्त हो गया है, ऐसे नीच क्षत्रियो का शोक कर रही हो, अथवा उन्हें इस दशा मे ले आनेवाले देशो का शोक रही हो ? अथवा तुम यहाँ-वहाँ खाने-पीनेवाले (अर्थात् विधि-निषेध न माननेवाले), वस्त्र पहननेवाले, स्नान करनेवाले और मैथुन में लिप्त रहनेवाले प्राणियो का शोक कर रही हो ? ॥ २३ ॥ अथवा हे पृथ्वी माता ! तुम्हारे अत्यधिक भार को उतारने के लिए जिन्होने जन्म धारण किया था, उन भगवान के निज धाम पधारने पर, उनसे बिछुड़कर तुम मोक्ष-सुख के आश्रय-रूप श्रीकृष्ण की लीलाओं का स्मरण करके दुखी हो रही हो ? ॥ २४ ॥ हे माता ! देवताओं से भी पूजित होने योग्य तुम्हारे सौंदर्य को क्या अत्यत बली काल ने हरण कर लिया है ? तुम जिससे दुर्बल हो गई हो, वह अपने दु ख का कारण तुम मुझसे कहो ! ॥ २५ ॥

आलक्षयेभवतीमतराधिंदूरबंधुशोचसिकंचनाब ॥

२०—पादैर्न्यूनशोचसिमैकपादमात्मानवावृषलैर्भोक्ष्यमाण ।

अथोसुरादीन्हृतयज्ञभागान्प्रजाउतस्विन्मघवत्यवर्षति ॥

२१—अरक्ष्यमाणास्त्रियउर्विबालान्शोचस्यथोपुरुषादैरिवार्त्तान् ।

वाचदेवींब्रह्मकुलेकुकर्मण्यब्रह्मण्येराजकुलेकुलाग्र्यान् ॥

२२—किंक्षत्रबंधून्कलिनोपसृष्टान्राष्ट्राणिवातैरवरोपितानि ।

इतस्ततोवाऽशनपानवासःस्नानव्यवायोन्मुखजीवलोकम् ॥

२३—यद्वाऽम्बतेभूरिभरावतारकृतावतारस्यहरेर्धरित्रि ।

अतर्हितस्यस्मरतीविसृष्टाकर्माणिनिर्वाणविलम्बितानि ॥

२४—इदममाचक्ष्वतवाधिमूलवसुधरेयेनविकर्शितासि ।

कालेनवातेबलिनाबलीयसासुरार्चितकिंहृतमम्बसौभगम् ॥

धरण्युवाच—

२५—भवान्हिवेदतत्सर्वयन्माधर्मानुपृच्छसि । चतुर्भिर्वर्तसेयेनपादैर्लोकसुखावहै ॥

पृथ्वी बोली—हे धर्म ! आप मुझसे जो पूछ रहे हैं, वह सब आप जानते हैं, क्योंकि आप लोकों को सुख देनेवाले चार पैरों से बरतते हैं ॥ २६ ॥ सत्य, शौच (पवित्रता), दया, क्षमा, त्याग, सतोष, सरलता, शांति, दम (इंद्रियो का दमन), तप, समदृष्टि, तितिक्षा (पराए अपराध को सहन करना), उपराम (हानि-लाभ से दुखी अथवा प्रसन्न न होना), शास्त्र, विचार, आत्मज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, शौर्य, तेज, बल, स्मृति, स्वतंत्रता, कुशलता, कांति, धैर्य, नम्रता, प्रतिभा, विनय, सुशीलता, मनोबल, ज्ञानेंद्रिय तथा कर्मेंद्रियों का बल, भोग करने की क्षमता, गंभीरता, स्थिरता, आस्तिकता, कीर्ति, मान तथा अन्य अनेक उत्तम गुणों की, श्रेष्ठता की अभिलाषा रखनेवाले लोग जिनसे आशा रखते है, वे कभी नाश नहीं पाते ॥ २७-३० ॥

हे धर्म ! गुणो के उन आधार तथा लक्ष्मी के निवासरूप भगवन् से मैं रहित हो गई हूँ तथा पापी कलियुग ने जिनपर दृष्टि डाली है, ऐसे लोगो को देखकर मैं दुखी हो रही हूँ ॥३१॥ मैं अपना, देवताओं मे श्रेष्ठ आपका तथा देवता, पितर, ऋषि और सत्पुरुषों का) शोक कर रही हूँ, तथा वर्णाश्रम का शोक भी मुझे है (क्योंकि कलियुग मे वर्णाश्रम-धर्म का लोप हो जायगा) ॥ ३२ ॥ अपने पर जिनके कृपा-कटाक्ष पड़ने की इच्छा रखनेवाले ब्रह्मा आदि देवताओं ने भी बहुत दिनों तक तपस्या की थी, श्रेष्ठ देवता भी जिनके आश्रित थे, ऐसी लक्ष्मी भी अपने निवास-स्थान कमल-वन का त्याग करके जिनके चरणों का प्रीतिपूर्वक सेवन करती हैं, उन भगवान् के कमल, वज्र और अकुश आदि चिह्नों से सुशोभित चरणो से अलकृत होकर और उन्हींसे समृद्धि पाकर मैं तीनों लोको से अधिक शोभावाली थी। अनंतर मुझ में गर्व का आवेश देखकर भगवान् ने मेरा त्याग कर दिया ॥ ३३ ॥ जिन पुरुषोत्तम भगवान् ने दैत्य-

---

२६—सत्यशौचदयाक्षांतिस्त्याग.सतोषआर्जव । शमोदमस्तपःसाम्यतितिक्षोपरति.श्रुत ॥

२७—ज्ञानविरक्तिरैश्वर्यंशौर्यंतेजोबलस्मृतिः । स्वातन्त्र्यकौशलकातिर्धैर्यमार्दवमेवच ॥

२८—प्रागल्भ्यप्रश्रयःशीलसहओजोबलभगः । गाभीर्यंस्थैर्यमास्तिक्यकीर्तिर्मानोऽनहङ्कृतिः ॥

२९—एतेचान्येचभगवन्नित्यायत्रमहागुणाः । प्रार्थ्यामहत्त्वमिच्छद्भिर्नवियन्तिस्मकर्हिचित् ॥

३०—तेनाहंगुणपात्रेणश्रीनिवासेनसाप्रत । शोचामिरहितलोकपाप्मनाकलिनेक्षितं ॥

३१—आत्मानचानुशोचामिभवंतंचामरोत्तम । देवान्पितॄनृषीन्साधून्सर्वान्वर्णांस्तथाश्रमान् ॥

३२—ब्रह्मादयोबहुतिथयदपाङ्गमोक्षकामास्तपःसमचरन्भगवत्प्रपन्ना ।

साश्रीःस्ववासमरविदवनंविहाययस्यादसौभगमलभतेऽनुरक्ता ॥

३३—तस्याहमब्जकुलिशाकुशकेतुकेतैःश्रीमत्पदैर्भगवतःसमलकृताङ्गी ।

त्रीनत्यरोचउपलभ्यततोविभूतिंलोकान्समाऽव्यस्त्रजदुत्स्मयतींतदते

३४—योवैममातिभरमासुरवशराज्ञामक्षौहिणीशतमपानुददात्मतन्त्रः ।

त्वाक्लिष्टमूनपदमात्मनिपौरुषेणसपादयन्यदुषुरम्यमबिभ्रदङ्ग ॥

वंशी राजाओं की सौ अक्षौहिणी सेनाओं का, जो मुझ पर नितांत भार-रूप थीं, नाश किया, जिन्होंने तीन पैरों के नष्ट हो जाने से दुखी आपको चारों पैरो से युक्त करने के लिए यादव-कुल में सुंदर शरीर धारण किया, जो अपनी प्रेमपूर्ण दृष्टि से, सुंदर हास्य से तथा मधुर वचनों से मधुकुल की स्त्रियों का मान तथा धीरज हर लेते थे तथा जिनके चरण-कमलों की छाप से शोभित मेरे अंगों मे रोएँ खड़े हो जाते थे, उनका विरह कौन स्त्री सहन कर सकती है? ॥ ३४-३५-३६ ॥

पृथ्वी और धर्म जब इस प्रकार बातें कर रहे थे, उसी समय राजर्षि परीक्षित पूर्ववाहिनी सरस्वती के पास आए ॥ ३७ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पहले स्कंध का सोलहवाँ अध्याय समाप्त

—— ०:——

सत्रहवाँ अध्याय

राजा परीक्षित का कलियुग को दण्ड देना

सूत बोले—वहाँ राजा परीक्षित ने राजचिह्न तथा दण्ड धारण करनेवाले शूद्र को अनाथ के समान गाय और बैल के उस जोडे को मारते हुए देखा ॥ १ ॥ उन्होंने शूद्र के द्वारा ताडित मृणाल (कमल-नाल) के समान शुभ्र कांतिवाले बैल को देखा, जो भय के कारण मूत्र त्याग कर रहा था, कॉप रहा था और एक पैर पर खडा होने के कारण क्षीण हो रहा था ॥ २ ॥ उन्होंने

३५—कावासहेतविरहपुरुषोत्तमस्यप्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पै. ।
स्थैर्यंसमानमहरन्मधुमानिनीनारोमोत्सवोममयदङ्घ्रिविटङ्किताया: ॥

३६—तयोरेवंकथयतो.पृथिवीधर्मयोस्तदा । परीक्षिन्नामराजर्षि.प्राप्त.प्राचींसरस्वतीं ॥

इतिश्री भा० म० प्र० पृथ्वीधर्मसंवादोनामषोडशोऽध्याय. ॥१६॥

————

सूतउवाच—

१—तत्रगोमिथुनराजाहन्यमानमनाथवत् । दण्डहस्तचवृषलददर्शेनृपलाञ्छन ॥

२—वृषमृणालधवलमेहन्तमिवबिभ्यतम् । वेपमानपदैकेनसीदतशूद्रताडितम् ॥

होम के कार्यों मे उपयोगी, दीन, शूद्र के पैरों से बार-बार मारी जाती हुई, वत्सहीना, अश्रु-वदना (जिसकी आँखों मे ऑसू भरे हुए थे), क्षीण और दूध की इच्छा रखनेवाली (अर्थात् भूखी) गाय को देखा ॥ ३ ॥ सुनहली पोशाक पहनकर और धनुष चढ़ाकर रथ पर बैठे हुए राजा परीक्षित ने मेघ के समान गभीर वाणी से (शूद्ररूपी कलि से) पूछा ॥४॥ हे बली, तू कौन है, जो मेरी रक्षा मे रहनेवाली पृथ्वी पर बलपूर्वक इस गाय को मार रहा है ? नट के समान तूने वेष तो राजाओं का बना रखा है, पर कर्म मे तू शूद्र के समान है ॥ ५ ॥ अर्जुन के सहित श्रीकृष्ण ने इस भूलोक का त्याग कर दिया है, इससे तू इस एकात स्थान में निरपराध प्राणियों को मार रहा है। तू अपराधी है, अतः वध के योग्य है। तू कौन है ? ॥ ६ ॥ (अनतर बैल से बोले) कमल-नाल के समान शुभ्र तथा एक पैर से चलनेवाले आप क्या बैल का रूप धारण किए हुए कोई देवता हैं ? (आपकी यह दशा देखकर) मुझे दु ख हो रहा है ॥ ७ ॥ कुरुवशी राजाओं के भुजबल से रक्षित इस पृथ्वी पर आपके अतिरिक्त और किसी की आँखों से शोक के आँसू नहीं गिरते ॥ ८ ॥ हे सुरभि-पुत्र (बैल), तुम शोक न करो ! शूद्र से तुम्हारा भय दूर हो। हे माता, दुष्टों को दंड देनेवाले मेरे होते हुए तुम रोओ मत ! तुम्हारा कल्याण हो ! ॥ ९ ॥ हे साध्वी ! जिस राजा के देश मे दुष्टों के द्वारा प्रजा पीड़ित होती है, उस उन्मत्त राजा की कीर्त्ति, आयु, भाग्य तथा परलोक नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥ दुखियों का दु.ख दूर करना ही राजाओं का परम धर्म है, अतः प्राणियों के द्रोही इस दुष्ट का मै वध करूंगा ॥ ११ ॥ हे सौरभेय, हे बैल, तुम्हारे तीन पैरों को किसने काट डाला ? कृष्ण के अनुगामी राजाओं के राज्य मे तुम-सा दुखी कोई न हो ! ॥ १२ ॥ हे बैल, तुम निरपराध हो, सज्जन हो, अतः तुम्हारा कल्याण हो ! तुम बतलाओ कि पांडवों की कीर्ति को कलंकित करनेवाले किस व्यक्ति ने तुम्हारे रूप को विकृत कर दिया

३—गाचधर्मदुघांदीनाभृशशूद्रपदाहताम् । विवत्साग्राश्रुवदनात्तामायवसमिच्छतीम् ॥
४—पप्रच्छरथमारूढःकार्त्तस्वरपरिच्छद । मेघगभीरयावाचासमारोपितकार्मुकः ॥
५—कस्त्वमच्छरणोलोकेबलाद्धस्यबलाबली । नरदेवोऽसिवेषेणनटवत्कर्मणाऽद्विजः ॥
६—करत्वकृष्णेगतेदूरंसहगाण्डीवधन्वना । शोच्योऽस्यशोच्यान्रहसिप्रहरन्वधमर्हसि ॥
७—त्ववामृणालधवलःपादैन्यूनःपदाचरन् । वृषरूपेणकिंकश्चिद्देवोनःपरिखेदयन् ॥
८—नजातुपौरवेंद्राणांदोर्दंडपरिरंभिते । भूतलेऽनुपतत्यस्मिन्विनातेप्राणिनांशुचः ॥
९—मासौरभेयानुशुचोव्येतुतेवृषलाद्भयं । मारोदीरंबभद्रतेखलानांमयिशास्तरि ॥
१०—यस्यराष्ट्रेप्रजाःसर्वास्त्रस्यतेसाध्व्यसाधुभिः । तस्यमत्तस्यनश्यतिकीर्तिरायुर्भगोगतिः ॥
११—एषराज्ञांपरोधर्मोह्यार्त्तानामार्तिनिग्रह. । अतएनवधिष्यामिभूतद्रुहमसत्तमं ॥
१२—कोऽवृश्चत्तवपादांस्त्रीन्सौरभेयचतुष्पद । माभूवंस्त्वादृशाराष्ट्रेराज्ञांकृष्णानुवर्तिना ॥

है ? ॥ १३ ॥ निरपराधी का अपराध करनेवाले (अर्थात् निर्दोष को पीड़ित करनेवाले) को सब जगह मेरा भय है, क्योंकि दुष्टों का दमन करने से सज्जनों का कल्याण ही होता है ॥ १४ ॥ इस लोक मे जो निरकुश, निरपराधों का अपराधी हो, वह चाहे देवता ही क्यों न हो, मैं बाजूबन्द के सहित उसके हाथों को काट डालनेवाला हूँ ॥ १५ ॥ शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार कुमार्ग पर चलनेवाले, अधर्मियों का शासन करनेवाले राजाओं का यह परम धर्म है कि वे अपने धर्म का पालन करनेवालो की रक्षा करे ॥ १६ ॥

धर्म बोले—जिनके गुणो के कारण भगवान् श्रीकृष्ण ने दूत आदि का कार्य किया था, उन पाडवों के वंश मे उत्पन्न आपका पीडितो को अभय-वचन देना योग्य ही है ॥ १७ ॥ हे पुरुषर्षभ ! जो पुरुष हमारे क्लेशो का कारण है, उसे हम नहीं जानते, क्योंकि दु ख के कारणो के विषय मे भिन्न-भिन्न मत होने के कारण हमारी बुद्धि भ्रम मे पडी हुई है ॥ १८ ॥ भेद को जो आच्छादित कर लेते हैं, वे (योगी) कहते हैं कि प्राणी स्वय ही अपने सुख-दु.ख के कारण हैं, कुछ लोगों (ज्योतिर्विदों) का कहना है कि सुख-दु.ख के कारण ग्रह हैं, कुछ लोग (मीमांसक) कर्म को ही सुख-दु ख का कारण मानते हैं और कुछ लोग सुख-दु ख को स्वाभाविक कहते हैं ॥ १९ ॥ कुछ लोगों का मत है कि जो मन और वचन से अगोचर हैं, वे ईश्वर ही इन सब के कारण हैं, ऐसी स्थिति में, राजन्, आप स्वय ही अपनी बुद्धि से इसका विचार कर ले ॥ २० ॥

द्विज श्रेष्ठ ! धर्म के ऐसा कहने पर उन सम्राट् ने अपने मन को सावधान किया । उनका मोह नष्ट हो गया । उन्होंने धर्म से कहा ॥ २१ ॥

१३—आख्याहिवृषमद्रवःसाधूनामकृतागसां । आत्मवैरूप्यकर्त्तारंपार्थानांकीर्तिदूषणं ।
जनेऽनागस्यघंयुंजन्सर्वतोऽस्यचमद्भय ॥

१४—अनाग स्विहभूतेषुयआगस्कृन्निरकुश । आहर्तास्मिभुजसाक्षादमर्त्यस्यापिसांगद ॥

१५—राज्ञोहिपरमोधर्मःस्वधर्मस्थानुपालन । शासतोऽन्यान्यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानिह ॥

धर्मउवाच—

१६—एतद्वःपाडवेयानांयुक्तमार्त्ताभयवचः । येषांगुणगणैःकृष्णोदौत्यादौभगवान्कृतः ॥

१७—नवयक्लेशबीजानियतःस्युःपुरुषर्षभ । पुरुषतंविजानीमोवाक्यभेदविमोहिता ॥

१८—केचिद्विकल्पवसनाआहुरात्मानमात्मन. । दैवमन्येऽपरेकर्मस्वभावमपरेप्रभु ॥

१९—अप्रतर्क्यादनिर्देश्यादितिकेष्वपिनिश्चयः । अत्रानुरूपराजर्षेविमृशस्वमनीषया ॥

२०—एवधर्मेप्रवदतिससम्राड्द्विजसत्तम । समाहितेनमनसाविखेद.पर्यचेष्टत ॥

२१—धर्मंब्रवीषिधर्मज्ञधर्मोऽसिवृषरूपधृक् । यदधर्मकृत.स्थानसूचकस्यापितद्भवेत् ॥

राजा बोले—हे धर्मज्ञ ! आप धर्म की बात कहते हैं, अतः बैल का रूप धारण करनेवाले आप धर्म हैं, क्योंकि अधर्मी जिस स्थान को प्राप्त करते हैं, उसका सूचक भी उन्हें प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ ईश्वरीय माया के स्वरूप तक मनुष्य की मन-वाणी नहीं पहुँच सकती, यह निश्चित है ॥ २३ ॥ हे धर्म ! तप, पवित्रता, दया तथा सत्य, ये चार तुम्हारे पैर हैं, उनमे से पहले तीन पैर तो अधर्म के अंश गर्व, आसक्ति तथा मद ने तोड डाले हैं ॥ २४ ॥ केवल सत्यरूपी तुम्हारा एक पैर रह गया है, जिसके द्वारा तुम किसी प्रकार चल-फिर सकते हो (अथवा मनुष्य तुम्हारा धारण कर सकता है ।) अधर्म से वर्द्धित यह कलि उस एक पैर को भी काट लेना चाहता है ॥ २५ ॥ जिसका भार उतारकर भगवान् ने अपने चरणों की छाप से जिसका कल्याण किया है, वह यह पृथ्वी भी भगवान् के द्वारा त्यागी जाकर अभागिनी स्त्री की तरह 'अधर्मी और राजा का वेश धारण करनेवाले शूद्र मेरा भोग करेंगे' यह सोचकर आँखों में जल भरकर दुखी हो रही है ॥ २६-२७ ॥

इस प्रकार धर्म तथा पृथ्वी को आश्वासन देकर महारथी राजा परीक्षित ने अधर्म के मूलरूप कलियुग पर तीखी धारवाली तलवार उठाई ॥ २८ ॥ परीक्षित को अपनी हत्या करने के लिए उद्यत देखकर कलियुग ने राजचिह्नों का त्याग कर दिया और भय से विह्वल होकर उनके पैरों पर गिर पडा ॥२९॥ उसे पैरों पर पड़ा देखकर वीर, दीनवत्सल, शरणीय (शरणागतवत्सल) और पुण्यकीर्ति परीक्षित ने उसकी हत्या नहीं की। वे हँसते हुये उससे बोले ॥ ३० ॥

परीक्षित बोले—अर्जुन के वश के यश को धारण करनेवाले मेरे सम्मुख तुमने अंजलि बाँधी है अर्थात् तुम मेरी शरण मे आए हो, अत तुम्हें कोई भय नहीं है, लेकिन तुम अधर्म-

---

२२—अथवादेवमायायानूनगतिरगोचरा । चेतसोवचसश्चापिभूतानामितिनिश्चयः ॥

२३—तपःशौचदयासत्यमितिपादाःप्रकीर्तिताः । अधर्मांशैस्त्रयोभग्नाःस्मयसंगमदैस्तव ॥

२४—इदानींधर्मपादस्तेसत्यंनिर्वर्तयेद्यतः । तंजिघृक्षत्यधर्मोऽयमनृतेनैधितःकलिः ॥

२५—इयंचभूर्भगवतान्यासितोरुभरासती । श्रीमद्भिस्तत्पदन्यासैः सर्वतःकृतकौतुका ॥

२६—शोचत्यश्रुकलासाध्वीदुर्भगेवोज्झिताधुना । अब्रह्मण्यनृपव्याजाःशूद्राभोक्ष्यतिमामिति ॥

२७—इतिधर्ममहींचैवसान्त्वयित्वामहारथः । निशातमाददेखड्गंकलयेऽधर्महेतवे ॥

२८—तंजिघांसुमभिप्रेत्यविहायनृपलाञ्छनं । तत्पादमूलंशिरसासमगाद्भयविह्वलः ॥

२९—पतितपादयोर्वीरःकृपयादीनवत्सलः । शरण्योनावधीच्छ्लोक्यआहचेदंहसन्निव ॥

राजोवाच—

३०—न तेगुडाकेशयशोधराणांबद्धाञ्जलेर्वैभयमस्तिकिंचित् ।

नवर्तितव्यंभवताकथंचनक्षेत्रेमदीयेत्वमधर्मबंधुः ॥

बधु हो अर्थात् अधर्म ही तुम्हारा सगी है, अतः मेरे द्वारा शासित पृथ्वी पर तुम्हे किसी प्रकार नहीं रहना होगा ॥ ३१ ॥ राजाओं के शरीर मे तुम्हारे व्याप्त होने से उनमे लोभ, असत्य, चोरी, दुष्टता, स्वधर्म का त्याग, अलक्ष्मी, कपट, क्लेश तथा दभ, अधर्म के इस समूह का प्रवेश, हो गया है ॥ ३२ ॥ अत. हे अधर्मबधु ! तुम्हें इस ब्रह्मावर्त में नहीं रहना चाहिये, जहाँ यज्ञ का विस्तार जाननेवाले ऋषि, यज्ञों के द्वारा जिसका फल देनेवाले भगवान् का यज्ञ करते है तथा जो धर्म और सत्य के निवास करने योग्य है ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार वायु प्राणरूप से समस्त प्राणियों के बाहर तथा भीतर वर्तमान है, उसी प्रकार अपनी व्यापकता से जो इस स्थावर तथा जगम जगत् के बाहर तथा भीतर वर्तमान हैं, वे भगवान अपनी आराधना करनेवालो का कल्याण करते तथा उनके मनोरथ पूर्ण करते हैं ॥ ३४ ॥

सूत बोले—काल के समान जिसने तलवार खींच रखी थी, उन परीक्षित से इस प्रकार आज्ञा पाकर कॉपता हुआ कलियुग उनसे इस प्रकार बोला ॥ ३५ ॥

कलि बोला—हे चक्रवर्ती ! आपकी आज्ञा से मैं जहाँ कहीं भी रहूँगा, वहाँ आपको धनुष-बाण चढाए देखूँगा ॥ ३६ ॥ अत. हे धर्मरक्षक-श्रेष्ठ ! आप मुझे वह स्थान बतलावे, जहाँ मैं अपनी आज्ञा से नियमपूर्वक रहूँ ॥ ३७ ॥

सूत बोले—इस प्रकार उसकी प्रार्थना पर परीक्षित ने उसे जुआ, मद्यपान, स्त्री-सग और प्राणियों की हिंसा, ये चार प्रकार के अधर्म जहाँ हों, वहाँ रहने को कहा ॥ ३८ ॥

३१—त्वावर्त्तमाननरदेवदेहेष्वनुप्रवृत्तोऽयमधर्मपूगः ।
लोभोऽनृतचौर्यमनार्यमहोज्येष्ठाचमायाकलहश्चदम. ॥

३२—नवर्तितव्यतदधर्मबधोधर्मेणसत्येनचवर्तितव्ये । ब्रह्मावर्त्तेयत्रयजतियज्ञैयज्ञेश्वरयज्ञवितानविज्ञाः ॥

३३—यस्मिन्हरिर्भगवानिज्यमानइज्यामूर्त्तिर्यजताशंतनोति ।
कामानमोघान्स्थिरजगमानामतर्बहिर्वायुरिवैषआत्मा ॥

सूतउवाच—

३४—परीक्षितैवमादिष्ट.सकलिर्जातवेपथु. । तमुद्यतासिमाहेदंदण्डपाणिमिवोद्यतम् ॥

३५—यत्रक्वचनवत्स्यामिसार्वभौमतवाज्ञया । लक्षयेतत्रतत्रापित्वामात्तेषुशरासन ॥

३६—तन्मेधर्मभृताश्रेष्ठस्थाननिर्देष्टुमर्हसि । यत्रैवनियतोवत्स्येआतिष्ठस्तेऽनुशासन ॥

सूतउवाच—

३७—अभ्यर्थितस्तदातस्मैस्थानानिकलयेददौ । द्यूतपानस्त्रिय:सूनायत्राधर्मश्चतुर्विध: ॥

३८—पुनश्चयाचमानायजातरूपमदात्प्रभु. । ततोऽनृतमद्कामरजोवैरचपचमम् ॥

पुनः, उसके माँगने पर समर्थ परीक्षित ने उसके रहने के लिए सुवर्ण दिया, अनंतर असत्य, मद, काम, रजोगुण के द्वारा होनेवाली हिंसा तथा वैर, ये पाँच स्थान भी उन्होंने दिए ॥ ३९ ॥ उत्तरा के पुत्र परीक्षित के द्वारा दिए गए—इन पाँच स्थानों में अधर्म का मूलभूत कलि उनकी आज्ञा के अनुसार रहने लगा ॥ ४० ॥ अतः अपने नाश की इच्छा न रखनेवाले व्यक्ति को इन पाँच वस्तुओं का सेवन न करना चाहिए। विशेषत धर्मशील पुरुष, प्रजापालक राजा तथा लोकों के स्वामी गुरुओं को तो नहीं ही करना चाहिए ॥ ४१ ॥ अनंतर राजा ने बैल के नष्ट हुए तप, पवित्रता और दया, ये तीनों पैर फिर से जोड़े अर्थात् संसार में पुनः इन गुणों की स्थापना की और पृथ्वी को आश्वासन देकर उसका शोक दूर किया ॥ ४२ ॥ वन में जाने की इच्छा रखनेवाले अपने पितामह युधिष्ठिर के द्वारा दी गई राजगद्दी पर, अत्यंत भाग्यशाली तथा कौरवों की लक्ष्मी से शोभयमान वे चक्रवर्ती राजा (परीक्षित) अभी भी हस्तिनापुर में विराजमान हैं ॥ ४३ ॥ अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित का ही यह प्रभाव है कि जिसके द्वारा शासित पृथ्वी पर आपने यज्ञ की दीक्षा ली है ॥ ४४ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पहले स्कंध का सत्रहवाँ अध्याय समाप्त

———:o:———

३९—अमूनिपंचस्थानानिह्यधर्मप्रभवःकलिः । औत्तरेयेणदत्तानिन्यवसत्तन्निदेशकृत् ॥

४०—अथैतानिनसेवेतबुभूषुःपुरुष कश्चित् । विशेषतोधर्मशीलोराजालोकपतिर्गुरुः ॥

४१—वृषस्यनष्टांस्त्रीन्पादांस्तपःशौचदयामिति । प्रतिसंदधआश्वास्यमहींचसमवर्धयत् ॥

४२—सएषएतर्ह्यध्यास्तेआसनंपार्थिवोचितं । पितामहेनोपन्यस्तंराज्ञारण्यंविविक्षता ॥

४३—आस्तेऽधुनासराजर्षिःकौरवेन्द्रश्रियोल्लसन् । गजाह्वयेमहाभागश्चक्रवर्तीबृहच्छ्रवाः ॥

४४ इत्थंभूतानुभावोयमभिमन्युसुतोनृपः । यस्यपालयतःक्षोणींयूयंसत्रायदीक्षिताः ॥

इ० भा० म० प्र० कलिनिग्रहोनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥
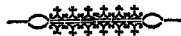
अट्ठारहवाँ अध्याय

ऋषि पुत्र का परीक्षित को शाप देना

सूत बोले—अद्भुतकर्मा भगवान् श्रीकृष्ण के अनुग्रह से, अश्वत्थामा के अस्त्र से जलकर भी जो माता के गर्भ में मरे नहीं, ब्राह्मण के क्रोध से उत्पन्न तक्षकरूप मृत्यु के भय से, भगवान् में मन को लगाकर जो मोहित नहीं हुए, अजित भगवान के स्वरूप को जाननेवाले शुकदेव के शिष्य उन परीक्षित ने आसक्ति का त्याग करके गंगा के किनारे अपना शरीर छोड़ दिया ॥ १-३॥ जिसने मृत्यु के समय भी भगवत्कथा-रूपी अमृत का पान किया है, भगवान् के चरण-कमलों का ध्यान किया है तथा भगवत्कथा ही सदा जिनके निकट रही है, ऐसे व्यक्तियों को मृत्यु के समय भी मोह नहीं उत्पन्न होता ॥ ४ ॥ जबतक समर्थ सम्राट् परीक्षित इस पृथ्वी पर रहे, तब तक चारों ओर फैलकर भी कलियुग अपना प्रभाव नहीं दिखला सका ॥ ५ ॥ जिस दिन और जिस समय भगवान् ने इस पृथ्वी का त्याग किया, उसी समय अधर्म का मूलरूप कलि यहाँ प्रविष्ट हो गया ॥ ६ ॥ भ्रमर के समान सारग्राही राजा परीक्षित ने कलि से द्वेष नहीं किया, क्योंकि कलियुग में संकल्पमात्र से ही पुण्य का फल प्राप्त होता है, पाप का फल करने के अनन्तर ॥ ७ ॥ जो अविवेकी पुरुषों के लिए वीर है, धीर पुरुषों से जो भय खाता है और असावधान पुरुषों पर जो स्यार की तरह सावधान रहता है, उस कलियुग से क्या होगा अर्थात् उसके द्वारा क्या हानि हो सकेगी ? ॥ ८ ॥ ऋषिगण ! आपने मुझसे जो पूछा, वह भगवान् की कथा से युक्त, परीक्षित की पवित्र कथा, मैंने आपको सुनाई ॥ ९ ॥ कीर्तन करने योग्य अनेक

सूतउवाच—

१—योवैद्रौण्यस्त्रविप्लुष्टोनमातुरुदरेमृतः । अनुग्रहाद्भगवतःकृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥

२—ब्रह्मकोपोत्थितावाद्यस्तुतक्षकात्प्राणविप्लवात् । नसमुमोहोरुभयाद्भगवत्यर्पिताशयः ॥

३—उत्सृज्यसर्वतःसंगविज्ञाताजितसंस्थितिः । वैयासकेर्जहौशिष्योगंगायांस्वकलेवरम् ॥

४—नोत्तमश्लोकवार्तानांजुषतांतत्कथामृतम् । स्यात्संभ्रमोऽन्तकालेपिस्मरतांतत्पदाम्बुजं ॥

५—तावत्कलिर्नप्रभवेत्प्रविष्टोऽपीहसर्वतः । यावदीशोमहानुर्व्यामाभिमन्यवएकराट् ॥

६—यस्मिन्नहनियर्ह्येवभगवानुत्ससर्जगाम् । तदैवेहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभवःकलिः ॥

७—नानुद्वेष्टिकलिंसम्राट्सारंगइवसारभुक् । कुशलान्याशुसिद्ध्यन्तिनेतराणिकृतानियत् ॥

८—किंनुबालेषुशूरेणकलिनाधीरभीरुणा । अप्रमत्तःप्रमत्तेषुयोवृकोनृषुवर्तते ॥

९—उपवर्णितमेतद्वःपुण्यंपारीक्षितंमया । वासुदेवकथोपेतमाख्यानंयदपृच्छत ॥

कर्मवाले भगवान् के गुण और पराक्रम-संबंधी जितनी कथाएँ हैं, अपना नाश न चाहनेवालों को उन सभी का सेवन करना चाहिए ॥ १० ॥

ऋषिगण बोले—सौम्य! आप हम मर्त्य-वासियों को जन्म-मरण से मुक्त करनेवाला भगवान् श्रीकृष्ण का विशद यश सुनाते हैं; आप अनंत बरसों तक जिएँ ॥ ११ ॥ जिसका फल अनिश्चित है, उस यज्ञ के धुएँ से धूमिल शरीरवाले हमलोगों को आप भगवान् के चरण-कमलों का मधुर रस पिलाते हैं ॥ १२ ॥ स्वर्ग अथवा मुक्ति को हमलोग भगवद्भक्तों के सत्संग का लेश मात्र भी नहीं समझते, फिर सांसारिक राज्य आदि सुखों की तो बात ही क्या है? ॥ १३ ॥ माया के गुण से रहित तथा अनेक कल्याकों से युक्त, महात्माओं के असाधारण आश्रयरूप तथा शिव-ब्रह्मादि योगेश्वर भी जिसका पार नहीं पाते, उस भगवान् की कथा से, उसके रस को जाननेवाला कौन व्यक्ति तृप्त होता है? ॥ १४ ॥ विद्वन्! आप भगवान् के भक्तों में श्रेष्ठ हैं, अतः महापुरुषों के आश्रयरूप श्रीभगवान् का शुद्ध तथा उदार चरित्र हम आपसे सुनना चाहते हैं; कृपाकर आप विस्तार से कहें ॥ १५ ॥ श्रीशुकदेव के द्वारा कहे गए भागवतरूपी ज्ञान के द्वारा, महाभागवत तथा अत्यंत बुद्धिमान राजा परीक्षित ने गरुड़वाहन, मोक्षस्वरूप भगवान् के चरण-कमलों को प्राप्त किया, वह अद्भुत भक्तियोगवाला, भगवद्भक्तों को प्रिय, भगवान् के चरित्रों से शोभित तथा परम पवित्र परीक्षित राजा की कथा आप हमसे कहें ॥ १७ ॥

सूत बोले—प्रति लोमज (उत्तम वर्ण की माता तथा नीच वर्ण के पिता से उत्पन्न) होते हुए भी वृद्धों के आदर से मेरा जन्म सफल है, क्योंकि महात्माओं के साथ बातचीत करने का

---

१० — याया:कथाभगवत:कथनीयोरुकर्मण: । गुणकर्माश्रया:पुंभि:ससेव्यास्ताबुभूषुभि: ॥

ऋषयऊचु:—

११ — सूतजीवसमा:सौम्यशाश्वतीर्विशदंयश: । यस्त्वंशंससिकृष्णस्यमर्त्यानाममृतंहिन: ॥

१२ — कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासेधूमधूम्रात्मनांभवान् । आपाययतिगोविंदपादपद्मासवंमधु ॥

१३ — तुलयामलवेनापिनस्वर्गंनापुनर्भवं । भगवत्संगिसंगस्यमर्त्यानांकिमुताशिष: ॥

१४—कोनामतृप्येद्रसवित्कथायामहत्तमैकांतपरायणस्य ।

नांतंगुणानामगुणस्यजग्मुर्योगेश्वरायेभवपाद्ममुख्या: ॥

१५—तन्नोभवान्वैभगवत्प्रधानोमहत्तमैकांतपरायणस्य । हरेरुदारं[illegible] ॥

१६—सवैमहाभागवत:परीक्षिद्येनापवर्गाख्यमदभ्रबुद्धि: ।

ज्ञानेनवैयासकिशब्दितेनभेजेखगेंद्रध्वजपादमूलं ॥

१७—तन्न:परंपुण्यमसंवृतार्थमाख्यानमत्यद्भुतयोगनिष्ठं ।

आख्याह्यनंताचरितोपपन्नंपारीक्षितंभागवताभिरामं ॥

अवसर नीच कुल में उत्पन्न होने की मनोव्यथा का शीघ्रही नाश कर देता है ॥ १८ ॥ अतः जो भगवान् अनंत शक्तिवाले और अविनाशी है तथा उत्तम गुणों से युक्त होने के कारण जो अनंत कहे जाते हैं, महान् पुरुषों के असाधारण आश्रयरूप उन भगवान् का नाम लेनेवाले पुरुषों की मनोव्यथा मिटे तो क्या है ? ॥ १९ ॥ देवता जिनकी कामना करते हैं, वे लक्ष्मी उनका त्याग करके जिन निष्काम भगवान् के चरण-कमलों के रज का सेवन करती हैं, उनके तुल्य अथवा गुणों मे उनसे अधिक और कोई नहीं है, इतना कहना ही पर्याप्त है ॥ २० ॥ फिर भी, भगवान् के चरण-कमलो के नख से निकला हुआ, ब्रह्मा के द्वारा दिया गया, अर्घ्यरूप गंगा-जल, शिव के सहित जगत् को पवित्र करता है, अतः भगवान् के अतिरिक्त भगवत्पद के अर्थ-वाला (समस्त ऐश्वर्यो से संपन्न) दूसरा और कौन है ! ॥ २१ ॥ भगवान् मे प्रीति रखनेवाले धीर पुरुष देहादि में बंधी हुई ममता के संग का शीघ्र ही त्याग करके पूर्ण परमहंस-दशा को प्राप्त करते हैं, जिसमे अहिंसा तथा शांति स्वाभाविक हैं ॥ २२ ॥ जिस प्रकार पक्षी अपनी शक्ति के अनुसार आकाश मे उड़ते हैं, उसी प्रकार विद्वान् लोग भी अपनी शक्ति के अनुसार भगवान् का वर्णन करते हैं, अत. हे वेदमूर्ति ! आपके पूछने पर मैं अपने ज्ञान के अनुसार (परीक्षित कथा) कहता हूँ ॥ २३ ॥

एक बार राजा परीक्षित धनुष लेकर वन मे शिकार खेलने गए। वहाँ बहुतेरे मृगों का पीछा करने के कारण वे थक गए और उन्हे भूख तथा प्यास भी लग आई ॥ २४ ॥ जलाशय

सूतउवाच—

१८—अहोवयजन्मभृतोऽद्यहास्मवृद्धानुवृत्त्यापिविलोमजाताः ।
दौष्कुल्यमाधिंविधुनोतिशीघ्र महत्तमानामभिधानयोग ॥

१९—कुत पुनर्गृणतोनामतस्यमहत्तमैकांतपरायणस्य ।
योऽनंतशक्तिर्भगवाननंतोमहद्गुणत्वाद्यमनंतमाहु ॥

२०—एतावतालंननुसूचितेनगुणैरसाम्यानतिशायनस्य ।
हित्वेतरान्प्रार्थयतोविभूतिर्यस्याङ्घ्रिरेणु जुषतेऽनभीप्सो. ॥

२१—अथापियत्पादनखावसृष्टंजगद्विरिञ्चोपहृतार्हणाम. ।
सेशपुनात्यन्यतमोमुकुंदात्कोनामलोकेभगवत्पदार्थः ॥

२२—यत्रानुरक्ताःसहसैवधीराव्यपोह्यदेहादिषुसंगमूढ ।
व्रजंतितत्पारमहंस्यमंत्ययस्मिन्नहिंसोपशमःस्वधर्म ॥

२३—अहहिपृष्टोऽर्यमणोभवद्भिराचक्षआत्मावगमोऽत्रयावान् ।
नभ.पतंत्यात्मसमपतत्रिणस्तथासमंविष्णुगतिंविपश्चितः ॥

२४—एकदाधनुरुद्यम्यविचरन्मृगयांवने । मृगाननुगत.श्रांतःक्षुधितस्तृषितोभृश ॥

ढूँढ़ते हुए, वे एक आश्रम में पहुँचे। वहाँ उन्होंने आँखे मूँदकर बैठे हुए एक शांत मुनि को देखा ॥ २५ ॥ उन मुनि ने इंद्रिय, प्राण, मन और बुद्धि का निरोध करके बाहरी व्यापारों से उन्हें हटा लिया था। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीन अवस्थाओं से परे होकर वे ब्रह्म के समान विकार-रहित हो गए थे ॥ २६ ॥ उनकी जटाएँ बिखरी हुई थीं और उन्होंने रुरु जाति के मृग का चर्म पहन रखा था। प्यास से जिनका तालू सूख रहा था, ऐसे राजा ने उन मुनि से पानी माँगा ॥ २७ ॥ राजा को तृण आदि का आसन नहीं मिला, न बैठने योग्य कोई स्थान ही मिला, प्रिय वचनों से उनका सत्कार भी नहीं हुआ और न उन्हें अर्घ्य ही दिया गया, इससे उन्होंने अपना अपमान बोध किया और क्रोधित हो गए ॥ २८ ॥ ब्रह्मन्! भूख-प्यास से विकल राजा परीक्षित के मन में सहसा उन ब्राह्मण पर क्रोध तथा मत्सर हो आया, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था ॥ २९ ॥ क्रोध के कारण उन्होंने अपने धनुष की नोक से एक मरा हुआ सर्प उठाकर ऋषि के कंधे पर डाल दिया, पुन. वे अपने नगर की ओर चले ॥ ३० ॥ यह ऋषि सचमुच ही इंद्रियों को वश मे करके आँखे मूँदकर समाधि मे बैठा है? अथवा क्षत्रियों से क्या हो सकता है, ऐसा सोचकर इसने झूठी समाधि लगाई है, यही जानने के लिए राजा ने उनके गले में सर्प डाल दिया था ॥ ३१ ॥

बालको के साथ विचरण करते हुए उन ऋषि के अत्यत तेजस्वी पुत्र ने यह सुनकर कि राजा ने पिता का अपराध किया है, वहाँ यह कहा ॥ ३२ ॥ दुष्ट राजाओं का अधर्म तो देखो! दास के द्वारा अपने स्वामी का अपराध (अर्थात् क्षत्रिय के द्वारा ब्राह्मण का अपराध) कौवे, द्वारपाल और कुत्ते के द्वारा अपने स्वामी के किए अपराध के समान है ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणों ने क्षत्रियो को द्वारपाल बनाया है, वे द्वारपाल क्षत्रिय ब्राह्मणों के घर में उन्हीं के बर्तन में कैसे

२५—जलाशयमचक्षाणःप्रविवेशतमाश्रमं। ददर्शमुनिमासीनंशांतमीलितलोचनं ॥

२६—प्रतिरुद्धेंद्रियप्राणमनोबुद्धिमुपारतं। स्थानत्रयात्परंप्राप्तंब्रह्मभूतमविक्रियं ॥

२७—विप्रकीर्णजटाच्छन्नंरौरवेणाजिनेनच। विशुष्यत्तालुरुदकंतथाभूतमयाचत ॥

२८—अलब्धतृणभूम्यादिरसंप्राप्तार्घसूनृतः। अवज्ञातमिवात्मानंमन्यमानश्चुकोपह ॥

२९—अभूतपूर्वः सहसाक्षुत्तृड्भ्यामर्दितात्मनः। ब्राह्मणंप्रत्यभूद्ब्रह्मन्मत्सरोमन्युरेवच ॥

३०—सतुब्रह्मऋषेरंसेगतासुमुरगंरुषा। विनिर्गच्छन्धनुष्कोट्यानिधायपुरमागमत् ॥

३१—एषकिंनिभृताशेषकरणोमीलितेक्षणः। मृषासमाधिराहोस्वित्किंनुस्यात्क्षत्रबंधुभिः ॥

३२—तस्यपुत्रोऽतितेजस्वीविहरन्बालकोऽर्भकैः। राज्ञाघंप्रापितंतातंश्रुत्वातत्रेदमब्रवीत् ॥

३३—अहोअधर्मःपालानांपीव्नांबलिभुजामिव। स्वामिन्यघंयद्दासानांद्वारपानांशुनामिव ॥

३४—ब्राह्मणैःक्षत्रबंधुर्हिद्वारपालोनिरूपितः। सकथंतद्गृहेद्वाःस्थःसभांडंभोक्तुमर्हति ॥

भोजन कर सकते हैं ? ॥ ३४ ॥ कुपथ पर चलनेवाले पुरुषों का शासन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण निज धाम को पधारे हैं, अतः अब मर्यादाहीन राजाओं का शासन मैं करूँगा। मेरा प्रभाव देखो ! ॥ ३५ ॥ अपने साथी बालकों से ऐसा कहकर क्रोध से लाल हुई आँखोंवाले ऋषि-पुत्र शृङ्गी ने कौशिकी नदी का जल हाथ में लेकर शाप दिया ॥ ३६ ॥ मेरे पिता के द्रोही, मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले, कुलांगार परीक्षित को मेरे द्वारा प्रेरित तक्षकनाग आज के सातवें दिन डँसेगा ॥ ३७ ॥

अनंतर आश्रम मे आकर वे पिता के गले में पड़े हुए सर्प को देखकर अत्यंत दुखी हुए और चिल्लाकर रोने लगे ॥ ३८ ॥ अंगिरा के पुत्र शौनकने अपने पुत्र का रोना सुनकर धीरे-धीरे आँखें खोलीं और अपने गले मे पड़ा मरा हुआ सर्प देखा ॥३९॥ उन्होंने सर्प को फेक दिया और पुत्र से पूछा कि वत्स ! तुम क्यो रोते हो ? किसने तुम्हारा अपराध किया है ? पिता के इस प्रकार पूछने पर शृङ्गीने उन्हें सब बातें बतलाई ॥४०॥ जो राजा के योग्य नहीं था, ऐसा शाप उन्हे दिया गया जानकर, ऋषि ने पुत्र का अभिनंदन नहीं किया। (उन्होंने कहा—) पुत्र ! तुमने बड़ा बुरा किया कि छोटे से अपराध के लिये राजा को बहुत बड़ा दंड दिया ॥ ४१ ॥ हे अपरिपक्वबुद्धि ! देवरूप राजा को साधारण मनुष्य के समान न देखना चाहिए, जिस राजा के उग्र प्रभाव से समस्त भयों से रहित और रक्षित प्रजा का कल्याण होता है ॥ ४२ ॥ विष्णुरूप राजा जब अदृश्य हो जाता है, तो चोरों से भरा तथा रक्षकहीन समस्त जगत्, क्षणभर मे ही भेड़ों की टोली के समान नष्ट हो जाता है ॥ ४३ ॥ स्वामी के बिना धन का हरण करनेवाले चोर जो पाप

३५—कृष्णेगतेभगवतिशास्तर्युत्पथगामिनां । तद्भिन्नसेतूनद्याहंशास्मिपश्यतमेबलं ॥

३६—इत्युक्त्वारोषताम्राक्षोवयस्यानृषिबालकान् । कौशिक्यापउपस्पृश्यवाग्वज्रं विससर्जह ॥

३७—इतिलंघितमर्यादंतक्षकःसप्तमेऽहनि । दङ्क्ष्यतिस्मकुलांगारंचोदितोमेततद्रुहं ॥

३८—ततोऽभ्येत्याश्रमंबालोगलेसर्पकलेवरं । पितरंवीक्ष्यदुःखार्तोमुक्तकंठोरुरोदह ॥

३९—सवाआंगिरसोब्रह्मन्श्रुत्वासुतविलापनं । उन्मील्यशनकैर्नेत्रेदृष्ट्वास्वांसेमृतोरगं ॥

४०—विसृज्यपुत्रंपप्रच्छवत्सकस्माद्धिरोदिषि । केनवातेऽपकृतमित्युक्तःसन्यवेदयत् ॥

४१—निशम्यशप्तमतदर्हंनरेंद्रंसब्राह्मणोनात्मजमभ्यनंदत् ।
अहोबतांहोमहदद्यतेकृतमल्पीयसिद्रोहउरुर्दमोधृतः ॥

४२—नवैनृभिर्नरदेवंपराख्यंसंमातुमर्हस्यविपक्वबुद्धे ।
यत्तेजसादुर्विषहेणगुप्ताविंदंतिभद्राण्यकुतोभयाःप्रजाः ॥

४३—अलक्ष्यमाणेनरदेवनाम्निरथांगपाणावयमंगलोकः ।
तदाहिचोरप्रचुरोविनंक्ष्यत्यरक्ष्यमाणोऽविवरूथवत्क्षणात् ॥

करेंगे, न करने पर भी उसका अपराध हमें ही लगेगा। (उस समय) चोरों की संख्या जिनमें अधिक है, ऐसे लोग एक-दूसरे की हत्या करते हैं, गालियाँ देते हैं और पशु, स्त्री तथा धन हरण कर लेते हैं ॥ ४४ ॥ उस समय वर्ण, आश्रम तथा उनके आचार के सहित वैदिक आर्यधर्म नष्ट हो जाता है, जिससे धन तथा विषय-वासना में निविष्ट चित्तवाले मनुष्य कुत्ते-बन्दरों की तरह वर्ण-संकर हो जाते हैं ॥ ४५ ॥ धर्म का पालन करनेवाले, चक्रवर्ती, यशस्वी, साक्षात् महाभागवत, अश्वमेध यज्ञ करनेवाले, भूख, प्यास और थकावट से विकल वे दीन परीक्षित राजा, तुम्हारे शाप के योग्य नहीं थे ॥ ४६ ॥ कच्ची बुद्धिवाले इस बालक ने अपने निष्पाप दास के प्रति जो अपराध किया है, उसे सर्वात्मा भगवान् क्षमा करें ॥ ४७ ॥ समर्थ होते हुए भी भगवान् के भक्त अपने तिरस्कार करनेवाले, ठगनेवाले, शाप देनेवाले, अवज्ञा करनेवाले तथा मारनेवाले का भी प्रतिकार नहीं करते अर्थात् उसे दंड नहीं देते ॥ ४८ ॥ इस प्रकार पुत्र के अपराध से दुखी ऋषि ने राजा के द्वारा किए गए अपराध का बुरा नहीं माना ॥ ४९ ॥ संसार में साधु पुरुष दूसरे के द्वारा सुख-दुःख में डाले जाने पर भी प्रायः दुखी नहीं होते, क्योंकि आत्मा सुख-दुःख के द्वंद्वों से रहित है ॥ ५० ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पहले स्कंध का अठारहवाँ अध्याय समाप्त

——:*—*:——

४४—तदद्यनःपापमुपैत्यनन्वयंयन्नष्टनाथस्यवसोर्विलुम्पकात् ।
परस्परंघ्नतिशपन्तिवृञ्जतेपशून्स्त्रियोऽर्थान्पुरुदस्यवोजनाः ॥

४५—तदार्यधर्मश्चविलीयतेनृणांवर्णाश्रमाचारयुतस्त्रयीमयः ॥
ततोऽर्थकामाभिनिवेशितात्मनाशुनांकपीनामिववर्णसंकरः ॥

४६—धर्मपालोनरपतिःसतुसम्राड्बृहच्छ्रवाः । साक्षान्महाभागवतोराजर्षिर्हयमेधयाट् ॥
क्षुत्तृट्श्रमयुतोदीनोनैवास्मच्छापमर्हति ॥

४७—अपापेषुस्वभृत्येषुबालेनापक्वबुद्धिना । पापंकृतंतद्भगवान्सर्वात्माक्षन्तुमर्हति ॥

४८—तिरस्कृताविप्रलब्धाःशप्ताःक्षिप्ताहताअपिवा । नास्यतत्प्रतिकुर्वन्तितद्भक्ताःप्रभवोऽपिहि ॥

४९—इतिपुत्रकृताघेनसोऽनुतप्तोमहामुनिः । स्वयंविप्रकृतोराज्ञानैवाघंतदचिन्तयत् ॥

५०—प्रायशःसाधवोलोकेपरैर्द्वन्द्वेषुयोजिताः । नव्यथन्तिनहृष्यन्तियतआत्माऽगुणाश्रयः ॥

इति भा० म० प्र० विप्रशापोपलंभनंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

परीक्षित का पश्चाताप तथा गंगा-तट पर जाकर व्रत करना

सूत बोले—अनंतर राजा अपने द्वारा किए गए निंदित कार्य का विचार करके अत्यन्त दुःखी हुए—हाय, उस अप्रकट तेजवाले निरपराधी ब्राह्मण के साथ मुझ नीच ने अनार्य के समान व्यवहार किया है ॥ १ ॥ मैंने देवता की अवहेलना की, अतः अवश्य ही मुझ पर शीघ्र कोई विपत्ति आवेगी, मेरे पाप की शुद्धि के लिए वह विपत्ति निःसंकोच मुझ पर आवे, जिससे फिर मैं ऐसा काम न कर सकूँ ॥ २ ॥ क्रोधित ब्राह्मण कुल की अग्नि मेरे राज्य, बल तथा धन से भरे हुए भांडार को आज ही जला डाले, जिससे पापी मैं, पुनः ब्राह्मण, देवता तथा गौ के प्रति पापबुद्धि न रख सकूँ ॥ ३ ॥ अनंतर इस प्रकार विचार करते हुए परीक्षित ने जब ऋषि-पुत्र के द्वारा निर्दिष्ट तक्षक से अपनी मृत्यु की बात सुनी, तो उसे उन्होंने अच्छा ही समझा, क्योंकि विषयों में आसक्त अपने लिए तक्षक के विषरूपी अग्नि को उन्होंने विरक्ति का कारण माना ॥ ४ ॥ परीक्षित ने जिसे पहले से ही हेय समझ लिया था, ऋषि-पुत्र का शाप सुनने के बाद उन्होंने इहलोक तथा परलोक के सुख की कामना का त्याग कर दिया और वे भगवान् के चरणों की सेवा को श्रेष्ठ मानकर अनशनव्रत का संकल्प करके गंगा के तट पर जा बैठे ॥५॥ जो गङ्गा शोभायुक्त तुलसी के साथ मिले हुए, श्रीकृष्ण के चरणों की धूलि से भी अधिक पवित्र जल को बहाती है तथा जो लोकपालों के सहित लोकों का अन्तर् तथा बाहर् पवित्र करनेवाली

सूतउवाच—

१ – महीपतिस्त्वथतत्कर्मगर्ह्यंविचिंतयन्नात्मकृतसुदुर्मनाः ।
अहोमयानीचमनार्यवत्कृतनिरागसिब्रह्मणिगूढतेजसि ॥

२ – ध्रुवंततोमेकृतदेवहेलनाद्दुरत्ययंव्यसननातिदीर्घात् ।
तदस्तुकामंत्वघनिष्कृतायमेयथानकुर्यांपुनरेवमद्धा ॥

३ – अद्यैवराज्यंबलमृद्धकोशंप्रकोपितब्रह्मकुलानलोमे ।
दहत्वभद्रस्यपुनर्नमेभूत्पापीयसीधीर्द्विजदेवगोभ्यः ॥

४ – सचिंतयन्नित्थमथाशृणोद्यथामुनेःसुतोक्तोनिर्ऋतिस्तक्षकाख्यः ।
ससाधुमेनेनचिरेणतक्षकानलंप्रसक्तस्यविरक्तिकारणं ॥

५ – अथोविहायेमममुंचलोकंविमर्शितौहेयतयापुरस्तात् ।
कृष्णांघ्रिसेवामधिमन्यमानउपाविशत्प्रायममर्त्यनद्यां ॥

है, मरण-काल निकट आया जानकर कौन व्यक्ति उसका सेवन नहीं करेगा ? ॥ ६ ॥ समस्त वस्तुओं से आसक्ति छूट जाने के कारण जिसका चित्त शांत था, पांडव के कुल मे उत्पन्न ऐसे परीक्षित राजा ने अनशन करके, गङ्गा के तट पर जा बैठने का निश्चय करके, अन्य किसी विषय मे मन को न जाने देते हुए, भगवान् के चरणों का ध्यान किया ॥ ७ ॥ अनंतर जगत को पवित्र करनेवाले महानुभाव ऋषिगण अपने शिष्यों के सहित राजा परीक्षित के पास गए। सज्जन लोग तीर्थाटन के बहाने प्रायः स्वयं ही तीर्थों को पवित्र किया करते है ॥ ८ ॥ अत्रि; वशिष्ठ; च्यवन, शरद्वान, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, इध्मवाह, मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिसेन, भारद्वाज, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष, अगस्त्य, वेदव्यास, नारद तथा इनके अतिरिक्त और भी कितने ही ब्रह्मर्षि, देवर्षि तथा राजर्षि वहाँ एकत्रित हुए। इन ऋषियो के कुल के जो बड़े-बड़े ऋषि थे, परीक्षित ने उनकी पूजा की और भूमि पर मस्तक रखकर उन्हे प्रणाम किया ॥ ९-११ ॥ अनंतर सुखपूर्वक उन ऋषियों के बैठ जाने पर शुद्ध चित्तवाले राजा परीक्षित ने पुनः उन्हे प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनके सम्मुख अपना विचार प्रकट किया ॥ १२ ॥

परीक्षित बोले—आप जैसे महात्माओं का जिस पर अनुग्रह है, वह मैं राजाओं मे धन्य हूँ, क्योंकि निंदित कर्मवाले राजकुल को उस स्थान से भी दूर रहना चाहिए, जहाँ ब्राह्मणों का चरण-धोया जल फेंका जाता है ॥ १३ ॥ निंदित काम करनेवाले तथा सदा ससार मे आसक्त मुझ पर अनुग्रह करने के लिए, इस शाप के रूप मे कारण (माया) तथा कार्य (जगत्) के नियामक स्वयं भगवान् ही प्रकट हुए है, जो वैराग्य के कारण है तथा जिस शाप के द्वारा गृहस्थाश्रम मे निरंतर आसक्त पुरुष को

---

६ – यावैलसच्छ्रीतुलसीविमिश्रकृष्णाङ्घ्रिरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री ।
पुनातिलोकानुभयत्रसेशान्कस्तानसेवेतमरिष्यमाणः ॥

७ – इतिव्यवच्छिद्यसपाण्डवेयःप्रायोपवेशंप्रतिविष्णुपद्याम् ।
दध्यौमुकुन्दाङ्घ्रिमनन्यभावोमुनिव्रतोमुक्तसमस्तसंगः ॥

८ – तत्रोपजग्मुर्भुवनंपुनानामहानुभावामुनयःसशिष्याः । प्रायेणतीर्थाभिगमापदेशैःस्वयंहितीर्थानिपुनन्तिसन्तः ॥

९—अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनःशरद्वानरिष्टनेमिर्भृगुरंगिराश्च ।
पराशरोगाधिसुतोऽथरामउतथ्यइंद्रप्रमदेध्मवाहौ ॥

१०—मेधातिथिर्देवलआर्ष्टिषेणोभारद्वाजोगौतमःपिप्पलादः।मैत्रेयऔर्वःकवषःकुम्भयोनिर्द्वैपायनोभगवान्नारदश्च ॥

११—अन्येचदेवर्षिब्रह्मर्षिवर्याराजर्षिवर्याअरुणादयश्च । नानार्षेयप्रवरान्समेतानभ्यर्च्यराजाशिरसाववंदे ॥

१२—सुखोपविष्टेष्वथतेषुभूयःकृतप्रणामःस्वचिकीर्षितंयत् ।
विज्ञापयामासविविक्तचेताउपस्थितोऽग्रेभिगृहीतपाणिः ॥

राजोवाच—

१३—अहोवयंधन्यतमानृपाणांमहत्तमानुग्रहणीयशीलाः । राज्ञांकुलंब्राह्मणपादशौचाद्दूराद्विसृष्टंबतगर्ह्यकर्म ॥

शीघ्र ही वैराग्य उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥ ब्राह्मण ! जिसने भगवान् में चित्त को लगाया है, वह मैं, आपकी तथा गंगा की शरण आया हूँ, ऐसा आप जानें। ब्राह्मण के द्वारा भेजा हुआ तक्षक भलेही मुझे डंसे, पर आप भगवान् की कथा मुझसे कहें ॥ १५ ॥ इसके अनंतर मेरे जो-जो जन्म हों, उनमें अनंत भगवान् में मेरी प्रीति हो और भगवान का ही आश्रय लेनेवाले महात्माओं का सत्संग मुझे प्राप्त हो ! मैं ब्राह्मणों को नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥ इस प्रकार निश्चय करके धैर्यवान् राजा परीक्षित ने राज्य का भार अपने पुत्र को सौंप दिया और समुद्र-पत्नी गंगा के दक्षिण तीर पर उत्तराभिमुख होकर पश्चिममुखी मूलवाली दूब पर वे बैठ गए ॥ १७ ॥ इस प्रकार जब राजा परीक्षित गंगा के तट पर बैठे तो देवताओं ने प्रसन्न होकर उन-पर फूल बरसाए, उनकी प्रशंसा की और दुन्दुभि बजाई ॥ १८ ॥ जिनका मन और जिनकी शक्ति प्रजाके कल्याण में लगी हुई है, ऐसे समागत मुनियों ने 'साधु' कहकर परीक्षित की बातों की प्रशंसा की और उनका अनुमोदन किया और भगवान् के गुणों से सुंदर वाणी वे बोले ॥१९॥ राजर्षिश्रेष्ठ ! आप-जैसे श्रीकृष्ण के भक्त के मुँह से ऐसी विवेकपूर्ण बातें निकलें, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है, क्योंकि आपने महाराजाओं के द्वारा सेवित राज्य का भगवान् की सन्निधि-कामना से शीघ्रही त्याग कर दिया ॥ २० ॥ भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ आप जब इस शरीर का त्याग करके रजोगुण तथा शोक से रहित उत्तम लोक में जायगे, तबतक हमलोग यहीं बैठे रहेंगे ॥ २१ ॥ राजा परीक्षित ने ऋषियों की पक्षपात रहित, गंभीर अर्थयुक्त, मधुर तथा यथार्थ बातें सुनकर, भगवान् का चरित्र सुनने की इच्छा से, उनका अभिनंदन करके कहा ॥ २२ ॥ जिस प्रकार सत्यलोक में मूर्तिमान वेद हैं, उसी प्रकार आपलोग साक्षात् वेद ही यहाँ उपस्थित हुए हैं। इस लोक में अथवा परलोक में स्वभाव से ही दूसरे पर अनुग्रह करने के अतिरिक्त आपलोगों का और कोई कर्त्तव्य नहीं है ॥ २३ ॥ ब्राह्मण ! आपलोगों पर श्रद्धा रखकर मुझे यह

१४—तस्यैवमेऽघस्यपरावरेशोव्यासक्तचित्तस्यगृहेष्वभीक्ष्णम् । निर्वेदमूलोद्विजशापरूपोयत्रप्रसक्तोभयमाशुधत्ते॥

१५—तमोपयातंप्रतियन्तुविप्रागंगाचदेवीधृतचित्तमीशे । द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षकोवादशत्वलंगायतविष्णुगाथाः॥

१६—पुनश्चभूयाद्भगवत्यनन्तेरतिःप्रसंगश्चतदाश्रयेषु । महत्सुयांयामुपयामिसृष्टिंमैत्र्यस्तुसर्वत्रनमोद्विजेभ्यः ॥

१७—इतिस्मराजाध्यवसाययुक्तःप्राचीनमूलेषुकुशेषुधीरः ।

उदङ्मुखोदक्षिणकूलआस्तेसमुद्रपत्न्याःस्वसुतन्यस्तभारः ॥

१८—एवंचतस्मिन्नरदेवदेवेप्रायोपविष्टेदिविदेवसंघाः । प्रशस्यभूमौव्यकिरन्प्रसूनैर्मुदामुहुर्दुन्दुभयश्चनेदुः ॥

१९—महर्षयोवैसमुपागतायेप्रशस्यसाध्वित्यनुमोदमानाः । ऊचुःप्रजानुग्रहशीलसाराःयदुत्तमश्लोकगुणाभिरूपम् ॥

२०—नवाइदंराजर्षिवर्यचित्रंभवत्सुकृष्णंसमनुव्रतेषु । येऽध्यासनंराजकिरीटजुष्टंसद्योजहुर्भगवत्पार्श्वकामाः ॥

२१—सर्वेवयंतावदिहास्महेऽथकलेवरंयावदसौविहाय । लोकंपरंविरजस्कंविशोकंयास्यत्ययंभागवतप्रधानः ॥

२२—आश्रुत्यतदृषिगणवचःपरीक्षित्समंमधुच्युद्गुरुचाव्यलीकम् ।

आभाषतैनानभिनन्द्ययुक्तान्शुश्रूषमाणश्चरितानिविष्णोः ॥

२३—समागताःसर्वतएवसर्वेवेदायथामूर्तिधरास्त्रिपृष्ठे । नेहाथवामुत्रचकश्चनार्थऋतेपरानुग्रहमात्मशीलम् ॥

पूछना है कि मनुष्य को सब अवस्थाओं में और विशेषत मृत्यु के समय कौन-सा काम करना चाहिए, जिससे पाप न हो ? आपलोग एक मत होकर इस पर विचार करें ॥ २४ ॥ इसी समय निस्पृह होकर पृथ्वीपर विचरण करते हुए, व्यासजी के पुत्र श्रीशुकदेव वहाँ आए। उनका वेश अवधूत के समान था, स्त्रियाँ तथा बालक उन्हें चारों ओर से घेरकर चल रहे थे, उनका आश्रम कौन-सा है (अर्थात् वे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास, इनमें से किस आश्रम में हैं), यह उनके स्वरूप को देखकर नहीं जाना जा सकता था, वे भगवत्स्वरूप के आनंद में निमग्न थे ॥ २५ ॥ उनकी अवस्था सोलह वर्ष की थी। उनके हाथ, पैर, जाँघ, जीभ, कंधे तथा कपोल कोमल थे। बड़ी और सुन्दर आँखें, बड़ी नाक, एक-समान कान और सुंदर भवों से युक्त उनका मुख था। शंख के समान सुन्दर उनका कंठ था ॥ २६ ॥ उनके कंधों के नीचे की हड्डी मांस से भरी हुई थी, फैली हुई और ऊंची उनकी छाती थी, गोल नाभी थी और त्रिवली से सुशोभित पेट था। उनके शरीर पर कोई वस्त्र नहीं था, मस्तक के केश घुँघराले और बिखरे हुए थे, हाथ लंबे थे और देवताओं के समान उनकी कांति थी ॥२७॥ उत्तम यौवन की श्यामल कांति तथा मनोहर हास्य से वे स्त्रियों का मन हरण कर लेते थे। यद्यपि उनका तेज छिपा हुआ था, फिर भी उनके लक्षणों को जाननेवाले मुनि (उन्हें देखकर) अपने आसन से उठ खड़े हुए ॥ २८ ॥ राजा परीक्षित ने उन आगत अतिथि का सिर झुकाकर सत्कार किया। अनन्तर उनके साथ आई हुई अज्ञान स्त्रियाँ और बालक लौट गए तथा पूजित होकर वे उत्तम आसन पर बैठे ॥ २९ ॥ ब्रह्मर्षि, देवर्षि तथा राजर्षियों के समूह से घिरे हुए शुकदेवजी ग्रह, नक्षत्र तथा ताराओं से घिरे हुए चन्द्रमा की तरह शोभित होते थे ॥ ३० ॥ शांत तथा समस्त विषयों में अकुंठित मतिवाले शुकदेवजी के पास बैठे हुए भगवद्भक्त राजा परीक्षित ने हाथ जोड़कर, मधुर तथा सत्यवाणी से सावधान होकर पूछा ॥ ३१ ॥

२४—ततश्च वः पृच्छ्यमिमं विपृच्छे विश्रभ्य विप्रा इति कृत्यतायाम् ।
सर्वात्मना म्रियमाणैश्च कृत्यं शुद्धं च तत्रामृशताभियुक्ताः ॥

२५—तत्राभवद्भगवान्व्यासपुत्रो यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः ।
अलक्ष्यलिंगो निजलाभतुष्टो वृतश्च बालैरवधूतवेषः ॥

२६—तद्व्यष्टवर्षं सुकुमारपादकरोरुबाहुंसकपोलगात्रं । चार्वायताक्षोन्नसतुल्यकर्णसुभ्र्वाननं कम्बुसुजातकण्ठम् ॥

२७—निगूढजत्रुं पृथुतुंगवक्षसमावर्तनाभिं वलिवल्गूदरं च । दिगम्बरं वक्त्रविकीर्णकेशं प्रलम्बबाहुं स्वमरोत्तमाभम् ॥

२८—श्यामं सदाऽपीच्यवयोऽङ्गलक्ष्म्या स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरस्मितेन ।
प्रत्युत्थितास्ते मुनयः स्वासनेभ्यस्तल्लक्षणज्ञा अपि गूढवर्चसम् ॥

२९—स विष्णुरातोऽतिथय आगताय तस्मै सपर्यां शिरसा जहार ।
ततो निवृत्ता ह्यबुधाः स्त्रियोऽर्भका महासने सोपविवेश पूजितः ॥

३०—स संवृतस्तत्र महान्महीयसां ब्रह्मर्षिराजर्षिदेवर्षिसंघैः । व्यरोचतालं भगवान्यथेन्दुर्ग्रहर्क्षतारानिकरैः परीतः ॥

३१—प्रशांतमासीनमकुंठमेधसं मुनिं नृपो भागवतोऽभ्युपेत्य ।

परीक्षित बोले—अहा, नीच क्षत्रिय होते हुए भी आज मैं सत्पुरुषों के द्वारा सेवित होने योग्य हो गया हूँ, क्योंकि ब्रह्मन ! अतिथि के रूप में पधारकर आपने हमें कृतार्थ किया है ॥ ३२ ॥ जिसके स्मरण से मनुष्य का घर पवित्र हो जाता है, उसके दर्शन, स्पर्श, चरण धोने और आसन देने से यदि वह पवित्र हो, तो इसमें क्या आश्चर्य है ! ॥ ३३ ॥ महायोगी ! जिस प्रकार विष्णु के निकट होने से दैत्यों का नाश हो जाता है, उसी प्रकार आपकी निकटता से बड़े-बड़े पाप भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ पाडव जिन्हें प्रिय हैं, उन भगवान् ने क्या मुझपर कृपा की है ? और अपने फुफेरे भाइयों का प्रिय करने के निमित्त उनके वश में उत्पन्न मेरा यह उत्तम कार्य किया है ? ॥ ३५ ॥ क्योंकि ऐसा न होता तो जिसकी गति अव्यक्त है, जो सिद्ध है तथा जो याचक को माँगने के लिए प्रेरित करता है, उस-आपका दर्शन मरने को निकट आए हुए मुझ-जैसे व्यक्ति को कैसे होता ? ॥ ३६ ॥ अतः योगियों के भी गुरु ! मैं आपसे पूछता हूँ कि मृत्यु के समय सब प्रकार से मनुष्य का क्या कर्तव्य है ? ॥ ३७ ॥ प्रभु ! मृत्यु के समय मनुष्य को जो सुनने योग्य हो, करने योग्य हो, स्मरण करने योग्य हो, उतनी देर भी गृहस्थों के घर में आपकी स्थिति नहीं देखी जाती ॥ ३९ ॥

सूत बोले—इस प्रकार कहकर मधुर वाणी से परीक्षित के प्रश्न पूछने पर धर्मज्ञ भगवान् वेदव्यास के पुत्र श्रीशुकदेवजी उनसे इस प्रकार बोले ॥ ४० ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पहले स्कंध का उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त

प्रथम स्कंध समाप्त

प्रणम्यमूर्ध्नाऽवहित.कृताजलिर्नत्वागिरासूनृतयान्वपृच्छत् ॥

३२—अहोअद्यवयब्रह्मन्सत्सेव्याःक्षत्रबन्धव. । कृपयाऽतिथिरूपेणभवद्भिस्तीर्थकाः कृताः ॥

३३— येषांसंस्मरणात्पुंसासद्य.शुद्धयन्तिवैगृहा. । किंपुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभि ॥

३४—सान्निध्यात्तेमहायोगिन्पातकानिमहान्त्यपि । सद्योनश्यन्तिवैपुंसाविष्णोरिवसुरेतरा. ॥

३५—अपिमेभगवान्प्रीत कृष्ण.पाडुसुतप्रिय. । पैतृष्वस्रेयप्रीत्यर्थंतद्गोत्रस्यात्तबान्धवः ॥

३६—अन्यथातेऽव्यक्तगतेर्दर्शनंनःकथंनृणा । नितरांम्रियमाणानांससिद्धस्यवनीयस. ॥

३७—अत.पृच्छामिससिद्धिंयोगिनांपरमगुरु । पुरुषस्येहयत्कार्यंम्रियमाणस्यसर्वथा ॥

३८—यच्छ्रोतव्यमथोजाप्यंयत्कर्तव्यंनृभि प्रभो । स्मर्तव्यंभजनीयवाब्रूहियद्वाविपर्ययं ॥

३९—नूनंभगवतोब्रह्मन्गृहेषुगृहमेधिना । नलक्ष्यतेह्यवस्थानमपिगोदोहनंक्वचित् ॥

सूतउवाच—

४०—एवमाभाषित पृष्ट सराज्ञाश्लक्ष्णयागिरा । प्रत्यभाषतधर्मज्ञोभगवान्बादरायणिः ॥

इतिश्रीमा० म० अष्टादशसाहस्र्यांपारमहंस्यांसंहितायांप्रथमस्कन्धेशुकागमननामैकोनविंशोऽध्याय ॥ १९ ॥

समाप्तोऽयंप्रथमस्कंध.

देवहूति और कपिल

भगवान कपिलदेव अपनी माता देवहूतिको ब्रह्मज्ञान (अध्यात्मतत्त्वोंको) समझा रहे हैं।

पच्चीसवाँ अध्याय

देवहूति के प्रश्न

शौनक बोले—तत्वज्ञान का प्रचार करने वाले, भगवान कपिल, स्वयं अजन्मा होने पर भी मनुष्यों को आत्मज्ञान देने के लिये उत्पन्न हुये। भगवान् का यह अवतार मनुष्यों में श्रेष्ठ है, अन्य समस्त योगियों की अपेक्षा बड़ा है, ऐसे भगवान् की कीर्ति मैने सुनी भी है, तथापि मेरी इन्द्रियाँ तृप्त नहीं होतीं, मन नहीं भरता, भक्तों की इच्छा से शरीर धारण करने वाले भगवान् ने अपनी माया के द्वारा, जो-जो चरित किये है, जो चरित कीर्तन करने के योग्य हैं, उनका कीर्तन आप कहें, करें। मै श्रद्धाभाव से सुनना चाहता हूँ ॥ १, ३ ॥

सूत बोले—व्यास के मित्र—मैत्रेय मुनि से भी विदुर ने ईसी प्रकार पूछा था। ब्रह्मज्ञान का उपदेश करने के लिये विदुर से प्रेरित होकर, प्रसन्न मन से, मैत्रेय ने उनसे यह कहा था ॥ ४ ॥

मैत्रेय बोले—पिता के वन मे चले जाने पर, माता को प्रसन्न रखने के लिये, भगवान् कपिल ने विन्दुसर मे ही निवास किया था, ऐसी प्रसिद्धि है। एकवार ब्रह्मा का वचन स्मरण करके देवहूती विना किसी काम के चुपचाप बैठे ब्रह्मज्ञान का उपदेश देने वाले अपने पुत्र से बोली ॥ ५,६ ॥

देवहूती बोली—भूमन्, इन इन्द्रियों की विषयाभिलाषा से मै बहुत दु:खी हूँ, जिन अभिलाषाओं को पूरा करने के कारण अज्ञान-अंधकार में डूब गयी हूँ। उस दुष्पार अज्ञानान्धकार

शौनकउवाच—

१—कपिलस्तत्त्वसंख्याताभगवानात्ममायया। जात:स्वयमज:साक्षादात्मप्रज्ञप्तयेनृणाम् ॥

२—नह्यस्यवर्ष्मण:पुंसांवरिम्ण:सर्वयोगिनां। विश्रुतौश्रुतदेवस्यभूरितृप्यतिमेऽसवः ॥

३—यद्यद्विधत्तेभगवान्स्वच्छदात्मात्ममायया। तानिमेश्रद्दधानस्यकीर्त्तन्यान्यनुकीर्त्तय ॥

सूतउवाच—

४—द्वैपायनसखस्त्वेवंमैत्रेयोभगवांस्तथा। प्राहेदंविदुरंप्रीतआन्वीक्षिक्यांप्रचोदित: ॥

मैत्रेयउवाच—

५—पितरिप्रस्थितेऽरण्यंमातु:प्रियचिकीर्षया। तस्मिन्बिन्दुसरेऽवात्सीद्भगवान्कपिल:किल ॥

६—तमासीनमकर्माणंतत्त्वमार्गाग्रदर्शनं। स्वसुतंदेवहूत्याहधातु:संस्मरतीवच: ॥

के पार ले जाने वाले सत् नेत्र आपही हैं। अनेक जन्मों के पश्चात् आपही की कृपा से वह नेत्र मुझे मिला है। अतएव भगवान् आपको मेरा मोह दूर करना चाहिये। इन शरीर आदि मे "मैं, मेरा" आदि का जो आग्रह आपने दिया है, वही वह मोह है, भगवन्, अतएव आपने ही मोह उत्पन्न किया है और आपही उसका नाश करे। अतएव, हे शरणागतों के रक्षक! मैं आपकी शरण आयी हूँ। आप अपने भक्तों के ससार-वृक्ष के कुठार है। प्रकृति और पुरुष का तत्व जानने के लिये, मैं समस्त धर्मज्ञाताओं मे श्रेष्ठ आपको नमस्कार करती हूँ॥ ७, ११॥

मैत्रेय बोले—मनुष्यों का मोक्ष विषयक प्रेम बढाने वाला अपनी माता का उत्तम अभिप्राय जानकर आत्म ज्ञानियों की गति-भगवान, मनही-मन प्रशसा करके बोले—थोड़े स्मित से उस समय उनके मुख की शोभा बढ गयी थी॥ १२॥

श्रीभगवान् बोले—मेरी समझ से ब्रह्म-विद्या मे अनुराग रखना ही मनुष्यों के लिये मोक्ष का श्रेष्ठ मार्ग है। जिस मोक्ष के प्राप्त होने पर, मनुष्य के सुख-दुःख का सर्वदा के लिए नाश हो जाता है। अतएव निष्पापे, मैं सर्वाङ्ग-पूर्ण उस योग का वर्णन तुमसे करता हूँ, जिसका वर्णन मैंने सुनने की इच्छा रखनेवाले मुनियों से किया है। चित्त (मन) ही मनुष्य की आत्मा के बन्धन और मुक्ति का कारण है। जब इसका अनुराग त्रिगुण मे होता है, तब इसका बन्धन होता है और भगवान् मे अनुराग से मुक्ति होती है। अहमय, अभिमान के इस भाव से उत्पन्न काम, लोभ आदि दोषों से जिस समय मन रहित होता है, जब मन में ये दोष नहीं

देवहूतिरुवाच—

७—निर्विण्णानितराभूमन्नसदिंद्रियतर्षणात्। येनसमाव्यमानेनप्रपन्नाऽन्धतमःप्रभो॥

८—तस्यत्वंतमसोऽन्धस्यदुष्पारस्याद्यपारगम्। सच्चक्षुर्जन्मनामंतेलब्धमेत्वदनुग्रहात्॥

९—यआद्योभगवान्पुसामीश्वरोवैभवान्किल। लोकस्यतमसाऽन्धस्यचक्षुःसूर्यइवोदितः॥

१०—अथमेदेवसमोहमपाक्रष्टुत्वमर्हसि। योऽवग्रहोऽहममेतीत्येतस्मिन्योजितस्त्वया॥

११—तत्वागताऽहशरण्यशरण्यंस्वभृत्यससारतरोःकुठार। जिज्ञासयाऽहंप्रकृतेःपूरुषस्यनमामिसद्धर्मविदावरिष्ठ॥

मैत्रेयउवाच—

१२—इतिस्वमातुर्निरवद्यमीप्सितनिशम्यपुंसामपवर्गवर्धनं।

धियाऽभिनद्यात्मवतासतागतिर्बभाषईषत्स्मितशोभिताननः॥

श्रीभगवानुवाच—

१३—योगआध्यात्मिकःपुसामतोनिःश्रेयसायमे। अत्यतोपरतिर्यत्रदुःखस्यचसुखस्यच॥

१४—तमिमतेप्रवक्ष्यामियमवोचंपुराऽनघे। ऋषीणांश्रोतुकामानायोगसर्वागनैपुणं॥

१५—चेतःखल्वस्यबधायमुक्तयेचात्मनोमतं। गुणेषुसक्तंबंधायरतवापुसिमुक्तये॥

रहते, उसी समय मन शुद्ध कहा जाता है। उस समय न दुःख होता है और न सुख। मन की सम अवस्था हो जाती है। उस समय अपने को पुरुष रूप आत्मा, प्रकृति से भिन्न, भेदरहित, सूक्ष्म और अपरिच्छिन्न समझता है। ज्ञान, वैराग्य और भक्तियुक्त मन से वह अपने को उदासीन अर्थात् सम्बन्धहीन समझता है और प्रकृति को बलहीन समझता है। क्योंकि ज्ञान के कारण उसका बल नष्ट हो जाता है। विश्वरूप की भक्ति के बिना दूसरा कोई मंगलमय मार्ग नहीं है, जिससे योगी ब्रह्मज्ञान प्राप्त करे। विषयों से प्रेम करना ही आत्मा का अटूट बन्धन है, यह विद्वान् कहते है। वही प्रेम यदि साधुओं के साथ हो तो मोक्ष का द्वार खुल जाता है। सहनशील, दयालु, सब प्राणियों के मित्र, शत्रु किसी के नही, शान्त, साधु स्वभाव, शास्त्रानुरागी, सज्जन अनन्यभाव से मुझ मे दृढ भक्ति करते है। मेरे लिए अन्य समस्त कर्मों का, अपने स्वजन बान्धवों का त्याग करते है, मेरा आश्रय करके, मेरी पवित्र कथाएँ, सुनते और कहते हैं, इन सबको सांसारिक ताप नहीं तपाते। क्योंकि इनका चित्त मुझमे लगा रहता है। हे साध्वी, ये साधु हैं। ये सब प्रकार के सगों से रहित हैं। अतएव इनका सग पाने की प्रार्थना करनी चाहिए। ये संग के दोषों को दूर करने वाले होते हैं। सज्जनों के संग से मेरे पराक्रम के सम्बन्ध की कथाएँ, जो हृदय और कानों को पवित्र करती है, जिन कथाओं के सेवन से मोक्ष मार्ग में श्रद्धा, प्रेम और भक्ति, क्रम से होती है। मेरी रचना से (सृष्टि आदि लीला के विचार से) भक्ति उत्पन्न होती है, भक्ति से लौकिक और पारलौकिक इन्द्रिय-सुखों पर विराग उत्पन्न हो जाता है। इसके पश्चात् उद्योग करके चित्त को वश मे करने का प्रयत्न करता है और

१६—अहममाभिमानोत्थै.कामलोभादिभिर्मलैः। वीतयदामन.शुद्धमदु.खमसुखसमं॥

१७—तदापुरुपआत्मानकेवलप्रकृते.पर। निरतरस्वयज्योतिरणिमानमखंडित॥

१८—ज्ञानवैराग्ययुक्तेनभक्तियुक्तेनचात्मना। परिपश्यत्युदासीनप्रकृतिंचहतौजसं॥

१९—नयुज्यमानयाभक्त्याभगवत्यखिलात्मनी। सदृशोऽस्तिशिवःपथायोगिनाब्रह्मसिद्धये॥

२०—प्रसगमजरपाशमात्मन.कवयोविदुः। सएवसाधुषुकृतोमोक्षद्वारमपावृत॥

२१—तितिक्षव.कारुणिका सुहृदःसर्वदेहिना। अजातशत्रव.शांताःसाधवःसाधुभूषणाः॥

२२—मय्यनन्येनभावेनभक्तिंकुर्वंतियेदृढां। मत्कृतेत्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबाधवाः॥

२३—मदाश्रयाःकथामृष्टाःशृण्वतिकथयंतिच। तपतिविविधास्तापानैतान्मद्गतचेतसः॥

२४—तएतेसाधवःसाध्विसर्वसगविवर्जिताः। सगस्तेष्वथतेप्रार्थ्य.सगदोपहराहिते॥

२५—सताप्रसंगान्ममवीर्यसविदोभवतिहृत्कर्णरसायनाःकथाः।
तज्जोपणादाश्वपवर्गवर्त्मनिश्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥

२६—भक्त्यापुमान्जातविरागऐंद्रियाद्दृष्टश्रुतान्मद्रचनानुचिंतया।
चित्तस्ययत्तोग्रहणेयोगयुक्तोयतिष्यतेऋजुभिर्योगमार्गैः॥

इसके लिए सरलमार्ग योगमार्ग है। इस प्रकार प्रकृति के गुणों को भूल जाने से वैराग्य-युक्त-ज्ञान से, योग से और मुझमें अर्पित भक्ति से, मनुष्य इसी शरीर मे मुझ प्रत्यग् आत्मा को (ब्रह्म को) प्राप्त कर लेता है॥ १३,२७॥

देवहूति बोली—तुम्हारी कैसी भक्ति करनी चाहिए और मेरे समान स्त्री के लिए योग्य भक्ति कौन सी है? जिसके करने से बिना परिश्रम मैं तुम्हारा मोक्षपद प्राप्त कर सकूँगी। मोक्ष-स्वरूप भगवन्, जिस योग का आपने वर्णन किया है, वह कैसा है? उसके कितने अग हैं? जिस योग से आपने तत्वज्ञान होना बतलाया है। हरे, मैं मन्दबुद्धि स्त्री हूँ, अतएव आपकी कृपा से यह दुर्बोध्य विषय मैं समझ सकूँ, वैसा आप बतलावे॥ २८, ३०॥

मैत्रेय बोले—कपिल ने माता का अभिप्राय समझा। जिसके शरीर से वे उत्पन्न हुए थे, उसमें उनका स्नेह होना स्वाभाविक था, अतएव उन्होंने ज्ञानशास्त्र—जिसे साख्य कहते हैं, भक्ति और उसके अग तथा योग—ये तीन विषय बतलाये॥ ३१॥

श्रीभगवान् बोले—गुणों से, विषय-ग्रहण आदि से, जिनका ज्ञान होता है, ऐसे देवताओं, इन्द्रियों के अधिष्ठाताओं का, जो वैदिक विधान के अनुसार काम करते हैं, सत्वमूर्ति, भगवान्, मे जो स्वाभाविक मन की वृत्ति होती है, उसे ही भक्ति कहते हैं। जो बिना कारण उत्पन्न होती है। और वह मुक्ति से भी श्रेष्ठ है। जो भक्ति सूक्ष्म शरीर को नष्ट कर देती है, जिस प्रकार आग पेट में आयी चीज को जला देती है। मेरे चरणों की सेवा मे जिनका अनुराग है और जो मेरे लिए कर्म करना चाहते है, ऐसे मेरे कई भक्त सायुज्य मुक्ति अर्थात् मुझसे अभिन्न हो

२७—असेवयाऽयप्रकृतेर्गुणानाज्ञानेनवैराग्यविजृम्भितेन।
योगेनमय्यर्पितयाचभक्त्यामाप्रत्यगात्मानमिहावरुन्धे॥

देवहूतिरुवाच—

२८—काचित्त्वय्युचिताभक्तिःकीदृशीममगोचरा। ययापदतेनिर्वाणमञ्जसाऽन्वश्नवाअहं॥

२९—योयोगोभगवद्बाणोनिर्वाणात्मस्त्वयोदितः। कीदृशःकतिचागानियतस्तत्त्वावबोधन॥

३०—तदेतन्मेविजानीहियथाहमदधीर्हरे। सुखबुद्धयेयदुर्बोधयोपाभवदनुग्रहात्॥

मैत्रेयउवाच—

३१—विदित्वाऽर्थंकपिलोमातुरित्थजातस्नेहोयत्रतन्वाऽभिजातः।
तत्त्वाम्नाययत्प्रवदंतिसाख्यंप्रोवाचवैभक्तिवितानयोग॥

श्रीभगवानुवाच—

३२—देवानागुणलिंगानामानुश्रविककर्मणाम्। सत्त्वएवैकमनसोवृत्तिःस्वाभाविकीतुया॥

३३—अनिमित्ताभागवतीभक्तिःसिद्धेर्गरीयसी। जरयत्याशुयाकोशनिगीर्णमनलोयथा॥

जाना नहीं चाहते—ये भक्त परस्पर मिल कर मेरे चरित्रों, पराक्रमों का वर्णन करना अधिक उत्तम समझते हैं। मात, वे मेरे सुन्दर और प्रसन्न मुख और अरुण-नेत्र देखते हैं, वर-प्रदान के समय मेरे दिव्यरूप को देखते और उसके साथ मनोहर बातचीत करते हैं। दर्शनीय अंगों से, उदार, हास, विलास, ईक्षण और मधुर उक्ति से—जिनके मन और प्राण मेरी ओर आकृष्ट हो गये हैं, उनकी इच्छा न रहने पर भी, मेरी भक्ति उन्हे मुक्ति देती है। अविद्या के निवृत्त होने पर विभूति (सत्य आदि लोकों का भोग) और माया के स्वामी, मेरे उस अष्टाग (अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ) ऐश्वर्य—भक्ति के अनुगामी हैं। अतएव स्वयं प्राप्त वैकुण्ठ-लोक की सम्पत्ति की भी वे इच्छा नहीं करते, पर—ये सब विभूतियाँ और ऐश्वर्य मेरे लोकों में उनको मिलते है। हे शान्त-स्वरूपा माता, जो लोग मेरे आश्रित हैं, वे कभी नष्ट नहीं होते, उन्हे कभी भोगों का अभाव नहीं होता। मेरा यह काल कभी उनका ग्रास नहीं करता, क्योंकि उनका मैं प्रिय हूँ, आत्मा हूँ, पुत्र हूँ, मित्र हूँ, गुरु हूँ, सुहृद् हूँ और पूज्य देव हूँ। यह लोक, परलोक और दोनों लोकों मे जानेवाली आत्मा, और आत्मा के पीछे रहनेवाली स्त्री, पुत्र, धन, पशु, गृह आदि इन सबको तथा और भी दूसरे अनेक पदार्थों को छोड़कर, सर्वव्यापक अनन्य-भक्ति से मुझको भजते हैं, उनकी मृत्युरूप संसार से मैं रक्षा करता हूँ। मैं प्रकृति-पुरुष का स्वामी, सब प्राणियों की आत्मा हूँ। अतएव बिना मेरे आश्रय के मृत्यु का तीव्रभय

३४—नैकात्मतामेस्पृहयतिकेचिन्मत्पादसेवाऽभिरतामदीहाः।
येऽन्योन्यतोभागवताःप्रसज्यसभाजयतेममपौरुषाणि ॥

३५—पश्यंतितेमेरुचिराण्यवसंतःप्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि।
रूपाणिदिव्यानिवरप्रदानिसाकवाचंस्पृहणीयांवदति ॥

३६—तैर्दर्शनीयावयवैरुदारविलासहासेक्षितवामसूक्तैः।
हृतात्मनोहृतप्राणाश्चभक्तिरनिच्छतोमेगतिमण्वींप्रयुक्ते ॥

३७—अथोविभूतिंममायाविनस्तामैश्वर्यमष्टागमनुप्रवृत्तम् ॥
श्रियभागवतींवाऽस्पृहतिभद्रापरस्यमेतेऽश्नुवतेतुलोके ॥

३८—नकर्हिचिन्मत्पराःशांतरूपेनंक्ष्यतिनोमेनिमिषोलेढिहेतिः।
येषामहंप्रियआत्मासुतश्चसखागुरुःसुहृदोदैवमिष्ट ॥

३९—इमलोकतथैवामुमात्मानमुभयायिनं। आत्मानमनुयेचेहयेराय पशवोगृहाः ॥

४०—विसृज्यसर्वानन्याश्चमामेवविश्वतोमुख। भजंत्यनन्ययाभक्त्यातान्मृत्योरतिपारये ॥

४१—नान्यत्रमद्भगवतःप्रधानपुरुषेश्वरात्। आत्मनःसर्वभूतानाभयंतीव्र निवर्तते ॥

४२—मद्भयाद्वातिवातोऽयंसूर्यस्तपतिमद्भयात्। वर्षतींद्रोदहत्यग्निर्मृत्युश्चरतिमद्भयात् ॥

१०

दूर नहीं होता। मेरे भय से यह वायु चलती है, सूर्य तपता है, इन्द्र बरसता है, अग्नि जलती है और मृत्यु विचरण करती है। ज्ञान-वैराग्य से युक्त, भक्तियोग के द्वारा योगी पुरुष, अपने कल्याण के लिए, निर्भय मेरे चरण के आश्रय मे आते हैं। तीव्र भक्तियोग के द्वारा मुझमें अर्पित मन स्थिर रहे—यही इस लोक में मनुष्यों के कल्याण का उदय है, ऐसा समझना चाहिये ॥ ४३, ४४ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कंध का पचीसवाँ अध्याय समाप्त

छब्बीसवाँ अध्याय

महत्तत्व और विराट की सृष्टि

श्रीभगवान बोले—अब मैं तत्वों का लक्षण, अलग-अलग कहता हूँ, जिसके जानने से मनुष्य प्रकृति के गुणों से मुक्त हो जाता है। जो ज्ञान आत्म-दर्शन-रूप है, जिससे हृदय की ग्रन्थि टूट जाती है और जिससे मुक्ति प्राप्त होती है, वह ज्ञान मैं तुमसे कहता हूँ। यह आत्मा ही पुरुष है, यह अनादि निर्गुण प्रकृति से भिन्न, अन्तर्दृष्टि से ज्ञेय और स्वयं प्रकाश्य है, यह जगत में फैला हुआ है। यह पुरुष, दैवी त्रिगुणमयी, सूक्ष्म प्रकृति से, बिना हेतु के, केवल लीला

४३—ज्ञानवैराग्ययुक्तेनभक्तियोगेनयोगिनः। क्षेमायपादमूलंमेप्रविशंत्यकुतोभयम् ॥

४४—एतावानेवलोकेस्मिन्पुंसांनिःश्रेयसोदयः। तीव्रेणभक्तियोगेनमनोमय्यर्पितंस्थिरम् ॥

इ० भा० म० तृ० कापिलेयोपाख्यानेपंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

श्रीभगवानुवाच—

१—अथतेसंप्रवक्ष्यामितत्त्वानांलक्षणंपृथक्। यद्विदित्वाविमुच्येतपुरुषःप्राकृतैर्गुणैः ॥

२—ज्ञाननिःश्रेयसार्थायपुरुषस्यात्मदर्शनं। यदाहुर्वर्णयेतत्तेहृदयग्रंथिभेदनम् ॥

के लिए मिला; जो इस पुरुष के पास बिना किसी कारण के आयी थी। गुणों के द्वारा अपने समान विविध प्रकार की प्रजा की सृष्टि करने वाली इस प्रकृति को देखकर मोहित हो गया; क्योंकि यह ज्ञान को आवृत करनेवाली (ढँकने वाली) है। शरीर को आत्मा समझने के कारण,प्रकृति के द्वारा किये हुए कर्मों का कर्त्ता—यह पुरुष स्वयं अपने को मान लेता है। क्योंकि इसने अपने को गुणों के अधीन बना लिया है। इसी कारण जन्म-मरण-बन्धन से,परतन्त्र होता है यद्यपि यह अकर्त्ता, स्वामी है, साक्षी है और सुख-स्वरूप है। कार्य शरीर और कारण इन्द्रिय आदि तथा कर्ता, देवता इनके रूप में पुरुष जो अपने समझ लेता है, इसका कारण प्रकृति है और सुख-दुःख के भोग मे पुरुष प्रकृति से भिन्न है ॥ ३,८ ॥

देवहूति बोली—पुरुषोत्तम, प्रकृति और पुरुष का लक्षण कहिए, क्योंकि वे इसके कारण हैं; और स्थूल-सूक्ष्मरूप इस विश्व का जो स्वरूप है, वह भी कहिए ! ॥ ९ ॥

श्रीभगवान् बोले—जो प्रधान है, उसीको प्रकृति कहते हैं। वह स्वयं अविशेष है। उसमें कोई भेद नहीं है, पर विविध पदार्थों का आश्रय है। इसमें तीन गुण वर्तमान है, यह अव्यक्त है। किसीके द्वारा निर्मित नहीं है, यह कार्य-कारण-रूप है, यह नित्य है, पाँच-पाँच चार और दस, इन चौबीस पदार्थों का जो गण है, जो समूह है, उसको प्राधानिक ब्रह्म कहते हैं। यह प्रधान कार्यरूप ब्रह्म है। महाभूत पाँच है, भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश। गन्ध, रस, तेज स्पर्श और शब्द—ये पाँच तन्मात्रा हैं। इन्द्रियाँ दस हैं—श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, नासिका, वचन, हाथ, चरण, लिंग और दसवीं इन्द्रिय गुदा है। मन, बुद्धि, चित्त और

३—अनादिरात्मापुरुषोनिर्गुणःप्रकृतेः परः। प्रत्यक्धामास्वयञ्ज्योतिर्विश्वंयेनसमन्वितम् ॥

४—सएषप्रकृतिंसूक्ष्मांदैवींगुणमयींविभुः। यदृच्छयैवोपगतामभ्यपद्यतलीलया ॥

५—गुणैर्विचित्राःसृजतींसरूपाःप्रकृतिंप्रजाः। विलोक्यमुमुहेसद्यःसइहज्ञानगूहया ॥

६—एवंपराभिध्यानेनकर्तृत्वंप्रकृतेःपुमान्। कर्मसुक्रियमाणेषुगुणैरात्मनिमन्यते ॥

७—तदस्यसंसृतिर्बंधःपारतंत्र्यंचतत्कृतं। भवत्यकर्तुरीशस्यसाक्षिणोनिर्वृतात्मनः ॥

८—कार्यकारणकर्तृत्वेकारणंप्रकृतिंविदुः। भोक्तृत्वेसुखदुःखानांपुरुषंप्रकृतेःपरम् ॥

देवहूतिरुवाच—

९—प्रकृतेःपुरुषस्यापिलक्षणंपुरुषोत्तम। ब्रूहिकारणयोरस्यसदसच्चयदात्मकं ॥

श्रीभगवानुवाच—

१०—यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तंनित्यंसदसदात्मकं। प्रधानंप्रकृतिंप्राहुरविशेषंविशेषवत् ॥

११—पंचभिःपंचभिर्ब्रह्मचतुर्भिर्दशभिस्तथा। एतच्चतुर्विंशतिकंगणंप्राधानिकंविदुः ॥

१२—महाभूतानिपञ्चैवभूरापोऽग्निर्मरुन्नभः। तन्मात्राणिचतावंतिगंधादीनिमतानिमे ॥

अहंकार—ये चार अन्तःकरण के भेद हैं। चार प्रकार की वृत्तियों के भेद से अन्तःकरण के ये चार भेद बतलाए गये हैं। सगुण ब्रह्म का इतना ही भेद तत्वज्ञों ने बतलाया है, अर्थात् ये ही चौबीस तत्व माया के निर्मित हैं और पचीसवाँ काल है, वह प्रकृति का एक अवस्था-विशेष है। कुछ लोग काल को ईश्वर का पराक्रम कहते हैं। जिस काल से प्रकृति को अनुसरण करनेवाले अहंकार से देह में ममत्व रखने वाले जीव को भय होता है, अर्थात् काल से जीव का संहार होता है। हे मनुपुत्रि! गुण जब साम्यावस्था में रहते हैं, उनमें कोई विकार हुआ नहीं रहता, अर्थात् जब वे कारण रूप में रहते हैं, उस समय जिसके द्वारा प्रकृति में चेष्टा उत्पन्न होती है, कर्तृत्वशक्ति जाती है, वे ही भगवान् काल हैं, अथवा जो पुरुष अपनी माया के द्वारा जीवरूप से वर्तमान रहते हैं, वे ही बाहर काल रूप से वर्तमान रहते हैं। इस प्रकार वे प्राणियों में सर्वत्र व्याप्त हैं। जीवों के अदृष्ट से, क्षोभ प्राप्त करने वाली अपनी योनि-प्रकृति में परमपुरुष चित्-शक्ति डालते हैं, जिससे महत्तत्व उत्पन्न होता है, जो सुवर्ण के समान प्रकाशमान है। कूटस्थ भगवान् के शरीर में अव्यक्तरूप से जो वर्तमान था, जो भगवान् जगत के मूल कारण हैं, संसार को प्रकट करने के लिए उन भगवान ने ज्ञान को ढकनेवाले अज्ञानरूपी गाढ़ अन्धकार को अपने तेज से पी लिया। स्वच्छ, शान्त, सत्वगुण भगवान का स्थान है, जिसे वासुदेव कहते हैं, वह महत्तत्वरूप चित्त है। (अर्थात् अधिभूत रूप से जो महत्तत्व है, अध्यात्मरूप से जो चित्त है, वही अधिदैवरूप से वासुदेव है) स्वच्छता, शान्तता और अविकारिता—ये चित्त के लक्षण उसकी वृत्तियों के अनुसार हैं, जिस प्रकार अन्य भूतों के संसर्ग होने से पहले जल की प्रकृति शुद्ध, शान्त और स्वच्छ होती है, उसी प्रकार चित्त की भी। भगवान् की चित् शक्ति के द्वारा उत्पन्न महत्तत्व के विकृत होने से, क्रिया-शक्तिवाला तीन प्रकार का अहंकार

१३—इन्द्रियाणिदशश्रोत्रंत्वग्दृग्रसननासिकाः। वाक्करौचरणौमेढ्रंपायुर्दशमउच्यते ॥

१४—मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तमित्यन्तरात्मक। चतुर्धालक्ष्यतेभेदोवृत्त्यालक्षणरूपया ॥

१५—एतावानेवसंख्यातोब्रह्मणःसगुणस्यह। सन्निवेशोमयाप्रोक्तोयःकालःपंचविंशकः ॥

१६—प्रभावपौरुषंप्राहुःकालमेकेयतोभयम। अहंकारविमूढस्यकर्तुःप्रकृतिमीयुषः ॥

१७—प्रकृतेर्गुणसाम्यस्यनिर्विशेषस्यमानवि। चेष्टायतःसभगवान्कालइत्युपलक्षितः ॥

१८—अन्तःपुरुषरूपेणकालरूपेणयोबहिः। समन्वेत्येषसत्त्वानामभगवानात्ममायया ॥

१९—दैवात्क्षुभितधर्मिण्यांस्वस्यांयोनौपरःपुमान्। आधत्तवीर्यं साऽसूतमहत्तत्त्वंहिरण्मय ॥

२०—विश्वमात्मगतंव्यंजन्कूटस्थोजगदंकुरः। स्वतेजसाऽपिबत्तीव्रमात्मप्रस्वापनंतमः ॥

२१—यत्तत्सत्त्वगुणंस्वच्छंशान्तं भगवतःपद। यदाहुर्वासुदेवाख्यंचित्तंतन्महदात्मक ॥

२२—स्वच्छत्वमविकारित्वंशान्तत्वमितिचेतसः। वृत्तिभिर्लक्षणंप्रोक्तंयथाऽपांप्रकृतिःपरा ॥

उत्पन्न हुआ। सात्विक, राजसिक और तामसिक—ये तीन भेद उस अहंकार के हैं। इस अहंकार से मन, पाँच इन्द्रियाँ, पंचभूत और उनके देवता उत्पन्न हुए। इस अहंकार को सहस्रमस्तक वाला भगवान् अनन्त (शेष) कहते हैं। वे ही पंचभूतों, इन्द्रियों और मन को प्रेरित करनेवाले भगवान् सङ्कर्षण हैं। वह अहंकार देवतारूप से कर्ता, इन्द्रियरूप से करण और पंचभूत आदि के रूप से कार्य हैं। यही उसका लक्षण है। शान्त, घोर और विमूढ़ ये उस अहंकार की अवस्थाएँ हैं, अतएव ये भी लक्षण हैं। सात्विक अहंकार में विकार होने से मन उत्पन्न हुआ। जिसके संकल्प-विकल्प से कामना की उत्पत्ति होती है, यही मन का लक्षण है। जिसको विद्वान् अनिरुद्ध कहते हैं और जो इन्द्रियों का स्वामी है। शरद् के कमल के समान श्याम वर्ण है। योगी इसकी आराधना करते है। शनैः-शनैः वे इसको वश करते है। राजसिक अहंकार मे विकार होने से बुद्धि उत्पन्न हुई। इससे पदार्थो का परिचय और इन्द्रियों की सहायता प्राप्त होती है। संशय, विपर्यास, निश्चय, स्मृति और शयन—ये वृत्ति के अनुसार बुद्धि के लक्षण है। इंद्रियाँ राजसिक अहंकार से ही उत्पन्न होती है, जिनके ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दो भेद हैं। क्रिया-शक्तिरूप प्राण और ज्ञानशक्तिरूप बुद्धि—ये दोनो राजसिक अहंकार से उत्पन्न है। अतएव कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय भी राजसिक ही हैं। तामसिक अहंकार मे भगवान् की चित् शक्ति की प्रेरणा से शब्द तन्मात्रा उत्पन्न हुई और उससे आकाश हुआ। यह आकाश शब्द ग्रहण करने की इन्द्रिय श्रोत्र है। (श्रोत्र की उत्पत्ति आकाश से नहीं है; किन्तु इसका परस्पर सम्बन्ध है) अर्थ बोध करना, बोलने वाले का परिचय देना और आकाश का सूक्ष्मरूप होना, यह शब्द का लक्षण है। यह आकाश समस्त भूतों को अवकाश (रहने का स्थान) देता है। बाहर और भीतर का व्यवहार इसीसे होता है। यह प्राण, इन्द्रियों और मन का स्थान है। यह

२३—महत्तत्वाद्विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यसम्भवात्। क्रियाशक्तिरहंकारस्त्रिविधःसमपद्यत॥

२४—वैकारिकस्तैजसश्चतामसश्चयतोभवः। मनसश्चेन्द्रियाणाञ्चभूतानामहतामपि॥

२५—सहस्रशिरसंसाक्षाद्यमनन्तम्प्रचक्षते। संकर्षणाख्यंपुरुषंभूतेन्द्रियमनोमयं॥

२६—कर्तृत्वंकरणत्वञ्चकार्यत्वञ्चेतिलक्षणं। शान्तघोरविमूढत्वमितिवास्यादहङ्कृतेः॥

२७—वैकारिकाद्विकुर्वाणान्मनस्तत्त्वमजायत। यत्संकल्पविकल्पाभ्यांवर्ततेकामसम्भवः॥

२८—यद्विदुर्ह्यनिरुद्धाख्यंहृषीकाणामधीश्वरं। शारदेंदीवरश्यामंसराध्ययोगिभि.शनैः॥

२९—तैजसात्तुविकुर्वाणाद्बुद्धितत्त्वमभूत्सति। द्रव्यस्फुरणविज्ञानमिंद्रियाणामनुग्रहः॥

३०—संशयोऽथविपर्यासोनिश्चयःस्मृतिरेवच। स्वापइत्युच्यतेबुद्धेर्लक्षणंवृत्तित.पृथक्॥

३१—तैजसानीन्द्रियाण्येवक्रियाज्ञानविभागशः। प्राणस्यहिक्रियाशक्तिर्बुद्धेर्विज्ञानशक्तिता॥

३२—तामसाच्चविकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यचोदितात्। शब्दमात्रमभूत्तस्मान्नभ.श्रोत्रंतुशब्दगम्॥

आकाश का उसकी वृत्तियों के अनुसार लक्षण है। जिस आकाश की तन्मात्रा शब्द है, उस कालशक्ति की प्रेरणा से, जब विकार उत्पन्न हुआ, तब उससे स्पर्श उत्पन्न हुआ और उससे वायु। स्पर्श ग्रहण करने वाली इन्द्रिय त्वचा है। कोमल, कठोर, उष्ण, शीत का ज्ञान होना स्पर्श कहा जाता है और यह स्पर्श वायु की तन्मात्रा है। अलग-अलग करना, कंपाना, एकत्र करना, पदार्थ और शब्द को लें आना, ले जाना और इन्द्रियों को पुष्ट करना—ये वायु के कर्म के लक्षण हैं। स्पर्श तन्मात्रा वाली वायु से भगवान् की चित् शक्ति की प्रेरणा से रूप की और उससे तेज की उत्पत्ति हुई। उसकी इन्द्रिय चक्षु है, जिससे रूप का ज्ञान होता है। साक्षि, पदार्थों का आकार, किसी पदार्थ के साथ प्रतीति और पादार्थों के परिमाण का ज्ञान रूप से होता है। यही तेज का असाधारण धर्म है और रूप का लक्षण है। प्रकाश, पचाना, पीना-खाना, सर्दी दूर करना, सुखाना, भूख-प्यास का लाना, यह तेज का स्वभाव है। रूप तन्मात्रा वाले तेज मे चित् शक्ति की प्रेरणा से रस तन्मात्रा की उत्पत्ति हुई, जिससे जल उत्पन्न हुआ। रस ग्रहण करने वाली इन्द्रिय जिह्वा है। कसैला, मीठा, तीखा, कटु खट्टा आदि, एक ही रस के भेद भिन्न-भिन्न पदार्थों के सम्बन्ध से हो जाते हैं। भिगाना, बाँधना, तृप्त करना, प्यास दूर करना, नरम करना, गर्मी दूर करना, यह जल का स्वभाव है। रस तन्मात्रा वाले जल मे चित् शक्ति की प्रेरणा से विकार होने से, गन्ध तन्मात्रा उत्पन्न हुई और उससे पृथ्वी उत्पन्न हुई। गन्ध ग्रहण करने वाली इन्द्रिय घ्राण है। गन्ध एक है, पर अन्य पदार्थों के सम्बन्ध के मात्रा-भेद से मिश्रगन्ध, दुर्गन्ध, सुगन्ध, मीठी गन्ध और उग्रगन्ध आदि भेद होते हैं। पृथ्वी से भगवान् की मूर्ति तथा अन्य मूर्तियाँ बनती हैं, पृथ्वी स्वयं निरपेक्ष होकर रहती है, यह अन्य पदार्थों को धारण करती है। आकाश आदि मे भेद उत्पन्न करती है। समस्त प्राणियों

३३—अर्थाश्रयत्वशब्दस्यद्रष्टुर्लिंगत्वमेवच। तन्मात्रत्वंचनभसोलक्षणंकवयोविदुः॥

३४—भूतानांछिद्रदातृत्वंबहिरंतरमेवच। प्राणेंद्रियात्मधिष्ण्यत्वंनभसोवृत्तिलक्षणं॥

३५—नभसःशब्दतन्मात्रात्कालगत्याविकुर्वतः। स्पर्शोऽभवत्ततोवायुस्त्वक्स्पर्शस्यचसंग्रहः॥

३६—मृदुत्वंकठिनत्वंचशैत्यमुष्णत्वमेवच। एतत्स्पर्शस्यस्पर्शत्वंतन्मात्रत्वंनभस्वतः॥

३७—चालनंव्यूहनंप्राप्तिर्नेतृत्वंद्रव्यशब्दयोः। सर्वेंद्रियाणामात्मत्वंवायोःकर्माभिलक्षणम्॥

३८—वायोश्चस्पर्शतन्मात्राद्रूपंदैवेरितादभूत्। समुत्थितंततस्तेजश्चक्षूरूपोपलंभनम्॥

३९—द्रव्याकृतित्वंगुणताव्यक्तिसंस्थात्वमेवच। तेजस्त्वंतेजसःसाध्विरूपमात्रस्यवृत्तय.।

४०—द्योतनंपचनंपानमदनंहिममर्दनम्। तेजसोवृत्तयस्त्वेताःशोषणंक्षुत्तृडेवच॥

४१—रूपमात्राद्विकुर्वाणात्तेजसोदैवचोदितात्। रसमात्रमभूत्तस्मादंभोजिह्वारसग्रहः॥

४२—कषायोमधुरस्तिक्तःकट्वम्लइतिनैकधा। भौतिकानांविकारेणरसएकोविभिद्यते॥

४३—क्लेदनंपिंडनंतृप्तिःप्राणनाप्यायनोदनं। तापापनोदोभूयस्त्वमंभसोवृत्तयस्त्विमाः॥

तथा उनके गुणों को प्रकाशित करती है, यह पृथ्वी की वृत्तियों का लक्षण है। आकाश का विशेष गुण शब्द, जिसका विषय है, वह श्रोत्र कहा जाता है, वायु का विशेष गुण स्पर्श, जिसका विषय है, उसे स्पर्शन् (त्वचा) कहा जाता है। तेज का विशेष गुण रूप, जिसका विषय है, उसे चक्षु कहते हैं, जल का विशेष गुण रस, जिसका विषय है, उसे रसना कहते हैं, पृथ्वी का विशेष गुण गन्ध, जिसका विषय है, उसे घ्राण कहते हैं, कारण का गुण कार्य में आता है, क्योंकि कारण और कार्य का सम्बन्ध रहता है, अतएव भूमि मे अन्य चार आकाश आदि के गुण पाये जाते हैं, अर्थात् पृथ्वी में अपने गुण गन्ध के साथ शब्द, स्पर्श, रूप, और रस भी वर्तमान रहते है। ये महत् आदि सात तत्व जब परस्पर अलग-अलग थे, उस समय आदि-पुरुष ने काल, कर्म और गुण के साथ इनमे प्रवेश किया। भगवान के प्रवेश करने से ये सातों तत्व मिल गये और इनमे क्षोभ उत्पन्न हुआ, जिससे अण्डाकार एक अचेतन पदार्थ उत्पन्न हुआ। उसी अण्ड से विराट् पुरुष उत्पन्न हुए। इस पृथ्वीरूप अण्ड से चारों ओर एक से दस गुना बड़ा जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्व उसको घेरे हुए हैं, और इन सब के ऊपर प्रधान (प्रकृति) का आवरण है। इस अण्ड के भीतर समस्त लोकों का विस्तार है, जो भगवान का रूप है। जल मे वर्तमान उस सुवर्ण के समान प्रकाशमान अण्ड में प्रवेश करके महादेव ने उसमे अनेक छेद किये। पहले उस अण्ड में मोह उत्पन्न हुआ, जिसकी इन्द्रिय वाणी हुई, और वाणी के साथ अग्नि उत्पन्न हुआ, जो उसका देवता है, अनन्तर नासिका उत्पन्न हुई, जिसकी इद्रिय घ्राण और देवता वायु हुआ। इसके पश्चात्

४४—रसमात्राद्विकुर्वाणादम्भसोदैवचोदितात्। गंधमात्रमभूत्तस्मात्पृथ्वीघ्राणस्तुगंधगः॥

४५—करम्भपूतिसौरभ्यशान्तोग्रादिभिःपृथक्। द्रव्यावयववैषम्याद्गंधएकोविभिद्यते॥

४६—भावनंब्रह्मणःस्थानंधारणंसद्विशेषणम्। सर्वसत्त्वगुणोद्भेदःपृथिवीवृत्तिलक्षणम्॥

४७—नभोगुणविशेषोऽर्थोयस्यतच्छ्रोत्रमुच्यते। वायोर्गुणविशेषोऽर्थोयस्यतत्स्पर्शनंविदुः॥

४८—तेजोगुणविशेषोऽर्थोयस्यतच्चक्षुरुच्यते। अम्भोगुणविशेषोऽर्थोयस्यतद्रसनंविदुः॥
भूमेर्गुणविशेषोऽर्थोयस्यसघ्राणउच्यते॥

४९—परस्यदृश्यतेधर्मोह्यपरस्मिन्समन्वयात्। अतोविशेषोभावानाम्भूमावेवोपलक्ष्यते॥

५०—एतान्यसंहत्ययदामहदादीनिसप्तवै। कालकर्मगुणोपेतोजगदादिरुपाविशत्॥

५१—ततस्तेनानुविद्धेभ्योयुक्तेभ्योऽण्डमचेतनम्। उत्थितंपुरुषोयस्मादुदतिष्ठदसौविराट्॥

५२—एतदण्डविशेषाख्यंक्रमवृद्धैर्दशोत्तरैः। तोयादिभिःपरिवृतंप्रधानेनावृतैर्बहिः॥
यत्रलोकवितानोऽयंरूपंभगवतोहरेः॥

५३—हिरण्मयादण्डकोशादुत्थायसलिलेशयात्। तमाविश्यमहादेवोबहुधानिर्बिभेदखं॥

आँखे उत्पन्न हुईं, जिनकी इंद्रिय चक्षु और देवता सूर्य हुए। पुनः कर्ण उत्पन्न हुए, जिनकी इंद्रिय श्रोत्र और देवता दिशाएँ हुईं। अनंतर त्वचा उत्पन्न हुई, जिसकी इंद्रिय रोम, मूँछ आदि हुईं और देवता औषधियाँ हुईं। पुनः लिंग उत्पन्न हुआ, जिसकी इंद्रिय वीर्य और देवता जल हुआ। अनंतर गुदा उत्पन्न हुई जिसकी इंद्रिय अपान और देवता लोक-भयंकर मृत्यु हुई। हाथ उत्पन्न हुए, उनकी इंद्रिय बल और देवता इंद्र हुए। पैर उत्पन्न हुए उनकी इंद्रिय गति और देवता विष्णु हुए। नाड़ियाँ हुईं, उनकी इंद्रिय रुधिर और देवता नदियाँ हुईं, इसके पश्चात् उदर उत्पन्न हुआ। इसकी इंद्रिय भूख-प्यास हुई और देवता समुद्र हुये। पुनः उस विराट् पुरुष के हृदय उत्पन्न हुआ, उसकी मन इंद्रिय हुई। मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, जो मन का देवता है। पुनः हृदय में ही बुद्धि इन्द्रिय उत्पन्न हुई, जिसके देवता ब्रह्मा हैं, अहंकार इन्द्रिय हुई, उसके देवता रुद्र हुए। चित इन्द्रिय हुई और क्षेत्रज्ञ (जीव) उसके देवता हुए। ये सब इन्द्रियाँ और उसके देवता उत्पन्न होकर विराट् को उठाने लगे, पर उठा न सके। इससे ये अपने अपने छिद्रों अर्थात् स्थानों में चले गये। अग्निदेव वचन के साथ मुख में गये, पर विराट् न उठे, वायुदेव प्राण के साथ नासिका में गये, पर विराट् न उठे; सूर्य चक्षु के साथ चक्षुगोलक में गये, पर विराट् न उठे; श्रोत्र के साथ दिशाएँ कानों में गयीं, पर विराट् न उठे। रोमों के साथ औषधियाँ त्वचा में गयीं, पर विराट् न उठे, वीर्य के साथ जल लिंग में गया, पर विराट् न उठे, अपान के साथ मृत्यु गुदा में गयी, पर विराट्

५४—निरभिद्यतास्यप्रथममुखवाणीततोऽभवत्। वाण्यावह्निरथोनासेप्राणोतोघ्राणएतयोः॥

५५—घ्राणाद्वायुरभिद्येतामक्षिणीचक्षुरेतयो.। तस्मात्सूर्योन्यभिद्येतांकर्णौश्रोत्रंततोदिशः॥

५६—निर्बिभेदविराजस्त्वग्रोमश्मश्र्वादयस्तत.। ततओषधयश्चासन्शिश्ननिर्बिभिदेततः॥

५७—रेतस्तस्मादापआसन्निरभिद्यतवैगुद। गुदादपानोऽपानाच्चमृत्युर्लोकभयंकरः॥

५८—हस्तौचनिरभिद्येतांबलंताभ्यांततःस्वराट्। पादौचनिरभिद्येतांगतिस्ताभ्यांततोहरिः॥

५९—नाड्योऽस्यनिरभिद्यन्तताभ्योलोहितमाभृत। नद्यस्ततःसमभवन्नुदरंनिरभिद्यत॥
क्षुत्पिपासेततःस्यातांसमुद्रस्त्वेतयोरभूत्॥

६०—अथास्यहृदयंभिन्नंहृदयान्मनउत्थितं। मनसश्चंद्रमाजातोबुद्धिर्बुद्धेर्गिरांपतिः॥
अहंकारस्ततोरुद्रश्चित्तंचैत्यस्ततोऽभवत्॥

६१—एतेह्यभ्युत्थितादेवानैवास्योत्थापनेऽशकन्। पुनराविविशुःखानितमुत्थापयितुंक्रमात्॥
वह्निर्वाचामुखंभेजेनोदतिष्ठत्तदाविराट्॥

६२—घ्राणेननासिकेवायुर्नोदतिष्ठत्तदाविराट्। अक्षिणीचक्षुषादित्योनोदतिष्ठत्तदाविराट्॥

६३—श्रोत्रेणकर्णौचदिशोनोदतिष्ठत्तदाविराट्। त्वचंरोमभिरोषध्योनोदतिष्ठत्तदाविराट्॥

न उठे। बल के साथ इन्द्र हाथों में गये, पर विराट् न उठे; गति के साथ विष्णु चरणों में गये, पर विराट् न उठे; रुधिर के साथ नदियाँ नाड़ी में गयीं, पर विराट् न उठे; क्षुधा और तृषा के साथ समुद्र उदर में गये, पर विराट् न उठे, मन के साथ चन्द्रमा हृदय मे गये, पर विराट् न उठे, बुद्धि के साथ ब्रह्मा भी हृदय मे गये, पर विराट् न उठे, अहंकार के साथ रुद्र हृदय में गये, पर विराट् न उठे, चित्त के साथ क्षेत्रज्ञ (जीव) ने जब हृदय मे प्रवेश किया, उसी समय विराट् जल से उठ गये। जिस प्रकार हम लोगों के सोने पर प्राण, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि, जिसके बिना हमलोगों को उठा नहीं सकतीं, इसी प्रकार विराट् पुरुष को भी इन्द्रियाँ न उठा सकीं। हमलोगों के अपने शरीर मे भी जीव है, जो स्वयं परमात्मरूप है, उसका भक्ति, वैराग्य चित्त की एकाग्रता और ज्ञान से, विवेक-पूर्वक, जड पदार्थों से भिन्न रूप में चिन्तन करना चाहिए ॥ १०,७० ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कंध का छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त

—⁂—
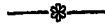
६४—रेतसाशिश्नमापस्तुनोदतिष्ठत्तदाविराट्। गुदंमृत्युरपानेननोदतिष्ठत्तदाविराट् ॥

६५—हस्ताविंद्रोबलेनैवनोदतिष्ठत्तदाविराट्। विष्णुर्गत्यैवचरणौनोदतिष्ठत्तदाविराट् ॥

६६—नाडीर्नद्योलोहितेननोदतिष्ठत्तदाविराट्। क्षुत्तृड्भ्यामुदरंसिंधुर्नोदतिष्ठत्तदाविराट् ॥

६७—हृदयंमनसाचन्द्रोनोदतिष्ठत्तदाविराट्। बुद्ध्याब्रह्माऽपिहृदयंनोदतिष्ठत्तदाविराट् ॥

रुद्रोभिमत्याहृदयंनोदतिष्ठत्तदाविराट् ॥

६८—चित्तेनहृदयंचैत्यःक्षेत्रज्ञःप्राविशद्यदा। विराट्तदैवपुरुषःसलिलादुदतिष्ठत ॥

६९—यथाप्रसुप्तंपुरुषंप्राणेंद्रियमनोधियः। प्रभवंतिविनायेननोत्थापयितुमोजसा ।

७०—तमस्मिन्प्रत्यगात्मानंधियायोगप्रवृत्तया। भक्त्याविरक्त्याज्ञानेनविविच्यात्मनिचिंतयेत ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेतृतीयस्कंधेकापिलेयेतत्त्वसमाम्नायेषड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सत्ताइसवाँ अध्याय

प्रकृति-पुरुष का विवेक और मोक्ष

श्रीभगवान बोले—पुरुष यद्यपि प्रकृतिस्थ है, प्रकृति से उसका सम्बन्ध है, तथापि प्रकृति के गुण सुख-दुःख आदि से वह लिप्त नहीं होता, सुख-दुःख का भागी वह नहीं बनता। क्योंकि वह अविकारी है, अकर्ता है और निर्गुण है, जिस प्रकार जल मे सूर्य का प्रतिविम्ब पड़ता है, जल के काँपने के कारण वह प्रतिविम्ब भी कॉपता है, पर इस कम्पन का सम्बन्ध सूर्य से नहीं होता। जब यह आत्मा प्रकृति के गुणों मे देह आदि पदार्थों में आसक्त होता है, उनसे जब इसका सम्बन्ध होता है, तब यह अहकार से मूढ बन जाता है, अपना स्वरूप भूल जाता है और शरीर आदि के द्वारा होने वाले कर्मों का कर्ता अपने को समझने लगता है। इसी अभिमान के कारण परवश होकर, इस आत्मा को दूसरे के अपराधों के कारण उत्तम, मध्यम और अधम योनियों में जन्म धारण करना पडता है। ससार के असत्य होने पर भी जन्म-मरण नहीं छूटता, क्योंकि यह पुरुप विपयों का ध्यान करता रहता है, इसीसे यह जन्म-मरण के चक्र मे फँसा रहता है। जिस प्रकार स्वप्न सत्य नहीं है, पर स्वप्नावस्था में तो उससे होनेवाला सुख-दुःख भोगनाही पड़ता है। अतएव जो मन इन्द्रियों के विपयों में आसक्त हो गया है, उसको भक्तियोग और तीव्र वैराग्य के द्वारा अपने वश में करना चाहिए। यम, नियम आदि योग के साधनों द्वारा चित्त की एकाग्रता का अभ्यास करे। उसे स्थिर करे और श्रद्धापूर्वक मुझमें निष्कपट भाव रखे तथा मेरी कथा सुने। सब प्राणियों में समान भाव रखे। वैर का त्याग करदे। किसी का साथ न करे, ब्रह्मचर्य और मौन धारण करे और अपने कर्मों को भगवान् मे अर्पित करे। विना प्रयत्न के, जो कुछ मिल जाय, उसीसे सन्तुष्ट रहे, अल्प और नियमित भोजन करे, भगवद्

श्रीभगवानुवाच—

१—प्रकृतिस्थोपिपुरुषोनाज्यतेप्राकृतैर्गुणैः। अविकारादकर्तृत्वान्निर्गुणत्वाज्जलार्कवत् ॥

२—सएषयर्हिप्रकृतेर्गुणेष्वभिविषज्जते। अहंक्रियाविमूढात्माकर्तास्मीत्यभिमन्यते ॥

३—तेनससारपदवीमवशोऽभ्येत्यनिर्वृत.। प्रासगिकैः कर्मदोषैः सदसन्मिश्रयोनिपु ॥

४—अर्थेह्यविद्यमानेऽपिससृतिर्ननिवर्तते। ध्यायतोविपयानस्यस्वप्नेऽनर्थागमोयथा ॥

५—अतएवशनैश्चित्तंप्रसक्तमसतापथि। भक्तियोगेनतीव्रेणविरक्त्याचनयेद्वशं ॥

६—यमादिभिर्योगपथैरभ्यसञ्छ्रद्धयाऽन्वित। मयिभावेनसत्येनमत्कथाश्रवणेनच ॥

७—सर्वभूतसमत्वेननिर्वैरेणाप्रसगत.। ब्रह्मचर्येणमौनेनस्वधर्मेणबलीयसा ॥

विचार किया करे, एकान्त मे रहे। शान्त, सबमे मित्रता, दुखियों पर दया रखे, और स्वयं धीर रहे। इस शरीर तथा शरीर सम्बन्धी स्त्री, पुत्र आदि की ममता छोड़ दे। यथार्थ तत्वों को बतलाने वाले ज्ञान के द्वारा प्रकृति और पुरुष का ज्ञान प्राप्त करे। उस समय जाग्रत,स्वप्न आदि बुद्धि की अवस्थाएँ समाप्त हो जाती हैं, विषय-ज्ञान नष्ट हो जाता है और उस समय मनुष्य अहंकारयुक्त आत्मा के द्वारा शुद्धस्वरूप आत्मा का दर्शन करता है। जिस प्रकार अपनी आँखों मे प्रतिबिम्ब सूर्य के द्वारा मनुष्य सूर्य को देखता है, इस प्रकार वह पुरुष अहकार मे सद्रूप से प्रकाशमान उपाधिरहित आत्मा को पाता है। जो वह आत्मा कारणरूप प्रधान का आश्रय है और कार्यरूप जगत् का नेत्र है, नेत्र के समान उसका प्रकाशक है। वह कार्य और कारण दोनों से संबद्ध है और स्वतः परिपूर्ण है। जिस प्रकार सूर्य का प्रतिबिम्ब पहले जल मे पड़ता है और जल के प्रतिबिम्ब का प्रतिबिम्ब दीवार पर पड़ता है। मनुष्य पहले दीवार के प्रतिबिम्ब को देखता है, फिर जल के प्रतिबिम्ब को और अन्त में आकाशस्थ सूर्य को देखता है, इसी प्रकार अहंकारबद्ध जीव के द्वारा शुद्ध आत्मा का ज्ञान होता है। इसी प्रकार पहले देह, मन, इन्द्रिय और मन मे प्रतिबिम्बित आत्मा का प्रतिबिम्ब त्रिगुण अहकार मे प्रतीत होता है। पुनः वही अहंकार ब्रह्म के आभासरूप से लक्षित होता है और उसके द्वारा परमार्थ ब्रह्मतत्व का ज्ञान होता है। महत् अहंकार, इन्द्रिय, मन और बुद्धि के नींद मे सो जाने पर भी, जो वहाँ निद्रा-रहित अहंकार वर्तमान रहता है, वही परमात्मा है। सुषुप्ति-दशा मे अहंकार के विषय शरीर आदि के लय हो जाने के साथ अहंकार का भी लय हो जाता है। अतएव अहंकार के नाश होने से, वह व्यर्थ अपनाही नाश समझने लगता है, पर यथार्थ मे उसका नाश नहीं होता। जिस प्रकार धन के नाश को मनुष्य अपनाही नाश समझ कर व्याकुल हो जाता है। इस प्रकार विचार करने से पुरुष आत्मज्ञान प्राप्त करता है, वह आत्मा कार्य-कारण के समूह का प्रकाशक है और अधिष्ठान है, क्योंकि कार्यकारण से उसका सम्बन्ध है ॥ १, १६ ॥

८—यदृच्छयोपलब्धेनसंतुष्टोमितभुङ्मुनिः । विविक्तशरणःशान्तोमैत्रःकरुणआत्मवान् ॥

९—सानुबंधेचदेहेऽस्मिन्नकुर्वन्नसदाग्रहं । ज्ञानेनदृष्टतत्त्वेनप्रकृतेःपुरुषस्यच ॥

१०—निवृत्तबुद्ध्यवस्थानोदूरीभूतान्यदर्शनः । उपलभ्यात्मनात्मानंचक्षुषेवार्कमात्मदृक् ॥

११—मुक्तलिंगंसदाभासमसतिप्रतिपद्यते । सतोबंधुमसच्चक्षु.सर्वानुस्यूतमद्वय ॥

१२—यथाजलस्थआभासःस्थलस्थेनावदृश्यते । स्वाभासेनतथासूर्योजलस्थेनदिविस्थितः ॥

१३—एवंत्रिवृदहंकारोभूतेंद्रियमनोमयैः । स्वाभासैर्लक्षितोऽनेनसदाभासेनसत्यदृक् ॥

१४—भूतसूक्ष्मेंद्रियमनोबुद्ध्यादिष्विहनिद्रया । लीनेष्वसतियस्तत्रविनिद्रोनिरहंक्रियः ॥

१५—मन्यमानस्तदात्मानमनष्टोनष्टवन्मृषा । नष्टेऽहंकरणेद्रष्टानष्टवित्तइवातुरः ॥

१६—एवंप्रत्यवमृश्यासावात्मानंप्रतिपद्यते । साहंकारस्यद्रव्यस्ययोऽवस्थानमनुग्रहः ॥

देवहूति बोली—प्रकृति, पुरुष को छोड़कर कभी अलग नहीं रहती, क्योंकि इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध है और ये नित्य हैं। जिस प्रकार पृथ्वी गन्ध, जल और रस अलग-अलग नहीं रहते, उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष भी अलग-अलग नहीं रहते। पुरुष अकर्ता है तथापि प्रकृति के गुणों के कारण उसको कर्मबन्धन मे फँसना पड़ता है, ऐसी दशा मे गुणों के वर्तमान रहते, पुरुष की मुक्ति कैसे हो सकती है? सम्भव है, तत्व-विचार के द्वारा थोड़ी देर के लिए यह भय दूर हो जाय, पर भय के कारण, प्रकृति के वर्तमान रहने से वह भय पुनः आ भी सकता है॥ १७,२०॥

श्रीभगवान् बोले—फल-रहित निष्काम धर्म पालन से, शुद्ध मन से सञ्चित मेरी भक्ति के द्वारा, यथार्थ तत्वयुक्त ज्ञान से, तीव्र वैराग्य से, तपस्यायुक्त योग से तथा दृढ़ एकाग्रता से, पुरुष की प्रकृति जलकर अदृश्य हो जाती है, जिस प्रकार आग उत्पन्न करने वाली अरणि—लकड़ी। जिस प्रकृति का भोग कर लिया गया है और सदा दोष दीख पड़ने के कारण जिसका त्याग कर दिया गया है, वह प्रकृति अपने स्वरूप में वर्तमान पुरुष का कुछ बिगाड़ नहीं सकती। सोते हुए मनुष्य के लिए स्वप्न अनर्थकारी हो सकते हैं, इनके द्वारा वह मोहित हो सकता है, पर जो जागता है, उसे स्वप्नों से (यदि संस्कार-वश वे हों भी) कोई भय नहीं होता, जिसको ऐसा तत्वज्ञान हो गया है और जिसने अपना मन मुझमें लगा दिया है, उस आत्माराम पुरुष का प्रकृति के द्वारा कुछ भी अपकार नहीं होता। अनेक जन्मों के साधन से उसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त

देवहूतिरुवाच—

१७—पुरुषंप्रकृतिर्ब्रह्मन्नविमुञ्चतिकर्हिचित्। अन्योऽन्यापाश्रयत्वाच्चनित्यत्वादनयोःप्रभो॥

१८—यथागन्धस्यभूमेश्चनभावोव्यतिरेकतः। अपांरसस्यचयथातथाबुद्धेःपरस्यच॥

१९—अकर्तुःकर्मबन्धोयंपुरुषस्ययदाश्रयः। गुणेषुसत्सुप्रकृतेःकैवल्यंतेष्वतःकथम्॥

२०—क्वचित्तत्त्वावमर्शेननिवृत्तंभयमुल्बणम्। अनिवृत्तनिमित्तत्वात्पुनःप्रत्यवतिष्ठते॥

श्रीभगवानुवाच—

२१—अनिमित्तनिमित्तेनस्वधर्मेणामलात्मना। तीव्रयामयिभक्त्याचश्रुतसम्भृतयाचिरम्॥

२२—ज्ञानेनदृष्टतत्त्वेनवैराग्येणबलीयसा। तपोयुक्तेनयोगेनतीव्रेणात्मसमाधिना॥

२३—प्रकृतिःपुरुषस्येहदह्यमानात्वहर्निशम्। तिरोभवित्रीशनकैरग्नेर्योनिरिवारणिः॥

२४—भुक्तभोगापरित्यक्तादृष्टदोषाचनित्यशः। नेश्वरस्याशुभंधत्तेस्वेमहिम्निस्थितस्यच॥

२५—यथाह्यप्रतिबुद्धस्यप्रस्वापोबह्वनर्थभृत्। सएवप्रतिबुद्धस्यनवैमोहायकल्पते॥

२६—एवंविदिततत्त्वस्यप्रकृतिर्मयिमानसम्। युञ्जतोनापकुरुतआत्मारामस्यकर्हिचित्॥

२७—यदैवमध्यात्मरतःकालेनबहुजन्मना। सर्वत्रजातवैराग्यआब्रह्मभवनान्मुनिः॥

होता है, ब्रह्मलोक पर्यन्त समस्त विषयों में वैराग्य उत्पन्न हो जाता है, मेरा भक्त मेरी कृपा से यथार्थ ज्ञान पा लेता है और परमानन्द रूप कैवल्य नामक मेरा स्थान वह पा लेता है। वह धीर शीघ्रही अपने ज्ञान से सन्देहों को दूर कर देता है और अन्तःकरण के लय हो जाने से उस स्थान को पाता है, जहाँ से लौटता नहीं। मात', उस समय प्राप्त होने वाली योग की सिद्धियों में उस सिद्ध पुरुष का चित्त आसक्त नहीं होता। उस समय उसे मेरा अविनाशी लोक प्राप्त होता है, जहाँ काल का प्रभाव नहीं होता॥ २१,३० ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कंध का सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त

——.०*०.——

अट्ठाइसवाँ अध्याय

योग के द्वारा तत्वज्ञान

श्रीभगवान् बोले—राजपुत्रि, सबीज (ध्यान-सहित) नियोग का लक्षण कहता हूँ, जिसके द्वारा प्रसन्न होकर मन सन्मार्ग (ज्ञान-मार्ग) की ओर जाता है। अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्मों का, शक्ति के अनुसार पालन करना, अधर्म से अलग रहना, अनायास जो प्राप्त

२८—मद्भक्तःप्रतिबुद्धार्थोमत्प्रसादेनभूयसा। निःश्रेयसंस्वसंस्थानकैवल्याख्यमदाश्रयं॥

२९—प्राप्नोतीहाञ्जसाधीरःस्वदृशाच्छिन्नसंशयः। यद्गत्वाननिवर्त्तेतयोगीलिंगाद्विनिर्गमे॥

३०—यदानयोगोपचितासुचेतोमायासुसिद्धस्यविषज्जतेऽग।

अनन्यहेतुष्वथमेगतिःस्यादात्यन्तिकीयत्रनमृत्युहासः॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेतृतीयस्कंधेसप्तविंशतितमोऽध्यायः॥ २७॥

श्रीभगवानुवाच—

१—योगस्यलक्षणंवक्ष्येसबीजस्यनृपात्मजे। मनोयेनैवविधिनाप्रसन्नंयातिसत्पथं॥

हो जाय, उसी से सन्तुष्ट रहना ब्रह्मज्ञानियों की सेवा करना, त्रिवर्ग का त्याग करना, मोक्ष-धर्म मे अनुराग रखना, अल्प और पवित्र भोजन करना, सदा एकान्त और निर्भय स्थान मे रहना, अहिंसा, सत्य, आस्तेय, (दूसरे की वस्तु को न लेना) आवश्यकता के अनुसार अर्जन करना, ब्रह्मचर्य, तप, शौच, स्वाध्याय, भगवत् पूजन, मौन, आसन की स्थिरता, प्राण-जय, इन्द्रियों को विषयों से हटाकर, मन के साथ हृदय मे रखना, मूलाधार आदि प्राण के स्थानों मे से कहीं मन के साथ प्राण का धारण करना, भगवान की लीलाओं का धारण करना और मन को आत्मा मे लगाना, इन तथा अन्य उपायों के द्वारा दुष्ट और असत् मार्ग में जाने वाले मन को, बुद्धि के द्वारा, धीरे-धीरे मार्ग मे लगाना चाहिए। प्राणायाम के अभ्यास से प्राणों को वश मे करके और आलस्य-रहित होकर अभ्यास करना चाहिए। आसन की स्थिरता (बहुत देर तक बैठने का अभ्यास) पा लेने पर, पवित्र देश में आसन बिछावे उस पर स्वस्तिका आसन से शिथिल शरीर होकर बैठे और अभ्यास करे। पूरक, कुम्भक और रेचक नामक प्राणायाम के द्वारा प्राण-मार्ग का शोधन करे। अथवा रेचक, कुम्भक, पूरक प्राणायाम करे और प्राणायाम तभी तक करे, जब तक स्थिर मन चचल न हो जाय, अर्थात् चचल होने के पहले ही प्राणायाम बन्द कर दे। जिस योगी ने प्राण को जीत लिया है, अपने अधीन कर लिया है, उसका मन शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है और चचल भी नहीं होता। जिस प्रकार वायु की सहायता से आग के द्वारा तपाया हुआ लोहा शीघ्र ही मलिनता त्याग कर देता है। प्राणायाम के द्वारा दोषों (वात, पित्त आदि) को दूर करे। धारणा के द्वारा पापों को, प्रत्याहार के द्वारा विषयों के सम्बन्ध को और ध्यान से राग आदि गुणों को दूर करे। जब निर्दोष मन योग के द्वारा पूर्ण शान्त हो जाय, तो अपनी नाक का अग्रभाग देखते हुए भगवान की मूर्ति का ध्यान करे। जिनका मुख विकसित कमल के समान है, कमल के भीतरी भाग

२—स्वधर्माचरणशक्त्याविधर्माच्चनिवर्तन। दैवाल्लब्धेनसतोषआत्मविच्चरणार्चन ॥

३—ग्राम्यधर्मनिवृत्तिश्चमोक्षधर्मरतिस्तथा। मितमेध्यादनंशश्वद्विविक्तक्षेमसेवन ॥

४—अहिंसासत्यमस्तेययावदर्थपरिग्रहः। ब्रह्मचर्यं तप.शौचस्वाध्यायःपुरुषार्चन ॥

५—मौनसदासनजयःस्थैर्य प्राणजय.शनैः। प्रत्याहारश्चेन्द्रियाणांविषयान्मनसाहृदि ॥

६—स्वधिष्ण्यानामेकदेशेमनसाप्राणधारणा। वैकुठलीलाभिध्यानसमाधानतथात्मनः ॥

७—एतैरन्यैश्चपथिभिर्मनोदुष्टमसत्पथ। बुद्धयायुञ्जीतशनकैर्जितप्राणोह्यतन्द्रितः ॥

८—शुचौदेशेप्रतिष्ठाप्यविजितासनआसनं। तस्मिन्स्वस्तिसमासीनऋजुकायःसमभ्यसेत् ॥

९—प्राणस्यशोधयेन्मार्गं पूरकुभकरेचकै.। प्रतिकूलेनवाचित्तयथास्थिरमचचल ॥

१०—मनोऽचिरात्स्याद्विरजजितश्वासस्ययोगिन.। वाय्वग्निभ्यायथालोहध्मातत्यजतिवैमल ॥

११—प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्चकिल्बिषान्। प्रत्याहारेणससर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥

के समान जिनकी आँखे लाल हैं, नील कमल के समान जो श्याम वर्ण हैं, पीत रेशमी वस्त्र धारण किये हुए हैं, छाती पर श्रीवत्स का चिन्ह है और गले मे चमकीला कौस्तुभ लटक रहा है। मतवाले भौंरो के गुंजार से शोभित वनमाला धारण किये हुए हैं, बहुमूल्य हार, वलय, किरीट, अंगद, और नूपुर धारण किये है. करधनी से कटिभाग शोभित हो रहा है, भक्तों के हृदय-कमल मे निवास करते है, जो दर्शनीयों मे श्रेष्ठ है, शान्त हैं, मन और नयन को प्रसन्न करनेवाले है, जिनका दर्शन अत्यत सुंदर है, जिनको सब लोग सदा नमस्कार करते हैं, जिनकी किशोर अवस्था है और जो भक्तों पर दया करने के लिये व्याकुल रहते हैं। जिनका यश कीर्तन करने योग्य और पवित्र है। पवित्र कीर्ति वाले बलि आदि का यश बढ़ाने वाले, इस प्रकार भगवान के समस्त अगों का ध्यान करे। तब तक ध्यान करे, जब तक मन हटे नहीं, चंचल न हो। खडे, चलते, बैठे, सोते हुए अन्तर्यामी दर्शनीय लीला वाले भगवान का ध्यान शुद्ध भाव से करे। जब इस प्रकार भगवान के समस्त अंग मे चित्त स्थिर हो जाय, तब उनके एक-एक अग मे चित्त को साधक स्थिर करे। भगवान के चरणारविंद का ध्यान करे, जिसमें वज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल का चिन्ह है और ऊपर उठे हुए लाल और सुन्दर नखों के प्रकाश से ध्यान करने वालों के हृदय का अन्धकार दूर हो रहा है, इस भावना के साथ भगवान का ध्यान करे। भगवान के चरणारविंदों का ध्यान करे, जिनके धोने से निकली गंगा नदी के श्रेष्ठ और पवित्र जल को मस्तक पर रखने के कारण शिव 'शिव' हो गये। ध्यान करने वाले के मन के पाप-पर्वतों के लिए जो वज्र के समान है, वैसे चरणारविंदों का सदा ध्यान करे। समस्त संसार के निर्माण करने वाले ब्रह्मा की माता, देवताओं के द्वारा पूजित

१२—यदा मनःस्वं विरजं योगेन सुसमाहितं। काष्ठां भगवतो ध्यायेत्स्वनासाग्रावलोकनः॥

१३—प्रसन्नवदनाम्भोजं पद्मगर्भारुणेक्षणं। नीलोत्पलदलश्यामं शंखचक्रगदाधरं॥

१४—लसत्पंकजकिंजल्कपीतकौशेयवाससं। श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकंधरं॥

१५—मत्तद्विरेफकलया परीतं वनमालया। परार्ध्यहारवलयकिरीटांगदनूपुरं॥

१६—कांचीगुणोल्लसच्छ्रोणिं हृदयांभोजविष्टरं। दर्शनीयतमं शांतं मनोनयनवर्धनं॥

१७—अपीच्यदर्शनं शश्वत्सर्वलोकनमस्कृतं। संतं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रहकातरं॥

१८—कीर्तन्यतीर्थयशसं पुण्यश्लोकयशस्करं। ध्यायेद्देवं समग्रांगं यावन्न च्यवते मनः॥

१९—स्थितं व्रजंतमासीनं शयानं वा गुहाशयं। प्रेक्षणीयेहितं ध्यायेच्छुद्धभावेन चेतसा॥

२०—तस्मिँल्लब्धपदं चित्तं सर्वावयवसंस्थितम्। विलक्ष्यैकत्र संयुज्यादंगे भगवतो मुनिः॥

२१—सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविंदं वज्रांकुशध्वजसरोरुहलांछनाढ्यम्।

उत्तुंगरक्तविलसन्नखचक्रवालज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयांधकारम्॥

कमल-लोचना लक्ष्मी, जिन चरणों को अपनी जाँघ पर रख कर अपने कर-पल्लव के प्रकाश से दुलारती हैं। अजन्मा भगवान के उस जानु का हृदय मे ध्यान करे। गरुड की पंखों पर शोभित होने वाले, अत्यन्त बली, अलसी के फूल के समान कान्तिवाले भगवान के जंघों का ध्यान करे। पीताम्बर से लिपटे हुए, करधनी के लच्छे से घिरे हुए नितम्ब (कटि के पीछे वाले भाग) का ध्यान करे। समस्त भुवनों के निवास-स्थान भगवान के उदर में स्थित नाभि का ध्यान करे। जिस नाभि से ब्रह्मा का स्थान, समस्त लोक-रूप-कमल उत्पन्न हुआ था। अनन्तर श्रेष्ठ हरितमणि के समान भगवान के स्तनों का ध्यान करे, जो स्वच्छ हार की किरणों से श्वेत हो रहे थे। पुनः भगवान् के वक्षस्थ का ध्यान करे, जो भगवान की विभूति-लक्ष्मी का निवास स्थान है, और भक्तों के मन और नेत्रों को सुख देने वाला है। समस्त लोकों के नमस्कार योग्य, भगवान के कण्ठ का ध्यान करे, जिस कण्ठ से कौस्तुभमणि की शोभा बढ़ती है। अनन्तर भगवान के बाहुओं का ध्यान करे, जिनमें मन्दर-पर्वत के घुमाने से घिसे हुए, अतएव चमकीले कंकण शोभ रहे हैं तथा जिनमें लोकपालगण वर्तमान हैं। अनन्तर दस सौ आरा वाले असह्य चक्र का ध्यान करे और उनके करकमल में राजहंस के समान विराजमान शख का ध्यान करे। भगवान की प्रिय कौमोदकी (गदा) का ध्यान करे, जो शत्रु-वीरों के रक्त में सनी हुई है। अनन्तर भ्रमर-समूह के गुँजार से गुंजरित भगवान की माला का ध्यान करे, पुनः भगवान के कण्ठमणि का जो जीवात्मा का तत्वरूप है, ध्यान करे? भक्तों

२२—यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेनतीर्थेनमूर्ध्न्यधिकृतेनशिवःशिवोऽभूत् ।
ध्यातुर्मनःशमलशैलनिसृष्टवज्रं ध्यायेच्चिरंभगवतश्चरणारविंदं ॥

२३—जानुद्वयंजलजलोचनयाजनन्यालक्ष्म्याऽखिलस्यसुरवंदितयाविधातुः ।
ऊर्वोर्निधायकरपल्लवरोचिषायत्संलालितंहृदिविभोरभवस्यकुर्यात् ॥

२४—ऊरूसुपर्णभुजयोरधिशोभमानावोजोनिधीअतसिकाकुसुमावभासौ ।
व्यालविपीतवरवाससिवर्तमानकांचीकलापपरिरंभिनितंबबिंबं ॥

२५—नाभिहृदंभुवनकोशगुहोदरस्थंयत्रात्मयोनिधिषणाखिललोकपद्मं ।
व्यूढंहरिन्मणिवृषस्तनयोरमुष्यध्यायेद्द्वयंविशदहारमयूखगौरं ॥

२६—वक्षोऽधिवासमृषभस्यमहाविभूतेःपुंसांमनोनयननिर्वृतिमादधानं ।
कंठंचकौस्तुभमणेरधिभूषणार्थंकुर्यान्मनस्यखिललोकनमस्कृतस्य ॥

२७—बाहूंश्चमंदरगिरेःपरिवर्तनेननिर्णिक्तबाहुवलयानधिलोकपालान् ।
संचिंतयेद्दशशतारमसह्यतेजःशंखंचतत्करसरोरुहराजहंसं ॥

२८—कौमोदकींभगवतोदयितांस्मरेतदिग्धामरातिभटशोणितकर्दमेन ।
मालांमधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टांचैत्यस्यतत्त्वममलंमणिमस्यकंठे ॥

के कृपा-परवश होकर, अवतार धारण करने वाले भगवान के मुख-कमल का ध्यान करे, जिनके निर्मल कपोल, चमकीले मकराकृतिकुण्डल के हिलने से चमक रहे हैं और जिसमें ऊँची नाक है, घुंघुराले बालों से शोभित जो मुख-कमल अपनी शोभा से, लक्ष्मी के निवास-स्थान और भ्रमरों द्वारा सेवित कमल का तिरस्कार करता है और जिसके नेत्र-कमल से दो मछलियों से वेष्ठित कमल तिरस्कृत होता है। उस सुन्दर भौं वाले मुख-कमल का आलस्य छोड़-कर अपने मन में ध्यान करे। अनन्तर भगवान् के कटाक्ष का ध्यान करे, जो कृपा के कारण भयंकर तीन तापों को दूर करने के लिये आँखों से उत्पन्न हुआ है। स्नेह-युक्त स्मित से जिसकी शोभा और अधिक बढ़ गयी है और जो अत्यन्त प्रसन्नता से भरा हुआ है, उसका ध्यान अपने मन में करे। भगवान के समस्त भक्तों के शोकाश्रु से उमड़े समुद्र को, जो सुखा देता है, उस सुन्दर मन्दहास का ध्यान करे। पुनः भगवान् के भ्रूमण्डल का ध्यान करे, जिसकी रचना मुनियों की रक्षा के लिये, कामदेव को भयभीत करने के लिए हुई है। अनन्तर भगवान् के उच्चहास्य का ध्यान करे, जो अति सुन्दर होने के कारण बिना प्रयत्न के ही ध्यान में आता है। जिस हास्य के कारण ओठों की कान्ति से, कुन्दकली के समान श्वेत दाँत, लाल मालूम होने लगते हैं। अपने हृदयाकाश मे वर्तमान भगवान में प्रेमार्द्र भक्ति से मन लगा-कर उनका ध्यान करे, उनके अतिरिक्त और किसी वस्तु को न देखे। इस प्रकार ध्यान के द्वारा भगवान मे प्रेम उत्पन्न होने पर, भक्ति से हृदय द्रवित हो जाता है, आनन्द से रोमाञ्च हो जाता है, उत्कण्ठा की अधिकता से अश्रुधारा बहने लगती है और ध्यान करने वाला आनन्द-

---

२६—भृत्यानुकंपितधियेहगृहीतमूर्त्तेः संचिंतयेद्भगवतोवदनारविंद ।

यद्विस्फुरन्मकरकुंडलवल्गितेनविद्योतितामलकपोलमुदारनास ॥

३०—यच्छ्रीनिकेतमलिभिःपरिसेव्यमानभूत्यास्वयाकुटिलकुंतलवृंदजुष्ट ।

मीनद्वयाश्रयमधिक्षिपदब्जनेत्रं ध्यायेन्मनोमयमतंद्रितउल्लसद्भ्रु ॥

३१—तस्यावलोकमधिकंकृपयाऽतिघोरतापत्रयोपशमनायनिसृष्टमक्ष्णोः ।

स्निग्धस्मितानुगुणितंविपुलप्रसादंध्यायेच्चिरंविपुलभावनयागुहायां ॥

३२—हासंहरेरवनताखिललोकतीव्रशोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारं ।

संमोहनायरचितंनिजमाययास्यभ्रूमंडलंमुनिकृतेमकरध्वजस्य ॥

३३—ध्यानायनंप्रहसितंबहुलाधरोष्ठभासारुणायिततनुद्विजकुंदपंक्ति ।

ध्यायेत्स्वदेहकुहरेऽवसितस्यविष्णोर्भक्त्यार्द्रयाऽर्पितमनानपृथग्दिदृक्षेत् ॥

३४—एवंहरौभगवतिप्रतिलब्धभावोभक्त्याद्रवद्धृदयउत्पुलकःप्रमोदात् ।

औत्कंठ्यबाष्पकलयामुहुरर्द्यमानस्तच्चापिचित्तबडिशंशनकैर्वियुंक्ते ॥

समुद्र में मग्न हो जाता है। मछली पकड़ने वाली बंसी के समान, भगवान को पकड़ने वाला चित्त, धीरे-धीरे ध्यान से अलग होने लगता है। इस प्रकार जब मन निर्विषय हो जाता है, जब ध्यान का आश्रय भगवत् स्वरूप हट जाता है, उस समय वैराग्य के कारण शब्द, स्पर्श आदि का भी ज्ञान नहीं होता, अतएव मन का निर्वाण हो जाता है, उसका लय हो जाता है, अर्थात् वृत्तियों से हट कर वह ब्रह्मरूप हो जाता है। जिस प्रकार अपने आश्रय, लकड़ी, तेल आदि के अभाव होने पर, प्रकाश बुझ जाता है और महाभूत अग्नि में लय हो जाता है। उस समय ध्याता, ध्येय आदि का भेद नहीं रहता, एक अखण्ड आत्मा की प्रतीति होने लगती है, क्योंकि उस समय शरीर आदि उपाधियों की प्रतीति नहीं होती। वह पुरुष अपने स्वरूप-ब्रह्मरूप में स्थित हो जाता है, क्योंकि उस समय योगाभ्यास के द्वारा अविद्या के नष्ट हो जाने से मन विषयों से निवृत्त हो जाता है। अतएव सुख-दुःख-रहित ब्रह्म में मन अवस्थित होता है। सुख-दुःख के हेतु, मैं भोक्ता हूँ, कर्ता हूँ; इस भाव को वह पुरुष अहंकार-जनित समझने लगता है, अतएव पुनः उसको सुख-दुःख नहीं होते। क्योंकि उसे ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है। इस प्रकार के सिद्ध को अपने शरीर का भी भान नहीं रहता, क्योंकि उसे अपने स्वरूप-ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है। शरीर आसन पर है या खड़ा है, उस स्थान से हट गया है या कर्म-वश पुनः उसी स्थान पर आ गया है—इन बातों की ओर थोड़ा भी ध्यान नहीं रहता। जिस प्रकार मदिरा से उन्मत्त मनुष्य को कपड़े का ज्ञान नहीं रहता। शरीर पूर्व कर्मों के अधीन है, अतएव जब तक कर्म-फल शेष रहते हैं, तब तक वह इन्द्रियों के साथ जीवित रहता है, फल-भोग की समाप्ति की प्रतीक्षा करता है। समाधि के द्वारा आत्म-स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर, उस पुरुष को स्त्री, पुत्र आदि के साथ देह में ममता नहीं रह

३५—मुक्ताश्रयंयर्हिनिर्विषयंविरक्तं निर्वाणमृच्छतिमनःसहसायथाऽर्चिः।
आत्मानमत्रपुरुषोऽव्यवधानमेकमन्वीक्षतेप्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः॥

३६—सोऽप्येतयाचरमयामनसोनिवृत्त्यातस्मिन्महिम्न्यवसितः सुखदुःखबाह्ये।
हेतुत्वमप्यसतिकर्तरिदुःखयोर्यत्स्वात्मन्विधत्तउपलब्धपरात्मकाष्ठः॥

३७—देहंचतंनचरमःस्थितमुत्थितंवासिद्धोविपश्यतियतोऽध्यगमत्स्वरूपं।
दैवादुपेतमथदैववशादपेतंवासोयथापरिकृतंमदिरामदान्धः॥

३८—देहोपिदैववशगःखलुकर्मयावत्स्वारम्भकंप्रतिसमीक्षतएवसासुः।
तंसप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगःस्वाप्नंपुनर्नभजतेप्रतिबुद्धवस्तुः॥

३९—यथापुत्राच्चवित्ताच्चपृथङ्मर्त्यःप्रतीयते। अप्यात्मत्वेनाभिमताद्देहादेःपुरुषस्तथा॥

४०—यथोल्मुकाद्विस्फुलिंगाद्धूमाद्वापिस्वसम्भवात्। अप्यात्मत्वेनाभिमतात्तदग्निः पृथगुल्मुकात्॥

जाती। जिस प्रकार धन और पुत्रों से मनुष्य भिन्न है, इसी प्रकार आत्मा के रूप में मानी हुई देह से भी वह भिन्न है। जलती हुई लकड़ी, अग्नि-कण और धूम से आग की उत्पत्ति हुई है और ये भी अग्नि स्वरूप समझे जाते है, पर आग इनसे भिन्न है। इसी प्रकार देह, इन्द्रिय और अन्तःकरण से युक्त प्रधान से, जो जीव कहा जाता है, आत्मा भिन्न है, वह द्रष्टा है, ब्रह्म है। सब प्राणियों मे अपने को और अपने मे सब प्राणियों को देखना चाहिए, जिस प्रकार इन चतुर्विध प्राणियों मे पंचभूत और पंचभूतों मे चतुर्विध प्राणी समझे जाते हैं। जिस प्रकार एक ही अग्नि अपनी योनि, लकड़ी आदि के भेद से अनेक प्रकार की प्रतीत होती है, उसी प्रकार आत्मा भी एक है, शरीर आदि के भेद से इसके भेद होते हैं। कार्य कारण-रूप भगवान् की प्रकृति को, जिस का यथार्थ ज्ञान कठिन है, अपने वश में करके, उसके बन्धन से छूट कर पुरुष अपने स्वरूप—ब्रह्मरूप में स्थित होता है॥ १, ४४॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कंध का अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त

उन्तीसवाँ अध्याय

भक्ति और जन्म-मरण

देवहूति बोली—महाराज, प्रकृति-पुरुष और महत् आदि का लक्षण आपने बतलाया। जिससे उनका यथार्थ स्वरूप जाना जाता है, यह लक्षण आपने सांख्य के अनुसार बतलाया है,

---

४१—भूतेंद्रियांतःकरणात्प्रधानाज्जीवसंज्ञितात्। आत्मातथापृथग्द्रष्टाभगवान्ब्रह्मसंज्ञितः॥

४२—सर्वभूतेषुचात्मानंसर्वभूतानिचात्मनि। ईक्षेतानन्यभावेनभूतेष्विवतदात्मताम्॥

४३—स्वयोनिषुयथाज्योतिरेकंनानाप्रतीयते। योनीनांगुणवैषम्यात्तथात्माप्रकृतौस्थितः॥

४४—तस्मादिमांस्वांप्रकृतिंदैवींसदसदात्मिकाम्। दुर्विभाव्यांपराभाव्यस्वरूपेणावतिष्ठते॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेतृतीयस्कंधेकापिलेयेसाधनानुष्ठाननामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः॥ २८॥

देवहूतिरुवाच—

१—लक्षणंमहदादीनांप्रकृतेःपुरुषस्यच। स्वरूपंलक्ष्यतेऽमीषांयेनतत्पारमार्थिकम्॥

जो भक्ति का मूल है, अर्थात् जिससे भक्ति उत्पन्न होती है। भगवन्! अब आप भक्ति के भेद बतलावें। भगवन्, जीव का जन्म अनेक योनियों मे भी होता है, इसका भी निरूपण कीजिए, जिसके सुनने से मनुष्य समस्त सासारिक विषयों से विरक्त हो जाता है। ब्रह्मा आदि से भी श्रेष्ठ, काल का स्वरूप बतलाइए, जो काल आपका स्वरूप है और जिसके भय से मनुष्य पुण्य-करता है। जो लोग अज्ञानी है, अतएव मिथ्या वस्तुओं में अहङ्कार रखते हैं, कर्म करते-करते उनकी बुद्धि थक गयी है, अतएव वे अज्ञान-रूप समुद्र मे सो रहे है, ऐसे मनुष्यों को जगाने के लिए आप योग-सूर्य, योग के प्रकाशक उत्पन हुए हैं॥ १,५॥

मैत्रेय बोले—महामुनि कपिल ने माता के सुन्दर वचनों की प्रशसा की और विदुर, वे प्रसन्न होकर इस प्रकार बोले॥ ६॥

श्रीभगवान बोले—माता, मार्ग-भेद से भक्ति अनेक प्रकार की है। मनुष्य की मानसिक वृत्तियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं,अतएव उनके अभिप्राय भी भिन्न-भिन्न होते हैं और इसी अभिप्राय-भेद के कारण, भक्ति भी अनेक प्रकार की होती है। हिंसा, (किसी को पीड़ा पहुँचाने या मारने के लिए) दम्भ, (अपने को भक्त नाम से प्रसिद्ध करने के लिए) मात्सर्य, (किसी को नीचा दिखाने के लिए) के सङ्कल्प से जो क्रोधी मनुष्य यथार्थ ज्ञान के बिना ही मेरी भक्ति करता है, वह तामस भक्ति है। जो विषय, यश और ऐश्वर्य की इच्छा से यथार्थ ज्ञान के बिना, मूर्ति में मेरी पूजा करता है, वह राजस भक्ति है। पापों के नाश के लिए, कर्मों को भगवदर्पण के लिए अथवा कर्म करना चाहिए,इसलिए जो, कर्म करता है, वह मेरी सात्विक भक्ति है। मेरे गुणों को सुनने मात्र से सर्वान्तर्यामी, मुझमे जिसके मन की समस्त वृत्तियाँ लग जाती हैं और सदा लगी

२—यथासांख्येषुकथितयन्मूलतत्प्रचक्षते। भक्तियोगस्यमेमार्गंब्रूहिविस्तरशःप्रभो॥

३—विरागोयेनपुरुषोभगवन्सर्वतोभवेत्। आचक्ष्वजीवलोकस्यविविधाlokसंसृतीः॥

४—कालस्येश्वररूपस्यपरेषांचपरस्यते। स्वरूपंबतकुर्वन्तियद्धेतोःकुशलंजनाः॥

५—लोकस्यमिथ्याभिमतेरचक्षुषश्चिरंप्रसुप्तस्यतमस्यनाश्रये।

आंतस्यकर्मस्वनुविद्धयाधियात्वमाविरासीःकिलयोगभास्करः॥

मैत्रेयउवाच—

६—इतिमातुर्वचःश्लक्ष्णंप्रतिनंद्यमहामुनिः। आबभाषेकुरुश्रेष्ठप्रीतस्तांकरुणाऽर्दितः॥

श्रीभगवानुवाच—

७—भक्तियोगोबहुविधोमार्गैर्भामिनिभाव्यते। स्वभावगुणमार्गेणपुंसांभावोविभिद्यते॥

८—अभिसंधाययद्धिंसांदम्भंमात्सर्यमेववा। संरम्भीभिन्नदृग्भावंमयिकुर्यात्सतामसः॥

९—विषयानभिसंधाययशऐश्वर्यमेववा। अर्चादावर्चयेद्योमांपृथग्भावःसराजसः॥

१०—कर्मनिर्हारमुद्दिश्यपरस्मिन्वातदर्पणं। यजेद्यष्टव्यमितिवापृथग्भावःससात्विकः॥

रहती हैं, थोड़ी देर के लिए भी अलग नहीं होतीं, जिसप्रकार गंगा की धारा समुद्र मे मिलती है, एकबार मिली, सो मिली, फिर एक क्षण के लिए भी अलग नहीं हुई। निर्गुण भक्तियोग का लक्षण मैंने बतलाया। अहैतुकी (निष्काम) भक्ति वह है, जिसमे भेद-ज्ञान नहीं रहता। मैं दूसरा हूँ और भगवान् दूसरे। निष्काम-भक्त केवल भक्ति चाहते हैं, फल कोई नहीं। सालोक्य (मेरे साथ एक लोक मे रहना) सार्ष्टि (मेरे समान ऐश्वर्य पाना) सामीप्य (मेरे पास रहना) सारूप्य (मेरे जैसा रूप पाना) और एकत्व (मुझमे मिल जाना) भक्ति के—ये फल, यदि उन्हें दिये जायँ, तो न लें, क्योंकि वे केवल मेरी सेवा चाहते हैं। मेरी सेवा के बिना ये अधिक से अधिक फल को भी नहीं चाहते। यही भक्ति-योग सबसे श्रेष्ठ पुरुषार्थ है। उसके द्वारा मनुष्य त्रिगुण छोड़कर ब्रह्मज्ञान पाता है॥ ७,१४॥

बिना फल की कामना से स्वधर्म का पालन करना, विधिपूर्वक भगवत्पूजन आदि करना जिसमे हिंसा न हो और जो निष्काम हो, मेरे स्थान का दर्शन, स्पर्श, पूजा, स्तुति, अभिवन्दन करना, प्राणियों को मेरे रूप मे देखना, धैर्य और वैराग्य रखना, बड़ों का सम्मान करना, दीनों पर कृपा करना, समान पुरुषों से मित्रता रखना, यम और नियम का पालन करना, ज्ञान-शास्त्रों का श्रवण करना, नाम-कीर्तन करना, नम्रता रखना, सज्जनों का साथ करना तथा निरहंकार रहना, इन गुणों से भगवत् धर्म पालन करने वालों का चित्त शुद्ध होता है, पुनः मेरा गुण सुनने से ही पुरुष का मन मुझमे लग जाता है। वायु के द्वारा फैलायी गन्ध, स्वयं आकर घ्राण (नाक) के पास पहुँच जाती है, इसी प्रकार भक्ति-योग मे लगा निर्विकार मन, आत्मा के पास आ जाता है। मैं भूतात्मा हूँ, सब प्राणियों मे रहता हूँ, पर मनुष्य मेरा तिरस्कार करके मूर्ति

११—मद्गुणश्रुतिमात्रेणमयिसर्वगुहाशये। मनोगतिरविच्छिन्नायथागंगाऽम्भसोम्बुधौ॥

१२—लक्षणभक्तियोगस्यनिर्गुणस्यह्युदाहृतम्। अहैतुक्यव्यवहितायाभक्तिःपुरुषोत्तमे॥

१३—सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत। दीयमाननगृह्णन्तिविनामत्सेवनजनाः॥

१४—सएवभक्तियोगाख्यआत्यंतिकउदाहृतः। येनातिव्रज्यत्रिगुणंमद्भावायोपपद्यते॥

१५—निषेवितेनानिमित्तेनस्वधर्मेणमहीयसा। क्रियायोगेनशस्तेननातिहिंस्रेणनित्यशः॥

१६—मद्धिष्ण्यदर्शनस्पर्शपूजास्तुत्यभिवंदनैः। भूतेषुमद्भावनयासत्त्वेनासंगमेनच॥

१७—महतांबहुमानेनदीनानामनुकंपया। मैत्र्याचैवात्मतुल्येषुयमेननियमेनच॥

१८—आध्यात्मिकानुश्रवणान्नामसंकीर्तनाच्चमे। आर्जवेनार्यसंगेननिरहंक्रिययातथा॥

१९—मद्धर्मणोगुणैरेतैःपरिसंशुद्धआशयः। पुरुषस्याजसाभ्येतिश्रुतमात्रगुणंहिमाम्॥

२०—यथावातरथोघ्राणमावृङ्क्तेगंधआशयात्। एवंयोगरतंचेतआत्मानमविकारियत्॥

२१—अहंसर्वेषुभूतेषुभूतात्मावस्थितःसदा। तमवज्ञायमांमर्त्यःकुरुतेर्चाविडम्बनं॥

२२—योमांसर्वेषुभूतेषुसंतमात्मानमीश्वरं। हित्वार्चांभजतेमौढ्याद्भस्मन्येवजुहोतिसः॥

आदि में मेरी पूजा का आडम्बर करता है। समस्त प्राणियों मे परमात्मा ईश्वर-रूप से वर्तमान मुझको छोड़कर, जो मनुष्य मूर्ति की पूजा करता है, उसकी यह पूजा भस्म में हवन के तुल्य है। यथार्थ ज्ञान न रखनेवाला जो अभिमानी, दूसरे के शरीर मे वर्तमान मुझसे द्वेष रखता है, उसका मन प्राणियों से वैर रखने के कारण शान्ति नहीं पाता। निष्पापे, भिन्न-भिन्न सामग्रियों के द्वारा पूजा आदि करने से मैं प्राणियों के तिरस्कार करनेवालों पर प्रसन्न नहीं होता। मैं समस्त प्राणियों मे वर्तमान रहता हूँ, यह बात जब तक भक्त के हृदय में न आ जाय, तब तक अपने धर्म का पालन करता हुआ वह मूर्ति में मेरी पूजा करे। जो अपने और दूसरों मे थोड़ा भी भेद देखता है, उस अयथार्थ ज्ञानी को मैं मृत्युरूप से भयभीत करता हूँ। मैं भूतात्मा हूँ, सब प्राणियों में निवास करता हूँ, अतएव समस्त प्राणियों का दान और सम्मान से आदर करना चाहिए, मैत्री करनी चाहिए और अपने समान समझना चाहिए ॥ १५,२७॥

अचेतनों से चेतन श्रेष्ठ है, उनसे प्राणधारी, उनसे मन वाले (ज्ञानी) उनसे इन्द्रिय वृत्तिवाले, उनसे स्पर्श जाननेवाले, उनसे रसज्ञ, उनसे गन्ध का ज्ञान रखनेवाले, उनसे शब्द समझने वाले, उनसे रूप समझने वाले, उनसे दोनों ओर दाँत वाले, उनसे अनेक पैर वाले, उनसे चार पैर वाले और उनसे दो पैर वाले श्रेष्ठ हैं। इन सबसे श्रेष्ठ चार वर्ण हैं। चार वर्णों मे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, ब्राह्मणों मे वेदज्ञ और वेदज्ञों में वेदार्थ का ज्ञाता श्रेष्ठ है। अर्थज्ञ से श्रेष्ठ है, संशयों को दूर करनेवाला, उससे श्रेष्ठ है अपना धर्म पालन करनेवाला, उससे निष्काम कर्म करनेवाला। और उनसे श्रेष्ठ हैं वे, जिन्होंने समस्त कर्म-फल, शरीर और आत्मा मुझे आर्पित कर दिया है और इस प्रकार जो मुझमें मिल गये हैं, जिन्होंने मुझमे अपनी आत्मा अर्पित करदी है अपने कर्म

२३—द्विषतःपरकायेमामानिनोभिन्नदर्शिनः। भूतेषुबद्धवैरस्यनमनःशांतिमृच्छति ॥

२४—अहमुच्चावचैर्द्रव्यै क्रिययोत्पन्नयाऽनघे। नैवतुष्येऽर्चितोर्चायाभूतग्रामावमानिनः ॥

२५—अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरंमास्वकर्मकृत्। यावन्नवेदस्वहृदिसर्वभूतेष्ववस्थितं ॥

२६—आत्मनश्चपरस्यापियःकरोत्यंतरोदरं। तस्यभिन्नदृशोमृत्युर्विदधेभयमुल्बणं ॥

२७—अथमांसर्वभूतेषुभूतात्मानंकृतालय। अर्हयेद्दानमानाभ्यामैत्र्याऽभिन्नेनचक्षुषा ॥

२८—जीवाःश्रेष्ठाह्यजीवानांततःप्राणभृतःशुभे। ततःसचित्ताःप्रवरास्ततश्चेंद्रियवृत्तय. ॥

२९—तत्रापिस्पर्शवेदिभ्यःप्रवरारसवेदिनः। तेभ्योगंधविदःश्रेष्ठास्ततःशब्दविदोवराः ॥

३०—रूपभेदविदस्तत्रततश्चोभयतोदतः। तेषांबहुपदाःश्रेष्ठाश्चतुष्पादस्ततोद्विपात् ॥

३१—ततोवर्णाश्चचत्वारस्तेषांब्राह्मणउत्तमः। ब्राह्मणेष्वपिवेदज्ञोह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्ततः ॥

३२—अर्थज्ञात्संशयच्छेत्तावतःश्रेयान्स्वकर्मकृत्। मुक्तसंगस्ततोभूयानदोग्धाधर्ममात्मनः ॥

३३—तस्मान्मय्यर्पिताशेषक्रियार्थात्मानिरंतरः। मय्यर्पितात्मनःपुंसोमयिसंन्यस्तकर्मणः ॥

अर्पित कर दिये हैं। उन समदर्शी और कर्तृत्वाभिमान-रहित पुरुष से बढ़कर मैं किसी दूसरे को नहीं समझता। इन प्राणियों को सम्मान के साथ प्रणाम करना चाहिए, यह समझ कर कि अन्तर्यामीरूप से भगवान का इनमें निवास है॥ २८,३४॥

हे मनुपुत्री, मैंने भक्तियोग और योग—दोनों बतलाया। इनमें किसी एक के द्वारा मनुष्य परमपुरुष को पा सकता है। परमात्मा भगवान् के ये रूप हैं, सर्वनियन्ता, प्रकृति, पुरुष। इनके अतिरिक्त भगवान् का रूप दैव कहा जाता है, जिससे अनेक प्रकार की सृष्टि होती है। भगवान् के एक दिव्यरूप को काल कहते है, जिससे पदार्थों के रूप मे परिवर्तन होता है, पंच-भूत, महत्तत्व आदि तत्त्वों तथा अज्ञानी जीवों को इससे भय होता है, समस्त प्राणियों के आश्रय भगवान् प्राणियों मे प्रवेश करके उन्हींके द्वारा उनका संहार करते हैं। वे ही यज्ञफल-दाता विष्णु नामक काल हैं। जो वश करनेवालों मे सबसे प्रधान हैं। इसका न कोई मित्र है न शत्रु, न बान्धव। यह काल असावधान मनुष्यों का नाश करने के लिए, सावधान होकर असावधान मनुष्यों मे प्रवेश करता है। जिसके भय से यह वायु चलती है, सूर्य जिसके भय से तपता है, जिसके भय से मेघ बरसते हैं और नक्षत्र प्रकाश करते हैं। वनस्पति-लताएँ और औषधियाँ जिसके भय से समय पर पुष्प-फल देती हैं, जिसके भय से नदियाँ बहती हैं, समुद्र अपने तट नहीं लाँघता, आग जलती है, पर्वतों के साथ पृथ्वी पानी मे नहीं डूबती। जिसके भय से आकाश प्राणियों को स्थान देता है और जिसके भय से अङ्कुरस्वरूप यह महान् अपने शरीर को सात आवरणों से युक्त लोक के रूप मे परिणत करता है। गुणाभिमानी ब्रह्मा आदि देवता भी जिसके भय से प्रत्येक युग में सृष्टि आदि अपने काम किया करते हैं। जिनके वश में यह

३४—नपश्यामिपरंभूतमकर्तुःसमदर्शनात्। मनसैतानिभूतानिप्रणमेद्बहुमानयन्॥
ईश्वरोजीवकलयाप्रविष्टोभगवानिति॥
३५—भक्तियोगश्चयोगश्चमयामानव्युदीरितः। ययोरेकतरेणैवपुरुषःपुरुषंव्रजेत्॥
३६—एतद्भगवतोरूपंब्रह्मणःपरमात्मनः। परंप्रधानंपुरुषंदैवंकर्मविचेष्टितं॥
३७—रूपभेदास्पदंदिव्यंकालइत्यभिधीयते। भूतानांमहदादीनांयतोभिन्नदृशांभयं॥
३८—योऽन्तःप्रविश्यभूतानिभूतैरत्त्यखिलाश्रयः। सविष्ण्वाख्योऽधियज्ञोऽसौकालःकलयतांप्रभुः॥
३९—नचास्यकश्चिद्दयितोनद्वेष्योनचबान्धवः। आविशत्यप्रमत्तोऽसौप्रमत्तंजनमन्तकृत्॥
४०—यद्भयाद्वातिवातोऽयंसूर्यस्तपतियद्भयात्। यद्भयाद्वर्षतेदेवोभगणोभातियद्भयात्॥
४१—यद्वनस्पतयोभीतालताश्चौषधिभिःसह। स्वेस्वेकालेऽभिगृह्णन्तिपुष्पाणिचफलानिच॥
४२—स्रवन्तिसरितोभीतानोत्सर्पत्युदधिर्यतः। अग्निरिन्धेसगिरिभिर्भूर्नमज्जतियद्भयात्॥
४३—नभोददातिश्वसतांपदंयन्नियमाददः। लोकंस्वदेहंतनुतेमहान्सप्तभिरावृतं॥
४४—गुणाभिमानिनोदेवाःसर्गादिष्वस्ययद्भयात्। वर्ततेऽनुयुगंयेषांवशएतच्चराचरम्॥

समस्त चराचर—विश्व है। उस काल का अन्त नहीं है, वही सबका अन्त करता है, वह अनादि है और सबका आदि है। पिता आदि के द्वारा पुत्र उत्पन्न कराता है और सबका संहार करता है ॥ ३५,४१ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कंध का उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त

—॰—

तीसवाँ अध्याय

तामसी गति

कपिलदेव बोले—उस काल के प्रबल पराक्रम को मनुष्य प्रायः नहीं जानते, यद्यपि सभी उसके वश में हैं। जिस प्रकार मेघ वायु के पराक्रम को भूल जाते हैं। मनुष्य जिस-जिस पदार्थ को दुःख उठाकर अपने सुख के लिए एकत्र करता है, उनसब पदार्थों को भगवान् काल नष्ट कर देते हैं, जिनके लिए मनुष्य शोक करता है। स्त्री-पुत्र-सहित यह शरीर अनित्य है, पर मूर्ख मनुष्य मोह से शरीर सम्बन्धी घर, खेत, धन आदि को नित्य समझता है। जीव इस संसार में चाहे जिस योनि में जाय, वहीं उसे आनन्द मिलता है, उसीमें वह अपने को सुखी समझता है, अतएव उसको वैराग्य नहीं होता। वैराग्य तो तब हो, जब कोई दुःख हो। नरक में रहने पर भी, जीव

४५—सोऽनंतोऽतकर.कालोऽनादिरादिकृदव्ययः। जनंजनेनजनयन्मारयन्मृत्युनाऽतक ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेतृतीयस्कंधेएकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

कपिलउवाच—

१—तस्यैतस्यजनोनूननायवेदोरुविक्रम। काल्यमानोऽपिबलिनोवायोरिवघनावलिः ॥

२—यंयमर्थमुपादत्तेदु खेनसुखहेतवे। ततंधुनोतिभगवान्पुमान्शोचतियत्कृते ॥

३—यदध्रुवस्यदेहस्यसानुबंधस्यदुर्मतिः। ध्रुवाणिमन्यतेमोहाद्गृहक्षेत्रवसूनिच ॥

नारकीय शरीर छोड़ना न चाहेगा, क्योंकि भगवान् की माया से मोहित होकर वह नरक के भोजन में ही प्रसन्न रहता है। देह, स्त्री, पुत्र, घर, पशु, धन और बान्धवों में उसका हृदय आसक्त हो जाता है और वह इसीसे अपने को कृतार्थ समझता है। इनके भरण-पोषण आदि के लिए उसका समस्त शरीर जलता रहता है, शरीर जलने के समान दुःख उठाता रहता है, और वह दुर्बुद्धि मनुष्य सदा पाप में लगा रहता है। दुष्ट स्त्रियों के द्वारा एकान्त में रची माया से, बालकों के मधुर भाषण से, उसका मन और इन्द्रियाँ आकृष्ट हो जाती हैं। छल-कपट-पूर्ण गृहधर्म में जहाँ दुःखों की प्रधानता है, मनुष्य आलस्य छोड़ कर दुःख दूर करने का प्रयत्न करता है और वह इसे ही सुख समझता है। हिंसा आदि दुष्कर्मों के द्वारा इधर-उधर से धन एकत्र करके वह उन लोगों का पोषण करता है, जिनके कारण उसे स्वयं नरक में जाना पड़ता है तथा उनका जूठा खाना पड़ता है। जीविका का उपाय नष्ट हो जाता है, बार-बार प्रारम्भ करने पर भी नष्ट हो जाता है। उद्योगहीन होकर लोभ के कारण दूसरों का धन नहीं देना चाहता है। जब वह कुटुम्ब का पोषण नहीं कर सकता, उस अभागी के सभी परिश्रम व्यर्थ हो जाते हैं। तब वह धनहीन, दीन, मूर्ख उसीसे लिया करता है। जब वह अपने परिवार वालों का भरण-पोषण पहले के समान नहीं कर सकता, तब वे परिवार वाले भी पहले के समान उसका आदर नहीं करते, जिस प्रकार किसान बूढ़े बैल का आदर नहीं करते। इस पर भी उसे वैराग्य नहीं होता, जिनका उसने पोषण किया है, उन्हींके द्वारा पोषित होने लगता है, बुढ़ापे से चेहरा बिगड़ जाता है और घर में बैठ कर मृत्यु की प्रतीक्षा करता है।

४—जन्तुर्वैभवएतस्मिन्यायायोनिमनुव्रजेत् । तस्यातस्यासलभतेनिर्वृतिंनविरज्यते ॥

५—नरकस्थोऽपिदेहं वैनपुमांस्त्यक्तुमिच्छति । नारक्यानिर्वृतौसत्यादेवमायाविमोहितः ॥

६—आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबंधुषु । निगूढमूलहृदयआत्मानंबहुमन्यते ॥

७—संदह्यमानसर्वांगएपामुद्वहनाधिना । करोत्यविरतमूढोदुरितानिदुराशयः ॥

८—आक्षिप्तात्मेंद्रियःस्त्रीणामसतीनांचमायया । रहोरचितयालापैःशिशूनांकलभाषिणां ॥

९—गृहेषुकूटधर्मेषुदुःखतंत्रेष्वतंद्रितः । कुर्वन्दुःखप्रतीकारंसुखवन्मन्यतेगृही ॥

१०—अर्थैरापादितैर्गुर्व्याहिंसयेतस्ततश्चतान् । पुष्णातियेषांपोषेणशेषभुग्यात्यधःस्वयं ॥

११—वार्तायांलुप्यमानायामारब्धायांपुनःपुनः । लोभाभिभूतोनिःसत्त्वपरार्थेकुरुतेस्पृहाम् ॥

१२—कुटुंबभरणाकल्पोमंदभाग्योवृथोद्यमः । श्रियाविहीनःकृपणोध्यायञ्छ्वसितिमूढधीः ॥

१३—एवंस्वभरणाकल्पंतत्कलत्रादयस्तदा । नाद्रियंतेयथापूर्वंकीनाशाइवगोजरम् ॥

१४—तत्राप्यजातनिर्वेदोभ्रियमाणःस्वयंभृतैः । जरयोपात्तवैरूप्योमरणाभिमुखोगृहे ॥

१५—आस्तेऽवमत्योपन्यस्तंगृहपालइवाहरन् । आमयाव्यप्रदीप्ताग्निरल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥

कुत्ते के समान अपमानपूर्वक दिया टुकड़ा खाता है, रोगी हो जाता है, जठराग्नि मन्द पड़ जाती है, भोजन थोड़ा हो जाता है, हाथ-पैर नहीं चलते, काम नहीं होता। वायु चढ़ जाती है, आँखें निकल आती हैं, कफ से नाड़ियाँ रुक जाती है, खाँसी और साँस से वह थक जाता है। गले में घुर-घुराहट होने लगती है। शोक करने वाले बान्धवों से घिर कर वह सो जाता है, कोई बुलाता है तो भी वह बोलता नहीं, क्योंकि वह मृत्यु के पंजे में फँसा हुआ है। घोर वेदना से उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है इस प्रकार कुटुम्ब-भरण में व्याकुल, इन्द्रिय-परवश मनुष्य मर जाता है, और उसके घर वाले रोने लगते हैं ॥ १,१८ ॥

उस समय क्रोध पूर्वक देखते हुए दो भयंकर यमदूत वहाँ आते हैं। वह उनको देखकर भयभीत हो जाता है और मल-मूत्र त्याग करने लगता है। यमदूत यातना-शरीर में (दुःख भोग वाले) उसको रख कर और गले में रस्सी बाँध कर पकड़े हुये, उसे बड़ी दूर ले जाते हैं, जिस प्रकार अपराधी को राजा के सिपाही पकड़ ले जाते हैं। यमदूतों के डाँट, फटकार से उसका हृदय छिद जाता है, वह काँपने लगता है, रात्रि में उसे कुत्ते काटने लगते हैं, वह बहुत दुःखी होता है और अपने पापों का स्मरण करता है। भूख और प्यास से दुःखी हो जाता है। तभी काल के मार्ग में चलता है, सूर्य, दावानल और वायु से खूब तप जाता है। पीठ पर कोड़े की मार खाता है, चलने की शक्ति न रहने पर भी चलता है और ऐसे रास्ते में चलना पड़ता है, जहाँ न विश्राम के लिए स्थान है और न जल है। इस प्रकार चलते-चलते वह गिर जाता है, थक जाता है, मूर्च्छित हो जाता है, पुनः उठता है। इस प्रकार वह निर्दय यमदूत अन्धकार मार्ग से उसे यमलोक ले जाते हैं। निन्नानवे हजार योजन मार्ग, तीन या दो मुहूर्त में इसे चलना पड़ता है, वहाँ पहुँच कर यह यम-यातना भोगता है ॥ १९, २४ ॥

१६—वायुनोत्क्रमतोत्तार.कफसंरुद्धनाडिक: । कासश्वासकृतायास:कंठेघुरघुरायते ॥

१७—शयान:परिशोचद्भि:परिवीत:स्वबन्धुभि. । वाच्यमानोऽपिनब्रूतेकालपाशवशंगत: ॥

१८—एवंकुटुम्बभरणेव्यापृतात्माऽजितेंद्रिय. । म्रियतेरुदतांस्वानामुरुवेदनयाऽस्तधी: ॥

१९—यमदूतौतदाप्राप्तौभीमौसरभसेक्षणौ । सदृष्ट्वात्रस्तहृदय:शकृन्मूत्रंविमुंचति ॥

२०—यातनादेहआवृत्यपाशैर्बध्वागलेबलात् । नयतोदीर्घमध्वानदंड्य राजभटायथा ॥

२१—तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवेपथु: । पथिश्वभिर्भक्ष्यमाणआर्तोऽघंस्वमनुस्मरन् ॥

२२—क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलै.संतप्यमान.पथितप्तवालुके ।

कृच्छ्रेणपृष्ठेकशयाचताडितश्चलत्यशक्तोऽपिनिराश्रमोदके ॥

२३—तत्रतत्रपतन्श्रांतोमूर्च्छित:पुनरुत्थित: । यथापापीयसानीतस्तमसायमसादनम् ॥

२४—योजनानांसहस्राणिनवतिंनवचाध्वन. । त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यांवानीत:प्राप्नोतियातना: ॥

गलते वस्त्र आदि से लपेट कर इसका शरीर जलाया जाता है। अपने शरीर का मांस या दूसरे के शरीर का मांस नोच कर खाना पड़ता है। यमलोक में कुत्ते या गिद्ध जीते मनुष्य की अँतड़ियाँ निकालते हैं, साँप, बिच्छू और डाँस आदि के काटने से पीड़ा होती है। शरीर टुकड़े-टुकड़े किया जाता है; अथवा हाथी आदि से फड़वा दिया जाता है। पर्वत, शिखर से गिरा दिया जाता और गढ़े वा जल मे डुबा दिया जाता है। तामिस्र, अन्धतामिस्र और रौरव आदि नरकों की यातनाएँ स्त्री और पुरुषों को जो भोगनी पड़ती है, उसका कारण उन दोनों के साथ होना ही है। मातः, यह कहना सत्य है कि नरक और स्वर्ग यही है। नरक की यातनाएँ यहाँ भी देख पड़ती हैं। जो यहाँ केवल कुटुम्ब-भरण मे अथवा केवल अपना ही पेट पालने मे लगा रहता है। वह इन दोनों—अपने शरीर और कुटुम्ब को यहीं छोड़ कर यमलोक जाता है और ऐसे फल पाता है। प्राणियों को दुःख पहुँचा कर जिस शरीर का पालन किया है; उसको यहीं छोड़कर, वह अकेले पाप को साथ लेकर अन्धकार मे जाता है। वह पुरुष नरक मे दैव के दिये कुटुम्ब-पोषण के पाप का भागी है और जिसका धन लुट गया हो, उसके समान दुःखी होता है। जो जीव केवल अधर्म से ही कुटुम्ब का भरण करता है, धनार्जन करता है, वह अन्धतामिस्र नामक नरक में जाता है। जो तमोगुण के दुःख का अन्तिम स्थान है, जहाँ से पुनः उद्धार नहीं होता। मनुष्य जन्म लेने के पहले तक जितने दुःख है, जितनी योनियाँ हैं, उन सबका भोग करके और क्रम से पवित्र होता हुआ, वह पुनः इसी लोक में आता है॥ २५, ३४॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कंध का तीसवाँ अध्याय समाप्त

२५—आदीपनंस्वगात्राणांवेष्टयित्वोल्मुकादिभिः। आत्ममांसादनक्वापिस्वकृत्तंपरतोऽपिवा॥

२६—जीवतश्चान्त्राभ्युद्धारःश्वगृध्रैर्यमसादने। सर्पवृश्चिकदंशाद्यैर्दशद्भिश्चात्मवैशसम्॥

२७—कृंतनंचावयवशोगजादिभ्योभिदापनम्। पातनंगिरिशृंगेभ्यारोधनंचाम्बुगर्तयोः॥

२८—यास्तामिस्रांधतामिस्रारौरवाद्याश्चयातनाः। भुंक्तेनरोवानारीवामिथःसंगेननिर्मिताः॥

२९—अत्रैवनरकःस्वर्गइतिमातःप्रचक्षते। यायातनावैनारक्यस्ताइहाप्युपलक्षिताः॥

३०—एवंकुटुंबंबिभ्राणउदरंभरएववा। विसृज्येहोभयंप्रेत्यभुंक्तेतत्फलमीदृशम्॥

३१—एकःप्रपद्यतेध्वांतंहित्वेदंस्वंकलेवरम्। कुशलेतरपाथेयोभूतद्रोहेणयद्भृतम्॥

३२—दैवेनासादितंतस्यशमलंनिरयेपुमान्। भुंक्तेकुटुंबपोषस्यहृतवित्तइवातुरः॥

३३—केवलेनह्यधर्मेणकुटुंबभरणोत्सुकः। यातिजीवोऽन्धतामिस्रंचरमंतमसःपदं॥

३४—अधस्तान्नरलोकस्ययावतीर्यातनादयः। क्रमशःसमनुक्रम्यपुनरत्राव्रजेच्छुचिः॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेतृतीयस्कंधेकापिलेयोपाख्यानेकर्मविपाकोनामत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

गर्भवास और गर्भस्तुति

श्रीभगवान् बोले—दैव-प्रेरित कर्म के द्वारा शरीर धारण करने के लिए जीव पुरुष के वीर्यकण में वर्तमान रहता है और वह स्त्री के उदर में प्रविष्ट होता है। वह वीर्य एक रात बीतने पर कलल होता है अर्थात् रज और वीर्य दोनों मिल जाते हैं, पाँच रात के बाद बुद्बुद्—गोलाकार एक पिण्ड हो जाता है, दस दिन के बाद बैर के फल के समान कठोर होता है। उसके बाद पेशी अर्थात् मांस-पिण्ड के आकार का हो जाता है। उसके बाद अण्डाकार होता है, एक महीने के बाद उसमे मस्तक उत्पन्न होता है, दो महीने के बाद हाथ, पैर आदि अंगों का विभाग होता है। तीसरे महीने नख, लोम, अस्थि, चाम, लिंग आदि उत्पन्न होते हैं। चौथे महीने सात धातुओं की उत्पत्ति होती है, पाँचवे महीने भूख-प्यास लगने लगती है। छठे महीने गर्भाशय से वेष्टित होकर दाहिनी कोंख मे घूमने लगता है। माता के खाए अन्न-पान आदि से उसके शरीर की धातु बढ़ती जाती है। घिनौने मल-मूत्र के गर्त में वह जन्तु सोता है। वह बड़ा सुकुमार होता है, गर्भाशय के भूखे कीड़े उसके समस्त शरीर मे काटते है, जिससे उसे अत्यन्त कष्ट होता है और वह प्रतिक्षण मूर्छित होता है। माता के खाए कड़वे, तीखे, गरम, नमकीन, रूखे, खट्टे, आदि उग्र पदार्थों के स्पर्श होने से उसके समस्त शरीर मे वेदना होने लगती है। जरायु में वह लिपटा रहता है और अँतड़ियों के द्वारा बाहर से बँधा रहता है और माथा पेट मे लगाकर पीठ और गला झुकाकर पड़ा रहता है। पिंजडे में पड़े पक्षी के समान वह

श्रीभगवानुवाच—

१—कर्मणादैवनेत्रेणजन्तुर्देहोपपत्तये। स्त्रियाःप्रविष्टउदरंपुंसोरेतःकणाश्रयः॥

२—कललंत्वेकरात्रेणपंचरात्रेणबुद्बुदम्। दशाहेनतुकर्कन्धूः पेश्यण्डंवाततःपरं॥

३—मासेनतुशिरोद्वाभ्यांबाह्वङ्घ्र्याद्यङ्गविग्रहः। नखलोमास्थिचर्माणिलिंगच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः॥

४—चतुर्भिर्धातवःसप्तपंचभिःक्षुत्तृडुद्भवः। षड्भिर्जरायुणावीतःकुक्षौभ्राम्यतिदक्षिणे॥

५—मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसम्मते। शेतेविण्मूत्रयोर्गर्तेसजंतुर्जंतुसंभवे॥

६—कृमिभिःक्षतसर्वांगःसौकुमार्यात्प्रतिक्षणम्। मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः॥

७—कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः। मातृभुक्तैरुपस्पृष्टःसर्वांगोत्थितवेदनः॥

८—उल्बेनसंवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्चबहिरावृतः। आस्तेकृत्वाशिरःकुक्षौभुग्नपृष्ठशिरोधरः॥

९—अकल्पःस्वांगचेष्टायांशकुन्तइवपंजरे। तत्रलब्धस्मृतिर्दैवात्कर्मजन्मशतोद्भवं॥

स्मरन्दीर्घमनुच्छ्वासंशर्मकिंनामविंदते॥

हाथ पैर नहीं हिला सकता, वहाँ दैव की प्रेरणा से पहले के सैकड़ों जन्मों के कर्म उसे स्मरण हो आते हैं। इस स्मरण से वह बिना साँस लिए वहीं पड़ा रहता है। उसे सुख तो क्या होगा! गर्भवास के समान दुःख न होता और न होगा। सातवें महीने उसे समझ आ जाती है। प्रसव कराने वाली वायु के कारण यह एक जगह रह नहीं सकता। विष्ठा से उत्पन्न कीड़े के समान पड़ा रहता है। यह जीव गर्भवास के दुःख से भयभीत हो जाता है, अतएव सात धातुओं से बँधा हुआ यह जीव, हाथ जोड़कर गद्गद् वाणी से गर्भ मे भेजने वाले की प्रार्थना करता है॥ १, ११॥

जीव बोला—शरण में आये जगत की रक्षा करने के लिए अपनी इच्छा से जिन्होंने अनेक अवतार धारण किये, जो अपने चरणों से पृथ्वी पर परिभ्रमण करते रहे। जिन्होंने अधम मेरे अनुरूप ऐसी गति मुझे दी, उस भगवान के निर्भय चरणों की शरण मे जाता हूँ। इस गर्भाशय मे पंचभूत, इन्द्रिय और अन्तःकरण रूप माया के द्वारा शरीर पाकर मैं कर्म से बँधे हुए के समान हो गया हूँ। अतएव शुद्ध, अखण्ड, ज्ञानस्वरूप, निर्विकार और दुःखी हृदयों मे वर्तमान ईश्वर को मै नमस्कार करता हूँ। पचभूतों के द्वारा रचित शरीर मे मैं व्यर्थ ही आ गया हूँ। वस्तुतः मै शरीर से रहित, असग हूँ। अतएव इन्द्रिय, गुण और चिदाभ-स्वरूप हूँ। ऐसा मैं प्रकृति-पुरुष के नियन्ता, सर्वज्ञ और शरीर से अकुण्ठित महिमा वाले भगवान को नमस्कार करता हूँ। जिसकी माया से विशाल गुण और कर्म से बँधे हुए इस सांसारिक मार्ग में यह जीव बडे कष्ट से भटकता रहता है। वह ईश्वर-कृपा के विना, किसी भी दूसरे

१०—आरभ्यसप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपिवेपितः। नैकत्रास्तेसूतिवातैर्विष्ठाभूरिवसोदरः॥

११—नाथमानऋषिर्भीतःसप्तवध्रिःकृताजलिः। स्तुवीततविक्लवयावाचायेनोदरेऽर्पितः॥

जंतुरुवाच—

१२—तस्योपसन्नमवितुंजगदिच्छयात्तनानातनोर्भुविचलच्चरणारविंदं।
सोऽहंव्रजामिशरणंह्यकुतोभयंमेयेनेदृशीगतिरदर्श्यसतोऽनुरूपा॥

१३—यस्त्वत्रबद्धइवकर्मभिरावृतात्माभूतेंद्रियाशयमयीमवलम्ब्यमायां।
आस्तेविशुद्धमविकारमखण्डबोधमातप्यमानहृदयेऽवसितंनमामि॥

१४—यःपंचभूतरचितेरहितःशरीरेछन्नोयथेंद्रियगुणार्थचिदात्मकोऽहं।
तेनाविकुंठमहिमानमृषिंतमेनंवंदेपरंप्रकृतिपूरुषयोःपुमांसं॥

१५—यन्माययोरुगुणकर्मनिबंधनेऽस्मिन्सांसारिकेपथिचरंस्तदभिश्रमेण।
नष्टस्मृतिःपुनरयंप्रवृणीतलोकंयुक्त्याकयामहदनुग्रहमंतरेण॥

उपाय से अपना स्वरूप नहीं पा सकता, इस दुःख से दूर नहीं हो सकता। जो त्रिकाल सम्बन्धी यह ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ है, उसको देनेवाले वे देव कौन हैं? वे हैं, स्थावर-जंगम, पदार्थों में अन्तर्यामी रूप से वर्तमान ईश्वर। कर्म-क्षेत्र में आये हुए हम जीव त्रिताप को दूर करने के लिए उस भगवान का भजन करते हैं। दूसरे की देह में रुधिर और मल-मूत्र के गढे में गिरा हुआ और जठराग्नि से तपा हुआ यह जीव, यहाँ से निकलने के लिए महीने गिन रहा है। भगवन्, इस दीन को यहाँ से कब निकालिएगा। हे ईश, महान दयालु, आपके समान पुरुष ने इस दस महीने की आयु वाले को ऐसा ज्ञान दिया है, अतएव आप दीनों के नाथ हैं, आप अपने किये सुकर्म से ही सन्तुष्ट रहे। सिवाय हाथ जोडने के, उस उपकार का बदला कौन दे सकता है। दूसरे अर्थात् पशु आदि सात धातुओं से बँधे जीव अपने शरीर में केवल सुख-दुःख का ही अनुभव कर सकते हैं पर मैं जिसकी दी हुई बुद्धि से, विवेक ज्ञान से, सम, दम आदि का पालन कर सकता हूँ, उस पुराणपुरुष को मैं हृदय में और बाहर देखता हूँ। वे मुझे चित्त सम्बन्धी अहंकार के अधिष्ठाता प्रतीत होते हैं। भगवन्, यद्यपि बड़े दुःख के साथ इस गर्भ में मैं रहता हूँ, पर यहाँ से निकल कर अन्धकूप में जाना नहीं चाहता, क्योंकि जहाँ जाने से प्राणी देवमाया से मोहित हो जाता है। जिससे मिथ्या ज्ञान और जन्म-मरण होने लगता है, अतएव यहीं रहकर, व्याकुलता छोड़कर स्वयं अपने ही इस संसार से अपना उद्धार करूँगा। जिससे अनेक दुःखों वाला यह गर्भवास का दुःख मुझे न हो। इसके लिए भगवान के चरणों की आराधना करूँगा और उनकी शरण जाऊँगा ॥ १२,२१ ॥

१६—ज्ञानयदेतददधात्कतमःसदेवस्त्रैकालिकस्थिरचरेष्वनुवर्त्तितांशः ।
तंजीवकर्मपदवीमनुवर्त्तमानास्तापत्रयोपशमनायवयभजेम ॥

१७—देह्यन्यदेहविवरेजठराग्निनाऽसृग्विण्मूत्रकूपपतितोभृशतप्तदेहः ।
इच्छन्नितोविवसितुंगणयन्स्वमासान्निर्वास्यतेकृपणधीर्भगवन्कदानु ॥

१८—येनेदृशींगतिमसौदशमास्यईशसंग्राहितःपुरुदयेनभवादृशेन ।
स्वेनैवतुष्यतुकृतेनसदीननाथःकोनामतत्प्रतिविनाऽञ्जलिमस्यकुर्यात् ॥

१९—पश्यत्ययंधिषणयाननुसप्तवध्रिःशारीरकेदमशरीर्यपरःस्वदेहे ।
यत्सृष्टयासतमहपुरुषपुराणपश्येबहिर्हृदिचचैत्यमिवप्रतीतं ॥

२०—सोऽहंवसन्नपिविभोबहुदुःखवासंगर्भान्ननिर्जिगमिषेबहिरन्धकूपे ।
यत्रोपयातमुपसर्पतिदेवमायामिथ्यामतिर्यदनुसंसृतिचक्रमेतत् ॥

२१—तस्मादहंविगतविक्लवउद्धरिष्यआत्मानमाशुतमसःसुहृदात्मनैव ।
भूयोयथाव्यसनमेतदनेकरंध्रंमामेभविष्यदुपसादितविष्णुपादः ॥

कपिलदेव बोले—इस प्रकार गर्भ में विचार करके दस महीने का वह जीव भगवान की स्तुति करता है। उसी समय नीचे जानेवाली प्रसव-वायु उसे जन्म लेने के लिए बाहर निकाल देती है। वायु के द्वारा फेंका गया वह जीव, सिर नीचे करके व्याकुल अवस्था में बड़े दुःख से निकलता है, उसकी साँस बन्द हो जाती है। स्मृति नष्ट हो जाती है। रुधिर और मूत्र के साथ पृथ्वी में गिरता है। विष्ठा से उत्पन्न कीड़े के समान हो जाता है। ज्ञान नष्ट होने से और अज्ञान की अवस्था में आ जाने से, वह बार-बार रोने लगता है। दूसरे का अभिप्राय न समझने वाले लोग उसका पालन करते हैं। उसके लिए अनुचित भी यदि कुछ हो जाय तो वह उसका निषेध नहीं कर सकता, उसे रोक नहीं सकता। मैले पलंग पर, जो पसीना आदि से दूषित रहता है, वह सुला दिया जाता है। यह अपने अंगों को खुजला नहीं सकता, उठ-बैठ नहीं सकता और न हाथ-पैर हिला सकता है। इसकी कोमल त्वचा को डाँस, मच्छर, खटमल आदि काटते हैं, जिस प्रकार एक कीड़ा दूसरे कीड़े को काटता है और यह ज्ञानहीन जीव रोता है। इस प्रकार के दुःखों से पाँच वर्ष की अवस्था बिताकर, यौवन के पहले की अवस्था भी पढ़ने आदि के दुःख से बिताता है। युवा अवस्था में मनोरथ पूरा न होने से इसका क्रोध बढ़ जाता है और यह शोक करने लगता है, क्योंकि इसे ज्ञान नहीं रहता। देह के बढ़ने के साथ इसका क्रोध और अभिमान भी बढ़ता जाता है, अतएव यह कभी जीव दूसरे कामी जीवों से अपने नाश के लिए विरोध करता है। पाँचभूतों से बने इस शरीर में वह मूर्ख जीव अहंकार करता है और ममता रखता है। यह उसी शरीर के लिए कर्म करता है, जो शरीर कर्मबद्ध होने के कारण बारबार

कपिलउवाच—

२२—एवंकृतमतिर्गर्भेदशमास्यःस्तुवन्नृषिः। सद्यःक्षिपत्यवाचीनंप्रसूत्यैसूतिमारुतः॥

२३—तेनावसृष्टःसहसाकृत्वावाक्शिरआतुरः। विनिष्क्रामतिकृच्छ्रेणनिरुच्छ्वासोहतस्मृतिः॥

२४—पतितोभुव्यसृङ्मूत्रेविष्ठाभूरिवचेष्टते। रोरूयतिगतेज्ञानेविपरीतांगतिंगतः॥

२५—परच्छदंनविदुषापुष्यमाणोजनेनसः। अनभिप्रेतमापन्नःप्रत्याख्यातुमनीश्वरः॥

२६—शायितोऽशुचिपर्यंकेजन्तुस्वेदजदूषिते। नेशःकण्डूयनेऽङ्गानामासनोत्थानचेष्टने॥

२७—तुदंत्यामत्वचंदंशामशकामत्कुणादयः। रुदंतंविगतज्ञानंकृमयःकृमिकंयथा॥

इत्येवंशैशवंभुक्त्वादुःखंपौगंडमेवच॥

२८—अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युःशुचार्पितः। सहदेहेनमानेनवर्धमानेनमन्युना॥

करोतिविग्रहंकामीकामिष्वंतायचात्मनः॥

२९—भूतैःपंचभिरारब्धेदेहेदेह्यबुधोऽसकृत्। अहंममेत्यसद्ग्राहःकरोतिकुमतिर्मतिं॥

३०—तदर्थंकुरुतेकर्मयद्बद्धोयातिसंसृतिं। योऽनुयातिददत्क्लेशमविद्याकर्मबंधनः॥

जन्म लेता है और मरता है और अविद्या तथा कर्म से बँधा हुआ यह शरीर क्लेश देता है। विषय-भोग और पेट के लिए उद्योग करनेवाले अधर्मों का साथ यदि इसे हो गया तो यह भी उन्हींके मार्ग में चलने लगता है और पहले के समान पुनः नरक मे जाता है। वैसे मनुष्यों के साथ से सत्य, शौच, मौन, दया, बुद्धि, श्री, ह्री, यश, क्षमा, शम, दम, और ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है। ये शरीर को आत्मा समझने वाले मूढ असाधु हैं, लोभी है, स्त्रियों के हाथ के खिलौने हैं, उनके पलुए पशु हैं,अतएव, शोचनीय हैं। इनका साथ नहीं करना चाहिए। स्त्रियों तथा उनके साथियों के साथ से जैसा यह मोह में पड़ता है और ससार में फसता है, वैसा दूसरे किसी कारण से नहीं। ब्रह्मा भी अपनी कन्या का रूप देखकर उसपर आकृष्ट हो गये थे और मृगी बनी कन्या के पीछे मृग बनकर और निर्लज्ज होकर दौडे थे। ब्रह्मा के बनाये मरीचि आदि, उनके बनाये कश्यप आदि और उनके बनाये देवता, मनुष्य आदि मे कौन ऐसा मनुष्य है, जिसकी बुद्धि को मायारूपिणी स्त्रियों ने आकृष्ट नहीं किया है, ऐसा यदि कोई है तो वह केवल एक नारायण हैं"। स्त्रीरूपिणी मेरी माया का बल देखो, जो एक कटाक्ष से वीरों को भी पदाक्रान्त कर देती है,अपने वश कर लेती है। योग के पारावार जाने की इच्छा रखनेवालों को,सिद्धि चाहने वालों को,स्त्रियों का साथ कभी नहीं करना चाहिए। जिसने मेरी सेवा से आत्मज्ञान पा लिया है, उसे भी स्त्रियों का साथ नहीं करना चाहिए, क्योंकि इनके लिए वह नरक का द्वार है। देव निर्मित मायारूपिणी यह स्त्री यदि सेवा आदि के द्वारा, पुरुष पर धीरे-धीरे प्रभाव फैलाने लगे, तो उसे अपनी मृत्यु समझनी चाहिए। क्योंकि वह घास-पात से ढंके कूएँ के समान भयंकर है ॥ ३२,४० ॥

जो स्त्री, पुरुषवती मेरी माया को अज्ञान से पति समझ लेती है, जो उसे पुत्र, धन

३१—यद्यसद्भि.पथिपुनःशिश्नोदरकृतोद्यमैः। आस्थितोरमतेजतुस्तमोविशतिपूर्ववत् ॥

३२—सत्यशौचदयामौनबुद्धि.श्रीर्ह्रीर्यशःक्षमा। शमोदमोभगश्चेतियत्सगाद्यातिसक्षयं ॥

३३—तेष्वशातेपुमुढेपुखडितात्मस्वसाधुपु। संगनकुर्याच्छोच्येपुयोषित्क्रीडामृगेषुच ॥

३४—नतथाऽस्यभवेन्मोहोबधश्चान्यप्रसगतः। योषित्सगाद्यथापुसोयथातत्सगिसगतः ॥

३५—प्रजापति.स्वादुहितरदृष्ट्वातद्रूपधर्षितः। रोहिद्भूतामोऽन्वधावदृक्षरूपीहतत्रपः ॥

३६—तत्सृष्टसृष्टसृष्टेपुकोन्वखडितधी.पुमान्। ऋषिंनारायणमृतेयोषिन्मय्येहमायया ॥

३७—बलमेपश्यमायायाःस्त्रीमय्याजयिनोदिशा। याकरोतिपदाक्रातान्भ्रूविजृम्भेणकेवल ॥

३८—सगनकुर्यात्प्रमदासुजातुयोगस्यपारपरमारुरुक्षुः। मत्सेवयाप्रतिलब्धात्मलाभोवदतियानिरयद्वारमस्य ॥

३९—योऽपयातिशनैर्मायायोषिद्देवविनिर्मिता। तामीक्षेतात्मनोमृत्युतृणैःकूपमिवावृतं ॥

४०—यामन्यतेपतिंमोहान्मन्मायामृषभायतीं। स्त्रीत्वस्त्रीसंगत.प्राप्तोवित्तापत्यगृहप्रद ॥

४१—तामात्मनोविजानीयात्पत्यपत्यगृहात्मक। दैवोपसादितमृत्युमृगयोर्गायनयथा ॥

और घर आदि देता है, वह माया है, मृत्यु है, स्त्री के साथ से अन्तकाल में स्त्री का ध्यान करने से वह स्त्री बन गया है। पति, पुत्र और घर के रूप में वर्तमान मेरी माया को दैव के द्वारा प्राप्त मृत्यु समझे। जैसे मृगा के लिए शिकारी का गाना होता है। जीव, भूत, शरीर से अर्थात् सूक्ष्म शरीर से मनुष्य एक लोक से दूसरे लोक मे जाता है। और कर्मों का फल भोगता है तथा बराबर कर्म करता जाता है। भूत, इन्द्रिय और मन, रूप, लिंग, शरीर तथा उसका अनुवर्ती जीव, जब कार्य करने के अयोग्य हो जाते हैं, तब मरण कहा जाता है और जब ये कार्य करने के योग्य होते है, तब जन्म कहा जाता है। पदार्थों को ग्रहण करने के स्थानों को ग्रहण करने की योग्यता आजाती है, जब ग्रहण करने की शक्ति नहीं रह जाती, तब उसकी मृत्यु समझी जाती है, उसी प्रकार स्थूल शरीर के अयोग्य होने से, लिंग शरीर भी अयोग्य हो जाता है, उसके अयोग्य होने से जीव भी अयोग्य हो जाता है और यह उसकी मृत्यु कही जाती है। पुनः अहंकार-भाव आने से—कार्य करने की शक्ति आने से उसका जन्म होता है। जब नेत्र गोलक पदार्थों का रूप ग्रहण करने की शक्ति खो देता है, तब उसकी देखने की शक्ति भी जाती रहती है, इस प्रकार दोनों ही अयोग्य हो जाते है। स्थूल, सूक्ष्म और जीव के लिए भी यही बात है। जीव भी स्थूल शरीर के अयोग्य होने से अयोग्य हो जाता है और यह उसकी मृत्यु कही जाती है। अतएव मृत्यु से डरना नहीं चाहिए, जीवन के लिए दीनता नहीं दिखानी चाहिये और न जीवन के लिए प्रयत्न करना चाहिये। जीव का यथार्थ रूप समझ कर और सङ्ग त्याग कर विचरण करना चाहिए। यथार्थ विचार रखने वाली योग-वैराग्य-युक्त बुद्धि के द्वारा, माया के बनाये इस संसार में, शरीर मे आसक्ति छोड़ कर विचरण करना चाहिये ॥ ४१, ४८ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कंध का इकतीसवाँ अध्याय समाप्त
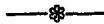
——❀——

४२—देहेनजीवभूतेनलोकाल्लोकमनुव्रजन् । भुञ्जानएवकर्माणिकरोत्यविरतंपुमान् ॥

४३—जीवोह्यस्यानुगतोदेहोभूतेन्द्रियमनोमयः । तन्निरोधोऽस्यमरणमाविर्भावस्तुसम्भवः ॥

४४—द्रव्योपलब्धिस्थानस्यद्रव्येक्षाऽयोग्यतायदा । तत्पञ्चत्वमहंमानादुत्पत्तिर्द्रव्यदर्शनं ॥

४५—यथाऽक्ष्णोर्द्रव्यावयवदर्शनायोग्यतायदा । तदैवचक्षुषोद्रष्टुर्द्रष्टृत्वायोग्यताऽनयोः ॥

४६—तस्मान्नकार्यःसन्त्रासोनकार्पण्यंनसंभ्रमः । बुद्ध्वाजीवगतिंधीरोमुक्तसंगश्चरेदिह ॥

४७—सम्यग्दर्शनयाबुद्ध्यायोगवैराग्ययुक्तया । मायाविरचितेलोकेचरेन्न्यस्यकलेवर ॥

इ०भा०म०तृतियस्कन्धेकापिलेयोपाख्यानेजीवगतिरेकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

——❀——

बत्तीसवाँ अध्याय

ऊर्ध्वलोक-प्राप्ति और निवर्तन

कपिलदेव बोले—जो गृहस्थ घर में रह कर धर्म-पालन करता है, अपने धर्मो से काम और अर्थ दुहता है और पुनः अनुष्ठान करके धर्म को पूरा कर देता है, अर्थात् कामना से धर्मानुष्ठान करता है, फल पाता है, और पुनः धर्मानुष्ठान करता है, वह कामना मे लिपटा हुआ मनुष्य भी भगवद्धर्म से पराङ्मुख ही है। वह यज्ञों के द्वारा श्रद्धापूर्वक पितरों और देवताओं की आराधना करता है। देवता, पितरों में श्रद्धा रखने वाला और उनकी आराधना करने वाला मनुष्य चन्द्रलोक में जाता है और वहाँ सोम-पान करता है तथा पुनः वहाँ से लौट आता है। जब भगवान् विष्णु शेष-शय्या पर शयन करते हैं, इस समय इन गृहस्थों को प्राप्त होने वाले लोकों का भी नाश हो जाता है। जो धीर पुरुष, काम और अर्थ के लिए धर्म को नहीं दुहते अर्थात् सकाम धर्माचरण नहीं करते और आसक्ति का त्याग करके अपने कर्म भगवान को अर्पित कर देते है, वे शुद्ध और शान्तचित्त पुरुष, निवृत्ति धर्म का पालन करने वाले हैं। उनका ससार के किसी पदार्थ में ममत्व नहीं होता और न वे अहंकारी होते हैं, अतएव सत्वमय शुद्धचित्त से, सूर्य-द्वार मे परिपूर्ण परमपुरुष सबके स्वामी भगवान को प्राप्त करते है, जो इस संसार की प्रकृति हैं। जिनसे इस ससार की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश होता है। ब्रह्मा के दो पहर बीतने पर अर्थात् दिन के समाप्त होने पर जो प्रलय होता है, उस समय तक भगवान ब्रह्मा के उपासक, उनके लोक में रहते हैं। जिस समय पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन इन्द्रिय, इन्द्रियों के विषय, पंचभूत आदि से युक्त इस ब्रह्माण्ड का भगवान

कपिल उवाच—

१—अथयोगृः मेधीयान्धर्मानेवावसन्गृहे। काममर्थंचधर्मांश्चदोग्धिभूयःपिपर्तिनान् ॥

२—सचापिभगवद्धर्मात्काममूढःपराङ्मुखः। यजतेक्रतुभिर्देवान्पितॄंश्चश्रद्धयान्वितः ॥

३—तच्छ्रद्धयाक्रान्तमतिःपितृदेवव्रतःपुमान्। गत्वाचान्द्रमसंलोकंसोमपाःपुनरेष्यति ॥

४—यदाचाहीन्द्रशय्यायांशेतेऽनन्तासनोहरिः। तदालोकालयंयान्तिएतेगृहमेधिनाम् ॥

५—येस्वधर्मान्नदुह्यन्तिधीराःकामार्थहेतवे। निःसङ्गान्यस्तकर्माणःप्रशान्ताःशुद्धचेतसः ॥

६—निवृत्तधर्मनिरतानिर्ममानिरहङ्कृताः। स्वधर्माख्येनसत्त्वेनपरिशुद्धेनचेतसा ॥

७—सूर्यद्वारेणतेयान्तिपुरुषंविश्वतोमुखम्। परावरेशंप्रकृतिमस्योत्पत्त्यन्तभावनम् ॥

८—द्विपरार्धावसानेयःप्रलयोब्रह्मणस्तुते। तावदध्यासतेलोकंपरस्यपरचिन्तकाः ॥

संहार करना चाहते हैं और दो परार्ध समय तक भोग करके वे गुणत्रयात्मक ब्रह्मा, ईश्वर मे प्रवेश करते हैं और उन्हींके साथ वे योगी, जिन्होंने वायु और मन को जीत लिया है, अभिमान का त्याग दिया है, जो विरागी है, और ब्रह्मा मे मिल गये है, वे पुराणपुरुष ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। अर्थात् ब्रह्मलोक पाने वाले योगियों की मुक्ति ब्रह्मा के साथ ही होती है। मातः ! तुमने भगवान का प्रभाव सुना। प्राणिमात्र के हृदय मे निवास करने वाले भगवान की शरण प्रेम-पूर्वक तुम जाओ ! स्थावर, जगम को उत्पन्न करने वाले पुरुष श्रेष्ठ, वेद-प्रवर्तक ब्रह्मा, योग-प्रवर्तक सिद्ध सनत्कुमार आदि ऋषियों के साथ 'अहं' 'मम' इस भेद-बुद्धि और कर्तृत्व के अभिमान के कारण, आसक्ति रहित कर्म करने पर भी पुनः दूसरी सृष्टि मे, दूसरे युग में, ईश्वर मूर्ति काल के द्वारा जन्म धारण करते है। धर्म पालन के द्वारा अपने ब्रह्मलोक का ऐश्वर्य भोग करके प्रलय होने पर आदिपुरुष ब्रह्मा मे निवास करते हैं और पुन सृष्टि प्रारम्भ होनेपर सिद्धों और ऋपियों के साथ ब्रह्मा पुनः-पुन. अवतार लेते है। जो मनुष्य संसार मे आसक्ति रख कर श्रद्धापूर्वक विहित कर्म सदा करते है, वे रजोगुणी है, उनका मन रजोगुण की ओर आकृष्ट है। वे काम्य कर्म करने वाले है, उन्होंने इन्द्रियों को वश नहीं किया है। वे घर-गृहस्थी मे अनुराग रखने वाले हैं। अतएव सदा पितरों की आराधना करते हैं धर्म, अर्थ और काम की आराधना करने वाले वे पुरुष भगवान से विमुख है। परम पराक्रमा मधुसूदन की कथा से विमुख हैं। अवश्य ही वे अभागी हैं,जो भगवान का कथामृत छोड़कर असत् कथाएं सुनते है, जिसप्रकार शूकर उत्तम पदार्थों को छोडर विष्ठा खाता है। ये सूर्य के दक्षिण मार्ग से पितृ-लोक में जाते हैं। जन्म से मरण तक की क्रियाएँ करने वाले ये पुनः अपने वंश मे उत्पन्न होते है,क्योंकि

९—क्ष्माऽम्भोनलानिलवियन्मनइन्द्रियार्थभूतादिभिःपरिवृतप्रतिसंजिहीर्षु. ।
अव्याकृतविशतियर्हिगुणत्रयात्माकालपराख्यमनुभूयपरःस्वयन्ूः ॥

१०—एवपरेत्यभगवन्तमनुप्रविष्टायेयोगिनोजितमरुन्मनसोविरागाः ।
तेनैवसाकममृतंपुरुषपुराणब्रह्मप्रधानमुपयान्त्यगताभिमानाः ॥

११—अथतंसर्वभूतानांहृत्पद्मेषुकृतालयं । श्रुतानुभावशरणंव्रजभावेनभामिनि ॥

१२—आद्यःस्थिरचराणांयोवेदगर्भ.सहर्षिभिः । योगेश्वरैःकुमाराद्यै.सिद्धैर्योगप्रवर्त्तकैः ॥

१३—भेददृष्ट्याऽभिमानेननिःसगेनापिकर्मणा । कर्तृत्वात्सगुणब्रह्मपुरुषंपुरुषर्षभः ॥

१४—ससंसृत्यपुनःकालेकालेनेश्वरमूर्तिना । जातेगुणव्यतिकरेयथापूर्वंप्रजायते ॥

१५—ऐश्वर्यंपारमेष्ठ्यंचतेपिधर्मविनिर्मितं ।·निषेव्यपुनरायान्तिगुणव्यतिकरेसति ॥

१६—येत्विहासक्तमनसःकर्मसुश्रद्धयान्विताः । कुर्वन्त्यप्रतिषिद्धानिनित्यान्यपिचकृत्स्नशः ॥

१७—रजसाकुंठमनसःकामात्मानोजितेंद्रियाः । पितृन्यजन्त्यनुदिनगृहेष्वभिरताशयाः ॥

१८—त्रैवर्गिकास्तेपुरुषाविमुखाहरिमेधसः । कथायांकथनीयोरुविक्रमस्यमधुद्विषः ॥

पुण्य के क्षीण होने पर इनका सुख-भोग समाप्त हो जाता है, अतएव देवता शीघ्रही वहाँ से इन लोगों को हटा देते हैं और ये इसी मर्त्यलोक मे चले आते हैं। अतएव तुम भगवान के गुणों से उत्पन्न होने वाली भक्ति के द्वारा सब प्रकार से उनकी सेवा करो। उन्हींके चरण कमल भजने योग्य हैं। भगवान् वासुदेव की भक्ति से शीघ्र वैराग्य होता है। और वह ज्ञान होता है, जो ब्रह्मज्ञान कहा जाता है। जब भक्त का मन भगवान मे ही निश्चल हो जाता है और किसी भी पदार्थ से वैर नहीं रखता, प्रिय-अप्रिय भाव नहीं रखता, सबको समान समझने लगता है, अर्थात् भगवान मे चित्त लगा रहने के कारण ससार मे उसका प्रिय-अप्रिय कोई नहीं रह जाता। उसी समय परमानन्दरूप प्राप्त होता है, जब कि वह सबको समान समझने वाला, ज्ञानमय और सग-रहित हो जाता है। उसके लिए न कुछ ग्राह्य रहता है और न कुछ त्याज्य। उस समय वह देखता है कि केवल ज्ञानस्वरूप परब्रह्म-परमात्मा—ईश्वर अनेक दृश्य पदार्थों मे दिखायी पड़ रहा है। योगी अपने समस्त योगों का यही अभिमत फल चाहता है कि ससार के समस्त प्रपंचों का संग छूट जाय, प्रपचों मे उसकी आसक्ति न रहे। ज्ञानस्वरूप निर्गुण ब्रह्म एक ही है, पर इन्द्रियों के द्वारा, शब्द आदि धर्म वाले अनेक पदार्थों के रूप में प्रतीत होता है, पर यह भ्रान्ति है, एकही ईश्वर किस प्रकार अनेक रूपों मे हो जाता है, वह सुनिए—महत्तत्व, अहकार हुए, पुनः त्रिगुण, पचभूत, इन्द्रियरूप से ग्यारह जीव, उसका शरीर, अण्ड और उससे जगत—ये सब भेद महत् आदि से होते हैं, जिनके कारण एक परमात्मा अनेकरूप से प्रतीत होता है। पूज्ये, आपको मैंने वह ज्ञान बतलाया, जिससे ब्रह्म साक्षात्कार होता है, जिससे प्रकृति और पुरुष का तत्व ज्ञान होता है। ज्ञानयोग और मेरा भक्तियोग—इन दोनों का एक ही फल है,

---

१९—नूनंदैवेनविहतायेचाच्युतकथासुधा। हित्वाश्रृण्वन्त्यसद्गाथा:पुरीषमिवविड्भुजः॥

२०—दक्षिणेनपथार्यम्णःपितृलोकंव्रजंतिते। प्रजामनुप्रजायंतेश्मशानांतक्रियाकृतः॥

२१—ततस्तेक्षीणसुकृताःपुनर्लोकमिमंसति। पततिविवशादेवैःसद्योविभ्रंशितोदयाः॥

२२—तस्मात्त्वंसर्वभावेनभजस्वपरमेष्ठिनं। तद्गुणाश्रययाभक्त्याभजनीयपदाम्बुजं॥

२३—वासुदेवेभगवतिभक्तियोगःप्रयोजितः। जनयत्याशुवैराग्यंज्ञानंयद्ब्रह्मदर्शनं॥

२४—यदाऽस्यचित्तमर्थेषुसमेष्विंद्रियवृत्तिभिः। नविगृह्णातिवैषम्यंप्रियमप्रियमित्युत॥

२५—सतदैवात्मनात्मानंनि:संगंसमदर्शनं। हेयोपादेयरहितमारूढंपदमीक्षते॥

२६—ज्ञानमात्रंपरंब्रह्मपरमात्मेश्वरःपुमान्। दृश्यादिभिःपृथग्भावैर्भगवानेकईयते॥

२७—एतावानेवयोगेनसमग्रेणेहयोगिनः। युज्यतेभिमतोह्यर्थोयदसंगस्तुकृत्स्नशः॥

२८—ज्ञानमेकंपराचीनैरिंद्रियैर्ब्रह्मनिर्गुणं। अवभात्यर्थरूपेणभ्रांत्याशब्दादिधर्मिणा॥

२९—यथामहानहंरूपस्त्रिवृत्पंचविधःस्वराट्। एकादशविधस्तस्यवपुरंडंजगद्यतः॥

३०—एतद्वैश्रद्धयाभक्त्यायोगाभ्यासेननित्यशः। समाहितात्मानिःसंगोविरक्त्यापरिपश्यति॥

इन दोनों से ही भगवान का ज्ञान होता है। एक ही पदार्थ मे अनेकरूप, रस आदि गुण होते है, उन अनेक गुण वाले पदार्थों का ज्ञान भिन्न-भिन्न इन्द्रियों से होता है। इसी प्रकार एक ही भगवान भिन्न-भिन्न शास्त्रों के द्वारा भिन्न-भिन्न रूप के बतलाये जाते हैं। वापी, कूप आदि क्रिया, यज्ञ, दान, तपस्या, वेदाध्ययन, विचार, मन, इन्द्रिय का जय, कर्मों का अर्पण, विविध अंगवाला योग, भक्तियोग, प्रवृत्ति-निवृत्ति-लक्षण धर्म, आत्मज्ञान और दृढ वैराग्य इनके द्वारा सगुण और निर्गुण स्वयंप्रकाश भगवान का ज्ञान होता है। उनकी प्राप्ति होती है। मैंने तुम्हें भक्तियोग के चार रूप बतलाये, अव्यक्तगति-काल का भी रूप बतलाया, जो प्राणियों पर आक्रमण किया करता है। अविद्या और कर्म के द्वारा होने वाले जीव के अनेक जन्म और मरण का कारण तथा स्वरूप मैंने बतलाया, जिस शरीर मे प्रवेश करने से आत्मा अपना स्वरूप भूल जाती है, जो दुष्ट है, अविनयी हैं, अहकारी हैं, दुराचारी है, दाम्भिक है, लोभी है, घर-गृहस्थी में फँसे हुए है, हमारे भक्त नहीं है, अथवा हमारे भक्तों से द्वेष रखने वाले है, उनको यह रहस्य कभी नहीं बतलाना चाहिए। जो श्रद्धालु हैं, भक्त है, विनयी है, दोष देखनेवाले नहीं हैं, प्राणियों पर प्रेम रखनेवाले है, सेवा करनेवाले है, बाह्य विषयों से जिनका वैराग्य हो गया है और जो शान्तचित्त है, उनको दीजिए। जो हमारे भक्तों के प्रिय हैं, उनको इस रहस्य का उपदेश दीजिए। मातः! जो पुरुष एकबार भी श्रद्धापूर्वक मुझमे चित्त लगाकर इसको सुनेगा, या कहेगा, वह मेरा लोक पावेगा॥ ४३॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कध का बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त

३१—इत्येतत्कथितगुर्विज्ञानतद्ब्रह्मदर्शन। येनानुबद्ध्यतेतत्त्वप्रकृते.पुरुषस्यच॥
३२—ज्ञानयोगश्चमन्निष्ठोनैर्गुण्यधामक्तिलक्षण:। द्वयोरप्येकएवार्थोभगवच्छब्दलक्षण.॥
३३—यथेन्द्रियै.पृथक्द्वारैरर्थोबहुगुणाश्रयः। एकोनानेयतेतद्वद्भगवाञ्छास्त्रवर्त्मभि.॥
३४—क्रिययाक्रतुभिर्दानैस्तप.स्वाध्यायमर्शनै.। आत्मेन्द्रियजयेनापिसन्यासेनचकर्मणा।
३५—योगेनविविधांगेनभक्तियोगेनचैवहि। धर्मेणोभयचिह्नेनय.प्रवृत्तिनिवृत्तिमान्।
३६—आत्मतत्त्वावबोधेनवैराग्येणदृढेनच। ईयतेभगवानेभि.सगुणोनिर्गुण स्वदृक्॥
३७—प्रावोचमभक्तियोगस्यस्वरूपंतेचतुर्विधं। कालस्यचाव्यक्तगतेर्यो ऽन्तर्धावतिजन्तुषु॥
३८—जीवस्यसंसृतीर्बह्वीरविद्याकर्मनिर्मिताः। यास्वगप्रविशन्नात्मानवेदगतिमात्मनः॥
३९—नैतत्खलायोपदिशेन्नाविनीतायकर्हिचित्। नस्तब्धायनभिन्नायनैवधर्मध्वजायच॥
४०—नलोलुपायोपदिशेन्नगृहारूढचेतसे। नाभक्तायचमेजातुनमद्भक्तद्विषामपि॥
४१—श्रद्दधानायभक्तायविनीतायानसूयवे। भूतेषुकृतमैत्रायशुश्रूषाऽभिरतायच॥
४२—बहिर्जातविरागायशान्तचित्तायदीयता। निर्मत्सरायशुचयेयस्याहप्रेयसाम्प्रियः॥
४३—यइदंशृणुयादम्बश्रद्धयापुरुष.सकृत्। योवाऽभिधत्तेमच्चित्त.सह्येतिपदवींचमे॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेतृतीयस्कन्धेद्वात्रिंशोऽध्याय॥ ३२॥

——:o#o:——

तैंतीसवाँ अध्याय

देवहूति की मुक्ति

मैत्रेय बोले—कपिल की माता, कर्दम की स्त्री, देवहूति का समस्त मोह कपिलदेव के वचनों से नष्ट होगया। प्रणाम करके वह साख्यज्ञान के प्रवर्तक कपिल मुनि की स्तुति करने लगी ॥ १ ॥

देवहूति बोली—समुद्र के जल के भीतर पंचभूत, इन्द्रिय, उनके विषय, अहंकारमय, गुणों का प्रवाह और समस्त ससार का बीजरूप आपका शरीर सो रहा था। वहाँ ही आपके नाभि-कमल से उत्पन्न ब्रह्मा ने आपकी स्तुति की थी। वे ही आप गुण प्रवाह से अपनी शक्ति का विभाग करके ससार की सृष्टि करते हैं, क्योंकि आप स्वय निष्क्रिय हैं, अतएव शक्ति के द्वारा इसकी रचना करते हैं। आपके सकल्प सत्य है, आप जीवों के ईश्वर हैं आपकी हजारों शक्तियों का ज्ञान किसी को नहीं हो सकता। हे नाथ! समस्त ससार जिसके उदर मे रहता है, उसको मैंने अपने गर्भ मे कैसे रखा? आप प्रलयकाल मे मायामय शिशु बनकर पैर का अँगूठा चूसते हुए वट-पत्र पर सो रहे थे, यह सब क्या आपकी माया नहीं है? पापियों के नाश के लिए और भक्तों के कल्याण के लिए आप शरीर धारण करते हैं। जिस प्रकार आपने शूकर आदि का अवतार धारण किया है, उसी प्रकार ज्ञानप्रचार करने के लिए यह कपिल का भी अवतार धारण किया है। भगवन्! चाण्डाल भी आपके नाम का श्रवण-कीर्तन करने से, आपको प्रणाम तथा आपका स्मरण करने से शीघ्रही यज्ञ करने का अधिकारी हो जाता है। फिर आपके

मैत्रेयउवाच—

१—एवंनिशम्यकपिलस्यवचोजनित्रीसाकर्दमस्यदयिताकिलदेवहूतिः।

विस्रस्तमोहपटलातमभिप्रणम्यतुष्टावतत्त्वविषयांकितसिद्धिभूमिम् ॥

देवहूतिरुवाच—

२—अथाप्यजोऽन्तःसलिलेशयानंभूतेंद्रियार्थात्ममयंवपुस्ते।

गुणप्रवाहंसदशेषबीजंदध्यौस्वयंयज्जठराब्जजातः ॥

३—सएवविश्वस्यभवान्विधत्तेगुणप्रवाहेणविभक्तवीर्यः। सर्गाद्यनीहोवितथाभिसंधिरात्मेश्वरोऽतर्क्यसहस्रशक्तिः ॥

४—सत्वंभृतोमेजठरेणनाथकथंनुयस्योदरएतदासीत्। विश्वं युगांतेवटपत्रएकःशेतेस्ममायाशिशुरंघ्रिपानः ॥

५—त्वंदेहतंत्रःप्रशमायपाप्मनांनिदेशभाजांचविभोविभूतये।

यथावतारास्तवसूकरादयस्तथायमप्यात्मपथोपलब्धये ॥

६—यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपिक्वचित्।

श्वादोऽपिसद्यःसवनायकल्पतेकुतःपुनस्तेभगवन्नुदर्शनात् ॥

दर्शन का प्रभाव कौन बतला सकता है। अतएव वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है, जिसकी जीभ पर आपका नाम रहता है, जो आपके नाम का स्मरण करता है। उन्हींका तप, हवन, स्नान, वेद-पाठ सार्थक है, जो तुम्हारा नाम स्मरण करते है। आप परमपुरुष परब्रह्म हैं, चित्तवृत्तियों को एकत्र करके आपका ध्यान किया जा सकता है। अपने तेज से गुण-प्रवाह को, जन्म-मरणरूप संसार को आप नष्ट कर देते है। वेदज्ञ, ऐसे भगवान् कपिल को मैं नमस्कार करती हूँ ॥ ७,८ ॥

मैत्रेय बोले—कपिल नाम के परमपुरुष भगवान, माता के द्वारा इस प्रकार गद्गद् वाणी से स्तुति किये जाने पर, वे माता से बोले। भगवान होने पर भी वे मातृवत्सल थे। माता में प्रेम रखने वाले थे ॥ ९ ॥

कपिलदेव बोले—मातः! जो मार्ग मैंने बतलाया है, वह कठिन नहीं है, उसके अनुसार चलने से तुम परमपद पा सकोगी। इस मेरे उपदेश पर श्रद्धा करो, ब्रह्मज्ञानियों ने इसका सेवन किया है। इस मेरे बतलाये मार्ग पर, श्रद्धा रखने से तुम मेरा पद पा सकोगी। जो अज्ञानी है, इस तत्व को नहीं समझते, वे मृत्यु पाते है ॥ १०, ११ ॥

मैत्रेय बोले—भगवान् कपिल देव ने अपनी माता को इस प्रकार ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया और उस ब्रह्मवादिनी माता से आज्ञा लेकर वे चले गए। वह भी पुत्र के बतलाये योग का साधन, सरस्वती के मुकुटरूप उस आश्रम मे रहकर, स्थिर चित्त से, करने लगी। बारबार स्नान करने से उसके बाल पीले और जटाजूट हो गये। जो पहले घुँघुराले थे। उग्र तपस्या के कारण उसका शरीर कृश हो गया, वह पुराने वस्त्र पहनती थी। प्रजापति कर्दम की तपस्या से प्राप्त उस अनुपम गृहस्थ-सुख का उसने त्याग कर दिया, जिसकी प्रार्थना देवता भी करते

७—अहोबतश्वपचोऽतोगरीयान्यज्जिह्वाऽग्रेवर्ततेनामतुभ्यम्।
तेपुस्तपस्तेजुहुवुःसस्नुरार्याब्रह्मानूचुर्नामगृणन्तियेते ॥

८—तत्वामहंब्रह्मपरंपुमांसंप्रत्यक्स्रोतस्यात्मनिसंविभाव्य।स्वतेजसाध्वस्तगुणप्रवाहंवन्देविष्णुंकपिलंवेदगर्भं॥

मैत्रेयउवाच—

९—ईडितोभगवानेवंकपिलाख्यःपरःपुमान्। वाचाविक्लवयेत्याहमातरंमातृवत्सलः ॥

कपिलउवाच—

१०—मार्गेणानेनमातस्तेसुसेव्येनोदितेनमे। आस्थितेनपराकाष्ठामचिरादवरोत्स्यसि ॥

११—श्रद्धत्स्वैतन्मतंमह्यंजुष्टंयद्ब्रह्मवादिभिः। येनमामभवंयायामृत्युमृच्छन्त्यतद्विदः ॥

मैत्रेयउवाच—

१२—इतिप्रदर्श्यभगवान्सतींतामात्मनोगतिं। स्वमात्राब्रह्मवादिन्याकपिलोऽनुमतोययौ ॥

१३—साचापितनयोक्तेनयोगादेशेनयोगयुक्। तस्मिन्नाश्रमआपीडेसरस्वत्याःसमाहिता ॥

हैं। फेन के समान शय्या, जो हाथी दाँत की बनी थी, जिसमे सोने का काम था, सोने के आसन और कोमल बिछौने, स्वच्छ स्फटिक तथा नीलम की दीवारों पर रत्न-प्रदीप, जो रत्नमयी स्त्रियों के हाथ में शोभते थे, घर का बगीचा, जो कुसुमित देव-वृक्षों से सुशोभित था, जहाँ पक्षियों का जोड़ा बोल रहा था, भौंरे गूंज रहे थे, जब उस बगीचे मे देवहूती जाती थी, तब किन्नर, गधर्व गाने लगते थे, और कमल-सुरभित तालाब में कर्दम मुनि, देवहूती के साथ क्रीडा करते थे, देवहूती का संसार ऐसा सुखमय था। इन्द्र की स्त्रियाँ भी उसके लिए ललचती थीं, पर देवहूती ने उसका त्याग कर दिया। उस समय पुत्र के वियोग से देवहूती के मुख पर थोडा लक्षण मालूम पडा। उसके पति सन्यास ले चुके थे, पुत्र भी चला गया। अतएव ब्रह्मज्ञानिनी होने पर भी इन दोनों के विरह से वह कातर हो गयी, जिस प्रकार वत्सला गौ दो बछड़े के नष्ट होने पर दुःखी हो जाती है। अपने पुत्र भगवान् कपिल देव के ध्यान से शीघ्र ही उस घर से उसकी स्पृहा जाती रही॥ १२, २२॥

अनन्तर देवहूती प्रसन्नवदन, ध्यानगोचर भगवान् का ध्यान करने लगी। जिस प्रकार उनके पुत्र कपिल ने सर्वाङ्ग तथा एक-एक अङ्ग का ध्यान करने की विधि बतलायी थी। उसीके अनुसार वह ध्यान करने लगी। निरन्तर भक्ति करने से, दृढवैराग्य से, नियमित आहार-विहार से रह कर अनुष्ठान करने से, ब्रह्मज्ञान उत्पन्न करने वाला, जो ज्ञान उत्पन्न होता है—उससे, देवहूती का मन शुद्ध हुआ। ऐसे शुद्ध मन से वह व्यापक आत्मा—ब्रह्म का ध्यान करने लगी। स्वरूप के प्रकाश, माया के गुणों द्वारा उत्पन्न जिसके भेद मिट गये थे, जीवों के आश्रय, उस

१४—अभीक्ष्णावगाहकपिशान्जटिलान्कुटिलालकान्। आत्मानचोग्रतपसाबिभ्रतीचीरिणाकृश॥

१५—प्रजापतेःकर्दमस्यतपोयोगविजृम्भित। स्वगार्हस्थ्यमनौपम्यप्रार्थ्यं वैमानिकैरपि॥

१६—पय·फेननिभाःशय्यादाताख्क्मपरिच्छदाः। आसनानिचहैमानिसुस्पर्शास्तरणानिच॥

१७—स्वच्छस्फटिककुड्येषुमहामारकतेषुच। रत्नप्रदीपाआभातिललनारत्नसयुताः॥

१८—गृहोद्यानकुसुमितैरम्यबह्वमरद्रुमै.। कूजद्विहगमिथुनगायन्मत्तमधुव्रत॥

१९—यत्रप्रविष्टमात्मानविबुधानुचराजगु.। वाप्यामुत्पलगन्धिन्याकर्दमेनोपलालित॥

२०—हित्वातदीप्सिततममप्याखडलयोपिता। किंचिच्चकारवदनपुत्रविश्लेषणातुरा॥

२१—वनप्रव्रजितेपत्यावपत्यविरहातुरा। ज्ञाततत्त्वाऽप्यभूत्नष्टेवत्सेगौरिववत्सला॥

२२—तमेवध्यायतीदेवमपत्यकपिलहरिं। बभूवाचिरतोवत्सनिस्पृहातादृशेगृहे॥

२३—ध्यायतीभगवद्रूपयदाहध्यानगोचर। सुत प्रसन्नवदनसमस्तव्यस्तचिंतया॥

२४—भक्तिप्रवाहयोगेनवैराग्येणबलीयसा। युक्तानुष्ठानजातेनज्ञानेनब्रह्महेतुना॥

२५—विशुद्धेनतदात्मानमात्मनाविश्वतोमुख। स्वानुभूत्यातिरोभूतमायागुणविशेषण॥

ब्रह्म में अपनी बुद्धि स्थिर करके, वह उनका ध्यान करने लगी, इस प्रकार ध्यान करने से देवहूती का जीव-भाव नष्ट हो गया, सब क्लेश मिट गये, उसने परमानन्द पाया, वह जीवन्मुक्त हो गयी। मन के सदा समाधिस्थ रहने के कारण, गुणों के द्वारा होने वाले भ्रम दूर हो गये। देह की भावना जाती रही। जिस प्रकार स्वप्न दृष्टविषयों की स्मृति जाग्रत अवस्था में मिट जाती है। यद्यपि उसके शरीर का पोषण दूसरे के द्वारा होता था, वह अपने शरीर-पोषण के लिए कुछ नहीं करती थी, तथापि वह दुर्बल नहीं थी, क्योंकि मन की समस्त पीड़ा मिट चुकी थी। उसके शरीर पर मैल जमी हुई थी, अतएव उसका शरीर सधूम्र अग्नि के समान मालूम पड़ता था। उसका मन भगवान् में लग गया था, शरीर की ओर कुछ ध्यान नहीं था, उसका शरीर प्रारब्ध कर्मों के द्वारा रक्षित हो रहा था। अतएव वस्त्र खुल जाने का, बालों के बिखर जाने का उसे ज्ञान नहीं होता था। इस प्रकार कपिल के उपदेश के अनुसार आचरण करने से, वह मुक्त हो गयी। आत्म-रूप—परब्रह्म भगवान् को उसने पाया॥ २३, ३०॥

वीर विदुर, वह त्रिलोकप्रसिद्ध 'सिद्ध-पद' नामक पुण्यक्षेत्र था, जहाँ देवहूती ने सिद्धि पाई थी, देवहूती का वह मर्त्य-शरीर, जिसका मल-योग के द्वारा नष्ट हो गया था, वह "सिद्धिदा" नाम की नदी के रूप में प्रवाहित हुआ। जिसका सम्मान सिद्धगण करते हैं। महायोगी भगवान् कपिल भी माता से आज्ञा को लेकर, पिता के आश्रम से उत्तर दिशा में चले गये। वहाँ सिद्ध, चारण, गंधर्व, मुनि और अप्सराओं ने उनकी स्तुति की, समुद्र ने उनकी पूजा की और रहने का स्थान दिया। तीनों लोकों को शान्ति देने के लिए, कपिल मुनि वहीं समाधिस्थ होकर बैठे, जिन मुनि की स्तुति सांख्याचार्य करते हैं। तात, कपिल और देवहूती का जो संवाद तुमने पूछा

२६—ब्रह्मण्यवस्थितमतिर्भगवत्यात्मसंश्रये। निवृत्तजीवापत्तित्वात्क्षीणक्लेशाप्तनिर्वृतिः॥

२७—नित्यारूढसमाधित्वात्परावृत्तगुणभ्रमा। नसस्मारतदात्मानंस्वप्नेदृष्टमिवोत्थितः॥

२८—तद्देहःपरतःपोषोऽप्यकृशश्चाध्यसम्भवात्। बभौमलैरवच्छन्नःसधूमइवपावकः॥

२९—स्वांगतपोयोगमयंमुक्तकेशंगताम्बरं। दैवगुप्तनबुबुधेवासुदेवप्रविष्टधीः॥

३०—एवंसाकपिलोक्तेनमार्गेणाचिरतःपर। आत्मानंब्रह्मनिर्वाणंभगवन्तमवापह॥

३१—तद्वीरासीत्पुण्यतमक्षेत्रंत्रैलोक्यविश्रुत। नाम्नासिद्धपदयत्रसासंसिद्धिमुपेयुषी॥

३२—तस्यास्तद्योगविधुतमार्त्यंमर्त्यमभूत्सरित्। स्रोतसांप्रवरासौम्यसिद्धिदासिद्धसेविता॥

३३—कपिलोऽपिमहायोगीभगवान्पितुराश्रमात्। मातरंसमनुज्ञाप्यप्रागुदीचींदिशंययौ॥

३४—सिद्धचारणगंधर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः। स्तूयमानःसमुद्रेणदत्तार्हणनिकेतनः।

३५—आस्तेयोगंसमास्थायसांख्याचार्यैरभिष्टुतः। त्रयाणामपिलोकानामुपशान्त्यैसमाहितः॥

३६—एतन्निगदितंतातयत्पृष्टोऽहंतवानघ। कपिलस्यचसंवादोदेवहूत्याश्चपावनः।

-था, वह मैंने कहा यह संवाद पवित्र है। आत्म-प्राप्ति का गुप्त उपाय—यह कपिल देव का मत जो सुनेगा और कहेगा, उसकी बुद्धि गरुड़ध्वज भगवान् में लगेगी और वह भगवान् के चरणारविन्द को पावेगा ॥ ३१, ३७ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कंध का तेंतीसवाँ अध्याय समाप्त

तृतीय स्कंध समाप्त

३७—यइदमनुश्रृणोतियोऽभिधत्तेकपिलमुनेर्मतमात्मयोगगुह्यं ।
भगवतिकृतधीःसुपर्णकेतावुपलभतेभगवत्पदारविंदं ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेतृतीयस्कंधेकापिलेयोपाख्यानेत्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

तृतीय स्कंध समाप्त

श्रीमद्भागवत-चतुर्थ स्कंध

———:०:———

❀ श्री. ❀

श्रीमद्भागवत-चतुर्थ स्कंध

पहला अध्याय

स्वायम्भुव मनु का वंश-वर्णन

मैत्रेय बोले—शतरूपा के गर्भ से मनु के तीन कन्याएँ हुईं। आकूति, देवहूति और प्रसूति। आकूति का ब्याह रुचि नामक ऋषि से हुआ था। इस कन्या के ब्याह के समय मनु के पुत्र था, तो भी रानी के परामर्श से उन्होंने ऋषि से यह प्रतिज्ञा करायी कि इस कन्या के जो पुत्र होगा, उसे मैं अपना पुत्र बनाऊँगा। ब्रह्मतेज से तेजस्वी रुचि ऋषि ने भगवत्प्रेम के प्रभाव से आकूति के गर्भ से यमज (जुड़वाँ) सन्तान उत्पन्न की, एक पुत्र और एक पुत्री। उनमें

---

* श्रीगणेशायनमः *

मैत्रेयउवाच—

१—मनोस्तु शतरूपाया तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे। आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः ॥

२—आकूतिं रुचयेप्रादादपि भ्रातृमतीं नृपः। पुत्रिकाधर्म माश्रित्य शतरूपानुमोदितः ॥

जो पुत्र था, वह साक्षात् यज्ञावतार भगवान् विष्णु थे और दक्षिणा नामकी जो कन्या थी, वह लक्ष्मी के अश से थी, जो लक्ष्मी भगवान् विष्णु के पास सदा वर्तमान रहती हैं। स्वायम्भुव मनु, कन्या के पुत्र को जो बड़ा कान्तिमान् था, प्रसन्नता के साथ अपने घर ले आये और दक्षिणा कन्या अपने पिता रुचि ऋषि के पास ही रही। दक्षिणा ने पति रूप मे यज्ञभगवान् को पाने की कामना की, इससे भगवान् ने उसको व्याहा। ये दोनों स्त्री, पुरुप परस्पर अत्यन्त अनुरक्त रहते थे। अनुरक्त पति ने अनुरक्त स्त्री मे बारह पुत्र उत्पन्न किये। तोष, प्रतोष, संतोप, भद्र, शान्ति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वह्न, सुदेव और रोचन—ये उनके नाम थे, स्वायभुव मन्वन्तर मे ये तुषित नामक देवता कहे जाते थे। मरीचि आदि सात ऋषि-सप्तर्षि नाम से प्रसिद्ध हुए। स्वय यज्ञावतार भगवान ने इन्द्र का स्थान ग्रहण किया। प्रिय-व्रत और उत्तानपाद नाम के मनु के दो पुत्र थे, ये दोनों वड़े तेजस्वी थे। इनके पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रों के वशज राजाओं ने, उस स्वायम्भुव मन्वन्तर में पृथ्वी का पालन किया था ॥ १, ९ ॥

देवहूति नाम की दूसरी कन्या को मनु ने कर्दम प्रजापति नामक ऋषि को दी थी। इनकी कथा तुम लोगों ने मुझसे अच्छी तरह सुन ली है। मनु की प्रसूति नाम की तीसरी पुत्री ब्रह्मा के पुत्र दक्ष प्रजापति को दी गयी थी। इन प्रजापति का वश-विस्तार तीनों लोकों में फैला हुआ है। कर्दम ऋषि की नव कन्याएँ थीं, वे मरीचि आदि ब्रह्मर्षियों की भार्याएँ हुईं। इनका वश-विस्तार अब आप लोग हमसे सुने। कर्दम की एक कन्या कला थी, वह मरीचि ऋषि की स्त्री थी। कश्यप और पूर्णिमा नाम के दो पुत्र मरीचि की स्त्री कला के हुए।

३—प्रजापतिः सभगवान् रुचिस्तस्यामजीजनत्। मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥

४—यस्तयोः पुरुषः साक्षाद्विष्णुर्यज्ञ स्वरूपधृक्। यास्त्रीसा दक्षिणा भूतेरशभूताऽनपायिनी ॥

५—आनिन्ये स्वगृह पुत्र्याः पुत्र विततरोचिष। स्वायभुवो मुदायुक्तो रुचिर्जग्राह दक्षिणां ॥

६—ता कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः। तुष्टाया तोषमापन्नोऽजनयद् द्वादशात्मजान् ॥

७—तोष प्रतोषः संतोषो भद्रः शान्तिरिडस्पतिः। इध्मः कविर्विभुः स्वन्हः सुदेवो रोचनो द्विषट् ॥

८—तुषिता नाम ते देवा आसन् स्वायभुवान्तरे। मरीचि मिश्रा ऋषयो यज्ञः सुरगणेश्वरः ॥

९—प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ। तत्पुत्र पौत्र नप्तॄणामनुवृत्त तदतर ॥

१०—देवहूतिमदात्तात कर्दमायात्मजां मनुः। तत्सवधि श्रुतप्राय भवता गदतो मम ॥

११—दक्षाय ब्रह्मपुत्राय प्रसूतिं भगवान्मनुः। प्रायच्छद्यत्कृतः सर्गस्त्रिलोक्या विततो महान् ॥

१२—याः कर्दमसुताः प्रोक्ता नवब्रह्मर्षि पत्नयः। तासां प्रसूति प्रसव प्रोच्यमान निबोध मे ॥

१३—पत्नी मरीचेस्तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा। कश्यपं पूर्णिमानच ययोरापूरितं जगत् ॥

इनके वंशज पृथ्वी में बहुत बड़ी संख्या में फैले हुए हैं। विरज और विश्वग नाम के दो पुत्र पूर्णिमा के हुए और देवकुल्या नाम की एक कन्या हुई। उसने भगवान् के चरण धोए थे, जिससे वह जन्मान्तर में गङ्गा नदी के रूप में प्रसिद्ध हुई। अत्रि की स्त्री अनसूया ने ब्रह्मा, विष्णु और शिव के अंश से चन्द्रमा, दत्त और दुर्वासा नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये। ये तीनों पुत्र बड़े कीर्तिमान् थे ॥ १०,१५ ॥

विदुर ने पूछा—भगवन्, जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और नाश के अधिष्ठाता—ये त्रिदेव किस कार्य के लिए, किस उद्देश्य की सिद्धि के लिए, अत्रि के घर उत्पन्न हुए? आप यह बतलावें ॥ १६ ॥

मैत्रेय ने कहा—ब्रह्मा ने अपने पुत्रों को सृष्टि-विस्तार करने की आज्ञा दी थी, इसके लिए सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी महर्षि अत्रि ने स्त्री के साथ तपस्या करने का निश्चय किया और वे ऋक्ष नाम के एक विशाल पर्वत पर स्त्री के साथ गये। वहाँ पुष्प-गुच्छोंवाले विविध वृक्षों का वन है। वहाँ से निर्विन्ध्या नाम की नदी निकलती है, उसके उछलते जल का शब्द चारों ओर फैलता है। वहाँ अत्रि ऋषि ने प्राणायाम के द्वारा मन को वश में किया, सुख-दुःख का त्याग किया और केवल वायु के आहार पर रह कर सौ वर्षों तक (एक पैर पर खड़े रहकर) उन्होंने तपस्या की। तपस्या के समय वे ऋषि, नीचे लिखे अनुसार ध्यान करते थे। इस संसार का जो ईश्वर है—स्वामी है—उसकी शरण में आया हूँ। मैं उस ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वे अपने ही समान मुझे पुत्र दें। ऋषि की इस कठोर तपस्या से उनके मस्तक से अग्निज्वाला के समान तेज निकलने लगा। उनके प्राणायाम के तेज से त्रिलोक जलने लगा। त्रिलोक का यह कष्ट देखकर त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु और शिव ऋषि के आश्रम में आये। ये त्रिदेव सब देवों से

१४—पूर्णिमासूतविरजं विश्वगं च परंतप। देवकुल्या हरेः पाद शौचाद्याऽभूत्सरिद्दिवः ॥

१५—अत्रेः पत्न्यनसूयाऽत्रीन् जज्ञे सुयशसः सुतान्। दत्तं दुर्वाससं सोम मात्मेश ब्रह्मसम्भवान् ॥

विदुरउवाच—

१६—अत्रेर्गृहे सुरश्रेष्ठाः स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः। किंचिच्चिकीर्षवो जाता एतदाख्याहि मे गुरो ॥

मैत्रेयउवाच—

१७—ब्रह्मणानोदितः सृष्टा वत्रिर्ब्रह्मविदां वरः। सह पत्न्या ययावृक्षं कुलाद्रिं तपसि स्थितः ॥

१८—तस्मिन्प्रसूनस्तबक पलाशाऽशोककानने। वार्भिः स्रवद्भिरुद्घुष्टे निर्विन्ध्यायाः समं ततः ॥

१९—प्राणायामेन संयम्य मनोवर्षशतं मुनिः। अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिल भोजनः ॥

२०—शरणं तं प्रपद्येऽहं यएव जगदीश्वरः। प्रजा मात्मसमा मह्यं प्रयच्छत्विति चिंतयन् ॥

२१—तप्यमानं त्रिभुवनं प्राणायामैधसाऽग्निना। निर्गतेन मुनेर्मूर्ध्नः समीक्ष्य प्रभवस्त्रयः ॥

श्रेष्ठ हैं। इनकी कीर्ति; अप्सराएँ, मुनि, सिद्ध, गन्धर्व तथा नाग गाया करते है। एक पैर पर खडे होकर तपस्या करने वाले उन ऋषि का मन, त्रिदेव के आविर्भाव से प्रकाशित हो गया था, उन्होंने एक ही साथ त्रिदेवों का दर्शन किया, पृथ्वी पर झुककर उन्होंने त्रिदेवों को प्रणाम किया, वे त्रिदेव, हंस, गरुड और नन्दी पर बैठे थे और अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र आदि चिन्ह धारण किये हुए थे। ऋषि ने हाथ में फूल लेकर इन त्रिदेवों की पूजा की। कृपापूर्ण कटाक्ष तथा हँसते हुए मुँह से वे प्रसन्न मालूम पडते थे। उनके तेज से ऋषि की आँखें झप गयीं, आँखें बन्दकर और हाथ जोड़कर ऋषि ने उन देवों का ध्यान किया, उनमें अपना मन लगाया और वे मधुर वाणी से उन सब प्रधान देवताओं की स्तुति करने लगे॥ १७,२६॥

अत्रि बोले—ससार की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश—इन तीन भागों में विभक्त, माया के गुणों से प्रत्येक युग में शरीर धारण करने वाले आप ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मैंने आपमें से जिन्हें बुलाया है, वे कौन हैं?॥ २७॥ मैंने सन्तान की कामना से, भिन्न-भिन्न उपायों के द्वारा, अपने मन में एक भगवान् का ध्यान किया है। आपलोग जो शरीरधारियों के मन से भी दूर रहते हैं, यहाँ कैसे आये हैं?—यह आप प्रसन्न होकर मुझसे कहें, क्योंकि मेरे मन में बड़ा आश्चर्य हो रहा है॥ २८॥

मैत्रेय बोले—प्रभो! इस प्रकार उनकी बाते सुनकर, देवताओं में श्रेष्ठ वे तीनों, हँसते हुए, मधुर वाणी से, उन ऋषि से बोले॥ २९॥

२२—अप्सरो मुनि गधर्व सिद्ध विद्याधरोरगैः। वितायमान यशसस्तदाश्रम पद ययुः॥

२३—तत्प्रादुर्भाव सयोग विद्योतितमना मुनिः। उत्तिष्ठन्नेक पादेन ददर्शे विबुधर्षभान्॥

२४—प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपतस्थेऽर्हणाञ्जलिः। वृष हस सुपर्णस्थान् स्वैः स्वै चिन्हैश्च चिन्हितान्॥

२५—कृपावलोकेनहसद्वदने नोपलम्भितान्। तद्रोचिषा प्रतिहते निमील्य पुनरक्षिणी॥

२६—चेतस्तत्प्रवण युञ्जन्नस्तावीत्संहताञ्जलिः। श्लक्ष्णया सूक्तया वाचा सर्वलोक गरीयसः॥

अत्रिरुवाच—

२७—विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्य मानैर्माया गुणैरनुयुग विगृहीतदेहाः।
ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः प्रणतोऽस्म्यहंवस्तेभ्यः कएवभवता मइहोपहूतः॥

२८—एकोमयेह भगवान् विविधप्रधानैश्चित्तीकृत. प्रजननाय कथनुयूय।
अत्रागतास्तनुभृता मनसोऽपिदूरा ब्रूतप्रसीदत महानिह विस्मयोमे॥

मैत्रेयउवाच—

२९—इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयस्ते विबुध-र्षभा.। प्रत्याहुः श्लक्ष्णयावाचा प्रहस्यतमृषिं प्रभो॥

देवगण बोले—ब्रह्मन्! तुमने जैसा सङ्कल्प किया है, वैसा ही होगा, उसमें अन्तर न पड़ेगा। तुम्हारा सङ्कल्प सत्य है, अतः तुम जिस तत्व का ध्यान करते हो, वही हम हैं॥ ३०॥ हमारे अंश से तुम्हारे तीन पुत्र उत्पन्न होंगे। वे जगत् मे विख्यात होंगे और तुम्हारी कीर्ति बढ़ावेंगे॥ ३१॥ तुम्हारा कल्याण होगा। अनन्तर सब प्रकार से पूजित वे देवगण इच्छित वर देकर उन दम्पत्ति के देखते-ही-देखते, वापस लौट गये॥ ३२॥ पश्चात् ब्रह्मा के अश से चन्द्रमा, विष्णु के अंश से, योग के जानने वाले दत्तात्रेय तथा शिव के अंश से दुर्वासा—ये तीन पुत्र हुए। अब अङ्गिरा के वंश का वृत्तान्त सुनो॥ ३३॥ अङ्गिरा की श्रद्धा नाम की पत्नी से चार कन्याएँ उत्पन्न हुई—सिनीवाली, कुहू, राका और चौथी अनुमति॥ ३४॥ स्वारोचिष मन्वन्तर में विख्यात उनके दो अन्य पुत्र भी थे—साक्षात् भगवान् उतथ्य और ब्रह्म को जानने वाले बृहस्पति॥ ३५॥ पुलस्त्य मुनि की हविर्भू नामक पत्नी से महातपस्वी अगस्त्य और विश्रवा नाम के दो पुत्र हुए। इनमें विश्रवा पूर्वजन्म में जठराग्नि थे॥ ३६॥ विश्रवा की ईडविडा नाम की स्त्री से यक्षों के अधिपति कुबेर उत्पन्न हुए और दूसरी स्त्री से रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण—ये तीन पुत्र हुए॥ ३७॥ हे विदुर! पुलह की गति नाम की सती भार्या ने कर्मश्रेष्ठ, वरीयस और सहिष्णु नाम के तीन पुत्र उत्पन्न किये॥ ३८॥ क्रतु ऋषि की पत्नी क्रिया ने भी ब्रह्मतेज से प्रकाशित साठ हजार बालखिल्य ऋषियों को जन्म दिया॥ ३९॥ वशिष्ठ ने ऊर्जा नाम की स्त्री से चित्रकेतु, सुरोचि, विरजा, मित्र, उल्वण, वसुभृद्यान और द्युमान नाम के सात ब्रह्मर्षि और शुद्ध अन्तःकरण वाले पुत्र उत्पन्न किए तथा दूसरी स्त्री से

देवाउचु—

३०—यथा कृतस्ते सङ्कल्पो भाव्य तेनैव नान्यथा। सत्संकल्पस्य ते ब्रह्मन् यद्वैध्यायति ते वय॥

३१—अथास्मदंश भूतास्ते आत्मजा लोकविश्रुताः। भवितारोऽग भद्रंते विस्रप्स्यन्तिच ते यशः॥

३२—एव कामवर दत्त्वा प्रतिजग्मुः सुरेश्वराः। सभाजितास्तयो. सम्यग्दपत्योर्मिषतोस्ततः॥

३३—सोमोऽभूद् ब्रह्मणोंशेन दत्तोविष्णोस्तु योगवित्। दुर्वासाः शंकरस्यांशो निबोधाङ्गिरसः प्रजाः॥

३४—श्रद्धात्वङ्गिरसः पत्नी चतस्रो सूत कन्यका.। सिनीवाली कुहू राका चतुर्थ्यनुमतिस्तथा॥

३५—तत्पुत्रावपरावास्ता ख्यातौ स्वारोचिषेऽन्तरे। उतथ्यो भगवान् साक्षाद् ब्रह्मिष्ठश्च बृहस्पति.॥

३६—पुलस्त्यो जनयत्पत्न्यामगस्त्य च हविर्भुवि। सोन्यजन्मनिदह्राग्निर्विश्रवाश्च महातपाः॥

३७—तस्य यक्षपतिर्देव·कुबेरस्त्विड्विडासुतः। रावणः कुम्भकर्णश्च तथान्यस्यां विभीषणः॥

३८—पुलहस्य गतिर्भार्यात्रीनसूतसती सुतान्। कर्मश्रेष्ठ वरीयासं सहिष्णु च महामते॥

३९—क्रतोरपि क्रिया भार्या बालखिल्यानसूयत। ऋषीन् षष्ठी सहस्राणि ज्वलतो ब्रह्मतेजसा॥

४०—ऊर्जायां जज्ञिरे पुत्रा वसिष्ठस्य परंतप। चित्रकेतु प्रधानास्ते सप्तब्रह्मर्षयोऽमलाः॥

४१—चित्रकेतुः सुरोचिश्च विरजा मित्रएवच। उल्वणो वसुभृद्यानो द्युमान् शक्त्यादयोपरे॥

शक्ति आदि अन्य पुत्र भी हुए ॥ ४०-४१ ॥ अथर्वा की चिति नामक भार्या ने दध्यच्य नामक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न किया, जिसका सिर घोड़े के सिर के समान था ॥ ४२ ॥ अब भृगु का वंश सुनो। ख्याति नामक पत्नी के गर्भ से भृगु ऋषि के धाता और विधाता नाम के दो पुत्र तथा लक्ष्मी नाम की कन्या उत्पन्न हुई। ये तीनों भगवान् के भक्त थे ॥ ४३ ॥ मेरु पर्वत ने धाता और विधाता को आयति और नियति नाम की अपनी दो कन्याएँ दीं, जिनसे उन्हें मृकण्ड और प्राण नाम के पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४४ ॥ मृकण्ड के मार्कण्डेय और प्राण के वेदशिरा पुत्र हुए। भृगु मुनि के कवि नामक अन्य पुत्र से शुक्राचार्य की उत्पत्ति हुई ॥ ४५ ॥ विदुर! इस प्रकार इन मुनियों ने सृष्टि करके संसार का कल्याण किया। मैंने कर्दम की कन्याओं का वंश-वर्णन तुम से किया ॥ ४६ ॥ जो लोग इसे श्रद्धा से सुनते हैं, उनके पापों का शीघ्र ही नाश हो जाता है और उनका कल्याण होता है। ब्रह्मा के पुत्र दक्ष प्रजापति ने स्वायम्भुव मनु की कन्या प्रसूति को ब्याहा, जिससे उनके सुन्दर नेत्रवाली सोलह कन्याएँ उत्पन्न हुईं। उनमें से तेरह कन्याएँ धर्म को, एक अग्नि को, एक समस्त पितरों को तथा एक संसार के बन्धनों को काटने वाले शिव को दी गयीं। श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री और मूर्ति—ये तेरह धर्म की स्त्रियाँ हैं। इनमें श्रद्धा के गर्भ से शुभ, मैत्री से प्रसाद, दया से अभय, शान्ति से सुख, तुष्टि से मुद, पुष्टि से स्मय, क्रिया से योग, उन्नति से दर्प, बुद्धि से अर्थ, मेधा से स्मृति, तितिक्षा से क्षेम, और ह्री से प्रश्रय नाम के बारह पुत्र उत्पन्न हुए। समस्त गुणों वाली मूर्ति ने नर और नारायण नाम के दो

४२—चितिस्त्वथर्वणः पत्नी लेभे पुत्रं धृतव्रतम्। दध्यञ्चमश्वशिरसं भृगोर्वंशं निबोधमे ॥

४३—भृगुः ख्यात्या महाभागः पत्न्या पुत्रानजीजनत्। धातारं च विधातारं श्रियंच भगवत्पराम् ॥

४४—आयतिं नियतिं चैव सुते मेरुस्तयोरदात्। ताभ्यां तयोरभवतां मृकण्डः प्राणएव च ॥

४५—मार्कण्डेयो मृकण्डस्य प्राणाद्वेदशिरा मुनिः। कविश्च भार्गवो यस्य भगवानुशना सुतः ॥

४६—तएते मुनयः क्षत्तर्लोकान्सर्गैरभावयन्। एष कर्दम दौहित्र सतानः कथितस्तव ॥

४७—प्रसूतिं मानवीं दक्ष उपयेमे ह्यजात्मजः। तस्यां ससर्ज दुहितॄः षोडशामललोचनाः ॥

४८—त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभुः। पितृभ्य एकां युक्तेभ्यो भवायैकां भवच्छिदे ॥

४९—श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः। बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्रीर्मूर्तिर्धर्मस्य पत्नयः ॥

५०—श्रद्धा सूत शुभं मैत्री प्रसादं मभयं दया। शान्तिः सुखं मुदंतुष्टिः स्मयं पुष्टिरसूयत ॥

५१—योगं क्रियोन्नतिर्दर्पमर्थं बुद्धिरसूयत। मेधा स्मृतिं तितिक्षातु क्षेमंह्रीःप्रश्रयं सुतम् ॥

५२—मूर्तिः सर्वगुणोत्पत्तिर्नरनारायणावृषी। ययोर्जन्मन्यदोविश्व मभ्यनन्दत्सुनिर्वृतम् ॥

५[illegible]—[illegible]नासि ककुभो वाताः प्रसेदुः सरितोद्रयः। दिव्य वाद्यंत तूर्याणि पेतुः कुसुम वृष्टयः ॥

महात्मा पुत्र उत्पन्न किये, जिनके जन्म के समय सारे संसार को सुख और प्रसन्नता प्राप्त हुई। मनुष्यों के मन, दिशाएँ, नदियाँ और पर्वत स्वच्छ हो गये, स्वर्ग में दुन्दुभि बजने लगी, फूलों की वृष्टि होने लगी। सन्तुष्ट होकर मुनिगण स्तुति करने लगे, किन्नर और गन्धर्व गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं, चारों ओर उत्सव होने लगा। ब्रह्मादिक समस्त देवता स्तुति करने लगे ॥ ४७, ५५ ॥

देवता बोले—जिसने माया के द्वारा निज स्वरूप में इस विश्व का निर्माण किया है, जिस प्रकार आकाश में गन्धर्व-नगर आदि की रचना होती है, उसने अपना रूप प्रकाशित करने के लिए, ऋषि के इस धर्म-गृह में, ऋषि के रूप में अपने को प्रकट किया है। उस परम पुरुष को हमलोग नमस्कार करते हैं। जिस भगवान् ने संसार की स्थिति को बनाये रखने के लिए, सत्वगुण के द्वारा हम देवताओं की सृष्टि की है और जिनका यथार्थ तत्व-ज्ञान अनुमान के द्वारा होता है, वे भगवान् अपनी दयायुक्त दृष्टि के द्वारा हमलोगों को देखें, जो दृष्टि शोभा के भाण्डार विकसित कमल की शोभा को तिरस्कृत करती है ॥५६,५७॥

इस प्रकार दर्शन पाये हुए देवताओं के द्वारा स्तुति किये जाने और पूजित होने पर नर और नारायण गन्धमादन पर्वत पर गये ॥ ५८ ॥ ये नर और नारायण विष्णु के अंश-रूप थे। संसार का भार उतारने के लिए इन्होंने यदुकुल में कृष्ण और कुरुकुल में अर्जुन के रूप में अवतार धारण किया था ॥ ५९ ॥ स्वाहा नाम की भार्या से अग्नि के पावक, पवमान तथा शुचि, ये तीन पुत्र हुए। ये हवि खाने वाले तथा अग्नि के अधिष्ठाता देवता हुए। इन तीनों के पैंतालीस पुत्र उत्पन्न हुए, जो अपने पिता और पितामह के साथ मिलकर उनचास

५४—मुनयस्तुष्टुवुःस्तुष्टा जगुर्गंधर्व किन्नराः। नृत्यंतिस्म स्त्रियोदेव्य आसीत्परम मंगलम् ॥
देवा ब्रह्मादयः सर्वे उपतस्थुरमिष्टुवैः।

५५—यो मायया विरचितं निजयात्मनीदं खेरूपभेदमिव तत्प्रतिचक्षणाय।
एतेन धर्म सदने ऋषि मूर्तिनाद्य प्रादुश्चकार पुरुषाय नमः परस्मै ॥

५६—सोय स्थितिव्यतिकरोपशमाय सृष्टान् सत्वेन नः सुरगणा ननु मे यतस्वः।
दृश्या ददभ्र करुणेन विलोकनेन यच्छ्रीनिकेत ममलं क्षिपतारविंदम् ॥

५७—एवं सुरगणैस्तात भगवंतावभिष्टुतौ। लब्धावलोकैर्ययतुरर्चितौ गंधमादनम् ॥

५८—ताविमौ वै भगवतो हरेरंशा विहागतौ। भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरूद्वहौ ॥

५९—स्वाहाभिमानिनश्चाग्नेरात्मजा स्त्रीनजीजनत्। पावक पवमान च शुचिं च हुतभोजनम् ॥

६०—तेभ्योऽग्नयः समभवन् चत्वारिंशच्च पंचच। त एवैकोन पचाशत्साकं पितृ पितामहैः ॥

६१—वैतानिके कर्मणि यन्नामभिर्ब्रह्मवादिभिः। आग्नेय्य इष्ट यो नखे निरूप्यंतेऽग्नयस्तु ते ॥

कहे जाते हैं ॥ ६०, ६१ ॥ यज्ञीय कार्यों मे जिनके नाम से वेद जानने वाले ब्राह्मण, आग्नेयी नाम की इष्टि का निरूपण करते हैं, वे सब अग्नि हैं ॥ ६२ ॥ अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, सौम्य और आज्यप नाम के चार पितर हैं। ये साग्नि और अनग्नि दो प्रकार के हैं। दक्ष की कन्या स्वधा उन सबों की पत्नी है ॥ ६३ ॥ उसके गर्भ से वयुना और धारिणी नाम की दो कन्याएँ उत्पन्न हुई। वे दोनों ब्रह्म का विचार करने वाली और ज्ञान-विज्ञान मे पारदर्शिनी थीं ॥६४॥ महादेव की पत्नी सती गुण और शील में समान अपने पति की अनुगामिनी थी। उसके कोई पुत्र न हुआ ॥ ६५ ॥ निरपराध महादेव के प्रति अपने पिता की प्रतिकूलता देख, क्रोध करके, छोटी उम्र में ही सती ने योग का आश्रय लेकर अपना शरीर छोड़ दिया ॥ ६६ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का पहला अध्याय समाप्त

—*—

दूसरा अध्याय

महादेव और दक्ष का विरोध

विदुर बोले—महादेव शीलवानों में श्रेष्ठ हैं और दक्ष भी अपनी कन्या पर प्रीति रखने वाले हैं। फिर उन्होंने अपनी कन्या सती का अनादर करके महादेव से द्वेष कैसे किया ? चर

६२—अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सौम्याः पितर आज्यपाः। साग्नयोऽनग्नयस्तेषां पत्नी दाक्षायणी स्वधा ॥
६३—तेभ्यो दधार कन्ये द्वे वयुना धारिणीं स्वधा। उभेते ब्रह्मवादिन्यौ ज्ञानविज्ञान पारगे ॥
६४—भवस्य पत्नी तु सती भवं देवमनुव्रता। आत्मनःसदृशं पुत्रं न लेभे गुणशीलतः ॥
६५—पितर्यप्रतिरूपेस्वे भवायानागसे रुषा। अप्रौढैवात्मनात्मान मजहाद्योग संयुता ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेविदुरमैत्रेयसंवादेप्रथमोध्यायः ॥ १ ॥

—.o*o—

विदुरउवाच—
१—भवे शीलवतां श्रेष्ठे दक्षो दुहितृवत्सलः। विद्वेष मकरोत् कस्मादनादृत्यात्मजां सतीम् ॥

और अचर के गुरु, संसार के महान् स्वामी, शान्त-स्वरूप, आत्माराम (योगी) उन महादेव से कोई वैर क्यों करेगा, क्योंकि वे स्वयं वैर-रहित हैं ? ब्रह्मन् ! आप श्वसुर और जामाता के विद्वेष की यह कथा मुझसे कहिए, जिसके कारण सती ने अपने दुस्त्यज प्राणों का त्याग कर दिया था ॥ १, ३ ॥

मैत्रेय बोले—प्राचीन काल मे प्रजापति के यज्ञ मे बड़े-बड़े ऋषि, अपने आश्रित वर्ग के साथ समस्त देवता, मुनि तथा अग्नि इकट्ठे हुए थे ॥४॥ तेज से सूर्य के समान शोभित होनेवाले दक्ष ने वहाँ प्रवेश किया। उनके आने से उस बड़ी सभा मे प्रकाश फैल गया ॥ ५ ॥ उनके तेज से प्रभावित होकर महादेव और ब्रह्मा के अतिरिक्त सभी मुनि, सदस्य तथा अग्नि अपने-अपने आसन से उठ खड़े हुए ॥ ६ ॥ सभासदों के द्वारा भलीभाँति सत्कार पाकर, जगत् के गुरु, ब्रह्मा को प्रणाम करके तथा उनकी आज्ञा लेकर भगवान् दक्ष बैठे ॥ ७ ॥ पहले से बैठे हुए शिव को देखकर, उनके द्वारा अनाहृत दक्ष अपना अपमान सह नहीं सके और टेढ़ी आँखों से देखकर मानो उन्हें जलाते हुए बोले—हे ब्रह्मर्षिगण ! हे देवता तथा अग्नियों ! मैं अज्ञान अथवा ईर्ष्या से नहीं, किन्तु सज्जनों की रीति के अनुसार कहता हूँ, आप सुनें ॥ ८,९ ॥ यह महादेव लोकपालों की कीर्ति का नाश करनेवाला और निर्लज्ज है। इसने अपने दुर्विनीत आचरण से सज्जनों के चलाये हुए मार्ग को दूषित कर दिया है ॥ १० ॥ यह मेरे शिष्य के समान है, क्योंकि अग्नि तथा ब्राह्मणों के समक्ष, सुपात्र के समान, इसने मेरी सावित्री-जैसी कन्या का पाणिग्रहण किया है ॥ ११ ॥ बन्दर के समान आँख वाले इस महादेव ने मृग-शावक

२—कस्तं चराचरगुरुं निर्वैरं शान्त विग्रहम् । आत्मारामं कथं द्वेष्टि जगतो दैवत महत् ॥

३—एतदाख्याहि मे ब्रह्मन् जामातुः श्वशुरस्य च । विद्वेषस्तु यत॰ प्राणांस्तत्यजे दुस्त्यजान् सती ॥

मैत्रेयउवाच—

४—पुरा विश्वसृजां सत्रे समेताः परमर्षयः । तथामरगणाः सर्वे सानुगा मुनयोऽग्नय॰ ॥

५—तत्र प्रविष्ट मृषयो दृष्ट्वार्कमिव रोचिषा । भ्राजमान वितिमिरं कुर्वं तं तन्महत्सद ॥

६—उदतिष्ठन्सदस्यास्ते स्वधिष्ण्येभ्यः सहाग्नयः । ऋते विरिञ्चि शर्वंच तद्भासाक्षिप्तचेतसः ॥

७—सदसस्पतिभिर्दक्षो भगवान् साधु सत्कृतः । अज लोकगु रु नत्वा निषसाद तदाज्ञया ॥

८—प्राङ् निषण्णं मृडं दृष्ट्वा नामृष्यत्तदनादृतः । उवाच वामं चक्षुर्म्यामभिवीक्ष्य दहन्निव ॥

९—श्रूयतां ब्रह्मर्षयो मे सहदेवाः सहाग्नयः । साधूनां ब्रुवतो वृत्तं नाज्ञानान्न च मत्सरात् ॥

१०—अयंतु लोकपालानां यशोघ्नो निरपत्रपः । सद्भि राचरितः पंथा येन स्तब्धेन दूषितः ॥

११—एष मे शिष्यतां प्राप्तो यन्मे दुहितुरग्रहीत् । पाणिं विप्राग्नि मुखतः सावित्र्या इव साधुवत् ॥

के समान आँखों वाली मेरी कन्या को पाया है। प्रत्युत्थान और अभिवादन करने योग्य मेरा इसने वाणी से भी सत्कार नहीं किया ॥ १२ ॥ जिसकी क्रियाएं लुप्त हो गयी हैं, जो अपवित्र है, अभिमानी है तथा जिसने धर्म की मर्यादा तोड दी है, ऐसे इस महादेव को इच्छा न होते हुए भी मैंने अपनी कन्या दे दी, जैसे शूद्र को वेदवाणी दे दी गयी हो ॥ १३ ॥ भयानक श्मशानों में भूत-प्रेतों से घिरा हुआ, उन्मत्त के समान यह घूमता रहता है। इसके बाल बिखरे रहते हैं, शरीर नङ्गा रहता है तथा यह कभी हसता है और कभी रोता ॥ १४ ॥ चिता का भस्म यह सारे शरीर में लपेटे रहता है, प्रेतों के पहनने योग्य नर-मुण्डों के गहने पहनता है। कहने को तो शिव है, पर है—अत्यन्त अशिव। यह स्वयं पागल है तथा पागलों का प्यारा है। तामसी प्रकृति वाले प्रमथ-भूतों का यह स्वामी है ॥ १५ ॥ हा ! मैंने ब्रह्मा के कहने से इस उन्मादनाथ, अपवित्र और दुरात्मा को अपनी साध्वी कन्या दे दी ॥ १६ ॥

मैत्रेय बोले—जो महादेव बिना कोई प्रतिकूल आचरण किये बैठे थे, उनकी निन्दा करके, और जल से आचमन करके क्रोधित दक्ष उन्हें शाप देने लगे—॥ १७ ॥ देवताओं में अधम यह महादेव देवताओं के यज्ञ मे इन्द्र, उपेन्द्र आदि के साथ भाग न प्राप्त करे अर्थात् इसको देवताओं के यज्ञ में भाग न मिले ॥ १८ ॥ हे विदुर ! दक्ष का क्रोध बहुत बढ गया था। यज्ञ-सभा के प्रमुख सदस्यों के मना करते रहने पर भी महादेव को इस प्रकार शाप देकर वे उस सभा से निकलकर अपने घर चले गये ॥ १९ ॥ इस शाप की बात सुनकर महादेव के अनुचरों में श्रेष्ठ नन्दीश्वर ने भी दक्ष तथा उनके कार्य का अनुमोदन करनेवाले ब्राह्मणों को दारुण

१२—गृहीत्वा मृगशावाक्ष्या पाणिं मर्कटलोचनः। प्रत्युत्थानाभिवादार्हे वाचाप्यकृतनोचितम् ॥

१३—लुप्त क्रियाया शुचये मानिने भिन्नसेतवे। अनिच्छन्नप्यदा बाला शूद्रायेवोशती गिरम् ॥

१४—प्रेतावासेषु घोरेषु प्रेतैर्भूत गणैर्वृतः। अटत्युन्मत्तवन्नग्नो व्युप्तकेशो हसन्रुदन् ॥

१५—चिताभस्म कृतस्नान' प्रेत स्रङ्न्रस्थि भूषण. । शिवापदेशो ह्यशिवो मत्तो मत्त जनप्रियः ॥

पति. प्रमथ भूताना तमो मात्रात्मकात्मनाम् ॥

१६—तस्मा उन्मादनाथाय नष्ट शौचाय दुर्हृदे। दत्ताबत मया साध्वी चोदिते परमेष्ठिना ॥

मैत्रेयउवाच—

१७—विनिन्द्यैवं सगिरिश मप्रतीप मवस्थितम। दक्षोऽथाप उपस्पृश्य क्रुद्धः शप्तुं प्रचक्रमे ॥

१८—अयन्तु देवयजन इन्द्रोपेन्द्रादिभिर्भव। सहभागं न लभतां देवैर्देवगणाधम. ॥

१९—निषिध्यमान सदस्य मुख्यैर्दक्षो गिरित्राय विसृज्य शापम्।

तस्माद्विनिष्क्रम्य विवृद्धमन्युर्जगाम कौरव्य निजं निकेतनं ॥

२०—विज्ञाय शाप गिरिशानुगाग्रणीर्नन्दीश्वरो रोषकषाय दूषितः ।

दक्षाय शापं विससर्ज दारुणं ये चान्वमोदंस्तदवाच्यतां द्विजाः ॥

शाप दिया ॥ २० ॥ जो अज्ञानी तथा भेदबुद्धि रखनेवाला दक्ष का पक्ष लेकर, किसी से वैर न रखने वाले महादेव से द्रोह करेगा, वह परमार्थ से विमुख होगा ॥२१॥ ग्राम्य सुख (स्त्री आदि का सुख) की इच्छा से, छल-कपट-पूर्ण धर्म वाले गृह मे जो आसक्त रहते हैं तथा वेद के अर्थवाद से जिनकी बुद्धि नष्ट हो गयी है, वे कर्मों में पक्षपात रखते हैं ॥ २२ ॥ शरीर का ही आत्मरूप से ध्यान करने वाली बुद्धि के द्वारा जिसने यथार्थ आत्मतत्त्व को भुला दिया है, अतएव पशु-तुल्य होकर स्त्री-कामी हो गया है, उस दक्ष का मुँह शीघ्र ही बकरे के समान हो जाय ॥ २३ ॥ यह दक्ष कर्ममयी विद्या को ही यथार्थ विद्या अर्थात् आत्मविद्या समझता है, अतः यह मूर्ख है। महादेव की अवमानना करनेवाले इस दक्ष का जिन लोगों ने पक्ष लिया है, वे भी जन्म-मरण के बन्धन में पड़े रहे ॥ २४ ॥ वेदरूप श्रुति मे अनेक वचन पुष्पों के समान हैं। मनको चञ्चल करने वाले हैं, क्योंकि वे किसी विषय की प्रशसा के लिए ही हैं। उन वचनों की मधुर गन्ध मन को क्षुभित करने वाली है। उसके द्वारा जिनका मन क्षुभित हो गया है, जो उन प्ररोचक वचनों की ओर आकृष्ट हो गये है, वे शिव के द्रोही मोहित हो जायँ ॥ २५ ॥ अर्थात यथार्थ तत्व छोड़कर कर्म में अनुरक्त रहें। ये ब्राह्मण सर्वभक्षी हों, आजीविका के लिए विद्या, तप और व्रत को धारण करें तथा धन, देह और इन्द्रियों मे लिप्त होकर, भिखारी बनकर इस संसार में विचरण करे ॥ २६ ॥ इस प्रकार नन्दिकेश्वर ब्राह्मण-कुल को शाप दे रहे हैं, यह सुन कर भृगु मुनि ने ब्रह्मदण्डरूप अमोघ शाप दिया ॥ २७ ॥ जो महादेव के व्रत का धारण करने वाले हों तथा जो उनका अनुसरण करे, वे पाखण्डी सत्शास्त्रों के प्रतिकूल आचरण करने वाले हों ॥ २८ ॥ जिनकी पवित्रता नष्ट हो गयी है, जिनकी बुद्धि कुण्ठित हो गयी है, जो जटा, भस्म और अस्थियों के धारण करने वाले हैं तथा शराब और ताड़ी आदि जिनके लिए देवता के समान आदरणीय है, वे शिव की दीक्षा ले ॥ २९ ॥ वर्णाश्रम के आचारों को धारण करने वाले

२१—य एतन्मर्त्य मुद्दिश्य भगवत्य प्रतिद्रुहि । द्रुह्यत्यज्ञः पृथग्दृष्टिस्तत्वतो विमुखो भवेत् ॥

२२—गृहेषु कूटधर्मेषु सक्तो ग्राम्य सुखेच्छया । कर्मतन्त्र वितनुते वेदवाद विपन्नधी. ॥

२३—बुद्धया पराभिध्यायिन्या विस्मृतात्मगतिः पशुः । स्त्रीकामसोऽस्त्वतितरा दक्षोवस्त मुखोऽचिरात् ॥

२४—विद्या बुद्धिरविद्याया कर्म मय्यामसौ जड. । ससरन्त्विहये चामुमनुशर्वावमानिनम् ॥

२५—गिर. श्रुतायाः पुष्पिण्या मधुगन्धेन भूरिणा । मथ्नाचोन्मथितात्मान. सम्मुह्यंतु हरद्विषः ॥

२६—सर्वभक्षा द्विजावृत्यै धृतविद्या तपोव्रता । वित्त देहेंद्रियारामा याचका विचरंत्विह ॥

२७—तस्यैवं ददत. शाप श्रुत्वाद्विजकुलाय वै । भृगुः प्रत्यसृजच्छापं ब्रह्मदड दुरत्ययम् ॥

२८—भव व्रतधरायेच येचतान् समनुव्रताः । पाखण्डिनस्तेभवन्तु सच्छास्त्र परिपंथिनः ॥

२९—नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थिधारिणः । विशन्तु शिवदीक्षाया यत्रदैवं सुरासवम् ॥

मर्यादारूप वेदों और ब्राह्मणों की तुम निन्दा करते हो, अतः तुम पाखण्डी हो ॥ ३० ॥ वेद ही संसार का कल्याण करनेवाला और सनातन मार्ग है । प्राचीन ऋषियों ने इसी मार्ग का अनुसरण किया है और स्वय भगवान् इसके प्रवर्तक हैं ॥ ३१ ॥ अत्यन्त शुद्ध और सनातन, वेदरूप, सत्पुरुषों के इस मार्ग की तुमने निन्दा की है, अत. तुम भूतप्रेतों के स्वामी अपने इष्टदेव के उस मार्ग में जाओ जो पाखण्ड का मार्ग है ॥ ३२ ॥

मैत्रेय बोले—भृगु को इस प्रकार शाप देते देखकर, भगवान् महादेव कुछ उदास हुए और अपने अनुचरों के साथ वहाँ से उठकर चले गये ॥ ३३ ॥ अनन्तर एक हजार वर्षों में सम्पूर्ण होनेवाले उस यज्ञ को, जिसमें भगवान् का भजन होता था ॥ ३४ ॥ समाप्त करके तथा गङ्गा और यमुना से युक्त प्रयाग में अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान करके वे समस्त प्रजापति अपने-अपने धाम को गये ॥ ३५ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध का दूसरा अध्याय समाप्त

३०—ब्रह्मच ब्राह्मणांश्चैव यद्यूय परिनिंदय । सेतु विधारण पुंसामतः पाखड माश्रिताः ॥

३१—एषएवहि लोकाना शिवः पंथा. सनातनः । यं पूर्वे चानुसतस्थुर्यत्प्रमाणं जनार्दनः ॥

३२—तद्ब्रह्म परम शुद्धं सता वर्त्म सनातनम् । विगर्ह्य यातपाखड दैवंवोयत्र भूतराट् ॥

मैत्रयउवाच—

३३—तस्यैवं ददतः शाप भृगोः सभगवान् भवः । निश्चक्राममतः किंचिद्विमना इव सानुगः ॥

३४—तेपि विश्वसृजः सत्र सहस्र परिवत्सरान् । संविधाय महेष्वास यत्रेज्य ऋषभो हरिः ॥

३५—आप्लुत्यावभृथं यत्र गगायमुनयाऽन्विता । विरजे नात्मनासर्वे स्वंस्व धाम ययुस्ततः ॥

इ० भा० म० दक्षशापोनामद्वितीयोऽध्याय. ॥ २ ॥

श्रीमद्भागवत-द्वितीय स्कन्ध
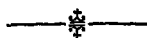
ब्रह्मकृत भगवत्स्तुति

तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः प्रावीविशत्सर्वगुणावभासम् ।
तस्मिन्स्वयं वेदमयो विधाता स्वयम्भुवं यं स्म वदन्ति सोऽभूत् ॥ (भा० ३।८।१५)

❀ श्रीहरिः ❀

श्रीमद्भागवत-द्वितीय स्कंध

पहला अध्याय

महापुरुषों के संस्थान का वर्णन; भगवान् का विराट् रूप

श्रीशुकदेवजी बोले—राजन् ! आपने लोकों के हित के लिये जो यह प्रश्न किया है, यह अत्यन्त उत्तम है, क्योंकि आत्मज्ञानियों ने इसे स्वीकार किया है और यह विषय सुनने तथा ध्यान करनेवाले विषयों मे श्रेष्ठ है ॥ १ ॥ राजेंद्र ! मनुष्यों के सुनने योग्य हजारों विषय हैं, किंतु आत्मा के स्वरूप को न जाननेवाले तथा गृहस्थाश्रम मे आसक्त गृहस्थों की आयु, रात्रि में, निद्रा में अथवा स्त्री-संग मे और दिन, धन अर्जन करने या कुटुम्ब के भरण-पोषण में, बीत जाती है ॥ २-३ ॥ शरीर, संतान और स्त्री आदि अपनी सेना (अर्थात् अपना परिवार)

❀ नमोभगवतेवासुदेवाय ❀

श्रीशुकउवाच—

१—वरीयानेपतेप्रश्नःकृतोलोकहितंनृप । आत्मवित्सम्मतःपुंसांश्रोतव्यादिषु.परः ॥

२—श्रोतव्यादीनिराजेंद्रनृणांसन्तिसहस्रशः । अपश्यतामात्मतत्त्वंगृहेषुगृहमेधिना ॥

३—निद्रयाह्रियतेनक्तंव्यवायेनचवावयः । दिवाचार्थेहयाराजन्कुटुम्बभरणेनवा ॥

नाशवान् है, उसका नाश होना स्वय देखकर भी ससार के प्रति अनुरक्त मनुष्य अनदेखे के समान व्यवहार करता है ॥ ४ ॥ अतः हे भारत ! मोक्ष की इच्छा रखनेवाले पुरुष को सर्वात्मा, नियामक तथा जन्म-मरण के बधन को नष्ट करनेवाले भगवान् की कथा सुननी चाहिये, उनके गुणों का कीर्तन करना चाहिए तथा उनका स्मरण करना चाहिये ॥ ५ ॥ स्वधर्म में निष्ठा, आत्मा-अनात्मा का विवेक तथा अष्टाग योग के द्वारा अत समय में भगवान् का स्मरण रखना ही मनुष्य-जन्म का फल है ॥ ६ ॥ राजन् ! विधि तथा निषेध से निवृत्त हुए तथा निर्गुण ब्रह्म में स्थित मुनियों को भी भगवान् के गुणों का कीर्तन करने में आनद प्राप्त होता है ॥७॥ भगवान् के द्वारा कथित वेदतुल्य इस पुराण (भागवत) को मैंने द्वापर के प्रारम्भ मे अपने पिता द्वैपायन (व्यास) से पढा था ॥ ८ ॥ राजर्षि ! निर्गुण ब्रह्म मे स्थित होते हुए भी भगवान् की लीला मे मेरा मन अनुरक्त है, इसीसे आपको भगवान् का भक्त जानकर मैं वह कथा कहता हूँ, जो मैंने पढी थी। इस भागवत मे श्रद्धा रखनेवाले पुरुष के मन मे शीघ्र ही भगवान् की निष्काम भक्ति उत्पन्न होती है ॥ ९-१० ॥ भगवान् के गुणो का कीर्त्तन सकाम व्यक्तियों को इच्छित फल तथा ज्ञानी और योगियो को ज्ञान और योगाभ्यास का फल देनेवाला है, यह निश्चित है ॥ ११ ॥ विषयो में आसक्त मनुष्य के अनजान में बीते हुए अनेक वर्षों से क्या लाभ है ? अर्थात् कुछ भी लाभ नहीं है, किंतु ज्ञान में बीता हुआ एक मुहूर्त भी उत्तम है, क्योंकि उसमे कल्याण के लिये उद्योग किया जा सकता है ॥ १२ ॥ खट्वाग नामक राजा ने मुहूर्त्त-मात्र अवशिष्ट अपने आयुष्य को जानकर, उतने ही समय में सब की ममता त्यागकर, मोक्षस्वरूप ईश्वर को प्राप्त किया था ॥ १३ ॥ राजन् ! आपको अभी सात दिनो तक जीवित रहना है, अत इतने समय में आप परलोक के सभी साधनो का सम्पादन कर लें ॥ १४ ॥ जब मनुष्य की मृत्यु का समय

४—देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि । तेषाप्रमत्तोनिधनपश्यन्नपिनपश्यति ॥

५—तस्माद्भारतसर्वात्माभगवान्हरिरीश्वर. । श्रोतव्य.कीर्तितव्यश्चस्मर्तव्यश्चेच्छताऽभय ॥

६—एतावान्साख्ययोगाभ्यास्वधर्मपरिनिष्ठया । जन्मलाभ.पर पुसामतेनारायणस्मृतिः ॥

७—प्रायेणमुनयोराजन्निवृत्ताविधिषेधतः । नैर्गुण्यस्थारमतेस्मगुणानुकथनेहरेः ॥

८—इदभागवतनामपुराणब्रह्मसमित । अधीतवान्द्वापरादौपितुर्द्वैपायनादह ॥

९—परिनिष्ठितोपिनैर्गुण्येउत्तमश्लोकलीलया । गृहीतचेताराजर्षेआख्यानंयदधीतवान् ॥

१०—तदहतेऽभिधास्यामिमहापौरुषिकोभवान् । यस्यश्रद्दधतामाशुस्यान्मुकुन्देमति मती ॥

११—एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभय । योगिनान्नृपनिर्णीतहरेर्नामानुकीर्तन ॥

१२—किंप्रमत्तस्यबहुभि.परोक्षैर्हायनैरिह । वरमुहूर्तंविदितघटेतश्रेयसेयत ॥

१३—खट्वागोनामराजर्षिर्ज्ञात्वेयत्तामिहायुष. । मुहूर्तात्सर्वमुत्सृज्यगतावानभयहरिं ॥

१४—तवाप्येतर्हिकौरव्यसप्ताहजीविताावधिः । उपकल्पयतत्सर्वंतावन्त्साम्परायिक ॥

उपस्थित हो तो उसे मृत्यु का भय छोड़कर वैराग्य के शस्त्र से सुख की इच्छा तथा पुत्र-कलत्रादि की इच्छा को नष्ट कर देना चाहिये ॥ १५ ॥ धीर पुरुष को घर का त्याग करके किसी पवित्र तीर्थ में स्नान करना और एकान्त स्थान में विधिपूर्वक कुश-निर्मित आसन अथवा मृग-चर्म पर बैठकर, अ, उ और म्—इस तीन मात्रावाले ब्रह्मवाचक उत्तम प्रणव (ॐकार) का मन ही मन जप करना तथा प्राणायाम के द्वारा चित्त का निरोध करना चाहिये। इस समय प्रणव को भूलना नहीं चाहिये ॥ १६-१७ ॥ बुद्धि मनुष्य को सचालन करनेवाली है, अतः मनुष्य को विषयों से अपनी इन्द्रियों को हटा लेना चाहिये, अनतर कर्मवासना से विमुख हुए मनको उत्तम विषय, जो भगवान् का स्वरूप है, उसमे लगाना चाहिये ॥ १८ ॥ भगवान् के प्रत्येक अवयव का ध्यान करने से निर्विषय हुए मन के द्वारा अन्य किसी विषय का स्मरण न करना चाहिये। जिस स्वरूप मे मन प्रसन्न होता है, वही विष्णु का परमपद है ॥ १९ ॥* धीर पुरुष को धारणा के द्वारा, रजोगुण तथा तमोगुण से चंचल और विमूढ हुए अपने मन को वश मे करना चाहिये, जो धारणा रजोगुण तथा तमोगुण से उत्पन्न हुए मल का नाश करती है ॥ २० ॥ इस धारणा के अभ्यास से वृत्तियों के द्वारा सुखस्वरूप विषय की इच्छा रखनेवाले योगियों को शीघ्र ही भक्तियोग सिद्ध हो जाता है ॥ २१ ॥

राजा परीक्षित बोले—महाराज ! किस विषय मे चित्त की धारणा करनी चाहिये, किस प्रकार करनी चाहिये तथा कैसी धारणा पुरुष के मनोमल को नष्ट करती है, यह आप कहे ॥२२॥

१५—अतकालेतुपुरुषआगतेगतसाध्वसः। छिंद्यादसगशस्त्रेणस्पृहादेहेऽनुयेचत ॥

१६—गृहात्प्रव्रजितोधीरःपुण्यतीर्थजलाप्लुतः। शुचौविविक्तआसीनोविधिवत्कल्पितासने ॥

१७—अभ्यसे मनसाशुद्धत्रिवृद्ब्रह्माक्षरपर। मनोयच्छेज्जितश्वासोब्रह्मबीजमविस्मरन् ॥

१८—नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसाबुद्धिसारथिः। मन.कर्मभिराक्षिप्तशुभार्थेधारयेद्धिया ॥

१९—तत्रैकावयवध्यायेदव्युच्छिन्नेनचेतसा। मनोनिर्विषयंयुक्त्वाततःकिंचननस्मरेत्।
पदतत्परमंविष्णोर्मनोयत्रप्रसीदति ॥

२०—रजस्तमोभ्यामाक्षिप्तविमूढमनआत्मनः। यच्छेद्धारणयाधीरोहतियातत्कृतंमलं ॥

२१—यत.सधार्यमाणायायोगिनोभक्तिलक्षण.। आशुसंपद्यतेयोगआश्रयंभद्रमीक्षतः ॥

राजोवाच—

२२—यथा सधार्यतेब्रह्मन्धारणायत्रसमता। यादृशीवाहरेदाशुपुरुषस्यमनोमलं ॥

---

* कतिपय पुस्तकों में निम्न श्लोकार्ध अधिक पाया जाता है—

"मानसेपूजनेसक्तास्तेयाति परमपदम्" अर्थात् जो लोग मानसिक पूजन में रत रहते हैं, वे परमपद को प्राप्त करते हैं।

श्रीशुकदेव बोले—योगशास्त्र मे जिन आसनों का वर्णन है, उनमे से जो कोई साधक को सहज मालूम पड़े, अभ्यास के द्वारा उसको दृढ़ करके, श्वास तथा इंद्रियों को नियम में रखकर तथा समस्त अनात्म वस्तुओं से आसक्ति छोडकर उसे बुद्धि के द्वारा भगवान् के स्थूल स्वरूप में चित्त को लगाना चाहिये ॥ २३ ॥ भगवान् का विराट् रूप अत्यन्त स्थूलों से भी स्थूल है, जिसमे भूत, भविष्य तथा वर्तमान कार्यरूप समस्त जगत् दीख पडता है ॥ २४ ॥ सात आवरणों वाले (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार तथा महत्तत्व) इस ब्रह्माडरूप शरीर के अभिमानी जो पुरुषरूप भगवान् हैं, वे मन की धारणा के विषय हैं ॥ २५ ॥

इन विराट् पुरुष के चरण का मूल पाताल कहा जाता है, पार्ष्णि और प्रपद (पैर के पीछे और आगे का भाग) रसातल है, पिंडली (पैर की गाँठ) को महातल तथा उनकी दोनों जंघाओं को तल और अतल कहते हैं ॥ २६ ॥ इन विश्वरूप भगवान् के दोनो जानु सुतल और दोनो ऊरू वितल तथा अतल हैं, पृथ्वी उनका जघन है और राजन् ! उनका नाभि-सरोवर आकाश माना जाता है ॥ २७ ॥ उनकी छाती स्वर्गलोक, ग्रीवा महर्लोक, मुख जनलोक, ललाट तपलोक और सहस्रशीर्षा आदिपुरुष भगवान् का मस्तक सत्यलोक कहा जाता है ॥ २८ ॥ इंद्र आदि देवता, इन भगवान् की भुजा, दिशाएँ कर्णगोलक तथा शब्द कर्णेन्द्रिय हैं। उत्तम भगवान् की नासिका अश्विनीकुमार तथा घ्राणेंद्रिय गंध है, जलती हुई अग्नि उनका मुख है ॥ २९ ॥ आँखे अंतरिक्ष तथा चक्षुरिंद्रिय सूर्य हैं। विष्णु की दोनों पलके रात और दिन हैं। उनके भ्रूभंग के स्थान में ब्रह्मा की स्थिति है। उनका तालु जल है तथा जिह्वा के स्थान पर रस हैं। इस विराट् स्वरूप का ब्रह्मरध्र वेद हैं, यम को विराट् पुरुष की डाढ कहते हैं, पुत्र आदि का स्नेह उनके दाँत हैं, मनुष्य में मोह उत्पन्न करनेवाली माया उनकी हँसी है और अपार सृष्टि उनका कटाक्ष है ॥ ३०-३१ ॥ उनका उपरोष्ठ लज्जा, अधरोष्ठ लोभ, स्तन धर्म तथा पीठ अधर्म का मार्ग है।

श्रीशुकउवाच—

२३—जितासनोजितश्वासोजितसगोजितेंद्रिय. । स्थूलेभगवतोरूपेमनःसधारयेद्धिया ॥

२४—विशेषस्तस्यदेहोऽयस्थविष्ठश्चस्यवीयसा । यत्रेददृश्यतेविश्वभूतमव्यमवच्चसत् ॥

२५—आडकोशेशरीरेस्मिन्ससावरणसयुते । वैराजःपुरुषोयोऽसौभगवान्धारणाश्रय. ॥

२६—पातालमेतस्यहिपादमूलपठतिपार्ष्णिप्रपदेरसातलं । महातलविश्वसृजोथगुल्फौतलातलवैपुरुषस्यजंघे ॥

२७—द्वेजानुनीसुतलविश्वमूर्तेरूरुद्वयवितलंचातलच । महीतलतज्जधनमहीपतेनभस्तलनाभिसरोगृणाति ॥

२८—उरस्थलज्योतिरनीकमस्यग्रीवामहर्वदनवैजनोऽस्य । तपोरराटींविदुरादिपुसःसत्यतुशीर्षाणिसहस्रशीर्ष्णः॥

२९—इन्द्रादयोबाहवआहुरुस्राःकर्णौदिश श्रोत्रममुष्यशब्दः।नासत्यदस्रौपरमस्यनासेघ्राणोऽस्यगधोमुखमग्निरिद्ध॥

३०—द्यौरक्षिणीचक्षुरभूत्पतग.पक्ष्माणिविष्णोरहनीउभेच।तद्भ्रू विजृ म.परमेष्ठिधिष्ण्यमापोस्यतालूरसएवजिह्वा॥

३१—छदास्यनतस्यशिरोगृणातिदंष्ट्रायमःस्नेहकलाद्विजानि । हासोजनोन्मादकरीचमायादुरंतसर्गोयदपागमोक्ष.॥

प्रजापति उनके शिश्न, मित्रावरुण सींग, कुक्षि समुद्र तथा अस्थियो का समूह पर्वत हैं ॥ ३२ ॥ राजन्! नदियाँ विराट् पुरुष की नाड़ियाँ है और वृक्ष उनके रोम। वायु उनका श्वास है, काल उनकी गति है और प्राणियों का जन्म-मरण रूप संसार उनकी क्रीडा है ॥ ३३ ॥ कुरुश्रेष्ठ! विराट् पुरुष के केश बादल तथा उनके वस्त्र संध्याकाल है। प्रधान उनका हृदय और समस्त विकारों का मूल चंद्रमा उनका मन है ॥ ३४ ॥ महत्तत्व उनका चित्त तथा अहंकार उनका हृदय है। घोड़े, खच्चर, ऊँट और हाथी उनके नख तथा समस्त मृग और पशु उनके कटि हैं ॥ ३५ ॥ पक्षिगण उनकी विचित्र शिल्पनिपुणता और मनु उनकी बुद्धि है और मनुष्य उनके निवासस्थान हैं; गंधर्व, विद्याधर, चारण तथा अप्सराएँ उनकी स्वर-स्मृतियाँ तथा असुरों का समूह उनका प्रभाव है ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण उनका मुख, क्षत्रिय भुजाएँ, वैश्य ऊरु और काले रंगवाली शूद्र जाति उनके चरण हैं। भिन्न-भिन्न नामवाले देवताओं के सहित द्रव्यात्मक यज्ञ-क्रिया इन विराट् पुरुष के आवश्यक कर्म है ॥ ३७ ॥ मैंने आपसे ईश्वर के शरीर के अवयवों का जो वर्णन किया, वह इतना ही है। भगवान् के इस स्थूल शरीर मे अपनी बुद्धि के द्वारा मनकी धारणा करनी चाहिए अर्थात् मनको इस स्थूल शरीर मे लगाना चाहिये, क्योंकि इस विराट् स्वरूप से भिन्न और कुछ नहीं है ॥ ३८ ॥ जिस प्रकार एक ही आत्मा स्वप्न प्रपंच का द्रष्टा है, उसी प्रकार जो विराट् पुरुष सर्वभूतों की बुद्धि-वृत्ति के द्वारा सबका अनुभव करनेवाला है, उस सत्य तथा आनदघन ईश्वर का ही भजन करना चाहिए, जिससे जन्म-मरण हो, ऐसी किसी वस्तु मे आसक्त नहीं होना चाहिये ॥ ३९ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कंध का पहला अध्याय समाप्त

—:*—*:—

३२—व्रीडोत्तरोष्ठोऽधरएवलोभोधर्मस्तनोऽधर्मपथोऽस्यपृष्ठः।कस्तस्यमेढ्रं वृषणौचमित्रौकुक्षिःसमुद्रागिरयोऽस्थिसंघाः॥
३३—नद्योऽस्यनाड्योऽथतनूरुहाणिमहीरुहाविश्वतनोर्नृपेन्द्र।अनन्तवीर्यःश्वसितमातरिश्वागतिर्वयःकर्मगुणप्रवाहः ॥
३४—ईशस्यकेशान्विदुरम्बुवाहान्वासस्तुसंध्यांकुरुवर्यभूम्नः। अव्यक्तमाहुर्हृदयंमनश्चसचंद्रमाःसर्वविकारकोशः ॥
३५—विज्ञानशक्तिंमहिमामनन्तिसर्वात्मनोऽन्तःकरणंगिरित्रम्।अश्वाश्वतर्युष्ट्रगजानखानिसर्वेमृगाःपशवःश्रोणिदेशे ॥
३६—वयांसितद्व्याकरणंविचित्रंमनुर्मनीषामनुजोनिवासः। गंधर्वविद्याधरचारणाप्सरःस्वरस्मृतीरसुरानीकवीर्यः ॥
३७—ब्रह्माननंक्षत्रभुजोमहात्माविडूरुरङ्घ्रिश्रितकृष्णवर्णः।नानाभिधाभीज्यगणोपपन्नोद्रव्यात्मकःकर्मवितानयोगः ॥
३८—इयानसावीश्वरविग्रहस्ययःसन्निवेशःकथितोमयाते।सन्धार्यतेऽस्मिन्वपुषिस्थविष्ठेमनःस्वबुद्ध्यानयतोऽस्तिकिंचित्
३९—ससर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्वआत्मायथास्वप्नजनेक्षितैकः। तंसत्यमानंदनिधिंभजेतनान्यत्रसज्जेद्यतआत्मपातः ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेद्वितीयस्कंधेमहापुरुषसंस्थानवर्णनेप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

———

दूसरा अध्याय

भगवान् के सूक्ष्म स्वरूप की धारणा का निरूपण

श्रीशुकदेव बोले—इस प्रकार प्राचीन समय मे धारणा से प्रसन्न हुए भगवान् की कृपा से ब्रह्माजी को, नष्ट हुई अपनी सृष्टि को पुन. रचने की सुध आई। निश्चित तथा सफल ज्ञानी ब्रह्माजी ने, प्रलय के पहले जैसी सृष्टि थी, पुनः वैसी ही सृष्टि की रचना की ॥ १ ॥ वेद ने स्वर्ग आदि की कल्पना करके मनुष्य को व्यर्थ की चिंताओं में डाल दिया है। मनुष्य स्वप्न मे जिस प्रकार दर्शन ही कर सकता है, भोग नही कर सकता, उसी प्रकार मनुष्य भी स्वर्ग आदि पाकर भी अविनाशी सुख का भोग नही कर सकता ॥ २ ॥ अत. ज्ञानी पुरुषों को केवल उन्हीं सासारिक विषयो के लिये यत्न करना चाहिये, जो शरीर-निर्वाह के लिये आवश्यक हो और उनमें सुख नहीं है, ऐसा समझकर उनमे आसक्त नहीं होना चाहिये। शरीर-निर्वाह के लिये आवश्यक वस्तु, यदि बिना प्रयत्न के मिल जाय तो उसके लिये परिश्रम नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥ पृथ्वी के होते शय्या के लिये क्यों उद्योग किया जाय ? अपने अधीन भुजाओं के होते हुये, तकिये की क्या आवश्यकता है ? अजलि के रहते भोजन के भिन्न-भिन्न पात्रों का क्या प्रयोजन है ? दिशाओं और वल्कल (वृक्षों की छाल) के रहते वस्त्रों की क्या जरूरत है ? ॥ ४ ॥ शीत आदि से शरीर की रक्षा करने के लिये क्या रास्ते मे चीर (वस्त्रखंड) नहीं पडे हैं ? पक्षियो का पोषण करनेवाले वृक्ष क्या भोजन के लिये फल-फूल रूपी भिक्षा नहीं देते ? जल के लिये नदियाँ क्या सूख गई हैं ? रहने के लिये पर्वतो की गुफाएं क्या बंद हो गई हैं ? यदि इनमे से कुछ भी न प्राप्त हो सके तो भी अजित भगवान् क्या शरण आए हुए की रक्षा नही करते ? तात्पर्य यह कि याचना के बिना भी शरीर का निर्वाह हो सकता है, अत' धन के दुष्ट मद से अंधे हुए व्यक्तियो का ज्ञानी लोग क्यों सेवन करते हैं ! ॥५॥ इस प्रकार विरक्त होकर अपने हृदय मे स्वयं ही प्रकाशित,

---

श्रीशुकउवाच—

१—एवपुराधारणयात्मयोनिर्नष्टास्मृतिंप्रत्यवरुद्ध्यतुष्टात्। तथाससर्जेदममोघदृष्टिर्यथाऽप्ययात्प्राग्व्यवसायबुद्धिः ॥

२—शाब्दस्यहिब्रह्मणएषपथायन्नामभिर्ध्यायतिधीरपार्थैः। परिभ्रमस्तत्रनविदतेऽर्थान्मायामयेवासनयाशयानः॥

३—अतःकविर्नामसुयावदर्थःस्यादप्रमत्तोव्यवसायबुद्धिः। सिद्धेऽन्यथाऽर्थेनयतेततत्रपरिश्रमतत्रसमीक्षमाणः ॥

४—सत्यांक्षितौकिंकशिपोःप्रयासैर्बाहौस्वसिद्धेह्युपबर्हणैःकिम्।

सत्यञ्जलौकिंपुरुधान्नपात्र्यादिग्वल्कलादौसतिकिंदुकूलैः ॥

५—चीराणिकिंपथिनसन्तिदिशन्तिभिक्षांनैवाङ्घ्रिपाःपरभृतःसरितोऽप्यशुष्यन्।

रुद्धागुहाःकिमजितोऽवतिनोपसन्नान्कस्माद्भजन्तिकवयोधनदुर्मदान्धान् ॥

प्रिय, सत्यस्वरूप तथा भजन करने योग्य गुण से युक्त भगवान् का भजन आत्म-स्वरूप को जाननेवाले व्यक्ति को करना चाहिये, जिससे जन्म-मरण के कारण-रूप इस माया का नाश होता है ॥ ६ ॥ विषय-चिंतन के द्वारा जन्म-मरणरूप वैतरणी में पड़े हुए तथा अपने कर्मों के कारण ही त्रिविध तापों को सहते हुए मनुष्यों को देखकर भी कर्मजड व्यक्ति के सिवा और कौन भगवान् की धारणा को छोड़कर नाशवान् विषयों का चिंतन करेगा ? ॥७॥ कितने ही लोग अपने हृदय में स्थित, प्रादेशमात्र (अंगूठे से तर्जनी के बीच की जगह) आकारवाले तथा कमल, चक्र, शंख और गदा धारण करनेवाले भगवान् का भजन धारणा के द्वारा करते हैं ॥८॥ जिनके प्रसन्नमुख और कमलदल के समान वड़े-वड़े नेत्र है, कदम्बप्रसून के रंग का पीताम्बर धारण किये है; सुवर्णभुजबन्दे में उनके शोभायमान महारत्न दमक रहे हैं और महामणियों के जड़े हुए किरीट-कुंडल धारण किये है ॥ ९ ॥ प्रसन्न हृदय-कमल के पत्ररूप स्थान पर जिनके चरण-कमल योगी-श्वरों से स्थापन किये जाते है, महालक्ष्मी-भृगुलता के चिह्न हृदय में दिखाई पडते है, कौस्तुभरत्न कंठ में धारण किये हैं, जिसकी कान्ति कभी मलीन नहीं होती, ऐसी प्रसूनमाला गले में शोभा देती है ॥ १० ॥ कौंधनी, अंगूठियें, कड़े, कंकण, नूपुर इत्यादि से भूषित हैं। चिकनी, निर्मल, घूँघरवाली श्याम अलकों से शोभित उनका मनोहर मुख है, जिससे हृदय को खींचनेवाला अनुपम मन्दहास उत्पन्न होता है ॥११॥ उदारलीला से युक्त जिनके नेत्र हैं, जिन पर भौंहों का चलाना बड़ा भला मालूम होता है। उससे बड़ा अनुग्रह प्रकट होता है। जब तक मन धारणापूर्वक उनमें ठहरे, तबतक उनके दर्शन का चिन्तन करता रहे ॥ १२ ॥ गदा धारण करनेवाले भगवान् के चरण-कमल से लेकर मुख की हँसी तक, एक-एक करके सब अङ्गों का बुद्धिपूर्वक ध्यान करे। जिन-जिन अङ्गों का ध्यान बिना यत्न प्राप्त होता जाय,

६—एवस्वचित्तेस्वतएवसिद्धआत्माप्रियोऽर्थोभगवाननतः। तन्निर्वृतोनियतार्थोभजेतसंसारहेतूपरमश्चयत्र ॥

७—कस्तात्वनादृत्यपरानुचिंतामृतेपशूनसतींनामयुंज्यात्।पश्यन्जनंपतितवैतरण्यांस्वकर्मजान्परितापाञ्जुषाणम्॥

८—केचित्स्वदेहान्तर्हृदयावकाशेप्रादेशमात्रंपुरुषंवसतम्। चतुर्भुजकंजरथांगशंखगदाधरंधारणयास्मरति ॥

९- प्रसन्नवक्त्रनलिनायतेक्षणंकदंबकिंजल्कपिशंगवाससम्।

लसन्महारत्नहिरण्मयांगदस्फुरन्महारत्नकिरीटकुण्डलम् ॥

१०—उन्निद्रहृत्पंकजकर्णिकालयेयोगेश्वरास्थापितपादपल्लवम्।

श्रीलक्ष्मणंकौस्तुभरत्नकंधरमम्लानलक्ष्म्यावनमालयाचितम्।

११—विभूषितमेखलयांगुलीयकैर्महाधनैर्नूपुरकंकणादिभिः।

स्निग्धामलाकुंचितनीलकुंतलैर्विरोचमानाननहासपेशलं ॥

१२—अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्भ्रूभंगसंसूचितभूर्यनुग्रहम्।

ईक्षेतचिंतामयमेनमीश्वरंयावन्मनोधारणयावतिष्ठते ॥

उन-उनके अतिरिक्त दूसरे अङ्गों में जिस प्रकार ज्यों-ज्यों बुद्धि शुद्ध होती जाय, मन रमावे ॥ १३ ॥ जब तक सर्वद्रष्टा परमेश्वर में भक्तियोग न सध जाय, तब तक उन विराट् पुरुष का स्मरण आवश्यक कर्मानुष्ठान के उपरान्त किया करे ॥ १४ ॥ यह कर्तव्य उस मनुष्य का है, जिसकी मृत्यु समीप हो और जो अपने आप, अपनी देह त्यागे, उसका यह कर्तव्य है। हे नरनाथ ! जो इस संसार के त्यागने की इच्छा करे, वह स्थिर सुखद एक आसन से बैठकर शुभ समय में पुण्यदेश और काल में मन को न लगाकर, अपने प्राणों को जीते, क्योंकि योगियों के लिये मन से योगाभ्यास का करना ही मोक्ष-दायक है ॥ १५ ॥ अपनी निर्मलबुद्धि से बुद्धि आदि के द्रष्टा जीव में मन लगावे। जीवात्मा को शुद्ध, चैतन्य ब्रह्म में एक करके आनन्द को प्राप्त होकर सब सांसारिक कार्यों से विराम पावे ! इससे परे कोई कार्य-कर्तव्य नहीं रह जाता ॥ १६ ॥ जिस आत्मस्वरूप में देवताओं का परम प्रभु काल भी समर्थ नहीं हो सकता है, वहाँ जगत के स्वामी ईश्वर देवताओं की क्या सामर्थ्य है, वहाँ सत्वगुण, तमोगुण, रजोगुण, अहंकार, महत्तत्व, माया आदि किसी की भी कुछ नहीं चलती। फिर जगत् की क्या सामर्थ्य है ! ॥ १७ ॥ उसे तत्वदर्शी लोग 'नेति नेति' कह कर पुकारते और विष्णुपद बतलाते हैं। इसी लिये वे आत्मा को छोड़ कर और किसीसे सम्बन्ध नहीं रखते और इसीमें वे क्षण-क्षण में पूजनीय भगवान का अन्तःकरण में दर्शन करते हैं ॥१८॥ इस प्रकार ईश्वर का चिन्तन करके मुनि स्थित होकर सबसे उत्तम शान्ति प्राप्त करे। ब्रह्मज्ञान की दृष्टि के बल से विषय-वासना त्याग कर अपनी एड़ी से गुदा को बन्द कर, सब परिश्रम जीतकर, नाभि आदि से छः स्थानों में श्वास को षट्चक्र के मार्ग से ऊपर खींचना चाहिए ॥१९॥ नाभि के मणि-

---

१३—एकैकशोऽङ्गानिधियानुभावयेत्पादादियावद्धसितंगदाभृतः।

जितंजितंस्थानमपोह्यधारयेत्परंपरंशुद्ध्यतिधीर्यथायथा ॥

१४—यावन्नजायेतपरावरेऽस्मिन्विश्वेश्वरेद्रष्टरिभक्तियोगः। तावत्स्थवीयःपुरुषस्यरूपंक्रियावसानेप्रयतःस्मरेत् ॥

१५—स्थिरंसुखंचासनमाश्रितोयतिर्यदाजिहासुरिममङ्गलोक ।

कालेचदेशेचमनोनसज्जयेत्प्राणान्नियच्छेन्मनसाजितासुः ॥

१६—मनःस्वबुद्ध्यामलयानियम्यक्षेत्रज्ञएतांनिनयेत्तमात्मनि ।

आत्मानमात्मन्यवरुध्यधीरोलब्धोपशान्तिर्विरमेतकृत्यात् ॥

१७—नयत्रकालोऽनिमिषांपरःप्रभुःकुतोनुदेवाजगतांयईशिरे। नयत्रसत्त्वंनरजस्तमश्चनवैविकारोनमहान्प्रधानं ॥

१८—परंपदंवैष्णवमामनन्तितद्यन्नेतिनेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः।विसृज्यदौरात्म्यमनन्यसौहृदाहृदोपगुह्यार्हपदंपदेपदे॥

१९—इत्थंमुनिस्तूपरमेद्व्यवस्थितोविज्ञानदृग्वीर्यसुरन्धिताशयः ।

स्वपार्ष्णिनापीड्यगुदंततोऽनिलंस्थानेषुषट्सून्नमयेज्जितक्लमः ॥

पूरकचक्र में स्थित प्राणवायु को हृदय के अनाहतचक्र में ले आकर अपानवायु के रास्ते गले के नीचेवाले भाग (विशुद्धचक्र) में ले आना चाहिए। अनंतर योगी पुरुष को चाहिए कि वह सावधान होकर इस स्थान से प्राणवायु को धीरे-धीरे तालु-मूल (पूर्वचक्र के अग्रभाग) मे ले आवे ॥ २० ॥ वहाँ से उसे दोनों भृकुटियों के मध्य आज्ञाचक्र मे ले आवे। उस समय दोनों कान, दोनों नासिका-रंध्र, दोनों नेत्र तथा मुख, इन सात द्वारों को बन्द रखे। लोकसम्बन्धी ईषणा से रहित ब्रह्मरूप योगी को इस आज्ञाचक्र मे घड़ी भर रहकर और ब्रह्मरंध्र भेदकर शरीर तथा इंद्रिय आदि का त्याग कर देना चाहिए ॥ २१ ॥

राजन्, गुण के समूहरूप इस ब्रह्माड मे यदि योगी ब्रह्मलोक मे जाने की अथवा अष्ट महासिद्धिवाले सिद्ध लोगों के क्रीड़ास्थल मे जाने की इच्छा रखता हो, तो उसे मन तथा इन्द्रिय के सहित, उस लोक मे सुख भोगने के लिए जाना चाहिए॥ २२ ॥ वायु मे जिनका लिंगशरीर है, ऐसे योगेश्वरों की गति त्रैलोक्य के बाहर और भीतर भी है; विद्या, तप, योग और समाधि अर्थात् उपासना, भगवद्धर्म, अष्टागयोग और ज्ञान का सेवन करनेवाले पुरुषों की गति कर्म करके मनुष्य नहीं पा सकता ॥ २३ ॥ मृत्यु को प्राप्त हुआ योगी आकाश मे ब्रह्मलोक के मार्ग से तेजोमयी सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा अग्नि के अभिमानी देवता को प्राप्त करता है, पुनः निर्मल होकर शिशुमारचक्र में, जो श्रीभगवान् के भी ऊपर स्थित है, जाता है ॥ २४ ॥ सूर्य आदि ग्रहों तथा नक्षत्रों के आश्रयरूप शिशुमारचक्र का अतिक्रमण करके रजोगुण रहित, अत्यंत सूक्ष्म लिंगशरीर के द्वारा वह (योगी) महर्लोक में जाता है, जिसकी वंदना ब्रह्मज्ञानी लोग करते हैं और जहाँ कल्पायु देवता आनंद करते हैं ॥ २५ ॥ वहाँ कल्प पर्यंत निवास करके भगवान् शेष की मुखाग्नि से त्रैलोक्य को जलते हुए देखकर वह परमेष्ठि-पद (ब्रह्मलोक) को प्राप्त होता है, जहाँ सिद्धेश्वरों के द्वारा सेवित विमान है तथा दो परार्ध कालों तक जिसकी स्थिति होती है ॥ २६ ॥ उस (ब्रह्मलोक) मे शोक, वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं है; उसी प्रकार

२०—नाभ्यास्थितंहृद्यधिरोप्यतस्मादुदानगत्योरसितंनयेन्मुनिः।ततोऽनुसंधायधियामनस्वीस्वतालुमूलंशनकैर्नयेत

२१— तस्माद् भ्रुवोरन्तरमुन्नयेतनिरुद्धसप्तायतनोऽनपेक्षः।स्थित्वामुहूर्तार्धमकुण्ठदृष्टिर्निर्भिद्यमूर्धन्विसृजेत्परंगतः॥

२२—यदिप्रयास्यन्नृपपारमेष्ठ्यंवैहायसानामुतयद्विहारम्। अष्टाधिपत्यंगुणसंनिवायेसहैवगच्छेन्मनसेंद्रियैश्च ॥

२३—योगेश्वराणांगतिमाहुरंतर्बहिस्त्रिलोक्याःपवनान्तरात्मनाम्।

नकर्मभिस्तांगतिमाप्नुवंतिविद्यातपोयोगसमाधिभाजाम् ॥

२४—वैश्वानरंयातिविहायसागतःसुषुम्नयाब्रह्मपथेनशोचिषा।विधूतकल्कोथहरेरुदस्तात्प्रयातिचक्रंनृपशैशुमारम् ॥

२५—तद्विश्वनाभिंत्वतिवर्त्यविष्णोरणीयसाविरजेनात्मनैकः। नमस्कृतंब्रह्मविदामुपैतिकल्पायुषोयद्विबुधारमंते ॥

२६—अथोअनंतस्यमुखानलेनदंदह्यमानंसनिरीक्ष्यविश्वम्। निर्यातिसिद्धेश्वरजुष्टधिष्ण्यंयद्द्वैपरार्ध्यंतदुपारमेष्ठ्यम्॥

परमात्मा के स्वरूप को न जाननेवाले पुरुषों के जन्म-मरण आदि असहनीय दु.खों को देखकर दयाजनित जो दुःख उत्पन्न होता है, उससे भिन्न दूसरा दुःख भी वहाँ नहीं है ॥ २७ ॥ अनंतर वह योगी ब्रह्मलोक में से पृथ्वी आदि आवरण भेदने के निमित्त 'मैं पृथ्वी आदि इन आवरणों को कैसे भेद सकूँगा' इस शका से रहित होकर पहले पृथ्वीरूप होता है, पुनः जलरूप होता है, जलरूप में यथेष्ट भोग भोग लेने के अनतर धीरे-धीरे अग्निरूप होता है, पुन. तेजरूप से वायुरूप को प्राप्त होकर, वायु का भोग भोग चुकने के अनतर वायुरूप की व्यापकता के द्वारा परमात्मा के स्वरूप को प्रकाशित करनेवाले आकाशरूप को प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ अनतर वह योगी घ्राणेंद्रिय के द्वारा गंध को, जिह्वा के द्वारा रस को और दृष्टि के द्वारा रूप को पाता है। त्वचा इंद्रिय से स्पर्श, श्रोत्रेंद्रिय से शब्द और उन कर्मेंद्रियों के द्वारा उनकी क्रिया को प्राप्त करता है ॥ २९ ॥ अनंतर वह योगी सूक्ष्मभूत के लय के स्थानरूप तामस अहंकार को प्राप्त होता है तथा दस इंद्रियों के लय के स्थानरूप राजस अहकार और मन तथा इंद्रियों के देवता के लय के स्थानरूप सात्विक अहंकार को प्राप्त होता है। अनतर तीन प्रकार के अहकारों से युक्त योगी महत्तत्व को प्राप्त होता है, पुनः प्रधान को प्राप्त होता है, जिसमें समस्त कार्यों का लय होता है ॥ ३० ॥ अनंतर प्रधानरूप प्राप्त वह योगी आनंदरूप हो जाता है। उसकी उपाधियाँ नष्ट हो जाती हैं और वह शांतरूप तथा आनदरूप परमात्मा को प्राप्त करता है। राजन्! भगवान् की यह गति जिसने प्राप्त कर ली है, उसे पुन. इस संसार मे जन्म-मरण नहीं पाना पड़ता ॥ ३१ ॥ राजन्! आपके द्वारा पूछे गए सनातन तथा वेदोक्त दोनों मार्गों को मैंने आपसे कहा। ब्रह्मा ने भगवान् की आराधना करके जब उनसे इन दो मार्गों को पूछा था तो भगवान् ने उन्हें ये मार्ग बतलाए थे ॥ ३२ ॥ सासारिक जनों के मोक्ष के निमित्त इन दो मार्गों के अतिरिक्त और कोई कल्याणकारी मार्ग नहीं है, क्योंकि इन दो मार्गों पर चलने से भगवान् में भक्ति उत्पन्न होती है ॥ ३३ ॥ भगवान् ब्रह्मा ने एकाग्र चित्त से तीन बार सपूर्ण वेदों का विचार करके निश्चय

२७—नयत्रशोकोनजरानमृत्युर्नार्तिर्नचोद्वेगऋृते कुतश्चित् ।
यच्चित्ततोदःकृपयाऽनिदविदादुरन्तदुःखप्रभवानुदर्शनात् ।

२८—ततोविशेषंप्रतिपद्यनिर्भयस्तेनात्मनापोऽनलमूर्तिरत्वरन् ।
ज्योतिर्मयोवायुमुपेत्यकालेवाय्वात्मनाखंबृहदात्मलिंग ॥

२९—घ्राणेनगंधरसनेनवैरसंरूपंतुदृष्ट्याश्वसनंत्वचैव । श्रोत्रेणचोपेत्यनभोगुणत्वंप्राणेनचाकूतिमुपैतियोगी ॥

३०—सभूतसूक्ष्मेंद्रियसन्निकर्षंमनोमयंदेवमयंविकार्यं । संसाद्यगत्यासहतेनयातिविज्ञानतत्त्वंगुणसन्निरोधं ॥

३१—तेनात्मनात्मानमुपैतिशांतमानंदमानंदमयोऽवसाने । एतांगतिंभागवतींगतोयःसवैपुनर्नेहविषज्जतेंऽग ॥

३२—एतेसृतीतेनृपवेदगीतेत्वयाभिपृष्टेहसनातनेच । येवैपुराब्रह्मणआहपृष्टआराधितोभगवान्वासुदेवः ॥

३३—नह्यतोऽन्यःशिवःपंथाविशतःसंसृताविह । वासुदेवेभगवतिभक्तियोगोयतोभवेत् ॥

किया कि यही वह उत्तम मार्ग है, जिससे भगवान् की भक्ति उत्पन्न होती है ॥ ३४ ॥ बुद्धि आदि दृश्य पदार्थों का प्रकाश, उनके स्वयं प्रकाशद्रष्टा के बिना संभव नहीं होता, अतः बुद्धि आदि के प्रकाश से उसे प्रकाशित करनेवाली आत्मा आदि की कल्पना की जा सकती है, इस अर्थापत्ति प्रमाण के द्वारा तथा जिस प्रकार लकड़ी काटने के कुल्हाडे आदि साधन काटनेवाले चेतन के वश में रहकर काम करते है, उसी प्रकार बुद्धि भी इंद्रिय आदि चेतनों के वश मे रहकर अपना व्यापार कर सकती है, इस आनुमानिक नियम के द्वारा मनुष्य ईश्वर का अनुभव कहता है ॥३५॥ अतः राजन् ! श्रीभगवान् सदा, सब स्थानों मे,सब प्रकार से श्रवण करने, कीर्तन करने तथा स्मरण करने योग्य है ॥ ३६ ॥ सज्जनों की आत्मा के लिए यह हरि-कथा अमृत के समान है, उसे जो लोग कानों के द्वारा पीते है अर्थात् सुनकर उसे हृदय में धारण करते हैं, वे विषयों के द्वारा कलुषित हुए अंतःकरण को पवित्र करते और भगवान् के चरण-कमलों के निकट वास करते हैं ॥ ३७ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कध का दूसरा अध्याय समाप्त

———:०:———

तीसरा अध्याय

श्रोता की श्रद्धा का निरूपण

श्रीशुकदेव बोले—मरने की इच्छा रखनेवाले बुद्धिमान् पुरुष के निमित्त, आपने जो पूछा, वह सब इस प्रकार मैंने आपसे कह सुनाया ॥ १ ॥ जिसे ब्रह्मतेज की इच्छा हो, उसे ब्रह्मा का,

३४—भगवान्ब्रह्मकार्त्स्न्येनत्रिरन्वीक्ष्यमनीषया । तदध्यवस्यत्कूटस्थोरतिरात्मन्यतोभवेत् ॥

३५—भगवान्सर्वभूतेषुलक्षित:स्वात्मनाहरि: । दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टालक्षणैरनुमापकै: ॥

३६—तस्मात्सर्वात्मनाराजन्हरि:सर्वत्र सर्वदा । श्रोतव्य:कीर्तितव्यश्चस्मर्तव्योभगवान्नृणाम् ॥

३७—पिबन्तियेभगवतआत्मन:सताकथामृतंश्रवणपुटेषुसंभृतं ।
पुनन्तितेविषयविदूषिताशयंव्रजन्तितच्चरणसरोरुहान्तिकं ॥

इ० भा० म० द्वि० पुरुषसंस्थावर्णनंनामद्वितीयोऽध्याय: ॥ २ ॥

———

श्रीशुकउवाच—

१—एवमेतन्निगदितंपृष्टवान्यद्भवान्मम । नृणांयन्म्रियमाणानांमनुष्येषुमनीषिणाम् ॥

जिसे इन्द्रियों की शक्ति की इच्छा हो, उसे इंद्र का और जिसे प्रजा की इच्छा हो, उसे प्रजापति का यजन करना चाहिए ॥२॥ लक्ष्मी की इच्छा रखनेवालों को दुर्गादेवी का, तेज की इच्छावालों को विभावसु (अग्नि) का, धनार्थियों को आठ वसुओं का, पराक्रम चाहनेवालों को पराक्रमी होने के लिए ग्यारह रुद्रों का, अन्न आदि की कामनावलों को अदिति का, स्वर्ग चाहनेवालों को अदिति-पुत्रों (बारह सूर्यो) का, राज्य की कामनावालों को विश्वेदेवों का, देशस्थ प्रजा की स्वाधीनता चाहनेवालों को साध्यों का, आयुष्य की इच्छा रखनेवालों को दोनों अश्विनीकुमारों का, पुष्टि चाहनेवालों को पृथ्वी का, प्रतिष्ठा चाहने वालों को द्यावापृथिवी (आकाश और पृथिवी) का, रूप की इच्छा रखनेवालों को गधर्वों का, स्त्री की कामनावालो को उर्वशी नाम की अप्सरा का, सबों पर आधिपत्य की इच्छा रखनेवालों को ब्रह्मा का, यश चाहनेवालो को यज्ञपुरुष भगवान् का, भांडार की इच्छा रखनेवालो को वरुण का, विद्या चाहनेवालों को शिव का, स्त्री-पुरुषों में परस्पर प्रीति चाहनेवालो को सती-पार्वती का, धर्म चाहनेवालो को उत्तमश्लोक भगवान् का, वंश की वृद्धि चाहनेवालो को पितरों का, रक्षा चाहनेवालों को यक्षों का, बल चाहनेवालो को देवताओं का, राज्य चाहनेवालों को मन्वंतर-पति मनुओं का, शत्रुओं का नाश चाहनेवालों को निऋ॑ति नाम के राक्षसों का, भोग की इच्छा रखनेवालो को चंद्रमा का, वैराग्य की इच्छा रखनेवालो को प्रकृति-रहित पुरुष (भगवान्) का और जो कामनाओं से रहित हो अथवा जिसे समस्त की इच्छा हो, अथवा जो मोक्ष की इच्छा रखता हो, उसे उदारबुद्धि रखकर तीव्र भक्ति के सहित पूर्णपुरुष भगवान् का यजन करना चाहिये ॥ ३-१० ॥ इन समस्त देवताओं का यजन करने से मनुष्य को इतना ही लाभ होता है कि भगवान् के भक्तों का सग करने से उसके मन में भगवान् की दृढ भक्ति उत्पन्न

२—ब्रह्मवर्चसकामस्तुयजेतब्रह्मणस्पतिं । इन्द्रमिंद्रियकामस्तुप्रजाकामःप्रजापतीन् ॥

३—देवींमायातुश्रीकामस्तेजस्कामोविभावसु । वसुकामोवसून्रुद्रान्वीर्यकामोऽथवीर्यवान् ॥

४—अन्नाद्यकामस्त्वदितिंस्वर्गकामोऽदितेःसुतान् । विश्वान्देवान्राज्यकामःसाध्यान्ससाधकोविशा ॥

५—आयुःकामोऽश्विनौदेवौपुष्टिकामइलायजेत् । प्रतिष्ठाकामःपुरुषोरोदसीलोकमातरौ ॥

६—रूपाभिकामोगंधर्वान्स्त्रीकामोऽप्सरउर्वशीं । आधिपत्यकामःसर्वेषायजेतपरमेष्ठिनं ॥

७—यज्ञयजेद्यशःकामःकोशकामःप्रचेतसं । विद्याकामस्तुगिरिशंदापत्यार्थंउमासतीं ॥

८—धर्मार्थउत्तमश्लोकंतन्तुंतन्वन्पितॄन्यजेत् । रक्षाकामःपुण्यजनानोजस्कामोमरुद्गणान् ॥

९—राज्यकामोमनून्देवान्निऋ॑तिंत्वभिचरन्यजेत् । कामकामोयजेत्सोममकामःपुरुषपर ॥

१०—अकामःसर्वकामोवामोक्षकामउदारधीः । तीव्रेणभक्तियोगेनयजेतपुरुषपर ॥

११—एतावानेवयजतामिहनिःश्रेयसोदयः । भगवत्यचलोभावोयद्भागवतसगतः ॥

होती है ॥ ११ ॥ राग-द्वेष आदि का समुदाय जिसमे से नष्ट हो गया है, ऐसे ज्ञान से जो युक्त है, जिसमें चित्त को प्रसन्न करनेवाला विषयों के प्रति वैराग्य है तथा जिसमे मुक्ति का सर्वसम्मत भक्तिमार्ग है, भगवान् की उस कथा मे, भगवत्कथा सुनकर जिसने निवृत्ति सुख पा लिया है, ऐसा कौन मनुष्य प्रीति नहीं रखता ? अर्थात् सभी रखते हैं ॥ १२ ॥

शौनक बोले—इस प्रकार श्रीशुकदेवजी की बातें सुनकर भरतवंशियों मे श्रेष्ठ राजा परीक्षित ने शब्दब्रह्म में कुशल और परब्रह्म के ज्ञानवाले व्यासदेव के पुत्र श्रीशुकदेव से पुन. क्या पूछा ? यह आप कहे ॥ १३ ॥ विद्वान् सूत, आप सुनने की इच्छा रखनेवाले हमलोगों से वह कथा कहने के योग्य हैं, जिसके परिणाम मे भगवान् की कथा है। ऐसी कथाएँ प्राय. सज्जनों की सभा मे ही होती है ॥ १४ ॥ पांडवों के पौत्र, महारथी और भगवान् के भक्त राजा परीक्षित बचपन मे खिलौने से खेलते हुए भी श्रीकृष्ण की पूजा का ही खेल खेलते थे और व्यासजी के पुत्र भगवान् शुकदेव भी भगवत्परायण थे, अतः उनका संवाद आप कहे, क्योंकि महात्माओं के समागम में भगवान् के गुणों की उदार कथाएँ होती ही हैं ॥ १५-१६ ॥ सूर्य अपने उदय के आरंभ से लेकर अस्त होने तक, मनुष्य का जो समय भगवान् उत्तमश्लोक की कथा मे व्यतीत होता है, उसे छोड़कर उसकी समस्त आयु का हरण करता है ॥ १७ ॥ वृक्ष क्या जीवित नहीं रहते ? धमनियाँ क्या साँस नहीं लेतीं ? ग्राम के अन्य पशु क्या आहार-विहार नहीं करते ? ॥१८॥ अत' जिसे अपने कानों के द्वारा कभी भगवान् श्रीकृष्ण नहीं प्राप्त हुए, वह मनुष्य कुत्ते, सुअर, ऊँट और गधे के समान पशु है ॥ १९ ॥ जो कान भगवान् के पराक्रम की कथा नहीं सुनते, वे साँप के बिल के समान है और जो जिह्वा भगवान् की कथा नहीं कहती, वह मेढक की जीभ के समान है अर्थात् उसका बोलना मेढक के बोलने के समान ही व्यर्थ और कानों को अप्रिय

१२—ज्ञानयदाप्रतिनिवृत्तगुणोर्मिचक्रमात्मप्रसादउतयत्रगुणेष्वसंगः ।
कैवल्यसमतपथस्त्वथभक्तियोगःकोनिर्वृतोहरिकथासुरतिंनकुर्यात् ॥

शौनकउवाच—

१३—इत्यभिव्याहृतंराजानिशम्यभरतर्षभः । किमन्यत्पृष्टवान्भूयोवैयासकिमृषिंकविं ॥
१४—एतच्छुश्रूषताविद्वन्सूतनोऽर्हसिभाषितुं । कथाहरिकथोदर्काःसतांस्यु:सदसिध्रुव ।
१५—सवैभागवतोराजापाण्डवेयोमहारथः । बालक्रीडनकैःक्रीडन्कृष्णक्रीडांयआददे ॥
१६—वैयासकिश्चभगवान्वासुदेवपरायणः । उरुगायगुणोदाराःसतास्युर्हिसमागमे ॥
१७—आयुर्हरतिवैपुंसामुद्यन्नस्तचयन्नसौ । तस्यर्तेयत्क्षणोनीतउत्तमश्लोकवार्तया ॥
१८—तरवःकिंनजीवंतिभस्त्राःकिंनश्वसन्त्युत । नखादंतिनमेहंतिकिंग्रामपशवोऽपरे ॥
१९—श्वविड्वराहोष्ट्रखरैःसंस्तुतःपुरुषःपशुः । नयत्कर्णपथोपेतोजातुनामगदाग्रजः ॥
२०—बिलेबतोरुक्रमविक्रमान्येनशृण्वतःकर्णपुटेनरस्य । जिह्वाऽसतीदार्दुरिकेवसूतनचोपगायत्युरुगायगाथाः ॥

लगनेवाला है ॥ २० ॥ यदि मनुष्य का मस्तक पगड़ी अथवा मुकुट से शोभित है, किंतु वह भगवान् के सम्मुख नहीं झुकता तो वह भाररूप है. जिससे भगवान् की सेवा नहीं होती, मनुष्य का ऐसा हाथ सुवर्ण-कंकण से शोभित हो, तो भी उसे मुर्दे के हाथ के समान समझना चाहिए ॥ २१ ॥ जिन नेत्रों से भगवान् के दर्शन न हों, उन्हें मोरपख के समान जानना चाहिए। जो पैर भगवान् के क्षेत्रों की परिक्रमा न करे, उन्हें वृक्ष का ठूँठ समझना चाहिए ॥ २२ ॥ जिस मनुष्य ने कभी भगवान् के चरण-रज न लिए हों, उसे जीवित भी मृतक के समान समझना चाहिए। जो मनुष्य भगवान् के चरणों मे चढ़ी हुई तुलसी के गंध को नहीं जानता, वह साँस लेते हुए भी मरे के समान है ॥ २३ ॥ भगवान् का नाम उच्चारण करते ही जिसकी आँखों मे आँसू न भर आवें तथा शरीर में रोमांच न हो जाय, उसका हृदय पत्थर का समझना चाहिए ॥ २४ ॥ सूत ! आप भगवान् के प्रमुख भक्तों मे से है। आप हमारे मन के अनुकूल कहिए ! भगवद्भक्तों मे श्रेष्ठ राजा परीक्षित के भलीभाँति पूछने पर आत्मविद्या में कुशल श्रीशुकदेवजी ने उनसे जो कुछ कहा हो, वह आप हमसे कहें ॥ २५ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कंध का तीसरा अध्याय समाप्त
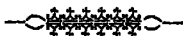
२१—भारःपरंपट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमाङ्गंननमेन्मुकुन्दम् । शावौकरौनोकुरुतःसपर्यांहरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौवा ॥

२२—बर्हायितेतेनयनेनराणांलिङ्गानिविष्णोर्ननिरीक्षतोये ।

पादौनृणांतौद्रुमजन्मभाजौक्षेत्राणिनानुव्रजतोहरेर्यौ ॥

२३—जीवञ्छवोभागवताङ्घ्रिरेणुंनजातुमर्त्योऽभिलभेतयस्तु ।

श्रीविष्णुपद्यामनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवोयस्तुनवेदगन्धम् ॥

२४—तदश्मसारंहृदयंबतेदंयद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः । नविक्रियेताथयदाविकारोनेत्रेजलंगात्ररुहेषुहर्षः ॥

२५—अथाभिधेह्यङ्गमनोनुकूलंप्रभाषसेभागवतप्रधानः । यदाहवैयासकिरात्मविद्याविशारदोनृपतिंसाधुपृष्टः ॥

इ० भा० म० द्वितीयस्कन्धेतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

वक्ता की श्रद्धा का निरूपण

सूत बोले—इस प्रकार आत्मस्वरूप को जाननेवाले शुकदेवजी की बाते सुनकर राजा परीक्षित ने भगवान् मे अपनी बुद्धि दृढ़ की ॥ १ ॥ उन्होंने स्त्री, पुत्र, गृह, पशु, द्रव्य और बंधुओं तथा राज्य में उत्पन्न हुई समस्त ममता का त्याग कर दिया ॥ २ ॥ जिस विषय मे आपने मुझसे प्रश्न किया है, भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा सुनने मे श्रद्धालु महामना परीक्षित ने भी मृत्यु को आई हुई जानकर शुकदेवजी से उसी विषय को पूछा था। उन्होंने धर्म, अर्थ तथा काम संबंधी कर्मों का त्याग कर दिया था तथा उनमे श्रीभगवान् के प्रति दृढ़ आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ था ॥ ३-४ ॥

राजा परीक्षित बोले—ब्रह्मन्! आपके वचन अत्यंत उत्तम हैं। निष्पाप! आप सर्वज्ञ हैं। आप श्रीभगवान् की जो कथा कह रहे है, उससे मेरा अज्ञान नष्ट हो रहा है ॥ ५ ॥ पुनः मैं यह जानना चाहता हूँ कि अनंतशक्ति भगवान् अपने तथा अपने से अभिन्न ब्रह्मा आदि की क्रीड़ा के लिए बड़े-बड़े देवताओं के भी न समझने योग्य—इस जगत् की किस प्रकार रचना करते, पालन करते तथा संहार करते है? महाराज! अद्भुत पराक्रमवाले भगवान् का चरित्र ऐसा है, जो बडे-बड़े ज्ञानी पुरुषों की भी कल्पना मे नहीं आ सकता ॥ ६-८ ॥ एकही पुरुषरूप भगवान् एक ही समय मे माया का गुण ग्रहण करते हैं अथवा ब्रह्मा आदि अवतारों के द्वारा कर्म करने

सूतउवाच—

१—वैयासकेरितिवचस्तत्त्वनिश्चयमात्मनः। उपधार्यमतिंकृष्णेऔत्तरेयःसतींव्यधात् ॥

२—आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु। राज्येचाविकलेनित्यंविरूढाममताञ्जहौ ॥

३—पप्रच्छचेममेवार्थंयन्मांपृच्छथसत्तमाः। कृष्णानुभावश्रवणेश्रद्दधानोमहामनाः ॥

४—संस्थांविज्ञायसंन्यस्यकर्मत्रैवर्गिकंचयत्। वासुदेवेभगवतिआत्मभावंदृढंगतः ॥

राजोवाच—

५—समीचीनंवचोब्रह्मन्सर्वज्ञस्यतवानघ। तमोविशीर्यतेमह्यंहरेःकथयतःकथां ॥

६—भूयएवविवित्सामिभगवानात्ममायया। यथेदंसृजतेविश्वंदुर्विभाव्यमधीश्वरैः ॥

७—यथागोपायतिविश्वंयथासंयच्छतेपुनः। यांयांशक्तिमुपाश्रित्यपुरुशक्तिःपरःपुमान् ॥
आत्मानंक्रीडयन्क्रीडन्करोतिविकरोतिच ॥

८—नूनंभगवतोब्रह्मन्हरेरद्भुतकर्मणः। दुर्विभाव्यमिवाभातिकविभिश्चापिचेष्टितं ॥

९—यथागुणांस्तुप्रकृतेर्युगपत्क्रमशोपिवा। बिभर्तिभूरिशस्त्वेकःकुर्वन्कर्माणिजन्मभिः ॥

के निमित्त क्रम से उस माया का गुण ग्रहण करते हैं, इस विषय में मुझे संदेह है; अत आप यथोचित उत्तर दे, क्योंकि आप शब्दब्रह्म अर्थात् वेद तथा परब्रह्म के जाननेवाले हैं ॥ ९-१० ॥

सूत बोले—इस प्रकार भगवान् के गुणों का वर्णन करने के लिए राजा परीक्षित के द्वारा प्रार्थना की जानेपर, श्रीशुकदेव ने भगवान् का ध्यान करके कथा का आरंभ किया ॥११॥

श्रीशुकदेव बोले—जो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के कारण हैं, लीला के द्वारा जिन्होंने सात्विक, राजस तथा तामस, माया—की इन तीन शक्तियों को स्वीकार किया है, जो समस्त प्राणियों के अन्तर्यामी हैं, द्रष्टा होने के कारण जो इंद्रिय, बुद्धि और मन आदि के विषय नहीं हैं, ऐसे अनंत महिमामय परमपुरुष को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १२ ॥ अपने धर्म मे निष्ठा रखनेवाले पुरुषों का सकट काटनेवाले, अधर्मियों के नाश के कारण, संपूर्ण सत्व-मूर्ति तथा अपने ही स्वरूप में निष्ठा रखनेवाले पुरुषों के जड़-अश का त्याग करके उनका शोधन करने योग्य शुद्ध स्वरूप देनेवाले भगवान् को मैं पुनः नमस्कार करता हूँ ॥ १३ ॥ भक्त-पालक ! भक्तिहीन योगी से बहुत दूर रहनेवाले तथा जिनके समान अथवा जिनसे अधिक अन्य किसी का भी ऐश्वर्य न होने के कारण, जो आत्मस्वरूप मे ही रमण करते हैं, ऐसे भगवान् को मैं बारबार नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥ जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, नमन, श्रवण तथा पूजन लोगो के पापों का तत्काल नाश करता है, ऐसे कल्याणकारी यशवाले भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १५ ॥ विवेकी पुरुष जिनके चरणों की शरण लेकर इह तथा परलोक के सुख से मन की आसक्ति दूर करके बिना परिश्रम ही ब्रह्मसुख को प्राप्त करते हैं,

---

१०—निर्विकित्सितमेतन्मेब्रवीतुभगवान्यथा । शाब्देब्रह्मणिनिष्णातःपरस्मिंश्चभवान्खलु ॥

सूतउवाच—

११—इत्युपामंत्रितोराज्ञागुणानुकथनेहरेः । हृषीकेशमनुस्मृत्यप्रतिवक्तुंप्रचक्रमे ॥

श्रीशुकउवाच—

१२—नमःपरस्मैपुरुषायभूयसेसदुद्भवस्थाननिरोधलीलया ।

गृहीतशक्तित्रितयायदेहिनामंतर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥

१३—भूयोनमःसद्वृजिनच्छिदेसतामसंभवायाखिलसत्वमूर्तये ।

पुंसांपुनःपारमहंस्यआश्रमेव्यवस्थितानामनुमृग्यदाशुषे ॥

१४—नमोनमस्तेऽस्त्वृषभायसात्वताविदूरकाष्ठायमुहुःकुयोगिना ।

निरस्तसाम्यातिशयेनराधसास्वधामनिब्रह्मणिरंस्यतेनमः ॥

१५—यत्कीर्तनंयत्स्मरणंयदीक्षणंयद्वंदनंयच्छ्रवणंयदर्हणं ।

लोकस्यसद्योविधुनोतिकल्मषंतस्मैसुभद्रश्रवसेनमोनमः ॥

उन कल्याणकारी यशवाले भगवान् को मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥ तपस्वी, दाता, यशस्वी, योगी, प्रणव आदि मंत्रों का जप करनेवाले तथा सदाचारी पुरुष अपने तप आदि कर्मों को जिसे अर्पित किए बिना सुख नहीं पाते, उन कल्याणकारी यशवाले भगवान् को मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ ॥ १७ ॥ किरात, हूण, आंध्र, पुलिंद, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन तथा खस, ये नीच जाति के लोग तथा अन्य भी कितने ही हीन लोग, जिन भगवान् के भक्तों का आश्रय लेकर शुद्ध होते हैं—उन, समर्थ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १८ ॥

जो धीर पुरुषों की आत्मा है,जो वेदत्रयी के रूप हैं, जो धर्म तथा तपरूप हैं तथा जिनके स्वरूप को ब्रह्मा तथा शिव आदि निष्कपट भक्त जान सकते है, वे लक्ष्मीपति, यज्ञपति, प्रजापति, बुद्धि की वृत्तियों के प्रेरक, लोकपालक, पृथ्वीपालक, सत्पुरुषों के पालक तथा यादव-कुलों के पालक और आपत्तियों से उनकी रक्षा करनेवाले भगवान् मुझपर प्रसन्न हों ॥ १९-२० ॥ जिसके चरण-कमलों के ध्यानरूप समाधि से निर्मल हुई बुद्धि के द्वारा ज्ञानी पुरुष अपने स्वरूप को जानते हैं तथा बुद्धि के अनुसार जिनके स्वरूप का वर्णन करते है, वे मुकुंद भगवान् मुझपर प्रसन्न हों ॥ २१ ॥ प्राचीन समय मे कल्प के आरंभ मे ब्रह्मा के हृदय में सृष्टि-विषयक सुंदर स्मृति उत्पन्न करनेवाले, जिन भगवान् की प्रेरणा से ब्रह्मा के मुँह से सरस्वती उत्पन्न हुई थीं, वे ज्ञान देनेवालों में श्रेष्ठ भगवान् मुझपर प्रसन्न हों ! ॥ २२ ॥ जो पुरुषरूप भगवान् पंचमहाभूतों के द्वारा इन शरीरों की रचना करके जीवरूप से इनमें प्रवेश करते हैं

१६—विचक्षणायचरणोपसादनात्संगंव्युदस्योभयतोऽतरात्मनः ।

विंदतिंहिब्रह्मगतिंगतक्लमास्तस्मैसुभद्रश्रवसेनमोनमः ॥

१७—तपस्विनोदानपरायशस्विनोमनस्विनोमंत्रविदःसुमंगलाः ।

क्षेमंनविंदतिविनायदर्पणंतस्मैसुभद्रश्रवसेनमोनमः ॥

१८—किरातहूणांध्रपुलिंदपुल्कसाआभीरकंकायवनाःखसादयः ।

येऽन्येचपापायदुपाश्रयाश्रयाःशुद्ध्यंतितस्मैप्रभविष्णवेनमः ॥

१९—सएषआत्मात्मवतामधीश्वरस्त्रयीमयोधर्ममयस्तपोमयः ।

गतव्यलीकैरजशंकरादिभिर्वितर्क्यलिंगोभगवान्प्रसीदतां ॥

२०—श्रियःपतिर्यज्ञपतिःप्रजापतिर्धियांपतिर्लोकपतिर्धरापतिः ।

पतिर्गतिश्चांधकवृष्णिसात्वतांप्रसीदतांमेभगवान्सतांपतिः ॥

२१—यदंघ्र्यनुध्यानसमाधिधौतयाधियानुपश्यन्तिहितत्त्वमात्मनः ।

वदंतिचैतत्कवयोयथारुचंसमेमुकुंदोभगवान्प्रसीदतां ॥

२२—प्रचोदितायेनपुरासरस्वतीवितन्वताजस्यसतींस्मृतिंहृदि ।

स्वलक्षणाप्रादुरभूत्किलास्यतःसमेऋषीणामृषभःप्रसीदतां ॥

तथा अंत करण के सहित ग्यारह इंद्रिय और पॉच भूत, इन सोलह माया के कार्यों का अंतर्यामीरूप से प्रकाश करते हैं, वे हमारी वाणी को शोभित करे ॥ २३ ॥ जिनके मुख-कमल से निकले वाणीरूपरस को भक्तों ने पिया है, उन भगवान् वासुदेवरूप व्यास को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २४ ॥ राजन् ! आपने जो बात मुझसे पूछी है, वही नारदजी ने ब्रह्मा से पूछी थी। वेदगर्भ ब्रह्मा ने उनसे वह कथा कही थी, जिस कथा को स्वय भगवान् ने उनसे कहा था ॥२५॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कध का चौथा अध्याय समाप्त

पाँचवाँ अध्याय

जगत् की सृष्टि का निरूपण

नारद बोले—देवाधिदेव ! जगत् को उत्पन्न करनेवाले ! पूर्वज ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप मुझे उपदेश दे, जिससे आत्मा के स्वरूप का ज्ञान हो ॥ १ ॥ इस जगत् का जिसके द्वारा प्रकाश होता है, जिसके आश्रय मे यह रहता है, जिसने इसकी सृष्टि की है, जिसमें यह लीन होता है, जिसके यह आधीन रहता है और जिसका यह स्वरूप है, उसके बारे मे आप यथार्थ रूप से मुझसे कहे ॥ २ ॥ यह समस्त बातें आपको अज्ञात नहीं है, क्योंकि जो

२३—भूतैर्महद्भिर्यइमा.पुरोविभुर्निर्माय शेतेयदमूषुपूरुष' ।
मुक्तेगुणान्षोडशषोडशात्मक.सोऽलंकृषीष्टभगवान्वचांसिमे ॥

२४—नमस्तस्मैभगवतेवासुदेवायवेधसे । पपुर्ज्ञानमयंसौम्यायन्मुखाम्बुरुहासवं ॥

२५—एतदेवात्मभूराजन्नारदायविपृच्छते । वेदगर्भोऽभ्यधात्साक्षाद्यदाहहरिरात्मन' ॥

इति श्रीभागवतेमहापुराणेद्वितीयस्कंधेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

नारदउवाच—

१—देवदेवनमस्तेऽस्तुभूतभावनपूर्वज । तद्विजानीहियज्ज्ञानमात्मतत्त्वनिदर्शनं ॥

२—यद्रूपंयदधिष्ठानंयतःसृष्टमिदंप्रभो । यत्संस्थंयत्परंयच्चतत्तत्त्वंवदतत्त्वत. ॥

कुछ हो चुका, जो हो रहा है और जो होगा, उन सबके आप स्वामी हैं, तथा हथेली पर रखे हुए आँवले के समान, समस्त जगत् के सबंध मे आपने ज्ञान के द्वारा निश्चय कर रखा है ॥ ३ ॥ जिसने आपको ज्ञान दिया है, आप जिसके आश्रय में है, आप जिसके वश मे हैं और जिसके स्वरूप है, उसके बारे मे कहे। आप एक ही अपनी शक्ति से पच महाभूतों के द्वारा, जिस प्रकार मकड़ी अपना जाला तनती है, उसी प्रकार, स्वयं ही समस्त प्राणियो की सृष्टि करते हैं तथा उनमे पर-भाव उत्पन्न न होने देते हुए उनका पालन करते हैं, फिर भी आपको कोई परिश्रम नहीं होता, अर्थात् आप अनायास ही जगत् की सृष्टि करते और उसका पालन करते हैं ॥ ४-५ ॥ इस संसार में उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ और स्थूल तथा सूक्ष्म आदि समस्त वस्तुएँ—जो नाम-रूप तथा गुण के द्वारा जानी जा सकती है, उनमे से कोई भी आपके अतिरिक्त किसी अन्य से उत्पन्न हुआ है, ऐसा मै नहीं मानता ॥ ६ ॥ किंतु आपने भी एकाग्रचित्त से उग्र तपस्या की थी, इससे मुझे मोह उत्पन्न होता है तथा शंका होती है कि आपके अतिरिक्त भी कोई अन्य देवता है ? ॥ ७ ॥ अतः सर्वज्ञ ! सबके ईश्वर ! आप मेरे प्रश्नों का इस प्रकार समाधान करें कि मैं सब बाते भलीभाँति समझ जाऊँ ॥ ८ ॥

ब्रह्मा बोले—वत्स ! तुम दयालु हो। तुम्हारी यह आशंका अत्यंत उत्तम है, क्योंकि (इसके द्वारा) तुमने मुझे भगवान् के गुणों का वर्णन करने के लिये प्रेरित किया है ॥ ९ ॥ तुमने मुझे ईश्वर कहा है। तुम्हारा यह कहना झूठ नहीं है, क्योंकि जिस ईश्वर के कारण मेरा इतना प्रभाव है, उसे न जानने के कारण ही तुम ऐसा कहते हो ॥ १० ॥ जिस प्रकार सूर्य, अग्नि, चद्रमा, नक्षत्र, ग्रह तथा तारागण चैतन्यरूप आत्मा के द्वारा प्रकाशित वस्तु को ही प्रकाशित करते है, उसी प्रकार मै भी उन स्वयंप्रकाश भगवान् के द्वारा प्रकाशित जगत् को

३—सर्वंह्येतद्भवान्वेदभूतभव्यभवत्प्रभु. । करामलकवद्विश्वंविज्ञानावसितंतव ॥

४—यद्विज्ञानोयदाधारोयत्परस्त्वंयदात्मकः । एकःसृजसिभूतानिभूतैरेवात्ममायया ॥

५—आत्मन्भावयसेतानिनपराभावयन्स्वय । आत्मशक्तिमवष्टभ्यऊर्णनाभिरिवाक्लमः ॥

६—नाहवेदपरह्यस्मिन्नापरंनसमंविभो । नामरूपगुणैर्भाव्यसदसत्किंचिदन्यतः ॥

७—सभवानचरद्घोरयत्तप.सुसमाहितः । तेनखेदयसेनस्त्वंपराशंकांप्रयच्छसि ॥

८—एतन्मेपृच्छतःसर्वंसर्वज्ञसकलेश्वर । विजानीहियथैवेदमहंबुध्येऽनुशासितः ॥

ब्रह्मोवाच—

९—सम्यक्कारुणिकस्येदवत्सतेविचिकित्सित । यदहंचोदित.सौम्यभगवद्वीर्यदर्शने ॥

१०—नानृततवतच्चापियथामांप्रब्रवीषिभो । अविज्ञायपरमत्तएतावत्त्वंयतोहिमे ॥

११—येनस्वरोचिषाविश्वरोचितंरोचयाम्यह ।,यथाऽर्कोग्निर्यथासोमोयथर्क्षग्रहतारकाः ॥

प्रकाशित करता हूँ ॥ ११ ॥ जिन भगवान् की अजेय (जीती न जा सकनेवाली) माया के द्वारा मोहित होकर तुम्हारे समान पुरुष मुझे जगत्कारण कहते हैं, उन भगवान् वासुदेव को नमस्कार करते हुए मैं उनका ध्यान करता हूँ ॥ १२ ॥ अपने कपट को जाननेवाली जो माया भगवान् की आँखों के सामने पड़ते हुए भी लज्जित होती है, उसीके द्वारा मोहित दुष्ट बुद्धिवाले पुरुष 'मैं और मेरा' ऐसा कहा करते हैं ॥ १३ ॥ द्रव्य अर्थात् जगत् के उपादान के कारण पंच महाभूत, कर्म, काल, स्वभाव तथा जीव, वास्तव में ये सभी वासुदेव से भिन्न नहीं हैं ॥ १४ ॥ वेदों के कारण नारायण हैं। देवता नारायण के अंग से उत्पन्न हुए हैं। लोकों तथा यज्ञ के कारण भी नारायण ही हैं ॥ १५ ॥ योग के कारण नारायण हैं और तप के कारण भी वे ही हैं। ज्ञान भगवत्प्राप्ति का साधन है और उसका फल अर्थात सद्गति भी स्वयं भगवान् ही हैं ॥ १६ ॥ उन द्रष्टा, नियंता, सर्वान्तर्यामी तथा कूटस्थ भगवान् के द्वारा उत्पन्न होने योग्य जगत् की, उन्हींके द्वारा उत्पन्न मैं, उनकी दृष्टि की प्रेरणा से सृष्टि करता हूँ ॥ १७ ॥ जगत् की उत्पत्ति, सृष्टि और लय के निमित्त निर्गुण भगवान् में सत्व, रज तथा तम, ये तीन माया के गुण हैं ॥ १८ ॥ ये पचभूत, देवता तथा इंद्रियों के कारणरूप गुण, अध्यात्म, अधिभूत तथा अधिदैवत में अभिमान उत्पन्न कराकर निरंतर मुक्त आत्मा को जन्म-मरणरूपी बंधन में बांधते हैं ॥ १९ ॥ माया जिनके आधीन है, ऐसे अधोक्षज भगवान, जिनके स्वरूप को केवल उनके भक्त ही जानते हैं, उक्त तीन गुणों के द्वारा सबके तथा मेरे भी स्वामी हैं ॥ २० ॥ माया के नियंता भगान् ने अपने में सहसा उत्पन्न हुए काल, जीवों के अदृष्ट तथा स्वभाव को अपनी माया के द्वारा ग्रहण किया ॥ २१ ॥ पुरुष के आधार पर रहने-वाले काल के द्वारा गुणों में क्षोभ हुआ, स्वभाव से उसका रूपातर हुआ और जीव के कर्मों

१२—तस्मैनमोभगवतेवासुदेवायधीमहि । यन्माययादुर्जययामाम्ब्रुवतिजगद्गुरु ॥

१३—विलज्जमानयायस्यस्थातुमीक्षापथेऽमुया । विमोहिताविकत्थतेममाहमितिदुर्धियः ॥

१४—द्रव्यकर्मचकालश्चस्वभावोजीवएवच । वासुदेवात्परोब्रह्मन्नचान्योऽर्थोस्तितत्त्वतः ॥

१५—नारायणपरावेदादेवानारायणाङ्गजा. । नारायणपरालोकानारायणपरामखा. ॥

१६—नारायणपरोयोगोनारायणपरंतपः । नारायणपरंज्ञाननारायणपरागति. ॥

१७—तस्यापिद्रष्टुरीशस्यकूटस्थस्याखिलात्मनः । सृज्यसृजामिसृष्टोहमीक्षयैवाभिचोदित ॥

१८—सत्वंरजस्तमइतिनिर्गुणस्यगुणास्त्रय. । स्थितिसर्गनिरोधेषुगृहीतामाययाविभो. ॥

१९—कार्यकारणकर्तृत्वेद्रव्यज्ञानक्रियाश्रया. । बध्नंतिनित्यदामुक्तमायिनपुरुषगुणाः ॥

२०—सएषभगवांल्लिंगैस्त्रिभिरेभिरधोक्षजः । स्वलक्षितगतिर्ब्रह्मन्सर्वेषाममचेश्वरः ॥

२१—कालंकर्मस्वभावंचमायेशोमाययास्वया । आत्मन्यदृच्छयाप्राप्तंविबुभूषुरुपाददे ॥

के द्वारा उनका महत्तत्व हुआ ॥ २२ ॥ रजोगुण तथा सत्वगुण से वर्धित, विकार को प्राप्त होते हुए, महत्तत्व से द्रव्य, ज्ञान तथा क्रियास्वरूप तमोगुणप्रधान एक पदार्थ उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ उसे अहंकार कहते हैं। विकार उत्पन्न होने पर इस अहंकार के तीन स्वरूप हुए। उनके नाम सात्विक अहंकार, राजस अहंकार तथा तामस अहंकार है। तामस अहंकार में पंचमहाभूतों को उत्पन्न करने की शक्ति है, राजस में क्रिया अर्थात् इंद्रियों को उत्पन्न करने की शक्ति है और सात्विक अहंकार में उनके देवताओं को उत्पन्न करने की शक्ति है ॥ २४ ॥ तामस अहंकार के विकृत होने पर उससे आकाश हुआ, उसका रूप सूक्ष्म है तथा उसमे अन्य भूतों से पृथक् करनेवाला गुण शब्द है। यह शब्द द्रष्टा तथा दृश्य का बोध कराता है ॥ २५ ॥ आकाश मे विकार होने पर स्पर्श गुणवाली वायु हुई, कारण का गुण कार्य मे आता है, इस नियम से आकाश का गुण शब्द भी उसमे आया। वायु, शरीर को धारण करनेवाली है तथा ओज अर्थात् इंद्रिय-बल, सह अर्थात् मनोबल और बल अर्थात् शरीर-बल का कारण है ॥ २६ ॥ काल, कर्म तथा स्वभाव के द्वारा विकार को प्राप्त होती हुई वायु के द्वारा तेज उत्पन्न हुआ। उसका गुण रूप है। आकाश तथा वायु के गुण शब्द और स्पर्श भी उसमे आए ॥२७॥ तेज मे विकार होने पर, सूक्ष्म रूप तथा रस-गुणवाला जल उत्पन्न हुआ उसमे आकाश वायु तथा तेज के शब्द, स्पर्श और रूप, ये गुण आए ॥ २८ ॥ जल के विकार पाने पर उससे गंध गुणवाली पृथ्वी हुई, उसमे शब्द, स्पर्श, रूप और रस, अपने से पहले उत्पन्न हुए भूतों के ये चार गुण आए ॥ २९ ॥ ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, बुद्धि और प्राण—ये राजस अहंकार के कार्य हैं, अत. ज्ञानेद्रिय तथा कर्मेन्द्रिय विकार पाए हुए तामस अहंकार से उत्पन्न हुये, वैकारिक अहंकार से मन उत्पन्न हुआ तथा चन्द्रमा, दिशाएँ, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनी-

---

२२—कालाद्गुणव्यतिकरःपरिणामःस्वभावत.। कर्मणोजन्ममहतःपुरुषाधिष्ठितादभूत् ॥

२३—महतस्तुविकुर्वाणाद्रजःसत्वोपबृंहितात्। तमःप्रधानस्त्वभवद्द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥

२४—सोऽहंकारइतिप्रोक्तोविकुर्वन्समभूत्त्रिधा। वैकारिकस्तैजसश्चतामसश्चेतियद्भिदा ॥
द्रव्यशक्तिःक्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिरितिप्रभो ॥

२५—तामसादपिभूतादेर्विकुर्वाणादभून्नभः। तस्यमात्रागुणःशब्दोलिंगंयद्द्रष्टृदृश्ययोः ॥

२६—नभसोऽथविकुर्वाणादभूत्स्पर्शगुणोऽनिलः। परान्वयाच्छब्दवांश्चप्राणओजःसहोबलम् ॥

२७—वायोरपिविकुर्वाणात्कालकर्मस्वभावतः। उदपद्यततेजोवैरूपवत्स्पर्शशब्दवत् ॥

२८—तेजसस्तुविकुर्वाणादासीदम्भोरसात्मकम्। रूपवत्स्पर्शवच्चाम्भोघोषवच्चपरान्वयात् ॥

२९—विशेषस्तुविकुर्वाणादम्भसोगंधवानभूत्। परान्वयाद्रसस्पर्शशब्दरूपगुणान्वितः ॥

३०—वैकारिकान्मनोजज्ञेदेवावैकारिकादश। दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ॥

कुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र और मित्र, ये दस वैकारिक देवता उत्पन्न हुए। ज्ञानेन्द्रियों का नाम श्रोत्र (कान), त्वचा, घ्राण (नाक) नेत्र तथा जिह्वा है। कर्मेन्द्रियों का नाम वाणी, हाथ, उपस्थ, पैर तथा गुदा है ॥ ३०-३१ ॥ नारद ! पञ्चभूत, इंद्रिय तथा मन आदि तीन गुणों के कारणों के अलग-अलग उत्पन्न होने से, जब वे शरीर उत्पन्न करने मे समर्थ न हुए, तो भगवान् की शक्ति की प्रेरणा से उक्त पदार्थों ने गौण तथा मुख्य रूप से एक-दूसरे के साथ मिलकर समष्टि और व्यष्टिरूप स्थूल शरीर को उत्पन्न किया ॥ ३२-३३ ॥ हजार वर्षों तक जल मे रहने के अनन्तर काल, कर्म तथा स्वभाव का आश्रय लेकर भगवान् ने उस जड़ और स्थूल शरीर को सचेतन बनाया ॥ ३४ ॥ यही परमात्मा जगन्रूपी अंड को भेदकर हजारों ऊरू, पग भुजा, नेत्र, मुख तथा मस्तकों के सहित प्रकट हुए ॥ ३५ ॥ जिनके अवयवों में विद्वान् कटि से नीचे के भाग में नीचे क सात लोकों को तथा जंघे से ऊपर के भाग में ऊपर के सात लोकों की कल्पना करते हैं ॥ ३६ ॥ इन विराट् पुरुष का मुख ब्राह्मण है, भुजाएँ क्षत्रिय हैं, इनके ऊरू वैश्य हैं तथा इनके पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं ॥ ३७ ॥ इन महात्मा के चरणों मे भूलोक की कल्पना की गई है। इनकी नाभि में भुवर्लोक की कल्पना हुई है, उनके हृदय के स्थान पर स्वर्गलोक है और छाती के स्थान पर महर्लोक है ॥ ३८ ॥ इनकी ग्रीवा मे जनलोक, शब्दायमान दोनों होठों में तपलोक तथा मस्तक में सत्यलोक है, जो सनातन ब्रह्मलोक अथवा बैकुंठलोक कहा जाता है ॥ ३९ ॥ व्यापक विराट् पुरुप के कटि-स्थान मे अतल की कल्पना हुई है, ऊरू-स्थान मे वितल की, जानु-स्थान में शुद्ध सुतल की, तथा जघा-स्थान में तलातल की कल्पना हुई है ॥ ४० ॥ उनके घुटनों मे महातल की, पिंडुली मे रसातल की और पैर के तलवों मे पाताल

३१—तैजसात्तुविकुर्वाणादिंद्रियाणिदशाभवन् । ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिर्बुद्धिःप्राणस्तुतैजसौ ॥
श्रोत्रत्वग्घ्राणदृग्जिह्वावाग्दोर्मेढ्राङ्घ्रिपायवः ॥

३२—यदैतेऽसङ्गताभावाभूतेन्द्रियमनोगुणाः । यदायतननिर्माणेनशेकुर्ब्रह्मवित्तम ॥

३३—तदासंहत्यचान्योन्यंभगवच्छक्तिचोदिताः । सदसत्त्वमुपादायचोभयंससृजुर्ह्यदः ॥

३४—वर्षपूगसहस्रान्तेतदण्डमुदकेशयम् । कालकर्मस्वभावस्थोजीवोऽजीवमजीवयत् ।

३५—सएवपुरुषस्तस्मादण्डंनिर्भिद्यनिर्गतः । सहस्रोर्वङ्घ्रिबाह्वक्षःसहस्राननशीर्षवान् ॥

३६—यस्येहावयवैर्लोकान्कल्पयंतिमनीषिणः । कट्यादिभिरधःसप्तसप्तोर्ध्वंजघनादिभिः ॥

३७—पुरुषस्यमुखंब्रह्मक्षत्रमेतस्यबाहवः । ऊर्वोर्वैश्योभगवतःपद्भ्यांशूद्रोऽभ्यजायत ॥

३८—भूर्लोकःकल्पितःपद्भ्यांभुवर्लोकोऽस्यनाभितः । हृदास्वर्लोकउरसामहर्लोकोमहात्मनः ॥

३९—ग्रीवायांजनलोकश्चतपोलोकःस्तनद्वयात् । मूर्धभिःसत्यलोकस्तुब्रह्मलोकःसनातनः ॥

४०—तत्कट्यांचातलंक्लृप्तमूरुभ्यांवितलंविभोः । जानुभ्यांसुतलंशुद्धंजङ्घाभ्यांतुतलातलं ॥

की कल्पना हुई है; इस प्रकार भगवान् सर्वलोकस्वरूप है ॥ ४१ ॥ विराट् पुरुष के चरणों मे भूलोक की कल्पना हुई, नाभि मे भुवर्लोक की कल्पना हुई और मस्तक मे स्वर्गलोक की कल्पना की गई है। इस प्रकार भी लोको की कल्पना की गई है ॥ ४२ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कंध का पाँचवाँ अध्याय समाप्त

छठवाँ अध्याय

विराट् पुरुष की विभूति का निरूपण

ब्रह्मा बोले—मनुष्यों की वाणी और उसके अधिष्ठाता अग्नि उस विराट-पुरुष के मुख से उत्पन्न हुए। छन्दों की उत्पत्ति सात धातुओं से। (धातु का अर्थ है त्वगादि) हव्य (देव-भोज्य) कव्य (पितृ-भोजन) अमृत अन्न तथा सब रसों की उत्पत्ति जिह्वा से हुई है ॥ १ ॥ सबके प्राणों तथा वायु की उत्पत्ति उस पुरुष की नासिका से हुई है। अश्विनों, औषधियों तथा सामान्य विशेष गन्धों की उत्पत्ति घ्राणेंद्रिय से हुई ॥ २ ॥ रूप और तेज का उत्पत्ति-स्थान चक्षुरिन्द्रिय है, सूर्य और स्वर्ग लोक का उत्पत्ति-स्थान अक्षिगोलक है,

४१—महातलंतुगुल्फाभ्यांप्रपदाभ्यांरसातलं । पातालंपादतलतइतिलोकमयःपुमान् ॥

४२—भूर्लोकःकल्पित.पद्भ्यांभुवर्लोकोऽस्यनाभित. । स्वर्लोक'कल्पितोमूर्ध्नाइतिवालोककल्पना ॥

इति श्री भा० म० द्वितीयस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच—

१—वाचांवह्नेर्मुखंक्षेत्रंछन्दसांसप्तधातवः । हव्यकव्यामृतान्नानांजिह्वासर्वरसस्यच ॥

२—सर्वासूनांचवायोश्चतन्नासेपरमायने । अश्विनोरोषधीनांचघ्राणोमोदप्रमोदयोः ॥

दिशा और तीर्थो का उत्पत्ति-स्थान कर्णविवर है, आकाश और शब्द का उत्पत्ति-स्थान श्रोत्रेन्द्रिय है ॥ ३ ॥ सुवर्ण आदि प्रधान पदार्थो और सौंदर्य का उत्पत्ति-स्थान उनका शरीर है, स्पर्श वायु और समस्त यज्ञों का उत्पत्ति-स्थान उनकी त्वचा है, उद्भिज (जमीन से उत्पन्न होनेवाले वृक्षादि) जाति तथा यज्ञों के काम मे आने वाले पदार्थो की उत्पत्ति उस पुरुष के रोम से हुई है ॥ ४ ॥ पत्थर, लोहा, मेघ और विद्युत की उत्पत्ति उस पुरुष के केश, मूँछ और नखों से हुई है। रक्षा करनेवाले लोकपालों की उत्पत्ति उस पुरुष की बाहुओं से हुई है ॥५॥ भू, भुव. और स्वः—इनकी उत्पत्ति उस पुरुष के तीन पैरों के चलने से हुई है। सब प्रकार की रक्षा, विघ्नों का दूर करना, समस्त कामों की सिद्धि भगवान के चरणों से हुई है। जल की, वीर्य्य की, सृष्टि की, वृष्टि करनेवाले देवता की और प्रजापति की उत्पत्ति उस पुरुष के लिंग से हुई है और सतान के लिये सभोग से उत्पन्न होने वाले आनन्द का भी उत्पत्ति-स्थान वही है ॥ ७ ॥ हे नारद ! यम, मित्र और मलत्याग का गुदा इन्द्रिय है, प्राणि-पीडा, दरिद्रता, मृत्यु और नरक का उत्पत्तिस्थान गुदा है ॥ ८ ॥ दरिद्रता, अधर्म, पराजय और अज्ञान का उत्पत्ति-स्थान उस पुरुप की पीठ है। नद और नदियों का उत्पत्ति-स्थान उस पुरुष की नाडियॉ है तथा पर्वतों का उत्पत्ति-स्थान उनकी हड्डी है ॥ ९ ॥ अव्यक्त पदार्थ अन्नादि का सार, समुद्र, समस्त प्राणियों के अन्त की उत्पत्ति उस भगवान के उदर से हुई है और उनका हृदय हमलोगों के मन का उत्पत्ति-स्थान है ॥ १० ॥ धर्म, मै अर्थात् ब्रह्म है, तुम अर्थात् नारद और सनकादिक, शिव, बुद्धि, चित का महत्तत्व और परमेश्वर—इनका उत्पत्ति-स्थान उस पुरुप की आत्मा है ॥ ११ ॥ मै, आप, शिव तथा सर्व प्रथम उत्पन्न होनेवाले ये मुनि, देवता, असुर, मनुष्य, नाग, पक्षी, पशु, सरीसृप (सरक कर चलनेवाले साँप आदि) गधर्व,

---

३—रूपाणांतेजसाचक्षुर्दिव.सूर्यस्यचाक्षिणी। कर्णौदिशाचतीर्थानाश्रोत्रमाकाशशब्दयो ॥
वद्गात्रवस्तुसाराणासौभगस्यचभाजन ॥

४—त्वगस्यस्पर्शवायोश्चसर्वमेधस्यचैवहि। रोमाण्युद्भिज्जजातीनायैर्वायज्ञस्तुसंभृत: ॥

५—केशश्मश्रुनखान्यस्यशिलालोहाभ्रविद्युता। बाहवोलोकपालानामायश क्षेमकर्मणा ॥

६—विक्रमोभूर्भुव.स्वश्चक्षेमस्यशरणस्यच। सर्वकामदरस्यापिहरेश्चरणआस्पद ॥

७—अपावीर्यस्यसर्गस्यपर्जन्यस्यप्रजापतेः। पुस.शिश्नउपस्थस्तुप्र जात्यानदनिर्वृते. ॥

८—पायुर्यमस्यमित्रस्यपरिमोक्षस्यनारद। हिंसायानिर्ऋतेर्मृत्योर्निरयस्यगुद'स्मृत ॥

९—पराभूतेरधर्मस्यतमसश्चापिपश्चिम.। नाड्योनदनदीनाञ्चगोत्राणामस्थिसहति: ॥

१०—अव्यक्तरससिंधूनाभूतानानिधनस्यच। उदरविदितपुंसोहृदयमनस'पद ॥

११—धर्मस्यममतुभ्यचकुमाराणाभवस्यच। विज्ञानस्यचसत्वस्यपरस्यात्मापरायणं ॥

अप्सराएँ, यक्ष, राक्षस, भूत, उरग, पशु, पितर, विद्याधर, चारण, वृक्ष तथा और भी जल-स्थल और आकाश के विविध जीव हैं। ग्रह, नक्षत्र, केतु, तारा, विद्युत तथा गर्जनेवाले मेघ—यह सब यहाँ जो कुछ है—सब वही पुरुप है, भूत, भविष्यत, वर्तमान वही पुरुप है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है ॥ १२,१३,१४ ॥ उसी पुरुप के द्वारा यह समस्त विश्व ढका हुआ है। वह इस विश्व से एक बिलांद (बालिश्त) अधिक है ॥१५॥ जिस प्रकार सूर्य अपने मंडल को प्रकाशित करता हुआ समस्त संसार को प्रकाशित करता है, इसी प्रकार वह पुरुप विराट शरीर को प्रकाशित करता हुआ ब्रह्मांड का बाहर और भीतर प्रकाशित करता है ॥ १६ ॥ वह परमात्मा भय-रहित मोक्ष का स्वामी है, उसका भोग करनेवाला और देनेवाला है, अतएव उसको विनाशी अन्न (कर्मों के फल) का भोग करना नहीं पडता। हे ब्रह्मन्! अतएव उस पुरुष की यह महिमा अपार है ॥ १७ ॥

जीवों के निवास स्थान लोक उस पुरुप के अंग बतलाए गए हैं। उस भगवान के अंगों में समस्त प्राणी निवास करते हैं, ऐसा विद्वानों का कहना है। भू. आदि तीन लोकों का मस्तक हरलोक है। उसके ऊपर के तीनों लोकों में क्रम से उस परमात्मा ने अमृत, क्षेम और अभय को स्थापित किया है। वे तीन लोक, जन, तप और सत्यलोक हैं ॥ १८ ॥ जन, तप और सत्य—ये तीन लोक त्रिलोक के बाहर हैं, इनमें नैष्ठिक ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासियों को आश्रय मिलता है, और जो गृहस्थ हैं, उन्हें त्रिलोक मे ही स्थान मिलता है, क्योंकि वे ब्रह्मचर्य आदि व्रत का अनुष्ठान नहीं करते ॥ १९ ॥ पुरुष अर्थात् क्षेत्रज्ञ शासन—(जहाँ कर्मों का फल भोगना पड़ता है) दक्षिण मार्ग अन-

---

१२—अहंभवान्भवश्चैवतइमेमुनयोऽग्रजा.। सुरासुरनरानागा.खगामृगसरीसृपाः ॥

१३—गधर्वाप्सरसोयक्षारक्षोभूतगणोरगाः। पशवःपितरःसिद्धाविद्याध्राश्चारणाद्रुमाः ॥

१४—अन्येचविविधाजीवाजलस्थलनभौकसः। ग्रहर्क्षकेतवस्तारास्तडितस्तनयित्नवः ॥

१५—सर्वंपुरुषएवेदंभूतंभव्यंभवच्चयत्। तेनेदमावृतंविश्वंवितस्तिमधितिष्ठति ॥

१६—स्वधिष्ण्यंप्रतपन्प्राणोबहिश्चप्रतपत्यसौ। एवंविराजंप्रतपंस्तपत्यन्तर्बहिःपुमान् ॥
सोऽमृतस्याभयस्येशोमर्त्यमन्नंयदत्यगात् ॥

१७—महिमैषततोब्रह्मन्पुरुषस्यदुरत्ययः। पादेषुसर्वभूतानिपुंसःस्थितिपदोविदुः ॥

१८—अमृतंक्षेममभयंत्रिमूर्ध्नोधायिमूर्धसु। पादास्त्रयोबहिश्चासन्नप्रजानांयआश्रमा. ॥
अन्तस्त्रिलोक्यास्त्वपरोगृहमेधोऽबृहद्व्रतः ॥

१९—सृतीविचक्रमेविष्वङ्साशनानशनेउभे। यदविद्याचविद्याचपुरुषस्तूभयाश्रयः ॥

२०—यस्माद‍ण्डंविराड्जज्ञेभूतेन्द्रियगुणात्मकः। तद्द्रव्यमत्यगाद्विश्वंगोभिःसूर्यइवातपन् ॥

शन—(जहाँ कर्मों का फल नहीं भोगना पड़ता) उत्तर मार्ग—इन दोनों मार्गो मे जाते हैं, क्योंकि पुरुष, अविद्या, (कर्म) और विद्या (ज्ञान और उपासना) इन दोनों के अधीन है ॥ २० ॥ जिस परमात्मा से अड उत्पन्न हुआ और अड से भूत, इन्द्रिय और गुणों का समूह विराट उत्पन्न हुआ, उस विराट मे वर्तमान रह कर भी परमात्मा उसके बाहर अपना प्रकाश फैलाते है। जिस प्रकार, सूर्य अपनी किरणों के द्वारा सूर्य मडल से बाहर भी प्रकाश फैलाता है॥ २१ ॥ जिस समय में विराट् पुरुष—उस अन्तर्यामी परमात्मा के नाभिकमल से उत्पन्न हुआ था, उस समय यज्ञ करने की इच्छा रहने पर भी भगवान् के अगों के अतिरिक्त और किसी यज्ञ सामिग्री को नहीं जानता था। मतलब यह कि सब वस्तु, जब भगवान् के अंग मानी जाती हैं, तब यज्ञ और यज्ञ की सामग्रियाँ भी भगवान् के अग ही हुईं, फिर यज्ञों से भगवान् की आराधना क्यों की जाती है, इसी प्रश्न का उत्तर देने के लिये यह श्लोक कहा गया है ॥२२॥ मान्य उन यज्ञ की सामग्रियों मे पशु, वनस्पति, कुशा, यज्ञ करने की पवित्र-भूमि अनेक गुणों से युक्त वसन्त आदि समय, पात्र, औषधियाँ, घी, मधु आदि रस, लोहा, मिट्टी, जल, ऋचाएँ, यजु, साम के मत्र, चातुर्होत्र (होता आदि चार व्यक्तियों के द्वारा किये जाने योग्य कर्म) ज्योतिष्ठोम आदि नाम, स्वाहा, स्वधा आदि मंत्र, दक्षिणा, व्रत, देवताओं के पूजन के क्रम, यज्ञों के विधान की पद्धतियाँ, सकल्प, अनुष्ठान करने की रीति, देवताओं के ध्यान, विघ्नों का दूर करना, कर्म फल को भगवान् को अर्पित करना आदि सामग्रियाँ—उस पुरुप के अगों ही मे एकत्र कीं ॥ २३-२४-२५-२६ ॥ इस प्रकार पुरुष के अगों के यज्ञ सामिग्रियाँ एकत्र करके मैंने उन्हीं सामग्रियों से यज्ञ-पुरुप भगवान् के उद्देश्य यज्ञ किया ॥ २७ ॥ अनन्तर ये नव भाई मरीचि आदि, जो प्रजापति है, सावधान चित्त होकर उस पुरुप के लिए जो स्वय अव्यक्त होने पर भी इन्द्रादि रूप से व्यक्त है, यज्ञ किये ॥ २८ ॥ अनन्तर अपने समय मे मनु, ऋषि, पितर,

---

२१—यदास्यनाभ्यान्नलिनादहमासंमहात्मन.। नाविदयज्ञसभारान्पुरुपावयवादृते ॥

२२—तेपुयज्ञस्यपशव सवनस्पतयःकुशा । इदंचदेवयजनकालश्चोरुगुणान्वितः ॥

२३—वस्तून्योपधय.स्नेहारसलोहमृदोजल । ऋचोयजूंषिसामानिचातुर्होत्रचसत्तम ॥

२४—नामधेयानिमंत्राश्चदक्षिणाश्चव्रतानिच । देवतानुक्रम कल्प सकल्पस्तत्रमेवच ॥

२५—गतयोमतयश्चैवप्रायश्चित्तसमर्पणं । पुरुपावयवैरेतेसभारा.सभृतामया ॥

२६—इतिसभृतसभारःपुरुपावयवैरह । तमेवपुरुपयज्ञतेनैवायजमीश्वर ॥

२७—ततस्तेभ्रातरइमेप्रजानापतयोनव । अयजन्व्यक्तमव्यक्त.पुरुपसुसमाहिता. ॥

२८—ततश्चमनव कालेईजिरेऋषयोऽपरे । पितरोविबुधादैत्यामनुष्या क्रतुभिर्विभुं ॥

२९—नारायणेभगवतितदिदविश्वमाहित । गृहीतमायोरुगुणःसर्गादावगुणःस्वतः ॥

देवता, दैत्य और मनुष्यों ने यज्ञों से भगवान की आराधना की ।। २९ ।। जो भगवान् स्वयं निर्गुण हैं, सत्वादि गुणों के आधीन नहीं हैं, पर सृष्टि के आदि में प्रकृति के विशाल गुणों को धारण करते हैं। उस नारायण भगवान मे यह विश्व स्थित है ।। ३० ।। उनकी प्रेरणा से मैं विश्व की सृष्टि करता हूँ, उन्हींके अधीन रहकर शिव इसका संहार करते हैं और वे स्वयं विष्णु रूप से इसका पालन करते हैं, इस प्रकार वे तीन शक्तियों को धारण करते हैं ।। ३१ ।। वत्स ! जो तुमने पूछा था, वह सब मैंने बतलाया, कार्य-कारणात्मक सृष्टव्य जो कुछ भी है, वह सब भगवान से भिन्न नही है ।। ३२ ।। हे नारद ! मैंने अत्यधिक प्रेम युक्त हृदय से भगवान का ध्यान किया है, इस प्रकार मेरी वाणी किसी भी विषय मे झूठी नहीं होती, मेरे मन की बात अर्थात् मेरा संकल्प कभी व्यर्थ नहीं होता और मेरी इन्द्रियाँ कभी असत-मार्ग मे नहीं जातीं ।।३३।। मैंने वेदाभ्यास किया, तपस्या की, मैं प्रजापतियों का स्वामी हूँ और उनके द्वारा सत्कृत हूँ। मैंने सावधान होकर सांगयोग का अनुष्ठान किया, पर मैं उनको जान न सका, जिनसे मेरी उत्पत्ति हुई है ।। ३४ ।। शरणागतों के जन्म-मरण का कष्ट दूर करने वाले कल्याणकारी और भगवान के चरणों को मै नमस्कार करता हूँ। जो भगवान् स्वयं अपनी माया के विस्तार का पता नहीं पाते, जिस प्रकार आकाश अपना पता नहीं पाता, फिर दूसरे भगवान् की माया का पता कैसे पा सकते हैं ? ।। ३५ ।। जिस भगवान् के सत्य स्वरूप को मैं (अर्थात् ब्रह्मा) नहीं जानता हूँ, आप लोग तथा महादेव भी जिसके स्वरूप को नहीं जानते, फिर दूसरे देवता कैसे जान सकते हैं और तो क्या उस पुरुष की माया से मोहित होकर हमलोग उसके बनाए इस संसार को भी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार समझते हैं अर्थात् इसका यथार्थ रूप नहीं जानते ।। ३६ ।।

३०—सृजामितन्नियुक्तोऽहंहरोहरतितद्वशः । विश्वपुरुषरूपेणपरिपातित्रिशक्तिधृक् ।।

३१—इतितेऽभिहिततातयथेदमनुपृच्छसि । नान्यद्भगवतःकिंचिद्भाव्यसदसदात्मक ।।

३२—नभारतीमेंगमृषोपलक्ष्यतेनवैक्वचिन्मेमनसोमृषागतिः ।
नमेहृषीकाणिपतंत्यसत्पथेयन्मेहृदौत्कण्ठ्यवताधृतोहरिः ।।

३३—सोऽहंसमाम्नायमयस्तपोमयःप्रजापतीनामभिवंदितःपतिः ।
आस्थाययोगनिपुणसमाहितस्तनाध्यगच्छंयतआत्मसम्भवः ।।

३४—नतोस्म्यहंतच्चरणंसमीयुषांभवच्छिदंस्वस्त्ययनंसुमंगलं ।
योह्यात्ममायाविभवंस्मपर्यगाद्यथानभःस्वांतमथापरेकुतः ।।

३५—नाहंनयूयंयदृतांगतिंविदुर्नवामदेवःकिमुतापरेसुराः ।
तन्मायामोहितबुद्धयस्त्विदंविनिर्मितंचात्मसमंविचक्ष्महे ।।

३६—यस्यावतारकर्माणिगायन्तिह्यस्मदादयः । नयंविदंतितत्त्वेनतस्मैभगवतेनमः ।।

जिसके अवतार तथा चरित्रों का गान हमलोग करते हैं, परंतु जिसके यथार्थ स्वरूप को नहीं जानते, उस भगवान को नमस्कार है ॥ ३७ ॥ यह आज उत्पन्न नहीं, आदिपुरुष भगवान् अपने द्वारा अपने में स्थित होकर अपने से अपने को प्रत्येक कल्प में सृष्टि करते हैं, पालन करते हैं और संहार करते हैं ॥ ३८ ॥ भगवान का शुद्ध रूप कहा जाता है, वे सत्य ज्ञानमय हैं, विशुद्ध अर्थात् विषम ज्ञान शून्य प्रत्येक हृदय में संदेह रहित होकर स्थित हैं, पूर्ण हैं, आदि-अन्त-रहित हैं, गुण रहित हैं, अद्वैत हैं, उनके समान दूसरा नहीं है और नित्य हैं ॥ ३९ ॥ ऋषे ! मुनिगण जिस समय इन्द्रिय, शरीर और मन से प्रसन्न होते हैं, उस समय उस पुरुष को जानते हैं, जब भगवत् तत्व वेद विरोधी कुतर्कों से युक्त होता है, तब छिप जाता है, तब उसका ज्ञान नहीं होता ॥ ४० ॥ उस परम ब्रह्म का पहला अवतार पुरुष है, काल, स्वभाव, कार्य-कारणात्मिका प्रकृति, मन, महत्-तत्व, महाभूत, अहंकार सत्वादि गुण, इन्द्रिय, विराट् (ब्रह्मांड) स्वराट् स्थावर जंगम, मैं (ब्रह्मा) शिव, यज्ञ (विष्णु) ये प्रजापति, दक्ष आदि तथा आप लोग भक्त, लोकपाल, पशु, पक्षी, मनुष्य तथा पाताल के अधिपति ये भी भगवान के अवतार हैं ॥४१-४२॥ गंधर्व, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, उरग, नाग, ऋषि, पितर, दैत्य, सिद्ध, दानव, भूत, प्रेत, पिशाच, कुष्मांड, मृग, पशु, पक्षी, इनके भी स्वामी भगवान के अवतार हैं ॥ ४३ ॥ लोक में जो कुछ भगवान् के ज्ञान ऐश्वर्य से युक्त है, जो तेजोमय है, इन्द्रिय और मन की शक्ति से युक्त है, जो बलवान है, जो क्षमा युक्त है, शोभा, बुरे कामों के करने में लज्जा, सम्पत्ति, यथार्थ बुद्धि, विद्युतादि रूपवान पदार्थ तथा रूपहीन पदार्थ, ये सब भगवान के ही तत्व हैं, स्वरूप हैं ॥४४॥ माया-प्रधान भगवान् के अवतार बतलाए गए, आगे अध्याय में ज्ञान-प्रधान अवतार बतलाए

३७—सएषआद्य.पुरुषःकल्पेकल्पेसृजत्यजः । आत्मात्मन्यात्मनात्मानसयच्छतिचपातिच ॥

३८—विशुद्धंकेवलंज्ञानंप्रत्यक्सम्यगवस्थित । सत्यंपूर्णमनाद्यंतनिर्गुणंनित्यमद्वय ॥

३९—ऋषेविदंतिमुनय प्रशातात्मेंद्रियाशयाः । यदातदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेतविप्लुत ॥

४०—आद्योऽवतारःपुरुष.परस्यकालःस्वभावःसदसन्मनश्च ।

द्रव्यविकारोगुणइन्द्रियाणिविराट्स्वराट्स्थास्नुचरिष्णुभूम्न. ॥

४१—अहंभवोयज्ञइमेप्रजेशादक्षादयोयेभवदादयश्च ।

स्वर्लोकपालाःखगलोकपालान्नृलोकपालास्तललोकपाला. ॥

४२—गंधर्वविद्याधरचारणेशायेयक्षरक्षोरगनागनाथाः ।

येवाऋषीणामृषभाःपितृणादैत्येंद्रसिद्धेश्वरदानवेंद्रा ॥

अन्येचयेप्रेतपिशाचभूतकुष्माण्डयादोमृगपक्ष्यधीशाः ॥

४३—यत्किंचलोकेभगवन्महस्वदोजःसहस्वद्बलवत्क्षमावत् । श्रीह्रीविभूत्यात्मवदद्भुतार्णंतत्त्वंपररूपवदस्वरूप॥

जाएँगे। यह बात नीचे के श्लोक से बतलाई गई है। अर्थ! पुण्यपुरुष के जिन लीलावतारों का वर्णन ज्ञानी-पुरुष करते हैं, उन लीलावतारों को, जिनके सुनने से कानों के पाप दूर होते हैं, जो स्वभाव से सुन्दर है, उन सब का वर्णन मैं प्रारंभ करता हूँ। आप उसका पान करे, अर्थात् सुने ॥ ४५ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कंध का छठवाँ अध्याय समाप्त

सातवाँ अध्याय

भगवान् के विभिन्न अवतारों का वर्णन

ब्रह्मा बोले—अनन्त भगवान् ने जिस समय पृथ्वी का उद्धार करने के लिए, सब प्रकार के यज्ञों का मूल, सूकर का रूप धरकर प्रयत्न किया था, उस समय समुद्र में सामने आए आदि दैत्य हिरण्याक्ष को फाड़ डाला, जिस प्रकार इन्द्र वज्र से पर्वतों को फाड़ डालते हैं ॥ १ ॥ रुचि नामक प्रजापति से उनकी स्त्री आकूति के गर्भ से सुयज्ञ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसी सुयज्ञ ने दक्षिणा नामक स्त्री से देवताओं को उत्पन्न किया, जब उस सुयज्ञ ने देवताओं का बहुत बड़ा दुःख उठाया, तब स्वयंभुव मनु ने उनका नाम हरि रख दिया॥ २॥ कर्दम प्रजापति के यहां देवहूति के

४४—प्राधान्यतोयान्‌ऋषआमनविलीलावतारान्पुरुषस्यभूम्नः ।
आपीयतांकर्णकषायशोषाननुक्रमिष्येतइमान्सुपेशान् ॥

इ० मा० म० द्वितीयस्कंधेषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

——:o:——

ब्रह्मोवाच—

१—यत्रोद्यतःक्षितितलोद्धरणायबिभ्रत्क्रौडींतनुंसकलयज्ञमयीमनंतः ।
अंतर्महार्णवउपागतमादिदैत्यंतंदंष्ट्रयाद्रिमिववज्रधरोददार ॥

२—जातोरुचेरजनयत्सुयमान्सुयज्ञआकूतिसूनुरमरानथदक्षिणायां ।
लोकत्रयस्यमहतीमहरद्यदार्तिं स्वायंभुवेनमनुनाहरिरित्यनूक्तः ॥

गर्भ से नव बहिनों के साथ कपिल उत्पन्न हुए, जिन्होंने अपनी माता को आत्मतत्त्व का उपदेश दिया, जिस उपदेश के कारण आत्मा को मलिन करनेवाले आसक्तिरूप पंक को इस जन्म मे हटाकर, कपिल के बतलाये आत्मतत्व माता ने पाया, अर्थात् उन्हे ब्रह्म-ज्ञान हुआ ॥ ३ ॥ अत्रि, पुत्र चाहते थे, भगवान् ने प्रसन्न होकर उनसे कहा कि मैंने अपने को तुम्हें दिया, इस कारण वे भगवान् दत्तनाम से उत्पन्न हुए, जिनकी चरण-कमल की धूलि से पवित्र होकर यदु, हैहय आदि वंशियों ने इस लोक तथा परलोक मे समृद्धि पाई ॥ ४ ॥ विविधलोकों की सृष्टि करने की इच्छा से पहले मैंने जो तपस्या की थी, उसे भगवान् को अर्पित कर दिया था, उस अर्पण करने के कारण, वे भगवान् चार सत् नामवाले अर्थात् सनक,सनदन,सनत्कुमार और सनातन रूप मे उत्पन्न हुए, जिन्होंने पहली सृष्टि के नष्ट होने से उच्छिन्न आत्मतत्व को इस कल्प मे प्रकाशित किया और मुनियों ने उनके बतलाए आत्मतत्व को अपने मे देखा ॥ ५ ॥ धर्म की स्त्री और दक्ष की कन्या मूर्ति में नारायण और नर उत्पन्न हुए, जिनकी तपस्या का प्रभाव असाधारण था। कामदेव की सैनिक-स्त्रिया अपने द्वारा उनके व्रत का भंग न होते देखकर अपने प्रबल प्रण से विरत हो गई। नर-नारायण को मोहित करने के लिए स्त्रियों ने प्रयत्न किया, पर वे सफल न हो सकीं। क्योंकि इनका तप-प्रभाव असाधारण था ॥ ६ ॥ बुद्धिमान्, पुण्यात्मा, क्रोध की दृष्टि से काम को जला देते हैं, पर अपने को जलाने वाले क्रोध को जलाने मे वे भी समर्थ नहीं होते, अर्थात वे भी क्रोध को नहीं जीत सकते, वह क्रोध भी जिसके विमल अंत.करण मे प्रवेश करते डरता है, उनके मन मे काम कैसे प्रवेश कर सकता है, अर्थात् काम को जीतनेवाला क्रोध भी जिससे डरता है, उसके लिए काम क्या है ? ॥ ७ ॥ राजा उत्तानपाद के पास ही माता की सौत के वचन रूपी बाणों से विँध कर बालक होने पर भी जो ध्रुव तपस्या करने के लिए वन मे चले गए

३—जज्ञेचकर्दमगृहेद्विजदेवहूत्यांस्त्रीभिःसमनवभिरात्मगतिंस्वमात्रे ।
ऊचेययात्मशमलंगुणसंगपंकमस्मिन्विधूयकपिलस्यगतिंप्रपेदे ॥

४—अत्रेरपत्यमभिकाङ्क्षतआहतुष्टोदत्तोमयाहमितियद्भगवान्सदत्तः ।
यत्पादपंकजपरागपवित्रदेहायोगर्द्धिमापुरुभयींयदुहैहयाद्याः ॥

५—तप्तंतपोविविधलोकसिसृक्षयामेआदौसनात्स्वतपसःसचतुःसनोऽभूत् ।
प्राक्कल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वंसम्यग्जगादमुनयोयदचक्षतात्मन् ॥

६—धर्मस्यदक्षदुहितर्यजनिष्टमूर्त्यांनारायणोनरइतिस्वतपःप्रभावः ।
दृष्ट्वात्मनोभगवतोनियमावलोपंदेव्यस्त्वनंगपृतनाघटितुंनशेकुः ॥

७—कामंदहन्तिकृतिनोननुरोषदृष्ट्यारोषंदहन्तमुततेनदहन्त्यसह्यं ।
सोऽयंयदन्तरमलंनिविशन्बिभेतिकामःकथंनुपुनरस्यमनःश्रयेत ॥

और उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर उन्हे ध्रुव स्थान मिला, जिस स्थान की प्रशंसा देवता तथा ऊपर और नीचे रहनेवाले मुनि करते हैं ॥ ८ ॥ जिस समय ऋषियों ने प्रार्थना की, उस समय ब्राह्मणों के शापरूपी वज्र से, जिसने, उत्पन्न गामी वेन का पराक्रम और समृद्धि दोनों नष्ट हो गए थे, तथा वह नरक मे गिर रहा था, उसका उद्धार करके पुत्र नाम को जिसने सार्थक किया और पृथ्वी से सब रत्नों को दुहा ॥ ९ ॥ ये भगवान् नाभि से सुदेवी मे ऋशभ नाम से उत्पन्न हुए, जो समदृष्टि होकर जड के समान व्यवहार करते थे, ऋषि-गण उनको परमहस कहते हैं, वे स्वानंद मे मग्न रहते थे, उनकी इन्द्रियाँ शान्त थीं और सासारिक आसक्ति से रहित थे ॥ १० ॥ वे भगवान् मेरे यज्ञ मे हयग्रीव (घोड़े के मुँहवाले) रूप से उत्पन्न हुए, वे यज्ञ-पुरुष अग्नि के तुल्य थे । तपे सुवर्णतुल्य वर्ण के थे, वे वेद-स्वरूप और यज्ञ स्वरूप थे, नाक से साँस लेने के समय जो मनोहर शब्द हुए, वे वेद-वचन हुए ॥ ११ ॥ मत्स्यरूप धारी भगवान् को प्रलय काल मे मनु ने देखा था, वे पृथ्वी में थे अतएव समस्त प्राणियों के निवास-स्थान थे । प्रलय-काल मे बहुत बड़े रूप के उप्पन्न होने पर मेरे मुँह से निकले हुए वेदों को लेकर जिन्होंने जल मे विहार किया ॥ १२ ॥ देवता और दानवों के प्रधान अमृत के लिए जब क्षीर-समुद्र का मंथन कर रहे थे, उस समय निद्रा मे मग्न पर्वत के घूमने से जिनकी पीठ की खाज मिट गई थी, उन भगवान ने कच्छप का शरीर धारण करके अपनी पीठ पर पर्वत को धारण किया ॥ १३ ॥ स्वर्ग के देवताओं का सकट नष्ट करनेवाले भगवान् ने नृसिंह का रूप धारण किया । जिस नृसिंह का मुख, भृकुटी और दाढ़ के चलने से नितान्त भयानक दीखता था, उन्होंने गदा लेकर सामने आते हुए दैत्यराज हिरण्यकशिपु

८—विद्धःसपत्न्युदितपत्रिभिरतिराज्ञोबालोऽपिसन्नुपगतस्तपसेवनानि ।
तस्माअदाद्ध्रुवगतिंगृणतेप्रसन्नोदिव्याःस्तुवतिमुनयोयदुपर्यधस्तात् ॥

९—यद्वेनमुत्पथगतंद्विजवाक्यवज्रविप्लुष्टपौरुषभगंनिरयेपततम् ।
त्रात्वाऽर्थितोजगतिपुत्रपदंचलेभेदुग्धावसूनिवसुधासकलानियेन ॥

१०—नाभेरसावृषभआससुदेविसूनुर्योवैचचारसमदृक्जडयोगचर्याम् ।
यत्पारमहंस्यमृषय:पदमामनन्तिस्वस्थःप्रशान्तकरणःपरिमुक्तसंगः ॥

११—सत्रेममासभगवान्हयशीरषाऽथोसाक्षात्सयज्ञपुरुषस्तपनीयवर्णः ।
छंदोमयोमखमयोऽखिलदेवतात्मावाचोबभूवुरुशतीःश्वसतोऽस्यनस्तः ॥

१२—मत्स्योयुगांतसमयेमनुनोपलब्धःक्षोणीमयोनिखिलजीवनिकायकेतः ।
विस्रंसितानुरुभयेसलिलेमुखान्मेआदायतत्रविजहारहवेदमार्गान् ॥

१३—क्षीरोदधावमरदानवयूथपानामुन्मथ्नताममृतलब्धयआदिदेवः ।
पृष्ठेनकच्छपवपुर्विदधारगोत्रंनिद्राक्षणोऽद्रिपरिवर्तकषाणकण्डूः ॥

को अपने जघों पर पटक कर फाड़ डाला, जो उस समय छटपटा रहा था ॥ १४ ॥ गजराज के पैर बलवान मगर ने तालाब में पकड़ लिया, दुःखी होकर और सूँड में कमल लेकर उसने कहा था—हे आदिपुरुष ! हे अखिल लोक-नाथ ! हे तीर्थ-रूप (जिनके गुण श्रवण से पाप नष्ट होते हैं) हे श्रवण-मंगल नामधेय (जिनके नाम सुनने से मंगल होता है) ॥ १५ ॥ उस समय बलवान् भगवान् गजराज की पुकार सुनकर, चक्र लेकर, पक्षिराज गरुड पर चढ़कर वहाँ आए और शरणागत उस हाथी की सूँड पकड कर और चक्र से मगर का मुख फाड़कर उन्होंने उसका उद्धार किया ॥१६॥ जो अदिति-पुत्रों में, आदित्यों मे छोटे थे, पर गुणों मे उनसे बडे थे और यज्ञों के स्वामी थे, जिन्होंने इन लोकों को पैरों से नापा था और बलि से तीन पैर पृथ्वी के छल से जिन वामन ने समस्त पृथ्वी का आधिपत्य पाया था। इस याचना के अतिरिक्त धर्म-मार्ग मे वर्त्तमान वामन को कोई समर्थ भी नहीं डिगा सकता ॥ १७ ॥ वामन के चरण जल को मस्तक पर रखने वाले बलि के लिए देवताओं का राज्य कोई पुरुषार्थ नहीं है, कोई उद्देश्य नहीं है, अतएव उसने प्रतिज्ञा के अतिरिक्त और कुछ करना न चाहा, अर्थात शुक्र के रोकने पर भी वह न रुका और भगवान के तीसरे पैर की पूर्त्ति के लिए अपना सिर उसने समर्पित कर दिया ॥ १८ ॥ हे नारद ! स्नेह के अधिक बढ जाने से प्रसन्न होकर भगवान् ने तुमको योग बतलाया और आत्मा के यथार्थ तत्व को प्रकाशित करनेवाला भगवत्सम्बन्धी ज्ञान बतलाया, उस ज्ञान को भगवान् के भक्त ही जान सकते हैं, दूसरे नहीं ॥१९॥ मनु-वंश के पालक के रूप मे अवतीर्ण होकर अनेक प्रकार के चरित्रों से तीनों लोकों के ऊपर

१४—त्रैविष्टपोरुभयहासनृसिंहरूपंकृत्वाभ्रमद्भ्रुकुटिदंष्ट्रकरालवक्त्रम् ।
दैत्येन्द्रमाशुगदयाऽभिपत तमारादूरौनिपात्यविददारनखैःस्फुरत ॥

१५—अतःसरस्युरुबलेनपदेगृहीतोग्राहेणयूथपतिरम्बुजहस्तआर्त. ।
आहेदमादिपुरुषाखिललोकनाथतीर्थश्रवःश्रवणमंगलनामधेय ॥

१६—श्रुत्वाहरिस्तमरणार्थिनमप्रमेयश्चक्रायुधःपतगराजभुजाधिरूढः ।
चक्रेणनक्रवदनंविनिपाट्यतस्माद्धस्तेप्रगृह्यभगवान्कृपयोज्जहार ॥

१७—ज्यायान्गुणैरवरजोऽप्यदितेःसुतानांलोकान्विचक्रमइमान्यदथाधियज्ञः ।
क्ष्मांवामनेनजगृहेत्रिपदच्छलेनयाञ्चामृतेपथिचरन्प्रभुभिर्नचाल्यः ॥

१८—नार्थोबलेरयमुरुक्रमपादशौचमापःशिखाधृतवतोविबुधाधिपत्यम् ।
योवैप्रतिश्रुतमृतेनचिकीर्षदन्यदात्मानमंगशिरसाहरयेऽभिमेने ॥

१९—तुभ्यंचनारदभृशंभगवान्विवृद्धभावेनसाधुपरितुष्टउवाचयोगं ।
ज्ञानंचभागवतमात्मसतत्त्वदीपंयद्वासुदेवशरणाविदुरंजसैव ॥

सत्यलोक तक अपनी मनोहर कीर्ति का विस्तार किया और दसों दिशाओं में अप्रतिहत सुदर्शन-चक्र के समान तेज का धारण किया और उससे दुष्ट राजाओं को दंड दिया ॥ २० ॥ जो अपना नाम लेनेवाले अनेक रोग-युक्त जीवों के रोगों का शीघ्रही नाश करते हैं, जो स्वयं कीर्तिरूप हैं, उन भगवान धनवतरि ने अवतार लेकर प्राचीन समय में दैत्यों के द्वारा बन्द किये हुए यज्ञ भाग को पुनः प्राप्त किया और संसार मे आयुर्वेद का प्रचार किया ॥ २१ ॥ मानों नर का दुःख भोगने की इच्छा रखते हों, ऐसे, समस्त पृथ्वी के लिये कंटक रूप, निषिद्ध पथ पर चलनेवाले, ब्राह्मणों के द्वेषी तथा संसार का नाश करने के लिए दैव ने जिनका उत्थान किया है—ऐसे क्षत्रियों का, अत्यत पराक्रमी महात्मा परशुराम ने अपने तीखे और लंबे धारवाले फरसे से, इक्कीस बार नाश किया ॥ २२ ॥ हमारे ऊपर कृपा करने मे प्रसन्न तथा माया जिसके वस में है, ऐसे भगवान् रामचंद्र ने अपने कलारूप भरत आदि भाइयों के सदृश इक्ष्वाकु-वंश में अवतार लिया, पिता की आज्ञा से अपनी स्त्री सीता तथा भाई लक्ष्मण के साथ वे वन में गये, उनसे विरोध करके रावण मारा गया। जिस प्रकार शिव को त्रिपुर के जलाने की इच्छा हुई थी, उसी प्रकार जिसे शत्रु-पुर जलाने की इच्छा हुई थी—ऐसे रामचन्द्र से भय-भीत होकर, सीता के वियोग से बढ़े हुए क्रोध के कारण जिनकी आँखे लाल हो गई थीं, ऐसे रामचन्द्र की दृष्टि पड़ने से जिसके घड़ियाल, सर्प, तथा नाक आदि जल-जन्तु घबडा गए थे, ऐसे तथा भय से काँपते हुए समुद्र ने शीघ्र ही उन्हें मार्ग दिया ॥ २३, २४ ॥ रावण की छाती के स्पर्श से टूटे हुए इन्द्र-वाहन ऐरावत हाथी के दाँतों से प्रकाशित दिशाओं का पालन करनेवाले तथा अपनी सेना मे गर्व से विचरण करते हुए, रावण की हँसी को उसके

२०—चक्रंचदिक्ष्वविहतंदशसुस्वतेजोमन्वंतरेषुमनुवंशधरोबिभर्ति ।
दुष्टेषुराजसुदमंव्यदधात्स्वकीर्तिंसत्येत्रिपृष्ठउशतींप्रथयंश्चरित्रैः ॥

२१—धन्वंतरिश्चभगवान्स्वयमेवकीर्तिर्नाम्नानृणांपुरुरुजांरुजआशुहंति ।
यज्ञेचभागममृतायुरवावरुंधआयुष्यवेदमनुशास्त्यवतीर्यलोके ॥

२२—क्षत्रंक्षयायविधिनोपभृतंमहात्माब्रह्मध्रुगुज्झितपथंनरकार्तिलिप्सु ।
उद्धन्त्यसाववनिकण्टकमुग्रवीर्यस्त्रिःसप्तकृत्वउरुधारपरश्वधेन ॥

२३—अस्मत्प्रसादसुमुखःकलयाकलेशइक्ष्वाकुवंशअवतीर्यगुरोर्निदेशे ।
तिष्ठन्वनंसदयितानुजआविवेशयस्मिन्विरुध्यदशकंधरआर्तिमार्च्छत् ॥

२४—यस्माअदादुदधिरूढभयांगवेपोमार्गंसपद्यरिपुरंहरवद्दिधक्षोः ।
दूरेसुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्यातातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ॥

२५—वक्षःस्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाहदंतैर्विडंबितककुब्जुषऊढहासम् ।
सद्योऽसुभिःसहविनेष्यतिदारहर्तुर्विस्फूर्जितैर्धनुषउच्चरतोऽधिसैन्ये ॥

प्राणों के सहित श्रीरामचन्द्र क्षणभर में ही हरण कर लेंगे ॥ २५ ॥ दैत्यों की सेना के भार से पीड़ित पृथ्वी का दु ख मिटाने के लिए, भगवान् जिनके सुन्दर और काले केश हैं तथा जिनके ऐश्वर्य को लोग समझ नहीं सके थे, ऐसे भगवान् अपने अंश बलदेव के सहित कृष्ण रूप से अवतार लेकर अपने प्रभाव की सूचना देनेवाले कर्म करेंगे ॥ २६ ॥ जो बालक था, उसी समय जिसने उलूकिका, पूतना राक्षसी का प्राण लिया और तीन महीने की अवस्था में जिसने पैरों से गाड़ी उलट दी और घुटनों से चलते-चलते आकाश तक ऊँचे अर्जुन वृक्षों के बीच मे आकर जिसने उन्हें उखाड दिया, ये तीन काम किसी दूसरे प्रकार से सम्भव नहीं हैं, अर्थात् बिना भगवान् हुए उनसे ये काम नहीं हो सकते थे ॥ २७ ॥ और वृज में वृज-पशुओं के रक्षकों को जिन्होंने विष मिश्रित जल पी लिया था, उन्हें जिसने कृपा-दृष्टि के द्वारा जीवित किया तथा यमुना में विहार करते हुए उसकी शुद्धि के लिए अर्थात् उसमें का विष दूर करने के लिए भयकर विष के प्रभाव से चचल जीववाले सर्प को जिन्होंने निकाला, यह भी उनके भगवान् होने के बिना सभव नहीं था ॥ २८ ॥ जिनके पराक्रम का पता नहीं, वे श्रीकृष्ण बलदेव के साथ वृज का उद्धार करेंगे और गर्मी के दिनों सूखे और वनाग्नि से जलते वन के बीच में निश्चेष्ट होकर सोते हुए अतएव जिसका विनाश काल उपस्थित हो गया था, उस वृज को अर्थात् वहाँ के वासियों की आँखें बद करके उनकी रक्षा की थी। उनके ये दोनों कर्म अलौकिक है और बिना भगवान् हुए ये कर्म नहीं हो सकते थे ॥ २९ ॥ माता यशोदा श्रीकृष्ण को बाँधने के लिए जो रस्सी लेती है, वह इसके नहीं अटती, अर्थात् चाहे जितनी बडी रस्सी होती, उससे ये बडा हो जाता था और जम्हाई के समय पुत्र के मुख में चौदह भुवनों को देखकर यशोदा पहले शकित हो गईं, पुन· उसको ज्ञान हुआ, यह भी उनका दिव्य कर्म है ॥ ३० ॥ भय से अर्थात् सुदर्शन नामक साँप के भय से तथा वरुण के

२६—भूमेःसुरेतरवरूथविमर्दितायाःक्लेशव्ययायकलयासितकृष्णकेशः ।
जात·करिष्यतिजनानुपलक्ष्यमार्गःकर्माणिचात्ममहिमोपनिबधनानि ॥

२७—तोकेनजीवहरणयदुलूकिकायास्त्रैमासिकस्य चपदाशकटोऽपवृत्तः ।
यद्रिंखताऽतरगतेनदिविस्पृशोर्वाउन्मूलनत्वितरथाऽर्जुनयोर्नभाव्य ॥

२८—यद्वैव्रजेव्रजपशून्विषतोयपीतान्पालास्त्वजीवयदनुग्रहदृष्टिवृष्टया ।
तच्छुद्धयेऽतिविषवीर्यविलोलजिह्वमुच्चाटयिष्यदुरगविहरन्हृदिन्यां ॥

२९—तत्कर्मदिव्यमिवयन्निशिनि शयानदावाग्निनाशुचिवनेपरिदह्यमाने ।
उन्नेष्यतिव्रजमतोऽवसितातकालनेत्रे पिधाप्यसबलोऽनधिगम्यवीर्यः ॥

३०—गृह्णीतयद्यदुपबधममुष्यमाताशुल्बसुतस्यनतुतत्तदमुष्यमाति ।
यज्जृंभतोऽस्यवदनेभुवनानिगोपीसवीक्ष्यशकितमनाःप्रतिबोधिताऽसीत् ॥

पास से जो अपने पिता नंद की रक्षा करेंगे और मय के पुत्र के द्वारा पर्वत की गुहा मे छिपाए गोप-बालकों का जो उद्धार करेंगे, दिन में काम से थक कर, अतएव बहुत अधिक थक कर रात में सोनेवाले गोकुल वासियों को वैकुंठ लोक मे ले जायँगे। यह भी उनका दिव्य कर्म होगा ॥ ३१ ॥ गोपों ने जब इन्द्र-यज्ञ रोक दिया, तब इन्द्र व्रज के नाश के लिये पानी बरसाने लगे। उस समय पशुओं की रक्षा करने के लिए सात वर्ष के जिस बालक ने एक हाथपर अनायास सात दिनोंतक गोवर्धन पर्वत को छाते के समान धारण किया, यह भी उसका दिव्य कर्म होगा ॥३२॥ चंद्रमा की किरणों से सफेद रात्रि मे वन में क्रीड़ा करते हुए जो रास के लिए उद्यत हुए थे और मधुर पद तथा ऊँचे स्वरवाले गीतों से व्रजांगनाओं का काम-रोग बढ़ाएँगे, उन व्रजांगनाओं का हरण-करनेवाले वरुण के पुत्र शंखचूड का सिर जो काटेंगे ॥ ३३ ॥ प्रलम्ब, खर, चक, केशी, अरिष्ट, मल्ल, कुवलयापीड़, कंस, कालयवन, नाकासुर, पौंड्रक तथा दूसरे साल्व, द्विविद, बल्वल, दंतवक्र, शम्बर, विदूरथ, रूक्मी आदि जो धनुष धारण करनेवाले और युद्ध में शोभित होनेवाले काम्बोज, कुरु, कैकय, मत्स्य, सृंजय आदि देशों के राजाओं को अर्जुन और भीम के कपट नाम से (श्रीकृष्ण ने) मारा और वे सब श्रीकृष्ण के लोक में गए ॥ ३४, ३५ ॥ काल के कारण जिनकी बुद्धि संकुचित हो गई है, जिनकी आयु थोड़ी है और समस्त वेदों का ज्ञान प्राप्त करना जिनके लिये कठिन है—ऐसा निश्चय करके सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न होकर वे ही भगवान् प्रत्येक युग के अनुरूप वेद-वृक्ष का शाखा-भेद से विभाग करेंगे ॥ ३६ ॥ मय की बनाई अदृश्य नगरियों के द्वारा लोकों के नाश करनेवाले वैदिकमार्ग

३१—नदचमोक्ष्यतिमयाद्वरुणस्यपाशाद्गोपान्बिलेपुपिहितान्मयसुनुनाच ।
आह्नथापृतनिशिशयानमतिश्रमेणलोकेविकुंठउपनेष्यतिगोकुलस्म ॥

३२—गोपैर्मखेप्रतिहतेव्रजविप्लवायदेवेऽभिवर्षतिपशून्कृपयारिरक्षुः ।
धर्तोच्छिलींध्रमिवसप्तदिनानिसप्तवर्षोमहीध्रमनघैककरेसलीलम् ॥

३३—क्रीडन्वनेनिशिनिशाकररश्मिगौर्यांरासोन्मुखःकलपदायतमूर्च्छितेन ।
उद्दीपितस्मररुजांव्रजभृद्वधूनांहर्तुर्हरिष्यतिशिरोधनदानुगस्य ॥

३४—येचप्रलम्बखरदर्दुरकेश्यरिष्टमल्लेभकंसयवनाःकुजपौंड्रकाद्याः ।
अन्येचशाल्वकपिबल्वलदन्तवक्रसप्तोक्षशम्बरविदूरथरुक्मिमुख्याः ॥

३५—येवामृधेसमितिशालिनआत्तचापाःकाम्बोजमत्स्यकुरुकैकयसृंजयाद्याः ।
यास्यन्त्यदर्शनमलंबलपार्थभीमव्याजाह्वयेनहरिणानिलयंतदीयम् ॥

३६—कालेनमीलितधियामवमृश्यनॄणांस्तोकायुषांस्वनिगमोबतदूरपारः ।
आविर्हितस्त्वनुयुगंसहिसत्यवत्यांवेदद्रुमंविटपशोविभजिष्यतिस्म ॥

मे वर्तमान दानवों के बुद्धि-विपर्यय और उनकी प्रलोभित करने के लिये रूप धारण करके जिन्होंने बहुत-सी उपधर्म की बाते कहीं, अर्थात् पाखंड-धर्म चलाया ॥ ३७ ॥ जिस समय सज्जनों के घर में भगवान की कथा न होती हो, जिस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, पाखंडी हो जायँगे, शूद्र राजा हो जायँगे और जिस समय त्रिवर्ण के घरों मे, स्वाहा, स्वधा, वषट्-ये शब्द सुनाई न पड़ेगे, उस समय कलियुग के अंत मे भगवान कलि के शासक कल्कि-रूप धारण करेंगे ॥ ३८ ॥ अनत शक्तिमान् भगवान् की सृष्टि में तप, ब्रह्मा, मरीचि आदि नव ऋषि और दक्ष आदि प्रजापति ये भगवान की माया के बनाए विभूति है और सृष्टि के पालन के लिए धर्म, विष्णु, मनु, देवता और राजा ये माया की विभूति हैं तथा जगत के सहार के लिए अधर्म, रुद्र, सर्प, राक्षस, भूत-प्रेतादि ये माया की विभूति है ॥ ३९ ॥ संसार के बुद्धिमान मनुष्यों ने पृथ्वी के परमाणुओं तक की गणना कर ली है, उनमे कितने ऐसे हैं जो विष्णु के पराक्रमों की गणना कर सके ! जिस विष्णु ने सत्यलोक को रोक कर स्थिर किया है,जब कि तीन पैर पृथ्वी नापने के समय उनके चरणों के वेग से प्रधान (सत्व, रज, तम की साम्यावस्था से) समस्त लोक और पदार्थ वड़े वेग से काँप रहे थे । उनको यथास्थान स्थिर रखने के लिए उन्होंने सत्यलोक धारण किया, उसे स्थिर रखा ॥ ४० ॥ परमपुरुष भगवान के माया-बल का अन्त यथार्थ रूप मैं (ब्रह्मा) नहीं जानता हूँ । तुम्हारे (नारद) ये बड़े मुनि भी उसका अत नहीं जानते, फिर दूसरे कैसे जान सकते हैं, हजार मुँह वाले आदिदेव शेष भी जिन के गुणों को गाते-गाते आज तक उसका पार नहीं पा सके हैं ॥ ४१ ॥ अनत भगवान् जिस पर दया करे, वही सर्वात्मना उनके चरणों का अकपट रूप से आश्रय करने वाला ही,उस

३७—देवद्विषानिगमवर्त्मनिनिष्ठितानापूर्भिर्मयेनविहिताभिरदृश्यतूर्भिः ।
लोकान्घ्नतामतिविमोहमतिप्रलोभवेषविधायबहुभाष्यतऔपधर्म्यम् ॥

३८—यर्ह्यालयेष्वपिसतानहरेःकथाःस्युःपाखडिनोद्विजजनावृषलानृदेवाः ।
स्वाहास्वधावषडितिस्मगिरोनयत्रशास्ताभविष्यतिकलेर्भगवान्युगाते ॥

३९—सर्गेतपोहमृषयोनवयेप्रजेशाःस्थानेचधर्ममखमन्वमरावनीशाः ।
अतेत्वधर्महरमन्युवशासुराद्यामायाविभूतयइमाःपुरुशक्तिभाजः ॥

४०—विष्णोर्नुवीर्यगणनांकतमोऽर्हतीहयःपार्थिवान्यपिकविर्विममेरजांसि ।
चस्कम्भयःस्वरहसास्खलतात्रिपृष्ठयस्मात्त्रिसाम्यसदनादुरुकम्पयानम् ॥

४१—नातविदाम्यहममीमुनयोऽग्रजास्तेमायाबलस्यपुरुषस्यकुतोऽपरेये ।
गायन्गुणान्दशशताननआदिदेवःशेषोऽधुनापिसमवस्यतिनास्यपारम् ॥

४२—येषांसएवभगवान्दययेदनंतःसर्वात्मनाऽश्रितपदोयदिनिर्व्यलीकम् ।
तेदुस्तरामतितरंतिचदेवमायानैषांममाहमितिधीःश्वसृगालभक्ष्ये ॥

अत्यन्त दुस्तर देव-माया का पार पा सकता है। कुत्ते और शृगाल के भोजन इस शरीर में उनकी आत्मीय बुद्धि नहीं होती ॥ ४२ ॥ नारद ! मैं, आप लोग भगवान् से शिव, दैत्य-श्रेष्ठ प्रह्लाद, मनु और सतरूपा और उनके पुत्र, प्राचीन वर्हि, ऋपु, वेन के पिता अंग और ध्रुव—ये सब देव-माया को उन्हींकी कृपा से थोड़ा-बहुत जानते हैं ॥ ४३ ॥ इक्ष्वाकु, ऐल, मुचकुंद, विदेह, गाधि, रघु, अम्बरीष, सगर-पुत्र, गय, नहुष, मांधाता, अलर्क, सतधनु, अनु, रन्तिदेव, देवव्रत, वलि, अमूर्तरय, दिलीप, सौभरी, उतंग, शिवि, देवल, पिप्पलादि, सारस्वत, उद्धव, पराशर, भूरिषेण तथा और विभीषण, हनूमान, उपेंद्र, दत्त, पार्थ, अष्टिषेण, विदुर और श्रुतदेव—ये लोग भी भगवान की माया को उनकी कृपा से ही जानते हैं ॥ ४४-४५ ॥ स्त्री, शूद्र, हूण, शवर तथा अन्य पाप-योनि के जीव भी जो अद्भुत चरण-न्यास करने वाले भगवान् के भक्तों की शिक्षा के अनुसार चलते है और जो पशु-योनि में उत्पन्न हुए हैं, वे भी भगवान् की कृपा से माया को जानते हैं तथा उसको वश मे कर सकते है। फिर भगवान का ध्यान करने वाले योग्य उनकी कृपा से उनकी माया को जानें और उनको वश में करे—इसमे आश्चर्य ही क्या है ?॥४६॥ मुनि-गण जिसे ब्रह्म कहते हैं, वही परमपुरुष भगवान का स्वरूप है, जो नित्य सुख स्वरूप, तथा शोकहीन हैं, वे सदा शांत, अभय, केवल ज्ञानमय शुद्ध, भेद शून्य, कार्य और कारण से रहित और आत्मतत्त्व स्वरूप है, अर्थात् ज्ञाता के स्वरूप से भिन्न नहीं हैं और वे शब्द के द्वारा प्रकाशित नहीं किए जा सकते और जिनमे कारणों के द्वारा उत्पन्न होनेवाले विकार आदि नहीं होते और जिनके सामने पड़ने से माया लज्जित होकर दूर हट जाती है। ऐसे भगवान् मे मन को निश्चय करके जातियों ने भेद-बुद्धि दूर करने के साधनों का त्याग किया, क्योंकि अब उसकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती, जिस प्रकार वृष्टि के स्वामी इन्द्र कूँआ खोदने के

४३—वेदाहमंगपरमस्यहियोगमायायूयमवश्चभगवानथदैत्यवर्यः ।
पत्नीमनो.सचमनुश्चतदात्मजाश्चप्राचीनबर्हिऋभुरगउतध्रुवश्च ॥

४४—इक्ष्वाकुरैलमुचुकुंदविदेहगाधीरघ्वंबरीषसगरागयनाहुषाद्याः ।
मांधात्रलर्कशतधन्वनुरतिदेवदेवव्रतोबलिरमूर्तरयोदिलीपः ॥

४५—सौभर्युतंकशिबिदेवलपिप्पलादसारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः ।
येऽन्येविभीषणहनूमदुपेंद्रदत्तपार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः ॥

४६—तेवैविदंत्यतितरंतिचदेवमायांस्त्रीशूद्रहूणशबराअपिपापजीवाः ।
यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षास्तिर्यग्जनाअपिकिमुश्रुतधारणाये ॥

४७—शश्वत्प्रशांतमभयं प्रतिबोधमात्रं शुद्धं समंसदसत.परमात्मतत्त्वं ।
शब्दोनयत्रपुरुकारकवान्क्रियाऽर्थोमायापरैत्यभिमुखेचविलज्जमाना ॥

साधनों का संग्रह नहीं करते ॥ ४७-४८ ॥ वे कल्याणों के दाता हैं, क्योंकि ब्राह्मण आदि के स्वभाव शम, दम आदि के द्वारा किए पुण्य-कर्मों के वे प्रवर्तक है, ऐसी प्रसिद्धि है। अपने अवयवों के नष्ट होने से शरीर का नाश होने पर भी उसमें वर्तमान अजन्मा पुरुष का नाश नही होता, जिस प्रकार पदार्थों मे वर्तमान आकाश उनके नाश होने पर भी नाश नहीं होता ॥४९॥ वत्स ! इस प्रकार विश्वभावन भगवान का वर्णन संक्षेप मे मैंने तुमसे किया, कार्य और कारण जो कुछ हैं, वह भगवान् से भिन्न नहीं हैं ॥ ५० ॥ यह जो भागवत है, जो मुझसे भगवान् ने कहा है, वह उनकी विभूतियों तथा चरित्रों का संग्रह है, तुम इसका विस्तार करो ॥५१॥ जिससे भगवान् में, अखिल विश्व के आधार सर्वात्मा भगवान मे, मनुष्यों की भक्ति हो, ऐसा निश्चय करके तुम इन विभूतियों का वर्णन करो ॥ ५२ ॥ इस प्रकार जो भगवान की माया का वर्णन प्रतिदिन करते हैं, श्रद्धा पूर्वक सुनते हैं और सुनकर प्रसन्न होते है, वे माया के द्वारा मोहित नहीं होते ॥ ५३ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कंध का सातवाँ अध्याय समाप्त

४८—तद्वै पदं भगवतःपरमस्य पुंसो ब्रह्मेतियद्विदुरजस्रसुखंविशोकम् ।
सध्र्यङ् नियम्ययतयोयमकर्त हेतिं जह्युः स्वराडिवनिपानखनित्रमिन्द्रः ॥

४९—स श्रेयसामपिविभुर्भगवान्यतोऽस्यभावस्वभावविहितस्यसतःप्रसिद्धिः ।
देहेस्वधातुविगमेनुऽविशीर्यमाणेव्योमेवतत्रपुरुषोनविशीर्यतेऽजः ॥

५०—सोऽयंतेभिहितस्तातभगवान्विश्वभावनः । समासेनहरेर्नान्यदन्यस्मात्सदसच्चयत् ॥

५१—इदंभागवतंनामयन्मेभगवतोदितं । संग्रहोऽयंविभूतीनांत्वमेतद्विपुलीकुरु ॥

५२—यथाहरौभगवतिनृणांभक्तिर्भविष्यति । सर्वात्मन्यखिलाधारेइतिसंकल्प्यवर्णय ॥

५३—मायांवर्णयतोऽमुष्यईश्वरस्यानुमोदतः । शृण्वतःश्रद्धयानित्यंमाययात्मानमुह्यति ॥

इ० भा० म० द्वितीयस्कंधेब्रह्मनारदसंवादेसप्तमोऽध्यायः ॥७॥

आठवाँ अध्याय

देह के साथ आत्मा का संबंध तथा अन्य प्रश्न

राजा बोले—गुणातीत भगवान् के गुणों का वर्णन करने के लिए ब्रह्मा के द्वारा प्रेरित होकर देव-तुल्य नारद ने जिस-जिस पूछने वाले से उसका वर्णन किया है, वह सब मैं सुनना चाहता हूँ। आप वेद-वेत्ताओं मे गुणी हैं, लोकों के कल्याण करनेवाली, भगवान के अद्भुत चरित्र की कथा, आप जानते हैं ॥ १-२ ॥ हे महाभाग ! आप कहें, जिससे अखिल आत्मा भगवान् मे आसक्ति-हीन, अपने मन को लगा कर मै शरीर-त्याग करूँ ॥ ३ ॥ जो भगवान् के चरित्रों को श्रद्धा पूर्वक सुनता है, सदा कीर्तन करता है, बहुत थोड़े ही समय में भगवान् उसके हृदय मे प्रवेश करते हैं ॥ ४ ॥ अपने भक्तों के कान के द्वारा हृदय-कमल में प्रवेश करके कृष्ण सभी प्रकार के मलों को नष्ट करते हैं, जिस प्रकार शरद्‌ऋतु जल के मल को दूर करती है ॥ ५ ॥ जो निष्पाप हैं, जिनके राग-द्वेष आदि क्लेश दूर हो गए हैं, वे पुरुष, भगवान कृष्ण के चरणों का त्याग नही करते, जिस प्रकार पथिक प्रवास से लौट कर अपना घर नहीं छोड़ता ॥ ६ ॥ यह आत्मा महाभूतों से उत्पन्न नहीं—यह अलौकिक है। फिर इसके लिए शरीर का निर्माण महाभूतों से क्यों होता है, यह ऐसा बिना कारण के होता है, कर्मादि कारणों से होता है, या जैसा आप जानते हों, वह कहे ॥ ७ ॥ जिसकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ था, जो कमल, लोकों का रचनारूप है, अर्थात् जिसमें लोक वर्तमान हैं, वे ईश्वर परिमित अंगों से युक्त हैं, उनके अंग भी वैसे ही है, जैसे इस साधारण पुरुष के, उनके अंगों की भी वैसीही रचना हुई है और वे भी साधारण लोगों के अंगों के समान ही हैं ॥ ८ ॥ जीव और ब्रह्म का

राजोवाच—

१—ब्रह्मणाचोदितोब्रह्मन्गुणाख्यानेगुणस्यच । यस्मैयस्मैयथाप्राहनारदोदेवदर्शनः ॥

२—एतद्वेदितुमिच्छामितत्त्वंवेदविदांवर । हरेरद्भुतवीर्यस्यकथालोकसुमंगलाः ॥

३—कथयस्वमहाभागयथाऽहमखिलात्मनि । कृष्णेनिवेश्यनिःसंगंमनस्त्यक्ष्येकलेवरं ॥

४—शृण्वतःश्रद्धयानित्यंगृणतश्चस्वचेष्टितं ।कालेननातिदीर्घेणभगवान्विशतेहृदि ॥

५—प्रविष्टःकर्णरंध्रेणस्वानांभावसरोरुहं । धुनोतिशमलंकृष्णःसलिलस्ययथाशरत् ॥

६—धौतात्मापुरुषःकृष्णपादमूलंनमुंचति । मुक्तसर्वपरिक्लेशःपान्थःस्वशरणंयथा ॥

७—यदधातुमतोब्रह्मन्देहारंभोऽस्यधातुभिः । यदृच्छयाहेतुनावामवंतोजानतेयथा ॥

८—आसीद्यदुदरात्पद्मंलोकसंस्थानलक्षणं । यावानयंवैपुरुषइयत्तावयवैःपृथक् ॥

तावानसाविति प्रोक्तःसंस्थावयववानिव ॥

भेद आगे के श्लोक से बतलाया जाता है। प्राणियों की आत्मा अर्थात् प्रेरक-ब्रह्म, जिसके नाभि-कमल से उत्पन्न हुए हैं और जिनके अनुग्रह से उनका रूप उन्होंने देखा है और उनके अनुग्रह से ही वे सृष्टि की रचना करते हैं ॥ ९ ॥ विश्व की स्थिति, उत्पत्ति, और नाश-कार्य जिससे होते हैं, वे माया के स्वामी अन्तर्यामी माया का त्याग करके जिस रूप मे वर्तमान रहते हैं, वह आप कहे ॥१०॥ लोक और लोकपालों की कल्पना मनुष्य के अवयवों के साथ पहले की गई है और लोक और लोकपालों के द्वारा इन भगवान के अवयवों की कल्पना की गई है, ऐसा हमने सुना है ॥ ११ ॥ जिस प्रकार महान् कल्प और अप्रधान कल्प की कल्पना की गई है, भूत, भावी, और वर्तमान शब्द से बोधित होनेवाले काल का जिस प्रकार अनुमान किया जाता है और स्थूल शरीराभिमानी आदि की आयु का जो प्रमाण है, वह आप कहें ॥ १२ ॥ काल की प्रवृत्ति छोटी या बड़ी जो लक्षित होती है और वे कर्म की गति अर्थात् कर्म के द्वारा प्राप्त होने वाले स्थान जितने तथा जैसे हैं, वे ब्राह्मण-श्रेष्ठ ! आप मुझे बतलावे ॥ १३ ॥ सत्व आदि गुणों का परिणाम देवादि-रूप मे उत्पत्ति चाहनेवाले जीवों में जिस प्रकार के अधिकारी के लिए, जिस प्रकार के परिणाम में, पाप-पुण्य आदि कर्मों का समूह जिस प्रकार उपयोग में लाया जाता है, वह आप कहे, अर्थात् किस काम के करने से कौन अधिकारी, देवता आदि का रूप प्राप्त करता है ॥ १४ ॥ पृथ्वी, पाताल, दिशाएँ, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, इनकी तथा इनमे रहने वालों की उत्पत्ति जिस प्रकार होती है, वह आप मुझसे कहें ! ॥ १५ ॥

ब्रह्मांड के बाहर और भीतर का परिमाण कितना है, यह आप कहे, महान पुरुषों के चरित, वर्ण तथा आश्रम के धर्म भगवान के अत्यत आश्चर्य-जनक अवतारों की कथा, युग तथा युग का परिमाण और प्रत्येक युग का भिन्न-भिन्न धर्म आप कहे ॥ १६-१७ ॥ मनुष्यों के साधा-

---

९—अजःसृजतिभूतानिभूतात्मायदनुग्रहात् । ददृशेयेनतद्रूपनाभिपद्मसमुद्भव. ॥

१०—सचापियत्रपुरुषोविश्वस्थित्युद्भवाप्ययः । मुक्त्वात्ममायांमायेशःशेतेसर्वगुहाशयः ॥

११—पुरुषावयवैर्लोका'सपालाःपूर्वकल्पिता' । लोकैरमुष्यावयवाःसपालैरितिशुश्रुम ॥

१२—यावान्कल्पोविकल्पोवायथाकालोऽनुमीयते । भूतभव्यभवच्छब्दआयुर्मानंचयत्सत. ॥

१३—कालस्यानुगतिर्यातुलक्ष्यतेऽण्वीबृहत्यपि । यावत्यःकर्मगतयोयादृशीर्द्विजसत्तम ॥

१४—यस्मिन्कर्मसमावायोयथायेनोपगृह्यते । गुणानांगुणिनाचैवपरिणाममभीप्सतां ॥

१५—भूपातालककुब्व्योमग्रहनक्षत्रभूभृता । सरित्समुद्रद्वीपानासंभवश्चैतदोकसां ॥

१६—प्रमाणमण्डकोशस्यबाह्याभ्यंतरभेदत. । महतांचानुचरितंवर्णाश्रमविनिश्चय. ॥

१७—अवतारानुचरितंयदाश्चर्यतमंहरे. । युगानियुगमानंचधर्मोयश्चयुगेयुगे ॥

रण और विशेष धर्म जो हों, वे आप कहे, भिन्न-भिन्न व्यवसाय वालों, राजर्षियों और आपत्ति मे जीवित रहने वाले समस्त प्राणियों का धर्म जो हो, वह आप कहें ॥ १८ ॥ प्रकृति आदि समस्त तत्वों की संख्या, उनके लक्षण तथा कार्य के हेतु से उनके लक्षण, देवताओं के पूजन करने की विधि और आठ अंगों वाले अध्यात्म-योग की विधि आप कहे ॥ १९ ॥ योगेश्वरों की अणिमा आदि सिद्धियों से अर्चीरादि मार्गों मे गति और योगियों के लिंग-शरीर का प्रलय, यह सब जैसा हो, आप कहें। ऋग्वेद आदि वेद, आयुर्वेद आदि उपवेद, और धर्म-शास्त्र तथा इतिहास-पुराण आदि की गति जैसी हो, वह आप कहे ॥ २० ॥ प्राणिमात्र की उत्पत्ति, स्थिति और लय, वैदिक कर्म, स्मार्त कर्म और अग्निहोत्रादि, काम्य कर्म तथा धर्म और काम की जो विधि हो, वह आप कहे ॥ २१ ॥ लीन, उपाधि जीवों की सृष्टि जिस प्रकार होती हो, वह कहें, पाखंड की उत्पत्ति कहे, आत्मा के बंध-मोक्ष और उसकी वास्तविक स्थिति को कहे ॥ २२ ॥ स्वतंत्र भगवान् जिस प्रकार अपनी माया से क्रीडा करते हैं और पुनः माया का त्याग करके जिस प्रकार साक्षी के समान रहते है, वह आप कहे ॥ २३ ॥ भगवन्! मैं आप से पूछता हूँ और आपकी शरण आया हूँ, अत. महामुने! आप इस विषय को क्रमशः विस्तार पूर्वक यथावत मुझसे कहे ॥ २४ ॥ परमेष्ठी ब्रह्मा के समान इस विषय में आप प्रमाण हैं, क्योंकि प्राचीन समय मे पूर्वजों के द्वारा किए हुए कार्यो का ही अनुसरण लोग करते हैं ॥ २५ ॥ ब्रह्मन्! मै भगवान् अच्युत की कथारूपी अमृत का पयान करता हूँ, अतः क्रुद्ध हुए ब्राह्मण अथवा अनशन से भी मेरे ये प्राण व्याकुल नहीं होते तथा भगवान की कथा के अतिरिक्त दूसरी ओर नहीं जाते ॥ २६ ॥ सूत बोले—इस प्रकार सभा मे राजा परीक्षित का कथा-विषयक प्रश्न सुनकर शुकदेव बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने उस सभा मे भागवत पुराण कहा, जिससे सृष्टि के

१८—नृणांसाधारणोधर्मःसविशेषश्चयादृशः। श्रेणीनाराजर्षीणांचधर्मःकृच्छ्रेषुजीवता ॥

१९—तत्वानांपरिसंख्यानंलक्षणंहेतुलक्षणं। पुरुषाराधनविधियोगस्याध्यात्मिकस्यच ॥

२०—योगेश्वरैश्वर्यगतिर्लिंगभंगस्तुयोगिना। वेदोपवेदधर्माणामितिहासपुराणयोः ॥

२१—सप्लवःसर्वभूतानांविक्रमःप्रतिसक्रम.। इष्टापूर्तस्यकाम्यानांत्रिवर्गस्यचयोविधिः ॥

२२—यश्चानुशायिनासर्गःपाखडस्यचसभव। आत्मनोबधमोक्षौचव्यवस्थानस्वरूपत. ॥

२३—यथाऽऽत्मतन्त्रोभगवान्विक्रीडत्यात्ममायया। विसृज्यवायथामायामुदास्तेसाक्षिवद्विभुः

२४—सर्वमेतच्चभगवन्पृच्छतेमेऽनुपूर्वशः। तत्वतोऽर्हस्युदाहर्तुंप्रपन्नायमहामुने ॥

२५—अत्रप्रमाणंभगवान्परमेष्ठीयथात्मभूः। परेचेहानुतिष्ठंतिपूर्वेपापूर्वजे.कृतं ॥

२६—नमेऽसवःपरायतिब्रह्मन्ननशनादमी। पिबतोऽच्युतपीयूषमन्यत्रकुपितद्विजात् ॥

सूतउवाच—

२७—सउपामंत्रितोराज्ञाकथायामितिसत्पते.। ब्रह्मरातोभृशंप्रीतोविष्णुरातेनसंसदि ॥

प्रारंभ में भगवान् ने ब्रह्मा से कहा था ॥ २७, २८ ॥ पांडुवशी श्रेष्ठराजा परीक्षित ने जो प्रश्न किए थे, शुकदेव वह सब क्रम से कहने के लिए उद्यत हुए ॥ २९ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कंध का आठवाँ अध्याय समाप्त

नवाँ अध्याय

श्री शुकदेव का परीक्षित के प्रश्नों का उत्तर देना

श्री शुकदेव बोले—अनुभव-स्वरूप भगवान् का, अपनी माया के विना, सासारिक प्रपंच से संबध नहीं हो सकता है, जिस प्रकार स्वप्न देखनेवाले का अपने शरीर आदि से सबंध नहीं रहता ॥ १ ॥ शरीर आदि में भूला हुआ जीव, बहुरूपी माया के द्वारा, अनेक रूपों में प्रतीत होता है और मैं तथा मेरा ऐसा समझता है ॥ २ ॥ जिस समय वह अपने परमार्थ

२८—प्राहभागवतनामपुराणब्रह्मसमित । ब्रह्मणेभगवत्प्रोक्तब्रह्मकल्पउपागते ॥

२९—यद्यत्परीक्षिदृषभःपाण्डूनामनुपृच्छति । आनुपूर्व्येणतत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥

इ० भा० म० द्वितीयस्कन्धे प्रश्नविधिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

श्रीशुकउवाच—

१—आत्ममायामृतेराजन्परस्यानुभवात्मन. । नघटेतार्थसबध.स्वप्नद्रष्टुरिवाजसा ॥

२—बहुरूपइवाभातिमाययाबहुरूपया । रममाणोगुणेष्वस्याममाहमितिमन्यते ॥

स्वरूप मे रमण करता है, जो पुरुष और प्रकृति की परिधि के बाहर है, उस समय माया के नष्ट होने के कारण उसका अज्ञान जाता रहता है, मै और मेरा—इन दोनों विकारों का त्याग करके उदासीन हो जाता है, अर्थात् अपने पूर्ण मे वर्तमान हो जाता है ॥ ३ ॥ निष्क-पट व्रत के द्वारा आराधित होनेपर, अपने सत्स्वरूप का दर्शन कराकर तत्व के ज्ञान के लिए ब्रह्मा को भगवान् ने जो साधन बतलाए हैं, वह मैं कहता हूँ ॥ ४ ॥ परम गुरु, भक्ति-रहस्य के उपदेशक, जगत के आदिदेवता, ब्रह्मा ने अपने स्थान-कमल पर बैठ कर सृष्टि करने की इच्छा से विचार किया, परन्तु विचार करने पर भी जिससे इस ससार की रचना का ज्ञान प्राप्त हो, ऐसा कोई समुचित उपाय उन्हे मालूम न हुआ ॥ ५ ॥

राजन् ! इस प्रकार विचार करते हुए, एक बार उन्होंने जल के समीप स्पर्श-वर्ण का सोलहवाँ और इक्कीसवाँ अक्षर किसी के द्वारा दो बार कहे जाते हुये सुना । (क से म तक के पचीस अक्षर स्पर्श-वर्ण के कहे जाते हैं। सोलहवे और इक्कीसवें अक्षर तप हुए।) तप, अकिंचन मनुष्यों का उत्तम धन है ॥ ६ ॥ ऐसा सुनकर कहनेवाले को देखने की इच्छा से, उन्होंने चारो दिशाओं की ओर देखा, किंतु वहाँ उन्हे और कोई न दीख पड़ा, तब वे अपने आसन पर बैठ गए, मानो किसीने प्रत्यक्ष आज्ञा दी हो, इस प्रकार तपस्या मे ही अपना हित जानकर उन्होंने उसे आरंभ करने का निश्चय किया ॥ ७ ॥ जिनका ज्ञान सफल है, प्राण, मन, तथा दोनों इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय) को जिन्होंने जीत लिया है तथा तपस्या करनेवालों मे जो श्रेष्ठ है, उन ब्रह्मा ने सावधान होकर लोकों का प्रकाश करनेवाली दिव्य तपस्या एक हजार वर्ष तक की। इस प्रकार आराधना की जाने पर भगवान ने उन्हे अपना लोक (वैकुंठ) दिखलाया, जिससे उत्तम अन्य कोई लोक नहीं है, जिसमे भय तथा क्लेश

३—यर्हिवावमहिम्निस्वेपरस्मिन्कालमाययोः । रमेतगतसंमोहस्त्यक्त्वोदास्तेतदोभयम् ॥

४—आत्मतत्वविशुद्ध्यर्थंयदाहभगवानृत । ब्रह्मणेदर्शयन्रूपमव्यलीकव्रतादृतः ॥

५—सआदिदेवोजगतांपरोगुरुःस्वधिष्ण्यमास्थायसिसृक्षयैक्षत ।
तांनाध्यगच्छद्दृशमत्रसंमतांप्रपंचनिर्माणविधिर्यथाभवेत् ॥

६—सचिंतयन्द्व्यक्षरमेकदाऽम्भस्युपाशृणोद्द्विर्गदितंवचोविभुः ।
स्पर्शेषुयत्षोडशमेकविंशंनिष्किंचनानांनृपयद्धनंविदुः ॥

७—निशम्यतद्वक्तृदिदृक्षयादिशोविलोक्यतत्रान्यदपश्यमानः ।
स्वधिष्ण्यमास्थायविमृश्यतद्धितंतपस्युपादिष्टइवादधेमनः ॥

८—दिव्यंसहस्राब्दममोघदर्शनोजितानिलात्माविजितोभयेंद्रियः ।
अतप्यतस्माखिललोकतापनंतपस्तपीयांस्तपतांसमाहितः ॥

नहीं है, पुण्यात्मा तथा ज्ञानी पुरुष जिसकी स्तुति करते है। जिसमे रजोगुण तथा तमोगुण, इन दोनों से मिश्रित सत्वगुण नहीं है, केवल शुद्ध सत्वगुण ही है, जहां काल अपना वल नहीं दिखला सकता, जहाँ माया नहीं है, फिर उसके कार्य राग-लोभ आदि कहाँ से हों ? जहाँ स्वच्छ, श्याम, कमल-नेत्र पीतावरधारी, सुंदर, सुकुमार, अत्यत तेजस्वी, उत्तम मणियों से जटित पदक नामक गहना पहननेवाले, चार हाथोंवाले, मूँगा वैदूर्य मणि और मृणाल (कमल-नाल) के समान वर्णवाले, कठ मे माला, कान मे कुंडल तथा मस्तक पर मुकुट धारण करने-वाले देवताओं तथा असुरों से पूजित भगवान् के पार्षद है, जो चारो ओर महात्माओं के देदीप्यमान विमानों से शोभित है, जो विजली के सहित आकाश के समान उत्तम स्त्रियों की काति से शोभित है तथा जहाँ मूर्तिमती लक्ष्मी झूले में बैठकर अनेक वैभवों के द्वारा भगवान् के चरणों की सेवा करती हैं, उस समय भौंरे जो गुन-गुन गाते है, वह ऐसा जान पड़ता है मानो व स्वय ही अपने प्रिय भगवान् के गुणों का गान कर रहे हों ॥ ८-१३ ॥ इस वैकुंठ में समस्त भक्तों के पालक, लक्ष्मीपति, यज्ञ के फल देनेवाले, लोक-रक्षक, सुनंद, नद, प्रवल तथा अर्हण आदि अपने पार्षदों से सेवित, व्यापक, अपने भक्तों पर अनुग्रह करने मे तत्पर, देखने-वालों को हर्षित करनेवाली आँखोंवाले, प्रसन्न हास्यवाले, अरुण लोचनों से युक्त मुखवाले, किरीट और कुडल धारण करनेवाले, चतुर्भुज, पीतावरधारी, हृदय मे लक्ष्मी को धारण करने-वाले, उत्तम सिंहासन पर विराजमान, प्रकृति पुरुष, महत्तत्व और अहकार, पॉच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, मन, पंचमहाभूत तथा पाँच तन्मात्रा, इन पचीस शक्तियों से घिरे हुए, अपने

९—तस्मैस्वलोकंभगवान्सभाजितःसंदर्शयामासपरंनयत्परं ।
व्यपेतसंक्लेशविमोहसाध्वसंस्वदृष्टवद्भिर्विबुधैरभिष्टुतं ॥

१०—प्रवर्ततेयत्ररजस्तमस्तयोःसत्वंचमिश्रं नचकालविक्रमः ।
नयत्रमायाकिमुतापरेहरेरनुव्रतायत्रसुरासुरार्चिताः ॥

११—श्यामावदाताःशतपत्रलोचनाःपिशगवस्त्राःसुरुचःसुपेशसः ।
सर्वेचतुर्बाहवउन्मिषन्मणिप्रवेकनिष्काभरणाःसुवर्चसः ॥
प्रवालवैदूर्यमृणालवर्चसः परिस्फुरत्कुडलमौलिमालिनः ॥

१२—भ्राजिष्णुभिर्यःपरितोविराजतेलसद्विमानावलिभिर्महात्मना ।
विद्योतमान प्रमदोत्तमाद्युभि सविद्युदभ्रावलिभिर्यथानभः ॥

१३—श्रीर्यत्ररूपिण्युरुगायपादयोःकरोतिमानबहुधाविभूतिभिः ।
प्रेखश्रितायाकुसुमाकरानुगैर्विगीयमानाप्रियकर्मगायती ॥

१४—ददर्शतत्राखिलसात्वतापतिश्रियःपतियज्ञपतिजगत्पतिं ।
सुनदनदप्रबलार्हणादिभिःस्वपार्षदमुख्यैः परिसेवितविभुम् ॥

स्वाभाविक तथा योगियों में आगंतुक ऐश्वर्य आदि से युक्त होने के कारण समर्थ तथा अपने स्वरूप में रमण करनेवाले भगवान् को ब्रह्मा ने देखा ॥ १४-१६ ॥ उनके दर्शन से उत्पन्न आह्लाद के द्वारा जिनका हृदय भर गया था, जिनके शरीर में रोमांच हो आया था, प्रेमाश्रु से जिनकी आँखें भर आई थीं, उन ब्रह्मा ने भगवान् के चरण-कमलों में प्रणाम किया, जिन्हें ज्ञान-मार्ग से ही पाया जा सकता है ॥ १७ ॥ तब प्रजा की सृष्टि करने में अपनी आज्ञा का पालन करने योग्य, प्रसन्न तथा आए हुए ब्रह्मा को हाथ से स्पर्श करके प्रसन्न चित्तवाले भगवान् ने मंदहास्य से सुशोभित वाणी कही ॥ १८ ॥

श्री भगवान् बोले—ब्रह्मा ! जगत् की सृष्टि करने की इच्छा से तुमने दीर्घ काल तक जो तपस्या की है, उससे मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ। बने हुए योगी मुझे संतुष्ट नहीं कर सकते ॥ १९ ॥ ब्रह्मा ! तुम्हारा कल्याण हो। वर देनेवाले मुझसे तुम अपना इच्छित वर माँग लो ! मेरे दर्शन होने तक ही फल के लिये परिश्रम करना होता है, अर्थात् मेरे दर्शनों से बड़ा फल और कुछ नहीं है ॥ २० ॥ मेरे लोक का तुम्हें दर्शन हुआ, यह मेरी ही इच्छा का परिणाम है, क्योंकि एकांत में 'तप-तप' यह शब्द सुनकर तुमने तपस्या की थी ॥ २१ ॥ तुम्हें जब सृष्टि-रचना का मोह हुआ, तब मैंने ही तुम्हें तपस्या करने की आज्ञा दी। अनघ ! तपस्या साक्षात् मेरा हृदय है, मैं तप की आत्मा हूँ, तप के द्वारा मैं जगत् का पालन करता हूँ। कठिन तपस्या मेरा पराक्रम है ॥ २२—२३ ॥

१५—भृत्यप्रसादाभिमुखं दृगासवं प्रसन्नहासारुणलोचनाननम् ।
किरीटिनं कुण्डलिनं चतुर्भुजं पीतांबरं वक्षसि लक्षितं श्रिया ॥

१६—अध्यर्हणीयासनमास्थितं परं वृतं चतुःषोडशपञ्चशक्तिभिः ।
युक्तं भगैः स्वैरितरत्र चाध्रुवैः स्व एव धामन् रममाणमीश्वरम् ॥

१७—तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुतान्तरो हृष्यत्तनुः प्रेमभराश्रुलोचनः ।
ननाम पादाम्बुजमस्य विश्वसृग् यत् पारमहंस्येन पथाऽधिगम्यते ॥

१८—तं प्रीयमाणं समुपस्थितं तदा प्रजाविसर्गे निजशासनार्हणम् ।
बभाष ईषत्स्मितशोचिषा गिरा प्रियः प्रियं प्रीतमनाः करे स्पृशन् ॥

श्रीभगवानुवाच—

१९—त्वयाऽहं तोषितः सम्यग्वेदगर्भ सिसृक्षया । चिरं भृतेन तपसा दुस्तोषः कूटयोगिनाम् ॥

२०—वरं वरय भद्रं ते वरेशं माऽभिवाञ्छितम् । ब्रह्मञ्छ्रेयः परिश्रामः पुंसां मद्दर्शनावधिः ॥

२१—मनीषितानुभावोऽयं मम लोकावलोकनम् । यदुपश्रुत्य रहसि चकर्थ परमं तपः ॥

२२—प्रत्यादिष्टं मया तत्र त्वयि कर्मविमोहिते । तपो मे हृदयं साक्षादात्माऽहं तपसोऽनघ ॥

२३—सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः । बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः ॥

ब्रह्मा बोले—भगवन् ! समस्त प्राणियों के नियता आप, बुद्धि मे स्थित रहकर अप्रतिहत (निपेध-रहित) ज्ञान के द्वारा कर्तव्य को जानते हैं, फिर भी हे स्वामी ! आपके स्थूल तथा सूक्ष्म स्वरूप का ज्ञान मुझे हो, यह मैं माँगता हूँ, आप मुझे दे ॥ २४-२५ ॥ माधव ! जिस प्रकार मकडी जाले से अपने को ढक लेती है, उसी प्रकार सत्यसकल्प आप स्वयं ही माया के सबध से ब्रह्मा का रूप धारण करके इस जगत् की उत्पत्ति, पालन तथा सहार रूपी क्रीडा जिस प्रकार करते हैं, तत्सबधी ज्ञान आप मुझे दे ॥ २६—२७ ॥ आपकी आज्ञा के अनुसार मैं आलस्य का त्याग करके आचरण करूँगा, जिससे प्रजा की सृष्टि करते हुए भी मैं अहंकार आदि के बधन मे न पड़ूँ ॥ २८ ॥ स्वामी ! जिस प्रकार मित्र-मित्र को देता है, उसी प्रकार आपने मुझे सम्मान दिया है, अतः प्रजा की सृष्टिरूप आपकी सेवा मे सावधान रहकर मैं जबतक उत्तम, मध्यम और निम्न प्रकार के मनुष्यों को उत्पन्न करूँ, तबतक मुझ में यह उत्कट दंभ न उत्पन्न हो कि मैं भी स्वतंत्र स्रष्टा (सृष्टि करनेवाला हूँ) ॥ २९ ॥

श्री भगवान् बोले—मेरे द्वारा कहे गए भक्ति तथा अनुभव के सहित मेरे स्वरूप का ज्ञान तथा उसके साधन को तुम ग्रहण करो ॥ ३० ॥ जैसा मैं हूँ, जैसा मेरा सत्ता है, जेसा मेरा रूप, गुण तथा कर्म है, उन सभी का यथार्थ ज्ञान मेरी कृपा से तुम्हे प्राप्त हो ॥ ३१ ॥ सृष्टि के पहले मैं ही था। स्थूल और सूक्ष्म प्रपच तथा उसका कारण आदि और कुछ भी नहीं था, सृष्टि होने के बाद भी मैं हूँ और उसके नष्ट हो जाने के बक्त भी मैं ही रहूँगा ॥ ३२ ॥ वस्तुत. जो सत्य न हो, वह दीख पडे और जो सत्य हो वह न दीख पडे, इसे ही मेरी माया समझो। जिस

ब्रह्मोवाच—

२४—भगवन्सर्वभूतानामध्यक्षोवस्थितोगुहा । वेदह्यप्रतिरुद्धेनप्रज्ञानेनचिकीर्षित ॥

२५—तथाऽपिनाथमानस्यनाथनाथयनाथितं । परावरेयथारूपे नानीयांतेत्वरूपिणः ॥

२६—यथात्ममायायोगेननानाशक्त्युपबृंहित । विलुपन्विसृजन्गृह्णन्विभ्रदात्मानमात्मना ॥

२७—क्रीडस्यमोघसकल्पऊर्णनाभिर्यथोर्णुते । तथातद्विपयाधेहिमनीपामयिमाधव ॥

२८—भगवच्छिक्षितमहकरवाणिह्यतद्रितः । नेहमानःप्रजासर्गंबद्ध्येयत्वदनुग्रहात् ॥

२९—यावत्सखासख्युरिवेशतेकृतःप्रजाविसर्गेविभजामिभोजन ।

अविक्लवस्तेपरिकर्मणिस्थितोमामेसमुन्नद्धमदोऽजमानिनः ॥

श्रीभगवानुवाच—

३०—ज्ञानपरमगुह्यमेयद्विज्ञानसमन्वित । सरहस्यतदंगचगृहाणगदितंमया ॥

३१—यावानहयथाभावोयद्रूपगुणकर्मकः । तथैवतत्वविज्ञानमस्तुतेमदनुग्रहात् ॥

३२—अहमेवासमेवाग्रेनान्यद्यत्सदसत्परं । पश्चादहयदेतच्चयोऽवशिष्येतसोस्म्यहं ॥

प्रकार आकाश मे दो चंद्रमाओं के न होते हुए भी आँख के ऊपरी हिस्से को दवाने से दो चद्रमा दीख पड़ते हैं तथा जिस प्रकार ग्रहों में राहु है तो, पर दीख नहीं पड़ता, उसी प्रकार समस्त कर्मों की साक्षी आत्मा है तो, पर देखी नहीं जाती। ऐसी ही मेरी माया है ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार उत्तम तथा अधम शरीरों की सृष्टि होने के उपरान्त उसमे पच महाभूतों ने आकर निवास किया हो, ऐसा जान पड़ता है, किंतु वास्तव मे वे कार्य की उत्पत्ति के पहले ही कारण रूप से उसमे विद्यमान रहते हैं, अतः वाद मे उसमे प्रवेश नहीं करते, उसी प्रकार समस्त प्रपंचों मे मैं पीछे से प्रवेश नहीं करता, बल्कि कारण रूप के पहले से ही वर्तमान रहता हूँ ॥ ३४ ॥ आत्मस्वरूप को जानने की इच्छा रखनेवाले को इतना ही जानना है कि अन्वय तथा व्यतिरेक के द्वारा जो सदा सब जगह है, वह आत्मा है। [जाग्रत अवस्था में साक्षीरूप से आत्मा की प्रतीति होना अन्वय है और समाधि अवस्था मे केवल आत्मा की प्रतीति और अन्य अवस्थाओं की अप्रतीति, यह व्यतिरेक है।] ॥ ३५ ॥ चित्त को अत्यंत एकाग्र करके तुम मेरे मन का अनुसरण करो, जिससे कल्पों (कल्प ब्रह्मा के दिन को कहते है) मे कभी तुम्हे अपने कर्तापन का अभिमान न हो ॥ ३६ ॥

श्री शुकदेव वोले—मनुष्यों के स्वामी ब्रह्मा को इस प्रकार आदेश देकर अजन्मा भगवान्, जवतक ब्रह्मा उनके उस रूप को देखते रहे, अंतर्धान हो गए ॥ ३७ ॥ जिन्होंने अपने स्वरूप को अंतर्धान कर लिया, उन भगवान् के प्रति हाथ जोडकर सर्वभूतरूप ब्रह्मा ने पहले के समान इस जगत् की सृष्टि की ॥ ३८ ॥ एकवार धर्म के स्वामी प्रजापति प्रजा की कल्याण-कामना से अपने अभिप्राय की सिद्धि के लिए यम-नियमों का पालन कर रहे थे ॥ ३९ ॥ राजन् ! ब्रह्मा के अन्य पुत्रों से अधिक प्रिय, आज्ञाकारी, सेवापरायण तथा महाभागवत नारद ने अपने शील, विवेक तथा इन्द्रिय-दमन के द्वारा पिता ब्रह्मा को प्रसन्न किया ॥ ४०-४१ ॥

३३—ऋतेऽर्थंयत्प्रतीयेतनप्रतीयेतचात्मनि । तद्विद्यादात्मनोमायांयथाभासोयथातमः ॥

३४—यथामहान्तिभूतानिभूतेषूच्चावचेष्वनु । प्रविष्टान्यप्रविष्टानितथातेषुनतेष्वहं ॥

३५—एतावदेवजिज्ञास्यंतत्त्वजिज्ञासुनात्मनः । अन्वयव्यतिरेकाभ्यांयत्स्यात्सर्वत्रसर्वदा ॥

३६—एतन्मतंसमातिष्ठपरमेणसमाधिना । भवान्कल्पविकल्पेषुनविमुह्यतिकर्हिचित् ॥

श्रीशुकउवाच—

३७—सप्रदिश्यैवमजनोजनानांपरमेष्ठिनम् । पश्यतस्तस्यतद्रूपमात्मनोन्यरुणद्धरिः ॥

३८—अंतर्हितेंद्रियार्थायहरयेविहिताजलिः । सर्वभूतमयोविश्वंससर्जेदंसपूर्ववत् ॥

३९—प्रजापतिर्धर्मपतिरेकदानियमान्यमान् । भद्रंप्रजानामन्विच्छन्नातिष्ठत्स्वार्थकाम्यया ॥

४०—तंनारदःप्रियतमोरिक्थादानामनुव्रतः । शुश्रूषमाणःशीलेनप्रश्रयेणदमेनच ॥

४१—मायांविविदिषन्विष्णोर्मायेशस्यमहामतिः । महाभागवतोराजन्पितरंपर्यतोषयत् ॥

नारदजी ने लोकों के आदिपिता ब्रह्मा को प्रसन्न जानकर उनसे वही पूछा था, जो आप मुझसे पूछ रहे है ॥ ४२ ॥ प्रसन्न हुए और प्रजा की सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा ने दस वस्तुओं को सिद्ध करनेवाली श्रीमद्भागवत की वह कथा अपने पुत्र नारद को सुनाई, जो उनको श्रीभगवान् ने सुनाई थी ॥ ४३ ॥ नारद ने वह कथा सरस्वती नदी के किनारे परब्रह्म का ध्यान करते हुए, अत्यत तेजस्वी व्यासजी से कही ॥ ४४ ॥ विराट् पुरुष से यह जगत् कैसे उत्पन्न हुआ ? यह, तथा अन्य जो प्रश्न आपने मुझसे पूछे, अब मैं उनका उत्तर देता हूँ ॥ ४५ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कध का नवाँ अध्याय समाप्त

—— :०#०:——

दसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेव का भागवत की कथा के द्वारा परीक्षित के प्रश्नों का उत्तर देना

श्रीशुकदेव बोले—इस भागवत में सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वंतर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति तथा आश्रय, इन दस विषयों का प्रतिपादन है ॥ १ ॥ महात्मा पुरुष, दसवे विषय अर्थात् परमात्मा का यथार्थ ज्ञान होने के निमित्त अन्य नौ पदर्थों का वर्णन, स्तुति आदि स्थल मे साक्षात् श्रुति के द्वारा और आख्यान भाग मे तात्पर्य के द्वारा करते हैं ॥ २ ॥ सत्व, रज तथा

४२—तुष्टनिशम्यपितरलोकानाप्रपितामहम् । देवर्षि परिपप्रच्छभवान्यन्माऽनुपृच्छति ॥

४३—तस्मादिदभागवतपुराणदशलक्षण । प्रोक्त भगवताप्राहप्रीत'पुत्रायभूतकृत् ॥

४४—नारदःप्राहमुनयेसरस्वत्यास्तटेनृप । ध्यायतेब्रह्मपरमव्यासायामिततेजसे ॥

४५—यदुताहत्वयःपृष्टोवैराजात्पुरुषादिदम् । यथासीत्तदुपाख्यास्येप्रश्नानन्याश्चकृत्स्नशः ॥

इ० भा० म० द्वि० नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीशुकउवाच—

१—अत्रसर्गोविसर्गश्चस्थानपोषणमूतय' । मन्वतरेशानुकथानिरोधोमुक्तिराश्रय ॥

२—दशमस्यविशुद्धयर्थं नवानामिहलक्षणम् । वर्णयतिमहात्मान श्रुतेनार्थेनचा ऽसा ॥

तम, ये तीन भगवान् की माया के गुण हैं, इनसे पंचभूत, ५च तन्मात्रा, इंद्रिय, महत्तत्व तथा अहंकार, इनकी उत्पत्ति को सर्ग कहते हैं, और ब्रह्मा के गुण विषमता से चर तथा अचर (स्थावर और जंगम) की उत्पत्ति को विसर्ग कहते है ॥ ३ ॥ उत्पन्न किये पदार्थों को मर्यादा में रखनेवाली जो भगवान् की महिमा है, उसे स्थिति कहते है, भगवान् का अनुग्रह पोषण है; भगवान् का अनुग्रह पाए हुए मन्वंतराधिपतियों का धर्म मन्वंतर कहा जाता है और कर्म की वासना ऊति कही जाती है ॥ ४ ॥ भगवान् के अवतारों के चरित्रों तथा उनके भक्तों की अनेक कथाओं से वर्धित कथा को ईशानुकथा कहते है ॥ ५ ॥ जीवरूप भगवान् की निद्रा के अनंतर उपाधियों के सहित लय हो जाना, निरोध है। अन्यथा रूप का त्याग करके अर्थात् अविद्या के कारण मै कर्ता हूँ, मै भोक्ता हूँ, सुखी हूँ, दुखी हूँ, इस आरोप का त्याग करके स्व-रूप में स्थित रहने को अर्थात् 'मैं कर्ता और भोक्तापन से रहित शुद्ध ब्रह्म स्वरूप हूँ'-इस स्वरूप में मग्न रहने को मुक्ति कहते है ॥ ६ ॥ जिनसे सृष्टि और लय होता है तथा जिनके द्वारा यह दोनों जाने जाते है, उस परब्रह्म को आश्रय कहते हैं और यह आश्रय ही स्वयं परमात्मा हैं ॥ ७ ॥ जो चक्षु आदि इंद्रियों के अभिमानी तथा देखनेवाले जीव है, वे आध्यात्मिक पुरुष कहे जाते हैं, इसी चक्षु आदि के अधिष्ठाता सूर्यरूप अधिदैव कहे जाते। इस एक ही स्वरूप में अध्यात्म और अधिदैव—इन दो भेदों को बतानेवाली चक्षु आदि इंद्रियों के द्वारा देखनेवाली देह आधिभौतिक कही गई है। इस प्रकार इंद्रियाँ अध्यात्म, देवता अधिदैव और देह आदि दृश्य पदार्थ अधिभूत कहे जाते हैं। इन तीनों में एक का अभाव होने पर दूसरे भी नहीं जाने जाते, अतः अधिभूत दृश्य पदार्थ देहादि न हों तो जिनसे देहादि की प्रतीति होती है, वह इंद्रियाँ सिद्ध न हों और उनका द्रष्टा भी सिद्ध न हो; और देह आदि दृश्य के बिना इंद्रियों की प्रवृत्ति से जान पड़नेवाला इंद्रियों का अधिष्ठाता अधिदैवरूप सूर्य आदि भी सिद्ध नहीं होते और सूर्य आदि के बिना अध्यात्मरूप इंद्रियों की भी प्रवृत्ति नहीं होती, तथा अध्यात्मरूप इन्द्रियों और अधिदैव रूप सूर्य आदि न हों तो अधिभूतरूप देह आदि दृश्य है, यह सिद्ध नहीं हो सकता। इस प्रकार ये तीनों एकदूसरे से

३—भूतमात्रेंद्रियधियां जन्मसर्ग उदाहृतः । ब्रह्मणोगुणवैषम्याद्विसर्गः पौरुषःस्मृतः ॥

४—स्थितिर्वैकुंठविजय.पोषणंतदनुग्रहः । मन्वंतराणिसद्धर्मऊतय.कर्मवासनाः ॥

५—अवतारानुचरितंहरेश्चास्यानुवर्तिनाम् । पुंसामीशकथा प्रोक्तानानाख्यानोपबृंहिताः ॥

६—निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनःसहशक्तिभिः । मुक्तिर्हित्वाऽन्यथारूपंस्वरूपेणव्यवस्थितिः ॥

७—आभासश्चनिरोधश्चयतश्चाध्यवसीयते । सआश्रयःपरंब्रह्मपरमात्मेतिशब्द्यते ॥

८—योऽध्यात्मिकोऽयंपुरुष.सोऽसावेवाधिदैविकः । यस्तत्रोभयविच्छेदःसस्मृतोह्याधिभौतिकः ॥

९—एकमेकतराभावेयदानोपलभामहे । त्रितयंतत्रयोवेदसआत्मास्वाश्रयाश्रयः ॥

से सिद्ध हैं, इंद्रिय, देह आदि तथा सूर्य, इन तीनों को साक्षी रूप से जो जानते है, वही आश्रय-रूप भगवान् हैं, वे स्वय ही अपने आश्रय है अर्थात् उनका आश्रय दूसरा कोई नहीं है ॥ ८-९ ॥ सृष्टि के आरभ मे जब आदिपुरुष अंड को भेदकर बाहर निकले, तब अपने लिए स्थान की इच्छा से उन पवित्रात्मा ने पवित्र जल को उत्पन्न किया ॥ १० ॥ जिस जल की उन्होंने सृष्टि की थी, उसके अदर हजारों वर्षों तक निवास करने के कारण उनका नाम नारायण हुआ ॥११॥ जिस ईश्वर की सत्ता से पंचमहाभूत, कर्म, काल, स्वभाव और जीव कर्म करने में समर्थ होते हैं और जिनकी सत्ता के बिना नहीं होते, उन देवरूप समर्थ एक परमेश्वर ने भिन्न-भिन्न रूपों मे होने की इच्छा से अपनी वृत्ति को योग-शय्या से बाहर निकालकर अपनी तेजोमय देह से माया के द्वारा अधिदैव, अधिभूत और अध्यात्म, ये तीन प्रकार किए। अब यह सुनो कि एक पुरुष रूप भगवान की देह ने यह तीन प्रकार के भेद क्यों प्राप्त किए ? ॥१२-१४॥ क्रिया-शक्ति के द्वारा अनेक प्रकार की चेष्टाएँ करते हुए उन पुरुष के शरीर मे स्थित चिदाकाश से इंद्रियों की शक्ति, मन की शक्ति और शरीर की शक्ति उत्पन्न हुई, अनतर शक्तिमय सूक्ष्म स्वरुप से सूत्रात्मा नामक मुख्य प्राण उत्पन्न हुआ, जो सब का प्राण हुआ ॥ १५ ॥ जिस प्रकार राजा के अनुचरों का व्यवहार राजा के आधीन है, उसी प्रकार समस्त प्राणियों मे जिस महान् प्राणी की चेष्टा से इन्द्रियाँ समस्त चेष्टाएँ करती हैं और जिसकी चेष्टा के बिना इंद्रियों की चेष्टा भी रुक जाती है, उनका संचालन करनेवाले प्राण के लिए विराट् शरीर मे पहले प्यास और भूख उत्पन्न हुई, पुनः प्यासे और भूखे उस विराट् का पहला मुँह उत्पन्न हुआ ॥ १६-१७ ॥ मुख से तालू उत्पन्न हुआ और तालू के लिए जिह्वा-इंद्रिय उत्पन्न हुई, अनतर जिह्वा से जाननेयोग्य अनेक प्रकार के रसरूप विषय उत्पन्न हुए और उससे वरुण देवता भी उत्पन्न हुए ॥ १८ ॥ बोलने की इच्छा रखनेवाले विराट् पुरुष के मुख से अग्निदेवता उत्पन्न हुए, वाणी नाम की इंद्रिय उत्पन्न हुई

१०—पुरुषोंडंविनिर्भिद्ययदाऽसौसविनिर्गत· । आत्मनोऽयनमन्विच्छन्नपोऽस्राक्षीच्छुचि·शुचीः ॥
११—तास्ववात्सीत्स्वसृष्टासुसहस्रपरिवत्सरान् । तेननारायणोनामयदाप·पुरुषोद्भवाः ॥
१२—द्रव्यकर्मचकालश्चस्वभावोजीवएवच । यदनुग्रहत.सतिनसतियदुपेक्षया ॥
१३—एकोनानात्वमन्विच्छन्योगतल्पात्समुत्थित. । वीर्यंहिरण्मयदेवोमाययाव्यसृजत्त्रिधा ॥
१४—अधिदैवमथाध्यात्ममधिभूतमितिप्रभु· । अथैकंपौरुषवीर्यंत्रिधाभिद्यततच्छृणु ॥
१५—अन्त.शरीरआकाशात्पुरुषस्यविचेष्टत. । ओजःसहोबलंजज्ञेततःप्राणोमहानसु. ॥
१६—अनुप्राणन्तियप्राणा.प्राणतसर्वजन्तुषु । अपानतमपानन्तिनरदेवमिवानुगा. ॥
१७—प्राणेनाक्षिपताक्षुत्तृडन्तराजायतेप्रभो· । पिपासतोजक्षतश्चप्राङ्मुखनिरभिद्यत ॥
१८—मुखतस्तालुनिर्भिन्नञ्जिह्वातत्रोपजायते । ततोनानारसोजज्ञेजिह्वयायोऽधिगम्यते ॥

और बोलना, यह विषय उत्पन्न हुआ। अग्नि-देवता हों तभी वाणी से शब्द का उच्चारण होता है, उनके बिना नहीं; (इसका प्रमाण यह है कि) यदि मनुष्य पानी मे डुबकी लगा ले तो वाणी-इंद्रिय के होते हुए भी शब्द का उच्चारण नहीं होता, क्योंकि पानी के साथ अग्नि-देवता का विरोध है ॥ १९ ॥ अनतर प्राणवायु के अत्यंत चचल होने के कारण नाक के दो गोलक उत्पन्न हुए। गध ग्रहण करने की इच्छावाले विराट् पुरुष की नाक मे गध विषय के सहित वायु-देवता हुए और घ्राण नाम की इन्द्रिय हुई ॥ २० ॥ अपने शरीर मे प्रकाश-रहित, अपने तथा अन्य पदार्थों को देखने की इच्छा रखनेवाले इन विराट् पुरुष के दो नेत्ररूपी गोलक उत्पन्न हुए, उसमे सूर्य देवता हुए, चक्षु-इन्द्रिय हुई और रूप विषय हुआ ॥ २१ ॥ वेद-वाक्यों के द्वारा अपने बोध को सुनने की इच्छा रखनेवाले विराट् पुरुष के कान-रूपी दो गोलक उत्पन्न हुए, उसमे दिशा नाम के देवता हुए, श्रोत्र-इन्द्रिय हुई और उसके द्वारा ग्रहणीय शब्द विषय हुआ ॥ २२ ॥ पदार्थों की कोमलता, कठोरता, हलकापन, भारीपन, गरमी और ठंढक जानने की इच्छा रखनेवाले इस पुरुष के, त्वचा उत्पन्न हुई, इस त्वचारूपी गोलक में लोम और उसका स्थान त्वचा-इन्द्रिय उत्पन्न हुई और वृक्षों के द्वारा उत्पन्न वायु-देवता हुए, वह वायु त्वचा में बाहर और भीतर रहती है। त्वचा के द्वारा स्पर्शरूपी गुण जाना जाता है ॥ २३ ॥ अनेक कर्मों को करने की इच्छा रखनेवाले उन विराट् पुरुष के दो हाथ उत्पन्न हुए, हाथ में बलरूपी इन्द्रिय हुई तथा उसके देवता इंद्र हुए। ग्रहण करना आदि व्यापार-बल इंद्र के आश्रित हैं ॥ २४ ॥ मनचाही गति पाने की इच्छा रखनेवाले उनके दो पैर उत्पन्न हुए। उन पैरों के साथ उसके अधिष्ठाता यज्ञस्वरूप स्वय विष्णु हुए तथा चलने के द्वारा प्राप्त होने-वाला हुतद्रव्यरूपी विषय उत्पन्न हुआ। चलने की क्रिया, चलने की शक्तिरूपी इन्द्रिय तथा उसके देवता इन्द्र के आश्रित है ॥ २५ ॥ प्रजा (संतान), प्रेम तथा स्वर्ग आदि की इच्छा रखनेवाले उनके शिश्न तथा उपस्थ इन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं और उनके देवता प्रजापति हुए। इनसे काम-संबंधी सुख की प्राप्ति होती है ॥ २६ ॥ अन्न के मल का त्याग करने की इच्छा

१९—विवक्षोर्मुखतोभूम्नोवह्निर्वाग्व्याहृतंतयो. । जलेवैतस्यसुचिरंनिरोध.समजायत ॥

२०—नासिकेनिरभिद्येतांदोधूयतिनभस्वति । तत्रवायुर्गंधवहोघ्राणोनसिजिघृक्षतः ॥

२१—यदात्मनिनिरालोकमात्मानंचदिदृक्षतः । निर्भिन्नेह्यक्षिणीतस्यज्योतिश्चक्षुर्गुणग्रहः ॥

२२—बोध्यमानस्यऋषिभिरात्मनस्तज्जिघृक्षतः । कर्णौचनिरभिद्येतांदिशःश्रोत्रगुणग्रहः ॥

२३—वस्तुनोमृदुकाठिन्यलघुगुर्वोष्णशीतता । जिघृक्षतस्त्वङ्निर्भिन्नातस्यांलोममहीरुहा. ॥
तत्रचांतर्बहिर्वातस्त्वचालब्धगुणोवृतः ॥

२४—हस्तौरुरुहतुस्तस्यनानाकर्मचिकीर्षया । तयोस्तुबलमिंद्रश्चआदानमुभयाश्रय ॥

२५—गतिंजिगीषतःपादौरुरुहातेऽभिकामिका । पद्भ्यांयज्ञःस्वयंहव्यंकर्मभि.क्रियतेनृभिः ॥

रखनेवाले उन्हे वायु-इन्द्रिय के सहित गुदा उत्पन्न हुई तथा उसके देवता मित्र हुए। इन दोनों के आश्रय से मल का त्याग होता है॥ २७॥ जब उसे एक शरीर का त्याग करके दूसरा शरीर धारण करने की इच्छा उत्पन्न हुई तो उसे नाभि-रूपी द्वार उत्पन्न हुआ। उसमें अपान वायु तथा उसके देवता मृत्यु हुए। मरण-विषय तथा मृत्यु-देवता अपान-वायु के आश्रित हैं॥ २८॥ भोजन और जल आदि ग्रहण करने की इच्छा रखनेवाले विराट् शरीर के अभिमानी भगवान् के पेट, अँतड़ियाँ तथा नाड़ियाँ आदि हुईं। अनंतर नाड़ी की देवता नदियाँ हुईं और पेट तथा अँतड़ियों के देवता समुद्र हुए। इन दोनों के द्वारा भरण-पोषण होता है॥ २९॥ जब उन्हें अपनी माया का ध्यान करने की इच्छा हुई तो हृदय उत्पन्न हुआ, अनंतर मन, उसके देवता चंद्रमा, उसका विषय संकल्प तथा उसके द्वारा काम (इच्छाएँ) उत्पन्न हुईं॥ ३०॥ त्वचा, चर्म, मांस, रुधिर, मेद, मज्जा और अस्थि, ये सात धातुएँ पृथ्वी, जल और तेज के कार्य हैं तथा प्राण, आकाश, जल और वायु के द्वारा उत्पन्न हुआ है॥ ३१॥ इन्द्रियाँ विषयों की ओर दौड़नेवाली हैं तथा स्पर्श, शब्द आदि की सुंदरता अहंकार के द्वारा कल्पित है (अर्थात् वास्तव में ये सुन्दर नहीं हैं, फिर भी अहंकार के द्वारा सुंदर जान पड़ती हैं), मन समस्त विकारों से युक्त है और बुद्धि वस्तुओं के प्रकृत (असली) स्वरूप का निर्णय करनेवाली है (अर्थात वह केवल भले-बुरे का विवेक ही रखती है, भले को ग्रहण नहीं कर सकती)॥ ३२॥ राजन्! पृथ्वी आदि आठ आवरणों से वाहर से घिरे हुये भगवान् के स्थूल रूप का वर्णन मैंने आपसे किया॥ ३३॥ इस स्थूल स्वरूप का कारण, अस्पष्ट, धर्मरहित (स्वभाव-रहित), उत्पत्ति-स्थिति तथा लय से रहित, सदा एकरस, वृद्धि और क्षय से रहित, वाणी और मन से अगोचर, उन भगवान् का एक अत्यंन्त सूक्ष्म रूप भी है॥ ३४॥ राजन्! मैंने दोनों ही स्वरूपों का वर्णन आपसे किया, किंतु ये दोनों ही स्वरूप मायायुक्त हैं, अत. विवेकी पुरुष इन्हें परमार्थ-

---

२६—निरभिद्यतशिश्नोवैप्रजानदामृतार्थिनः। उपस्थआसीत्कामानाप्रियतदुभयाश्रय॥

२७—उत्सिसृक्षोर्धातुमलनिरभिद्यतवैगुद। ततःपायुस्ततोमित्रउत्सर्गउभयाश्रय॥

२८—आसिसृप्सो.पुरःपुर्यानाभिद्वारमपानतः। तत्रापानस्ततोमृत्युःपृथक्त्वमुभयाश्रयं॥

२९—आदित्सोरन्नपानानामासन्कुक्ष्यन्त्रनाडयः। नद्यःसमुद्राश्चतयोस्तुष्टि पुष्टिस्तदाश्रये॥

३०—निदिध्यासोरात्ममायाहृदयनिरभिद्यत। ततोमनस्ततश्चन्द्र.संकल्पःकामएवच॥

३१—त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जाऽस्थिधातवः। भूम्यप्तेजोमयाःसप्तप्राणोव्योमाम्बुवायुभिः॥

३२—गुणात्मकान्यिन्द्रियाणिभूतादिप्रभवागुणाः। मन.सर्वविकारात्माबुद्धिर्विज्ञानरूपिणी॥

३३—एतद्भगवतोरूपंस्थूलंतेव्याहृतंमया। मह्यादिभिश्चावरणैरष्टभिर्बहिरावृतम्॥

३४—अत.परंसूक्ष्मतममव्यक्तं निर्विशेषणं। अनादिमध्यनिधनंनित्यंवाङ्मनस.परं॥

३५—अमुनीभगवद्रूपेमयातेअनुवर्णिते। उभेअपिनगृह्णन्तिमायासृष्टेविपश्चित.॥

रूप में ग्रहण नहीं करते ॥ ३५ ॥ स्वभाव से अकर्मा होते हुए भी माया के द्वारा सकर्मा जान पड़नेवाले भगवान् वाचकरूप (जाति, गुण और क्रिया आदि वाचक शब्द हैं) से शब्दजाल की तथा वाच्यरूप (जिसे शब्द का बोध न हो) से आकृति तथा क्रिया की सृष्टि करते हैं ॥ ३६ ॥ प्रजापति, मनु, देवता, ऋषि पितर, सिद्ध, चारण, गंधर्व, विद्याधर, असुर, किन्नर, यक्ष, अप्सरा, नाग, किंपुरुष, उरग, मातृका, राक्षस, पिशाच, प्रेत, भूत, विनायक, कूष्माण्ड, उन्माद, वैताल, यातुधान, ग्रह, पक्षी, मृग, पशु, वृक्ष, पर्वत रेंगनेवाले प्राणी तथा अन्य जलचर, स्थलचर और नभचर प्राणी, इन सभी की स्थावर तथा जंगम और जरायुज, अंडज, स्वेदज और उद्भिज के रूप में भगवान् ने सृष्टि की। इन सभी योनियों में देवता आदि की उत्तम योनियाँ पुण्य-कर्मों का फल है, मनुष्य आदि मध्यम योनियाँ पुण्य और पाप का फल हैं तथा नारकी अधम योनियाँ केवल पाप का फल हैं ॥ ३७—४० ॥ देवता ऋषि आदि सात्त्विक योनि है, मनुष्य राजस योनि है तथा नारकी तामस योनि है। सत्व, रज तथा तम—इन तीन गुणों मे से एक-एक के साथ जब दूसरे दो-दो गुण मिलते हैं, तब प्रत्येक कर्मफल-रूपी गति के तीन-तीन भेद होते हैं, जैसे शुद्ध सात्विक योनि, रजोगुणयुक्त सात्विक योनि और तमोगुणयुक्त सात्विक योनि। इसी प्रकार राजस और तामस योनियों के लिये भी समझना चाहिये ॥ ४१ ॥ जगत् को उत्पन्न करनेवाले भगवान् पशु, मनुष्य और देवता आदि अवतारों के द्वारा जगत् का पालन करने के साथही धर्मरूप से उसका पोषण भी करते हैं ॥ ४२ ॥ अनतर समय आने पर रुद्ररूपी कालाग्नि हो, अपने ही द्वारा उत्पन्न इस जगत् का संहार करते है, जैसे वायु बादल के समूह का नाश कर देता है ॥४३॥ राजन् ! अत्यंत ऐश्वर्यशाली, जगत् के उत्पादक भगवान् का स्रष्टा, पालक तथा संहारक के रूप मे मैंने वर्णन किया, किंतु विवेकी पुरुषों को शुद्ध चैतन्य-रूप परमात्मा को कर्ता आदि के रूप से न जानना चाहिए। श्रुतियाँ जो यह कहती है कि 'यतो वा इमानि भूतानि जायंते' (अर्थात् जिससे समस्त प्राणी उत्पन्न होते है) यह उनके

३६—सवाच्यवाचकतयाभगवान्ब्रह्मरूपधृक् । नामरूपक्रियाधत्ते सकर्माकर्मकःपरः ॥

३७—प्रजापतीन्मनून्देवानृषीन्पितृगणान्पृथक् । सिद्धचारणगन्धर्वान्विद्याध्रासुरगुह्यकान् ॥

३८—किन्नराप्सरसोनागान्सर्पान्किंपुरुषोरगान् । मात्रीरक्षःपिशाचाश्चप्रेतभूतविनायकान् ॥

३९—कूश्माण्डोन्मादवेतालान्यातुधानान्ग्रहानपि । खगान्मृगान्पशून्वृक्षान्गिरीन्नृपसरीसृपान् ॥

४०—द्विविधाश्चतुर्विधायेऽन्येजलस्थलनभौकसः । कुशलाकुशलामिश्राःकर्मणांगतयस्त्विमाः ॥

४१—सत्वरजस्तमइतितिस्रःसुरनृनारकाः । तत्राप्येकैकशोराजन्भिद्यंतेगतयस्त्रिधा ॥
यदैकैकतरोऽन्याभ्यांस्वभावउपहन्यते ॥

४२—सएवेदंजगद्धाताभगवान्धर्मरूपधृक् । पुष्णातिस्थापयन्विश्वंतिर्यङ्नरसुरात्मभिः ॥

४३—ततःकालाग्निरुद्रात्मायत्सृष्टमिदमात्मनः । सन्नियच्छतिकालेनघनानीकमिवानिलः ॥

कर्तापन का प्रतिपादन करने के लिए नहीं, किंतु उनका निषेध करने के लिए कहती है, क्योंकि भगवान में कर्तापन का आरोप माया का किया हुआ है, वस्तुत: वे तो अकर्ता हैं, ॥४४-४५॥ मैंने इन ब्रह्मा का अवांतर प्रलय के सहित महाप्रलय कह सुनाया। महाप्रलय में महत्तत्व आदि की सृष्टि का क्रम एक ही जैसा है ॥ ४६ ॥ राजन्! काल का सूक्ष्म तथा स्थूल मान, कल्प का स्वरूप तथा उसका शरीर अर्थात् अवांतर कल्प तथा मन्वंतर आदि का विभाग मैं विस्तार-सहित आगे आपसे कहूँगा। अब मैं पाद्म-कल्प के विषय में विस्तारपूर्वक कहता हूँ, इसे आप सुनें ॥ ४७ ॥

शौनक बोले—शांतप्रकृति सूत! पहले आप कह चुके हैं कि भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ विदुर, जिनका त्याग नहीं किया जा सकता, ऐसे संबंधियों का त्याग करके, पृथ्वी पर तीर्थों में घूमे ॥ ४८ ॥ इन विदुर के साथ भगवान् मैत्रेय का ज्ञान-संबंधी संवाद कहाँ हुआ, विदुर के पूछने पर मैत्रेयजी से कौन सा तत्व कहा? किस कारण उन्होंने कुटुम्बियों का त्याग किया तथा पुनः वे क्यों वापस आए, विदुर का यह सारा चरित्र आप हमें सुनावें ॥ ४९-५० ॥

सूत बोले—ऋषिगण! आपने मुझसे जो पूछा, राजा परीक्षित ने भी श्रीशुकदेव से वही सब पूछा था। मैं राजा के प्रश्नों के अनुसार वह सब आपसे कहता हूँ—आप सुनें ॥ ५१ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कंध का दसवाँ अध्याय समाप्त

द्वितीय स्कंध समाप्त

४४—इत्थंभावेनकथितोभगवान्भगवत्तम: । नेत्थंभावेनहिपरंद्रष्टुमर्हंतिसूरयः ॥

४५—नास्यकर्मणिजन्मादौपरस्यानुविधीयते । कर्तृत्वप्रतिषेधार्थंमाययारोपितंहितत् ॥

४६—अयंतुब्रह्मण:कल्प:सविकल्पउदाहृत: । विधि:साधारणोयत्रसर्गा:प्राकृतवैकृता: ॥

४७—परिमाणंचकालस्यकल्पलक्षणविग्रहं । यथापुरस्ताद्व्याख्यास्येपाद्मं कल्पमथोशृणु ॥

शौनकउवाच—

४८—यदाहनोभवान्सूतक्षत्ताभागवतोत्तम । चचारतीर्थानिभुवस्त्यक्त्वाबंधून्सुदुस्त्यजान् ॥

४९—कुत्रकौषारवेस्तस्यसंवादोऽध्यात्मसंश्रित: । यद्वासभगवांस्तस्मैपृष्टस्तत्त्वमुवाचह ॥

५०—ब्रूहिनस्तदिदंसौम्यविदुरस्यविचेष्टितं । बंधुत्यागनिमित्तंचतथैवागतवान्पुन: ॥

सूतउवाच—

५१—राज्ञापरीक्षितापृष्टोयदवोचन्महामुनि: । तद्वोऽभिधास्येशृणुतराज्ञ:प्रश्नानुसारत: ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेद्वितीयस्कंधेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां पुरुषसंस्थानुवर्णननामदशमोऽध्याय:

द्वितीयस्कंधसमाप्त

श्रीमद्भागवत-तृतीय स्कन्ध

———:o:———

❀ श्रीः ❀

श्रीमद्भागवत-तृतीय स्कंध

पहला अध्याय

विदुर उद्धव का संवाद

श्रीशुकदेव बोले—सुना जाता है कि पहले समय में विदुर अपना समृद्धिशाली घर छोड़ कर वन में गये थे और उन्होंने भी इसी प्रकार भगवान् मैत्रेय से पूछा था—जिस प्रकार तुम पूछ रहे हो ॥ १ ॥ तुम लोगों के अर्थात् पाण्डवों के परामर्शदाता, सर्वेश्वर-भगवान्—पौरव राजा दुर्योधन का घर छोड़कर, विदुर के इसी घर मे आये थे, क्योंकि इस घर को वे अपना घर समझते थे ॥ २ ॥

---

* *श्रीगणेशायनमः* *

श्रीशुकउवाच—

१—एवमेतत्पुरापृष्टोमैत्रेयोभगवान्किल । क्षत्त्रावनंप्रविष्टेनत्यक्त्वास्वगृहमृद्धिमत् ॥

२—यद्वाअयंमन्त्रकृद्वोभगवानखिलेश्वरः । पौरवेन्द्रगृहंहित्वाप्रविवेशात्मसात्कृतं ॥

राजा बोले—विदुर के साथ भगवान् मैत्रेय का समागम कहाँ हुआ था ? कब हुआ था और क्या संवाद हुआ था, यह सब आप मुझसे कहें ॥ ३ ॥ निर्मल चित्त विदुर का वह प्रश्न साधारण न होगा। वह गम्भीर अर्थवाला होगा, क्योंकि इतने बड़े भगवान् मैत्रेय से पूछा गया था, अतएव उस प्रश्न की अवश्य प्रशंसा हुई होगी ॥ ४ ॥

सूत बोले—राजा परीक्षित के इस प्रकार पूछने पर बहुत-सी बातें जाननेवाले ऋषिश्रेष्ठ शुकदेव प्रसन्न होकर बोले—सुनो, ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेव बोले—अधर्म से जिसकी दृष्टि (बाहरी और भीतरी) नष्ट हो गयी थी, वह राजा धृतराष्ट्र अपने दुर्जनपुत्रों का पालन करने लगा, उनका पक्ष लेने लगा और छोटे भाई के बन्धुहीन पुत्रों को उसने लाक्षागृह में जलने के लिए भेज दिया ॥ ६ ॥ जब धृतराष्ट्र ने, कुरुराज की देवी द्रौपदी का, जो उनकी पुत्रवधू के समान थी और जो आँसुओं से अपनी छाती भिगा रही थी, पुत्र के द्वारा बाल खींचकर किए गये अपमान—जैसे निंदित काम को नहीं रोका ॥ ७ ॥ जब दुर्योधन ने सत्य-परायण, अजातशत्रु, राजा युधिष्ठिर को जुए में छल से जीत लिया और जुए के पण (दाँव) के अनुसार वे वन चले गए और पुनः राज्य का अपना हिस्सा माँगने पर राजा ने उन्हें नहीं दिया ॥ ८ ॥ जब युधिष्ठिर के भेजे हुए जगद्गुरु भगवान् कृष्ण के अमृतमय वचनों पर राजा ने ध्यान नहीं दिया, क्योंकि उसके थोड़े पुण्य बच रहे थे, वे भी नष्ट हो गये थे ॥ ९ ॥ जब बड़े भाई धृतराष्ट्र ने सलाह करने के लिये विदुर को

राजोवाच—

३—कुत्रक्षत्तुर्भगवतामैत्रेयेणाससंगमः । कदावासहसंवादएतद्वर्णयनःप्रभो ॥

४—नह्यल्पार्थोदयस्तस्यविदुरस्यामलात्मनः । तस्मिन्वरीयसिप्रश्नःसाधुवादोपबृंहितः ॥

सूतउवाच—

५—सएवमृषिवर्योऽयंपृष्टोराज्ञापरीक्षिता । प्रत्याहतंबहुविदप्रीतात्माश्रूयतामिति ॥

श्रीशुकउवाच—

६—यदातुराजास्वसुतानसाधून्पुष्णन्नधर्मेणविनष्टदृष्टिः ।
भ्रातुर्यविष्ठस्यसुतान्विबन्धून्प्रवेश्यलाक्षाभवनेददाह ॥

७—यदासभायांकुरुदेवदेव्याःकेशाभिमर्शंसुतकर्मगर्ह्यं ।
नवारयामासनृपःस्नुषायाःस्वास्रैर्हरन्त्याःकुचकुङ्कुमानि ॥

८—द्यूतेत्वधर्मेणजितस्यसाधोःसत्यावलंबस्यवनागतस्य ।
नयाचतोऽदात्समयेनदायंतमोजुषाणोयदजातशत्रोः ॥

९—यदाचपार्थप्रहितःसभायांजगद्गुरुर्यानिजगाद कृष्णः ।
नतानिपुंसाममृतायनानिराजोरुमेनेक्षतपुण्यलेशः ॥

बुलाया और उनसे सलाह पूछी, उसका जो उत्तर विदुर ने दिया, उस उत्तर में उन्होंने जो नीति बतलायी, उसको नीतिज्ञ-पुरुष विदुरनीति कहते हैं ॥ १० ॥ उन्होंने कहा—तुम अजातशत्रु को उनका हक दे दो, क्योंकि वे तुम्हारे असत्य अपराधों को भाइयों के साथ सह रहे हैं। यद्यपि उनका छोटा भाई भीम साँप के समान फुँफकार छोड़ रहा है, जिससे तुम भयभीत हो रहे हो ॥ ११ ॥ उन पाण्डवों पर भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा है। वे राजाओं के भी राजा हैं। समस्त बड़े-बड़े राजाओं को उन्होंने जीत लिया है। वे यदुवंशियों के आराध्यदेव अपनी नगरी में सुख-पूर्वक वर्तमान हैं ॥ १२ ॥ उन श्रीकृष्ण से द्वेष करनेवाला, यह दुर्योधन शरीरधारी अपराध होकर तुम्हारे घर मे वर्तमान है। तुम पुत्र समझ कर इसका पालन कर रहे हो। अतएव तुम्हारी लक्ष्मी चली गयी है। तुम्हे चाहिये कि अपने समस्त कुल के कल्याण के लिये इस दुष्ट दुर्योधन का त्याग करो ! ॥ १३ ॥

सज्जनों के द्वारा प्रशंसित चरित्रवाले विदुर ने जब ऐसा कहा, तब कर्ण, दुःशासन और शकुनि के साथ दुर्योधन ने उनका अपमान किया ॥ १४ ॥ क्रोध से दुर्योधन का ओंठ फड़क रहा था। इस दुष्ट-दासी पुत्र को किसने यहाँ बुलाया है ! यह जिसके टुकड़ों पर पल रहा है, उसीसे शत्रुता रखता है। शत्रुओं पर अनुराग रखता है। उनके गुण गाता है। इसको शीघ्रही केवल प्राण के साथ निकाल दो। अर्थात् यह अपनी सम्पत्ति न ले जाने पावे ! ॥ १५ ॥ वे विदुर इस प्रकार बड़े तीखे, कानों में बाण के समान लगनेवाले, कठोर वचनों से भाई धृतराष्ट्र के सामने ही घायल किये गये। पर इससे उनको कुछ दुःख नहीं हुआ। क्योंकि इसे भग-

---

१०—यदोपहूतोभवनप्रविष्टोमन्त्रायपृष्टःकिलपूर्वजेन ।
अथाहतन्मन्त्रदृशांवरीयान्यन्मन्त्रिणोवैदुरिकंवदन्ति ॥

११—अजातशत्रोःप्रतियच्छदायंतितिक्षतोदुर्विषहंतवागः ।
सहानुजोयत्रवृकोदराहिःश्वसन्रुषायत्त्वमलंबिभेषि ॥

१२—पार्थांस्तुदेवोभगवान्मुकुन्दोगृहीतवान्सक्षितिदेवदेवः ।
आस्तेस्वपुर्यांयदुदेवदेवोविनिर्जिताशेषनृदेवदेवः ॥

१३—सएषदोषःपुरुषद्विडास्तेगृहान्प्रविष्टोयमपत्यमत्या ।
पुष्णासिकृष्णाद्विमुखोगतश्रीस्त्यजाश्वशैवंकुलकौशलाय ॥

१४—इत्यूचिवांस्तत्रसुयोधनेनप्रवृद्धकोपस्फुरिताधरेण ।
असत्कृतःसत्स्पृहणीयशीलःक्षत्तासकर्णानुजसौबलेन ॥

१५—कएनमत्रोपजुहावजिह्मंदास्याःसुतंयद्बलिनैवपुष्टः ।
तस्मिन्प्रतीपःपरकृत्यआस्तेनिर्वास्यतामाशुपुराच्छ्वसानः ॥

वान की इच्छा समझ कर वे सन्तुष्ट हो गये । धृतराष्ट्र के द्वार पर अपना धनुष रखकर वे वहाँ से निकल पड़े ॥ १६ ॥ जो विदुर बड़े पुण्यों से कौरवों को मिले थे, वे हस्तिनापुर से निकल कर पवित्र चरणवाले भगवान के तीर्थों मे घूमते फिरे । जिन तीर्थों मे सहस्रमूर्ति भगवान् ने निवास किया था ॥ १७ ॥ वे अकेले पवित्र उपवनों, पर्वतों, कुञ्जों, निर्मल जल की नदियों, तालावों तथा भगवान की मूर्ति तथा अन्य चिह्नों से अलंकृत तीर्थों मे गये ॥ १८ ॥

विदुर इस प्रकार पृथ्वी भ्रमण करते हुये व्रतों का पालन करते थे । पवित्र अनिन्दित वृत्ति के द्वारा जीविका-निर्वाह करते थे, सदा स्नान करते थे, जमीन पर सोते थे, शरीर का शृङ्गार आदि न करते थे । इस प्रकार के अवधूत वेश मे छिपे रहते थे और भगवान को प्रसन्न करनेवाले व्रत किया करते थे ॥ १९ ॥ इस प्रकार भ्रमण करते हुये प्रभासक्षेत्र में गये । इतने समय में भगवान् श्रीकृष्ण की सहायता से समस्त पृथ्वी पर युधिष्ठिर का राज्य हो गया । समस्त पृथ्वी में केवल एक युधिष्ठिर का ही राज्य हुआ । केवल एक उन्हीं का राजचिह्न श्वेत छाता रहा॥ २० ॥ वहाँ ही उन्होंने मित्रों के अर्थात् कौरवों के परस्पर विद्वेष विनाश की भी बात सुनी । जिस प्रकार परस्पर की रगड़ से बाँसों में आग उत्पन्न होती है और वह समूचे वन को जला देती है, उसी प्रकार परस्पर की विरोधाग्नि से कौरवों का नाश हो गया है । इससे विदुर को दुःख हुआ, अतएव वे वहाँ से चुपचाप सरस्वती के उद्गम-स्थान की ओर चले ॥ २१ ॥ सरस्वती के तीर पर त्रित, शुक्राचार्य, मनु, पृथु, अग्नि, असित, वायु, सुदास, गौ,

---

१६—सइत्थमत्युल्बणकर्णबाणैर्भ्रातुःपुरोमर्मसुताडितोऽपि ।
स्वयंधनुर्द्वारिनिधायमायागतव्यथोऽयादुरुमानयानः ॥

१७—सनिर्गतःकौरवपुण्यलब्धोगजाह्वयात्तीर्थपदःपदानि ।
अन्वाक्रमत्पुण्यचिकीर्षयोर्व्यांस्वधिष्ठितोयानिसहस्रमूर्तिः ॥

१८—पुरेषुपुण्योपवनाद्रिकुञ्जेष्वपङ्कतोयेषुसरित्सरस्सु ।
अनन्तलिंगैःसमलङ्कृतेषुचचारतीर्थायतनेष्वनन्यः ॥

१९—गांपर्यटन्मेध्यविविक्तवृत्तिःसदाप्लुतोऽधःशयनोऽवधूतः ।
अलक्षितःस्वैरवधूतवेषोव्रतानिचेरेहरितोषणानि ॥

२०—इत्थंव्रजन्भारतमेववर्षंकालेनयावद्गतवान्प्रभास ।
तावच्छशासक्षितिमेकचक्रामेकातपत्रामजितेनपार्थः ॥

२१—तत्राथशुश्रावसुहृद्विनष्टिंवनयथावेणुजवह्निसंश्रय ।
संस्पर्धयादग्धमथानुशोचन्सरस्वतींप्रत्यगियायतूष्णीं ॥

२२—तस्यांत्रितस्योशनसोमनोश्चपृथोरथाग्नेरसितस्यवायोः ।
तीर्थं सुदासस्यगवांगुहस्ययच्छ्राद्धदेवस्यसआसिषेवे ॥

स्वामिकार्तिक और श्राद्धदेव के नामों से प्रसिद्ध तीर्थों का उन्होंने दर्शन किया और वहाँ निवास किया ॥ २२ ॥ ऋषियों और देवताओं के बनाये अन्य अनेक तीर्थों के भी उन्होंने दर्शन किये। जिनमे जगह-जगह भगवान के चिह्न अंकित थे, जिनके दर्शन से भगवान का स्मरण हो जाता है ॥ २३ ॥ वहाँ से चलकर वे धनवान्, सौराष्ट्र, सौवीर, मत्स्य और कुरु-जांगल देशों में जाकर वे यमुना तीर पर गये और वहाँ उन्होंने भगवद्भक्त उद्धव को देखा ॥ २४ ॥ वासुदेव के अनुचर शान्त बृहस्पति के प्राचीन शिष्य उद्धव का गाढ आलिंगन करके विदुर ने भगवान् के भक्त अपने सम्बन्धियों का समाचार इस प्रकार पूछा—॥ २५ ॥

अपने नाभि-कमल से उत्पन्न ब्रह्मा की प्रार्थना से अवतीर्ण पुराण-पुरुष श्रीकृष्ण और बलराम पृथ्वी का कल्याण करके सबको आनन्दित करनेवाले वे राजा शूरसेन के घर में कुशलपूर्वक तो हैं ? ॥ २६ ॥ हमारे पूज्य, कौरवों के परममित्र वे वसुदेव सुख से तो हैं ? जो उदार अपनी बहनों के मनोरथों को पिता के समान पूर्ण करते हैं और इस प्रकार उनके पतियों को सन्तुष्ट करते है ॥ २७ ॥ यादवों के सेनापति वीर प्रद्युम्न सुख से तो हैं, जिनको ब्राह्मणों की आराधना करके रुक्मिणी ने पाया था। जो पहले युग में कामदेव थे, जिन्होंने राजगद्दी की आशा छोड़ दी थी और जिनका राज्याभिषेक कमल-नेत्र श्रीकृष्ण ने किया था, वे सात्वत, वृष्णि, भोज, दाशार्ह आदि के स्वामी शूरसेन सुखपूर्वक तो है ? ॥ २८-२९ ॥ सौम्य उद्धव, रथियों मे श्रेष्ठ, सुन्दर आँखों वाले, कृष्ण के पुत्र साम्ब, तो अच्छे हैं ? जिनको व्रतों मे लगी

२३—अन्यानिचेहद्विजदेवदेवैःकृतानिनानायतनानिविष्णोः ।

प्रत्यंगमुख्यांकितमंदिराणियद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरंति ॥

२४—ततस्त्वतिव्रज्यसुराष्ट्रमृद्धं सौवीरमत्स्यान्कुरुजांगलांश्च। कालेनतावद्यमुनामुपेत्यतत्रोद्धवंभागवतंददर्श॥

२५—सवासुदेवानुचरंप्रशान्तंबृहस्पतेःप्राक्तनयंप्रतीतम् ।

आलिंग्यगाढंप्रणयेनभद्रंस्वानामपृच्छद्भगवत्प्रजानां ॥

२६—कच्चित्पुराणौपुरुषौस्वनाभ्यपाद्मानुवृत्त्येहकिलावतीर्णौ ।

आसातउर्व्याःकुशलंविधायकृतक्षणौकुशलंशूरगेहे ॥

२७—कच्चित्कुरूणांपरमःसुहृन्नोभामःसआस्तेसुखमंगशौरिः ।

योवैस्वसॄणांपितृवद्ददातिवरान्वदान्योवरतर्पणेन ॥

२८—कच्चिद्वरूथाधिपतिर्यदूनांप्रद्युम्नआस्तेसुखमंगवीरः ।

यंरुक्मिणीभगवतोऽभिलेभेआराध्यविप्रान्स्मरमादिसर्गे ॥

२९—कच्चित्सुखंसात्वतवृष्णिभोजदाशार्हकाणामधिपःसआस्ते ।

यमभ्यषिंचच्छतपत्रनेत्रोनृपासनाशांपरिहृत्यदूरात् ॥

रहनेवाली जाम्ववती ने उत्पन्न किया है,जो पूर्वजन्म में कार्तिकेय थे,जिन्हें पार्वती ने अपने गर्भ में धारण किया था ॥ ३० ॥ वे युयुधान् (सात्यकि) तो कुशल से हैं, जिन्होंने अर्जुन से धनुर्विद्या की शिक्षा पायी है और भगवान् की सेवा से योगियों के लिए भी दुर्लभ जिन्होंने भगवान की गति पायी है ॥ ३१ ॥ श्वफल्क के पुत्र विद्वान् अक्रूर, जो भगवान् के भक्त हैं और निष्पाप है, वे तो कुशल से हैं ? अधिक प्रेम से धैर्य नष्ट होने के कारण उस मार्ग की धूलि में लोटते थे, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण पैरों से चले गये थे ॥ ३२ ॥ देवक-भोज की पुत्री अदिति के समान विष्णु की माता देवकी तो कुशल से है ? जिन्होंने अपने गर्भ में भगवान को धारण किया था, जिस प्रकार त्रयी (तीनों वेद की समष्टि) यज्ञ-कर्मों को धारण करती है ॥३३॥ उपासकों के मनोरथ पूर्ण करनेवाले भगवान् अनिरुद्ध तो सुखपूर्वक हैं ? जिनको वेद शब्द का कारण वतलाते हैं। जो मन के प्रवर्तक हैं तथा अन्त:करण के 'चौथे' तत्व हैं (मन, वुद्धि, चित्त, अहंकार—ये चार अन्तःकरण की उपाधियाँ हैं) वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध उनके स्वामी हैं। चौथा तत्व मन है, उसके स्वामी अनिरुद्ध हैं। मन शब्द का कारण है, यह वात प्रसिद्ध है। शिक्षा में लिखा है—आत्मा वुद्ध्या समेत्यार्थान्, मनोयुंक्ते विवक्षया। मन. कायाग्नि माहन्ति, सप्रेरयति मारुतं। मारुतस्तूरसिचरन् ,मन्द्रं जनयति स्वरे। अर्थात् वुद्धि की सहायता से आत्मा अर्थों को एकत्र करती है और उन अर्थों को प्रकाशित करने के लिए मन को प्रेरित करती है, मन शरीराग्नि को आहत करता है। जिससे वायु प्रेरित होती है। वायु हृदय में चक्कर काटती है, जिससे स्वर उत्पन्न होता है, इस प्रकार मन का शब्द कारण होना प्रसिद्ध ही है।) ॥ ३४ ॥ सौम्य-उद्धव, जो अनन्य वृत्ति से श्रीकृष्ण का अनुसरण करते हैं, वे हृदीक्, सत्यभामा के पुत्र चारुदेष्ण और गद आदि कुशल से तो हैं ? ॥ ३५ ॥

३०—कच्चिद्धरेःसौम्यसुतःसदृक्षआस्तेऽग्रणीरथिनासाधुसाम्ब. ।
असूतयंजाम्बवतीव्रताढ्यादेवंगुहंयोऽम्बिकयाधृतोऽग्रे ॥

३१—क्षेमसकच्चिद्युयुधानआस्तेयःफाल्गुनाल्लब्धधनूरहस्यः ।
लेभेंऽजसाधोक्षजसेवयैवगतिंतदीयायतिभिर्दुरापां ॥

३२—कच्चिद्बुधःस्वस्त्यनमीवआस्तेश्वफल्कपुत्रोभगवत्प्रपन्नः ।
यःकृष्णपादांकितमार्गपांसुष्वचेष्टतप्रेमविभिन्नधैर्यः ॥

३३—कच्चिच्छिवंदेवकभोजपुत्र्याविष्णुप्रजायाइवदेवमातुः ।
यावैस्वगर्भेणदधारदेवंत्रयीयथायज्ञवितानमर्थं ॥

३४—अपिस्विदास्तेभगवान्सुखंवोयःसात्वतांकामदुघोनिरुद्धः ।
यमामनन्तिस्महशब्दयोनिंमनोमयंसत्त्वतुरीयतत्त्वम् ॥

३५—अपिस्विदन्येचनिजात्मदैवमनन्यवृत्त्यासमनुव्रतायेहृदीकसत्यात्मजचारुदेष्णगदादयःस्वस्तिचरंतिसौम्य॥

राजा युधिष्ठिर, अपनी भुजारूप अर्जुन और भगवान के साथ धर्मपूर्वक धर्म की मर्यादा का तो पालन करते हैं ? जिसकी सभा में उनकी विजयों और चक्रवर्ती के समान विभूतियों को देखकर दुर्योधन दुखी हुआ था ॥ ३६ ॥ अपराध करनेवाले शत्रुओं पर सर्प के समान क्रोध रखनेवाले भीमसेन ने बहुत दिनों का संचित अपना क्रोध अभी छोड़ा या नहीं। जो गदा लेकर विचित्र तरह से मार्ग में चलते हैं और जिनके चरणों का भार रणभूमि भी नहीं सह सकती ॥ ३७ ॥ रथ-यूथपों मे जिनकी बडी कीर्ति है, वे गाण्डीवधारी अर्जुन तो शत्रुहीन हो गये ? अब तो कोई उनका शत्रु नहीं रह गया ? जिन पर माया से किरातरूप धारी और जिनके बाणों से छिपे हुए भगवान् शिव प्रसन्न हुए थे ॥ ३८ ॥ पृथा के पुत्र और पार्थों के द्वारा रक्षित, पपनी द्वारा रक्षित आँखों के समान, नकुल और सहदेव आनन्द पूर्वक खेलते तो हैं ? क्योंकि युद्ध में शत्रु से अपना राज्य उन लोगों ने ले लिया है, जिस प्रकार इन्द्र के मुँह से गरुड ने अमृत ले लिया था ॥ ३९ ॥ राजर्षिश्रेष्ठ पाण्डु के बिना पृथा (कुन्ती क्या अपने पुत्रों के लिए अभी जीवीत है ? जो राजर्षि बड़े वीर और अधिरथ थे, जिन्होंने केवल धनुष की सहायता से चारो दिशाएँ जीती थीं ॥ ४० ॥ सौम्य उद्धव, मैं अपने अधः पतित भाई धृतराष्ट्र के लिए शोक करता हूँ। जिसने अपने मृत भाई पाण्डु के साथ, उनके पुत्रों को दुःख देकर, द्रोह किया है और जिसने मुझे अपने नगर से निकाल दिया। यद्यपि मैं उसका मित्र था और जो अपने दुष्ट पुत्रों के कहने के अनुसार चलता है ॥ ४१ ॥ इससे मैं भी भगवान् की कृपा से उनके स्थानों तथा माहात्म्य को देखता हुआ, सब प्रकार के अहंकार छोडकर और सबसे छिपकर सुख से घूम रहा हूँ। जिस भगवान ने मर्त्यरूप धारण करके मनुष्यों की दृष्टियों को भ्रम में

३६—अपिस्विदोर्भ्याविजयाच्युताभ्याधर्मेणधर्मःपरिपातिसेतुं ।
दुर्योधनोऽतप्यतयत्सभायासाम्राज्यलक्ष्म्याविजयानुवृत्या ॥

३७—किंवाकृताघेष्वघमत्यमर्षीभीमोऽहिवद्दीर्घतमव्यमुंचत् । यस्याङ्घ्रिपातरणभूर्नसेहेमार्गंगदायाश्चरतोविचित्रं॥

३८—कच्चिद्यशोधारथयूथपानागाण्डीवधन्वोपरतारिरास्ते । अलक्षितोयच्छरकूटगूढोमायाकिरातोगिरिशस्तुतोष॥

३९—यमावुतस्वित्तनयौपृथायाःपार्थैर्वृतौपक्ष्मभिरक्षिणीव ।
रेमातउद्दायमृधेस्वरिक्थंपरात्सुपर्णाविववज्रिवक्त्रात् ॥

४०—अहोपृथाऽपिध्रियतेऽर्भकार्थेराजर्षिवर्येणविनाऽपितेन ।
यस्त्वेकवीरोऽधिरथोविजिग्येधनुर्द्वितीयःककुभश्चतस्रः ॥

४१—सौम्यानुशोचेतमधःपतंतंभ्रात्रेपरेतायविदुद्रुहेयः । निर्यापितोयेनसुहृत्स्वपुर्याअहस्वपुत्रान्समनुव्रतेन ॥

४२—सोऽहंहरेर्मर्त्यविडंबनेनदृशोनृणाञ्चालयतोविधातुः ।
नान्योपलक्ष्यःपदवींप्रसादाच्चरामिपश्यन्गतविस्मयोऽत्र ॥

डाल दिया है, उनका माहात्म्य मैं देख रहा हूँ ॥ ४२ ॥ विद्या-धन और कुल के मद से उन्मत्त कुपथगामी राजाओं का वध तथा भक्तों की पीड़ा दूर करने के लिए भगवान् ने उस समय कौरवों के अपराधों की उपेक्षा की, दण्ड न दिया ॥ ४३ ॥ भगवान् अजन्मा हैं, पर कुमार्ग-गामियों का नाश करने के लिए जन्म लेते हैं। वे अकर्मा हैं, पर मनुष्यों को कर्म में प्रवृत्त कराने के लिए कर्म करते है, नहीं तो कौन मनुष्य का शरीर जो गुणातीत है, वह धारण करेगा और कर्मों के आधीन होगा ? ॥ ४४ ॥ अपने भक्त, समस्त लोकपालों तथा अपनी आज्ञा का पालन करनेवालों के कल्याण के लिए, भगवान ने यदुवंश में अवतार लिया है। सखे उद्धव, आप उस पवित्रकीर्ति भगवान् की बातें कहिए ॥ ४५ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कंध का पहला अध्याय समाप्त
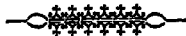
४३—नूननृपाणांत्रिमदोत्पथानामहींमुहुश्चालयतांचमूभिः ॥
वधात्प्रपन्नार्तिजिहीर्षयेशोऽभ्युपैक्षताघंभगवान्कुरूणाम् ॥

४४—अजस्यजन्मोत्पथनाशनायकर्माण्यकर्तुर्ग्रहणायपुंसाम् ।
नन्वन्यथाकोऽर्हतिदेहयोगंपरोगुणानामुतकर्मतन्त्रम् ॥

४५—तस्यप्रपन्नाखिललोकपानामवस्थितानामनुशासनेस्वे ।
अर्थायजातस्ययदुष्वजस्यवार्तांसखेकीर्तयतीर्थकीर्तेः ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेतृतीयस्कंधेविदुरोद्धवसंवादेप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

——:०*०:——

जो पुरुष इस स्तोत्र के द्वारा मेरी स्तुति करके मेरा भजन करेगा, उस पर सब प्रकार के मनोरथों को पूरा करने वाला मैं प्रसन्न होऊँगा, अनुग्रह करूँगा। बाग, कुँआ, आदि बनवा कर, तपस्या, यज्ञ, दान, योग, समाधि के द्वारा जो मनुष्यों को प्राप्ति होती है, वह मेरी प्रीति ही है, ऐसा तत्ववेत्ता कहते हैं। हे विधाता, मैं अहंकारोपाधिवाले जीवों की आत्मा हूँ, अत्यन्त प्रियों का भी प्रिय हूँ। अतएव, मुझ से प्रेम करना चाहिए। क्योंकि देह आदि से जो प्रेम किया जाता है, वह भी मेरे ही लिये। सर्व वेदमय मुझसे उत्पन्न आप प्रजा की सृष्टि करे, जो प्रजा मुझ मे निद्रित अवस्था मे वर्तमान है, जिसकी आपने पहले सृष्टि की थी ॥ ४०-४३ ॥

मैत्रेय बोले—प्रकृति और जीव के स्वामी भगवान जगत की सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा से संसार को उत्पन्न करने की रीति बताकर अपने स्वरूप से अन्तर्धान हो गये ॥ ४४ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कंध का नवाँ अध्याय समाप्त

४०—यएतेनपुमान्नित्यंस्तुत्वास्तोत्रेणमामभजेत् । तस्याशुसम्प्रसीदेयसर्वकामवरेश्वरः ॥

४१—पूर्तेनतपसायज्ञैर्दानैर्योगसमाधिना । राद्धनिःश्रेयसंपुंसामत्प्रीतिस्तत्त्वविन्मत ॥

४२—अहमात्मात्मनांधातःप्रेष्ठःसन्प्रेयसामपि । अतोमयिरतिंकुर्याद्देहादिर्यत्कृतेप्रियः ॥

४३—सर्ववेदमयेनेदमात्मनात्मात्मयोनिना । प्रजाःसृजयथापूर्वं याश्चमय्यनुशेरते ॥

मैत्रेयउवाच—

४४—तस्माएवंजगत्स्रष्ट्रेप्रधानपुरुषेश्वरः । व्यज्येदंस्वेनरूपेणकंजनाभस्तिरोदधे ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेतृतीयस्कन्धेपद्मोद्भवेविदुरमैत्रेयसंवादेनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

———:o:———

दसवाँ अध्याय

प्राकृतिक-सृष्टि

विदुर बोले—भगवान् के अन्तर्धान होनेपर लोक-पितामह ब्रह्मा ने शरीर और मन से कितने प्रकार की सृष्टि की। हे बहुज्ञ, भगवन्, जिन-जिन विषयों के प्रश्न मैंने किये हैं, उन सब का क्रम से उत्तर देकर आप मेरे सन्देहों को दूर करें ॥ १-२ ॥

सूत बोले—हे शौनक, इस प्रकार विदुर के प्रेरित करने पर मैत्रेय मुनि प्रसन्न हुए और उन्होंने विदुर के उन प्रश्नों का भी उत्तर दिया, जो पहले किये गये थे और जो मुनि के हृदय में वर्तमान थे ॥ ३ ॥

मैत्रेय बोले—भगवान के कहने के अनुसार भगवान में अपना मन लगाकर ब्रह्मा ने देवताओं के हजार वर्षों तक तपस्या की। कमल से उत्पन्न ब्रह्मा ने देखा कि प्रलयकाल से, प्रवृद्धवेगवाले वायु से, वह जल और कमल जिस पर ब्रह्मा बैठे थे, वे काँप रहे हैं। उस समय ब्रह्मा का ज्ञान बहुत दिनों की तपस्या तथा आत्मज्ञान से बहुत बढ़ा हुआ था, अतएव जल के साथ वायु को ब्रह्मा ने पी लिया। अनन्तर आकाश तक फैले हुए अपने आधार कमल की ओर देखकर ब्रह्मा ने विचार किया कि पहले सभी लोक इसी कमल में लीन हुए हैं, अतएव इससे ही मैं लोकों की कल्पना (निर्माण) करूँगा। उस समय भगवान के द्वारा सृष्टि करने के लिए प्रेरित ब्रह्मा ने कमल में प्रवेश किया और उसे तीन भागों में विभक्त

विदुरउवाच—

१—अंतर्हितेभगवतिब्रह्मालोकपितामहः। प्रजाःससर्जकतिधादैहिकीर्मानसीर्विभुः ॥

२—येचमेभगवन्पृष्टास्त्वय्यर्थाबहुवित्तम। तान्वदस्वानुपूर्व्येणछिंधिनःसर्वसंशयान् ॥

सूतउवाच—

३—एवंसचोदितस्तेनक्षत्त्राकौशारवोमुनिः।प्रीतःप्रत्याहवान्प्रश्नान्हृदिस्थानथभार्गव ॥

मैत्रेयउवाच—

४—विरिंचोपितथाचक्रेदिव्यंवर्षशतंतप.। आत्मन्यात्मानमावेश्ययथाहभगवानजः ॥

५—तद्विलोक्याब्जसंभूतोवायुनायदधिष्ठितः। पद्ममम्भश्चतत्कालकृतवीर्येणकम्पितम् ॥

६—तपसाह्येधमानेनविद्ययाचात्मसंस्थया। विवृद्धविज्ञानबलोन्यपाद्वायुंसहांभसा ॥

७—तद्विलोक्यवियद्व्यापिपुष्करंयदधिष्ठितं। अनेनलोकान्प्राग्लीनान्कल्पिताऽस्मीत्यचिंतयत् ॥

किया। क्योंकि वह कमल इससे भी अधिक, चौदहलोकों के रूप में विभक्त किया जा सकता था। ये तीनों लोक जीवों के कर्मफल भोग के लिए बनाए गये। अतएव वे विनाशी हैं। ब्रह्मा के प्रत्येक दिन में इनकी उत्पत्ति और नाश होता है। और ब्रह्म-लोक आदि निष्काम कर्मों के फल रूप हैं, अतएव वे नित्य हैं।।उनकी सृष्टि प्रति दिन होती ॥ ८-९ ॥

विदुर बोले—प्रभो, बहुरूपधारी, अद्भुत कर्मा भगवान् के कालस्वरूप होने का वर्णन आपने किया है, उस कालस्वरूप का लक्षण बतलाइये ॥ १० ॥

मैत्रेय बोले—सत्, रज, तम और महत्तत्व का परिणाम काल है। उसका कोई आकार नहीं, आदि-अन्त नहीं। काल को निमित्त बनाकर ही भगवान् ने लीला से अपने स्वरूप को, संसार रूप से प्रकट किया। विष्णु की माया से नष्ट यह संसार ब्रह्मरूप हो गया, अर्थात् प्रलयकाल मे ब्रह्म में लीन हो गया। पुनः कालरूप ईश्वर ने जिनकी मूर्ति अव्यक्त है, उन्होंने इसे प्रकाशित किया अर्थात् उत्पन्न किया। जिस प्रकार इस समय यह सृष्टि काल के वश मे है, इसी प्रकार पहले भी थी और आगे भी रहेगी। काल के द्वारा उत्पन्न होनेवाली सृष्टि नव प्रकार की है, जो प्राकृत सृष्टि कही जाती है। वैकृत सृष्टि दसवीं है। काल, द्रव्य और गुण से इस संसार का प्रलय तीन प्रकार का कहा जाता है॥ काल के द्वारा होनेवाला प्रलय नित्य प्रलय कहा जाता है। किसी निमित्त से होनेवाला प्रलय नैमित्तिक है और अपने-अपने कारणों में प्रदार्थों के लय होने से जो प्रलय होता है, वह प्राकृतिक प्रलय है।

भगवान की इच्छा से गुणों के परिणाम रूप महत्तत्व की उत्पत्ति हुई, यह पहली सृष्टि है। दूसरी सृष्टि अहंतत्व की हुई, जिससे ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और अहंकार उत्पन्न हुए। तीसरी सृष्टि पंचभूतों की हुई, जिनसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तथा तन्मात्रा की सृष्टि हुई।

८—पद्मकोशंतदाविश्यभगवत्कर्मचोदितः। एकव्यभांक्षीदुरुधात्रिधाभाव्यंद्विसप्तधा ॥

९—एतावान्जीवलोकस्यसंस्थाभेदःसमाहृतः। धर्मस्यह्यनिमित्तस्यविपाकःपरमेष्ठ्यसौ ॥

विदुरउवाच—

१०—यदात्थबहुरूपस्यहरेरद्भुतकर्मणः। कालाख्यंलक्षणंब्रह्मन्यथावर्णयनःप्रभो ॥

मैत्रेयउवाच—

११—गुणव्यतिकराकारोनिर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः। पुरुषस्तदुपादानमात्मानंलीलयाऽसृजत् ॥

१२—विश्वंवैब्रह्मतन्मात्रंसंस्थितंविष्णुमायया। ईश्वरेणपरिच्छिन्नंकालेनाव्यक्तमूर्तिना ॥

१३—यथेदानींतथाऽग्रेचपश्चादप्येतदीदृशं। सर्गोनवविधस्तस्यप्राकृतोवैकृतस्तुयः ॥

१४—कालद्रव्यगुणैरस्यत्रिविधःप्रतिसंक्रमः। आद्यस्तुमहतःसर्गोगुणवैषम्यमात्मनः ॥

१५—द्वितीयस्त्वहमोयत्रद्रव्यज्ञानक्रियादयः। भूतसर्गस्तृतीयस्तुतन्मात्रोद्रव्यशक्तिमान् ॥

चौथी सृष्टि इन्द्रियों की हुई जिनसे ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय की उत्पत्ति हुई। पाँचवीं सृष्टि इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता और मन की हुई। छठवीं सृष्टि तम की हुई, अर्थात पाच् भेदोंवाली अविद्या की हुई, जो तम जीवों का आवरण और विक्षेप करनेवाला है। ये छः सृष्टियाँ प्राकृत हैं। अब वैकृत सृष्टि का वर्णन तुम सुनो।

जिस भगवान मे रहनेवाली बुद्धि ससार का नाश करती है, उसी रजोगुण युक्त भगवान की लीला यह सृष्टि है। स्थावर पदार्थों की छः प्रकार की सृष्टि सातवीं सृष्टि है और यह मुख्य है। वे ये हैं—वनस्पति, ओषधि, त्वक्सार (भीतर से खोखले), वीरुध् और वृक्ष, इस सृष्टि वाले आहार को, जीवन सामग्री को ऊपर की ओर खींचते हैं। इनका चैतन्य अव्यक्त है। इन्हें स्पर्श का ज्ञान होता है, पर उसका अनुभव कर सकते हैं, प्रकाश नहीं। इनमें नियमित अनेक प्रकार के भेद होते हैं। पक्षियों की सृष्टि आठवीं सृष्टि है और उसके अट्ठाईस भेद हैं, ये पक्षी अज्ञान तमोगुणी सूँघकर जाननेवाले और किसी विषय का स्मरण न रखनेवाले होते हैं। गो, बकरा, भैंस, कृष्णमृग, शूकर, गवय, रुरुमृग, भेंड़, और ऊँट—ये पशु दो खुरवाले होते हैं, गदहा, घोड़ा, खच्चर, गौरमृग, चमरी—ये एक खुरवाले होते हैं। हे विदुर, अब पाँच नखवाले पशुओं का वर्णन सुनो, कुत्ता, शृगाल, भेड़िया, बाघ, बिल्ली, खरगोश, शल्की, सिंह, वानर, हाथी, कछुआ, गोह, और मगर आदि जलचरप्राणी, कंकपक्षी, गीध, बटेर, बाज, भास, भालु, मयूर, हंस, सारस, चकवा, काक, उल्लू, आदि पक्षी भी पाँच नखवाले होते हैं। विदुर, जो आहार नीचे की ओर करते हैं, वे अर्वाक् स्तोत कहे जाते हैं। वैसी सृष्टि मनुष्यों की एक ही है, जो नवीं सृष्टि है। इनमें रजोगुण अधिक होता है, ये कर्म करने

१६—चतुर्थऐन्द्रियःसर्गोयस्तुज्ञानक्रियात्मकः। वैकारिकोदेवसर्गःपचमोयन्मयमन. ॥

१७—षष्ठस्तुतमसःसर्गोयस्त्वबुद्धिकृतःप्रभो। षडिमेप्राकृताःसर्गावैकृतानपिमेशृणु ॥

१८—रजोभाजोभगवतोलीलेयहरिमेधसः। सप्तमोमुख्यसर्गस्तुषड्विधस्तस्थुषाचयः ॥

१९—वनस्पत्यौषधिलतात्वक्सारावीरुधोद्रुमाः। उत्स्रोतसस्तमःप्रायाअंतस्पर्शाविशेषिणः ॥

२०—तिरश्चामष्टमःसर्गःसोऽष्टाविंशतिधामतः। अविदोभूरितमसोघ्राणज्ञाहृद्यवेदिनः ॥

२१—गौरजोमहिषःकृष्णःसूकरोगवयोरुरुः। द्विशफा.पशवश्चेमेअविरुष्ट्रश्चसत्तम ॥

२२—खरोऽश्वोऽश्वतरोगौरःशरभश्चमरीयथा। एतेचैकशफाःक्षत्तःशृणुपचनखान्पशून् ॥

२३—श्वासृगालोवृकोव्याघ्रोमार्जारःशशशल्लकौ। सिंहःकपिर्गजःकूर्मोगोधाचमकरादयः ॥

२४—कंकगृध्रवटश्येनभासभल्लूकबर्हिणः। हंससारसचक्राह्वकाकोलूकादयःखगाः ॥

२५—अर्वाक्स्रोतस्तुनवमःक्षत्तरेकविधोनृणाम्। रजोऽधिकाःकर्मपरादुःखेचसुखमानिनः ॥

२६—वैकृतास्त्रयएवैतेदेवसर्गश्चसत्तम। वैकारिकस्तुयःप्रोक्तःकौमारस्तूभयात्मक. ॥

में तत्पर रहते हैं और दुःख में सुख समझते हैं । स्थावर, तिर्यङ् और मनुष्य की सृष्टि वैकृत सृष्टि कही जाती है । देव सृष्टि वैकृत् सृष्टि है, यह बात पहले कही जा चुकी है । और सनत्कुमार आदि की सृष्टि प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकार की है। वैकृत देव-सृष्टि आठ प्रकार की होती है। देवता, पितर असुर, गन्धर्व अप्सरा, सिद्ध, यक्ष, राक्षस, चारण, भूत-प्रेत-पिशाच, विद्याधर-किन्नर, आदि, विदुर, ब्रह्मा की बनायी, ये दस सृष्टियाँ है। जिसका वर्णन मैंने तुम से किया। अब मैं वंशों और मन्वन्तरों का वर्णन करूँगा । रजोगुण से युक्त होकर, कल्प के आदि मे, आत्मभू ब्रह्मा स्वयं अपने ही आत्मा के द्वारा आत्मा मे सृष्टि करते है, उनका संकल्प कभी असफल नहीं होता ।। ११ ।। ३० ।।

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कंध का दसवाँ अध्याय समाप्त

——❀——

ग्यारवाँ अध्याय

काल–गणना

मैत्रेय बोले—कार्य के अंशों का जो अन्तिम अंश है, अर्थात् जिसका अंश नहीं हो सकता और जो अनेक हैं, अर्थात् जिसने कार्य रूप नहीं पाया है, असयुत है, अर्थात् जिसका

२७—देवसर्गश्चाष्टविधोविबुधाःपितरोऽसुराः । गंधर्वाऽप्सरसःसिद्धायक्षरक्षांसिचारणाः ॥

२८—भूतप्रेतपिशाचांश्चविद्याध्राःकिन्नरादयः । दशैतेविदुराख्याता.सर्गास्तेविश्वसृक्कृता. ।

२९—अतःपरंप्रवक्ष्यामिवंशान्मन्वंतराणिच । एवंरजःप्लुतःस्रष्टाकल्पादिष्वात्मभूर्हरिः ॥

३०—सृजत्यमोघसंकल्पआत्मैवात्मानमात्मना ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेतृतीयस्कंधेदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

——❀——

मैत्रेयउवाच—

१—चरमःसद्विशेषाणामनेकोसंयुतः सदा । परमाणु.सविज्ञेयोनृणामैक्यभ्रमोयतः ॥

समुदाय नहीं है। अतएव कार्य और समुदाय के नष्ट होनेपर भी जो वर्तमान रहता है, वह परमाणु कहा जाता है। इन परमाणुओं के एकत्र होनेपर, मनुष्यों को अर्थात् व्यवहार करनेवालों को ऐक्य का भ्रम हो जाता है, अर्थात् वे समझने लगते हैं कि यह समूह अनेक अवयवों से बना हुआ है। कार्यों का जो अपने स्वरूप मे वर्तमान है, जिनमे परिणाम उत्पन्न नहीं हुआ है, उनका कैवल्य अर्थात् समूह परम महान कहा जाता है। विशेष और भेद, ज्ञान के हट जानेपर यह समस्त प्रपंच परम महान कहा जाता है। जिस प्रकार पदार्थ स्थूल और सूक्ष्म होते हैं, उसी प्रकार काल की भी सूक्ष्मता और स्थूलता का अनुमान किया जाता है। परमाणुओं की व्याप्ति से अर्थात् जितनी जगह में वे फैले रहते है, उस जगह पर सूर्य के फैलने के अनुसार काल की सूक्ष्मता और स्थूलता का अनुमान होता है, इस प्रकार विभु और अव्यक्त-काल व्यक्त होता है, अर्थात् व्यवहार योग्य होता है, कार्यों के परमाणु के समान जो काल होता है, वह परमाणुकाल कहा जाता है और उनका समूह परम महान्-काल कहा जाता है। दो परमाणु एक अणु होते हैं और तीन त्रसरेणु। खिड़की के छेद से आनेवाली सूर्य की किरणों मे यह दीख पडता है और लघुता के कारण आकाश की ओर उठता है। तीन त्रसरेणुओं का भोग करनेवाला काल त्रुटि कहा जाता है। सौ त्रुटियों का काल वेघ कहा जाता है और तीन वेघ का एक लव होता है, तीन लव का एक निमेष और तीन निमेष का एक क्षण होता है। पाँच क्षण की एक काष्ठा और पन्द्रह काष्ठा का एक लघु, पन्द्रह लघु की एक नाड़िका, दो नाडिकाओं का एक मुहूर्त, छः या सात नाडियों का एक याम होता है, जिसे मनुष्यों का प्रहर कहते हैं। साढे बारह पल और चार माशे सोने की बनी चार अगुल की सलाई से विंधे एक सेर का पात्र जितने समय में जल भरने से वह जल मे डूब जाय, उसको नाड़िका कहते हैं। चार-चार प्रहर के मनुष्यों का दिन और रात होती है। पन्द्रह दिन-

---

२—सतएवपदार्थस्यस्वरूपावस्थितस्ययत्। कैवल्यपरममहानविशेषोनिरतरः॥

३—एवकालोप्यनुमितःसौक्ष्म्येस्थल्येचसत्तम। सस्थानभुक्त्याभगवानव्यक्तोव्यक्तभुग्विभुः॥

४—सकालःपरमाणुर्वैयोभुक्तेपरमाणुताम्। ततोविशेषभुग्यस्तुसकालःपरमोमहान्॥

५—अणुर्द्वौपरमाणूस्यात्त्रसरेणुस्त्रय.स्मृतः। जालार्करश्म्यवगत'खमेवानुपतन्नगात्॥

६—त्रसरेणुत्रिकभुक्तेयःकाल.सत्रुटि.स्मृतः। शतभागस्तुवेध.स्यात्तैस्त्रिभिस्तुलव.स्मृत.॥

७—निमेषस्त्रिलवोज्ञेयआम्नातस्तेत्रयःक्षण'। क्षणान्पचविदु.काष्ठालघुतादशपचच॥

८—लघूनिवैसमाम्नातादशपचचनाडिका। तेद्वेमुहूर्तःप्रहर षड्याम.सप्तवानृणा॥

९—द्वादशार्धपलोन्मानचतुर्भिश्चतुरगुलै.। स्वर्णमाषै.कृतच्छिद्रयावत्प्रस्थजलप्लुतम्॥

१०—यामाश्चत्वारश्चत्वारोमर्त्यानामहनीउभे। पक्षःपचदशाहानिशुक्ल.कृष्णश्चमानद॥

रात का एक पक्ष होता है, शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष होते हैं, दो पक्षों का एक महीना होता है। मनुष्यों का एक मास, पितरों की दिन-रात होती है। दो-दो महीने की एक ऋतु होती है। छः-छः महीने का दक्षिणायन और उत्तरायण होता है, इन दो अयनों का देवताओं का रात-दिन होता है। बारह महीनों का एक वर्ष होता है, सौ वर्ष मनुष्यों की परमायु बतलायी गयी है। चन्द्र आदि ग्रह, अश्विनी आदि नक्षत्रों के मण्डल में रहनेवाले कालरूप भगवान सूर्य, परमाणु से लेकर संवत्सर समाप्त होने तक बारह राशिओं मे भ्रमण कर आते हैं। संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर ये सब एक ही हैं। सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति, सावन, नक्षत्र आदि भेदों से ये नाम भेद हैं। जो भगवान काल कार्य उत्पन्न करनेवाले, बीजों मे अंकुर आदि उत्पन्न करने की शक्ति अपने कालरूप शक्ति से अनेक रूपों में प्रकट करते हैं तथा आकाश में भ्रमण करते हैं, वे एक भूत तेजोमण्डल में रहनेवाले सूर्य हैं, मनुष्य के भ्रम दूर करने के लिए वे सकाम पुरुषों को यज्ञ आदि के द्वारा यज्ञों का विस्तार करनेवाले उन पाँच वत्सर रूप भगवान की तुम सब लोग पूजा करो॥ १—१५॥

विदुर बोले—पितर, देवता और मनुष्यों की आयु का यही परिमाण है, अर्थात ये सभी अपने काल परिमाण के अनुसार सौ वर्षों तक जीते है। पर जो कल्प के बाहर हैं, त्रिलोक के बाहर हैं उनकी आयु का परिणाम बतलाइए। भगवन् (आप) काल की गति जानते हैं क्योंकि योगाभ्यास के द्वारा सिद्ध नेत्रों से धीर पुरुष समस्त विश्व को देख सकते हैं॥ १६-१७॥

मैत्रेय बोले—सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये चार युग होते हैं। देवताओं के बारह हजार वर्षों का यह चतुर्युग होता है। प्रत्येक युग की संध्या और संध्यांश होते हैं। उन प्रत्येक का परिमाण क्रम से चार, तीन, दो और एक सौ वर्ष है और युग का परिमाण इसी प्रकार चार,

---

११—तयोःसमुच्चयोमासःपितृणांतदहर्निशं। द्वौतावृतुःषडयनंदक्षिणंचोत्तरंदिवि॥

१२—अयनेचाहनीप्राहुर्वत्सरोद्वादशस्मृतः। संवत्सरशतंनृणांपरमायुर्निरूपितं।

१३—ग्रहर्क्षताराचक्रस्थःपरमाण्वादिनाजगत्। संवत्सरावसानेनपर्येत्यनिमिषोविभुः॥

१४—संवत्सरःपरिवत्सरइडावत्सरएवच। अनुवत्सरोवत्सरश्चविदुरैवंप्रभाष्यते॥

१५—यःसृज्यशक्तिमुरुधोच्छ्वसयन्स्वशक्त्यापुंसोभ्रमायदिविधावतिभूतभेदः।

कालाख्ययागुणमयंक्रतुभिर्वितन्वंस्तस्मैबलिंहरतवत्सरपंचकाय॥

विदुरउवाच—

१६—पितृदेवमनुष्याणामायुःपरमिदंस्मृतम्। परेषांगतिमाचक्ष्वयेस्युःकल्पाद्बहिर्विदः॥

१७—भगवान्वेदकालस्यगतिंभगवतोननु। विश्वंविचक्षतेधीरायोगराद्धेनचक्षुषा॥

मैत्रेयउवाच—

१८—कृतंत्रेताद्वापरंचकलिश्चेतिचतुर्युगम्। दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैःसावधानंनिरूपितम्॥

तीन दो और एक हजार वर्ष है। इस तरह सत्ययुग का परिमाण चार हजार वर्ष, उसकी सध्या और सध्यांश का चार-चार सौ के हिसाव से आठ सौ वर्ष, त्रेतायुग का परिमाण तीन हजार वर्ष, सध्या और सध्याश की तीन,तीन सौ के हिसाव से छः सौ वर्ष हुए, द्वापर युग का परिमाण दो हजार वर्ष, उसकी संध्या और सध्याश का दो-दो सौ के हिसाव से चार सौ वर्ष, कलियुग का परिमाण एक हजार वर्ष हुए, यह वर्ष देवताओं का समझना चाहिए। सत्संख्यावाली सध्या और संध्याश के बीच मे जो काल है, वह युग का काल है। उस युगकाल में भिन्न-भिन्न धर्मों का विधान होता है। सत्ययुग मे मनुष्यों का धर्म, चतुष्पाद था। अन्य युगों में अधर्म के द्वारा घटता गया अर्थात् अधर्म का एक-एक पाद बढता गया और धर्म का घटता गया। त्रिलोकी के वाहर के लोकों मे चार हजार वर्षों का एक दिन होता है, वह ब्रह्मा का दिन है। रात भी इतनी ही वड़ी होती है। रात को ब्रह्मा सोते हैं। ब्रह्मा की रात्रि के अन्त होने पर लोक-कल्पों का पुनः प्रारम्भ होता है। ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनुओं का भोगकाल पूरा होता है। अर्थात् चौदह मनुओं का राज्यकाल ब्रह्मा के एक दिन मे ही समाप्त होता है। प्रत्येक मनु अपने-अपने नियत समय में राज्यभोग करता है, जिसका परिमाण कुछ अधिक एकहत्तर वर्ष है। प्रत्येक मन्वन्तर मे मनु के वश, सप्तर्षि, देवता, इन्द्र तथा इनके अनुयायी गंधर्व आदि उत्पन्न होते हैं। यह त्रिलोक की सृष्टि ब्रह्मा की दैनिक सृष्टि कही जाती है, जिसमें पशु-पक्षी, मनुष्य, पितर, देवता कर्मों के अनुसार उत्पन्न होते हैं। मन्वन्तरों में सत्व गुण धारण करके भगवान् अपनी मूर्ति मनु आदि के रूप में प्रकट होते हैं, विश्व की रक्षा करते हैं और अपना पराक्रम प्रकट करते हैं। दिन की समाप्ति पर तमोगुण का अंश ग्रहण करने से भगवान् का उद्योग रुक जाता है, कालक्रम से सव पदार्थों के लय होनेपर भगवान भी निष्क्रिय

१९—चत्वारित्रीणिद्वेचैककृतादिपुयथाक्रमम्। सख्यातानिसहस्राणिद्विगुणानिशतानिच ॥

२०—संध्याऽशयोरंतरेणयःकालःशतसख्ययो.। तमेवाहुर्युगतज्ज्ञायत्रधर्मोविधीयते ॥

२१—धर्मश्चतुष्पान्मनुजान्कृतेसमनुवर्तते। सएवान्येष्वधर्मेणव्येतिपादेनवर्धता ॥

२२—त्रिलोक्यायुगसाहस्र वहिराब्रह्मणोदिनम्। तावत्येवनिशाताततयन्निमीलतिविश्वसृक् ॥

२३—निशाऽवसानआरब्धोलोककल्पोऽनुवर्तते। यावद्दिनभगवतोमनून्भुजश्चतुर्दश ॥

२४—स्वस्वकालमनुर्भुंक्तेसाधिकाह्येकसप्ततिम्। मन्वतरेषुमनवस्तद्वंशाऋषय·सुराः ॥
भवतिचैवयुगपत्सुरेशाश्चानुयेचतान् ॥

२५—एषदैनदिनःसर्गोब्राह्मस्त्रैलोक्यवर्तन·। तिर्यङ्नृपितृदेवानासभवोयत्रकर्मभिः ॥

२६—मन्वतरेषुभगवान्बिभ्रत्सत्वस्वमूर्तिभिः। मन्वादिभिरिदविश्वमवत्युदितपौरुष: ॥

२७—तमोमात्रामुपादायप्रतिसरुद्धविक्रमः। कालेनानुगताशेषआस्तेतूष्णींदिनात्यये ॥

चौथा अध्याय

उद्धव का बदरिकाश्रम और विदुर का मैत्रेय ऋषि के पास जाना

उद्धव बोले—ब्राह्मणों की आज्ञा से यादवों ने भोजन करके, शराब पी, जिससे उनकी बुद्धि नष्ट हो गयी और वे परस्पर दुर्वचनों से दूसरे का मर्म छेदने लगे ॥ १ ॥ उसी शराब के दोष से उनके चित्त ऐसे बिगड़ गये कि सूर्यास्त होते-होते बासों के समान वे आपस में रगड़ खाने लगे, अर्थात् परस्पर युद्ध करने लगे ॥ २ ॥ इस प्रकार अपनी माया का प्रभाव देखकर श्रीकृष्ण ने सरस्वती के जल से आचमन किया और वे एक वृक्ष के नीचे बैठ गये ॥ ३ ॥ दुखियों के दुःख दूर करने वाले श्रीकृष्ण ने मुझे बदरिकाश्रम मे जाने के लिए कहा था, क्योंकि वे अपने कुल का नाश करना चाहते थे ॥ ४ ॥ तथापि, शत्रुनाशी भगवान् का अभिप्राय जानकर भी, मैं उनके साथ वहाँ गया । क्योंकि उनके चरणों का वियोग मेरे लिए असह्य था ॥ ५ ॥ अपने प्रिय स्वामी को ढूढता हुआ मैंने उन्हें अकेला बैठा देखा । लक्ष्मी के निवास-स्थान भगवान् का उस समय कोई आश्रय-स्थान नहीं था, अतएव सरस्वती-तीर पर, उन्होंने अपना आश्रय-स्थान बनाया था ॥ ६ ॥ वे उज्वल, श्याम वर्ण, शुद्ध, शान्त, रक्तनेत्र, चार हाथ और पीताम्बर के द्वारा पहिचाने गये ॥ ७ ॥ बाएँ पैर के जंघे पर दाहिना पैर उन्होंने रखा था । सांसारिक सुखों का त्याग करने पर भी प्रसन्न, एक छोटे पीपल के वृक्ष की ओर पीठ कर के बैठे थे ॥ ८ ॥ उस समय प्रधान भगवद्भक्त द्वैपायन व्यास के प्रिय मित्र और सिद्ध, मैत्रेय मुनि लोकों का भ्रमण करते हुए अकस्मात् वहाँ आ गये ॥ ९ ॥ भगवान् मे अनुराग रखनेवाले उन

उद्धवउवाच—

१—अथतेतदनुज्ञाताभुक्त्वापीत्वाचवारुणीम् । तयाविभ्रंशितज्ञानादुरुक्तैर्मर्मपस्पृशुः ॥

२—तेषामैरेयदोषेणविषमीकृतचेतसाम् । निम्लोचतिरवावासीद्वेणूनामिवमर्दनम् ॥

३—भगवान्स्वात्ममायायागतिंतामवलोक्यसः । सरस्वतीमुपस्पृश्यवृक्षमूलमुपाविशत् ॥

४—अहप्रोक्तोभगवताप्रपन्नार्तिहरेणह । बदरींत्वंप्रयाहीतिस्वकुलसंजिहीर्षुणा ॥

५—अथापितदभिप्रेतजानन्नहमरिंदम । पृष्ठतोऽन्वगमभर्तुःपादविश्लेषणाक्षमः ॥

६—अद्राक्षमेकमासीनविचिन्वन्दयितपतिम् । श्रीनिकेतसरस्वत्याकृतकेतमकेतन ॥

७—श्यामावदातविरजप्रशान्तारुणलोचनं । दोर्भिश्चतुर्भिर्विदितंपीतकौशाम्बरेणच ॥

८—वामऊरावधिश्रित्यदक्षिणाङ्घ्रिसरोरुहं । अपाश्रितार्भकाश्वत्थमकृशंत्यक्तपिप्पलं ॥

९—तस्मिन्महाभागवतोद्वैपायनसुहृत्सखः । लोकाननुचरन्सिद्धआससादयदृच्छया ॥

मुनि के कन्धे प्रसन्नता और प्रेम से झुक गये। उन मुनि के सामने ही प्रेम-युक्त हँसी और अवलोकन से मेरा दुःख दूर करते हुए वे मुझसे इस प्रकार बोले ॥ १० ॥

श्रीभगवान् बोले—तुम्हारा मनोरथ मैं जानता हूँ। क्योंकि मैं तुम्हारे मन में वर्तमान हूँ। जिसका पाना दूसरों के लिए असम्भव है, तथापि मैं तुमको देता हूँ। क्योंकि पहले प्रजापति वसुओं के साथ मुझे पाने के लिए, हे वसो! तुमने भी यज्ञ किया था ॥११॥ तुम्हारे जन्मों में यह जन्म अन्तिम होगा, क्योंकि तुमने मेरी कृपा पा ली है। पुनः एकान्त में एकान्त भक्ति से तुमने मेरा दर्शन किया है ॥ १२ ॥ प्रथम सृष्टि मे हमारे नाभि-कमल मे बैठे अज—ब्रह्मा को वह ज्ञान मैंने बतलाया था। वह श्रेष्ठ ज्ञान है। उस ज्ञान को विद्वान् 'भागवत' कहते हैं। उसमें मेरी महिमा प्रकाशित हुई है। वह ज्ञान मैं तुमको दूँगा ॥ १३ ॥

इस प्रकार भगवान् ने मेरा आदर किया और कहा—प्रतिक्षण उनका कृपापात्र मैं हाथ जोड़ कर बोला—उस समय मुझे रोमाच हो आया था, वाणी नहीं निकलती थी, अक्षर टूट जाते थे ॥ १४ ॥ ईश, आपके भक्तों के लिए धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चारों मे कौन अर्थ दुर्लभ है? अर्थात् कोई भी दुर्लभ नहीं है। फिर भी आपकी चरण-सेवा में प्रेम रखने वाला इनमे से कुछ माँगना नहीं चाहता ॥ १५ ॥ आप इच्छा-रहित हैं, पर कर्म करते हैं। आप अजन्मा है तथापि आपका जन्म होता है। आप कालस्वरूप हैं, फिर भी शत्रुओं के भय से भागते हैं और किले में छिपते हैं। आप स्वय आत्माराम हैं, पर कई स्त्रियों के साथ गृहस्थाश्रम में रहते हैं। ये सब आपके चरित, ज्ञानी पुरुषों को भी मोहित करते हैं ॥१६॥ भगवान्, आपका सत्य आत्मज्ञान काल के द्वारा भी कुण्ठित नहीं होता है, वे आप मुझे बुलाकर बड़ी सावधानी से एक साधारण मनुष्य के समान मुझसे सलाह पूछते थे। देव, आपका यह चरित मेरे मन को

१०—तस्यानुरक्तस्यमुनेर्मुकुन्दःप्रमोदभावानतकन्धरस्य। आशृण्वतोमामनुरागहाससमीक्षयाविश्रमयन्नुवाच ॥

श्रीभगवानुवाच—

११—वेदाहमन्तर्मनसीप्सितंतेददामियत्तद्दुरवापमन्यैः। सत्रेपुराविश्वसृजांवसूनांमत्सिद्धिकामेनवसोत्वयेष्टः ॥

१२—सएषसाधोचरमोभवानामासादितस्तेमदनुग्रहोयत्।

यन्मान्नृलोकान्रहउत्सृजन्तदिष्ट्याददृश्वान्विशदानुवृत्त्या ॥

१३—पुरामयाप्रोक्तमजायनाभ्येपद्मेनिषण्णायममादिसर्गे। ज्ञानंपरंमन्महिमावभासंयत्सूरयोभागवतंवदन्ति ॥

१४—इत्यादृतोक्तःपरमस्यपुंसःप्रतीक्षणानुग्रहभाजनोऽहं। स्नेहोत्थरोमास्खलिताक्षरस्तंमुञ्चन्शुचःप्राञ्जलिराबभाषे ॥

१५—कोन्वीशतेपादसरोजभाजांसुदुर्लभोऽर्थेषुचतुर्ष्वपीह। तथापिनाहंप्रवृणोमिभूमन्भवत्पदाम्भोजनिषेवणोत्सुकः ॥

१६—कर्माण्यनीहस्यभवोऽभवस्यतेदुर्गाश्रयोऽथारिभयात्पलायनं।

कालात्मनोयत्प्रमदायुताश्रमःस्वात्मन्रतेःखिद्यतिधीर्विदामिह ॥

मोहित करता है ॥ १७ ॥ भगवन्, आपके रहस्य को प्रकाशित करने वाला, जो ज्ञान आपने ब्रह्मा से कहा है, यदि उस समस्त ज्ञान को ग्रहण करने योग्य मैं होऊँ, तो आप शीघ्र मुझसे कहे, जिससे इस ससार के दु.ख से मेरा उद्धार हो ॥ १८ ॥ इस प्रकार अपने हृदय को अभिप्राय बतलाने पर कमलनेत्र भगवान् ने अपने रूप का यथार्थ ज्ञान बतलाया ॥१९॥ इस प्रकार भगवान् रूप गुरु से परमार्थ-ज्ञान का मार्ग सीखकर तथा उस देव के चरणों को प्रणाम कर, उनके विरह से व्याकुल होता हुआ यहाँ आया हूँ ॥ २० ॥ अतएव उनके दर्शन से प्रसन्न और उनके वियोग से दु.खी होकर मैं उनके प्रिय बदरिकाश्रम-प्रदेश मे जाता हूँ ॥ २१ ॥ जहाँ भगवान् नारायण और ऋषि नर ने कोमल और कठोर तप बहुत दिनों तक किये थे। जो दोनों लोक की रक्षा करने वाले हैं ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेव बोले—इस प्रकार उद्धव से मित्रों के वध का असह्य वृत्तान्त विदुर ने सुना। उसके सुनने से जो शोक उन्हें हुआ, उसको अपने ज्ञान से उन्होंने शान्त किया ॥ २३ ॥ कौरव-श्रेष्ठ विदुर, कृष्ण के विश्वासियों में प्रधान, महाभागवत (भक्त) और जाने के लिए उद्यत, विश्वास के कारण इसप्रकार बोले ॥ २४ ॥

विदुर बोले—अपने रहस्य को प्रकाशित करनेवाला जो ज्ञान योगेश्वर भगवान ने आपको बतलाया है, वह आपको हमे बतलाना चाहिए। क्योंकि भगवान् के भक्त अपने भक्तों का मनोरथ पूरा करने के लिए ही भ्रमण करते हैं ॥ २५ ॥

उद्धव बोले—विदुर, तत्वज्ञान के लिए तुम्हे मैत्रेय ऋषि के पास जाना चाहिए, क्योंकि

१७—मन्त्रेषुमाबाउपहूययत्त्वमकुठिताखडसदात्मबोधः । पृच्छेःप्रभोमुग्धइवाप्रमत्तस्तन्नोमनोमोहयतींवदेव ॥

१८—ज्ञानपरस्वात्मरहःप्रकाशप्रोवाचकस्मैभगवान्समग्र । अपित्तमनोग्रहणायमर्तवंदाजसायद्वृजिनंतरेम ॥

१९—ईत्यावेदितहार्दायमह्य सभगवान्परः । आदिदेशारविंदाक्षआत्मनःपरमास्थितिम् ॥

२०—सएवमाराधितपादतीर्थादधीततत्त्वात्मविबोधमार्ग. । प्रणम्यपादौपरिवृत्त्यदेवमिहागतोऽहंविरहातुरात्मा॥

२१—सोहतद्दर्शनाह्लादवियोगार्तियुतःप्रभो । गमिष्येदयिततस्यबदर्याश्रममंडल ॥

२२—यत्रनारायणोदेवोनरश्चभगवानृषिः । मृदुतीव्रं तपोदीर्घंतेपातेलोकभावनौ ॥

श्रीशुकउवाच—

२३—इत्युद्धवादुपाकर्ण्यसुहृदादुःसहवधं । ज्ञानेनाशमयत्क्षत्ताशोकमुत्पतितबुध. ॥

२४—सतंमहाभागवतंव्रजंतंकौरवर्षभः । विश्रमादभ्यधत्तेदमुख्यकृष्णपरिग्रहे ॥

विदुरउवाच—

२५—ज्ञानपरस्वात्मरहःप्रकाशंयदाहयोगेश्वरईश्वरस्तं ।

वक्तुं भवान्नोऽर्हतियद्धिविष्णोर्भृत्याःस्वभृत्यार्थकृतश्चरंति ॥

मर्त्यलोक का त्याग करने के समय स्वयं भगवान् ने उन्हें तत्वज्ञान का उपदेश दिया है ॥ २६ ॥

श्रीशुकदेव बोले—इस प्रकार विदुर के साथ विश्वमूर्ति भगवान् के कथामृत से अपना संताप दूर करके, उद्धव यमुना के तीर पर एक क्षण के समान रात बिताकर वहाँ से चले ॥ २७ ॥

राजा बोले—वृष्णि, भोज आदि के जो अधिरथ सेनापति तथा सेनापतियों में प्रधान थे, वे नष्ट हो गये। त्रिलोक के स्वामी भगवान् ने भी शरीर-त्याग कर दिया, फिर ये एक उद्धव ही क्यों बच रहे ? ॥ २८ ॥

श्रीशुकदेव बोले—ब्रह्म-शाप के बहाने से अपनी इच्छा को सफल करने के लिये, काल के द्वारा अपने कुल का नाश कराकर स्वय भगवान शरीर त्याग करने के लिए उद्यत हुए ॥२९॥ उस समय उन्होंने सोचा—इस लोक से मेरे चले जाने पर, मेरे सम्बन्ध के ज्ञान का प्रचार करने के योग्य श्रेष्ठ आत्मज्ञानी एक उद्धव ही हैं ॥ ३० ॥ उद्धव हमसे थोड़ा भी कम नहीं हैं। क्योंकि यह विषयों से पीड़ित नहीं होते। अतएव मेरे ज्ञान का प्रचार करने के लिए, मेरा ज्ञान लोगों को बतलाने के लिए यह यहीं रहें ॥ ३१ ॥ यह विचार कर त्रिलोक के गुरु और वेदों के कर्ता भगवान ने उद्धव को वैसी आज्ञा दी और उस आज्ञा के अनुसार बदरिकाश्रम मे जाकर समाधि के द्वारा वे भगवान की आराधना करने लगे ॥ ३२ ॥ विदुर ने भी उद्धव से लीला के लिए शरीर धारण करनेवाले परमात्मा श्रीकृष्ण के श्लाघनीय कर्म सुने ॥ ३३ ॥ उनका

उद्धवउवाच—

२६—ननुतेतत्त्वसराध्यऋषिःकौषारवोऽतिमे। साक्षाद्भगवतादिष्टोमर्त्यलोकजिहासता ॥

श्रीशुकउवाच—

२७—इतिसहविदुरेणविश्वमूर्तेर्गुणकथयासुधयाप्लावितोरुतापः।

क्षणमिवपुलिनेयमस्वसुस्तांसमुषितऔपगविर्निशांततोऽगात् ॥

राजोवाच—

२८—निधनमुपगतेषुवृष्णिभोजेष्वधिरथयूथपयूथपेषुमुख्यः।

सतुकथमवशिष्टउद्धवोयद्धरिरपितत्यजआकृतिंत्र्यधीशः ॥

श्रीशुकउवाच—

२९—ब्रह्मशापोपदेशेनकालेनामोघवाञ्छितः। संहृत्यस्वकुलंनूनं त्यक्ष्यन्देहमचिंतयत् ॥

३०—अस्माल्लोकादुपरतेमयिज्ञानंमदाश्रयं। अर्हत्युद्धवएवाद्धासम्प्रत्यात्मवतांवरः ॥

३१—नोद्धवोऽण्वपिमन्न्यूनोयद्गुणैर्नार्दितःप्रभुः। अतोमद्वयुनंलोकंग्राहयन्निहतिष्ठतु ॥

३२—एवंत्रिलोकगुरुणासंदिष्टःशब्दयोनिना। बदर्याश्रममासाद्यहरिमीजेसमाधिना ॥

३३—विदुरोऽप्युद्धवाच्छ्रुत्वाकृष्णस्यपरमात्मनः। क्रीडयोपात्तदेहस्यकर्माणिश्लाघितानिच ॥

इस प्रकार शरीर-त्याग भी सुना, जिससे धीरों की धीरता बढ़ती है और पशु-तुल्य अधीर मनुष्य अधिक व्याकुल होते हैं, क्योंकि वह उनके लिए दुष्कर है ॥ ३४ ॥ कुरु-श्रेष्ठ परीक्षित, कृष्ण के द्वारा मन से चिन्तित आत्मा का ध्यान करते हुए, भगवद्भक्त उद्धव के चले जाने पर, विदुर प्रेम-विह्वल होकर रोने लगे ॥ ३५ ॥ भरत-वंशी विदुर यमुना तीर से कई दिनों में गंगा नदी के तीर पर, जहाँ सिद्ध मैत्रेय मुनि थे, वहाँ पहुँचे ॥ ३६ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कंध का चौथा अध्याय समाप्त

———:o:———

पाँचवाँ अध्याय

सृष्टि-क्रम-वर्णन

श्रीशुकदेव बोले—गंगा नदी के द्वार अर्थात् हरद्वार में अगाध-बोध मैत्रेय ऋषि बैठे थे। भगवत्प्रेम से शुद्ध और ऋषि के शील आदि गुणों से तृप्त कुरु-श्रेष्ठ विदुर ने उनसे पूछा ॥ १ ॥

३४—देहन्यासंचतस्यैवंधीराणांधैर्यवर्धनं। अन्येषांदुष्करतरंपशूनांविक्लवात्मना ॥

३५—आत्मानंचकुरुश्रेष्ठकृष्णेनमनसेक्षित। ध्यायन्गतेभागवतेरुरोदप्रेमविह्वलः ॥

३६—कालिंद्याःकतिभिःसिद्धअहोभिर्भरतर्षभः। प्रापद्यतस्वःसरितंयत्रमित्रासुतोमुनिः ॥

इ० भा० म० तृ० विदुरोद्धवसंवादेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

———:o*o:———

श्रीशुकउवाच—

१—द्वारिद्युनद्याऋषभःकुरूणांमैत्रेयमासीनमगाधबोधं।

क्षत्तोपसृत्याच्युतभावशुद्धःपप्रच्छसौशील्यगुणाभितृप्तः ॥

विदुर बोले—मनुष्य सुख के लिए कर्म करते हैं, पर उन कर्मों से न तो सुख ही होता है और न दु:ख की निवृत्ति। पुन: उन कर्मों से मनुष्य दु:ख ही पाता है, अत: इस संसार में हम लोगों के करने योग्य जो काम हो, वह भगवान कहें ॥२॥ अभाग्य-वश अधार्मिक और श्रीकृष्ण से विमुख, अतएव दु:खित रहने वाले मनुष्यों पर कृपा करने के लिए ही, भव्य प्राणी विचरण करते हैं ॥ ३ ॥ अतएव हे साधुवर्य, आप मुझे कल्याण का मार्ग बतलावें। जिस मार्ग के द्वारा आराधना करने पर भक्त के हृदय में स्थित होने पर भगवान आत्मतत्व के साथ पुराण-ज्ञान दें ॥ ४ ॥ त्रिगुणों के नियन्ता और स्वतंत्र भगवान अवतार धारण करके जिन कर्मों को करते हैं, उनका आप वर्णन करें और कर्महीन भगवान् ने पहले जिस प्रकार यह सृष्टि की, जगत की स्थिति के नियम बनाये और उससे जीविका की व्यवस्था की, यह सब आप कहें ॥ ५ ॥ पुन: अपने हृदयाकाश में इस संसार को रखकर समस्त वृत्तियों को हटाकर योग-माया में किस प्रकार शयन करते हैं, यह कहिए और योगेश्वरों के स्वामी एक भगवान इस योग-माया में प्रविष्ट होकर अनेक रूपों में पुनः कैसे प्रकाशित होते हैं, यह बतलाइए ॥ ६ ॥ अवतारों के भेद से ब्राह्मण, गौ और देवताओं के कल्याण के लिए क्रीडा करते हुए भगवान अनेक कर्म करते हैं। यशस्वियों में सर्वश्रेष्ठ भगवान के चरितामृतपान करने से हमलोगों का मन तृप्त नहीं होता॥७॥ लोकनाथों के स्वामी भगवान ने लोकपाल और लोकालोक (संसार की परिधि को लोकालोक कहते हैं) पर्वत के बाहर के भाग की कल्पना विविध तत्वों के भेद से की। जिनमें प्राणी-समूहों के भेद और भिन्न-भिन्न कर्मों के अधिकारी प्रतीत होते हैं। अर्थात् प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के द्वारा जाने जाते हैं ॥ ८ ॥ ब्राह्मण-श्रेष्ठ, संसार की सृष्टि करनेवाले आत्म-योनि

विदुरउवाच—

२—सुखायकर्माणिकरोतिलोकोनतै:सुखंवाऽन्यदुपारमंवा । विंदेतभूयस्ततएवदु:खंयदत्रयुक्तंभगवान्वदेन्नः॥

३—जनस्यकृष्णाद्विमुखस्यदैवादधर्मशीलस्यसुदु:खितस्य । अनुग्रहायेहचरंतिनूनंभूतानिभव्यानिजनार्दनस्य॥

४—तत्साधुवर्यादिशवर्त्मशंनःसंराधितोभगवान्येनपुंसां।हृदिस्थितोयच्छतिभक्तिपूतेज्ञानंसतत्त्वाधिगमंपुराणं॥

५—करोतिकर्माणिकृतावतारोयान्यात्मतंत्रोभगवांस्त्र्यधीशः ।

यथाससर्जाग्रइदंनिरीहःसंस्थाप्यवृत्तिंजगतोविधत्ते ॥

६—यथापुनःस्वेखइदंनिवेश्यशेतेगुहायांसनिवृत्तवृत्तिः । योगेश्वराधीश्वरएकएतदनुप्रविष्टोबहुधायथाऽऽसीत्॥

७—क्रीडन्विधत्तेद्विजगोसुराणांक्षेमायकर्माण्यवतारभेदैः ।

मनोनतृप्यत्यपिशृण्वतांनःसुश्लोकमौलेश्चरितामृतानि ॥

८—यैस्तत्त्वभेदैर्धिलोकनाथोलोकानलोकान्सहलोकपालान् ।

अचीक्लृपद्यत्रहिसर्वसत्त्वनिकायभेदोऽधिकृतःप्रतीतः ॥

भगवान् ने जिस प्रकार प्राणियों के स्वभाव, कर्म, रूप और नाम की—कल्पना की—उन सबका वर्णन आप करे ॥ ९ ॥ भगवन्, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के धर्म मैंने व्यासजी के मुँह से कई बार सुने हैं और तुच्छ सुख देने वाले, उनके श्रवण से मेरी तृप्ति हो गयी। पर प्रसंग से उनके वर्णन मे आयी हुई, अमृत-प्रवाह रूप श्रीकृष्ण की कथा से तृप्ति नहीं हुई ॥ १० ॥ पवित्र-चरण श्रीकृष्ण की कथा से कौन तृप्त हो सकता है ? जो कथा नारद आदि मुनियों के द्वारा, आप लोगों के समाज मे, आदर-पूर्वक कही जाती है और जो मनुष्यों के कान के द्वारा प्रविष्ट होकर, संसार मे डालनेवाले गृहानुराग को काट देती है ॥ ११ ॥ आपके मित्र, मुनि कृष्णद्वैपायनव्यास ने भगवान के गुणों का वर्णन करने के लिये महाभारत का निर्माण किया, जिसमें उन्होंने अर्थ, काम आदि के वर्णन से भगवान की कथा मे लोगों की प्रवृत्ति कराने का प्रयत्न किया है ॥ १२ ॥ वह भगवान की कथा में अनुराग रखनेवाली, श्रद्धालु पुरुष की बुद्धि, बढ़कर अन्य सासारिक विषयों में वैराग्य उत्पन्न कर देती है और भगवान् के चरणों का निरन्तर स्मरण से तृप्त होनेवाले मनुष्यों के समस्त दु:खों का सदा के लिए नाश कर देती है ॥ १३ ॥ अपने पापों के कारण जो भगवान की कथा से विमुख है, वे शोचनीय पुरुषों के द्वारा भी शोचनीय है। अर्थात् पापी भी उन्हें पापी समझते है। उन अज्ञानियों, महाभारत का तात्पर्य न जाननेवालों के लिए मैं शोक करता हूँ। क्योंकि वैसे मनुष्यों की वाणी, मन और शरीर की क्रियाएँ, व्यर्थ होती हैं और क्षणमात्र के लिए भी विलम्ब न करनेवाला काल, उनकी आयु नष्ट कर देता है ॥ १४ ॥ अतएव हे मैत्रेय, कल्याण देनेवाले भगवान् की कथाओं में ही सार है। हे दुखियों के मित्र, हमलोगों के कल्याण के लिए पवित्रकीर्ति, भगवान की कथाओं का पुष्पों के समान सार निकाल कर हमसे कहिए ! ॥ १५ ॥ अपनी माया के साथ संसार की

९—येनप्रजानामुतआत्मकर्मरूपाभिधानाचभिदांव्यधत्त। नारायणोविश्वसृगात्मयोनिरेतच्चनोवर्णयविप्रवर्य॥

१०—परावरेषाभगवन्व्रतानिश्रुतानिमेव्यासमुखादभीक्ष्णम्।

अतृप्नुमक्षुल्लसुखावहानांतेषामृतेकृष्णकथामृतौघात् ॥

११—कस्तृप्नुयात्तीर्थपदोऽभिधानात्सत्रेषुव:सूरिभिरीड्यमानात्।

य:कर्णनाडींपुरुषस्ययातोभवप्रदांगेहरतिंछिनत्ति ॥

१२—मुनिर्विवक्षुर्भगवद्गुणानांसखापितेभारतमाहकृष्ण:।

यस्मिन्नृणांग्राम्यसुखानुवादैर्मतिर्गृहीतानुहरे:कथायाम् ॥

१३—साश्रद्दधानस्यविवर्धमानाविरक्तिमन्यत्रकरोतिपुंस:। हरे:पदानुस्मृतिनिर्वृतस्यसमस्तदु:खात्ययमाशुधत्ते॥

१४—तान्शोच्यशोच्यानविदोनुशोचेहरे:कथायाविमुखानघेन।

क्षिणोतिदेवोनिमिषस्तुयेषामायुर्वृथावादगतिस्मृतीनां ॥

१५—तदस्यकौषारवशर्मदातुर्हरे:कथामेवकथासुसारम्। उद्धृत्यपुष्पेभ्यइवार्तबन्धोशिवाय न:कीर्तयतीर्थकीर्ते:॥

उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के लिए अवतार धारण करके भगवान् ने जो लोकोत्तर काम किये हैं, उनका वर्णन आप मुझसे कहे ॥ १६ ॥

श्रीशुकदेव बोले—विदुर ने मनुष्यों के मोक्ष प्राप्त करने के लिए इस प्रकार भगवान मैत्रेय से प्रश्न किया ? मैत्रेय मुनि ने विदुर का बहुत सम्मान करके उनसे इस प्रकार कहा ॥ १७ ॥

मैत्रेय बोले—साधु विदुर, तुमने यह प्रश्न करके लोगों का बड़ा उपकार किया है और इसीके द्वारा भगवान् मे मन रखनेवाले लोगों की तथा अपनी आपने कीर्ति फैलायी है ॥ १८ ॥ भगवान श्रीकृष्ण मे तुम अनन्य भक्ति रखते हो, अनन्यभाव से तुमने उनका ग्रहण किया है, इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि तुम वदरीवन-निवासी भगवान् व्यास देव के पुत्र हो ॥ १९ ॥ प्रजा को नियमित रखनेवाले भगवान् यमराज, माण्डव्य मुनि के शाप से, भाई की दासी स्त्री मे, सत्यवती-पुत्र व्यास देव से उत्पन्न हुए थे । तुम वही शाप भ्रष्ट भगवान् यम-राज हो ॥ २० ॥ अतएव पार्षदों सहित भगवान् के तुम सदा प्रिय हो । यहाँ से चलने के समय भगवान् ने तुम्हें ज्ञानोपदेश करने की आज्ञा मुझे दी है, अतएव योग-माया के द्वारा जिसका प्रसार हुआ है और ससार की उत्पत्ति, स्थिति और लय जिसका कार्य है, ऐसी भगवान की लीलाओं का वर्णन क्रमश· मैं करता हूँ ॥ २१-२२ ॥

सृष्टि के पहले एक भगवान् ही थे, जो प्राणियों के स्वरूप और स्वामी हैं । उनके अति-रिक्त द्रष्टा और दृश्य कुछ भी नही था । उनकी माया उस समय उन्हीं मे लीन थी । अनेक नाम और अनेक रूपों का व्यवहार नहीं होता था । क्योंकि उस समय द्रष्टा, दृश्य आदि कुछ भी नहीं था । उस समय द्रष्टा भगवान् ने कोई दृश्य नहीं देखा, वे स्वयं एक ही शोभित

१६—सविश्वजन्मस्थितिसयमार्थेकृतावतारःप्रगृहीतशक्तिः।चकारकर्माण्यतिपूरुषाणियानीश्वरःकीर्तयतानिमह्यं॥

श्रीशुकउवाच—

१७—सएवभगवान्पृष्ट·क्षत्राकौषारविमु'नि· । पुंसानि·श्रेयसार्थेनतमाहबहुमानयन् ॥

मैत्रेयउवाच—

१८—साधुपृष्टं त्वयासाधोलोकान्साध्वनुगृह्णता । कीर्तिंवितन्वतालोकेआत्मनोऽधोक्षजात्मन· ॥

१९—नैतच्चित्रंत्वयिक्षत्तर्बादरायणवीर्यजे । गृहीतोऽनन्यभावेनयत्त्वयाहरिरीश्वर· ॥

२०—मांडव्यशापाद्भगवान्प्रजासयमनोयम । भ्रातुःक्षेत्रेभुजिष्यायाजात·सत्यवतीसुतात् ॥

२१—भवान्भगवतोनित्यसमत·सानुगस्यच । यस्यज्ञानोपदेशायमादिशद्भगवान्व्रजन् ॥

२२—अथतेभगवल्लीलायोगमायोपबृंहिता· । विश्वस्थित्युद्भवान्तार्थावर्णयाम्यनुपूर्वशः ॥

२३—भगवानेकआसेदमग्रआत्मात्मनांविभु· । आत्मेच्छानुगतावात्मानानामत्युपलक्षण ॥

हो रहे थे। अपनी शक्ति माया आदि के सुप्तावस्था में होने के कारण, उन्होंने अपने को असद् रूप समझा। नहीं के बराबर समझा, क्योंकि वे स्वयं चेतन-रूप मे वर्तमान थे ॥२३-२४॥ द्रष्टा भगवान् की शक्ति को जो कार्य कारण रूप है, माया कहते है। महाभाग! उसी शक्ति के द्वारा भगवान् ने इस संसार का निर्माण किया है ॥ २५ ॥ अनन्तर भगवान् काल की शक्ति से गुणमयी माया में क्षोभ उत्पन्न हुआ। अर्थात् कालवश माया मे विकार उत्पन्न हुआ। उस समय परमात्मा ने प्रकृति के अधिष्ठाता रूप, अपने अंश से वीर्य दान किया। अर्थात् चैतन्य डाला। इस प्रकार जड़ के साथ चेतन का सम्बन्ध हुआ ॥ २६ ॥ अनन्तर काल की प्रेरणा से उस अव्यक्त, अर्थात् कारणरूप माया से महत्तत्व की उत्पत्ति हुई। जो ज्ञानमय है और अपने शरीरस्थ विश्व को प्रकाशित करता है, अर्थात् व्यक्तरूप मे प्रकट करता है तथा अज्ञानरूप अन्धकार को दूर करता है ॥ २७ ॥ वह महत्तत्व जो भगवान् के अंश, चित्, गुण और काल रूप है और साक्षी भगवान् के तेज से प्रकाशित है, उसने इस संसार की सृष्टि के लिए अपने में विकार उत्पन्न किया। अर्थात् स्वयं रूपान्तर धारण किया ॥ २८ ॥ महत्तत्व के विकृत होने से अहंतत्व अर्थात् अहंकार उत्पन्न हुआ। जो अहंतत्व कार्य-कारण और कर्ता का आश्रय है। अधिभूत को कार्य, अध्यात्म को कारण और अधिदैव को कर्ता कहते हैं, वह पंचभूतमय, इन्द्रियमय और मनोमय है ॥ २९ ॥ वह अहतत्व सत्व, रज और तम—तीन प्रकार का हुआ, उस विकृत अर्थात् विकार प्राप्त अहंतत्व से मन उत्पन्न हुआ और उसी सात्विक अहंकार से देवता उत्पन्न हुए जो वैकारिक कहे जाते है। जो इन्द्रियों के अधिष्ठाता हैं तथा जिनसे शब्द आदि अर्थों का प्रकाश होता है ॥ ३० ॥ ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियाँ राजस् अहंकार से उत्पन्न हैं और तामस अहकार से भूत सूक्ष्म अर्थात् शब्द आदि उत्पन्न हुए। जिस शब्द से आकाश उत्पन्न होता है जो आकाश आत्मा का परिचायक है; क्योंकि वह शब्दरूप से आत्मगुण का

२४—सवाएषतदाद्रष्टानापश्यद्दृश्यमेकराट् । मेनेसतमिवात्मानंसुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥

२५—सावाएतस्यसंद्रष्टु:शक्ति:सदसदात्मिका । मायानाममहाभागययेदंनिर्ममेविभुः ॥

२६—कालवृत्त्यातुमायायागुणमय्यामधोक्षजः । पुरुषेणात्मभूतेनवीर्यमाधत्तवीर्यवान् ॥

२७—ततोऽभवन्महत्तत्वमव्यक्तात्कालचोदितात् । विज्ञानात्माऽऽत्मदेहस्थंविश्वंव्यञ्जंस्तमोनुदः ॥

२८—सोऽप्यंशगुणकालात्माभगवद्दृष्टिगोचरः । आत्मानंव्यकरोदात्माविश्वस्यास्यसिसृक्षया ॥

२९—महत्तत्वाद्विकुर्वाणादहतत्वंव्यजायत । कार्यकारणकर्त्रात्माभूतेंद्रियमनोमयः ॥

३०—वैकारिकस्तैजसश्चतामसश्चेत्यहंत्रिधा । अहतत्त्वाद्विकुर्वाणान्मनोवैकारिकादभूत् ।

३१—वैकारिकाश्चयेदेवाअर्थाभिव्यंजनयतः । तैजसानींद्रियाण्येवज्ञानकर्ममयानिच ॥

तामसोभूतसूक्ष्मादिर्यतःखंलिंगमात्मनः ॥

परिचय देता है ॥ ३१ ॥ काल-माया और अपना अंशभूत चैतन्य के योग से भगवान् ने आकाश को देखा अर्थात् उसे प्रकाशित किया, जिससे वहाँ स्वयं स्पर्श उत्पन्न हुआ। जिस स्पर्श में विकार उत्पन्न होने से वायु की उत्पत्ति हुई ॥ ३२ ॥ स्वयं महाबली वायु ने आकाश के योग से विकृत होकर, रूप तन्मात्रा को उत्पन्न किया। जिससे तेज उत्पन्न हुआ। जो तेज लोक की आँखों का प्रकाशक है ॥ ३३ ॥ परमात्मा के प्रकाश से प्रकाशित वायु के गुण स्पर्श, काल, माया और चैतन्य के योग से रसमय जल की उत्पत्ति हुई ॥ ३४ ॥ तेज युक्तजल में भगवान् के प्रकाश और काल, माया, चैतन्य के योग से विकार उत्पन्न होने के कारण, गन्ध-गुणवाली पृथ्वी की उत्पत्ति हुई ॥ ३५ ॥ भव्य विदुर, आकाश आदि भूतों से जिस प्रकार, एक-के पीछे-एक पदार्थ उत्पन्न होते गये, उसी प्रकार उनमें अपने कारण रूप महाभूतों का सम्बन्ध होने के कारण उत्पन्न होने वाले पदार्थों में क्रम से एक-एक गुण बढते गये। (आकाश पहले उत्पन्न हुआ, उसमें केवल एक ही गुण है, आकाश के योग से उत्पन्न होने वाले वायु में आकाश वाला शब्द और वायु का असाधारण गुण स्पर्श—ये दो हुए, वायु से उत्पन्न होनेवाले तेज में आकाश और वायु के शब्द और स्पर्श-गुणों के साथ अपना रूप गुण भी हुआ। इस प्रकार तेज के तीन गुण हुए। तेज से उत्पन्न जल मे शब्द, स्पर्श और रूप—ये तीन पूर्वजों के उत्तराधिकार में मिले और अपना रस चौथा गुण मिला, इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए) ॥३६॥ ये महत् आदितत्वों के अभिमानी देवता विष्णु के अंश हैं। काल, माया और चैतन्य इनमें वर्तमान हैं। अर्थात् विकृति, विक्षेप और चैतन्य—ये तीन गुण इनमें वर्तमान हैं। पर अनेक होने के कारण इनसे संसार की सृष्टि नहीं हो सकी। अतएव, ये हाथ जोड़कर भगवान से बोले ॥ ३७ ॥

देवता बोले—भगवन्, आपके चरणों को नमस्कार, जो भक्तों के ताप दूर करने के लिए छत्र के समान हैं। जिन चरणों के आश्रय में रहनेवाले यति संसार के घोर दुःखों को शीघ्रही

३२—कालमायाशयोगेनभगवद्वीक्षितंनभः। नभसोऽनुसृतस्पर्शंविकुर्वन्निर्ममेनिलं ॥

३३—अनिलोऽपिविकुर्वाणोनभसोरुबलान्वित.। ससर्जरूपतन्मात्रंज्योतिर्लोकस्यलोचनं ॥

३४—अनिलेनान्वितंज्योतिर्विकुर्वत्परवीक्षित। आधत्ताम्भोरसमयंकालमायाशयोगतः ॥

३५—ज्योतिषाम्भोनुसंसृष्टंविकुर्वद्ब्रह्मवीक्षितं। महींगंधगुणामाधात्कालमायाशयोगतः॥

३६—भूतानांनभआदीनायद्यद्भव्यावरावर। तेषापरानुसंसर्गाद्यथासंख्यगुणान्विदु ॥

३७—एतेदेवाःकलाविष्णो.कालमायाशलिंगिनः। नानात्वात्स्वक्रियाऽनीशाःप्रोचुःप्रांजलयोविभुं॥

देवाऊचुः—

३८—नमामतेदेवपदारविंदप्रपन्नतापोपशमातपत्रं। यन्मूलकेतायतयोंऽजसोरुसंसारदुःखंबहिरुत्क्षिपंति॥

दूर कर देते हैं ॥ ३८ ॥ पिता, इस संसार में तापत्रय से पीड़ित जीव कल्याण नहीं पाते, अतएव ज्ञान देनेवाली, आपके चरणों की छाया का आश्रय हम लोग ग्रहण करते हैं ॥ ३९ ॥ ऋषिगण-पक्षिरूप, छन्दों के द्वारा, जिन छन्दों का स्थान घोंसला रूप आपका मुख है, एकान्त मे बैठकर, आपका अन्वेषण करते हैं, आपके जो चरण पापों को दूर करनेवाली गंगा के उत्पत्तिस्थान हैं, ऐसे पवित्र चरणवाले आपके चरणों के हम लोग आश्रित हैं ॥ ४० ॥ श्रद्धा और शास्त्र-सम्मति, भक्ति से युक्त, हृदय में जिन चरणों का ध्यान करके मनुष्य ज्ञान और वैराग्यवल से धीर कहा जाता है, आपके उन चरणों की शरण मे हम लोग आये हैं ॥ ४१ ॥ भगवन्, संसार की उत्पत्ति, स्थिति, नाश के लिए अवतार धारण करनेवाले आपके चरण की शरण आये हैं। जो चरण स्मरण करने से मनुष्यों को अभय देते हैं ॥ ४२ ॥ अनेक उपकरणों (सामग्रियों) से युक्त इस तुच्छ शरीर और गृह में मैं यह हूँ, 'यह मेरा है', इस प्रकार का दुराग्रह रखनेवाले मनुष्यों के भी हृदय मे साक्षिरूप से वर्तमान रहने पर भी, आप उनसे दूर ही हैं। हम लोग आपके चरण कमलों का भजन करते हैं ॥४३॥ हे परेश! बहिर्मुख, आँख आदि इन्द्रियों के द्वारा जिनका अन्तःकरणस्थ मन दूर चला गया है। अर्थात् आपकी ओर से विमुख होकर विषयों मे आसक्त होगया है, वे पुरुष, आपके गमन की, भाव-भगी की शोभा के अधीन रहनेवाले, अर्थात् आपकी लीला, कथा आदि मे अनुराग रखनेवाले भक्तों की ओर नहीं देखते ॥ ४४ ॥ आपके कथामृत के पान से प्रवृद्ध भक्ति के द्वारा जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, वे पुरुष वैराग्य का सार, आत्मज्ञान पाकर शीघ्र ही आपके वैकुण्ठ लोक मे जाते हैं ॥ ४५ ॥ और दूसरे अर्थात् कर्मयोगी आत्मा में मन को स्थित करके मन की स्थिरता रूप योगबल से बलवान, प्रकृति को अपने अधीन करके, वे धीर आपको ही प्राप्त करते हैं, वे भी मोक्ष के ही अधिकारी होते हैं, पर कष्ट से भगवान् की कथा आदि के द्वारा विना कष्ट वही स्थान प्राप्त होता है ॥४६॥ भगवन्! संसार की सृष्टि करने के लिए आपने हमलोगों को तीन गुणों के द्वारा उत्पन्न

३९—धातर्यदस्मिन्भवईशजीवास्तापत्रयेणोपहतानशर्म। आत्मँल्लभंतेभगवंस्तवांघ्रिच्छायांसविद्यामतआश्रयेम ॥

४०—मार्गंतियत्तेमुखपद्मनीडैश्छंदःसुपर्णैर्ऋषयोविविक्ते। यस्याघमर्षोदसरिद्वरायाःपदंपदंतीर्थपदःप्रपन्नाः ॥

४१—यच्छ्रद्धयाश्रुतवत्याचभक्त्यासंमृज्यमानेहृदयेऽवधाय। ज्ञानेनवैराग्यबलेनधीराव्रजेमतत्तेऽङ्घ्रिसरोजपीठं ॥

४२—विश्वस्यजन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारस्यपदांबुजंते। व्रजेमसर्वेशरणंयदीशस्मृतंप्रयच्छत्यभयंस्वपुंसां॥

४३—यत्सानुबंधेऽसतिदेहगेहेममाहमित्यूढदुराग्रहाणां। पुंसांसुदूरंवसतोऽपिपुर्यांभजेमतत्तेभगवन्पदाब्जं ॥

४४—तान्वाअसद्वृत्तिभिरक्षिभिर्येपराहृतांतर्मनसःपरेश। अथोनपश्यंत्युरुगायनूनंयेतेपदन्यासविलासलक्ष्म्याः॥

४५—पानेनतेदेवकथासुधायाःप्रवृद्धभक्त्याविशदाशयाये।

वैराग्यसारंप्रतिलभ्यबोधंयथाऽञ्जसाऽन्वीयुरकुंठधिष्ण्यं॥

४६—तथाऽपरेचात्मसमाधियोगबलेनजित्वाप्रकृतिंबलिष्ठां। त्वामेवधीराःपुरुषंविशंतितेषांश्रमःस्यान्नतुसेवयाते॥

किया है, अतएव हम लोग पृथक् पृथक् हैं, स्वभाव भिन्न होने के कारण मिल नहीं सकते। अतएव आपकी क्रीड़ा के लिए संसार की रचना करके उसे आपको भेट नहीं कर सकते ॥४७॥ हे अज, समय-समय पर हमलोग जो भोग आपके अर्पित करते है. तथा जो अन्न हम लोग स्वय खाते हैं, इसी प्रकार ये प्राणी भी हम लोगों को यथा समय वलि दान करे और तर्क-वितर्क रहित, अर्थात निस्सन्देह होकर अन्न खायँ। तात्पर्य यह कि जो आप सृष्टि करें, उसकी जीविका की भी व्यवस्था करे ॥ ४८ ॥ हम सब देवताओं तथा हमारे द्वारा उत्पन्न कार्यों के आप ही प्रधान कारण है। आप विकार-हीन पुरातनपुरुष हैं, अर्थात् अधिष्ठाता हैं। हे देव, गुण और कर्म की जननी शक्ति मे पहले आपही ने महत्तत्व रूप वीर्य रखा था ॥ ४९ ॥ आत्म देव, महत् आदि हम लोग जिसके लिए उत्पन्न हुए हैं, आपका वह कौन कार्य करे ? आप शक्ति के साथ अपनी आँख, अर्थात् ज्ञान हमलोगों को दे। क्योंकि हमलोगों को आपही की कृपा का भरोसा है। और उस आपकी कृपा के द्वारा ससार की सृष्टि करेंगे, अर्थात् आपकी ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति के द्वारा ही सृष्टि कर सकते हैं ॥ ५० ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कंध का पाँचवाँ अध्याय समाप्त
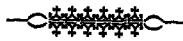
४७—ततेवयलोकसिसृक्षया ऽत्वथानुसृष्टास्त्रिभिरात्मभिःस्म। सर्वेवियुक्ताःस्वविहारतन्त्रनशक्नुमस्तत्प्रतिहर्तवेते॥

४८—यावद्बलिंते ऽजहरामकालेयथावयचान्नमदामयत्र। यथोभयेषातइमेहिलोकावलिंहरन्तोऽन्नमदन्त्यनूहाः॥

४९—त्वनःसुराणामसितान्वयानाकूटस्थआद्य.पुरुषःपुराणः।

त्वदेवशक्त्यागुणकर्मयोनौरेतस्त्वजायाकविमादधेऽजः॥

५०—ततोवयसत्प्रमुखायदर्थे बभूविमात्मन्करवामकिंते। त्वनःस्वचक्षुःपरिदेहिशक्त्यादेवक्रियार्थोयदनुग्रहाणाम्॥

इ० भा० म० तृतीयस्कंधेपचमोऽध्याय. ॥ ५ ॥

छठवाँ अध्याय

विराट् की उत्पत्ति

ऋषि बोले—महत् आदि अपनी शक्तियों को, जो परस्पर अलग अलग थी, अतएव लोक की रचना उनके द्वारा नहीं हो सकती थीं ॥ १ ॥ उनकी यह अवस्था देखकर काल संज्ञा-वाली अपनी शक्ति के साथ अपरा-पराक्रमी भगवान् ने महत् आदि तेईस तत्वों मे एक साथ ही प्रवेश किया ॥ २ ॥ प्रवेश करने के पश्चात् भगवान् ने प्रकृति में अव्यक्त रूप से वर्तमान प्राणियों के कर्मों को जाग्रत किया और अपनी क्रियाशक्ति के द्वारा भिन्न-भिन्न रहनेवाले उन तत्वों को परस्पर मिला दिया। उनकी उचित योजना करदी ॥ ३ ॥ भगवान की शक्ति के द्वारा, जिनके कर्म व्यक्त हो गये है, अर्थात् परस्पर सम्बन्ध होने के कारण, जिनमें कार्य करने की शक्ति उत्पन्न हो गयी है, वह तेईस तत्वों का समुदाय भगवान से प्रेरित होकर अपने अंश से विराट् रूप पुरुष को उत्पन्न करने मे समर्थ हुआ ॥ ४ ॥ भगवान के प्रविष्ट होने के कारण ससार की सृष्टि करनेवाले तत्वों के समूह में थोडा ही क्षोभ हुआ। उसके एक अश में ही परिणाम हुआ। जिन तत्वों के परस्पर संयोग से विराट् की उत्पत्ति हुई, जिसमे समस्त लोक वर्तमान है ॥ ५ ॥ वह विराट् पुरुष इस ब्रह्माण्ड मे हजार वर्षो तक सब प्राणियों अर्थात् अपने में रहनेवाले जीवों के साथ जल में निवासी हुआ ॥ ६ ॥ विश्व की सृष्टि करनेवाले महत्तत्व आदि कार्य के अभि-मान देवता विराट् ने स्वयं अपने को अपने द्वारा पहले एक, फिर दस, फिर तीन भागों मे विभक्त किया, क्योंकि वे देव-कर्म और आत्मशक्ति रखनेवाले है ॥ ७ ॥ देव-शक्ति, ज्ञान-शक्ति के द्वारा हृदयावस्थित चैतन्य के रूप मे वे एक हो गये। कर्मशक्ति अर्थात् क्रियाशक्ति के द्वारा प्राणरूप से, वे दस हुए, पुनः आत्मशक्ति से अर्थात भोगशक्ति से अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत भेद से

ऋषिरुवाच—

१—इतितासाम्स्वशक्तीनासतीनामसमेत्यसः। प्रसुप्तलोकतन्त्राणांनिशाम्यगतिमीश्वरः ॥

२—कालसंज्ञातदादेवींबिभ्रच्छक्तिमुरुक्रमः। त्रयोविंशतितत्त्वानागणयुगपदाविशत् ॥

३—सोऽनुप्रविष्टोभगवान्चेष्टारूपेणतगणं। भिन्नंसयोजयामाससुप्तंकर्मप्रबोधयन् ॥

४—प्रबुद्धकर्मादैवेनत्रयोविंशतिकोगणः। प्रेरितोऽजनयत्स्वाभिर्मात्राभिरधिपूरुष ॥

५—परेणविशतास्वस्मिन्मात्रयाविश्वसृग्गणः। क्षुब्धोमान्योऽन्यमासाद्ययस्मिंल्लोकाश्चराचराः ॥

६—हिरण्मयःसपुरुषःसहस्रपरिवत्सरान्। आण्डकोशउवासाप्सु सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥

७—सवैविश्वसृजांगर्भोदेवकर्मात्मशक्तिमान्। विबभाजात्मनात्मानमेकधादशधात्रिधा ॥

८—एषह्यशेषसत्त्वानामात्मांशःपरमात्मनः। आद्योवतारोयत्रासौभूतग्रामोविभाव्यते ॥

तीन हुए । यह पुरुष समस्त प्राणियों की आत्मा परमात्मा का पहला अवतार है। जिसमें समस्त संसार प्रतीत होता है। विराट् पुरुष अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत के भेद से तीन प्रकार के, प्राणों के भेद से दस प्रकार के और हृदय-भेद से एक प्रकार के हैं ॥ ८-९ ॥ संसार की सृष्टि करनेवाले देवताओं की प्रार्थना स्मरण करके भगवान ने इन तेजों को विविधरूप देने के लिए विराट् पुरुष को तपाया, अर्थात् कार्य करने का विचार किया ॥ १० ॥ ऐसा विचार किये जाने पर ही विराट् शरीर मे देवताओं के रहने के कितने स्थान प्रकट हो गये, यह मुझसे सुनो ॥११॥ पहले मुख उत्पन्न हुआ, जिसमें लोकपाल अग्नि ने अपने अंश वाणी के साथ निवास किया जिससे जीव शब्द उच्चारण करता है ॥ १२ ॥ पुनः तालु उत्पन्न हुआ, जिसमें लोकपाल वरुण ने अपने अंश जिह्वा के साथ निवास किया जिससे जीव रस ग्रहण करता है ॥ १३ ॥ पुनः दो नासिका उत्पन्न हुई, जिनमे अपनी शक्ति घ्राणेन्द्रिय के साथ अश्विन् देवताओं ने निवास किया। जिस घ्राण से गध का ज्ञान होता है ॥ १४ ॥ अनन्तर आँखे उत्पन्न हुईं, जिनमे अपने अंश चक्षुरिन्द्रिय के साथ सूर्यदेव ने निवास किया, जिससे रूप का ज्ञान होता है ॥ १५ ॥ पुनः उनके शरीर पर चमडा उत्पन्न हुआ, जिसमें लोकपाल वायु ने अपने अश प्राण के साथ निवास किया। जिससे स्पर्श का ज्ञान होता है। पुनः कान उत्पन्न हुए जिनमे अपने अंश श्रोत्रेन्द्रिय के साथ दिशाओं ने निवास किया। इस इन्द्रिय के द्वारा शब्द का ज्ञान होता है॥१७॥ अनन्तर उनके शरीर मे त्वचा उत्पन्न हुई, उसमे अपने अश रोमों के साथ औषधियों ने निवास किया, जिनसे शरीर मे खाज होने का ज्ञान होता है ॥ १८ ॥ इसके बाद उनके शरीर में लिंग उत्पन्न हुआ। जिसमें अपने अंश वीर्य के साथ प्रजापति ने निवास किया, जिससे आनन्द का ज्ञान होता है ॥ १९ ॥ पुन. उस पुरुष के शरीर मे गुदा उत्पन्न हुई, जिसमे वायु के साथ

९—साध्यात्मःसाधिदैवश्चसाधिभूतइतित्रिधा । विराट्प्राणोदशविधएकधाहृदयेनच ॥

१०—स्मरन्विश्वसृजामीशोविज्ञापितमधोक्षजः । विराजमतपत्स्वेनतेजसैषांविवृत्तये ॥

११—अथतस्याभितप्तस्यकतिचायतनानिह । निरभिद्यन्त देवानातानिमेगदतःशृणु ॥

१२—तस्याग्निरास्यान्निर्भिन्नलोकपालोविशत्पद । वाचास्वांशेनवक्तव्यंययासौप्रतिपद्यते ॥

१३—निर्भिन्नं तालुवरुणोलोकपालोऽविशद्धरे. । जिह्वयांशेनचरसंययासौप्रतिपद्यते ॥

१४—निर्भिन्ने अश्विनौनासेविष्णोराविशतांपदं । घ्राणेनांशेनगंधस्यप्रतिपत्तिर्यतोभवेत् ॥

१५—निर्भिन्ने अक्षिणीत्वष्टालोकपालोऽविशद्विभोः । चक्षुषांऽशेनरूपाणांप्रतिपत्तिर्यतोभवेत् ॥

१६—निर्भिन्नान्यस्यचर्माणिलोकपालोनिलोविशत् । प्राणेनांशेनसंस्पर्शंयेनासौप्रतिपद्यते ॥

१७—कर्णावस्यविनिर्भिन्नौधिष्ण्यंस्वंविविशुर्दिशः । श्रोत्रेणांशेनशब्दस्यसिद्धिंयेनप्रपद्यते ॥

१८—त्वचमस्यविनिर्भिन्नांविविशुर्धिष्ण्यमोषधी. । अंशेनरोमभिःकण्डूंयैरसौप्रतिपद्यते ॥

१९—मेढ्रं तस्यविनिर्भिन्नंस्वधिष्ण्यंकउपाविशत् । रेतसांशेनयेनासावानंदंप्रतिपद्यते ॥

लोकपाल मित्र ने निवास किया, जिससे मल त्याग किया जाता है ॥ २० ॥ पुन. उनके दो हाथ उत्पन्न हुए, जिनमे काम करने की अपनी शक्ति के साथ इन्द्र ने निवास किया; जिनसे जीविका अर्जन होता है ॥ २१ ॥ पुनः दो पैर उत्पन्न हुए, जिनमे गमन करने की अपनी शक्ति के साथ लोकपाल विष्णु ने निवास किया; जिनसे मनुष्य अपने लक्ष्य-स्थान पर पहुँचता है ॥ २२ ॥ पुनः बुद्धि उत्पन्न हुई, जिसमे ज्ञान रूप अपने अंश से ब्रह्मा ने निवास किया, जिस बुद्धि से जाना जाता है ॥ २३ ॥ पुनः उनके हृदय उत्पन्न हुआ, जिसमें अपने मन रूप अंश से चन्द्रमा ने निवास किया, जिससे संकल्प आदि किया जाता है ॥ २४ ॥ पुनः इस पुरुष में अहंकार उत्पन्न हुआ, जिसमें कर्म रूप अपने अंश से हनुमान (रुद्र) ने निवास किया, जिससे कर्म किया जाता है ॥ २५ ॥ पुनः उनके सत्त्व (बुद्धि और चित्त) उत्पन्न हुआ, जिसमे अपने चित्त रूप अंश से ब्रह्मा ने निवास किया, जिससे मनुष्य निश्चय करता है ॥ २६ ॥

इस विराट् पुरुष के मस्तक से स्वर्ग, चरणों से पृथ्वी और नाभि से आकाश उत्पन्न हुआ, जिनमें त्रिगुण के परिणाम से देवता मनुष्य आदि रहते हैं। सत्वगुण की अधिकता से देवता स्वर्ग मे गये। रजोगुण की अधिकता से मनुष्य और उनके पीछे पशु आदि पृथ्वी में रहने लगे ॥ २७ ॥ तमोगुण की अधिकता से स्वर्ग और पृथ्वी के बीच में रुद्र का गण रहने लगा। पृथ्वी-आकाश के मध्य का स्थान भगवान् की नाभि कहा जाता है। अर्थात् अन्तरिक्ष में भूतों का निवास है ॥ २८ ॥ कुरुद्वह, उस पुरुष के मुख से वेद और ब्राह्मण उत्पन्न हुए, मुख से उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण मुख्य और अन्य वर्णों के गुरु हुए ॥ २९ ॥ बाहु से क्षत्र (पालन करने के शक्ति) उत्पन्न हुआ, जिसके अनुवर्तन करनेवाले क्षत्रिय हुए। ये क्षत्रिय, वर्णों की, चोर आदि के उपद्रवों से रक्षा करते हैं ॥ ३० ॥ उनकी जाँघों से विश, अर्थात् संसार की जीविका

२०—गुदपु सोविनिर्मिन्नमित्रोलोकेशआविशत् । वायुनांशेनयेनासौविसर्गंप्रतिपद्यते ॥
२१—हस्तावस्यविनिर्मिन्नाविंद्रःस्वःपतिराविशत् । वार्त्तयाऽशेनपुरुषोययावृत्तिंप्रपद्यते ॥
२२—पादावस्यविनिर्मिन्नौलोकेशोविष्णुराविशत् । गत्यास्वांशेनपुरुषोययाप्राप्यंप्रपद्यते ॥
२३—हृदयंचास्यनिर्मिन्नचंद्रमाधिष्ण्यमाविशत् । मनसांशेनयेनासौविक्रियांप्रतिपद्यते ॥
२४—आत्मानंचास्यनिर्मिन्नअभिमानोविशत्पद । कर्मणांशेनयेनासौकर्तव्यंप्रतिपद्यते ॥
२५—सत्वंचास्यविनिर्मिन्नमहान्धिष्ण्यमुपाविशत् । चित्तेनांशेनयेनासौविज्ञानंप्रतिपद्यते ॥
२६—शीर्ष्णोऽस्यद्यौर्धरापद्भ्यांखंनाभेरुदपद्यत । गुणानांवृत्तयोयेषुप्रतीयन्तेसुरादयः ॥
२७—आत्यंतिकेनसत्वेनदिवंदेवाःप्रपेदिरे । धरारजःस्वभावेनपणयोयेचतानन् ॥
२८—तार्तीयेनस्वभावेनभगवन्नाभिमाश्रिता । उभयोरंतरंव्योमयेरुद्रपार्षदांगणाः ॥
२९—मुखतोऽवर्ततब्रह्मपुरुषस्यकुरूद्वह । यस्तून्मुखत्वाद्वर्णानांमुख्योऽभूद्ब्राह्मणोगुरुः ॥
३०— बाहुभ्योवर्तनक्षत्रंक्षत्रियस्तदनुव्रतः । योजातस्त्रायतेवर्णान्पौरुषःकण्टकक्षतात् ॥

निर्वाह करनेवाली शक्ति उत्पन्न हुई। उस भगवान की जंघा से उत्पन्न होने के कारण वैश्यों ने मनुष्यों की जीविका का प्रबन्ध किया ॥ ३१ ॥ शुश्रूषा-धर्म की सिद्धि के लिए, भगवान् के चरणों से पहले शूद्र उत्पन्न हुआ था, जिसके व्यवहार से भगवान् संतुष्ट हुए ॥ ३२ ॥ ये चारो वर्ण अपने-अपने धर्म से अपने पिता भगवान् की श्रद्धापूर्वक आराधना आत्मशुद्धि के लिए करते हैं। क्योंकि ये उनसे जीवका के साथ उत्पन्न हुए हैं ॥ ३३ ॥

विदुर, काल, कर्म और स्वभाव रूप शक्ति रखनेवाले भगवान् की योगमाया के बल से उत्पन्न, इस विराट पुरुष का यथार्थ और समस्त वर्णन करने की शक्ति किसमें है ? ॥ ३४ ॥ अंग, फिर भी गुरु के द्वारा जैसा मैंने सुना है, वैसा अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान् की कीर्ति का वर्णन करता हूँ, क्योंकि दूसरों का नाम लेने के कारण अपनी अपवित्र वाणी को पवित्र करना चाहता हूँ ॥ ३५ ॥ यशस्वी पुरुषों में श्रेष्ठ भगवान् के गुणों का वर्णन करना और विद्वानों के द्वारा कहे हुए भगवान के कथामृत का पान (श्रवण) करना मनुष्य के कान और वचन के लिए सर्वश्रेष्ठ लाभ है, ऐसा विद्वान कहते हैं ॥ ३६ ॥ भगवान् की महिमा का वर्णन योग में निपुण, बुद्धि के द्वारा एक हजार वर्षों में भी आदिकवि ब्रह्मा क्या समाप्त कर सके ! ॥ ३७ ॥ अतएव भगवान की माया, मायावी पुरुषों को भी मोहित करती है। क्योंकि स्वय भगवान भी अपनी माया का स्वरूप नहीं जानते। उसका विस्तार इतना है, यह वे भी नहीं जानते, फिर दूसरे कैसे जान सकते हैं ? ॥३८॥ जिनको जानने के लिये वाणी मन के साथ उद्योग करती है, पर उन्हें न पाकर लौट आती है, मैं, रुद्र तथा ये सब देवता भी उनका पता नहीं पा सकते। उस भगवान को हम नमस्कार करते हैं ॥ ३९ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कंध का छठवाँ अध्याय समाप्त

३१—विशोवर्ततस्योर्वोर्लोकवृत्तिकरींविभोः। वैश्यस्तदुद्भवोवार्तां नृणाय.समवर्तयत् ॥
३२—पद्भ्यांभगवतोजज्ञेशुश्रूषाधर्मसिद्धये। तस्यांजातःपुराशूद्रोयद्वृत्त्यातुष्यतेहरिः ॥
३३—एतेवर्णाःस्वधर्मेणयजन्तिस्वगुरुंहरिम्। श्रद्धयात्मविशुद्ध्यर्थंयज्जाताःसहवृत्तिभिः ॥
३४—एतत्क्षत्तर्भगवतोदैवकर्मात्मरूपिणः। कःश्रद्दध्यादुपाकर्तुं योगमायाबलोदयम् ॥
३५—अथापिकीर्तयाम्यंगयथामतियथाश्रुतम्। कीर्तिं हरेः स्वांसत्कर्तुं गिरमन्याभिधाऽसतीम् ॥
३६—एकान्तलाभंवचसोनुपुंसांसुश्लोकमौलेर्गुणवादमाहुः। श्रुतेश्चविद्वद्भिरुपाकृतायांकथासुधायामुपसम्प्रयोग ॥
३७—आत्मनोवसितोवत्समहिमाकविनादिना। संवत्सरसहस्रान्तेधियायोगविपक्वया।
३८—अतोभगवतोमायामायिनामपिमोहिनी। यत्स्वयंचात्मवर्त्मात्मानवेदकिमुतापरे।
३९—यतोऽप्राप्यन्यवर्तन्तवाचश्चमनसासह। अहंचान्यइमेदेवास्तस्मैभगवतेनमः ॥

इ० भा० म० तृ० षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

जीवात्मा और अविद्या का सम्बन्ध

श्रीशुकदेव बोले—इस प्रकार भगवान मैत्रेय के कहने पर अपने वचनों से उनको प्रसन्न करते हुए व्यासदेव के पुत्र विद्वान् विदुर इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

विदुर बोले—ब्रह्मन्, भगवान् तो चेतन-स्वरूप हैं, निर्विकार और निर्गुण है, फिर लीला के लिए उनके गुण और कार्य कहाँ से आए ॥ २ ॥ निर्गुण मे गुण और निर्विकार में कार्य का होना कैसै सम्भव हुआ ! क्रीड़ा के लिए, उद्यम की आवश्यकता होती है । बालक अपनी इच्छा से अथवा किसी दूसरे लड़के के कहने से वह खेलता है, पर भगवान तो स्वतः तृप्त हैं और असंग हैं, फिर उनमें लीला करने की इच्छा कैसे उत्पन्न हुई ? ॥ ३ ॥ भगवान् ने गुणमयी अपनी माया से, इस विश्व की सृष्टि की है । वे इसका पालन करते हैं और वे इसका संहार करेंगे ॥ ४ ॥ देश, काल, अवस्था, स्वय आदि के द्वारा जिनके बोध (ज्ञान) का अन्त नहीं होता है, उन भगवान् का अविद्या के साथ सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? अर्थात् भगवान् व्यापक हैं, अतएव दीप-प्रभा के समान उनका लोप नहीं हो सकता, इस प्रकार देश के कारण उनका लोप नही हो सकता, इस प्रकार देश के कारण उनका लोप होना सम्भव नहीं हुआ । नित्य होने के कारण काल के द्वारा भी लोप होना सम्भव नहीं होता। उनमे विकार न होने के कारण अवस्था से भी उनका लोप नहीं हो सकता। स्वतः लोप होना तो सम्भव ही नहीं है, क्योंकि वे सत्य है। ऐसी दशा मे अविद्या के द्वारा उनका सम्बन्ध कैसे हो सकता है ॥ ५ ॥ ये भगवान् सब प्राणियों में अवस्थित हैं, इस प्रकार भोक्ता जीव भी, भगवान् ही हुआ, फिर

श्रीशुकउवाच—

१—एवब्रुवाणेमैत्रेयद्वैपायनसुतोबुधः । प्रीणयन्निवभारत्याविदुरःप्रत्यभाषत ॥

विदुरउवाच—

२—ब्रह्मन्कथभगवतश्चिन्मात्रस्याविकारिणः । लीलयाचापियुज्येरन्निर्गुणस्यगुणाःक्रियाः ॥

३—क्रीडायामुद्यमोऽर्भस्यकामश्चिक्रीडिषाऽन्यतः । स्वतस्तृप्तस्यच कथनिवृत्तस्यसदान्यतः ॥

४—अस्राक्षीद्भगवान्विश्वगुणमय्यात्ममायया । तयासंस्थापयत्येतद् भूयःप्रत्यभिधास्यति ॥

५—देशतःकालतोयोऽवस्थातःस्वतोऽन्यतः । अविलुप्तावबोधात्मासयुज्येताजयाकथम् ॥

६—भगवानेकएवैकःसर्वक्षेत्रेष्ववस्थितः । अमुष्यदुर्भगत्ववाक्लेशोवाकर्मभिःकुतः ॥

इसका दुखी होना, अपने कर्मों के द्वारा क्लेश पाना, कैसे सम्भव हो सकता है ! इस ज्ञान-सकट मे मेरा मन खिन्न हो रहा है। अतएव मेरे मन का यह महान् मोह आप दूर करें ॥ ६–७ ॥

श्रीशुकदेव बोले—यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से आये विदुर के ऐसा पूछने पर, भगवान् में चित्त रखनेवाले विस्मय-हीन मैत्रेय मुनि मुस्कुरा कर उनसे इस प्रकार बोले—॥ ८ ॥

मैत्रेय बोले—यही भगवान की माया है, जो तर्क से विरुद्ध होती है, अर्थात् तर्क के द्वारा जिसकी सिद्धि नहीं होती। उसीके कारण नित्य मुक्त पुरुष मे दुःख और बन्धन की प्रतीति होती है ॥ ९ ॥ वस्तु के विना ही, कार्य के न होने पर भी, स्वप्न देखनेवाले इस मनुष्य को मालूम होता है, मेरा सिर कट गया। यह उसका आत्म-विपर्यय है। यह उसकी असत्य प्रतीति है। जीव मे भी ऐसी ही प्रतीति होती है ॥ १० ॥ जल मे चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब कापता है, पर इसका कारण जल का काँपना है, वह चन्द्रमा मे मिथ्या ही प्रतीत होता है, इसी प्रकार द्रष्टा आत्मा में अनात्म-देह आदि के गुण न रहने पर भी, प्रतीत होते है और भगवान मे नहीं ॥ ११ ॥ यह आत्मा मे अनात्म-बुद्धि, निवृत्ति-धर्म के द्वारा, भगवान की कृपा के द्वारा तथा भगवद्भक्ति के द्वारा, धीरे-धीरे नष्ट हो सकती है ॥ १२ ॥ द्रष्टा अन्तर्यामी रूप आत्मा (हरि) मे जब इन्द्रियाँ निश्चल हो जाती हैं, उस समय सुषुप्ति अवस्था मे वर्तमान पुरुष के समान नष्ट हो जाते हैं और सदा के लिए नष्ट हो जाते हैं ॥ १३ ॥ भगवान् के गुणों के सुनने से सब प्रकार के क्लेश दूर होते हैं, फिर यदि मन में भगवान की चरणरज की सेवा करने का भाव उत्पन्न हो जाय तो फिर क्या कहना ? ॥ १४ ॥

७—एतस्मिन्मेमनोविद्वन्खिद्यतेज्ञानसकटे। तन्नःपराणुदविभोकश्मलमानसमहत् ॥

श्रीशुकउवाच—

८—इत्थंचोदितःक्षत्रातत्त्वजिज्ञासुनामुनिः। प्रत्याहभगवच्चितःस्मयन्निवगतस्मयः ॥

मैत्रेयउवाच—

९—सेयभगवतोमायायन्नयेनविरुद्ध्यते। ईश्वरस्यविमुक्तस्यकार्पण्यमुतबधनम् ॥

१०—यदर्थेनविनाऽमुष्यपुसआत्मविपर्ययः। प्रतीयतउपद्रष्टुःस्वशिरश्छेदनादिकः ॥

११—यथाजलेचद्रमसःकपादिस्तत्कृतोगुणः। दृश्यतेऽसन्नपिद्रष्टुरात्मनोऽनात्मनोगुणः ॥

१२—सवैनिवृत्तिधर्मेणवासुदेवानुकपया। भगवद्भक्तियोगेनतिरोधत्तेशनैरिह ॥

१३—यदेंद्रियोपरामोथद्रष्ट्रात्मनिपरेहरौ। विलीयंतेतदाक्लेशाःससुप्तस्येवकृत्स्नशः ॥

१४—अशेषसक्लेशशमविधत्तेगुणानुवादश्रवणमुरारेः।

कुत.पुनस्तच्चरणारविंदपरागसेवारतिरात्मलब्धा ॥

विदुर बोले—भगवन्, आपके सुन्दर वचनों की तलवार से हमारे समस्त सन्देह दूर हो गये। अतएव अब हम, ईश्वर क्यों स्वतंत्र है और जीव क्यों परतन्त्र है—इन दोनों बातों को ठीक-ठीक समझ रहे हैं? ॥ १५ ॥ विद्वन्, आपने यह ठीक कहा है कि भगवान की शक्ति जीव-विषयिनी माया के द्वारा ही उसके दुखी-सुखी होने की प्रतीति होती है। अतएव यह मस्तक-छेदन आदि के समान असत्य और निर्मूल है। क्योंकि इस ससार का मूल तो अज्ञान ही है। जो इस संसार मे सबसे अधिक मूर्ख है, अर्थात् संसार में आसक्त है और जो बुद्धि के परे चला गया है, अर्थात् ससार से विरक्त होकर भगवद्रूप प्राप्त हो गया है, ये ही दोनों सुख से जीवन निर्वाह करते है। बीच के मनुष्य दुःख उठाते है॥ १६-१७ ॥ भगवन्, प्रपच-रूप से जिसकी प्रतीति होती है, वह वस्तु से शून्य है। उसमे कुछ है नहीं, अर्थात् वह असत्य है। अब मैं आपकी सेवा से इस प्रतीति को भी दूर करना चाहता हूँ॥ १८ ॥ आप जैसे महापुरुषों की सेवा से अन्तर्यामी भगवान के चरणों मे तीव्र अनुराग उत्पन्न होता है, जिससे ससार रूप दुःखों का नाश होता है॥ १९ ॥ भगवद्प्राप्ति के द्वाररूप भक्तों की सेवा, थोडी तपस्या वाले मनुष्यों को दुष्प्राप्य है। उन भक्तों की मण्डली मे देव-देव भगवान का यश निरन्तर गाया जाता है॥ २० ॥

पहले इन्द्रिय आदि के साथ महत्तत्व को उत्पन्न करके भगवान् ने उससे विराट शरीर को उत्पन्न किया और पुनः उन्होंने उसमे प्रवेश किया ॥ २१ ॥ जो आदिपुरुष भगवान् सहस्र चरण, सहस्र उरु और सहस्र बाहु वाले है, जिनमे यह समस्त विश्व, ये समस्त लोक, फैलाव के साथ रहते हैं॥ २२ ॥ इन्द्रिय अपने विषय और देवता के साथ अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत—ये तीन, दस प्रकार के प्राण, विराट् पुरुष मे रहते है, यह आपने बतलाया है, और जिनसे चारो वर्ण उत्पन्न हुए हैं, उन विराट् पुरुष की विभूति आप मुझसे कहे ॥२३॥ जिस विराट्

विदुरउवाच—

१५—सञ्छिन्नःसंशयोमह्यंतवसूक्तासिनाविभो। उभयत्रापिभगवन्मनोमेसंप्रधावति ॥

१६—साध्वेतद्व्याहृतंविद्वन्नात्ममायायनंहरेः। आभात्यपार्थंनिर्मूलंविश्वमूलंनयद्बहिः ॥

१७—यश्चमूढतमोलोकेयश्चबुद्धेःपरंगतः। तावुभौसुखमेधेतेक्लिश्यत्यन्तरितोजनः ॥

१८—अर्थाभावंविनिश्चित्यप्रतीतस्यापिनात्मनः। तांचापियुष्मच्चरणसेवयाऽहंपराणुदे ॥

१९—यत्सेवयाभगवतःकूटस्थस्यमधुद्विषः। रतिरासोभवेत्तीव्रःपादयोर्व्यसनार्दनः ॥

२०—दुरापाह्यल्पतपसःसेवावैकुंठवर्त्मसु। यत्रोपगीयतेनित्यंदेवदेवोजनार्दनः ॥

२१—सृष्ट्वाग्रेमहदादीनिसविकाराण्यनुक्रमात्। तेभ्योविराजमुद्धृत्यतमनुप्राविशद्विभुः ॥

२२—यमाहुराद्यंपुरुषंसहस्राङ्घ्र्यूरुबाहुकम्। यत्रविश्वइमेलोकाःसविकाशंसमासते ॥

२३—यस्मिन्दशविधःप्राणःसेन्द्रियार्थेन्द्रियस्त्रिवृत्। त्वयेरितोयतोवर्णास्तद्विभूतीर्वदस्वनः ॥

पुरुष की विभूतियों में पुत्र, पौत्र, नाती और गोत्रजों के साथ अनेक रूपवाली यह प्रजा वर्तमान थी, जिनसे यह ससार फैला हुआ है ॥ २४ ॥ प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्मा ने किन-किन प्रजापतियों को उत्पन्न किया ? नव प्रकार की सृष्टि तथा उसके भेदों को किस प्रकार बनाया। मन्वन्तरों के अधिपति मनुओं को कैसे बनाया ? ॥ २५ ॥ इन मनुओं का वंश, उनके वंशजों का चरित्र, मैत्रेय, पृथ्वी के ऊपर और नीचे जो लोक हैं, उनका रचना-प्रकार तथा, पृथ्वी का परिमाण, पशु, मनुष्य देवता, सरिसृप् (रेंग कर चलनेवाले), पक्षी, इतनी सृष्टि का विभाग जरायुज, अण्डज और उद्भिज की रचना उन्होंने कैसे की, यह आप मुझसे कहे ! ॥ २६-२७ ॥ गुणों के आधार से अवतार लेनेवाले, सृष्टि स्थिति और संहार तथा उनके आश्रय की रचना करनेवाले श्रीनिवास भगवान के उदार पराक्रमों का वर्णन आप मुझसे करें ॥ २८ ॥ वर्णाश्रम का विभाग, उनका चिन्ह, आचार, स्वभाव, ऋषियों के जन्म-कर्म आदि तथा वेदों का विभाग आप मुझसे बतलावे ॥ २९ ॥ यज्ञों का विस्तार, योग का मार्ग, ज्ञान और उसके साधन, सांख्य, तथा भगवत् कथित तंत्र, पाखण्ड मतों की विषमता, प्रतिलोम-सकर-चाण्डाल आदि की उत्पत्ति, गुण कर्म से होनेवाली, जीव की समस्त दिशाएँ, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अविरोधी उपाय, जीविका निर्वाह के उपाय, राजधर्म, शास्त्राध्ययन, श्राद्ध-विधि, पितरों की सृष्टि, ग्रहनक्षत्र और ताराओं का काल-चक्र में सन्निवेश, दान, तपस्या, यज्ञ, वापी आदि खुदाने का फल, प्रवास का धर्म, आपद्धर्म, धर्ममूल-भगवान को सन्तुष्ट करने का उपाय, हे निष्पाप ! यह आप कहें

२४—यत्रपुत्रैश्चपौत्रैश्चनप्तृभिःसहगोत्रजैः। प्रजाविचित्राकृतयआसन्याभिरिदंततम् ॥

२५—प्रजापतीनांसपतिश्चक्लृपे कान्प्रजापतीन्। सर्गांश्चैवानुसर्गांश्चमनून्मन्वंतराधिपान् ॥

२६—एतेषामपिवंशांश्चवंश्यानुचरितानिच। उपर्यधश्चयेलोकाभूमेर्मित्रात्मआसते ॥

२७—तेषांसंस्थांप्रमाणंचभूर्लोकस्यचवर्णय। तिर्यङ्मानुषदेवानांसरीसृपपतत्त्रिणाम् ॥
वदनःसर्गसंव्यूहंगार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् ॥

२८—गुणावतारैर्विश्वस्यसर्गस्थित्यप्ययाश्रयम्। सृजतःश्रीनिवासस्यव्याचक्ष्वोदारविक्रमम् ॥

२९—वर्णाश्रमविभागांश्चरूपशीलस्वभावतः। ऋषीणांजन्मकर्मादिवेदस्यचविकर्षणम् ॥

३०—यज्ञस्यचवितानानियोगस्यचपथःप्रभो। नैष्कर्म्यस्यचसांख्यस्यतन्त्रंवाभगवत्स्मृतं ॥

३१—पाखण्डपथवैषम्यंप्रतिलोमनिवेशनम्। जीवस्यगतयोयाश्चयावतीर्गुणकर्मजाः ॥

३२—धर्मार्थकाममोक्षाणांनिमित्तान्यविरोधतः। वार्तायादण्डनीतेश्चश्रुतस्यचविधिंपृथक् ॥

३३—श्राद्धस्यचविधिंब्रह्मन्पितृणांसर्गमेवच। ग्रहनक्षत्रताराणांकालावयवसंस्थितिम् ॥

३४—दानस्यतपसोवापियच्चेष्टापूर्तयोःफलं। प्रवासस्थस्ययोधर्मोयश्चपुंसउतापदि ॥

३५—येनवाभगवान्तुष्येद्धर्मयोनिर्जनार्दनः। सम्प्रसीदतिवायेषामेतदाख्याहिचानघ ॥

और भगवान् किस प्रकार प्रसन्न होते है, यह भी कहे ॥३०,३५॥जो शिष्य आज्ञाकारी हैं उनको तथा पुत्र को विना पूछे भी दीनवत्सल गुरु ज्ञानोपदेश देते ॥ ३६ ॥

भगवन्, आप मुझे बतलावें कि तत्वों का प्रलय कितने प्रकार का होता है ? उनमें कितने तत्व प्रलयकाल मे भगवान की सेवा करते है और कितने उस समय सो जाते है ॥ ३७ ॥ जीव का स्वरूप, परमात्मा का स्वरूप, उपनिपद् कथित् ज्ञान (जिसमे जीव और ब्रह्म की एकता बतलायी गयी है) गुरु-शिष्य का प्रयोजन और यथार्थ ज्ञान के जो उपाय विद्वानों ने बतलाये हों वह सब आप मुझसे कहे ॥ ३८ ॥ मनुष्यों को स्वय ज्ञान, भक्ति अथवा वैराग्य कैसे हो सकता है ? अतएव भगवान के कर्मों को जानने के लिए मैंने ये प्रश्न आपसे किये है ॥३९॥ मैं अज्ञान हूँ। माया से ज्ञानरूप मेरी दृष्टि नष्ट हो गयी, अतएव मित्र समझकर मैंने आपसे ये प्रश्न किये है । अतएव आप उत्तर दे ॥ ४० ॥ हे निष्पाप मैत्रेय, समस्त वेद, यज्ञ, तपस्या और दान ये सब जीव को अभय दान देने की एक कला (अश) की भी बराबरी नहीं कर सकते ॥ ४१ ॥

श्रीशुकदेव बोले—मुनिश्रेष्ठ, पुराणों के ज्ञाता कुरु-श्रेष्ठ विदुर के पूछनेपर बड़े प्रसन्न हुए। भगवान् की कथा कहने के लिए उत्साहित हुए और वे हँसकर इस प्रकार बोले—॥४२॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कध का सातवाँ अध्याय समाप्त

———.o:———

३६—अनुव्रतानांशिष्याणांपुत्राणांचद्विजोत्तम । अनापृष्टमपिब्रूयुर्गुरवोदीनवत्सलाः ॥

३७—तत्त्वानांभगवंस्तेषांकतिधाप्रतिसंक्रमः । तत्रेमंकउपासीरन्कउस्विदनुशेरते ॥

३८—पुरुषस्यचसंस्थानंस्वरूपंवापरस्यच । ज्ञानंचनैगमंयत्तद्गुरुशिष्यप्रयोजनं ॥

निमित्तानिचतस्येहप्रोक्तान्यनघसूरिभिः ॥

३९—स्वतोज्ञानंकुतःपुंसांभक्तिर्वैराग्यमेववा । एतान्मेपृच्छतःप्रश्नान्हरेःकर्मविवित्सया ॥

ब्रूहिमेऽज्ञस्यमित्रत्वादजयानष्टचक्षुषः ॥

४०—सर्वेवेदाश्चयज्ञाश्चतपोदानानिचानघ । जीवाभयप्रदानस्यनकुर्वीरन्कलामपि ॥

श्रीशुकउवाच—

४१—सइत्थमापृष्टपुराणकल्पःकुरुप्रधानेनमुनिप्रधानः । प्रवृद्धहर्षोभगवत्कथायांसंचोदितस्तंप्रहसन्निवाह ॥

इ० भा० म० तृतीयस्कंधेसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

———

आठवाँ अध्याय

ब्रह्मा का जन्म और तपस्या

मैत्रेय बोले—पुरुवंश धन्य है, सज्जनों की सेवा करने योग्य है क्योंकि भगवान के भक्त तुम्हारे जैसा राजा उस वंश में उत्पन्न हुआ है। तुम अजित्, भगवान की कीर्तिमाला को नित-नित नयी बनाते हो ॥ १ ॥ साधारण सुख के लोभ से बहुत बड़े दुःख में फँसे मनुष्यों के उद्धार के लिए उनका दुःख दूर करने के लिए मैं भागवत पुराण कहता हूँ। जो पुराण भगवान ने ऋषियों से कहा है ॥ २ ॥

एक समय आदि भगवान् संकर्षण पाताल लोक में बैठे थे, जिन भगवान का ज्ञान अकुंठित है, कहीं रुकनेवाला नहीं है। उन परमपुरुष का तत्व जानने की इच्छा रखनेवाले सनत्कुमार आदि ऋषियों ने उनसे प्रश्न किया ॥ ३ ॥ जो अपने ही आश्रय को, अपने ही स्वरूप को बहुत श्रेष्ठ समझते हैं और जिनको ऋषिगण वासुदेव कहते हैं, वे आँखे बन्द किये और ऋषियों पर अपनी कृपा बतलाने के लिए आँखों को थोड़ा खोले पाताल लोक में बैठे हुए थे ॥ ४ ॥ गंगा के जल से भीगी अपनी जटाओं के द्वारा मुनिगण जिनके चरण-पीठ-कमल का स्पर्श करते है और भगवान के पाद-पीठरूप उस कमल की पूजा, पति की इच्छा से नागकन्याएँ अनेक उपहारों से करती हैं ॥ ५ ॥ प्रेमाधिक्य के कारण जिनके अक्षर टूट जाते हैं, ऐसे वचनों के द्वारा भगवान के कर्मों को जानने वाले ऋषियों ने उन कर्मों का बार बार कीर्तन करते हुए हजारों किरीटों में जड़े मणियों से जिनके हजारों फन प्रकाशित हो गये है, उनसे पूछा ॥ ६ ॥ इस प्रकार निवृत्तिधर्म में अनुराग रखनेवाले सनत्कुमार से उनके पूछने पर उन भगवान ने

मैत्रेयउवाच—

१—सत्सेवनीयोबतपूरुवंशोयल्लोकपालोभगवत्प्रधान'। बभूविथेहाजितकीर्तिमाल.पदेपदेनूतनयस्यभीक्ष्णं ॥

२—सोहन्नृणाक्षुल्लसुखायदुःखमहद्गतानाविरमायतस्य। प्रवर्त्तयेभागवतपुराणयदाहसाक्षाद्भगवानृषिभ्यः ॥

३—आसीनमुर्व्यांभगवतमाद्यसंकर्षणदेवमकुंठसत्त्व। विवित्सवस्तत्त्वमत.परस्य कुमारमुख्यामुनयोऽन्वपृच्छन् ॥

४—स्वमेवधिष्ण्यबहुमानयतयवासुदेवाभिधमामनति। प्रत्यग्धृताक्षाम्बुजकोशमीषदुन्मीलयंतविबुधोदयाय॥

५—स्वर्धुन्युदार्द्रै.स्वजटाकलापैरुपस्पृशतश्चरणोपधान। पद्मयदर्चन्त्यहिराजकन्या'सप्रेमनानाबलिभिर्वरार्थाः॥

६—मुहुर्गृणतोवचसाऽनुरागस्खलत्पदेनास्यकृतानितज्ज्ञा.।

किरीटसाहस्रमणिप्रवेकप्रद्योतितोद्दामफणासहस्र ॥

इस भागवत पुराण को कहा। सनत्कुमार ने व्रतधारी अर्थात् निवृत्ति धर्मानुयायी साख्यायन से कहा—निवृत्ति धर्मपालन करनेवालों मे साख्यायन ने भगवान् की विभूतियों का वर्णन करने की इच्छा से अपने शिष्य और हमारे गुरु पराशर मुनि तथा बृहस्पति से यह भागवत पुराण कहा ॥ ७-८ ॥ उन दयालु मुनि पराशर ने जिन्हें पुलस्त्य मुनि से पुराणवक्ता होने का वर मिला था, मुझसे यह आदिपुराण भागवत कहा, वह भागवत पुराण हे वत्स, श्रद्धालु तथा मेरी आज्ञा माननेवाले तुमसे मै कहता हूँ ॥ ९ ॥

यह समस्त विश्व जल-मग्न था, उस समय सदा चित् शक्ति के द्वारा जाग्रत रहनेवाले भगवान,शेषनाग की शय्या पर सोते हुए और अपने निज ज्ञान मे आनन्दमग्न, आँखें बन्द किये निश्चेष्ट पड़े थे ॥ १० ॥ अपने शरीर के भीतर समस्त सूक्ष्म भूतों को रखकर और अपनी कालात्मिका शक्ति को सृष्टि के समय प्रेरित करनेवाले, अपनी शय्या पर जल मे रहे। जिस प्रकार काष्ठ मे आग छीपी रहती है ॥ ११ ॥ हजारों चतुर्युगों तक भगवान अपनी चित् शक्ति के साथ योग निद्रा में पड़े रहे और काल-शक्ति के द्वारा जिनका क्रिया-कलाप चल रहा है उन भगवान ने अपने शरीर मे लीन समस्त लोकों को देखा ॥ १२ ॥ सूक्ष्म अर्थो मे, सृष्टि के उपयोगी सूक्ष्म पदार्थो मे जिनकी दृष्टि (ज्ञान) लगी हुई है, उन भगवान के भीतर जो एक अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ था, वह काल युक्त रजोगुण से क्षुभित होकर सृष्टि करने के लिए उनकी नाभि से उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ वह सूक्ष्म पदार्थ कमल होकर निकला। जीवों के अदृष्ट को

७—प्रोक्त किलैतद्भगवत्तमेननिवृत्तिधर्माभिरतायये न । सनत्कुमारायसचाहपृष्ट.साख्यायनायागधृतव्रताय॥

८—साख्यायनःपारमहंस्यमुख्योविवक्षमाणोभगवद्विभूतीः ।
जगादसोऽस्मद्गुरवेऽन्वितायपराशरायाथबृहस्पतेश्च ॥

९—प्रोवाचमह्यं सदयालुरुक्तोमुनिःपुलस्त्येनपुराणमाद्य ।
सोऽहंतवैतत्कथयामिवत्सश्रद्धालवेनित्यमनुव्रताय ॥

१०—उदाप्लुतविश्वमिदतदासीद्यन्निद्रयाऽमीलितदृङ्न्यमीलयत् ।
अहीन्द्रतल्पेऽधिशयानएकःकृतक्षणःस्वात्मरतौनिरीहः ॥

११—सोऽतःशरीरेऽर्पितभूतसूक्ष्मःकालात्मिकाशक्तिमुदीरयाणः ।
उवासतस्मिन्सलिलेपदेस्वेयथाऽनलोदारुणिरुद्धवीर्यः ॥

१२—चतुर्युगानाचसहस्रमप्सुस्वपन्स्वयोदीरितयास्वशक्त्या ।
कालाख्ययासादितकर्मतंत्रोलोकानपीतान्ददृशेस्वदेहे ॥

१३—तस्यार्थसूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टेरन्तर्गतोऽर्थोरजसातनीयान् ।
गुणेन कालानुगतेनविद्धःसूष्यन्तदाऽभिद्यतनाभिदेशात् ॥

(सचित कर्म को) जागृत करनेवाले काल के साथ वह बढा और उस विशाल जलराशि को उस स्वय उत्पन्न कमल ने सूर्य के समान प्रकाशित किया ॥ १४ ॥ उस लोकात्मक कमल मे, जिससे जीव-भोग्य समस्त पदार्थों का ज्ञान होता है, विष्णु ने स्वय प्रवेश किया। उस कमल में साक्षिरूप से विष्णु के प्रवेश करने पर वेदमय ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जिनको लोग स्वायभुव कहते हैं ॥ १५ ॥ उस कमल के मध्य मे बैठकर उन्होंने अपने चारों ओर देखा। वे चारो ओर घूमकर आँखे फाड़कर आकाश मे देखने लगे जिससे उनके चार मुख हो गये ॥ १६ ॥ उस समय उन्हें कोई भी लोक दिखायी नहीं पड़ा। प्रलयकाल की वायु से उठायी जल की बडी-बडी लहरियों वाले कमल मे बैठे रहे। पर लोकतत्व और आत्मा का ज्ञान उन आदिदेव को न हो सका ॥ १७ ॥ मैं यह कौन हूँ ? जो कमल पर बैठा हुआ हूँ। यह अकेला कमल जल मे कहाँ से आया। इसके नीचे भी कुछ है, यह कमल जिस पर है उसके नीचे कोई चीज अवश्य होनी चाहिए ॥ १८ ॥ ऐसा निश्चय करके उस कमल के मृणाल के छेदों मे होकर जल मे गये। उस कमल-नाल को जड ढूँढते हुए वे नीचे गये भी, पर कुछ जान न सके ॥ १९ ॥ हे विदुर, उस गाढ अन्धकार मे अपना मूल, अपना कारण ढूँढते-ढूँढते ब्रह्मा को अनेक वर्ष बीत गए। जो काल अजन्मा विष्णु का शस्त्र है और मनुष्यों को भय-भीत तथा उनकी आयु को नष्ट करता है, अर्थात् ढूँढते-ढूँढते सौ वर्ष बीत गए ॥ २० ॥ मनोरथ के सिद्ध न होने से वे देव पुनः अपने स्थान पर लौट आये और वहाँ आकर श्वास को रोकर चित्त को स्थिर किया और समाधि-योग मे स्थिर होकर बैठे ॥ २१ ॥ सौ वर्षों तक

१४—सपद्मकोशःसहसोदतिष्ठत्कालेनकर्मप्रतिबोधनेन। स्वरोचिषातत्सलिलविशालविद्योतयन्नर्कइवात्मयोनि.॥

१५—तल्लोकपद्मसउएवविष्णु.प्रावीविशत्सर्वगुणावभास।

तस्मिन्स्वयवेदमयोविधातास्वयम्भुवयस्मवदतिसोऽभूत्॥

१६—तस्यासचाम्भोरुहकर्णिकायामवस्थितोलोकमपश्यमान.।

परिक्रमन्व्योम्निविवृत्तनेत्रश्चत्वारिलेभेऽनुदिशमुखानि ॥

१७—तस्माद्युगान्तश्वसनावघूर्णजलोर्मिचक्रात्सलिलाद्विरूढ।

उपाश्रितःकञ्जमुलोकतत्त्वनात्मानमद्धाऽविददादिदेवः ॥

१८—कएषयोऽसावहमब्जपृष्ठएतत्कुतोवाऽब्जमनन्यदप्सु। अस्तिह्यधस्तादिहकिंचनैतदधिष्ठितयत्रसतानुभाव्य॥

१९—सइत्थमुद्वीक्ष्यतदब्जनालनाडीभिरन्तर्जलमाविवेश।

नार्वाग्गतस्तत्खरनालनालनाभिंविचिन्वस्तदविंदताजः॥

२०—तमस्यपारेविदुरात्मसर्गविचिन्वतोऽभूत्सुमहांस्त्रिणेमि.।योदेहभाजाभयमीरयाणःपरिक्षिणोत्यायुरजस्यहेतिः॥

२१—ततोनिवृत्तोऽप्रतिलब्धकाम.स्वधिष्ण्यमासाद्यपुन.सदेवः।

शनैर्जितश्वासनिवृत्तचित्तोन्यषीददारूढसमाधियोगः॥

निरंतर योग करने से ब्रह्मा को ज्ञान उत्पन्न हुआ। उन्होंने अपने हृदय में ही प्रकाशित उसको देखा, जिसको वे पहले न देख सके थे ॥ २२ ॥ उन्होंने देखा कि कमल-मृणाल के समान श्वेत और लम्बे सर्प-शरीर की शय्या पर एक पुरुष सो रहे हैं। फणरूपी, आतपत्रों (छाता) से युक्त मस्तक के रत्नों के प्रकाश से अन्धकार का नाश हो रहा है। ऐसे प्रलयकाल के जल में उन्होंने एक पुरुष को देखा ॥ २३ ॥ उस पुरुष की शरीर-शोभा से मरकतमणि के पर्वत की शोभा तिरस्कृत हो रही थी। सन्ध्या के मेघों को वस्त्ररूप मे पहननेवाले पर्वत की शोभा, उस पुरुष के पीताम्बर से तिरस्कृत हो रही थी। सुवर्ण के अनेक शिखरोंवाले पर्वत की शोभा उस पुरुष के किरीट के रत्नों से तिरस्कृत हो रही थी। रत्न, जलधारा, औषधि, पुष्पों की वनमाला धारण करनेवाले, बाँस जिसकी भुजा हों, और वृक्ष जिसके पैर हों, उस पर्वत की शोभा को, वे पुरुष अपने रत्न आदि के द्वारा तिरस्कृत कर रहे थे ॥ २४ ॥ उस पुरुष की लम्बाई-चौड़ाई की तुलना दूसरे से नहीं हो सकती, क्योंकि उनके शरीर में तीनों लोक वर्तमान थे। विचित्र और दिव्य उनके आभरण और वस्त्र थे। और जिनका शरीर अत्यन्त सुशोभित हो रहा था, ऐसे पुरुष को ब्रह्मा ने देखा ॥ २५ ॥ अपने मनोरथों की सिद्धि के लिए पवित्र विधि से पूजा करनेवालों के लिए मनोरथों को पूर्ण करनेवाले अपने चरणकमलों को, वे पुरुष दिखला रहे थे, जिन चरणों के नख-चन्द्रमा की किरणों से अंगुलि-रूप सुन्दर पत्ते प्रकाशित हो रहे थे ॥ २६ ॥ अपने मुख के द्वारा वे पूजा करनेवालों को सम्मानित कर रहे थे। उनका स्मित संसार की पीड़ा हरनेवाला था। उनका मुख चमकीले कुण्डलों से शोभित था, उनके लाल अधर की शोभा बिम्बफल के समान थी उनकी नाक और भौंह सुन्दर थीं ॥ २७ ॥ हे वत्स ! कदम्ब के केशर के समान पीले वस्त्र, वे कटि में धारण किये हुए थे। श्रीवत्स से अंकित वक्षस्थल में बहुमूल्य और प्रिय हार, वे धारण किये हुए थे ॥ २८ ॥ बहुमूल्य केयूर (कंकण) मे लगे हुए श्रेष्ठ मणियों के प्रकाश से उनका समस्त हाथ प्रकाशित हो रहा था। और वे हाथ अनन्त शाखाओं के समान मालूम होते थे। उनका मूल अव्यक्त था और वे भुवनात्मक वृक्ष के समान थे,

---

२२—कालेनसोऽजःपुरुषायुषाऽभिप्रवृत्तयोगेनविरूढबोधः। स्वयंतदंतर्हृदयेऽवभातमपश्यतापश्यतयन्नपूर्वम्॥

२३—मृणालगौरायतशेषभोगपर्यंकएकपुरुषंशयानम्। फणातपत्रायुतमूर्धरत्नद्युभिर्हतध्वांतयुगांततोये॥

२४—प्रेक्षांक्षिपंतहरितोपलाद्रेःसंध्याभ्रनीवेरुरुरुक्ममूर्ध्नः। रत्नोदधारौषधिसौमनस्यवनस्रजोवेणुभुजांघ्रिपांघ्रेः॥

२५—आयामतोविस्तरतःस्वमानदेहेनलोकत्रयसंग्रहेण। विचित्रदिव्याभरणांशुकानांकृतश्रियाऽपाश्रितवेषदेह॥

२६—पुंसांस्वकामायविविक्तमार्गैरभ्यर्चतांकामदुघांघ्रिपद्मं। प्रदर्शयंतंकृपयानखेंदुमयूखभिन्नांगुलिचारुपत्रं॥

२७—मुखेनलोकार्तिहरस्मितेनपरिस्फुरत्कुंडलमंडितेन। शोणायितेनाधरबिंबभासाप्रत्यर्हयंतंसुनसेनसुभ्र्वा॥

२८—कदंबकिंजल्कपिशंगवाससास्वलंकृतंमेखलयानितंबे। हारेणचानंतधनेनवत्सश्रीवत्सवक्षस्थलवल्लभेन॥

२९—परार्ध्यकेयूरमणिप्रवेकपर्यस्तदोर्दंडसहस्रशाखम्। अव्यक्तमूलंभुवनांघ्रिपेंद्रमहींद्रभोगैरधिवीतवल्शं॥

जिनमें शेषनाग का शरीर लिपटा हुआ था ॥ २९ ॥ वे भगवान एक पर्वत के समान थे जिस-पर स्थावर-जंगम का निवास था। सर्पराज जिसके मित्र थे और जो जल में डूबा हुआ था, जिसके हजारों किरीट सुवर्ण शिखर के समान थे और जिसके शरीर से कौस्तुभ-रत्न निकल रहा था, इस प्रकार वे एक पर्वत के समान थे ॥ ३० ॥ वे वनमाला धारण किये हुए थे जो वत्सल वेदरूपी भँवरों से सुशोभित थी और जो उनकी कीर्ति बतलानेवाली थी। सूर्य, चन्द्रमा, वायु और अग्नि इनके पास नहीं जा सकते। तीनों लोकों में जिनका प्रकाश फैला हुआ है और जो सर्वत्र परिभ्रमण कर सकते हैं, वैसे सुदर्शन चक्र आदि वे दुष्प्राप्य हैं ॥ ३१ ॥ उसी समय संसार की सृष्टि करने की इच्छा रखनेवाले जगत् के विधाता ब्रह्मा ने उस पुरुष के नाभि रूप उस तालाब, उस कमल, उस जल, वायु, आकाश और स्वयं अपने को देखा। इसके अतिरिक्त वे और कुछ न देख सके ॥ ३२ ॥ जो रजोगुण युक्त होकर प्रजा की सृष्टि की इच्छा से और सृष्टि के कारण इतनेही पदार्थों को देखर ब्रह्मा ने उस स्तुति योग्य पुरुष की स्तुति की। क्योंकि सृष्टि करने लिए वे उद्यत थे और अव्यक्त स्वरूप भगवान में उनका मन लग गया था ॥ ३३ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कंध का आठवाँ अध्याय समाप्त

——:०#०:——

३०—चराचरौकोभगवन्महीध्रमहीन्द्रबन्धुसलिलोपगूढम् । किरीटसाहस्रहिरण्यश्रृंगमाविर्भवत्कौस्तुभरत्नगर्भं ॥

३१—निवीतमाम्नायमधुव्रतश्रियास्वकीर्तिमय्यावनमालयाहरिं ।
सूर्येंदुवाय्वग्न्यगमन्त्रिधामभिःपरिक्रमत्प्राधनिकैर्दुरासद ॥

३२—तर्ह्येवतन्नाभिसरःसरोजमात्मानमम्भःश्वसनंवियच्च । ददर्शदेवोजगतोविधातानातःपरंलोकविसर्गदृष्टिः॥

३३—सकर्मबीजंरजसोपरक्तःप्रजाःसिसृक्षन्नियदेवदृष्ट्वा । अस्तौद्विसर्गाभिमुखस्तमीड्यमव्यक्तवर्त्मन्यभिवेशितात्मा॥

इ० भा० म० तृतीयस्कंधेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

ब्रह्म-स्तुति

श्री ब्रह्मा बोले—भगवन्, बहुत दिनों की तपस्या के बाद, आज मैं आपको जान सका हूँ। मनुष्यों का यह बड़ा दोष है कि वे आपको नहीं जानते। आपके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। यद्यपि संसार वस्तु रूप से दीख पडता है, पर वह शुद्ध नहीं है, सत्य नहीं है, पर उसकी प्रतीति होने का कारण यह है कि माया के गुणों के परिणाम से आप उसमें अनेक रूपों से विराजते हैं ॥ १ ॥ आपसे अज्ञानरूप अंधकार सदा दूर रहता है, क्योंकि आपकी चित् शक्ति (चैतन्य) सदा प्रकाशित रहती है। वैसे आपने सज्जनों पर कृपा करके इसे धारण किया है। आपके इस रूप में सैकड़ों अवतारों का मूल वर्तमान है, जिसके नाभि-कमल से मैं उत्पन्न हुआ हूँ ॥ २ ॥ हे परमश्रेष्ठ, निरन्तर प्रकाशमान् तेज, भेद-रहित और आनंदमय आपका यह रूप देखता हूँ, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं देखता। अतएव आपके इस रूप के ही आश्रय में आया हूँ। क्योंकि आपका यह रूप उपासना के लिए प्रधान है, यह विश्व की सृष्टि करने-वाला है, अतएव विश्व से पृथक् है और पंचभूत तथा इन्द्रियों का कारण है ॥ ३ ॥ हे भुवन-मंगल, हमलोगों के कल्याण के लिए, ध्यान में उपासकों को आपने अपना यही रूप दिखाया है। आप भगवान को हमलोग नमस्कार करते हैं। नरकगामी तथा विरुद्ध तर्क करनेवाले पुरुषों के द्वारा अनावृत, आपके चरणों को नमस्कार करते हैं ॥४॥ हे नाथ, वेदरूप वायु के द्वारा लायी हुई आपके चरण-कमल की गन्ध को जो पुरुष कानों से सूँघते हैं, अर्थात् सुनते हैं, उन पराभक्ति के द्वारा आपके चरणों की सेवा करनेवाले अपने भक्तों के हृदय-कमल से आप दूर नहीं होते

ब्रह्मोवाच—

१—ज्ञातोऽसिमेऽद्यसुचिरान्ननुदेहभाजांनज्ञायतेभगवतोगतिरित्यवद्य।
नान्यत्त्वदस्तिभगवन्नपितन्नशुद्धमायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥

२—रूपंयदेतदवबोधरसोदयेनशश्वन्निवृत्ततमसःसदनुग्रहाय।
आदौगृहीतमवतारशतैकबीजंयन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम् ॥

३—नातःपरंपरमयद्भवतःस्वरूपमानंदमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः।
पश्यामिविश्वसृजमेकमविश्वमात्मन्भूतेंद्रियात्मकमदस्तउपाश्रितोस्मि ॥

४—तद्वाइदंभुवनमंगलमंगलायध्यानेस्मनोदर्शितंतउपासकाना।
तस्मैनमोभगवतेऽनुविधेमतुभ्यंयोनादृतोनरकभाग्भिरसत्प्रसंगैः ॥

५—येतुत्वदीयचरणांबुजकोशगंधंजिघ्रन्तिकर्णविवरैःश्रुतिवातनीतं।

॥ ५ ॥ तभी तक धन, गृह और मित्रों के लिए शोक, स्पृहा, पराजय तथा विपुल लोभ होता है। और तभी तक दु.खों का मूल, 'यह मेरा है' यह अज्ञान वर्तमान रहता है, जब तक मनुष्य आपके चरणों का आश्रय नहीं लेता ॥ ६ ॥ अभाग्य के द्वारा उनकी बुद्धि ही मारी गयी समझी जानी चाहिए जो समस्त अशुभों को दूर करनेवाली आपकी कथा से विमुख रहते हैं। क्योंकि सांसारिक सुखों का बहुत ही थोड़ा-सा अंश पाने के लिए दीन होकर वे कर्म करते हैं। उनका मन लोभ से आक्रान्त रहता है, वे अमंगल करनेवाले, काम्य कर्मों में ही लिप्त रहते हैं ॥ ७ ॥ भगवन्, क्षुधा, तृषा, वात, पित्त, कफ, शीत, उष्ण, वायु, वर्षा, परस्पर संघर्ष, कामाग्नि, कभी शान्त न होनेवाले दु सह क्रोध से इस प्रजा को सदा दु ख पाती देखकर मेरा मन बहुत ही दुखी होता है ॥ ८ ॥ भगवन्, जबतक मनुष्य इन्द्रिय, उनके विषय, रूप आपकी माया से प्रसार पानेवाली, यह पृथकत्व बुद्धि अर्थात् द्वैत भाव रखता रहेगा। आत्मा का यथार्थ रूप नहीं जानेगा, तब तक इस जन्म-मरण रूप ससार की समाप्ति न होगी। यद्यपि यह व्यर्थ है तथापि तब तक कर्मों के फल रूप और दु.ख देनेवाले इस संसार की निवृत्ति नहीं हो सकती ॥ ९ ॥ देव आपकी कथा से विमुख रहनेवाले ऋषि भी दिन मे जिनकी इन्द्रियाँ अनेक कर्मों में लगी रहने के कारण दु खित रहती हैं, रात मे सोने के समय अनेक मनोरथों के संकल्प-विकल्प से जिनकी नींद जाती रहती है और धन-प्राप्ति के लिए किये जिनके उपाय भाग्य के द्वारा नष्ट हो गये हैं, वे ऋषि भी इस ससार मे दुःख उठाते हैं ॥ १० ॥

नाथ, भक्तियोग से शुद्ध हृदय में आप निवास करते हैं क्योंकि कथा-श्रवण के द्वारा आपका स्वरूप भक्तों को ज्ञात हो जाता है। भगवन्, आपके भक्त जिस-जिस रूप मे आपका

भक्त्यागृहीतचरण:परयाचतेषानापैषिनाथहृदयांबुरुहात्स्वपुंसा ॥

६—तावद्भयद्रविणगेहसुहृन्निमित्तशोक:स्पृहापरिभवोविपुलश्चलोभः ।

तावन्ममेत्यसदवग्रहआर्तिमूलयावन्नतेऽङ्घ्रिमभयप्रवृणीतलोकः ॥

७—दैवेनतेहतधियोभवतःप्रसंगात्सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेन्द्रियाये ।

कुर्वंतिकामसुखलेशलवायदीनालोभाभिभूतमनसोऽकुशलानिशश्वत् ॥

८—क्षुतृट्त्रिधातुभिरिमामुहुरर्द्यमानाःशीतोष्णवातवर्षैरितरेतराच्च ।

कामाग्निनाच्युतरुषाचसुदुर्भरेणसपश्यतोमनउरुक्रमसीदतेमे ॥

९—यावत्पृथक्त्वमिदमात्मनइन्द्रियार्थमायाबलंभगवतोजनईशपश्येत् ।

तावन्नसंसृतिरसौप्रतिसंक्रमेतव्यर्थाऽपिदुःखनिवहंवहतीक्रियार्था ॥

१०—अह्न्यापृतार्तकरणानिशिनिःशयानानानामनोरथधियाक्षणभग्ननिद्राः ।

दैवाहतार्थरचनाऋषयोऽपिदेवयुष्मत्प्रसंगविमुखाइहसंसरति ॥

ध्यान करते हैं, उसी-उसी रूप मे आप उनपर अनुग्रह करने के लिए प्रकट होते हैं। अर्थात् श्रवण के बिना भी केवल ध्यान से ही भक्तों को आपका साक्षात्कार होता है ॥ ११ ॥ समस्त प्राणियों मे वर्तमान, सबके निष्कारण बन्धु, अन्तरात्मा आप कामना से प्रेरित देवताओं के द्वारा विविध सामग्रियों से आराधित होने पर भी आपको वैसी प्रसन्नता नहीं होती, जैसी सब प्राणियों पर दया रखने से होती है। जो दया असज्जनों मे, जो आपके भक्त नहीं है, उनमें, देखी नहीं जाती ॥ १२ ॥ अनेक प्रकार के कर्मों, यज्ञों, दान, उग्र तप और व्रताचरण के द्वारा आपका आराधन करना ही मनुष्यों के कर्मों का श्रेष्ठ फल है, क्योंकि भगवान के चरणों मे अर्पित किया हुआ धर्म कभी नष्ट नहीं होता, अर्थात् निष्काम कर्मों का कभी नाश नहीं होता। सकाम कर्म फल देकर नष्ट हो जाते हैं। आपके स्वरूप चैतन्य से, अर्थात् चेतनता के प्रकाश से भेद का भ्रम (द्वैत बुद्धि) नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥ आप स्वयं ज्ञानमय हैं, परम पुरुष आपको नमस्कार है। संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय आदि जिनका एक खेल है, आपको इस खेल मे आनन्द आता है, ऐसे ईश्वर को हम नमस्कार करते हैं ॥ १४ ॥ जिसके अवतार गुण और कर्मों के सूचित करनेवाले नामों को प्राण-त्याग के समय इच्छा न रहने पर भी जो मनुष्य उच्चारण करते है, उनके अनेक जन्मों के पाप नष्ट हो जाते और वे आवरण-रहित (उपाधि रहित) सत्यस्वरूप परमात्मा को प्राप्त करते है ॥ १५ ॥ उस अजन्मा भगवान की शरण मैं आया हूँ। देवकीनन्दन, (इस नाम से भगवान का अवतार सूचित होता है) सर्वज्ञ, भक्त-वत्सल आदि नामों से गुण, गोवर्धनधारी, कंसाराति आदि नामों से कर्म सूचित होते है। भगवान् लोक वृक्षरूप है, उनको नमस्कार है। स्थिति, उत्पत्ति, प्रलय के हेतु स्वयं विष्णु, मैं (ब्रह्मा) और महादेव, उस वृक्ष के तीन स्कन्ध हैं। स्वयं भगवान् उस वृक्ष के मूल हैं और

११—त्वंभावयोगपरिभावितहृत्सरोजआस्सेश्रुतेक्षितपथोननुनाथपुंसा ।
यद्यद्धियातउरुगायविभावयंतितत्तद्वपुःप्रणयसेसदनुग्रहाय ॥

१२—नातिप्रसीदतितथोपचितोपचारैराराधितःसुरगणैर्हृदिबद्धकामैः ।
यत्सर्वभूतदययासदलभ्ययैकोनानाजनेष्ववहितःसुहृदंतरात्मा ॥

१३—पुंसामतोविविधकर्मभिरध्वराद्यैर्दानेनचोग्रतपसाव्रतचर्ययाच ।
आराधनंभगवतस्तवसत्क्रियार्थोधर्मोऽर्पितःकर्हिचिद्म्रियतेनयत्र ॥

१४—शश्वत्स्वरूपमहसैवनिपीतभेदमोहायबोधधिषणायनमःपरस्मै ।
विश्वोद्भवस्थितिलयेषुनिमित्तलीलारासायतेनमइदंचकृमेश्वराय ॥

१५—यस्यावतारगुणकर्मविडंबनानिनामानियेऽसुविगमेविवशागृणंति ॥
तेनैकजन्मशमलंसहसैवहित्वासंयांत्यपावृतमृतंतमजंप्रपद्ये ॥

मनु, मरीचि आदि अनेक प्रजापति उस वृक्ष की शाखा-प्रशाखा हैं। यह वृक्ष निर्गुण के विभाग से उत्पन्न हुआ है ॥१६॥ जो मनुष्य बुरे कर्मों मे निरत रहते हैं, उत्तम कर्म जो आपने बतलाये है, उनसे और आपकी सेवा से जो विमुख रहते हैं, उनके जीवन की आशा को यह बली काल नष्ट कर देता है, उसको नमस्कार है ॥ १७ ॥ जिस कालरूप आपके डर से मैं भी द्विपरार्ध तक रहनेवाले, तथा समस्त लोकों के द्वारा आदृत आपके नाभि कमल में निवास करने पर भी डरता हूँ। अतएव आपको पाने के लिए बहुत वर्षों तक मैंने तपस्या की है। यज्ञों के अधिष्ठाता आपको नमस्कार ॥ १८ ॥ अपनी बनायी धर्म मर्यादा का पालन करने के लिए पशु मनुष्य और देवता आदि जीव योनियों में आपने जन्म धारण किया है और क्रीडा की है। यह सब अपनी इच्छा से ही आपने की है, अपने कर्मफल भोगने के लिए नहीं। यद्यपि विषय-सुखों मे आपका अनुराग नहीं है, आप पुरुषोत्तम हैं, आपको नमस्कार ॥ १९ ॥ तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह, और महातम—इन पॉच वृत्तियों वाली अविद्या से भगवान का कोई संबंध नहीं है। फिर भी भगवान लोकों को अपने उदर मे रखकर वे समुद्र मे अनुकूल स्पर्श वाली शेष शय्या पर शयन करते हैं, जिस समुद्र में भयङ्कर बडी-बडी लहरियाँ उठती हैं और इस प्रकार मनुष्यों के निद्रा-सुख का स्वरूप बतलाते है। हे ईड्य, (स्तुत्य) जिस नाभि-कमल रूप गृह से तीनों लोकों को बनाने की सामग्री के साथ मैं उत्पन्न हुआ। जिसके उदर में समस्त ससार वर्तमान है और योगनिद्रा की समाप्ति के कारण जिनके नेत्र-कमल विकसित हो रहे हैं। ऐसे भगवान् को नमस्कार। वे भगवान् समस्त संसार के एक मित्र हैं, आत्मा हैं, वे भगवान् ज्ञान और ऐश्वर्य से

१६—योवाअहचगिरिशश्चविभु.स्वयचस्थित्युद्भवप्रलयहेतवआत्ममूलं ।
भित्वात्रिपाद्विवृधएकउरुप्ररोहस्तस्मैनमोभगवतेभुवनद्रुमाय ॥

१७—लोकोविकर्मनिरतःकुशलेप्रमत्तःकर्मण्ययत्वदुदितेभवदर्चनेस्वे ॥
यस्तावदस्यबलवानिहजीविताशासद्यश्छिनत्त्यनिमिषायनमोऽस्तुतस्मै ॥

१८—यस्माद्बिभेम्यहमपिद्विपरार्धधिष्ण्यमध्यासित.सकललोकनमस्कृतयत् ।
तेपे॰पोबहुसवोऽवरुरुत्समानस्तस्मैनमोभगवतेऽधिमखायतुभ्यम् ॥

१९—तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनिष्वात्मेच्छयात्मकृतसेतुपरीप्सयाय. ।
रेमेनिरस्तरतिरप्यवरुद्धदेहस्तस्मैनमोभगवतेपुरुषोत्तमाय ॥

२०—योऽविद्ययाऽनुपहतोऽपिदशार्धवृत्त्यानिद्रामुवाहजठरीकृतलोकयात्रः ।
अन्तर्जलेऽहिकशिपुस्पर्शानुकूलाभीमोर्मिमालिनि जनस्यसुखविवृण्वन् ॥

२१—यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्यलोकत्रयोपकरणोयदनुग्रहेण ।
तस्मैनमस्तउदरस्थभवाययोगनिद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥

समस्त संसार को सुखी करते है। भगवान् उसी ज्ञान और ऐश्वर्य से मुझे युक्त करें, अर्थात् दें। जिससे मैं पहले के समान इस संसार की रचना कर सकूँ। क्योंकि वे प्रणतों के, भक्तों के प्रिय हैं। भगवन्, शरणागतों को वर देनेवाले, उनका मनोरथ पूरा करनेवाले, आप अपनी शक्ति, लक्ष्मी के त्रिगुणों के द्वारा अवतार धारण करके जो-जो काम करेंगे, ऐसे विश्व की जिसमे भगवान का प्रभाव प्रकाशित होगा, रचना मैं करूँगा। पर भगवान ही मेरे चित्त को प्रेरित करे। क्योंकि उन्हींकी आज्ञा से मैं सृष्टि करूँगा, और इससे कर्मो मे मेरी आसक्ति न होगी। सृष्टि रचने के कारण उत्पन्न विषमता आदि दोष मुझे न लगेंगे। जल में वर्तमान जिस अनन्त-शक्ति पुरुष के नाभि-सरोवर से महत्तत्व का अभिमानी मैं उत्पन्न हुआ। उस भगवान के विचित्र रूप का वर्णन करने में मेरी वेद-वाणी लुप्त न होने पावे। हे भगवन्, आप परमदयालु हैं, प्रवृद्ध प्रेम के साथ स्मित करके अपने नेत्र-कमल को विकसित करे। संसार के कल्याण के लिए उठकर अपनी मधुर वाणी के द्वारा हमलोगों के खेद को दूर कीजिये, क्योंकि आप ही पुराण-पुरुष हैं॥ २०-२५॥

मैत्रेय बोले—तपस्या, उपासना और समाधि के द्वारा अपने उत्पादक भगवान् को देखकर तथा मन वाणी के अनुसार उनकी स्तुति कर ब्रह्मा थके हुए के समान चुप हो गये। तब ब्रह्मा के अभिप्राय समझ कर तथा उनको प्रलयकाल के जल देखने से दुःखित देखकर भगवान् इस प्रकार बोले। उस समय ब्रह्मा लोकों के यथास्थान निर्माण करने के विषय मे स्वयं अपने ही खिन्न हो रहे थे। उनके शोक को दूर करते हुए, भगवान् गम्भीर वाणी से बोले—॥ २६-२८॥

२२—सोऽयसमस्तजगतासुहृदेकआत्मासत्वेनयन्मृडयतेभगवान्भगेन।
तेनैवमेदृशमनुस्पृशताद्यथाऽहंस्रक्ष्यामिपूर्वंवदिदंप्रणतप्रियोऽसौ॥

२३—एषप्रपन्नवरदोरमयात्मशक्त्यायद्यत्करिष्यतिगृहीतगुणावतारः।
तस्मिन्स्वविक्रममिदंसृजतोऽपिचेतोयुंजीतकर्मशमलंचयथाविजह्याम्॥

२४—नाभिह्रदादिहसतोऽम्भसियस्यपुंसोविज्ञानशक्तिरहमासमनन्तशक्तेः।
रूपंविचित्रमिदमस्यविवृण्वतोमेमारीरिषीष्टनिगमस्यगिरांविसर्गः॥

२५—सोऽसावदभ्रकरुणोभगवान्विवृद्धप्रेमस्मितेननयनाम्बुरुहंविजृंभन्।
उत्थायविश्वविजयायचनोविषादंमाध्व्यागिरापनयतात्पुरुषःपुराणः॥

मैत्रेयउवाच—

२६—स्वसंभवंनिशाम्यैवंतपोविद्यासमाधिभिः। यावन्मनोवचःस्तुत्वाविररामसखिन्नवत्॥

२७—अथाभिप्रेतमन्वीक्ष्यब्रह्मणोमधुसूदनः। विषण्णचेतसंतेनकल्पव्यतिकराम्भसा॥

२८—लोकसंस्थानविज्ञानआत्मनःपरिखिद्यतः। तमाहागाधयावाचाकश्मलंशमयन्निव॥

श्री भगवान् बोले—वेदगर्भ (वेदों के ज्ञाता) निरुत्साह न होओ, सृष्टि रचने के लिए उद्योग करो। जिस बात के लिए तुम मेरी प्रार्थना करते हो, वह मैंने पहले से ही तयार कर दिया है। तुम पुन: तपस्या करो, और मेरे सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त करो। उस तपस्या और ज्ञान से तुम लोकों को प्रत्यक्ष देख सकोगे। उनके निर्माण की क्रिया जान सकोगे। इसके पश्चात् भक्ति युक्त और एकाग्रचित्त होकर अपने में तथा लोकों में मुझको व्याप्त देखोगे। और मुझमें लोकों को तथा अपने को देखोगे। मनुष्य के दोष तभी दूर होते हैं जब वह सब प्राणियों में, लकड़ी में अग्नि के समान मुझे देखने लगता है, जब वह पंचभूत, इन्द्रिय और गुणों से रहित आत्मा को, जीव को देखता है। और मुझको अपनी आत्मा के रूप में देखता है। अर्थात् अपने को ब्रह्म स्वरूप समझने लगता है, उस समय वह मुक्त हो जाता है। ब्रह्मन्, अनेक प्रकार के कर्मों के विस्तार के साथ बहुत सी प्रजाओं की सृष्टि करने पर भी तुम्हारा मन थकेगा नहीं; खिन्न नहीं होगा, क्योंकि तुम पर मेरा बड़ा अनुग्रह है, तुम आदिऋषि हो। तुमको पापी रजोगुण बाँध न सकेगा। क्योंकि प्रजा की सृष्टि करते रहने पर भी तुम्हारा मन मुझमें लगा रहेगा। यद्यपि शरीरधारियों को मेरा ज्ञान नहीं होता। तथापि तुमने मुझे आज जान लिया, क्योंकि तुम पंचभूत इन्द्रिय, त्रिगुण तथा अहंकार से मुझे युक्त नहीं समझते। जिस समय मेरे विषय मे तुम्हे सन्देह हो गया था और जल में कमल-मृणाल मे होकर उसका मूल अर्थात मुझे ढूँढ रहे थे, उस समय मैंने तुम्हारे हृदय मे अपना स्वरूप दिखाया था। अपना ज्ञान प्रकाशित किया था, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। सृष्टि की इच्छा से जो तुमने मेरी स्तुति की है और गुणमय मुझे निर्गुण बतलाया है, उससे मैं प्रसन्न हूँ॥ २९-३९॥

श्रीभगवानुवाच—

२९—मावेदगर्भगास्तंद्रींसर्गउद्यममावह। तन्मयापादितह्यग्रेयन्मांप्रार्थयतेभवान्॥

३०—भूयस्त्वंतपआतिष्ठविद्यांचैवमदाश्रयाम्। ताभ्यामन्तर्हृदिब्रह्मन्लोकान्द्रक्ष्यस्यपावृतान्॥

३१—ततआत्मनिलोकेचभक्तियुक्तःसमाहितः। द्रष्टाऽसिमांततंब्रह्मन्मयिलोकांस्त्वमात्मनः॥

३२—यदातुसर्वभूतेषुदारुष्वग्निमिवस्थितम्। प्रतिचक्षीतमांलोकोजह्यात्तर्ह्येवकश्मलम्॥

३३—यदारहितमात्मानंभूतेंद्रियगुणाशयैः। स्वरूपेणमयोपेतंपश्यन्स्वाराज्यमृच्छति॥

३४—नानाकर्मवितानेनप्रजाबह्वीःसिसृक्षतः। नात्मावसीदत्यस्मिंस्तेवर्षीयान्मदनुग्रहः॥

३५—ऋषिमाद्यंनबध्नातिपापीयांस्त्वांरजोगुणः। यन्मनोमयिनिर्बद्धंप्रजाःसंसृजतोऽपिते॥

३६—ज्ञातोऽहंभवतात्वद्यदुर्विज्ञेयोऽपिदेहिनाम्। यन्मांत्वंमन्यसेयुक्तंभूतेंद्रियगुणात्मभिः॥

३७—तुभ्यंमद्विचिकित्सायामात्मामेदर्शितोबहिः। नालेनसलिलेमूलंपुष्करस्यविचिन्वतः॥

३८—यच्चकर्थांगमत्स्तोत्रंमत्कथाऽभ्युदयांकितम्। यद्वातपसितेनिष्ठासएषमदनुग्रहः॥

३९—प्रीतोऽहमस्तुभद्रंतेलोकानांविजयेच्छया। यदस्तौषीर्गुणमयंनिर्गुणंमानुवर्णयन्॥

जो पुरुष इस स्तोत्र के द्वारा मेरी स्तुति करके मेरा भजन करेगा, उस पर सब प्रकार के मनोरथों को पूरा करने वाला मैं प्रसन्न होऊँगा, अनुग्रह करूँगा। बाग, कुँआ, आदि बनवा कर, तपस्या, यज्ञ, दान, योग, समाधि के द्वारा जो मनुष्यों को प्राप्ति होती है, वह मेरी प्रीति ही है, ऐसा तत्ववेत्ता कहते हैं। हे विधाता, मैं अहंकारोपाधिवाले जीवों की आत्मा हूँ, अत्यन्त प्रियों का भी प्रिय हूँ। अतएव, मुझ से प्रेम करना चाहिए। क्योंकि देह आदि से जो प्रेम किया जाता है, वह भी मेरे ही लिये। सर्व वेदमय मुझसे उत्पन्न आप प्रजा की सृष्टि करें, जो प्रजा मुझ में निद्रित अवस्था में वर्तमान है, जिसकी आपने पहले सृष्टि की थी॥ ४०-४३॥

मैत्रेय बोले—प्रकृति और जीव के स्वामी भगवान जगत की सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा से संसार को उत्पन्न करने की रीति बताकर अपने स्वरूप से अन्तर्धान हो गये॥ ४४॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कंध का नवाँ अध्याय समाप्त

४०—यएतेनपुमान्नित्यस्तुत्वास्तोत्रेणमाभजेत्। तस्याशुसम्प्रसीदेयसर्वकामवरेश्वरः॥
४१—पूर्तेनतपसायज्ञैर्दानैर्योगसमाधिना। राद्धंनिःश्रेयसंपुंसामत्प्रीतिस्तत्त्वविन्मत॥
४२—अहमात्मात्मनाधातःप्रेष्ठःसन्प्रेयसामपि। अतोमयिरतिंकुर्याद्देहादिर्यत्कृतेप्रियः॥
४३—सर्ववेदमयेनेदमात्मनात्मात्मयोनिना। प्रजाःसृजयथापूर्वं याश्चमय्यनुशेरते॥

मैत्रेयउवाच—

४४—तस्माएवंजगत्स्रष्ट्रेप्रधानपुरुषेश्वरः। व्यज्येदंस्वेनरूपेणकञ्जनाभस्तिरोदधे॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेतृतीयस्कन्धेस्कन्धोद्धवेविदुरमैत्रेयसंवादेनवमोऽध्यायः॥ ९॥

—:०:—

दसवाँ अध्याय

प्राकृतिक-सृष्टि

विदुर बोले—भगवान् के अन्तर्धान होनेपर लोक-पितामह ब्रह्मा ने शरीर और मन से कितने प्रकार की सृष्टि की। हे बहुज्ञ, भगवन्, जिन-जिन विषयों के प्रश्न मैंने किये हैं, उन सब का क्रम से उत्तर देकर आप मेरे सन्देहों को दूर करें ॥ १-२ ॥

सूत बोले—हे शौनक, इस प्रकार विदुर के प्रेरित करने पर मैत्रेय मुनि प्रसन्न हुए और उन्होंने विदुर के उन प्रश्नों का भी उत्तर दिया, जो पहले किये गये थे और जो मुनि के हृदय में वर्तमान थे ॥ ३ ॥

मैत्रेय बोले—भगवान के कहने के अनुसार भगवान में अपना मन लगाकर ब्रह्मा ने देवताओं के हजार वर्षों तक तपस्या की। कमल से उत्पन्न ब्रह्मा ने देखा कि प्रलयकाल से, प्रवृद्धवेगवाले वायु से, वह जल और कमल जिस पर ब्रह्मा बैठे थे, वे काँप रहे हैं। उस समय ब्रह्मा का ज्ञान बहुत दिनों की तपस्या तथा आत्मज्ञान से बहुत बढ़ा हुआ था, अतएव जल के साथ वायु को ब्रह्मा ने पी लिया। अनन्तर आकाश तक फैले हुए अपने आधार कमल की ओर देखकर ब्रह्मा ने विचार किया कि पहले सभी लोक इसी कमल में लीन हुए हैं, अतएव इससे ही मैं लोकों की कल्पना (निर्माण) करूँगा। उस समय भगवान के द्वारा सृष्टि करने के लिए प्रेरित ब्रह्मा ने कमल में प्रवेश किया और उसे तीन भागों में विभक्त

विदुरउवाच—

१—अन्तर्हितेभगवतिब्रह्मालोकपितामहः। प्रजाःससर्जकतिधादैहिकीर्मानसीर्विभुः ॥

२—येचमेभगवन्पृष्टास्त्वय्यर्थाबहुवित्तम। तान्वदस्वानुपूर्व्येणछिन्धिनःसर्वसंशयान् ॥

सूतउवाच—

३—एवंसञ्चोदितस्तेनक्षत्त्राकौशारविर्मुनिः। प्रीतःप्रत्याहतान्प्रश्नान्हृदिस्थानथभार्गव ॥

मैत्रेयउवाच—

४—विरिंचोपितथाचक्रेदिव्यंवर्षशतंतपः। आत्मन्यात्मानमावेश्ययदाहभगवानजः ॥

५—तद्विलोक्याब्जसम्भूतोवायुनायदधिष्ठितः। पद्ममम्भश्चतत्कालकृतवीर्येणकम्पितम् ॥

६—तपसाह्येधमानेनविद्ययाचात्मसंस्थया। विवृद्धविज्ञानबलोन्यपाद्वायुंसहाम्भसा ॥

७—तद्विलोक्यवियद्व्यापिपुष्करंयदधिष्ठितम्। अनेनलोकान्प्राग्लीनान्कल्पिताऽस्मीत्यचिन्तयत् ॥

किया। क्योंकि वह कमल इससे भी अधिक, चौदहलोकों के रूप में विभक्त किया जा सकता था। ये तीनों लोक जीवों के कर्मफल भोग के लिए बनाए गये। अतएव वे विनाशी हैं। ब्रह्मा के प्रत्येक दिन में इनकी उत्पत्ति और नाश होता है। और ब्रह्म-लोक आदि निष्काम कर्मों के फल रूप हैं, अतएव वे नित्य हैं। उनकी सृष्टि प्रति दिन होती ॥ ४-९ ॥

विदुर बोले—प्रभो, बहुरूपधारी, अद्भुत कर्मा भगवान् के कालस्वरूप होने का वर्णन आपने किया है, उस कालस्वरूप का लक्षण बतलाइये ॥ १० ॥

मैत्रेय बोले—सत्, रज, तम और महत्तत्व का परिणाम काल है। उसका कोई आकार नहीं, आदि-अन्त नहीं। काल को निमित्त बनाकर ही भगवान् ने लीला से अपने स्वरूप को, संसार रूप से प्रकट किया। विष्णु की माया से नष्ट यह संसार ब्रह्मरूप हो गया, अर्थात् प्रलयकाल में ब्रह्म में लीन हो गया। पुनः कालरूप ईश्वर ने जिनकी मूर्ति अव्यक्त है, उन्होंने इसे प्रकाशित किया अर्थात् उत्पन्न किया। जिस प्रकार इस समय यह सृष्टि काल के वश में है, इसी प्रकार पहले भी थी और आगे भी रहेगी। काल के द्वारा उत्पन्न होनेवाली सृष्टि नव प्रकार की है, जो प्राकृत सृष्टि कही जाती है। वैकृत सृष्टि दसवीं है। काल, द्रव्य और गुण से इस संसार का प्रलय तीन प्रकार का कहा जाता है॥ काल के द्वारा होनेवाला प्रलय नित्य प्रलय कहा जाता है। किसी निमित्त से होनेवाला प्रलय नैमित्तिक है और अपने-अपने कारणों में पदार्थों के लय होने से जो प्रलय होता है, वह प्राकृतिक प्रलय है।

भगवान की इच्छा से गुणों के परिणाम रूप महत्तत्व की उत्पत्ति हुई, यह पहली सृष्टि है। दूसरी सृष्टि अहंतत्व की हुई, जिससे ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और अहंकार उत्पन्न हुए। तीसरी सृष्टि पंचभूतों की हुई, जिनसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तथा तन्मात्रा की सृष्टि हुई।

८—पद्मकोशंतदाविश्यभगवत्कर्मचोदितः। एकंव्यभाङ्क्षीदुरुधात्रिधाभाव्यद्विसप्तधा ॥

९—एतावान्जीवलोकस्यसंस्थाभेदःसमाहृतः। धर्मस्यह्यनिमित्तस्यविपाकःपरमेष्ठ्यसौ ॥

विदुरउवाच—

१०—यदात्थबहुरूपस्यहरेरद्भुतकर्मणः। कालाख्यंलक्षणंब्रह्मन्यथावर्णयनःप्रभो ॥

मैत्रेयउवाच—

११—गुणव्यतिकराकारोनिर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः। पुरुषस्तदुपादानमात्मानंलीलयाऽसृजत् ॥

१२—विश्वंवैब्रह्मतन्मात्रंसंस्थितंविष्णुमायया। ईश्वरेणपरिच्छिन्नंकालेनाव्यक्तमूर्तिना ॥

१३—यथेदानींतथाऽग्रेचपश्चादप्येतदीदृशं। सर्गोनवविधस्तस्यप्राकृतोवैकृतस्तुयः ॥

१४—कालद्रव्यगुणैरस्यत्रिविधःप्रतिसंक्रमः। आद्यस्तुमहतःसर्गोगुणवैषम्यमात्मनः ॥

१५—द्वितीयस्त्वहमोयत्रद्रव्यज्ञानक्रियोदयः। भूतसर्गस्तृतीयस्तुतन्मात्रोद्रव्यशक्तिमान् ॥

चौथी सृष्टि इन्द्रियों की हुई जिनसे ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय की उत्पत्ति हुई। पाँचवीं सृष्टि इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता और मन की हुई। छठवीं सृष्टि तम की हुई, अर्थात् पाच भेदोंवाली अविद्या की हुई, जो तम जीवों का आवरण और विक्षेप करनेवाला है। ये छः सृष्टियाँ प्राकृत हैं। अब वैकृत सृष्टि का वर्णन तुम सुनो।

जिस भगवान में रहनेवाली बुद्धि ससार का नाश करती है, उसी रजोगुण युक्त भगवान की लीला यह सृष्टि है। स्थावर पदार्थों की छः प्रकार की सृष्टि सातवीं सृष्टि है और यहँ मुख्य है। वे ये हैं—वनस्पति, ओषधि, त्वक्सार (भीतर से खोखले), वीरुध् और वृक्ष, इस सृष्टि वाले आहार को, जीवन सामग्री को ऊपर की ओर खींचते हैं। इनका चैतन्य अव्यक्त है। इन्हें स्पर्श का ज्ञान होता है, पर उसका अनुभव कर सकते हैं, प्रकाश नहीं। इनमें नियमित अनेक प्रकार के भेद होते हैं। पक्षियों की सृष्टि आठवीं सृष्टि है और उसके अट्ठाईस भेद हैं, ये पक्षी अज्ञान तमोगुणी सूँघकर जाननेवाले और किसी विषय का स्मरण न रखनेवाले होते हैं। गो, बकरा, भैंस, कृष्णमृग, शूकर, गवय, रुरुमृग, भेड, और ऊँट—ये पशु दो खुरवाले होते हैं, गदहा, घोड़ा, खच्चर, गौरमृग, चमरी—ये एक खुरवाले होते हैं। हे विदुर, अब पाँच नखवाले पशुओं का वर्णन सुनो, कुत्ता, शृगाल, भेड़िया, बाघ, बिल्ली, खरगोश, शल्की, सिंह, वानर, हाथी, कछुआ, गोह, और मगर आदि जलचरप्राणी, कंकपक्षी, गीध, बटेर, बाज, भास, भालु, मयूर, हंस, सारस, चकवा, काक, उल्लू, आदि पक्षी भी पाँच नखवाले होते हैं। विदुर, जो आहार नीचे की ओर करते हैं, वे अर्वाक् स्रोत कहे जाते हैं। वैसी सृष्टि मनुष्यों की एक ही है, जो नवीं सृष्टि है। इनमें रजोगुण अधिक होता है, ये कर्म करने

१६—चतुर्थऐन्द्रियःसर्गोयस्तुज्ञानक्रियात्मकः। वैकारिकोदेवसर्गःपचमोथन्मयमनः ॥
१७—षष्ठस्तुतमस.सर्गोयस्त्वबुद्धिकृत:प्रभो। षडिमेप्राकृता:सर्गावैकृतानपिमेशृणु ॥
१८—रजोभाजोभगवतोलीलेयहरिमेधस:। ससमोमुख्यसर्गस्तुषड्विधस्तस्थुषाचयः ॥
१९—वनस्पत्यौषधिलतात्वक्सारावीरुधोद्रुमा:। उत्स्रोतसस्तम.प्राया‌अन्तस्पर्शाविशेषिण: ॥
२०—तिरश्चामष्टमःसर्गःसोऽष्टाविंशद्विधामतः। अविदोभूरितमसोघ्राणज्ञाहृद्यवेदिन' ॥
२१—गौरजोमहिषःकृष्णःसूकरोगवयोरुरुः। द्विशफा:पशवश्चेमेअविरुष्ट्रश्चसत्तम ॥
२२—खरोऽश्वोऽश्वतरोगौरःशरभश्चमरीयया। एतेचैकशफा:क्षत्तःशृणुपचनखान्पशून् ॥
२३—श्वासृगालोवृकोव्याघ्रोमार्जारःशशशल्लकौ। सिंहःकपिर्गज:कूर्मोगोधाचमकरादयः ॥
२४—कंकगृध्रवटश्येनभासभल्लूकबर्हिण:। हससारसचक्राह्वकाकोलूकादयःखगा. ॥
२५—अर्वाक्स्रोतस्तुनवम.क्षत्तरेकविधोनृणा। रजोऽधिकाःकर्मपरादुःखेचसुखमानिनः ॥
२६—वैकृतास्त्रयएवैतेदेवसर्गश्चसत्तम। वैकारिकस्तुयःप्रोक्तःकौमारस्तूभयात्मक. ॥

में तत्पर रहते है और दुःख मे सुख समझते है । स्थावर, तिर्यङ् और मनुष्य की सृष्टि वैकृत सृष्टि कही जाती है । देव सृष्टि वैकृत् सृष्टि है, यह बात पहले कही जा चुकी है । और सनत्कुमार आदि की सृष्टि प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकार की है। वैकृत देव-सृष्टि आठ प्रकार की होती है। देवता, पितर असुर, गन्धर्व अप्सरा, सिद्ध, यक्ष, राक्षस, चारण, भूत-प्रेत-पिशाच, विद्याधर-किन्नर, आदि, विदुर, ब्रह्मा की बनायी, ये दस सृष्टियाँ है। जिसका वर्णन मैंने तुम से किया। अब मै वंशों और मन्वन्तरों का वर्णन करूँगा । रजोगुण से युक्त होकर, कल्प के आदि में, आत्मभू ब्रह्मा स्वय अपने ही आत्मा के द्वारा आत्मा मे सृष्टि करते हैं, उनका संकल्प कभी असफल नहीं होता ॥ ११ ॥ ३० ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कध का दसवाँ अध्याय समाप्त

——※——

ग्यारहवाँ अध्याय

काल-गणना

मैत्रेय बोले—कार्य के अशों का जो अन्तिम अश है, अर्थात् जिसका अश नहीं हो सकता और जो अनेक है, अर्थात् जिसने कार्य रूप नहीं पाया है, असयुत है, अर्थात् जिसका

२७—देवसर्गश्चाष्टविधोविबुधाःपितरोऽसुराः। गंधर्वाऽप्सरसःसिद्धायक्षरक्षांसिचारणाः॥

२८—भूतप्रेतपिशाचाश्चविद्याध्रा.किन्नरादयः। दशैतेविदुराख्याता.सर्गास्तेविश्वसृक्कृताः।

२९—अतःपरंप्रवक्ष्यामिवंशान्मन्वंतराणिच । एवरजःप्लुत.स्रष्टाकल्पादिष्वात्मभूर्हरिः॥

३०—सृजत्यमोघसंकल्पआत्मैवात्मानमात्मना॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेतृतीयस्कधेदशमोऽध्यायः॥ १० ॥

——

मैत्रेयउवाच—

१—चरमःसद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा। परमाणुःसविज्ञेयोनृणामैक्यभ्रमोयतः॥

समुदाय नहीं है। अतएव कार्य और समुदाय के नष्ट होनेपर भी जो वर्तमान रहता है, वह परमाणु कहा जाता है। इन परमाणुओं के एकत्र होनेपर, मनुष्यों को अर्थात् व्यवहार करने-वालों को ऐक्य का भ्रम हो जाता है, अर्थात् वे समझने लगते हैं कि यह समूह अनेक अव-यवों से बना हुआ है। कार्यो का जो अपने स्वरूप मे वर्तमान है, जिनमे परिणाम उत्पन्न नहीं हुआ है, उनका कैवल्य अर्थात् समूह परम महान कहा जाता है। विशेष और भेद, ज्ञान के हट जानेपर यह समस्त प्रपंच परम महान कहा जाता हैं। जिस प्रकार पदार्थ स्थूल और सूक्ष्म होते हैं, उसी प्रकार काल की भी सूक्ष्मता और स्थूलता का अनुमान किया जाता है। परमाणुओं की व्याप्ति से अर्थात् जितनी जगह मे वे फैले रहते हैं, उस जगह पर सूर्य के फैलने के अनुसार काल की सूक्ष्मता और स्थूलता का अनुमान होता है, इस प्रकार विभु और अव्यक्त-काल व्यक्त होता है, अर्थात् व्यवहार योग्य होता है, कार्यों के परमाणु के समान जो काल होता है, वह परमाणुकाल कहा जाता है और उनका समूह परम महान्-काल कहा जाता है। दो परमाणु एक अणु होते हैं और तीन त्रसरेणु। खिड़की के छेद से आनेवाली सूर्य की किरणों में यह दीख पड़ता है और लघुता के कारण आकाश की ओर उठता है। तीन त्रसरेणुओं का भोग करनेवाला काल त्रुटि कहा जाता है। सौ त्रुटियों का काल वेध कहा जाता है और तीन वेध का एक लव होता है, तीन लव का एक निमेष और तीन निमेष का एक क्षण होता है। पाँच क्षण की एक काष्ठा और पन्द्रह काष्ठा का एक लघु, पन्द्रह लघु की एक नाड़िका, दो नाडिकाओं का एक मुहूर्त, छः या सात नाडियों का एक याम होता है, जिसे मनुष्यों का प्रहर कहते हैं। साढे बारह पल और चार माशे सोने की बनी चार अंगुल की सलाई से विंधे एक सेर का पात्र जितने समय में जल भरने से वह जल मे डूब जाय, उसको नाड़िका कहते हैं। चार-चार प्रहर के मनुष्यों का दिन और रात होती है। पन्द्रह दिन-

---

२—सतएवपदार्थस्यस्वरूपावस्थितस्ययत्। कैवल्यपरममहानविशेषोनिरतरः॥

३—एवकालोप्यनुमितःसौक्ष्म्येस्थल्येचसत्तम। सस्थानभुक्त्याभगवानव्यक्तोव्यक्तभुग्विभुः॥

४—सकालःपरमाणुर्वैयोभुङ्क्तेपरमाणुताम्। ततोविशेषभुग्यस्तुसकालःपरमोमहान्॥

५—अणुर्द्वौपरमाणूस्यात्त्रसरेणुस्त्रयःस्मृतः। जालार्करश्म्यवगतःखमेवानुपतन्नगात्॥

६—त्रसरेणुत्रिकंभुङ्क्तेयःकालःसत्रुटिःस्मृतः। शतभागस्तुवेधःस्यात्तैस्त्रिभिस्तुलवःस्मृतः॥

७—निमेषस्त्रिलवोज्ञेयआम्नातस्तेत्रयःक्षणः। क्षणान्पञ्चविदुःकाष्ठालघुतादशपञ्चच॥

८—लघूनिवैसमाम्नातादशपञ्चचनाडिका। तेद्वेमुहूर्तःप्रहरःषड्यामःसप्तवानृणाम्॥

९—द्वादशार्धपलोन्मानंचतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः। स्वर्णमाषैःकृतच्छिद्रंयावत्प्रस्थजलप्लुतम्॥

१०—यामाश्चत्वारश्चत्वारोमर्त्यानामहनीउभे। पक्षःपञ्चदशाहानिशुक्लःकृष्णश्चमानद॥

रात का एक पक्ष होता है, शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष होते है, दो पक्षों का एक महीना होता है। मनुष्यों का एक मास, पितरों की दिन-रात होती है। दो-दो महीने की एक ऋतु होती है। छः-छः महीने का दक्षिणायन और उत्तरायण होता है, इन दो अयनों का देवताओं का रात-दिन होता है। बारह महीनों का एक वर्ष होता है, सौ वर्ष मनुष्यों की परमायु बतलायी गयी है। चन्द्र आदि ग्रह, अश्विनी आदि नक्षत्रों के मण्डल मे रहनेवाले कालरूप भगवान सूर्य, परमाणु से लेकर संवत्सर समाप्त होने तक बारह राशिओं मे भ्रमण कर आते हैं। संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर ये सब एक ही हैं। सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति, सावन, नक्षत्र आदि भेदों से ये नाम भेद हैं। जो भगवान काल कार्य उत्पन्न करनेवाले, बीजों मे अंकुर आदि उत्पन्न करने की शक्ति अपने कालरूप शक्ति से अनेक रूपों मे प्रकट करते हैं तथा आकाश में भ्रमण करते है, वे एक भूत तेजोमण्डल में रहनेवाले सूर्य है, मनुष्य के भ्रम दूर करने के लिए वे सकाम पुरुषों को यज्ञ आदि के द्वारा यज्ञों का विस्तार करनेवाले उन पाँच वत्सर रूप भगवान की तुम सब लोग पूजा करो ॥ १—१५ ॥

विदुर बोले—पितर, देवता और मनुष्यों की आयु का यही परिमाण है, अर्थात ये सभी अपने काल परिमाण के अनुसार सौ वर्षो तक जीते है। पर जो कल्प के बाहर है, त्रिलोक के बाहर हैं उनकी आयु का परिणाम बतलाइए। भगवन् (आप) काल की गति जानते हैं क्योंकि योगाभ्यास के द्वारा सिद्ध नेत्रों से धीर पुरुष समस्त विश्व को देख सकते हैं ॥ १६-१७ ॥

मैत्रेय बोले—सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये चार युग होते है। देवताओं के बारह हजार वर्षों का यह चतुर्युग होता है। प्रत्येक युग की संध्या और सध्यांश होते हैं। उन प्रत्येक का परिमाण क्रम से चार, तीन, दो और एक सौ वर्ष है और युग का परिमाण इसी प्रकार चार,

---

११—तयोःसमुच्चयोमासःपितॄणांतदहर्निशं। द्वौतावृतुःषडयनदक्षिणंचोत्तरंदिवि ॥

१२—अयनेचाहनीप्राहुर्वत्सरोद्वादशस्मृतः। संवत्सरशतंनॄणांपरमायुर्निरूपितं।

१३—ग्रहर्क्षताराचक्रस्थःपरमाण्वादिनाजगत्। संवत्सरावसानेनपर्येत्यनिमिषोविभुः ॥

१४—संवत्सरःपरिवत्सरइडावत्सरएवच। अनुवत्सरोवत्सरश्चविदुरैवंप्रभाष्यते ॥

१५—यःसृज्यशक्तिमुरुधोच्छ्वसयन्स्वशक्त्यापुंसोभ्रमायदिविधावतिभूतभेदः।

कालाख्ययागुणमयंक्रतुभिर्वितन्वंस्तस्मैबलिंहरतवत्सरपंचकाय ॥

विदुरउवाच—

१६—पितृदेवमनुष्याणामायुःपरमिदंस्मृतम्। परेषांगतिमाचक्ष्वयेस्युःकल्पाद्बहिर्विदः ॥

१७—भगवान्वेदकालस्यगतिंभगवतोननु। विश्वंविचक्षतेधीरायोगराद्धेनचक्षुषा ॥

मैत्रेयउवाच—

१८—कृतंत्रेताद्वापरंचकलिश्चेतिचतुर्युगम्। दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैःसावधानंनिरूपितम् ॥

तीन दो और एक हजार वर्ष है। इस तरह सत्ययुग का परिमाण चार हजार वर्ष, उसकी सध्या और संध्यांश का चार-चार सौ के हिसाब से आठ सौ वर्ष, त्रेतायुग का परिमाण तीन हजार वर्ष, संध्या और संध्याश की तीन,तीन सौ के हिसाब से छः सौ वर्ष हुए, द्वापर युग का परिमाण दो हजार वर्ष, उसकी सध्या और सध्याश का दो-दो सौ के हिसाब से चार सौ वर्ष, कलियुग का परिमाण एक हजार वर्ष हुए, यह वर्ष देवताओं का समझना चाहिए। सत्संख्यावाली सध्या और संध्याश के बीच में जो काल है, वह युग का काल है। उस युगकाल में भिन्न भिन्न धर्मों का विधान होता है। सत्ययुग में मनुष्यों का धर्म, चतुष्पाद था। अन्य युगों में अधर्म के द्वारा घटता गया अर्थात् अधर्म का एक-एक पाद बढ़ता गया और धर्म का घटता गया। त्रिलोकी के बाहर के लोकों में चार हजार वर्षों का एक दिन होता है, वह ब्रह्मा का दिन है। रात भी इतनी ही बडी होती है। रात को ब्रह्मा सोते हैं। ब्रह्मा की रात्रि के अन्त होने पर लोक-कल्पों का पुनः प्रारम्भ होता है। ब्रह्मा के एक दिन मे चौदह मनुओं का भोगकाल पूरा होता है। अर्थात् चौदह मनुओं का राज्यकाल ब्रह्मा के एक दिन में ही समाप्त होता है। प्रत्येक मनु अपने-अपने नियत समय मे राज्यभोग करता है, जिसका परिमाण कुछ अधिक एकहत्तर वर्ष है। प्रत्येक मन्वन्तर में मनु के वश, सप्तर्षि, देवता, इन्द्र तथा इनके अनुयायी गधर्व आदि उत्पन्न होते हैं। यह त्रिलोक की सृष्टि ब्रह्मा की दैनिक सृष्टि कही जाती है, जिसमें पशु-पक्षी, मनुष्य, पितर, देवता कर्मों के अनुसार उत्पन्न होते हैं। मन्वन्तरों में सत्व गुण धारण करके भगवान् अपनी मूर्ति मनु आदि के रूप में प्रकट होते हैं, विश्व की रक्षा करते हैं और अपना पराक्रम प्रकट करते हैं। दिन की समाप्ति पर तमोगुण का अंश ग्रहण करने से भगवान् का उद्योग रुक जाता है, कालक्रम से सब पदार्थों के लय होनेपर भगवान भी निष्क्रिय

१६—चत्वारित्रीणिद्वेचैककृतादिपुयथाक्रमम्। सख्यातानिसहस्राणिद्विगुणानिशतानिच ॥

२०—सध्याऽशयोरंतरेणय.काल.शतसख्ययो.। तमेवाहुर्युगतज्ज्ञायत्रधर्मोविधीयते ॥

२१—धर्मश्चतुष्पान्मनुजान्कृतेसमनुवर्तते। सएवान्येष्वधर्मेणव्येतिपादेनवर्धता ॥

२२—त्रिलोक्यायुगसाहस्रं बहिराब्रह्मणोदिनम्। तावत्येवनिशातातयन्निमीलतिविश्वसृक् ॥

२३—निशाऽवसानआरब्धोलोककल्पोऽनुवर्तते। यावद्दिनंभगवतोमनून्भुजश्चतुर्दश ॥

२४—स्वंस्वंकालमनुर्भुंक्तेसाधिकांह्येकसप्ततिम्। मन्वतरेषुमनवस्तद्वशाऋषयःसुरा. ॥
भवन्तिचैवयुगपत्सुरेशाश्चानुयेचतान् ॥

२५—एषदैनंदिनःसर्गोब्राह्मस्त्रैलोक्यवर्तनः। तिर्यङ्नृपितृदेवानासंभवोयत्रकर्मभि ॥

२६—मन्वतरेषुभगवान्बिभ्रत्सत्वंस्वमूर्तिभि। मन्वादिभिरिदंविश्वमवत्युदितपौरुषः ॥

२७—तमोमात्रामुपादायप्रतिसरुद्धविक्रमः। कालेनानुगताशेषआस्तेतूष्णींदिनात्यये ॥

हो जाते हैं। उस समय सूर्य-चन्द्रमा के न रहने से, क्योंकि रात पड़ जाती है। भू, भुव और स्वर्ग-लोक अन्धकार में छिप जाते हैं। अनन्तर, भगवान की शक्ति, शेष के मुख की आग से त्रिलोक जलने लगता है। तब गर्मी से व्याकुल होकर भृगु आदि ऋषि महर्लोक से जनलोक मे चले जाते हैं, उसी समय प्रलय होने के कारण समुद्र उफन आते हैं और बड़े जोर से क्षुभित होने के कारण उनमे ऊँची लहरियाँ उठने लगती हैं। जिसमें तीनों लोक शीघ्रही डूब जाते हैं। उस समय भगवान् उसी समुद्र में योग-निद्रा से आँखे बन्द करके शेष-शय्या पर सोते रहते हैं और वहाँ जनलोक में रहनेवाले उनकी स्तुति करते हैं। इस परिमाण के दिन-रात के सौ वर्षों में सब प्राणियों की आयु समाप्त हो जाती है। ब्रह्मा की आयु भी इसी प्रकार काल के आधीन होने के कारण, उनके दिन के प्रमाण से सौ वर्षों मे समाप्त हो जाती है। ब्रह्मा की आयु का आधा भाग अर्थात् पचास वर्ष परार्ध कहा जाता है, आधा परार्ध बीत गया है। और दूसरा परार्ध चल रहा है। पहले परार्ध के आदि मे ब्राह्मकल्प था; जिसमें शब्दब्रह्म नाम के ब्रह्मा उत्पन्न हुए थे, उसी परार्ध के अन्त में पाद्मकल्प हुआ, जिसमें भगवान् के नाभिकमल से लोकरूप कमल उत्पन्न हुआ था। इस दूसरे परार्ध में श्वेत-वाराह-कल्प हुआ, जिसमे भगवान् ने वाराह-रूप धारण किया। मायोपाधिक, अनादि, अनन्त जगत्-कारण भगवान् के एक निमेष के बराबर यह दो-परार्ध काल है। परमाणु से लेकर द्विपरार्ध पर्यन्त यह काल शक्तिशाली है, बली है, तथापि भगवान पर इसका कुछ भी बल नहीं चलता, क्योंकि वे परिपूर्ण हैं, काल का प्रभाव तो उन्हीं पर होता है, जो देह, गेह आदि को अपना समझते हैं और इनमें लिपटे रहते हैं। प्रधान, महत्

२८—तमेवान्वपिधीयंतेलोकाभूरादयस्त्रयः। निशायामनुवृत्तायानिर्मुक्तशशिभास्करम्॥

२९—त्रिलोक्यादह्यमानायाशक्त्यासंकर्षणाग्निना। यांत्युष्मणामहर्लोकाज्जनंभृग्वादयोर्दिताः॥

३०—तावत्त्रिभुवनसद्यःकल्पांतैधितसिंधवः। प्लावयंत्युत्कटाटोपचंडवातेरितोर्मयः॥

३१—अंतःसतस्मिन्सलिलआस्तेऽनंतासनोहरिः। योगनिद्रानिमीलाक्षःस्तूयमानोजनालयैः॥

३२—एवंविधैरहोरात्रैःकालगत्योपलक्षितैः। अपक्षितमिवास्यापिपरमायुर्वयःशतम्॥

३३—यदर्धमायुषस्तस्यपरार्धमभिधीयते। पूर्वःपरार्धोऽपक्रांतोह्यपरोऽद्यप्रवर्तते॥

३४—पूर्वस्यादौपरार्धस्यब्राह्मोनाममहानभूत्। कल्पोयत्राभवद्ब्रह्माशब्दब्रह्मेतियंविदुः॥

३५—तस्यैवचांतेकल्पोऽभूद्यं पाद्ममभिचक्षते। यद्धरेर्नाभिसरसआसील्लोकसरोरुहम्॥

३६—अयंतुकथितःकल्पोद्वितीयस्यापिभारत॥ वाराहइतिविख्यातोयत्रासीत्सूकरोहरिः॥

३७—कालोयद्द्विपरार्धाख्योनिमेषउपचर्यते। अव्याकृतस्यानंतस्यअनादेर्जगदात्मनः॥

३८—कालोऽयंपरमाण्वादिद्विपरार्धांतईश्वरः। नैवेशितुंप्रभुर्भूम्नईश्वरोधाममानिनाम्॥

३९—विकारैःसहितोयुक्तैर्विशेषादिभिरावृतः। आंडकोशोबहिरयंपचाशत्कोटिविस्तृतः॥

तत्व, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन तथा पाँच भूत—इन सोलह विकारों से युक्त यह अण्डकोष, जिसमें परमाणु के समान मालूम होता है, जिसका विस्तार पचास करोड़ योजन है और इस ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त और अनेक करोड़ों ब्रह्माण्ड जिनका परिमाण दसगुना अधिक है, उस अण्डकोष में वर्तमान हैं। वह सब कारणों के कारण अक्षर ब्रह्म परमात्मा विष्णु का साक्षात् परमधाम है—॥ १८—४१ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कंध का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त

बारहवाँ अध्याय

मानसी और मैथुनी सृष्टि

मैत्रेय बोले—विदुर, काल नामक परमात्मा का वर्णन मैंने किया। अब वेदगर्भ ब्रह्मा ने, किस प्रकार सृष्टि की, वह तुम मुझसे सुनो। आदिकर्ता ब्रह्मा ने पहले अज्ञान की वृत्तियों को बनाया, जिनके नाम ये हैं—तम, (अयथार्थ ज्ञान) मोह, (देह में आत्मबुद्धि) महामोह (भोग की इच्छा) अंध तामिस्त्र (इच्छा की पूर्ति न होने पर क्रोध) और तामिस्र (उसके नाश से अपने को ही नष्ट समझना) अज्ञान की ये पाँच वृत्तियाँ हैं। इस पापमयी सृष्टि को

४०—दशोत्तराधिकैर्यत्रप्रविष्टःपरमाणुवत्। लक्ष्यतेऽन्तर्गताश्चान्येकोटिशोह्यण्डराशयः॥

४१—तदाहुरक्षरंब्रह्मसर्वकारणकारणं। विष्णोर्धामपरंसाक्षात्पुरुषस्यमहात्मनः॥

इ० भा० म० तृतीयस्कंधेएकादशोऽध्यायः॥ ११॥

मैत्रेयउवाच—

१—इतितेवर्णितःक्षत्तःकालाख्यःपरमात्मनः। महिमावेदगर्भोऽथयथाऽस्राक्षीन्निबोधमे॥

२—ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रमथतामिस्रमादिकृत्। महामोहंचमोहंचतमश्चाज्ञानवृत्तयः॥

३—दृष्ट्वापापीयसींसृष्टिंनात्मानंबह्वमन्यत। भगवद्ध्यानपूतेनमनसाऽन्यांततोऽसृजत्॥

देखकर ब्रह्मा को प्रसन्नता न हुई, अतएव भगवान के ध्यान से, मन को पवित्र करके दूसरी सृष्टि उन्होंने की। सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—इन मुनियों को ब्रह्मा ने उत्पन्न किया। ये सभी ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी थे। ये ज्ञानी थे, अतएव कर्म में प्रवृत्त न हो सके। ब्रह्मा ने अपने उन पुत्रों से कहा—पुत्रों! प्रजा की सृष्टि करो। पर भगवान् के भक्त, मोक्ष-धर्म-परायण उन पुत्रों ने सृष्टि करने की इच्छा न की। पुत्रों के आज्ञा न मानने पर, ब्रह्मा ने अपना अपमान समझा और उन्हें असह्य क्रोध हुआ। उस क्रोध को रोकने का प्रयत्न किया। विचार-शक्ति से रोकने पर भी प्रजापति की भौं के बीच से एक कुमार उत्पन्न हुआ। जिसका शरीर नीला और काला था। वह देवताओं का पूर्वज अर्थात् बड़ा भाई रोकर ब्रह्मा से बोला—हे जगद्गुरो! आप मेरा नामकरण कीजिए और रहने का स्थान बतलाइये। वह बालक भगवान् 'भव' थे। भगवान् ब्रह्मा उसकी प्रार्थना को पूर्ण करने की इच्छा से, मधुर वचन से बोले, मत रोओ, जो तुम कहते हो, वह मैं करूँगा। हे सुरश्रेष्ठ! बालक के समान व्याकुल होकर तुम रोये हो, इस कारण प्रजा रुद्र नाम से तुम्हे पुकारेगी। हृदय, इन्द्रियाँ, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा और तप—ये स्थान तुम्हारे लिये मैंने पहले ही से नियत किये हैं। मन्यु, मनु, महिनस, महान्, शिव, ऋतुध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव, धृतव्रत, ये तुम्हारे नाम होंगे। धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत, सर्पी, इला, अम्बिका, इरावती, सुधा और दीक्षा—ये तुम्हारी ग्यारह स्त्रियाँ रुद्राणी कही जायँगी। इन नामों और स्थानों को तुम लो। इन स्त्रियों के साथ बहुत सी प्रजा की सृष्टि करो। क्योंकि तुम प्रजापति हो। लोकगुरु ब्रह्मा की आज्ञा से

४—सनकञ्चसनन्दंचसनातनमथात्मभूः। सनत्कुमारंचमुनीन्निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः॥

५—तान्बभाषेस्वभूःपुत्रान्प्रजाःसृजतपुत्रकाः। तन्नैच्छन्मोक्षधर्माणोवासुदेवपरायणाः॥

६—सोऽवध्यातःसुतैरेवंप्रत्याख्यातानुशासनैः। क्रोधंदुर्विषहंजातंनियन्तुमुपचक्रमे॥

७—धियानिगृह्यमाणोऽपिभ्रुवोर्मध्यात्प्रजापतेः। सद्योऽजायततन्मन्युःकुमारोनीललोहितः॥

८—सवैरुरोददेवानापूर्वजोभगवान्भवः। नामानिकुरुमेधातःस्थानानिचजगद्गुरो॥

९—इतितस्यवचःपाद्मोभगवान्परिपालयन्। अभ्यधाद्भद्रयावाचामारोदीस्तत्करोमिते॥

१०—यदरोदीःसुरश्रेष्ठसोद्वेगइवबालकः। ततस्त्वामभिधास्यन्तिनाम्नारुद्रइतिप्रजाः॥

११—हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योमवायुरग्निर्जलंमही। सूर्यश्चन्द्रस्तपश्चैवस्थानान्यग्रेकृतानिते॥

१२—मन्युर्मनुर्महिनसोमहाञ्छिवःऋतुध्वजः। उग्ररेताभवःकालोवामदेवोधृतव्रतः॥

१३—धीर्वृत्तिरुशनोमाचनियुत्सर्पिरिलाऽम्बिका। इरावतीसुधादीक्षारुद्राण्योरुद्रतेस्त्रियः॥

१४—गृहाणैतानिनामानिस्थानानिचसयोषणः। एभिःसृजप्रजाबह्वीःप्रजानामसियत्पतिः॥

१५—इत्यादिष्टःसगुरुणाभगवान्नीललोहितः। सत्वाकृतिस्वभावेनससर्जात्मसमाःप्रजाः॥

भगवान नीललोहित शिव अपने ही समान बली आकार और स्वभाव वाली प्रजा उत्पन्न करने लगे। रुद्र की उत्पन्न हुई प्रजाओं का असंख्य दल जो समस्त संसार को ग्रसने के लिए उद्यत थे, देखकर ब्रह्मा भयभीत हो गये। वे बोले—देव श्रेष्ठ, ऐसी प्रजाओं की सृष्टि करने से क्या लाभ? क्योंकि ये सब अपनी भयंकर आखों से मेरे साथ दिशाओं को जला रहे हैं। अतएव सब प्राणियों के सुख का मूल तपस्या आप करें। आपका कल्याण हो। तपस्या के द्वारा ही आप पहले के समान पुनः विश्व की सृष्टि कर सकते हैं। तपस्या के द्वारा ही मनुष्य सब प्राणियों के हृदय मे रहनेवाले परम ज्योतिःस्वरूप अधोक्षज (जितेन्द्रिय) भगवान को शीघ्र प्राप्त करता है॥ १-१९॥

मैत्रेय बोले—ब्रह्मा के इस प्रकार कहने पर, वाणी के स्वामी ब्रह्मा की, उन्होंने परिक्रमा की और उनकी आज्ञा स्वीकार कर तथा उनसे विदा होकर तपस्या करने के लिए वे वन में चले गये। अनन्तर भगवान की शक्ति से शक्तिमान् ब्रह्मा पुनः सृष्टि करने का विचार करने लगे। उस समय उनके दस पुत्र उत्पन्न हुए। जिनसे लोक का विस्तार हुआ। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ और दक्ष और दसवे नारद उत्पन्न हुए। भगवान् ब्रह्मा की गोद से नारद, अंगूठे से दक्ष, प्राण से वशिष्ठ, त्वचा से भृगु, हाथ से क्रतु, नाभि से पुलह, कानों से पुलस्त्य ऋषि, मुख से अंगिरा, आँखों से अत्रि और मन से मरीचि ऋषि उत्पन्न हुए। दक्षिण स्तन से धर्म उत्पन्न हुए, जिसमे साक्षात् नारायण का निवास है और अधर्म उनकी पीठ से उत्पन्न हुआ, जिसमे लोक-भयंकर मृत्यु का निवास है। ब्रह्मा के हृदय से काम, भौं से क्रोध, ओठ से लोभ, मुँह से वाणी, लिंग से समुद्र, गुदा से पापों के निवास-स्थान राक्षस उत्पन्न हुए। ब्रह्मा की छाया से कर्दम ऋषि उत्पन्न हुए जो देवहूति के पति हैं। इस प्रकार

१६—रुद्राणांरुद्रसृष्टानांसमंताद्ग्रसतांजगत्। निशाम्यासंख्यशोयूथान्प्रजापतिरशंकत॥

१७—अलंप्रजाभिःसृष्टाभिरीदृशीभिःसुरोत्तम। मयासहदहतीभिर्दिशश्चक्षुभिरुल्वणैः॥

१८—तपआतिष्ठभद्रंतेसर्वभूतसुखावहम्। तपसैवतयथापूर्वंस्रष्टाविश्वमिदंभवान्॥

१९—तपसैवपरंज्योतिर्भगवंतमधोक्षज। सर्वभूतगुहावासमंजसाविंदतेपुमान्॥

मैत्रेयउवाच—

२०—एवमात्मभुवादिष्टःपरिक्रम्यगिरापतिम्। बाढमित्यमुमामन्त्र्यविवेशतपसेवनम्॥

२१—अथाभिध्यायतःसर्गंदशपुत्राःप्रजज्ञिरे। भगवच्छक्तियुक्तस्यलोकसंतानहेतवः॥

२२—मरीचिरत्र्यंगिरसौपुलस्त्यःपुलहःक्रतुः। भृगुर्वसिष्ठोदक्षश्चदशमस्तत्रनारदः॥

२३—उत्संगान्नारदोजज्ञे दक्षोऽगुंष्ठात्स्वयंभुवः। प्राणाद्वसिष्ठःसंजातोभृगुस्त्वचिकरात्क्रतुः॥

२४—पुलहोनाभितोजज्ञे पुलस्त्यःकर्णयोरृषिः। अंगिरामुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत्॥

विश्वकर्ता ब्रह्मा के मन और शरीर से—ये सब प्रजापति उत्पन्न हुए। विदुर! हमने सुना है कि ब्रह्मा ने अपनी वाणी, जो उनकी कन्या थी, पतली और मनहरण करनेवाली सुन्दरी थी, उसकी इच्छा न रहने पर भी बुरी इच्छा से ब्रह्मा ने उसके लिए कामना की। अपने पिता की बुद्धि को अधर्म की लगी देखकर, उनके पुत्र मरीचि आदि ऋषियों ने उन्हें समझाया। यह काम पहले वालों ने नहीं किया है। आगे भी कोई नहीं करेगा। आप समर्थ होकर भी अपनी इच्छा को नहीं रोकते और अपनी कन्या के पास जाना चाहते हैं। जगद्गुरो! जिसके आचरण के अनुसार आचरण करके लोक कल्याण पाता है, उन तेजस्वी पुरुषों के लिए भी यह काम समुचित नहीं है। उनका यश बढ़ने वाला नहीं है। उस भगवान को नमस्कार, जिन्होंने अपने प्रकाश से, अपने ज्ञान से अपनी आत्मा में रहने वाले इस विश्व को उत्पन्न किया है। उनको हमलोग नमस्कार करते हैं। वे ही धर्म की रक्षा कर सकते है। ब्रह्मा ने अपने प्रजापति पुत्रों को इस प्रकार कहते देखकर (प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्मा) लज्जित हुए और उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया और दूसरा शरीर ग्रहण किया। उस भयंकर शरीर को दिशाओं ने ग्रहण किया, जिससे अंधकार और कुहरा उत्पन्न हुए। एक समय ब्रह्मा विचार करने लगे कि एक साथ रहनेवाले मनुष्यों की सृष्टि पहले के समान मैं कैसे करूँ! ऐसा विचार करते समय उनके मुँह से चारों वेद उत्पन्न हुए। चार होताओं के कर्म, यज्ञ का विस्तार, उपवेद, न्याय, धर्म के चार पाद तथा आश्रमों के व्यवहार—ये सब ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए ॥ २०-३५ ॥

२५—धर्मस्तनाद्दक्षिणतोयत्रनारायणःस्वयम् । अधर्मःपृष्ठतोयस्मान्मृत्युर्लोकभयंकरः ॥

२६—हृदिकामोभ्रुवःक्रोधोलोभश्चाधरदच्छदात् ।

आस्याद्वाक्सिंधवोमेढ्रान्निर्ऋतिःपायोरघाश्रः ॥

२७—छायायाःकर्दमोजज्ञेदेवहूत्याःपतिःप्रभुः । मनसोदेहतश्चेदंजज्ञेविश्वकृतोजगत् ॥

२८—वाचंदुहितरंतन्वींस्वयंभूर्हरतींमनः । अकामांचकमेक्षत्तःसकामइतिनःश्रुत ॥

२९—तमधर्मेकृतमतिंविलोक्यपितरंसुताः । मरीचिमुख्यामुनयोविश्रंभात्प्रत्यबोधयन् ॥

३०—नैतत्पूर्वैःकृतंत्वद्येनकरिष्यंतिचापरे । यत्त्वंदुहितरंगच्छेरनिगृह्यांगजंप्रभुः ॥

३१—तेजीयसामपिह्येतन्नसुश्लोक्यंजगद्गुरो । यद्वृत्तमनुतिष्ठन्वैलोकःक्षेमायकल्पते ॥

३२—तस्मैनमोभगवतेयइदंस्वेनरोचिषा । आत्मस्थंव्यंजयामाससधर्मंपातुमर्हति ॥

३३—सइत्थंगृणतःपुत्रान्पुरोदृष्ट्वाप्रजापतीन् । प्रजापतिपतिस्तन्वंतत्याजव्रीडितस्तदा ॥

३४—तांदिशोजगृहुर्घोरांनीहारंयद्विदुस्तमः । कदाचिद्ध्यायतःस्रष्टुर्वेदाआसंश्चतुर्मुखात् ।

कथंस्रक्ष्याम्यहंलोकान्समवेतान्यथापुरा ॥

३५—चातुर्होत्रंकर्मतंत्रमुपवेदनयैःसह । धर्मस्यपादाश्चत्वारस्तथैवाश्रमवृत्तयः ॥

विदुर बोले—प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्मा ने अपने मुखों से वेदों की सृष्टि की। हे तपोधन, ब्रह्मदेव ने जिस-जिससे जिस-जिसकी सृष्टि की, वह सब आप मुझसे कहे ॥ ३६ ॥

मैत्रेय बोले—ब्रह्मा ने ऋग्, यजु, साम, और अथर्व की सृष्टि—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, और दक्षिण मुखों से यथाक्रम की। इसी प्रकार शास्त्र, इज्या, स्तुति, स्तोम और प्रायश्चित्त इनकी सृष्टि भी उन्होंने उसी क्रम से की। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और स्थापत्यवेद, इनकी सृष्टि यथाक्रम से पूर्व आदि मुखों के द्वारा की। इतिहास, पुराण जो पाँचवे वेद कहे जाते हैं, इनकी सृष्टि सर्वज्ञ ब्रह्मा ने चारों मुखों से की। ब्रह्मा ने षोड़शी और उक्थ नामक यज्ञों को पूर्व के मुख से, पुरीषी और अग्निष्टोम नामक यज्ञ पश्चिम वाले मुख से, आप्तोर्याम और अतिरात्र उत्तरवाले मुख से तथा वाजपेय और गोमेध दक्षिण वाले मुँह से ब्रह्मा ने उत्पन्न किये। विद्या, दान, तप और सत्य ये धर्म के चार पाद हैं। ब्रह्मा ने पूर्वादि मुखों से यथाक्रम इनकी सृष्टि की तथा चार आश्रमों और उनके व्यवहारों की भी सृष्टि क्रमानुसार अपने चारों मुखों से की। सावित्र, प्राजापत्य, ब्राह्म और बृहत्—ये ब्रह्मचर्य के भेद उन्होंने बतलाये हैं। (यज्ञोपवीत के पश्चात् तीन दिनों तक ब्रह्मचर्यव्रत का पालन सावित्र कहा जाता है, एक वर्ष तक ब्रह्मचर्यव्रत पालन करना प्राजापत्य है, वेदाध्ययन तक ब्रह्मचर्य पालन करना ब्राह्म है और आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करना बृहत् है।) वार्ता, (कृषि-वाणिज्य आदि) सचय, (यज्ञ कराना, और पढाना) शालीन (बिना माँगे प्राप्त होने वाला) शीलोञ्छ (खेत कटने पर उससे अन्न बीनना) गृहस्थों के लिए ये वृत्तियाँ उन्होंने बनायीं। वैखानस (बिना बोए अन्न से निर्वाह करना) बालखिल्य (नया अन्न मिलने पर, पुराने सचित अन्न को दे देनेवाला) औदुम्बर (सवेरे उठने पर जो दिशा दिखायी पडे, उसी में जाकर जो कोई फल मिले उसी को खाकर रहनेवाले) और फेनप (वृक्ष से गिरे

विदुरउवाच—

३६—सवैविश्वसृजामीशोवेदादीन्मुखतोऽसृजत् । यद्यद्येनासृजद्देवस्तन्मेब्रूहितपोधन ॥

मैत्रेयउवाच—

३७—ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान्वेदान्पूर्वादिभिर्मुखैः । शस्त्रमिज्यास्तुतिस्तोमप्रायश्चित्तंव्यधात्क्रमात् ॥

३८—आयुर्वेदधनुर्वेदगान्धर्ववेदमात्मनः । स्थापत्यचासृजद्वेदक्रमात्पूर्वादिभिर्मुखैः ।

३९—इतिहासपुराणानिपचमंवेदमीश्वरः । सर्वेभ्यएववक्त्रेभ्य.ससृजेसर्वदर्शनः ॥

४०—षोडश्युक्थौपूर्ववक्त्रात्पुरीष्यग्निष्टुतावथ । आप्तोर्यामातिरात्रौचवाजपेयसगोसवं ॥

४१—विद्यादानतपःसत्यंधर्मस्येतिपदानिच । आश्रमाश्चयथासख्यमसृजत्सहवृत्तिभिः ॥

४२—सावित्रप्राजापत्यचब्राह्मचाथबृहत्तथा । वार्तासचयशालीनशिलोञ्छइतिवैगृहे ॥

४३—वैखानसावालखिल्यौदुम्बराःफेनपावने । न्यासेकुटीचकःपूर्वबह्वोदोहसनिष्क्रियौ ॥

फल से निर्वाह करनेवाला) इस प्रकार वानप्रस्थों के लिये जीविका के, उन्होंने चार उपाय उत्पन्न किये। संन्यासाश्रम के, पहला कुटीचक, बहूदक, हंस और निष्क्रिय—ये चार भेद उत्पन्न किये। इसी प्रकार ब्रह्मा के हृदयाकाश से अन्वीक्षिकी (मोक्ष-विद्या) त्रयी (वेद) वार्ता (कृषि-शिल्प) दण्डनीति (राजविद्या) व्याहृतियाँ और प्रणव उत्पन्न हुये। प्रणव ओंकार को कहते हैं, उस पुरुष के रोम से उष्णिक छन्द, त्वचा से गायत्री छन्द, मांस से त्रिष्टुप् छन्द, स्नायु से अनुष्टुब् छन्द, अस्थि से जगती छन्द, मज्जा (चर्बी) से पङ्क्ति छन्द और प्राण से बृहती छन्द उत्पन्न हुए। उस पुरुष के जीव से स्पर्श वर्ण हुए। 'क' से 'म' तक के वर्ण स्पर्श कहे जाते हैं। उस पुरुष के शरीर से स्वर वर्ण हुए। इन्द्रियों से ऊष्म 'श, ष, स, ह' वर्ण हुए। बल से अन्तस्थवर्ण 'य, र, ल, व' हुए। प्रजापति ब्रह्मा की क्रीडा से सात स्वर उत्पन्न हुए। तात, व्यक्त और अव्यक्त शब्द स्वरूप ब्रह्म से परमेश्वर प्रकाशित होते हैं। अव्यक्त (वैखरी) शब्दरूप ब्रह्म से विस्तृत, व्यापक और अव्यक्त प्रणवरूप ब्रह्म, से अनेक शक्तियों से पूर्ण, परमेश्वर प्रकाशित होते हैं। अनन्तर, ब्रह्मा ने देखा कि उनके पुत्र ऋषि-गण अत्यन्त पराक्रमी है, तथापि उनके द्वारा सृष्टि का विस्तार नहीं हो रहा है, अतएव उन्होंने दूसरा शरीर धारण करके सृष्टि करने के लिए ध्यान किया। हे कौरव, उन्होंने अपने मन मे पुनः सोचा कि सृष्टि के काम में सदा लगा हुआ हूँ, तथापि प्रजाओं की वृद्धि नहीं होती, यह अद्भुत बात है। प्रजा की वृद्धि न होने का कारण दैव की प्रतिकूलता मालूम होती है। इस प्रकार ब्रह्मा विचार कर रहे थे, दैव की प्रतिकूलता दूर करने के उपाय सोच रहे थे, उस समय उनको आवेश (विचार-भग्न) हो गया। जिससे उनका शरीर दो खण्डों मे हो गया। अतएव शरीर को 'काम' कहते हैं। क्योंकि 'क' (ब्रह्मा) से यह उत्पन्न हुआ है। उन दो खण्डों से स्त्री और पुरुष की उत्पत्ति हुई। उनमे

४४—आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तादण्डनीतिस्तथैवच। एवंव्याहृतयश्चासन्प्रणवोह्यस्यदह्रतः ॥

४५—तस्योष्णिगासील्लोमभ्योगायत्रीचत्वचोविभोः। त्रिष्टुम्मांसात्स्नुतोऽनुष्टुप्जगत्यस्थ्नःप्रजापतेः ॥

४६—मज्जायाःपङ्क्तिरुत्पन्नाबृहतीप्राणतोऽभवत्। स्पर्शस्तस्याभवज्जीवःस्वरोदेहउदाहृतः ॥

४७—ऊष्माणमिंद्रियाण्याहुरन्तस्थाबलमात्मन। स्वराःसप्तविहारेणभवंतिस्मप्रजापतेः ॥

४८—शब्दब्रह्मात्मनस्तातव्यक्ताव्यक्तात्मनःपरः। ब्रह्मावभातिविततोनानाशक्त्युपबृंहितः ॥

ततोऽपरामुपादायससर्गायमनोदधे ॥

४९—ऋषीणांभूरिवीर्याणामपिसर्गमविस्तृतं। ज्ञात्वातद्धृदयेभूयश्चिंतयामासकौरव ॥

५०—अहोअद्भुतमेतन्मेव्यापृतस्यापिनित्यदा। नह्येधंतेप्रजानूनंदैवमत्रविघातक ॥

५१—एवंयुक्तकृतस्तस्यदैवंचावेक्षतस्तदा। कस्यरूपमभूद्द्वेधायत्कायमभिचक्षते ॥

५२—ताभ्यांरूपविभागाभ्यांमिथुनंसमपद्यत। यस्तुतत्रपुमान्सोऽभून्मनुःस्वायंभुवःस्वराट् ॥

जो पुरुष था, वह स्वायंभुव मनु हुये; जो स्वयं सम्राट् हुए। जो स्त्री थी, वह महात्मा मनु की पत्नी शतरूपा हुई। तब से स्त्री-पुरुषों के द्वारा प्रजा की वृद्धि होने लगी। मनु ने शतरूपा से पाँच सन्तान उत्पन्न किये। प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र-अकूती, देवहूती, और प्रसूती—ये तीन कन्याएँ—इस प्रकार पाँच सन्तान हुईं। आकूती, रुचि मुनि को, देवहूती कर्दम मुनि को और प्रसूती दक्ष को दी गयी। जिनसे यह समस्त ससार भर गया॥ ३७,५५॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कध का बारहवाँ अध्याय समाप्त

——:o*o:——

५३—स्त्रीयासीच्छतरूपाख्यामहिष्यस्यमहात्मनः। तदामिथुनधर्मेणप्रजाह्येधाबभूविरे॥

५४—सचापिशतरूपायांपंचापत्यान्यजीजनत्। प्रियव्रतोत्तानपादौतिस्रःकन्याश्चभारत॥

५५—आकूतिर्देवहूतिश्चप्रसूतिरितिसत्तम। आकूतिंरुचयेप्रादात्कर्दमायतुमध्यमा॥
दक्षायादात्प्रसूतिंचयतआपूरितंजगत्॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेतृतीयस्कंधेद्वादशोऽध्याय॥ १२॥

——*——

योगाग्निकी ज्योति

ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं जगद्गुरोश्चिन्तयती न चापरम् ।
ददर्श देहो हतकल्मषा सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना ॥

(श्रीमद्भा० ४ । ४ । २७)

तीसरा अध्याय

सती का दक्ष के यज्ञ में जाने का हठ और महादेव का उन्हें रोकना

मैत्रेय बोले—इस प्रकार परस्पर सदा आपस में विद्वेप रखते हुए वर्तमान दोनों श्वसुर और जामाता को बहुत समय बीत गया ॥ १ ॥ जब परमेष्ठी ब्रह्मा के द्वारा दक्ष सब प्रजापतियों के अधिपति बनाये गये तो उनके मन में अभिमान उत्पन्न हुआ और उन्होंने सब ब्रह्मज्ञानियों का तिरस्कार करके वाजपेय यज्ञ किया और पुनः बृहस्पति-सव नाम का उत्तम यज्ञ आरम्भ किया ॥ २, ३ ॥ उस यज्ञ में समस्त ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पितर और देवता अपनी पत्नियों के साथ आये और उन्होंने मङ्गल-कृत्य किये ॥ ४ ॥ आकाश में जाते हुए और आपस में बातचीत करते हुए आकाश-चारियों के मुँह से दक्ष की कन्या सती ने अपने पिता के यज्ञ-उत्सव की बात सुनी ॥ ५ ॥ समस्त दिशाओं से जाती हुई, चंचल नेत्रों वाली, गन्धर्व आदि उपदेवों की स्त्रियों को उन्होंने, अपने घर के समीप से देखा। वे स्त्रियाँ अपने-अपने पतियों के साथ विमानों पर आरूढ़ थीं ॥ ६ ॥ उनके वस्त्र सुन्दर थे और उन्होंने कानों में स्वच्छ कुण्डल तथा गले में निष्क नामक गहना पहन रखा था। उन्हें देखकर सती ने उत्सुकता पूर्वक, भूतों के स्वामी, अपने पति से कहा ॥ ७ ॥

मैत्रेयउवाच—

१—सदा विद्विषतोरेव कालो वैम्रियमाणयोः । जामातुः श्वशुरस्यापि सुमहानति चक्रमे ॥

२—यदाभिषिक्तो दक्षस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना । प्रजापतीना सर्वेषा माधिपत्ये स्मयोऽभवत् ॥

३—इष्ट्वा सवाजपेयेन ब्रह्मिष्ठानभिभूयच । बृहस्पति सव नाम समारेभे क्रतूत्तमम् ॥

४—तस्मिन्ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षि पितृदेवताः । आसन् कृतस्वस्त्ययनास्तत्पत्न्यश्च समर्तृकाः ॥

५—तदुपश्रुत्य नभसि खेचराणां प्रजल्पताम् । सती दाक्षायणी देवी पितुर्यज्ञ महोत्सवम् ॥

६—व्रजतीः सर्वतो दिग्भ्य उपदेव वरस्त्रियः । विमानयाना. सप्रेष्ठा निष्ककंठीः सुवाससः ॥

७—दृष्ट्वा स्वनिलयाभ्याशे लोलाक्षीमृष्ट कुंडलाः । पतिं भूतपतिं देव. मौत्सुक्या दभ्यभाषत ॥

सती बोलीं—स्वामी ! इस समय आपके श्वसुर दक्ष प्रजापति ने यज्ञ का महान् उत्सव आरम्भ किया है। वहाँ ये देवता जा रहे हैं। यदि आपकी अनुमति हो तो हमलोग भी वहाँ चलें ॥ ८ ॥ अपने सम्बन्धियों का देखने की इच्छा से, उस यज्ञ मे, अपने पतियों के साथ मेरी बहनें भी अवश्य जायँगी। पिता के दिए हुये अलङ्कारादि द्रव्यों को स्वीकार करने के लिए मैं भी आपके साथ वहाँ जाना चाहती हूँ ॥ ९॥ हे शिव ! मेरे मन में बहुत दिनों से यह उत्कण्ठा है कि मैं वहाँ जाकर पतियों के साथ अपनी बहनों, मौसियों और स्नेह-कातर माँ को तथा महर्षियों के द्वारा प्रवर्तित इस यज्ञ को देखूँ ॥ १० ॥ हे अज ! यह आश्चर्य-रूप त्रिगुणात्मक संसार तुम्हारी ही माया से निर्मित मालूम होता है, अतः यदि तुम्हें इस सम्बन्ध में कोई कौतूहल न हो तो कोई आश्चर्य नहीं, किन्तु मैं स्त्री हूँ, तत्वज्ञान से रहित हूँ अत. अपनी जन्मभूमि को देखने के लिए दीन हो रही हूँ ॥ ११ ॥ हे नीलकण्ठ ! देखिए, अन्य स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ, टोली बाँधकर जा रही हैं, जिनके कलहंस के समान श्वेत विमानों से आकाश शोभित हो रहा है ॥ १२ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! पिता के घर उत्सव हो रहा है, यह सुनकर कन्या का मन उसे देखने को उत्सुक क्यों न हो ? मित्र, पति और पिता के घर बिना बुलाए भी लोग जाते हैं ॥ १३ ॥ अतः हे देव ! आप मुझ पर प्रसन्न हों। आप दयालु हैं, मेरी यह

सत्युवाच—

८—प्रजापतेस्ते श्वशुरस्य सांप्रत निर्यापितो यज्ञ महोत्सवः किल ।
वयच तत्राभिसराम वामते यद्यर्थितामी विबुधा व्रजंति ॥

९—तस्मिन्भगिन्यो ममभर्तृभिः स्वकैर्ध्रुव गमिष्यति सुहृद्दिदृक्षवः ।
अहच तस्मिन्भवताऽभिकामये सहोपनीत परिबर्हमर्हितुं ॥

१०—तत्र स्वसीमें ननु भर्तृसमिता मातृष्वसः क्लिन्नधिय च मातरम् ।
द्रक्ष्ये चिरोत्कंठमना महर्षिभिरुन्नीयमान च मृडाध्वरध्वजम् ॥

११—त्वय्येतदाश्चर्य मजात्ममायया विनिर्मित भाति गुणत्रय त्मकम् ।
तथाप्यह योषिदतत्त्वविच्चते दीन दिदृक्षे भवमे भवक्षितिम् ॥

१२—पश्य प्रयांतीरभवान्य योषितोऽप्यलङ्कृताः कांत सखा वरूथशः ।
यासा व्रजद्भिः शितिकठ मडित नभोविमानैः कलहंसपांडुभिः ॥

१३—कथ सुतायाः पितृगेहकौतुकं निशम्य देहः सुरवर्य नेंगते ।
अनाहुता अप्यभियंति सौहृदं भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतन ॥

१४—तन्मे प्रसीदेदममर्त्य वांछितं कर्तुं भवान्कारुणिको वताहंति ।
त्वयात्मनोऽर्धेऽह मदभ्रचक्षुषा निरूपिता माऽनुगृहाण याचितः ॥

इच्छा पूर्ण कीजिए। महाज्ञानी आपने अपने आधे शरीर में मुझे स्थान दिया है, अतः आप मेरे माँगने पर यह अनुग्रह कीजिए ॥ १४ ॥

मैत्रेय बोले—प्रिया सती के इस प्रकार कहने पर, सुहृदों के प्रिय शिव को दक्ष के मर्मभेदी दुर्वचन याद आये जो बाण के समान थे और जिन्हें उन्होंने प्रजापतियों के समक्ष कहा था। शिवजी हँसकर सती से बोले ॥ १५ ॥

महादेव बोले—हे शोभने ! तुमने जो यह कहा कि बन्धुओं के यहाँ लोग बिना बुलाये भी जाते हैं, यह सत्य है; लेकिन उन्हीं के यहाँ जिनकी दृष्टि बलवान् शरीर के अभिमान अथवा क्रोध से दूषित न हो गयी हो ॥ १६ ॥ विद्या तप, धन, उत्तम शरीर, आयु और कुल—ये छः सज्जनों के लिए गुण है और असज्जनों के लिए दोष है। इन दोषों से विवेक-ज्ञान नष्ट हो जाता है; अतएव वे असज्जन महान् पुरुषों के तेज को नहीं देख सकते; क्योंकि इन्हीं गुणों के द्वारा वे अपने को विद्वान् समझ कर अहङ्कार करने लगते हैं और उनकी दृष्टि बुरी ही बातें देखती है ॥ १७ ॥ आत्मीय समझकर ऐसे अस्थिर चित्त वाले लोगों के घर की ओर देखना भी न चाहिए, जो अपने घर आये हुए को कुटिल बुद्धि से, भौंहें तानकर और क्रोध भरी आँखों से देखते है ॥ १८ ॥ शत्रुओं के बाणों से घायल हुए अङ्ग के द्वारा भी उतनी पीड़ा नहीं होती, जितनी कुटिल बुद्धि वाले सम्बन्धियों के मर्मभेदी और रात-दिन खटकने वाले दुर्वचनों से होती है ॥ १९ ॥ हे सुभ्रू ! यह सच है कि अच्छी स्थिति वाले दक्ष की सन्तानों में तुम प्रिय कन्या हो,

---

ऋषिरुवाच—

१५—एवं गिरित्रः प्रिययाऽभिभाषितः प्रत्यभ्यधत्त प्रहसन्सुहृत्प्रियः ।
संस्मारितो मर्मभिदः कुवागिषून्यानाह को विश्वसृजां समक्षतः ॥

श्रीभगवानुवाच—

१६—त्वयोदितं शोभनमेव शोभने अनाहुता अप्यभियन्ति बन्धुषु ।
ते यद्यनुत्पादितदोषदृष्टयो बलीयसाऽनात्म्यमदेन मन्युना ॥

१७—विद्यातपोवित्तवपुर्वयःकुलैः सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः ।
स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशः स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम् ॥

१८—नैतादृशानां स्वजनव्यपेक्षया गृहान्प्रतीयादनवस्थितात्मनाम् ।
येऽभ्यागतान्वक्रधियाऽभिचक्षते आरोपितभ्रूभिरमर्षणाक्षिभिः ॥

१९—तथारिभिर्न व्यथते शिलीमुखैः शेतेऽर्दिताङ्गो हृदयेन दूयता ।
स्वानां यथा वक्रधियां दुरुक्तिभिर्दिवानिशं तप्यति मर्मताडितः ॥

२०—व्यक्तं त्वमुत्कृष्टगतेः प्रजापतेः प्रियात्मजानामसि सुभ्रु संमता ।
अथापि मानं न पितुः प्रपत्स्यसे मदाश्रयात्कः परितप्यते यतः ॥

किन्तु फिर भी तुम पिता का मान न पा सकोगी क्योंकि दक्ष को इस बात का बड़ा पश्चात्ताप है कि तुमसे मेरा सम्बन्ध हुआ है ॥ २० ॥ निरहङ्कार पुरुषों की समृद्धि से जलने और दुःखित होने वाले मनुष्य, जब उनके उत्तम पद तक नहीं पहुँच सकते तो उनसे शत्रुता किया करते हैं, जैसे भगवान् की बराबरी न कर सकने के कारण असुरगण उनसे शत्रुता रखते है ॥ २१ ॥ हे सुमध्यमे ! बुद्धिमान भगवद्भक्त पुरुष प्रत्युत्थान, विनय-दर्शन और अभिवादन आदि जो परस्पर करते हैं, वह अन्तःकरण मे वर्तमान परमपुरुष भगवान् को ही करते हैं, शरीराभिमानी को नहीं, ॥ २२ ॥ अतएव उनका प्रणाम आदि चित्त से होता है, शरीर से नहीं, तात्पर्य यह कि मैंने चित्त से दक्ष को प्रणाम किया है । वसुदेव, यह शब्द विशुद्ध अन्तःकरण का है, क्योंकि ऐसे अन्तःकरण मे भगवान् स्वतः प्रकाशित होते हैं, उस अन्तःकरण मे मैं सदा ही इन्द्रियों से अगोचर वासुदेव की, नमस्कार के द्वारा उपासना करता हूँ ॥ २३ ॥ हे वरोरु ! मैं निरपराधी था, फिर भी दक्ष ने प्रजापतियों की सभा मे दुर्वचनों के द्वारा मेरा तिरस्कार किया था, अतः यद्यपि तुम उनकी कन्या हो, फिर भी मेरे शत्रु दक्ष तथा उनके अनुगत लोग तुम्हे देखकर भी न देखेंगे अर्थात् तुम्हारी उपेक्षा करेंगे ॥ २४ ॥ यदि तुम मेरी बात टालकर वहाँ जाओगी तो तुम्हारा कल्याण न होगा, क्योंकि सम्बन्धियों के द्वारा जब प्रतिष्ठित लोगों का पराभव होता है तो वह (पराभव) शीघ्र ही मृत्यु का कारण होता है ॥ २५ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का तीसरा अध्याय समाप्त

—————:o:—————

२१—पापच्यमानेन हृदातुरेन्द्रियः समृद्धिभिः पूरुषबुद्धि साक्षिणाम् ।
अकल्प एषामधिरोढुमञ्जसा पदं परं द्वेष्टि यथाऽसुराहरिं ॥

२२—प्रत्युद्गम प्रश्रयणाभिवादनं विधीयते साधुमिथः सुमध्यमे ।
प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा गुहाशयायैव न देह मानिने ॥

२३—सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव शब्दितं यदीयते तत्र पुमानपावृतः ।
सत्त्वे च तस्मिन् भगवान्वासुदेवो ह्यधोऽक्षजो मे नमसा विधीयते ॥

२४—तत्ते निरीक्ष्यो न पिताऽपिदेहकृद्दक्षो ममद्विट् तदनुव्रताश्चये ।
यो विश्वसृग्यज्ञगतं वरोरुमामनागसं दुर्वचसाऽकरोत्तिरः ॥

२५—यदि व्रजिष्यस्यतिहाय मद्वचो भद्रं भवत्या नततो भविष्यति ।
सम्भावितस्य स्वजनात्पराभवो यदा स सद्योमरणाय कल्पते ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेउमारुद्रसंवादेतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

—————

चौथा अध्याय

सती का देह-त्याग

मैत्रेय बोले—इतना कहकर और दोनों प्रकार से, अर्थात् सती को दक्ष के यहाँ जाने की अनुमति देने अथवा बलपूर्वक रोकने से, उनके शरीर-नाश की चिन्ता करके भगवान् चुप हो गये। सुहृदों को देखने की इच्छा से बाहर निकलती और शङ्कर के क्रोध से आशङ्कित होकर बारबार अंदर आती हुई सती का मन द्विविधा मे पड़ा हुआ था ॥१॥ सम्बन्धियों को देखने की इच्छा मे बाधा पड़ने से उदास हुई सती स्नेह के कारण रोने लगी, आँसुओं के गिरने से वे व्याकुल हो गयीं, उनका शरीर काँपने लगा और क्रोध मे इस प्रकार देखने लगीं मानों वे उस शिव को भस्म कर देंगी, जिनके समान अन्य कोई पुरुष नहीं है ॥२॥ अनन्तर स्त्री-स्वभाव की चञ्चलता के कारण सती उसाँसे लेती तथा शोक के कारण मनही-मन दुःखित होती हुई, सज्जनों के प्रिय उन शिव को छोड़कर अपने पिता-माता के घर की ओर चलीं जिन्होंने प्रेम से अपना आधा भाग उन्हें दिया था, अर्थात् जिन्होंने अर्धाङ्गिनी के रूप में उन्हे स्वीकार किया था ॥३॥ सती को शीघ्रता पूर्वक अकेली जाती देखकर शिवजी के सहस्रों अनुचर निर्भय होकर तथा नन्दी को आगे करके वेग से उनके पीछे गये। उन लोगों के साथ मणिमान् तथा मद आदि अनेक पार्षद और यक्ष भी थे ॥४॥ सती को बड़े बैल पर बैठाकर सारिका, कन्दुक, दर्पण, कमल, श्वेतछत्र, चँवर, माला, गान के साथ दुन्दुभि, शङ्ख और बंशी के बाजे

मैत्रेयउवाच—

१—एतावदुक्त्वा विरराम शंकरः पत्न्यंगनाशं ह्युभयत्र चिंतयन् ।
सुहृद्दिदृक्षुः परिशंकिता भवान्निष्क्रामती निर्विशती द्विधाऽसत्‌ ॥

२—सुहृद्दिदृक्षां प्रतिघात दुर्मनाः स्नेहाद्रुदत्यश्रु कलाऽतिविह्वला ।
भवं भवान्य प्रतिपूरुषं रुषा प्रधक्ष्यतीवैक्षत जातवेपथुः ॥

३—ततो विनिःश्वस्य सती विहाय तं शोकेन रोषेण च दूयता हृदा ।
पित्रोरगात्स्त्रैण विमूढधीर्गृहान्प्रेम्णात्मनो योऽर्धमदात्सतां प्रियः ॥

४—तामन्वगच्छन् द्रुत विक्रमां सतीमेकां त्रिनेत्रानुचराः सहस्रशः ।
सपार्षद यक्षामणिमन्मदादयः पुरो वृषेन्द्रास्तरसा गतव्यथाः ॥

५—तां सारिका कंदुक दर्पणांबुज श्वेतातपत्र व्यजन स्रगादिभिः ।
गीतायनैर्दुंदुभि शंख वेणुभिर्वृषेंद्रमारोप्य विटंकिता ययुः ॥

से शोभित कर वे चले अर्थात् महारानियों के समान सती को लेकर वे चले ॥ ५ ॥ जहाँ जोरों से वेदपाठ हो रहा था और यज्ञ-पशु मारा जा रहा था, ब्रह्मर्षि और देवता जहाँ बैठे हुए थे और मिट्टी, लकड़ी, लोहा, सोना, कुश तथा चमड़े से बने भाण्ड रखे हुए थे, उस यज्ञ में देवी सती गयीं। यज्ञ में आयी हुई सती का दक्ष ने सम्मान नहीं किया और उनके भय से दूसरे किसी व्यक्ति ने भी उनका आदर नहीं किया। केवल उनकी माता तथा बहनें जिनका गला प्रेमाश्रु के द्वारा रुँध गया था, प्रसन्नता और आदर के सहित उनसे मिलीं ॥ ६, ७ ॥ पिता के द्वारा अनादृत होने के कारण सती ने अपनी बहनों के कुशल-मंगल पूछने योग्य बातचीत को स्वीकार नहीं किया, अर्थात् उनसे बातचीत नहीं की और न माता तथा मौसी का आदर-पूर्वक दिया हुआ सामान और आसन ग्रहण किया ॥ ८ ॥ यज्ञ-सभा में अनादृत हुई अधी-श्वरी सती उस यज्ञ में शिव का भाग न देखकर तथा पिता ने शिव की अवहेलना की है यह जानकर ऐसी क्रोधित हुईं मानों वे अपने क्रोध से संसार को जला देंगी ॥ ९ ॥ उनको क्रोधित होते देखकर भूत-प्रेत आदि पार्षद दक्ष को मारने के लिए दौड़े पर सती ने अपनी आज्ञा से उनको रोक दिया। पुनः सब लोगों के सामने क्रोध के कारण लड़खड़ाती हुई वाणी से वे शिव के शत्रु दक्ष की निंदा करने लगीं, जिसे विधिपूर्वक कर्म करने के कारण अहङ्कार उत्पन्न हो गया था ॥ १० ॥

सती बोलीं—प्राणियों के प्रिय, आत्मारूप जिस शिव से जगत् में कोई श्रेष्ठ नहीं है तथा जिन्हें कोई प्रिय और अप्रिय नहीं है जो समस्त संसार के कारण रूप और वैररहित हैं,

---

६—आब्रह्म घोषोर्जितयज्ञ वैशसं विप्रर्षिजुष्टं विबुधैश्च सर्वशः।
मृद्दार्वयः काञ्चन दर्भ चर्मभिर्निसृष्ट भाण्डं यजनं समाविशत् ॥

७—तामागतां तत्र न कश्चनाद्रियद्विमानितां यज्ञकृतो भयाज्जनः।
ऋते स्वसॄर्वै जननीं च सादराः प्रेमाश्रुकण्ठ्यः परिषस्वजुर्मुदा ॥

८—सोदर्य सम्प्रश्नसमर्थ वार्तया मात्रा च मातृष्वसृभिश्च सादरं।
दत्तां सपर्यां वरमासनं च सा नादत्त पित्राऽप्रतिनन्दिता सती ॥

९—अरुद्रभागं तमवेक्ष्य चाध्वरं पित्रा च देवे कृतहेलनं विभौ।
अनादृता यज्ञ सदस्यधीश्वरी चुकोप लोकानिव धक्ष्यती रुषा ॥

१०—जगर्ह साऽमर्ष विपन्नया गिरा शिवद्विषं धूमपथ श्रमस्मयं।
स्वतेजसा भूतगणान्समुत्थितान्निगृह्य देवी जगतोऽभिशृण्वतः ॥

श्रीदेव्युवाच—

११—न यस्य लोकेऽस्त्यतिशायनः प्रियस्तथाऽप्रियो देहभृतां प्रियात्मनः।
तस्मिन्समस्तात्मनि मुक्त वैरके ऋते भवन्तं कतमः प्रतीपयेत् ॥

उन महादेव के साथ तुम्हारे सिवा और कौन वैर कर सकता है? ॥ ११ ॥ हे द्विज! तुम्हारे समान असाधु लोग दूसरों के गुण में भी दोष ही देखते है। अन्य लोग जो मध्यम वृत्ति के होते हैं, वे दोषों को ग्रहण नहीं करते अर्थात् वे दोष और गुण, दोनों ही को समान भाव से देखते है। किन्तु सज्जन लोग थोडे गुण को भी बहुत के समान ग्रहण करते हैं अर्थात् वे दोषों को देखते ही नहीं, तुमने ऐसे ही लोगों मे अपराध की कल्पना की है। जड शरीर को ही आत्मा समझने वाले असज्जन पुरुष, ईर्ष्या के कारण सदा ही सज्जनों की निन्दा करते है ॥ १२ ॥ इसमे कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि सज्जनों की चरण-धूलि से जो तेजहीन हो गये है, उनके द्वारा सज्जनों की निंदा ही शोभित होती है ॥ १३ ॥ प्रसङ्गवश एकबार भी मुँह से निकला हुआ जिनका दो अक्षर का 'शिव' यह नाम मनुष्यों के पापों का शीघ्र ही नाश करने वाला है, जिनकी आज्ञा कोई टाल नहीं सकता, उन पवित्रकीर्ति महादेव से अमङ्गलरूप तुम द्वेष करते हो ॥ १४ ॥ ब्रह्मरस-रूपी मकरन्द की इच्छा रखने वाले सज्जनों के मनरूपी भ्रमर जिनके चरण-कमलों की उपासना करते हैं तथा जिनके चरण कामनायुक्त लोगों के मनोरथ पूर्ण करने वाले हैं, उन जगत् के हित करने वाले महादेव से तुम द्रोह करते हो? ॥ १५ ॥ श्मशान मे जटा बिखराकर, श्मशान की भस्म तथा नर-मुण्ड की माला धारण करके, पिशाचों के साथ रहने वाले शिव को तुम्हारे अतिरिक्त ब्रह्मादिक अन्य लोग अमङ्गलरूप नहीं समझते क्योंकि वे उनके चरणों से गिरे हुए निर्माल्य को सिर पर धारण करते है ॥ १६ ॥ निरङ्कुश मनुष्य यदि धर्म की रक्षा करने वाले स्वामी की निन्दा करता हो और स्वय अपने मरने या मारने की सामर्थ्य न हो तो मनुष्य को कानों में उँगली डालकर वहाँ से

१२—दोषान् परेषा हि गुणेष्वसाधवो गृह्णन्ति केचिन्न भवादृशा द्विज ।
गुणाश्च फल्गून् बहुली करिष्णवो महत्तमास्तेष्व विदद्भवानघ ॥

१३—नाश्चर्य मेतद्यदसत्सु सर्वदा महद्विनिंदा कुणपात्मवादिषु ।
सेर्ष्यं महापूरुष पाद पांसुभिर्निरस्ततेजः सुतदेव शोभनं ॥

१४—यद्द्व्यक्षर नाम गिरेरितं नृणा सकृत्प्रसगादघमाशु हन्ति तत् ।
पवित्र कीर्तिं तमलङ्घ्य शासन भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः ॥

१५—यत्पाद पद्म महता मनोऽलिभि निषेवित ब्रह्मरसा सवार्थिभिः ।
लोकस्य यद्वर्षति चाशिषोऽर्थिनस्तस्मै भवान् द्रुह्यति विश्वबंधवे ॥

१६—किंवा शिवाख्य मशिवं नविदुस्त्वदन्ये ब्रह्मादयस्तमवकीर्य जटा. श्मशाने ।
तन्माल्य भस्म नृकपाल्य वसत्पिशाचैर्येमूर्द्धभिर्दधति तच्चरणावसृष्टम् ॥

१७—कर्णौपि धायनिरयाद्यदकल्प ईशे धर्मावितर्य सृणिभिर्नृभिरस्यमाने ।
छिन्द्यात्प्रसह्य रुशतीं मसतीं प्रभुश्चेज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत्सधर्मः ॥

हट जाना चाहिए, अर्थात् अपने स्वामी की निन्दा न सुननी चाहिए; किन्तु यदि शक्ति हो तो उस मनुष्य की अकल्याणवादिनी जिह्वा को बलपूर्वक काट लेना चाहिये और पुनः स्वयं भी शरीर का त्याग कर देना चाहिए, यही धर्म है ॥ १७ ॥ अतः मैं महादेव की निन्दा करने वाले तुम्हारे द्वारा उत्पन्न इस शरीर को धारण न करूँगी; क्योंकि यदि अज्ञान से मनुष्य अशुद्ध अन्न खा गया हो तो वमन करके उसे निकाल देने को ही शुद्धि कहते हैं ॥ १८ ॥ अपने ही स्वरूप में मग्न रहने वाले महामुनियों की बुद्धि विधि-निषेध रूपी वेद की आज्ञाओं का अनुसरण नहीं करती। जिस प्रकार मनुष्य और देवताओं की गति अलग-अलग है अर्थात् देवता स्वर्ग में और मनुष्य पृथ्वी पर विचरण करते हैं, उसी प्रकार अपने प्रवृत्ति या निवृत्ति-लक्षण धर्म में स्थित रहते हुए, दूसरे मनुष्य की निन्दा न करनी चाहिए ॥ १९ ॥ प्रवृत्ति-मार्ग और निवृत्ति-मार्ग दोनों ही सत्य हैं, क्योंकि अधिकारी की विवेचना के अनुसार वेद ने इन दोनों को ही स्वीकार किया है। सकाम व्यक्तियों को प्रवृत्ति मार्ग तथा निष्काम मनुष्यों को निवृत्ति मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। किन्तु यदि उन दोनों को एक ही समझकर मनुष्य एक साथ ही दोनों मार्ग ग्रहण करना चाहे तो यह नहीं हो सकता, क्योंकि ये दोनों परस्पर भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। लेकिन, ब्रह्मरूप महादेव के लिए तो इन दोनों में से किसी की आवश्यकता नहीं है ।।२०।। हे पिता ! हमारी जैसी पदवी (अर्थात् अणिमादिक सिद्धि) है वैसी तुम्हारी नहीं है; क्योंकि उसमें इच्छा करने मात्र से समस्त सिद्धियाँ उत्पन्न होती हैं और ब्रह्मज्ञानी लोग उसका सेवन करते हैं; तुम्हारी पदवी केवल यज्ञशाला में है और यज्ञान्न से तृप्त हुए लोग ही तुम्हारी समृद्धि का यशोगान करते हैं तथा अग्नि उसका भोग करती है ॥ २१ ॥ तुमने भगवान् महादेव के प्रति अपराध किया है और उसी तुम्हारे द्वारा मेरे इस अधमजन्मा शरीर की उत्पत्ति हुई है। मुझे इस शरीर

१८—अतस्तवोत्पन्न मिदं कलेवरं न धारयिष्ये शिति कंठगर्हिणः ।
अद्यं य मोहाद्धि विशुद्धि मंधसो जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते ॥

१९—न वेदवादा ननु वर्त्तते मतिः स्वएव लोके रमतो महामुनेः ।
यथा गतिर्देव मनुष्ययो. पृथक् स्वएव धर्मेनपर क्षिपेत्स्थितः ॥

२०—कर्म प्रवृत्तं च निवृत्तमप्यृत वेदे विविच्यो भयलिंग माश्रितं ।
विरोधि तद्यौग पदैक कर्तरि द्वयं तथा ब्रह्मणि कर्मनर्च्छति ॥

२१—मावः पदव्यः पितरस्मदास्थिता या यज्ञशालासनधूमवर्त्मभिः ।
तदन्न तृप्तै रसुभृद्भिरीडिता अव्यक्तलिंगा अवधूत सेविताः ॥

२२—नैतेन देहेन हरे कृतागसो देहोद्भवेनालमलं कुजन्मना ।
व्रीडा ममाभूत्कुजन प्रसंगतस्तज्जन्म धिग्यो महता मवद्यकृत् ॥

से कोई काम नहीं है। तुम्हारे समान दुर्जन से सम्बन्ध होने के कारण मैं लज्जित हूँ। जो शरीर सज्जनों की निन्दा करने के द्वारा उत्पन्न हुआ हो, उसे धिक्कार है ॥ २२ ॥ भगवान् वृषध्वज जब 'हे दक्ष की पुत्री!' कहकर तुम्हारे सम्बन्ध के नाम से मुझे पुकारते हैं, उस समय मेरा हँसना-बोलना शीघ्रही बन्द हो जाता है और मुझे बड़ा दुःख होता है, इसलिए तुम्हारे शरीर से उत्पन्न, शव-तुल्य अपने इस शरीर का मैं शीघ्रही त्याग करूँगी ॥ २३ ॥

मैत्रेय बोले—विदुर! यज्ञ में दक्ष को इस प्रकार उत्तर देकर सती चुप हो गयीं। वे पीतवस्त्र धारण करके उत्तर दिशा में पृथ्वी पर बैठ गयीं और जल से आचमन करके, आँख मूँद कर योग करने लगीं ॥ २४ ॥ आसन पर अधिकार करके उन्होंने प्राण तथा अपान वायु को नाभि-चक्र मे एक किया। पुनः वहाँ से उदान को उठाकर बुद्धि के साथ हृदय मे स्थापित किया और वहाँ से धीरे-धीरे कण्ठमार्ग से भृकुटि के मध्य मे ले आयीं ॥ २५ ॥ इस प्रकार अत्यन्त श्रेष्ठ महादेव ने जिस शरीर को अनेक बार आदर के साथ अपनी गोद मे बैठाया था, उस अपने शरीर को दक्ष के क्रोध से त्याग करने की इच्छा रखने वाली मनस्विनी सती ने अपने गात्रों मे अग्नि और वायु को धारण किया ॥ २६ ॥ अनन्तर वे जगत् के गुरु और अपने पति महादेव के चरण-कमलों के रस अर्थात् आनन्द का चिन्तन करने लगीं। उन्हें और कोई नहीं दीख पड़ा तथा शीघ्रही समाधि से उत्पन्न हुई अग्नि के द्वारा उनका शरीर जल उठा ॥ २७ ॥ इस महान् आश्चर्य को देखकर आकाश तथा पृथ्वी पर बड़ा हाहाकार मच गया—हाय! अत्यन्त पूजनीय महादेव की प्रिया सती ने दक्ष के द्वारा प्रकोपित होकर प्राण त्याग किया ॥ २८ ॥ अरे! इस प्रजापति दक्ष की महान् दुर्जनता तो देखो!

२३—गोत्रं त्वदीयं भगवान् वृषध्वजो दाक्षायणीत्याह यदा सुदुर्मनाः।
व्यपेत नर्मस्मितं माशु तद्‍‍‍ध्यहं व्युत्स्रक्ष्य एतत् कुणपं त्वदङ्गजं ॥

मैत्रेयउवाच—

२४—इत्यध्वरे दक्षमनूद्य शत्रुहन् क्षितावुदीचीं निषसाद शान्तवाक्।
स्पृष्ट्वा जलंपीत दुकूल संवृता निमील्य दृग्योगपथं समाविशत् ॥

२५—कृत्वा समानावनिलौ जितासना सोदानमुत्थाप्य च नाभि चक्रतः।
शनैर्हृदिस्थाप्य धियोरसिस्थितं कण्ठाद्भ्रुवोर्मध्य मनिंदिताऽनयत् ॥

२६—एवं स्वदेहं महतां महीयसा मुहुः समारोपितमङ्क मादरात्।
जिहासती दक्षरुषा मनस्विनी दधार गात्रेष्वनिलाग्निधारणां ॥

२७—ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं जगद्‍गुरोश्चिन्तयती न चापरं।
ददर्श देहो हतकल्मषा सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना ॥

जिस दक्ष की, सारा चराचर-जगत् प्रजा है, उसीके अपमान करने से उसकी कन्या सती ने प्राण त्याग कर दिये अर्थात् जिसे समस्त स्थावर-जङ्गम प्राणियों पर समान रूप से स्नेह करना चाहिए, उसने अपनी कन्या के साथ भी ऐसा कठोर व्यवाहर किया कि उसने प्राण-त्याग कर दिया, वह मनस्विनी कन्या तो निरन्तर सम्मान करने के योग्य है ॥ २९ ॥ ससार में ईर्ष्यालु हृदय वाले इस ब्रह्मद्रोही दक्ष की बडी अपकीर्ति होगी, क्योंकि महादेव के द्वेषी इस दक्ष ने अपने अपराध के कारण मरने को उद्यत हुई कन्या को मरने से रोका नहीं ॥ ३० ॥ सती के अद्भुत प्राणत्याग को देखकर लोग इस प्रकार बाते करने लगे और सती के पार्षद हथियार लेकर दक्ष को मारने दौड़े ॥३१॥ आते हुए उन पार्षदों का वेग देखकर भगवान् भृगु ने यजुर्वेद के मन्त्र से जो यज्ञ-विध्वंसियो का सहार करने वाला था, दक्षिणाग्नि मे होम किया ॥ ३२ ॥ अध्वर्यु अर्थात् भृगु के होम करने से अग्नि मे से ऋभु नाम के हजारों देवता उत्पन्न हुए, जिन्होंने तपस्या के द्वारा सोम प्राप्त किया था ॥ ३३ ॥ ब्रह्मतेज से प्रदीप्त वे ऋभु नामक देवता जलती हुई लकडी लेकर महादेव के प्रथम-गुह्यक आदि पार्षदों को मारने लगे, जिससे वे चारों दिशाओं मे भाग गये ॥ ३४ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कध का चौथा अध्याय समाप्त

२८—तत्पश्यता खेभुवि चाद्भुत महद्धाहेतिवादः सुमहानजायत ।
हत प्रिया दैवतमस्य देवी जहावसून्केन सती प्रकोपिता ॥

२९—अहो अनात्म्य महदस्य पश्यत प्रजापतेर्यस्य,चराचर प्रजा: ।
जहावसून्यद्विमतात्मजा सती मनस्विनी मानमभीक्ष्ण मर्हति ॥

३०—सोयं दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मध्रुक् चलोकेऽपकीर्ति महती मवाप्स्यति ।
यदगजा स्वा पुरुषद्विडुद्यता नप्रत्यषेधन्मृतयेऽपराधतः ॥

३१—वदत्येन जने सत्या दृष्ट्वा सुत्यागमद्भुत । दक्ष तत्पार्षदा हतु मुदतिष्ठन्नुदायुधा. ॥

३२—तेषामापतता वेग,निशम्य भगवान् भृगुः । यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहावह ॥

३३—अध्वर्युणा हूयमाने देवा उत्पेतुरोजसा । ऋभवो नाम तपसा सोम प्राप्ता. सहस्रशः ॥

३४—तैरलातायुधै सर्वे प्रमथाः सह गुह्यका. । हन्यमाना दिशोभेजुरुशद्भिर्ब्रह्मतेजसा ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कन्धेसतीदेहोत्सर्गोनामचतुर्थोध्यायः ॥ ४ ॥

——:०*०:——

पाँचवाँ अध्याय

वीरभद्र के द्वारा दक्ष के यज्ञ का विध्वंस

मैत्रेय बोले—दक्ष से तिरस्कृत होकर भवानी ने शरीर-त्याग किया और दक्ष के यज्ञ के ऋभु आदि देवताओं ने हमारे पार्षदों और सेना को नष्ट कर दिया; यह सम्वाद महादेव ने नारद के द्वारा जाना और वे बहुत ही क्रोधित हुए ॥ १ ॥ वे महादेव क्रोध से अपना ओठ चबाने लगे। बिजली की आग के समान तीव्रतेज वाली अपनी एक जटा उन्होंने उखाड़ ली पुनः उसे भूमि पर डाल दिया और सहसा उठकर अट्टहास करते हुए उन्होंने गम्भीर गर्जन किया ॥ २ ॥ उस जटा से विशाल शरीर वाले वीरभद्र उत्पन्न हुए, जो अपने विशाल शरीर से मानों आकाश को छू रहे थे, जिनके हजार हाथ थे, बादल के समान जिनका श्यामवर्ण था, तीन सूर्यों के समान आँखे थीं, तीखे दाँत थे, जलती हुई आग के समान सिर के बाल थे, वे मुण्डों की माला पहने हुए थे तथा अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए थे ॥ ३ ॥ उन वीरभद्र ने हाथ जोड़ कर महादेव से कहा कि "मै क्या करूँ ?" ऐसा कहते हुए वीरभद्र से भगवान् भूतनाथ ने कहा कि "हे रुद्र! हे वीर! तुम मेरे सैनिकों के अग्रणी होकर यज्ञ के सहित दक्ष का नाश करो, क्योंकि तुम मेरे अंश से उत्पन्न हुए हो" ॥ ४ ॥ इस प्रकार उस वीरभद्र ने क्रोध से कुपित हुए महादेव की प्रदक्षिणा की और तब उसने अनिवार्य वेग के कारण अपने को महाबलवानों का भी बल झेल जाने के लिये समर्थ समझा

मैत्रेयउवाच—

१—भवो भवान्या निधनं प्रजापते रसत्कृताया अवगम्य नारदात् ।
स्वपार्षद सैन्य च तदध्वरर्भुभिर्विद्रावितं क्रोधमपार मादधे ॥

२—क्रुद्धः सुदष्टौष्ठपुटः सधूर्जटिर्जटा तडिद्वह्नि सटोग्र रोचिष ।
उत्कृत्य रुद्रः सहसोत्थितो हसन् गभीरनादो विससर्ज तांभुवि ॥

३—ततोऽतिकाय स्तनुवास्पृशन्दिव सहस्र बाहुर्घनरुक् त्रिसूर्यदृक् ।
कराल दंष्ट्रोज्ज्वलदग्नि मूर्धजः कपाल माली विविधोद्यतायुधः ॥

४—त किं करोमीति गृणंतमाह बद्धाजलिं भगवान्भूतनाथ' ।
दक्ष सयज्ञं जहिमद्भटाना त्वमग्रणी रुद्र भटांशको मे ॥

५—आज्ञप्त एवं कुपितेन मन्युना सदेव देव परिचक्रमे विभुं ।
मेने तदात्मान मसगरंहसा महीयसां तातसहः सहिष्णुं ॥

॥ ५ ॥ गर्जन करते हुए रुद्र के पार्षद जिनका अनुगमन कर रहे थे, ऐसे वीरभद्र ने भयानक गर्जन किया और काल का भी नाश करने वाले शूल को लेकर दक्ष के यज्ञ की ओर दौड़े, जिससे उनके पैरों के आभूषण बजने लगे ॥ ६ ॥ उत्तर दिशा मे उड़ती हुई धूल को देखकर यजमान दक्ष, ऋत्विज, यज्ञ के सदस्य अन्य ब्राह्मण तथा उनकी पत्नियाँ सोचने लगीं कि यह अन्धकार कैसा है और यह धूल कहाँ से उत्पन्न हो गयी ॥ ७ ॥ तेज हवा नहीं चल रही और न चोर ही गायों को शीघ्रतापूर्वक हाँके ले जा रहे है, क्योंकि भयानक दण्ड देने वाले प्राचीनबर्हि नाम के राजा अभी जीवित हैं। तब यह धूल कहाँ से उड़ रही है? आज क्या लोकों का प्रलय होने वाला है? ॥ ८ ॥ जिनका चित्त उद्विग्न हो गया था, ऐसी प्रसूति (दक्ष की पत्नी) आदि स्त्रियाँ कहने लगीं कि दक्ष ने अपनी अन्य कन्याओं के सामने निरपराधिनी सती का अपमान किया है, यह उसी पाप का फल है ॥ ९ ॥ प्रलयकाल मे जो महादेव अपने जटा-समूह को बिखरा कर और अपने शूल की नोक में श्रेष्ठ दिग्गजों को पिरोकर और बिजली कड़क के समान अपने अट्टहास मे दिशाओं को विदीर्ण करते हुए, शस्त्र-सहित अपने हाथों को ध्वजा के समान उठाकर नृत्य करते हैं ॥ १० ॥ जिनका तेज असहनीय है, जो क्रोध से व्याप्त हैं अर्थात् स्वभाव से ही क्रोधी हैं, जिनकी भृकुटि को कोई सहन नहीं कर सकता, जिनकी कराल दाढ़ों के सम्मुख तारागणों की ज्योति नष्ट हो जाती है, उन महादेव को क्रोध से असहनशील बनाकर क्या ब्रह्मा का भी कल्याण हो सकता है? अर्थात् महादेव को क्रोधित करके ब्रह्मा का भी कल्याण नहीं हो सकता, अन्य लोगों की तो बात ही क्या है ॥ ११ ॥

६—अन्वीयमानः स रुद्रपार्षदैर्भृशं नदद्भिर्व्यनदत्सु भैरवं ।
उद्यम्य शूलं जगदन्तकांतकं सम्प्राद्रवद्घोषण भूषणाङ्घ्रिः ॥

७—अथर्त्विजो यजमानः सदस्याः ककुभ्युदीच्यां प्रसमीक्ष्य रेणुं ।
तमः किमेतत्कुत एतद्रजोऽभूदिति द्विजा द्विज पत्न्यश्च दध्युः ॥

८—वाता न वान्ति नहि सन्ति दस्यवः प्राचीन बर्हिः जीवति होग्रदण्डः ।
गावो नकाल्य न्त इदं कुतोरजो लोकोऽधुना किं प्रलयाय कल्पते ॥

९—प्रसूति मिश्राः स्त्रिय उद्विग्नचित्ता ऊचुर्विपाको वृजिनस्यैव तस्य ।
यत्पश्यतीनां दुहितॄणां प्रजेशः सुतां सतीं मवदध्यावनागां ॥

१०—यस्त्वन्तकाले व्युप्तजटा कलापः स्वशूल सूच्यर्पित दिग्गजेंद्रः ।
वितत्य नृत्यत्युदितास्त्र दोर्ध्वजानुच्चाट्टहासस्तनयित्नु भिन्नदिक् ॥

११—अमर्षयित्वा तमसह्यतेजसं मन्युप्लुतं दुर्विषहं भ्रु कुट्या ।
कराल दंष्ट्राभिरुदस्त भागणं स्यात्स्वस्ति किं कोपयतो विधातुः ॥

लोग इस प्रकार शङ्कित आँखों से अनेक तरह की चिन्ता करने लगे। इतने में उस यज्ञ में सहस्रों प्रकार के उत्पात, आकाश-पृथ्वी तथा चारों ओर होने लगे, जिन्हें देखकर महात्मा दक्ष को भी भय मालूम हुआ ॥ १२ ॥ हे विदुर! इतने ही में वह महान् यज्ञ चारों ओर से दौड़कर आते हुए महादेव के अनुचरों से भर गया। महादेव के वे अनुचर अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लिये हुए थे, उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र ऊँचे उठा लिये थे। उन अनुचरों में कोई बौना था, कोई पिङ्गल वर्ण का था, कोई पीला था और किसी के सिर तथा पेट मगर के समान थे ॥ १३ ॥ किसीने प्राग्वंश अर्थात् यज्ञशाला के पूर्व और पश्चिम के स्तम्भ में लगाये हुए काष्ठखण्ड को तोड़ डाला, दूसरे ने पत्नीशाला अर्थात् यज्ञ-मण्डप के पश्चिम का भाग नष्ट कर दिया, किसीने सभा-मण्डप, किसीने हविर्धान तथा किसी ने आग्नीध्र-शाला (यज्ञ मण्डप के भाग विशेष) को उजाड़ डाला, किसी ने दक्ष का घर नष्ट किया और किसीने रसोई घर। किसीने यज्ञ के पात्र तोड़ डाले और किसीने अग्नि का नाश कर दिया, किसीने कुण्ड में मूत्र-त्याग कर दिया और किसीने वेदी और मेखला तोड़ डाली ॥ १४, १५ ॥ कुछ अनुचर मुनियों को मारने लगे, कुछ स्त्रियों को डाँटने-डपटने लगे और दूसरों ने भागे हुए तथा पास बैठे हुए देवताओं को पकड़ लिया ॥ १६ ॥ मणिमान् ने भृगु को, वीरभद्र ने दक्ष को, चण्डीश ने पूषण को तथा नन्दीश्वर ने भगदेव को पकड़ कर बाँध लिया ॥ १७ ॥ वे पार्षद तक-तक कर उन पर पत्थर फेंकने लगे, उसकी पीड़ा से वे सभी ऋत्विज, सदस्य और देवतागण इधर-उधर भागने लगे ॥ १८ ॥ वीरभद्र ने भृगु ऋषि की दाढ़ी और मूँछ उखाड़ ली, जो स्रुवा लेकर अग्नि में हवन कर रहे थे तथा जिन्होंने पहले सभा में अपनी दाढ़ी-मूँछ दिखाकर महादेव का परिहास किया था ॥ १९ ॥ नन्दीश्वर ने भगदेवता को जमीन पर पटककर क्रोध से उनकी आँखें निकाल लीं, क्योंकि जब

१२—तद्वेव मुद्विग्न दृशोच्यमाने जनेन दक्षस्य मखे महात्मनः।
उत्पेतु रुत्पाततमाः सहस्रशो भयावहा दिवि भूमौच पर्यक् ॥

१३—तावत्स रुद्रानुचरैर्मखो महान्नानायुधैर्वामनकै रुदायुधैः।
पिंगै. पिशङ्गैर्मकरोदराननै. पर्याद्रवद्भिर्विदुरान्वरुध्यत ॥

१४—केचिद्बभञ्जुः प्राग्वंश पत्नीशाला तथापरे। सदआग्नीध्र शालाञ्च तद्विहारं महानसं ॥

१५—रुरुजुर्यज्ञपात्राणि तथैकेऽग्नीननाशयन्। कुंडेष्व मूत्रयन्केचिद् बिभिदुर्वेदि मेखलाः ॥

१६—अबाधत मुनीनन्य एके पत्नीरतर्जयन्। अपरे जगृहुर्देवान् प्रत्यासन्नान्पलायितान् ॥

१७—भृगुं बबंध मणिमान् वीरभद्रः प्रजापतिं। चडीशः पूषण देवभग नदीश्वरोऽग्रहीत् ॥

१८—सर्व एवर्त्विजो दृष्ट्वा सदस्या. सदिवौकसः। तैरर्द्यमाना. सुभृश ग्रावभिर्नैकधाऽद्रवन् ॥

१९—जुह्वतः स्रुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान्भवः। भृगोर्लुलुंचे सदसि योऽहसत्श्मश्रु दर्शयन् ॥

२०—भगस्य नेत्रे भगवान्पातितस्य रुषा भुवि। उज्जहार सदस्थोऽक्ष्णा यः शपंतमसूसुचत् ॥

सभा में दक्ष ने महादेव को शाप दिया था, उस समय भग ने आँखों के इङ्गित से उसे उत्साहित किया था ॥ २० ॥ जिस प्रकार बलराम ने कलिङ्गराज के दाँत तोड़ डाले थे, चण्डीश ने उसी प्रकार पूषण के दाँत तोड़ डाले, क्योंकि सभा में जब दक्ष ने महादेव को शाप दिया था, तब ये दाँत दिखाकर हँसे थे ॥ २१ ॥ अनन्तर वीरभद्र दक्ष की छाती पर चढ बैठे और तीक्ष्ण धार वाले अस्त्र से उन्होंने उसका गला काटना चाहा, पर काट न सके, जब अस्त्र-शस्त्रों से दक्ष की चमड़ी भी न छिली तो वीरभद्र को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे देर तक सोचते रहे ॥ २२, २३ ॥ पुन: 'यज्ञ में पशुओं का गला घोंट कर मारा जाता है' यह स्मरण करके उन्होंने दक्षरूपी पशु का गला धड़ से अलग कर दिया ॥ २४ ॥ वीरभद्र के इस कार्य की प्रशंसा करते हुए भूत-प्रेत तथा पिशाचगण उन्हें साधुवाद देने लगे तथा अन्य लोगों ने उनकी निंदा की ॥ २५ ॥ वीरभद्र ने क्रोधित होकर दक्ष के सिर को दक्षिणाग्नि में होम कर दिया और उस यज्ञशाला को जलाकर वे कैलाश पर्वत पर गये ॥ २६ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का पाँचवाँ अध्याय समाप्त

—————

२१—पूष्णश्चापातयद्दन्तान्कालिङ्गस्य यथाबल: । शप्यमाने गरिमणि योऽहसद्दर्शयन्दत: ॥

२२—आक्रम्योरसि दक्षस्य शितधारेण हेतिना । छिन्दन्नपि तदुद्धर्तुं नाशक्नोत्त्र्यम्बकस्तदा ॥

२३—शस्त्रैरस्त्रान्वितैरेवमनिर्भिन्नत्वचं हर: । विस्मयं परमापन्नो दध्यौ पशुपतिश्चिरम् ॥

२४—दृष्ट्वा संज्ञपनं योगं पशूनां स पतिर्मखे । यजमानपशो: कस्य कायात्तेनाहरच्छिर: ॥

२५—साधुवादस्तदा तेषां कर्म तत्तस्य पश्यताम् । भूतप्रेतपिशाचानामन्येषां तद्विपर्यय: ॥

२६—जुहावैतच्छिरस्तस्मिन्दक्षिणाग्नावमर्षित: । तद्देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठद्गुह्यकालयम् ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दक्षयज्ञविध्वंसो नाम पञ्चमोऽध्याय: ॥ ५ ॥

—————

छठवाँ अध्याय

ब्रह्मा का शिव की स्तुति करना

मैत्रेय बोले—अनन्तर महादेव की सेना से पराजित हुए तथा शूल, पट्टिश, तलवार, गदा, परिघ और मुद्गर के द्वारा सर्वाङ्गों मे क्षत-विक्षत हुए देवता, ऋत्विक तथा सभासदों के साथ, व्याकुल होकर ब्रह्मा के पास गये और उन्हे नमस्कार करके उनसे यह सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १, २ ॥ कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा और विश्वात्मा नारायण को यह बात पहले से ही मालूम था, अतः वे दक्ष के यज्ञ मे नहीं गये थे ॥ ३ ॥ यह सुनकर ब्रह्मा बोले कि "जिन तेजस्वियों ने अपराध भी किये हैं उनसे बदला लेने की इच्छा रखने वाले पुरुषों का, उस बदला लेने के भाव से कल्याण नहीं होता, फिर निरपराध व्यक्ति के प्रति अपराध करने पर आपका कल्याण कैसे होगा ? ॥ ४ ॥ फिर भी महादेव के प्रति जिन्होंने अपराध किया है और यज्ञ मे रहने वाला उनका भाग नहीं दिया, ऐसे आप लोग उनके चरण-कमलों को ग्रहण करके, शुद्ध हृदय से उन्हे प्रसन्न कीजिए, क्योंकि वे शीघ्रही प्रसन्न हो जाने वाले—आशुतोष—हैं ॥ ५ ॥ यदि आप लोग यज्ञ को पुनः प्रारम्भ करने की इच्छा रखते हों तो उन महादेव से क्षमा माँगिए, जिनका हृदय दुर्वचनों से विंध गया है, जिनकी पत्नी ने दक्ष के यज्ञ में अपना शरीर छोड़ दिया है अतः जो प्रिया से विहीन हो गये हैं तथा जिनके क्रोधित होने पर लोकपालों के सहित सारे लोक नष्ट हो जाते हैं ॥ ६ ॥ मैं, यज्ञ, आप लोग अथवा अन्य कोई शरीर-धारी जिसका तत्त्व और जिसके बल-पराक्रम की इयत्ता नहीं जानते, जो स्वयं ही अपने स्वामी हैं, उनका उपाय कौन कर सकता है ? ॥ ७ ॥

मैत्रेयउवाच—

१—अथ देवगणाः सर्वे रुद्रानीकैः पराजिताः । शूल पट्टिश निस्त्रिंश गदा परिघ मुद्गरैः ॥

२—सञ्छिन्न भिन्न सर्वांगाः सर्त्विक् सभ्या भयाकुलाः । स्वयम्भुवे नमस्कृत्य कार्त्स्न्येनैतन्न्यवेदयन् ॥

३—उपलभ्य पुरै वैतद्भगवानब्ज सम्भवः । नारायणश्च विश्वात्मा नक्स्याध्वरमीयतुः ॥

४—तदाकर्ण्य विभुः प्राह तेजीयसि कृतागसि । क्षेमाय तत्र साभूयान्नप्रायेण बुभूषता ॥

५—अथापि यूयं कृतकिल्बिषा भवं येर्बर्हिषो भागभाजं परादुः ।

प्रसादयध्वं परिशुद्ध चेतसा क्षिप्रप्रसादं प्रगृहीताङ्घ्रिपद्मं ॥

६—आशासानाजीवित मध्वरस्य लोकः सपालः कुपितेन यस्मिन् ।

तमाशु देव प्रियया विहीनं क्षमापयध्वं हृदिविद्धं दुरुक्तैः ॥

७—नाहं नयज्ञो नच यूयमन्ये येदेहभाजो मुनयश्च तत्त्वम् ।

विदुः प्रमाणं बलवीर्ययोर्वा यस्यात्मतंत्रस्य कउपायं विधित्सेत् ॥

मैत्रेय बोले—वे अजन्मा ब्रह्मा देवताओं को इस प्रकार आज्ञा देकर देवता, प्रजापति और पितरों के साथ ब्रह्मलोक से त्रिपुरारि महादेव के निवासस्थान कैलाश पर्वत पर गये ॥ ८ ॥ जन्म, औषधि, तप, मन्त्र और योग से सिद्ध हुए देवता, किन्नर, गन्धर्व तथा अप्सराएँ उस कैलाश पर्वत का सेवन करती हैं ॥ ९ ॥ वह पर्वत अनेक मणिमय शिखरों वाला है, अनेक प्रकार की धातुओं से विचित्र मालूम पड़ने वाला है,तथा अनेक प्रकार के पेड़, लता और गुल्मों तथा अनेक जाति के मृगों से ढँका हुआ है ॥१०॥ उसमें अनेक गुफाएँ हैं तथा उसके शिखरों से अनेक निर्मल झरने झरते रहते हैं। वह अपने प्रियतमों के साथ विहार करती हुई सिद्धाङ्गनाओं को अत्यन्त प्रिय है ॥११॥ वहाँ मयूर (मोर) मधुर शब्द करते हैं, मदोन्मत्त भ्रमर गुञ्जार करते हैं। वहाँ कोयल कूकती है और पक्षी चहचहाते हैं ॥ १२ ॥ वह कैलाश पर्वत अपने ऊँचे और सब मनोरथों को पूर्ण करने वाले वृक्षरूप हाथों से मानों पक्षियों को बुलाया करता है, चलते हुए हाथियों के रूप में वह चलता है और झरते हुए झरने के शब्द के रूप में बोलता है ॥ १३ ॥ मन्दार, पारिजात, देवदारु, तमाल, शाल, ताल, कोविदार, असन, अर्जुन, आम कदम्ब, नीप, नाग, पुन्नाग, चम्पक, पाटल, अशोक, बकुल, कुन्द, कुरवक, सुनहले रङ्ग के कमल, बाँस की उत्तम जातियाँ कुब्जक, मल्लिका, माधवी, कटहल, गूलर, पीपल, पाकड़, वड हिङ्ग, भूर्ज, औषधियाँ, सुपारी, चिकनी सुपारी, जामुन, खजूर, अमड़ा, आम, चिरौंजी, महुआ, इङ्गुदी, वेणु, कीचक तथा अन्य अनेक जातियों के वृक्षों से वह पर्वत शोभित हो रहा है ॥१४,

---

८—स इत्थमादिश्य सुरानजस्तैः समन्वितः पितृभिः सप्रजेशैः।

ययौ स्वधिष्ण्यान्निलय पुरद्विषः कैलासमद्रि प्रवरं प्रिय प्रभो ॥

९—जन्मौषधिः तपो मंत्र योग सिद्धैर्नरेतरैः। जुष्टं किंनर गंधर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा ॥

१०—नाना मणिमयैः शृङ्गैर्नाना धातु विचित्रितैः। नाना द्रुम लता गुल्मैर्नाना मृगगणावृतैः ॥

११—नानाऽमल प्रस्रवणैर्नाना कंदर सानुभिः। रमणं विहरन्तीना रमणैः सिद्धयोषिताम् ॥

१२—मयूर केकाभिरुतं मदान्धालि विमूर्छितम। प्लावितै रक्तकण्ठाना कूजितैश्च पतत्रिणाम् ॥

१३—आह्वयत मिवोद्धस्तैर्द्विज न् कामदुघैर्द्रुमैः। व्रजत मिवमातङ्गैर्गृणन्त मिवनिर्झरैः ॥

१४—मंदारैः पारिजातैश्च सरलैश्चोपशोभितम्। तमालैः शाल तालैश्च कोविदारासनार्जुनैः ॥

१५—चूतैः कदम्बैर्नीपैश्च नाग पुन्नाग चंपकैः। पाटलाशोक बकुलैः कुंदैः कुरबकैरपि ॥

१६—स्वर्णार्णं शतपत्रैश्च वरवेणुक जातिभिः। कुब्जकैर्मल्लिकाभिश्च माधवीभिश्च मंडितम् ॥

पनसोदु बराश्वत्थ प्लक्षन्यग्रोध हिंगुभिः ॥

१७—भूर्जैरोषधिभिः पूगैराजपूगैश्च जंबुभिः। खर्जूराम्रातकाम्राद्यैः प्रियाल मधुकेंगुदैः ॥

१८—द्रुम जातिभिरन्यैश्च राजित वेणु कीचकैः। कुमुदोत्पल कल्हार शतपत्र वनर्द्धिभिः ॥

१८ ॥ तालाबों में कुमुद, उत्पल, कल्हार तथा अन्य कमलों के खिलने से वह पर्वत समृद्धि-शाली है तथा चहचहाते हुए पक्षियों से शोभित हो रहा है ॥ १९ ॥ मृग, बन्दर, सुअर, सिंह, रीछ, साहिल, नीलगाय, कस्तूरीमृग, बाघ और भैंसे आदि पशुओं से वह पर्वत भरा हुआ है ॥ २० ॥ कर्ण, एक पैर वाले पशु, घोड़े के मुँह वाले पशु; भेड़िया और कस्तूरीमृग से वह स्थान शोभित है। जलाशयों के तट, केले के वनों से शोभित हो रहे हैं। सती के स्नान से जिसका जल अत्यन्त सुगन्धित हो गया है, ऐसी नदी ने उस पर्वत को, चारों ओर से घेर लिया है, देवतागण भूतों के स्वामी महादेव के इस पर्वत को देखकर अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २१,२२ ॥ उन लोगों ने वहाँ अलका नामकी सुन्दर नगरी तथा सौगन्धिक नाम का वन देखा, जहाँ इसी नाम के कमल खिले हुए थे ॥ २३ ॥ अलकापुरी के बाहर भगवान् के चरण-कमलों की रज से अत्यन्त पवित्र हुई, नन्दा और अलकनन्दा नाम की, नदियाँ बह रही थीं ॥ २४ ॥ उन नदियों में रतिश्रान्त देवताओं की स्त्रियाँ अपने विमानों से उतरकर क्रीड़ा करती है और अपने-अपने पति को जल से सींचती हैं अर्थात् उनपर जल उछालती हुई विविध प्रकार से क्रीड़ा करती हैं और अपने रति-जनित श्रम को दूर करती हैं ॥ २५ ॥ देवताओं की स्त्रियों के स्नान करने से उनके शरीर का नवीन केशर जल में छूट जाता है अतः उन नदियों के जल पीले हो जाते हैं और प्यास न होने पर भी हाथी स्वयं उस जल का पीते हैं तथा हथिनियों को पिलाते हैं ॥ २६ ॥ वह पुरी रूपा, सोना और अनेक प्रकार के उत्तम रत्नों से बने हुए विमानों से तथा यक्षों की स्त्रियों से युक्त है, जिस प्रकार बिजली और बादल से युक्त आकाश होता है ॥ २७ ॥ जहाँ समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाले तथा अनेक प्रकार के फल-फूल-पत्ते वाले वृक्ष शोभित

१९—नलिनीषु कलं कूजत् खगवृंदोपशोभितम् ॥

२०—मृगैः शाखामृगैः क्रोडैर्मृगेन्द्रैर्ऋक्षशल्यकैः। गवयैर्शरभैर्व्याघ्रैर्निर्जुष्टं महिषादिभिः ॥

२१—कदलीखण्ड संरुद्ध नलिनी पुलिनश्रियम्। पर्यस्तं नंदयासत्याः स्नान पुण्यतरोदया ॥

२२—विलोक्य भूतेशगिरिं विबुधा विस्मय ययुः। ददृशुस्तत्र ते रम्यामलका नाम वैपुरीम् ॥
वनं सौगधिक चापि यत्र तन्नाम पकजम् ॥

२३—नदाचालकनदाच सरितौ बाह्यतः पुरं। तीर्थपाद पदाभोज रजसातीव पावने ॥

२४—ययोः सुरस्त्रियः क्षत्तरवरुह्य स्वधिष्ण्यतः। क्रोडति पुंसः षिंचत्यो विगाह्य रतिकर्शिताः ॥

२५—ययोस्तत्स्नानविभ्रष्ट नवकुंकुम पिंजरम्। वितृषोऽपि पिबंत्यम्भः पाययतो गजागजीः ॥

२६—तारहेम महारत्न विमान शत सकुलाम्। जुष्टा पुण्य जनस्त्रीभिर्यथा खसतडिद् घनम् ॥

२७—हित्वा यक्षेश्वरपुरीं वन सौगंधिक च तत्। द्रुमै कामदुघैर्हृद्य चित्र माल्य फलच्छदैः ॥

२८—रक्तकंठ खगानीक स्वरमंडित षट्पदम्। कलहंस कुलप्रेष्ठ खरदंड जलाशयम् ॥

हो रहे थे, कोयल कूक रही थी, पक्षियों का समूह चहक रहा था, भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे, जो कलहंसों के कुल को प्रिय था जहाँ खिले हुए कमलों से युक्त जलाशय थे, ॥ २८ २९ ॥ जहाँ हरिचन्दन के वृक्षों पर वनैले हाथी अपना शरीर रगड़ते थे तथा उन वृक्षों की सुगन्धि से यक्षों की स्त्रियों का मन बार-बार कामातुर हो जाता था ॥ ३० ॥ जहाँ उत्पल और मालिनी से भरी हुई बावलियाँ थीं जिनकी सीढ़ियाँ वैदूर्य मणि की थीं, ऐसे किंपुरुषों से प्राप्त सौगन्धिक वन तथा अलकापुरी को देखकर वे आगे बढ़े और दूर से ही उन देवताओं ने एक वट देखा ॥ ३१ ॥ यह वट सौ योजन ऊँचा था और पचहत्तर योजन का उसका घेरा था। उसने अपने चारों ओर अचल छाया कर रखी थी, वह पक्षियों के घोंसलों से रहित तथा तापहीन था ॥ ३२ ॥ देवताओं ने उस महायोगमय, मुमुक्षुओं को आश्रय देने वाले वृक्ष के नीचे बैठे हुए शिव को देखा, जो क्रोध का त्याग करके साक्षात् काल के समान बैठे हुए थे ॥ ३३ ॥ शान्तियुक्त सनन्दन आदि महासिद्ध तथा यक्ष और राक्षसों के स्वामी कुबेर शान्त-स्वरूप महादेव की उपासना कर रहे थे। ये कुबेर महादेव के मित्र भी हैं ॥ ३४ ॥ विद्या, तप और योग के मार्ग में स्थित, संसार के हितैषी, वत्सलता के कारण संसार का कल्याण करने वाले, सर्वेश्वर महादेव तपस्वियों के प्रिय चिन्ह, भस्म, दण्ड, जटा और अजिन (मृगचर्म) धारण किये हुए थे और सन्ध्याकाश के समान अरुणवर्ण उनके अङ्ग में चन्द्र-लेखा शोभित हो रही थी ॥ ३५, ३६ ॥ व्रतियों के बैठने योग्य कुश के आसन पर वे बैठे हुए थे और नारद के पूछने पर सनातन ब्रह्म का उपदेश कर रहे थे। वहाँ बैठे अन्य सज्जनगण वह उपदेश सुन रहे थे ॥ ३७ ॥ बाएँ चरण-कमल को दाहिनी उरू पर रखकर और जानुओं पर बायाँ हाथ रखकर तथा दाहिने हाथ की कलाई पर अक्षमाला धारण करके वे तर्कमुद्रा से बैठे हुए थे। अर्थात् तर्जनी और अँगूठे के अग्रभाग को मिलाकर

२९—वन कुंजर संघृष्ट हरिचंदन वायुना। अधिपुण्य जनस्त्रीणां मुहुरुन्मथयन्मनः ॥

३०—वैदूर्यकृत सोपाना वाप्य उत्पल मालिनीः। प्राप्त किंपुरुषैर्दृष्ट्वा तआरादृदृशुर्वटम् ॥

३१—सयोजन शतोत्सेधः पादोनविटपायतः। पर्यक्कृताचलच्छायो निर्नीडस्ताप वर्जितः ॥

३२—तस्मिन्महा योगमये मुमुक्षु शरणे सुराः। ददृशुः शिवमासीन त्यक्तामर्ष मिवान्तकम् ॥

३३—सनन्दनाद्यैर्महासिद्धैः शान्तैः संशान्त विग्रहं। उपास्यमानं सख्याच भर्त्रा गुह्यकरक्षसां ॥

३४—विद्या तपो योगपथमास्थितं तमधीश्वरं। चरन्तं विश्वसुहृदं वात्सल्याल्लोक मंगलम् ॥

३५—लिंगं च तापसाभीष्टं भस्मदण्ड जटाजिनम्। अंगेन संध्याऽभ्ररुचा चन्द्रलेखां च बिभ्रतम् ॥

३६—उपविष्टं दर्भमय्यां बृस्यां ब्रह्मसनातनम्। नारदाय प्रवोचन्तं पृच्छते शृण्वतां सताम् ॥

३७—कृत्वोरौदक्षिणे सव्यं पादपद्मं च जानुनि। बाहुं प्रकोष्ठेऽक्षमालां मासीनं तर्कमुद्रया ॥

तथा अन्य उँगलियों को साथ जोड़कर हाथ आगे फैलाये हुए वे बैठे थे ॥ ३८ ॥ ब्रह्मानन्द मे निमग्न और योगपट्ट लेकर बैठे हुए मनुओं मे श्रेष्ठ महादेव को लोकपालों के सहित मुनियों ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ ३९ ॥ देवताओं और राक्षसों के स्वामी जिनके चरणों की वन्दना करते हैं, ऐसे महादेव ब्रह्मा को आया देखकर उठ खड़े हुए और स्वय ससार के पूजनीय होने पर भी उन्होंने सिर झुकाकर ब्रह्मा को प्रणाम किया, जैसे वामन रूपधारी विष्णु ने कश्यप को प्रणाम किया था ॥ ४० ॥ अनन्तर अन्य महर्षियों तथा सिद्धगणों ने, जो महादेव के चारों ओर बैठे हुए थे, ब्रह्मा को प्रणाम किया। जिन्होंने ब्रह्मा को प्रणाम किया था ऐसे शशिशेखर महादेव से ब्रह्मा हँसते हुए के समान बोले ॥ ४१ ॥

ब्रह्मा बोले—मैं आपको जगत् का स्वामी, जगत् की शक्ति और बीजरूप प्रकृति का कारण और भेदरहित परमात्म-स्वरूप जानता हूँ। शिव और शक्ति के रूप मे क्रीड़ा करते हुए आप ही इस ससार की सृष्टि, पालन और नाश करते है, जिस प्रकार रेशम का कीड़ा ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ धर्म, अर्थ और काम इस त्रयी विद्या की सिद्धि के लिए दक्ष को निमित्त बनाकर आप ही ने यज्ञ की सृष्टि की थी, ससार की समस्त मर्यादाएं आपही ने बाँधी हैं, जिस पर व्रतधारी ब्राह्मण श्रद्धा करते है ॥ ४४ ॥ हे मङ्गलमय ! शुभकर्म करने वालों को स्वर्ग और मोक्ष तथा निन्दितकार्य करने वालो को भयङ्कर नरक देने वाले आप ही है। किन्तु इसमें कभी-

---

३८—तं ब्रह्मनिर्वाण समाधि माश्रित व्युपाश्रित गिरिश योगकक्षाम् ।
सलोकपाला मुनयो मनूनामाद्य मनु प्राञ्जलयःप्रणेमुः ॥

३९—सतूपलभ्यागत मात्मयोनिं सुरासुरेशैरभि वन्दिताङ्घ्रिः ।
उत्थाय चक्रे शिरसाभिवदन महत्तमः कस्य यथैव विष्णुः ॥

४०—तथापरे सिद्धगणा महर्षिभिर्येवै समतादनुनील लोहितम् ।
नमस्कृतः प्राह शशाक शेखरं कृतप्रणाम प्रहसन्निवात्मभूः ॥

ब्रह्मोवाच—

४१—जाने त्वामीश विश्वस्य जगतोयोनि बीजयोः । शक्ते शिवस्य च पर यत्तद्ब्रह्म निरंतरम् ॥

४२—त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्यो.सरूपयोः । शिव सृजसि पास्यत्सि क्रीडन्नूर्णपटो यथा ॥

४३—त्वमेव धर्मार्थ दुघाभिपत्तये दक्षेण सूत्रेण ससर्जिथाध्वरम् ।
त्वयैव लोकेऽवसिताश्च सेतवो यान्ब्राह्मणाः श्रद्दधते धृतव्रताः

४४—त्वं कर्मणां मगल मंगलाना कर्तुः स्वलोके तनुषे स्वःपरंवा ।
अमगलाना च तमिस्र मुल्बणं विपर्ययः केन तदेव कस्यचित् ॥

४५—नवै सता त्वच्चरणार्पितात्मना भूतेषु सर्वेष्वभिपश्यता तव ।
भूतानि चात्मन्य पृथक् दिदृक्षता मायेण रोषोऽभिमवेद्यथा पशुम् ॥

कभी विपर्यय कैसे हो जाता है अर्थात् इसके प्रतिकूल होता हुआ कैसे देखा जाता है ? ॥ ४५ ॥ जिन्होंने अपना चित्त आपके चरणों मे अर्पित कर दिया है, जो सब प्राणियों मे आपही को देखते है और सारे ससार को अपने से अभिन्न समझते हैं, ऐसे सज्जन पुरुषों को क्रोध अभिभूत नही करता अर्थात् क्रोध सज्जनों पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता, क्योंकि अज्ञानी पुरुष ही पशु के समान क्रोध से अभिभूत होते हैं ॥ ४६ ॥ जो भेदबुद्धि रखने वाले हैं, जिनकी दृष्टि सदा मनुष्य के कार्यों मे रहती है, जो दुराशय हैं और दूसरों की उन्नति देखकर दिनरात जलते रहते है तथा दूसरों को अपने मर्मभेदी वचनों से पीड़ा पहुँचाया करते है, उन्हे दैव ही मारता है। आपके समान महान् व्यक्ति उन्हे नहीं मारते (क्योंकि, वे स्वयं ही मरे हुए के समान हैं) ॥ ४७ ॥ भगवान् की अपार माया से मोहित हुए मनुष्य भेद-बुद्धि रखते हैं, फिर भी सज्जन पुरुष अपनी स्वाभाविक कोमलता से यह समझकर कि 'भगवान् ने ही ऐसा कराया' उनपर दया ही करते है, उनपर अपना पराक्रम नहीं प्रकट करते ॥ ४८ ॥ भगवान् की अपार माया ने आपके मन को स्पर्श नहीं किया अर्थात् आप भगवान् की माया से परे हैं, सर्वज्ञ हैं, इसलिए माया से बुद्धिहीन हुए तथा कर्म मे ही आसक्त लोगों का यह अपराध आपको क्षमा कर देना चाहिए। हे भगवान् ! मारे गये दक्ष के अपूर्ण यज्ञ का आप उद्धार कीजिए ॥ ४९ ॥ यज्ञ-भाग के अधिकारी आपको उस यज्ञ मे भाग न देकर उस यज्ञ के मूर्ख यजमान ने स्वयं ही आपके द्वारा उसे नष्ट करा डाला ॥ ५० ॥ यह यजमान दक्ष जीवित हो, भग अपनी आँखे पा जायँ, भृगु की दाढ़ी-मूँछ फिर उग जाय और पूषण के दाँत ज्यों-के-त्यों हो जायँ ॥ ५१ ॥ हे मन्यु ! पत्थर के द्वारा घायल हुए अन्य देवता तथा ऋत्विज आदि भी शीघ्र ही आपके अनुग्रह से स्वस्थ हो जायँ ॥ ५२ ॥ हे रुद्र ! यज्ञ मे जो कुछ अवशिष्ट है, वह आपका भाग

४६—पृथक्धियः कर्मदृशोदुराशयाः परोदयेनार्पित हृद्रुजोऽनिशम् ।
परान् दुरुक्तैर्वितुदत्य रुतुदास्तान्माऽवधीद्दैव वधान् भवद्विधः ॥

४७—यस्मिन्यदा पुष्करनाभिमायया दुरतयास्पृष्टधियः पृथग्दृशः ।
कुर्वंति तत्र ह्यनुकपया कृपा नसाधवो दैवबलात्कृतेक्रमम् ॥

४८—भवास्तु पुंसः परमस्य मायया दुरतयाऽस्पृष्टमतिः समस्तदृक् ।
तयाहतात्मस्वनुकर्म चेतसः स्वनुग्रह कर्तुमिहार्हसि प्रभो ॥

४९—कुर्वध्वरस्योद्धरणं हतस्यभो त्वयाऽसमासस्य मनोप्रजापतेः ।
नयत्र भाग तव भागिनो ददु. कुयज्विनो येनमखो निनीयते॥

५०—जीवताद्यजमानोय प्रपद्ये ताक्षिणीभगः । भृगोः श्मश्रूणिरोहन्तु पूष्णोदन्ताश्च पूर्ववत् ॥

५१—देवानाभग्नगात्राणा मृत्विजां चायुधाश्मभिः । भवताऽनुगृहीताना माशुमन्योऽस्त्वनातुरम् ॥

हो। इस अपने यज्ञ-के भाग के द्वारा, हे यज्ञ के नाश करने वाले भगवान् ! आप आज यज्ञ को पूर्ण कीजिए ॥ ५३ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का छठवाँ अध्याय समाप्त

—※—

सातवाँ अध्याय

दक्ष का पुनरुज्जीवित होना और यज्ञ की पूर्ति

मैत्रेय बोले—हे विदुर ! ब्रह्मा के इस प्रकार अनुनय करने पर महादेव प्रसन्न हुए और हँसकर उन्होंने कहा कि सुनिए ॥ १ ॥

श्री महादेव बोले—हे ब्रह्मा ! ईश्वर की माया से अभिभूत दक्ष जैसे बालकों का अपराध न तो मैं किसी से कहता हूँ और न उसे मन में ही रखता हूँ: उस अपराध का दण्ड मैंने दिया है ॥ २ ॥ दक्ष का सिर जल गया है, अत. बकरे के मुँह के समान उनका मुँह हो। भग अपने यज्ञ सम्बन्धी भाग को मित्र देव की आँखों से देखे ॥ ३ ॥ पिसा हुआ अन्न खाने वाले पूषा यजमान के दाँतों से खायँ। देवताओं के टूटे हुए अङ्ग ज्यों-के-त्यों हो जायँ, क्योंकि उन्होंने यज्ञ का बचा हुआ भाग मुझे दिया है ॥ ४ ॥ जिनके अङ्ग नष्ट हो गये हैं, वे अश्विनी कुमार के बाहुओं से बाहु वाले तथा पूषण के हाथों से हाथ वाले हों। इसी प्रकार अन्य अध्वर्यु आदि भी हों तथा भृगु को बकरे की दाढ़ी-मूँछ उगे ॥ ५ ॥

५२—एषते रुद्रभागोऽस्तु यदुच्छिष्टोऽध्वरस्य वै। यज्ञस्ते रुद्रभागेन कल्पतां मद्ययज्ञहन् ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेरुद्रसान्त्वननामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

———

मैत्रेयउवाच—

१—इत्यजेनानुनीतेन भवेन परितुष्यता। अभ्यधायि महाबाहो प्रहस्य श्रूयतामिति ॥

श्रीमहादेवउवाच—

२—नाघंप्रजेशबालानां वर्णयेनानुचिंतये। देवमायाभिभूतानां दण्डस्तत्र धृतोमया ॥

३—प्रजापतेर्दग्धशीर्ष्णो भवत्वजमुखंशिरः। मित्रस्य चक्षुषेक्षेत भागं स्वं बर्हिषो भगः ।

४—पूषातु यजमानस्य दद्भिर्जक्षतु पिष्टभुक्। देवाः प्रकृतसर्वांगा येमउच्छेषणं ददुः ॥

५—बाहुभ्यामश्विनोः पूष्णो हस्ताभ्यां कृतबाहवः। भवन्त्वध्वर्यवश्चान्ये वस्तश्मश्रुर्भृगुर्भवेत् ॥

मैत्रेय बोले—हे विदुर ! महादेव को इस प्रकार कहते सुनकर उस समय सब प्राणी प्रसन्न हुए और उन्होंने साधु-साधु, कहा ॥ ६ ॥ अनन्तर ऋषियों के साथ देवताओं ने महादेव को यज्ञ में चलने के लिए कहा और महादेव तथा ब्रह्मा को आगे कर के पुनः उस देव-यज्ञ में गये ॥ ७ ॥ भगवान महादेव ने जो कुछ कहा था, उसे उन लोगों ने उनके कहने के अनुसार किया। दक्ष के धड़ से यज्ञपशु का सिर जोड़ दिया ॥ ८ ॥ महादेव के देखते हुए अर्थात् उनके सम्मुख ही दक्ष का सिर जोड़ा गया और वह मानो अभी सोकर उठा है इस तरह उठ बैठा और उसने अपने सामने महादेव को देखा ॥ ९ ॥ महादेव के द्वेष से जिसकी आत्मा कलुषित हो गयी थी, ऐसे दक्ष का अंतःकरण, शिव को देखने से, शरत्कालीन तालाब के समान निर्मल हो गया ॥ १० ॥ दक्ष ने महादेव की स्तुति करनी चाही, पर मरी हुई कन्या की याद आजाने से स्नेह तथा उत्सुकता के कारण उनकी आँखें भर आयीं और गला रुँध गया, अतएव वे स्तुति न कर सके ॥ ११ ॥ अनन्तर विद्वान प्रजापति ने प्रेम से विह्वल हुए अपने मन को किसी तरह शान्त किया और निष्कपट हृदय से उन्होंने महादेव की स्तुति की ॥ १२ ॥

दक्ष बोले—भगवन् ! यद्यपि मैंने आपका अपमान किया था, फिर भी आपने मुझे दण्ड देकर मुझपर अनुग्रह ही किया है अर्थात् आपने मेरी उपेक्षा न करके जो दण्ड दिया है, उससे मुझे शिक्षा मिली है, अतः इस दण्ड को मैं आपकी अनुकम्पा ही मानता हूँ। आप और विष्णु तो (मुझ-जैसे, यज्ञादि कर्मों में लिप्त) अधम ब्राह्मणों की भी अवज्ञा नहीं करते, फिर जो व्रतचारी हैं, उनकी तो बात ही क्या है ! ॥१३॥ हे परम पुरुष ! आत्मतत्व की रक्षा करने के लिए पहले तुम्हींने (ब्रह्मा के रूप से) विद्या, तप और व्रत-धारण करने

मैत्रेयउवाच—

६—तदासर्वाणि भूतानि श्रुत्वामीढुष्टमोदितम् । परितुष्टात्मभिस्तात साधु साध्वित्यथा ब्रुवन् ॥

७—ततो मीढ्वा समामन्त्र्य शुनासीराः सहर्षिभि । भूयस्तद्देवयजनं समीढ्वद्वेधसो ययु ॥

८—विधाय कात्स्न्येन च तत् यदाह भगवान् भवः । सदधुः कस्य कायेन सवनीयपशोः शिरः ॥

९—संधीयमाने शिरसि दक्षो रुद्राभिवीक्षितः । सद्यः सुप्त इवोत्तस्थौ ददृशे चाग्रतोमृडम् ॥

१०—तदा वृषध्वजद्वेष कलिलात्मा प्रजापतिः । शिवावलोकादभवत् शरद्ह्रद इवामलः ॥

११—भवस्तवाय कृतधीर्नाशक्नोदनुरागतः । औत्कंठ्याद् बाष्पकलया सपरेतां सुतास्मरन् ॥

१२—कृच्छ्रात्संस्तभ्यच मन प्रेमविह्वलित सुधीः । शशंसनिर्व्यलीकेन भावेनेशं प्रजापतिः ॥

दक्षउवाच—

१३—भूयाननुग्रहअहो भवता कृतो मे दण्डस्त्वया मयि भृतोयदपिप्रलब्धः ।

नब्रह्मबन्धुषु चवांभगवन्नवज्ञा तुभ्यं हरेश्च कुतएव धृतव्रतेषु ॥

वाले ब्राह्मणों को अपने मुँह से उत्पन्न किया था, अतः हे विभो! जिस प्रकार पशुओं का पालन करने वाला हाथ मे डण्डा लेकर पशुओं की रक्षा करता है, उसी प्रकार तुम भी ब्राह्मणों की रक्षा सब विपत्तियों से करते हो ॥ १४ ॥ मैं तत्वज्ञान से हीन था, किन्तु इस बात को भूलकर मैंने सभा मे दुर्वचनरूपी बाणों से आपको घायल किया था। पूजनीय पुरुष की निन्दा करने के कारण मैं नरक का भागी होता, पर आपने मुझे स्नेह की दृष्टि से देखा और दण्ड देकर मेरा उद्धार किया, अत. आप अपने ही अनुग्रह से प्रसन्न हो ॥ १५ ॥

मैत्रेय बोले—महादेव से इस प्रकार क्षमा माँगकर, ब्रह्मा की आज्ञा से ऋत्विक्, अग्नि और उपाध्याय के साथ दक्ष ने यज्ञ का कार्य पुन. प्रारम्भ किया ॥ १६ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणो ने भूत-प्रेतादि के ससर्ग-दोष की निवृत्ति के लिए और यज्ञ का विस्तार करने के लिए तीन ढकनों में तैय्यार किया हुआ विष्णु-सम्बन्धी पुरोडाश अग्नि मे छोड़ा ॥ १७ ॥ हे विदुर! जिन्होने हवि ग्रहण किया था, ऐसे अध्वर्यु के साथ यजमान दक्ष ने शुद्ध चित्त से ध्यान किया; इतने मे भगवान् विष्णु प्रकट हुए ॥ १८ ॥ उनकी प्रभा से दशों दिशाए आलोकित हो उठीं, वहाँ बैठे अन्य लोगों की कान्ति फीकी पड़ गयी। गरुड़ पर बैठे हुए भगवान् समीप आये, जिसके पङ्खों से सामवेद के मन्त्र उच्चारित हो रहे थे ॥ १९ ॥ उनका शरीर श्यामवर्ण का था, कमर मे सोने की करधनी थी, माथे पर सूर्य के समान किरीट था, भ्रमर के समान काले बालों तथा कुण्डल से उनका मुखमण्डल शोभित हो रहा था, शङ्ख, कमल, चक्र, बाण, धनुष, गदा, तलवार और ढाल से अपने आश्रितों की रक्षा करने मे व्यग्र और सुवर्ण के समान हाथों से कनेर-वृक्ष की तरह शोभित होने वाले, हृदय में लक्ष्मी और वनमाला को धारण करने

१४—विद्या तपो व्रत धरान्मुखतः स्मविप्रान् ब्रह्मात्मतत्त्वमवितु प्रथम त्वमस्राक्।
तद् ब्राह्मणान् परम सर्व विपत्सुपासि पाल. पशूनिव विभो प्रगृहीतदंडः ॥

१५—योसौ मयाऽविदित तत्त्वदृशा सभाया क्षिप्तोदुरुक्ति विशिखैरगणय्य तन्माम।
अर्वाक् पततमर्हत्त मनिदयाऽपात् दृष्ट्यार्द्रया सभगवान् स्वकृतेन तुष्येत् ॥

मैत्रेयउवाच—

१६—क्षमाप्यैव समीढ्वांसं ब्रह्मणा चानुमन्त्रित'। कर्म सतानयामास सोपाध्यायर्त्विगग्निभिः ॥

१७—वैष्णवं यज्ञसतत्यैत्रिकपाल द्विजोत्तमा। पुरोडाशं निरवपन् वीरसर्ग शुद्धये ॥

१८—अध्वर्युणात्त हविषा यजमानो विशापते। धियाविशुद्धया दध्यौ तथा प्रादुरभूद्धरि. ॥

१९—तदा स्वप्रभया तेषा द्योतयत्या दिशोदश। मुष्णन्स्तेज उपानीतस्तार्क्ष्येण स्तोत्रवाजिना ॥

२०—श्यामो हिरण्यरशनोऽर्क किरीट जुष्टो नीलालक भ्रमर मंडित कुंडलास्य.।
कम्बब्ज चक्र शर चापगदाऽसिचर्म व्यग्रैर्हिरण्मयभुजैरिव कर्णिकारः।

वाले, अपनी उदार हँसी और मधुर दृष्टि से विश्व मे रमण करने वाले अर्थात् व्याप्त रहने वाले भगवान् वहाँ पधारे। उनके सिर पर चन्द्रमा के समान श्वेत छत्र लगा हुआ था और दोनों ओर राजहस के समान चँवर ढुल रहे थे ॥ २०, २१ ॥ आये हुए उन विष्णु भगवान् को देखकर ब्रह्मा, इन्द्र और शिव तथा अन्य सभी लोग सहसा उठकर खड़े हो गये और उन्हे प्रणाम किया ॥ २२ ॥ भगवान् के तेज से उन लोगों की कान्ति मलिन पड़ गयी, उनकी वाणी लड़खड़ाने लगी, वे घबरा गये और जोडे हुए हाथों को सिर पर रखकर उन लोगों ने भगवान् की स्तुति की ॥ २३ ॥ ब्रह्मादि की वृत्तियाँ भी जिन भगवान् की महिमा तक नहीं पहुँच सकतीं, उन्होंने जब अनुग्रह करके साकार रूप धारण किया तो सभी लोग अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ २४ ॥ यज्ञ के स्वामी तथा ब्रह्मा के परम गुरु भगवान् सुनन्द-नन्द आदि अनुचरों से युक्त थे। उन्होंने दक्ष के द्वारा दी हुई उत्तम पूजन-सामग्री को ग्रहण करना स्वीकार किया, तब प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़कर विनयी दक्ष ने उनकी स्तुति की और शरण गये ॥ २५ ॥

दक्ष *बोले*—जाग्रत आदि अवस्थाओं से रहित, अद्वितीय, अभय तथा अपने ही स्वरूप में व्याप्त रहने वाले शुद्ध-चैतन्य एक आपही हैं। आप स्वतन्त्र हैं, आपने माया को जीत लिया है, फिर भी आप माया मे रहते हुए मनुष्य-शरीर धारण करके अपरिशुद्ध (रागद्वेपादि में लिप्त) के समान मालूम पड़ते हैं ॥ २६ ॥

ऋत्विज बोले—हे उपाधिरहित! नन्दीश्वर के शाप से कर्म मे ही दुराग्रह रखने वाले अर्थात् कर्ममार्ग में ही प्रवृत्त रहनेवाले हमलोग आपका तत्व नहीं जानते। धर्म के उपलक्षण-

---

२१—वद्यस्यधिश्रित वधूर्वनमाल्युदार हासावलोक कलया रमयश्च विश्वम्।
पार्श्वे भ्रमद्व्यजन चामर राजहसः श्वेतातपत्र शशिनो परिरज्यमानः ॥

२२—तमुपागत मालक्ष्य सर्वे सुरगणादयः। प्रणेमुः सहसोत्थाय ब्रह्मेंद्रत्र्यक्षनायका. ॥

२३—तत्तेजसा हतरुचः सन्नजिह्वाः ससाध्वसाः। मूर्ध्ना धृताजलिपुटा उपतस्थु रधोऽक्षजम् ॥

२४—अप्यर्वाग्वृत्तयो यस्य महित्वात्मभुवादय.। यथामति गृणतिस्म कृतानुग्रह विग्रहम् ॥

२५—दक्षो गृहीतार्हण सादनोत्तम. यज्ञेश्वर विश्वसृजा परंगुरुम्।
सुनन्दनन्दाद्यनुगैर्वृत मुदा गृणन्प्रपेदे प्रयत कृताजलिः ॥

दक्षउवाच—

२६—शुद्ध स्वधाम्न्युपरताखिल बुद्ध्यवस्थ चिन्मात्र मेकमभय प्रतिषिद्धमाया।
तिष्ठंस्तयैव पुरुषत्व मुपेत्य तस्यामास्ते भवानपरिशुद्ध इवात्मतंत्रः ॥

रूप अर्थात् धर्म का स्वरूप बतलाने वाले तथा वेदों के द्वारा प्रतिपादित इस यज्ञ-रूप आपको अर्थात् आपके स्वरूप को हम जानते हैं, जिस यज्ञ के लिए देवताओं ने नियम आदि बनाये हैं ॥ २७ ॥

समासद् बोले—हे आश्रय देने वाले प्रभु ! यह ससार-मार्ग अत्यन्त क्लेश-स्वरूप और विषम है। इसमे कहीं विश्राम करने का स्थान नहीं है । कालरूप सर्प सदा घात लगाये रहता है, इसमे सुख-दुःख रूपी अनेक खड्डे है, दुष्ट पुरुष रूपी घातक प्राणियों का भय बना रहता है और शोकरूपी दावानल इस मार्ग मे जलता रहता है। काम से पीड़ित और विषय-वासना रूपी मृगतृष्णा से युक्त शरीर तथा गृह का भारी बोझा ढोनेवाले जो अज्ञानी पुरुष इस मार्ग में चलते है, वे कब आपके चरणों में स्थान पावेंगे ? ॥ २८ ॥

महादेव बोले—हे वरद ! समस्त वासानाओं से अनासक्त मुनिगणों के द्वारा आदर-पूर्वक पूजा करने योग्य आपके श्रेष्ठ चरणों मे मैंने अपना चित्त लगाया है, अतः यदि अज्ञानी लोग मुझे आचारभ्रष्ट कहते हैं तो मैं उसकी चिन्ता नहीं करता, क्योंकि आपका मुझपर अत्यन्त अनुग्रह है ॥ २९ ॥

भृगु बोले—जिसकी गहन माया से ब्रह्मा आदि शरीरधारी आत्मतत्व भूल कर अन्धकार मे सो जाते हैं अर्थात् ज्ञानहीन हो जाते हैं तथा अपने ही मे आश्रित जिसके तत्व को अब-तक नही जानते, प्रणतों अर्थात् भक्तों के बन्धु वह आप हम पर प्रसन्न हों ॥ ३० ॥

ऋत्विजऊचुः—

२७—तत्व नते वयमनजन रुद्रशापात् कर्मण्य वग्रहधियो भगवन् विदामः ।
धर्मोपलक्षण मिद त्रिवृदध्वराख्य ज्ञात यदर्थमधिदैव मदोव्यवस्था ॥

सदस्याऊचुः—

२८—उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरु क्लेशदुर्गेऽतकोग्र व्यालान्विष्टे विषय मृगतृष्ण्यात्मगेहोरुभारः ।
द्वद्वश्वभ्रे खल मृगभये शोकदावेऽज्ञसार्थः पादौकस्ते शरणदकदा याति कामोपसृष्टः ॥

रुद्रउवाच—

२९—तव वरद वराम्रावाशिषेहाखिलार्थे ह्यपि मुनिभिरसक्तै रादरेणार्हणीये ।
यदि रचित धियमा विद्यलोकोपविद्धं जपति नगणयेतत्त्वत्परानुग्रहेण ॥

भृगुरुवाच—

३०—यन्मायया गहनयाऽपहृतात्मबोधा ब्रह्मादयस्तनुभृतस्तमसि स्वपतः ।
नात्मन् श्रितं तव विदन्त्यधुनाऽपि तत्व सोऽयं प्रसीदतु भवान् प्रणतात्मबन्धुः ॥

ब्रह्मा बोले— भिन्न-भिन्न प्रकार से पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करने वाली इन्द्रियों के द्वारा मनुष्य जो कुछ देखता है, वह आपका स्वरूप नहीं है, क्योंकि आप ज्ञान, अर्थ और गुण के आश्रय हैं तथा माया से युक्त पदार्थों से भिन्न है ॥ ३१ ॥

इन्द्र बोले—हे अच्युत ! संसार का पालन करने वाला, मन और दृष्टि को आनन्द देने वाला, दैत्यों का संहार करने वाला, उद्यत आयुधों वाला तथा आठ भुजाओं से युक्त आपका यह शरीर है अर्थात् यद्यपि आप निराकार हैं किन्तु आपका यह साकाररूप भी मन और दृष्टि को आनन्द देने वाला है ॥ ३२ ॥

ऋत्विजों की स्त्रियाँ बोलीं—हे यज्ञात्मन् ! प्रजापति ने आपही के यजन के लिये इस यज्ञ की सृष्टि की थी, जिसे दक्ष पर कुपित होकर पशुपति—महादेव ने नष्ट कर दिया, अतः हम-लोगों का वह यज्ञ श्मशान के समान और उत्सवहीन हो गया था। आप उसे अपने कमल के समान आँखों से पवित्र करें अर्थात् महादेव के द्वारा नष्ट हुआ जो यज्ञ श्मशान के समान हो गया था, वह आपके देखने से पवित्र हो जायगा ॥ ३३ ॥

ऋषि बोले—हे भगवान् ! आपके कार्य अलौकिक है, आप स्वय कर्म करके भी उसमें लिप्त नहीं होते। लोग ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये जिन लक्ष्मी की पूजा किया करते हैं, वे आपका अनुवर्तन करती है, आपके पीछे चलती है, पर फिर भी आप उनका आदर नहीं करते, अर्थात् समस्त ऐश्वर्यो की अधीश्वरी लक्ष्मी के प्रति भी आपके मन में आसक्ति नहीं है ॥३४॥

सिद्धगण बोले—क्लेश रूपी दावानल से दग्ध और तृष्णा से पीड़ित हम लोगों का यह

ब्रह्मोवाच—

३१—नैतत्स्वरूपं भवतोऽसौ पदार्थ भेदग्रहैः पुरुषोयावदीक्षेत् ।
ज्ञानस्य चार्थस्य गुणस्य चाश्रयो मायामयात् व्यतिरिक्तो यतस्त्वम् ॥

इंद्रउवाच—

३२—इदमप्यच्युत विश्वभावनं वपुरानंदकर मनोदृशाम् ।
सुरविद्विट् क्षपणै रुदायुधैर्भुजदण्डै रुपपन्नमष्टभिः ॥

पत्न्यऊचु—

३३—यज्ञोऽयं तवयजनाय केनसृष्टो विध्वस्तः पशुपतिनाद्य दक्षकोपात् ।
तं नस्त्वं शवशयनाभ शांतमेधं यज्ञात्मन्नलिनरुचा दृशा पुनीहि ॥

ऋषयऊचुः—

३४—अनन्वितं ते भगवन्विचेष्टितं यदात्मना चरसिहि कर्मनाज्यसे ।
विभूतये यत उपसेदुरीश्वरीं नमन्यते स्वयमनुवर्ततीं भवान् ॥

मनरूप हाथी, आपके कथारूप शुद्ध अमृत की नदी में पैठ गया है, अत. अब उसे संसार-रूपी दावानल की याद नही आती और वह उस नदी से निकला भी नहीं। हमलोगों को ऐसा मालूम होता है, मानो हमने साक्षात ब्रह्म को प्राप्त कर लिया है ॥ ३५ ॥

दक्ष की स्त्री बोली—हे श्रीनिवास! प्रिया लक्ष्मी के साथ आपका स्वागत है! हे ईश! आप प्रसन्न हों, हमारी रक्षा करें, हम आपको नमस्कार करती है! हे अधीश! समस्त अङ्गों से पूर्ण होते हुए भी आपके बिना यज्ञ शोभित नहीं होता, जिस प्रकार सिर के बिना अन्य अङ्गों से युक्त मनुष्य के कवन्ध (धड) की शोभा नहीं होती ॥ ३६ ॥

लोकपाल बोले—हे भूमन्! आप सब दृश्यों को देखने वाले है, प्रत्यग्द्रष्टा है, अतः असत् पदार्थों को ग्रहण करने वाली आँखों से हमने उस आपको नही देखा था? अर्थात् हमने आपको देखा है, किन्तु, यह आपकी माया है कि पाँच भूतों से बने शरीर में आप छठवे जीवरूप से जान पडते हैं। तात्पर्य यह कि आपकी माया से मोहित हुए हमलोग आपका प्रकृत रूप नहीं समझ पाते ॥ ३७ ॥

योगेश्वरगण बोले—भगवन्! विश्वरूप परमात्मा, आपसे जो आत्मा को भिन्न नहीं समझते, उनसे बढकर आपका प्रिय दूसरा नही है, तथापि हे भक्तवत्सल! एकान्त भक्ति के द्वारा, जो आपकी ओर आकृष्ट हुए हैं, जो आपका भजन करते है, उनपर आप कृपा करें। जगत् की उत्पत्ति-स्थिति और लय के लिए जीवों के अदृष्ट से अनेक गुणों वाली माया के द्वारा

सिद्धाऊचुः—

३५—अयं त्वत्कथामृष्ट पीयूषनद्या मनोवारणः क्लेशदावाग्नि दग्धः।
तृषार्त्तोऽवगाढो नसस्मार दाव न निष्क्रामति ब्रह्मसंपन्नवन्नः॥

यजमान्युवाच—

३६—स्वागत ते प्रसीदेश तुभ्यनमः श्रीनिवासश्रिया कातया त्राहिनः।
त्वामृतेऽधीश नागैर्मखः शोभते शीर्षहीनः कबधो यथापूरुषः॥

लोकपालाऊचुः—

३७—दृष्टः किंनोदृग्भिरसद्ग्रहैस्त्व प्रत्यग्द्रष्टा दृश्यते येन दृश्यम्।
माया ह्येषा भवदीयाहि भूमन् यस्त्व षष्ठः पञ्चमिर्भासि भूतैः॥

योगेश्वराऊचुः—

३८—प्रेयानतेऽन्योस्त्यमुतस्त्वयि प्रभो विश्वात्मनीक्षेन्न पृथग्य आत्मनः।
अथापि भक्त्येशतयोपधावता मनन्यवृत्त्याऽनुग्रहाण वत्सल॥

अपने स्वरूप को जिसने ब्रह्मा आदि के रूप में प्रकट किया है और जो स्व-स्वरूपस्थ होकर अनेक होने का भ्रम और गुणों के भेद को दूर कर देता है, उसको नमस्कार अर्थात् भगवान् में भेदबुद्धि माया-रचित है, यथार्थ नहीं ॥ ३८,३९ ॥

ब्रह्मा बोले—जिन्होंने धर्म को स्वीकार किया है, जो धर्मादि के स्रष्टा हैं, जिनके तत्व को न तो मैं जानता हूँ, न और कोई, उन निर्गुण को नमस्कार ॥ ४० ॥

अग्नि बोले—जिसके तेज से प्रदीप्त होकर मैं उत्तम यज्ञों में घी से भिगायी हुई हवि देवताओं के पास पहुँचाता हूँ, उस यज्ञ को पालन करने वाले, पाँच विधि और पाँच यजुर्वेद के मन्त्रों से पूजित होने वाले यज्ञ मूर्ति भगवान् को नमस्कार ॥ ४१ ॥

देवतागण बोले—प्राचीन प्रलयकाल में स्वनिर्मित संसार को अपने पेट में लेकर, प्रलय के जल में जो शेषनाग की शय्या पर सोये थे वे ही आदिपुरुष आप आज हमलोगों के सम्मुख प्रकट हुए हैं, जिनका ज्ञानमार्ग में सिद्धि पाये हुए लोग हृदय में विचार करते हैं। आप हम-दासों का कल्याण करें ॥ ४२ ॥

गन्धर्वगण बोले—हे देव ! मरीचि आदि, ब्रह्मा और इन्द्र आदि तथा रुद्र आदि देवता आपके अंशों के भी अंश हैं। यह ब्रह्माण्ड आपका खिलौना है। हे नाथ ! हम निरन्तर आपको नमस्कार करते है ॥ ४३ ॥

३९—जगदुद्भवस्थितिलयेषु दैवतो बहुभिद्यमान गुणयात्ममायया ।
रचितात्म भेदमतये स्वसस्थया विनिवर्तित भ्रमगुणात्मनेनमः ॥

ब्रह्मोवाच—

४०—नमस्ते श्रितसत्त्वाय धर्मादीना चसूतये । निर्गुणाय च यत्काष्ठा नाहं वेदापरेपिच ॥

अग्निरुवाच—

४१—यत्तेजसाऽहं सुसमिद्धतेजा हव्यं वहे स्वध्वर आज्यसिक्तम् ।
त यज्ञिय पचविधंच पचभिः स्विष्टयजुर्भि. प्रणतोऽस्मि यज्ञम् ॥

देवाऊचु—

४२—पुरा कल्पापाये स्वकृतमुदरीकृत्य विकृतं त्वमेवाद्यस्तस्मिन् सलिल उरगेंद्राधिशयने ।
पुमान् शेषेसिद्धैर्हृदिविमृशिताध्यात्म पदवी स एवाद्याक्ष्णोर्य. पथिचरसि भृत्यानवसिनः ॥

गन्धर्वाऊचुः—

४३—अंशांशास्ते देवमरीच्यादय एते ब्रह्मेंद्राद्या देवगणा रुद्रपुरोगाः ।
क्रीडाभाण्ड विश्वमिदं यस्यच भूमन् तस्मै नित्य नाथ नमस्ते करवाम ॥

विद्याधरगण बोले—समस्त पुरुषार्थों का साधन करने वाले इस शरीर को पाकर; आपकी माया से मनुष्य उसमे 'मै और मेरा' का अभिमान रखने लगता है। उत्पथगामी पुत्र आदि के द्वारा तिरस्कृत होने पर भी, दुर्बुद्धि से उनकी वासना असत् विषयों मे लिप्त रहती है किन्तु; यदि वे भी आपकी कथा-रूप अमृत का सेवन करते हैं तो उनके मन का समस्त मोह दूर हो जाता है ॥ ४४ ॥

ब्राह्मणगण बोले—यज्ञ, हवि, अग्नि, मन्त्र, समिध, दर्भ, पात्र, सभासद, ऋत्विज, यजमान और उसकी पत्नी, देवता, अग्निहोत्र, स्वधा, सोमरस, घी और पशु—ये सब स्वय आपही हैं अर्थात् ये सब आपही के स्वरूप है ॥ ४५ ॥ हे वेदमूर्ति ! प्राचीनकाल मे वाराहरूप से यज्ञ करने वाले आपने ही अपनी दाढ़ से पृथ्वी का उद्धार किया था अर्थात् आपने पृथ्वी को अपने दाढ़ों पर उठा लिया था, जैसे हाथी कमल को उठा लेता है। गर्जन करते हुए आपने लीलामात्र से अर्थात् अनायास ही पृथ्वी को उठा लिया था, उस समय योगिगण आपकी स्तुति कर रहे थे ॥ ४६ ॥ आपके दर्शन की इच्छा रखने वाले तथा सत्कर्म से भ्रष्ट हुए हमलोगों पर आप कृपा करे। हे यज्ञेश ! मनुष्यों के द्वारा जिस आपका नाम लिये जाते ही यज्ञ के समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं, उस आपको हमलोग नमस्कार करते है ॥ ४७ ॥

मैत्रेय बोले—हे विदुर ! जब सबलोग यज्ञभावन भगवान् की स्तुति कर चुके तो दक्ष ने पुनः यज्ञ का कार्य प्रारम्भ किया ॥ ४८ ॥ हे अनघ ! भगवान् सर्वात्मा है। सब के भागों

विद्याधराऊचुः—

४४—त्वन्माययाऽर्थमभिपद्य कलेवरेऽस्मिन् कृत्वा ममाहमितिदुर्मतिरुत्पथैः स्वैः ।
क्षिप्तोऽप्य सद्विषय लालस आत्ममोह युष्मत्कथाऽमृत निषेवक उद्वयुदस्येत् ॥

ब्राह्मणाऊचुः—

४५—त्व क्रतुस्त्वं हविस्त्व हुताशः स्वय त्वहि मत्रः समिद्दर्भ पात्राणि च ।
त्वसदस्यर्त्विजो दपतीदेवता अग्निहोत्रस्वधा सोमआज्य पशुः ॥

४६—त्व पुरागारसा यामहासूकरो दंष्ट्रयापद्मिनीं वारणेंद्रो यथा ॥
स्तूयमानो नदलीलया योगिभिर्व्युज्जहर्थत्रयी गात्र यज्ञक्रतुः ॥

४७—स प्रसीदत्वमस्माक माकाङ्क्षता दर्शन तेपरिभ्रष्टसत्कर्मणाम् ।
कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेशते यज्ञविघ्नाः क्षय यांति तस्मैनमः ॥

मैत्रेयउवाच—

४८—इति दक्षः कविर्यज्ञ भद्रुरुद्रावमर्शितम् । कीर्त्यमाने हृषीकेशे सन्निन्ये यज्ञभावने ॥

का उपभोग वे ही करते है, किन्तु अपना भाग पाकर मानों प्रसन्न हो गये हों, इस प्रकार दक्ष को सम्बोधित करके वे बोले ॥ ४९ ॥

श्रीभगवान् बोले—मैं जगत् का परम कारण आत्मा, ईश्वर, साक्षी, स्वयप्रकाश और उपाधिरहित हूँ। मैं ही ब्रह्मा और शिव हूँ अर्थात् ये मेरे ही स्वरूप हैं ॥ ५० ॥ हे द्विज! अपनी त्रिगुणात्मिका माया मे अधिष्ठित होकर, संसार की उत्पत्ति, रक्षा और विनाश करते हुए, मै ही क्रियोचित सञ्ज्ञा धारण करता हूँ अर्थात् ससार की उत्पत्ति के लिए ब्रह्मा, रक्षा के लिये विष्णु और विनाश के लिए शिव, यह भिन्न-भिन्न सञ्ज्ञाएँ धारण करता हूँ ॥ ५१ ॥ मैं एक हूँ, अद्वितीय हूँ, ब्रह्म और परमात्मा हूँ। मुझे और ब्रह्मा, शिव तथा अन्य प्राणियों को अज्ञानी लोग भिन्न-भिन्न समझते हैं ॥५२॥ जिस प्रकार मनुष्य अपने सिर-पैर आदि अङ्गों को अपने से अलग नहीं समझता, उसी प्रकार मेरे भक्त इतर प्राणियों और मुझमे भेद-बुद्धि नहीं रखते अर्थात् वे चराचर प्राणिमात्र में मुझे विद्यमान देखते हैं ॥ ५३ ॥ हे प्रजापति! सब प्राणियों के आत्मा और एकरूप इन त्रिदेवों मे जो भेद-बुद्धि नहीं रखता, उन्हे अलग-अलग नहीं समझता ,उसे शान्ति मिलती है ॥ ५४ ॥

मैत्रेय बोले—भगवान् के इस प्रकार उपदेश देने के अनन्तर प्रजापतियों के स्वामी दक्ष ने भगवान् की पूजा उनके भाग से की, अर्थात् यज्ञ मे भगवान् का जो भाग था, उसके द्वारा उन्होंने उनका सत्कार किया ॥ ५५ ॥ पुनः अङ्ग क्रियाओं और मुख्य क्रियाओं के द्वारा अन्य देवताओं का पूजन किया। सावधान दक्ष ने इन्द्र का पूजन उनके भाग से किया। अनन्तर समाप्त होने वाले कर्म के द्वारा इतर सोमपान करने वालों का पूजन किया। पुन. यज्ञ

४९—भगवान् स्वेन भागेन सर्वात्मा सर्वभागभुक्। दक्ष बभाष आभाष्य प्रीयमाण इवानघ ॥

श्रीभगवानुवाच—

५०—अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगत. कारण परम्। आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयं दृगविशेषण ॥

५१—आत्ममाया समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज। सृजन् रक्षन् हरन्विश्व दध्रे सञ्ज्ञा क्रियोचिताम्॥

५२—तस्मिन्ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि। ब्रह्म रुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥

५३—यथा पुमान्न स्वाङ्गेषु शिर पाण्यादिषु क्वचित्। पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्पर. ॥

५४—त्रयाणा मेक भावाना यो नपश्यति वैभिदाम्। सर्व भूतात्मनां ब्रह्मन् स शांति मधिगच्छति ॥

मैत्रेयउवाच—

५५—एवं भगवतादिष्टः प्रजापति पतिर्हरिम्। अर्चित्वा क्रतुनास्वेन देवानुभयतोऽयजत् ॥

५६—रुद्रन्च स्वेन भागेन ह्युपाधावत्समाहितः। कर्मणोदवसानेन सोमपा नितरानपि ॥

उदवस्य महर्त्विग्भि सस्नाववभृथ तत. ॥

को समाप्त कर, ऋत्विजों के साथ उन्होंने अवभृथ स्नान किया ॥ ५६ ॥ दक्ष को अपने ही प्रभाव से सिद्धि प्राप्त हो गयी थी, फिर भी देवतागण उन्हें 'धर्म में तुम्हारी मति रहे' ऐसा उपदेश देकर स्वर्ग-लोक को गये ॥ ५७ ॥ इस प्रकार दक्ष की कन्या सती ने अपना पूर्व-शरीर नष्ट करके पुनः हिमवान् के द्वारा मेना के गर्भ से जन्म धारण किया, ऐसा हमलोगों ने सुना है ॥ ५८ ॥ प्रलयकाल में सो गयी शक्ति जैसे परमपुरुष ईश्वर को प्राप्त करती है, उसी प्रकार जगदम्बिका सती ने पुनः अपने उन्हीं पति को प्राप्त किया, जो अपने में निष्ठा रखने वालों के मुख्य आश्रय हैं ॥ ५९ ॥ दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करने वाले भगवान् शङ्कर के इस कर्म को मैंने बृहस्पति के शिष्य भगवद्भक्त उद्धव से सुना है ॥ ६० ॥ हे विदुर ! पवित्र, उत्तम यश देने वाले, आयुष्य देने वाले और पाप-पुञ्जों को नष्ट करने वाले सदाशिव के इस चरित को जो मनुष्य भक्ति-भाव से सुनता है तथा अन्य लोगों को सुनाता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ६१ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का सातवाँ अध्याय समाप्त

५७—तस्मा अप्यनुभावेन स्वेनैवावाप्तराधसे । धर्म एव मतिं दत्वा त्रिदशास्ते दिवं ययुः ॥

५८—एवं दाक्षायणी हित्वा सती पूर्वकलेवरम् । जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मेनायामिति शुश्रुम ॥

५९—तमेव दयितं भूय आवृङ्क्ते पतिमम्बिका । अनन्य भावैक गतिं शक्तिः सुप्तेव पूरुषम् ॥

६०—एतद्भगवतः शम्भोः कर्म दक्षाध्वर द्रुहः । श्रुतं भागवताच्छिष्या दुद्धवान्मे बृहस्पतेः ॥

६१—इदं पवित्रं परमीश चेष्टितं यशस्य मायुष्यमघौघ मर्षणम् ।

यो नित्यदाकर्ण्य नरोनुकीर्तयेत् धुनोत्यघं कौरव भक्तिभावतः ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कन्धेदक्षयज्ञसंधानोनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

——:०*०:——

आठवाँ अध्याय

ध्रुव की कथा

मैत्रेय बोले—ब्रह्मा के पुत्र सनक आदि, नारद, ऋभु, हंस, अरुणि और यति, इन लोगों ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश नहीं किया और ब्रह्मचारी रहे ॥ १ ॥ अधर्म की पत्नी मृषा ने दम्भ और माया नाम की दो शत्रुनाशी सन्तान उत्पन्न कीं। सन्तानहीन निर्ऋति ने उन दोनों को ले लिया ॥ २ ॥ उन दोनों से लोभ और निकृति उत्पन्न हुए और इनसे क्रोध और हिंसा की उत्पत्ति हुई। क्रोध और हिंसा से कलि और उसकी बहन दुरुक्ति का जन्म हुआ। कलि ने दुरुक्ति में भय और मृत्यु नाम की सन्तान उत्पन्न कीं। उन दोनों से नरक और यातना का जन्म हुआ। हे विदुर! अधर्म का वंश-वृत्तान्त मैंने तुमसे संक्षेप में कहा, जिसे तीन बार सुनने से मनुष्य अपने पाप नष्ट कर देता है अर्थात् वह इनसे अलग रहता है और पापों से छुटकारा पा जाता है। हे विदुर! अब मैं तुमसे पुण्यकीति स्वायम्भुव मनु का वंश कहता हूँ, जो ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न हुए थे। शतरूपा के पति स्वायम्भुव मनु के उत्तानपाद और प्रियव्रत नाम के दो पुत्र हुए। इनमें भगवान का अंश था अत. ये दोनों संसार का पालन करने वाले हुए। राजा उत्तानपाद के सुरुचि और सुनीति नाम की दो स्त्रियाँ थीं। सुरुचि पति को प्यारी थी और सुनीति नहीं, जिसका पुत्र ध्रुव था। राजा एक दिन सुरुचि के पुत्र को गोद में लेकर प्यार कर रहे थे, ध्रुव ने भी राजा की गोद में बैठना चाहा, पर उन्होंने

मैत्रेयउवाच—

१—सनकाद्या नारदश्च ऋभुर्हंसोऽरुणिर्यतिः। नैते गृहान्ब्रह्मसुता ह्यावसन्नूर्ध्वरेतसः ॥

२—मृषाऽधर्मस्य भार्यासीद्दम्भं मायां च शत्रुहन्। असूत मिथुनं तत्तु निर्ऋतिर्जगृहेऽप्रजः ॥

३—तयोः समभवल्लोभो निकृतिश्च महामते। ताभ्यां क्रोधश्च हिंसा च यद्दुरुक्तिः स्वसा कलिः ॥

४—दुरुक्तौ कलिराधत्त भयं मृत्युं च सत्तम। तयोश्च मिथुनं जज्ञे यातना निरयस्तथा ॥

५—संग्रहेण मया ख्यातः प्रतिसर्गस्तवानघ। त्रिःश्रुत्वैतत् पुमान्पुण्यं विधुनोत्यात्मनो मलम् ॥

६—अथातः कीर्तये वंशं पुण्यकीर्तेः कुरूद्वह। स्वायम्भुवस्यापि मनोर्हरेरंशांशजन्मनः ॥

७—प्रियव्रतोत्तानपादौ शतरूपापतेः सुतौ। वासुदेवस्य कलया रक्षायां जगतः स्थितौ ॥

८—जाये उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिस्तयोः। सुरुचिः प्रेयसी पत्युर्नेतरा यत्सुतो ध्रुवः ॥

९—एकदा सुरुचेः पुत्रमङ्कमारोप्य लालयन्। उत्तमं नारुरुक्षन्तं ध्रुवं राजाऽभ्यनन्दत ॥

१०—तथा चिकीर्षमाणं तं सपत्न्यास्तनयं ध्रुवम्। सुरुचिः शृण्वतो राज्ञः सेर्ष्यमाहातिगर्विता ॥

ध्रुव का आदर नहीं किया। अर्थात् उसे अपनी गोद में नहीं बैठाया। सौत के लड़के ध्रुव को राजा की गोद में बैठने की इच्छा करते देखकर अत्यन्त गर्विणी सुनीति ने, ईर्ष्यापूर्वक, राजा के सुनते हुए कहा—बेटा! यद्यपि तुम राजा के पुत्र हो, फिर भी उनकी गोद में नहीं बैठ सकते, क्योंकि मैंने तुम्हें अपने गर्भ में धारण नहीं किया अर्थात् मेरे पुत्र न होने के कारण तुम राजा की गोद में स्थान नहीं पा सकते। तुम बच्चे हो। यह नहीं जानते कि तुम दूसरे के गर्भ से उत्पन्न हुए हो, इसीसे तुम ऐसा दुर्लभ मनोरथ कर रहे हो। यदि तुम राजा की गोद में बैठना चाहते हो तो तपस्या के द्वारा भगवान् को प्रसन्न करो और उनकी कृपा से मेरे गर्भ से उत्पन्न होओ ॥ ११,१३ ॥

मैत्रेय बोले—सौतेली माँ के दुर्वचनों से बिंधा हुआ ध्रुव, दण्डे से मारे गये सर्प के समान लम्बी साँसें लेने लगा। चुपचाप देखते हुए पिता को छोड़कर रोता हुआ ध्रुव माता के पास गया। जो उसाँसें ले रहा था तथा जिसके ओष्ठाधर (अपमान जनित क्रोध के कारण) फड़क रहे थे ऐसे बालक ध्रुव को सुनीति ने गोद में ले लिया। सौत ने जो कुछ कहा था, वह सब एक पुरवासी के मुँह से सुनकर वह अत्यन्त दु:खित हुई। शोकरूपी दावाग्नि से झुलसी हुई वनलता के समान सुनीति, धैर्य छोड़कर रोने लगी। सौत की बातें याद करके कमल-जैसी उसकी आँखों में जल भर आया। अपने दुःख का अन्त न देखती हुई और उसाँसें लेती हुई सुनीति ने ध्रुव से कहा—बेटा! दूसरे की बुराई न सोचो, जो दूसरों दुःख देता है, वह उसका फल स्वयं पाता है। सुरुचि ने तुमसे सच ही कहा है कि तुम

११—नवत्स नृपतेर्धिष्ण्यं भवानारोढुमर्हति। नगृहीतो मया यत्त्वं कुक्षावपि नृपात्मजः ॥

१२—बालोऽसि बत नात्मानं मन्यस्त्री गर्भसम्भृत। नूनं वेद भवान्यस्य दुर्लभेऽर्थे मनोरथः॥

१३—तपसाराध्य पुरुषं तस्यैवानुग्रहेण मे। गर्भे त्वं साधयात्मानं यदीच्छसि नृपासनं ॥

मैत्रेयउवाच—

१४—मातुः सपत्न्याः सुदुरुक्तिविद्धः श्वसन् रुषा दण्डहतो यथाऽहिः।
हित्वा मिषन्तं पितरं सन्नवाचं जगाम मातुः प्ररुदन्सकाशं॥

१५—तं निःश्वसन्तं स्फुरिताधरोष्ठं सुनीतिरुत्सङ्ग उदूह्य बाला।
निशम्य तत्पौर मुखान्नितान्तं सा विव्यथे यद्गदितं सपत्न्याः ॥

१६—सोत्सृज्य धैर्यं विललाप शोक दावाग्निना दावलतेव बाला ॥
वाक्यं सपत्न्याः स्मरती सरोज श्रिया दृशा बाष्पकलामुवाह ॥

१७—दीर्घं श्वसती वृजिनस्य पारं अपश्यती बालकमाह बाला।
मामङ्गलं तात परेषु मंस्था भुङ्क्ते जनो यत्परदुःखदस्तत् ॥

मेरे गर्भ से उत्पन्न हुए हो और तुमने मेरा दूध पिया है, जिस मुझको पत्नी कहने मे भी राजा लज्जित होते हैं अर्थात् राजा मुझे दासी के समान भी नही समझते, फिर मेरे गर्भ से उत्पन्न तुम्हारा आदर वे कैसे कर सकते है ? पुत्र ! विमाता ने जो सच्ची बात कही है, उसका बुरा मत मानो, उसके अनुसार आचरण करो'। यदि उत्तम के समान तुम भी ऊँचा आसन चाहते हो तो भगवान् के चरण-कमलों की आराधना करो। ससार का पालन करने के लिए जिन्होंने सत्वगुण धारण किया है, ऐसे भगवान् के चरण-कमलों की आराधना करके ब्रह्मा ने परमेष्ठी का पद पाया है। जिन्होंने आत्मा और प्राण को जीत लिया है अर्थात् वश मे कर लिया है, वे योगी भी उसकी वन्दना करते है। इसी प्रकार तुम्हारे पितामह स्वायम्भुव मनु ने भी स्थिर बुद्धि से, जिनमे प्रभूत दक्षिणा दी गयी है, ऐसे यज्ञों के द्वारा भगवान् का पूजन करके, दूसरे के लिए अप्राप्य पृथ्वी, स्वर्ग और मोक्ष का सुख पाया था। वत्स ! मुमुक्षु लोग जिसके चरण-कमलों के पथ का अन्वेषण करते रहते हैं, तुम उन्हीं भक्तवत्सल भगवान् की शरण जाओ। अपने धर्म से शुद्ध हुए मन मे अनन्यभाव से भगवान् की स्थापना करके उनका भजन करो। जिन लक्ष्मी की अन्य लोग बाट जोहते रहते हैं, स्वय वे भी हाथ मे कमल लिए भगवान् के पीछे फिरा करती हैं। उन पद्म-पलाश-लोचन भगवान् के अतिरिक्त, तुम्हारे दु.ख को दूर करने वाला मुझे और कोई नहीं दीख पड़ता ॥ १४, २३ ॥

मैत्रेय बोले—इस प्रकार इच्छाओं को पूर्ण करने वाली रोती हुई माता के वचन सुनकर

१८—सत्य सुरुच्याऽभिहित भवान्मे यद्दुर्भगाया उदरे गृहीतः।
स्तन्येन वृद्धश्च विलज्जते या भार्येति वावोढुमिडस्पतिर्माम्॥

१९—आतिष्ठ तत्तात विमत्सरस्त्व मुक्त समात्राऽपि च यद्व्यलीक।
आराधयाऽधोऽक्षज पादपद्मं यदीच्छसेऽध्यासन मुत्तमो यथा॥

२०—यस्याङ्घ्रि पद्म परिचर्य विश्व विभावनायात्तगुणाभिपत्तेः।
अजोऽध्यतिष्ठत्खलु पारमेष्ठ्य पद जितात्मश्वसनाभिवन्द्य॥

२१—तथा मनुर्वो भगवान्पितामहो यमेकमत्या पुरुदक्षिणैर्मखैः।
इष्ट्वाऽभिपेदे दुरवापमन्यतो भौमं सुखं दिव्य मथापवर्ग्यं॥

२२—तमेव वत्साश्रय भृत्यवत्सलं मुमुक्षुभिर्मृग्य पदाब्जपद्धतिं।
अनन्य भावे निजधर्म भाविते मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुष॥

२३—नान्य तत' पद्मपलाश लोचनाद् दुःखच्छिद ते मृगयामि कचन।
यो मृग्यते हस्तगृहीत पद्मया श्रियेतरैरंग विमृग्यमाणया॥

मैत्रेयउवाच—

२४—एव स जल्पितं मातुराकर्ण्यार्थागमं वचः। सनियम्यात्मनात्मानं निश्चक्राम पितुः पुरात्॥

ध्रुव ने स्वयं ही अपने को शान्त किया और वह पिता के नगर से बाहर निकला। नारद यह सुनकर और ध्रुव का अभिप्राय जानकर विस्मित हुए। पापों का नाश करने वाले अपने हाथों से ध्रुव का मस्तक छूकर उन्होंने कहा—अपने मान-भंग को सहन न करने वाले क्षत्रियों का कैसा तेज है कि बालक होने पर भी यह ध्रुव माता के दुर्वचनों को हृदय में धारण करता है अर्थात् विमाता के तीखे वचनों से क्षुभित होता है। ॥ २५, २६ ॥

नारद बोले—बेटा! तुम अभी बालक हो। तुम्हारी खेलने-खाने की अवस्था है। तुम्हें अपमान और सम्मान की चिन्ता क्या है? और यदि मानापमान का ख्याल हो भी तो अपने असन्तोष और मोह के कारण होता है, क्योंकि मनुष्य अपने कर्मों से ही सुख-दुःख और मान-अपमान आदि प्राप्त करता है। हे पुत्र! बुद्धिमान् पुरुष को ईश्वर की गति देखकर अर्थात् भगवान् की कृपा के बिना कोई कार्य सफल नहीं होता। यह जानकर, भगवान् जितना दे अर्थात् जिस अवस्था मे रखें, उसीमे सन्तोष करना चाहिये। माता के बतलाये हुए उपाय से तुम जिन्हे प्रसन्न करना चाहते हो, मेरी समझ से मनुष्यों के लिये उन्हे प्रसन्न करना बहुत कठिन है। क्योंकि अनेक जन्मों तक निःसङ्ग रहकर, तीव्रयोग और समाधि के द्वारा ढूँढ़ते रहने पर भी योगिगण तक उनकी पदवी को नहीं पाते अर्थात् जब योगियों तक की वहाँ पहुँच नहीं है तो तुम्हारी क्या गणना? अतएव यह तुम्हारा हठ निष्फल है। इसे छोड़ दो। जब बुढ़ापा आ जाय, तब इसके लिए प्रयत्न करना। दैव दुःख देता है तो पाप क्षीण होते हैं और सुख देता है तो पुण्य; ऐसा समझकर जो लोग सदा अपने को सन्तुष्ट रखते है, इन्हे मोक्ष की प्राप्ति होती है। जो अपने से अधिक गुणी हो, उसे प्रसन्न रखना चाहिये, जो छोटा हो, उसपर दया करनी चाहिये और जो समान

२५—नारदस्तदुपाकर्ण्य ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितं। स्पृष्ट्वा मूर्धन्यघघ्नेन पाणिना प्राह विस्मितः ॥

२६—अहोतेजः क्षत्रियाणां मानभंग ममृष्यतां। बालोऽप्ययं हृदा धत्ते यत्समातु रसद्वचः ॥

नारदउवाच—

२७—नाधुनाऽप्यवमानं ते सन्मानं वापि पुत्रक ॥लक्षयाम' कुमारस्य सक्तस्य क्रीडनादिषु ॥

२८—विकल्पे विद्यमानेऽपि नह्यसन्तोष हेतवः। पुंसो मोहमृते भिन्ना यल्लोके निजकर्मभिः ॥

२९—परितुष्येत्ततस्तात तावन्मात्रेण पूरुषः। दैवोपसादितं यावद्वीक्ष्येश्वरगतिं बुधः ॥

३०—अथ मात्रोपदिष्टेन योगेनावरुरुत्ससि। यत्प्रसादं सवै पुंसां दुराराध्यो मतो मम ॥

३१—मुनयः पदवीं यस्य निःसङ्गेनोरुजन्मभिः। नविदुर्मृगयतोऽपि तीव्रयोग समाधिना ॥

३२—अतो निवर्ततामेष निर्बन्धस्तव निष्फलः। यतिष्यति भवान्काले श्रेयसां समुपस्थिते ॥

३३—यस्य यद्दैव विहितं सतेन सुखदुःखयोः। आत्मानं तोषयन्देही तमसः पारमृच्छति ॥

हैं, उनसे मैत्री रखनी चाहिए। ऐसा करने वाले को कभी कोई दुःख पराभूत नहीं करता अर्थात् उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता ॥ २७, ३४ ॥

ध्रुव बोले—जो मेरे-जैसों के लिए दुर्दर्श हैं अर्थात् जिनके दर्शन हमारे समान लोगों को सहज ही प्राप्त नहीं होता, आपने ऐसे सुख दु ख से विक्षिप्त हुए लोगों के लिए शान्ति का मार्ग बतलाया है। किन्तु मेरे अविनयी हृदय मे आपकी बातें नहीं जमतीं, अर्थात् आपकी बातों को मेरा हृदय स्वीकार नहीं करता, क्योंकि मैं कठोर क्षत्रियधर्म का पालन करने वाला हूँ और सुरुचि के दुर्वचनरूपी बाणों से मेरा हृदय बिंधा हुआ है। ब्रह्मन्! त्रैलोक्य मे उत्तम जिस पद को मेरे पूर्वजों अथवा अन्य किसीने नहीं पाया है, मैं उसीको पाने की इच्छा रखता हूँ, आप उसे प्राप्त करने का मार्ग मुझे बतावे। आप भगवान् ब्रह्मा के पुत्र हैं और संसार के कल्याण के लिए; वीणा बजाते हुए सर्वत्र घूमते रहते हैं, जिस प्रकार सूर्य घूमते हैं अर्थात् सूर्य के समान आपकी सर्वत्रगति है ॥ ३५, ३८ ॥

मैत्रेय बोले—ध्रुव के ऐसा कहने पर भगवान् नारद प्रसन्न हुए और उन्होंने कृपा करके बालक ध्रुव को उत्तर मे शुभ उपदेश दिया ॥ ३९ ॥

नारद बोले—तुम्हारी माता ने तुम्हें जो कहा है, वह तुम्हारे कल्याण का मार्ग है, अतः तुम एकाग्रचित्त होकर भगवान् वासुदेव का भजन करो। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अथवा अन्य किसी अभिप्राय की सिद्धि केवल भगवान् के चरणों की सेवा से ही होती है। हे तात! तुम्हारा कल्याण हो। तुम यमुना के तट पर जाओ, जहाँ पुण्यस्थान मधुवन है और जहाँ भगवान् सदा व्याप्त रहते हैं। कालिन्दी के उस पवित्र जल में त्रिकाल स्नान करके, सन्ध्यो-

---

३४—गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात्। मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते ॥

ध्रुवउवाच—

३५—सोऽयं शमो भगवता सुखदुःखहतात्मनाम्। दर्शितः कृपया पुंसां दुर्दर्शोऽस्मद्विधैस्तु यः ॥

३६—अथापि मेऽविनीतस्य क्षात्रं घोरमुपेयुषः। सुरुच्या दुर्वचोबाणैर्न भिन्ने श्रयते हृदि ॥

३७—पदं त्रिभुवनोत्कृष्टं जिगीषोः साधु वर्त्म मे। ब्रूह्यस्मत्पितृभिर्ब्रह्मन्नन्यैरप्यनधिष्ठितम् ॥

३८—नूनं भवान्भगवतो योऽङ्गजः परमेष्ठिनः। वितुदन्नटते वीणां हिताय जगतोऽर्कवत् ॥

मैत्रेयउवाच—

३९—इत्युदाहृतमाकर्ण्य भगवान्नारदस्तदा। प्रीतः प्रत्याह तं बालं सद्वाक्यमनुकम्पया ॥

नारदउवाच—

४०—जनन्याभिहितः पन्थाः स वै निःश्रेयसस्य ते। भगवान्वासुदेवस्तं भज तत्प्रवणात्मना ॥

४१—धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः। एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम् ॥

ध्रुव और देवर्षि नारद

जनन्याभिहितः पन्थाः स वै निःश्रेयसस्य ते। भगवान् वासुदेवस्तं भज तत्प्रवणात्मना ॥

(भागवत ४ । ८ । ४०)

GITA PRESS GORAKHPUR

पासनादि नित्य-कर्म के अनन्तर; आसन मार कर बैठना। पूरक, कुम्भक और रेचक, इन तीन प्रकार के प्राणायामों के द्वारा प्राण, इन्द्रिय और मन के विकारों को शनैः शनैः दूर करके हृदय से गुरुओं के गुरु भगवान् का ध्यान करना। प्रसन्न होने मे तत्पर, सदा प्रसन्न मुख और दृष्टि वाले सुन्दर नासिका, भौं और कपोल वाले, सब देवतासों मे सुन्दर, तरुण, रमणीय अङ्ग वाले, अरुण ओष्ठ और आँखे धारण करने वाले, भक्तों को आश्रय देने वाले, सुखकारी, रक्षा करने वाले, करुणा के समुद्र, श्रीवत्स का चिन्ह धारण करने वाले, बादल के समान श्यामवर्ण वाले, वनमाला धारण करने वाले, शंख-चक्र-गदा और पद्म से सुशोभित चार भुजाओं वाले, किरीट-कुण्डल-केयूर (मोर) और वलय से युक्त, ग्रीवा में कौस्तुभमणि का आभूषण धारण करने वाले, पीला कौशेय (रेशमीवस्त्र) पहनने वाले, करधनी पहनने वाले, सुवर्ण के नूपुर से शोभित होने वाले, अत्यन्त दर्शनीय, शान्त, नयन-मन को प्रसन्न करने वाले, अपने भक्तों के हृदय-कमल के मध्यभाग को, नखमणियों से शोभित होने वाले पैर के द्वारा दबाकर आत्मा मे स्थित रहने वाले अर्थात् अपने भक्तों के अन्तःकरण में निवास करने वाले, हंसते हुए, प्रेमसहित देखते हुए और वर देने वालो मे श्रेष्ठ भगवान् का स्थिर और एकाग्र चित्त से ध्यान करना। इस प्रकार भगवान् के मङ्गलमय रूप का ध्यान करता हुआ मन परम निवृत्ति को प्राप्त करता है और उससे निवृत्त नहीं होता अर्थात् हटता नहीं। हे राजपुत्र! एक अत्यन्त गुप्त मन्त्र मुझसे सुनो, जिसका सात रात्रियों तक जप करने वाला मनुष्य देवताओं को देखने लगता है अर्थात् उसे देवताओं के दर्शन सुलभ हो जाते हैं। 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्र के द्वारा देश-काल के विभाग को जानने

४२—तत्तात गच्छ भद्र ते यमुनायास्तटं शुचि। पुण्य मधुवन यत्र साम्निध्य नित्यदाहरेः ॥
४३—स्नात्वाऽनुसवन तस्मिन्कालिंद्याः सलिले शिवे। कृत्वोचितानि निवसन्नात्मनः कल्पितासनः॥
४४—प्राणायामेन त्रिवृता प्राणेंद्रिय मनोमल। शनैर्व्युदस्याभिध्यायेन्मनसा गुरुणागुरुं॥
४५—प्रसादाभिमुख शश्वत्प्रसन्न वदने क्षणा। सुनास सुभ्रु वं चारु कपोल सुरसुंदरं॥
४६—तरुण रमणीयाग मरुणोष्ठेक्षणाधर। प्रणताश्रयणा नृम्णा शरण्यं करुणार्णवं॥
४७—श्रीवत्साक घनश्याम पुरुष वनमालिन। शख चक्र गदा पद्मै रभिव्यक्त चतुर्भुज॥
४८—किरिटिन कुडलिनं केयूर वनमालिनं। कौस्तुभाभरण ग्रीव पीतकौशेय वाससं॥
४९—काची कलाप पर्यस्त लसत्काचन नूपुर। दर्शनीयतम शातं मनोनयन वर्धन॥
५०—पद्भ्या नखमणि श्रेण्या विलसद्भ्या समर्चता। हृत्पद्म कर्णिकाधिष्ण्य माक्रम्यात्मन्यवस्थित॥
५१—स्मयमान मभिध्यायेत् सानुरागावलोकनं। नियते नैकभूतेन मनसा वरदर्षभ॥
५२—एव भगवतो रूपं सुभद्र ध्यायतोमनः। निवृत्या परया तूर्णं सपन्न न निवर्त्तते॥
५३—जप्यश्च परमो गुह्यः श्रूयतां मे नृपात्मज। यं सप्तरात्र प्रपठन् पुमान्पश्यति खेचरान्॥

वाले मनुष्य को, पवित्र जल, माला और वन्य फल-मूलादि, उत्तम दूब, वस्त्र तथा तुलसी आदि भगवान् के प्रिय विविध प्रकार के द्रव्यों से उनकी द्रव्यमयी पूजा करनी चाहिए। द्रव्य-मयी अर्थात् शिलादिनिर्मित प्रतिमा की पूजा करने के अनन्तर पृथ्वी और जल आदि में भी उनकी पूजा करनी चाहिये। उस समय मनुष्य को सन्तोषी, मननशील, शान्त, मितभाषी होना चाहिए। तथा थोड़े परिमाण में वन्य कन्द-मूल आदि का आहार करना चाहिये। अपनी अचिन्तनीय माया के द्वारा इच्छानुरूप अवतार धारण करके भगवान् जो-जो कार्य करेंगे, उसे हृदयङ्गम करके ध्यान करना चाहिए। मन्त्रमूर्ति भगवान् की जितनी पूजाएँ पहले बतलायी गयी हैं, उन सबको 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' इस बारह अक्षर के मंत्र से करना चाहिए। इस प्रकार अंतःकरण से, शरीर, मन और वचन के द्वारा, भक्तिपूर्वक भगवान् की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार सम्यक् रूप से भजन करने वाले निष्कपट मनुष्य को, भाववर्धन भगवान् धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप कल्याण देते हैं। प्रभूत भक्ति-योग के द्वारा, विषयों में वैराग्य रखते हुए, मुक्ति की इच्छा से भगवान् का निरन्तर भजन करना चाहिए॥ ४०, ६१॥

नारद के ऐसा कहने पर राजा के पुत्र ध्रुव ने उनकी प्रदक्षिणा की और उन्हें प्रणाम करके पवित्र मधुवन में गये, जो भगवान् के चरणों से शोभित था। ध्रुव के तपोवन में जाने पर नारद नगर में आये। राजा उत्तानपाद ने उनकी पूजा की। अनतर सुख से बैठकर उन्होंने राजा से कहा॥ ६२, ६३॥

ओं नमो भगवने वासुदेवाय—

५४—मन्त्रेणानेत देवस्य कुर्याद् द्रव्यमयीं बुधः। सपर्यां विविधैर्द्रव्यैर्देश काल विभागवित्॥
५५—सलिलैः शुचिभिर्माल्यैर्वन्यैर्मूल फलादिभि। शस्ताङ्कुरांशुकैश्चार्चेत्तुलस्या प्रियया प्रभु॥
५६—लब्ध्वा द्रव्यमयीमर्चां क्षित्यम्बादिषु चार्चयेत्। आभृतात्मा मुनि' शांतो यतवाङ्मित वन्यभुक्॥
५७—स्वेच्छाऽवतार चरितै रचिंत्य निजमायया। करिष्यत्युत्तमश्लोक स्तद्ध्यायेद् हृदयगत॥
५८—परिचर्या भगवतो यावत्यः पूर्वसेविता.। तामन्त्र हृदयेनैव प्रयु ञ्ज्यान्मन्त्र मूर्तये॥
५९—एवं कायेन मनसा वचसा च मनोगतं। परिचर्यमाणो भगवान्भक्तिमत्परिचर्यया॥
६०—पु सामसायिना सम्यग्भजतां भाववर्धन.। श्रेयो दिशत्यभिमत यद्धर्मादिषुदेहिना॥
६१—विरक्तश्चेंद्रियरतौ भक्तियोगेन भूयसा। त निरंतरभावेन भजेताद्धाविमुक्तये॥
६२—इत्युक्तस्त परिक्रम्य प्रणम्य च नृपार्भकः। ययौ मधुवन पुण्य हरेश्चरण चर्चितम॥
६३—तपोवनं गते तस्मिन्प्रविष्टोऽतः पुर मुनि.। अर्हितार्हणको राजा सुखासीन उवाचव॥

नारद बोले—राजान्! आपका मुँह सूखा हुआ क्यों है? आप देर से क्या सोच रहे हैं? धर्म, अर्थ अथवा काम मे किसी प्रकार का विघ्न तो नहीं पड़ा? ॥ ६४ ॥

राजा बोले—महान्! मैं स्त्रैण और निर्दयी हूँ। मैंने स्त्री के वश होकर अपने महाविद्वान् पाँच वर्ष के पुत्र को उसकी माँ के साथ घर से निकाल दिया है। वन में थककर सोये हुए, क्षुधित और जिसका मुख-कमल मुरझा गया है, ऐसे मेरे अनाथ बच्चे को भेड़िये कहीं खा न जायँ! हाय! मेरा दौरात्म्य तो देखिये कि स्त्री के वश होकर मैंने अपने बच्चे का आदर नहीं किया, जो प्रेम से मेरी गोद मे चढ़ रहा था! ॥ ६५, ६७ ॥

नारद बोले—हे राजा! जिसकी कीर्ति जगत् मे व्याप्त हो रही है, ऐसे अपने पुत्र का प्रभाव जाने बिना उसके लिए शोक मत करो। उसे भगवान् ने अपना लिया है। लोकपालों के द्वारा भी सिद्ध न होने वाला अत्यन्त दुष्कर कार्य करके, तुम्हारे यश को बढ़ाता हुआ ध्रुव शीघ्रही वापस आवेगा ॥ ६८, ६९ ॥

मैत्रेय बोले—राजा ने नारद के द्वारा कही हुई बातें सुनीं। राज्य-लक्ष्मी की ओर से उदासीन होकर वे पुत्र का ही चिन्तन करने लगे। उधर मधुवन मे पहुंच कर ध्रुव ने स्नान किया और उस रात को उपवास किया। पुनः सावधानी के साथ नारद के आदेश के अनुसार भगवान् की पूजा करते हुए, शरीर को स्थिर करने के लिये, तीन-तीन रात्रि के अन्तर से कैथ और बैर खाकर ध्रुव ने पहला महीना व्यतीत किया। दूसरे महीने में छठवे-छठवे दिन सूखे हुए तृण और पत्तों का आहार करके ध्रुव ने भगवान् की पूजा की। तीसरे महीने मे

नारदउवाच—

६४—राजन् किंध्यायसे दीर्घं मुखेन परिशुष्यता। किंवा नरिष्यते कामो धर्मो वाऽर्थेन संयुतः॥

राजोवाच—

६५—सुतो मे बालको ब्रह्मन् स्त्रैणेना करुणात्मना। निर्वासितः पञ्चवर्षः सहमात्रा महान्कविः॥

६६—अप्यनाथ वने ब्रह्मन्मास्मादंत्यर्भकं वृकाः। श्रात शयान क्षुधित परिम्लान मुखाम्बुजं॥

६७—अहो मे बतदौरात्म्यं स्त्रीजितस्योपधारय। योऽङ्कं प्रेम्णा रुरुक्षत नाभ्यनंद मसत्तमः॥

नारदउवाच—

६८—मामा शुचः स्वतनय देवगुप्त विशांपते। तत्प्रभाव मविज्ञाय प्रावृङ्क्ते यद्यशो जगत्॥

६९—सुदुष्करं कर्म कृत्वा लोकपालैरपि प्रभुः। एष्यत्यचिरतो राजन् यशो विपुलयंस्तव॥

मैत्रेयउवाच—

७०—इति देवर्षिणा प्रोक्तं विश्रुत्य जगतीपतिः। राजलक्ष्मी मनादृत्य पुत्रमेवान्वचिंतयन्॥

७१—तत्राभिषिक्तः प्रयतस्तामुपोष्य विभावरीं। समाहितः पर्यचरदृष्यादेशेन पूरुषं॥

॰वे-॰वे दिन सिर्फ जल पीकर एकाग्र चित्त से उसने भगवान् की उपासना की। ध्रुव ने बारहवें-बारहवें दिन केवल वायु पीकर और प्राण को जीतकर भगवान् की पूजा करते हुये चौथा महीना बिताया। पाँचवाँ महीना आने पर श्वास को जीतकर ब्रह्म का ध्यान करता हुआ ध्रुव ठूँठ हुए वृक्ष की तरह एक पैर पर खड़ा रहा। समस्त विषयों और इन्द्रियों के निवासस्थान मन को चारों ओर से खींचकर ध्रुव ने भगवान् का ध्यान किया, उस समय भगवान् के अतिरिक्त उसे और कुछ नहीं दीख पड़ने लगा। इस प्रकार ध्रुव के महत्तत्व आदि के आधार और प्रकृति-पुरुष के नियन्ता भगवान् का ध्यान करने से तीनों लोक काँपने लगे। जब वह राजपुत्र एक पैर पर खड़ा हुआ तो उसके अँगूठे से दबी हुई धरती क्षण क्षण पर दहने-बाएँ झुकने लगी जैसे हाथी के खड़े होने से नाव झुकने लगती है। प्राण और प्राण के द्वारों को आत्मा में एकत्र करके ध्रुव अभेद-बुद्धि से सर्वात्मक भगवान् का ध्यान करने लगे। तब श्वास न ले सकने के कारण अत्यन्त पीड़ित हुए सब लोक, लोकपालों के सहित भगवान् की शरण गये॥ ७२, ८०॥

देवता बोले—भगवन्! जिसमें समस्त प्राणी निवास करते हैं ऐसे इस अखिल ब्रह्माण्ड का श्वास रुकते हुए हमने कभी नहीं जाना अर्थात् यह हमें नहीं मालूम कि कभी समस्त संसार का इस प्रकार श्वासावरोध हो गया हो। अतः आप इस कष्ट से हमलोगों का छुटकारा

७२—त्रिरात्रान्ते त्रिरात्रान्ते कपित्थ बदराशनः। आत्मवृत्त्यनुसारेण मास निन्येऽर्चयन्हरिम्॥

७३—द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठेऽर्भको दिने। तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयद्विभुम्॥

७४—तृतीयं चानयन्मासं नवमे नवमेऽहनि। अब्भक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत्समाधिना॥

७५—चतुर्थमपि वै मासं द्वादशे द्वादशेऽहनि। वायुभक्षो जितश्वासो ध्यायन्देवमधारयत्॥

७६—पञ्चमे मास्यनुप्राप्ते जितश्वासो नृपात्मजः। ध्यायन्ब्रह्म पदैकेन तस्थौ स्थाणुरिवाचलः॥

७७—सर्वतो मन आकृष्य हृदि भूतेन्द्रियाशयम्। ध्यायन्भगवतो रूपं नाद्राक्षीत्किंचनापरम्॥

७८—आधारं महदादीनां प्रधानपुरुषेश्वरम्। ब्रह्म धारयमाणस्य त्रयो लोकाश्चकम्पिरे॥

७९—यदैकपादेन स पार्थिवार्भकस्तस्थौ तदङ्गुष्ठनिपीडिता मही।

ननाम तत्रार्धमिभेन्द्रधिष्ठिता तरीव सव्येतरतः पदे पदे॥

८०—तस्मिन्नभिध्यायति विश्वमात्मनो द्वारं निरुध्यासुमनन्यया धिया।

लोका निरुच्छ्वासनिपीडिता भृशं सलोकपालाः शरणं ययुर्हरिम्॥

देवा ऊचुः—

८१—नैवं विदामो भगवन्प्राणरोधं चराचरस्याखिलसत्त्वधाम्नः।

विधेहि तस्मादिमोक्षमस्मान्प्रपन्नांस्त्वां शरणं शरण्यम्॥ ८

करावे । आप शरण आये हुओं की रक्षा करते हैं, यही जानकर हमलोग आपकी शरण आये हैं ॥ ८१ ॥

भगवान् बोले—डरो मत। उत्तानपाद के बालक ध्रुव ने मेरे विश्वरूप में एकता पायी है, इसीसे तुम लोगों का श्वास रुक गया था। मैं उस बालक को इस कठोर व्रत से निवृत्त करता हूँ। आप-लोग अपने-अपने स्थान को जाइये ॥ ८२ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का आठवाँ अध्याय समाप्त

—*—

नवाँ अध्याय

वर पाकर ध्रुव का घर लौटना

मैत्रेय बोले—जिनका भय दूर हो गया है, ऐसे देवता विष्णु को नमस्कार करके स्वर्ग-लोक में गये। अनन्तर अपने भक्त को देखने की इच्छा से भगवान् भी गरुड़ पर बैठकर मधुवन गये। योग की दृढ़ता से तीव्र हुई बुद्धि के द्वारा ध्रुव अपने हृदय-कमल के सम्पुट में

श्रीभगवानुवाच—

८२—मा भैष्ट बाल तपसो दुरत्ययान्निवर्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम ।
यतो हि वः प्राणनिरोध आसीदौत्तानपादिर्मयि संगतात्मा ॥

इ० भा० म० च० ध्रुवचरिते अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

—:o:—

मैत्रेयउवाच—

१—त एवमुत्सन्नभया उरुक्रमे कृतावनामाः प्रययुस्त्रिविष्टपं ।
सहस्रशीर्षाऽपि ततो गरुत्मता मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः ॥

बिजली की प्रभा के समान प्रकाशित होने वाले भगवान् का ध्यान कर रहे थे। सहसा ध्यान की वह मूर्ति हृदय से तिरोहित हो गयी। यह देखकर ध्रुव ने आँखें खोल दीं। उस समय उन्होंने भगवान् का वही रूप देखा, जिसका वे ध्यान कर रहे थे। भगवान् को देखकर ध्रुव घबरा गये। आँखों से देखकर मानो भगवान् के रूपरस को पीते, मुँह से उनका चुम्बन करते और भुजाओं से आलिङ्गन करते हुए, ध्रुव ने अपने शरीर को भूमि पर दण्डवत् नमाकर भगवान् को प्रणाम किया। ध्रुव के और अन्य सब प्राणियों के हृदय में रहने वाले भगवान् ने जाना कि ध्रुव उनकी स्तुति करना चाहता है, पर उसे स्तुति करनी आती नहीं। अतः हाथ जोड़कर खड़े हुए ध्रुव के गालों को कृपा करके भगवान् ने ब्रह्ममय अपने शङ्ख के द्वारा स्पर्श किया अर्थात घट-घटवासी होने के कारण, हाथ जोड़कर खड़े हुए बालक ध्रुव को चुपचाप खड़े देखकर भगवान जान गये कि इच्छा होते हुये भी, अज्ञान के कारण, ध्रुव उनकी स्तुति नहीं कर पाता अतः कृपा करके उन्होंने अपने शङ्ख को उसके गालों से छुआकर उसे उत्तम ज्ञान दिया। इससे शीघ्रही उन्हें वेदरूप वाणी प्राप्त हुई, उनके मनमें ईश्वर और जीव का विवेक उत्पन्न आ। शीघ्रही वे भक्तिभाव से उन भगवान् की स्तुति करने लगे जिनकी महान कीर्ति सर्वत्र व्याप्त है ॥ १, ५ ॥

ध्रुव बोले—समस्त शक्तियों को धारण करने वाले जिस आपने हृदय में प्रवेश करके, मूक हुई मेरी इस वाणी को तथा हाथ, पैर, कान, त्वचा और प्राण आदि को अपनी चित् शक्ति के द्वारा सञ्जीवित किया है, उस परमपुरुष आपको मैं नमस्कार करता हूँ। हे भगवन्! आप

२—सवै धियायोगविपाक तीव्रया हृत्पद्मकोशे स्फुरितं तडित्प्रभं।
तिरोहितं सहसैवोपलक्ष्य बहिःस्थितं तदवस्थं ददर्श ॥

३—तद्दर्शनेनागत साध्वसः क्षिता ववन्दताग विनमय्य दण्डवत् ॥
दृग्भ्यां प्रपश्यन्प्रपिबन्निवार्भकश्चुम्बन्निवास्येन भुजैरिवाश्लिषन् ॥

४—स तं विवक्षत मतद्विदं हरिर्ज्ञात्वाऽस्य सर्वस्य च हृद्यवस्थितः ॥
कृताञ्जलिं ब्रह्ममयेन कंबुना पस्पर्श बालं कृपया कपोले ॥

५—सवै तदैव प्रतिपादितां गिरं दैवीं परिज्ञात परात्मनिर्णय. ॥
तं भक्तिभावोऽभ्यगृणाद सत्वरं परिश्रुतो रुश्रवसं ध्रुवक्षितिः ॥

ध्रुवउवाच—

६—योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां सञ्जीवयत्यखिल शक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्तचरण श्रवणत्वगादीन्प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यं ॥

एक ही है किंतु अपनी त्रिगुणात्मक मायारूप शक्ति के द्वारा आप महत्तत्व आदि समस्त जगत को उत्पन्न करते तथा उसके इन्द्रियरूप माया आदि मे प्रवेश करके भिन्न-भिन्न रूप में दीख पड़ते हैं, जैसे अनेक लकड़ियों मे लगी हुई एक ही आग अलग-अलग मालूम पड़ती है। हे नाथ! आपके शरण आये हुए ब्रह्मा ने आपही के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके सोकर उठे हुए के समान इस संसार को देखा था। हे आर्त्तबन्धु! मुक्त हुए लोगों को भी आपके चरणों में स्थान मिलता है, अतः आपके उपकारों को जानने वाले आपको कैसे भूल सकते हैं? जन्म मरण से मुक्त करने वाले आपको जो लोग विषयादि इच्छाओं से भजते हैं, उनकी बुद्धि को सचमुच ही आपकी माया ने वंचित कर रखा है। कल्पवृक्ष के तुल्य आपकी पूजा करके, वे, शव के समान शरीर से भोगने योग्य विषय आदि की इच्छा रखते हैं, जो नरक मे भी मिलता है। तात्पर्य यह कि विषय-सुख तो नरक में भी प्राप्त होता है, अतः जो लोग आपका भजन करके उन विषयों की कामना करते है, वे आपकी माया से ठगे गये हैं—उन्हे तो एकमात्र आपकी कृपा की ही आकांक्षा होनी चाहिए। मनुष्यों को आपके चरण-कमलों के ध्यान तथा आपके भक्तों की कथा सुनने से जो तृप्ति होती है, वह आनन्दरूप ब्रह्म में भी नहीं मिलती, फिर काल के द्वारा नष्ट होने वाले स्वर्ग-सुख मे कैसे मिल सकती है, क्योंकि स्वर्ग का सुख पुण्य-फल-भोग काल से नियमित है। उसके समाप्त होने पर स्वर्ग सुख भी समाप्त हो जाता है। हे अनन्त! शुद्ध हृदय वाले और आपकी सतत भक्ति करने वाले महात्मा पुरुषों का सत्सङ्ग मुझे प्राप्त हो, जिसके लिए आपके गुणों की कथा का अमृत पीकर

७—एकस्त्वमेव भगवन्निदमात्म शक्त्या मायाख्ययोरुगुणया महदाद्य शेषं।
सृष्ट्वाऽनुविश्य पुरुषस्तदसद्गुणेषु नानेवदारुषु विभावसुवद्विभासि॥

८—त्वद्दत्तयावयुनयेदमचष्ट विश्वं सुप्तप्रबुद्ध इव नाथ भवत्प्रपन्नः॥
तस्यापवर्ग्य शरणं तव पादमूलं विस्मर्यते कृतविदा कथमार्तबन्धो॥

९—नूनं विमुष्ट मतयस्तव मायया ते ये त्वामवाप्य विमोक्षण मन्यहेतोः।
अर्चन्ति कल्पतरु कुणपोपभोग्य मिच्छन्ति यत्स्पर्शजं निरयेऽपिनॄणां॥

१०—यानिर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्म ध्यानाद्भवज्जन कथाश्रवणेन वास्यात्।
सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपिनाथ माभूत्किंत्वंतकासि लुलितात्पततां विमानात्॥

११—भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयिमे प्रसंगो भूयादनंत महताममलाशयानां।
येनांजसोल्बणमुरु व्यसनं भयाब्धिं नेष्ये भवद्गुण कथाऽमृत पानमत्तः॥

१२—तेन स्मरंत्यतितरां प्रियमीश मर्त्यं येचान्वदः सुत सुहृद् गृह वित्त दाराः।
येत्वब्जनाभ भवदीय पदारविंद सौगंध्यलुब्ध हृदयेषु कृतप्रसंगाः॥

मत्त हुआ मैं, अनन्त कष्टों से भरे हुए भयङ्कर, संसार-समुद्र का सहज ही पार पा सकूँ। हे ईश! आपके चरण-कमलों की सुगन्धि से जिनका हृदय लुब्ध हो गया है, ऐसे महत् पुरुषों का सत्सङ्ग जो लोग करते हैं, हे कमलनाभि! उन्हें अत्यन्त प्रिय इस शरीर और इसका अनुगमन करने वाले पुत्र मित्र, घर, धन और स्त्री की याद भी नहीं आती। हे अजन्मा! पशु-पक्षी, वृक्ष, पर्वत, सर्प, देव-दैत्य और मनुष्य आदि से व्याप्त, महत्तत्वादि अनेक कारणों से युक्त तथा अन्य सद्-असद् वस्तुओं से विशिष्ट आपके इस विराट् रूप को मैं जानता हूँ। किन्तु जिसमें शब्द व्यापार नहीं है, ऐसे आपके परमरूप का मैं नहीं जानता। प्रलयकाल में समस्त संसार को उदर में ग्रहण करके जो पुरुष योगनिद्रा में शेष शय्या पर सोते हैं तथा जिनकी नाभिरूप समुद्र से उत्पन्न हुए सुवर्ण कमल के कोष से तेजस्वी ब्रह्मा प्रकट होते हैं, उन आपको मैं नमस्कार करता हूँ। नित्यमुक्त, शुद्ध ज्ञानस्वरूप, आत्मा, अविनाशी, आदिपुरुष, भगवान् और तीनों गुणों के अधिष्ठाता आप जीव से विभिन्न हैं, क्योंकि अखण्डित चित् शक्ति के द्वारा, द्रष्टा होकर बुद्धि की उन सभी अवस्थाओं को आप जानते हैं और पालन करने के लिए उन्हीं आपने विष्णु का रूप धारण किया है। जिससे परस्पर विरोधिनी विद्या और अविद्या आदि विविध शक्तियाँ क्रमशः उत्पन्न होती हैं, उन विश्व को उत्पन्न करने वाले, एक, अनन्त, आदि, आनन्दमूर्ति और अविकार आपकी शरण में मैं आता हूँ। हे भगवन्! आप पुरुषार्थ-रूप हैं। जो लोग निष्काम भाव से आपकी उपासना करते हैं, उनकी उपासना का सच्चा फल आपके चरण-कमल ही हैं अर्थात् आपके चरण-कमलों की प्राप्ति ही उपासना का सच्चा फल है, अन्य विषयादिक सिद्धियाँ नहीं। आप अनुग्रह से कातर होकर हमारे जैसे दीनों का रक्षा करते हैं, जैसे तत्काल ब्याथी हुई गाय अपने बछड़े की रक्षा करती है॥ १७॥

१३—तिर्यङ् नग द्विज सरीसृप देव दैत्य मर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषं ।
रूपं स्थविष्ठमज ते महदाद्यनेकं नातः परं परम वेद्मि न यत्र वादः ॥

१४—कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णन् शेते पुमान्स्वदृगनंतसखस्तदङ्के ।
यन्नाभि सिंधुरुह काञ्चनलोकपद्म गर्भेद्युमान्भगवते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥

१५—त्वं नित्यमुक्त परिशुद्ध विबुद्ध आत्मा कूटस्थ आदिपुरुषो भगवांस्त्र्यधीशः ।
यद् बुद्ध्यवस्थितिमखण्डितया स्वदृष्ट्या द्रष्टा स्थितावधिमखो व्यतिरिक्त आस्से ॥

१६—यस्मिन्विरुद्धगतयो ह्यनिशं पतन्ति विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात् ।
तद् ब्रह्म विश्वभव मेकमनन्त माद्य मानन्दमात्र मविकारमहं प्रपद्ये ॥

१७—सत्याशिषो हि भगवंस्तव पादपद्म माशीस्तथाऽनुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः ।
अप्येवमार्य भगवान्परिपाति दीनान्वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥

मैत्रेय बोले—इस प्रकार उत्तम सङ्कल्प वाले, बुद्धिमान् ध्रुव ने भगवान् की स्तुति की। भगवान् अपने दासों पर कृपा रखने वाले हैं। उन्होंने ध्रुव की प्रशंसा की और यह बोले ॥१८॥

श्रीभगवान बोले—हे राजपुत्र! तुम्हारे हृदय का सङ्कल्प मैं जानता हूँ। सुव्रत! यद्यपि उसे प्राप्त करना बड़ा कठिन है, फिर भी मैं तुम्हें तुम्हारा इच्छित फल देता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। भद्र! जिस स्थान को दूसरों ने नहीं पाया है जो प्रकाशमान है और जिसकी स्थिति अविचल है, वह स्थान मैं तुम्हें देता हूँ। जिस प्रकार मड़नी करता हुआ बैल मेरु की परिक्रमा करता है, उसी प्रकार ग्रह-नक्षत्र और तारागण उस स्थान के चारों ओर मण्डल बाँधे रहते हैं तथा धर्म अग्नि, कश्यप, इंद्र और ताराओं के साथ सप्तर्षिगण उसकी प्रदक्षिणा करते हुए घूमा करते है तथा प्रलयकाल मे तीन लोकों का नाश हो जाने पर भी उसका नाश नहीं होता। राज्य देकर पिता के वन में चले जाने पर तुम छत्तीस हजार वर्षों तक धर्म और मर्यादा का पालन करते हुए पृथ्वी की रक्षा करना। तुम्हारा भाई उत्तम मृगया के लिए वन मे जाकर मृत्यु को प्राप्त होगा और तुम्हारी सौतेली माँ उसे ढूढ़ने के लिये वन मे जायगी तथा वहाँ दावाग्नि मे प्रवेश करेगी। प्रभूत दक्षिणा से युक्त यज्ञों के द्वारा यज्ञहृदय मेरी पूजा करके और संसार के सच्चे सुखों का भोग करने के अनन्तर, अन्तिम समय मे मुझे स्मरण करना। तदनन्तर तुम मेरे स्थान को प्राप्त करोगे, जिसे समस्त लोक नमस्कार करते हैं और जो सप्तर्षियों के स्थान से भी ऊँचा है तथा जहाँ गये हुए मनुष्य को पुनः लौटना नहीं पडता पड़ता अर्थात् पुनः उसे भव-बन्धन मे नहीं पड़ना पड़ता ॥ १९,२५ ॥

मैत्रेयउवाच—

१८—अथाभिष्टुत एवं वै सत्सङ्कल्पेन धीमता। भृत्यानुरक्तो भगवान्प्रतिनन्द्येद मब्रवीत्॥

श्रीभगवानुवाच—

१९—वेदाहं ते व्यवसितं हृदि राजन्यबालक। तत्प्रयच्छामि भद्रं ते दुरापमपि सुव्रत ॥

२०—नान्यैरधिष्ठितं भद्र यद् भ्राजिष्णु ध्रुवक्षिति। यत्र ग्रहर्क्षताराणां ज्योतिषां चक्रमाहितम्॥

२१—मेढ्यां गोचक्र वत्स्थास्नु परस्तात्कल्प वासिनां। धर्मोग्निः कश्यप शुक्रो मुनयो ये वनौकसः॥
चरंति दक्षिणीकृत्य भ्रमतो यत्सतारकाः॥

२२—प्रस्थिते तु वनं पित्रादत्वागां धर्मसंश्रयः। षट् त्रिंशद्वर्ष साहस्रं रक्षिता मव्हल भुवः॥

२३—त्वद् भ्रातर्युत्तमेनष्टे मृगयायां तु तन्मना:। अन्वेषन्ती वनं माता दाव ग्निं सा प्रवेक्ष्यति॥

२४—इष्ट्वा मां यज्ञहृदय यज्ञैः पुष्कलदक्षिणैः। भुक्त्वा चेहाशिषः सत्या अंतेमां सम्मरिष्यसि॥

२५—ततो गतासि मत्स्थान सर्वलोक नमस्कृतं। उपरिष्टा दृषिभ्यस्त्वं यतो नावर्ततेगतः॥

मैत्रेय बोले—इस प्रकार गरुड़ध्वज भगवान ध्रुव को अपना स्थान देकर उसके देखते-देखते ही अपने धाम को लौट गये। ध्रुव भी भगवान् की चरण-सेवा से समस्त सङ्कल्पों की जहां समाप्ति है, ऐसे मनोरथ को पाकर अपने नगर की ओर चले, परन्तु वे बहुत प्रसन्न नहीं थे ॥ २६, २७ ॥

विदुर बोले—मायामय भगवान का जो परमपद अत्यन्त दुर्लभ है, उसे उनके चरणों की पूजा करके एक ही जन्म में प्राप्त कर लेने पर भी ज्ञानी ध्रुव ने अपने को अपूर्ण-मनोरथ के समान क्यों समझा ? ॥ २८ ॥

मैत्रेय बोले—सौतेली माँ के वचन-बाणों से ध्रुव का मन बिंधा हुआ था, उसे स्मरण करके, भगवान से मुक्ति नहीं मांग सके, इस बात का उन्हें दुःख हुआ ॥ २९ ॥

ध्रुव बोले—सनन्द आदि ब्रह्मचारी अनेक जन्मों की समाधि के बाद जो पद प्राप्त करते हैं, भगवान की उस चरण-छाया को मैंने छः ही महीने मे पा लिया था, किन्तु भेदबुद्धि के कारण मैंने उसे खो दिया। हाय ! मुझ अभागे की मूर्खता तो देखो कि विश्व के बन्धनों का नाश करने वाले भगवान के चरणों के समीप जाकर मैंने उनसे विनाशी सुख की याचना की। मुझसे नीचे स्थान पाने के कारण असहनशील देवताओं ने मेरी मति भ्रष्ट कर दी, क्योंकि मूर्खतावश मैंने नारद की सच्ची बात नहीं मानी। दैव की माया मे भूलकर सुप्त के समान स्वप्न देखता हुआ मै, अन्य सब मिथ्या है, यह समझते हुए भी भाई को शत्रु समझकर हृदय के दुःख से दुखी हो रहा हूँ। जिसका आयुष्य नष्ट हो गया है, उसकी चिकित्सा के समान मेरा

मैत्रेयउवाच—

२६—इत्यर्चितः स भगवानतिदिश्यात्मन.पदं। बालस्य पश्यतो धाम स्वमगाद्गरुडध्वज. ॥

२७—सोपि सङ्कल्पज विष्णोः पादसेवोपसादित। प्राप्य संकल्पनिर्वाणं नातिप्रीतोभ्यगात्पुरं ॥

विदुरउवाच—

२८—सुदुर्लभ यत्परम पद हरेर्मायाविनस्तच्चरणार्चनार्जित।

लब्ध्वाप्यसिद्धार्थं मिवैकजन्मना कथ स्वमात्मान ममन्यतार्थवित्।

मैत्रेयउवाच—

२९—मातुः सपत्न्या वाग्बाणैर्हृदि विद्धस्तु तान् स्मरन्। नैच्छन्मुक्तिपतेर्मुक्तिं तस्मात्ताप मुपेयिवान् ॥

ध्रुवउवाच—

३०—समाधिना नैकभवेन यत्पद विदुः सनन्दादय ऊर्ध्वरेतस.।

मासैरहं षड्भिरमुष्य पादयोश्छायामुपेत्यापगत. पृथङ्मतिः ॥

३१—अहोबत ममानात्म्य मन्दभाग्यस्य पश्यत। भवच्छिद. पादमूलं गत्वा याचेयदन्तवत् ॥

३२—मतिर्विदूषिता देवैः पतद्भिरसहिष्णुभिः। यो नारदवचस्तथ्यं नाग्राहिप मसत्तमः ॥

यह माँगना व्यर्थ गया, क्योंकि तपस्या के द्वारा भी जिन्हे प्रसन्न करना अत्यन्त कठिन है, उन भव-बंधनों को नष्ट करने वाले भगवान् को प्रसन्न करके भाग्यहीन मैंने संसार ही माँगा। जिस प्रकार कोई दरिद्र चक्रवर्ती राजा से चावल के कण माँगे, उसी प्रकार क्षीणपुण्य वाले मैंने मोक्ष देनेवाले भगवान् से अज्ञान-वश अभिमान की याचना की॥ ३५॥

मैत्रेय बोले—हे विदुर! भगवान् के चरण-कमल-रज का सेवन करने वाले और स्वतः जो कुछ मिल जाय, उतने से ही सन्तुष्ट रहने वाले आपके समान मनुष्य भगवान की दासता के अतिरिक्त अपने लिए और कुछ नहीं माँगता। जैसे मरकर लौटा हो, ऐसे अपने पुत्र को वापस आया जानकर राजा उत्तानपाद को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने सोचा कि मेरे जैसे पापी का भला कैसे हो सकता है? अनन्तर नारद की बातों पर विश्वास करके वे हर्ष से विह्वल हो गये। प्रसन्न होकर उन्होंने इस सन्देश ले आने वाले को बहुमूल्य हार दिया। पुत्र को देखने के लिए उत्सुक राजा सुवर्णखचित और उत्तम अश्वों से युक्त रथ पर बैठकर ब्राह्मणों, कुल के वृद्ध पुरुषों, मन्त्री और बन्धुओं के साथ शीघ्रही नगर से निकले। उनके साथ ब्राह्मण मङ्गल-पाठ कर रहे थे और शङ्ख-दुन्दुभि तथा वेणु आदि बाजे बज रहे थे। सुवर्णभूषित उनकी सुरुचि और सुनीति नाम की दोनों रानियाँ भी उत्तम के साथ पालकी पर बैठकर उनके साथ चलीं। ध्रुव को उपवन के निकट आया देखकर प्रेम से विह्वल और बहुत दिनों से उत्कण्ठित राजा शीघ्रही रथ से उतरकर उनके समीप गये और उसाँसे लेते हुए दोनों हाथों से उन्होंने ध्रुव का आलिङ्गन किया। ऊँचे मनोरथ वाले राजा ने, भगवान् के चरण-स्पर्श से जिसके

३३—दैवीं मायां मुपाश्रित्य प्रसुप्त इव भिन्नदृक्। तप्ये द्वितीयेऽप्यसति भ्रातृ भ्रातृव्य हृद्रुजा॥

३४—मयैतत्प्रार्थितं व्यर्थं चिकित्सेव गतायुषि। प्रसाद्य जगदात्मान तपसा दुःप्रसादन॥
भवच्छिद मयाचेऽहं भव भाग्यविवर्जितः॥

३५—स्वाराज्य यच्छतो मौढ्यान्मानो मेभिक्षितो बत। ईश्वरात्क्षीण पुण्येन फलीकारानिवाधनः॥

मैत्रेयउवाच—

३६—नवै मुकुंदस्य पदारविंदयो रजोजुषस्तात भवादृशा जनाः।
वांछति तद्दास्यमृतेऽर्थमात्मनो यदृच्छया लब्धमनः समृद्धय

३७—आकर्ण्यात्मज मायात सपरेत्य यथागतं। राजानश्रद्दधे भद्र मभद्रस्य कुतो मम॥

३८—श्रद्धायवाक्य देवर्षेर्हर्ष वेगेन धर्षित.। वार्त्ता हर्तुरतिप्रीतो हार प्रादान्महाधनं॥

३९—सदश्वं रथमारुह्य कार्तस्वर परिष्कृत। ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च पर्यस्तोऽमात्य बंधुभिः॥

४०—शंख दुंदुभि नादेन ब्रह्म घोषेण वेणुभिः। निश्चक्राम पुरात्तूर्णं मात्मजाभीक्षणोत्सुकः॥

सब पाप-बन्धन नष्ट हो गये है, ऐसे ध्रुव का मस्तक बार बार सूंघा और शीतल आँसुओं से पुत्र को नहला दिया। सत्कार पाये हुए और सज्जनों मे श्रेष्ठ ध्रुव ने पिता के चरणों की वन्दना की और उनसे आशीर्वाद पाया। पुन उन्होंने सिर झुकाकर माताओं को प्रणाम किया। पैरों पर गिरे हुए ध्रुव को उठाकर रुंधे हुए गले से सुरुचि ने 'जीते रहो' यह कहा और ध्रुव का आलिङ्गन किया। जिस प्रकार जल स्वय नीची जगहो में झुक जाता है, उसी प्रकार जिस पर मैत्री आदि गुणों के कारण भगवान प्रसन्न होते हैं, सब प्राणी स्वय ही उसके सम्मुख झुक जाते हैं। प्रेम से विह्वल हुए उत्तम और ध्रुव ने परस्पर आलिङ्गन किया और दोनों एक दूसरे के सामने पुलकित होकर खड़े रहे। उन दोनों की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। ध्रुव की माता सुनीति ने प्राण से भी प्यारे पुत्र का आलिङ्गन किया। पुत्र के अङ्ग-स्पर्श से उसे परम सुख प्राप्त हुआ और उसकी सारी चिन्ताएँ दूर हो गयीं। हे विदुर! वीर-जननी सुनीति की आँखों के पवित्र आँसुओं से भीगे हुए स्तनों से बार-बार दूध बहने लगा अर्थात पुत्र को देखकर स्नेहाधिक्य से उसके स्तनो से दूध गिरने लगा। सबलोग उन रानी से कहने लगे कि बड़ी प्रसन्नता की बात है कि बहुत दिनों से बिछुड़ा हुआ, सब कष्टों को दूर करने वाला तुम्हारा पुत्र वापस लौट आया। यही समस्त पृथ्वी का पालन करने वाला होगा। शरणागतों की रक्षा करने वाले भगवान् की अवश्य ही तुमने पूजा की है, जिस भगवान का ध्यान करने वाले वीर पुरुष दुर्जय मृत्यु को भी जीत लेते हैं। इस प्रकार लोग तरह-तरह की बाते कहने लगे। प्रसन्न और प्रशंसित हुए राजा उत्तानपाद ने ध्रुव और उत्तम को हथिनी पर बैठाकर नगर में प्रवेश किया। नगर मे चारो ओर घड़ियाल के आकार वाले तोरण

४१—सुनीतिः सुरुचिश्चास्य महिष्यौ रुक्मभूषिते। आरुह्य शिबिकां सार्धं मुत्तमेन मि जग्मतुः॥
४२—त दृष्ट्वोपवनाभ्याश आयान्त तरसा रथात्। अवरुह्य नृपस्तूर्णं मासाद्य प्रेमविह्वल॥
४३—परिरेभेऽङ्गज दोर्भ्यां दीर्घोत्कण्ठमनाः श्वसन्। विष्वक्सेनाङ्घ्रिसंस्पर्शहताशेषाघबन्धनम्॥
४४—अथाजिघ्रन्मुहुर्मूर्ध्नि शीतैर्नयन वारिभि। स्नापयामास तनय जातोद्दाम मनोरथ॥
४५—अभिवन्द्य पितु पादावाशीर्भिश्चाभिमन्त्रित। ननाम मातरौ शीर्ष्णा सत्कृतः सज्जनाग्रणी॥
४६—सुरुचिस्त समुत्थाप्य पादावनत मर्भक। परिष्वज्याह जीवेति बाष्पगद्गदया गिरा॥
४७—यस्य प्रसन्नो भगवान् गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरि। तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमाप इव स्वयं॥
४८—उत्तमश्च ध्रुवश्चोभावन्योऽन्य प्रेमविह्वलौ। अङ्गसंगादुत्पुलकावस्रौघं मुहुरूहतु॥
४९—सुनीतिरस्य जननी प्राणेभ्योऽपि प्रिय सुत। उपगुह्य जहावाधि तदङ्गस्पर्श निर्वृता॥
५०—पयःस्तनाभ्या सुस्राव नेत्रजैः सलिलैः शिवैः। तदाभिषिच्यमानाभ्या वीरवीरसुवो मुहुः॥
५१—तां शशंसुर्जना राज्ञीं दिष्ट्या ते पुत्र आर्तिहा। प्रतिलब्धश्चिर नष्टो रक्षिता मण्डल भुवः॥

बँधे हुए थे, फल और मञ्जरी से युक्त केले के वृक्ष तथा सुपारी के छोटे-छोटे पेड़ शोभित हो रहे थे। प्रत्येक द्वार पर आम के पल्लव, वस्त्र, फूल की माला और मोतियों से सजाये हुए जल के घड़े और दीपक शोभित हो रहे थे। शिखरों के द्वारा शोभित होने वाले विमान के समान द्युतिमान् और सुवर्णमय गढ़, द्वारा और महलों से वह नगर अलङ्कृत हो रहा था। नगर में चौक सड़के, अटारियाँ खूब साफ थीं और उनमें चन्दन छिड़का हुआ था। लावा, अक्षत फूल, फल, चावल और बलि शोभित हो रहे थे। मार्ग में स्थान-स्थान पर नगर की स्त्रियाँ ध्रुव पर सरसों, अक्षत फूल, फल, दही, दूब और जल छिड़कने तथा आशीर्वाद देने लगीं। उनके सुन्दर गीतों को सुनते हुए ध्रुव ने पिता के भवन में प्रवेश किया। पिता के द्वारा जिसका अत्यन्त लाड-प्यार किया गया है, ऐसे ध्रुव अनेक बहुमूल्य मणियों से जटित उस उत्तम भवन में निवास करने लगे जैसे स्वर्ग में देवता निवास करते हैं। उस भवन में दूध के फेन के समान तथा सुवर्णजटित हाथी दाँत की शय्या थीं, अनेक मूल्यवान आसन थे, जिनपर सुनहले बिछौने बिछे हुए थे। स्फटिक और मरकतमणि की दीवारें थीं, रत्नयुक्त स्त्रियों की मूर्ति के साथ मणि के दीपक शोभित हो रहे थे। वहाँ विचित्र देववृक्षों से युक्त रमणीय उद्यान थे, जहाँ पक्षियों के जोड़े चहकते तथा मत्त भ्रमर गूंजते रहते थे। वहाँ वैदूर्यमणि की सीढ़ियों वाली वापियाँ थीं, जिनमें पद्म उत्पल और कुमुद्वती आदि अनेक प्रकार के कमल खिले हुए थे तथा हंस कारण्डव चक्रवाक और सारस आदि पक्षी किलोले कर रहे थे। राजर्षि उत्तानपाद को अपने इस पुत्र के अद्भुत प्रभाव को देख और

५२—[illegible] नूनं भगवान्प्रणतार्तिहा । यदनुध्यायिनो धीरा मृत्युं जिग्युः सुदुर्जयम् ॥
५३—लाल्यमानं जनैरेवं ध्रुवं सभ्रातरं नृप । आरोप्य करिणीं हृष्टः स्तूयमानो विशत्पुरम् ॥
५४—यत्र तत्रोपसंक्लृप्तैर्लसन्मकरतोरणैः । सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैश्च तद्विधैः ॥
५५—चूतपल्लववासःस्रङ्मुक्तादामविलम्बिभिः । उपस्कृतं प्रतिद्वारमपां कुम्भैः सदीपकैः ॥
५६—प्राकारैर्गोपुरागारैः शातकुम्भपरिच्छदैः । सर्वतोऽलङ्कृतं श्रीमद्विमानशिखरद्युभिः ॥
५७—मृष्टचत्वररथ्याट्टमार्गं चन्दनचर्चितम् । लाजाक्षतैः पुष्पफलैस्तण्डुलैर्बलिभिर्युतम् ॥
५८—ध्रुवाय पथि दृष्टाय तत्र तत्र पुरस्त्रियः । सिद्धार्थाक्षतदध्यम्बुदूर्वापुष्पफलानि च ॥
५९—उपजह्रुः प्रयुञ्जाना वात्सल्यादाशिषः सतीः । शृण्वंस्तद्वल्गुगीतानि प्राविशद्भवनं पितुः ॥
६०—महामणिव्रातमये स तस्मिन् भवनोत्तमे । लालितो नितरां पित्रा न्यवसद्दिवि देववत् ॥
६१—पयःफेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः । आसनानि महार्हाणि यत्र रौक्मा उपस्कराः ॥
६२—यत्र स्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च । मणिप्रदीपा आभान्ति ललनारत्नसंयुताः ॥
६३—उद्यानानि च रम्याणि विचित्रैरमरद्रुमैः । कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥
६४—वाप्यो वैदूर्यसोपानाः पद्मोत्पलकुमुद्वतीः । हंसकारण्डवकुलैर्जुष्टाश्चक्राह्वसारसैः ॥

सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा ने देखा कि ध्रुव तरुण अवस्था प्राप्त कर चुके है और प्रजा भी उनमे अनुराग रखती है। अतः सबकी सम्मति से उन्होंने ध्रुव को भूमण्डल का स्वामी बनाया अर्थात् उनका राज्याभिषेक किया। अनन्तर अपना वार्धक्य देखकर वैराग्य प्राप्त राजा उत्तानपाद आत्मस्वरूप का चिन्तन करने के लिए वन में गये ॥ ६६, ६७ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का नवाँ अध्याय समाप्त

दसवाँ अध्याय

ध्रुव के द्वारा यक्षों का वध

मैत्रेय बोले—ध्रुव ने शिशुमार प्रजापति की भ्रमि नामक कन्या से विवाह किया। उसके गर्भ से कल्प और वत्सर नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। ध्रुव की दूसरी स्त्री, वायु-कन्या इला के गर्भ से महाबली ध्रुव ने उत्कल नामक एक पुत्र और एक कन्या-रत्न उत्पन्न किये। उत्तम ने विवाह नहीं किया। मृगया खेलने जाकर वह बलवान् यक्षों के द्वारा पर्वत पर मारा

६५—उत्तानपादो राजर्षिः प्रभावं तनयस्य तं। श्रुत्वा दृष्ट्वाद्भुततमं प्रपेदे विस्मयं परं ॥

६६—वीक्ष्योढवयसं तं च प्रकृतीनां च संमतं। अनुरक्तप्रजं राजा ध्रुवं चक्रे भुवः पतिं ॥

६७—आत्मानं च प्रवयसमाकलय्य विशांपतिः। वनं विरक्तः प्रातिष्ठद्विमृशन्नात्मनो गतिं ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कन्धेनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

मैत्रेयउवाच—

१—प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः। उपयेमे भ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ॥

२—इलायामपि भार्यायां वायोः पुत्र्यां महाबलः। पुत्रमुत्कलनामानं योषिद्रत्नमजीजनत् ॥

३—उत्तमस्त्वकृतोद्वाहो मृगयायां बलीयसा। हतः पुण्यजनेनाद्रौ तन्मातास्य गतिं गता ॥

गया और उसकी माता भी उसीकी गति को प्राप्त हुई अर्थात् वह भी मारी गयी। भाई का मारा जाना सुनकर क्रोध, अमर्ष और दुःख से ध्रुव पीड़ित हुए और विजय के लिए रथ पर बैठकर वे यक्षलोक (अलकापुरी) मे गये। रुद्र के अनुचरों से सेवित उत्तर दिशा में जाकर राजा ने हिमालय पर्वत के समीप यक्षों से भरी हुई अलकापुरी को देखा। आकाश और दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए महाबाहु ध्रुव ने शङ्ख बजाया। उस शङ्ख-ध्वनि को सुनकर यक्ष-स्त्रियाँ चौंक उठीं और अत्यन्त भयभीत हो गयी। ध्रुव के उस शङ्खनाद को सहन न करने वाले महापराक्रमी यक्ष अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर निकल आये अर्थात् युद्ध करने के लिये तैयार हो गये। आते हुए उन यक्षों मे से प्रत्येक को उग्रधन्वा महारथी ध्रुव ने एक साथ ही तीन-तीन बाण मारे। वे बाण यक्षों के सिर में लगे। अत. अपना पराजय मानकर वे यक्ष ध्रुव के इस कार्य की अर्थात् बाण चलाने की निपुणता की प्रशंसा करने लगे। साँप जैसे पैर से छू जाने से क्रोधित हो जाता है, उसी प्रकार क्रोधित हुए और बदला लेने की इच्छा रखने वाले यक्षों ने ध्रुव को एक साथ छ. छः बाणों से बींध दिया। अनन्तर ध्रुव से बदला लेने की इच्छा रखने वाले, क्रोधित हुए एक लाख तीस हजार यक्ष, ध्रुव, उनके रथ तथा सारथि पर परिघ, तलवार, पास, शूल, परशु, शक्ति, ऋष्टि, भुशुण्डि तथा विचित्र पक्ष वाले बाणों की वर्षा करने लगे। उस समय शस्त्रों की घोर वर्षा से ध्रुव ढँक गये, दीख न पड़ने लगे, जिस प्रकार वर्षा से पहाड़ छिप जाते हैं। आकाश में सिद्धगण यह युद्ध देखकर हाहा-कार करने लगे—मनुवंशी सूर्य के समान यह ध्रुव यक्षरूपी समुद्र मे डूबकर मारा गया। यक्ष-गण युद्ध में जयनाद करने लगे, इतने मे ध्रुव का रथ बाणों के जाल से बाहर निकला, जैसे

४—ध्रुवो भ्रातृवधं श्रुत्वा कोपामर्ष शुचार्पितः। जैत्रं स्यन्दनमास्थाय गतः पुण्यजनालयम् ॥

५—गत्वोदीचीं दिशं राजा रुद्रानुचर सेविताम्। ददर्श हिमवद्द्रोण्यां पुरीं गुह्यक सकुलाम् ॥

६—दध्मौ शङ्खं बृहद्बाहुः खं दिशश्चानुनादयन्। येनोद्विग्न दृशः क्षत्तरुपदेव्योऽत्र सन्भृशं ॥

७—ततो निष्क्रम्य बलिन उपदेव महाभटा। असहन्त स्तन्निनाद मभिपेतु रुदायुधाः ॥

८—सतानापततो वीर उग्रधन्वा महारथ। एकैकं युगपत्सर्वानहन् बाणैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥

९—ते वै ललाट लग्नैस्तैरिषुभिः सर्व एवहि। मत्वा निरस्त मात्मान माशसन्कर्म तस्यतत् ॥

१०—तेऽपि चामुममृष्यन्तः पादस्पर्श मिवोरगा.। शरै रविध्यन्युगपत् द्विगुणं प्रचिकीर्षव. ॥

११—ततः परिघ निस्त्रिंशैः प्रास शूल परश्वधैः। शक्त्यृष्टिभिर्भृशु ण्डीभिश्चित्रवाजैः शरैरपि ॥

१२—अभ्यवर्षन्प्रकुपिताः सरथं सह सारथिं। इच्छतस्तत्प्रतीकर्तुं मयुतानि त्रयोदश ॥

१३—औत्तानपादिः स तदा शस्त्रवर्षेण भूरिणा। न उपादृश्यतच्छन्न आसारेण यथागिरिः ॥

१४—हाहा कारस्तदैवासीत्सिद्धानां दिवि पश्यताम्। हतोऽयं मानवः सूर्यो मग्नः पुण्यजनार्णवे ॥

कुहरे से सूर्य निकलते हैं। दिव्य धनुप का टङ्कार करते हुए और शत्रुओं को दुखी करते हुए ध्रुव ने यक्षों के अस्त्रों को छिन्न-भिन्न कर दिया, जैसे वायु बादल के समूह का छिन्न-भिन्न कर देता है। ध्रुव के धनुप से निकले हुए तीखे वाण यक्षों के कवचों को भेदकर शरीर मे घुस गये, जैसे पर्वत मे वज्र घुस जाते है। भालों से कटे हुए यक्षों के सुन्दर कुण्डलयुक्त सिरों, सुनहले ताड के समान जँघाओं कंकणों से शोभित हाथों और हार केयूर, मुकुट तथा बहुमूल्य पगड़ियों से ढकी हुई वीरों के लिए मनोहर वह रणभूमि शोभित होने लगी। जो यक्ष मरने से बच गये थे उनके अङ्ग भी क्षत्रियश्रेष्ठ ध्रुव के बाणों से जगह-जगह छिन्न-भिन्न हो गये थे; अतः वे रणाङ्गण से भाग गये। जैसे सिंह के आक्रमण से हाथी भाग जाता है। मनुष्यों में श्रेष्ठ ध्रुव ने उस बड़े युद्ध में किसी आततायी को न देखा अर्थात् युद्ध मे मरने से बचे हुए सारे यक्ष अपनी जान लेकर भाग गये। तब ध्रुव के मन मे शत्रुओं की पुरी (अलकापुरी) देखने की इच्छा हुई, किन्तु फिर भी उन्होंने पुरी मे प्रवेश नहीं किया। उन्होंने अपने सारथि से कहा कि "मायावी क्या क्या करेंगे यह कोई मनुष्य जान नहीं सकता।" ध्रुव शत्रुओं के पुनः आक्रमण की आशङ्का कर रहे थे इतने ही में समुद्र के गर्जन का-सा शब्द सुन पड़ा। आकाश और दिशाओं मे धूल भर गयी। क्षणभर में आकाश मे चारों ओर बादलों के समूह घिर आए। बिजली चमकने लगी। दिशाओं में बादल कड़कने लगे। रुधिर, कफ, पीव, विष्ठा, मूत्र और मेद आदि की वर्षा होने लगी। आकाश से ध्रुव के सम्मुख बिना मस्तक के धड़ गिरने लगे। अनन्तर आकाश में एक पहाड़ दीख पड़ा और उससे गदा परिघ, खड्ग, मुसल और

१५—नदत्सु यातुधानेषु जयकाशिष्वथो मृधे। उदातिष्ठद्रथस्तस्य नीहारादिव भास्करः॥

१६—धनुर्विस्फूर्जयन् दिव्यं द्विषतां खेदमुद्वहन्। अस्त्रौघं व्यधमद्बाणैर्घनानीकमिवानिलः॥

१७—तस्य ते चापनिर्मुक्ता भित्त्वा वर्माणि रक्षसाम्। कायानाविविशुस्तिग्मा गिरीनशनयो यथा॥

१८—भल्लैः सञ्छिद्यमानानां शिरोभिश्चारुकुण्डलैः। ऊरुभिर्हेमतालाभैर्दोर्भिर्वलयवल्गुभिः॥

१९—हारकेयूरमुकुटैरुष्णीषैश्च महाधनैः। आस्तृतास्ता रणभुवो रेजुर्वीरमनोहराः॥

२०—हतावशिष्टा इतरे रणाजिराद्रक्षोगणाः क्षत्रियवर्यसायकैः।

पायो विवृक्णावयवा विदुद्रुवुर्मृगेन्द्रविक्रीडितयूथपा इव॥

२१—अपश्यमानः स तदाततायिनं महामृधे कञ्चन मानवोत्तमः।

पुरीं दिदृक्षन्नपि नाविशद्द्विषां न मायिनां वेद चिकीर्षितं जनः॥

२२—इति ब्रुवंश्चित्ररथः स्वसारथिं यत्तः परेषां प्रतियोगशङ्कितः।

शुश्राव शब्दं जलधेरिवेरितं नभस्वतो दिक्षु रजोऽन्वदृश्यत॥

२३—क्षणेनाच्छादितं व्योम घनानीकेन सर्वतः। विस्फुरत्तडिता दिक्षु त्रासयत्स्तनयित्नुना॥

२४—ववृषू रुधिरौघासृक्पूयविण्मूत्रमेदसः। निपेतुर्गगनादस्य कबन्धान्यग्रतोऽनघ॥

पत्थरों की सब दिशाओं में वृष्टि होने लगी। क्रोधित आँखों से आग उगलते हुए तथा वज्र के समान फुककार छोड़ते हुए सर्प ध्रुव की ओर दौड़ते दीख पड़े। पागल हाथी और सिंह-व्याघ्र आदि हिंस्र पशु भी दल बाँध कर उनकी ओर झपटे। प्रलयकाल के समान भीषण, भयानक गर्जन करने वाला समुद्र अपनी भयङ्कर लहरों से समस्त संसार को प्लावित करता हुआ उमड़ आया। इस प्रकार टेढ़ी गति वाले अर्थात् दुष्ट स्वभाव वाले यक्षों ने कायरों को भयभीत कर देने वाली अनेक प्रकार आसुरी मायाएं प्रकट की। वहाँ आये हुए मुनियों ने इस प्रकार ध्रुव के प्रति यक्षों को अति दुस्तर मायाओं का प्रयोग करते देखा और ध्रुव कल्याण की प्रार्थना करने लगे॥ ७, २९॥

मुनिगण बोले—हे ध्रुव! भक्तों का दुःख दूर करने वाले भगवान् शार्ङ्गधर तुम्हारे शत्रुओं का नाश करें, जिन भगवान् का नाम लेने और सुनने मात्र से ही मनुष्य दुस्तर साक्षात् मृत्यु को अनायास ही पार कर जाता है अर्थात् उसका मृत्यु भय दूर हो जाता है॥ ३०॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध का दसवाँ अध्याय समाप्त

—— ०*० ——

२५—ततः खेऽदृश्यतगिरिर्निपेतुः सर्वतो दिशं। गदा परिघ निस्त्रिंश मुशलाः साश्म वर्षिणः॥

२६—अहयोऽशनिनिःश्वासा वमंतोऽग्निंरुषाऽक्षिभिः। अभिधावन्गजामत्ताः सिंह व्याघ्रश्च युथशः॥

२७—समुद्र ऊर्मिभिर्भीमः प्लावयन्सर्वतो भुवं। आमसाद महाह्रादः कल्पात इव भीषण॥

२८—एवं विधान्यनेकानि त्रासनान्यमनस्विना। ससृजुस्तिग्मगतय आसुर्या माययाऽसुराः॥

२९—ध्रुवे प्रयुक्ता मसुरैस्तामाया मतिदुस्तरा। निशाम्य तस्य मुनयः शमाशंसन्समागताः॥

मुनय ऊचुः—

३०—औत्तानपादे भगवांस्तव शार्ङ्गधन्वा देवः क्षिणोत्ववनतार्तिहरो विपक्षान्।

दन्नामधेय मभिधाय निशम्य चाद्धालोकोऽञ्जसा तरति दुस्तर मंग मृत्युं॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेदशमोऽध्यायः॥ १०॥

———

ग्यारहवाँ अध्याय

ध्रुव को स्वायम्भुव मनु का उपदेश

मैत्रेय बोले—ऋषियों को ऐसा कहते हुए सुनकर, आचमन करके ध्रुव ने धनुष पर नारायणास्त्र चढ़ाया। नारायणास्त्र का सन्धान करते ही; हे विदुर ! यक्षों के द्वारा निर्मित सारी माया शीघ्र ही नष्ट हो गयी, जैसे ज्ञान के उदय होने पर सारे दुःख-कष्टों का नाश हो जाता है। ध्रुव ने धनुष पर नारायणास्त्र का सन्धान किया उससे सुनहले नोकवाले और कलहस के समान पखवाले बाण निकल कर शत्रुओ की सेना मे प्रवेश करने लगे, जैसे भयङ्कर शब्द करता हुआ मयूर (मोर) वन में प्रवेश करता है। उन तीक्ष्ण धार वाले बाणों से यक्षगण इधर-उधर भागने लगे और क्रोधित होकर, अस्त्र लेकर वे ध्रुव की ओर दौड़े, जैसे सर्प फन उठाकर गरुड़ पर आक्रमण करते हैं। ध्रुव ने युद्ध मे आक्रमण करते हुए उन यक्षों के हाथ, जङ्घा, कन्धे, और उदर अपने बाणों से काट-काट कर उन्हें परलोक मे भेज दिया, जहाँ सन्यासिगण सूर्यमण्डल को भेद कर जाते हैं। ध्रुव के द्वारा अनेक निरपराध यक्षों को मारा जाता देखकर, ध्रुव के दादा स्वायम्भुव मनु कृपापूर्वक ऋषियों के साथ वहाँ आये और उन्होंने ध्रुव से कहा ॥ १, ६ ॥

मनु बोले—वत्स ! क्रोध पाप का मूल और नरक का द्वार है, अत. क्रोध को शान्त करो, जिसके वश होकर निरपराध इतने यक्षों को तुमने मारा है। तात ! तुमने अपराधहीन यक्षों का वध करना आरम्भ किया है। सज्जनों ने इस कार्य की निन्दा की है और यह हमारे कुल

मैत्रेय उवाच—

१—निशम्य गदतामेवं मुनीनां धनुषि ध्रुवः। सदधेऽस्त्रमुपस्पृश्य यन्नारायण निर्मित ॥

२—संधीयमान एतस्मिन्माया गुह्यक निर्मिता.। क्षिप्र विनेशुर्विदुर क्लेशा ज्ञानोदये यथा ॥

३—तस्यार्षास्त्र धनुषि प्रयुञ्जतः सुवर्णपुङ्खाः कलहंस वाससः।

विनि.सृता निविविशुर्द्विषद्बल यथा वन भीमरवाः शिखण्डिनः ॥

४—तैस्तिग्मधारै. प्रधने शिलीमुखै रितस्तत. पुण्यजना उपद्रुता·।

तमभ्यधावन्कुपिता उदायुधा सुपर्णमुन्नद्ध फणा इवाहय. ॥

५—सतान् पृषत्कैरभिधावतो मृधे निकृत्तबाहूरु शिरोधरोदरान्।

निनाय लोक परमर्कमण्डल व्रजन्ति निर्भिद्य यमूर्ध्वरेतसः ॥

६—तान्हन्यमानानभिवीक्ष्य गुह्यका ननागसश्चित्ररथेन भूरिशः।

औत्तानपादि कृपया पितामहो मनुर्जगादोपगतः सहर्षिभि. ॥

मनुरुवाच—

७—अल वत्सातिरोषेण तमोद्वारेण पाप्मना। येन पुण्यजनानेतानवधीस्त्व मनागसः ॥

के अनुरूप कार्य नहीं है। हे भ्रातृवत्सल! भाई के वध से दुखी होकर तुमने एक के अपराध से बहुतों को मार डाला है। देह को आत्मा समझकर पशुओं के समान प्राणि हिंसा करना; यह भगवान् के अनुगामी सज्जन पुरुषों का मार्ग नहीं है। समस्त प्राणियों को आत्मस्वरूप समझकर तुमने सब प्राणियों में स्थित दुराराध्य भगवान् की आराधना करके उनके परमपद को प्राप्त किया है। तुम भगवान् के हृदय में स्थित हो। उनके भक्त भी तुम्हें मानते हैं। सज्जनों के व्रत का पालन करते हुए तुमने ऐसा निन्दनीय कार्य कैसे किया? बड़ों के प्रति सहन शील, छोटों के प्रति सदय और समान अवस्था वालों के साथ मैत्री का भाव रखने तथा अन्य समस्त प्राणियों के प्रति समता का भाव रखने से भगवान् प्रसन्न होते हैं। भगवान् के प्रसन्न होने पर मनुष्य इन्द्रियों से और देहाभिमान से मुक्त हो जाता है और परम सुखरूप ब्रह्म को प्राप्त करता है। पञ्चभूतों की परिणति से स्त्री और पुरुष का निर्माण होता है और उन स्त्री-पुरुषों के जोड़े से पुनः स्त्री और पुरुष उत्पन्न होते हैं। राजन्! इस प्रकार ईश्वर की माया के द्वारा त्रिगुण के समन्वय से सृष्टि, स्थिति और संहार (प्रलय) का क्रम प्रवर्तित होता है। पुरुषश्रेष्ठ! प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश में निर्गुण भगवान् निमित्त-मात्र हैं, जिससे यह कार्य-कारण-रूप जगत् भ्रमण करता है, जैसे चुम्बक के निमित्त होने पर लोहा घूमता है। कालशक्ति के द्वारा प्रवर्तित गुणों के व्यतिक्रम से जिनकी शक्ति बँट गयी है, ऐसे भगवान् अकर्ता होते हुए भी कर्ता के समान; अहन्ता (न मारने वाले) होते हुए भी निहन्ता (मारने वाले) के समान मालूम पड़ते हैं, क्योंकि उनकी माया अचिन्तनीय है। अविनाशी

८—नास्मत्कुलोचितं तात कर्मैतत्सद्विगर्हितं। वधो यदुपदेवानामारब्धस्तेऽकृतैनसाम् ॥

९—नन्वेकस्यापराधेन प्रसंगाद् बहवो हताः। भ्रातुर्वधाभितप्तेन त्वयाङ्ग भ्रातृवत्सल ॥

१०—नायं मार्गोहि साधूनां हृषीकेशानुवर्तिनाम्। यदात्मानं पराग्गृह्य पशुवद्भूतवैशसम् ॥

११—सर्व भूतात्मभावेन भूतावासं हरिं भवान्। आराध्याप दुराराध्यं विष्णोस्तत्परमं पदं ॥

१२—स त्वं हरेरनुध्यातस्तत्पुंसामपि सम्मतः। कथं त्वबद्यं कृतवाननुशिक्षन्सतां व्रतं ॥

१३—तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिल जन्तुषु। समत्वेन च सर्वात्मा भगवान्सम्प्रसीदति ॥

१४—संप्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः। विमुक्तो जीवनिर्मुक्तो ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥

१५—भूतैः पञ्चभिरारब्धैर्योषित्पुरुष एव हि। तयोर्व्यवायात् सम्भूतिर्योषित् पुरुषयोरिह ॥

१६—एवं प्रवर्तते सर्गः स्थितिः संयम एव च। गुण व्यतिकराद्राजन् मायया परमात्मनः ॥

१७—निमित्त मात्रं तत्रासीन्निर्गुणः पुरुषर्षभः। व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं यत्र भ्रमति लोहवत् ॥

१८—स खल्विदं भगवान्काल शक्त्या गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः।
करोत्यकर्त्तैव निहंत्य हंता चेष्टाविभूम्नः खलु दुर्विभाव्या ॥

और भगवान् का शक्तिरूप यह काल स्वयं अनन्त होते हुए भी सबका अन्त करने वाला है, स्वयं अनादि (कारण रहित) होते हुए भी आदि (कारण) को उत्पन्न करने वाला है, एक पदार्थ को उत्पन्न करके उससे दूसरे की सृष्टि करता है और एक पदार्थ का दूसरे के द्वारा नाश करके पुनः तीसरे के द्वारा दूसरे का संहार करता है। समान रूप से प्रजाओं में प्रवेश करने वाले इस काल के लिए न कोई अपना है, न पराया। उड़ती हुई हवा के पीछे जैसे धूल उड़ती है, उसी प्रकार दौड़ते हुए इस काल के पीछे असमर्थ प्राणी अपने-अपने कर्म के अनुसार दौड़े जाते हैं। स्वतन्त्र होने के कारण काल, क्षय और वृद्धि से रहित है अतः कर्माधीन प्राणियों के आयुष्य को यह (उनके कर्मों के अनुसार) घटाता और बढ़ाता है। इसे कुछ लोग कर्म कहते हैं, कुछ लोग स्वभाव, कुछ लोग काल और कुछ लोग दैव कहते हैं; तथा कुछ लोग इसे काम' भी कहते हैं। भगवान् अव्यक्त हैं, अप्रमेय हैं महत्तत्व आदि अनेक शक्तियों के उत्पादक हैं, मनुष्य जब उनकी चेष्टा को भी नहीं जान सकता तो अपने उत्पन्न करने वाले साक्षात् भगवान् को कैसे जान सकता है? हे पुत्र! ये यक्ष आदि तुम्हारे भाई को मारने वाले नहीं हैं। मनुष्यों की उत्पत्ति और नाश का कारण दैव ही है। ईश्वर ही जगत की सृष्टि, पालन और संहार करता है, फिर भी अहङ्कारहीन होने के कारण वह उनके गुण और कर्मों में लिप्त नहीं होता। प्राणियों के स्वामी प्राणियों को उत्पन्न करने वाले और प्राणिरूप यह ईश्वर अपनी शक्ति के द्वारा माया से युक्त होकर संसार की सृष्टि स्थिति और विनाश करते हैं। हे तात! भक्तिहीनों और भक्तों के लिए मृत्यु और अमृतरूप, जगत् के आश्रयस्थल, उन्हीं भगवान् की

१९—सोऽनन्तोंतकरः कालोऽनादिरादि कृदव्ययः। जन जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनातक ॥

२०—नवै स्वपक्षोऽस्य विपक्षएव वा परस्य मृत्योर्विशतः समप्रजाः।

तं धावमान मनुधावन्त्यनीशा यथारजांस्यनिल भूतसघाः ॥

२१—आयुषोऽपचयं जंतोस्तथैवोपचय विभुः। उभाभ्या रहित. स्वस्थो दु स्थस्य विदधात्यसौ ॥

२२—केचित्कर्म वदन्त्येन स्वभाव मपरे नृप। एके काल परे दैव पुमः काममुतापरे ॥

२३—अव्यक्तस्याप्रमेयस्य नाना शक्त्युदयस्य च। नवै चिकीर्षितं तात कोवेदाथ स्वसंभवं ॥

२४—नचैते पुत्रक भ्रातुर्हंतारो धनदानुगाः। विसर्गादानयोस्तात पुंसो दैव हि कारण ॥

२५—सएव विश्वं सृजति स एवावतिहंति च। अथापि ह्यनहंकारान्नाज्यते गुण कर्मभि. ॥

२६—एष भूतानि भूतात्मा भूतेशो भूतभावनः। स्वशक्त्या माययायुक्तः सृजत्यत्ति च पाति च ॥

२७—तमेव मृत्युममृतं तात दैवं सर्वात्मनोपेहि जगत्परायणं।

यस्मै बलिं विश्वसृजो हरन्ति गावो यथा वैनसि दामयंत्रिताः ॥

२८—यः पंचवर्षो जननीं त्वं विहाय मातुः सपत्न्या वचसा भिन्नमर्मा।

वन गतस्तपसा प्रत्यगक्ष माराध्य लेभे मूर्ध्निपदं त्रिलोक्याः ॥

शरण तुम लो, जिनके द्वारा नियंत्रित होकर ब्रह्मा आदि भी चलते हैं, जैसे रस्सी में नथा हुआ बैल रस्सी के नियंत्रण से चलता है। पाँच वर्ष की अवस्था में सौतेली माँ के वचन-बाणों से विद्ध होकर, माता को छोड़कर तुम वन में गये थे। और तपस्या के द्वारा भगवान् को प्रसन्न करके तुमने त्रैलोक्य से भी ऊचा पद पाया था। हे पुत्र! क्लेशरहित, निर्गुण, एक, अविनाशी और निरन्तर मन में रहने वाले उस ईश्वर को तुम मुक्त और अन्तर्दृष्टा होकर अपने में देखो, जिसमें यह भेदभाव से युक्त संसार असत् मालूम पड़ता है। उस समय अनन्त, आनन्दमय, सर्वशक्तिमान् और अन्तर्दृष्टि से जानने योग्य ईश्वर में भक्ति उत्पन्न होगी और 'मैं और मेरा' के रूप मे पड़ी हुई अज्ञान की गाँठ टूट जायगी। राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। शास्त्रों के सुनने से प्राप्त हुए ज्ञान के द्वारा मङ्गलों के विघ्नरूप इस क्रोध को शान्त करो, जैसे औषधि के द्वारा रोग शान्त किया जाता है। अपना कल्याण चाहने वाले बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह क्रोध के वश मे न हो, क्योंकि जो लोग क्रोध के वशीभूत होते हैं, उनसे सब लोग उद्विग्न रहते हैं। महादेव के भाई कुबेर का तुमने तिरस्कार किया है, क्योंकि यक्षों ने तुम्हारे भाई को मारडाला, इससे क्रोधित होकर तुमने यक्षों का नाश किया है। अतः हे वत्स! बड़े लोगों के तेज से अपने कुल का अनिष्ट होने के पहले ही तुम नम्रता और विनीत वचनों से उनको प्रसन्न करो ॥ ७, २४ ॥

इस प्रकार स्वायम्भुव मनु अपने पौत्र ध्रुव को शिक्षा देकर, उनके द्वारा प्रणाम किये जाने पर, ऋषियों के सहित, अपने पुर मे गये ॥ ३५ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कध का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त

२९—त्वमेन मंगात्मनि मुक्तविग्रहं व्यपाश्रित निर्गुणमेक मक्षरं ।
आत्मान मन्विच्छ विमुक्त आत्मदृक् यस्मिन्निदं भेदमसत्प्रतीयते ॥

३०—त्वं प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनंत आनद मात्र उपपन्न समस्त शक्तौ ।
भक्तिं विधाय परमाशनकैरविद्या ग्रंथिं विभेत्स्यसि ममाह मितिप्ररूढं ॥

३१—संयच्छ रोष मद्र ते प्रतीप श्रेयसा पर । श्रुतेन भूयसा राजन्नगदेन यथामय ॥

३२—येनोपसृष्टात्पुरुषाल्लोक उद्विजते भृशं । न बुधस्तद्वशं गच्छेदिच्छन्न भयमात्मनः ॥

३३—हेलन गिरिशभ्रातुर्धनदस्य त्वया कृतं । यज्जघ्निवान्पुण्यजनान् भ्रातृघ्नानित्य मर्षितः ॥

३४—तं प्रसादय वत्साशु सन्नत्या प्रश्रयोक्तिभिः । न यावन्महतां तेजः कुलं नोऽभिभविष्यति ॥

३५—एवं स्वायंभुवः पौत्रमनुशाश्य मनुर्ध्रुवं । तेनाभिवंदित. साकं मृषिभि. स्वपुरं ययौ ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

ध्रुव की विष्णु-पद-प्राप्ति

मैत्रेय बोले—ध्रुव का क्रोध दूर हो गया, यक्षों की हत्या करने से उन्होंने हाथ खींच लिया, यह देखकर चारण, यक्ष और किन्नर आदि जिनकी स्तुति कर रहे थे, ऐसे भगवान् कुबेर वहाँ आये और उन्होंने हाथ जोड़कर ध्रुव से कहा ॥ १ ॥

कुबेर बोले—हे क्षत्रियपुत्र ! हे अनघ ! मैं तुम से प्रसन्न हूँ । पितामह की आज्ञा से तुमने कठिन वैर को त्याग दिया है अर्थात् उसे तुम भूल गये हो । आपने यक्षों का वध नहीं किया और न यक्षों ने ही आपके भाई का वध किया है क्योंकि काल ही प्राणियों के जन्म और मृत्यु का स्वामी है । मनुष्य में अज्ञान से उत्पन्न हुए देहाभिमान के कारण 'मैं और तुम' की बुद्धि होती है, जो स्वप्नावस्था के समान है । इसीके कारण बन्धन और दुःख आदि मालूम पड़ते हैं । अर्थात् 'मैं और तुम' की भेद-बुद्धि देहाभिमान से उत्पन्न हुई है और स्वप्न के समान मिथ्या है और उसी मिथ्या बुद्धि से मनुष्य संसार में सुख और दुःख देखता है । अतएव हे ध्रुव ! तुम आओ और समस्त प्राणियों को आत्मरूप समझते हुए, सर्वव्यापक, भव-बन्धनों से छुड़ाने वाले अपनी माया के द्वारा गुणमयी शक्ति से युक्त और रहित, भगवान की आराधना करो जिनके चरण पूजा करने योग्य हैं, तुम्हारा कल्याण हो । हे उत्तानपाद के पुत्र ! तुम्हारे मन में जो अभिलाषा हो, वह निःसङ्कोच मुझसे माँगलो । हम सुनते हैं कि तुम भगवान् के चरणों के निकट रहने वाले हो, अतः तुम वर पाने के योग्य हो ॥ २, ७ ॥

मैत्रेयउवाच—

१—ध्रुवं निवृत्तं प्रतिबुध्य वैशसादपेतमन्युं भगवान्धनेश्वरः ।

तत्रागतश्चारण यक्षकिन्नरैः संस्तूयमानो भ्यवदत्कृताञ्जलिं ॥

धनदउवाच—

२—भोभो क्षत्रिय दायाद परितुष्टोऽस्मितेऽनघ । यत्त्वं पितामहादेशाद्वैर दुस्त्यजमत्यजः ॥

३—न भवानवधीद्यक्षान्न यक्षाभ्रातरं तव । काल एव हि भूतानां प्रभुरप्ययभावयोः ॥

४—अहं त्वमित्य पार्थाधी रज्ञानात्पुरुषस्य हि । स्वाप्नाचाभात्यतद्ध्यानाद्यया बंध विपर्ययौ ॥

५—तद्गच्छ ध्रुव भद्रते भगवन्त मधोऽक्षजं । सर्व भूतात्म भावेन सर्व भूतात्मविग्रह ॥

६—भजस्व भजनीयाघ्रि मभवाय भवच्छिद । युक्तं विरहितं शक्त्या गुणमय्यात्ममायया ॥

७—वृणीहि काम नृपयन्मनोगतं मत्तस्त्वमौत्तानपदे विशंकितः ।

यतो वराहोंऽम्बुज नाम पादयो रनंतरं त्वांवयमंग शुश्रुम ॥

मैत्रेय बोले—कुबेर के द्वारा वर माँगने के लिए प्रेरित होकर महामति और महाभक्त ध्रुव ने भगवान् में अविचल स्मृति माँगी जिसके द्वारा मनुष्य दुस्तर संसाररूपी अन्धकार को अनायास ही पार कर जाता है। कुबेर ने प्रसन्न होकर ध्रुव को यह वर दिया और उनके देखते-ही-देखते वे अन्तर्धान हो गये। पुनः ध्रुव भी अपने नगर में आये और आकर उन्होंने प्रभूत दक्षिणावाले यज्ञों के द्वारा भगवान् की पूजा की, जो यज्ञ द्रव्य, क्रिया और देवताओं के द्वारा सिद्ध होते हैं तथा कर्म-फल देनेवाले हैं। ध्रुव ने सर्वात्मा और सब व्याधियों से रहित, भगवान् की तीव्र भक्ति की और वे अपने तथा सब प्राणियों में उन्हीं भगवान् को अवस्थित देखने लगे। इस प्रकार शीलवान् दीनबन्धु ब्राह्मण-भक्त और धर्म की मर्यादाओं की रक्षा करने वाले ध्रुव को सारी प्रजा ने अपने पिता के समान माना। भोग अर्थात् ऐश्वर्यादि के द्वारा पुण्यों को तथा अभोग अर्थात् यज्ञादि अनुष्ठानों के द्वारा अमङ्गल को क्षीण करते हुए ध्रुव ने छत्तीस हजार वर्षों तक पृथ्वी का शासन किया। इस प्रकार महात्मा और जितेन्द्रिय ध्रुव ने धर्म, अर्थ और काम का सेवन करते हुए बहुत समय बिताकर पुत्र को राज्यासन दिया। ध्रुव ने अज्ञान से उत्पन्न गन्धर्व नगर के समान, इस संसार को अपने में माया के द्वारा रचित स्वप्न समझा। शरीर, स्त्री, सन्तान, मित्र, सेना, समृद्ध कोष, अन्तःपुर, रमणीय विहार-भूमि तथा समुद्र से घिरी हुई पृथ्वी को अनित्य जानकर ध्रुव बदरिकाश्रम गये। वहाँ पवित्र जल में स्नान करके अन्तःकरण को शुद्ध करके, आसन बाँधकर, प्राणायाम के द्वारा वायु को जीतकर और मन के द्वारा विषयों में जाती हुई इन्द्रियों को रोककर ध्रुव भगवान्

मैत्रेयउवाच—

८—सराजराजेनवराय चोदितो ध्रुवो महाभागवतो महामतिः।
हरौ सवव्रेऽस्खलितां स्मृतिं ययातरत्य यत्नेन दुरत्ययंतमः॥

९—तस्य प्रीतेम मनसाता दत्वेडविडासुतः। पश्यतोऽन्तर्दधे सोऽपि स्वपुरं प्रत्यपद्यत॥

१०—अथायजत यज्ञेश क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः। द्रव्य क्रिया देवताना कर्म कर्मफलप्रदं॥

११—सर्वात्मन्यच्युतेऽसर्वे तीव्रौघां भक्तिमुद्वहन्। ददर्शात्मनि भूतेषु तमेवावस्थितं विभुं॥

१२—तमेवं शीलसंपन्नं ब्रह्मण्यं दीनवत्सलं। गोप्तारं धर्मसेतूनां मेनिरे पितरं प्रजा॥

१३—षट्त्रिंशद्वर्ष साहस्रं शशास क्षितिमंडलं। भोगैः पुण्यक्षयं कुर्वन्नभोगै रशुभक्षयं॥

१४—एवं बहुसवं कालं महात्मा विचलेंद्रियः। त्रिवर्गौपयिकं नीत्वा पुत्रायादान्नृपासनं॥

१५—मन्यमान इदं विश्वं मायारचितमात्मनि। अविद्या रचितं स्वप्न गन्धर्व नगरोपमं॥

१६—आत्मस्त्र्यपत्य सुहृदो बलमृद्धकोश मंतःपुर परिविहार भुवश्च रम्याः।
भूमंडलं जलधि मेखलमाकलय्य कालोपसृष्ट मितिसप्रययौ विशालां॥

का ध्यान करने लगे। अनन्तर उन्हें ध्यान के द्वारा अभेददृष्टि प्राप्त हुई और समाधि में रहते हुए उन्होंने स्थूलरूप का त्याग कर दिया। निरन्तर भगवान् में भक्ति का प्रवाह प्रवाहित करने से, आनन्दाश्रु से बार-बार उनका हृदय पुलकित होने लगा हृदय पिघलने लगा, शरीर में रोमाञ्च हो आया और देहाभिमान से मुक्त हो जाने के कारण वे अपने आपको भूल गये, अर्थात् भगवच्चरणारविन्द में तल्लीन हो गये। ध्रुव ने आकाश से उतरते हुए एक उत्तम विमान को देखा। उसका प्रकाश दसों दिशाओं में फैल रहा था, जैसे चन्द्रमा उदित हुआ हो। अनन्तर चार भुजाओं से युक्त, श्यामवर्ण, किशोर वय वाले, लाल कमल के समान नेत्रवाले, गदा को पृथ्वी पर टेके हुए, सुन्दर वस्त्र वाले तथा किरीट, हार, अङ्गद और सुन्दर कुण्डल धारण किये हुए दो देव-प्रवर दीख पड़े। उन दोनों को भगवान् के अनुचर तथा पार्षदों में प्रधान जानकर घबराहट के कारण ध्रुव पूजा आदि का क्रम भूल गये और केवल भगवान् का नाम लेते हुए उन्होंने हाथ जोड़कर उन दोनों को प्रणाम किया। जिन्होंने भगवान् के चरणों में अपना हृदय लगाया था, जो हाथ जोड़कर खड़े थे और अत्यन्त नम्रता के कारण जिन्होंने सिर झुका दिया था, ऐसे ध्रुव के पास भगवान् के प्रिय वे सुनन्द और नन्द आये तथा हँसते हुए बोले ॥ ८-२२ ॥

सुनन्द और नन्द बोले—हे राजा! तुम्हारा कल्याण हो। सावधान होकर हमारी बातें सुनो। पाँच वर्ष की अवस्था में तपस्या के द्वारा तुमने जिस भगवान् को प्रसन्न किया था,

---

१७—तस्यां विशुद्धकरणः शिववार्विगाह्य बध्वासनं जितमरुन्मनसाहृताक्षः।
स्थूले दधार भगवत्प्रतिरूप एतद् ध्यायंस्तदव्यवहितो व्यसृजत्समाधौ ॥

१८—भक्तिं हरौ भगवति प्रवहन्नजस्र मानंदवाष्प कलया मुहुरर्द्यमानः।
विक्लिद्यमान हृदयः पुलकाचिताङ्गो नात्मान मस्मरदसाविति मुक्तलिंगः ॥

१९—स ददर्श विमानाग्र्यं नभसोऽवतरद्ध्रुवः। विभ्राजयद्दश दिशो राकापति मिवोदित ॥

२०—तत्रानुदेव प्रवरौ चतुर्भुजौ श्यामौ किशोरावरुणाम्बुजेक्षणौ।
स्थितावपष्टभ्यगदां सुवाससौ किरीट हारांगद चारुकुंडलौ ॥

२१—विज्ञायतावुत्तमगाय किंकरावभ्युत्थितः साध्वसविस्मृतक्रमः।
ननाम नामानि गृणन्मधुद्विषः पार्षत्प्रधानाविति संहतांजलिः॥

२२—तं कृष्णपादाभि निविष्टचेतसं बद्धांजलिं प्रश्रयनम्र कंधरं।
सुनंद नंदावुपसृत्य सस्मित प्रत्यूचतुः पुष्करनाभ संमतौ ॥

सुनंदनंदावूचतुः—

२३—भोभो राजन्सुभद्रं ते वाचं नोऽवहितः शृणु। यः पंचवर्षस्तपसा भवान्देव मतीतृपत् ॥

समस्त जगत् के पालक हम उन्हीं भगवान् के पार्षद हैं और तुम्हे भगवान् के चरणों मे ले चलने के लिए यहाँ आये हैं। किसीको प्राप्त न होने वाला विष्णु का पद तुम्हें मिला है, जिसे सप्तर्षि आदि भी नहीं पा सके और केवल नीचे रहकर जिसे देखा करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा आदि ग्रह, नक्षत्र और तारे जिसकी प्रदक्षिणा किया करते हैं, ऐसे विष्णुलोक में तुम चलो। हे अङ्ग! जिसे तुम्हारे पूर्वजों अथवा अन्य किसीने कभी प्राप्त नहीं किया, ऐसे समस्त जगत् के वन्दनीय विष्णु के परमपद को तुम प्राप्त करो। हे आयुष्मन्! पुण्य-श्लोक! भगवान् ने यह उत्तम विमान तुम्हारे लिए भेजा है, तुम इस पर बैठो ॥२३,२७॥

मैत्रेय बोले—इस प्रकार भगवान् के पार्षदों के मधुर वचन सुनकर ध्रुव ने स्नानादि से निवृत्त होकर नित्यकर्म किये और अलङ्कृत होकर मुनियों को प्रणाम किया तथा उनसे आशीर्वाद पाया। ध्रुव ने सुवर्ण के समान कान्तिमान रूप धारण किया। उन्होंने उस विमान की प्रदक्षिणा और पूजा की, पार्षदों की वन्दना की और पुनः विमान पर बैठना चाहा, इतने मे ही उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने यमराज को आया हुआ देखा। मृत्यु के सिर पर पैर रखकर उन्होंने उस अद्भुत विमान पर आरोहण किया। ध्रुव के विमान पर बैठने पर दुन्दुभि, मृदङ्ग और पणव आदि बाजे बजने लगे, मुख्य-मुख्य गन्धर्व गाने लगे और फूलों की वर्षा होने लगी। स्वर्गलोक की ओर अग्रसर होते हुए ध्रुव ने सोचा कि मैं दीना जननी को छोड़कर दुर्गम स्वर्ग मे कैसे जाऊँगा? सुनन्द और नन्द ध्रुव के मन का यह असमञ्जस जान गये और उन्होंने विमान के द्वारा ध्रुव के पहले ही स्वर्ग में जाती हुई ध्रुव की

२४—तस्याखिल जगद्धातु रावादेवस्य शार्ङ्गिणः। पार्षदा विहसम्प्राप्तौ नेतु त्वा भगवत्पदं ॥

२५—सुदुर्जयं विष्णुपद जितं त्वया यत्सूरयोऽप्राप्य विचक्षतेपरं।

आतिष्ठ तच्च द्र दिवाकरादयो ग्रहर्क्षतारा: परियति दक्षिणं ॥

२६—अनास्थित ते पितृभिरन्यैरप्यग कर्हिचित्। आतिष्ठ जगतां वद्य तद्विष्णोः परमपद ॥

२७—एतद्विमान प्रवर उत्तमश्लोक मौलिना। उपस्थापित मायुष्मन्नधिरोढुं त्वमर्हसि ॥

मैत्रेयउवाच—

२८—निशम्य वैकुठनियोज्य मुख्ययोर्मधुच्युता वाच मुरुक्रमप्रियः।

कृताभिषेकः कृतनित्यमगलो मुनीन्प्रणम्याशिष मभ्यवादयत् ॥

२९—परीत्याभ्यर्च्य धिष्ण्याग्र्य पार्षदावभिवद्य च। इयेष तदधिष्ठातु बिभ्रद्रूप हिरण्मयं ॥

३०—तदोत्तानपदः पुत्रो ददर्शांतक मागत। मृत्योर्मूर्ध्नि पद दत्वा आरुरोहाद्भुत गृह ॥

३१—तदा दुन्दुभयो नेदुर्मृदग पणवादयः। गंधर्व मुख्याः प्रजगुः पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥

३२—सच स्वर्लोक मारोक्ष्यन्सुनीतिं जननीं ध्रुवः। अन्वस्मरदगं हित्वा दीनां यास्ये त्रिविष्टपं ॥

माता को दिखला दिया। रास्ते मे ध्रुव ने विमानों मे बैठे हुए देवताओं को देखा, जो उनकी प्रशंसा कर रहे थे और फूल बरसा रहे थे। अनन्तर ध्रुव ने ग्रहों को देखा। उस देव-विमान के द्वारा ध्रुव ने त्रैलोक्य और सप्तर्षि-मण्डल को पार किया और उससे ऊपर जिसकी ध्रुवगति है, ऐसे विष्णु के पद को प्राप्त किया। वह अपनी प्रभा से स्वयं प्रकाशित है तथा उसके प्रकाश से तीनों लोक प्रकाशित होते हैं। जो लोग प्राणियों पर दया नहीं रखते, वे उस लोक को नहीं पाते, किन्तु वे ही लोग वहाँ स्थान पाते हैं जो सदा प्राणियों की भलाई मे लगे रहते हैं। शान्त, सब प्राणियों में समान दृष्टि रखनेवाले, शुद्ध, सब प्राणियों को प्रसन्न रखने वाले और भगवान् को ही प्रिय बन्धु समझने वाले अनायास ही भगवान् के पद को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार उत्तानपाद के पुत्र भगवान् के भक्त ध्रुव ने तीनों लोकों के निर्मल चूड़ा-मणि का स्थान प्राप्त किया। जिसमे पिरोया हुआ, अत्यन्त वेगशील यह ज्योतिश्चक्र उसके चारों ओर घूमा करता है। जैसे खूँटे में बंधे बैल उसके चारों ओर घूमा करते हैं। ध्रुव की ऐसी महिमा देखकर भगवान् नारद ऋषि ने प्रचेतसाओं के यज्ञ मे वीणा बजाते हुए, उनके सम्बन्ध का श्लोक गाया था ॥ ३८, ४० ॥

नारद बोले—पतिव्रता सुनीति के पुत्र ध्रुव ने तपस्या के प्रभाव से जो गति पायी, अनेक उपाय करने पर भी वह गति ब्रह्मर्षियों तक को नहीं मिलती, फिर राजागण उसे कैसे पा सकते हैं? सौतेली माता के वचन-बाणों से विद्ध होकर, दुखी हृदय से ध्रुव ने पाँच ही

३३—इति व्यवसित तस्य व्यवसीय सुरोत्तमौ। दर्शयामासतुर्देवीं पुरो यानेन गच्छतीं ॥

३४—तत्रतत्र प्रशसद्भिः पथि वैमानिकैः सुरैः। अवकीर्यमाणो ददृशे कुसुमैः क्रमशोग्रहान् ॥

३५—त्रिलोकीं देवयानेन सोऽतिव्रज्यमुनीनपि। परस्ताद्यन्ध्रुवगतिर्विष्णोः पद मयाम्यगात् ॥

३६—यद् भ्राजमान स्वरुचैव सर्वतो लोकास्त्रयो ह्यनुविभ्राजत एते।

यन्नाव्रजन् जतुषु येऽननुग्रहा व्रजति भद्राणि चरति येऽनिश ॥

३७—शान्ताः समदृशः शुद्धाः सर्व भूतानुरञ्जनाः। यान्त्यञ्जसाऽच्युत पद मच्युतप्रिय बान्धवाः॥

३८—इत्युत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः कृष्णपरायणः। अभूत्त्रयाणा लोकाना चूडामणि रिवामलः ॥

३९—गभीर वेगो निमिष ज्योतिषा चक्रमाहित। यस्मिन्भ्रमति कौरव्य मेढ्यामिव गवागणः ॥

४०—महिमान विलोक्यास्य नारदो भगवानृषिः। आतोद्यं वितुदन् श्लोकान्सत्रेऽगायत्प्रचेतसा॥

नारदउवाच—

४१—नूनं सुनीतेः पतिदेवताया स्तपः प्रभावस्य सुतस्य तां गति।

दृष्ट्वाऽभ्युपायानपि वेदवादिनो नवाधिगंतु प्रभवति किंनृपाः ॥

वर्ष की अवस्था में वन मे जाकर मेरे उपदेश के अनुसार भगवान् को वशीभूत कर लिया, जो भगवान् अजित होते हुए भी अपने भक्तों के गुण से हार जाते हैं। पाँच या छः वर्ष की अवस्था में, थोड़े ही समय मे भगवान् को प्रसन्न करके ध्रुव ने उनका पद पाया था, उस पद को पाने की इच्छा करने मे भी अन्य क्षत्रियों को बहुत समय लगेगा ॥ ४१, ४२ ॥

मैत्रेय बोले—यशस्वी ध्रुव का चरित्र जो तुमने मुझसे पूछा था, वह मैंने तुम्हें सब बतलाया। यह चरित्र सज्जनों को प्रिय है। धन, यश, आयुष्य, कल्याण, स्वर्ग, अविचल पद और आनन्द के देने वाले, पापों को नष्ट करने वाले, प्रशंसनीय और महापवित्र, भगवद्भक्त ध्रुव के इस चरित्र को जो लोग श्रद्धा से सुनते हैं, उन्हें सब क्लेशों को दूर करने वाली भगवान् की भक्ति प्राप्त होती है। इस चरित्र के सुनने वाले जो लोग महत्त्व की इच्छा करते हैं, उन्हें इसके द्वारा उसकी प्राप्ति का उपाय मिल जाता है, जो लोग शीलता आदि गुण चाहते हैं, उन्हें ये गुण मिलते हैं, जो लोग तेज चाहते है, उन्हें तेज और जो मान चाहते हैं, उन्हे मान मिलता है। पवित्र कीर्तिवाले ध्रुव का यह महान् चरित्र ब्राह्मणों की सभा में प्रातः-सायं कहना चाहिए। पूर्णमासी, अमावस्या, द्वादशी अथवा जिस दिन श्रवण नक्षत्र हो, दिन क्षय में, व्यतिपात योग में, सक्रान्ति या रविवार के दिन, निष्काम होकर, भगवद्भक्ति के साथ जो लोग श्रद्धा रखने वाले व्यक्तियों को यह कथा सुनाते हैं, वे स्वयं अपने में सन्तुष्ट होने के कारण सिद्धि प्राप्त करते हैं। जो लोग अज्ञानी पुरुषों को भगवान् के मार्ग मे अमृतरूप ज्ञान

४२—यः पंचवर्षो गुरुदारवाक् शरैर्भिन्नेनयातो हृदयेन दूयता।
वनं मदादेश करोऽजित प्रभुं जिगायतद्भक्त गुणैः पराजित ॥

४३—यः क्षत्रबंधु र्भुवितस्याधिरूढ मन्वारुरुक्षे दपि वर्षपूगैः।
षट् पंचवर्षो यदहोभिरल्पैः प्रसाद्य वैकुंठ मवाप तत्पद ॥

मैत्रेयउवाच—

४४—एतत्तेऽभिहित सर्वं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया। ध्रुवस्योद्दाम यशसश्चरितं संमत सतां ॥
४५—धन्य यशस्य मायुष्य पुण्य स्वस्त्ययनं महत्। स्वर्ग्यं ध्रौव्य सौमनस्य प्रशस्य मघमर्षणं ॥
४६—श्रुत्वैतच्छ्रद्धयाऽभीक्ष्ण मच्युतप्रिय चेष्टित। भवेद्भक्तिर्भगवति ययास्यात् क्लेश संक्षयः ॥
४७—महत्त्वमिच्छता तीर्थं श्रोतुः शीलादयो गुणाः। यत्र तेजस्तदिच्छूना मानो यत्र मनस्विना ॥
४८—प्रयतः कीर्तयेत्प्रात समवाये द्विजन्मनां। सायच पुण्यश्लोकस्य ध्रुवस्य चरित महत् ॥
४९—पौर्णमास्या सिनीवाल्या द्वादश्यां श्रवणेऽथवा। दिनक्षये व्यतीपाते संक्रमेर्के दिनेपिवा ॥
५०—भावयेच्छ्रद्दधानाना तीर्थं पाद पदाश्रयः। नेच्छंस्तत्रात्मनात्मान संतुष्ट इति सिद्ध्यति ॥

देते हैं, उस दयालु और दीनों के स्वामी पर देवतागण अनुग्रह करते हैं । हे विदुर! जिनका विशुद्ध कर्म विख्यात है, ऐसे ध्रुव का यह चरित्र मैंने तुमसे कहा, जो ध्रुव बाल्यावस्था में ही खिलौनों और माता के घर को छोड़कर भगवान् की शरण गया था ॥ ५१, ५२ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कध का बारहवाँ अध्याय समाप्त

---:o:---

तेरहवाँ अध्याय

वेन की दुष्टता से अग का वन-गमन

सूत बोले—मैत्रेय के द्वारा ध्रुव की वैकुण्ठ-पद-प्राप्ति की कथा सुनकर विदुर के मन में भगवान् के प्रति भक्ति बढ़ी, अतः वे पुन. मैत्रेय से पूछने लगे ॥ १ ॥

विदुर बोले—हे सुव्रत! प्रचेतस कौन थे? किसके पुत्र थे? किसके वश मे हुए थे? और वे कहाँ यज्ञ कर रहे थे? देवदर्शन नारद बड़े भक्त हैं। उन्होंने भगवान् पूजनरूप क्रियायोग पञ्चरात्र नामक ग्रन्थ में बतलाया है। धर्मपरायण प्रचेतसों के द्वारा भगवान् यज्ञ-

---

५१—ज्ञान मज्ञान तत्त्वाय यो दद्यात्सत्पथेऽमृत । कृपालोर्दीननाथस्य देवास्तस्यानु गृह्णते ॥

५२—इदं मयातेऽभिहित कुरूद्वह ध्रुवस्य विख्यात विशुद्ध कर्मणः ।
हित्वाऽर्भकः क्रीडनकानि मातुर्गृह च विष्णु शरणंयाजगाम ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेध्रुवचरितंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सूतउवाच—

१—निशम्य कौषारविणोपवर्णितं ध्रुवस्य वैकुंठ पदाधिरोहणं ।
प्ररूढ भावो भगवत्यधोऽक्षजे प्रष्टुं पुनस्तं विदुरः प्रचक्रमे ॥

विदुरउवाच—

२—के ते प्रचेतसो नाम कस्यापत्यानि सुव्रत । कस्यान्ववाये प्रख्याता. कुत्र वासत्र मासते ॥

पुरुष की जहाँ पूजा हो रही थी, वहाँ परमभक्त नारद ने भगवान् की जो कुछ कथा कही थी, वह मैं सुनना चाहता हूँ। ब्रह्मन्! वह सब विस्तार से आप मुझसे कहें॥ ३, ५॥

मैत्रेय बोले—ध्रुव के उत्कल नामक पुत्र ने पिता के वन चले जाने पर साम्राज्य-लक्ष्मी और पिता के राज-सिंहासन की इच्छा नहीं की। वे जन्म से ही शान्त-स्वभाव थे, सङ्गहीन थे, समदर्शी थे और समस्त प्राणियों में अपने को तथा अपने में समस्त प्राणियों को देखनेवाले थे। वे सुखरूप, सर्व क्लेशरहित, ज्ञानमय, आनन्दमय और मोक्षस्वरूप परमात्मा ब्रह्म को जानते थे और अखण्डित योगाग्नि से उनकी समस्त वासनाएँ भस्म हो गयी थीं, अत: वे आत्मस्वरूप से भिन्न और कुछ न देखते थे। सर्वज्ञ होने के कारण उनकी बुद्धि बालकों के समान नहीं थी। वे ज्वाला विहीन अग्नि के समान शान्त थे, अतः मार्ग में बालक उन्हें जड़, अन्धा, बहरा, उन्मत्त और गूँगा समझते थे। कुल के वृद्ध पुरुषों और मन्त्रियों ने उन्हें जड़ के समान उन्मत्त जानकर भ्रमि के पुत्र वत्सर को जो उत्कल से छोटा था, राज्य पर बैठाया। वत्सर की रानी स्वर्वीथि ने पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, ऊर्ज, वसु और जय नाम के छः पुत्र उत्पन्न किये। पुष्पार्ण की दो रानियाँ थीं—प्रभा और दोषा। उनमें प्रभा के प्रातर्, मध्यन्दिन और साय नाम के पुत्र हुए और दोषा के प्रदोष, निशीथ और व्युष्ट नाम के। व्युष्ट की स्त्री का नाम पुष्करिणी था। उससे सर्वतेजा नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। सर्वतेजा की आकूति नामक स्त्री के गर्भ से चक्षु नामक पुत्र हुआ, जिसने मनु की पदवी पायी। इस चक्षु की स्त्री नड्वला के पुरु, कुत्स, त्रित, द्युम्न,

---

३—मन्ये महाभागवतं नारदं देवदर्शनं। येनप्रोक्तः क्रियायोगः परिचर्या विधिर्हरेः॥

४—स्वधर्मशीलैः पुरुषो भगवान्यज्ञ पूरुष.। इज्यमानो भक्तिमता नारदेनेरितः किल॥

५—यास्ता देवर्षिणा तत्र वर्णिता भगवत्कथाः। मह्यं शुश्रूषवे ब्रह्मन्कार्त्स्न्येनाचष्टु मर्हसि॥

मैत्रेयउवाच—

६—ध्रुवस्य चोत्कलः पुत्रः पितरि प्रस्थिते वनं। सार्वभौम श्रिय नैच्छदधिराजासनं पितुः॥

७—स जन्मनोपशान्तात्मा निःसङ्गः समदर्शन.। ददर्श लोके विततमात्मान लोकमात्मनि॥

८—आत्मानं ब्रह्मनिर्वाणं प्रत्यस्तमित विग्रहं। अवबोध रसैकात्म्य मानदमनुसन्ततं॥

९—अव्यवच्छिन्न योगाग्नि दग्ध कर्ममलाशयः। स्वरूप मवरुंधानो नात्मनोऽन्य तदैक्षत॥

१०—जडान्ध बधिरोन्मत्त मूकाकृतिरतन्मतिः। लक्षित. पथि बालाना प्रशान्तार्चि रिवानल.॥

११—मत्वा तं जडवन्मत्तं कुलवृद्धा. समन्त्रिणः। वत्सरं भूपतिं चक्रुर्यवीयासं भ्रमेः सुतं॥

१२—स्वर्वीथिर्वत्सरस्येष्टा भार्याऽसूत षडात्मजान्। पुष्पार्णं तिग्मकेतुं च इषमूर्जं वसुं जयं॥

१३—पुष्पार्णस्य प्रभा भार्या दोषा चद्वे बभूवतुः। प्रातर्मध्यन्दिनं सायमिति ह्यासन्प्रभा सुताः॥

१४—प्रदोषो निशीथोव्युष्ट इति दोषासुता त्रय। व्युष्ट सुत पुष्करिण्यां सर्वतेज समादधे॥

सत्यवान, धृतव्रत, अग्निष्टोम, अतिरात्र, प्रद्युम्न, शिवि और उल्मुक नाम के ग्यारह पवित्र पुत्र हुए। उमुल्क ने अपनी पुष्करिणी नामक स्त्री के गर्भ से अंग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अंगिरा और गय नामक छः उत्तम पुत्र उत्पन्न किये। अंग की सुनीथा नामकी पत्नी ने वेन नामक एक दुष्ट पुत्र उत्पन्न किया, जिसकी दुःशीलता से तङ्ग आकर वह राजर्षि अङ्ग नगर छोड़कर चले गये। हे विदुर! जिनकी वाणी ही वज्र के समान है, उन मुनियों ने कुपित होकर वेन को शाप दिया। पुनः शाप के द्वारा उसकी मृत्यु हो जाने पर उन लोगों ने उसके दाहिने हाथ का मन्थन किया। वेन के मर जाने पर लोग अराजक हो गये। प्रजा चोर-डाकुओं के द्वारा पीड़ित होने लगी, तब (वेन के दाहिने हाथ के मन्थन से) नारायण के अंश से उत्पन्न हुए पृथु भूमण्डल के आदि राजा हुए॥ ६, २०॥

विदुर बोले—उन शीलसम्पन्न, साधु स्वभाव, ब्राह्मणों के सत्कार करने वाले महात्मा अङ्ग का पुत्र ऐसा दुष्ट कैसे हुआ, जिसके कारण खिन्न होकर उन्हें वन चला जाना पड़ा? धर्म जानने वाले मुनियों ने किस अपराध से दण्डव्रतधारी अर्थात् शासन करने वाले वेन को ब्रह्मदण्ड दिया? पापी होने पर भी राजा का अपमान प्रजा को न करना चाहिए, क्यों कि वह अपने तेज से लोकपालों की शक्ति धारण करता है। हे श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञ! सुनीथा के पुत्र अङ्ग की यह कथा आप मुझे से कहें, क्योंकि मैं आपका भक्त हूँ और यह कथा सुनने की श्रद्धा रखता हूँ॥ २१, २४॥

मैत्रेय बोले—राजर्षि अङ्ग ने अश्वमेध नामक महायज्ञ किया था। ब्रह्मवेत्ताओं के द्वारा

१५—सचक्षुः सुतमाकूत्या पत्न्या मनुमवापह। मनोरसूत महिषी विरजान्नड्वला सुतान्॥

१६—पुरु कुत्सन्नित द्युम्न सत्यवत धृतव्रत। अग्निष्टोम मतीरात्र प्रद्युम्न शिवि मुल्मुक॥

१७—उल्मुकोऽजनयत्पुत्रान् पुष्करिण्या षडुत्तमान्। अग सुमनस ख्याति क्रतु मगिरसं गय॥

१८—सुनीथाऽगस्य या पत्नी सुषुवे वेन मुल्वणं। यद्दौः शील्यात्स राजर्षिर्निर्विण्णो निरगात्पुरात्॥

१९—यमग शेपुः कुपिता वाग्वज्रा मुनयः किल। गतासोस्तस्य भूयस्ते ममंथुर्दक्षिण कर॥

२०—अराजके तदा लोके दस्युभिः पीडिताः प्रजा.। जातो नारायणांशेन पृथुराद्यः क्षितीश्वरः॥

विदुरउवाच—

२१—तस्य शीलनिधे. साधोर्ब्रह्मण्यस्य महात्मनः। राज.कथमभूत्दुष्टा प्रजा यद्विमना ययौ॥

२२—किंवांऽहोवेन मुद्दिश्य ब्रह्मदड मयूयुजन्। दडव्रत धरे राज्ञि मुनयो धर्मकोविदाः॥

२३—नावध्येयः प्रजापालः प्रजाभिरघवानपि। यदसौ लोकपालानां बिभर्त्योजः स्वतेजसा॥

२४—एतदाख्याहि मे ब्रह्मन्सुनीथात्मज चेष्टित। श्रद्दधानाय भक्ताय त्व परावरवित्तमः॥

मैत्रेयउवाच—

२५—अगोऽश्वमेध राजर्षि राजहार महाक्रतु। नाजग्मुर्देवता स्तस्मिन्नाहूता ब्रह्मवादिभि.॥

बुलाये जाने पर भी उसमें देवतागण नहीं आये। इससे ऋत्विजों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने राजा से कहा—राजन्! आपके द्वारा दी हुई हवि देवता ग्रहण नहीं करते। यह हवि उत्तम है। आपने श्रद्धा के द्वारा उसे दिया है। व्रत पालन करनेवाले हमलोगों ने जो मन्त्र पढ़े हैं, वे भी अन्यर्थ हैं। देवता यज्ञ आदि कर्मों के साक्षी हैं। दिये हुए अपने-अपने भाग वे क्यों नहीं लेते, क्यों वे इसकी उपेक्षा कर रहे हैं, यह हम लोग नहीं जानते। ॥ २५, २८ ॥

मैत्रेय बोले—इस प्रकार ब्राह्मणों की बातें सुनकर यजमान अङ्ग का मन बहुत दुखी हुआ। ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर, सदस्यों से इस विषय में पूछने के लिए उन्होंने बात कही, अर्थात् यज्ञ में मौन ग्रहण किये रहने पर भी ब्राह्मणों की अनुमति लेकर वे बोले—हे सदस्यगण! बुलाये हुए देवता इस यज्ञ में नहीं आते और न दिये हुए सोम-पात्र आदि ही ग्रहण करते हैं। आप लोग बतलावें कि मैंने कौन-सा न करने-योग्य कार्य किया है? ॥ २९, ३० ॥

सदस्यगण बोले—हे नरदेव! इस जन्म का आपका कोई भी पाप नहीं है, किन्तु पूर्व-जन्म का कुछ पाप है जिसके कारण सब गुणों से युक्त होते हुए भी तुम सन्तानहीन हो। इस-लिए तुम अपने को पुत्रवान् करने का यत्न करो। इसी इच्छा से यदि तुम भगवान् का पूजन करोगे तो यज्ञभोक्ता भगवान् तुम्हें तुम्हारा इष्ट अर्थात् पुत्र देंगे क्योंकि तुम पुत्र की इच्छा रखने वाले हो। ऐसा होने पर देवतागण भी अपने भाग ग्रहण कर लेंगे, क्योंकि जब तुम सन्तान के लिए भगवान् की पूजा करोगे तो उस पूजा में भगवान् के साथ अन्य देवता भी स्वयं ही आवेंगे। लोगों की जो-जो इच्छा होती है, वह सब भगवान् पूरी करते हैं। मनुष्य जिस प्रकार उनकी आराधना करता है, वैसाही उसे फल प्राप्त होता है ॥ ३१, ३४ ॥

२६—तमूचुर्विस्मिता स्तत्र यजमान मथर्त्विजः। हवींषि हूयमानानि नते गृह्ण ति देवताः ॥
२७—राजन्हवींष्य दुष्टानि श्रद्धयासादितानि ते। छंदास्ययात यामानि योजितानि धृतव्रतैः ॥
२८—न विदामेह देवानां हेलनं वयमण्वपि। यन्नगृह्णंति भागान्स्वान् ये देवाः कर्म साक्षिणः ॥
मैत्रेयउवाच—
२९—अंगो द्विजवचः श्रुत्वा यजमानः सुदुर्मनाः। तत्प्रष्टु व्यसृजद्वाचं सदस्या स्तदनुज्ञया ॥
३०—नागच्छत्याहुता देवा न गृह्ण ति ग्रहानिह। सदसस्पतयो ब्रूत किमवद्यं मया कृतं ॥
सदसस्पतय ऊचुः—
३१—नरदेवेह भवतो नाघं तावन्मनाक् स्थितं। अस्त्येकं प्राक्तनमघं यदिहेदृक् त्वमप्रजः ॥
३२—तथा साधय भद्रंते आत्मानं सुप्रजं नृप। इष्टस्ते पुत्रकामस्य पुत्रं दास्यति यज्ञभुक् ॥
३३—तथा स्वभागधेयानि ग्रहीष्यति दिवौकसः। यद्यज्ञ पुरुषः साक्षादपत्याय हरिर्वृतः ॥
३४—तांस्तान्कामान्हरिर्दद्याद्यान् यान्कामयते जनः। आराधितो यथैवैष तथा पुंसां फलोदयः ॥

मैत्रेय बोले—ब्राह्मणों ने यह निश्चय करके राजा के सन्तान की इच्छा से, यज्ञरूप से पशुओं में प्रविष्ट विष्णु भगवान् के लिए पुरोडाश का हवन किया। उस अग्नि मे से सुवर्ण की माला और श्वेत वस्त्र धारण किये हुए एक पुरुष निकला, जो सुवर्ण के पात्र में सिद्ध पायस लिए हुए था। ब्राह्मणों की आज्ञा से उन उदार बुद्धि राजा ने अञ्जलि में पायस को ले लिया, उसे सूँघा और प्रसन्न होकर अपनी पत्नी को दे दिया। उस पुत्रदायक पायस को खाकर, ऋतु-स्नान करके रानी ने पति से गर्भ धारण किया और समय पर एक पुत्र सन्तान उत्पन्न किया। वह बालक बचपन से ही अधर्म के अंश से उत्पन्न अपने नाना मृत्यु के अनुकूल हुआ, अत. वह अधार्मिक हुआ। धनुष लेकर वह वन में आखेट करने के लिए जाता और वहाँ साधुओं, मृगों तथा दीनों की हत्या करता था, अतः उसे देखते ही लोग कहने लगते थे कि यह वेन आया। निर्दय और अत्यन्त क्रूर यह वेन क्रीड़ास्थान में खेलते हुए अपने समवयस्क बालकों को पशु की तरह मार डालता था। राजा ने पुत्र की यह दुष्टता देखकर तरह-तरह के उपायों से उसका शासन किया, पर जब किसी तरह उसे न सुधार सके तो मन-ही-मन बड़े दुखी हुए। जो गृहस्थ सन्तानहीन हैं, उन्होंने भलीभाँति भगवान् की पूजा की है, क्योंकि उन्हें दुष्ट सन्तान के द्वारा होने वाला असह्य कष्ट नहीं भोगना पड़ता। अपकीर्ति,महान् अधर्म, सबके साथ विरोध और अत्यन्त पीड़ा जिसके कारण होती है और जिसके लिए दुःखदायी घर में रहना पड़ता है, उस प्रजा नामक मोह-बन्धन को कौन पण्डित पुरुष अनुकूल समझेगा ? शोक के स्थान सत्पुत्र की अपेक्षा कुपुत्र को ही मैं अच्छा समझता हूँ, क्योंकि

३५—इति व्यवसिता विप्रास्तस्य राज्ञः प्रजातये। पुरोडाशं निरवपन् शिपिविष्टाय विष्णवे ॥

३६—तस्मात्पुरुष उत्तस्थौ हेममाल्यमलाम्बरः। हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धमादाय पायसं ॥

३७—स विप्रानुमतो राजा गृहीत्वाऽञ्जलिनौदनं। अवघ्राय मुदायुक्त प्रादात्पत्न्या उदारधीः ॥

३८—सातत्पुंसवनं राज्ञी प्राश्यतौ पत्यु रादधे। गर्भ काल उपावृत्ते कुमारं सुषुवेऽप्रजा ॥

३९—स बाल एव पुरुषो मातामह मनुव्रत.। अधर्मांशोद्भव मृत्यु तेनाभवदधार्मिकः ॥

४०—सशरासन मुद्यम्य मृगयुर्वनगोचर.। हति साधून्मृगान्दीनान् वेनोऽसावित्यरौज्जन. ॥

४१—आक्रीडे क्रीडतो बालान्वयस्यानति दारुणः। प्रसह्य निरनुक्रोशः पशुमार ममारयत् ॥

४२—त विचक्ष्य खल पुत्र शासनैर्विविधैर्नृपः। यदा नशासितु कल्पो भृशमासीत्सुदुर्मना. ॥

४३—प्रायेणाभ्यर्चितो देवो येऽप्रजा गृहमेधिनः। कदपत्य भृत दु.खं येन विंदंति दुर्भरं ॥

४४—यतः पापीयसी कीर्ति रधर्मश्च महान्नृणा। यतो विरोधः सर्वेषा यत आधिरनंतकः ॥

४५—कस्त प्रजाऽपदेशं वै मोहबन्धन मात्मन.। पडितो बहुमन्येत यदर्था. क्लेशदा गृहाः ॥

४६—कदपत्य वरं मन्ये सदपत्याच्छुचापदात्। निर्विद्येत गृहान्मर्त्यो यत् क्लेशनिवहा गृहा. ॥

वह दुःखदायी घर से वैराग्य उत्पन्न कराने वाला होता है। इस प्रकार उन अंग राजा के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। रात मे उन्हे नींद नहीं आयी। अतः आधी रात के समय, वेन की माता को सोती हुई छोड़कर वे समृद्धियुक्त घर से चले गये। उनका जाना किसीको मालूम न हो सका। प्रजा, पुरोहित, मंत्री तथा अन्य हितमित्रों को जब यह बात मालूम हुई कि राजा विरक्त होकर चले गये हैं, तो वे शोक से अत्यन्त कातर हो गये और राजा को पृथ्वी पर चारों ओर ढूँढ़ने लगे, जैसे कुयोगी माया में छिपे हुए भागवान् को ढूँढ़ते हैं। वे लोग नगर के चारों ओर ढूँढ़कर हार गये, पर उन्हें राजा का पता न मिला। तब एकत्र हुए ऋषियों को प्रणाम करके, रोते हुए, उन लोगों ने राजा के न मिलने का वृत्तांत कह सुनाया ॥ ४५, ४६ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का तेरहवाँ अध्याय समाप्त

——:०#०:——

चौदहवाँ अध्याय

वेन का राज्याभिषेक और मृत्यु

मैत्रेय बोले—प्राणियों का कल्याण चाहने वाले ब्रह्मवादी भृगु आदि मुनियों ने देखा कि रक्षक के न होने से प्रजा पशु के समान उच्छृङ्खल होती जा रही है, अतः उन लोगों ने

४७—एवं स निर्विण्णमना नृपो गृहान्निशीथ उत्थाय महोदयोदयात्।
अलब्धनिद्रोऽनुपलक्षितो नृभिर्हित्वा गतो वेनसुवं प्रसुप्ताम् ॥

४८—विज्ञाय निर्विद्य गतं पतिं प्रजाः पुरोहितामात्यसुहृद्गणादयः।
विचिक्युरुर्व्यामतिशोककातरा यथा निगूढं पुरुषं कुयोगिनः ॥

४९—अलक्षयन्तः पदवीं प्रजापतेर्हतोद्यमाः प्रत्युपसृत्य ते पुरीम्।
ऋषीन्समेतानभिवन्द्य साश्रवो न्यवेदयन्पौरव भर्तृविप्लवम् ॥

इतिश्रीमागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कन्धेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

मैत्रेयउवाच—

१—भृग्वादयस्ते मुनयो लोकानां क्षेमदर्शिनः। गोप्तर्यसति वै नृणां पश्यतः पशुसाम्यताम् ॥

वेन की माता सुनीथा को बुलाकर, मन्त्रियों की सलाह न होते हुये भी, वेन का राज्याभिषेक किया। कठोर दण्ड देने वाले वेन को राज्य पर अभिषिक्त हुआ सुनकर सब चोर-डाकू छिप गये, जैसे साँप के भय से चूहे छिप जाते हैं। राज्यासन पर बैठकर वेन आठों विभूतियों को पाकर अहङ्कारी हो गया। अपने आप ही वह अपने को ऊँचा समझकर बड़ों का अपमान करने लगा। निरङ्कुश हाथी के समान मदान्ध और अभिमानी वेन आकाश और पृथ्वी को कंपाता हुआ; रथ पर बैठकर घूमता फिरता था। "ब्राह्मण लोग यज्ञ न करें, दान न दें और होम न करें" इस प्रकार चारों ओर ढिँढोरा पिटवाकर उसने सब धर्म-कार्य बन्द करवा दिये। दुर्वृत्त वेन के ये कार्य देखकर और लोगों के दुःखों को विचार कर एकत्रित हुए मुनियों ने कृपा कर के कहा—अहो! लोगों पर राजा और चोरों के द्वारा दोनों ओर से महान् कष्ट उपस्थित हुआ है, जैसे दोनों ओर से सुलगी हुई आग के द्वारा लकड़ी के बीच में स्थित चींटी आदि जीवों को कष्ट होता है। वेन राजा होने के योग्य नहीं था, फिर भी अराजकता के भय से इसे राजा बनाया गया। अब जब यह स्वयं भी भय का कारण हो गया तो लोगों का कल्याण कैसे हो? साँप को दूध पिलाकर पालना जैसे पालने वाले के लिए ही अनर्थ का कारण होता है, इसी प्रकार स्वभाव से ही दुष्ट सुनीथा के पुत्र वेन को प्रजा का पालक बनाया गया तो यह प्रजा को ही मारे डालता है। हम लोगों को इसे राजा बनाने का पाप न लगे; इसलिए हमें इसको समझाना चाहिए। जानते हुए भी इस बुरे आचरण वाले वेन को हम लोगों ने राजा बनाया था, अतः हमारे समझाने पर भी यदि वह अधर्मी हमारी बातें न सुनेगा तो लोगों के धिक्कार से

२—वीरमातर माहूय सुनीथा ब्रह्मवादिनः। प्रकृत्य समत वेन मभ्यषिंचन् पतिं भुवः॥

४—श्रुत्वा नृपासनगत वेनमत्युग्रशासन। निलिल्युर्दस्यव. सर्वे सर्पत्रस्ता इवाखवः॥

४—स आरूढ नृपस्थान उन्नद्धोऽष्ट विभूतिभि.। अवमेने महाभागा स्तब्धः संभावितः स्वतः॥

५—एवं मदाध उत्सिक्तो निरकुश इव द्विप.। पर्यटन् रथमास्थाय कपयन्निवरोदसी॥

६—नयष्टव्यं नदातव्यं नहोतव्य द्विजा. क्वचित्। इति न्यवारयद्धर्मं भेरी घोषेण सर्वशः॥

७—वेनस्यावेक्ष्य मुनयो दुर्वृत्तस्य विचेष्टित। विमृश्य लोकव्यसन कृपयोचुःस्म सत्रिणः॥

८—अहो उभयतः प्राप्त लोकस्य व्यसन महत्। दारुण्युभयतो दीप्ते इव तस्कर पालयोः॥

९—अराजक भयादेष कृतो राजाऽतदर्हणः। ततोऽप्यासीद्भय त्वद्य कथ स्यात्स्वस्ति देहिना॥

१०—अहेरिव पयः पोषः पोषकस्या प्यनर्थभृत्। वेन प्रकृत्यैव खलः सुनीथागर्भ सम्भवः॥

११—निरूपित. प्रजापालः सजिघांसति वै प्रजाः। तथाऽपि सांत्वयेमामुं नास्मास्तत्पातकं स्पृशेत्॥

१२—तद्विद्वद्भि रसद्वृत्तो वेनोऽस्माभिः कृतो नृपः। सान्त्वितो यदि नोवाच न ग्रहीष्यत्यधर्मकृत्॥

जलते हुए उस वेन को हमलोग अपने तेज से जला देंगे। जिनका क्रोध बहुत बढ़ गया था, ऐसे मुनियों ने आपस में इस प्रकार विचार किया और तब वेन के पास जाकर उनलोगों ने साम आदि के द्वारा उसे समझाते हुए यों कहा ॥ १, १३ ॥

मुनिगण बोले—हे महाराज! आपकी आयु, लक्ष्मी, बल और कीर्ति को बढ़ाने वाली जो बात हमलोग कहते हैं, उसे आप सुनें। जो लोग मन, वचन, काया और बुद्धि से धर्माचरण करते हैं, तो उस धर्म से उन्हें शोक-रहित लोकों की प्राप्ति होती है और जो लोग निष्काम होते हैं, उन्हें मोक्ष की भी प्राप्ति होती है। हे वीर! प्रजा के कल्याण का लक्षण-रूप वह धर्म आपके द्वारा नष्ट न हो, जिस धर्म के नष्ट होने पर राजा राज्यलक्ष्मी को खो देता है। हे राजन्! दुष्ट मन्त्रियों तथा चोर आदि के द्वारा प्रजा की रक्षा करने वाला तथा शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार कर लेने वाला राजा इह और परलोक में सुख प्राप्त करता है। जिसके देश और नगर में वर्णाश्रम की मर्यादा पालन करने वाले लोग अपने धर्म के अनुसार भगवान् का पूजन करते हैं, उस अपने शासन में स्थित राजा पर लोकों के रक्षक विश्वात्मा भगवान् प्रसन्न होते हैं। जगत् के स्वामियों के भी स्वामी उन भगवान् के सन्तुष्ट होने पर फिर अप्राप्य क्या रहता है, क्योंकि लोकपालों के सहित सब लोक आदर के सहित उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। हे राजन्! समस्त लोक, देवता और यज्ञ जिसमें निवास करते हैं, ऐसे वेदमय, द्रव्य-मय और तपोमय भगवान् का तथा तुम्हारे ही कल्याण के लिए जो अनेक प्रकार के यज्ञों से

१३—लोकधिकार सदग्ध दहिष्यामः स्वतेजसा। एव मध्यवसायैनं मुनयो गूढमन्यवः॥
उपव्रज्या ब्रुवन्वेनं सान्त्वइत्वा च सामभिः ॥

मुनयऊचुः—

१४—नृपवर्य निबोधैतद्यत्ते विज्ञापयाममो। आयुः श्रीबल कीर्तीना तव तात विवर्धन ॥
१५—धर्म आचरितः पुंसा वाङ्मनः काय बुद्धिभिः। लोकान्विशोकान्वितर त्यथानंत्य मसगिना ॥
१६—स ते माविनशेद्वीर प्रजाना क्षेमलक्षणः। यस्मिन्विनष्टे नृपति रैश्वर्यादवरोहति ॥
१७—राजन्नसाध्वमात्येभ्य श्चोरादिभ्यः प्रजा नृपः। रक्षन्यथा बलिं गृह्णन इह प्रेत्यच मोदते ॥
१८—यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान् यज्ञपूरुषः। इज्यते स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितै. ॥
१९—तस्य राज्ञो महाभाग भगवान्भूतभावनः। परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निज शासने॥
२०—तस्मिंस्तुष्टे किमप्राप्य जगतामीश्वरेश्वरे। लोकाः सपाला ह्येतस्मै हरंति बलिमादृताः ॥
२१—त सर्व लोकामर यज्ञसंग्रहं त्रयीमय द्रव्यमय तपोमयं।
यज्ञैर्विचित्रैर्यजतो भवायते राजन् स्वदेशाननुरोद्धु मर्हसि ॥

उन भगवान् की आराधना कर रहे हैं, ऐसे देशवासियों का अनुवर्तन तुम्हे करना चाहिए। हे वीर! तुम्हारे देश में ब्राह्मणगण यज्ञों के द्वारा देवताओं की पूजा करते है, जो देवता भगवान् के अंश हैं। सन्तुष्ट हुए देवता इच्छित फल देते हैं, अतः तुम्हे उनकी अवहेलना न करनी चाहिए ॥ १४, २२ ॥

वेन बोला—तुम लोग मूर्ख हो, जो अधर्म को धर्म समझ रहे हो। तुम लोग आजीविका देने वाले पति (मुझ) को छोड़कर जार (भगवान्) की उपासना करते हो। जो लोग राजारूपी ईश्वर की अवज्ञा करते हैं, उनका न इस लोक में कल्याण होता है, न परलोक में। यह भगवान् कौन है, जिसमें तुम लोग इतनी भक्ति रखते हो। जैसे दुराचारिणी स्त्री पति के प्रेम से दूर रह कर जार की भक्ति करती है, वैसी ही तुम्हारी यह भक्ति है। विष्णु, ब्रह्मा, सदाशिव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, पर्जन्य, कुबेर, चन्द्र, पृथ्वी, अग्नि और वरुण तथा इनके अतिरिक्त और जितने देवता हैं, जो वर और शाप दे सकते है, वे सभी राजा के शरीर में रहते हैं, अतः राजा ही सब देवताओं का रूप है। हे ब्राह्मणगण! तुमलोग ईर्ष्या छोड़कर यज्ञ आदि कर्मों के द्वारा मेरी ही पूजा करो, मुझे ही कर आदि दो। मेरे अतिरिक्त और कौन व्यक्ति तुम्हरा आराधनीय है? ॥ २३, २८ ॥

मैत्रेय बोले—वेन की मति भ्रष्ट हो गयी थी, उसका कल्याण नष्ट हो गया था, वह असत्पथ पर चलने वाला था, अतः उस पापी ने अनुनय करने वाले उन मुनियों की प्रार्थना स्वीकार नहीं की। हे विदुर! अपने को पण्डित समझने वाले वेन ने जब उन ब्राह्मणों का

२२—यज्ञेन युष्मद्विषये द्विजातिभिर्वितायमाने न सुराः कलाहरेः।
स्विष्टाः सुतुष्टाः प्रदिशन्ति वाञ्छितं तद्धेलनं नार्हसि वीर चेष्टितुं ॥

वेनउवाच—

२३—बालिशा बत यूयं वा अधर्मे धर्ममानिनः। ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते ॥
२४—अवजानन्त्यमीमूढा नृपरूपिणमीश्वरं। नानुविंदंति ते भद्र मिहलोके परत्रच ॥
२५—को यज्ञपुरुषो नाम यत्र वो भक्तिरीदृशी। भर्तृस्नेह विदूराणां यथा जारे कुयोषिता ॥
२६—विष्णुर्विरिंचो गिरिश इन्द्रो वायुर्यमो रविः। पर्जन्यो धनदः सोमः क्षितिरग्नि रपांपतिः ॥
२७—एते चान्येच विबुधाः प्रभवो वर शापयोः। देहे भवंति नृपतेः सर्व देवमयो नृपः ॥
२८—तस्मान्मां कर्मभिर्विप्रा यजध्वं गतमत्सराः। बलिं च मह्यं हरतमत्तोऽन्यः कोऽग्रभुक् पुमान् ॥

मैत्रेयउवाच—

२९—इत्थं विपर्यय मतिः पापीयानुत्पथं गतः। अनुनीय मानस्तद्याञ्चां न चक्रे भ्रष्टमंगलः ॥

तिरस्कार किया और उनकी बात नहीं सुनी तो वे क्रोधित हुए। यह स्वभाव से ही भयानक है। इसे मार डालना चाहिये, नहीं तो जीवित रह कर समस्त जगत् को यह निश्चय ही भस्म कर डालेगा। दुष्ट कर्म करने वाला यह वेन श्रेष्ठ राज्यासन के योग्य नहीं है, क्योंकि यह निर्लज्ज यज्ञाधिपति विष्णु की निन्दा करता है। जिसके अनुग्रह से वेन को यह ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है, उस भगवान् की निन्दा दुष्ट वेन के अतिरिक्त और कौन कर सकता है? इस प्रकार ऋषियों ने वेन को मार डालने का निश्चय किया, क्योंकि उनका क्रोध बहुत बढ़ गया था। पुनः भगवान् की निन्दा से मरे हुए वेन को उन लोगों ने हुंङ्कार से ही मार डाला। अनन्तर वे ब्राह्मण अपने-अपने आश्रम को गये। शोक करती हुई सुनीथा ने मन्त्र और औषधि के द्वारा पुत्र के शरीर को सुरक्षित रख दिया॥ २९, ३५॥

एक दिन सरस्वती के जल में स्नान करके और अग्नि मे होम करके नदी के तट पर बैठे हुए वे मुनि आपस मे बाते कर रहे थे। लोक-भयङ्कर महान् उत्पातों को उठते देखकर उन-लोगों ने कहा—राजा के बिना पृथ्वी अनाथ हो गयी है। चोर-डाकुओं के द्वारा कहीं उसका अमङ्गल न हो! वे लोग इस प्रकार बाते कर ही रहे थे, इतने मे लुटेरों की भाग-दौड़ से उड़ती हुई धूल समस्त दिशाओं मे दीख पड़ी। राजा के न रहने से लुटेरे, लोगों का धन लूटे लेते हैं और बड़ा उपद्रव कर रहे हैं तथा प्रजा मे भी परस्पर मार-काट और चोरी आदि हो रही है, यह देखकर मुनियों ने विचार किया कि यदि हम इसका कुछ उपाय न करेंगे तो हमें भी दोष का भागी बनना पड़ेगा, क्योंकि जो शान्त और समदर्शी ब्राह्मण दुःखी मनुष्यों की उपेक्षा

३०—इति तेऽसत्कृता स्तेन द्विजाः पण्डितमानिना। भग्नाया भव्ययाच्ञाया तस्मै विदुर चुक्रुधुः॥
३१—हन्यतां हन्यतामेष पापः प्रकृतिदारुणः। जीवन् जगदसावाशु कुरुते भस्मसान्न न॥
३२—नाय मर्हत्य सद्वृत्तो नरदेव वरासन। योऽधियज्ञपतिं विष्णु विनिंदत्यनपत्रप॥
३३—को वैनपरिचक्षीत वेनमेक मृतेऽशुभं। प्राप्त ईदृश मैश्वर्यं यदनुग्रह भाजनः॥
३४—इत्थं व्यवसिताहन्तु मृषयो रूढमन्यवः। निजघ्नु हुँकृतैर्वेन हतमच्युत निंदया॥
३५—ऋषिभिः स्वाश्रमपद गते पुत्रकलेवर। सुनीथा पालयामास विद्या योगेन शोचती॥
३६—एकदा मुनयस्तेतु सरस्वत्सलिलाप्लुताः। हुत्वाऽग्नीन्सत्कथाश्चक्रु रुपविष्टाः सरित्तटे॥
३७—वीक्ष्योत्थितान् महोत्पातानाहुर्लोक भयकरान्। अप्यभद्रमनाथाया दस्युभ्यो नभवेद्भुवः॥
३८—एव मृशत ऋषयो धावता सर्वतोदिश.। पासुः समुत्थितो भूरिश्चोराणा मभिलु पतां॥
३९—तदुपद्रव माज्ञाय लोकस्य वसुलुंपता। भर्तर्युपरते तस्मिन्नन्योन्य च जिघासता॥
४०—चोरप्राय जनपद हीनसत्त्व मराजक। लोकान्नावारयन् शक्ता अपि तद्दोषदर्शिनः॥
४१—ब्राह्मणः समदृक् शांतो दीनाना समुपेक्षकः। स्रवते ब्रह्मतस्यापि भिन्नभाण्डात्पयो यथा॥

करते हैं, उनका तप नष्ट हो जाता है; जैसे फूटे हुए घड़े से पानी नष्ट हो जाता अर्थात् वह जाता है। राजर्षि अङ्ग के वंश का नाश न होना चाहिए, क्योंकि इस वंश में महापराक्रमी और भगवान् के भक्त राजा हो गये हैं। इस प्रकार निश्चय करके वे मुनि मृत राजा वेन की जंघा को वेग से मथने लगे, उसके द्वारा एक ठिगना पुरुष उत्पन्न हुआ। वह कौवे के समान काला था, उसके हाथ तथा अन्य अङ्ग बहुत छोटे थे और दाढ़ी बड़ी थी। उसके पैर छोटे थे, नाक चिपटी थी, आँखें लाल थीं और बाल तांबे के समान थे। झुककर उसने दीनता से पूछा कि मैं क्या करूँ? मुनियों ने कहा—निषीद, अर्थात् बैठ जाओ; अतः वह निषाद हुआ। उसके वंशज नैषाद अर्थात् भील आदि हुए जो पहाड़ों और जङ्गलों में रहते हैं। वेन के शरीर में जो भयानक पाप था, वही इस निषाद के रूप में बाहर निकला था, अतः उसके वंशजों को नगर आदि में जाने का अधिकार नहीं है॥ ३६, ४६॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का चौदहवाँ अध्याय समाप्त

४२—नांगस्य वंशोराजर्षे रेष संस्थातुमर्हति। अमोघ वीर्याहि नृपा वंशेऽस्मिन्केशवाश्रयाः॥

४३—विनिश्चित्यैव मृषयो विपन्नस्य महीपतेः। ममथुरूरु तरसा तत्रासीद् बाहुकोनरः॥

४४—काक कृष्णोऽति ह्रस्वांगो ह्रस्वबाहु र्महाहनु.। ह्रस्व पान्निम्न नासाग्रो रक्ताक्ष स्ताम्रमूर्द्धज.॥

४५—तं तु तेऽवनत दीन किंकरोमीति वादिनं। निषीदेत्य ब्रुवंस्तात सनिषाद स्ततोभवत्॥

४६—तस्य वंश्यास्तुनैषादा गिरिकानन गोचरा। येनाहरज्जायमानो वेन कल्मष मुल्बणं॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेपृथुचरितेनिषादोत्पत्तिर्नामचतुर्दशोऽध्याय.॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

पृथु की उत्पत्ति और राज्याभिषेक

मैत्रेय बोले—अनन्तर मुनियों ने पुत्रहीन उस वेन के दोनों हाथों को पुनः मथा, जिससे दो जुड़वाँ सन्तान उत्पन्न हुई। उत्पन्न हुए उन दोनों बालकों को देखकर और उन्हें भगवान् का अंशरूप जानकर ब्रह्मवेत्ता ऋषिगण अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और बोले ॥ १, २ ॥

ऋषिगण बोले—इन में से जो पुत्र है, वह भगवान् का संसार की रक्षा करने वाला अंश है और जो कन्या है, वह भगवान् के पास से कभी दूर न होनेवाली लक्ष्मी है। राजाओं मे प्रथम, महान् यशस्वी और राजाओं की कीर्ति को बढ़ाने वाला यह कुमार पृथु नाम का चक्रवर्ती राजा होगा। जगत् की रक्षा करने के लिए भगवान् के अंश से यह उत्पन्न हुआ है। सुन्दर दाँतों वाली, गुणरूपी भूषणों को भूषित करने वाली यह सुन्दरी कन्या 'अर्चि' नाम से प्रसिद्ध होगी और पृथु को ही पति वरण करेगी, क्योंकि लक्ष्मी का अवतार होने के कारण यह भगवान् से अलग नहीं रह सकती ॥ ३, ६ ॥

मैत्रेय बोले—ब्राह्मण पृथु की प्रशंसा करने लगे, गन्धर्व गाने लगे, सिद्धगण फूलों की वर्षा करने लगे, अप्सराएँ नाचने लगी, आकाश में शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग और दुन्दुभि आदि बाजे बजने लगे; तथा वहाँ पर देवता, ऋषि और पितरों का समूह इकट्ठा हो गया। जगद्-गुरु ब्रह्मा देवताओं के साथ वहाँ आये। उन्होंने पृथु के दहिने हाथ मे चक्र का और पैरों मे कमल का चिन्ह देखकर उन्हे भगवान् का अंश समझा, क्योंकि जिसके हाथ में चक्र का स्पष्ट

मैत्रेयउवाच—

१—अथ तस्य पुनर्विप्रै रपुत्रस्य महीपतेः। बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥

२—तद्दृष्ट्वा मिथुनं जातमृषयो ब्रह्मवादिनः। ऊचुः परममतुष्टा विदित्वा भगवत्कलां ॥

ऋषयऊचुः —

३—एष विष्णोर्भगवतः कला भुवनपालिनी। इयं चलक्ष्म्या सम्भूतिः पुरुषस्यानपायिनी ॥

४—अयं तु प्रथमो राज्ञां पुमान्प्रथयिता यशः। पृथुर्नाम महाराजो भविष्यति पृथुश्रवाः ॥

५—इयंच सुदती देवी गुणभूषणभूषणा। अर्चिर्नाम वरारोहा पृथुमेवावरुन्धती ॥

६—एष साक्षाद्धरेरंशो जातो लोकरिरक्षया। इयंच तत्परा हि श्री रनुजज्ञेऽनपायिनी ॥

मैत्रेयउवाच—

७—प्रशंसन्ति स्म तं विप्रा गंधर्वप्रवरा जगुः। मुमुचुः सुमनोधाराः सिद्धा नृत्यन्ति स्व:स्त्रियः ॥

८—शंख तूर्य मृदङ्गाद्या नेदुर्दुन्दुभयो दिवि। तत्र सर्वं उपाजग्मुर्देवर्षि पितॄणां गणाः ॥

चिन्ह होता है, वह भगवान् विष्णु का अंशरूप होता है। अनन्तर ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों ने पृथु का अभिषेक करने का आयोजन किया, जिसके लिए चारों ओर से सबलोग अभिषेक की सामग्रियाँ ले आये। नदी, समुद्र, पर्वत, वृक्ष, गाय, पक्षी, मृग, आकाश, भूमि तथा अन्य प्राणी भेंट लेकर आये। जिनका राज्याभिषेक हो गया था, जिन्होंने सुन्दर वस्त्र पहने थे, जो भलीभाँति अलङ्कृत थे, ऐसे राजा पृथु अपनी अलङ्कृता पत्नी अर्चि के साथ दूसरे अग्नि के समान शोभित हुए। पृथु-राजा को कुबेर ने सुवर्ण का सिंहासन दिया, वरुण ने चन्द्रमा की कान्ति के समान कान्ति वाला छत्र दिया, जिससे जल झरता रहता था, वायु ने दो चँवर दिये, धर्म ने कीर्तिरूपी माला दी, इन्द्र ने उत्तम मुकुट दिया और यम ने शासन करने के लिए दण्ड दिया। ब्रह्मा ने वेदमय कवच दिया, सरस्वती ने उत्तम हार दिया, विष्णु ने सुदर्शन चक्र और लक्ष्मी ने नष्ट न होने वाली सम्पत्ति दी। दस चन्द्रमाओं से युक्त तलवार रुद्र ने और सौ चन्द्रमा से युक्त ढाल अम्बिका ने उन्हें दी। चन्द्रमा ने अमृत के समान श्वेत घोड़े दिये और त्वष्टा ने अत्यन्त सुन्दर रथ। अग्नि ने बकरे और बैल की सींग का बना हुआ धनुष दिया और सूर्य ने अपने किरणों के समान बाण दिये। भूमि ने पैर रखते ही इच्छित स्थान पर पहुँचा देने वाली खड़ाऊँ दी और आकाश ने निरन्तर पुष्पवर्षा की। आकाशचारी सिद्धों ने नाच, गाना-बजाना तथा अन्तर्धान होने की कला दिखलायी, ऋषियों ने सच्चा आशीर्वाद दिया और समुद्र ने अपने गर्भ से उत्पन्न शङ्ख दिया। समुद्र, पर्वत और नदियों ने उनके रथ के चलने के लिए मार्ग दिया। अनन्तर सूत, मागध और वन्दीजन उनकी स्तुति करने के लिए

९—ब्रह्मा जगद्गुरुर्देवै सहासृत्यसुरेश्वरै। वैन्यस्य दक्षिणे हस्ते दृष्ट्वा चिन्ह गदाभृतः॥

१०—पादयो ररविंद च तवै मेने हरे कला। यस्याप्रतिहत चक्रमश. स परमेष्ठिनः॥

११—तस्याभिषेक आरब्धो ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभि.। आभिषेचनिकान्यस्मै आजह्रुः सर्वतो जनाः॥

१२—सरित्समुद्रा गिरयो नगा गाव. खगा मृगा'। द्यौ' क्षितिः सर्वभूतानि समाजह्रु रुपायन॥

१३—सोऽभिषिक्तो महाराजः सुवासा. साध्वलङ्कृतः। पत्न्यार्चिषाऽलंकृतया विरेजेऽग्नि रिवापरः॥

१४—तस्मै जहार धनदो हैम वीरवरासन। वरुण. सलिलस्राव मातपत्र शशिप्रभ॥

१५—वायुश्च वालव्यजने धर्म. कीर्तिमयीं स्रज। इन्द्रः किरीट मुत्कृष्ट दंड सयमन यमः॥

१६—ब्रह्मा ब्रह्ममय वर्म भारती हारमुत्तम। हरि. सुदर्शन चक्र तत्पत्न्यव्याहता श्रिय॥

१७—दश चद्रमसि रुद्रः शतचंद्र तथाऽम्बिका। सोमोऽमृत मयानश्वा स्त्वष्टा रूपाश्रय रथ॥

१८—अग्निराजगव चाप सूर्यो रश्मिमयानिषून्। भू' पादुके योगमय्यौ द्यौ. पुष्पावलिमन्वह॥

१९—नाट्य सुगीत वादित्र मतर्धान चखेचराः। ऋषयश्चाशिष सत्याः समुद्र. शङ्खमात्मज॥

२०—सिन्धव. पर्वतानद्यो रथवीर्थीर्महात्मन.। सूतोऽथ मागधो वदी तस्तोतु मुपतस्थिरे॥

आये। स्तुति करने के लिए आए हुये उनलोगों को देखकर वेन के पुत्र पृथु ने हँसते हुए, मेघ-गर्जन के समान गम्भीर स्वर में कहा ॥ ७, २१ ॥

पृथु बोले—हे सूत ! हे मागध ! हे सौम्य बन्दीगण ! अभी मेरा कोई गुण जगत् में स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं हुआ, अतः तुम लोग किस लिए मेरी स्तुति करना चाहते हो ? स्तुति करनी हो तो किसी और की करो, क्योंकि मैं अपनी झूठी प्रशसा नहीं करवाना चाहता । हे मधुर-भाषी ! मेरी स्तुति करनी हो तो जब मेरे गुण प्रसिद्ध हो जायँ तब करना और मेरे पीछे करना। यदि तुम यह कहो कि सभ्यों की प्रेरणा से तुम मेरी स्तुति करने आये हो तो पुण्यश्लोक भगवान् के रहते हुए सभ्यगण मुझ जैसे अर्वाचीन मनुष्य की स्तुति करने की सम्मति न देंगे। अपने मे बड़े-बड़े गुणों के सम्पादन करने की शक्ति हो तो भी उन कार्यों को करने के पहले ही स्तुति करने वालों के द्वारा झूठी स्तुति कौन करावेगा ? ऐसी स्तुति सुनकर अन्य लोग तथा स्वयं स्तुति करने वाले भी मन-ही-मन उपहास करते है कि 'आगे यह मनुष्य ऐसा होगा' पर मूर्ख लोग इस उपहास को समझ नहीं पाते। स्वय योग्य होते हुए भी सज्जन पुरुष अपनी स्तुति सुनकर लज्जित होते है और अपनी स्तुति को बुरे काम के समान पसन्द नहीं करते। मैं तो अभी तक कोई अच्छा काम करके प्रसिद्ध नहीं हुआ हूँ, फिर कैसे मैं बच्चो की तरह अपनी स्तुति कराऊँ ? ॥ २२, २६ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का पद्रहवाँ अध्याय समाप्त

———❀———

२१—स्तावकांस्तानभिप्रेत्य पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्। मेघनिर्ह्रादया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत्॥

पृथुरुवाच—

२२—भो सूत हे मागध सौम्य वन्दिँल्लोकेऽधुनास्पष्टगुणस्य मे स्यात्।

किमाश्रयो मे स्तव एष योज्यतां मा मय्यभूवन् वितथा गिरो वः॥

२३—तस्मात्परोक्षेऽस्मदुपश्रुतान्यलं करिष्यथ स्तोत्रमपीच्यवाचः।

सत्युत्तमश्लोकगुणानुवादे जुगुप्सितं न स्तवयन्ति सभ्याः॥

२४—महद्गुणानात्मनि कर्तुमीशः कः स्तावकैः स्तावयतेऽसतोऽपि।

तेऽस्याभविष्यन्निति विप्रलब्धो जनावहासं कुमतिर्न वेद॥

२५—प्रभवो ह्यात्मनः स्तोत्रं जुगुप्सन्त्यपि विश्रुताः। ह्रीमन्तः परमोदाराः पौरुषं वा विगर्हितम्॥

२६—वयं त्वविदिता लोके सूताद्यापि वरीमभिः। कर्मभिः कथमात्मानं गापयिष्याम बालवत्॥

इ० भा० म० चतुर्थस्कन्धे पृथुचरितेपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

सूत, मागध और वन्दीगणों के द्वारा पृथु की स्तुति

मैत्रेय बोले—राजा के ऐसा कहने पर, उनके वचनरूपी अमृत के सेवन से वे गायक सन्तुष्ट हुए और मुनियों के द्वारा प्रेरित होकर उनकी स्तुति करने लगे—हम आपकी महिमा का वर्णन करने मे असमर्थ हैं, क्योंकि माया के द्वारा उत्पन्न आप देवश्रेष्ठ भगवान् विष्णु के अवतार हैं। वेन के अङ्ग से उत्पन्न आपकी महिमा का वर्णन करने मे ब्रह्मा आदि की बुद्धि भी भ्रमित हो जाती है। आप महान् कीर्तिशाली और भगवान् के अंशावतार हैं। आपकी कथा-रूपी अमृत में हमारी प्रीति है अत. मुनियों के कहने से हम आपके उत्तम गुणों का वर्णन करेंगे। योगबल के द्वारा मुनियों ने हम लोगों को इस सम्बन्ध का ज्ञान दिया है, यह पृथु राजा धर्म पालन करने वालों में श्रेष्ठ, लोगों को धर्ममार्ग मे प्रेरित करने वाले, धर्म की मर्यादाओं की रक्षा करने वाले और धर्म विरोधियों को दण्ड देने वाले हैं। यह राजा अपने एक ही शरीर में समय-समय पर समस्त लोकपालों की शक्ति धारण करते हैं और भिन्न-भिन्न कार्यों के द्वारा इह तथा पर दोनों ही, लोकों का हित करते हैं। जिस प्रकार सूर्य आठ महीनों तक जल सोखता है और चौमासे मे बरसा देता है, उसी प्रकार समस्त प्राणियों में समान भाव रखने वाले प्रतापी राजा पृथु समय पर प्रजा से कर लेकर अकाल आदि मे पुनः प्रजा को ही दे देते हैं। जिस प्रकार पृथ्वी सब कुछ सहन करती है; उसी प्रकार दुखी प्राणियों पर निरन्तर दया

मैत्रेयउवाच—

१—इति ब्रुवाणं नृपतिं गायका मुनिचोदिता. । तुष्टुवुस्तुष्टमनस स्तद्वागमृत सेवया ॥

२—नाल वय ते महिमानुवर्णने योदेव वर्योऽवत तारमायया ।

वेनागजातस्य च पौरुषाणि ते वाचस्पतीनामपि बभ्रमुर्धियः ॥

३—अथाप्युदारश्रवसः पृथोर्हरे. कलाऽवतारस्य कथाऽमृतादृताः ।

यथोपदेश मुनिभि प्रचोदिताः श्लाघ्यानि कर्माणि वय वितन्महि ॥

४—एष धर्मभृता श्रेष्ठो लोक धर्मेऽनुवर्तयन् । गोप्ता च धर्मसेतूना शास्ता तत्परिपन्थिना ॥

५—एष वै लोकपालाना बिभर्त्येकस्तनौ तनू । काले काले यथाभाग लोकयो रुभयोर्हित ॥

६—वसु काल उपादत्ते कालेचायं विमुञ्चति । समः सर्वेषु भूतेषु प्रतपन्सूर्यवद्विभुः ॥

७—तितिक्षत्यक्रम वैन्य उपर्याक्रमतामपि । भूताना करुणः शश्वदार्तानां क्षिति वृत्तिमान् ॥

८—देवेऽवर्षत्यसौ देवो नरदेव वपुर्हरिः । कृच्छ्रप्राणाः प्रजाह्येष रक्षिष्यत्यंजसेंद्रवत् ॥

रखने वाले यह पृथु राजा, यदि दुखी मनुष्य उनके ऊपर पैर भी रख दे तो उसे भी सहन करते है। राजा का शरीर धारण करने वाले यह भगवान् (पृथु) वर्षा न होने से कष्ट पाती हुई प्रजा की, इन्द्र के समान जल बरसाकर रक्षा करेगे। यह राजा अपनी स्नेह-भरी दृष्टि और स्वच्छ मन्द हास्य से शोभित मुखचन्द्र के द्वारा लोगों को तृप्त करते हैं। यह पृथु वरुण के समान हैं, जिनके कार्यों का मार्ग अर्थात् ये किस प्रकार कौन-सा काम करते हैं, यह कोई नहीं जान सकता। उनके कार्यो को कोई पहले से नहीं जान सकता । उनके कार्य गम्भीर होते हैं अर्थात् दूसरे के द्वारा अज्ञेय होते हैं। वे धन की रक्षा करने वाले हैं। वे अत्यन्त महिमाशाली हैं, केवल गुणों मे ही उनकी प्रवृत्ति है और वे संयत चित्त वाले हैं। राजा पृथु मानो वेन रूपी अरणी से निकली हुई आग हैं। शत्रुओं के लिए उनका तेज असहनीय है। वे समीप होने पर भी शत्रुओं को दूर मालूम पड़ते है और शत्रुगण उनका पराजय नहीं कर सकते। ये अपने गुप्त अनुचरों के द्वारा लोगों के भीतर और बाहर (अर्थात् अन्तःकरण और आचरण) की बाते जानते हुए भी उदासीन रहते हैं, जैसे प्राणियों के शरीर मे प्राण-वायु उनके कार्यों से निर्लिप्त रहती है। ये दण्डनीय न होने पर अपना विरोध करनेवाले शत्रु के पुत्र को भी दण्ड नहीं देते और दण्डनीय होने पर अपने पुत्र को भी दण्ड देते हैं, क्योंकि ये धर्म-मार्ग पर दृढ़ रहने वाले हैं। इनकी सेना तथा आज्ञा मानसाचल तक और जहाँ तक सूर्य की किरणे जाती हैं, वहाँ तक बिना रुकावट के जाती है। यह पृथु अपने मनोरञ्जक कार्यो के द्वारा प्रजा को रञ्जित अर्थात् प्रसन्न करते हैं,अतः ये राजा कहे जाते हैं। यह राजा दृढ़व्रत हैं,सत्य-प्रतिज्ञ हैं, ब्राह्मणों पर श्रद्धा रखने वाले और वृद्धों की सेवा करने वाले हैं। यह सब प्राणियों को शरण

९—आप्याय यत्यसौलोक वदनामृत मूर्तिना । सानुरागावलोकेन विशद स्मित चारुणा ॥

१०—अव्यक्त वर्त्मैष निगूढ कार्यो गभीरवेधा उपगुप्तवित्तः ।
अनत माहात्म्य गुणैकधामा पृथुः प्रचेता इव संवृतात्मा ॥

११—दुरासदो दुर्विषह आसन्नोऽपि विदूरवत् । नैवाभिभवितुं शक्यो वेनारण्युत्थितोनलः ॥

१२—अतर्बहिश्च भूताना पश्यन्कर्माणि चारणैः । उदासीन इवाध्यक्षो वायुरात्मेव देहिना ॥

१३—नादण्ड्य दण्डयत्येष सुत मात्मद्विषामपि । दण्डयत्यात्मज मपि दण्ड्यं धर्मपथे स्थित: ॥

१४—अस्याप्रतिहत चक्र पृथोरामानसाचलात् । वर्तते भगवानर्को यावत्तपति गोगणैः ॥

१५—रजयिष्यति यल्लोक मयमात्म विचेष्टितै. । अथामुमाहू राजान मनोरजनकैः प्रजा: ॥

१६—दृढव्रतः सत्यसधो ब्रह्मण्यो वृद्धसेवकः । शरण्य. सर्वभूताना मानदो दीनवत्सलः ॥

१७—मातृभक्तिः परस्त्रीषु पत्न्यामर्ध इवात्मन. । प्रजासु पितृवत् स्निग्ध. किंकरो ब्रह्मवादिना ॥

१८—देहिनामात्मवत्प्रेष्ठः सुहृदा नंदिवर्द्धनः । मुक्तसग प्रसंगोयं दण्डपाणि रसाधुषु ॥

देनेवाले हैं मान देनेवाले हैं और दीनों पर स्नेह रखनेवाले हैं। ये परस्त्रियों में माता के समान भक्ति रखने वाले हैं, अपनी पत्नी को अपना आधा अङ्ग समझने वाले है। ये प्रजा के लिए पिता के समान कोमल हैं, ज्ञानियों के सम्मुख उनके सेवक के समान व्यवहार रखते हैं। मनुष्यों को ये अपने समान प्रिय हैं, मित्रों के लिए आनन्दवर्धन हैं, साधुओं का विशेष सङ्ग करने वाले हैं और दुष्टों के लिए दण्डपाणि हैं अर्थात् दण्ड देने वाले है। त्रैलोक्य के स्वामी साक्षात् ब्रह्मस्वरूप भगवान् ही अपने अंश से पृथु के रूप मे उत्पन्न हुए हैं। अज्ञान के कारण उनमें जो द्वैत भाव दीख पड़ता है, उसे माया से उत्पन्न जानकर ज्ञानी पुरुष उसे निरर्थक समझते हैं। अद्वितीय वीर और राजराजेश्वर पृथु उदयाचलपर्यन्त भूमण्डल की रक्षा करेंगे और विजयशील रथ में बैठकर, हाथ में धनुष लेकर सूर्य के समान भूमण्डल पर घूमते फिरेंगे। ये जहाँ-जहाँ जायँगे, वहाँ-वहाँ के राजागण लोकपालों के सहित इनको कर देंगे और उन राजाओं की स्त्रियाँ इन आदि राजा पृथु को विष्णुरूप जानकर इनकी कीर्ति का गान करेंगी। प्रजा को आजीविका देनेवाले ये चक्रवर्ती राजा गौ-रूप धारिणी पृथ्वी को दुहेंगे और इन्द्र के समान अपने धनुष की नोक से बड़े-बड़े पर्वतों को अनायास ही तोड़कर भूमिसात् कर देंगे। जिस प्रकार सिंह पूँछ उठाकर (निर्भय) घूमा करता है, उसी प्रकार ये राजा बकरे और बैल की सींग से बने हुए तथा युद्ध में भयङ्कर धनुष का टङ्कार करते हुए पृथ्वी में भ्रमण करेंगे, जिससे दुष्ट लोग चारों ओर छिप जायँगे। जहाँ सरस्वती प्रकट हुई थीं, उसी स्थान पर ये सौ अश्व-

१९—अयं तु साक्षाद्भगवांस्त्र्यधीशः कूटस्थ आत्मा कलयाऽवतीर्णः ।
यस्मिन्नविद्या रचिता निरर्थकं पश्यन्ति नानात्वमपि प्रतीतम् ॥

२०—अयं भुवो मण्डलमोदयाद्रेर्गोप्तैकवीरो नरदेवनाथः ।
आस्थाय जैत्रं रथमात्तचापः पर्यस्यते दक्षिणतो यथाऽर्कः ॥

२१—अस्मै नृपालाः किल तत्रतत्र बलिं हरिष्यन्ति सलोकपालाः ॥
मंस्यन्त एषां स्त्रिय आदिराजं चक्रायुधं तद्यश उद्धरन्त्यः ॥

२२—अयं महीं गां दुदुहेऽधिराजः प्रजापतिर्वृत्तिकरः प्रजानाम् ।
यो लीलयाऽद्रीन्स्वशराग्रकोट्या भिन्दन्समां गामकरोद्यथेन्द्रः ॥

२३—विस्फूर्जयन्नाजगवं धनुः स्वयं यदाचरत्क्ष्मामविषह्यमाजौ ।
तदा निलिल्युर्दिशिदिश्यसन्तो लाङ्गूलमुद्यम्य यथा मृगेन्द्रः ॥

२४—एषोऽश्वमेधान् शतमाजहार सरस्वती प्रादुरभावि यत्र ।
अहार्षीद्यस्य हयं पुरन्दरः शतक्रतुश्चरमे वर्तमाने ॥

२५—एष स्वसद्मोपवने समेत्य सनत्कुमारं भगवन्तमेकम् ।
आराध्य भक्त्या लभतामलं तज्ज्ञानं यतो ब्रह्म परं विदन्ति ॥

मेध यज्ञ करेंगे। अन्तिम यज्ञ के समय शतक्रतु इन्द्र इनके यज्ञ का घोड़ा चुरा लेंगे। अपने घर के बगीचे में ये राजा, भगवान् सनत्कुमार से मिलकर और भक्ति पूर्वक उनकी आराधना कर के निर्मल ज्ञान प्राप्त करेंगे, जिससे परब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस प्रकार ये विख्यात और अत्यन्त पराक्रमी राजा जहाँ-जहाँ जायँगे, वहाँ-वहाँ सुन्दर वाणी और भगवान् की कथा सुनेंगे। दिग्विजय करके अपनी शक्ति से लोगों के दुःखों को नष्ट कर देनेवाले ये राजा अखण्डित आज्ञा से पृथ्वी का राज्य करेंगे और बड़े-बड़े देवता तथा दैत्य उनकी कीर्ति के गान करेंगे ॥ १, २७ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का सोलहवाँ अध्याय समाप्त

सत्रहवाँ अध्याय

पृथ्वी के द्वारा राजा पृथु की स्तुति

मैत्रेय बोले—वेन पुत्र राजा पृथु जो अपने गुणों और कर्मों से प्रसिद्ध हो गये थे, उन्होंने स्तुति करने वालों का मनोरथ पूरा करके अभिनन्दन और पूजा की। इस प्रकार उन सबको राजा ने सन्तुष्ट किया। ब्राह्मण आदि वर्णों को, भृत्य, आमात्य, पुरोहितों को, पुरवासी और राज्यवासियों को, तेली-तमोली आदि को, तथा अन्य प्रजा को राजा ने सत्कृत किया ॥ १, २, ॥

२६—तत्रतत्र गिरस्तास्ता इति विश्रुत विक्रमः। श्रोष्यत्यात्माश्रिता गाथाः पृथुः पृथुपराक्रमः ॥

२७—दिशो विजित्या प्रतिरुद्धचक्र. स्वतेजसोत्पाटित लोकशल्यः ॥
सुरासुरेन्द्रैरुपगीयमान महानुभावो भविता पतिर्भुवः ॥

इ० भा० म० च० षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

मैत्रेयउवाच—

१—एव स भगवान्वैन्यः ख्यापितो गुणकर्मभिः। छदयामास तान्कामैः प्रतिपूज्याभिनंद्य च ॥

२—ब्राह्मण प्रमुखान्वर्णान् भृत्यामात्य पुरोघस.। पौरान् जानपदान् श्रेणीः प्रकृतीः समपूजयत् ॥

विदुर बोले—बहुरूप धारण करने की शक्ति रखने वाली पृथ्वी ने गौ का रूप क्यों धारण किया। जिसको पृथु ने दुहा, उसका बछड़ा कौन था, और दूहा क्या गया ? पृथ्वी देवी स्वभाव से ही विषम है, ऊँची नीची है, वह बराबर कैसे की गयी। उसके यज्ञीय घोड़े को किस कारण से देवता चुरा ले गये ! ब्रह्मन् श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी भगवान् सनत्कुमार से विज्ञान युक्त ब्रह्मज्ञान पाकर पृथु किस लोक मे गये। और भी भगवान् श्रीकृष्ण का जो यश हो, जो प्राचीन राजाओं की कथा से सम्बन्ध रखता हो, जो पवित्र हो, मै आपका प्रेमी और भगवान कृष्ण का भक्त हूँ, आप मुझसे कहिए कि राजा पृथु ने गौ-रूपी इस पृथ्वी से क्या दुहा था ? ॥३, ७॥

सूत बोले—विदुर के वासुदेव की कथा कहने के लिए प्रेरित करने से मैत्रेय बड़े प्रसन्न हुए। विदुर की प्रशसा करके वे इस प्रकार बोले—

मैत्रेय बोले—विदुर, ब्राह्मणों ने पृथु का अभिषेक किया और प्रजा पालन करने के लिए उन्हें नियुक्त किया। पृथु अन्नहीन पृथ्वी पर आये। उस समय क्षुधा से क्षीणशरीर प्रजा के लोग राजा पृथु से बोले—राजन् ! हम लोग जठराग्नि से जल रहे हैं, जिस प्रकार कोटर मे की आग से वृक्ष जलते है, आप शरणागतों के रक्षक हैं, यह समझकर हम लोग आपके पास आये हैं। आप हम लोगों के स्वामी और जीविका का प्रबन्ध करने के लिए नियुक्त हुए है, हे देव ! हम लोग भूख से पीडित हैं, हम लोगों को अन्न देने का प्रयत्न करे। आप शीघ्रही अन्न दे,

---

विदुरउवाच—

३—कस्माद्दधार गोरूप धरित्री बहुरूपिणी। या दुदोह पृथुस्तत्र को वत्सो दोहन च किं॥

४—प्रकृत्या विषमा देवी कृता तेन समा कथ। तस्य मेध्य हय देव. कस्य हेतोरपाहरत्॥

५—सनत्कुमाराद्भगवतो ब्रह्मन् ब्रह्मविदुत्तमात्। लब्ध्वा ज्ञान सविज्ञान राजर्षिः का गतिं गतः॥

६—यच्चान्यदपि कृष्णस्य भगवान् भगवतः प्रभोः। श्रव. सुश्रवसः पुण्य पूर्वदेह कथाश्रय॥

७—भक्ताय मेऽनुरक्ताय तव चाधोक्षजस्य च। वक्तुमर्हति योऽदुह्यद्वैन्य रूपेण गामिमा॥

सूतउवाच—

८—चोदितो विदुरेणैव वासुदेव कथा प्रति। प्रशस्यत प्रीतमना मैत्रेयः प्रत्यभाषत॥

मैत्रेयउवाच—

९—यदाभिषिक्त. पृथुरग विप्रै रामन्त्रितो जनताया‍श्च पाल.।

प्रजानिरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य क्षुत्क्षामदेहा. पतिमभ्यवोचन्॥

१०—वय राजन् जाठरेणाभितप्ता यथाऽग्निना कोटरस्थेन वृक्षा.।

त्वामद्ययाता शरण शरण्य य आश्रितो वृत्तिकरः पतिर्नः॥

जिससे बल घट जाने के कारण हम लोग मरने न पावे। आप हमारी जीविका के प्रबन्ध करने वाले स्वामी और लोकपाल हैं॥ ८, ११॥

मैत्रेय बोले—राजा पृथु प्रजा का ऐसा करुण विलाप सुनकर बहुत देर तक विचार करते रहे। अन्त मे उन्हे उपाय सूझ पड़ा। उन्होंने निश्चय किया था कि पृथ्वी ने अन्नों के बीज छिपा रखे हैं। ऐसा निश्चय करके धनुप बाण लेकर क्रोध करके इन्द्र के समान पृथ्वी पर चलाने के लिए उन्होंने धनुष चढाया। धनुष उठाये राजा को देखकर पृथ्वी काँपने लगी। डर-कर गौ के रूप मे वह भागी, जिस प्रकार शिकारी के पीछा करने पर मृगी भागती है। क्रोध से आँखे लाल करके धनुष पर बाण रखकर वेनपुत्र राजा पृथु उसके पीछे दौड़े। जिधर-जिधर वह दौड़कर जाती थी, राजा भी उधर ही दौड़ते थे। दिशाओं, विदिशाओं, पृथ्वी, आकाश तथा उसके बीच के भाग जहाँ-जहाँ वह गयी, वहाँ उसने शस्त्र उठाये राजा को देखा। जब उसकी रक्षा कहीं नहीं हुई जिस प्रकार मृत्यु से प्रजा की रक्षा नहीं होती तब वह दुखी हृदय से लौट आयी और राजा से से बोली—धर्मज्ञ, आपन्न-वत्सल (दुखियों के रक्षक) आप मेरी भी रक्षा कीजिए क्योंकि प्राणियों की रक्षा करने के लिए आप नियुक्त हुए हैं। आप मुझ दुःखिनी को क्यों मार रहे है। मैंने कौन-सा अपराध किया है? जो धर्मज्ञ कहा जाता है; वह स्त्री को कैसे मारेगा। अपराध करने पर भी साधारण मनुष्य स्त्री को नहीं मारते। फिर आपके समान दयालु, दीन-रक्षक कैसे मारेगा? मै दृढ़ नौका हूँ, मुझ पर ही

११—तन्नो भवानिहतु रातवेन क्षुधार्दिताना नरदेवदेव।
यावन्ननश्यामह उज्झितोर्जा वार्ता पतिस्त्वं किल लोकपालः॥

मैत्रेयउवाच—

१२—पृथुः प्रजाना करुणा निशम्य परिदेवन। दीर्घं दध्यौ कुरुश्रेष्ठ निमित्तंसोऽन्वपद्यत॥
१३—इति व्यवसितो बुद्धया प्रगृहीत शरासनः। सदधे विशिख भूमेः क्रुद्धस्त्रिपुरहा यथा॥
१४—प्रवेपमाना धरणी निशम्योदायुध च त। गौः सत्यपाद्रवद्भीता मृगीव मृगयुद्रुता॥
१५—तामन्वधावत्तद्वैन्यः कुपितोऽत्यरुणेक्षणः। शर धनुपि सधाय यत्रयत्र पलायते॥
१६—सादिशो विदिशो देवी रोदसी चातर तयोः। धावती तत्रतत्रैन ददर्शानूद्यतायुध॥
१७—लोकेनाविंद त्रात्राग वैन्यान्मृत्योरिव प्रजाः। त्रस्ता तदा निववृते हृदयेन विदूयता॥
१८—उवाच च महाभाग धर्मज्ञापन्नवत्सल। त्राहि मामपि भूताना पालनेऽवस्थितो भवान्॥
१९—सत्व जिघांससे कस्माद्दीना मकृतकिल्बिषां। अहनिष्यत्कथ योषा धर्मज्ञ इति यो मतः॥
२०—प्रहरंति नवैस्त्रीषु कृतागः स्वपिजतव। किमु त्वद्विधा राजन् करुणा दीनवत्सलाः॥

विश्व ठहरा हुआ है । मुझको मार कर अपने को और प्रजा को जल में कैसे ठहरा सकोगे ॥ १२, २१ ॥

पृथु बोले—पृथ्वी, मेरी आज्ञा न रहने के कारण मैं तुम्हारा वध करूँगा । तुम कुश पर दिया हुआ भाग ग्रहण करती हो और हमको धन नहीं देती हो । गौ के रूप से तुम प्रति दिन घास खाती हो, पर दूध नहीं देती, ऐसी दुष्टा तुम को अवश्य दण्ड मिलना चाहिये । ब्रह्मा ने तुम्हे औषधियों के बीजरूप में पहले उत्पन्न किया था । वे बीज तुमने छिपा रखे हैं । दे नहीं रही हो । इस प्रकार मन्द बुद्धि तुम मेरा अपमान कर रही हो । भूख की पीड़ा से व्याकुल इन दुखियों का विलाप अपने बाणों से तुम्हे छेदकर तुम्हारे मास से शान्त करूँगा । पुरुष हो, स्त्री हो या नपुसक हो । जो अपना ही भरण-पोषण करे, प्रजाओं पर दया न रखे, उस अधम का वध राजाओं के लिए वध नहीं कहा जाता । अहंकारिणी, दुर्मद, तुम कपट की गौ बनी हुई है । तुमको बाणों से तिल-तिल काटकर अपने योग-बल से प्रजाओं को धारण करूँगा । यम के समान क्रोधमयी मूर्ति धारण किये राजा से नम्र हाथ जोड़ कर काँपती हुई पृथ्वी बोली ॥ २२, २८ ॥

पृथ्वी बोली—परम पुरुष को नमस्कार, जो माया से अनेक रूप धारण करते हैं और जो गुणमय के समान प्रतीत होते हैं । जिनमें स्वरूप-प्रकाश के कारण अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत सम्बन्धी राग-द्वेष आदि नहीं उठते । जिस ब्रह्मा ने जीवों के रहने के लिए

।२१—मा विपाट्या जरानाव यत्र विश्व ।प्रतिष्ठितं । आत्मान च प्रजाश्चेमाः कथमंभसि धास्यसि ॥

पृथुरुवाच—

२२—वसुधे त्वा वधिष्यामि मच्छासन पराङ्मुखीं । भाग बर्हिषि यावृ्क्ते नतनोषि च नोवसु ॥

२३—यवस अत्स्यनुदिन नैव दोग्ध्यौधसपय. । तस्यामेव हि दुष्टाया दडो नात्र नशाम्यते ॥

२४—त्व खल्वौषधि बीजानि प्राक् सृष्टानि स्वयभुवा । न मुचस्यात्मरुद्धानि मामवज्ञाय मदधीः ॥

२५—अमूषा क्षुत्परीताना मार्ताना परिदेवित । शमयिष्यामि मद्बाणैर्भिन्नाया स्तवमेदसा ॥

२६—पुमान्योषिदुतक्लीव आत्मसभावनोऽधमः । भूतेषु निरनुक्रोशो नृपाणा तद्वधोऽवध'॥

२७—त्वा स्तब्धा दुर्मदा नीत्वा मायागा तिलशः शरै. । आत्मयोग बलेनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥

२८—एव मन्युमयी मूर्ति कृतातमिव बिभ्रत । प्रणता प्राजलिः प्राह महीस जातवेपथु. ॥

धरोवाच—

२९—नमः परस्मै पुरुषाय मायया विन्यस्त नाना तनवे गुणात्मने ।
नम स्वरूपानुभवेन निर्धुत द्रव्य क्रिया कारक विभ्रमोर्मये ॥

मुझे बनाया और मुझमे चतुर्विध प्राणियों का संग्रह किया। अर्थात् मुझपर चतुर्विध प्राणियों की सृष्टि की। वे ही स्वराट् अस्त्र उठाकर मुझे मारने के लिये उद्यत हुए है । मैं किसकी शरण जाऊँ । जिन्होंने पहले स्थावर-जंगम सृष्टि की रचना अज्ञेय जीव सम्बन्धिनी अपनी माया के द्वारा की। और उसी माया के द्वारा वे रक्षा करने के लिए उद्यत हुए । आज वे ही धर्मात्मा मुझे क्यों मारना चाहते है। दुर्जय भगवान की माया है, अतएव अज्ञानी मनुष्य भगवान के अभिप्रायों को नहीं जान सकता। जो ईश्वर अकेले थे, उन्होने ब्रह्मा को बनाया, फिर ब्रह्मा के द्वारा अनेकों की रचना की। जो पहले एक थे वे ही माया के कारण अनेक हुए। जो जगत् की सृष्टि आदि का अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव, बुद्धि और अहंकाररूप अपनी शक्तियों के द्वारा अनुवर्तन करते है उन ब्रह्मरूप परम पुरुष को मै नमस्कार करती हूँ। जिनकी शक्तियाँ उग्र और नम्र है, खूब काम करने वाली और शान्त रहने वाली हैं । भगवन्, यह जगत्, पंचभूत, इन्द्रिय और मन के द्वारा आपका बनाया हुआ है। इसको स्थान देने के लिए आपने आदिशूकर का अवतार धर कर पाताल से मेरा उद्धार किया था। आज जल के ऊपर नौका रूप मे वर्तमान हूँ। मुझ पर प्रजा अवस्थित है। उसकी रक्षा करने के लिए वे ही आदि-शूकर आप वीरमूर्ति पृथु के रूप में प्रकट हुए है और दूध के लिए मुझे मार रहे हैं। भगवान की गुणमयी माया से जिनका मन मोहित हो गया है। ऐसे साधारण हम लोग बड़े आदमियों

३०—येनाहमात्मा यतन विनिर्मिता धात्रायतो य गुणसर्ग सग्रहः।

सएव माहंतु मुदायुधः स्वराडुपस्थितोऽन्यं शरणं कमाश्रये ॥

३१—य एतदा दावसृजच्चराचर स्वमाययात्माश्रयया वितर्क्यया।

तयैव सोऽय किल गोप्तु मुद्यतः कथ नुमां धर्मपरो जिघासति ॥

३२—नूनं बतेशस्य समीहितं जनैस्तन्मायया दुर्जययाऽकृतात्मभि.।

न लक्ष्यते यस्त्वकरो दकारयद्योऽनेक एकः परतश्च ईश्वरः॥

३३—सर्गादि योऽस्यानुरुणद्धि शक्तिभिर्द्रव्य क्रिया कारक चेतनात्मभिः।

तस्मै समुन्नद्ध निरुद्धशक्तये नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ॥

३४—सवै भवानात्मविनिर्मितं जगद्भूतेंद्रियातः करणात्मक विभो।

संस्थापयिष्यन्नज मां रसातला दभ्युज्जहाराम्भस आदिसूकरः ॥

३५—अपामुपस्थे मयि नाव्यवस्थिताः प्रजाभवानद्य रिरक्षिषुः किल।

स वीरमूर्ति. समभूद्धराधरो योमां पयस्युग्रशरो जिघांससि ॥

का अभिप्राय नहीं जान सकते। अतएव वीरों के यश बढाने वाले उन बड़े आदमियों को मैं नमस्कार करती हूँ॥ २९, ३६॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का सत्रहवाँ अध्याय समाप्त

——०#०——

अट्ठारहवाँ अध्याय

पृथ्वी-दोहन

मैत्रेय बोले—जिनका ओठ क्रोध से फड़क रहा था, उन राजा पृथु की स्तुति करके और अपने प्रयत्नों से अपने को सम्हाल कर डरती-डरती पृथ्वी बोली—राजन्, क्रोध दूर कीजिए, मैं जो निवेदन करती हूँ, उसपर ध्यान दीजिए, बुद्धिमान् भ्रमर के समान सब जगह से सार-ग्रहण करते हैं। तत्वदर्शी मुनियों ने इस लोक और परलोक मे उपाय निश्चित किये हैं और मनुष्यों के कल्याण के लिए उनके प्रयोग भी उन्होंने किये हैं। पूर्वजों के बतलाये हुये उपायों को जो नए मनुष्य श्रद्धा के साथ काम मे लाते है वे सिद्धि पाते हैं। उन उपायों का अनादर करके उनकी ओर ध्यान न देकर जो स्वय सिद्धि के लिये उद्योग करते है, उनके मनोरथ पूरे नहीं होते। वे बार-बार कार्य प्रारम्भ करते हैं. पर सिद्धि नहीं होती। राजन्, ब्रह्मा ने पहले औषधियाँ उत्पन्न की थीं, उन औषधियों को व्रत धारण न करने वाले अधम मनुष्य खाते हैं,

३६—नूनं जनैरीहित मीश्वराणा मस्मद्विधै स्तद्गुण सर्ग मायया।
न ज्ञायते मोहित चित्तवर्त्मभि स्तेभ्यो नमो वीरयशस्करेभ्यः॥

इ०भा०म०च०पृथुविजयेधरित्रीनिग्रहोनामसप्तदशोऽध्याय.॥ १७॥

——क——

मैत्रेयउवाच—

१—इत्थ पृथुमभिष्टूय रुषा प्रस्फुरिताधरं। पुनराहावनिर्भीता सस्तभ्यात्मान मात्मना॥
२—सन्नियच्छाभिभो मन्यु निबोध श्रावित चमे। सर्वत सारमादत्ते यथामधुकरो बुधः॥
३—अस्मिन् लोकेऽथवाऽमुष्मिन्मुनिभि स्तत्त्वदर्शिभिः। दृष्टायोगाः प्रयुक्ताश्च पुंसा श्रेयः प्रसिद्धये॥

ऐसा मैंने देखा है। आप लोगों ने मेरा अनादर किया, मेरी रक्षा न की। जिससे समस्तलोक मे चोर फैल गये, अतएव यज्ञ के लिए हमने औषधियाँ निगल लीं। जिससे कि औषधियों की रक्षा हो और समय पर इनके द्वारा यज्ञ किये जायँ। बहुत दिनों तक मेरे यहाँ पड़ी रहने के कारण वे औषधियाँ क्षीण हो गयी होंगी, पर बतलाये हुए उपाय से उन औषधियों को आप ले सकते हैं। हे वीर, मेरे लिए एक बछड़ा लाओ। जिसके प्रेम से मैं द्रवित होऊँ। मेरे अनुरूप दुहने का पात्र भी चाहिये। जिससे दूध के रूप मे तुम्हारे मनोरथों को दे सकूँ। हे प्राणियों के रक्षक महाबाहु, दुहने वाला भी आप ले आवे। यदि आप बलकारी अन्न चाहते हों तो राजन्! मुझे बराबर कर दो, समतल बना दो। जिससे मेघ का जल वर्षाऋतु के बाद भी मुझ पर सर्वत्र ठहर सके। पृथ्वी का ऐसा प्रिय और हितकारी वचन सुनकर राजा पृथु ने मनु को बछड़ा बनाया और उन्होंने स्वयं समस्त औषधियाँ (व्रीहि आदि अन्न) दुहीं। पृथु के समान अन्य लोगों ने भी पृथु के द्वारा वश की हुई पृथ्वी को अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार दुहा। क्योंकि बुद्धिमान् सारग्रहण करने वाले होते हैं, श्रेष्ठ विदुर, ऋषियों ने बृहस्पति को बछड़ा बनाकर तथा इन्द्रियों को पात्र बनाकर वेदरूप पवित्र दूध दुहा। देवताओं ने इन्द्र को बछड़ा बनाकर सुवर्णपात्र मे सोम, वीर्य, ओज और बल रूप दूध दुहा। दैत्य और दानवों ने दैत्यराज प्रह्लाद को बछड़ा बनाकर लोहे के पात्र में सुरा (शराब) और आसव दुहा। गन्धर्व और अप्सराओं ने कमल-पात्र मे विश्वावसु को बछड़ा बनाकर वचन की मधुरता और सुन्दरता रूप दूध दुहा। अर्य्यमा को बछड़ा बनाकर कच्चे पात्र मे महाभाग श्राद्ध, देवता-पितरों

४—तानातिष्ठति यः सम्यगुपायान् पूर्वदर्शितान्। अवरः श्रद्धयोपेत उपायान्विदतेंऽजसा॥

५—ताननादृत्य यो विद्वानर्थानारभते स्वयं। तस्य व्यभिचरन्त्यर्था आरब्धाश्च पुनःपुनः॥

६—पुरा सृष्टा ह्योषधयो ब्रह्मणा याविशांपते। भुज्यमाना मया दृष्टा भवद्भि रधृतव्रतैः॥

७—अपालितानादृता च भवद्भिर्लोक पालकैः। चोरीभूतेऽथलोकेऽहं यज्ञार्थेऽग्रसमौषधी॥

८—नून ताबीरुधः क्षीणा मयि कालेन भूयसा। तत्र योगेन दृष्टेन भवानादातु मर्हति॥

९—वत्सं कल्पय मे वीर येनाहं वत्सला तव। धोक्ष्ये क्षीरमयान्कामाननुरूपञ्च दोहनं॥

१०—दोग्धारं च महाबाहो भूतानां भूतभावन। अन्नमीप्सितमूर्जस्वद्भगवान् वाञ्छते यदि॥

११—समाञ्च कुरु मां राजन् देववृष्टं यथापयः। अपर्तावपि भद्रं ते उपावर्तेत मे विभो॥

१२—इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपतिः। वत्सं कृत्वा मनुं पाणावदुहत्सकलौषधीः॥

१३—तथापरे च सर्वत्र सारमाददते बुधा। ततोऽन्ये च यथाकामं दुदुहुः पृथुभाविताम्॥

१४—ऋषयो दुदुहुर्देवीं मिन्द्रियेष्वथ सत्तम। वत्सं बृहस्पतिं कृत्वा पयश्छन्दोमयं शुचि॥

१५—कृत्वा वत्सं सुरगणा इन्द्रं सोम मदूदुहन्। हिरण्मयेन पात्रेण वीर्य मोजो बलं पयः॥

ने श्रद्धा पूर्वक कव्य (पितर भोज अन्न) रूप दूध दुहा। कपिल मुनि को बछड़ा बनाकर सकल्प-मयी सिद्धि रूप दूध सिद्धों ने दुहा और विद्याधरों ने कपिल को ही बछड़ा बनाकर आकाश रूप पात्र में विद्या (आकाश में उड़ने की) रूप दूध दुहा। दूसरे मायावी किंपुरुष आदि ने मय नामक दैत्य को बछड़ा बनाकर अन्तर्धान होने से आश्चर्य उत्पन्न करने वाली माया रूप विद्या दुही। जो केवल संकल्प से ही सिद्ध होती है। यक्ष, राक्षस, पिशाच, आदि मांस भक्षियों ने भूतेश को बछड़ा बनाकर खप्पर में रुधिर रूप आसव (मद्य) दूध दुहा। सर्प, बिच्छू, फनवाले साँप और नागों ने तक्षक को बछड़ा बनाकर बिलरूपी पात्र मे विषरूप दूध दुहा। पशुओं ने बैल को बछड़ा बनाकर वनरूपी पात्र में घास और दूध दुहा। दाँत वाले, मांस भक्षी प्राणियों ने सिंह को बछड़ा बनाकर अपने शरीररूप पात्र मे क्रव्य (मांस) रूप दूध दुहा। पक्षियों ने गरुड़ को बछड़ा बनाकर चर और अचर रूप दूध दुहा (अर्थात् कीट और फल)। वनस्पतियों ने वट को बछड़ा बनाकर अलग-अलग रस रूप दूध दुहा। पर्वतों ने हिमवान् को बछड़ा बनाकर अपने शिखररूप पात्र में विविध धातुरूप दूध दुहा। सभी ने अपने-अपने प्रधान पुरुष को बछड़ा बनाकर अपने-अपने पात्र में पृथक्-पृथक् सब कामों को देने वाली और राजा पृथु के द्वारा वश की गयी पृथ्वी से दूध दुहा। इस प्रकार अन्न ग्रहण करने वाले पृथु आदि ने अपना-अपना अभीष्ट अन्न, पात्र और बछड़े के भेद से भिन्न-भिन्न प्रकार का दूध

१६—दैतेया दानवा वत्सं प्रह्लाद मसुरर्षभ। विधाया दूदुहन्क्षीर मयः पात्रे सुराऽसव ॥

१७—गन्धर्वाप्सरसोऽधुक्षन्पात्रे पद्ममये पयः। वत्सं विश्वावसुं कृत्वा गान्धर्वं मधुसौभगं ॥

१८—वत्सेन पितरोऽर्यम्णा कव्यं क्षीरमधुक्षत। आमपात्रे महाभागाः श्रद्धया श्राद्धदेवताः ॥

१९—प्रकल्प्य वत्स कपिल सिद्धाः सकल्पनामयीं। सिद्धिं नभसि विद्यांच ये च विद्याधरादयः ॥

२०—अन्येच मायिनो माया मंतर्धानाद्भुतात्मनां। मयं प्रकल्प्य वत्सं ते दुदुहुर्धारणामयीं ॥

२१—यक्ष रक्षांसि भूतानि पिशाचाः पिशिताशना.। भूतेश वत्सा दुदुहुः कपाले क्षतजासवं ॥

२२—तथाऽहयो दन्दशूकाः सर्पा नागाश्च तक्षक। विधाय वत्स दुदुहुर्बिलपात्रे विषं पयः ॥

२३—पशवो यवसंक्षीरं वत्स कृत्वा चगोवृषं। अरण्यपात्रे चाधुक्षन्मृगेंद्रेण च दंष्ट्रिण. ॥

२४—क्रव्यादाः प्राणिनः क्रव्य दुदुहुः स्वे कलेवरे। सुपर्णा वत्सा विहगाश्चरंचाऽचर मेवच ॥

२५—वट वत्सा वनस्पतयः पृथग्र समयं पयः। गिरयो हिमवद्वत्सा नानाधातून् स्वसानुषु ॥

२६—सर्वे स्वमुख्यवत्सेन स्वेस्वे पात्रे पृथक् पयः। सर्वं कामदुघां पृथ्वीं दुदुहु. पृथुभाविता ॥

२७—एवं पृथ्वादयः पृथ्वी मन्नादा. स्वजमात्मनः। दोह वत्सादिभेदेन क्षीरभेद कुरूद्वह ॥

२८—ततो महीपतिः प्रीतः सर्व कामदुघा पृथुः। दुहितृत्वे चकारेमा प्रेम्णा दुहितृवत्सल. ॥

दुहा। राजा पृथु सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली पृथ्वी पर बहुत प्रसन्न हुए और प्रेम पूर्वक उन्होंने उसे अपनी पुत्री बनाया, क्योंकि पुत्री पर उनका बहुत अनुराग था। राजाओं के राजा अपने धनुष से पर्वत-शिखरों को चूर्ण करके वेनपुत्र पृथु ने प्रायः समस्त पृथ्वी को सम कर दिया, बराबर बना दिया। अनन्तर प्रजा को वृत्ति देने वाले पिता वेन-पुत्र पृथु ने इसके पश्चात भिन्न-भिन्न स्थानों पर यथोचित प्रजाओं के रहने के स्थान बनवाये। ग्राम, पुर, पत्तन, भिन्न-भिन्न किले, व्रज, शिविर आकर, खेट,खर्वट आदि की रचना उन्होंने की। पृथु के पहले नगर, ग्राम आदि की कल्पना नहीं थी। अब इनके बन जाने पर निर्भय होकर प्रजा निवास करने लगी॥ १, ३२॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का अठारहवाँ अध्याय समाप्त

———:o:———

उन्नीसवाँ अध्याय

पृथु और इन्द्र

मैत्रेय बोले—अनन्तर, राजा पृथु ने सौ अश्वमेध यज्ञों की दीक्षा मनु के क्षेत्र ब्रह्मावर्त में ली, जिसके पूर्व ओर सरस्वती नदी बहती है। यह देखकर इन्द्र के मन मे ईर्ष्या उत्पन्न हुई। पृथु का अपने से अधिक यज्ञों का करना वे सह न सके जिस यज्ञ में यज्ञपति सर्वलोकगुरु

२९—चूर्णयन्स्वधनुः कोट्या गिरि कूटानि राजराट्। भूमंडल मिद वैन्यः प्रायश्चक्रे समंविभुः॥

३०—अथास्मिन भगवान्वैन्यः प्रजाना वृत्तिदः पिता। निवासान् कल्पयाचक्रे तत्रतत्र यथार्हतः॥

३१—ग्रामान्पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च। घोषान्व्रजान्सशिबिरानाकरान् खेटखर्वटान्॥

३२—प्राक्पृथोरिह नैवैषा पुरग्रामादि कल्पना। यथासुखं वसन्तिस्म तत्रतत्राकुतोभयाः॥

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणेचतुर्थस्कंधेपृथुविजयेऽष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

———

मैत्रेयउवाच—

१—अथा दीक्षित राजा तु हयमेध शतेन सः। ब्रह्मावर्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती॥

सर्वात्मा भगवान ईश्वर साक्षात् वर्तमान थे। ब्रह्मा, महादेव, अपने अनुचरों के साथ लोकपाल इनके साथ भगवान उस यज्ञ मे वर्तमान थे। गंधर्व, मुनि और अप्सराएँ उनकी स्तुति कर रही थीं। सिद्ध, विद्याधर, दैत्य, यक्ष, किन्नर, सुनन्द, नन्द आदि महादेव के गण, कपिल, नारद, दत्त, योगेश्वर सनकादि, ये सब भगवद्भक्त तथा जो भगवान की सेवा करना चाहते थे वे भगवान के साथ उस यज्ञ मे आये थे। विदुर, उस यज्ञ में दूध देने वाली पृथ्वी रूपी गौ सब मनोरथों को पूरा कराने वाली हो गयी थी। वह यजमान के समस्त मनोरथों को पूरा करती थी। नदियों मे दूध, दही, अन्न, घी आदि बहने लगे, वृक्ष मधु के समान मीठे और बड़े-बड़े फल उत्पन्न करने लगे। समुद्रों ने रत्न, पर्वतों ने अन्न तथा समस्त लोकों और लोकपालों ने उपहार दिये। भगवान के भक्त पृथु का यह उत्कर्ष देखकर इन्द्र न सह सके। अतएव उन्होंने विघ्न उपस्थित कर दिया। अन्तिम अर्थात् सौ अश्वमेध से यज्ञपति की आराधना जब पृथु करने लगे तब उस समय राजा से द्वेष रखवाले इन्द्र ने छिपकर यज्ञपशु (घोड़ा) चुरा लिया। भगवान् अत्रि ने आकाश मे दौड़े जाते हुए उनको देखा, जिन्होंने छिपने के लिए सन्यासी का वेश धारण किया था, जिससे अधर्म मे धर्म का भ्रम हो जाय। अत्रि ने पृथु के पुत्र को आज्ञा दी और वह क्रोध करके इन्द्र के पीछे 'ठहरो, ठहरो' कहता हुआ दौड़ा, इन्द्र का वैसा स्वरूप देखकर उसने उन्हें शरीरधारी धर्म समझा। उनके मस्तक पर जटा थी और शरीर मे भस्म, अतएव उसने इन्द्र पर बाण न छोड़ा। यह देखकर अत्रि ने उनका वध करने के लिए पुन. कहा। तात, यह यज्ञ मे विघ्न करने वाला देवाधम इन्द्र है, इसे मारो। मुनि के ऐसा कहने पर आकाश मे शीघ्रता पूर्वक जाने वाले इन्द्र का

२—तदभिप्रेत्य भगवान् कर्मातिशयमात्मन. । शत क्रतुर्नममृषे पृथोर्यज्ञ महोत्सव ॥
३—यत्र यज्ञपति. साक्षाद्भगवान् हरिरीश्वर. । अन्वभूयत सर्वात्मा सर्वलोकगुरु' प्रभुः ॥
४—अन्वितो ब्रह्म शर्वाभ्या लोकपालैः महानुगै. । उपगीयमानो गंधर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरो गणै' ॥
५—सिद्ध विद्याधरा दैत्या दानवा गुह्यकादयः । सुनंद नंद प्रमुखा पार्षदप्रवरा हरे. ॥
६—कपिलो नारदो दत्तो योगेशा सनकादय. । तमन्वीयुर्भागवता ये च तत्सेवनोत्सुकाः ॥
७—यत्र धर्मदुघा भूमि सर्वकामदुघा सती । दोग्धिस्माभीप्सितानर्थान् यजमानस्य भारत ॥
८—ऊहुः सर्वरसान्नद्य क्षीरदध्यन्नगोरसान् । तरवो भूरिवर्ष्माण' प्रासूयंत मधुच्युत ॥
९—सिंधवो रत्ननिकरान् गिरयोऽन्नं चतुर्विध । उपायन मुपाजह्रु' सर्वे लोका: सपालका: ॥
१०—इति चाधोक्षजे शस्य पृथोस्तु परमोदय । असूयन्भगवानिंद्र प्रतिघात मचीकरत् ॥
११—चरमेणाश्वमेधेन यजमाने यजुष्पति । वैन्ये यज्ञपशुं स्पर्धन्नपोवाह तिरोहित ॥
१२—तमत्रिर्भगवानैक्षत्त्वरमाणं विहायसा । आमुक्तमिव पाखंड योऽधर्मे धर्मविभ्रम ॥

पृथुपुत्र ने पीछा किया, जिस प्रकार गृध्रराज जटायु ने रावण का पीछा किया था। इन्द्र ने घोड़ा छोड़ दिया, अपना रूप छोड़ दिया और वे वहीं अन्तर्धान हो गये। वीर पृथुपुत्र अपना घोडा लेकर पिता के यज्ञ में आया। उसका यह अद्भुत काम देखकर ऋषियों ने उसका नाम विजिताश्व रखा। पुन. इन्द्र ने घोर अन्धकार की सृष्टि की। उससे छिपकर यूप के पास खूँटे मे सोने की रस्सी से बधे हुए घोड़े को चुरा लिया। अत्रि ने आकाश मे शीघ्रता पूर्वक जाते हुए इन्द्र को दिखाया। खप्पर खाट का पाया लिए कापालिक वेश में इन्द्र जा रहा था, पर वीर पृथुपुत्र ने कोई बाधा न दी। पुनः अत्रि के कहने पर क्रोध करके उन्होंने इन्द्र के लिए बाण चढ़ाया। इन्द्र घोडा और अपना वह रूप छोडकर वहीं अन्तर्धान हो गये। अनन्तर वह वीर घोड़ा लेकर पिता के यज्ञ मे आया। घोडा चुराने के लिए इन्द्र ने जो रूप धारण किये थे वे ही निन्दित रूप अज्ञानी धारण करते है। वे रूप पाप के खण्ड हैं। खण्ड चिन्ह को कहते है। अर्थात् वे रूप पाप के चिन्ह हैं। इस प्रकार पृथु के यज्ञ नष्ट करने के लिये इन्द्र ने जो रूप ग्रहण किये और छोड़े उन्हीं पाखण्डों मे कई मनुष्यों की रुचि उत्पन्न हो गयी। नंगा, लालवस्त्र पहनना आदि उपधर्मो को लोगों ने धर्म समझ लिया। प्रायः चतुर वक्ता की बातों से लोगों को भ्रम हो ही जाता है। पृथु को भी इस पाखण्ड की उत्पत्ति की बात मालूम हुई, अतएव क्रोध करके धनुष उठाकर इन्द्र के लिए उन्होंने बाण चढ़ाया। इन्द्र का वध करने के लिए उद्यत, अतएव क्रोध के कारण न देखने योग्य राजा को ऋत्विजों ने देखा और उन्होंने रोका। महाराज! यज्ञ मे पशु के अतिरिक्त दूसरे का वध नहीं करना

१३—अत्रिना चोदितो हन्तु पृथुपुत्रो महा रथः। अन्वधावत सक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥
१४—त तादृशाकृति वीक्ष्य मेने धर्मंशरीरिणा। जटिल भस्मनाच्छन्नं तस्मै बाण न मुंचति ॥
१५—वधान्निवृत्त त भूयो हन्तवेऽत्रि रचोदयत्। जहि यज्ञहनं तात महेंद्र विबुधाधम ॥
१६—एव वैन्यसुतः प्रोक्त स्त्वरमाणा विहायसा। अन्वद्रवदभिक्रुद्धो रावण ग्रध्रराडिव ॥
१७—सोऽश्व रूपं चतद्धित्वा तस्मा अतर्हित स्वराट्। वीरः स्वपशुमादाय पितुर्यज्ञ मुपेयिवान् ॥
१८—तत्तस्य चाद्भुत कर्म विचक्ष्य परमर्षय.। नामधेय ददुस्तस्मै विजिताश्व इतिप्रभो ॥
१९—उपसृज्यतमस्तीव्र जहाराश्व पुनर्हरि.। चषाल यूपतश्छन्नो हिरण्यरशन विभुः ॥
२०—अत्रिः संदर्शयामास त्वरमाणं विहायसा। कपाल खट्वागधरं वीरो नैनमबाधत ॥
२१—अत्रिणा चोदितस्तस्मै सदधे विशिख रुषा। सोऽश्व रूप च तद्धित्वातस्थावतर्हितः स्वराट् ॥
२२—वीरश्चाश्व मुपादाय पितृयज्ञ मथाव्रजत्। तदवद्य हरेरूप जगृहुर्ज्ञान दुर्बला: ॥
२३—यानि रूपाणि जगृहे इन्द्रो हयजिहीर्षया। तानि पापस्य खडानि लिंग खड मिहोच्यते ॥
२४—एवमिन्द्रे हरत्यश्व वैन्य यज्ञ जिघांसया। तद्गृहीत विसृष्टेषु पाखडेषु मतिर्नृणा ॥

चाहिए। राजन्! आपके उद्देश्य को नष्ट करने वाले और आपके यश से हतप्रभ देवराज इन्द्र का हम लोग इस यज्ञ मे आह्वान करते हैं। राजन्, आह्वान-मन्त्रों के द्वारा आपके शत्रु को हम लोग बुलाते हैं और उसका हवन करते हैं। विदुर, पृथु के ऋत्विज यज्ञपति भगवान की आज्ञा लेकर क्रोध से हाथ में स्रुवा लेकर हवन करने लगे। उसी समय ब्रह्मा ने आकर उन सबको रोका। इन्द्र का वध आप लोगों को न करना चाहिए, क्योंकि यज्ञ भगवान का शरीर है। यज्ञ से जिसको आप लोग मारना चाहते है उसीके शरीर ये देवता हैं। अर्थात् इस इन्द्र का नाम यज्ञ है, यह भगवान का अवतार है। अतएव इसका वध आप लोगों को नहीं करना चाहिए। ब्राह्मणों, राजा पृथु के इस यज्ञ का नाश करने की इच्छा रखने वाले इन्द्र का यह धर्म-विपर्यय देखिए, इसने कितने पाखण्ड-मत बना दिए। अतएव पृथुकीर्ति राजा पृथु के एक कम सौ ही यज्ञ रहे। राजन्, ये यज्ञ बहुत हो चुके, क्योंकि आप मोक्ष-धर्म जानने वाले हैं। आत्मरूप इन्द्र पर आप क्रोध न कीजिएगा। आप दोनों के ही शरीर पवित्र हैं। आपका कल्याण हो। राजन्, इस विषय मे चिन्ता न कीजिए। आदरपूर्वक मेरी बात सुनिए, देवता के विघ्न से नष्ट कार्य का ध्यान करते रहने से मन मे बड़ा क्रोध होता है और वह मोहित हो जाता है। जिससे शान्ति नहीं मिलती। अतएव आप इस यज्ञ को रोक दें। देवताओं में दुराग्रह होता है, इसलिये मैं इन्द्र को कुछ नहीं कहता। इन्द्र के बनाए पाखण्डों के द्वारा धर्म का विपर्यय हुआ है। अधर्म को धर्म समझा गया है। जो इन्द्र तुम्हारे यज्ञ

२५—धर्म इत्युपधर्मेषु नग्नरक्त पटादिषु। प्रायेण सज्जते भ्रान्त्या पेशलेषु च वाग्मिषु॥

२६—तदभिज्ञाय भगवान् पृथुः पृथुपराक्रमः। इन्द्राय कुपितो बाण मादत्तोद्यत कार्मुकः॥

२७—तमृत्विजः शक्र वधाभिसंधित विचक्ष्य दुःप्रेक्ष्य मसह्य रहस।

निवारयामासुरहो महामते नयुज्यते त्रान्यवधः प्रचोदितात्॥

२८—वय मरुत्व तमिहार्थ नाशन ह्वयामहे त्वच्छ्रवसा हतत्विप।

अयात यामो पहवैरनतर प्रसह्य राजन् जुहवामतेऽहित॥

२९—इत्या मन्य क्रतुपतिं विदुरास्यर्त्विजो रुषा। स्रु ग्घस्तान् जुह् वतोऽभ्येत्य स्वयंभूः प्रत्यषेधत॥

३०—न वध्यो भवतामिंद्रो यद्यज्ञो भगवत्तनुः। य जिघांसथ यज्ञेन यस्येष्टास्तनवः सुराः॥

३१—तदिद पश्यत महद्धर्म व्यतिकर द्विजाः। इंद्रेणा नुष्ठितं राज्ञ. कर्मैतद्वि जिघांसता॥

३२—पृथुर्कीर्तेः पृथोर्भूयात्तर्ह्येकोनशतक्रतुः। अल ते क्रतुभिः स्विष्टैर्यद्भवान्मोक्ष धर्मवित्॥

३३—नैवात्मने महेंद्राय रोषमाहर्तुं मर्हसि। उभावपि हि भद्रते उत्तमश्लोक विग्रहौ॥

३४—मास्मिन्महाराज कृथाःस्म चिंता निशमयास्मद्वच आदृतात्मा॥

यद् ध्यायतो दैवहतनुकर्तुं मनोतिरुष्टं विशते तमोऽन्धं॥

मे विघ्न डालता है और तुम्हारा घोड़ा चुराता है, उस इन्द्र के बनाए मनोहर पाखण्ड-मार्ग मे मनुष्य आकृष्ट हो रहे हैं, यह देखो! वेनपुत्र, वेन के अत्याचार से लुप्त समयानुरूप मनुष्यों के धर्म की रक्षा के लिए आपने अवतार धारण किया है। आपका शरीर विष्णु के अंश से उत्पन्न हुआ है। प्रजापते, इस संसार की उत्पत्ति का विचार करो और विश्व की सृष्टि करने वालों का संकल्प पूरा करो। अधर्म को उत्पन्न करने वाली इन्द्र की माया को जिससे प्रचण्ड पाखण्ड-मत उत्पन्न हुए हैं, उसका नाश करो ॥ १, ३८ ॥

मैत्रेय बोले—लोक गुरु ब्रह्मा के इस प्रकार आज्ञा देने पर राजा ने वैसाही करना निश्चय किया और स्नेह पूर्वक इन्द्र से भी उन्होंने मैत्री कर ली। अवभृथ स्नान करने पर, महान कर्म करने वाले पृथु को वर देने वाले उन सबने वर दिये, जो इनके यज्ञ में तृप्त हुए थे। सत्य आशीर्वाद देने वाले ब्राह्मण श्रद्धापूर्वक दी हुई दक्षिणा लेकर सन्तुष्ट हुए और सत्कृत होकर आदिराज पृथु को उन लोगों ने आशीर्वाद दिये। आपके बुलाने से महाबाहो, सभी आये थे और आपने पितर, देवता, ऋषि तथा मनुष्यों का दान-मान से सत्कार किया ॥ ३९, ४२ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कध का उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त
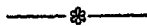
———※———

३५—क्रतुर्विरमतामेष देवेषु दुरवग्रहः। धर्मव्यतिकरो यत्र पाखण्डैरिन्द्र निर्मितैः ॥

३६—एभिरिन्द्रोपसंसृष्टैः पाखंडैर्हारिभिर्जनं। ह्रियमाणं विचक्ष्वैनं यस्ते यज्ञध्रुगश्वमुट् ॥

३७—भवान्परित्रातुमिहावतीर्णो धर्मं जनानां समयानुरूपं।

वेनापचारादवलुप्तमद्य तद्देहतो विष्णुकलासि वैन्य ॥

३८—स त्वं विमृश्यास्य भवं प्रजापते सङ्कल्पनं विश्वसृजां पिपीपृहि।

ऐन्द्रीं च मायामुपधर्ममातरं प्रचंडपाखंडपथं प्रभो जहि ॥

मैत्रेय उवाच—

३९—इत्थं स लोकगुरुणा समादिष्टो विशाम्पतिः। तथा च कृत्वा वात्सल्यं मघोनापि च सन्दधे ॥

४०—कृतावभृथस्नानाय पृथवे भूरिकर्मणे। वरान्ददुस्ते वरदा ये तद्बर्हिषि तर्पिताः ॥

४१—विप्राः सत्याशिषस्तुष्टाः श्रद्धया लब्धदक्षिणाः। आशिषो युयुजुः क्षत्तरादिराजाय सत्कृताः ॥

४२—त्वयाहूता महाबाहो सर्व एव समागताः। पूजिता दानमानाभ्यां पितृदेवर्षिमानवाः ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कन्धेपृथुविजयेएकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

———※———

बीसवाँ अध्याय

पृथु और विष्णु की मित्रता

ऋषि बोले—इन्द्र के साथ बैठे हुए, यज्ञपति भगवान् यज्ञ का अंश ग्रहण करके संतुष्ट हुए और पृथु से बोले ॥ १ ॥

श्री भगवान बोले—इन्होंने सौ अश्वमेध करने के आपके संकल्प में विघ्न डाला, ये तुमसे अपने अपराधों की क्षमा चाहते हैं, तुम भी इन्हें क्षमा कर दो। बुद्धिमान्, साधु पुरुष श्रेष्ठ मनुष्यलोक में प्राणियों से द्रोह नहीं करते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि शरीर आत्मा नहीं है। राजन्, आपके समान यदि मनुष्य देव-माया से मोहित हो तो प्रवृद्धों की बहुत दिनों तक जो सेवा आपने की है, वह व्यर्थ ही समझनी चाहिए। राजन्, यह शरीर अविद्या, काम और कर्मों से उत्पन्न हुआ है, अतएव विद्वान् मनुष्य, जिसे आत्मज्ञान है, वह इस शरीर में अनुराग नहीं रखता। इस शरीर में आसक्ति न रखने वाला पुरुष, इस शरीर के द्वारा बनाये, घर, पुत्र, धन आदि में वह ममता कैसे कर सकता है। यह आत्मा शरीर से भिन्न है, क्योंकि एक है, स्वयं प्रकाश है, निर्गुण है और गुणों का आश्रय है, व्यापक है, अपरिच्छिन्न है, साक्षी है। अतएव शरीर इससे भिन्न है, क्योंकि शरीर में ये गुण नहीं है। जो पुरुष अन्तर्यामी रूप से आत्मा में वर्तमान इस आत्मा को जानता है वह शरीर में रहने पर भी शरीर के गुणों में लिप्त नहीं होता, क्योंकि वह मुझमें वर्तमान रहता है। जो मनुष्य श्रद्धायुक्त होकर बिना

ऋषिरुवाच—

१—भगवानपि वैकुंठः साकं मघवता विभुः। यज्ञैर्यज्ञपतिस्तुष्टो यज्ञभुक् तमभाषत ॥

श्रीभगवानुवाच—

२—एषतेऽकार्षीद्भंगं हयमेधशतस्य ह। क्षमापयत आत्मानममुष्य क्षन्तुमर्हसि ॥

३—सुधियः साधवो लोके नरदेव नरोत्तमाः। नाभिद्रुह्यन्ति भूतेभ्यो यर्हिनात्मा कलेवरं ॥

४—पुरुषा यदि मुह्यन्ति त्वादृशा देवमायया। श्रम एव परं जातो दीर्घया वृद्धसेवया ॥

५—अतः कायमिमं विद्वानविद्याकामकर्मभिः। आरब्ध इति नैवास्मिन् प्रतिबुद्धोऽनुषज्जते ॥

६—असंसक्तः शरीरेऽस्मिन्नमुनोत्पादिते गृहे। अपत्ये द्रविणे वाऽपि कः कुर्यान्ममतां बुधः ॥

७—एकः शुद्धः स्वयंज्योतिर्निर्गुणोऽसौ गुणाश्रयः। सर्वगोऽनावृतः साक्षी निरात्मात्मात्मनः परः ॥

८—य एवं संतमात्मानमात्मस्थं वेद पूरुषः। नाज्यते प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः समयि स्थितः ॥

९—यः स्वधर्मेण मां नित्यं निराशीः श्रद्धयान्वितः। भजते शनकैस्तस्य मनो राजन्प्रसीदति ॥

कामना के प्रतिदिन अपने धर्म के अनुसार मुझे भजता है, राजन्, धीरे-धीरे उसका मन प्रसन्न होता है, जब उसका मन प्रसन्न होता है। तब गुणों के दोष हट जाते हैं और यथार्थज्ञान प्राप्त होता है, जिससे वह शान्ति पाता है और ब्रह्मरूप मोक्ष पाता है। जो पुरुष उदासीन आत्मा को देह ज्ञान, कर्मेन्द्रिय और मन के अध्यक्ष रूप में जानता है, वही कूटस्थ आत्मा को प्राप्त करता है। यह शरीर आत्मा से भिन्न है, क्योंकि पंचभूत, इन्द्रियाँ, उनके अधिष्ठाता देवता और चिदाभास, इनके द्वारा बना हुआ यह संसार है। जो यह जानता है वह सम्पत्तियों के प्राप्त होने पर प्रसन्न नहीं होता और विपत्तियों के आने पर दुखी नहीं होता, क्योंकि उसका मुझमें दृढ़ प्रेम है। हे वीर आप सुख और दु ख मे सम हैं, अर्थात् हर्ष शोक करने वाले नहीं हैं, अतएव उत्तम, मध्यम और अधम आपके लिए समान हैं, आपने इन्द्रियों को और मन को वश कर लिया है। मेरे बनाये अमात्य (मंत्री) आदि को साथ लेकर आप समस्त लोकों की रक्षा करे। प्रजा-पालन करना ही राजाओं का कल्याण है। क्योंकि परलोक मे प्रजा के पुण्य का छठवाँ भाग उसे प्राप्त होता है। जो राजा प्रजा की रक्षा नहीं करता उसका पुण्य प्रजा ले लेती है और वह प्रजा का पाप भोग करता है। अतएव श्रेष्ठ ब्राह्मणों के द्वारा प्रशंसित परम्परा प्राप्त धर्म को ही प्रधान मानकर अनन्य भाव से इस पृथ्वी की रक्षा करो। थोड़े ही दिनों में प्रजा का तुम्हारे प्रति अनुराग बढ़ जायगा और सिद्धगण तुम्हारे घर में आवेंगे। हे मानवेन्द्र! मुझसे कोई भी वर तुम माँग लो, क्योंकि तुम्हारे शील और गुणों से तुम्हारे अधीन हो गया हूँ। यदि गुण और शील न हो तो यज्ञों, तपस्या और योग से मैं प्राप्त नहीं हो सकता हूँ। क्योंकि समान भाव रखने वालों के साथ रहना ही मुझे पसन्द आता है॥ १, १६॥

१०—परित्यक्तगुणः सम्यग्दर्शनो विशदाशयः। शांतिं मे समवस्थानं ब्रह्मकैवल्य मश्नुते॥

११—उदासीन मिवाध्यक्ष द्रव्य ज्ञान क्रियात्मना। कूटस्थमिममात्मान यो वेदाप्नोति शोभनं॥

१२—भिन्नस्य लिंगस्य गुणप्रवाहो द्रव्य क्रिया कारक चेतनात्मनः।
दृष्टासु सपत्सु विपत्सु सूरयो न विक्रियते मयि बद्धसौहृदाः॥

१३—समः समानोत्तम मध्यमाधम' सुखेच दुःखे च जितेंद्रियाशयः।
मयोपक्लृप्ता खिललोकसयुतो विधत्स्ववीराखिल लोकरक्षणं॥

१४—श्रेयः प्रजापालन मेव राज्ञो यत्सांपराये सुकृतात् षष्ठमंशं।
हर्ताऽन्यथा हृतपुण्यः प्रजाना मरक्षिता करहारोघमत्ति॥

१५—एव द्विजाग्र्यानुमता नुवृत्त धर्मप्रधानोऽन्यतमोऽविताऽस्याः।
ह्रस्वेन कालेन गृहोपयातान् द्रष्टासि सिद्धा ननुरक्तलोकः॥

१६—वर च मत्कचन मानवेंद्र वृणीष्वतेऽहं गुणशील यंत्रितः।
नाहं मखैर्वै सुलभस्तपोभिर्योगेन वायत्समचित्त वर्ती॥

मैत्रेय बोले—लोकगुरु विश्वक्सेन भगवान ने पृथु को इस प्रकार उपदेश दिये। पृथु ने भगवान के आदेश सिर से ग्रहण किये। प्रेम-पूर्वक पैरों को छूने वाले और अपने कर्म से लज्जित इन्द्र का आलिंगन करके राजा ने उनके प्रति विद्वेष भाव का त्याग किया। विश्वात्मा भगवान् पृथु के द्वारा पूजित हुए और भक्ति की अधिकता के कारण पृथु ने उनके चरण-कमल पकड़ लिये। भगवान् पद्मपलाशलोचन, जाने के लिए उद्यत थे, पर कृपा परवश होकर ठहर गये। सज्जनों के मित्र भगवान् पृथु को देखते हुए प्रस्थित हुए। आदिराज पृथु ने हाथ जोड़े। आँखों मे आँसू भर जाने के कारण वे उनकी ओर देख न सके। कण्ठ के वाष्परुद्ध हो जाने के कारण कुछ बोल न सके। अतएव चुप-चाप खड़े रह कर हृदय मे भगवान को धारण किया। अनन्तर आँसू पोंछ कर अतृप्त आँखों के सामने खडे भगवान की ओर देखते हुए बोले। उस समय भगवान् पैरों से पृथ्वी पर खडे थे और गरुड़ के ऊँचे कन्धे पर एक हाथ रखे हुए थे ॥ १७, २२ ॥

पृथु बोले—विभो, आप वर देने वाले ब्रह्मा आदि के भी स्वामी हैं। आपसे कौन विद्वान वर माँगेगा। क्योंकि अहंकार आदि गुणों के अधिष्ठाताओं के द्वारा प्राप्त होने वाले वे वर नारकी प्राणियों को भी मिल सकते हैं। अतएव हे ईश! आपसे मैं वर नहीं माँगता। नाथ, मैं ऐसा कोई वर नहीं चाहता जिसमें महात्माओं के हृदय से मुख के द्वारा निकला हुआ आपके चरण-कमल का रस न हो। भगवन्, मुझे हजार कान हों, यही वर मैं चाहता

मैत्रेयउवाच—

१७—स इत्थं लोकगुरुणा विष्वक्सेनेन विश्वजित्। अनुशासित आदेशं शिरसा जगृहे हरेः ॥

१८—स्पृशन्त पादयोः प्रेम्णा व्रीडित स्वेन कर्मणा। शतक्रतुं परिष्वज्य विद्वेषं विससर्ज ह ॥

१९—भगवानथ विश्वात्मा पृथुनोपहृतार्हणः। समुज्जिहानया भक्त्या गृहीत चरणाम्बुजः ॥

२०—प्रस्थानाभिमुखोऽप्येन मनुग्रह विलम्बितः। पश्यन् पद्मपलाशाक्षो न प्रतस्थे सुहृत्सताम्॥

२१—स आदिराजो रचितां जलिर्हरिं विलोकितुं नाशकदश्रु लोचनः।

न किंचनो वाच सबाष्पविक्लवो हृदोपगुह्यामुमधादवस्थितः ॥

२२—अथावमृज्याश्रु कला विलोकयन्नतृप्त दृग्गोचर माहपूरुषं।

पदास्पृशन्त क्षितिम स उन्नते विन्यस्त हस्ताग्रमुरग विद्विपः ॥

पृथुरुवाच—

२३—वरान् विभोत्वद्वरदेश्वराद्बुधः कथं वृणीते गुण विक्रियात्मना।

ये नारकाणामपि सन्ति देहिनां तानीश कैवल्यपते वृणेन च ॥

२४—न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्नयत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।

महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः॥

हूँ, जिससे आपकी कथा सुन सकूँ। पवित्रकीर्ति वाले महात्माओं के मुख से निकला हुआ आपके चरण-कमल के अमृतकण का स्पर्श करने वाली वायु, विधि पूर्वक भजन न करने वालों को भी जो तत्वज्ञान भूले हुए हैं, तत्वज्ञान का स्मरण करा देती है। फिर वरों से क्या लाभ है ? हे यशस्विन्, सज्जनों की संगति में अकस्मात् एकबार भी जो आपका मंगलमय यश सुन लेता है। वह यदि गुणज्ञ हो, पशु न हो तो वह आपका यश सुनने से कैसे रुक सकता है ? क्योंकि आपके गुणों को प्राप्त करने के लिए ही लक्ष्मी ने आपके चरणों का वरण किया है। समस्त पुरुषों में श्रेष्ठ, गुणों के आधार आपको लक्ष्मी के समान ही मै उत्सुक होकर भजता हूँ। हम दोनों के एक ही स्वामी है, दोनों ही अधिक सेवा करने की स्पर्द्धा रखते हैं, फिर भी हम दोनों मे विरोध नहीं हो सकता, क्योंकि दोनों ही आपके चरणों में एकाग्र हैं। जगदीश ! जगत-जननी लक्ष्मी से हमारा विरोध होना सम्भव है, क्योंकि आपकी चरणसेवा में भी चाहता हूँ और यह लक्ष्मी को प्राप्त है। आप दीनवत्सल है, अतएव मेरी थोड़ी सेवा को भी बहुत समझेंगे। अपने स्वरूप में ही रमण करने वाले आपको लक्ष्मी से क्या काम है। माया के गुणों के विलास तथा उनके कार्यों को जिसने हटा दिया है, अतएव निष्काम साधु भी आपका भजन करते हैं, क्योंकि आपके चरण-कमलों के भजन के अतिरिक्त और कोई काम नहीं है। भजन करने वालों को वर माँगने के लिये जो आप कहते हैं, आपकी यह वाणी उनको मोह मे डालने वाली है। क्योंकि आपकी वाणी की रस्सी से यह लोक बँधा हुआ है। यदि यह मोहित न होता तो फलों के लिए बार-बार कर्म क्यों करता। ईश, यह संसार तुम्हारी माया के द्वारा सत्यस्वरूप आपसे अलग कर दिया गया है। अतएव अज्ञानी आपसे धन, पुत्र आदि माँगता है। अतएव

२५—स उत्तमश्लोक महन्मुखच्युतो भवत्पदांभोज सुधाकणानिलः।
स्मृतिं पुनर्विस्मृत तत्त्ववर्त्मनां कुयोगिनां नोवितरत्यल वरैः ॥

२६—यशः शिवं सुश्रव आर्यसंगमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत् ॥
कथ गुणज्ञो विरमे द्विनापशु श्रीर्यत्प्रवव्रे गुण संग्रहेच्छया ॥

२७—अथाभजेत्वाऽखिल पूरुषोत्तम गुणालय पद्मकरेवलालसः।
अप्यावयो रेकपतिस्पृधो. कलिर्नस्यात्कृत त्वचरणैकतानयोः ॥

२८—जगज्जनन्यां जगदीश वैशस स्यादेव यत्कर्मणि नः समीहित।
करोति फल्ग्वप्युरुदीन वत्सलः स्वएव धिष्ण्येमिरतस्य किंतया ॥

२९—भजंत्यथत्वा मतएव साधवो व्युदस्तमाया गुण विभ्रमोदय।
भवत्पदानुस्मरणादृते सतां निमित्तमन्यद्भगवन्न विद्महे ॥

३०—मन्ये गिरंते जगतां विमोहिनीं वरं वृणीष्वेति भजंतमात्थयत्।
वाचानुतत्यायदिते जनोऽसित. कथं पुनः कर्म करोति मोहितः ॥

जिस प्रकार पिता अपने बालक का हितचिन्तन करता है, उसी प्रकार आप भी मेरा हित करें ॥ २३, ३१ ॥

मैत्रेय बोले—आदिराज पृथु के इस प्रकार स्तुति करने पर विश्वदृक् भगवान बोले—राजन्. तुम्हारी मुझ में भक्ति हो। प्रसन्नता की बात है कि तुमने मुझमें ऐसी भक्तिकी है। जिससे मनुष्य दुस्तर माया को भी तर जाता है। राजन्, सावधान होकर मैंने जो कहा है, वह आप करें, मेरी आज्ञा पालन करने वाला मनुष्य सर्वत्र सुख पाता है ॥ ३२, ३३ ॥

मैत्रेय बोले—भगवान् ने राजा पृथु के वचन की प्रशंसा की। राजा ने उनकी पूजा की। भगवान ने राजा पर कृपा दिखायी और वे चलने के लिए तयार हुए। देवता, ऋषि, पितर, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्नग, किन्नर, अप्सराएँ, मनुष्य, आकाशचारी तथा अन्य अनेक प्राणियों को यज्ञेश्वर समझकर राजा ने वचन, धन तथा हाथ जोड़कर उनका सत्कार किया और वे भगवान के साथ चले गये। भगवान भी पुरोहितों के साथ राजा का मन अपने साथ लिए हुए अपने लोक चले गये। भगवान् जब आँख के ओझल हुए तब राजा ने उन्हें प्रणाम किया, जिन्होंने आत्मज्ञान का उपदेश दिया था। जिनके यथार्थ स्वरूप का ज्ञान नहीं होता तथा जो देवताओं के भी पूज्य हैं। उनको प्रणाम करके राजा अपने नगर में गये ॥ ३४,३८ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कध का बीसवाँ अध्याय समाप्त

३१—त्वन्माययाऽद्धाजन ईशखंडितो यदन्यदा शास्तऋतात्मनोऽबुधः।
यथा चरेद् बालहितं पितास्वयं तथा त्वमेवार्हसि नः समीहितुं ॥

मैत्रेयउवाच—

३२—इत्यादिराजेन नुतः सविश्वदृक् तमाहराजन्मयि भक्तिरस्तुते।
दिष्ट्येदृशी धीर्मयि ते कृतायया मायां मदीया तरतिस्म दुस्त्यजां ॥

३३—तत्व कुरुमयादिष्ट मप्रमत्तः प्रजापते। मदादेशकरो लोक. सर्वत्राप्नोति शोभन ॥

मैत्रेयउवाच—

३४—इति वैन्यस्य राजर्षेः प्रतिनंद्यार्थवद्वचः। पूजितोऽनुगृहीत्वैनं गतुं चक्रेऽच्युतो मतिं ॥

३५—देवर्षि पितृ गंधर्व सिद्ध चारण पन्नगाः। किन्नराप्सरसोमर्त्या. खगा भूतान्यनेकशः ॥

३६—यज्ञेश्वर धियाराज्ञा वाग्वित्ताजलि भक्तितः। सभाजिता ययुः सर्वे वैकुंठानुगतास्ततः ॥

३७—भगवानपि राजर्षेः सोपाध्यायस्य चाच्युतः। हरन्निवमनोऽमुष्य स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥

३८—अदृष्टाय नमस्कृत्य नृपः संदर्शितात्मने। अव्यक्ताय च देवानां देवाय स्वपुरं ययौ ॥

इ०भा०म०चतुर्थस्कंधेविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

—:०ः०:—

इक्कीसवाँ अध्याय

पृथु राजा के उपदेश

मैत्रेय बोले—राजा के आने के कारण उस नगर मे जहाँ-तहाँ मोती और फूलों-की माला वाले सुवर्ण के तोरण बने हुए थे। महासुगन्धित धूप से वह नगर सुगन्धित हो रहा था। उस नगर की गलियाँ, चौपाल और सड़कें चन्दन और अगरु के जल से सींची गयी थीं, पुष्प, अक्षत, फल, जई, लावा, दीपक से वे शोभित हो रही थीं। फलयुक्त केले के खम्भों, सुपारी की फली सहित शाखाओं से और अन्य वृक्षों, पत्तों तथा मालाओं से वह नगर चारों ओर से शोभित हो रहा था। समस्त प्रजा और सुन्दर कुण्डल से सुशोभित सुन्दरी कन्याएँ, समस्त मंगल द्रव्यों तथा दीप लेकर राजा के स्वागत के लिए गयीं। शंख, दुन्दुभी, ब्राह्मणों के वेद-पाठ के साथ राजा ने भवन मे प्रवेश किया। स्तुति करने वाले स्तुति कर रहे थे, पर राजा निरहंकार थे। इस स्वागत से उनके मन में अहंकार उत्पन्न न हुआ। यशस्वी राजा का सत्कार जिन लोगों ने किया, राजा ने भी प्रसन्नतापूर्वक उन पुरवासियों तथा राज्यवासियों का सत्कार किया, ये राजा प्रिय मनोरथ पूरा करने वाले हैं। वे अनिंद्य कर्म करने वाले राजा, इस प्रकार बड़े-बड़े काम करते हुए, पृथ्वी-मण्डल का शासन करने लगे। अपने प्रसिद्ध यश को फैला कर अन्त में परमपद गये॥ १, ७॥

मैत्रेयउवाच—

१—मौक्तिकैः कुसुमस्रग्भिर्दुकूलैः स्वर्ण तोरणैः। महासुरभिभिर्धूपैर्मंडितं तत्र तत्र वै॥

२—चंदनागुरुतोयार्द्र रथ्या चत्वर मार्गवत्। पुष्पाक्षत फलैस्तोक्मैर्लाजैरर्चिभिरर्चितं॥

३—सवृंदैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैः परिष्कृतं। तरु पल्लव मालाभिः सर्वतः समलंकृतं॥

४—प्रजास्तंदीप बलिभिः सम्भृताशेष मंगलैः। अन्वीयुर्मृष्टकन्याश्च मृष्टकुंडल मंडिताः॥

५—शंख दुन्दुभिघोषेण ब्रह्मघोषेण चर्त्विजां। विवेश भवनं वीरः स्तूयमानो गतस्मयः॥

६—पूजितः पूजयामास तत्रतत्र महायशाः। पौरान् जानपदास्तांस्तान्प्रीतः प्रियवरप्रदः॥

७—स एवमादी न्यनवद्य चेष्टितः कर्माणि भूयांसि महान्महत्तमः।

कुर्वन् शशासावनिमंडलं यशः स्फीतं निधायारुरुहे परं पदं॥

सूत बोले—हे शौनक ! इस प्रकार गुणवानों के द्वारा प्रशंसित अनन्त गुणों से युक्त उस आदिराजा का यश सुनकर महाभागवत विदुर कथा कहने वाले मैत्रेय की प्रशंसा करके बोले ॥ ८ ॥

विदुर बोले—समस्त देवताओं की पूजा पाकर वह राजा पृथु ब्राह्मणों के द्वारा राज्य पर अभिषिक्त हुआ। उसकी भुजाओं में विष्णु का तेज था, जिनसे उसने पृथ्वी को दुहा। कौन ज्ञानी इस राजा की कीर्ति सुनना न चाहेगा। जिसके पराक्रम के अंश से समस्त राजा, लोक तथा लोकपाल आज भी जीते हैं। अतएव आप उस राजा का चरित मुझसे कहें ॥ ९, १० ॥

मैत्रेय बोले—गंगा और यमुना के बीच में उस राजा का निवास था। वह अपने प्राचीन कर्मों का ही भोग करता था, अर्थात् प्राचीन कर्मों के द्वारा जो कुछ प्राप्त हो जाता था, उसीसे सन्तुष्ट रहता था। उसके मन में नयी वासना उत्पन्न नहीं होती थी, क्योंकि वह पुण्य कर्मों का फल भोग कर उनका भी अन्त कर देना चाहता था। उस राजा की आज्ञा, सब जगह मानी जाती थी, सातों द्वीपों का पालन करने वाला और दण्ड देने वाला वही एक राजा था। ब्राह्मणों और भगवान के भक्तों को वह दण्ड नहीं देता था। एक बार राजा ने बड़े यज्ञ की दीक्षा ली, उसमें देवता, ब्रह्मर्षि और राजर्षियों का समाज जुड़ा। जब समस्त पूजनीय व्यक्तियों की यथोचित पूजा हो गयी, उस समय उस सभा में राजा पृथु ताराओं में चन्द्रमा के समान उठ खड़े हुए। वे लम्बे, गौरवर्ण थे, उनकी भुजाएँ लम्बी और मोटी थीं,

---

सूतउवाच—

८—श्रुत्वादिराजस्य यशो विजृम्भित गुणैरशेषैर्गुणवत्सभाजितं।

क्षत्ता महाभागवतः सदस्पते कौषारविं प्राह गृणात मर्चयन् ॥

विदुरउवाच—

९—सोऽभिषिक्तः पृथुर्विप्रैर्लब्धाशेष सुरार्हणः। बिभ्रच्च वैष्णव तेजो बाह्वोर्याभ्या दुदोहगा ॥

१०—कोन्वस्य कीर्तिं नश्रृणोत्यभिज्ञो यद्विक्रमोच्छिष्ट मशेषभूपाः।

लोकाः सपाला उपजीवति काममद्यापि तन्मेवद कर्मशुद्ध ॥

मैत्रेय उवाच—

११—गगा यमुनयोर्नद्योरतरा क्षेत्र मावसन्। आरब्धानेव बुभुजे भोगान्पुण्य जिहासया ॥

१२—सर्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैक दंडधृक्। अन्यत्र ब्राह्मण कुलादन्यत्राच्युत गोत्रत. ॥

१३—एकदासीन्महासत्र दीक्षा तत्र दिवौकसा। समाजो ब्रह्मर्षीणा च राजर्षीणा च सत्तम ॥

१४—तस्मिन्नर्हत्सु सर्वेषु स्वर्चितेषु यथाऽर्हत.। उत्थित. सदसो मध्ये ताराणामुडुराडिव ॥

कमलतुल्य आँखे लाल थीं, सुन्दर नाक, सुन्दर मुख, मोटा कन्धा, सुन्दर दाँत और स्मित थे तथा कमर के पीछे का भाग मोटा, त्रिवली युक्त उदर, जलावर्त तुल्य नाभि, उज्ज्वल जंघ और ऊपर की ओर उठे हुए चरण थे। उनके मस्तक के बाल छोटे, घुँघराले काले और चिकने थे, शंख के समान उनका गला था। बहुमूल्य वस्त्र पहने हुए और ओढ़े हुए थे। यज्ञ-दीक्षा लेने के कारण, गहने पहने हुए नहीं थे, तथापि उनका शरीर शोभित हो रहा था, कृष्ण मृगचर्म धारण किये हुए थे, हाथ में कुश थे और वे योगकर्म कर रहे थे। सन्ताप हरण करने वाली आँखों से चारों ओर देखकर और सभा को प्रसन्न करते हुए, राजा इस प्रकार बोले—कानों को प्रिय और सुन्दर अर्थबोधक, शुद्ध, गूढार्थ और प्रशस्त वचन वे बोले—सबके उपकार के लिये अपना अनुभव उन्होंने बतलाया ॥ १९, २० ॥

राजा बोले—सज्जनों, आज जो साधुजन यहाँ आये हैं उनका कल्याण हो। जो धर्म का स्वरूप जानना चाहे उसे चाहिये कि उसने धर्म का जो स्वरूप समझ रखा है, वह सज्जनों से कहे। मैं यहाँ प्रजाओं का राजा बनाया गया हूँ, उनका रक्षक, उनकी जीविका का प्रबन्ध करने वाला और भिन्न-भिन्न कल्याण के मार्ग पर उन्हें लगाने वाला और दण्ड देने वाला बनाया-गया हूँ। पूर्वजन्म के कर्मों के साक्षी जिस पर प्रसन्न होते हैं, उसको जो लोक प्राप्त होते हैं, वे लोक मुझे भी प्राप्त हों। जिन लोकों में समस्त मनोरथ पूरे होते हैं। प्रजा-पालन के रूप में मुझे वे लोक प्राप्त हों। जो राजा प्रजा को शिक्षा नहीं देते हैं और उससे कर ग्रहण करते हैं, वे प्रजा के पापों का भोग करते हैं और उनका ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है। अत-

---

१५—प्रांशु पीनायत भुजो गौरः कञ्जारुणेक्षणः। सुनासः सुमुखः सौम्यः पीनांसः सुद्विजस्मितः ॥

१६—व्यूढ वक्षाबृहच्छ्रोणिर्वलि वल्गुदलोदरः। आवर्तनाभिरोजस्वी काञ्चनो रुरुदग्रपात् ॥

१७—सूक्ष्म वक्रासितस्निग्ध मूर्धजः कम्बुकन्धरः। महाधने दुकूलाग्र्ये परिधायोपवीय च ॥

१८—व्यञ्जिता शेषगात्र श्रीर्नियमेन्यस्त भूषणः। कृष्णाजिनधरः श्रीमान् कुशपाणिः कृतोचितः ॥

१९—शिशिर स्निग्ध ताराक्षः समैक्षत समततः। ऊचिवानिदमुर्वीशः सदः संहर्षयन्निव ॥

चारु चित्रपद श्लक्ष्ण मृष्टं गूढमविक्लवं ॥

राजोवाच—

२०—सभ्याः शृणुत भद्रं वः साधवो यइहागताः। सत्सु जिज्ञासुभिर्धर्मं मावेद्यं स्वमनीषितं ॥

२१—अहं दण्डधरो राजा प्रजानामिह योजितः। रक्षिता वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु स्थापिता पृथक् ॥

२२—तस्य मे तदनुष्ठानाद्यानाहुर्ब्रह्म वादिनः। लोकाः स्युः कामसंदोहा यस्य तुष्यति दिष्टदृक् ॥

२३—य उद्धरेत्करं राजा प्रजा धर्मेष्वशिक्षयन्। प्रजानां शमलं भुंक्ते भगं च स्वं जहाति सः ॥

एव, हे प्रजा ! मेरे परलोक-सुख के लिए परस्पर द्वेषशून्य होकर आप लोग अपना-अपना कार्य करे और भगवान मे बुद्धि रखे। यदि आप ऐसा करेगे तो वह मेरे ऊपर आपकी कृपा होगी। पितरों, देवताओं और ऋषियों, आप लोग शुद्ध हैं, आप भी मेरी बात का अनुमोदन करें, धर्म करने वाले, धर्म की शिक्षा देने वाले और उसका अनुमोदन करने वाले को परलोक मे समान सुख मिलता है। पूजनीय विद्वानों, कुछ लोगों के मत से यज्ञपति परमेश्वर हैं, उनकी सत्ता कुछ लोग स्वीकार करते हैं। क्योंकि जगत की विचित्रता से यह बात प्रमाणित है। इस लोक और परलोक में प्रकाशमान भोगभूमि और भोगसाधन शरीर इसके प्रमाण हैं। किसी यज्ञपुरुष के ऐसा होना सम्भव न होता। मनु, उत्तानपाद राजा, ध्रुव, प्रियव्रत, हमारे पिता के पिता राजर्षि अंग, ब्रह्मा, शिव, प्रह्लाद, बलि तथा इसी प्रकार के अन्य अनेक महात्माओं के मत से गदाधारी भगवान की आवश्यकता है, क्योंकि यज्ञरूपी कर्म जड़ हैं, उनमे फल देने की शक्ति नहीं होती, अतएव कर्मफल देने वाले ईश्वर की सत्ता अवश्य माननी चाहिए। केवल धर्म के विषय में अज्ञान अतएव शोक के पात्र मृत्यु के नाती, वेन आदि को भले ही ईश्वर की आवश्यकता न हो। धर्म, अर्थ, काम ये त्रिवर्ग स्वर्ग और मुक्ति इनका प्रायः अभेद है। स्वर्ग, धर्म का फल है, अतएव इनका परस्पर सम्बन्ध है, अतएव कर्मस्वरूप ये फलदाता नहीं हो सकते। तात्पर्य यह कि जड़ कर्मों का फल देना सम्भव नहीं, अन्य देवता भी, कर्मपरतंत्र हैं,इस कारण वे भी फल नहीं दे सकते। भगवान के चरण की सेवा में अनुराग होने से संसार-तप्त प्राणियों की बुद्धि का मल जो अनेक जन्मों का संचित है, नष्ट होता है। जिस प्रकार उनके चरणों से निकली गंगा सदा बढती और पापों को दूर करती है। भगवत्सेवा का

२४—तत्प्रजा भर्तृपिंडार्थं स्वार्थ मेवानसूयवः। कुरुताधोक्षज धियस्तर्हि मेऽनुग्रहः कृतः ॥

२५—यूयं तदनुमोदध्व पितृ देवर्षयोमला'। कर्तुः शास्तुरनुज्ञातु स्तुल्य यत्प्रेत्य तत्फल ॥

२६—अस्ति यज्ञपतिर्नाम केषाञ्चिदर्हसत्तमाः। इहामुत्र च लक्ष्यते ज्योत्स्नावत्यः क्वचिद् भुवः ॥

२७—मनोरुत्तानपादस्य ध्रुवस्यापि महीपते'। प्रियव्रतस्य राजर्षे रंगस्यास्मत्पितु. पितु' ॥

२८—ईदृशानामथान्येषा मजस्य च भवस्य च। प्रह्लादस्य बलेश्चापि कृत्य मस्तिगदाभृता ॥

२९—दौहित्रादीनृते मृत्यो' शोच्यान्धर्म विमोहितान्। वर्गं स्वर्गापवर्गाणा प्रायेणैकात्म्य हेतुना ॥

३०—यत्पाद सेवाऽभिरुचि स्तपस्विना मशेषजन्मोपचित मलधियः।

सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती यथापदांगुष्ठ विनि.सृता सरित् ॥

३१—विनिर्धुताशेषमनोमल पुमानसग विज्ञान विशेष वीर्यवान्।

यदंघ्रि मूले कृतकेतनः पुनर्नसस्रुति क्लेशवहां प्रपद्यते ॥

३२—तमेव यूयं भजतात्मवृत्तिभिर्मनो वच' काय गुणै. स्वकर्मभि ।

अमायिन' कामदुघाङ्घ्रि पकज यथाऽधिकारावसितार्थ सिद्धयः ॥

अनुराग भी वैसाही बढ़ता है और पापों को नष्ट करता है। मन के समस्त दोषों के दूर होने पर मनुष्य को वैराग्य के द्वारा विज्ञान का साक्षात्कार होता है, और उसी के बल से बलवान होकर वह भगवान के चरणमूल मे आश्रय लेता है, जिससे उसे जन्म-मरण का कष्ट नहीं सहना पड़ता, अतएव आप लोग भी अपने-अपने वर्णाश्रमानुकूल कर्मों के द्वारा और मन, वचन और शरीर से निष्कपट होकर भगवान के चरणों का भजन करे। जो चरण समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं। अपने अधिकार के अनुसार कर्म करने से ही अर्थसिद्धि होती है। जो भगवान शुद्ध स्वरूप, निर्गुण और विज्ञानघन हैं, वे ही भगवान अनेक पदार्थ के द्रव्य, गुण, क्रिया, मन्त्र, सकल्प, पदार्थों की शक्ति, भिन्न-भिन्न नाम आदि से होने वाले यज्ञ भी भगवान ही हैं। माया, काल, वासना और अदृष्ट इनके संग्रहरूप इस शरीर में चेतन रूप से प्रवेश करके अर्थात् विषयाकार बुद्धि के रूप मे प्रकट होकर वे ही भगवान् क्रिया के फलरूप में प्रकाशित होते है। जिस प्रकार लकड़ी से अग्नि, जो प्रकट होने के पहले लकडी के रूप में उसकी लम्बाई चौड़ाई आदि के साथ वर्तमान रहती है ॥ २१, ३५ ॥

जो मेरे लोग भगवान् के भजन में अनुरक्त हैं, देवों के स्वामी, गुरु, विष्णु की अपने-अपने धर्म के अनुसार आराधना करते हैं, निश्चय वे मुझ पर ही कृपा करते हैं। वे मेरी प्रजा के लोग दृढ़ता पूर्वक व्रत पालन करने वाले हैं। राजाओं, तपस्या, विद्या और सहन-शीलता से प्रकाशमान, विष्णुभक्त ब्राह्मणों के कुल पर आप लोगों के ऐश्वर्य का प्रभाव कभी न पड़ना चाहिए, अर्थात् आप लोगों के ऐश्वर्य से विष्णुभक्त ब्राह्मणों को दुःख न मिलना चाहिए। स्वयं पुरातनपुरुष भगवान भी ब्राह्मणों प्रेम रखते हैं। ब्राह्मणों की चरण-सेवा से ही महात्माओं

३३—असाविहानेकगुणोऽगुणोऽध्वरः पृथग्विधद्रव्य गुण क्रियोक्तिभिः ।
सपद्यतेऽर्थाशय लिंगनामभिर्विशुद्ध विज्ञानघनः स्वरूपत ॥

३४—प्रधान कालाशय धर्मसग्रहे शरीर एष प्रतिपद्य चेतना ।
क्रियाफलत्वेन विभुर्विभाव्यते यथाऽनलो दारुषु तद्गुणात्मकः ॥

३५—अहो ममामीवितरत्यनुग्रह हरिंगुरुं यज्ञभुजा मधीश्वर ।
स्वधर्म योगेन यजंति मामका निरतर क्षोणितले दृढव्रताः ॥

३६—मा जातु तेजः प्रभवेन्महर्द्धिभि स्तितिक्षया तपसा विद्ययाच ।
देदीप्यमानेऽजित देवताना कुले स्वय राजकुलाद्द्विजाना ॥

३७—ब्रह्मण्यदेवः पुरुष. पुरातनो नित्य हरिर्यच्चरणाभिवंदनात् ।
अवापलक्ष्मी मनपायिनीं यशो जगत्पवित्र च महत्तमाग्रणीः ॥

३८—यत्सेवयाऽशेष गुहाशय स्वराड् विप्रप्रियस्तुष्यति काममीश्वरः ।
तदेव तद्धर्म परैर्विनीतैः सर्वात्मना ब्रह्मकुल निषेव्यतां ॥

के सेव्य भगवान ने अविनाशी लक्ष्मी और जगत् को पवित्र करने वाला यश पाया है। सबके अन्तर्यामी, स्वयं प्रकाश ब्राह्मणों में प्रेम रखने वाले भगवान् ईश्वर ब्राह्मणों की सेवा से प्रसन्न होते हैं, अतएव लोकसंग्रह रूप भगवान के धर्म का पालन करते हुये नम्रतापूर्वक सब प्रकार से ब्राह्मणों की सेवा करनी चाहिये। जिस ब्राह्मण-कुल की नित्य सेवा करने से मनुष्य स्वयं ज्ञान, अभ्यास आदि के बिना भी उत्तम सम अर्थात् मोक्ष पाता है, क्योंकि ब्राह्मणों की सेवा से उसका चित्त शीघ्रही शुद्ध हो जाता है। ब्राह्मणों से बढ कर क्या देवताओं का मुख है? अर्थात् ब्राह्मण-सेवा यज्ञ आदि से भी बढ़कर है। इन्द्र आदि के नाम से ब्राह्मण-कुल के मुख में श्रद्धापूर्वक तत्ववेत्ताओं के द्वारा हवन की हुई हवि, जिस प्रकार अनन्त भगवान ग्रहण करते है, उस प्रकार अचेतन अग्नि में दी हुई हवि नहीं ग्रहण करते। क्योंकि वे भगवान ज्ञानरूप और अन्तर्यामी हैं। श्रद्धा, तपस्या, प्रशस्त आचरण, मौन, सयम और समाधि के द्वारा अर्थज्ञान के लिये जो ब्राह्मण सनातन, पवित्र, वेद का धारण करते हैं, जिस वेद में यह विश्व दर्पण मे प्रतिबिम्ब के समान दीख पडता है। आर्यों, उन ब्राह्मणों की चरणरज जीवन पर्यन्त अपने मुकुट पर धारण करना चाहता हूँ, क्योंकि उस रज को धारण करने वालों के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और वह समस्त गुणों से गुणवान् हो जाता है। जो गुणी है, शीलवान है, कृतज्ञ है, बूढ़ों की आज्ञा में रहने वाला है, उसे सम्पत्ति प्राप्त होती है। ब्राह्मणों और गौओं के कुल मुझ पर प्रसन्न हों तथा अनुचरों के साथ भगवान मुझ पर प्रसन्न हों॥ ३६, ४३॥

मैत्रेय बोले—राजा का उपदेश सुनकर पितर, देवता और ब्राह्मण प्रसन्न हुये और वे

३६—पुमाल्लमेतानतिवेलमात्मनः प्रसीदतोऽत्यंत शम स्वतः स्वय।
यन्नित्य सबंध निषेवयाततः पर किमत्रास्ति मुख हविर्भुजा॥

४०—अश्नात्यनतः खलु तत्त्वकोविदैः श्रद्धाहुत यन्मुख इज्यनामभिः।
नवै तथाचेतनया बहिष्कृते हुताशने पारमहंस्य पर्यगुः॥

४१—यद् ब्रह्म नित्यं विरज सनातन श्रद्धा तपो मगल मौनसयमैः।
समाधिना बिभ्रतिहार्थदृष्टये यत्रेदमादर्श इवावभासे॥

४२—तेषामहं पादसरोज रेणुमार्यावहेयाधि किरीटमायुः।
य नित्यदा बिभ्रत आशुपापं नश्यत्यमुं सर्वगुणा भजंति॥

४३—गुणायनं शीलधन कृतज्ञ वृद्धाश्रय संवृणुतेऽनुसम्पदः।
प्रसीदता ब्रह्मकुल गवां च जनार्दनः सानुचरश्च मह्य॥

मैत्रेय उवाच—

४४—इति ब्रुवाणं नृपतिं पितृदेव द्विजातयः। तुष्टुवुर्हृष्टमनसः साधुवादेन साधवः॥

राजा को साधुवाद देने लगे। पुत्र से श्रेष्ठ लोक मिलता है, यह बात सच है। ब्राह्मणों के शाप से पीड़ित अर्थात् मृत राजा वेन ने गति पायी। नरक से निकलकर वह उत्तम लोक में गया। हिरण्यकशिपु भी भगवान् की निन्दा करके नरक में जाना चाहता था, पर अपने पुत्र प्रह्लाद के प्रभाव से उसे उत्तम लोक मिला। हे पृथ्वी के रक्षक वीरवर, बहुत वर्षों तक आप जीवित रहें। सब लोकों के स्वामी भगवान में आपकी बड़ी भक्ति है। पवित्रकीर्ति राजन्, आपके स्वामी होने से हम लोग समझते हैं कि भगवान ही हमारे स्वामी हैं, क्योंकि आप ब्रह्मण्यदेव पवित्र-कीर्ति विष्णु के समान आचरण करते हैं। राजन्, आपके लिए यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं। अनुजीवियों का शासन और प्रजा में अनुराग यह दयालु महात्माओं का स्वभाव है। राजन्, दैव के योग से हम लोगों का ज्ञान नष्ट हो गया था, अर्थात् कर्मपरायण होने के कारण हम लोग यथार्थ विषय नहीं समझ सके थे। आपने मार्ग बताकर हम लोगों के अज्ञान को दूर किया। ब्राह्मण और क्षत्रियों में प्रवेश करके जो इस संसार की रक्षा करते हैं और सत्व-मय पुरुष हैं, उन महान् पुरुष को जो आपके रूप में यहाँ वर्तमान हैं, उनको हम लोग नमस्कार करते हैं ॥ ४१, ५१ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त

४५—पुत्रेण जयते लोकानिति सत्यवती श्रुतिः। ब्रह्मदण्डहतः पापो यद्वेनोऽत्यतरत्तमः ॥

४६—हिरण्य कशिपुश्चापि भगवन्निंदयातमः। विविक्षु रत्यगात्सूनोः प्रह्लादस्यानुभावतः ॥

४७—वीरवर्य पितः पृथ्व्याः समाः सजीव शाश्वतीः। यस्ये दृश्यच्युते भक्तिः सर्वलोकैक भर्तरि ॥

४८—अहो वय ह्यद्य पवित्रकीर्ते त्वयैवनाथेन मुकुन्दनाथाः।

य उत्तमश्लोक तमस्य विष्णोर्ब्रह्मण्य देवस्य कथां व्यनक्ति॥

४९—नात्यद्भुतमिदं नाथ तवाजीव्यानुशासनं। प्रजानुरागो महता प्रकृतिः करुणात्मना ॥

५०—अद्य नस्तमसः पारस्त्वयोपासादितः प्रभो। भ्राम्यता नष्टदृष्टीना कर्मभिर्दैव संज्ञितैः ॥

५१—नमो विवृद्धसत्त्वाय पुरुषाय महीयसे। यो ब्रह्म क्षत्र माविश्य बिभर्तीद स्वतेजसा॥

इ०भा०म चतुर्थस्कधेएकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

सनकादि के द्वारा ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश

मैत्रेय बोले—वे ब्राह्मण पृथुपराक्रमी राजा पृथु की जिस समय स्तुति कर रहे थे, उसी समय सूर्य के समान तेजस्वी चार मुनि वहाँ आये। वे सिद्धेश्वर जब आकाश से उतर रहे थे, उस समय लोकों को पवित्र करने वाले, उनके तेज देखकर ही राजा और राजा के अनुचरों ने उन ऋषियों को पहिचान लिया। उन ऋषियों के देखने से, मानों राजा के प्राण निकल रहे हों और वे उनको लौटा लेना चाहते हों, अतएव राजा पृथु सदस्यों के साथ उठ खड़े हुए, जिस प्रकार इन्द्रियों का स्वामी अपने गुणों के साथ उठ खड़ा हुआ हो। मुनि मे आदर होने के कारण राजा उनके वश हो गये थे, नम्रता से उनके कन्धे झुक गये थे, ऐसे राजा ने विधिवत् उनकी पूजा की, अर्घ्य और आसन दिये। उनके चरणोदक मस्तक पर चढाये। इस प्रकार राजा ने सज्जनों के आचार का पालन किया। सुवर्ण के आसन पर वे बैठे, मानों अग्निदेव अपने स्थान पर विराजमान हैं। महादेव के बड़े भाइयों, इन मुनियों से श्रद्धा, संयम और प्रेम से राजा इस प्रकार बोले ॥ १, ६ ॥

राजा पृथु बोले—मंगलमय मुनियों, मैंने कौन-सा पुण्य किया है, जो आप लोगों का दर्शन मुझे प्राप्त हुआ। क्योंकि आपका दर्शन पाना, योगियों के लिए भी दुर्लभ है। जिस पर ब्राह्मण, शिव और भक्त सहित विष्णु प्रसन्न हों, उसके लिए इस लोक और परलोक में

मैत्रेय उवाच—

१—जनेषु प्रगृणत्स्वेव पृथु पृथुल विक्रमं। तत्रोपजग्मुर्मुनयश्चत्वारः सूर्यवर्चसः ॥

२—तांस्तु सिद्धेश्वरान् राजा व्योम्नोऽवतरतोऽर्चिषा। लोकानपापान्कुर्वत्या सानुगोऽचष्ट लक्षितान् ॥

३—तद्दर्शनोद्गत प्राणान्प्रत्यादित्सुरिवोत्थितः। स सदस्यानुगो वैन्य इ न्द्रियेशो गुणानिव ॥

४—गौरवाद्यन्त्रितः सभ्यः प्रश्रया नतकंधरः। विधिवत्पूजयां चक्रे गृहीताध्यर्हणासनान् ॥

५—तत्पाद शौच सलिलै मार्जितालकबंधन.। तत्र शीलवता वृत्त माचरन्मानयन्निव॥

६—हाटकासन आसीनान् स्वधिष्ण्येष्विव पावकान्। श्रद्धा संयम संयुक्तः प्रीतः प्राहभवाग्रजान् ॥

पृथुरुवाच—

७—अहो आचरित किं मे मगल मगलायना.। यस्य वोदर्शन ह्यासीद्दुर्दर्शाना च योगिभि. ॥

क्या दुर्लभ है। आप लोग लोकों मे घूमते रहते हैं, लोकों को देखते रहते है, फिर भी लोग आपको नहीं देखते, जिस प्रकार सबको देखने वाले आत्मा को महत्तत्व आदि, जो उसके हेतु हैं, आत्मा को नहीं देखते है। वे सज्जन गृहस्थ निर्धन हों तो भी धनी हैं, जिसके घर मे पूज्य अतिथियों के लिए जल, बैठने के लिए आसन, स्थान तथा उनकी सेवा के लिए गृह-स्वामी और उनके सेवक सेवा करने के लिए तत्पर हों। जो घर सम्पत्तियों से भरापूरा हो, पर भगवद्भक्तों के चरण की रज उसमें न पड़े तो वह घर साँप के बिल के समान समझा जाना चाहिये। द्विजश्रेष्ठों, आप लोगो का स्वागत है। आप लोगों ने बाल्यावस्था मे ही मोक्ष की इच्छा से बड़े-बड़े व्रत धारण किये हैं। इन्द्रिय के विषयों को ही पुरुषार्थ समझने वाले, हमारे जैसे पुरुषों की तो कुशल है और जो लोग अपने कर्मों से इस दुःखमय संसार में पड़े हुए हैं, उनकी तो कुशल है। भगवानों, आप लोग आत्माराम हैं, ब्रह्मज्ञानी हैं, अतएव आप लोगों के लिये कुशल प्रश्न नहीं हो सकता, क्योंकि आप लोगों की समझ में कुशल और अकुशल, दुःख और सुख में कोई भेद नहीं है। अतएव आप लोगों की कृपा से मुझे कुछ अपने पर विश्वास हो गया है, अतएव संसार के दुखियों के मित्र आप लोगों से मैं यह पूछता हूँ कि इस संसार में शीघ्र कल्याण किस प्रकार हो सकता है? यह निश्चित है कि धीर मनुष्यों की आत्मा और ससार मे आत्मारूप से प्रकाशित स्वयं भगवान अपने भक्तों पर कृपा करने के लिये आप सिद्धों के रूप मे पृथ्वी पर विचरण कर रहे हैं॥ ७, १६॥

मैत्रेय बोले—पृथु के सारवान्, सुन्दर, थोड़ा और मधुर वचन सुनकर सनत्कुमार हँसते हुये के समान प्रेमपूर्वक बोले॥ १७॥

८—किं तस्य दुर्लभतरमिह लोके परत्रच। यस्य विप्राः प्रसीदंति शिवो विष्णुश्च सानुगः॥
९—नैव लक्ष्यते लोको लोकान्पर्यटतोपि यान्। यथा सर्वदृश सर्वं आत्मानं येऽस्य हेतवः॥
१०—अधना अपिते धन्याः साधवो गृहमेधिन.। यद् गृहाह्यर्ह वर्यांबुतृणभूमीश्वरावराः॥
११—व्यालालयद्रुमावैतेऽप्यरिक्ताखिलसंपदः। यद् गृहास्तीर्थ पादीय पादतीर्थ विवर्जिताः॥
१२—स्वागत वोद्विजश्रेष्ठा यद्व्रतानि मुमुक्षवः। चरंति श्रद्धया धीरा बालाएव वृहति च॥
१३—कच्चिन्नः कुशल नाथा इंद्रियार्थार्थ वेदिना। व्यसनावाप एतस्मिन्पतिताना स्वकर्मभिः॥
१४—भवत्सु कुशलप्रश्न आत्मारामेषु नेष्यते। कुशलाकुशला यत्र न संति मतिवृत्तयः॥
१५—तदहं कृतविश्रंभः सुहृदो वस्तपस्विनां। संपृच्छे भवएतस्मिन्क्षेम. केनांजसा भवेत्॥
१६—व्यक्त मात्मवतामात्मा भगवानात्मभावनः। स्वानामनुग्रहायेमां सिद्धरूपी चरत्यजः॥

मैत्रेयउवाच—

१७—पृथोस्तत्सूक्त माकर्ण्य सार सुष्ठुमितमधु। स्मयमान इव प्रीत्या कुमारः प्रत्युवाचह॥

सनत्कुमार बोले—राजन, सब प्राणियों के हित की इच्छा से विद्वान आपने यह बड़ा सुन्दर प्रश्न किया है। सज्जनों की बुद्धि ऐसी ही होती है। सज्जनों का समागम दोनों ही को सुखी करता है, क्योंकि उनका परस्पर सम्भाषण आपसी बातचीत सब के लिये मंगलकारी होती है। राजन्, भगवान के चरण-कमलों के गुणानुवाद में, कथा कहने और सुनने मे आपका भी अनुराग है। यह अनुराग बड़े भाग्य से मिलता है। इससे अन्तरात्मा का न छूटने वाला मल छूट जाता है। उत्तम विचार वाले शास्त्रों में मनुष्य के कल्याण का कारण यही निश्चित हुआ है, आत्मा के अतिरिक्त अर्थात् देह आदि से वैराग्य और निर्गुण ब्रह्मरूप आत्मा में दृढ़ अनुराग। यह अनुराग श्रद्धा से भगवान के धर्मों का पालन करने से, अज्ञात पदार्थों के जानने से, ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के उपायों मे आस्था रखने से, योगेश्वरों की उपासना से, पवित्र-कीर्ति भगवान की कथा सुनने से प्राप्त होता है। धन के लोभी, कामी इनका साथ न करने से और अर्थ तथा काम का संग्रह न करने से एकान्त में रहने से आत्मा में ही सन्तुष्ट रहने से भी भगवान के गुणामृत पान के बिना वह अनुराग नहीं उत्पन्न होता। मन, वचन, कर्म से, हिंसा का त्याग करने से, शम-दम आदि वृत्तियों के पालन करने से, आत्महित का चिन्तन करने से, मुकुन्द के चरितामृत से, निष्काम होकर, यम नियमों का पालन करने से, किसीकी निन्दा न करने से, शरीर निर्वाह के कार्यो मे उदासीन रहने से, सुख-दुःख आदि के सहन करने से भगवान के चरणों में अनुराग उत्पन्न होता है। भक्तों के कान के भूषण, भगवान के गुणवर्णन के द्वारा, प्रतिदिन बढने वाली भक्ति से कार्य-कारणरूप समस्त पदार्थों मे वैराग्य उत्पन्न होता

सनत्कुमारउवाच—

१८—साधु पृष्ट महाराज सर्वभूत हितात्मना। भवता विदुषा चापि साधूनां मतिरीदृशी ॥

१६—संगमः खलु साधूनामुभयेषा च समतः। यत्सभाषण सम्प्रश्नः सर्वेषा वितनोति शं ॥

२०—अस्त्येव राजन्भवतो मधुद्विषः पादारविंदस्य गुणानुवादने।

रतिर्दुरापा विधुनोति नैष्ठिकी कामं कषाय मलमंत रात्मनः ॥

२१—शास्त्रेष्वियानेव सुनिश्चितो नृणा क्षेमस्य सध्र्यग्विमृशेषु हेतुः।

असग आत्मव्यतिरिक्त आत्मनि दृढा रतिर्ब्रह्मणि निर्गुणे च या ॥

२२—सा श्रद्धया भगवद्धर्म चर्यया जिज्ञासया ध्यात्मिक योगनिष्ठया।

योगेश्वरोपासनया च नित्य पुण्यश्रवः कथया पुण्यया च ॥

२३—अर्थेंद्रियाराम सगोष्ठ्य तृष्णया तत्सम्मता नामपरिग्रहेण।

विविक्त रुच्या परितोष आत्मन्विनाहरेर्गुण पीयूप पानात् ॥

है, जिससे निर्गुणस्वरूप ब्रह्म में शीघ्रही अनुराग उत्पन्न होता है। जब भगवान में मनुष्य का स्वाभाविक अनुराग हो जाता है, उस समय मनुष्य ज्ञान और वैराग्य के बल से वासनाहीन जीव को ढँक कर रखने वाले हृदय को जला देता है। जो हृदय अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, इन पाँच क्लेशों का स्थान है। जिस प्रकार लकड़ी से उत्पन्न अग्नि अपने आधार लकड़ी को ही जला देती है। अन्त:करण के नाश होने पर उसके समस्त गुण नष्ट हो जाते हैं, 'मैं करता हूँ' मैं भोगता हूँ, आदि भावनाएँ नष्ट हो जाती हैं। भीतर और बाहर कुछ भी वह नहीं देखता, अर्थात् जिस प्रकार बाहर के सर्दी, गर्मी आदि का उसे अनुभव नहीं होता उसी प्रकार भीतर के सुख-दुःख का भी अनुभव नहीं होता। क्योंकि दृश्य और द्रष्टा, जड़ और चेतन इन दोनों मे जिसके कारण भेद था वह अब नष्ट हो गया। जिस प्रकार पुरुष स्वप्न मे भी देखी हुई वस्तुओं को स्वप्न के नाश होने पर नहीं देखता। अन्तःकरण के रहने ही पर द्रष्टा और दृश्य का भेदज्ञान होता है। एक द्रष्टा (जो देखता है। दूसरा दृश्य जो देखा जाता है) और तीसरा जो द्रष्टा और दृश्य मे सम्बन्ध कराता है, यह भेद-ज्ञान अन्तःकरण के रहने पर ही जाग्रत और स्वप्न अवस्था में होता है। जिस प्रकार जल, दर्पण आदि के होने पर ही अपने और दूसरों के प्रतिबिम्ब मे भेद देख सकता है। जल आदि के न रहने पर उसे भेद-ज्ञान नहीं रहता। सबको समान ही समझता है ॥ १८, २९ ॥

ध्यान करने वाले, अर्थात् इच्छा रखने वाले, मनुष्यों की इन्द्रियाँ विषयों से आकृष्ट हो जाती हैं, विषयों की ओर झुक जाती हैं, वे इन्द्रियाँ मन को आकृष्ट करती हैं, अर्थात् विषया-

---

२४—अहिंसया पारमहंस्य चर्यया स्मृत्या मुकुंदाचरिताग्र्यसीधुना।
यमैरकामैर्नियमैश्चाप्यनिन्दया निरीहया द्वंद्व तितिक्षया च ॥

२५—हरेर्मुहुस्तत्पर कर्णपूर गुणाभिधानेन विजृंभमाणया।
भक्त्या ह्यसङ्गः सदसत्यनात्मनि स्यान्निर्गुणे ब्रह्मणि चांजसा रतिः ॥

२६—यदा रतिर्ब्रह्मणि नैष्ठिकी पुमानाचार्यवान् ज्ञानविराग रंहसा।
दहत्यवीर्यं हृदय जीवकोश पंचात्मक योनिमिवोत्थितोऽग्निः ॥

२७—दग्धाशयो मुक्तसमस्त तद्गुणो नैवात्मनो बहिरन्तर्विचष्टे।
परात्मनो यद्व्यवधान पुरस्तात् स्वप्ने यथा पुरुषस्तद्विनाशे ॥

२८—आत्मान मिंद्रियार्थं च पर यदुभयोरपि। सत्याशय उपाधौवै पुमान्पश्यति नान्यदा ॥

२९—निमित्ते सति सर्वत्र जलादावपि पूरुषः। आत्मनश्च परस्यापि भिदा पश्यति नान्यदा ॥

३०—इंद्रियैर्विषयाकृष्टै राक्षिप्त ध्यायतां मन.। चेतना हरते बुद्धेः स्तंबस्तोय मिवह्रदात ॥

सक्ति में लगाती हैं। मन, बुद्धि की चेतना को अर्थात बुद्धि को नष्ट कर देता है। पर अविवेकियों को यह बात मालूम नहीं होती, जिस प्रकार तालाव के तीर का वृक्ष आदि, तालाब से जल खींचते हैं, पर यह बात मूर्ख मनुष्य नहीं समझते। बुद्धि की विचार-शक्ति के नष्ट होने पर स्मृति भी नष्ट हो जाती है। पहले की बातों की याद जाती रहती है। स्मृति के नष्ट होने पर ज्ञान नष्ट हो जाता है। वह ज्ञान का नाश आत्मा का ही नाश है ऐसा विद्वान समझते हैं। मनुष्य के लिए इससे बढ़ कर स्वार्थ की हानि दूसरी नहीं हो सकती कि जिस आत्मा के कारण वह दूसरे विषयों को प्रिय समझता है, उसी आत्मा का नाश हो जाय। धन और इन्द्रिय के विषयों की चिन्ता करना मनुष्य के समस्त पुरुषार्थों का नाश है, क्योंकि उसके शास्त्रीय ज्ञान और अनुभव सम्बन्धी ज्ञान नष्ट हो जाते हैं और वह वृक्ष पत्थर आदि के समान हो जाता है। यही विषय के ध्यान का फल है। इस लिए इस घोर अज्ञान अंधकार के पार जाने की इच्छा रखने वालों को विषय-संग का त्याग करना चाहिए, क्योंकि यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अत्यन्त शत्रु है, उनका नाश करने वाला है। इन चारों धर्म, अर्थ, काम, मोक्षों में भी मोक्ष ही सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि अन्य तीन धर्म, अर्थ और काम विनाशी हैं, काल के द्वारा नष्ट होने वाले हैं। ब्रह्मा से लेकर हम लोगों तक जो उत्पन्न हैं, जो त्रिगुण के आधीन हैं उन्हें कोई सुख नहीं मिल सकता, क्योंकि भगवान काल उनके समस्त सुखों का नाश कर देते हैं। अतएव राजन्! देह, इन्द्रिय, प्राण, बुद्धि और अहंकार से आवृत स्थावर और जंगम पदार्थों के हृदय में जो प्रकाशमान हैं उनको आप देखें। वे जीव का संचालन करते हैं, वे प्रत्यक्ष नहीं हैं और सर्वव्यापक हैं, उसको आप जानें। वे ही आप हैं ऐसा समझें। जिस ब्रह्म में यह विश्व सत् और असत, कार्य और कारणरूप प्रकाशित होता है वह माया ही है। विवेक से माया का अन्त हो जाता है। जिस प्रकार माला में साँप का भ्रम हो जाता है, पर ज्ञान होने पर वह

३१—भ्रश्यत्यनुस्मृतिश्चित्त ज्ञानभ्रंशः स्मृतिक्षये। तद्रोधं कवयः प्राहुरात्मापह्नवमात्मनः ॥

३२—नातः परतरो लोके पुंसः स्वार्थव्यतिक्रमः। यदध्यन्यस्य प्रेयस्त्वमात्मनः स्वव्यतिक्रमात् ॥

३३—अर्थेंद्रियार्थाभिध्यान सर्वार्थापह्नवो नृणां। भ्रंशितो ज्ञानविज्ञानाद्येनाविशति मुख्यता ॥

३४—न कुर्यात्कर्हिचित्संग तमस्तीव्रं तितीरिषुः। धर्मार्थ काम मोक्षाणां यदत्यंत विघातक ॥

३५—तत्रापि मोक्षएवार्थ आत्यंतिकतयेष्यते। त्रैवर्ग्योऽर्थो यतो नित्य कृतांतभय संयुतः ॥

३६—परेऽवरे च ये भाव गुण व्यतिकरादनु। न तेषां विद्यते क्षेम मीशविध्वंसिताशिषां ॥

३७—तत्त्व नरेंद्र जगतामथ तस्थुषां च देहेंद्रियासुधिषणात्मभिरावृताना।

य. क्षेत्र वित्त पतयाहृदिविष्वगाविः प्रत्यक् चकास्तिभगवांस्तमवेहि सोऽस्मि॥

३८—यस्मिन्निद सदसदात्मतया विभाति माया विवेक विधुतिस्रजिवाऽहि बुद्धि.।

तन्नित्यमुक्त परिशुद्ध विबुद्ध तत्त्व प्रत्यूढकर्म कलिलप्रकृतिं प्रपद्ये ॥

भ्रम जाता रहता है। उसी प्रकार विषयासक्त मनुष्य (अज्ञानी मनुष्य) माया को ही ब्रह्म समझ लेता है। वे ब्रह्म नित्यमुक्त, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप और कर्म के द्वारा मलिन प्रकृति को पराजित करते हैं, उनको नमस्कार। जिनके चरण-कमल की अँगुलियों की शोभा के स्मरण से अहंकाररूप हृदयग्रन्थि, जो कर्मों से ही जुड़ी हुई है, उसको योगीगण खोल देते है। पर दूसरे लोग जो इन्द्रियों को विषयों से रोकते हैं और मन से भी विषयाशक्ति दूर कर देते हैं वे उस गाँठ को नहीं खोल सकते। अतएव पृथुराज आप भगवान् वासुदेव की शरण जायँ। जो इस संसार-समुद्र को, जिसमें इन्द्रियरूप मगर है, योग आदि मार्गों के द्वारा पार करना चाहते हैं, उनको बड़ा कष्ट होता है, वह मार्ग बड़े विघ्नों का है, अतएव राजन्! आप भगवान के भजनीय (भजन करने योग्य) चरणों को नौका बनाकर इस दुस्तर दुःखरूप संसार को पार करे ॥ ३०, ४० ॥

मैत्रेय बोले—ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार ऋषि के बतलाये ब्रह्मज्ञान के उपाय की प्रशंसा करके राजा इस प्रकार बोले ॥ ४१ ॥

राजा बोले—भगवन्! दुखियों पर कृपा करने वाले भगवान् ने पहले मुझपर कृपा की थी। उसी कृपा की पूर्ति के लिए आप लोगों का यह आगमन हुआ है। दयालु आप लोगों के आने से हमारा सब मनोरथ पूरा हो गया। हमारा जो कुछ है, वह राज्य, आत्मा आदि सब कुछ साधुओं का ही दिया हुआ है, अब मैं आप लोगों को क्या दूँ! अतएव ब्रह्मन्! प्राण, स्त्री, पुत्र, घर, परिजन आदि, राज्य, सेना, पृथ्वी और खजाना, मैं अर्पित करता हूँ। वेद-शास्त्र के ज्ञाता,

---

३९—यत्पाद पंकज पलाश विलास भक्त्या कर्माशयं ग्रथित मुद्ग्रथयन्ति संतः।

तद्वन्नरिक्त मतयो यतयोऽपिरुद्ध स्रोतोगणा स्तमरणं भज वासुदेवं ॥

४०—कृच्छ्रो महानिह भवार्णव मप्लवेशां षड्वर्ग नक्र मसुखेन तितीर्षन्ति।

तत्त्वं हरेर्भगवतो भजनीय मङ्घ्रिं कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णं ॥

मैत्रेय उवाच—

४१—स एवं ब्रह्मपुत्रेण कुमारेणात्ममेधसा। दर्शितात्मगतिः सम्यक् प्रशस्योवाच तं नृपः ॥

राजोवाच—

४२—कृतो मेऽनुग्रहः पूर्वं हरिणार्तानुकम्पिना। तमापादयितुं ब्रह्मन् भगवन् यूयमागताः ॥

४३—निष्पादितं चकार्त्स्न्येन भगवद्भिर्घृणालुभिः। साधूच्छिष्टं हि मे सर्वं आत्मनासह किं ददे॥

४४—प्राणा दाराः सुता ब्रह्मन् गृहाश्च सपरिच्छदाः। राज्यं बलं मही कोश इति सर्वं निवेदितं॥

सेनापतित्व, राज्य, दण्ड नेतृत्व (शासन का पद) तथा समस्त लोकों का आधिपत्य पाने के अधिकारी हैं। ब्राह्मण, अपना ही धन खाता है, पहनता है, देता है और उसीकी कृपा से क्षत्रिय आदि अन्न खाते हैं। वेदज्ञ आप मुनियों ने अध्यात्म विचार मे निश्चित भगवान की गति का, ब्रह्मज्ञान का जो उपदेश आप लोगों ने मुझे दिया है, आपको उसीसे प्रसन्न हो जाना चाहिए। मैं इसके बदले कुछ दे नहीं सकता। आपके उपकार का प्रत्युपकार नहीं कर सकता। आप लोग तो असीम दयालु हैं। यदि मैं कुछ उपकार करूँ भी तो उससे मेरी हँसी ही होगी॥ ४२, ४७॥

मैत्रेय बोले—आदिराज पृथु के आत्मज्ञान के अधिष्ठाता वे मुनि, राजा के शील की प्रशंसा करते हुए, सब लोगों के सामने ही आकाश में चले गये। महात्माओं में प्रधान राजा पृथु अध्यात्म शिक्षा से एकाग्रता पाकर अपने स्वरूप में स्थित हुए और अपने को आप्तकाम अर्थात् पूर्ण मनोरथ जिसको कुछ करना न रहे, समझने लगे। देशकाल पात्र, बल और औचित्य तथा धन के अनुसार वे राजा जो काम करते थे, वह भगवान को अर्पित कर देते थे। राजा पृथु कर्मफल को भगवान में अर्पित करके स्वयं कर्मों में अनासक्त और सावधान रह कर अपने को कर्म से उदासीन और प्रकृति से भिन्न समझने लगे। वे घर में रहते थे, चक्रवर्ती थे तथापि इन्द्रिय के विषयों में उनकी आसक्ति नहीं हुई। वे अहंकार रहित थे। सूर्य के समान किसी विषय मे उनकी आसक्ति न थी। इस प्रकार आत्मनिष्ठ रह कर राजा लोक-संग्रह के लिए कर्म करते थे। उन्होंने अर्चिपि नाम की अपनी स्त्री से पाँच पुत्र उत्पन्न किये, जो

४५—सैनापत्य च राज्य च दंडनेतृत्व मेव च। सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्र विदर्हति॥

४६—स्वमेव ब्राह्मणो भु क्ते स्वावस्ते स्व ददाति च। तस्यैवानेग्रहेणान्न भुंजते क्षत्रियादयः॥

४७—यैरीदृशी भगवतो गति रात्मवादे एकांततो निगमिभिः प्रतिपादिता नः।

तुष्यत्वदभ्रकरुणाः स्वकृतेन नित्यं कोनाम तत्प्रतिकरोति विनोदपात्र॥

४८—त आत्मयोग मतय आदिराजेन पूजिताः। शील तदीय शंसतः खेऽभूवन्मिषतां नृणां॥

४९—वैन्यस्तु धुर्यो महता संस्थित्याऽध्यात्म शिक्षया। आप्तकाम मिवात्मानं मेने आत्मन्यवस्थितः॥

५०—कर्माणि च यथाकाल यथादेश यथा बलं। यथोचितं यथा वित्तमकरोद् ब्रह्मसात्कृतं॥

५१—फल ब्रह्मणिविन्यस्य निर्विषङ्गः समाहितः। कर्माध्यक्ष च मन्वान आत्मान प्रकृतेः पर॥

५२—गृहेषु वर्तमानोऽपि स साम्राज्यश्रियान्वितः। नासज्जतेंद्रियार्थेषु निरहं मतिरर्कवत्॥

५३—एव मध्यात्मयोगेन कर्माण्यनुसमाचरन्। पुत्रानुत्पादयामास पंचार्चिष्यात्म संमतान्॥

उन्हींके समान गुणवान और उनके अनुकूल थे। विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण और वृक उनके ये नाम थे। राजा पृथु अकेले समस्त लोकपालों के गुण धारण करते थे। जो लोकपाल भगवान के अवताररूप में प्रकट होकर अपने-अपने समय में जगत की रक्षा करते हैं। मन, वचन, व्यवहार तथा अन्य सौम्य गुणों से प्रजा को प्रसन्न रखने के कारण पृथु का राजा नाम सार्थक हुआ। जिस प्रकार चन्द्रमा का सोमराज नाम सार्थक है। जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी को तपाता है, उसका रस ग्रहण करता है, तथा वह रस उसीको पुनः जलरूप मे देता है, उसी प्रकार राजा भी प्रजा से धन लेते थे, उसको दण्ड देते थे और लिया हुआ धन उसीको लौटा देते थे। राजा अग्नि के समान दुर्धर्ष थे। किसीके द्वारा पराजित होने योग्य न थे। इन्द्र के समान दुर्जय थे पृथ्वी के समान सहनशील और स्वर्ग के समान मनुष्यों के मनोरथ पूरा करने वाले थे। मेघों के समान प्रजा को तृप्त करते हुए राजा धन की वर्षा करते थे। समुद्र के समान अगाध और पर्वतराज के समान दृढ़ थे। यमराज के समान दण्ड देने वाले, हिमालय के समान आश्चर्यों के भण्डार, कुबेर के समान धनवान, वरुण के समान गुप्तधन रखने वाले, वायु के समान सब जगह जाने वाले और बली, भगवान भूतनाथ के समान असहनीय, कामदेव के समान सुन्दर, सिंह के समान मनस्वी, मनु के समान वत्सल और मनुष्यों पर प्रभाव रखने में वे ब्रह्मा के समान थे। ब्रह्मज्ञान में बृहस्पति, जितेन्द्रियता में स्वयं भगवान, गौ, गुरु, ब्राह्मण, भगवान और उनके भक्तों में भक्ति रखने में, लज्जा, विनय, शील और दूसरों के लिए उद्योग करने में वे स्वयं अपने तुल्य थे। त्रिलोक में राजा की कीर्ति पुरुषों द्वारा ऊँचे

५४—विजिताश्वं धूम्रकेशं हर्यक्षं द्रविणं वृकं। सर्वेषां लोकपालानां दधारैकः पृथुर्गुणान्॥

५५—गोपीथाय जगत्सृष्टेः काले स्वे स्वेऽच्युतात्मकः। मनो वाग्वृत्तिभिः सौम्यैर्गुणैः संरञ्जयन्प्रजाः॥

५६—राजेत्यधान्नामधेयं सोमराज इवापरः। सूर्यवद्विसृजन् गृह्णन्प्रतपंश्च भुवो वसु॥

५७—दुर्धर्षस्तेजसेवाग्निर्महेन्द्र इव दुर्जयः। तितिक्षया धरित्रीव द्यौरिवाभीष्टदो नृणाम्॥

५८—वर्षतिस्म यथाकामं पर्जन्य इव तर्पयन्। समुद्र इव दुर्बोधः सत्त्वेनाचलराडिव॥

५९—धर्मराडिव शिक्षायामाश्चर्ये हिमवानिव। कुबेर इव कोशाढ्यो गुप्तार्थो वरुणो यथा॥

६०—मातरिश्वेव सर्वात्मा बलेन सहसौजसा। अविषह्यतया देवो भगवान् भूतराडिव॥

६१—कंदर्प इव सौंदर्ये मनस्वी मृगराडिव। वात्सल्ये मनुवन्नॄणां प्रभुत्वे भगवानजः॥

६२—बृहस्पतिर्ब्रह्मवादे आत्मवत्त्वे स्वयं हरिः। भक्त्या गोगुरुविप्रेषु विष्वक्सेनानुवर्तिषु॥

ह्रिया प्रश्रय शीलाभ्यामात्मतुल्यः परोद्यमे॥

स्वर से जहाँ तहाँ गायी जाती थी। अतएव रामचन्द्र के समान उन राजा का नाम सत्पुरुषों और स्त्रियों तक भी पहुँचा था॥ ४८, ६३॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का बाइसवाँ अध्याय समाप्त

———❀———

तेईसवाँ अध्याय

राजा का वैकुण्ठ-गमन

मैत्रेय बोले-ब्रह्मज्ञानी राजा पृथु ने अपने को देखा कि वे अब बूढ़े हो रहे हैं। प्रजापति राजा पृथु ने अन्न आदि और ग्राम आदि की सृष्टि की थी तथा इन्हें बढ़ाया था। स्थावर और जंगमों की जीविका का प्रबन्ध किया था। सज्जनों के धर्म का पालन किया, प्रजापालन रूप ईश्वर का पालन किया था, जिसके लिये वे उत्पन्न हुए थे। अपने पुत्रों को अपनी पुत्रीरूप पृथ्वी देकर जो उनके विरह से रो रही थी, प्रजा दुःखिनी थी, उस समय वे अकेले स्त्री के साथ तपोवन मे चले गये। वहाँ भी उन्होंने दृढ़तापूर्वक नियमों का पालन किया, विघ्नों के द्वारा नियम भंग न हो सका। वानप्रस्थों के लिये उचित उग्र तपस्या उन्होंने प्रारम्भ की, जिस प्रकार पहले अपनी विजय के लिये प्रयत्न किया था। कन्द, मूल फल उनके आहार थे। कभी सूखे पत्ते भी खा लिया करते थे, कई पखों तक जल के ही आहार पर रहे, पुन. वायु के आहार पर रहने लगे। गर्मी के दिनों मे पचाग्नि तापते थे, वर्षा-ऋतु मे पानी मे भींगते थे और जाड़े

६३—कीर्त्योर्ध्वगीतयापुंभिस्त्रैलोक्ये तत्र तत्र ह। प्रविष्टः कर्णरंध्रेषु स्त्रीणां रामः सतामिव॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेपृथुचरितेद्वाविंशतितमोऽध्यायः॥ २२॥

———

मैत्रेयउवाच—

१—दृष्ट्वात्मानं प्रवयसमेकदा वैन्य आत्मवान्। आत्मनावर्द्धिताशेष स्वानुसर्गः प्रजापतिः॥

२—जगतस्तस्थुषश्चापि वृत्तिदो धर्मभृत्सताम्। निष्पादितेश्वरादेशो यदर्थमिह जज्ञिवान्॥

३—आत्मजेष्वात्मजान्यस्य विरहाद्रुदतीमिव। प्रजासु विमनास्वेकः सदारोऽगात्तपोवनं॥

४—तत्राप्यदाभ्यनियमो वैखानस सुसम्मते। आरब्ध उग्रतपसि यथा स्वविजये पुरा॥

५—कंद मूल फलाहारः शुष्कपर्णाशन क्वचित्। अब्भक्षः कतिचित्पक्षान्वायुभक्षस्ततः परम्॥

में गले तक पानी मे डूबे रहते थे और जमीन पर सोते थे। सहनशील, मौनी, जितेन्द्रिय, ऊर्ध्वरेता और वायु को जीतकर कृष्ण की आराधना के लिए ऐसी उग्र तपस्या वे करने लगे। इस प्रकार क्रमपूर्वक सिद्धि पाने से कर्म-दोष नष्ट हो गये, अन्तःकरण निर्मल हो गया। प्राणायाम के द्वारा इन्द्रियाँ अधीन हो गयीं और इस प्रकार संसार-बन्धन नष्ट हो गया। भगवान् सनत्कुमार ने जो श्रेष्ठ ब्रह्मप्राप्ति के उपाय बतलाये थे, उन्हीं उपायों के द्वारा राजा भगवान का भजन करने लगे। इस प्रकार सदा श्रद्धापूर्वक यत्न करने से भगवत् धर्म के पालन करने-वाले, राजा के हृदय मे भगवान परब्रह्म मे अनन्य भक्ति हुई। भगवान की परिचर्या से राजा पृथु का मन शुद्ध हो गया। अनन्तर भगवान के स्मरण से सदा बढने वाली भक्ति उत्पन्न हुई और उससे वैराग्ययुक्त ज्ञान हुआ। उस तीक्ष्ण ज्ञान के द्वारा संशयों के स्थान, अपनी हृदयग्रन्थि को उन्होंने काट डाला। राजा ने आत्मज्ञान पाने के पश्चात् देह में आत्मबुद्धि का त्याग कर दिया, अतएव उस समय प्राप्त होने वाली सिद्धियों की ओर से भी वे निस्पृह रहे। उस ज्ञान को भी उन्होंने छोड़ दिया, जिससे कर्म-बन्धन का नाश किया था। योगी तब तक योग की सिद्धियों से प्रमत्त हो जाता है, पथभ्रष्ट हो जाता है, जब तक भगवान की कथा मे उसका अनुराग नहीं होता। इस प्रकार वीरप्रवर राजा पृथु आत्मा में आत्मा को लीन करके ब्रह्मस्वरूप हो गए और उन्होंने शरीर त्याग कर दिया। राजा ने गुदा-भाग को एड़ियों से दबा कर वायु को ऊपर चढ़ाया। मूलाधार से ऊपर चढ़ाकर नाभि में, वहाँ से हृदय मे, पुनः छाती, कण्ठ और भृकुटियों मे लाकर धीरे-धीरे ब्रह्मरन्ध्र में चढ़ा ले गये। अन-

६—ग्रीष्मे पचतपावीरो वर्षास्वासारषाडमुनिः। आकण्ठमग्न. शिशिर उदके स्थंडिलेशयः॥

७—तितिक्षुर्यतवाक्दात ऊर्ध्वरेता जितानिलः। आरिराधयिषुः कृष्णमचरत्तप उत्तमं॥

८—तेन क्रमानुसिद्धेन ध्वस्त कर्ममलाशयः। प्राणायामैः सन्निरुद्ध षड्वर्गच्छिन्नबन्धनः॥

९—सनत्कुमारो भगवान् यदाहाध्यात्मिक पर। योगं तेनैव पुरुषमभजत्पुरुषर्षभः॥

१०—भगवद्धर्मिणः साधोः श्रद्धया यततः सदा। भक्तिर्भगवति ब्रह्मण्यनन्यविषयाऽभवत्॥

११—तस्यानया भगवतः परिकर्म शुद्धसत्वात्मनस्तदनु संस्मरणानुपूर्त्या।
ज्ञान विरक्तिमदभूक्षिशितेन येन चिच्छेद सशयपद निजजीवकोशं॥

१२—छिन्नान्यधीर धिगतात्मगतिर्निरीहस्तत्तत्यजेऽच्छिनदिदं वयुनेन येन।
तावन्न योगगतिभिर्यतिरप्रमत्तो यावद्गदाग्रजकथासु रतिं न कुर्यात्॥

१३—एवं सवीरप्रवरः सयोज्यात्मानमात्मनि। ब्रह्मभूतो दृढं काले तत्याज स्वंकलेवर॥

१४—सपीड्यपायु पार्ष्णिभ्या वायुमुत्सारयन् शनै.। नाभ्या कोष्ठेष्ववस्थाप्य हृदुरः कण्ठशीर्षणि॥

१५—उत्सर्पयस्तु त मूर्ध्नि क्रमेणावेश्य निःस्पृहः। वायुं वायौक्षितौकाग नेजस्तेजस्य युयुजत्॥

न्तर निरुद्ध राजा ने शरीर के वायु को वायु मे, शरीर के कठिन अंश को पृथ्वी में, तेज को तेज में, शून्य भाग को आकाश में, रस को जल में, इस प्रकार पाँचों तत्वों को अपने-अपने विभाग के अनुसार पाँचों तत्वो में मिला दिया। इस प्रकार शरीर का नाश करके राजा ने शरीर के कारण पंचभूतों का भी नाश किया। पृथ्वी को जल में, जल को तेज में, तेज को वायु में, वायु को आकाश में, राजा ने लीन किया। मन को इन्द्रियों में और इन्द्रियों को तन्मात्रा मे जिससे जिसकी उत्पत्ति हुई थी, उसमे उसको लीन किया। अहंकार के साथ पहले के बचे हुए आकाश और इन्द्रियों को लेकर इन सबको महत्तत्व में मिलाया। समस्त कार्यों के मूल महत्तत्व को मायामय जीव में मिलाया। पुनः उपाधिरूप माया को राजा ने ब्रह्म में लीन कर दिया। इस प्रकार उन्होंने अन्त.शरीर का भी त्याग किया था और वे मुक्त हो गये॥ १, १८॥

राजा की महरानी अर्चिषि भी उनके साथ वन गयी थीं। यद्यपि वे सुकुमारी थीं, वन के कष्टों के योग्य न थीं, पृथ्वी पर चल नहीं सकती थीं। राजा के व्रतों में रानी की बड़ी निष्ठा थी। वे राजा की सेवा किया करती थीं। ऋषि भोजन से उनका निर्वाह होता था, इससे वह बहुत दुर्बल हो गयी थीं, पर प्रिय पति के करस्पर्श और सम्मान के आनन्द से उनको दुःख मालूम नहीं हुआ था। उन्होंने देखा कि पृथ्वी के स्वामी और अपने प्रिय राजा का शरीर नष्ट हो गया, उसकी समस्त चेतना जाती रही तब थोड़ी देर तक विलाप करके रानी ने पर्वत-शिखर पर चिता बनायी। नदी में स्नान करके उस समय के कृत्य

१६—खान्याकाशे द्रवतो ये यथा स्थानं विभागशः। क्षिति मंमसि तत्तेजस्यदो वायुं नमस्यमुं॥

१७—इन्द्रियेषु मनस्तानि तन्मात्रेषु यथोद्भव। भूतादिनाऽमून्युत्क्षिप्य महत्यात्मनि सदधे॥

१८—त सर्वगुणविन्यासं जीवे मायामयेन्यधात्। त चानुशयमात्मस्थ मसावनुशयी पुमान्॥
ज्ञानवैराग्य वीर्येण स्वरूपस्थोऽजहात्प्रभुः॥

१९—अर्चिर्नाम महाराज्ञी तत्पत्न्यनुगता वनं। सुकुमार्य तदर्हाच यत्पद्भ्यांस्पर्शन भुवः॥

२०—अतीव भर्तुर्व्रतधर्म निष्ठया शुश्रूषया चारषदेह यात्रया।
नाविंदतार्ति परिकर्शिताऽपि सा प्रेयस्करस्पर्शन माननिर्वृतिः॥

२१—देह विपन्नाखिल चेतनादिक पत्युः पृथिव्या दयितस्यचात्मनः।
आलक्ष्य किंचिच्चविलप्य सासती चितामथारोप यदद्रिसानुनि॥

२२—विधाय कृत्यं ह्रदिनी जलाप्लुता दत्वोदक भर्तुरुदार कर्मणः।
नत्वा दिविस्थां स्त्रिदशास्त्रिः परीत्य विवेश वह्नि ध्यायनी भर्तृपादौ॥

करके उदारचरित पति को अंजलि देकर रानी ने आकाशस्थ देवताओं को प्रणाम किया और चिता की तीन प्रदक्षिणा करके पति के चरणों का ध्यान करती हुई अग्नि में प्रवेश किया। साध्वी महारानी ने वीरपति पृथु का अनुगमन किया, यह देखकर देवताओं के साथ हजारों देवस्त्रियाँ महारानी की प्रशंसा करने लगीं। वे मंदराचल के शिखर पर पुष्पवृष्टि करने लगीं। आकाश में दिव्य बाजे बजने लगे और देव-स्त्रियाँ परस्पर बातें करने लगीं ॥ १९, २४ ॥

देवियाँ बोलीं—ओह ! यह स्त्री धन्य है, जिसने अपने भाग्यशाली पति की सेवा सब प्रकार से की। जिस प्रकार लक्ष्मी यज्ञपुरुष भगवान की सेवा करती हैं। यह सती स्त्री अपने पति के साथ निश्चय ऊपर के लोकों में जायगी, क्योंकि इसने जो काम किया है, वह दूसरी स्त्री के लिये असम्भव है। देखो, हम लोगों के ऊपर यह अपने पति के पीछे-पीछे जा रही है। पृथ्वी में अल्प आयुवाले मनुष्य जो ब्रह्मज्ञान पा लेते हैं, जिस ज्ञान से भगवत् चरण की प्राप्ति होती है, उन मनुष्यों के लिए दुर्लभ क्या है ? वह मनुष्य अवश्य ही आत्म-द्रोही है और बड़े दुःख का भागी है जो मोक्ष का साधन मानव-शरीर पाकर भी विषयों में लिपटा रहता है ॥ २५, २८ ॥

मैत्रेय बोले—इस प्रकार देवांगनाएँ स्तुति कर रही थीं और महारानी पतिलोक चली गयीं। ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ भगवद्भक्त राजा पृथु ने जो लोक पाया, उसी में महरानी भी गयीं। परम पराक्रमी राजा पृथु का ऐसा प्रभाव था। उन बड़े-बड़े काम करने वाले राजा का चरित तुमसे कहा—जो मनुष्य इस पवित्र चरित को सावधान होकर, श्रद्धा के सहित, पढ़ेगा, सुनेगा और सुनावेगा उसे राजा पृथु का लोक मिलेगा। इस चरित के पढ़ने से ब्राह्मण को ब्रह्मतेज, क्षत्रिय को राज्य, वैश्य को धन और शूद्र को महत्व मिलता है। जो स्त्री या पुरुष

२३—विलोक्यानुगतां साध्वीं पृथुं वीरवरं पतिं। तुष्टुवुर्वरदा देवैर्देवपत्न्यः सहस्रशः ॥

२४—कुर्वत्यः कुसुमासारं तस्मिन्मंदर सानुनि। नदत्स्वमरतूर्येषु गृणंतिस्म परस्पर ॥

देव्यऊचुः—

२५—अहो इयं वधूर्धन्या या चैवं भूभुजां पतिं। सर्वात्मना पतिं भेजे यज्ञेशं श्रीर्वधूरिव ॥

२६—सैषा नूनं व्रजत्यूर्ध्वं मनुवैन्य पतिं सती। पश्यतास्मानतीत्यार्चिदुर्विभाव्येन कर्मणा ॥

२७—तेषां दुरापं किंत्वन्यन्मर्त्यानां भगवत्पदं। भुवि लोलायुषो ये वै नैष्कर्म्यं साधयंत्युत॥

२८—स वंचितो बतात्मध्रुक् कृच्छ्रेण महता भुवि। लब्ध्वापवर्ग्यं मानुष्यं विषयेषु विषज्जते॥

मैत्रेय उवाच—

२९—स्तुवंतीष्वमरस्त्रीषु पतिलोकं गता वधू। यया आत्मविदां धुर्यो वैन्यः प्रापाच्युताशयः ॥

३०—इत्थं भूतानुभावोसौ पृथुः पृथुपराक्रमः। कीर्तितं तस्य चरितं मुद्दाम चरितस्य ते ॥

आदरपूर्वक इस चरित को तीन बार सुने तो वह यदि पुत्रहीन हो तो पुत्रवान् हो जाय, निर्धन हो तो धनी हो जाय, जिसकी कीर्ति नहीं है वह कीर्तिमान और मूर्ख पण्डित हो जाय। यह पुरुषों के लिए मंगलमय और अमंगल दूर करने वाला है। धन, यश, आयु और स्वर्ग देने वाला है, कलि के पापों को दूर करने वाला है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि चाहने वालों को, श्रद्धापूर्वक इसका श्रवण करना चाहिये। क्योंकि यह चारों का कारण है। राजा विजय-यात्रा में जाने के समय इस चरित को सुनकर जिस पर आक्रमण करेगा, वह राजा, राजा के आधीन हो जायगा और उन्हें कर देगा। जिस प्रकार पृथु को राजा लोग कर देते थे। अन्य विषयों में आसक्ति छोड़ कर, भगवान में निर्मल भक्ति रखकर पृथु का यह पवित्र चरित्र पढ़ना, सुनना और सुनाना चाहिए। हे विदुर ! यह चरित मैंने भगवान का माहात्म्य बतलाने के लिए कहा है, इस चरित मे प्रेम रखने वाला मनुष्य पृथु की गति पाता है। अन्य विषयों का अनुराग छोड़कर इस पृथु चरित को प्रतिदिन जो मनुष्य सुनेगा या कीर्तन करेगा वह भगवान के चरणों में जो संसार समुद्र के लिए नौका है, भक्ति पावेगा और उत्तम गति पावेगा ॥ २९, ३९ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कध का तेईसवाँ अध्याय समाप्त

——:०:——

३१—य इदं सुमहत्पुण्यं श्रद्धयाऽवहितः पठेत् । श्रावयेच्छृणुयाद्वापि स पृथोः पदवीमियात् ॥

३२—ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यो जगतीपतिः । वैश्यः पठन्विट्पतिः स्याच्छूद्रः सत्तमतामियात् ॥

३३—त्रिःकृत्व इदमाकर्ण्य नरो नार्यथवादृता । अप्रजः सुप्रजतमो निर्धनो धनवत्तमः ॥

३४—अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पंडितः । इदं स्वस्त्ययनं पुंसाममंगल्यनिवारणम् ॥

३५—धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं कलिमलापहं । धर्मार्थ काम मोक्षाणां सम्यक् सिद्धिमभीप्सुभिः ॥

३६—श्रद्धयैतदनुश्राव्यं चतुर्णां कारणं परं । विजयाभिमुखो राजा श्रुत्वैतदनुयाति यान् ॥

बलिं तस्मै हरन्त्यग्रे राजानः पृथवे यथा ॥

३७—मुक्तान्यसंगो भगवत्यमलां भक्तिमुद्वहन् । वैन्यस्य चरितं पुण्यं शृणुयाच्छ्रावयेत्पठेत् ॥

३८—वैचित्रवीर्याभिहितं महन्माहात्म्यसूचकं । अस्मिन्कृतमतिर्मर्त्यः पार्थवीं गतिमाप्नुयात् ॥

३९—अनुदिनमिदमादरेण शृण्वन्पृथुचरितं प्रथयन्विमुक्तसंगः ।

भगवति भवसिन्धुपोतपादे स च निपुणां लभते रतिं मनुष्यः ॥

इ० भा० म० चतुर्थस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

प्रचेतस और उन्हें रुद्र का उपदेश

मैत्रेय बोले—राजा पृथु का पुत्र यशस्वी विजिताश्व पिता के राज्य पर बैठा। उसने भ्रातृवत्सलता के कारण छोटे भाइयों को चारों दिशाओं का राज्य दे दिया। हर्यक्ष को पूर्व दिशा का राज्य, धूम्रकेश को दक्षिण दिशा का राज्य, वृक को पश्चिम दिशा का राज्य और द्रविण को उत्तर दिशा का राज्य दिया। विजिताश्व का दूसरा नाम अन्तर्धान भी था, क्योंकि इन्द्र से इसे अन्तर्धान होने की विद्या प्राप्त हुई थी। राजा विजिताश्व ने शिखण्डिनी नामक स्त्री से तीन योग्य पुत्र उत्पन्न किये। पावक, पवमान और शुचि, ये उनके नाम थे। ये तीनों अग्नि थे। वशिष्ठ के शाप से उत्पन्न हुए थे और पुनः शाप के समाप्त होने पर अपने स्वरूप में चले गये थे। उन्हीं अन्तर्धान नामक राजा ने नभस्वती नाम की दूसरी स्त्री से हविर्धान नाम का पुत्र उत्पन्न किया। जिस राजा अन्तर्धान ने यह जानकर भी कि यज्ञ का घोड़ा इन्द्र लिये जा रहे हैं, उन्हें न मारा था। और इसी कारण प्रसन्न होकर इन्द्र ने उन्हें अन्तर्धान की विद्या सिखायी थी। कर लेना, दण्ड देना, जुर्माना वसूल करना आदि राजाओं की जीविका के उपाय को क्रूर समझ कर राजा विजिताश्व ने लम्बे समय के लिए यज्ञ करने के बहाने से उस राज्य का ही त्याग कर दिया था। उस यज्ञ मे भक्तों के दुःख दूर करने वाले, पूर्ण परमात्मा का आराधन करते हुए ज्ञानी विजिताश्व ने एकाग्र समाधि के द्वारा परमपद पाया। विदुर, हविर्धानी नाम की स्त्री से हविर्धान के बर्हिष्पद, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य और जिनव्रत ये छः पुत्र उत्पन्न हुए। विदुर, हविर्धान के पुत्र बर्हिष्पद कर्मकाण्ड और योग मे

मैत्रेयउवाच—

१—विजिताश्वोऽधिराजासीत् पृथुपुत्रः पृथुश्रवाः। यवीयेभ्योऽददात्काष्ठा भ्रातृभ्यो भ्रातृवत्सलः॥
२—हर्यक्षायादिशत्प्राचीं धूम्रकेशाय दक्षिणा। प्रतीचीं वृकसंज्ञाय तुर्यांद्रविणसे विभुः॥
३—अतर्धान गतिं शक्राल्लब्ध्वाऽतर्धान संज्ञितः। अपत्यत्रय माधत्त शिखण्डिन्या सुसमतं॥
४—पावकः पवमानश्च शुचिरित्यग्नयः पुरा। वसिष्ठ शापादुत्पन्नाः पुनर्योगगतिं गताः॥
५—अतर्धानो नभस्वत्यां हविर्धानमविंदत। य इंद्रमश्वहर्तारं विद्वानपि न जघ्निवान्॥
६—राज्ञा वृत्तिं करादान दण्डशुल्कादि दारुणा। मन्यमानो दीर्घसत्र व्याजेन विससर्जह॥
७—तत्रापि हंस पुरुषं परमात्मानमात्मदृक्। यजंस्तल्लोकतामाप कुशलेन समाधिना॥
८—हविर्धानाद्धविर्धानी विदुरासूत षट्सुतान्। बर्हिपद गयं शुक्लं कृष्णं सत्यं जितव्रतं॥
९—बर्हिषत्सु महाभागो हविर्धानीः प्रजापतिः। क्रियाकाण्डेषु निष्णातो योगेषु च कुरुद्वह॥
१०—यस्येदं देवयजनं मनुयज्ञं वितन्वतः। प्राचीनाग्रैः कुशैरासीदास्तृत वसुधातल॥

बड़े निपुण हुए। समस्त पृथ्वी में राजा ने यज्ञ-मण्डप बनवाये और यज्ञ किये थे। और इस प्रकार कुशों से इन्होंने समूची पृथ्वी पाट दी। जो कुश आगे जड़ रखकर पृथ्वी पर बिछाये गये थे। इसी कारण इस राजा का नाम प्राचीनबर्हि पड़ा। ब्रह्मा की आज्ञा से समुद्र की कन्या शतद्रुती से इन्होंने ब्याह किया, जो सर्वांग सुन्दरी और युवती थी, जो अलङ्कृत थी। विवाह में परिक्रमा के समय जिस पर राजा मोहित हो गये, जिस प्रकार अग्निदेव शुकी पर मोहित हुए थे। इस नवोढ़ा स्त्री ने अपने नूपुरों के झंकार से ही देवता, असुर, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, मनुष्य और नागों को जीत लिया था, उन्हें मोहित कर दिया था। राजा प्राचीनबर्हि के शतद्रुती से दस पुत्र हुए। उन दसों के एकही नाम और एकही तरह के आचार हुए। वे सभी धर्म के तत्वज्ञ थे, उनका नाम प्रचेतस था। पिता ने उन लोगों को सृष्टि करने की आज्ञा दी, पर वे समुद्र में तपस्या करने चले गये। दस हजार वर्षों तक तपस्या करके उन लोगों ने भगवान की आराधना की। मार्ग में प्रसन्न होकर महादेव ने उन लोगों को जो उपदेश दिया था, वे संयत (शान्त) होकर उसीका ध्यान जप और पूजन करते रहे ॥११, १५॥

विदुर बोले—महाराज, प्रचेतसों के साथ महादेव का मार्ग में कैसे समागम हुआ? और प्रसन्न होकर जो उपदेश महादेव ने दिया हो वह भी आप कहें। ब्रह्मर्षि, शिव के साथ मनुष्यों का समागम दुर्लभ है, क्योंकि मुनि भी सांसारिक विषयों का त्याग करके जिस इष्ट-देव का ध्यान ही करते हैं, दर्शन नहीं पाते। भगवान महादेव, आत्माराम हैं, स्वरूपानन्द में वर्तमान रहने वाले हैं, तथापि लोक की रक्षा करने के लिए अपनी भयंकर शक्ति के साथ विचरण करते हैं॥ १६, १८॥

मैत्रेय बोले—साधु प्रचेतस पिता की आज्ञा मान कर पश्चिम दिशा की ओर चले, पर

११—सामुद्रीं देवदेवोक्ता मुपयेमे शतद्रुतिं। या वीक्ष्य चारु सर्वांगीं किशोरीं सुष्ठ्वलङ्कृताम्॥
परिक्रमंती मुद्वाहे चकमेऽग्निः शुकीमिव॥

१२—विबुधासुर गन्धर्व मुनि सिद्ध नरोरगाः। विजिताः सूर्यया दिक्षु क्वणयन्त्यैव नूपुरैः॥

१३—प्राचीन बर्हिषः पुत्राः शतद्रुत्यां दशाभवन्। तुल्यनाम व्रताः सर्वे धर्मस्नाताः प्रचेतसः॥

१४—पित्रादिष्टाः प्रजासर्गे तपसेऽर्णव माविशन्। दश वर्ष सहस्राणि तपसार्चंस्तपस्पतिं॥

१५—यदुक्त पथि दृष्टेन गिरिशेन प्रसीदता। तद्ध्यायतो जपतश्च पूजयतश्च संयताः॥
विदुरउवाच—

१६—प्रचेतसां गिरित्रेण यथासीत्पथि संगमः। यदुताह हरः प्रीतस्तन्नो ब्रह्मन्वदार्थवत्॥

१७—संगमः खलु विप्रर्षे शिवेनेह शरीरिणाम्। दुर्लभो मुनयो दध्युरसंगाद्य मभीप्सितम्॥

१८—आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य लोककल्पस्य राधसे। शक्त्या युक्तो विचरति घोरया भगवान्भवः॥
मैत्रेयउवाच—

१९—प्रचेतसः पितुर्वाक्यं शिरसादाय साधवः। दिशं प्रतीचीं प्रययु स्तपस्यादृत चेतसः॥

उन लोगों का मर्न तपस्या में लगा हुआ था। वहाँ उन लोगों ने एक बहुत बड़ा तालाब देखा जो समुद्र से थोड़ा ही छोटा था। जो महात्माओं के मन के समान स्वच्छ था। जिसमे स्वच्छ जल भरा हुआ था। नील कमल, रक्त कमल, श्वेत कमल, फूले हुए थे। हंस, सारस, चक्रवाक, कारण्डव बोल रहे थे। भौरों के मधुर गुञ्जार से लताओं और वृक्षों के मानों रोमाञ्च हो आया था। कमल की रज चारों ओर उड़ाकर पवनदेव आनन्द मना रहे थे। उस तालाब में मृदंग, पणव आदि बाजे के साथ देवरीति से गाया हुआ गान सुनकर उन राजपुत्रों को विस्मय हुआ। उसी समय उन लोगों ने अपने अनुचरों के साथ निकलते हुए देवश्रेष्ठ महादेव को देखा। देवताओं के अनुचर, गन्धर्व आदि उनकी स्तुति कर रहे थे। वे भगवान् तपे सुवर्ण के समान चमकते थे। उनका गला काला था, आँखें तीन थीं, प्रसन्नता से मुख सुन्दर हो गया था। उनको देखकर उन राजपुत्रों ने प्रणाम किया, जिन्हें अत्यन्त आश्चर्य हो गया था। भक्तों की पीड़ा दूर करने वाले धर्मवत्सल भगवान धर्मज्ञ, शीलवान और प्रसन्न उन राजपुत्रों को देखकर प्रसन्न हुए और बोले— ॥ १९, २६ ॥

श्री रुद्र बोले—आप लोग बर्हिषद् राजा के पुत्र हैं, आप लोग जो करना चाहते हैं, वह मैं जानता हूँ। आप लोगों का कल्याण हो। मेरे अनुग्रह के कारण ही, यह दर्शन आप को मिला है, क्योंकि जो मनुष्य प्रकृति और त्रिगुणमय जीव संज्ञक पुरुष से भिन्न भगवान वासुदेव का भक्त है; वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। स्वधर्मनिष्ठ मनुष्य सैकड़ों जन्मों के पश्चात् ब्रह्मा का पद पाता है उससे भी अधिक पुण्यकर्म करने से वह मेरे लोक में आता है। और भगवान् विष्णु का पद जो प्रपंच के अतीत (परे) है, वह शरीर त्यागकर पश्चात् प्राप्त होता है, जिस प्रकार मैं तथा अन्य देवगण इस पद की समाप्ति होने पर विष्णुलोक पा सकेंगे। आप लोग भगवद्भक्त है, अतएव मुझे भगवान के समान प्रिय हैं और भगवद्भक्तों को भी मुझसे बढ़ कर दूसरा प्रिय

२०—समुद्र मुपविस्तीर्ण मपश्यन्सुमहत्सर. । महन्मन इव स्वच्छ प्रसन्न सलिलाशयं ॥

२१—नीलरक्तोत्पलाम्भोज कल्हारेंदीवराकर । हंस सारस चक्राह्व कारण्डव निकूजितं ॥

२२—मत्त भ्रमर सौस्वर्यहृष्टरोम लताऽङ्घ्रिपं । पद्मकोश रजो दिक्षु विक्षिपत्पवनोत्सव ॥

२३—तत्र गांधर्व माकर्ण्य दिव्य मार्गमनोहरं । विसिस्म्यू राजपुत्रास्ते मृदग पणवाद्यनु ॥

२४—तर्ह्येव सरस्तस्मान्निष्क्रामन्त सहानुग । उपगीयमान ममरप्रवर विबुधानुगैः ॥

२५—तप्तहेम निकायाभ शितिकंठ त्रिलोचन । प्रसाद सुमुख वीक्ष्य प्रणेमुर्जातकौतुकाः ॥

२६—स तान्प्रपन्नार्तिहरो भगवान् धर्मवत्सलः । धर्मज्ञान् शीलसम्पन्नान् प्रीतः प्रीतानुवाचह ॥

श्रीरुद्रउवाच—

२७—यूय वेदिषदः पुत्रा विदितं वश्चिकीर्षित । अनुग्रहाय भद्रंव एव मे दर्शनं कृतं ॥

२८—यः परंहसः साक्षात्त्रिगुणाज्जीव संज्ञितात् । भगवत वासुदेवं प्रपन्नः स प्रियोहि मे ॥

२९—स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान्विरिंचतामेति ततः परं हि मां ।
अव्याकृत भागवतोऽथ वैष्णव पदं यथाऽहं विबुधाः कलाऽत्यये ॥

३०—अथ भागवता यूयं प्रियाःस्थ भगवान् यथा । न मे भागवतानां च प्रेयानन्योऽस्ति कर्हिचित् ॥

नहीं है। यह जो मैं कहता हूँ, परमपवित्र मंगलमय, मोक्षदाता और जपने योग्य है। मैं कहता हूँ, सुनो— ॥ २७, ३१ ॥

मैत्रेय बोले—दयालु, नारायण के प्रेमी, भगवान शिव, हाथ जोड़ कर खड़े राजपुत्रों से इस प्रकार बोले ॥ ३२ ॥

श्री रुद्र बोले— परमेश्वर, आपकी जय हो। आपके महत्व से श्रेष्ठ ज्ञानियों को आनन्द लाभ होता है। वह आनन्द मुझे भी मिले। आप सदा परमानन्दरूप में वर्तमान रहते हैं, आप सर्वस्वरूप हैं, अतएव आपको नमस्कार। आप कमलनाभि हैं, शरीर, इन्द्रिय और मन के नियमन करने वाले हो। आप वासुदेव हैं, स्वयप्रकाश और कूटस्थ हैं, निर्विकार हैं, आपको नमस्कार। आप संकर्षणरूप से अहंकार के अधिष्ठाता है, अव्यक्त हैं, अनन्त हैं, काल-रूप से विश्व के संहारक हैं, संसार को ज्ञान देने वाले और प्रद्युम्नरूप से बुद्धि के अधिष्ठाता अन्तरात्मा हैं, आपको नमस्कार। आप इन्द्रियों के स्वामी मनरूप हैं, अनिरुद्ध स्वरूप आपको नमस्कार। आप सूर्यरूप हैं, आपका तेज विश्व-व्यापक है, क्षय-वृद्धि से आप शून्य हैं। आप स्वर्ग और अपवर्ग के द्वार हैं, क्योंकि ज्ञान और कर्म के फलरूप हैं, अन्तर्यामी हैं। आप अग्नि-रूप हैं, जो अग्नि यज्ञों का साधन और विस्तार करने वाला है। आप पितरों के अन्न, देवताओं के अन्न और यज्ञ के वीर्य अर्थात् सोम है, वेदों के स्वामी, सब को तृप्त करने वाले और रस रूप हैं। आपको नमस्कार। आप सब प्राणियों के शरीर पृथ्वी-रूप हैं। आप ही विराट् है, आप त्रैलोक्य का पालन करने वाले मन, इन्द्रिय तथा शरीर के बलरूप हैं, आपको नमस्कार। आप पदार्थों का परिचय कराने वाले आकाश हैं आप ही के कारण बाहर और भीतर का व्यवहार होता है। आप पवित्र स्वर्गलोक रूप हैं,जो नितान्त प्रकाशमान है। प्रवृत्ति कर्मों के द्वारा

३१—इदं विविक्त जसव्यं पवित्र मंगल परं। नि.श्रेयसकरं चापि श्रूयता तद्वदामि वः ॥
मैत्रेयउवाच—
३२—इत्यनुक्रोश हृदयो भगवानाहतान् शिवः। बद्धाञ्जलीन् राजपुत्रान् नारायणपरो वचः ॥
श्रीरुद्रउवाच—
३३—जितते आत्मविद्वुर्य स्वस्तये स्वस्तिरस्तुमे। भवताराधसाराद्ध सर्वस्मा आत्मने नमः ॥
३४—नमः पंकजनाभाय भूतसूक्ष्मेंद्रियात्मने। वासुदेवाय शांताय कूटस्थाय स्वरोचिषे ॥
३५—सकर्षणाय सूक्ष्माय दुरन्तायान्तकाय च। नमो विश्वप्रबोधाय प्रद्युम्नायान्तरात्मने ॥
३६—नमो नमोऽनिरुद्धाय हृषीकेशेंद्रियात्मने। नमः परमहंसाय पूर्णाय निभृतात्मने ॥
३७—स्वर्गापवर्गद्वाराय नित्य शुचिषदे नमः। नमो हिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय तन्तवे ॥
३८—नम ऊर्ज इषेत्रय्याः पतये यज्ञरेतसे। तृप्तिदाय च जीवानां नमः सर्वरसात्मने ॥
३९—सर्व सत्वात्मदेहाय विशेषाय स्थवीयसे। नमः त्रैलोक्य पालाय सह ओजो बलात्मने ॥
४०—अर्थलिंगाय नभसे नमोऽन्तर्बहिरात्मने। नमः पुण्याय लोकाय अमुष्मै भूरिवर्चसे ॥

पितृलोक, निवृत्ति कर्मों के द्वारा मुक्ति देने वाले आप हैं। आप धर्मफल स्वरूप है और दु:ख-दायी मृत्यु रूप हैं, आपको नमस्कार। हे कामनाओं के स्वामी! सब फलों को देने वाले और सर्वज्ञ आप हैं, आप महान् धर्मरूप और अकुण्ठबुद्धि श्रीकृष्ण हैं, आपको नमस्कार। आप पुराणपुरुष हैं और योगेश्वर हैं, आपको नमस्कार। आप तीनों शक्तियों से युक्त है। अहंकार स्वरूप रुद्र है आप ज्ञान और क्रियास्वरूप हैं और अनेक प्रकार की सृष्टि करने वाले हैं, आपको नमस्कार। भक्तों के द्वारा अर्चित अपना दर्शन हम लोगों को दीजिए। हम लोग आपका दर्शन करना चाहते हैं। आपका दर्शन भक्तों को प्रिय है और उनकी समस्त इन्द्रियों को तृप्त करने वाला है। वर्षा के मेघ के समान श्याम वर्ण समस्त सौंदर्य से युक्त, लम्बे और सुन्दर चार बाहुवाला और सुन्दर मुख वाला आपका दर्शन है। कमल के पत्तो के समान आपकी आँखे है, भौं और नासिका सुन्दर हैं। सुन्दर दाँत, सुन्दर कपोल और मुँह हैं, दोनों कान समान और सुन्दर हैं। प्रसन्नता के कारण आँखों की कोरे हँस रही है। बाल शोभित हो रहे हैं,सुन्दर कमल की धूल के रंग का अर्थात् पीले रंग का वस्त्र पहने हुए हैं, चमकीले कुण्डल हैं,किरीट,वलय,हार,नूपुर और करधनी आदि अपने-अपने स्थान पर शोभित हो रहे हैं। शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला, कौस्तुभमणि से और अधिक शोभा बढ गयी है। सिंह के समान कन्धे हैं, सुन्दर गले में कौस्तुभमणि धारण किये हुए हैं। कभी नष्ट न होने वाली लक्ष्मी के कारण,उनकी छाती में के चिह्न ने कसौटी पर की सोने की रेखा को तिरस्कृत कर दिया है। श्वांस और प्रश्वास के कारण पीपल के पत्ते के समान हिलती हुई त्रिवली से उदर बहुत सुन्दर मालूम हो रहा है। चक्करदार गहरी नाभि के द्वारा ससार को पुनः पेट मे रखना चाहते हैं, ऐसा मालूम हो रहा है, जिसके श्याम कटिभाग पर पीत वस्त्र और सोने की करधनी बहुत सुन्दर मालूम होती है। पैर,जँघा, उरू और जानु सम और देखने मे सुन्दर हैं। शरद के कमल-

---

५२—पदाशरत्पद्मपलाशरोचिषा नखद्युभिर्नोऽन्तरघं विधुन्वता ।

प्रदर्शयस्वीय मपास्तसाध्वस पदं गुरोमार्गगुरुस्तमोजुषाम्॥

५३—एतद्रूप मनुध्येय मात्मशुद्धि मभीप्सताम् । यद्भक्तियोगोऽभयदः स्वधर्म मनुतिष्ठतां ॥

५४—भवान् भक्तिमता लभ्यो दुर्लभः सर्वदेहिना । स्वाराज्यस्याप्यभिमत एकातेनात्मविद्गतिः॥

५५—तं दुराराध्य माराध्य सतामपि दुरापया । एकांत भक्त्या कोवाञ्छेत्पादमूलं विना बहिः ॥

५६—यत्र निर्विष्टमरणं कृतातो नाभि मन्यते । विश्व विध्वंसयन्वीर्य शौर्य विस्फूर्जितभ्रुवा॥

५७—क्षणार्द्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवं । भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥

५८—अथानघाङ्घ्रेस्तव कीर्तितीर्थयो रंतर्बहिः । स्नानविधूत पाप्मना ।

भूतेष्वनुक्रोश सुसत्वशीलिनां स्यात्संगमोऽनुग्रह एषनस्तव ॥

५९—न यस्य चित्तं बहिरर्थविभ्रमं तमोगुहाया च विशुद्धमाविशत् ।

यद्भक्तियोगानु गृहीत मंजसा मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गति ॥

पत्रों के समान सुन्दर चरणों से और नख की दीप्ति से हम लोगों के भीतर के पापों को दूर कीजिए और गुरो! अन्धकार में पड़े हुओं को मार्ग दिखाने वाले अपने दर्शन दीजिए। जिस दर्शन से समस्त भय दूर हो जाते हैं। आत्मशुद्धि चाहने वालों को इस रूप का ध्यान करना चाहिए। स्वधर्मानुष्ठान करने वालों के लिए भक्ति-योग, अभय देने वाला है। भगवन्, आपका दर्शन भक्तों को ही हो सकता है। अन्य शरीर-धारियों को दुर्लभ है। जिन्हें स्वर्ग का राज्य मिल गया है, वे भी इस रूप-दर्शन की कामना करते हैं और यह आत्मज्ञानियों की गति हैं, अर्थात् प्राप्य स्थान हैं। सज्जनों को भी प्राप्त न होने वाली भक्ति के द्वारा दुराराध्य आपकी आराधना करके कौन ऐसा होगा, जो आपके चरणों को छोड़कर स्वर्ग आदि फल चाहे। जिन चरणों की शरण मे रहने वालों पर यमराज का भी प्रभाव नहीं चलता, जो यमराज अपनी वीरता और शूरता से टेढी भौंओं के द्वारा समस्त विश्व को नष्ट कर देता है। स्वर्ग और मुक्ति की तुलना एक क्षण के लिए भी भगवद्भक्त के संग से मैं नहीं कर सकता, मनुष्य को इससे बढ़कर कौन मनोरथ हैं, जिससे तुलना की जाय। हे पवित्रचरण! आपकी कीर्ति और तीर्थ-गंगा में स्नान करने से जिनका बाहर-भीतर, पवित्र हो गया है, और जो प्राणियों पर दया रखते हैं, जिनका चित्त शुद्ध है और जो शीलवान हैं, ऐसे वैष्णवों के साथ हमारा संगम हो, यह आपका हम पर बड़ा अनुग्रह है। भक्तियोग से मुक्त होने के कारण जिनका चित्त शुद्ध हो गया है और वह चित्त बाहरी विषयों से आकृष्ट नहीं होता। अज्ञानरूप गुफा में नहीं भटकता।। वैसेही चित्त में मुनि आपके चरणों को ढूँढते हैं, आपका ध्यान करते हैं। आपके जिस स्वरूप मे यह समस्त विश्व दीख पड़ता है और इस विश्व मे आपका स्वरूप दिखायी पड़ता है। वह प्रकाशमय ज्योति-स्वरूप ब्रह्म, आकाश के समान व्यापक आपही हैं। भगवन्, विविध रूप वाली माया से आपने इस संसार की सृष्टि की है। आप इसका पालन करते हैं और नाश कर देते है, पर आप स्वय अविकार हैं। आपकी वह माया, दूसरों से भेद-बुद्धि

४१—प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवाय कर्मणे। नमो धर्मविपाकाय मृत्यवे दुःखदाय च ॥

४२—नमस्ते आशिषामीश मनवे कारणात्मने। नमो धर्माय बृहते कृष्णायकुंठमेधसे ॥ पुरुषाय पुराणाय-सांख्ययोगेश्वराय च ॥

४३—शक्तित्रय समेताय मीढुषेऽहङ्कृतात्मने। चेत आकूतिरूपाय नमो वाचो विभूतये ॥

४४—दर्शनं नोदिदृक्षूणा देहिभागवतार्चित। रूप प्रियतम स्वाना सर्वेन्द्रिय गुणाजन ॥

४५—स्निग्धप्रावृट् घनश्याम सर्वसौंदर्यसंग्रहं। चार्वायत चतुर्बाहुं सुजात रुचिरानन ॥

४६—पद्मकोश पलाशाक्षसुंदर भ्रु वनासिक। सुद्विज सुकपोलास्य समकर्णविभूषण ॥

४७—प्रीतिप्रहसितापांग मलकै रूपशोभितं। लसत्पकज किंजल्क दुकूल मृष्टकुंडल ॥

४८—स्फुरत्किरीट वलय हार नूपुर मेखलं। शंख चक्र गदा पद्ममाला मण्युत्तमर्द्धिमत् ॥

४९—सिंह स्कंध त्विषोबिभ्रत्सौभगग्रीव कौस्तुभं। श्रियाऽनपायिन्याक्षिप्त निकषाश्मो रसोल्लसत् ॥

५०—पूर रेचक संविग्न वलिवल्गु दलोदर। प्रतिसंक्रामयद्विश्व नाभ्यावर्त गभीरया ॥

५१—श्याम श्रोण्याधि रोचिष्णु दुकूल स्वर्ण मेखल। समचार्वङ्घ्रि जङ्घोरु निम्न जानु सुदर्शन ॥

उत्पन्न करने वाली है और आपके शरीर में वह अपना काम नहीं कर सकती, अर्थात् असमर्थ होकर पड़ी रहती है, उसी माया के द्वारा आपके सत् के समान इस संसार की सृष्टि करते हैं। भगवन् ! आपको हम लोग आत्म-तन्त्र स्वाधीन समझते हैं। आप समस्त भेदों से रहित हैं। यद्यपि आप निराकार हैं, तथापि शरीर, इन्द्रिय, मन से युक्त अर्थात् साकार-रूप में योगीगण श्रद्धापूर्वक अनेक अनुष्ठानों से आपकी पूजा करते हैं। उन लोगों को वेद और तन्त्र मे विद्वान् बतलाया गया है। आप एक आदिपुरुष हैं। प्रलयकाल में आपकी शक्ति सोयी रहती है और सृष्टिकाल मे जागकर सत्व, रज और तम के रूप में तथा महान् अहंकार, आकाश,वायु,अग्नि, जल, पृथ्वी, देवता, भूत आदि की सृष्टि करती है। आपके द्वारा उत्पन्न जरायुज, अण्डज, स्वेदज, और उद्भिज्ज इस चार प्रकार की सृष्टि मे आप अपने अंश से प्रवेश करते हैं। जिससे लोग समझते हैं कि आप मूर्तियों मे वर्तमान रह कर इन्द्रियों के द्वारा विषय-सुख का भोग करते हैं, जिस प्रकार मधु-मक्खियाँ मधु का उपभोग करती हैं। पुनः प्रचण्ड वेग वाले कालरूप होकर आप इस विश्व का नाश करते हैं। एक प्राणी को अन्य प्राणियों से अलग कर देते हैं। जिस प्रकार प्रचण्डवायु मेघों को तितर-बितर कर देता है। आपका कालरूप दिखायी नहीं पड़ता, किन्तु वह अनुमान से जाना जाता है। मनुष्य कार्यों की चिन्ता में व्याकुल रहता है, 'यह करना है, वह करना है' इस विचार में फँसा रहता है। उसका लोभ बढ़ा रहता है, विषयों में उसकी लालसा बढ़ती जाती है पर कालरूप आप सदा सावधान रहते हैं। आप समय पर पहुँचते हैं और भूखे सर्प के समान जीभ चाटते हुए चूहे जैसे प्राणियों को निगल जाते है। कौन विद्वान् आपके चरणों को छोड़ेगा। जिसका शरीर आपके स्मरण के बिना नष्ट हो जाता है, अर्थात् आपके भजन के बिना जिसका जीवन नष्ट हो रहा है, वह आपका भजन करके अपना जीवन क्यों सार्थक न करेगा ? हमारे गुरु ब्रह्मा नि.शंक होकर आपके चरणों का

६०—यत्रेदं व्यज्यते विश्वं विश्वस्मिन्नवभाति यत् । तत्त्वं ब्रह्मपरं ज्योतिराकाशमिव विस्तृतं ॥

६१—योमाययेदं पुरुरूपयाऽसृजद्बिभर्ति भूय. क्षपयत्यविक्रियः ।
यद्भेदबुद्धि. सदिवात्मदुस्थया तमात्मतन्त्रं भगवन्प्रतीमहि ॥

६२—क्रियाकलापै रिदमेव योगिन. श्रद्धान्विता. साधुयजति सिद्धये ॥
भूतेंद्रियात. करणोपलक्षित वेदे च तंत्रेच तएव कोविदाः॥

६३—त्वमेक आद्यः पुरुष· सुप्तशक्ति स्तयारजः सत्त्वतमो विभिद्यते ।
महानहं खं मरुदग्निवार्धराः सुरर्षयो भूतगणा इदं यतः ॥

६४—सृष्ट स्वशक्त्येद मनुप्रविष्टश्चतुर्विधपुरमात्मांशकेन ।अथोविदुस्तं पुरुष सतमसभुं क्ते हृषीकैर्मधुसारघंय.॥

६५—सएपलोकानतिचंडवेगोविकर्षसित्वंखलुकालयान.।भूतानि भूतैरनुमेयतत्त्वो घनावलीर्वायुरिवाऽविपह्य.॥

६६—प्रमत्तमुच्चै रिति कृत्यचिंतया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसं ।
त्वमप्रमत्त. सहसाऽभिपद्यसे क्षुल्ले लिहानोऽहिरिवाखुमंतकः ॥

६७—कस्त्वत्पदाब्जं विजहाति पडितो यस्तेऽवमानव्य यमानकेतन· ।
विशङ्कयाऽस्मद्गुरुरर्चतिस्मयद्विनोपपत्ति मनवश्चतुर्दश ॥

भजन करते थे और चौदह मनु बिना कारण के ही, फल की इच्छा के बिना ही भजन करते हैं। भगवन्,परमात्मन्,यह समस्त विश्व रुद्र के भय से भीत हैं। प्रलय की आशका से व्याकुल हैं। पर हम लोग जो विद्वान हैं, भगवान के भक्त हैं, उनको कहीं से भय नहीं है, क्योंकि हमलोगों के रक्षक आप हैं। हे राजपुत्र, शुद्ध चित्त होकर तुम लोग इसका जप करो। भगवान मे मन लगाकर अपने धर्म का अनुष्ठान करो। उन्हीं आत्मा को, जो तुम्हारी आत्मा में तथा अन्य प्राणियों मे वर्तमान हैं, पूजो। बार-बार उनकी स्तुति करो और ध्यान करो। 'योगादेश' नाम के इस स्तोत्र का पाठ करो। मन मे ध्यान करो। मुनिव्रत से कहकर सावधानी से आदर पूर्वक तुम सब लोग इसका अभ्यास करो। पहले प्रजापतियों के स्वामी भगवान ब्रह्मा ने सृष्टि करने वाले भृगु आदि अपने पुत्रों के साथ हमे बतलाया था। ब्रह्मा ने हम लोगों को सृष्टि करने की आज्ञा दी थी और हम लोग इस स्तोत्र के द्वारा अपना अज्ञान दूरकर प्रजा की सृष्टि कर रहे हैं। भगवान का भक्त सावधान और स्थिर चित्त होकर प्रतिदिन इस स्तोत्र का पाठ करे तो बहुत शीघ्र उसको कल्याण प्राप्त होता है। सब प्रकार के कल्याणों में ज्ञान बड़ा कल्याण है, इस ज्ञानरूपी नौका को पाकर दु खों के दुष्पार समुद्र को शीघ्रही पार कर जाता है। मेरा कहा हुआ यह भगवत् स्तोत्र श्रद्धापूर्वक जो पढता है वह दुराराध्य भगवान की आराधना करता है। मेरे कहे स्तोत्र के पाठ से समस्त मगलों के स्वामी भगवान प्रसन्न होते हैं और पाठ करने वाला मनुष्य जो-जो चाहता है, देते हैं। प्रात.काल उठकर श्रद्धापूर्वक हाथ जोडकर जो इसको सुनता है और सुनाता है वह कर्म बन्धनों से छूट जाता है। राजपुत्रों! परमपुरुष परमात्मा का यह स्तोत्र मैंने कहा। एकाग्र चित्त होकर इसका पाठ कर, उग्र तपस्या करो तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा।।३३,७९।।

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कध का चौबीसवाँ अध्याय समाप्त

६८—अथ त्वमसि नोब्रह्मन् परमात्मन्विपश्चिता। विश्व रुद्रभयध्वस्त मकुतश्चिद्भयागतिः ।।
६९—इद जपत भद्रवो विशुद्धानृपनदनाः। स्वधर्म मनुतिष्ठतो भगवत्यर्पिताशया: ।।
७०—तमेवात्मान मात्मस्थ सर्वभूतेष्ववस्थित। पूजय[illegible] गृणातश्च ध्यायतश्चासकृद्धरि ।।
७१—योगादेश मुपासाद्य धारयतो मुनिव्रता.। समाहितधिय. सर्व एतदभ्यसतादृता: ।।
७२—इदमाह पुराऽस्माक भगवान्विश्वसृक्पति। भृग्वादीनामात्मजाना सिसृक्षु ससिसृक्षता ।।
७३—ते वय नोदिता. सर्वे प्रजासर्गे प्रजेश्वरा। अनेन ध्वस्ततमस सिसृक्ष्मो विविधा· प्रजा: ।।
७४—अथेद नित्यदा युक्तो जपन्नवहित पुमान्। अचिराच्छ्रेय आप्नोति वासुदेवपरायण: ।।
७५—श्रेयसामिह सर्वेषा ज्ञान नि.श्रेयस पर। सुख तरति दुष्पार ज्ञाननौर्व्यसनार्णव ।।
७६—य इम श्रद्धयायुक्तो मद्गीत भगवत्स्तव। अधीयानो दुराराध्य हरिमाराधयत्यसौ ।।
७७—विदते पुरुषं ऽमुष्माद्यद्यदिच्छत्यसत्वरन्। मद्गीतगीतात्सुप्रीताच्छ्रेयसामेकवल्लभात् ।।
७८—इद य कल्पउत्थाय प्राजलि. श्रद्धयाऽन्वितः। शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो मुच्यते कर्मबधनैः ।।
७९—गीतं मयेद नरदेवनदना. परस्यपुम परमात्मनस्तव।
जपत एकाग्र धियस्तपोमहच्चरध्वमते तत आप्स्यथेप्सित ।।
इतिश्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कन्धेरुद्रगीतनामचतुर्विंशोऽध्याय· ।। २४ ।।

प्रचेतागण को भगवद्दर्शन

(भाग० स्कं० ४ अ० ३१)

पच्चीसवाँ अध्याय
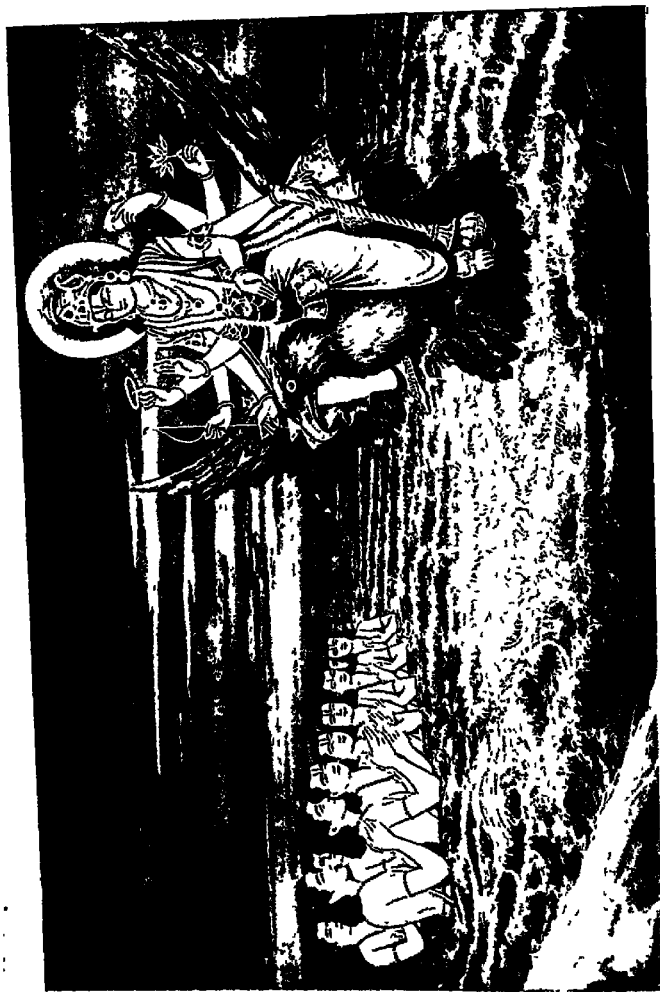
पुरंजनोपाख्यान

मैत्रेय बोले—भगवान रुद्र ने प्रचेतसों को इस प्रकार उपदेश दिया। उन लोगों ने भगवान की पूजा की और उनके सामने ही भगवान वहाँ से अन्तर्धान हो गये। रुद्र के बतलाये भगवान के स्तोत्र का पाठ करते हुए प्रचेतसों ने दस हजार वर्ष जल में रहकर तपस्या की। प्रचेतसों के पिता प्राचीनबर्हि कर्म में ही लगे हुए थे। वे यज्ञ आदि कर रहे थे। ब्रह्मवेत्ता, कृपालु नारद ने उन्हें समझाया। राजन्, इन कर्मों के द्वारा तुम आत्मा का कितना कल्याण कर सकते हो! सुख की प्राप्ति और दुःख का नाश यदि चाहते हो तो वे दोनों इन कर्मों से नहीं पाये जा सकते ॥ १, ४ ॥

राजा बोले—महाराज, मैं मोक्ष की बात नहीं जानता। क्योंकि मेरी बुद्धि कर्मों में फँसी हुई है, अतएव आप मुझे विमलज्ञान का उपदेश दें, जिससे मैं कर्मों से छूट सकूँ। छल-प्रधान गृह-धर्मों में लगे रहने वाले पुत्र, स्त्री, धन आदि को ही पुरुषार्थ समझते हैं, अतएव परमतत्व न पाकर वे मूर्ख संसार में भटकते हैं ॥ ५, ६ ॥

मैत्रेयउवाच—

१—इति संदिश्य भगवान् बार्हिषदैरभिपूजितः। पश्यतां राजपुत्राणां तत्रैवां तर्दधे हरः ॥

२—रुद्रगीतं भगवतः स्तोत्रं सर्वे प्रचेतसः। जपंतस्ते तपस्तेपुर्वर्षाणामयुत जले ॥

३—प्राचीन बर्हिषं क्षत्तः कर्मस्वासक्त मानसं। नारदोऽध्यात्मतत्त्वज्ञः कृपालुः प्रत्यबोधयत् ॥

४—श्रेयस्त्वं कतमद्राजन् कर्मणात्मन ईहसे। दुःखहानिः सुखावाप्तिः श्रेयस्तन्नेह चेष्यते ॥

राजोवाच—

५—न जानामि महाभाग परं कर्मापविद्धधीः। ब्रूहि मे विमलं ज्ञानं येन मुच्येयकर्मभिः ॥

६—गृहेषु कूटधर्मेषु पुत्रदारधनार्थधीः। न परं विंदते मूढो भ्राम्यन्संसारवर्त्मसु ॥

नारद बोले—राजन्, देखिये निर्दयतापूर्वक यज्ञ में हजारों पशुओं को आपने मारा है, यह आप देखे। आप तो प्रजापति हैं, प्रजाओं के रक्षक हैं, आपके द्वारा दिए दुःखों का स्मरण करके आपकी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हैं। आपके मरने पर लोहे के कीलों से वे आपको छेदेंगे, क्योंकि उन्हे आप पर बड़ा क्रोध है। मैं आपसे इस विषय का एक पुराना पुरंजन का इतिहास कहता हूँ। आप सुनिए ॥ ७, ९ ॥

यशस्वी पुरंजन नाम के एक राजा थे। उनके अविज्ञात नाम के एक मित्र थे। उस मित्र के कर्तव्यों का ज्ञान किसीको नहीं होता था। वह क्या करना चाहता है, यह कोई जान नहीं सकता था। प्रभु पुरंजन ने रहने का स्थान ढूँढने के लिए समस्त पृथ्वी का भ्रमण किया, पर उन्हें अपने योग्य स्थान न मिला, अतएव वे दुखी हुए। पृथ्वी में जितने नगर हैं वे सब काम-भोग करने वाले, राजा के मनोरथों को पूरा नहीं कर सकते थे। एक बार घूमते-घूमते हिमालय पर्वत के दक्षिण वाले शिखर पर एक नगरी उन्होंने देखी। उसमे नौ द्वार थे और राजा जो-जो चाहते थे वह सब था। उसके चारों ओर चहारदीवारी थी, बगीचे थे, अटारियाँ थीं, खाई थीं, खिड़कियाँ और तोरण थे। सोने-रूपे और लोहे के शिखर बने हुए थे। वह नगरी मकानों से भरी हुई थी। नीलमणि, स्फटिक, वैदूर्य, मुक्ता, मरकत और पद्मराग मणियों से वहाँ की अटारियों की फर्श बनी हुई थी। भोगवती नगरी के समान शोभा से वह सुशोभित हो रही थी। सभा-स्थान, चौक, गलियाँ, खेल के मैदान, बाजार, पथिकों के रहने के स्थान और ध्वजा, पताका आदि से वह नगरी युक्त थी। जगह-जगह विद्रुम के चौतरे बने हुए थे ॥ १०, १६ ॥

नारदउवाच—

७—भोभो प्रजापते राजन् पशून्पश्यत्वयाऽध्वरे। सञ्ज्ञापितान् जीवसंघान् निर्घृणेन सहस्रशः ॥
८—एते त्वां सम्प्रतीक्षन्ते स्मरन्तो वैशसंतव। सम्परेतमयः कूटैश्छिन्दन्त्युत्थित मन्यवः ॥
९—अत्र ते कथयिष्येऽमु मितिहास पुरातनं। पुरञ्जनस्य चरितं निबोध गदतो मम ॥
१०—आसीत्पुरञ्जनो नाम राजा राजन्बृहच्छ्रवाः। तस्याविज्ञात नामासीत्सखाऽविज्ञातचेष्टितः ॥
११—सोऽन्वेषमाणः शरणं बभ्राम पृथिवीं प्रभुः। नानुरूप यदाऽविन्ददभूत्सविमना इव ॥
१२—न साधु मेनेताः सर्वा भूतले यावतीः पुरः। कामान्कामयमानोऽसौ तस्य तस्योपपत्तये ॥
१३—स एकदा हिमवतो दक्षिणेष्वथसानुषु। ददर्श नवभिर्द्वार्भिः पुरं लक्षितलक्षणां ॥
१४—प्राकारोपवनाट्टालपरिखै रक्षतोरणैः। स्वर्णरौप्यायसैः शृङ्गैः सङ्कुला सर्वतो गृहैः ॥
१५—नीलस्फटिक वैदूर्य मुक्ता मरकतारुणैः। क्लृप्त हर्म्यस्थलीं दीप्तां श्रिया भोगवती मिव ॥
१६—सभा चत्वर रथ्याभि राक्रीडायतनापणैः। चैत्यध्वज पताकाभिर्युक्तां विद्रुमवेदिभिः ॥

नगरी के बाहर बगीचे मे जिसमें अनेक दिव्य वृक्ष और लताएँ थीं, एक जलाशय था जहाँ पक्षियों और भौंरों के बोलने से कोलाहल हो रहा था। ठंडे सोते मे जल-बिन्दु लेकर फूलों के रास्ते आती हुई वायु से तालाब के तीर के वृक्षों की शाखाएँ और पत्ते हिल रहे थे, जिससे वह स्थान अत्यन्त शोभित हो रहा था। मुनि का व्रत धारण करने वाले, विविध जंगली पशुओं से किसीको पीड़ा नहीं होती थी। वहाँ बोलने वाली कोकिल का शब्द सुनकर पथिक यही समझते थे कि यह बगीचा कोकिल के शब्द से हम लोगों को बुला रहा है। राजा ने वहाँ एक सुन्दरी स्त्री देखी। जिसके साथ दस सेवक थे। जो एक-एक सैकड़ों स्त्रियों के स्वामी थे। पाँच मस्तक वाला एक रक्षक उस स्त्री की रक्षा कर रहा था। इच्छानुसार रूप धरने वाली युवती यह स्त्री अपने लिए पति ढूँढ़ रही थी। इस स्त्री की नाक, दाँत, कपोल सुन्दर थे। बराबर रूप और स्थान वाले कानों में कुंडल धारण किये हुए थी। पीला वस्त्र और सोने की करधनी पहने हुई थी। कमर के पीछे का भाग सुन्दर था, उसका वर्ण श्याम था। देवता के समान नूपुरों का शब्द करती हुई पैरों से चल रही थी, उसके स्तन बराबर गोले और सटे हुए थे। उन स्तनों से इसकी युवा अवस्था प्रकट होती थी और वह वस्त्र से उन्हें छिपा रही थी। गजगति से चलती थी लज्जायुक्त स्मित से वह और भी सुन्दरी जान पड़ती थी। प्रेमसूचक भौं के भ्रमण से तथा स्नेहपूर्ण कटाक्ष से आहत वीरराजा ने उससे कोमल स्वर में यह पूछा—कमलनयनी, तुम कौन हो? किसको हो और कहाँ से नगर के बाहर आयी हो? हे भीरु, तुम क्या करना चाहती हो, यह मुझ से कहो। ये जो तुम्हारे साथ ग्यारह वीर हैं और इतनी स्त्रियाँ हैं, ये कौन हैं? शुभ्रु, तुम्हारे आगे-आगे चलने वाला, यह सर्प कौन है?

१७—पुर्यास्तु बाह्योपवने दिव्यद्रुम लताकुले। नदद्विहगालिकुल कोलाहल जलाशये॥

१८—हिम निर्झर विप्रुष्मन्कुसुमाकर वायुना। चलप्रवालविटरनलितो तट संपदि॥

१९—नानाऽरण्य मृगव्राते स्नाबाधे मुनि व्रतै.। आहूत मन्यते पाथो यत्र कोकिल कूजितैः॥

२०—यदृच्छया गतां तत्र ददर्श प्रमदोत्तमा। भृत्यैर्दशभिरायाती मेकैक शतनायकैः॥

२१—पञ्चशीर्षाहिना गुप्ता प्रतीहारेण सर्वतः। अन्वेषमाणा नृपममप्रौढा कामरूपिणी॥

२२—सुनासा सुदतीं बाला सुकपोला वरांगना। समन्विस्त कर्णाभ्या बिभ्रती कुडलश्रिय॥

२३—नितंगनीवी सुश्रोणी श्यामा कनकमेखला। पद्भ्या क्वणद्भ्या चलता नूपुरैर्देवतामिव॥

२४—स्तनौ व्यञ्जितकैशोरौ समवृत्तौ निरंतरौ। वस्त्रान्ते न निगूहन्तीं व्रीडया गजगामिनीं॥

२५—तामाह ललितं वीरः सव्रीडस्मित शोभना। स्निग्धेनापाङ्गपुङ्खेन स्पृष्टः प्रेमोद्भ्रमद्भ्रुवा॥

२६—कात्वं कंजपलाशाक्षि कस्यासीह कुतः सखि। इमामुपुरी भीरु किंचिकीर्षसि शंस मे॥

२७—क एतेऽनुपथा एत एकादश महाभटा। एतावा ललनाँ शुभ्रू कोऽय तेहि पुरःसरः॥

तुम लज्जा हो, भवानी हो, वाणी हो, या लक्ष्मी हो, इस एकान्त वन मे जो मुनि के समान पति को ढूँढ़ रही हो। तुम्हारे पति के समस्त मनोरथ तो तुम्हारे चरणों की प्राप्ति से ही हो गये होंगे। तुम उसी पति को ढूँढ़ रही हो। तुम्हारे हाथ का कमल कहाँ गया, अर्थात लक्ष्मी के हाथ में कमल होना चाहिये। वरोरु! इन स्त्रियों मे भी तुम कोई नहीं हो, क्योंकि तुम पृथ्वी में विचर रही हो और वे देवांगनाएँ हैं। अतएव हे सुन्दरि, सदा कर्म में आसक्त वीर मेरे साथ इस नगरी की शोभा तुम बढा सकती हो। जिस प्रकार लक्ष्मी विष्णु के साथ वैकुंठ की शोभा बढ़ाती हैं। सुन्दरी, तुम्हारे कटाक्ष से मेरा मन चचल हो गया है। लज्जा और प्रेम के स्मित से चंचल भौं के द्वारा तुमने जिस कामदेव को उत्पन्न किया है, वह मुझे पीड़ित कर रहा है। तुम कृपा करो। हे शुचिस्मिते, अपना वह मुख ऊपर उठाकर दिखाओ, जो लज्जा के कारण सामने नहीं आता। जिस मुख में सुन्दर पुतलियों वाली आँखे हैं, नीचे लटकने वाले काले बालों में जो छिपा है और जिससे मनोहर वचन निकलते है ॥ १७, ३१ ॥

नारद बोले—राजा पुरंजन अधीर के समान इस प्रकार उस स्त्री से प्रार्थना करने लगे। वह भी उनपर मोहित हो गयी थी। अतएव हँसकर उसने उनका अभिनन्दन किया और बोली—वीर! हम अपने और आपके कर्ता को ठीक-ठीक नहीं जानती और पुरुषश्रेष्ठ आपके और अपने गोत्र का भी मुझे पता नहीं है। जिसने हम लोगों के नाम रखे हैं, उसको भी नहीं जानती। मैं इस समय यहाँ हूँ, इतना ही जानती हूँ। इसके बाद की बात मैं नही जानती। हे वीर, हमारे रहने की इस पुरी को जिसने बनाया है,उसको भी नहीं जानती। ये पुरुष और स्त्रियाँ हमारे सखा और सखियाँ है। यह सर्प मेरे सो जाने पर इस नगरी की

२८—त्वं ह्रीर्भवान्यस्यथवाक् रमा पतिं विचिन्वती किं मुनिवद्रहोवने।
त्वदङ्घ्रिकामाप्त समस्त काम क्वपद्मकोशः पतितः कराग्रात् ॥

२९—नासांवरोर्वन्यतमाभुविस्पृक् पुरीमिमा वीरवरेण साकं।
अर्हस्यलंकर्तु मदभ्रकर्मणा लोकं परं श्रीरिव यज्ञपुंसा ॥

३०—यदेपतेऽपाग विखण्डितेंद्रिय सव्रीडभावस्मित विभ्रमद्भ्रु वा।
त्वयोपसृष्टो भगवान्मनोभवः प्रबाधतेऽथानुगृहाण शोभने ॥

३१—त्वदानन सुभ्रु सुतारलोचन व्यालम्बिनीलालकवृंद संवृत।
उन्नीयमेदर्शय वल्गुवाचक यद्व्रीडयानाभि मुख शुचिस्मिते ॥

नारदउवाच—

३२—इत्थं पुरंजन नारी याचमान मधीरवत्। अभ्यनंदत ता वीर हसन्ती वीरमोहिता ॥

३३—न विदाम वयं सम्यक् कर्तार पुरुषर्षभ। आत्मनश्च परस्यापि गोत्र नामच यत्कृत ॥

३४—इहाद्य सतमात्मानं न विदाम ततः परं। येनेयं निर्मिता वीर पुरी शरणमात्मनः ॥

रहा करता है। अरिन्दम ! तुम्हारा कल्याण हो। विषय-भोग की इच्छा से तुम यहाँ आये हो, यह अच्छा हुआ। मैं अपने साथियों के साथ तुम्हारी सब अभिलाषाओं को पूर्ण करूँगी। विभो, इस नवद्वार वाली नगरी मे तुम निवास करो। मेरे लाए हुए भोगों को भोग कर सौ वर्षों तक यहाँ रहो। तुम्हारे अतिरिक्त मै दूसरे किसको रमण कराऊँगी और लोग तो रति का ज्ञान ही नहीं रखते। वे गँवार है। वे परलोक की चिन्ता से दूर रहते हैं और इस लोक की भी चिन्ता उन्हे नही रहती। कल क्या होगा ? इस बात का विचार वे नहीं करते, अतएव वे पशु के समान हैं। इस गृहस्थाश्रम से धर्म, अर्थ, काम, प्रजा, (पुत्र आदि) आनन्द, मोक्ष, यश प्राप्त होते हैं। वे सत्वमय शोक-हीन लोक प्राप्त होते हैं, जो संन्यासियों को नहीं मिलते ! 'पतर, देवता, ऋषि, मनुष्य, प्राणि तथा स्वय अपने लिए इस संसार मे सुखदायी घर ही है। जो गृहस्थाश्रम कहा जाता है। हे वीर, प्रसिद्ध, उदार, सुन्दर और प्रिय आपके समान आये हुए को मेरी जैसी कौन स्त्री पति न बनावेगी। हे महाभुज, अपने दयापूर्ण सस्मित अवलोकन से अनाथों का दुःख दूर करने के लिए आप भ्रमण करते हैं। फिर सर्प के समान आपकी लम्बी भुजाओं मे पृथ्वी की किस स्त्री का मन आसक्त नहीं होगा ॥ ३२, ४२ ॥

नारद बोले— राजन्, वे दोनों स्त्री-पुरुष उस नगरी मे परस्पर समय (शर्त) करके सौ वर्षों तक आनन्द के साथ रहने लगे। राजा पुरंजन की कीर्ति जगह-जगह गायक गाते थे और राजा स्वयं अनेक स्त्रियों के साथ गर्मी के ऋतु मे उस तालाब मे प्रवेश करते थे। इस नगरी मे भिन्न-भिन्न देशों में जाने के लिए सात ऊपर और दो नीचे द्वार बने हुए थे। उस नगरी के स्वामी का ठीक-ठीक पता नहीं था। पाँच द्वार पूरब की ओर, एक दक्षिण की ओर

३५—एते सखायः सख्यो मे नरानार्यश्च मानद। सुप्ताया मयि जागर्ति नागोऽय पालयन्पुरीं॥

३६—दिष्ट्या गतोऽसि भद्रंते ग्राम्यान्कामानभीप्ससे। उद्वहिष्यामि तांस्तेऽह स्वबंधुभिररिंदम ॥

३७—इमा त्वमधितिष्ठस्व पुरीं नवमुखीं विभो। मयोपनीतान् गृह्णानः कामभोगान् शतं समाः ॥

३८—कंनुत्वदन्यं रमये ह्यरतिज्ञ मकोविद। असपरायाभिमुख मश्वस्तनविदं पशु ॥

३९—धर्मो ह्यत्रार्थ कामौच प्रजानदोऽमृत यश.। लोका विशोका विरजायान्न केवलिनो विदुः ॥

४०—पितृ देवर्षि मर्त्याना भूतानामात्मनश्च ह। क्षेमं वदंति शरणं भवेऽस्मिन्यद् गृहाश्रमः ॥

४१—कानाम वीर विख्यात वदान्य प्रियदर्शनं। नवृणीत प्रियप्राप्त मादृशी त्वादृशं पति ॥

४२—कस्यामनस्ते भुवि भोगिभोगयोः स्त्रियानसज्जेद्भुजयोर्महाभुज।
योऽनाथवर्गाधिमल घृणोद्धत स्मितावलोकेन चरत्यपोहितुं ॥

नारदउवाच—

४३—इति तौ दंपती तत्र समुद्य समयं मिथः। ता प्रविश्य पुरीं राजन् मुमुदाते शतं समा. ॥

४४—उपगीयमानो ललितं तत्र तत्र च गायकैः। क्रीडन्परिवृतः स्त्रीभिर्ह्रदिनी माविशच्छुचौ ॥

एक उत्तर की ओर और दो पश्चिम की ओर, इस प्रकार ये नौ द्वार थे। राजन्! इनका नाम सुनिए। खद्योता, और आविर्मुखी ये दो द्वार पूरब की ओर एक साथ बने हुए थे, उन द्वारों से राजा पुरंजन विभ्राजित देश मे जाते थे और द्युमान नाम का मित्र उनके साथ रहता था। नलिनी और नालिनी ये दो द्वार भी पूरब की ही ओर है और साथ बने हुये हैं। इन दोनों द्वारों से राजा पुरजन अवधूत नामक अपने मित्र के साथ सौरभदेश मे जाते हैं। पूरब की ओर मुख्या नाम का एक द्वार है, उससे राजा पुरंजन आपण और बहूदन् नामक देशों मे जाते है। रसज्ञ और विपण नामक दो मित्र उनके साथ रहते हैं। राजन्, इस नगरी के दक्षिण द्वार का नाम पितृहू है, इससे राजा पुरंजन श्रुतधर नामक अपने मित्र के साथ दक्षिण पाँचाल देश मे जाते है। उत्तर दिशा की ओर के द्वार का नाम देवहू है, उससे राजा पुरजन श्रुतधर नामक अपने मित्र के साथ उत्तर पंचाल देश मे जाते हैं। इस नगरी के पश्चिम की ओर के दरवाजे का नाम आसुरी है, इसके द्वारा राजा पुरंजन ग्रामक नाम के देश में जाते हैं और उस समय दुर्मद नाम का उनका मित्र साथ रहता है। पश्चिम दिशा का नाम निऋ्र्ति है, उस द्वार से राजा पुरंजन लुब्धक नाम के मित्र के साथ वैशस देश मे जाते हैं। इन द्वारों के अतिरिक्त निर्वाक् और पेशस्कृत नाम के दो द्वार और थे, ये सदा बन्द रहते थे। इन्द्रियों के स्वामी राजा पुरंजन उन दो द्वारों में के एक द्वार से चलते थे और एक द्वार से काम करते। वे राजा विशूचीन् नामक अपने मित्र के साथ जिस समय अपने रनिवास में जाता था, उस समय स्त्री और पुत्रों के कारण इसे मोह प्रसन्नता और हर्ष होता था। इस प्रकार यह कामी मूर्ख राजा कर्मों में आसक्त रह कर ठगा गया। इसकी महारानी जो चाहती थी वही यह करता था। जब वह

४५—सप्तोपरि कृताद्वारः पुरस्तस्यास्तुद्वे अधः। पृथग्विषय गत्यर्थं तस्या यः कश्चनेश्वरः॥
४६—पचद्वारस्तु पौरस्त्या दक्षिणैकातथोत्तरा। पश्चिमे द्वे अमूराते नामानि नृपवर्णये॥
४७—खद्योताविर्मुखी च प्राक् द्वारावेकत्र निर्मिते। विभ्राजित जनपद याति ताभ्या द्युमत्सखः॥
४८—नलिनी नालिनी च प्राक् द्वाराद्वेकत्र निर्मिते। अवधूत सखस्ताभ्या विषय याति सौरभ॥
४९—मुख्यानाम पुरस्ताद्वास्तयापण बहूदनौ। विपयो याति पुरराड् रसज्ञविपणान्वितः॥
५०—पितृहूर्नृप पुर्याद्वार्दक्षिणेन पुरजन.। राष्ट्र दक्षिणपचाल याति श्रुतिधरान्वित.॥
५१—देवहूर्नाम पुर्याद्वा उत्तरेण पुरजन। राष्ट्रमुत्तर पचाल याति श्रुतिधरान्वितः॥
५२—आसुरी नाम पश्चादद्वास्तया याति पुरजन.। ग्रामक नाम विषय दुर्मदेन समन्वितः॥
५३—निऋ्र्तिर्नाम पश्चाद्द्वास्तया याति पुरजनः। वैशस नाम विषय लुब्धकेन समन्वित.॥
५४—अंधावमीपा पौराणा निर्वाक् पेशस्कृतावुभौ। अक्षण्वतामधिपतिस्ताभ्या याति करोति च॥
५५—स यर्ह्यंतः पुरगतो विषूचीन समन्वित.। मोह प्रसाद हर्षं वा याति जायात्मजोद्भव॥
५६—एवं कर्मसु सयुक्तः कामात्मा वञ्चितोऽबुधः। महिषी यद्य दीहेत तत्तदेवान्ववर्तत॥

मदिरा पीता, तब यह भी मत्त होकर मदिरा पीता, जब रानी खाती, तब राजा भी खाता था। जब वह गाने लगती तब यह भी गाने लगता, जब वह रोती तब यह रोने लगता, हँसती तो हँसने लगता, बोलती तो बोलने लगता, दौड़ती तो दौड़ने लगता, खड़ी होती तो खड़ा हो जाता, सोती तो सो जाता, बैठती तो बैठ जाता, सुनती तो सुनने लगता, देखती तो देखने लगता, सूँघती तो सूँघने लगता, छूती तो छूने लगता, जब वह दुःख करती तब यह भी दीन होकर दुःख करने लगता, जब वह प्रसन्न होती तब यह भी प्रसन्न होकर, उसकी प्रसन्नता के लिए बधाई देता। इस प्रकार राजा पुरजन को रानी ने ठग लिया। राजा अपना स्वभाव खो बैठा। राजा किसी बात की इच्छा नहीं करता, केवल मूर्ख के समान स्त्री का अनुकरण करता था। मानों पलुआ बन्दर हो ॥ ४३, ६२ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का पचीसवाँ अध्याय समाप्त

५७—क्वचित्पिबंत्यां पिबति मदिरां मदविह्वलः। अश्नंत्यां क्वचिदश्नाति जक्षत्यां सह जक्षिति ॥

५८—क्वचिद्गायति गायत्यां रुदत्यां रुदति क्वचित्। क्वचिद्धसत्यां हसति जल्पत्यामनुजल्पति ॥

५९—क्वचिद्धावति धावंत्यां तिष्ठन्त्यामनुतिष्ठति। अनुशेते शयानायामन्वास्ते क्वचिदासतीं ॥

६०—क्वचिच्छृणोति शृण्वत्यां पश्यन्त्यामनुपश्यति। क्वचिज्जिघ्रति जिघ्रन्त्यां स्पृशन्त्यां स्पृशति क्वचित् ॥

६१—क्वचिच्च शोचतीं जायामनुशोचति दीनवत्। अनुहृष्यति हृष्यंत्यां मुदितामनुमोदते ॥

६२—विप्रलब्धो महिष्यैवं सर्वप्रकृतिवञ्चितः। नेच्छन्ननुकरोत्यज्ञः क्लैब्यात्क्रीडामृगो यथा॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेपंचविंशोऽध्यायः॥ २५ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

राजा पुरंजन का व्यवहार

नारद बोले—राजा पुरंजन बड़ा धनुष लेकर, पाँच घोड़ों वाले शीघ्रगामी रथ पर बैठकर चले। उसमें ईष नामक दो लड़की थीं, दो पहिये, एक धुरा, तीन ध्वजा और वह रथ पाँच जगह बँधा हुआ था। उसमे एक रस्सी थी और रथ हाँकने का एक डण्डा था, एक सवार के बैठने की जगह थी और दो जुआ थीं, पाँच अस्त्र थे, सात परदे थे और यह रथ पाँच प्रकार की गति से चल रहा था। ऐसे सोने की सामग्रियों से सजे रथ पर बैठकर सोने का कवच पहन-कर और न चुकने वाला भाथा (जिसमें बाण रखा जाता है) लेकर ग्यारह सेनाओं के स्वामी राजा पुरंजन पचप्रस्थ नामक वन में गये। अहंकारी राजा धनुष-बाण लेकर शिकार के लिये वन में घूमने लगे। पशुओं को मारने की उत्कण्ठा से उन्होंने अपनी रानी का भी त्याग किया था, जो त्याग के योग्य न थीं। निर्दय और क्रूर चित्त होकर राक्षसों के समान व्यवहार करते हुए राजा ने तीखे बाणों से वन में वनवासी पशुओं को मारा। (शास्त्रों में राजा के लिये शिकार खेलने की जो बात लिखी है, वह आज्ञा नहीं है, किन्तु एक प्रकार का निषेध है। अतएव शिकार के लिए ऐसे बन्धन लगा दिये गये हैं, जिनसे मनुष्य धीरे २ हिंसा से निवृत्त हो जाय। इसके छः नियम हैं, राजा ही शिकार करे, जब शिकार के लिए उसकी इच्छा अत्यन्त प्रबल हो जाय,तभी शिकार खेले,पर किसी श्राद्ध आदि के लिए,जो प्रसिद्ध श्राद्ध कभी २ होता हो और पवित्र पशुओं का ही शिकार करे और जितने मास की आवश्यकता हो, उतनेही पशु मारे,

---

नारदउवाच—

१—स एकदा महेष्वासो रथं पचाश्वमाशुगं। द्वीषं द्विचक्रमेकाक्षं त्रिवेणुं पचबन्धुरं॥

२—एकरश्म्येकदमनमेकनीडं द्विकूबरं। पचप्रहरणं सप्त वरूथं पचविक्रमं॥

३—हैमोपस्करमारुह्य स्वर्णवर्माक्षयेषुधिः। एकादश चमूनाथः पचप्रस्थं मगाद्वनं॥

४—चचार मृगया तत्र दृप्त आत्तेषु कार्मुकः। विहाय जायामतदर्हां मृगव्यसन लालसः॥

५—आसुरीं वृत्तिमाश्रित्य घोरात्मानिरनुग्रहः। न्यहनन्निशितैर्बाणैर्वनेषु वनगोचरान्॥

६—तीर्थेषु प्रतिदृष्टेषु राजा मेध्यान्पशून्वने। यावदर्थमलं लुब्धो हन्यादिति नियम्यते॥

७—य एवं कर्मनियतं विद्वान् कुर्वीत मानवः। कर्मणा तेन राजेन्द्र ज्ञानेन न स लिप्यते॥

८—अन्यथा कर्मकुर्वाणो मानारूढो निबध्यते। गुणप्रवाहे पतितो नष्टप्रज्ञो व्रजत्यधः।

९—तत्र निर्भिन्न गात्राणां चित्रवाजैः शिलीमुखैः। विप्लवोभूद्दुःखिताना दुस्सहः करुणात्मनां॥

लोभ से न मारे। जो विद्वान् इस प्रकार संयत होकर कर्म करते हैं, उन्हें ज्ञान प्राप्त होता है, जिससे वे कर्म बन्धन में नहीं बँधते। जो अहंकार से काम करते हैं, वे कर्म-बन्धन में बंध जाते हैं और त्रिगुणों के प्रवाह के साथ बहते हुए अधोगामी होते हैं। क्योंकि उनकी बुद्धि पहले ही नष्ट हो जाती है।) विविध प्रकार के पॉख वाले बाणों से पक्षियो का शरीर कटने लगा और उनका नाश होने लगा। जिससे दयालुओं का मन बहुत दु.खी हुआ। खरगोश, सूअर, भैसे, गवय, मृग साहिल तथा अन्य अनेक पशुओं को मारकर राजा थक गये। भूख-प्यास से व्याकुल होकर वे घर लौट आये। स्नान और आहार करने से उनकी थकावट दूर हुई और उन्होंने विश्राम किया। धूप, लेप, माला आदि से उन्होंने अपना शृङ्गार किया, इस प्रकार अच्छी तरह शृङ्गार कर लेने पर उनका मन महारानी की ओर गया। तृप्त, प्रसन्न, उत्साहित और कामाधीन राजा ने महारानी (सुन्दरी स्त्री) को नहीं देखा, तब उन्होंने उद्विग्न होकर महल मे रहने वाली स्त्रियों से पूछा, स्त्रियों! अपनी मालकिन के साथ तुम लोगों की कुशल तो है? फिर इस घर की सम्पत्तियों की शोभा पहले के समान क्यों नहीं मालूम होती। जिस घर मे माता न हो, पति को देवता समझने वाली पत्नी न हो, उस टूटे हुए रथ के समान घर में कौन मनुष्य दीन के समान रहेगा। वह स्त्री कहाँ गयी! जो इस दुःख समुद्र से मेरा उद्धार करती। जो समय-समय पर अपनी बुद्धि का प्रकाश दिखाती रहती है अर्थात् उत्तम परामर्श दिया करती है॥ १-१६॥

स्त्रियाँ बोली—शत्रुनाशन महाराज, हम लोग नहीं जानतीं की आपकी प्रियतमा क्या करना चाहती है। वह देखिए, बिना बिछौने के जमीन पर पड़ी हुई है॥ १७॥

१०—शशान्वराहान्महिषान्गवयान् रुरुशल्यकान्। मेध्यानन्यांश्च विविधान् विनिघ्नन् श्रममध्यगात्॥

११—ततः क्षुत्तृट्परिश्रातो निवृत्तो गृहमेयिवान्। कृतस्नानोचिताहारः संविवेश गतक्लमः॥

१२—आत्मानमर्हयांचक्रे धूप लेप स्रगादिभिः। साध्वलंकृत सर्वांगो महिष्यामादधे मनः॥

१३—तृप्तो हृष्टः सुदृप्तश्च कंदर्पाकृष्ट मानसः। न व्यचष्ट वरारोहा गृहिणीं गृहमेधिनीं॥

१४—अतःपुरस्त्रियोऽपृच्छद्विमना इव वेदिषत्। अपि वः कुशल रामाः सेश्वरीणा यथा पुरा॥

१५—न तथैतर्हि रोचते गृहेषु गृहसपद.। यदि नस्याद् गृहे माता पत्नी वा पतिदेवता॥

व्यंगेरथ इव प्राज्ञः कोनामासीत दीनवत्॥

१६—क्व वर्तते सा ललना मज्जंतं व्यसनार्णवे। यामामुद्धरते प्रज्ञां दीपयंती पदे पदे॥

रामा ऊचुः—

१७—नरनाथ न जानीमस्त्वत्प्रियायद्व्यवस्यति। भूतले निरवस्तारे शयानां पश्य शत्रुहन्॥

नारद बोले—राजा ने अपनी रानी को जमीन में पड़ी देखा। शरीर की ओर उनका ध्यान बिलकुल नहीं था। रानी के साथ से जिसका ज्ञान नष्ट हो गया है, ऐसे राजा उनकी ऐसी अवस्था देखकर बहुत व्याकुल हुए। दुखी हृदय से राजा ने मधुर वचनों के द्वारा रानी को समझाया, पर राजा को उसमें प्रणय-कोप के कोई लक्षण दिखायी न पड़े। अनन्तर मान-भंजन करने में चतुर राजा पुरजन धीरे २ समझाने लगे। महारानी के चरणों को गोद में रखकर सहलाते हुए राजा बोले॥ २०॥

पुरजन बोले—शुभे, जो भृत्य अपराध करने पर स्वामी के द्वारा दण्डित नहीं होते, जिनको अपना समझकर स्वामी दण्ड नहीं देता, अवश्य ही वे भृत्य अभागी हैं। स्वामी भृत्यों को जो दण्ड देते है, यह उनका परम अनुग्रह है। तन्वी, क्रोधी बालक अपने बान्धवों की दी हुई शिक्षा के महत्व का दण्ड नहीं समझते, पर होता है, वह महत्व पूर्ण। अतएव सुन्दर दाँत, सुन्दर भौं, ऊँची नाक, भ्रमर के समान काले बालों से सुशोभित, मनोहर वचन वाला मुख हमको दिखाओ। जो अधिक अनुराग के कारण उत्पन्न लज्जायुक्त हँसने और देखने से अत्यन्त सुन्दर मालूम पड़ता है। वीरपत्नि, मैं उसको दण्ड दूंगा, जिसने तुम्हारा कुछ भी अपराध किया हो। यदि वह ब्राह्मण न हो, अथवा भगवान् का भक्त न हो। त्रिलोक में अथवा इसके बाहर मे ऐसा किसी को नहीं देखता हूँ, जो मेरे भय से भीत न हो और आनन्द मनावे। तुम्हारा मुख कभी ऐसा नहीं देखा है, जब तिलक न हो, मैला हो, उदास हो, क्रोध से भयकर हो गया हो, साफ किया न हो, रंग उड़ गया हो, ये तुम्हारे स्तन भी शोक से मलिन हो

नारद उवाच—

१८—पुरजनः स्वमहिषीं निरीक्ष्यावधुतां भुवि। तत्सङ्गोन्मथित ज्ञानो वैक्लव्य परम ययौ॥
१९—सान्त्वयन् श्लक्ष्णया वाचा हृदयेन विदूयता। प्रेयस्याः स्नेहसंरम्भलिंगमात्मनि नाभ्यगात्॥
२०—अनुनिन्येथ शनकैर्वीरोऽनुनयकोविदः। पस्पर्श पादयुगल माह चोत्सङ्गलालिता॥

पुरजन उवाच—

२१—नून त्वकृतपुण्यास्ते भृत्यायेष्वीश्वराः शुभे। कृतागः स्वात्मसात्कृत्वा शिक्षादण्ड न युंजते॥
२२—परमोनुग्रहो दण्डो भृत्येषु प्रभुणाऽर्पितः। बालो न वेद तत्तन्वि बन्धुकृत्य ममर्षणः॥
२३—सा त्व मुख सुदति सुभ्र्वनुरागभार व्रीडाविलम्ब विलसद्धसितावलोक।
नीलालकालिभिरुपस्कृतमुन्नसनः स्वाना प्रदर्शय मनस्विनि वल्गु वाक्य॥
२४—तस्मिन्दधेदमसहं तव वीरपत्नि योन्यत्र भूसुरकुलात्कृत किल्बिषस्त।
पश्येन वीतभयमुन्मुदित त्रिलोक्या मन्यत्र वै मुररिपोरितरत्र दासात्॥

गये है। अधर का कुंकुम-राग भी उड़ गया है। मैं तुम्हारा अपराधी हूँ, क्योंकि तुम्हारी बिना आज्ञा के शिकार के लिये चला गया था। मृगया के अनुराग से खिंच गया था। अतएव इस अपराधी को तुम क्षमा करो। काम के वेग से जिसने अपना धैर्य छोड़ दिया है, ऐसे अधीन पति को कौन कामना रखने वाली स्त्री योग्य कार्यो से प्रसन्न न करेगी!

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त
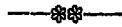
सत्ताइसवाँ अध्याय

राजा का स्वरूप-विस्मरण

नारद बोले—यह रानी राजा को अच्छी तरह अपने वश मे करके, उन्हे आनन्द देने लगी और स्वयं आनन्द करने लगी। स्नान, वस्त्राभूषण आदि से सज्जित और प्रसन्न होकर महारानी राजा के पास आयीं। राजा ने उनका अभिनन्दन किया। रानी ने कन्धे पर हाथ

२५—वक्त्रं न ते वितिलकं मलिन विहर्षं संरम्भभीम मविमृष्टमपेतरागं।
पश्ये स्तनावपिशुचोपहतौ सुजातौ बिंबाधर विगत कुकुमपंकरागं ॥

२६—तन्मे प्रसीद सुहृदः कृतकिल्बिषस्य स्वैरंगतस्य मृगया व्यसनातुरस्य।
कादेवरं वशगत कुसुमास्त्रवेग विस्रस्तपौंस्त्वमुशती नभजेत कृत्ये ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कन्धेपुरंजनोपाख्यानेषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

नारद उवाच—

१—इत्थ पुरंजन सध्र्यक् वशमानीय विभ्रमैः। पुरंजनी महाराज रेमे रमयती पतिं॥

रखकर राजा का आलिंगन किया, एकान्त की गुप्त बातों से राजा का विवेक जाता रहा। स्त्री के साथ रहने से राजा को दिन-रात का ज्ञान न रहा। वे काल के वेग को न जान सके, जिस वेग का प्रतिकार असम्भव है। महरानी की भुजा पर सिर रखकर बहुत उत्तम सोए हुए मतवाले राजा महारानी को ही सब कुछ समझने लगे। उसके साथ रहने को ही, उन्होंने परम पुरुषार्थ समझा। अज्ञान के कारण वे अपना यथार्थ रूप भूल गये। राजेन्द्र, इस प्रकार उस स्त्री के साथ रमण करने से राजा का चित्त काम से दूषित हो गया और उनकी नयी उमर बीत गयी। पर इसका ज्ञान उन्हें न हुआ। उस रानी से राजा ने ग्यारह सौ पुत्र उत्पन्न किये। इतने में उनकी आधी आयु भी बीत गयी। अनन्तर एक सौ दस कन्याएँ उत्पन्न हुईं, जो माता-पिता के यश को बढाने वाली और शील, उदारता आदि गुणों से युक्त थीं। पचाल देश के राजा पुरंजन ने पिता के वश को बढाने के लिए पुत्रों का व्याह कर दिया और योग्यवर से कन्याओं की शादी कर दी। राजा के एक-एक पुत्र को एक-एक सौ पुत्र हुए,जिससे पुरजन राजा का वश पाचाल देश में फैल गया। पुत्रों और पौत्रों की, जो राजा के भण्डार से ही जीने वाले थे,ममता बढ जाने से राजा विषयों में और फँस गये। दीक्षा लेकर उन्होंने यज्ञ किये, जिसमे छः भयकर रूप से पशु हिंसा की गयी। इन यज्ञों से राजा ने पितरों, देवताओं और भूत स्वामियों को प्रसन्न किया। राजा ने यह हिंसा अनर्थक नहीं की, जैसा आप कर रहे हैं।

राजा कुटुम्ब में आसक्त होकर इस प्रकार अपना समय बिता रहे थे। उसी समय काल आया, जो गृहस्थों को और स्त्री के साथ रहने वालों को अत्यन्त अप्रिय है। राजन्, चण्डवेग नामक एक गन्धर्वों का राजा था, उसके तीन सौ साठ बलवान् गन्धर्व थे और

२—स राजमहिषी राजन्सुस्नातां रुचिराननां। कृतस्वस्त्ययना तृप्तामभ्यनन्ददुपागता ॥

३—तयोपगूढः परिरब्धकधरो रहोऽनुमन्त्रैरपकृष्ट चेतनः।

न कालरंहो बुबुधे दुरत्यय दिवानिशेति प्रमदापरिग्रहः ॥

४—शयान उन्नद्धमदो महामना महार्हतल्पे महिषीभुजोपधिः।

तामेव वीरो मनुते परंयतस्तमोभिभूतो न निजं परं च यत् ॥

५—तयैव रममाणस्य कामकश्मल चेतसः। क्षणार्धमिव राजेन्द्र व्यतिक्रांतं नव वयः ॥

६—तस्यामजनयत्पुत्रान्पुरजन्या पुरजनः। शतान्येकादश विराडायुषोऽर्धमथात्यगात् ॥

७—दुहितॄर्दशोत्तरशत पितृमातृ यशस्करीः। शीलौदार्य गुणोपेताः पौरजन्यः प्रजापते ॥

८—स पचालपतिः पुत्रान् पितृवश विवर्द्धनान्। दारैः संयोजयामास दुहितॄः सदृशैर्वरैः ॥

९—पुत्राणा चाभवन्पुत्रा एकैकस्य शत शतं। यैर्वै पौरजनो वंशः पचालेषु समेधितः ॥

१०—तेषु तद्रिक्थहारेषु गृहकोशानुजीविषु। निरूढेन ममत्वेन विषयेष्वनुबध्यत ॥

तीन सौ साठ ही गन्धर्वी थीं। ये गन्धर्व और उनकी स्त्रियाँ दोनों साथ रहती थीं। उनमें आधे काले और आधे गोरे थे। ये गन्धर्व स्त्री, पुरुष भ्रमण करते रहते और प्रिय मनोरथों के द्वारा बनायी गई नगरियों को लूट लेते। जब वे चण्डवेग के अनुचर राजा पुरंजन की नगरी को लूटने आये, तब जागने वाले नगर-रक्षक ने उन्हें रोका। वह पुरंजन का बली नगर-रक्षक अकेला ही सात सौ बीस गन्धर्वों से सौ वर्षों तक लड़ता रहा। बहुतों के साथ अकेले युद्ध करने से यह बली रक्षक धीरे-धीरे क्षीणबल होने लगा। इससे राजा, राज्य, पुरवासी और बांधवों के साथ दु.खी हुए और अत्यन्त चिन्तित हुए। पर इसके पहले राजा अपनी नगरी मे साथियों के साथ स्त्री के अधीन होकर आनन्द भोग कर रहा था। प्रजा से कर ले रहा था, भय का ज्ञान उसे न था। राजन्! काल की एक कोई कन्या भी वर पाने के लिए त्रिलोक मे घूम रही थी। पर कोई उससे व्याह करना नहीं चाहता था। वह अत्यन्त अभागिनी थी, इसलिए अपने देश मे दुर्भगा कही जाती थी। इसने पहले राजा पुरु से व्याह किया था और प्रसन्न होकर उन्हें राज्य दिया था। एक बार घूमती-घूमती वह मुझे पृथ्वीलोक में मिली। मैं ब्रह्मलोक से पृथ्वी मे आया था। वह मुझे ब्रह्मचारी जानती थी, तथापि काम-मोहित होकर मुझसे व्याह करने आयी। मेरे अस्वीकार करने पर क्रोध करके उसने मुझे असह्य शाप दिया। मुनि, तुमने मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं की, अतएव तुम एक स्थान पर नहीं रह सकोगे।

मेरे यहाँ मनोरथ के नष्ट हो जाने पर वह मेरी सलाह से भय नामक यवनराज को वरने के लिए उनके पास गयी। कन्या ने कहा—मैं यवनों के स्वामी अपना प्रिय पति बनाती हूँ, मनुष्यों

११—ईजेच क्रतुभिर्घोरैर्दीक्षितः पशुमारकैः। देवानपितॄन् भूतपतीन्नानाकामो यथा भवान्॥
१२—युक्तेष्वेवं प्रमत्तस्य कुटुम्बासक्त चेतसः। आससाद स वै कालो योऽप्रियः प्रिययोषिता॥
१३—चण्डवेग इतिख्यातो गन्धर्वाधिपतिर्नृप। गधर्वास्तस्य बलिनः षष्ट्युत्तर शतत्रय॥
१४—गधर्व्यस्तादृशीरस्य मैथुन्यश्च सितासिताः। परिवृत्त्या विलुपति सर्वकाम विनिर्मिता॥
१५—ते चंडवेगानुचराः पुरजन पुरं यदा। हर्तुमारेभिरेतत्र प्रत्युपेधत्प्रजागरः॥
१६—स सप्तभिः शतैरेकोविंशत्याच शत समाः। पुरंजनपुराध्यक्षो गधर्वैर्युयुधे बली॥
१७—क्षीयमाणे स्वसंबन्धे एकस्मिन्बहुभिर्युधा। चिंता परां जगामार्तः स राष्ट्रपुरबांधव.॥
१८—स एव पुर्यां मधुभुक्पंचालेषु स्वपार्षदैः। उपनीत बलिं गृह्णन् स्त्रीजितो नाविदद्भय॥
१९—कालस्य दुहिता काचित्त्रिलोकीं वरमिच्छती। पर्यटती न बर्हिष्मन्प्रत्यनन्दत कश्चन॥
२०—दौर्भाग्येनात्मनो लोके विश्रुता दुर्भगेति सा। या तुष्टा राजर्षये तु वृताऽदात्पूरवे वरं॥
२१—कदाचिदटमाना सा ब्रह्मलोकान्महीं गतम्। वव्रे बृहद्व्रतम् मां तु जानती काममोहिता॥

का संकल्प आप अवश्य ही पूरा करते हैं,अर्थात् भय की भावना होते ही मनुष्य भयभीत हो जाता है। जो लोक और शास्त्र के द्वारा प्राप्त हुआ है, उसे ग्रहण न करने वाला अथवा उसका दान न करने वाला, ये दोनों मूर्ख हैं। इनका आग्रह झूठा है,अतएव ये शोचनीय हैं। अतएव आप मुझे ग्रहण करें, मैं आप में अनुराग रखती हूँ, आप मुझपर कृपा करें। दुखियों पर दया करना ही पुरुषों का श्रेष्ठ धर्म है। काल-कन्या की बातें सुनकर यवनराज, मन्दहास करती हुई, उस कन्या से बोला। क्योंकि वह देवताओं से भी गोप्य (गुप्त) काम करना चाहता था। मैंने अपने ज्ञान के द्वारा तुम्हारे लिए पति ठहराया है। तुम भद्दी हो और सुन्दरी नहीं हो, इसलिए कोई तुमको पसन्द नहीं करता। अतएव तुम छिपकर कर्म से बने हुए इस लोक का भोग करो। उस समय यह लोक तुम्हारा पति होगा, तुम्हारा कोई नाश भी नहीं कर सकेगा, क्योंकि उस समय लोक-विनाश करने वाली हमारी सेना के साथ मिलकर तुम्हीं इसका नाश करोगी। यह प्रज्वार मेरा भाई है, तू मेरी बहन बन। तुम दोनों के साथ भयंकर सैनिकों को लेकर मैं छिपकर इस लोक में भ्रमण करूँगा ॥ १-३० ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त

———:o:———

२२—मयि सरम्य विपुलमदाच्छाप सुदुःसह। स्थातुमर्हसि नैकत्र मद्याञ्चा विमुखो मुने ॥
२३—ततो विहतसंकल्पा कन्यका यवनेश्वरं। मयोपदिष्ट मासाद्य वव्रे नाम्नाभयंपति ॥
२४—ऋषभ यवनानां त्वां वृणोवीरेप्सितं पतिम्। संकल्पस्त्वयि भूतानां कृतः किल नरिष्यति ॥
२५—द्वाविमावनुशोचंति बालावसदवग्रही। यल्लोक शास्त्रोपनत नरातिन तदिच्छति ॥
२६—अथो भजस्व मां भद्रभजतीं मेदयां कुरु। एतावान्पौरुषो धर्मो यदार्त्ता ननुकम्पते ॥
२७—कालकन्योदितवचो निशम्य यवनेश्वर.। चिकीर्षुर्देवगुह्य स सस्मिता तामभाषत ॥
२८—मया निरूपितस्तुभ्य पतिरात्म समाधिना। नाभिनन्दति लोकोऽय त्वामभद्रा मसम्मता॥
२९—त्वमव्यक्तगतिर्भुंक्ष्व लोकं कर्मविनिर्मितम्। यादि मे पृतनायुक्ता प्रजानाशं प्रणेष्यसि॥
३०—प्रज्वारोऽयं मम भ्राता त्वंच मे भगिनी भव। चराम्युभाभ्यां लोकेऽस्मिन्नव्यक्तो भीमसैनिक.॥

इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे पुरञ्जनोपाख्याने सप्तविंशोऽध्याय ॥ २७ ॥

———:o:———

अट्ठाइसवाँ अध्याय

पुरंजन का स्त्री-रूप में जन्म और मुक्ति

नारद बोले—हे प्राचीनवर्हि, भय नामक राजा के आज्ञाकारी सैनिक, प्रज्वार और काल-कन्या के साथ पृथ्वी में चारों ओर घूमने लगे। एक बार उन लोगों ने पृथ्वी के समस्त भोग पदार्थों से परिपूर्ण और एक बूढ़े सर्प से रक्षित पुरंजन राजा की नगरी घेर ली। काल कन्या बलपूर्वक पुरंजन के नगर का भोग करने लगी। यह काल-कन्या जिस पुरुष का भोग करती थी,वह दुर्बल तथा निःसार हो जाता था। इधर काल-कन्या उस नगर का भोग करने लगी और उधर यवनराज के सैनिकों ने चारों ओर से उस नगरी के द्वारों मे प्रवेश किया और वे सब उसको पीड़ा पहुँचाने लगे। राजा पुरंजन के अनेक स्वजन सम्बन्धी थे, उन सबमें उनका स्नेह था, ममता थी। जब सैनिकों के द्वारा नगर की दुर्दशा होने लगी, तब राजा को बड़ा दु:ख हुआ। काल-कन्या ने राजा का भी आलिंगन किया। उनकी शोभा जाती रही, वे दरिद्र हो गये। विषयों में उनका अनुराग बढ़ गया, बुद्धि नष्ट हो गयी, गन्धर्व और यवनों की सेना ने उनका ऐश्वर्य हर लिया।।उनकी नगरी नष्ट-भ्रष्ट कर दी। राजा ने देखा कि उनके पुत्र, पौत्र, भृत्य और सचिव ये सब प्रतिकूल हो गये। स्त्री का प्रेम जाता रहा और स्वयं वे काल-कन्या के ग्रास बन गये। शत्रुओं ने पांचाल देश को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। यह सब देखकर राजा

नारदउवाच—

१—सैनिका भयनाम्नो ये बर्हिष्मन दिष्ट कारिणः। प्रज्वार कालकन्याभ्यां विचेरुरवनीमिमां ॥
२—त एकदा तुरभसा पुरंजनपुरीं नृप। रुरुधुर्भौमभोगाढ्या जरत्पन्नगपालिता ॥
३—कालकन्यापि बुभुजे पुरंजनपुर बलात्। ययाऽभिभूतः पुरुषः सद्यो निःसारतामियात् ॥,
४—तयोपभुज्यमाना वै यवनाः सर्वतोदिश। द्वाभि. प्रविश्य सुभृश प्रार्दयन्सकला पुरीं ॥
५—तस्या प्रपीड्यमानाया मभिमानी पुरंजनः। अवापोरुविधास्तापान् कुटुम्बी ममताकुलः ॥
६—कन्योपगूढो नष्टश्री. कृपणो विषयात्मकः। नष्टप्रज्ञो हृतैश्वर्यो गन्धर्वयवनैर्बलात् ॥
७—विशीर्णां स्वपुरीं वीक्ष्य प्रतिकूलाननादृतान्। पुत्रान्पौत्रानुगामात्यान् जाया च गतसौहृदां ॥
८—आत्मान कन्यया ग्रस्तं पंचालानरिदूषितान्। दुरंत चिंतामापन्नो न लेमे तत्प्रतिक्रिया ॥
९—कामानमिलषन्दीनो यातयामांश्च कन्यया। विगतात्मगतिस्नेहः पुत्रदाराश्च लालयन् ॥

अत्यन्त चिन्तित हुए, पर उन्हे इसके लिये कोई उपाय न सूझ पड़ा। काल-कन्या से ग्रस्त होने के कारण निःसार मनोरथों को पाने की इच्छा राजा रखते थे। उनका पारलौकिक कल्याण नष्ट हो गया था, इस लोक के पुत्र आदि भी उनमें अनुराग नहीं रखते थे, तथापि राजा का स्नेह उनसे था। जब राजा ने देखा कि गन्धर्व और यवन के सैनिकों ने इस नगरी पर आक्रमण कर दिया है। काल-कन्या ने इसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है, तब इच्छा न रहने पर भी उन्होंने इस नगरी का त्याग करना चाहा। उसी समय भय का बडा भारी प्रज्वार वहाँ उपस्थित हुआ और उसने बडे भाई को प्रसन्न करने के लिये उस समूची नगरी को जला दिया। जब वह नगरी जलने लगी, तब कुटुम्ब मे प्रेम रखने वाले पुरजन पुरवासियों, नौकर-चाकरों, स्त्रियों तथा बालकों के साथ दुःख करने लगे। यवनों ने जब नगरी घेर ली, काल-कन्या ने जब उसे ग्रस लिया और प्रज्वार उसे जलाने लगा, तब नगर का रक्षक वह पाँच मस्तक वाला सर्प पश्चात्ताप करने लगा। वह इस नगरी की रक्षा न कर सका। इससे वह बहुत ही दुखी हुआ और बड़े जोर से काँपने लगा। वृक्ष के खोंडर से, जिसमें आग लग गयी हो, उससे निकलकर साँप जैसे भाग जाते हैं, उसी प्रकार वह भी उस नगर से भाग जाना चाहता था। गन्धर्वों ने राजा पुरजन का पुरुषार्थ हर लिया, जिससे उनके अवयव शिथिल हो गये॥ यवन शत्रुओंने उनको घेर लिया, अतएव वे रोने लगे। राजा ने पुत्रियों पुत्रों, पौत्रों. पुत्रवधुओं, जामाताओं, सेवकों, घर, धन आदि जो कुछ बच गये थे, उन सबका स्मरण किया। बुद्धिहीन राजा सासारिक विषयों को अभिन्न और शरीर को आत्म-

१०—गन्धर्वयवनाक्रान्तां कालकन्योपमर्दिताम्। हातुं प्रचक्रमे राजा तां पुरीमनिकामतः॥

११—भयनाम्नोऽग्रजो भ्राता प्रज्वारः प्रत्युपस्थितः। ददाह तां पुरीं कृत्स्नां भ्रातुः प्रियचिकीर्षया॥

१२—तस्यां सन्दह्यमानायां सपौरः सपरिच्छदः। कौटुम्बिकः कुटुम्बिन्या उपातप्यत सान्वयः॥

१३—यवनोपरुद्धायतनो ग्रस्तायां कालकन्यया। पुर्यां प्रज्वारसंसृष्टः पुरपालोऽन्वतप्यत॥

१४—न शेके सोऽवितुं तत्र पुरुकृच्छ्रोरुवेपथुः। गंतुमैच्छत्ततो वृक्षकोटरादिव सानलात्॥

१५—शिथिलावयवो यर्हि गन्धर्वैर्हृतपौरुषः। यवनैररिभी राजन्नुपरुद्धो रुरोद ह॥

१६—दुहितॄः पुत्रपौत्रांश्च जामिजामातृपार्षदान्। स्वत्वावशिष्टं यत्किंचिद् गृहकोशपरिच्छदम्॥

१७—अहं ममेति स्वीकृत्य गृहेषु कुमतिर्गृही। दध्यौ प्रमदया दीनो विप्रयोग उपस्थिते॥

१८—लोकान्तरं गतवति मय्यनाथा कुटुम्बिनी। वर्तिष्यते कथं त्वेषा बालकाननुशोचती॥

१९—न मय्यनाशिते भुंक्ते नास्नाते स्नाति मत्परा। मयि रुष्टे सुसंत्रस्ता भर्त्सिते यतवाग्भयात्॥

रूप समझते थे। अतएव स्त्री से वियोग होने के समय वे सोचने लगे कि दूसरे लोक में मेरे चले जाने पर यह स्त्री अनाथ हो जायगी। इसका काम कैसे चलेगा, बाल-बच्चों के लिये कितना दुःख उठावेगी। जो मेरे भोजन कर लेने पर भोजन करती थी, जब तक मैं स्नान न करता, तब तक स्नान नहीं करती थी, जब मैं क्रोध करता, तब डर जाती थी और जब मैं डाँटता था, तब भय से चुप हो जाती थी, मुझ अज्ञानी को समझाती थी, मेरे बाहर जाने पर शोक से कृश हो जाती थी, वह मेरे न रहने पर गृहस्थ धर्म को कैसे चलावेगी, पुत्रपुत्रियों का पालन करेगी या मेरे विरह के कारण मर जायगी, मेरे न रहने पर ये अनाथ पुत्र और दूसरे की वस्तु कन्याएँ किस प्रकार रहेंगी? समुद्र में नाव के टूट जाने से जो अवस्था होती है, वही अवस्था इनकी हो जायगी। इस प्रकार राजा दीन-बुद्धि से विचार करने लगे, यद्यपि उन्हें ऐसा विचार नहीं करना चाहिये था। उसी समय राजा को पकडने की इच्छा करके भय वहाँ उपस्थित हुआ। पशु के समान राजा को पकड कर यवन अपने घर लेकर चले। उस समय राजा के अनेक कुटुम्बी दुःखी और राजा के लिये शोक करते हुए, उनके पीछे २ चले। यवनों से घिरा हुआ वह सर्प भी जब उस नगरी को छोड़कर चला गया, तब वह नगरी नष्ट-भ्रष्ट हो गई और पंचभूत में मिल गई। यवन राजा को बलवान जान जबरदस्ती खींच कर लिये जाते थे, पर राजा को अपने पहले वाले मित्र का स्मरण नहीं हुआ, क्योंकि राजा का ज्ञान नष्ट होगया था। राजा ने निर्दय होकर, जिन पशुओं को यज्ञ में मारा था और जो राजा की क्रूरता को स्मरण करके क्रुद्ध हुए थे, वे कुल्हाडियों से राजा को काटने लगे।

२०—प्रबोधयति मामज्ञं व्युषिते शोककर्शिता। वर्त्मैतद् गृहमेधीयं वीरसूरपि नेष्यति ॥

२१—कथंनुदारकादीना दारकीर्वापरायणाः। वर्तिष्यते मयि गते भिन्ननाव इवोदधौ ॥

२२—एवं कृपणया बुद्धया शोचतमतदर्हण। ग्रहीतु कृतधीरेन भयनामाऽभ्यपद्यत ॥

२३—पशुवद्यवनैरेष नीयमानः स्वकं क्षयं। अन्वद्रवन्ननुपथाः शोचन्तो भृशमातुराः ॥

२४ - पुरीं विहायोपगत उपरुद्धो भुजंगमः। यदा तमेवानुपुरी विशीर्णा प्रकृतिं गता ॥

२५—विकृष्यमाणः प्रसभं यवनेन बलीयसा। नाविंदत्तमसाविष्टः सखायं सुहृदं पुरः ॥

२६—तं यज्ञपशवोऽनेन संज्ञप्ता येऽदयालुना। कुठारैश्चिच्छिदुः क्रुद्धाः स्मरंतोऽमीवमस्यतत् ॥

२७—अनंत पारे तमसि मग्नो नष्टस्मृतिः समाः। शाश्वती रनुभूयार्तिं प्रमदासंगदूषितः ॥

२८—तामेव मनसा गृह्णन्बभूव प्रमदोत्तमा। अनंतरं विदर्भस्य राजसिंहस्य वेश्मनि ॥

२९—उपयेमे वीर्यपणां वैदर्भीं मलयध्वजः। युधि निर्जित्य राजन्यान्पांड्यः परपुरंजयः ॥

राजा अगाध अन्धकार में डूब गये, उनकी स्मृति जाती रही। स्त्री के साथ से उनकी यह दशा हुई थी, अतएव अनेक वर्षों तक वे दुःख भोगते रहे। राजा के मन की सब स्मृतियाँ नष्ट होगयी थीं, केवल स्त्री की स्मृति रह गयी थी,अतएव वे स्त्री का ही ध्यान किया करते थे,जिससे विदर्भ देश के राजा के घर में सुन्दरी स्त्री के रूप में राजा पुरजन ने जन्म लिया। उस विदर्भ-राजपुत्री का व्याह पाण्ड्य देश के पराक्रमी राजा से हुआ। कन्या के पिता ने सबसे वीर को पुत्री देने का निश्चय किया था। अतएव पाण्ड्य राजा ने युद्ध में राजाओं को जीतकर उसको व्याहा। उस स्त्री से राजा ने काली आँख वाली एक कन्या उत्पन्न की और उससे छोटे सात पुत्र, जो द्रविण देश के राजा हुए,उत्पन्न किये। उन पुत्रों में एक एक के अर्बुद-अर्बुद पुत्र हुए। जिनके वंशज मन्वन्तर के बाद तक इस पृथ्वी का पालन करेंगे। पाण्ड्य राजा की कन्या को अगस्त्य मुनि ने व्याहा था। उस व्रतधारिणी स्त्री से दृढच्युत नाम का पुत्र हुआ और उसका पुत्र इध्मवाहु हुआ। पाण्ड्य राजा ने पृथ्वी अपने पुत्रों को बाँट दी और कृष्ण की आराधना करने के लिए वे कुलाचल पर्वत पर चले गये। विदर्भराजा की पुत्री भी घर, पुत्र और भोगों को छोड़कर राजा के साथ गयी, जिस प्रकार ज्योत्स्ना (चन्द्रिका) चन्द्रमा का अनुसरण करती है। उस पर्वत में चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी और वटोदका नाम की नदियाँ थीं। उसके जल से वे नित्य भीतर और बाहर का मल धोते थे। कन्द, बीज, मूल, फल, फूल, पत्ते, तृण जल, पर रहकर राजा धीरे-धीरे शरीर सुखाने लगे। शीत, उष्ण, वात, वर्षा, क्षुधा,पिपासा,प्रिय,अप्रिय, सुख,दुःख आदि द्वन्द्वों को समदृष्टि राजा ने जीत लिया। तपस्या और विद्या के द्वारा राजा ने अपनी वासनाओं का नाश कर दिया।

३०—तस्यां स जनयाचक्रे आत्मजामसितेक्षणा। यवीयस. सप्तसुतान्सप्त द्रविडभूभृतः॥

३१—एकैकस्याभवत्तेषा राजन्नर्बुदमर्बुदं। भोक्ष्यते यद्वंशधरैर्महीमन्वतर परं॥

३२—अगस्त्यः प्राग् दुहितरमुपयेमे धृतव्रता। यस्यां दृढच्युतो जात इध्मवाहात्मजो मुनि.॥

३३—विभज्य तनयेभ्य. क्ष्मा राजर्षिर्मलयध्वज.। आरिराधयिषुः कृष्णा स जगाम कुलाचलं॥

३४—हित्वा गृहान्सुतान्भोगान् वैदर्भी मदिरेक्षणा। अन्वधावत पाण्ड्येशं ज्योत्स्नेवरजनीकर॥

३५—तत्र चन्द्रवसा नाम ताम्रपर्णी वटोदका। तत्पुण्य सलिलैर्नित्य मुभयत्रात्मनोमृजन्॥

३६—कंदाष्टिभिर्मूलफलै. पुष्पपर्णैस्तृणोदकैः। वर्तमानः शनैर्गात्रकर्षणं तप आस्थितः॥

३७—शीतोष्ण वातवर्षाणि क्षुत्पिपासे प्रियाप्रिये। सुखदु.खे इति द्वन्द्वान्यजयत्समदर्शनः॥

३८—तपसा विद्यया पक्वकषायो नियमैर्यमै.। युयुजे ब्रह्मण्यात्मानं विजिताक्षानिलाशय.॥

३९—आस्ते स्थाणुरिवैकत्र दिव्य वर्षशत स्थिर.। वासुदेवे भगवति नान्यद्वेदोद्वहन् रतिं॥

यम, नियम के द्वारा इन्द्रियों और वायु को जीतकर ब्रह्म मे आत्मा को लगाया। वे दिव्य सौ वर्षों तक खुत्य के समान एक जगह स्थिर रहे। भगवान वासुदेव के अतिरिक्त और किसी का ज्ञान उन्हे न था। आत्मा देह आदि का प्रकाशक है, अतएव वह उनसे भिन्न हुआ। इसी तरह वह आत्मा, अन्तःकरण की वृत्तियों का भी प्रकाशक है, अतएव उनसे भी वह भिन्न है। स्वप्न के समय अपने सिर का कटना मालूम होता है और उस समय इस बात का ज्ञान रखने वाली आत्मा उससे अर्थात् सिर कटे शरीर से पृथक् प्रतीत होती है। इसी तरह अन्तः करण की समस्त वृत्तियों को प्रकाशित करने वाली आत्मा उनसे भिन्न है। इस प्रकार भावना करते हुए पाण्ड्यराज सब पदार्थों से विरक्त हो गये। गुरुरूप साक्षात् भगवान ने जिसका निरूपण किया है, ऐसा चारों ओर प्रकाशमान विशुद्ध-ज्ञानमय-दीपक लेकर राजापाण्ड्य ने पर-ब्रह्म मे अपने को और अपने मे पर ब्रह्म को, अर्थात् 'मैं' ब्रह्म हूँ—इस प्रकार के ज्ञान प्राप्त करके और अन्त मे इसे भी अन्तःकरण की एक वृत्ति समझकर त्याग कर दिया और वे अद्वैत-स्वरूप मे लीन हो गये अर्थात् उन्होंने विदेह-मुक्ति पा ली॥ १-४२॥

वह विदर्भराज की पुत्री धर्मज्ञपति मलयध्वज की सेवा सब प्रकार के भोगों को छोड़कर करती थी। वह पतिव्रता थी। उसके वस्त्र फट गये थे। व्रत-पालन से दुर्बल हो गयी थी। सिर के बाल जटा हो गये थे। पति के पास बैठने पर वह शान्त अग्नि की शान्त शिखा के समान मालूम होती थी। वह रानी अपने पति के शरीर त्याग करने की बात नहीं जानती थी, अतएव स्थिर आसन पर बैठे हुए पति की सेवा उसने पहले के समान की। पति की सेवा करती हुई, उसने उनके पैरों में गर्मी नहीं पाई अर्थात् पैर ठडे मालूम पड़े। इससे वह यूथभ्रष्ट (झुड से पृथक्)मृगी के समान व्याकुल हुई। वह वन मे अकेली थी,कोई बान्धव नहीं था,अतएव

४०—स व्यापकतयात्मान व्यतिरिक्तयात्मनि। विद्वान्स्वप्न इवामर्श साक्षिया विरराम ह॥

४१—साक्षाद्भगवतोक्तेन गुरुणा हरिणा नृप। विशुद्धज्ञानदीपेन स्फुरता विश्वतोमुख॥

४२—परे ब्रह्मणि चात्मान पर ब्रह्म तथात्मनि। वीक्षमाणो विहायेक्षामस्मादुपरराम ह॥

४३—पतिं परमधर्मज्ञ वैदर्भी मलयध्वजं। प्रेम्णा पर्यचरद्धित्वा भोगान्सा पतिदेवता॥

४४—चीरवासा व्रतक्षामा वेणीभूत शिरोरुहा। बभावुपपतिं शाता शिखा शातमिवानल॥

४५—अजानती प्रियतम यदोपरतमगना। सुस्थिरासन मासाद्य यथापूर्व मुपाचरत्॥

४६—यदा नोपालभेताघ्रावूष्माण पत्युरर्चती। आसीत्सविग्नहृदया यूथभ्रष्टा मृगी यथा॥

४७—आत्मान शोचती दीनमबंधु विक्लवाऽश्रुभिः। स्तनावासीच्य विपिने सुस्वरं प्ररुरोद सा॥

४८—उत्तिष्ठोत्तिष्ठराजर्षे इमामुदधि मेखला। दस्युभ्यः च्च क्षत्रबन्धुभ्यो बिभ्यतीं पातुमर्हसि॥

४९—एव विलपती बाला विपिनेऽनुगतापतिं। पतिता पादयोर्भर्तुः रुदत्यश्रूण्यवर्तयत्॥

व्याकुल होकर अपने लिये शोक करने लगी और अश्रुप्रवाह से स्तनों को भिगाती हुई, मुक्तकण्ठ से रोने लगी। राजन्, उठिये, इस समुद्र से घिरी पृथ्वी की रक्षा कीजिये, यह नीच क्षत्रियों और डाकुओं से डर रही है। वन में पति के पास रहकर विलाप करती हुई, रानी पति के चरणों पर गिर पड़ी और रोने लगी। वहीं रानी ने लकड़ी की चिता बनाई, उसमें पति का शरीर रखा और चिता जलाकर उसने पति के साथ स्वय मरने का निश्चय किया। उस समय उसका कोई पुराना ज्ञानी मित्र ब्राह्मणरूप मे वहाँ आया और रोती हुई महारानी को प्रिय तथा नम्र वचनों से समझाने लगा॥ ४३-५१॥

ब्राह्मण बोला—तुम कौन हो? किसकी हो, यह कौन सो रहा है, जिसके लिये तुम शोक करती हो। तुम मुझे स्मरण करती हो कि मै तुम्हारा मित्र था? जिसके साथ तुम विचरण करती थी। क्या तुम अपने को स्मरण करती हो, जिसका मित्र अविज्ञात था। मुझे छोड़कर पृथ्वी के भोग भोगने के लिये स्थान ढूँढ़ने तुम चले गये थे। आर्य! तुम और हम दोनों मित्र है और मानसरोवर के हंस हैं, पर हजारों वर्षों तक हम लोग बिना घर के रहे। मित्र, सुखभोग की इच्छा से हमें छोड़कर तुम पृथ्वी में चले गये और वहाँ तुमने किसी स्त्री का बनाया स्थान देखा। जिसमे पाँच बाग थे, नौ द्वार थे, एक रक्षक था, तीन कमरे थे, छ कुल थे, पाँच बाजार थे, पाँच पदार्थ थे, जिसकी स्वामिनी स्त्री थी। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये इन्द्रियों के पाँच विषय ही पाँच बगीचे हैं। शरीर के नौ छिद्र, नौ द्वार हैं, प्राण रक्षक हैं, तेज, जल और अन्न कमरे हैं, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, घ्राण और मन, ये छ. कुल हैं। हाथ, पैर, वाणी, शिश्न और गुदा, ये पाँच द्वार

५०—चितिं दारुमयीं चित्वा तस्यां पत्युः कलेवर। आदीप्य चानुमरणे विलपंती मनोदधे॥

५१—तत्र पूर्वतरः कश्चित्सखा ब्राह्मण आत्मवान्। सान्त्वयन्वल्गुना साम्ना तामाह रुदतीं प्रभो॥

ब्राह्मण उवाच—

५२—कात्वं कस्यासि कोवाऽयं शयानो यस्य शोचसि। जानासि किं सखायं मां येनाग्रे विचचर्थ ह॥

५३—अपि स्मरसि चात्मान मविज्ञात सखं सखे। हित्वा मां पदमन्विच्छन्भौमभोगरतो गतः॥

५४—हंसावहं च त्वं चार्य सखायौ मानसायनौ। अभूतामंतरावौकः सहस्र परिवत्सरान्॥

५५—स त्वं विहाय मां बन्धो गतोग्राम्यमतिर्महीं। विचरन्पदमद्राक्षीः कयाचिन्निर्मितं स्त्रिया॥

५६—पञ्चाराम नवद्वार मेकपाल त्रिकोष्ठक। षट्कुल पञ्चविपण पञ्चप्रकृति स्त्रीधव॥

५७—पञ्चेंद्रियार्था आरामा द्वारः प्राणा नव प्रभो। तेजोऽबन्नानि कोष्ठानि कुलमिंद्रिय संग्रहः॥

हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, ये पाँच पदार्थ हैं और बुद्धि स्वामिनी है। जिसके वश होने से उसका पति आत्मा अपना स्वरूप भूल जाता है। तुम उस नगर में जाकर वहाँ की स्वामिनी स्त्री के अधीन हो गये और उसके साथ रमण करने लगे, जिससे अपना स्वरूप भूल गये। प्रिय मित्र, उसी स्त्री के साथ से तुम्हारी यह दुर्दशा हुई है। तुम विदर्भराज की कन्या नहीं हो, यह पाण्ड्यराज तुम्हारा पति नहीं है और उस पुरजनी के भी तुम पति नहीं हो, जिसने नौ द्वार वाले नगर मे तुम्हे रोक रखा था, यह माया मैंने ही बनायी है। यह सत्य नहीं है, पूर्वजन्म मे तुम अपने को पुरुष समझते थे और इस जन्म मे स्त्री समझते हो, यह दोनों ठीक नहीं है। हम दोनों हंस हैं। हम दोनों का यथार्थ स्वरूप देखो। जो मैं हूँ, वही तुम हो। तुम कोई दूसरे नहीं हो और जो तुम हो, वही मैं हूँ, इस पर विचार करो। विद्वान-गण हम मे और तुम मे कुछ भी भेद नहीं देखते। शरीर एक ही है, शीशा मे देखने से वह बड़ा, मोटा और सुंदर दीखता है। उसी शरीर का प्रतिविम्ब किसी की आँख मे छोटा और धुँधला दीखता है, इसी प्रकार परब्रह्म का माया मे प्रतिविम्ब पड़ने से मैं मोटा, निर्मल और स्थिर दीख पडता हूँ और उसी प्रतिविम्ब की अविद्या में पडने से तुम छोटे और मैले दिखायी पडते हो। यही हम लोगों का भेद है। इस प्रकार मानसरोवर के एक हंस ने दूसरे हंस को समझाया और ज्ञान दिया। उसने भी अपने स्वरूप में रहकर विचार किया और अपनी भूली हुई स्मृति पुनः पायी। राजन्! प्राचीनवर्हि! यह आत्मज्ञान की बाते मैंने एक कल्पित राजा के चरित्र के रूप में बतलायी हैं। क्योंकि विश्वरक्षक भगवान् परोक्षप्रिय हैं। इस तरह उपदेश देना उन्हे अच्छा लगता है॥ ५२-६२॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त

५८—विषयस्तु क्रियाशक्तिर्भूतप्रकृतिरव्यया। शक्त्यधीशः पुमांस्त्वत्र प्रविष्टो नावबुध्यते॥

५९—तस्मिंस्त्वं रामयास्पृष्टो रममाणोऽश्रुतस्मृतिः। तत्संगादीदृशीं प्राप्तो दशा पापीयसीं प्रभो॥

६०—न त्वं विदर्भदुहिता नाय वीरः सुहृत्तव। न पतिस्त्वं पुरञ्जन्यारुद्धो नवमुखे यया॥

६१—माया ह्येषा मया सृष्टा यत्पुमांसं स्त्रियं सतीं। मन्यसे नोभयं यद्वै हंसौ पश्यावयोर्गतिं॥

६२—अहं भवान्न चान्यस्त्वं त्वमेवाहं विचक्ष्व भो। न नौ पश्यन्ति कवयश्छिद्रं जातु मनागपि॥

६३—यथा पुरुष आत्मानमेकमादर्शचक्षुषोः। द्विधा भूतमवेक्षेत तथैवान्तरमावयोः॥

६४—एवं स मानसो हंसो हंसेन प्रतिबोधितः। स्वस्थस्तद्व्यभिचारेण नष्टामाप पुनः स्मृतिं॥

६५—बर्हिष्मन्नेतदध्यात्मं पारोक्ष्येण प्रदर्शितं। यत्परोक्षप्रियो देवो भगवान् विश्वभावनः॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कन्धेपुरञ्जनोपाख्यानेअष्टाविंशतितमोऽध्यायः॥ २८॥

उन्तीसवाँ अध्याय

जन्म-मरण और मोक्ष के कारण

प्राचिनवर्हि बोले—भगवान् ! आपकी बात हमारी समझ में नहीं आती। ऐसी बातें ज्ञानी समझ सकते हैं। हम तो कर्मजड़ हैं, हम कैसे समझ सकते हैं॥ १॥

नारद बोले—मैंने जिसको पुरजन राजा कहा है, उसे तुम जीव समझो। क्योंकि वही जीव अपने अदृष्ट के द्वारा अपने रहने के लिये शरीर-रूप स्थान उत्पन्न करता है। जिसमें कोई एक पैर का, कोई दो पैर का, कोई तीन पैर का, कोई चार पैर का और कोई बिना पैर का होता है। जीव का मित्र जो अविज्ञात था, उसे तुम ईश्वर समझो, क्योंकि ईश्वर को मनुष्य नाम, क्रिया और गुणों के द्वारा नहीं जान सकते। जब प्रकृति के समस्त गुणों का अर्थात् समस्त विषयभोगों का भोग करने की इच्छा पुरुष को हुई, तब उन्होंने नौ द्वार, दो हाथ और पैर वाले इस मनुष्य-शरीर को ही अच्छा समझा। वह स्त्री बुद्धि थी, जिसके कारण "मैं और मेरे" का भाव उत्पन्न होता है। जिसके साथ से मनुष्य इन्द्रियों के द्वारा विषय-भोग करता है। बुद्धि के जो दस साथी बतलाये गये हैं, वे इन्द्रिय हैं। जिनमें कई इन्द्रियों से विषयों का ज्ञान होता है और कई से केवल कर्म होता है, जिन्हें ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय कहते हैं। इंद्रियों की वृत्तियाँ, महारानी की सखियाँ बतायी गयी हैं। पाँच मस्तक वाला साँप पाँच वृत्तिवाला प्राण है। महा बलवान् सेनापति मन है जो कर्मेंद्रिय और ज्ञानेंद्रियों को

प्राचीनबर्हिरुवाच—

१—भगवंस्ते वचोऽस्माभिःन सम्यगवगम्यते। कवयस्तद्विजानन्ति न वय कर्ममोहिताः॥

नारद उवाच—

२—पुरुष पुरजन विद्या यद्व्यनक्त्यात्मनः पुरम्। एकद्वित्रिचतुष्पाद बहुपाद मपादक॥

३ योऽविज्ञाता हृतस्तस्य पुरुषस्य सखेश्वरः। यन्न विज्ञायते पुम्भिर्नामभिर्वा क्रियागुणै.॥

४—यदा जिघृक्षु पुरुषः कार्त्स्न्येन प्रकृतेर्गुणान्। नवद्वारं द्विहस्ताङ्घ्रि तत्रामनुत साध्विति॥

५—बुद्धि तु प्रमदा विद्यान्ममाहमिति यत्कृत। यामधिष्ठाय देहेऽस्मिन्पुमान्भुङ्क्तेऽक्षभिर्गुणान्॥

६—सखाय इन्द्रियगणा ज्ञान कर्मं च यत्कृतं। सख्यस्तद् वृत्तयः प्राणः पञ्च वृत्तिर्यथोरगः॥

७ बृहद्बलं मनो विद्यादुभयेंद्रिय नायकं। पञ्चाला पञ्चविषया यन्मध्ये नवखं पुर॥

८—अक्षिणी नासिके कर्णौ मुखं शिश्नगुदाविति। द्वे द्वे द्वारौ बहिर्याति यस्तदिंद्रियसंयुतः॥

वश में करने वाला है। पाँचाल देश से पाँच विषय समझना चाहिये, जिनमे नौ द्वार वाला नगर वर्तमान है। दो आँख, दो नाक, दो कान, मुंह, लिंग और गुदा ये नव द्वार हैं। इन्हीं द्वारों से इनकी इन्द्रियों के साथ जीव बाहर जाता है, अर्थात् विषय-भोग करता है। दो आँखें, दो नाक और एक मुख ये पाँच पूर्व की ओर के द्वार है। दक्षिण दिशा का द्वार दाहिना कान और उत्तर दिशा का द्वार बाँया कान है। पश्चिम की ओर के दो द्वार गुदा और लिंग हैं, जो शरीर के नीचे के भाग में हैं। खद्योता और आविर्मुखी ये दो नेत्र एक साथ हैं। विभ्राजित देश का अर्थ है रूप, जीव दोनों नेत्रों से रूप देखता है। नलिनी और नालिनी दो द्वार नासिका हैं। सौरभ देश गन्ध है, अवधूत घ्राण है। मुख्या से मुँह, विपण से वाणी, रसज्ञ से रसना इन्द्रिय समझना चाहिये। आपण से बात-चीत, बहूदन से विविध प्रकार का भोजन समझना चाहिये। पितृहू से दाहिना कान, और देवहू से बाँया कान समझना चाहिये। दक्षिण पाचाल से प्रवृत्ति-शास्त्र, और उत्तर पांचाल से निवृत्ति शास्त्र समझना चाहिये। श्रुतधर से श्रोत्र समझना चाहिये, जिनके द्वारा शास्त्र श्रवण करने से मनुष्य देवलोक और पितृलोक मे जाता है। नीचे के द्वार को आसुरी वतलाया है, वह लिंग है। दुर्मद से उपस्थ इन्द्रिय और अव्यवाय देश से मूर्खों का स्त्री-प्रसग समझना चाहिए। निर्ऋतिद्वार से गुदा समझनी चाहिये। लुब्धक से वायु इन्द्रिय और वैसस् से नरक समझना चाहिए। सदा बन्द रहने वाले द्वार हाथ और पैर को समझना चाहिए, जिनसे जीव काम करता और चलता है। अन्तःपुर से हृदय और विषूचीन से मन समझना चाहिये, जिसके गुणों से मोह, प्रसाद और हर्ष होता है।

९—अक्षिणी नासिके आस्य मिति पचपुरः कृताः। दक्षिणा दक्षिण' कर्ण उत्तराचोत्तरः स्मृतः॥

१०—पश्चिमे इत्यधो द्वारौ गुद शिश्नमिहोच्यते। खद्योताविर्मुखी चात्र नेत्रे एकत्र निर्मिते॥

रूप विभ्राजित ताभ्या विचष्टे चक्षुषेश्वरः॥

११—नलिनी नालिनी नासे गधः सौरभ उच्यते। घ्राणोऽवधूतो मुख्यास्यं विपणो वाग्रसविद्रसः॥

१२—आपणो व्यवहारोत्र चित्रमधो बहूदन। पितृहूर्दक्षिणः कर्ण उत्तरो देवहूः स्मृतः॥

१३—प्रवृत्त च निवृत्त च शास्त्र पचालसज्ञित। पितृयान देवयानं श्रोतान्छ्रुत धराद् व्रजेत्॥

१४—आसुरी मेढ्मर्वाग्द्वार्व्यवायो ग्रामिणां रतिः। उपस्थो दुर्मदः प्रोक्तो निर्ऋतिर्गुद उच्यते॥

१५—वैशसं नरक पायुर्लुब्धकोंधौ तु मे शृणु। हस्तपादौ पुमास्ताभ्या युक्तो याति करोति च॥

१६—अंतः पुरश्च हृदय विषूचीर्मन उच्यते। तत्र मोह प्रसाद वा हर्षं प्राप्नोति तद्गुणैः॥

जीव स्वयं साक्षी होने पर भी बुद्धि के द्वारा विकृत होकर बुद्धि के किये दर्शन स्पर्शन आदि को वह अपना ही किया समझता है। रथ से स्वप्नावस्था का शरीर, घोड़ा से इन्द्रियाँ समझनी चाहिए। रथ का तेज-वेग इसलिए कहा गया है कि वर्ष के वेग के समान उसकी गति कहीं रुकती नहीं। दो पहियों से पाप-पुण्य, तीन ध्वजा से त्रिगुण और पांच ध्वजा से पंच प्राण समझना चाहिए। रस्सी से मन, सारथी से बुद्धि, बैठने की जगह से हृदय, जोतने के दो स्थानों से सुख, दुःख आदि द्वन्द्व, सामान से पांच विषय, पर्दा से सात धातु समझनी चाहिए। स्वप्नावस्था में बाहर जाने की बात से मृगतृष्णा जैसे पदार्थों के लिए उद्योग करना समझना चाहिए। सेना से ग्यारह इन्द्रियाँ, शिकार से विषय-भोग समझना चाहिए। चण्डवेग से वर्ष समझना चाहिए। गन्धर्वों से दिन और गन्धर्व-स्त्रियों से रात्रि समझनी चाहिए। तीन सौ साठ गन्धर्वों से वर्ष के तीन सौ साठ दिन और तीन सौ साठ स्त्रियों से वर्ष की रात समझनी चाहिए। इन दिन और रात के भ्रमण से मनुष्य की आयु कम होती है। जिस काल-कन्या को कोई ब्याहना नहीं चाहता था, वह वृद्धावस्था है, यवनराज का अर्थ मृत्यु है, उसने लोकों का नाश करने के लिए वृद्धावस्था को अपनी बहन बनाया है। मृत्यु के साथ रहने वाले सैनिक मन और शरीर के रोग हैं। प्रज्वार से दो प्रकार का ज्वर समझना चाहिए। जो लोगों को दुःख देने में बहुत उत्साह दिखाता है। दैव, प्राणी और शरीर से उत्पन्न अनेक विधि पीड़ाओं से दुःख पाता हुआ, अज्ञान से घिरा हुआ, निर्गुण होने पर भी प्राण इन्द्रिय और मन के धर्मों को अपना धर्म समझकर विषयों के लिये ललचाता है और 'अहं' 'मम' भाव से कर्म करता हुआ सौ वर्षों तक

१७—यथा यथा विक्रियते गुणाक्तो विकरोति वा। तथा तथोपद्रष्टात्मा तद्वृत्तीरनुकार्यते ॥

१८—देहो रथस्त्विन्द्रियाश्वः संवत्सररयोऽगतिः। द्विकर्मचक्रस्त्रिगुणध्वजः पंचासुबन्धुरः ॥

१९—मनोरश्मिर्बुद्धिसूतो हृन्नीडो द्वंद्वकूबरः। पंचेंद्रियार्थप्रक्षेपः सप्तधातुवरूथकः ॥

२०—आकूतिर्विक्रमो बाह्यो मृगतृष्णां प्रधावति। एकादशेन्द्रियचमूः पंचसूनाविनोदकृत् ॥

संवत्सरश्चण्डवेगः कालो येनोपलक्षितः ॥

२१—तस्याहानीह गंधर्वा गंधर्व्यो रात्रयः स्मृताः। हरंत्यायुः परिक्रान्त्या षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥

२२—कालकन्या जरा साक्षाल्लोकस्तां नाभिनंदति। स्वसारं जगृहे मृत्युः क्षयाय यवनेश्वरः ॥

२३—आधयो व्याधयस्तस्य सैनिका यवनाश्चराः। भूतोपसर्गाशुरयः प्रज्वारो द्विविधो ज्वरः ॥

२४—एवं बहुविधैर्दुःखैर्दैवभूतात्मसंभवैः। क्लिश्यमानः शतं वर्षं देहे देही तमोवृतः ॥

२५—प्राणेंद्रियमनोधर्मानात्मन्यध्यस्य निर्गुणः। शेते कामलवान्ध्यायन्ममाहमिति कर्मकृत् ॥

शरीर में रहता है। परम गुरु भगवान का ज्ञान न होने के कारण पुरुष, प्रकृति के गुणों में आसक्त हो जाता है, जिस कारण स्वयं उदासीन न होने पर भी इसे जन्म धारण करना पड़ता है। जैसा कर्म करता है, वैसा ही इसे जन्म भी धारण करना पड़ता है। सात्विक, राजसिक और तामसिक कर्म के अनुसार यह भिन्न २ योनियों में जाता है। कभी २ सात्विक कर्म करने से ज्ञानप्रधान लोक इसको मिलता है। राजसिक कर्मों के द्वारा ऐसे लोक पाता है, जहाँ अधिक परिश्रम के काम करने पड़ते हैं और अन्त में दुःख उठाना पड़ता है। तामसिक कर्मों से अज्ञान और शोकपूर्ण लोक पाता है। यह जीव कभी पुरुष, कभी स्त्री, कभी नपुंसक कभी मनुष्य, कभी देवता और कभी पशु-पक्षी का जन्म लेता है। जैसा कर्म होता है, वैसा ही जन्म भी मिलता है। जिस प्रकार भूखा कुत्ता दीन होकर घर-घर घूमता है और कहीं डण्डा और कहीं भात पाता है, इसी प्रकार विषयी जीव स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्ष में छोटे-बड़े रूप धारण करता और अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख भोगता है। दुःख दूर करने का कोई भी उपाय नहीं है। जीव का छुटकारा दुःखों से नहीं हो सकता। यदि कोई उपाय हो भी तो दैव, भूत और अपने कारण होने वाले दुःखों में से कोई एक भी दुख दूर नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार माथे पर मोट ढोने वाला पुरुष उस मोट को माथे से उतार कर कन्धे पर रखता है और इस प्रकार वह कुछ हलका होना चाहता है। दुःखों के दूर करने के उपाय भी ऐसे ही है। दुःख के मूल कर्म हैं, अतएव एक कर्म करने से दूसरे कर्म का नाश नहीं हो सकता। क्योंकि कर्म, अविद्या से उत्पन्न है। ज्ञान हीन और वासनायुक्त कर्म का नाश नहीं हो सकता। अतएव ऐसे कर्म

२६—यदात्मानमविज्ञाय भगवंतं परंगुरं। पुरुषस्तु विषज्जेत गुणेषु प्रकृतेः स्वदृक्॥

२७—गुणाभिमानी स तदा कर्माणि कुरुतेवशः। शुक्लं कृष्णं लोहितंवा यथाकर्माभिजायते॥

२८—शुक्लात्प्रकाशभूयिष्ठान् लोकानाप्नोति कर्हिचित्। दुःखोदर्कान् क्रियायासांस्तमः शोकोत्कटान् क्वचित्॥

२९—क्वचित्पुमान् क्वचिच्चस्त्री क्वचिन्नोभय मन्धधीः, देवो मनुष्यस्तिर्यग्वा यथाकर्मगुणं भवः॥

३०—क्षुत्परीतो यथादीनः सारमेयो गृहंगृहं। चरन्विंदति यद्दिष्टं दण्डमोदनमेव वा॥

३१—तथा कामाशयो जीव उच्चावच पथाभ्रमन्। उपर्यधो वामध्ये वा याति दिष्टं प्रियाप्रियं॥

३२—दुःखेष्वेकतरेणापि दैवभूतात्महेतुषु। जीवस्य न व्यवच्छेदः स्याच्चेत्तत्तत्प्रतिक्रिया॥

३३—यथा हिपुरुषो भारं शिरसा गुरुमुद्वहन्। तं स्कंधेन स आधत्ते तथा सर्वाः प्रतिक्रियाः॥

३४—नैकांततः प्रतीकारः कर्मणां कर्मकेवलं। द्वयं ह्यविद्योपसृतं स्वप्ने स्वप्न इवानघ॥

दूसरे कर्मों को हटा नहीं सकते। जिस तरह एक स्वप्न से दूसरे स्वप्न का भय दूर नहीं होता। संसार असत्य है, पर मन जब तक विषयों का ध्यान करता रहता है, तब तक जन्म-मरण होता ही रहता है। जिस प्रकार स्वप्न सत्य नहीं है, पर मन की स्वप्नावस्था जब तक वर्तमान रहती है, तबतक वह रहता ही है। आत्मज्ञान ही परमपुरुषार्थ है। उसी आत्मा के अज्ञान से यह अनर्थ परम्परा ससांर-प्रवाह चलता है। भगवान् की परम भक्ति से ही,इसका विनाश होता है। भगवान् वासुदेव में विधि पूर्वक की गयी भक्ति से वैराग्य और ज्ञान उत्पन्न होते हैं। प्राचीनवर्हि! भक्तियोग का मूल भगवान् की कथा है। अतएव श्रद्धापूर्वक भगवान् की कथा सुनने और सदा उसका मनन करने से शीघ्र ही भक्ति प्राप्त होती है। राजन्, निर्मल अन्तःकरण वाले भगवान के गुणों के श्रवण और वर्णन मे आसक्त वैष्णव जहाँ हों, वहाँ महात्माओं के मुख से भगवत् चरितामृत की नदियाँ चारों ओर प्रवाहित होती हैं। इन नदियों का जो मनुष्य सतृष्ण और सावधान होकर कानों से पान करते हैं, वे रसिक भूख, प्यास, भय, शोक और मोह से दु.ख नहीं पाते। मनुष्य भूख, प्यास आदि स्वाभाविक दोषों से सदा पीडित रहता है। अतएव भगवान् के कथामृत में उसका अनुराग नहीं होता। प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्मा, भगवान् शिव,दक्ष,मनु,सनकादिक नैष्ठिक ब्रह्मचारी, मरीची, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ और मैं नारद,ये सब ब्रह्मवादी हैं और वेद के ज्ञाता हैं। पर ये भी तपस्या, विद्या और समाधि के द्वारा सर्वसाक्षी भगवान् का पता लगाते रहते हैं, क्योंकि अभीतक उनका यथार्थ पता नहीं लगा है। क्योंकि

३५—अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते। मनसा लिंगरूपेण स्वप्ने विचरतो यथा॥

३६—अथात्मनोऽर्थभूतस्य यतोनर्थपरंपरा। संसृतिस्तद्व्यवच्छेदो भक्त्या परमया गुरौ॥

३७—वासुदेवे भगवति भक्तियोगः समाहितः। सध्रीचीनेन वैराग्य ज्ञानं च जनयिष्यति॥

३८—सोऽचिरादेव राजर्षे स्यादच्युतकथाश्रयः। शृण्वतः श्रद्दधानस्य नित्यदा स्यादधीयतः॥

३९—यत्र भागवता राजन्साधवो विशदाशयाः। भगवद्गुणानुकथन श्रवणव्यग्रचेतसः॥

४०—तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्र पीयूषशेषसरित. परितःस्रवंति।

ता ये पिबन्त्यवितृषो नृपगाढकर्णैः तान्नस्पृशंत्यशनतृट् भयशोकमोहाः॥

४१—एतैरुपद्रुतो नित्य जीवलोकः स्वभावजैः। न करोति हरेर्नूनं कथाऽमृतनिधौ रतिं॥

४२—प्रजापतिपतिः साक्षाद्भगवान् गिरिशो मनुः। दक्षादयः प्रजाध्यक्षा नैष्ठिकाः सनकादयः॥

४३—मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। भृगुर्वसिष्ठ इत्येते मदंता ब्रह्मवादिनः॥

४४—अद्यापि वाचस्पतयस्तपो विद्यासमाधिभिः। पश्यन्तोऽपि न पश्यंति पश्यंतं परमेश्वरं॥

शब्दब्रह्म वेद बहुत बड़ा है। समस्त का अध्ययन कठिन है और वेद के मन्त्रों में भिन्न-भिन्न देवताओं के अभिप्राय से विशेषणों का प्रयोग होने के कारण ठीक-ठीक उनसे ब्रह्म का ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि वेदमंत्रों के द्वारा भगवान् के कर्मों का ही वर्णन है। जो भगवान् का दर्शन अपनी आत्मा में करता है और जिस पर भगवान् कृपा करते हैं, वह लोक-व्यवहार और कर्ममार्ग में श्रद्धा नहीं रखता, इनसे अलग हो जाता है। अतएव बर्हिषद्, ये कर्म पुरुषार्थ के समान प्रतीत होते हैं, पर ये पुरुषार्थ नहीं! अज्ञान से इन्हे पुरुषार्थ मत समझो! ये कानों से सुनाई भर पड़ते हैं, इनका कोई यथार्थ अर्थ नहीं है। वे उस लोक को नही जानते, जहाँ भगवान् का निवास है, अतएव धूआँ लगने के कारण कर्म-वादियों की बुद्धि मलीन हो गयी है। वे वेद का अर्थ नहीं समझते। अतएव कहते हैं कि वेदों मे कर्म का उपदेश है। राजन्! पूरब की ओर आगे बढ़ करके कुशों से तुमने समस्त पृथ्वी मण्डल को पाट दिया है। अनेक पशुओं के वध करने से तुम अपने को सर्वश्रेष्ठ यज्ञ करने वाला समझने लगे हो, पर तुम्हे श्रेष्ठकर्म का ज्ञान नहीं है। कर्म वह है, जिससे भगवान प्रसन्न हों और जिससे भगवान् में चित्त लगे, वही विद्या है। भगवान् शरीर धारियों की आत्मा, स्वतन्त्र कारण और ईश्वर हैं। उनके चरण शरण हैं। उनसे मनुष्यों का कल्याण होता है। वे हम लोगों के प्रिय आत्मा है। उनके भजने से किसी प्रकार का थोड़ा भी भय नहीं होता। जो यह जानता है,वही विद्वान् है, और जो विद्वान् है, वही गुरु है, वही भगवान् है। ॥ २-५१ ॥

नारद बोले—राजन्! आपके प्रश्न का मैंने उत्तर दिया, आपने कहे इतिहास का अर्थ

४५—शब्दब्रह्मणि दुष्पारे चरत उरु विस्तरे। मन्त्रलिंगैर्व्यवच्छिन्नं भजतो न विदुः परं ॥

४६—यदायमनुगृह्णाति भगवानात्म भावितः। स जहाति मतिं लोके वेदेच परिनिष्ठिता ॥

४७—तस्मात् कर्मसु बर्हिष्मन्नज्ञानादर्थकाशिषु। मार्थदृष्टिं कथाः श्रोत्रस्पर्शिष्वस्पृष्टवस्तुषु ॥

४८—स्वलोक न विदुस्तेवै यत्र देवो जनार्दनः। आहुर्धूम्रधियो वेद सकर्मकमतद्विदः ॥

४९—आस्तीर्यदर्भैः प्रागग्रैः कार्त्स्न्येन क्षितिमण्डल। स्तब्धो बृहद्वधान्मानी कर्मनावैषियत्पर ॥
तत्कर्महरितोषं यत्सा विद्यातन्मतिर्यया ॥

५०—हरिर्देहभृतामात्मा स्वयं प्रकृतिरीश्वरः। तत्पादमूलं शरणं यतः क्षेमो नृणामिह ॥

५१—स वै प्रियतमश्चात्मा यतो न भयमण्वपि। इति वेद सवै विद्वान् यो विद्वान् स गुरुर्हरिः ॥

नारद उवाच—

बतलाया। इस सम्बन्ध में एक अत्यन्त गुप्त और निश्चित बात आप हमसे सुनें। छोटे २ घासों को चरने वाला एक मृग फुलवाडी मे स्त्री के साथ मिला और उसी मे आसक्त हो गया। उसके कान भ्रमरों के गुञ्जार मे लग रहे थे। आगे फाड़ खाने वाला भेडिया खड़ा था। उसकी ओर न देखकर वह आगे चला। पीछे से बहेलिये ने बाण मारकर छेद दिया। राजन्! ऐसे मृग को आप ढूढ दीजिए। वह मृग, राजन्! आप स्वय हैं। क्योंकि फूल के समान परिमाण में नीरस होने वाली, स्त्रियों के साथ, पुष्पों के मधुर गंध के तुल्य छोटे काम्य कर्मों के फल स्वरूप जिह्वा,उपस्थ आदि के छोटे-छोटे सुखों को ढूँढते रहते हैं। स्त्रियों के साथ मिलकर उन्हींमें आसक्त हो, जाते हैं,भ्रमर-गुजन के समान निरर्थक स्त्रियों के मनोहर वचनों में तुम्हारे कान लगे रहते हैं, आगे भेड़िये के समान दिन, पक्ष, मास आदि काल के विभाग तुम्हारी आयु हर रहे हैं। पर उनकी ओर ध्यान न देकर घर मे विहार करते रहते हो और चुपचाप तुम्हारे पीछे लगा यह काल छिपे बाणों से तुम्हें छेदता है। अतएव इस बाण से तुम्हारा हृदय छिद गया है। अतएव राजन्, तुम्हारा हृदय भिन्न हो गया है। तुम्हें अपने लिए विचार करना चाहिये। राजन्, ऊपर कहे मृग के रूप मे आपका वर्णन किया गया है। अतएव आप अपने चित्त को हृदय मे स्थिर कीजिए। बाहरी वृत्तियों को हृदय मे न लाइए। इस गृहस्थाश्रम का त्याग कीजिए, जिसमें बुरे लोगों की अधिकता है। जीवलोक के शरण भगवान को प्रसन्न करो और पुन सब बन्धनों से छूट जाओ॥ ५२-५५॥

राजा प्राचीनबर्हि बोले—ब्रह्मन्, आपने जो कहा—वह मैंने सुना और समझा। यह बात

५२—प्रश्न एव हि सञ्छिन्नो भवतः पुरुषर्षभ। अत्र मे वद नो गुह्य निशामय सुनिश्चितं॥

५३—क्षुद्र चर सुमनसा शरणे मिथित्वा रक्तषडङ्घ्रिगणसामसुलुब्धकर्णं।

अग्रे वृकानसुतृपोऽविगणय्य यात पृष्ठे मृगं मृगयलुब्धकबाणभिन्न॥

५४—सुमन : समधर्माणा स्त्रीणां शरणआश्रमे पुष्पमधुगन्धवत्क्षुद्रतम काम्यकर्म विपाकज कामसुखलव जैह्व्योपस्थ्यादिविचिन्वतमिथुनीभूयतदभिनिवेशितमनस षडङ्घ्रिगणसामगीत वदति मनोहर वनितादि जनालापे ष्वतितरामतिप्रलोभितकर्णमग्रेवृकयूथवदात्मन आयुर्हरतोऽहोरात्रा तान्काललव विशेषानविगणय्यगृहेषु विहरत पृष्ठत एव परोक्षमनुप्रवृत्तो लुब्धकः कृतान्तोऽनःशरेण यमिहपराविध्यति तमिममात्मानमहोराजन् भिन्नहृदय द्रष्टुमर्हसीति॥

५५—सत्व विचक्ष्व मृगचेष्टित मात्मनोऽत श्चित्त नियच्छहृदि कर्णधुनीं च चित्ते।

जह्यगनाश्रममसत्तमयूथगाथ प्रीणीहि हसशरण विरम क्रमेण॥

राजोवाच—

मेरे उपाध्याय नहीं जानते थे। यदि वे जानते होते तो अवश्य मुझ से कहते। इस विषय में उपाध्यायों के उपदेश से जो सन्देह मुझे उत्पन्न हो गया था, उसे आपने दूर कर दिया। पर एक और संशय उत्पन्न हो गया है, जिसमें इन्द्रिया नहीं पहुंचती है अतएव ऋषि भी मोहित हो जाते हैं, उत्तर नहीं दे सकते। मनुष्य जिस देह से कर्म करता है उसको यहीं छोड़ देता है और दूसरे लोक में, दूसरे शरीर से कर्म-फलों का उपभोग करता है। यह वेदज्ञों का कहना है। यह कैसे हो सकता है ? एक के किये कर्म का फल दूसरे को कैसे हो सकता है ! दूसरी बात यह है कि जो वैदिक कर्म किये जाते हैं वे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, अतएव कालान्तर में उनका फल कैसे मिलता है ? ॥ ५६-५९ ॥

नारद बोले—जिस शरीर से इस लोक में मनुष्य कर्म करता है, उसी शरीर से उस लोक मे उसका फल भोगता है। क्योंकि दूसरे लोक मे भी मन के सहित सूक्ष्म शरीर वर्तमान रहता है और वही कर्ता है। स्थूल देह न तो कर्ता है और न भोक्ता। स्वप्नावस्था मे इस स्थूल को छोडकर उसी के समान अथवा दूसरी तरह के शरीर से अपने कर्मों का फल भोगता है। क्योंकि कर्म संस्कार-रूप से मन मे वर्तमान रहता है, इसी प्रकार लोकान्तर में भी मन में वर्तमान संस्कार के द्वारा किये कर्मों का फल वह भोगता है। 'यह मेरे पुत्र हैं' 'यह मैं हूँ ब्राह्मण' 'यह मैं दुर्बल हूँ' इस प्रकार पुरुष मन के द्वारा जिस शरीर में रह कर कर्म सम्पन्न करेगा, वह कर्म उस शरीर मे रहने वाले पुरुष का होगा। पुरुष ही उसके फलाफल का अधिकारी होगा। अतएव पुनर्जन्म आदि पुरुष का ही होता है। ज्ञान और कर्मेन्द्रियों की चेष्टा के द्वारा चित्त का अनुमान होता है, अर्थात् भिन्न-भिन्न इन्द्रियों का एक ही बार विषयों से

५६—श्रुतमन्वीक्षितं ब्रह्मन् भगवान्यदभाषत। नैतज्जानन्त्युपाध्यायाः किं न ब्रूयुर्विदुर्यदि ॥

५७—संशयोऽत्र तु मे विप्र सञ्छिन्नस्तत्कृतो महान्। ऋषयोऽपि हि मुह्यन्ति यत्रनेंद्रियवृत्तयः ॥

५८—कर्माण्यारभते येन पुमानिह विहाय त। अमुत्रान्येन देहेन जुष्टानि स यदश्नुते ॥

५९—इति वेदविदा वादः श्रूयते तत्र तत्र ह। कर्मयत् क्रियते प्रोक्त परोक्ष न प्रकाशते ॥

नारद उवाच—

६०—येनैवारभते कर्म तेनैवामुत्र तत्पुमान्। भुंक्ते ह्यव्यवधानेन लिंगेन मनसा स्वय ॥

६१—शयान मिममुत्सृज्य श्वसतं पुरुषो यथा। कर्मात्मन्याहित भुङ्क्ते तादृशेनेतरेण वा ॥

६२—ममैते मनसा यद्यदमावह मिति ब्रुवन्। गृह्णीयात्तत्पुमान् राद्धं कर्म येन पुनर्भवः ॥

६३—यथाऽनुमीयते चित्त मुभयैरिंद्रिये हितैः। एवं प्राग्देहज कर्म लक्ष्यते चित्तवृत्तिभिः ॥

सम्बन्ध होने पर भी सबका ज्ञान एक साथ नहीं होता, इससे समझा जाता है कि विषय और इन्द्रिय के सम्बन्ध होने पर भी एक तीसरा कोई पदार्थ है जिसके सम्बन्ध से ज्ञान होता है और वह चित्त है। इसी प्रकार चित्त-वृत्तियों के द्वारा भी पूर्व देह के किये कर्मों का ज्ञान होता है। अतएव ऐसा समझा जाता है कि पूर्व देह के कर्म संस्कार रूप से मन मे वर्तमान रहते हैं। जिस देह से कहीं भी जिस विषय का अनुभव नहीं हुआ है, देखा और सुना नहीं गया है, वह पदार्थ भी जिस रूप में और जिस तरह का रहता है, उसी रूप मे मन के द्वारा ज्ञात हो जाता है। अतएव राजन्! पूर्व देह के और इस देह के एक मन होने का और पूर्व देह के कर्मों का संस्कार इस देह के मन में भी वर्तमान रहता है। इस बात को सत्य समझो। क्योंकि बिना जानी-सुनी हुई बात मन मे कैसे आ सकती है। मन के द्वारा ही मनुष्य के भूत और भावी शरीर तथा भावी मंगल की बाते कही जा सकती हैं? कभी-कभी स्वप्नावस्था में अदृष्ट और अश्रुत विषय भी दिखाई पड़ते हैं। इससे ऐसा समझना चाहिए कि देश, काल और क्रिया के कारण वैसा होता है। पर्वत के शिखर पर समुद्र की लहरियाँ दिखाई पड़ीं, दिन में नक्षत्र दीख पड़े, इसी तरह की असम्भव बातें दिखाई पड़ सकती हैं, और पड़ती हैं। जिसका अनुभव पहिले से किसीको नहीं होता, पर इनका भी किसी रूप में ज्ञान रहता ही है। मनुष्य ने समुद्र को देखा है, पर्वत को देखा है। पर निद्रा के कारण सम्भव, असम्भव का विचार न रह जाने से वह शिखर पर समुद्र समझने लगता है। मन में सभी विषय क्रम से एक के बाद दूसरे आते-जाते रहते हैं, क्योंकि सभी के मन है और जिसके मन हैं, उसमे विषयों का ज्ञान होना अनिवार्य है। अतएव ऐसी कोई भी बात नहीं हो सकती, जिसका अनुभव पहले न हुआ हो। जब मन सत्व-परायण हो जाता है और भगवान का ध्यान करने लगता है, उस समय भगवान् के ध्यान के

६४—नानुभूतं क्वचानेन देहेनादृष्टमश्रुत। कदाचिदुपलभ्येत यद्रूप यादृगात्मनि ॥

६५—तेनास्य तादृश राजन् लिंगिनो देहसंभव। श्रद्धस्वाननुभूतोऽर्थो न मनः स्प्रष्टुमर्हति ॥

६६—मन एव मनुष्य स्य पूर्वरूपाणि शंसति। भविष्यतश्च भद्र ते तथैव न भविष्यतः ॥

६७—अदृष्टमश्रुत चात्र क्वचिन्मनसि दृश्यते। यथा तथाऽनुमतव्यं देशकाल क्रियाश्रयं ॥

६८—सर्वे क्रमानुरोधेन मनसींद्रिय गोचरा.। आयाति वर्गशो याति सर्वे समनसो जनाः ॥

६९—सत्यैकनिष्ठे मनसि भगवत्पार्श्व वर्तिनि। तमश्चद्र मसीवेद मुपरज्यावभासते ॥

७०—नाहं ममेति भावोऽय पुरुषेव्यवधीयते। यावद् बुद्धिमनोक्षार्थ गुणव्यूहो ह्यनादिमान् ॥

७१—सुप्ति मूर्छोपतापेषु प्राणायन विघातत.। नेहतेऽहमिति ज्ञान मृत्युप्रज्वारयोरपि ॥

७२—गर्भे बाल्येऽप्यपौष्कल्यादेकादश विध तदा। लिंग न दृश्यते यूनः कुह्वां चन्द्रमसो यथा ॥

७३—अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते। ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥

साथ उनके विराट् शरीर का, उनके अनेक विधि चरितों का, उसे एक ही बार ज्ञान होता है। उस समय ध्यान करने वाले मन का समस्त विश्व से सम्बन्ध हो जाता है। जिस प्रकार चन्द्रमा में अन्धकार के सम्बन्ध से राहु का भान होने लगता है। 'मैं' और 'मेरा' यह भाव पुरुष से तब तक दूर नहीं होता है, जब तक बुद्धि, मन, इन्द्रिय, इन्द्रियों के विषय और लिंग शरीर ये वर्तमान रहते हैं। अतएव यह समझना कि लिंग शरीर को कर्म-फल भोग के लिए स्थूल शरीर की आवश्यकता है, यदि उसे स्थूल शरीर न मिला तो कर्म-फल-भोग भी उसे करना न पड़ेगा और मुक्ति हो जायगी, पर यह बात नहीं है। कर्मफल भोगने के लिये सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर धारण करना आवश्यक है। स्वप्न, मूर्छा, प्रिय-वियोग का दुःख, मृत्यु का दुःख, ज्वर आदि का दुःख, इन समयों मे इन्द्रियाँ अपूर्ण रहती हैं। इनकी व्याकुलता बढ़ जाती है, अतएव स्थूल देह मैं हूँ आदि ज्ञान प्रकाशित नहीं होता, किन्तु सूक्ष्म रूप से उस समय भी वर्तमान रहता है। युवा अवस्था से जिस प्रकार ग्यारह इन्द्रियों के द्वारा स्थूल देहाभिमान जैसा प्रकाशित होता है, वैसा गर्भ में, बाल्यावस्था मे प्रकाशित नहीं होता, क्योंकि उस समय इन्द्रियाँ अपूर्ण रहती है, जिस प्रकार अमावस्या के दिन चन्द्रमा का कोई चिन्ह स्पष्ट दिखायी नहीं पड़ता। ससार के असत्य होने पर भी जन्म-मरण होता ही रहता है, इसका कारण है, पुरुष का विषयों का ध्यान करना। जिस प्रकार स्वप्नावस्था मे ध्यान से ही भय उत्पन्न होता है। पंचतन्मात्रा, तीन गुण, सोलह विकार (पांच भूत और मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ) इनके द्वारा विस्तृत लिंग शरीर है। उसमें जो चैतन्य है, भगवान् की

७४—एव पञ्चविध लिंग त्रिवृत् षोडश विस्तृत। एष चेतनयायुक्तो जीव इत्यभिधीयते ॥

७५—अनेन पुरुषो देहानुपादत्ते विमुंचति। हर्ष शोक भय दुःखंसुखं चानेन विंदति ॥

७६—यथा तृणजलूकेय नापयात्यपयाति च। न त्यजेन्म्रियमाणोपि प्राग्देहाभिमतिं जनः ॥

७७—यावदन्य न विंदेत व्यवधानेन कर्मणाम्। मन एव मनुष्येंद्र भूताना भवभावनम् ॥

७८—यदाऽक्षैश्चरितान् ध्यायन्कर्माण्याचिनुते सकृत्। सति कर्मण्यविद्याया बधः कर्मण्यनात्मनः ॥

७९—अतस्तदपवादार्थं भज सर्वात्मना हरिम्। पश्यस्तदात्मक विश्वं स्थित्युत्पत्त्यप्ययायतः ॥

५—५

चित् शक्ति है, वही जीव है। इसी जीव के कारण लिंग शरीर के साथ अनेक स्थूल शरीरों को धारण करता है और अनेक शरीरों को छोड़ देता है। हर्ष, शोक, भय, दु ख सुख आदि इस लिंग शरीर से ही जीव भोगता है। जिस प्रकार तृणजलूका जब तक दूसरा तृण नहीं पकड़ लेती तब तक पहले वाले तृण को नहीं छोड़ती, उसी प्रकार यह लिंग शरीर जब तक दूसरा शरीर नहीं पा लेता, तब तक वर्तमान स्थूल शरीर का अभिमान नहीं छोड़ता। जिन कर्मों के द्वारा पुरुष को यह स्थूल शरीर मिला है, उन कर्मों के समाप्त होने पर जब तक उसे दूसरा शरीर नहीं मिलता, तब तक वह पूर्व शरीर को ही अपना शरीर समझता है। राजन्! मनुष्य का मन ही संसार का हेतु है। इन्द्रियों के द्वारा किये कर्मों का बार २ ध्यान करने से पुरुष कर्मों का संग्रह करता है। पुनः-पुनः कर्म आरम्भ करता है, क्योंकि कर्मो से ही अविद्या होती है और अविद्या से आत्मा देह आदि के कर्मों में बँध जाता है। अतएव इन सब बन्धनों को हटाने के लिए सर्वात्मना भगवान् का भजन करो। समस्त संसार को भगवद्रूप देखो। क्योंकि उन्हींसे इसकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश होता है॥ ६०-७९॥

मैत्रेय बोले—विष्णुभक्तों में प्रधान भगवान् नारद इस प्रकार जीव और ईश्वर का स्वरूप बतलाकर तथा राजा से आज्ञा लेकर वहाँ से सिद्धलोक को चले गये। राजर्षि प्राचीन-बर्हि प्रजा की रक्षा का भार पुत्रों को देकर तपस्या करने के लिए कपिलाश्रम चले गये। वहाँ वीर राजा स्थिर चित्त होकर विषयों में आसक्ति छोड़कर भगवान् के चरण-कमलों का भक्ति-पूर्वक भजन करते २ भगवान् स्वरूप हो गये,मुक्त हो गये। विदुर,नारद कथित अर्थात् ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी इस गूढ़ कथा को जो सुनावेगा अथवा सुनेगा, उसकी लिंग शरीर से मुक्ति हो जायगी। भगवान् की कीर्ति से जगत को पवित्र करने वाले, अन्त करण को शुद्ध और

मैत्रेय उवाच—

८०—भागवतमुख्यो भगवान्नारदो हंसयोर्गतिम्। प्रदर्श्य ह्यमुमामन्त्र्य सिद्धलोकं ततोऽगमत्॥

८१—प्राचीनबर्हीं राजर्षिः प्रजासर्गाभिरक्षणे। आदिश्य पुत्रानगमत्तपसे कपिलाश्रमम्॥

८२—तत्रैकाग्रमना वीरो गोविंदचरणाम्बुजम्। विमुक्तसंगोऽनुभजन्भक्त्या तत्साम्यतामगात्॥

८३—एतदध्यात्मपारोक्ष्यं गीतं देवर्षिणाऽनघ। यः श्रावयेद्यः शृणुयात् स लिंगेन विमुच्यते॥

८४—एतन्मुकुन्दयशसा भुवनं पुनानं देवर्षिवर्यमुखनिःसृतमात्मशौचं।

यः कीर्त्यमानमधिगच्छति पारमेष्ठ्यं नास्मिन्भवे भ्रमति मुक्तसमस्तबंधः॥

सर्वश्रेष्ठ स्थान दिलाने वाले देवर्षि नारद के मुख से इस कथा को जो मनुष्य सुनेगा, उसके सब बन्धन नष्ट हो जाँयगे और संसार में भटकना नहीं पड़ेगा। यह अद्भुत गुप्त ब्रह्मज्ञान का तत्व तुमने हमसे जाना, इससे देहाभिमान नष्ट हो जाता है और परलोक में कर्मफल भोगने का सन्देह भी मिट जाता है॥ ८०-८५॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त

तीसवाँ अध्याय

प्रचेतसों का ब्याह और राज्य-भोग

विदुर बोले—ब्रह्मन्, राजा प्राचीनबर्हि के पुत्र प्रचेतसों का परिचय आपने दिया है; उन लोगों ने रुद्र के उपदेश से भगवान को प्रसन्न करके कौन सी सिद्धि पायी? हे बृहस्पति के शिष्य मैत्रेय, मोक्ष के स्वामी भगवान् विष्णु के प्रिय महादेव का दर्शन अनायास पाकर प्रचेतसों ने मुक्ति अवश्य पायी होगी। उसके पहले इस लोक और परलोक में उन लोगों ने क्या किया, यह बतलाइए? ॥ १-२ ॥

८५—अध्यात्म पारोक्ष्य मिदं मयाऽधिगत मद्भुत। एव स्त्रियाश्रमः पुंसश्छिन्नोऽमुत्र च संशयः॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कंधेविदुरमैत्रेयसंवादेप्राचीनबर्हिर्नारदसंवादोनामएकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

—— ❀ ——

विदुर उवाच—

१—ये त्वयाऽभिहिता ब्रह्मन्सुता प्राचीनबर्हिषः। ते रुद्रगीतेन हरिं सिद्धिमापुः प्रतोष्यकाम्॥

२—किं बार्हस्पत्ये परत्रवाऽथ कैवल्यनाथप्रियपार्श्ववर्तिनः।

आसाद्य देव गिरिशं यदृच्छया प्रापुः पर नूनमथप्रचेतसः॥

मैत्रेय बोले—पिता के आज्ञा-पालन की इच्छा रखने वाले प्रचेतसों ने समुद्र मे जाकर जप और तपस्या के द्वारा भगवान को प्रसन्न किया। दस हजार वर्षों के बाद सनातन पुरुष अपनी शान्तदीप्ति से उनके कष्टों को दूर करने को प्रकट हुए, वे गरुड पर बैठे हुए थे, मानों मेरु पर्वत पर मेघ हो। पीत वस्त्र पहने हुए और गले मे मणि धारण किये हुए थे, अपने प्रकाश से दिशाओं का अन्धकार दूर कर रहे थे। प्रकाशमान सुवर्ण-भूषणों से उनके गाल और मुख प्रकाशित हो रहे थे। किरीट चमक रहा था। भुजाओं में आठ अस्त्र शोभ रहे थे। मुनि और देवगण सेवा कर रहे थे। गरुड किन्नरों के समान उनकी कीर्ति का गान कर रहे थे। मोटे विशाल आठ हाथों के बीच मे, अर्थात् वक्ष स्थल मे विराजमान, लक्ष्मी की शोभा से बराबरी करने वाली वनमाला शोभ रही थी। वे आदिपुरुष दयालुदृष्टि से शरण मे आये प्रचेतसों को देखकर मेघगम्भीर वाणी से इस प्रकार बोले ॥ ३-७ ॥

श्री भगवान बोले—राजपुत्रों, आप लोग मुझसे वर मागो, आपका कल्याण हो। आप सब लोग परस्पर सौहार्द के कारण एक ही धर्म के पालन करने वाले हैं। आपके सौहार्द्र से मैं प्रसन्न हुआ हूं। जो पुरुष प्रतिदिन प्रात. और सन्ध्याकाल आप लोगों का स्मरण करेगा, उसके भाइयों मे परस्पर एकता बनी रहेगी और उसका प्राणियों पर प्रेम होगा। जो लोग रुद्र के बतलाये स्तोत्र से प्रातः और सायकाल सावधान होकर मेरी स्तुति करेंगे, उनको इच्छित वर

मैत्रेय उवाच—

३—प्रचेतसोऽन्तरुदधौ पितुरादेशकारिणः। जपयज्ञेन तपसा पुरञ्जनमतोषयन् ॥

४—दशवर्षसहस्रान्ते पुरुषस्तु सनातनः। तेषामाविरभूत्कृच्छ्रं शान्तेन शमयन् रुचा ॥

५—सुपर्णस्कन्धमारूढो मेरुशृङ्गमिवाम्बुदः। पीतवासा मणिग्रीवः कुर्वन्वितिमिरा दिशः ॥

६—काशिष्णुना कनकवर्णविभूषणेन भ्राजत्कपोलवदनो विलसत्किरीटः।

अष्टायुधैरनुचरैर्मुनिभिः सुरेन्द्रैरासेवितो गरुडकिन्नरगीतकीर्तिः ॥

७—पीनायताष्टभुजमण्डलमध्यलक्ष्म्या स्पर्धच्छ्रियापरिवृतो वनमालयाऽऽद्यः।

बर्हिष्मतः पुरुष आह सुतान्प्रपन्नान्पर्जन्यनादरुतया सघृणावलोकः ॥

श्रीभगवानुवाच—

८—वरं वृणीध्वं भद्रं वो यूयं मे नृपनन्दनाः। सौहार्देनापृथग्धर्मास्तुष्टोऽहं सौहृदेन वः ॥

९—योऽनुस्मरति सन्ध्यायां युष्माननुदिनं नरः। तस्य भ्रातृष्वात्मसाम्यं तथा भूतेषु सौहृदं ॥

और सद्बुद्धि दूंगा। आप लोगों ने पिता की आज्ञा प्रसन्न होकर मानी है, इससे आपकी पवित्र कीर्ति त्रिलोक मे फैलेगी। आप लोगों के एक प्रसिद्ध पुत्र होगा जो गुणों में ब्रह्मा के समान होगा और इस त्रिलोकी को अपने पुत्रों से भर देगा। राजपुत्रों, कण्डुऋषि की एक कन्या है। वह प्रम्लोचा नाम की अप्सरा से उत्पन्न हुई थी। उस कन्या को प्रम्लोचा ने छोड़ दिया, तब वृक्षों ने उसकी रक्षा की थी। यह बहुत भूखी थी, रो रही थी, उस समय वृक्षों के स्वामी चन्द्रमा ने दयापरवश होकर उसके मुह मे अपनी तर्जनी अगुली डाल दी, जिससे अमृत चूता था। मुझमे प्रेम रखने वाले पिता ने आप लोगो को सृष्टि करने की आज्ञा दी है। अतएव उस आज्ञा को पूर्ण करने के लिए आप लोग इस सुन्दरी कन्या से विना विलम्ब विवाह करलें। आप सब लोग एक धर्म का पालन करने वाले और एक समान आचरण करने वाले हैं। अतएव अन्य सब लोगों की वह एक ही स्त्री होगी। वह आप लोगों का अनुवर्तन (आज्ञापालन) और आप ही के समान धर्म का पालन करेगी। मेरे अनुग्रह से दिव्य हजार वर्षों तक पूर्ण शक्तिमान रह कर आप लोग पृथ्वी के और स्वर्ग के भोगों को भोगेगे। अनन्तर, मेरी अखण्ड भक्ति से समस्त काम-क्रोध का नाश होगा और इस नरकरूप संसार से विरक्त होकर आप लोग मेरे लोक में जायगे। जो गृहस्थाश्रम मे रहकर भी उत्तम कर्म करते हैं, मेरी कथा कहने और सुनने मे समय विताते है, उनके लिए गृह-बन्धन नहीं होते। सर्वत्र ईश्वर मैं, ब्रह्मवादियों के मुख से अपनी कथा सुनने वालों के हृदय मे, बार २ नये २ रूप से प्रकाशित होता रहता हूं। अर्थात् कथा के अनुसार मेरे सम्बन्ध मे नये २ भाव उनके हृदय मे प्रगट होते रहते हैं,

१०—ये तु मा रुद्रगीतेन सायं प्रातः समाहिताः। स्तुवन्त्यहं कामवरान्दास्ये प्रज्ञां च शोभनाम् ॥

११—यद्यूय पितुरादेश मग्रहीष्टमुदान्विताः। अथो व उशती कीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥

१२—भविता विश्रुतः पुत्रोऽनवमो ब्रह्मणो गुणैः। य एतामात्मवीर्येण त्रिलोकीं पूरयिष्यति ॥

१३—कण्डोः प्रम्लोचया लब्धा कन्या कमललोचना। ता चापविद्धा जगृहुर्भूरुहा नृपनन्दनाः ॥

१४—क्षुत्क्षामाया मुखे राजा सोमः पीयूषवर्षिणीम्। देशिनीं रोदमानाया निदधे सदयाऽन्वितः ॥

१५—प्रजाविसर्ग आदिष्टाः पित्रा मामनुवर्तता। तत्र कन्या वरारोहां तामुद्वहत माचिरम् ॥

१६—अपृथग्धर्मशीलानां सर्वेषां वः सुमध्यमा। अपृथग्धर्मशीलेयं भूयात्पत्न्यर्पिताशया ॥

१७—दिव्यवर्षसहस्राणां सहस्रमहतौजसः। भौमान्भोक्ष्यथ भोगान्वै दिव्यांश्चानुग्रहान्मम ॥

१८—अथ मय्यनपायिन्या भक्त्या पक्वगुणाशयाः। उपयास्यथ मद्धाम निर्विद्य निरयादतः ॥

१९—गृहेष्वाविशतां चापि पुंसां कुशलकर्मणाम्। मद्वार्तायातयामानां न बन्धाय गृहा मताः ॥

जिससे उनके हृदय में हर्ष, शोक, मोह आदि नहीं रह जाते। अतएव मेरा स्मरण करने वाले गृहस्थों को भी संसार-बन्धन नहीं होता ॥ ८२० ॥

मैत्रेय बोले—पुरुपार्थों को पूर्ण करने वाले भगवान् जनार्दन के वचन सुनकर प्रचेतस हाथ जोड़कर गद्‌गद वाणी से अपने परम मित्र भगवान् की स्तुति करने लगे। भगवान् के दर्शन से उनके तमोगुण और रजोगुण सम्बन्धी भाव नष्ट हो चुके थे ॥ २१ ॥

प्रचेतस बोले—भगवन्, क्लेश दूर करने वाले आपको नमस्कार, आपके उदार गुण और नाम, कल्याण देने के लिए प्रसिद्ध हैं। मन और वचन की अपेक्षा आप वेगवान हैं। अतएव आपका ज्ञान किसी भी इन्द्रिय के द्वारा नहीं होता। आप स्वरूप में स्थित रहने के कारण और शुद्ध-शान्त है और आपके भो मन है, केवल इसीलिए उसमें भेद बुद्धि रहती है। अर्थात् ससार का ज्ञान बना रहता है। आप ससार की स्थिति, प्रलय और उत्पत्ति के लिए माया के गुणों से रूप धारण करते हैं। आप विशुद्ध सत्वमय हैं, अपने ज्ञान से आप ससार की माया हरते हैं। आप भक्तो के स्वामी, वासुदेव कृष्ण हैं। हे कमलनयन ! आप कमलनाभि, कमलचरण और कमलों की माला धारण करने वाले हैं, आपको नमस्कार ! कमल की रज के समान पीला और उज्वल वस्त्र धारण करने वाले सब प्राणियों के निवासस्थान और साक्षिरूप से व्यापक आपको हम लोग नमस्कार करते हैं। समस्त क्लेशों को नष्ट करने वाला यह रूप आपने हम दुखियों के लिए प्रकट किया है, इससे अधिक कृपा और क्या होगी। दीनवत्सल प्रभुओं की भृत्यों पर इतनी ही कृपा बहुत है कि समय पर प्रभु भृत्यों को स्मरण कर लिया करे।

२०—न व्यवदधृदये यज्ञो ब्रह्मैतद् ब्रह्मवादिभिः। न मुह्यति न शोचति न हृष्यति यतो गताः ॥

मैत्रेय उवाच—

२१—एवं ब्रुवाणं पुरुषार्थभाजनं जनार्दनं प्राञ्जलयः प्रचेतसः।

तद्दर्शनध्वस्ततमोरजोमलागिराऽगृणन्गद्गदया सुहृत्तमम् ॥

प्रचेतस ऊचुः—

२२—नमोनमः क्लेशविनाशनाय निरूपितोदारगुणाह्वयाय।

मनो वचो वेगपुरोजवाय सर्वाक्षमार्गैरगताध्वने नमः ॥

२३—शुद्धाय शांताय नमः स्वनिष्ठया मनस्यपार्थं विलसद्‌द्वयाय।

नमो जगत्स्थानलयोदयेषु गृहीतमायागुणविग्रहाय ॥

२४—नमो विशुद्धसत्त्वाय हरये हरिमेधसे। वासुदेवाय कृष्णाय प्रभवे सर्व सात्वताम् ॥

पर हे अमंगलों को दूर करने वाले, आपने तो दर्शन दिया। जिनके स्मरण से प्राणियों को शान्ति प्राप्त होती है। आप क्षुद्र प्राणियों के हृदयों में भी अन्तर्यामी रूप से वर्तमान हैं। अतएव आपको प्रत्येक हृदय का ज्ञान होगा। फिर आपके भक्त हम लोगों के हृदय में कौन मनोरथ है, यह आप क्यों नहीं जानते? अर्थात् इसका ज्ञान आपको क्यों नहीं है? हे जगत के स्वामी! हम लोग यही वर चाहते थे कि मोक्ष-दाता, ज्ञानोपदेशक और पुरुषार्थ रूप आप प्रसन्न हों। तथापि हे नाथ, कारण के भी कारण! आप से हम लोग वर माँगते हैं, आपकी विभूतियों का अन्त नहीं, अतएव आप अनन्त कहे जाते हैं। यदि भौंरे को अनायास सुखपूर्वक पारिजात मिल जाय तो वह दूसरे वृक्ष पर नहीं जाता। इसी प्रकार साक्षात् आपके चरण पा लेने पर हम लोग आपसे क्या-क्या माँगे! भगवन्, जब तक अपने कर्मों से आप की माया द्वारा इस संसार में हम लोग घूमते रहें, तब तक आपके भक्तों का संग प्रत्येक जन्म मे मिलता रहे। भगवान् के संग के एक कण से भी स्वर्ग और मोक्ष की तुलना नहीं की जा सकती और इनसे बढ़कर मनुष्यों के लिये दूसरा मनोरथ क्या हो सकता है? जहाँ भगवान् की शुद्ध कथा कही जाती है, जिससे तृष्णा शान्त हो जाती है, प्राणियों में निर्वैर भाव उत्पन्न होता है, किसी प्रकार का उद्वेग नहीं रहता, जहाँ विषयानुराग छोड़ने वालों के साथ भगवान की कथा होती है, वहाँ सन्यासियों की जाति साक्षात् भगवान् नारायण की स्तुति होती रहती है। तीर्थों को पवित्र करने की इच्छा से वे आपके भक्त पैदल भ्रमण करते हैं संसार के कष्टों से भीत पुरुषों को आपके उन भक्तों का समागम क्यों अच्छा न लगेगा।

१५—नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने। नमः कमलपादाय नमस्ते कमलेक्षण॥

२६—नमः कमलकिंजल्कपिशंगामलवाससे। सर्वभूतनिवासाय नमोऽयुंक्ष्महि साक्षिणे॥

२७—रूपं भगवता त्वेतदशेषक्लेशसंक्षयम्। आविष्कृतं नः क्लिष्टानां किमन्यदनुकम्पितम्॥

२८—एतावत्त्वं हि विभुभिर्भाव्यं दीनेषु वत्सलैः। तदनुस्मर्यते काले स्वबुद्ध्याऽभद्ररन्धन॥

२९—येनोपशान्तिर्भूतानां क्षुल्लकानामपीहताम्। अन्तर्हितोऽन्तर्हृदये कस्मान्नो वेद नाशिषः॥

३०—असावेव वरोऽस्माकमीप्सितो जगतःपते। प्रसन्नो भगवान्येषामपवर्गगुरुर्गतिः॥

३१—वरं वृणीमहेऽथापि नाथ त्वत्परतः परात्। न ह्यन्तस्त्वद्विभूतीनां सोऽनन्त इति गीयसे॥

३२—पारिजातेऽञ्जसा लब्धे सारङ्गोऽन्यन्न सेवते। त्वदङ्घ्रिमूलमासाद्य साक्षात्किं किं वृणीमहि॥

३३—यावत्ते मायया स्पृष्टा भ्रमाम इह कर्मभिः। तावद्भवत्प्रसङ्गानां सङ्गः स्यान्नो भवेभवे॥

३४—तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्। भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥

भगवान् आपके प्रिय सखा शिव के एक क्षण सगम होने के कारण दुश्चिकित्स्य (जिसकी दवा न हो) जन्म और मरण रूप रोग के श्रेष्ठ वैद्य आपको हम लोगों ने पाया है। भगवान् हम लोगों ने जो अध्ययन किया है, गुरु, ब्राह्मण और वृद्धों को सदाचार के द्वारा प्रसन्न किया है, बडे मित्र और भाइयो का सम्मान किया है, किसी भी प्राणी से द्वेष नहीं किया है और निराहार रहकर इतने दिनों तक जल मे रहकर जो तपस्या की है, यह सब आपकी प्रसन्नता के लिये हों, हम लोग यही वर मागते है। मनु, ब्रह्म, भगवान् शिव तथा और अन्य भी तपस्या, ज्ञान, के द्वारा शुद्ध चित्त वाले आपकी महिमा का पार नहीं पा सके हैं। उन्हें भी आपका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सका है। अतएव अपनी बुद्धि के अनुसार आपकी स्तुति करते हैं। हम लोग भी अपनी बुद्धि के अनुसार स्तुति करते कै हैं। सबमे समान भाव रखने वाले शुद्ध, परम पुरुष को नमस्कार, सत्त्वमय भगवान् वासुदेव को नमस्कार ॥ ३२-४२ ॥

मैत्रेय बोले—इस प्रकार प्रचेतसों की स्तुति करने से भगवान प्रसन्न हुए और शरणागत वत्सल उन्होंने, "तस्थास्तु" कहा। वे भगवान का वहा से जाना नहीं चाहते थे, क्योंकि उनकी आखें भगवान के दर्शन से तृप्त नही हुई थीं। तथापि अकुण्ठित प्रभाव भगवान अपने लोक मे

३५—यत्रेड्य ते कथामृष्टारतृष्णायाः प्रशमो यतः। निर्वैर यत्र भूतेषु नोद्वेगो यत्र कश्चन ॥
३६—यत्र नारायणः साक्षाद्भगवान्न्यासिना गति। सस्तूयते सत्कथासु मुक्तसगै. पुनः पुनः ॥
३७—तेषां विचरता पद्भ्या तीर्थाना पावनेच्छया। भीतस्य किं नरो चेत तावकाना समागमः ॥
३८—वय तु साक्षाद्भगवन्भवस्य प्रियस्य सख्युः क्षणसगमेन।
सुदुश्चिकित्स्यस्य भवस्य मृत्योभिषक्तम त्वाऽद्यगति गताः स्म ॥
३९—यन्नः स्वधीत गुरव प्रसादिता विप्राश्च वृद्धाश्च सदानुवृत्त्या।
आर्यानता. सुहृदो भ्रातरश्च सर्वाणि भूतान्यनसूययैव ॥
४०—यन्न सुतप्त तप एतदीशनिरधसा कालमदभ्रमप्सु।
सर्वं तदेतत्पुरुषस्य भूम्नो वृणीमहे ते परितोषणाय ॥
४१—मनु स्वयभूर्भगवान्भव श्चयेऽन्ये तपोज्ञानविशुद्धसत्त्वा.।
अदृष्टपारा अपि यन्महिम्नः स्तुवंत्यथो त्वात्मसम गृणीमः ॥
४२—नम समाय शुद्धाय पुरुषाय पराय च। वासुदेवाय सत्त्वाय तुभ्य भगवते नमः ॥

मैत्रेय उवाच—
४३—इति प्रचेतोभिरभिष्टुतो हरि प्रीतस्तथेत्याह शरण्यवत्सल।
अनिच्छता यानमतृप्तचक्षुषा ययौ स्वधामानपवर्गवीर्यः ॥

चले गये। वे प्रचेतस जल से निकले, उन लोगों ने देखा, आकाश छूने के लिए मानो बढ़े हुए वृक्षों से पृथ्वी ढक गयी है। अतएव उन लोगों ने वृक्षों पर क्रोध किया। अतएव, राजन्, क्रोध करके मुँह से अग्नि और वायु उत्पन्न की, जिससे पृथ्वी में वृक्ष न रहने पावें। जिस प्रकार प्रलयकाल में भगवान् रुद्र सवर्तक नाम की अग्नि उत्पन्न करते हैं। प्रचेतस वृक्षों को जला रहे हैं, यह देखकर ब्रह्मा आये और उन्होंने युक्तियों से बर्हिष्मान् के पुत्रों को समझाया। जो वृक्ष बच गये थे, वे भयभीत थे। ब्रह्मा के उपदेश के अनुसार उन वृक्षों ने प्रचेतसों को एक कन्या दी। ब्रह्मा की आज्ञा से प्रचेतसों ने उस कन्या से व्याह किया, जिससे दक्ष नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह दक्ष पूर्व जन्म में ब्रह्मा का पुत्र था। महादेव का अपमान करने के कारण क्षत्रिय योनि में उत्पन्न हुआ। पूर्व शरीर के काल द्वारा नष्ट होने पर जिस दक्ष ने भगवान की आज्ञा से चाक्षुष् मन्वन्तर में अभीष्ट प्रजाओं की सृष्टि की थी। इस दक्ष ने जन्म के साथ ही अपनी कान्ति से तेजस्वियों का तेज हर लिया था। यह कर्मों में दक्ष (निपुण) था। इसलिए लोग इसे दक्ष कहने लगे। ब्रह्मा ने प्रजा की सृष्टि और रक्षा के लिए दक्ष का अभिषेक किया था। अतएव वे अन्य प्रजापतियों को कामों में लगाते थे। उनको आज्ञा देते थे ॥ ४३-५१ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कंध का तीसवाँ अध्याय समाप्त

४४—अथ निर्याय सलिलात्प्रचेतस उदन्वतः। वीक्ष्याकुप्यन्द्रुमैश्छन्नां गागारोद्धुमिवोच्छ्रितैः।

४५—ततोऽग्निमारुतौ राजन्नमुञ्चन्मुखतो रुषा। महीं निर्वीरुधं कर्तुं संवर्तक इवात्यये ॥

४६—भस्मसात्क्रियमाणांस्तान्द्रुमान्वीक्ष्य पितामहः। आगतः शमयामास पुत्रान्बर्हिष्मतो नयैः ॥

४७—तत्रावशिष्टा ये वृक्षा भीता दुहितरं तदा। उज्जह्रुस्ते प्रचेतोभ्य उपदिष्टाः स्वयंभुवा ॥

४८—ते च ब्रह्मण आदेशान्मारिषामुपयेमिरे। यस्यां महदवज्ञानादजन्यजनयो निजः ॥

४९—चाक्षुषे त्वन्तरे प्राप्ते प्राक्सर्गे कालविद्रुते। यः ससर्ज प्रजा इष्टाः स दक्षो दैवचोदितः ॥

५०—यो जायमानः सर्वेषां तेजस्तेजस्विनां रुचा। स्वयोपादत्त दाक्ष्याच्च कर्मणां दक्षमब्रुवन् ॥

५१—तं प्रजासर्गरक्षायामनादिरभिषिच्य च। युयोज युयुजेऽन्यांश्च सर्वे सर्वप्रजापतीन् ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेचतुर्थस्कन्धेत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इकतीसवाँ अध्याय

प्रचेतसों की मुक्ति

मैत्रेय बोले—अनन्तर, विवेक उत्पन्न होने पर पुत्रों पर अपनी स्त्री की रक्षा का भार रखकर वे प्रचेतस् भगवान का उपदेश स्मरण करते हुए घर से निकले। आत्मविचार करने का संकल्प उन लोगों ने दृढ़ कर लिया था। सब प्राणियों को अपने समान समझने लगे थे। पश्चिम दिशा के समुद्रतीर पर वे गये, जहां जाजलि मुनि ने सिद्धि पायी थी। प्राण, मन, वचन तथा दृष्टि को वश करके दृढ आसन से शरीर को सीधा और शान्त (निश्चेष्ट) रखकर उन लोगों ने अपने मन परब्रह्म में लगाये। उसी समय देवता और दैत्यों के माननीय नारद वहां पहुंचे। नारद को उठकर उन लोगों ने प्रणाम किया, उनका अभिनन्दन और पूजा की। यथास्थान नारद के आसन ग्रहण करने पर वे प्रचेतस उनकी स्तुति करने लगे॥ १-४॥

प्रचेतस् बोले—हे देवर्षि ! आपका स्वागत है, आपका दर्शन हम लोगों को मिला, यह बड़े भाग्य की बात है। ब्रह्मन् ! आपका भ्रमण सूर्य के समान जगत को निर्भय करने के लिए है। प्रभो, आपने, महादेव ने तथा स्वयं भगवान ने जिस ब्रह्मतत्व का उपदेश दिया था, वह घर-गृहस्थी में फंसे रहने के कारण भूल गया। अतएव आप हम लोगों के लिए ब्रह्मज्ञान प्रकाशित कीजिए, जिससे यथार्थ ज्ञान का दर्शन हो और जिससे हम लोग शीघ्र भव-समुद्र पार कर जायँ॥ ५-७॥

मैत्रेय बोले—प्रचेतसों के पूछने पर भगवान् नारद मुनि पवित्रकीर्ति भगवान् में मन लगाकर उन राजाओं से इस प्रकार बोले—॥ ८॥

मैत्रेय उवाच—

१—तत उत्पन्न विज्ञाना आश्वधोक्षजभाषितम्। स्मरत आत्मजे भार्यां विसृज्य प्राव्रजन् गृहात्॥

२—दीक्षिता ब्रह्मसत्रेण सर्वभूतात्ममेधसा। प्रतीच्या दिशि वेलाया सिद्धोऽभूद्यत्र जाजलिः॥

३—तान्निर्जितप्राणमनो वचो दृशो जितासनान् शातसमानविग्रहान्।

परेऽमले ब्रह्मणि योजितात्मनः सुरासुरेड्यो ददृशेस्म नारदः॥

४—त मागतं तउत्थाय प्रणिपत्याभिनद्य च। पूजयित्वा यथादेश सुखासीन मथाब्रुवन्॥

प्रचेतस ऊचुः—

५—स्वागत ते सुरर्षेऽद्य दिष्ट्यानोदर्शन गत। तव चङ्क्रमणं ब्रह्मन्नभयाय यथारवेः॥

६—यदादिष्टं भगवता शिवेनाधोक्षजेन च। तद् गृहेषु प्रसक्ताना प्रायशः क्षपित प्रभो॥

७—तन्नः प्रद्योतयाध्यात्मज्ञानं तत्त्वार्थदर्शनम्। येनाञ्जसा तरिष्यामो दुस्तर भवसागरम्॥

मैत्रेय उवाच—

८—इति प्रचेतसा पृष्टो भगवान्नारदो मुनिः। भगवत्युत्तमश्लोक आविष्टात्माऽब्रवीन्नृपान्॥

नारद बोले—वही जन्म, वही कर्म, वही आयु, वही मन और वचन मनुष्यों के सार्थक हैं, जिनके द्वारा विश्वात्मा भगवान् की सेवा होती है। शुद्ध, सावित्र और याज्ञिक इन तीन प्रकार के जन्मों से, वेदोक्त कर्मों से और देवताओं के समान बड़ी आयु से क्या लाभ, यदि भगवान् की सेवा न हो। विद्या, तपस्या, वचन, उत्तम स्वभाव, निपुण बुद्धि, बल, इन्द्रियों की शक्ति, भगवान् की भक्ति के बिना व्यर्थ हैं। योग, सांख्य, सन्यास, वेदाध्ययन तथा अन्य व्रत आदि उत्तम कल्याण देने वाले साधनों से क्या फल है, जिनमे आत्मज्ञान देने वाले भगवान् की चर्चा न हो। समस्त कल्याणों की अवधि आत्मज्ञान है और वह सब प्राणियों की आत्मा भगवान् हैं। वे ही आत्मज्ञान देने वाले हैं और प्रिय हैं। जिस प्रकार जड सींचने से वृक्ष की शाखा, उपशाखा, पत्ते आदि तृप्त होते है, जिस प्रकार प्राण के भोजन करने से इन्द्रियाँ तृप्त होती हैं, उसी प्रकार भगवान् की पूजा, समस्त देवताओं की पूजा है। जिस प्रकार सूर्य से जल बरसता है और समय पर वही सूर्य मे आश्रय पाता है, उसी प्रकार पृथ्वी के स्थावर-जगम प्राणियों का प्रवाह भगवान् से ही उत्पन्न होता है और भगवान् मे ही समान होता है। यह जगत परमात्मा का उपाधिरहित स्वरूप है। क्योंकि यह उन्हीं से उत्पन्न हुआ है, अतएव यह उनसे भिन्न नहीं है। जिस प्रकार सूर्य की प्रभा, सूर्य से भिन्न नहीं होती और जिस प्रकार जागृत अवस्था मे ही इन्द्रियाँ प्रकाशित होती हैं, सुषुप्ति में उनकी शक्तियाँ सुप्त हो जाती हैं। द्रव्य, क्रिया के द्वारा उत्पन्न होने वाले भेद-भ्रम को भगवान ही नष्ट करते हैं। जिस प्रकार आकाश मे मेघों के द्वारा अन्धकार और प्रकाश होता है और पुन. नष्ट हो जाता

नारद उवाच—

९—तज्जन्म तानि कर्माणि तदायुस्तन्मनो वचः। नृणां येनेह विश्वात्मा सेव्यते हरिरीश्वरः ॥

१०—किं जन्मभिस्त्रिभिर्वेह शौक्लसावित्रयाज्ञिकैः। कर्मभिर्वा त्रयीप्रोक्तैः पुंसोऽपि विबुधायुषा ॥

११—श्रुतेन तपसा वा किं वचोभिश्चित्तवृत्तिभिः। बुद्ध्या वा किं निपुणया बलेनेन्द्रियराधसा ॥

१२—किं वा योगेन सांख्येन न्यासस्वाध्याययोरपि। किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्राऽऽत्मप्रदो हरिः ॥

१३—श्रेयसामपि सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थतः। सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्माऽऽत्मदः प्रियः ॥

१४—यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।

प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥

१५—यथैव सूर्यात्प्रभवन्ति वारः पुनश्च तस्मिन्प्रविशन्ति काले।

भूतानि भूमौ स्थिरजङ्गमानि तथा हरावेव गुणप्रवाहः ॥

१६—एतत्पदं तज्जगदात्मनः परं सकृद्विभातं सवितुर्यथा प्रभा।

यथाऽसवो जाग्रति सुप्तशक्तयो द्रव्यक्रियाज्ञानभिदाभ्रमात्ययः ॥

१७—यथा नभस्यभ्रतमः प्रकाशा भवन्ति भूपा न भवन्त्यनुक्रमात्

है, इसी प्रकार परब्रह्म मे रज, तम, सत्व आदि का प्रवाह उत्पन्न होता है और पुनः लीन हो जाता है। यही जगत का प्रवाह है। अतएव जो भगवान् सब प्राणियों के आत्मा है, अर्थात् अधिष्ठान है, काल (निमित्त), प्रधान (उपादानकारण) पुरुष और परमेश्वर हैं और जो अपने तेज से गुण-प्रवाह का नाश करते है, उनका अपने रूप से भजन करो। उन्हें अपना रूप समझकर भजो। सब प्राणियों पर दया रखने से प्राप्त जिस किसी वस्तु से सन्तुष्ट रहने से और समस्त इन्द्रियों की शान्ति से जनार्दन भगवान् शीघ्र प्रसन्न होते हैं। सब प्रकार की कामनाओं का त्याग करके जिन भक्तो ने अपना मन पवित्र कर रखा है, उस मन मे निरंतर प्रेम से आहूत होकर आप निवास करते हैं और अविनाशी आप आकाश के समान उस स्थान से दूर नहीं होते और इस प्रकार आप अपने को भक्ताधीन बतलाते है। वे दरिद्र भगवान् को प्रिय हैं जो उन्हींको अपना धन समझते हैं और भक्तिरस के ज्ञाता है। वे भगवान् विद्या,धन,कुल और कर्म के मद से मत्त,दरिद्रों पर अत्याचार करने वाले कुबुद्धियों की पूजा भी ग्रहण नहीं करते। भगवान् अपनी सेवा करने वाली लक्ष्मी और लक्ष्मी के सेवक राजाओं और देवताओं की ओर प्रेम से नहीं देखते। क्योंकि पूर्ण काम वे भक्तों के अधीन हैं। ऐसे भगवान् का कौन कृतज्ञ मनुष्य त्याग करेगा॥ ९-२२॥

मैत्रेय बोले—इस प्रकार भगवान् की तथा अन्य कथाएं प्रचेतसों को सुनाकर ब्रह्मपुत्र नारद मुनि ब्रह्मलोक को गये। वे प्रचेतस भी लोकमल दूर करने वाले भगवान् का यश सुनकर और उनका चरण ध्यान करके विष्णुलोक मे गये। विदुर! तुमने जो मुझसे पूछा था,

---

एव परे ब्रह्मणि शक्तयस्त्वमूरजस्तमः सत्त्वमिति प्रवाहः॥

१८—तेनैकमात्मान मशेषदेहिना काल प्रधान पुरुष परेशम्।
स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाह मात्मैकभावेन भजध्वमद्धा॥

१९—दयया सर्वभूतेषु सतुष्टया येनकेन वा। सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जनार्दनः॥

२०—अपहतसकलैषणामलात्मन्यविरतमेधित भावनोपहूतः।
निजजनवशगत्वमात्मनोऽयन्नसरति छिद्रवदक्षरः सता हि॥

२१—न भजति कुमनीषिणा सइज्या हरिरधनात्मधनप्रियो रसज्ञः।
श्रुतधनकुलकर्मणा मदैर्ये विदधति पापमकिंचनेषु सत्सु॥

२२—प्रियमनुचरतीं तदर्थिनश्च द्विपदपतीन्विबुधाश्च यत्स्वपूर्णः
न भजति निजभृत्यवर्गतन्त्रः कथममुमुद्विसृजेत्पुमान्कृतज्ञः॥

मैत्रेय उवाच—

२३—इति प्रचेतसो राजन्नन्याश्च भगवत्कथाः। श्रावयित्वा ब्रह्मलोक ययौ स्वायभुवो मुनिः॥

२४—तेऽपि तन्मुखनिर्यात यशो लोकमलापहम्। हरेर्निशम्य तत्पाद ध्यायतस्तद्गतिं ययुः॥

वह नारद और प्रचेतस का हरिकीर्तनवाला संवाद सुनाया ॥ २३-२५ ॥

श्री शुकदेव बोले—राजन्! मनुपुत्र उत्तानपाद के वंश का वर्णन मैंने किया। नृपश्रेष्ठ अब प्रियव्रत का भी वंश सुनो। जिन्होंने नारद से ब्रह्मज्ञान का उपदेश पाकर पृथ्वी का राज्य किया था और राज्यभोग करके तथा पुत्रों को राज्य देकर विष्णुलोक प्राप्त किया था ॥ २६-२७ ॥

मैत्रेय की कही भगवान् की कथा को सुनकर विदुर की आँखे भर आयीं; उनका प्रेम उमड़ आया। उन्होंने मुनि के चरणों को मस्तक पर और भगवान् के चरणों को हृदय में धारण किया ॥ २९ ॥

विदुर बोले—महायोगी मैत्रेय! कृपा कर आपने अज्ञान का पार दिखा दिया। अज्ञान से उद्धार कर दिया! जहाँ विरक्तों के प्रिय भगवान् का दर्शन होता है ॥ २९ ॥

श्री शुकदेव बोले—मैत्रेय मुनि को प्रणाम करके और उनसे आज्ञा लेकर अपने बान्धवों को देखने के लिये विदुर हस्तिनापुर गये। उनका अन्तःकरण शान्त हो गया था। उसमे कोई वासना नहीं रह गयी थी। जो पुरुष और भगवद्भक्त राजाओं के ये चरित्र सुनेंगे, उन्हें आयु धन, यश, कल्याण, उत्तम जाति और ऐश्वर्य प्राप्त होगा।

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध का इकतीसवाँ अध्याय समाप्त

चतुर्थ स्कंध समाप्त

२५—एतत्तेऽभिहितं सर्वं यन्मां त्वं परिपृष्टवान्। प्रचेतसां नारदस्य संवादं हरिकीर्तनम् ॥

श्रीशुक उवाच—

२६—य एष उत्तानपदो मानवस्यानुवर्णितः। वंशः प्रियव्रतस्यापि निबोध नृपसत्तम ॥

२७—यो नारदादात्मविद्यामधिगम्य पुनर्महीम्। भुक्त्वा विभज्य पुत्रेभ्य ऐश्वरं समगात्पदम् ॥

२८—इमां तु कौषारविणोपवर्णितां क्षत्ता निशम्याजितवादसत्कथाम्।

प्रवृद्धभावोऽश्रुकलाकुलो मुनेर्दधार मूर्ध्ना चरणं हृदा हरेः ॥

विदुर उवाच—

२९—सोऽयमद्य महायोगिन्भवता करुणात्मना। दर्शितस्तमसः पारो यत्राकिंचनगो हरिः ॥

श्रीशुक उवाच—

३०—इत्यानम्य तमामन्त्र्य विदुरो गजसाह्वयम्। स्वानां दिदृक्षुः प्रययौ ज्ञातीनां निर्वृताशयः ॥

३१—एतद्यः शृणुयाद्राजन् राज्ञां हर्यर्पितात्मनाम्। आयुर्धनं यशः स्वस्तिगतिमैश्वर्यमाप्नुयात् ॥

इतिश्रीमागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थस्कन्धेप्राचेतसोपाख्यानंनामएकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

स्कन्धश्चतुर्थः समाप्तः

———०———

श्रीमद्भागवत-पंचम स्कंध

—:o:—

श्री हरि:

श्रीमद्भागवत-पंचम स्कंध

पहला अध्याय

राजा प्रियव्रत की कथा

राजा बोले—मुने ! राजा प्रियव्रत परम विष्णुभक्त थे, संसार-विरागी ज्ञानी थे, उन्होंने गृहस्थ धर्म का पालन करना कैसे पसन्द किया, क्योंकि इसीसे तो कर्मों का बन्धन होता है और अपना तथा अपनी आत्मा का तिरस्कार होता है। सांसारिक पदार्थों मे आसक्ति को न रखने वाले राजा प्रियव्रत के समान भक्तो का गृहस्थ-धर्म मे अनुराग नहीं होना चाहिये। पवित्रकीर्ति भगवान के चरणों की छाया से जिनका चित्त तृप्त हो गया

राजोवाच—

१—प्रियव्रतो भागवत आत्मारामः कथं मुने । गृहे रमत यन्मूलः कर्मबन्ध पराभवः ॥

२—न नूनं मुक्तसंगानां तादृशानां द्विजर्षभ । गृहेष्वभिनिवेशोऽयं पुंसां भवितुमर्हति ॥

हैं, उनका अनुराग कुटुम्ब मे नहीं हो सकता। ब्रह्मन्, यह बड़े सन्देह का विषय है कि स्त्री पुत्र आदि मे अनुराग रखने वाले को सिद्धि प्राप्त हुई और भगवान् मे दृढ अनुराग हुआ ॥ ३-४ ॥

श्री शुकदेव बोले—आप ठीक कहते हैं। पवित्रकीर्ति भगवान के चरणारविन्द के मकरन्द में अनुराग करने वाले भक्त कुछ विघ्न पड जाने पर भी, ज्ञानी भक्तों की प्रिय भगवत्कथा का त्याग नहीं करते, क्योंकि वह उनके कल्याण का मार्ग है। राजन्! परम विष्णुभक्त राजपुत्र प्रियव्रत ने देवर्षि नारद की चरणसेवा से शीघ्र ही परमार्थ तत्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया और वे भगवान के ध्यानयज्ञ की दीक्षा लेने के लिए उद्यत हुए।। उसी समय उनके पिता मनु ने उन्हें (प्रियव्रत को) राजोचित समस्त गुणों से युक्त देखकर पृथिवी का पालन करने की आज्ञा दी। पर राजपुत्र प्रियव्रत ने पिता की आज्ञा पसन्द नहीं की, क्योंकि वे दृढ समाधियोग से, चित्त की एकाग्रता से इन्द्रियों के द्वारा होने वाले समस्त कार्यों को भगवान् वासुदेव के चरणो में अर्पित कर चुके थे,ससार मे आसक्ति छोड चुके थे,अतएव मानने योग्य होने पर भी पिता की आज्ञा उन्होंने स्वीकार न की, क्योंकि वे डरते थे कि कहीं राज्याधिकार पाने पर मिथ्याभूत विषयों के द्वारा हमारा चित्त आकृष्ट न हो जाय। राज्य के प्रलोभनों मे फंसकर मैं भगवान् को भूल न जाऊं। अनन्तर आदिदेव स्वयम्भु ब्रह्मा, शरीर धारी वेदों और मरीचि आदि ऋषियों के स्तम्भ अपने भवन सत्यलोक से उतरे। जो ब्रह्मा इस सृष्टि के विस्तार के लिये समस्त ससार का अभिप्राय जानते हैं। अर्थात् जिस प्रकार राजा अपने गुप्त दूतों के द्वारा अपने राज्य का समाचार

३—महता खलु विप्रर्षे उत्तमश्लोकपादयोः। छाया निर्वृतचित्ताना न कुटुवे स्पृहामति. ॥

४—सशयोऽय महान् ब्रह्मन् दारागारसुतादिषु। सक्तस्य यत्सिद्धिरभूत्कृष्णे च मतिरच्युता ॥

श्रीशुक उवाच—

५—बाढमुक्त भगवत उत्तमश्लोकस्य श्रीमच्चरणारविंदमकरदरसआवेशितचेतसो भागवतपरमहसदयितकथा किंचिदतरायविहता' स्वा शिवतमा पदवी न प्रायेण हिन्वति ॥

६—यर्हिवावह राजन्सराजपुत्र प्रियव्रत. परमभागवतो नारदस्य चरणोपसेवयाऽजसाऽवगतपरमार्थसतत्त्वो ब्रह्मसत्रेण दीक्षिष्यमाणोऽवनितलपरिपालनायाम्नातप्रवरगुणगणैकान्तभाजनतया स्वपित्रोपामत्रितो भगवति वासुदेव एवाव्यवधानसमाधियोगेन समावेशित सकलकारकक्रियाकलापो नैवाभ्यनदद्यद्यपि तदप्रत्याम्नातव्य तदधिकरण आत्मनोऽन्यस्मादसतोऽपि पराभवमन्वीक्षमाण ॥

७—अथह भगवानादिदेव एतस्य गुणविसर्गस्य परिबृहणानुध्यानव्यवसितसकलजगदभिप्राय आत्मयोनिरखिलनिगमनिजगणपरिवेष्टित स्वभवनादवततार ॥

जानता है। वे ब्रह्मा आकाश में प्रकाशमान हो रहे थे। विमानवासी देवताओं ने जगह जगह उनकी पूजा की, सिद्ध, गन्धर्व, साध्य, चारण और मुनियों ने दलबद्ध होकर उनकी स्तुति की, इस प्रकार ब्रह्मा गन्धमादन पर्वत की गुफाओं को प्रकाशित करते हुए आये। देवर्षि नारद ने हंस के रथ से अपने पिता हिरण्यगर्भ ब्रह्मा को पहचाना और वे मनु और प्रियव्रत के साथ पूजा की सामग्री लेकर और हाथ जोडकर स्तुति करने लगे। भक्त परीक्षित, नारद ने भगवान् ब्रह्मा की पूजा की और उनके गुणों, अवतारों और उत्तम चरितों का वर्णन किया। अनन्तर ब्रह्मा ने दयापूर्वक हसकर प्रियव्रत की ओर देखा और वे उनसे बोले ॥ ५-१० ॥

श्री भगवान् बोले—तात मैं तुमसे सत्य कहता हूं, मेरी बात पर ध्यान दो, अप्रमेय (जिसका यथार्थ ज्ञान न हो सके,) देव को तुम दोष नहीं दे सकते। मैं शिव और ये देवर्षि नारद हम सभी विवश होकर उन देव की आज्ञा का पालन करते हैं। कोई भी शरीरधारी, उस भगवान की इच्छा को उनके निर्माण को, तपस्या, विद्या योगबल, साम, दाम आदि उपायों से धर्म, और धर्म से दूसरे किसी बलवान के आश्रय से या स्वयं रोक नहीं सकता, उलट नहीं सकता। जो उनकी इच्छा होती है वही होता है। वत्स, यह प्राणीसमूह, जन्म लेने के लिये मरने के लिये, कर्म करने के लिये, शोक, मोह और भय के लिये तथा सुख दु ख के लिये अव्यक्त ईश्वर का दिया शरीर धारण करता है। हम सब लोग जिनकी वेदरूप आज्ञा की रस्सी में सुदृढ़ गुणों के द्वारा होने वाले कर्मों के बन्धन में बधे हुए हैं और हम उनकी पूजा करते है। जिस प्रकार द्विपद मनुष्य चतुष्पद बैल को रस्सी से नाथ कर आधीन बना लेते हैं। गुण-

---

८—स तत्रतत्र गगनतल उडुपतिरिव विमानावलिभिरनुपथममरपरिवृढैरभिपूज्यमान पथि पथि च वरूथशः सिद्धगन्धर्वसाध्यचारणमुनिगणैरुपगीयमानो गन्धमादनद्रोणीमवभासयन्नुपससर्प ॥

९—तत्रह वा एनं देवर्षिर्हंसयानेन पितरं भगवन्तं हिरण्यगर्भमुपलभमान, सहसैवोत्थायार्हणेन सह पितापुत्राभ्यामवहिताञ्जलिरुपतस्थे ॥

१०—भगवानपि भारत तदुपनीतार्हण सूक्तवाकेनातितरामुदितगुणगणावतारसुजय, प्रियव्रतमादिपुरुषस्तं सदयहासावलोक इति होवाच ॥

श्रीभगवानुवाच—

११—निबोध तातेदमृतं ब्रवीमि माऽसूयितु देवमर्हस्यप्रमेयम् ।
वयं भवस्ते तत एष महर्षिर्वहाम सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् ॥

१२—न तस्य कश्चित्तपसा विद्यया वा नयोगवीर्येण मनीषया वा ।
नैवार्थधर्मैः परतः स्वतो वा कृतं विहन्तुं तनुभृद्विभूयात् ॥

कर्म के अनुसार उसी स्वामी का दिया हुआ सुख दु ख हम लोग भोगते हैं और वे जिस-जिस योनि मे भोगते हैं, उसीमे जाते है। जिस प्रकार आँख वाला मनुष्य अन्धे को जहाँ चाहता है वहाँ ले जाता है। अन्धा उसके साथ जाने को वाध्य है। भक्त होने पर भी मनुष्य तवतक शरीर धारण करता है, जवतक उसके कर्मफल समाप्त नहीं हो जाते अतएव उनकी समाप्ति तक वह अभिमानशून्य होकर कर्मफल भोगता है। जिस प्रकार स्वप्न का अनुभव नींद टूटने के वाद भी बना रहता है। पर वह मुक्त मनुष्य ऐसा कोई काम नहीं करता, जिससे पुन जन्म धारण करना पडे, क्योंकि वह जो कुछ करता है निष्काम होकर, कर्मफल भोग के लिये करता है। जो असावधान है उसके लिये वन मे भी भय है, क्योंकि इन्द्रियरूप छ शत्रु सदा उसके पास रहते है। पर जो जितेन्द्रिय है, भगवान मे अनुराग रखने वाले है, उन विद्वानों के लिये गृहाश्रम से भी कोई दोष नहीं होता। गृहस्थाश्रम मे रहकर भी वे अनासक्त रह सकते है, जो इन छ शत्रुओं को जीतना चाहे, उन्हें घर मे रहकर ही इन्द्रियों को जीतने का प्रयत्न करना चाहिये। उनको विषयों मे नियमपूर्वक लगी रहने देकर ही उन्हें जीतने का प्रयत्न करना चाहिये। वलवान् शत्रु का सामना किले मे रहकर ही किया जाता है। शत्रुहीन वल हो जाने पर मनुष्य जहाँ चाहे विचर सकता है। अर्थात् मनुष्य को जितना ही भय अपनी इन्द्रियों से है उतना वाहरी विषयों से नहीं। तुम भगवान् के चरणकमल को अपनालो, उसको अपने लिये किला वनाओ और वहाँ रहकर अपने छ शत्रुओं को जीतो और भगवान् के दिये

१३—भवाय नाशाय च कर्मकर्तुं शोकाय मोहाय सदाभयाय।
सुखाय दुःखाय च देहयोगमव्यक्तदिष्टं जनताऽङ्गधत्ते ॥
१४—यद्वाचितन्त्यां गुणकर्मदामभिः सुदुस्तरैर्वत्स वयं सुयोजिताः।
सर्वे वहामो वलिमीश्वराय प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः ॥
१५—ईशाभिसृष्टं ह्यवरुन्ध्महेऽङ्ग दुःखं सुखं वा गुणकर्मसङ्गात्।
आस्थाय तत्तद्यदयुङ्क्त नाथश्चक्षुष्मताऽन्धा इव नीयमानाः ॥
१६—मुक्तोऽपि तावद्बिभृयात्स्वदेहमारब्धमश्नन्नभिमानशून्यः।
यथाऽनुभूतं प्रतियातनिद्रः किं त्वन्यदेहाय गुणान्न वृङ्क्ते ॥
१७—भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्याद्यतः स आस्ते सहषट्सपत्नः।
जितेन्द्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य गृहाश्रमः किं नु करोत्यवद्यम् ॥
१८—यः षट् सपत्नान् विजिगीषमाणो गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वम्।
अत्येति दुर्गाश्रित ऊर्जितारीन् क्षीणेषु कामं विचरेद्विपश्चित् ॥

भोगों को आसक्तिरहित होकर भोगते हुए अपना निजरूप प्राप्त करो अर्थात् मुक्त हो जाओ॥ ११-१९॥

श्री शुकदेव बोले—इस प्रकार गृहस्थाश्रम ग्रहण करने की त्रिभुवनगुरु भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा को परम विष्णुभक्त प्रियव्रत ने सिर झुकाकर बड़े आदर के साथ ग्रहण किया, क्योंकि वे ब्रह्मा से छोटे थे, अतएव ब्रह्मा की आज्ञा चाहे, वह उनकी आज्ञा के विरुद्ध ही क्यों न हो, मानने के लिये वे बाध्य थे। विधिपूर्वक की गयी मनु की पूजा ग्रहण करके भगवान् ब्रह्मा अपने स्वरूप का चिन्तन करते हुए, वचन और मन के अगोचर (वचन के द्वारा जिसका वर्णन न हो सके और मन के द्वारा जिसका ध्यान न हो सके) अपने स्थान को गये। उस समय नारद और प्रियव्रत उनको समान भाव से देख रहे थे। उनको न तो द्वेष था और न प्रेम। क्योंकि उन्होंने उन दोनों की इच्छा के विरुद्ध आज्ञा दी थी। इस प्रकार ब्रह्मा के द्वारा मनु का मनोरथ पूरा हुआ। प्रियव्रत ने राज्य ग्रहण करना स्वीकार किया। अनन्तर देवर्षि नारद से आज्ञा लेकर समस्त भूमण्डल की रक्षा के लिये पुत्र को नियुक्त करके मनु विषय-रूपी विषजल के सरोवर गृहस्थाश्रम से अलग हो गये। इस प्रकार ईश्वरेच्छा से प्रियव्रत राजा हुए। उन पर राज्य-पालन का भार रखा गया। वे अपने बड़ों का सम्मान बढ़ाने वाले राजा, पृथ्वी का शासन करने लगे। वे राजा संसार के समस्त बन्धनों को नष्ट करने के लिये परम प्रभाव रखने वाले आदिपुरुष भगवान् के चरणों का सदा ध्यान करते थे। इसके प्रभाव से राजा के मन के मल दूर हो गये थे अतएव वे शुद्ध हो गये थे॥ २०-२३॥

अनन्तर राजा प्रियव्रत ने प्रजापति विश्वकर्मा की पुत्री बर्हिष्मती से ब्याह किया और उससे दस पुत्र उत्पन्न किये। ये पुत्र अपने पिता के समान ही शील, गुण, कर्म, रूप, बल से महान

१९—स त्वब्जनाभाङ्घ्रिसरोजकोशदुर्गाश्रितो निर्जितषट्सपत्नः।
भुङ्क्ष्वेह भोगान्पुरुषातिदिष्टान्विमुक्तसङ्गः प्रकृतिं भजस्व॥

श्रीशुक उवाच—

२०—इति समभिहितो महाभागवतो भगवतस्त्रिभुवनगुरोरनुशासनमात्मनो लघुतयाऽवनतशिरोधरो बाढमिति सबहुमानमुवाह॥

२१—भगवानपि मनुना यथावदुपकल्पितापचितिः प्रियव्रतनारदयोरविषममभिसमीक्षमाणयोरात्मसमवस्थानमवाङ्मनसं क्षयमव्यवहृतं प्रवर्तयन्नगमत्॥

२२—मनुरपि परेणैवं प्रतिसन्धितमनोरथः सुरर्षिवरानुमतेनात्मजमखिलधरामण्डलस्थितिगुप्तय आस्थाप्य

थे। राजा ने पुत्रों से छोटी, ऊर्जस्वती नाम की एक कन्या उत्पन्न की। आग्निध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि ये उनके दस पुत्र थे। इन सभी का नाम अग्नि के नाम पर रखा गया था। इनमे कवि, महावीर और सवन ये तीन ऊर्ध्वरेता थे। आजन्म ब्रह्मचारी थे। जन्म से लेकर ही आत्मविद्या का अध्ययन ये करने लगे और इन लोगों ने सन्यास ग्रहण किया। सन्यास आश्रम मे शान्तस्वरूप ये तीनों ऋषि समस्त जीव समूह के निवास, भयभीतों को शरण देने वाले, भगवान् वासुदेव के चरणारविंद का निरन्तर स्मरण करने लगे, जिससे दृढ भक्ति उत्पन्न हुई। भक्ति के प्रभाव से इनके विशुद्ध अन्तःकरण मे सब प्राणियों के अन्तर्यामी भगवान् का निवास हुआ। उसी प्रत्यग् आत्मा भगवान् से अपने को अभिन्न समझते हुए ये तीनों मुक्त हो गये। राजा की दूसरी स्त्री से तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उत्तम, तामस और रैवत, ये तीनों मन्वतर के स्वामी हैं। इस प्रकार पुत्रों के समपरायण होने पर, ग्यारह अर्बुद वर्षों तक राजा ने राज्य किया। राजा के बाहु बडे बलवान थे, अतएव उनके समस्त उपयोग सिद्ध होते थे। उन बाहुओं से राजा जब अपने धनुष की डोर खीचते थे और उसका टंकार होता था, तो उस टंकार के शब्द से ही, धर्म के शत्रु भाग जाते थे। महारानी बर्हिष्मती के प्रतिदिन बढने वाले प्रमोद आदि से मानो राजा का विवेक दब गया हो, राजा अनन्त-स्वरूप भूल गये हों, इस प्रकार का भाव दिखाते हुए राजा पृथ्वी का भोग करने लगे। उत्साह पूर्वक राजा से मिलना स्त्री स्वभाव के अनुकूल

स्वयमतिविषयविपन्नाशयाशया उपरराम ॥

२३—इति ह्वाव स जगतीपतिरीश्वरेच्छयाऽधिनिवेशितकर्माधिकारोऽखिलजगद्बन्धध्वंसनपरानुभावस्य भगवत आदिपुरुषस्याङ्घ्रियुगलानवरतध्यानानुभावेन परिरन्धितकषायाशयोऽवदातोऽपि मानवर्धनोमहता महीतलमनुशशास ॥

२४—अथच दुहितरं प्रजापतेर्विश्वकर्मण उपयेमे बर्हिष्मती नामतस्यामुहवाव आत्मजानात्मसमानशील गुणकर्मरूपवीर्योदारान्दशभावयां बभूव कन्या च यवीयसीमूर्जस्वतीं नाम ॥

२५—आग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुमहावीरहिरण्यरेतोघृतपृष्ठसवनमेधातिथिवीतिहोत्र कवयइति सर्वएवाऽग्निनामान. ॥

२६—एतेषां कविर्महावीरःसवन इतित्रयआसन्नूर्ध्वरेतसस्त आत्मविद्यायामर्भभावादारभ्य। कृतपरिचया: पारमहंस्यमेवाश्रममभजन् ॥

२७—तस्मिन्नुहवा उपशमशीला परमर्षय सकलजीवनिकायावासस्य भगवतो वासुदेवस्य भीतानां शरण

सातद्वीपों का राज्य बर्हिष्मती के पति राजा प्रियव्रत ने अपने अनुगामी अग्निध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि और वीतिहोत्र नाम के सातों पुत्रों को दिया । क्रम से एक एक पुत्र को एक एक द्वीप का राज्य राजा ने दिया । कन्या ऊर्जस्वती का ब्याह उन्होंने शुक्राचार्य से किया जिससे देवयानी नामकी कन्या हुई । जिन्होंने भगवान की चरणरज के प्रभाव से छ इन्द्रियों को जीत लिया है, उन महा पुरुषों के लिए ऐसे कार्यों को करना कुछ आश्चर्य की बात नहीं है । क्योंकि जिस भगवान का नाम चण्डाल भी यदि एक बार ले ले तो उसका ससार बन्धन छूट जाता है ॥ ४-३५ ॥

इस प्रकार महाबली और पराक्रमी राजा प्रियव्रत एक दिन देवर्पिनारद के पास बैठे हुए थे । उसी समय कोई राज्य का काम आ गया । जिससे राजा झुंझला उठे और उन्हे अपने ऊपर तिरस्कार सा होनेलगा । उन्होंने कहा- मैने बहुत बुरा किया । यह अच्छा नहीं । इन्द्रियों मे अनुराग रखने के कारण अविद्या-रचित विषयों से भयङ्कर अन्धकूप मे पड गया हूँ । बस हो चुका । इस स्त्री के क्रीडामृग के समान हो गया हूँ, मुझे धिक्कार है । इस प्रकार राजा अपनी निन्दा करने लगे । भगवान की कृपा से राजा के हृदय में विवेक उत्पन्न हुआ और वे पुन. नारद के बतलाये मार्ग का अनुसरण करने लगे । अपने अनुगत पुत्रों को राज्य बाँट दिया । पुन. जिसके साथ भोग कर चुके हैं, ऐसी रानी को मृतशरीर के समान उन्होंने

३१—येवा उहतद्रथचरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्तसिंधव आसन्यतएव कृता: सप्तभुवो द्वीपा. ॥

३२—जम्बूप्लक्षशाल्मलिकुशक्रौंचशाकपुष्करसंज्ञास्तेषा परिमाणा पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो यथा सख्या द्विगुणमानेन बहि. समतत उपक्लृप्ता' ॥

३३—क्षारोदेक्षुरसोदसुरोदघृतोदक्षीरोददधिमण्डोदशुद्धोदा सप्तजलधय सप्तद्वीपपरिखा इवाभ्यतरद्वीपसमाना एकैकश्येन यथा पूर्व सप्तस्वपिबहिर्द्वीपेषुपृथक्परित उपकल्पित स्तेषु जम्ब्वादिषु बर्हिष्मतीपतिरनुव्रताना त्मजानाग्नीध्रे मध्मजिह्वयज्ञबाहुहिरण्यरेतो घृतपृष्ठमेधातिथिवीतिहोत्रसज्ञान्यथासख्येनैकैकस्मिन्नेकमेवाधिपतिं विदधे ॥

३४—दुहितर चोर्जस्वतीं नामोशनसे प्रायच्छद्यस्यामासीद्देवयानीनाम काव्यसुता ॥

३५—नैव विध पुरुषकार उरुक्रमस्य पु सा तदङ्घ्रिरजसा जित षड्गुणानाम् ।

चित्र विदूरविगत' सकृदाददीत यन्नामधेयमधुना सजहाति बधम् ॥

३६—स एवमपरिमित बलपराक्रम एकदा तु देवर्षिचरणानुशयनानुपतित गुण विसर्गसंसर्गेण निर्वृतमिवात्मान मन्यमान आत्मनिर्वेद इदमाह ॥

३७—अहो असाध्वनुष्ठित यदभिनिवेशितोऽहमिन्द्रियैरविद्यारचित । विषमविषयान्धकूपे तदलमलममुष्या वनिताया विनोदमृग मांधिग्धिगिति गर्हया चकार ॥

छोड दिया और अतुल ऐश्वर्य भी छोड़ दिया और स्वय विरक्त होकर तथा भगवान् के चरितों के ध्यान से प्रभावित होकर पुनः नारद का उपदेश ग्रहण किया। राजा प्रियव्रत ने जो काम किये, वैसे काम ईश्वर के सिवाय दूसरा कौन कर सकता है। जिस राजा ने अन्धकार दूर करते हुए रथ के पहिये से सात समुद्र बना दिये। द्वीपों से पृथ्वी की रचना की। नदी, पर्वत और वन आदि के द्वारा सीमा बनाई, जिससे प्राणियों को सुख हो, उनमे झगडा न हो। इस प्रकार प्रत्येक द्वीप का उन्होंने विभाग किया। अपने कर्मों के द्वारा प्राप्त पाताल, स्वर्ग और मनुष्य-लोक का सुख राजा को मिला, पर भगवद्भक्तों के प्रिय राजा ने इन सुखों को नरक के समान समझा और छोड दिया॥ ३८-४१॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कध का पहिला अध्याय समाप्त

—— ० ——

दूसरा अध्याय

आग्निध्र की कथा

श्री शुकदेव बोले—इस प्रकार पिता के वन मे चले जाने पर उनकी आज्ञा के अनुसार चलने वाला राजा आग्निध्र जम्बूद्वीप मे रहने वाली प्रजा का पुत्र के समान धर्मपूर्वक पालन करने

३८—परदेवतायाः प्रसादाधिगतात्म प्रत्यवमर्शेनानुप्रवृत्तेभ्य पुत्रेभ्य इमा यथादाय विभज्य भुक्तभोगाच महिषीं मृतकमिव सह महाविभूतिमपहाय स्वय निहितनिर्वेदो हृदि गृहीतहरिविहारानुभावो भगवतो नारदस्य पदवीं पुनरेवानुससार॥

तस्य हवा एतेश्लोकाः—

३९—प्रियव्रतकृतकर्म कोनुकुर्याद्विनेश्वरम्। यो नेमि निम्नै रकरोच्छायाघ्नन्सप्त वारिधीन्॥

४०—भूसस्थान कृत येन सरिद्गिरिवनादिभिः। सीमाच भूतनिर्वृत्यै द्वीपेद्वीपे विभागशः॥

४१—भौम दिव्य मानुषंच महित्व कर्मयोगजम्। यश्चक्रे निरयौपम्य पुरुषानुजनप्रियः॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेपन्चमस्कधेभुवनकोशेप्रियव्रतविजयेप्रथमोऽध्यायः॥ १॥

श्रीशुक उवाच—

१—एव पितरि सवृत्ते तदनुशासने वर्तमान आग्नीध्रो जम्बुद्वीपौकसः प्रजा औरसवद्धर्मावेक्षमाणः पर्य गोपायत्॥

लगा। एक समय पुत्र की प्राप्ति के लिए, देवांगनाओं के क्रीडास्थल-मन्दराचल पर्वत की गुफा मे वह राजा, पूजा की समस्त सामग्री एकत्र करके प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्मा की आराधना, स्थिर चित्त से करने लगा। राजा तपस्या कर रहा है, यह जानकर आदिपुरुष ब्रह्मा ने अपनी सभा की गायिका पूर्वचित्ति नामकी अप्सरा को राजा के सभोग के लिए भेजा। वह अप्सरा वहां आकर राजा के आश्रम के पास वाले एक रमणीय बगीचे में घूमने लगी। वहां पक्षियों का जोडा सघन वृक्षों की शाखाओं पर, जो सुनहली लताओं से वेष्टित थीं, बैठकर षडज, ऋषभ, पचम आदि स्वर से बोल रहा था। पक्षियों से जगकर जलमुर्गा, कारण्डव, कलहस आदि के विचित्र शब्द से उस बाग का तालाव गूंज रहा था। सुन्दर गमन के लिए अदा के साथ पैर उठाने और रखने से उस अप्सरा की गति मे एक सौंदर्य आ गया था। उसके नूपुर के मनोहर झंकार सुनकर राजकुमार आग्नीध्र ने समाधि से बन्द नयनकमल के दोनों कोपों को थोडा विकसित करके देखा। राजा ने उसी अप्सरा को देखा। वह मधुकरी के समान फूल सूंघ रही थी। वह अपनी गति, विलास, लज्जा, विनय भरी चितवन, मधुर स्वर से बोलना और शरीर के अंगों की शोभा से देवता, मनुष्य के नेत्रों और मन को आनन्दित कर रही थी। मनुष्यों के मन मे कामदेव के लिए स्थान बना रही थी। उसके अमृत के समान मधुर और मदिरा के समान मादक सहास्य भाषण की गंध से भौरे मदान्ध हो गये थे और उसको आगे बढने से रोक रहे थे। अर्थात् मुख-कमल की गध पाकर भौरे उसके मुह पर मंडरा रहे थे। जिससे वह आगे नहीं बढ सकती थी। इधर उधर भाग रही थीं, जिससे

२—स च कदाचित्पितृलोककामः सुरवरवनिताक्रीडाचलद्रोण्यां भगवन्तं विश्वसृजां पतिमाभृतपरिचर्योपकरण आत्मैकाग्र्येण तपस्वी आराधयां बभूव ॥

३—तदुपलभ्य भगवानादिपुरुष' सदसि गायन्तीं पूर्वचित्तिं नामाप्सरसमभियापयामास ।'

४— सा च तदा श्रमोपवनमतिरमणीयं विविधनिविडविटपिविटपनिकर संश्लिष्टपुरटलतारूढस्थल विहङ्गममिथुनै. प्रोच्यमानश्रुतिभि.प्रतिबोध्यमानसलिलकुक्कुटकारण्डवकलहंसादिभिर्विचित्रमुपकूजितामलजलाशय कमलाकरमुपबभ्राम ॥

५—तस्या. सुललितगमनपदविन्यासगतिविलासायाश्चानुपदं खणखणायमान रुचिरचरणाभरणस्वनमुपाकर्ण्य नरदेवकुमारः समाधियोगेनामीलितनयन नलिनमुकुलयुगलमीषद्विकचय्य्यचष्ट ॥

६—तामेवाविदूरे मधुकरीमिव सुमनस उपजिघ्रन्तीं दिविजमनुजमनोनयनाह्लादतुघैर्गतिविहारव्रीडाविनयावलोकसुस्वराक्षरावयवैर्मनसि नृणां कुसुमायुधस्य विदधतीं विवरम् ॥

उसके बडे-बड़े स्तन,चोटी और कमर की करधनी हिल रही थी,जो बहुत ही सुन्दर मालूम होती थी। राजा ने उस अप्सरा को देखा। उसको देखने से भगवान कामदेव को अवसर मिला और उन्होंने राजा को वश में कर लिया। सुध-बुध खोकर राजा इस प्रकार बोले तुम कौन हो, इस पर्वत पर क्या करना चाहती हो ? या भगवान की माया हो। मित्र, यह बिनाडोर के जो दो धनुष धारण करती हो, वह क्या अपने लिए ? अथवा इस वन मे असावधान मृगों को ढूढ रही हो। आपके नेत्र-रूपी ये दो बाण जिनकी पाख कमलपत्र के समान है और जो बडे शान्त स्थिर है, विना फल के भी ये सुन्दर मालूम पडते हैं, इनके दात बडे तीखे मालूम पड़ते हैं। मैं नहीं जानता कि वन मे विचरती हुई तुम इन बाणों से किस को मारोगी। केवल इतना चाहता हूं कि इन बाणों से हम लोगों का कल्याण ही हो, हानि नहीं। ये भ्रमर आपके शिष्य के समान वेद-पाठ करते है और सरहस्य सामवेद से निरन्तर भगवान् की स्तुति कर रहे है, ये आपके मस्तक से गिरे फूलों का अनुसरण कर रहे है, उन पर मडरा रहे हैं, जिस प्रकार ऋषि वेदों का अनुसरण करते हैं। ब्रह्मन्, आपके चरणपजर मे रहने वाले तित्तिरों का केवल शब्द सुनायी पडता है। उनका रूप नहीं देख पडता, बोलने वाला दिखायी नहीं पडता, केवल शब्द सुन पड़ता है। अपने नितम्ब के ऊपर कदम्ब पुष्प की शोभा तुमने कहा पायी है, जिस नितम्ब के चारो ओर अलाव (जलती हुई लकडी) लगी है आपका वस्त्र कहा गया। ब्राह्मण, तुम्हारी इन दो सींगों मे (स्तनों मे) क्या भरा है। दुर्बल होने पर भी तुम जिनको ढो रहे हो। मैं इन सींगों को देख रहा हू। तुम्हरी इन सींगों पर सुगन्धित लालपक लगा हुआ है, जिस से हमारा यह आश्रम सुगन्धित हो रहा है। प्रियमित्र, तुम अपना लोक मुझे

७—निजमुखविगलितामृतासव सहासभाषणामोदमदान्धमधुकरनिकरोपेनद्रुतपदविन्यासे नवलगुस्पदनस्तनकलशकबरभाररशना देवीं तदवलोकनेन विवृतावसरस्य भगवतो मकरध्वजस्य वशमुपनीतो जडवदिति होवाच ॥

८—का त्वं चिकीर्षसि च किंमुनिवर्यशैले मायाऽसिकाऽपि भगवत्परदेवतायाः।
विज्येबिभर्षि धनुषी सुहृदात्मनोऽर्थे किंवामृगान्मृगयसे विपिने प्रमत्तान् ॥

९—बाणाविमौ भगवतः शतपत्रपत्रौ शांतावपुखरुचिरावति तिग्मदतौ।
कस्मै युयु ञ्जसि वने विचरन्नविद्मः क्षेमाय नोजडधिया तव विक्रमोऽस्तु ॥

१०—शिष्या इमे भगवतः परितः पठति गायति सामसरहस्य मजस्रमीशम्।
युष्मच्छिखा विलुलिताः सुमनोभिवृष्टीः सर्वे भजत्यृषिगणा इव वेदशाखाः ॥

११—वाच पर चरणपजरतित्तिरीणा ब्रह्मन्नरूपमुखरा शृणवामतुभ्यम्।

दिखाओ। जहां के निवासी, छाती पर ऐसे अद्भुत अंग धारण करते हैं और मुख में मधुर वचन-विलास तथा अमृत होता है, जिन अंगों को देख कर हमारे जैसे मनुष्यों का मन ललचाता है। मित्र, तुम क्या खाते हो, जिसके खाने से हवि की गंध आ रही है। तुम विष्णु की कला मालूम पड़ती हो, क्योंकि तुम्हारे कानों में सदा देखने वाले (जिनकी आंखें न खुलती और न बन्द होती हैं) मकर (मकर के आकार के कुण्डल) हैं। तुम्हारा मुख तालाब के समान है, क्योंकि इस में चञ्चल दो मछलियां (आंखें) हैं। द्विज (दांत और पक्षी) की शोभा है और भौंरों का समूह (केश) आस-पास घूम रहा है, तुम्हारे हस्त-कमल से आहत इस गेंद के साथ मेरा मन भी घूम रहा है और वह गेंद मेरी आंखों को घुमा रहा है। ये तुम्हारे घुंघराले बाल खुल गये हैं, क्या इनका ख्याल तुम्हें नहीं है। दुःख की बात है कि यह वायु तुम्हारे कपड़े खींच रहा है। हे तपोधन, तुम्हारा रूप तपस्वियों का तप नष्ट करने वाला है। ऐसा रूप तुमने किस तपस्या से पाया है। मित्र, तुम मेरे साथ रहकर तपस्या कर सकते हो। क्या सृष्टि विस्तार करने वाले ब्रह्मा मुझपर प्रसन्न हुए हैं, अर्थात् उन्होंने ही तो तुम्हें मेरे पास भेजा है। द्विज,तुम मेरे प्रिय हो, ब्रह्मा ने तुम्हें मेरे लिये दिया है। अब मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता, क्योंकि मेरा मन और मेरी आंखें तुम में समा गई हैं। चारुशृंगी (मनोहर सींग वाली) जहां तुम जाना चाहो, वहां मुझे भी ले चलो और तुम्हारी सखियां भी मेरे अनुकूल होकर साथ चलें ॥ ९-१७ ॥

[illegible] ॥

१०—[illegible] ।

[illegible] ॥

११—[illegible] ।

[illegible] ॥

१२—[illegible] ॥

[illegible] ॥

१३—[illegible] ॥

[illegible] ॥

१४—[illegible] ॥

[illegible] ॥

श्रीशुकदेव बोले—स्त्री को प्रसन्न करने मे चतुर राजा ने स्त्रियों के लिए चतुरता पूर्ण वचन के द्वारा उस देवाङ्गना को अपने अनुकूल बनाया। वह देवाङ्गना वीर सेनापति राजा के शील,रूप, वय शोभा और उदारता से उनके वश हो गयी। जम्बू द्वीप के अधिपति राजा के साथ कई हजार वर्षों तक रहकर उस अप्सरा ने स्वर्ग और पृथिवी का सुख भोगा। राजा ने उस अप्सरा से नौ पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम, नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक हिरण्मय, कुरु भद्राश्व और केतुमाल हैं। प्रतिवर्ष एक एक करके उसने नौ वर्षों में नौ पुत्र उत्पन्न किये और वह चित्ति नाम की अप्सरा उन पुत्रों को राजा के यहा ही छोड़कर पुनः ब्रह्मा के पास चली गई। आग्नीध्र के ये लडके माता की कृपा के कारण जन्म के साथ ही गठे शरीर और बलवान हुए। पिता ने जम्बूद्वीप को नौ खण्डों मे बाँटकर पुत्रों को दे दिये और वे खण्ड अपने २ स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए। राजा आग्नीध्र की मुक्ति भोगों से नहीं हुई थी, अतएव उसी अप्सरा का ध्यान करते हुए वैदिक कर्मों के द्वारा, उन्होंने उसी का लोक पाया, जिस लोक मे पितरगण आनन्द करते हैं। पिता के परलोक वासी होने पर उन नवों भाइयों ने मेरु की नौ कन्याओं से व्याह किया जिनके नाम ये थे। मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्या, श्यामा, नारी,भद्रा और देववीति। ॥ १८-२३ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवे स्कंध का दूसरा अध्याय समाप्त

१७—न त्वा त्यजामि दयित द्विजदेवदत्त यस्मिन्मनो दृगपि नो नवियाति लग्नं ॥
मा चारुश्रृङ्ग्यर्हसि नेतुमनुव्रतं ते चित्त यतः प्रतिसरन्तु शिवाः सचिव्यः ॥

श्रीशुक उवाच—

१८—इति ललनाऽनुयाति विशारदो ग्राम्यवैदग्ध्यया परिभाषया तां विबुधवधूं विबुधमतिरधिसभाजयामास ॥

१९—सा च ततस्तस्य वीरयूथपतेर्बुद्धिशीलरूपवयः श्रियौदार्येण पराक्षिप्तमनास्तेन सहायुतायुतपरिवत्सरो पलक्षणं कालं जम्बुद्वीपपतिना भौमस्वर्गभोगान् बुभुजे ॥

२०—तस्यामुहवा आत्मजान् राजवर आग्नीध्रो नाभिकिंपुरुषहरिवर्षेलावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमाल सज्ञान्नवपुत्रानजनयत् । सासूत्वाऽथ सुतान्नवानुवत्सरं गृहएवापहाय पूर्वचित्तिर्भूयएवाजदेवमुप तस्थे ॥

२१—आग्नीध्रसुतास्तेमातुरनुग्रहादौत्पत्तिकेनैवसहननबलोपेताः पित्राविभक्ता आत्मतुल्यनामानि यथाभाग जंबूद्वीपवर्षाणि बुभुजुः ॥

२२—आग्नीध्रो राजा तृप्तः कामानामप्सरसमेवानुदिनमधिमन्यमानस्तस्याः सलोकता श्रुतिभिरवारुन्धयत्र पितरोमादयन्ते ॥

२३—सम्परेतेपितरि भ्रातरोमेरुदुहितॄर्मेरुदेवीं प्रतिरूपामुग्रदंष्ट्रींलतां रम्यां श्यामां नारींभद्रांदेववीतिमिति सज्ञानवोदवहन् ॥

इ० भा० प० आग्नीध्रवर्णनंनामद्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

ऋषभदेव की उत्पत्ति

श्री शुकदेव बोले—मेरुदेवी के गर्भ से राजा नाभि की कोई सन्तान न हुई। अतएव सन्तान की कामना से राजा नाभि अपनी मेरुदेवी के साथ, यज्ञपुरुष भगवान् के उद्देश्य से मनस्थिर करके यज्ञ करने लगे। विशुद्ध अन्तःकरण से श्रद्धापूर्वक राजा यज्ञ करने लगे। यज्ञ का प्रावर्ग्य नामक कर्म हो रहा था। यद्यपि द्रव्य, देश, काल, मन्त्र, ऋत्विज, दक्षिणा, विधान इन सात उपायों से अर्थात् यज्ञ से भगवान् की प्राप्ति कठिन है, तथापि भक्तों पर प्रेम होने के कारण उनके मनोरथों को पूर्ण करने की इच्छा से आकृष्ट हृदय होकर सुन्दर भगवान् ने मन और नेत्र को सुख देने वाला तथा सुखकारी अपना स्वतन्त्र रूप प्रकाशित किया। वे प्रकट हुए। भगवान् चार भुजा वाले प्रकाशमय रूप से प्रकट हुए। पीला रेशमी वस्त्र धारण किये हुए थे। छाती पर सुन्दर कौस्तुभमणि शोभित हो रहा था। उत्तम शङ्ख, कमल, वन-माला, सुदर्शनचक्र और कौस्तुभमणि से वे शोभित हो रहे थे। मुकुट, कुण्डल, वलय, करधनी, हार, केयूर, नूपुर आदि आभूषणों से भूषित थे, जिन आभूषणों के मणियों की किरणें चारों ओर प्रकाशित हो रही थीं। इस रूप में भगवान् को देखकर ऋत्विक, सदस्य और यजमान ने बड़े आदर के साथ पूजा की, सामग्री लेकर विनय-पूर्वक उनकी पूजा की, जिस प्रकार दरिद्र उत्तम धन पाकर उसका आदर करता है॥ १-४॥

श्रीशुक उवाच—

१—नाभिरपत्यकामोऽप्रजया मेरुदेव्या भगवंतं यज्ञपुरुषमवहितात्माऽयजत॥

२—तस्य ह वाव श्रद्धया विशुद्धभावेन यजतः प्रवर्ग्येषु प्रचरत्सु द्रव्यदेशकालमन्त्रर्त्विग्दक्षिणाविधान योगोपपत्त्या दुरधिगमोऽपि भगवान् भागवतवात्सल्यतया सुप्रतीक आत्मानमपराजितं निजजनाभिप्रे तार्थविधित्सया गृहीतहृदयो हृदयंगमं मनोनयनानन्दनावयवाभिराममाविश्चकार॥

३—अथ ह तमाविष्कृतभुजयुगलद्वयं हिरण्मयं पुरुषविशेषं कपिशकौशेयाम्बरधरमुरसि विलसच्छ्रीवत्सललामं दरवरवनरुहवनमालाऽच्छूर्यमृतमणिगदादिभिरुपलक्षितम्॥

४—स्फुटकिरणप्रवरमुकुटकुण्डलकटककटिसूत्रहारकेयूरनूपुराद्यङ्गभूषणविभूषितमृत्विक्सदस्यगृहपतयोऽधना। इवोत्तमधनमुपलभ्य सबहुमानमर्हणेनावनतशीर्षाण उपतस्थुः॥

ऋत्विज बोले—हे पूज्यश्रेष्ठ, आपका स्मरण न करने वाले अतएव कुपथगामी हम लोगों की पूजा आपको ग्रहण करनी चाहिये। क्योंकि अपने बड़ों से आपको नमस्कार करने की ही शिक्षा मिली है, इससे अधिक हम लोग कर ही क्या सकते हैं, क्योंकि हम लोगों की बुद्धि ससार-प्रपच मे फँसी हुई है। हम लोग आपके रूप का परिचय कैसे दे सकते हैं। ये नाम, रूप, आकार तो प्रकृति-पुरुष के विकार है,आप से पीछे के हैं, इनके द्वारा आपका परिचय हो, तो कैसे हो सकता है। हाँ, आपके अनेक गुणों मे से किसी एक गुण का थोड़ा सा परिचय हो सकता है, जो आपके गुण समस्त जन-समुदाय के पापों को दूर करने वाले, कल्याणमय और श्रेष्ठ हैं। परम अनुरागयुक्त गद्-गद् वाणी के द्वारा भक्तों की स्तुति से, जल, शुद्धपत्र तुलसी आदि पूजा सामग्रियों से ही आप संतुष्ट हो जाते हैं। यदि यथार्थ विचार से देखा जाय तो त्रिविध सामग्रियों से परिपूर्ण इस यज्ञ मे भी आपको प्रसन्न करने योग्य गुण नहीं हैं। हम लोगों की समझ में यह यज्ञ भी आपकी योग्यता के अनुकूल नहीं है। जो सर्वदा अनेक प्रकार के एक के बाद दूसरे पुरुपार्थ होते रहते हैं। वे सब परमानन्द स्वरूप आपके ही रूप हैं, अतएव यह यज्ञ आपके लिये क्या है, इससे आपका कौन मनोरथ पूरा हो सकता है, किन्तु नाथ! आपकी कृपा प्राप्त करने की इच्छा से हम लोग यह यज्ञ कर रहे हैं, यह केवल आपकी एक आराधना है। अर्थात् अपने मनोरथों क। पूर्ति के लिये हम लोग यह यज्ञ कर रहे हैं, आपके लिये नहीं। हे पुरुपोत्तम! अपना यथार्थ कल्याण न जानने वाले हम मूर्खों को मोक्ष नामक अपनी महिमा देने के लिये विना आराधना के ही, विना किसी कामना के ही आप

ऋषय ऊचुः—

५—अर्हसिमुहुरर्हत्तमार्हणमस्माकनुपथाना नमोनम सत्येतावत्सदुरुशिक्षितकोऽर्हंनिपुमान् प्रकृतिपुरुपयोर वाँक्तनाधिर्नामरूपाकृतिभीरूपण ॥

६—सकलजननिकायवृजिननिरमनशिवतमप्रवरगुणगणैकदेशकथनादृते ॥

७—परिजनाँनुरागविरचितशबलसशब्दसलिलसितकिसलयतुलसिकादूर्वा कुरैरपि संभृतयासवर्यथाकिलपरम परिपुस्यसि ॥

८—अथानयऽपि नभवत इज्ययोरुभारभरयासमुचितमर्थमिहीपलभामहे ॥

९—आत्मनए वानुसवमजसा बोभूयमानाशेषपुरुषार्थस्वरूपस्थ किंतुनाथाशिप आशासानानमेतदमिसराधन

१०—तद्यथा बालिशाना स्वयमात्मनः श्रेय. परमविदुषा परमपरमपुरुषप्रकर्षकरुणया स्वमहिमान चापवर्गा स्व्यमुपकल्पयिष्यन् स्वय नापचित एवेतरवदिहीपलक्षित. ॥

११—अथायमेवसीअर्हत्तमयर्हिवर्हिषिराजर्पेर्वरदर्षभोभगवान्निजपुरुपेक्षणपिय आसीत् ॥

सकाम पुरुषों के समान उपस्थित हुए है। इस यज्ञ से आपको कोई लाभ नही है, तथापि आप आये हैं जिससे मालूम पड़ता है किसी अपने मतलब से ही आये है। हे वरद-श्रेष्ठ, पूज्य राजर्षि ! नाभि के यज्ञ मे आप अपने भक्तों के सामने प्रगट हुए हैं। हम लोग इसी को वर समझते है, क्योंकि आपका दर्शन होना ही एक महानता है। जिनका मल वैराग्य के द्वारा तीव्र ज्ञानरूप अग्नि से नष्ट हो गया है और जो भगवान के एकान्त भक्त हैं, ऐसे ज्ञानी मुनि भी केवल मगलमय आपके गुणों का वर्णन ही करते है अर्थात् उनको भी प्रयत्न दर्शन नहीं होता। अतएव वे आपके गुणगणों को अभ्यास किया करते है। भगवान् हम दर्शन से ही कृतार्थ है, तथापि आपका स्मरण करने मे हम असमर्थ हों, ठेस लगने, भूख, गिरने, जम्हाई लेने आदि की दशा मे, जब हम आपका स्मरण न कर सकते हों, ज्वर और मरण की अवस्था में भी सब पापों के दूर करने वाले आपके गुण बोधक नाम हमारे मुँह से निकले। यह वर दीजिये। दूसरी बात यह है कि ये राजर्षि नाभि अपने समान पुत्र की कामना करते हैं। अतएव स्वर्ग, अपवर्ग तथा इस लोक के मनोरथों के स्वामी आपकी शरण आये हैं। क्योंकि जिस प्रकार दरीद्र मनुष किनखी आनि पाने के लिये धनी के पास जाजा है। कौन ऐस है जो आपकी अपराजिता माया के द्वारा पराजित नहीं हुआ है, ऐसा कौन है ? क्योंकि आपकी माया के गुप्त आक्रमण का पता किसी को नहीं लगता। ऐसा कौन है, जिसकी बुद्धि पर आपकी उस माया का प्रभाव न पड़ा हो। महात्माओं के चरण की उपासना न करने वाला, ऐसा कौन मनुष्य है जिसके स्वभाव पर विषयरूपी विष के वेग का प्रभाव न पड़ा हो। हे अनेक कामों को करने वाले, इस छोटे काम के लिये हम लोगों ने आपका जो यहा आवाहन

१२—असगनिशितज्ञानानलविधूताशेषमलाना भवत्स्वभावानामात्मारामा मुनीनामनवरतपरिगुणितगुण गणपरममंगलायनगुणगणकथनोऽसि ॥

१३—अथ कथञ्चित्स्खलनक्षुत्पतनजृंभणदुरवस्थानादिषु विवशानां नः स्मरणाय ज्वरमरणदशायामपि सकलकश्मलनिरसनानितवगुणकृतनामधेयानि वचनगोचराणि भवतु ॥

१४ - किंचाय राजर्षिरपत्यकामः प्रजा भवादृशीमाशासान ईश्वरमाशिषां स्वर्गापवर्गयोरपि भवन्तमुप धावतिप्रजायामर्थप्रत्ययोधनदमिवाधन. फलीकरण ॥

१५—कोवा इहतेऽपराजितोऽपराजितयामाययाऽनवसितपदव्याऽनावृतमतिर्विषयविषरयानावृतप्रकृतिरनुपासि तमहच्चरणः ॥

१६—यदुहवावतवपुनरदभ्रकर्तरिहसमाहूतस्तत्रार्थधिया मदाना नस्तद्देवहेलन देवदेवार्हसि साम्येन सर्वा न्प्रतिवोढुमविदुषा ॥

१७—इतिनिगदेनाभिष्टूयमानो भगवाननिमिषर्षभो वर्षधराभिवादिताभिवादितचरणः सदयमिदमाह ॥

किया है। उसको आप क्षमा करें। सन्तान को ही पुरुषार्थ समझने वाले हम मूर्खों के द्वारा आपका जो यह अपमान हुआ है, उसे देव! आप क्षमा करें, क्योंकि आप सब मे समान बुद्धि रखते है, अतएव हम अज्ञानियो का यह अपराध आप क्षमा करे ॥ १६ ॥

श्री शुकदेव बोले—इस प्रकार भारतवर्ष के राजा नाभि के द्वारा पूजित ब्राह्मणों ने भगवान् के चरणों की वन्दना की और स्तुति की। वे देवश्रेष्ठ भगवान् दयापूर्वक उनसे इस प्रकार बोले ॥ १७ ॥

श्री भगवान् बोले—ऋषियों, आप लोगों की वाणी कभी असत्य नहीं होती, पर आप लोगों ने अपनी सत्य वाणी के द्वारा जो याचना की है, वह सुलभ नहीं है। आप कहते है कि इस राजा को मेरे समान पुत्र हो। पर अद्वितीय होने के कारण मेरे समान मैं ही हूं। पर आप लोगों की वाणी असत्य नहीं हो सकती, क्योंकि देवता और ब्राह्मण मेरे ही मुख है अतएव अपने समान दूसरे को न देखकर मै स्वय अग्निध्र के पुत्र नाभि के यहाँ अपने अंश से जन्म लूगा ॥ १८-१९ ॥

श्रीशुकदेव बोले—मेरुदेवी को सुनाकर भगवान् ने उनके पति से ऐसा कहा और वे वहाँ से अन्तर्धान हो गये। अनन्तर, हे विष्णुदत्त परीक्षित, उस यज्ञ में श्रेष्ठ ऋषियों के द्वारा प्रसादित भगवान् ने राजा नाभि का कल्याण करने की इच्छा से और वस्त्र धारण न करने वाले सन्यासियों तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारियों को धर्म का उपदेश देने के लिये मरुदेवी के गर्भ से शुद्ध सत्वमय शरीर मे अवतार लिया ॥ २०-२१ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कध का तीसरा अध्याय समाप्त

श्रीभगवानुवाच—

१८—अहो बताहमृषयो भगवद्भिरवितथगीर्भिर्वरमसुलभमभियाचितोयदमुष्य आत्मजो मयासदृशो भूयादिति ममाहमेवाभिरूपः कैवल्यादथापि ब्रह्मवादो नमृपाभवितुमर्हति ममैवहिमुख यत्द्विजदेवकुल ॥

१९—तत आग्निध्रीयेऽशक लयाऽवतरिष्यामिआत्मतुल्यमनुपलभमानः ॥

२०—इति निशामयत्यामेरुदेव्या. पतिमभिधायातर्दधे भगवान् ॥

२१—बर्हिषि तस्मिन्नेवविष्णुदत्तभगवान्परमर्षिभिः प्रसादितो नाभे. प्रियचिकीर्षया तदवरोधायनेमेरुदेव्यां धर्मान्दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमथिनां शुक्लयातनुवाऽवततार ॥

इतिश्रीभा०म० पञ्चमस्कन्धेतृतयोऽध्याय. ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

ऋषभ-चरित्र

श्रीशुकदेव बोले – जन्म-समय से ही उस बालक में भगवान के लक्षण प्रकट होने लगे। सब को समान देखना, शान्त रहना, वैराग्य, ऐश्वर्य आदि विभूतियों से उस बालक का प्रभाव दिनों दिन बढने लगा। अतएव राज्य के सचिव आदि प्रजा, ब्राह्मण और देवता चाहने लगे कि यही पृथ्वी का राजा हो, यही पृथ्वी की रक्षा का भार ले। उस बालक का सुन्दर शरीर, प्रसिद्ध यश, पराक्रम, बल, शोभा, वीर्य, शौर्य आदि देखकर पिता ने ऋषभ नाम रखा। एक बार इन्द्र ने ऋषभ से ईर्ष्या करने के कारण उनके राज्य में वृष्टि न की। इस बात को जान योगेश्वर ऋषभदेव ने अपनी योगमाया के प्रभाव से अजवर्ष नामक अपने राज्य में उन्होंने स्वयं वृष्टि की। ऋषभदेव के समान सुपुत्र पाने से, राजा नाभि का मनोरथ पूरा हो गया था। अपार आनन्द विह्वल होकर गद्-गद् वाणी से, मनुष्यों के समान रूप धरने वाले और आचरण करने वाले पुराणपुरुष भगवान् का वत्स तात आदि शब्दों के द्वारा स्नेह सहित दुलार करके बडे तृप्त होते थे, क्योंकि उनकी बुद्धि माया में फंसी हुई थी। नगर वाले तथा राज्यवासियों का प्रेम ऋषभदेव में है, यह बात जानकर राजा नाभि ने धर्म की रक्षा के लिये अपने पुत्र का राज्याभिषेक किया और ब्राह्मणों के हाथ में उस पुत्र को सौंप दिया। पुन मेरुदेवी के साथ

श्रीशुक उवाच —

१—अथतमुत्पन्त्यैवाभिव्यज्यमानभगवल्लक्षण साम्योपशमवैराग्यैश्वर्यमहाविभूतिभिरनुदिनमेधमानानुभाव प्रकृतय. प्रजा ब्राह्मणा देवताश्चावनितलसमवनायातितरा जगृधु. ॥

२—तस्यहवा इत्थं वर्ष्मणावरीयसाबृहच्छ्लोकेनच ओजसाबलेन श्रियायशसा वीर्यशौर्याभ्या च पिता ऋषभ इतीद नाम चकार ॥

३—तस्यहीन्द्र. स्पर्द्धमानो भगवान्वर्षे नववर्षतदवधार्यभगवानृषभदेवो योगेश्वर प्रहस्यात्मयोगमायया स्ववर्षं अजनाभ नामाभ्यवर्षत् ॥

४—नाभिस्तु यथाऽभिलषित सुप्रजस्त्वमवरुध्याति प्रमोदभरविह्वलो गद्गदाक्षरयागिरा स्वैरगृहीतनरलोकस धर्मं भगवत पुराणपुरुष मायाविलसितमतिर्वत्सतातेति सानुरागमुपलालयन्परा निर्वृतिमुपगत ॥

५—विदितानुरागमापौरप्रकृतिजनपदो राजानाभिरात्मज समयसेतुरक्षायामभिषिच्य ब्राह्मणेषूपनिधाय

बद्रिकाश्रम मे जाकर प्रसन्न मन और तीव्र तपस्या से भगवान् की सेवा करते हुए और समय होने पर वासुदेव नरनारायण की महिमा राजा ने पायी। अर्थात वे जीवन्मुक्त हुए। परीक्षित! नाभि राजा के सम्बन्ध मे लोक मे ऐसी प्रसिद्धि है। राजर्षि नाभि के गुणों का कौन अनुकरण कर सकता है, जिनके शुद्ध कर्मों के कारण स्वयं भगवान् ने उनके यहाँ पुत्ररूप मे जन्म लिया था। राजा नाभि के समान ब्राह्मणों का सत्कार करने वाला दूसरा कौन हो सकता है, जिसके यज्ञ मे दक्षिणा आदि के द्वारा सन्तुष्ट ब्राह्मणों ने मन्त्रबल से यज्ञपुरुष भगवान् का दर्शन कराया था ॥ १-७ ॥

भगवान् ऋषभदेव ने अपने राज्य को कर्मक्षेत्र समझा, अतएव गृहस्थधर्म की शिक्षा लेने के लिये गुरुकुल मे विद्याध्ययन के लिये उन्होंने निवास किया। भगवान् से वर पाकर प्रसन्न हुए, गुरुओं की आज्ञा से उन्होंने गृहस्थाश्रम मे प्रवेश किया और इन्द्र की दी हुई जयन्ती नाम की कन्या से ब्याह किया। श्रुति और स्मृतियों मे कथित धर्म का पालन करते हुए अपने समान सौ पुत्र उत्पन्न किये। जिनमे महायोगी भरत सबसे बड़े थे, सब से गुणी थे, जिनके नाम के अनुसार इस अजनाभवर्ष को लोग भारतवर्ष कहते है। अनन्तर भरत से छोटे कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलयकेतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक, विदर्भ, कीकर, ये नौ पुत्र थे जो नब्बे पुत्रों से बड़े थे। कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल,

---

सहमेरुदेव्या विशालायां प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन नरनारायणाख्यं भगवन्तं वासुदेवमुपासीनः कालेनतन्महिमानमवाप ॥

यस्यह पाण्डवेय श्लोकावुदाहरन्ति—

६—कोनुतत्कर्म राजर्षेर्नाभेरन्वाचरेत्पुमान्। अपत्यतामगाद्यस्य हरिः शुद्धेन कर्मणा ॥

७—ब्रह्मण्योऽन्यः कुतो नाभेर्विप्रा मङ्गलपूजिताः। यस्य बर्हिषि यज्ञेशं दर्शयामासुरोजसा ॥

८—अथ ह भगवानृषभदेवः स्ववर्षं कर्मक्षेत्रमनुमन्यमानः प्रदर्शितगुरुकुलवासो लब्धवरैर्गुरुभिरनुज्ञातो गृहमेधिनां धर्माननुशिक्षमाणो जयन्त्यामिन्द्रदत्तायामुभयलक्षणं कर्मसमाम्नायाम्नातमभियुञ्जन्नात्मजानामात्मसमानानां शतं जनयामास ॥

९—येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीत् येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति ॥

१०—तमनु कुशावर्त इलावर्तो ब्रह्मावर्तो मलयः केतुर्भद्रसेन इन्द्रस्पृग्विदर्भः कीकट इति नव नवतिप्रधानाः ॥

११—कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः। आविर्होत्रोथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥

चमस और करभाजन ये नवों पुत्र बड़े भगवद्भक्त थे। इन लोगों ने भगवद् धर्म का प्रचार किया। इन लोगों का चरित्र जो भगवान की महिमा से प्रसिद्ध और शान्ति देने वाला है, आगे वसुदेव और नारद के सम्वाद में कहा जायगा। उनमें छोटे इक्यासी और पुत्र जयन्ती के थे। ये पिता की आज्ञा मानने वाले, विनयी, प्रसिद्ध, वेदज्ञ, यज्ञ करने वाले और विशुद्ध कर्म के द्वारा जीविका निर्वाह करने वाले ब्राह्मण हुए। भगवान् ऋषभदेव स्वाधीन थे, वे अनर्थों को स्वयं दूर कर सकते थे। वे निज स्वरूप का आनन्दानुभव करने वाले ईश्वर थे, तथापि जीव के समान उन्होंने कर्म करना प्रारम्भ किया। समय के प्रभाव से क्षीण, धर्माचरण की शिक्षा लोगों को वे देना चाहते थे। क्योंकि लोग धर्माचरण करना भूल गये थे। वे भगवान् समदृष्टि, शान्त, सब पर दया और स्नेह रखने वाले थे। अतएव धर्म, अर्थ, यश, प्रजा, आनन्द और मोक्ष सबका संग्रह घर में रहकर किस प्रकार किया जा सकता है, इस बात की शिक्षा वे लोगों को देना चाहते थे। क्योंकि, श्रेष्ठ मनुष्य का आचरण और लोग भी करते हैं, यह बात प्रसिद्ध है। जिनमें सब धर्मों का वर्णन है, ऐसे वेदों और उनके रहस्यों को वे भगवान् स्वयं जानते थे तथापि ब्राह्मणों के परामर्श के अनुसार साम आदि उपायों के द्वारा प्रजा का शासन करते थे। द्रव्य, देश, काल, वय, श्रद्धा, ऋत्विक तथा भिन्न-भिन्न उद्देश से किये जाने वाले समस्त यज्ञ, शास्त्रीय विधान के अनुसार सौ-सौ बार उन्होंने किये। भगवान् ऋषभदेव जब इस वर्ष (खण्ड) की रक्षा करते थे तो कोई भी पुरुष अपने पास

इति भागवतधर्मदर्शनानवमहाभागवतास्तेषां सुचरितं भगवन्महिमोपबृंहितं वसुदेवनारदसंवादमुपशमायनमुपरिष्टाद्वर्णयिष्यामः ॥

१२—यवीयांस एकाशीतिर्जायन्तेयाः पितुरादेशकरामहाशालीनामहाश्रोत्रियायज्ञशीलाः कर्मविशुद्धा ब्राह्मणा बभूवुः ॥

१३—भगवानृषभसंज्ञ आत्मतंत्रः स्वयं नित्यनिवृत्तानर्थपरंपरः केवलानंदानुभव ईश्वरएव विपरीतवत्कर्माण्यारभमाणः कालेनानुगतं धर्ममाचरणेनोपशिक्षयन्नतद्विदांसमउपशांतो मैत्रः कारुणिको धर्मार्थयशः प्रजानंदामृतावरोधेन गृहेषु लोकं नियमयत् ॥

१४—यद्यच्छीर्षण्याचरितं तत्तदनुवर्तते लोकः ॥

१५—यद्यपि स्वविदितं सकलधर्मं ब्राह्मं गुह्यं ब्राह्मणैर्दर्शितमार्गेण सामादिभिरुपायैर्जनतामनुशशास ॥

१६—द्रव्यदेशकालवयः श्रद्धर्त्विग्विविधोद्देशोपचितैः सर्वैरपि क्रतुभिर्यथोपदेशं शतकृत्वइयाज ॥

१७—भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन्वर्षे नकश्चन पुरुषो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथंचन

अविद्यमान वस्तु किसी दूसरे से नहीं माँगता था। उनकी किसी वस्तु की इच्छा ही नहीं थी। वे अगर चाहते थे तो यही कि राजा ऋषभदेव में प्रति क्षण हम लोगों का स्नेह बढ़ता जाय। ये राजा ऋषभदेव घूमते-घूमते ब्रह्मावर्त मे गये। वहा ब्रह्मर्षियों की बड़ी सभा थी जिसमे उपदेश सुनने के लिये उनकी प्रजा एकत्र हुई थी। राजा सावधान, जितेन्द्रिय, विश्वास-विनय से संयत चित्त वाले पुत्रों को शिक्षा देने के बहाने इस प्रकार बोले—राजा अपने पुत्रों को उपदेश देना चाहते थे ॥ १८ ॥

श्रीमद्भागवत के पांचवे स्कंध का चौथा अध्याय समाप्त

—— ० ——

किमपिकर्हिचिद्वेन्नतेभर्तर्यनुसवन विजृ मितस्नेहातिशयमन्तरेण ॥

१८—स कदाचिदटमानो भगवानृषमो ब्रह्मावर्तगतो ब्रह्मर्षिप्रवरसभायां प्रजाना निशामयन्तीनामात्मजानव हितात्मनः प्रश्रयप्रणयभरसुयन्त्रितानप्युपशिक्षयन्निति होवाच ॥.

इ० भा० म० प० ऋषभदेवानुचरितेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

ऋषभदेव का उपदेश

ऋषभदेव बोले—यह मनुष्यों का शरीर मर्त्यलोक में विषय-भोग करने के लिए नहीं है। विषय-भोग तो शूकर-कूकर शरीर से होता है। अतएव इस मनुष्य-शरीर से दिव्य तप करना चाहिये। पुत्रों, जिससे मन शुद्ध होगा और उसकी शुद्धि से अनन्त ब्रह्मसुख प्राप्त होगा। महात्माओं की सेवा मोक्ष का द्वार है और स्त्रियों के संगियों का संग संहार (जन्म-मरण) का द्वार है। महात्मा वे हैं जिनका चित्त समदृष्टि है, जो सब को समान समझने वाले हैं। प्रशान्त और क्रोध रहित हैं। सबके मित्र और सदाचारी हैं और जो मुझे भगवान् समझ कर मुझ से प्रेम करना ही परम पुरुषार्थ समझते हैं। अपने शरीर-पोषण में लगे हुए, स्त्री, पुत्र, मित्र, गृह, आदि में अनुरक्त मनुष्यों से जो प्रेम नहीं रखते और आवश्यकता के अनुसार ही धन रखते हैं, वे महात्मा हैं। जब मनुष्य इन्द्रियों की प्रसन्नता के लिए उद्योग करने लगता है, उस समय वह उन्मत्त होकर पाप कर बैठता है। जिसके कारण यह नश्वर शरीर भी दुःखदायी हो जाता है, अतएव वैसे कर्मों को बार-बार करना मैं अच्छा नहीं समझता, क्योंकि इस शरीर की उत्पत्ति का कारण भी तो पाप ही है? अज्ञान से उत्पन्न पराभव (अपने स्वरूप का ज्ञान न होना) तभी तक होता है, जब तक मनुष्य आत्मतत्व का विचार नहीं करता। और जब तक

ऋषभ उवाच—

१—नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान्कामानर्हते विड्भुजां ये।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्ध्येद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तं॥

२—महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां संगिसंगम्।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये॥

३—ये वा मयीशे कृतसौहृदार्था जनेषु देहंभरवार्तिकेषु।
गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु न प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके॥

४—नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति।
न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयमसन्नपि क्लेशद आस देहः॥

५—पराभवस्तावदबोधजातो यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम्।
यावत्क्रियास्तावदिदं मनो वै कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः॥

क्रियाएँ होती रहती है, तब तक कर्म स्वरूप यह मन भी बना रहता है। अर्थात् कर्म भी होते रहते हैं और कर्मों के कारण ही यह शरीर प्राप्त होता है। जब आत्मा अविद्या से आवृत रहता है तब पूर्व जन्म के कर्म मन को अपने वश मे कर लेते है और मन पुरुष को वश मे करता लेता है। जब तक मुझ वासुदेव में प्रेम नहीं होता तब तक देह-बन्धन से छुटकारा नहीं होता। इन्द्रियों की समस्त चेष्टाएँ असत्य है, अनर्थक हैं, ऐसा विवेकदृष्टि से मनुष्य जब तक नहीं देखता, तब तक उसके स्वरूप की स्मृति नष्ट रहती है। स्वार्थ से प्रमत्त रहता है और स्त्री, सुख वाले घर मे रहकर अनेक कष्ट उठता है। पुरुष और स्त्री दोनों को अपनी अपनी सत्ता का ज्ञान रहता है। पर जब दोनों का साथ होता है, तब एक दूसरी गाठ जुड़ती है जिसे हृदयग्रन्थि या हृदय की गाठ कहते है। यह दुर्भेद्य है. क्योंकि इस गाठ के द्वारा घर, खेत, पुत्र, हित, मित्र आदि में मनुष्य का मोह उत्पन्न हो जाता है और वह उन्हें अपना समझने लगता है, तात्पर्य यह कि स्त्री और पुरुष के पृथक रहने पर उनका केवल अपने-अपने शरीर पर ही मोह होता है और उन दोनों के साथ होने से मोह क्षेत्र बढ जाता है। जब कर्म से बधी हुई यह हृदय-ग्रन्थि शिथिल होती है, तब मनुष्य स्त्री पुरुष के सम्बन्ध का त्याग कर देता है और हेतुरूप अहंकार का त्याग करके वह मुक्त हो जाता है और परमपद पाता है। अहकार दूर होने के उपाय ये है— गुरुरूप मुझ परमेश्वर मे भक्ति, तृष्णा का त्याग, सुख दु.ख, आदि द्वन्द्व भावों को सहना, सर्वत्र प्राणियों के दु ख का पता लगाना, ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा, तपस्या, सकाम

६—एवं मन. कर्मवशं प्रयुङ्क्ते अविद्ययात्मन्युपधीयमाने।
प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावत्॥

७—यदा न पश्यत्ययथा गुणेहां स्वार्थे प्रमत्त. सहसा विपश्चित्।
गतस्मृतिर्विन्दति तत्र तापानासाद्य मैथुन्यमगारमज्ञः॥

८—पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः।
अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैर्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति॥

९—यदा मनो हृदयग्रन्थिरस्य कर्मानुबद्धो दृढ आश्लथेत॥
तदा जन· सम्परिवर्ततेऽस्मान्मुक्तः परं यात्यतिहाय हेतुं॥

१०—हंसे गुरौ मयि भक्त्यानुवृत्त्या वितृष्णया द्वन्द्वतितिक्षया च।
सर्वत्र जन्तोर्व्यसनावगत्या जिज्ञासया तपसेहानिवृत्त्या॥

११—मत्कर्मभिर्मत्कथया च नित्यं मद्देवसंगाद्गुणकीर्तनान्मे॥
निर्वैरसाम्योपशमेन पुत्रा जिहासया देहगेहात्मबुद्धेः॥

कर्मों का त्याग, मुझ भगवान के लिए कर्म करना, मेरी कथा सुनना, मेरा गुण गान करना, मेरे भक्तों का संग करना, वैर, विरोध न रहने के कारण सर्वत्र सम भाव और शान्ति रखना। पुत्रों, देह शरीर में आत्मबुद्धि का त्याग करना वेदान्त शास्त्रों का अभ्यास, एकान्त स्थान में निवास, मन इन्द्रिय और आत्मा को अच्छी तरह वश करना सज्जनों मे श्रद्धा, ब्रह्मचर्य अपने कतव्य का त्याग न करना, वचन को नियमित रखना,सब स्थानों में मेरी भावना रखना, विज्ञान युक्त उस ज्ञान से जिसके द्वारा मनुष्य सब पदार्थों में मेरा भाव देखता है और समाधि से धैर्य, उद्योग और विवेक युक्त होकर अहंकार नामक उपाधि को दूर कर सकता है। इस हृदय की गाँठ में कर्मों का निवास होता है, अर्थात् इसी गाँठ से प्रेरित होकर मनुष्य कर्म करता है। यह अविद्या के द्वारा प्राप्त होती है। अतएव मेरे उपदेश के अनुसार इस उपाय से हृदयग्रन्थिक का नाश करना चाहिये और साधनों से विरक्त हो जाना चाहिये। पिता पुत्र को, गुरु शिष्य को और राजा प्रजा को इसी प्रकार की शिक्षा दे, जो मेरा लोक चाहता हो। अथवा मेरे अनुग्रह को पुरुषार्थ समझता हो। यदि कोई उसकी शिक्षा न माने तो इससे उसे क्रोध न आना चाहिये। जो अज्ञानी हैं, उन्हें बार-बार शिक्षा देनी चाहिये। जो कर्ममूढ हैं अर्थात् कर्म को ही कल्याण का साधन समझते हैं उनको कर्म का उपदेश नहीं करना चाहिये। आँख के अन्धे को खड्डे में गिरा देने से किसी को क्या लाभ हो सकता है? मनुष्य अपने कल्याण के विषय में सचमुच

१२—अध्यात्मयोगेन विविक्तसेवया प्राणेंद्रियात्माभिजयेन सध्र्यक्।
सच्छ्रद्धया ब्रह्मचर्येण शश्वदसम्प्रमादेन यमेनवाचां॥

१३—सर्वत्र मद्भावविचक्षणेन ज्ञानेन विज्ञानविराजितेन।
योगेन धृत्युद्यमसत्त्वयुक्तो लिंगं व्यपोहेत्कुशलोऽहमाख्य॥

१४—कर्माशयं हृदयग्रंथिबंध मविद्ययासादितमप्रमत्तः।
अनेन योगेन यथोपदेश सम्यग्व्यपोह्योपरमेतयोगात्॥

१५—पुत्रांश्च शिष्यांश्चनृपोगुरुर्वामल्लोककामो मदनुग्रहार्थः। इत्थं विमन्युरनुशिष्यादतज्ज्ञान्नयोजयेत्कर्म सुकर्ममूढान्॥ कं योजयन्मनुजोऽर्थं लभेत निपातयन्नष्टदृशा हिगर्ते॥

१६—लोकः स्वयं श्रेयसि नष्टदृष्टिर्योऽर्थान्समीहेत निकामकामः।
अन्योऽन्यवैरः सुखलेशहेतोरनन्त दुःख च नवेद मूढः॥

१७—स्तरा स्वय तदभिज्ञो विपश्चिदविद्यायामतरे वर्तमान।
दृष्ट्वा पुनस्त सघृणः कुबुद्धिं प्रयोजयेदुत्पथग यथान्ध॥

अन्धा है, क्योंकि भोग आदि की अभिलाषा से धन प्राप्त करने की इच्छा रखता है। सुख प्राप्त करने के लिए परस्पर विरोध करता है और उससे होने वाले अनन्त दुःखों को यह मनुष्य नहीं समझता। जो मनुष्य इस विषय के ज्ञाता हैं। प्रवृत्ति धर्म का फल दुख है, इस बात को जानने वाले है, वह विद्वान् दयालु अज्ञान में भटकने वाले कुबुद्धि मनुष्य को उसीमे रहने के लिए कैसे कह सकते है? रास्ता छोडकर खड्डे की ओर जाने वाले अन्धे को उसी ओर चलने के लिए कौन कहेगा? वह गुरु नहीं है, वह स्वजन नहीं है, वह पिता नहीं है, वह माता नहीं है, वह भाग्य नही, वह पति नहीं जो सिर पर आयी मृत्यु को दूर न करे, अर्थात् मृत्यु दूर करने के लिए भगवद्भक्ति का उपदेश न दे। यह मेरा शरीर दुर्विभाव्य है। मेरी इच्छा से उत्पन्न हुआ है, अतएव इसका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। सत्व गुण मेरा हृदय है और उसमे धर्म वर्तमान है, अर्थात्, धर्म सत्व स्वरूप है। अतएव अधर्म को मैने दूर से ही पीठ की ओर कर दिया है। अतएव सज्जन गण मुझे ऋषभ (श्रेष्ठ) कहते हैं। तुम सब लोग मेरे हृदय से—शुद्ध सत्व से उत्पन्न हुए हो, अतएव अपने सोदर बडे भाई की सेवा प्रसन्नता पूर्वक तुम लोग करो। भरत की सेवा मेरी सेवा है और प्रजा का पालन है। प्राणियों मे पौधे उत्तम होते हैं, पौधों से रेंगकर चलने वाले कीड़े श्रेष्ठ हैं, उनसे ज्ञान रखने वाले पशु श्रेष्ठ हैं, पशुओं से मनुष्य श्रेष्ठ हैं, मनुष्यों से भूत-प्रेत आदि, उनसे गन्धर्व, गन्धर्वो से सिद्ध, सिद्धों से देवताओं के अनुचर-किन्नर

१८—गुरुर्नसस्यात्स्वजनो नसस्यात्पिता नसस्याज्जननी नसास्यात्।
दैव नसतस्यान्नपतिश्च सस्यान्नमोचयेद्यः समुपेत मृत्युं ॥

१९—इद शरीरं ममदुर्विभाव्य तत्त्व हि मेहृदय यत्र धर्म।
पृष्ठे कृतो मे यदधर्म आरादतो हि मामृषभं प्राहुरार्याः ॥

२०—तस्माद्भवतो हृदयेन जाताः सर्वे महीयासममुसनाभ।
अक्लिष्ट बुद्धयाभरत भजध्वं शुश्रूषया तद्भरण प्रजाना ॥

२१—भूतेषु वीरुद्भ्य उदुत्तमाये सरीसृपास्तेषु सबोधनिष्ठाः।
ततो मनुष्याः प्रमथास्ततोऽपि गधर्वसिद्धा विबुधानुगाये ॥

२२—देवा सुरेभ्यो मघवत्प्रधाना दक्षादयो ब्रह्मसुतास्तुतेषां।
भव परः सोऽथ विरिंचवीर्यः समत्परेऽह द्विजदेवदेवः ॥

आदि, किन्नरों से असुर, असुरों से देवता, इन दोनों से इन्द्र ! इन्द्र से ब्रह्मा के पुत्र दक्ष आदि, उनसे महादेव, शिव से ब्रह्मा और ब्रह्मा से मै बडा हूँ। ब्राह्मण मेरे भी देवता हैं, अर्थात् उन्हें मैं अपने से भी बडा समझता हूँ। मैं ब्राह्मणों के साथ किसी प्राणि की तुलना नहीं कर सकता। अतएव ब्राह्मणों से श्रेष्ठ किसी को मैं कैसे समझ सकता हूँ। जिन ब्राह्मणों के श्रद्धापूर्वक मनुष्यों के द्वारा हवन किया हुआ अन्न मैं बडे प्रेम से खाता हूँ। अग्निहोत्र के अन्न को वैसे प्रेम से नहीं खाता। जिन ब्राह्मणों ने मेरे वेदरूप प्राचीन शरीर को धारण कर रखा है और जिन ब्राह्मणों में परम पवित्र सत्व, शम, दम, सत्य, अनुग्रह, तपस्या, तितिक्षा (सहन शीलता) और अनुभव (आत्म ज्ञान) ये आठ गुण हैं, उनसे बडा मै किसी को कैसे समझू। पुत्रों, स्वर्ग और अपवर्ग के स्वामी, कारण का भी कारण, मैं अनन्त हूँ, पर मुझ से भी मांगने की वस्तु उनके लिए नहीं है। वे दरिद्र मेरे ऐसे भक्त हैं, फिर वे राज्य आदि की इच्छा कैसे कर सकते हैं। हे पुत्रों ! स्थावर-जगम सब प्राणियों का, मेरा स्थान समझकर अर्थात् उनमें मेरा निवास है, ऐसा समझकर आदर करना। प्रतिक्षण पवित्र भाव से उनका आदर करना, क्योंकि यही मेरी पूजा है। मन, वचन, दृष्टि तथा अन्य इन्द्रियों के कर्मो का फल मेरी आराधना करना ही है, क्योंकि इसके बिना, महामोह रूप कालपाश से मनुष्य छूट नहीं सकता। अतएव अपने कर्मफल मुझे अर्पित कर देने चाहिए ॥ २७ ॥

२३—न ब्राह्मणैस्तुलये भूतमन्यत्पश्यामि विप्रा. किमतः परतु ।
यस्मिन्नृभि. प्रहुतं श्रद्धयाऽहमश्नामि काम न तथाऽग्निहोत्रे ॥

२४—धृतासनूरुशतिमे पुराणी येनेह सत्त्वं परम पवित्र ।
शमो दमः सत्यमनुग्रहश्च तपस्तितिक्षाऽनुभवश्च यत्र ॥

२५—मत्तोप्यनंतात्परतः परस्मात्स्वर्गापवर्गाधिपतेर्नकिंचित् ।
येषा किमुस्यादितरेण तेषामकिञ्चनाना मयि भक्तिभाजां ॥

२६—सर्वाणि मद्धिष्ण्यतया भवद्भिश्चराणि भूतानि सुता ध्रुवाणि ।
सभाजितव्यानि पदेपदे वो विविक्तदृग्भिस्तदुहार्हणं मे ॥

२७—मनो वचो दृक्करणे हितस्य साक्षात्कृत मे परिबर्हण हि ।
विना पुमान्येन महाविमोहात्कृतान्तपाशान्न विमोक्तुमीशेत् ॥

श्रीशुकदेव बोले—इस प्रकार स्वय शिक्षित पुत्रों को ऋषभदेव ने उपदेश दिया और इसके द्वारा उन्होंने लोक की शिक्षा दी। प्राणियों के परम सुहृदय ऋषभ नाम के भगवान् ने शान्त शील, कर्मविरागी मुनियों को भक्ति, ज्ञान और वैराग्य रूप परमहंस धर्म की शिक्षा देने के लिये अपने बड़े पुत्र, जो परम भागवत और भगवद्भक्त था, उस भरत का पृथ्वी की रक्षा के लिये राज्याभिषेक किया। अपने घर में ही शरीर के अतिरिक्त अन्य सामग्रियों का त्याग कर दिया। उन्मत्त के समान दिगम्बर (नगा) हो गये। केश बिखरा लिये, अग्नियों को अपने में आरोपित्त करके अर्थात् उन्हें अपने से अभिन्न समझ कर अग्निहोत्र का त्याग किया और वे अपने देश से चले गये। राजा ने अवधूत का वेश धारण किया। जड़, अन्ध, मूक, वधिर, पिशाच और उन्मत्त के समान वे रहने लगे। उनसे कोई बोलता तो वे उत्तर न देते, क्योंकि उन्होंने मौनव्रत ले रखा था। नगर, ग्राम, खान, किसानों का गाँव, बगीचा, शिविर गोशालाएँ, अहीरों का गाँव, यात्रियों का दल, पर्वत वन और आश्रम आदि में जगह-जगह रास्ते रास्ते, नीच मनुष्यों ने ऋषभदेव का तिरस्कार किया, उनको मारा, उन पर मूता, थूका, पत्थर, मल और धूल फेंकी। उनकी ओर गन्दी हवा चलाई, गालियां दीं। पर बनैला हाथी जिस प्रकार मक्खियों की ओर ध्यान नहीं देता, उसी प्रकार ऋषभदेव भी इनकी ओर ध्यान न देते थे। क्योंकि आत्मा और अनात्मा का अनुभव करते हुए वे सदा अपने

श्रीशुक उवाच—

२८—एवमनुशास्यात्मजान् स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थं महानुभावः परमसुहृद्भगवानृषभापदेश उपशमशीलानामुपरतकर्मणां महामुनीनां भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणं पारमहंस्य धर्ममुपशिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं भवनएवोर्वरितशरीरमात्र परिग्रह उन्मत्त इव गगनपरिधानः प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात्प्रवव्राज ॥

२९—जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानां गृहीतमौनव्रतस्तूष्णीं बभूव ॥

३०—तत्रतत्र पुरग्रामाकरखेटवाटशिविरव्रजघोषसार्थगिरिवनाश्रमादिष्वनुपथमवनिचरापसदैः परिभूयमानो मक्षिकाभिरिव वनगजस्तर्जनताडनावमेहनष्ठीवनग्रावशकृद्रजः प्रक्षेपपूतिवातदुरुक्तैस्तदविगणयन्नेवासत्संस्थान एतस्मिन्देहोपलक्षणेसदपदेश उभयानुभवस्वरूपेण स्वमहिमावस्थानेनासमारोपिताहंममाभिमानत्वादविखण्डितमनाः पृथिवीमेकचरः परिबभ्राम ॥

स्वरूप में ही स्थित रहते थे, क्योंकि असत् स्वरूप देह नामक पदार्थ में जो वस्तुतः असत्य है, परन्तु नाम मात्र से सत्य है, उसमें उनको ममता न थी। उनका मन सदा एकाग्र रहता था और वे अकेले पृथ्वी में परिभ्रमण करते थे। पैर, हाथ, छाती, सुकुमार थे, बाहु और कंधे मोटे थे, गले और मुख की रचना सुन्दर थी। स्वभावतः मनोहर और स्वाभाविक हँसी से मुँह बहुत ही सुन्दर मालूम पड़ता था। आँखे नव कमल के समान सुन्दर लाल और लम्बी थीं और उनकी कनीनिका ताप हरण करने वाली थी। गाल, हाथ, कण्ठ, और नाक बराबर और सुन्दर थे उनके रहस्यमय हँसी वाले मुख का अद्भुत सौन्दर्य देखकर चतुर स्त्रियों के मन में काम उत्पन्न होता था। उलझे और पीले जटा बने बाल आगे की ओर लटकते थे, ध्यान न रखने के कारण शरीर मलिन हो गया था। अतएव वे ग्रह-ग्रहीत (जिसके ऊपर भूत-प्रेत चढा हो) के समान मालूम होते थे। भगवान् ऋषभ ने जब देखा कि मनुष्यों का समागम योग विरोधी है और उनका आना-जाना रोकने के लिये उद्योग करना भी निन्दित है। यह सोचकर उन्होंने अजगर-व्रत धारण किया। सोते-सोते खाते थे, पीते थे, पेशाब करते थे, मल त्याग करते थे, मल में लोटते थे, जिससे वह उनके समस्त शरीर में लिपट जाता था, उनकी विष्ठा की सुगन्धि से सुगन्धित हो कर वायु दस योजन तक सुगन्धि फैलाती थी। अनन्तर, बैल, मृगी और कौऐ के समान वे चलते, खाते, खड़ा होते, बैठते, सोते थे। कौआ, मृगी और बैल के

३१—अतिसुकुमारकरचरणोरस्थलविपुलबाह्वंसगलवदनाद्यवयवविन्यासः प्रकृतिसुंदरस्वभावहासमुमुखो नवनलिनदलायमानशिशिरताराक्णायतनयनरुचिरः सदृशसुभगकपोलकर्णकंठनासोविगूढस्मितव दनमहोत्सवेन पुरवनितानां मनसि कुसुमशरासनमुपदधानः परागवलम्बमानकुटिलजटिलकपिशकेश भूरिभारोऽवधूतमलिननिजशरीरेण ग्रहगृहीत इवादृश्यत ॥

३२—यर्हिवाव सभगवाल्लोकमिमं योगस्याद्धाप्रतीपमिवाचक्षाणस्तत्प्रतिक्रियाकर्मवीभत्सितमितिव्रतमाजगरमास्थितः शयानएवाश्नाति पिबति खादत्यवमेहति हदतिस्म चेष्टमान उच्चरित आदिग्धोद्देशः ॥

३३—तस्य ह्यः पुरीषसुरभिसौगंध्यवायुस्तंदेश दशयोजनं समंतात्सुरभिं चकार ॥

३४—एवं गोमृगकाकचर्यणाव्रजस्तिष्ठन्नासीनः शयानः काकगोमृगचरितः पिबति खादत्यवमेहतिस्म ॥

समान उनका खाना, पीना आदि आचरण हो गया था। इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव ने अनेक प्रकार के आचरण किये। उन्हे इनकी आवश्यकता न थी, क्योंकि वे मोक्ष के स्वामी थे, परन्तु उन्होंने ऐसा आचरण किया, दूसरे योगियों को उपदेश देने के लिये। लोक समागम रूप विघ्नों से बचने के लिये योगियों को अजगर आदि का व्रत ग्रहण करके सिद्धि प्राप्त करनी चाहिये, यह बतलाना ही उनका उद्देश्य था। क्योंकि वे तो परम आनन्दानुभव रूप हैं। समस्त प्राणियों के आत्मरूप भगवान् वासुदेव जिनकी आत्मा हैं अर्थात् ये परब्रह्म से अभिन्न हैं अतएव शरीर की उपाधि से ये सदा मुक्त हैं और स्वतः बिना प्रयत्न के सिद्ध होने वाले मनोरथों से परिपूर्ण है, अतएव उनके पास योग-सिद्धियाँ आईं जिन्हें उन्होंने पसन्द नहीं किया, उन सिद्धियों से मनुष्य आकाश मे उड़ सकता है, मन के समान वेगवान हो सकता है, अन्तर्धान (गुप्त) हो सकता है,दूसरे वे दूसरे के शरीर मे प्रवेश कर सकता है, दूर के विषयों को जान सकता है, अथवा उनका ग्रहण कर सकता है। ये सिद्धियाँ स्वय उनके पास आयी थीं ॥ २८-३५ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवे स्कन्ध का पाँचवाँ अध्याय समाप्त

—o—

३५—इति नाना योगचर्याचरणोभगवान्कैवल्यपतिॠषभोऽविरतपरममहानन्दानुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानामात्मभूते भगवति वासुदेव आत्मनोऽव्यवधानानन्तरोदरभावेन सिद्धसमस्तार्थपरिपूर्णो योगैश्वर्याणि वैहायसमनोजवान्तर्धानपरकायप्रवेशदूरग्रहणादीनियदृच्छयोपगतानिनाञ्जसा नृपहृदयेनाभ्यनंदत् ॥
इतिश्रीभागवतेमहापुराणेपचमस्कन्धेॠषभदेवानुचरितेपचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

छठवाँ अध्याय

ऋषभदेव का शरीरत्याग

राजा बोले—भगवन् आत्माराम मुनियों के कर्मबीज, योग के द्वारा प्रवृद्ध ज्ञानाग्नि से दग्ध हो जाते हैं, उनकी उत्पादिका शक्ति नष्ट हो जाती है अतएव स्वय प्राप्त सिद्धियों से उनको कोई कष्ट नहीं हो सकता। फिर ऋषभदेवजी ने उन सिद्धियों का त्याग क्यों किया ? ॥ १ ॥

ऋषि बोले—आप सत्य कहते हैं, पर कई लोग चञ्चल मन का विश्वास नहीं करते। जिस प्रकार धूर्त शिकारी पकड़े हुए मृगा पर विश्वास नहीं करता। इस सम्बन्ध में नीति का यह उपदेश है। मन चञ्चल है अतएव किसी योगी को किसीसे मैत्री नहीं करनी चाहिये। किसीका विश्वास करने के कारण बहुत दिनों का सञ्चित समर्थ पुरुषों का भी तप नष्ट हो जाता है। मन का विश्वास करने वाला योगी काम तथा उसके साथ अन्य शत्रुओं को अपने पर अधिकार करने का अवसर देता है। जिस प्रकार व्यभिचारिणी स्त्री जारों को बुलाकर पति को मरवा डालती हैं। जिसके कारण काम, क्रोध,मद, लोभ, शोक, मोह, भय आदि होते हैं और जिसके कारण कर्मबन्धन होता है, उसपर कौन विद्वान विश्वास करेगा॥ ५ ॥

राजोवाच—

१—ननूनं भगव आत्मारामाणा योगसमीरित ज्ञानावभर्जित कर्मबीजानामैश्वर्याणि पुनः क्लेशदानि भवितुमर्हंति यदृच्छयोपगतानि।

ऋषिरुवाच—

२—सत्यमुक्तं किंत्विहवा एकेन मनसोऽद्धाविश्रम्भमनवस्थानस्य शठकिरातइव संगच्छते ॥

तथाचोक्त—

३—न कुर्यात्कर्हिचित्सख्य मनसि ह्यनवस्थिते। यद्विश्रम्भाच्चिराच्चीर्णं चस्कंदतप ऐश्वर ॥

४—नित्यं ददाति कामस्य छिद्रं तमनुयेऽरयः। योगिनः कृतमैत्रस्य पत्युर्जायेव पुंश्चली ॥

५—कामोमन्युर्मदोलोभः शोकमोहभयादयः। कर्मबन्धश्च यन्मूलः स्वीकुर्यात्कोनु तद्बुधः ॥

ऋषभदेवजी समस्त लोकपालों मे श्रेष्ठ थे। पर जड़ के समान विलक्षण अवधूतवेष, भाषा और आचरण से उनका भगवत्प्रभाव व्यक्त नहीं होता था। योगियों को परलोकगमन की शिक्षा देने के लिए उन्होंने शरीरत्याग करना निश्चय किया। परमात्मा मे निरन्तर स्थित अपनी आत्मा को अभेदरूप में देखते हुए उन्होंने शरीराभिमान का त्याग कर दिया, वे जीवन् मुक्त हो गये। भगवान् ऋषभदेव ने देहाभिमान छोड़ दिया था, तथापि प्रारब्ध कर्मों का भोग बाकी था। इस अवशिष्ट कर्मयोग को अभिमानाभास कहते हैं। अतएव योगमाया की वासना से अवशिष्ट अभिमानाभास के कारण ऋषभदेव पृथ्वी मे घूमते हुए कर्नाटक देश के दक्षिणस्थ कोङ्क, वेङ्क और कुटक नाम के देशों में अकस्मात् चले गये। जिस प्रकार कुम्हार का चक्कर एक बार घुमाने से घूमता रहता है। जब तक घुमाने का वेग वतमान रहता है तबतक वह घूमता रहता है, इसी प्रकार जीवन्मुक्त का शरीर भी कर्मफल भोग के लिये थोड़े समय के लिये कर्म करता रहता है। वहाँ कुटकाचल के वन में वे मुँह में पत्थर रखकर, खुले केश और नङ्गे उन्मत्त के समान घूमने लगे। अकस्मात उस वन में हवा चली, बाँस काँपकर आपस मे रगड़ खाने लगे, इससे भयंकर दावानल उत्पन्न हुआ और वह उस वन को जलाने लगा। ऋषभदेव उसी दावानल से जल गये। कोङ्क,वेङ्क कुटक देशो के राजा अर्हन ने ऋषभ-देव के आश्रमातीत चरित का वर्णन सुना। जीवन्मुक्त होकर अवधूतवेष में रहकर वे जो

६—अथैवमखिललोकपालललामो विलक्षणैर्जडवदवधूतवेषभाषाचरितैरविलक्षितभगवत्प्रभावो योगिनां सांपरायविधिमनुशिक्षयन् स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्यात्मानमसंव्यवहितमनर्थान्तरभावेनान्वीक्षमाण उपरतानुवृत्तिरुपरराम ॥

७—तस्य ह्वा एव मुक्तलिंगस्य भगवत ऋषभस्य योगमायावासनया देहइमां जगतीमभिमानाभासेन चंक्रममाणः ॥

८—कोंकवेंककुटकान्दक्षिणकर्णाटकान्देशान्यदृच्छयोपगतः कुटकाचलोपवन आस्यकृताश्मकवल उन्माद इव मुक्तमूर्धजो संवीतएव विचचार ॥

९—अथ समीरवेगविधूतवेणुविकर्षणजातोग्रदावानलस्तद्वनमालेलिहानः सहतेन ददाह ॥

१०—यस्य किलानुचरितमुपाकर्ण्य कोंकवेंककुटकानां राजाऽर्हन्नामोपशिक्ष्य कलावधर्म उत्कृष्यमाणे भवितव्येन विमोहितः स्वधर्मपथमकुतोभयमपहाय कुपथपाखंडमसमञ्जसं निजमनीषया मंदः प्रवर्तयिष्यते ॥

आचरण करते थे उसका संवाद राजा को मिला। उस राजा ने ऋषभदेव का आचरण स्वयं सीख लिया, क्योंकि कलियुग का प्रभाव बढ गया था और प्राणियों के पूर्व जन्म संचित पाप से वह राजा मोहित हो गया था, उसका कर्तव्यज्ञान नष्ट हो गया था। अतएव निर्भय अपने धर्म का त्याग करके वह मूर्ख राजा अपनी ही बुद्धि से कुपथ-पाखण्डमत चलाने वाला था। जिससे कलियुग में देवमाया मोहित,अपने शास्त्रोक्त शुद्धता और सदाचार का त्याग करदेंगे, देवताओं का तिरस्कार करने वाले व्रतों का अपनी-अपनी इच्छा से पालन करेंगे। स्नान न करेंगे, आचमन न करेंगे, अशुद्धि से रहेंगे, बाल नुचवा लेंगे अधर्म बहुल कलि युग से उनकी बुद्धि नष्ट हो जायगी। वे प्रायः वेद, ब्राह्मण, विष्णु और सज्जनों की निन्दा करेंगे। वेदविरुद्ध अन्धपरम्परा रूप अपने ही आचार-विचार में विश्वास रखेंगे, उसी का पालन करेंगे, अतएव वे स्वयं घोर अन्धकार (नरक) में पड़ेंगे। यह ऋषभदेव का अवतार रजोगुणी मनुष्यों को मोक्षमार्ग की शिक्षा देने के लिये हुआ था, उनके सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता है॥ १३॥

सात समुद्रों से घिरा इस पृथिवी के द्वीपों, और वर्षो मे यह भारत वर्ष अधिक पवित्र है। जहा के निवासी भगवान् के अवतारों के पवित्र चरित गाया करते हैं। यश से शुद्ध प्रियव्रत का वंश धन्य है, जिसमें पुराण पुरुष ने अवतार धारण किया है। जिस आदिपुरुष ने योग के लिए धर्माचरण किया था। इस अजन्मा ऋषभदेव के मार्ग का अनुसरण मन से भी कौन योगी कर सकता है। ऋषभदेव ने तुच्छ समझकर जिस माया का तिरस्कार कर दिया उसी को वे प्राप्त करना चाहते हैं, उसी के लिए वे उद्योग करते है॥ १५॥

११—येनेहवाव कलौ मनुजापसदादेव मायामोहिताः स्वविधिनियोग शौचचारित्रविहीनादेवहेलनान्यपव्रता नि निजेच्छया गृह्णाना अस्नानानाचमनाशौचकेशोल्लुचनादीनिकलिनाऽधर्मबहुलेनोपहतधियो ब्रह्म ब्राह्मणयज्ञपुरुषलोकविदूषकाः प्रायेण भविष्यति॥

१२—तेचह्यर्वाकनया निजलोकयात्रयाऽन्धपरपरयाश्वस्तास्तमस्यन्वे स्वयमेव प्रपतिष्यति॥

१३—अयमवतारो रजसोपप्लुत कैवल्योपशिक्षणार्थः। तस्यानुगुणान् श्लोकान् गायति॥ -

१४—अहोभुवः सप्तसमुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत्।

गायति यत्रत्यजना मुरारे. कर्माणि भद्राण्यवतारवंति॥

१५—अहोनुवंशो यशसाऽवदातः प्रैयव्रतो यत्र पुमान्पुराणः।

कृतावतारः पुरुषः स आद्यश्चचार धर्मं यदकर्महेतुं॥

इस प्रकार समस्त लोक, वेद, देवता, ब्राह्मण और गौओं के रक्षक भगवान् ऋषभदेव का चरित्र मैंने तुमसे कहा। यह मनुष्यों के समस्त पापों को दूर करने वाला और उन्हें परम मंगल देने वाला है। जो भगवान् वासुदेव में स्थिर चित्त होकर इसको सुनता है और सुनाता है, इन दोनों की भगवान में दृढ भक्ति उत्पन्न होती है। संसार के विविध पाप-तापों से तप्त अपने को जिस भक्ति में सदा स्नान कराते हैं और उसी से नितान्त तृप्त होकर परम पुरुषार्थ रूप स्वयं प्राप्त मोक्ष का भी आदर नहीं करते। क्योंकि भगवद्भक्त होने को ही वे समस्त पुरुषार्थो की प्राप्ति समझते हैं। राजन्! आप पाण्डवों के और यादवों के वे भगवान् रक्षक थे, गुरु थे, उपास्य थे, मित्र थे, स्वामी थे, और कभी आज्ञाकारी सेवक थे। यह सब आप लोगों के लिए था सही, पर दूसरों को वे भगवान् मुक्ति दे सकते है, भक्ति नहीं। स्वानुभव की प्राप्ति से ऋषभदेव जी की समस्त तृष्णाएँ निवृत्त हो गयी थीं, उन्हें न कुछ पाना था और न करना तथापि शरीर आदि के लिए उद्योग करने वाले अतएव आत्मकल्याण से उदासीन मनुष्यों के कल्याण के लिए कृपा करके जिन्होंने निर्भय अपने स्वरूप का उपदेश दिया, उस ऋषभदेव को नमस्कार॥ २०॥

श्रीमद्भागवत के पांचवे स्कंध का छठवाँ अध्याय समाप्त

——:o:——
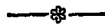
१६—कोन्वस्यकाष्ठामपरोनुगच्छेन्मनोरथेनाप्यभवस्य योगी।
यो योगमायाः स्पृहयत्युदस्ताह्यसत्तया येन कृतप्रयत्नाः॥

१७—इति ह स्म सकलवेदलोकदेवब्राह्मणगवां परमगुरोर्भगवत ऋषभाख्यस्य विशुद्धाचरितमीरितं पुंसां समस्तदुश्चरिताभिहरणं। परममहामङ्गलायनमिदमनुश्रद्धयोपचितयाऽनुशृणोत्याश्रावयति वाऽवहितो भगवति तस्मिन्वासुदेव एकान्ततो भक्तिरनयोरपि समनुवर्तते॥

१८—यस्यामेव कवय आत्मानमविरतं विविधवृजिनसंसारपरितापोपतप्यमानमनुसवनं स्नापयन्तस्तयैव परया निर्वृत्या ह्यपवर्गमात्यन्तिकं परमपुरुषार्थमपि स्वयमासादितं नो एवाद्रियन्ते भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्त सर्वार्था॥

१९—राजन्पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किङ्करो वः।
अस्त्वेवमङ्ग भगवान् भजतां मुकुन्दो मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगं॥

२०—नित्यानुभूत निजलाभनिवृत्ततृष्णः श्रेयस्य तद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः।
लोकस्य यः करुणयाभयमात्मलोक माख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै॥

इतीश्रीभागवते म० पु० ऋषभदेवानुचरितेषष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

भरत-चरित्र

भरत महाभागवत थे, भगवान् ने पृथिवी का शासन करने की आज्ञा जब सङ्कल्प रूप से दी, तब उस आज्ञा का पालन करने के लिए विश्वरूप की कन्या पञ्चजनी से उन्होंने ब्याह किया। उस पञ्चजनी से उन्होंने ठीक अपने अनुरूप पाँच पुत्र उत्पन्न किये, जिस प्रकार अहंतत्व शब्द, स्पर्श आदि सूक्ष्मभूतों को उत्पन्न करता है, वे सुमति, राष्ट्रभृत, सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु नाम के पाँच थे। जिस भरत के कारण यह अजनाभ नामक वर्ष भारतवर्ष के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वे सर्व राजा भरत अपने पिता-पितामह के समान बडे स्नेह से, अपने-अपने कर्मों का पालन करने वाली प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करने लगे। क्रतु और यज्ञ (यूप गाड़कर किया जाने वाला यज्ञ क्रतु कहा जाता है और बिना यूप का, यज्ञ है) रूप भगवान् की आराधना के लिये राजा ने श्रद्धा से स्थापित छोटे-बडे अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास्य चातुर्मास्य, पशुयाग और सोमयाग आदि यज्ञ ऋत्विक, उद्गाता, ब्रह्मा और अध्वर्यु के

श्रीशुक उवाच—

१—भरतस्तु महाभागवतो यदाभगवताऽवनितलपरिपालनाय सचिंतितस्तदनुशासनपरः पंचजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे ॥

२—तस्यामुहवा आत्मजान्कार्त्स्न्येनानुरूपानात्मनः पंचजनयामास भूतादिरिवभूतसूक्ष्माणि ॥

३—सुमतिं राष्ट्रभृतं सुदर्शनमावरणं धूम्रकेतुमिति ।

अजनाभं नामैतद्वर्षंभारतमिति यत आरम्य व्यपदिशन्ति ॥

४—स बहुविन्महीपतिः पितृपितामहवदुरुवत्सलतया । स्वेस्वे कर्मणि वर्तमानाः प्रजा स्वधर्ममनुवर्तमानः पर्यपालयत् ॥

५—ईजेच भगवन्तं यज्ञक्रतुरूपं क्रतुभिरुच्चावचैः श्रद्धयाहृताग्निहोत्रदर्शपूर्णमासचातुर्मास्य पशुसोमानां प्रकृतिविकृतिभिरनुसवनं चातुर्होत्रविधिना ।

द्वारा प्रकृति (सर्वाङ्गपूर्ण यज्ञ) और विकृति (हीनाङ्ग यज्ञ) दोनों प्रकार के किये। इस प्रकार राजा के अनेक यज्ञ हो रहे थे, अङ्गभूत क्रियाएँ पूरी की जा रही थीं और उनसे क्रियाफल के रूप मे धर्म नामक अपूर्व उत्पन्न हो रहा था। राजा भरत इस अपूर्वको पर-ब्रह्म भगवान् यज्ञ-पुरुष वासुदेव के उद्देश्य से अर्पित कर दिया करते थे, क्योंकि वे भगवान्, देवताओं का वर्णन करने वाले मन्त्रों के अर्थरूप इन्द्र आदि देवताओं के नियामक हैं, अत. उनको यज्ञ का साक्षात् कर्ता समझकर राजा उन्हींके उद्देश्य से यज्ञफल अर्पित कर दिया करते थे। इस बुद्धिमानी के कारण राजा के मन का मल दूर हो गया। जब अध्वर्यु देवताओं के लिये हवि उठाते थे, उस समय भी राजा उन्हीं यज्ञपुरुष के अवयवों मे उन देवताओं का ध्यान करते थे, भगवान् के भिन्न २ अङ्गों को भिन्न-भिन्न देवता के रूप मे देखते थे। इस प्रकार कर्म के शुद्ध होने से अन्त.करण शुद्ध हुआ। राजा भरत के उस विशुद्ध हृदय में भगवान् की भक्ति उत्पन्न हुई। जिस भगवान् का शरीर हृदयाकाश है, अर्थात भगवान् की ज्योति हृदयाकाश में प्रगट होती है। जिस भगवान् का आकार महापुरुषों के समान है, जो श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, चक्र, शंख और गदा से सुशोभित हैं और जिनका पुरुषरूप भक्तों के हृदय मे अंकित है, उन भगवान् वासुदेव की भक्ति सदा शोभित होने वाली दिनों दिन वेग

६—सम्प्रचरत्सु नानायागेषु विरचिताङ्गक्रियेष्वपूर्वं यत्तत्क्रियाफलं धर्माख्यं परेब्रह्मणि यज्ञपुरुषे सर्वदेवता लिङ्गाना मंत्राणामर्थनियामकतया साक्षात्कर्तरि परदेवताया भगवति वासुदेव एव भावयमानआत्मनै पुणमृदितकषायोहविष्ष्वध्वर्युभिर्गृह्यमाणेषु सयजमानो यज्ञभाजो देवस्तान्पुरुषावयवेष्वभ्यध्यायत् ॥

७—एव कर्मविशुद्ध्याविशुद्धसत्वस्यान्तर्हृदयाकाशशरीरे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवे महापुरुषरूपोपलक्षणे श्रीवत्सकौस्तुभवनमालाऽरिदरगदादिभिरुपलक्षिते निजपुरुषहृल्लिखितेनात्मनि पुरुषरूपेण विरोचमान उच्चैस्तरां भक्तिरनुदिनमेधमानरयाऽजायत ॥

८—एव वर्षायुतसहस्रपर्यंतावसितकर्मनिर्वाणावसरोऽधिभुज्यमान स्वतनये भ्योरिक्थ पितृपैतामहं यथादायं विभज्य स्वयं सकलसपन्निकेतात्स्वनिकेतात्पुलहाश्रम प्रवव्राज यत्र हवावभगवान्हरिरद्यापि तत्रत्यानां निजजनाना वात्सल्येन सन्निधाप्यते इच्छारूपेण ॥

से बढ़ने लगी। दस हजार वर्ष तक राज्य पालन करने के पश्चात् पिता-पितामह का राज्य अपने पुत्रों में अधिकार के अनुसार बाँटकर समस्त सम्पत्तियों का भाण्डार अपना घर छोड़कर पुलहमुनि के आश्रम मे गये। जिस आश्रम मे भगवान् आज भी वहाँ के निवासी अपने भक्तों की इच्छा के अनुसार वहाँ उपस्थित होते है। वहाँ भी अनेक आश्रम हैं, वहाँ चक्र नदी (गण्डकी) नामकी एक नदी है, जिसने ऊपर और नीचे चक्र वाले पत्थर होते हैं, वह नदी वहाँ के आश्रमों को पवित्र करती है। वहाँ पुलह-आश्रम के पास भरत अकेले रहकर अनेक प्रकार के फूल, पत्ते, तुलसी, जल, कन्द, मूल, फल आदि के उपचारों द्वारा भगवान् की आराधना करने लगे। एकान्त मे रहकर विषयाभिलाप का त्याग कर शान्ति पूर्वक रहने से राजा भरत परम तृप्त हुए। इस प्रकार निरन्तर भगवान् की पूजा से भगवान् सम्बन्धी अनुराग बढ़ने लगा। जिससे हृदय पिघल गया और शिथिल हो गया। आनन्दाधिक्य से शरीर रोमाञ्चित हो जाता था और उत्कण्ठा के कारण आँखों से आसू चलने लगते, जिससे देखने की शक्ति नष्ट हो जाती थी। इस प्रकार अपने प्रिय भगवान् के रक्त चरणारविंद के ध्यान से प्रवृद्ध भक्तियोग के द्वारा भरे हुए राजा के गम्भीर हृदय सरोवर मे जो परम आह्लाद से लबालब भरा हुआ था, राजा की बुद्धि डूब गयी। अतएव वे भगवान् की पूजा भी भूल गये। इस प्रकार भगवान् का व्रत धारण करने वाले, मृगचर्म पहनने वाले, त्रिसन्ध्या स्नान करने से उनकी जटा भीगी रहती थी, वह पीली और

९—यत्राश्रमपदान्युभयतो नाभिभिर्दृषच्चक्रैश्चक्रनदीनामसरित्प्रवरा सर्वतः पवित्रीकरोति ॥

१०—तस्मिन्वाव किल स एकलः पुलहाश्रमोपवने विविधकुसुमकिसलयतुलसिकाऽम्बुभिः कन्दमूलफलोपहारैश्च समीहमानो भगवत आराधनं विविक्त उपरतविषयाभिलाष उपभृतोपशमः परां निर्वृतिमवाप ॥

११—तयेत्थमविरतपुरुषपरिचर्यया भगवति प्रवर्धमानानुरागभरद्रुतहृदयशैथिल्यः प्रहर्षवेगेनात्मन्युद्भिद्यमानरोमपुलककुलक औत्कण्ठ्यप्रवृत्तप्रणयबाष्पनिरुद्धावलोकनयन एवं निजरमणारुणचरणारविन्दानुध्यानपरिचितभक्तियोगेन परिप्लुतपरमाह्लादगम्भीरहृदयह्रदावगाढधिषणस्तामपि क्रियमाणां भगवत्सपर्यां न सस्मार ॥

टेढ़ी जटासमूह से शोभित हो रहे थे। प्रातःकाल सुवर्ण के समान चमकते उदय होने वाले सूर्यमण्डल में भगवान का ध्यान करते थे और उनको स्तुति इस प्रकार करते थे। भगवन्! आप प्रकृति से अलग हैं और भगवान् सूर्य के तेज हैं। आप कर्म-फल देने वाले हैं। अपने मन के द्वारा आप सृष्टि करने वाले हैं, अतएव अन्तर्यामी रूप से इसमे प्रवेश करके, आपकी अपेक्षा करने वाले जीव को अपनी चित् शक्ति से देखिए। मनुष्य की बुद्धि मे भ्रमण करने वाले तेज स्वरूप! आपकी शरण में हम आये हैं॥ १३॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवे स्कन्ध का सातवाँ अध्याय समाप्त

१२—इत्थं धृतभगवद्व्रत ऐणेयाजिनवाससाऽनुसवनाभिषेकार्द्रकपिशकुटिलजटाकलापेन च विरोचमानः सूर्यर्चा भगवन्तं हिरण्मयं पुरुषमुज्जिहाने सूर्यमण्डलेऽभ्युपतिष्ठन्नेतदु होवाच॥

१३—परोरजः सवितुर्जातवेदो देवस्य भर्गो मनसेदं जजान।
सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे हंसं गृध्राणं नृषद्रिङ्गिरामिमः॥

इतीश्रीभागवतेमहापुराणेपञ्चमस्कंधेभरतचरित्रेभगवत्परिचर्यायांसप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

राजा भरत का मृगरूप में जन्म

श्री शुकदेव बोले—एक बार महानदी-गण्डकी में स्नान करके राजा भरत ने नियम सम्बन्धी तथा आवश्यक कर्म किये और वे ओंकार जप करते हुए तीन मुहूर्त तक नदी के तीर पर बैठे रहे। राजन्, उस समय एक हरिणी जल पीने के लिए अकेली नदी तीर पर आयी। हरिणी जल पी रही थी, उस समय पास ही किसी सिंह के गर्जन का लोकभयंकर शब्द सुनपड़ा। स्वभाव से ही हरिणी डरने वाली और चकित होकर देखने वाली होती है। उस भयंकर गर्जन को सुनकर सिंह के भय से उसका हृदय और व्याकुल हो गया, आँखें व्याकुल हो गयीं। पानी बिना पीये ही वह वहाँ से भयभीत होकर कूदकर भागी। वह गर्भवती थी। कूदने के समय अधिक भय के कारण उसका गर्भ स्थान से हट गया और वह निकल कर नदी की धारा में गिर गया। गर्भपात और दूर आने के खेद से तथा सिंह के भय से उसको बड़ा दुःख हुआ। अपने साथियों का साथ छूटजाने से अकेली हरिणी किसी गुफा में जाकर गिर पड़ी और मर गयी। वह हरिणी का बच्चा नदी की धारा में बहता जाता था। उसको बिना माँ का समझकर राजा भरत दया से अपने आश्रम में ले आये, जिस प्रकार किसीके छोड़े बच्चे को उसका कोई

श्रीशुकउवाच—

१—एकदातु महानद्यां कृताभिषेकनैयमिकावश्यको ब्रह्माक्षरमभिगृणानो मुहूर्तत्रयमुदकान्त उपविवेश तत्र तदाराजन्हरिणी पिपासया जलाशयाभ्याशमेकैवोपजगाम तया पेपीयमानउदके तावदेवाविदूरेण नदतो मृगपतेरुन्नादो लोकभयंकर उदपतत् ॥ ३ ॥

४—तमुपश्रुत्य सा मृगवधूः प्रकृतिविक्लवा चकितनिरीक्षणा सुतरामपि हरिभयाभिनिवेशव्यग्रहृदया पारिप्लवदृष्टिरगततृषा भयात्सहसैवोच्चक्राम ॥

५—तस्य उत्पतन्त्या अन्तर्वत्न्या उरुभयावगलितो योनिनिर्गतोगर्भः स्रोतसि निपपात।

६—तत्प्रसवोत्सर्पणभयखेदातुरा स्वगणेन वियुज्यमाना कस्यांचिद्दर्यां कृष्णसारसती निपपात अथ च ममार ॥

बान्धव उठा लाता है। राजा भरत का प्रेम उस मृगशिशु मे दिनों दिन बढने लगा,राजा उसे अपना समझने लगे और इस प्रकार उसमे उनकी ममता हो गयी। अतएव वे उसीके पालन-पोषण, लालन-प्रसादन आदि की चिन्ता मे व्यस्त रहने लगे, जिससे नियम-यम भगवान की सेवा आदि एक २ करके धीरे २ छूटने लगे और इस प्रकार सब के सब छूट गये। वे उसके बारे मे इस प्रकार सोचते थे, देखो,यह बिचारा मृगशिशु कालचक्र मे पड़कर अपने साथियों, मित्रों और वान्धवों से अलग हो गया है, पर मेरी शरण आया है। मुझको ही माता-पिता, भाई बान्धव तथा साथी सब कुछ समझता है और किसीको नही जानता। यह मुझमे विश्वास भी अधिक रखता है। शरणागत की उपेक्षा के दोष को मै जानता हूं, इस प्रकार मेरी शरण में आये, इस मृगशिशु का लालन पालन-पोषण आदि अपना काम छोडकर भी मुझे करना चाहिये। दीनों पर दया करने वाले उत्तम चरित्र शान्त साधु ऐसे ऐसे अवसरों पर अपने बड़े-बड़े कर्मो की भी उपेक्षा कर देते हैं। उस मृग मे इस प्रकार आसक्त होकर राजा भरत खाने, पीने-उठने, बैठने, सोने-घूमने मे सदा उसे अपने साथ रखने लगे। उनका हृदय उसमे स्नेह से बँध गया। जब वे वन में कुश, फूल, लकडी, पत्ते, फल, मूल और जल लाने के लिये जाते थे, तब वे भेडिये और कुत्तों के भय से उस मृग को भी साथ ले जाते थे। रास्ते मे चलने के समय वह मृग कहीं-कहीं खडा हो जाता था और भोलेपन से इधर-उधर देखने लगता था, उस समय राजा का हृदय स्नेह से भर जाता था और वे उसे कन्धे पर उठा लेते थे। कभी

७—तं त्वेणकुणकं कृपणं स्रोतसाऽनूह्यमानमभिवीक्ष्यापविद्धं बन्धुरिवानुकम्पया राजर्षिर्भरत आदाय मृतमातरमित्याश्रमपदमनयत् ॥

८—तस्य ह वा एणकुणक उच्चैरेतस्मिन् कृतनिजाभिमानस्याहरहस्तत्पोषणपालनलालनप्रीणनानुध्यानेनात्मनियमाः सहयमाः पुरुषपरिचर्यादय एकैकशः कतिपयेनाहर्गणेन वियुज्यमानाः किल सर्व एवोदवसन् ॥

९—अहो बतायं हरिणकुणकः कृपण ईश्वररथचरणपरिभ्रमणरयेण स्वगणसुहृद्बन्धुभ्यः परिवर्जितः शरणं च मोपसादितो मामेव मातापितरौ भ्रातृज्ञातीन्यौथिकांश्चैवोपेयाय नान्यं कंचन वेद मय्यतिविस्रब्धश्च अतएव मयामत्परायणस्य पोषणपालनप्रीणनलालनमनसूयुनाऽनुष्ठेयं शरण्योपेक्षादोषविदुषा ॥

१०—नूनं ह्यार्याः साधव उपशमनशीलाः कृपणसुहृद एवंविधार्थे स्वार्थानपि गुरुतरानुपेक्षन्ते ॥

११—इति कृतानुषङ्ग आसनशयनाटनस्थानाशनादिषु सह मृगजहुना स्नेहानुबद्धहृदय आसीत् ॥

उसको गोद में ले,कभी छाती पर रखकर दुलारते और परम प्रसन्न होते। वे किसी धामिक क्रिया मे लगे रहते और बीच में ही उठकर उस मृग को देखते और स्वस्थ चित्त से उसे आशीर्वाद देते। वत्स, तुह्मारा कल्याण हो, जब वह मृग कहीं चला जाता है, दिखाई नहीं पडता, तब वे धननष्ट होने पर कृपण के समान अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं। दया और उत्सुकता के कारण मृगशिशु के विरह से उनका हृदय सन्तप्त हो जाता है और वे मूर्छित से हो कर कहने लगते हैं। वह बेचार मृगशिशु, मृतमाता का पुत्र है, क्या वह शठ और किरात के समान निर्दय, अभागा और दुष्ट मेरे पास आवेगा, क्योंकि उसका चित्त शुद्ध है और वह मुझ पर विश्वास करता है, अतएव सज्जनों के समान मेरे अपराधों पर उसे ध्यान न देना चाहिये। क्या इस आश्रम के पास घास चरते मैं उसे देखूंगा, उसकी रक्षा तो ईश्वर अवश्य करेगा ही। भेडिया, कुत्ता, यूथ मे चलने वाला सूकर या अकेला चलने वाला बाघ तो उसे न खाजायगा, जिसका हृदय ससार के कल्याण के लिये होता है, वे भगवान् सूर्य अस्त हो रहे हैं, फिर भी अभी तक वह हरिणी का थाती नहीं आया। वह मृगराजकुमार आकर अभागी मुझको प्रसन्न करेगा। सुन्दर दर्शनीय मृगशिशुओं की अनेक प्रकार की क्रीडाओं से अपने लोगों का खेद दूर करेगा। खेल मे मैं झूठी समाधि लगाकर बैठता हूं, आखे खुली रहती है, उस समय डरता डरता वह स्नेह-कोप पूर्वक आता है और अपनी कोमल सींगे रगडता है।

१२—कुशकुसुमसमित्पलाशफलमूलोदकान्याहरिष्यमाणो वृकसालावृकादिभ्यो भयमाशसमानो यदा सह हरिणकुणकेन वन समाविशति ॥

१३—तदा पथिषु च मुग्धभावेन तत्रतत्र विषक्तमतिप्रणयभरहृदय कार्पण्यात् स्कधेनोद्वहति एवमुत्सगे उरसि चाधायोपलालयन्मुद परमामवाप ॥

१४—क्रियायां निवर्त्यमानायामन्तरालेऽप्युत्थायोत्थाय यदैनमभिचक्षीत तर्हि वाव स वर्षपति प्रकृतिस्थेन मनसा तस्मा आशिष आशास्ते स्वस्तिस्ताद्वत्स ते सर्वत इति ॥

१५—अन्यदाभृशमुद्विग्नमना नष्टद्रविण इव कृपण [illegible] स्तमेवानुशोचन्किल कश्मल महदभिरम्भित इति होवाच ॥

कुश पर मैं हवि आदि रखता हूं, वह अपनी चंचलता से उसे खराब कर देता है, तब मैं उसे डाटता हूं। वह डरकर उसी समय खेल छोड़देता है और ऋषिकुमार के समान इन्द्रियों को सावधान करके बैठ जाता है। इस बेचारी पृथिवी ने कौन सा तप किया है, जो यह पृथिवी, विनयी कृष्णमृग के छोटे, सुन्दर और सुखकारी खुरों से अंकित पंक्ति के द्वारा, धनरूप मृग के विरह से आतुर मुझको उस मृग का पता बतलाती है और सब प्रकार से विभूषित होकर यह अपने को स्वर्ग और मोक्ष चाहने वाले ब्राह्मणों की यज्ञभूमि बनाती है। अथवा ये नक्षत्र-पति चन्द्रमा, अपने आश्रम से भूले हुए मातृहीन मृगशिशु की कृपापूर्वक सिंह के भय से रक्षा करते हैं, क्योंकि वे दुखियों पर दया करने वाले हैं। स्थल-कमल रूप मेरा हृदय पुत्रवियोग दावाग्नि से तप रहा है, उस मुझको जिसके साथ मृग है, अपनी शीतल और शान्त किरणों से शीतल करेंगे, जो किरणे मेरे अनुराग के कारण दुहरी हो गयी हैं और जो चन्द्रमा के मुख से निकली जल-रूपी अमृतमय हैं॥ २५॥

इस प्रकार की असम्भव चिन्ताओं से उनका मन व्याकुल हो गया। मृगशिशु रूप उनके कर्मफल भोगों ने उन्हें योगभ्रष्ट कर दिया और इस प्रकार ये योगी और तपस्वी भगवान् की आराधना से भी विमुख हो गये। यदि ऐसा न होता तो दूसरी जाति के मृगशिशु पर अपने पुत्र के समान उनकी आसक्ति कैसे होती। क्योंकि इन्हीं राजर्षि भरत ने पहले अपने औरस पुत्रों

१६—अपि बत सवै कृपण एणबालको मृतहरिणीसुतोऽहोममानार्यस्य शठकिरातमतेरकृतसुकृतस्य कृत विस्रंभ आत्मप्रत्ययेन तदविगणयन्सुजन इवाऽऽगमिष्यति ॥

१७—अपि क्षेमेणास्मिन्नाश्रमोपवने शष्पाणि चरन्त देवगुप्त द्रक्ष्यामि ॥

१८—अपि च न वृकः सालावृकोऽन्यतमोवानैकचर एकचरो वा भक्षयति ॥

१९—निम्लोचति ह भगवान्सकलजगत्क्षेमोदयस्त्रय्यात्माऽद्यापि ममनमृगवधून्यास आगच्छति ॥

२०—अपि स्विदकृतसुकृतमागत्य मा सुखयिष्यति हरिणराजकुमारो विविधरुचिरदर्शनीयनिजमृगदारकविनोदैरसंतोष स्वानामपनुदन् ॥

२१—क्ष्वेलिकाया मा मृषा समाधिनाऽऽमीलितदृशं प्रेमसंरम्भेण चकितचकित आगत्य पृषदपरुषविषाणाग्रेण लुठति ॥

२२—आसादितहविषि बर्हिषि दूषिते मयोपालब्धो भीतभीतः सपद्युपरतरास ऋषिकुमारवदवहितकरणकलाप आस्ते ॥

का, मोक्षविरोधी समझकर त्याग कर दिया था, जिन पुत्रों का त्याग दूसरों के लिए कठिन है, उन्हीं राजर्षि का योग विघ्नों से नष्ट हो गया। इसी समय जब कि मृगबालक के पालन-पोषण-लालन आदि में आकर उन्होंने आत्मतत्व का तिरस्कार कर दिया था, क्रूर वेगवाला काल आया, जिस प्रकार चूहे के बिल के पास सर्प आता है। उनके पास बैठकर मृगशिशु निज पुत्र के समान दु.ख कर रहा था, भरत उसको देख रहे थे उनका मन उसीमे लगा था। उन्होंने मृग के साथ इस लोक को छोड़ दिया। मरने पर भी इस जन्म की स्मृति बनी रहने के कारण उन्होंने साधारण मनुष्यों के समान मृगशरीर पाया, अर्थात् मृगयोनि मे उनका जन्म हुआ। पूर्व जन्म मे, उन्होंने भगवान् की जो आराधना की थी, उसके प्रभाव से उन्हे मृगयोनि में अपने जन्म लेने का कारण मालूम हो गया और वे इससे बहुत ही दुखी हुए और मन-ही-मन बोले। ओह ! बड़ा कष्ट हुआ। मैं ज्ञानियों के मार्ग से भ्रष्ट हो गया। समस्त सङ्गों का त्यागकर एकान्त और पवित्र वन मे रहकर मै प्राणियों के आत्मरूप भगवान् का भजन करता था, श्रवण, मनन, कीर्तन, आराधन और स्मरण में लगे रहने के कारण मेरा कोई समय व्यर्थ न जाता था। मेरा चित्त एकाग्र हो गया था और भगवान् मे ही लगा रहता था। पर यह सब मेरी मूर्खता से एक मृगशिशु के कारण नष्ट हो गया। मृगरूप मुनि के मन-ही-मन इस प्रकार वैराग्य

२३—किंवा अरे आचरितं तपस्तपस्विन्याऽनयायदियमवनिः सविनयकृष्णसारतनयतनुतरसुभगशिवतमा खरखुरपदपक्तिभिर्द्रविणविधुरातुरस्य कृपणस्य मम द्रविणपदवीं सूचयत्यात्मान च सर्वतः कृतकौतुक द्विजाना स्वर्गापवर्गकामाना देवयजनं करोति ॥

२४—अपि स्विदसौ भगवानुडुपतिरेनं मृगपतिभयान्मृतमातर मृगबालक स्वाश्रमपरिभ्रष्टमनुकपया कृपणजनवत्सलः परिपाति ॥

२५—किंवाऽऽत्मजविश्लेषज्वरदवदहनशिखाभिरुपतप्यमानहृदयस्थलनलिनीकमामुपसृतमृगीतनय शिशिरशान्तानुरागगुणितनिजवदनसलिलामृतमयगभस्तिभिः स्वधयतीति च ॥

२६—एवमघटमानमनोरथाकुलहृदयो मृगदारभासेन स्वारब्धकर्मणा योगारभणतो विभ्रंशितः सयोगतापसो भगवदाराधनलक्षणाच्च कथमितरथाजात्यतर एणकुणक आसगः साक्षान्निःश्रेयसप्रतिपक्षतया प्राक्परित्यक्त दुस्त्यजहृदयाभिजातस्य तस्यैवमंतराय विहतयोगारभणस्य राजर्षेर्भरतस्य तावन्मृगार्भकपोषणपालनप्रीणनलालनानुषगेणाविगणयत आत्मानमहिरिवाखुबिल दुरतिक्रमः कालः करालरभस आपद्यत ॥

उत्पन्न हुआ और वे अपनी मृगी माता को वही कालञर मे ही छोडकर पुनः भगवान् के क्षेत्र, शान्त मुनियों के प्रिय शालग्राम नामक गावँ मे पुलस्त्य और पुलह् के आश्रम में कालञ्जर से आये। वहा रहकर वे काल की प्रतीक्षा करने लगे। प्राणियों के सङ्ग से बहुत घबराते थे, अतएव अकेले रहते थे, सूखी घास, पत्ते आदि खाते थे। मृगशरीर धारण करने के कारण की समाप्ति की प्रतिक्षा करते थे। इस प्रकार एक दिन तीर्थजल से भींगा मृग शरीर उन्होंने छोड़ दिया॥ ३१॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवे स्कध का आठवाँ अध्याय समाप्त

—o—

२७—तदानीमपि पार्श्ववर्तिनमात्मजमिवानुशोचतमभिवीक्षमाणो मृगएवाभिनिवेशितमना विसृज्यलोकमिमं सहमृगेण कलेवर मृतमनुनमृत जन्मानुस्मृतिरितरव मृगशरीरमवाप॥

२८—तत्रापि हवा आत्मनो मृगत्वकारणं भगवदाराधनसमीहानुभावेनानुस्मृत्य भृशमनुतप्यमानआह॥

२९—अहो कष्ट भ्रष्टोऽहमात्मवतामनुपथाद्यद्विमुक्तसमस्तसगस्य विविक्तपुण्यारण्यशरणस्याऽऽत्मवत आत्मनि सर्वेषामात्मना भगवति वासुदेवे तदनुश्रवणमननसंकीर्तनाराधनानुस्मरणाभियोगेनाशून्यसकलयामेनकालेन समावेशितसमाहित कार्त्स्न्येन मनस्तत्तु पुनर्ममाबुधस्याऽऽगन्मृगसुतमनुपरिसुस्राव॥

३०—इत्येव निगूढनिर्वेदो विसृज्य मृगी मातर पुनर्भगवत्क्षेत्रमुपशमशील मुनिगणदयित शालग्रामं पुलस्त्यपुलहाश्रमं काल जरात्प्रत्याजगाम॥

३१—तस्मिन्नपि काल प्रतीक्षमाणः सगाच्च भृशमुद्विग्न आत्मसहचर शुष्कपर्णतृणवीरुधावर्तमानो मृगत्वनिमित्तावसानमेव गणयन्मृगशरीर तीर्थोदकक्लिन्नमुत्ससर्ज॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेपचमस्कंधेभरतचरितेऽष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

—o—

नवाँ अध्याय

जडभरत

श्रीशुकदेव बोले—शम, दम , तप, वेदाध्ययन, त्याग, सन्तोष, सहनशीलता, विनय, विद्या, वैर का अभाव, आत्मज्ञान और आनन्दयुक्त एक ब्राह्मण अंगिरा गोत्र मे था, उसके अपने ही समान विद्याशील, आचार,रूप और उदारता आदि गुणों से युक्त,एक स्त्री से नौ पुत्र हुए। छोटी स्त्री से एक यमज सन्तान हुई एक कन्या और एक पुत्र। उनमें जो पुरुष था, वह परम विष्णु भक्त राजर्षि भरत थे। मृगशरीर छोड कर उन्होंने अन्तिम ब्राह्मणशरीर धारण किया था, ऐसा लोग कहते हैं। इस जन्म मे भी वह अपने स्वजन-सम्बन्धियों से बहुत व्याकुल रहता था। अतएव कर्म-बन्धन को नष्ट करने वाले भगवान् के श्रवण, स्मरण, गुण-कीर्तन और चरणकमल का ध्यान मन से करता था। भगवान् की कृपा से उसे अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त स्मरण हो आया था, अतएव पुनः विघ्न होने के भय से वह उन्मत्त, जड, अन्ध, बधिर के समान आचरण करता था। पुत्रस्नेह से विवश होकर उस ब्राह्मण ने समावर्तन तक के समस्त संस्कार शास्त्रीय विधान के अनुसार पुत्र के कराये। यज्ञोपवीत, संस्कार, क्रिया, शौच-आचमन आदि कर्म के नियम सिखाये, यद्यपि इन कर्मों के सीखने मे बालक का कोई उत्साह न था, तथापि पिता ने शिक्षा दी। क्योंकि पुत्रों को पिता से शिक्षा लेनी ही चाहिये, यह प्रचलित है। वह बालक पिता के सामने ही उनके उपदेशों का ठीक-ठीक पालन नहीं करता था। वेद पढाने के लिए पिता ने व्याहृति प्रणव के साथ त्रिपदागायत्री सिखायी,वसन्त और ग्रीष्म ऋतु के महीने बीत

श्रीशुक उवाच—

१—अथ कस्यचिद्द्विजवरस्याङ्गिरः प्रवरस्य शमदमतपः स्वाध्यायाध्ययनत्यागसन्तोषतितिक्षाप्रश्रयविद्याऽनसूयाऽऽत्मज्ञानानन्दयुक्तस्याऽऽत्मसदृशश्रुतशीलाचाररूपौदार्यगुणानवसोदर्या अङ्गजा बभूवुर्मिथुनं च यवीयस्यां भार्यायाम्॥

२—यस्तु तत्र पुमांस्तं परमभागवतं राजर्षिप्रवरं भरतमुत्सृष्टमृगशरीरं चरमशरीरेण विप्रत्वं गतमाहुः॥

३—तत्रापि स्वजनसङ्गाच्च भृशमुद्विजमानो भगवतः कर्मबन्धविध्वंसनश्रवणस्मरणगुणविवरणचरणारविन्दयुगलं मनसा विदधदात्मनः प्रतिघातमाशङ्कमानो भगवदनुग्रहेणानुस्मृतस्वपूर्वजन्मावलिरात्मानमुन्मत्तजडान्धबधिरस्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य॥

गये पर उस बालक को वह ठीक-ठीक न सिखा सके। पवित्रता, वेदाध्ययन, व्रत, नियम, गुरु और अग्नि की सेवा आदि ब्रह्मचर्य के नियम जडभरत को अच्छे न लगते थे, तथापि पुत्र-प्रेम, और पिता के द्वारा पुत्र को शासित होना ही चाहिये, इस झूठे आग्रह से वे ब्राह्मण पुत्र को शिक्षा देने लगे। पर उनका मनोरथ पूरा न हुआ, पुत्र पण्डित न हुआ। सदा सावधान रहने वाले काल ने असावधान ब्राह्मण को घर में ही आकर पकड़ा अर्थात् ब्राह्मण की मृत्यु हुई ॥ ६ ॥

ब्राह्मण की छोटी स्त्री अपने सन्तान का भार सौतों को सौंपकर और स्वयं अनुमरण के द्वारा पतिलोक में गयी। जडभरत के भाई वेद के ही पण्डित थे। वे कर्ममार्ग के अनुयायी थे। ब्रह्म-विद्या का ज्ञान उन्हें न था। अतएव जडभरत के प्रभावको न जान कर वे इन्हें जड बुद्धि समझते थे और इसीसे इनको पढ़ाने लिखाने का विचार भी उन लोगों ने छोड़ दिया। मनुष्य नामधारी पशु जब उसे पागल व बेवकूफ और बहरा कहते, तब वह भी वैसा ही उत्तर देता। वह जब कोई काम करता तब दूसरे की इच्छा से करता। बेगार में या मजदूरी में काम करता, भीख से या स्वयं जो कुछ मिल जाता भला या बुरा वही खाता। इन्द्रियों को प्रसन्न करने के लिये स्वादिष्ट भोजन नहीं करता, क्योंकि उत्पादक कारण के न रहने से स्वयंसिद्ध और विशुद्ध आत्मानुभव रूप आत्मज्ञान उसे हो गया था। द्वन्द्वों (मान, अपमान आदि) से उत्पन्न होने वाले सुख दुःख के कारण उसे देहाभिमान था, देह आदि में उसकी ममता न थी।

४—तस्यापि ह वा आत्मजस्य विप्रः पुत्रस्नेहानुबद्धमना आसमावर्तनात्संस्कारान्यथोपदेशं विदधान उपनीतस्य च पुनः शौचाचमनादीन्कर्मनियमाननभिप्रेतानपि समशिक्षयत् अनुशिष्टेनहि भाव्यं पितुः पुत्रेणेति ॥

५—सचापि तदुह पितृसन्निधावेवासध्रीचीनमिवस्म करोति छन्दांस्यध्यापयिष्यन्सह व्याहृतिभिः सप्रणवशिरस्त्रिपदीं सावित्रीं ग्रैष्मवासन्तिकान्मासानधीयानमप्यसमवेतरूपं ग्राहयामास ॥

६—एवं स्वतनुज आत्मन्यनुरागावेशितचित्तः शौचाध्ययनव्रतनियमगुर्वनलशुश्रूषणाद्यौपकुर्वाणककर्माण्यनभियुक्तान्यपि समनुशिष्टेनभाव्यमित्यसदाग्रहः पुत्रमनुशास्यस्वयं तावदनधिगतमनोरथः कालेनाप्रमत्तेन स्वयं गृहएव प्रमत्त उपसंहृतः ॥

७—अथयवीयसी द्विजसती स्वगर्भजातं मिथुनं सपत्न्या उपन्यस्य स्वयमनुसंस्थया पतिलोकमगात् ॥

८—पितर्युपरते भ्रातर एनमतत्प्रभावविदस्त्रय्यां विद्यायामेव पर्यवसितमतयोनपरविद्यायां जडमतिरितिभ्रातुरनुशासननिर्बन्धान्न्यवृत्सत ॥

सर्दी-गर्मी और वर्षा में बैल के समान नङ्गे शरीर रहता था। उसका शरीर मोटा और गठीला था। जमीन पर सोने, शरीर साफ न करने और स्नान न करने से उसका शरीर धूल में भर गया था और उसका ब्रह्मतेज महामणि के समान प्रकाशित नहीं होता था, मैला कुचैला कपड़ा पहनता था। उसका बहुत मैला यज्ञोपवीत देखकर कोई द्विजाति और कोई ब्राह्मणाधम कहता था। जो उसका स्वरूप नहीं जानते थे, वे उसका तिरस्कार करते थे और वह यथेच्छ विचरण करता था। मजूरी में खाना लेकर जब वह काम करने लगा, तब उसके भाई भी उससे खेती का काम लेने लगे। वह भाईयों का काम करने लगा। पर उसे खेत के ऊँचा-नीचा होने का ज्ञान न था। क्या करने से अच्छा होगा, क्या करने से बुरा होगा, इसका ज्ञान उसे न था। चाँवल के कण, खली, भूसी, सड़ा और गला जो कुछ मिलता, वह उसे अमृत के समान खाता॥ ११॥

एक बार कोई शूद्र राजा पुत्रप्राप्ति की इच्छा से भद्रकाली को पुरुष का बलिदान करना चाहता था। उस राजा ने बलिदान के लिये एक मनुष्य को रखा था, पर वह भाग गया। राजा के नौकर उसको ढूढने लगे, रात हो गई, अन्धेरा छागया, पर वह मनुष्य नहीं मिला। अकस्मात् उन लोगों ने अङ्गिरागोत्री जडभरत को वीरासन से खेत की क्यारी में

९—स च प्राकृतैर्द्विपदपशुभिरुन्मत्तजडबधिरेत्यभिभाष्यमाणो यदा तदनुरूपाणि प्रभापते कर्माणि च सकार्यमाणः परेच्छया करोति विष्टितोवेतनतोवायाच्ञया यदृच्छयावोपसादितमल्पं बहुमिष्ट कदन्न वाऽभ्यवहरति परनेन्द्रियप्रीतिनिमित्तम् नित्यनिवृत्तनिमित्त स्वसिद्धविशुद्धानुभवानन्द स्वात्मलाभाधिगमः सुखदुःखयोर्द्वंद्व निमित्तयोरसंभावित देहाभिमानः॥

१०—शीतोष्णवातवर्षेषु वृषइवानावृताङ्गः पीनः संहननाङ्गः स्थण्डिलसंवेशनानुन्मर्दनामज्जनरजसा महामणिरिवानभिव्यक्त ब्रह्मवर्चसः कुपटावृतकटिरुपवीतेनोरुमषिणा द्विजातिरिति ब्रह्मबन्धुरिति संज्ञयाऽतज्ज्ञजनावमतो विचचार॥

११—यदा तु परत आहारं कर्मवेतनत ईहमानः स्वभ्रातृभिरपि केदारकर्मणि निरूपितस्तदपि करोति किंतु न समविषमन्यूनमधिकमिति वेद कणपिण्याकफलीकरणकुल्माष स्थालीपुरीषादीन्यप्यमृतवदभ्यवहरति॥

बैठकर पशु आदि से खेत की रक्षा करते देखा। इनको निर्दोषशरीर देखकर उन लोगों ने स्वामी का काम बना समझा। इन्हींको रस्सी से बाँधकर वे राजा के या भृत्य दुर्गा के मन्दिर में ले गये, प्रसन्नता से उनके मुख-मण्डल खिल गये थे। उन चोरों ने अपनी विधि के अनुसार उसका अभिषेक किया, शुद्ध वस्त्र पहनाया, भूषण, चन्दन माला आदि से उसे सजाया, भोजन कराया और इस प्रकार उसे बलिदान का पशु बनाकर देवी के सामने बैठा दिया, मृदंग, पणव, आदि बाजे बजने लगे। धूप, दीप, लावा, पत्ते, दूब, फल आदि बलिदान की सामग्रियाँ एकत्र करके रखी गईं ॥ १५ ॥

पुरुषपशु के गर्म खून से देवी की पूजा करने के लिये उस चोर शूद्रराज ने अभिमंत्रित, भयंकर और तीखी तलवार उठायी। धनमद से उन्मत्त रजोगुण, तमो-गुण, प्रकृति वाले, यथेच्छानुसार विहार करने तथा प्राणि पीडा, हिंसा आदि में आनन्द मनाने वाले, उन शूद्रों का यह कैसा भयंकर काम था कि वे भगवान् के अंश से उत्पन्न ब्राह्मण कुल का अपमान करना चाहते थे। ब्रह्मर्षि के पुत्र किसी से वैर न रखने वाले, सब प्राणियों के मित्र, स्वयं ब्रह्मज्ञानी जड़भरत का वध करना चाहते थे। जब कि इनके समान मनुष्य का वध हिंसाशास्त्र भी उचित नहीं समझते। भद्रकाली, उस ब्राह्मण की दशा देख रही थीं और उस ब्राह्मण के तेज से उनका शरीर जल रहा था। अतएव उस शरीर को छोड़कर वे सहसा बाहर आयीं।

१२—अथ कदाचित्कश्चिद्वृषलपतिर्भद्रकाल्यै पुरुष मालभतापत्यकामः ॥

१३—तस्य ह दैवमुक्तस्य पशोः पदवीं तदनुचराः परिधावन्तो निशिनिशीथसमये तमसावृतायामनधिगत पशवआकस्मिकेना केदारान् वीरासनेन मृगवराहादिभ्यः संरक्षमाणमङ्गिरः प्रवरसुतमपश्यन् ॥

१४—अथ तएनमनवद्यलक्षणमवमृश्य भर्तृकर्म निष्पत्तिं मन्यमाना बद्ध्वारशनया चण्डिकागृहमुपनिन्युर्मुदा विकसितवदनाः ॥

१५—अथ पणयस्त स्वविधिनाऽभिषिच्याहतेन वाससाऽऽच्छाद्य भूषणालेपस्रक्तिलकादिभिरुपस्कृत भुक्तवं तं धूपदीपमाल्यलाजकिसलयाङ्कुरफलोपहारोपेतया वैशससंस्थया महतागीतस्तुतिमृदंगपणवघोषेण च पुरुषपशुं भद्रकाल्याः पुरत उपवेशयामासुः ॥

१६—अथ वृषलराजपणिः पुरुषपशोरसृगासवेनदेवीं भद्रकालीं यक्ष्यमाणस्तदभिमन्त्रितमसिमतिकरालनिशितमुपाददे ॥

१७—इति तेषां वृषलानां रजस्तमः प्रकृतीनां धनमदरज उत्सिक्तमनसां भगवत्कलावीरकुलं कदर्थीकृत्यो

क्रोधावेश के वेग से देवी की भौं टेढ़ी हो गयी थीं। लम्बे और टेढ़े दाँत तथा लाल आँखों के कारण उनका मुख भयंकर हो गया था। बड़े क्रोध से अट्टहास कर रही थीं, मानो समस्त संसार का ग्रास करना चाहती हों। मूर्ति से निकलकर उन दुष्टों का गला उसी तलवार से उन्होंने काट डाला और अपने गण के साथ उनका रुधिरासव पान करके वे मदविह्वल हो गयीं, अपने गण भूतप्रेत के साथ गाने और नाचने लगीं और उन पापी दुष्टों के सिरों को गेंद बनाकर खेलने लगीं। बड़ों के अपमान करने का अपराध इसी प्रकार फलता है। परीक्षित, इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है कि अपने शिर के काटे जाने का अवसर आने पर भी जड़भरत को थोड़ी भी घबराहट न हुई, क्योंकि देह को आत्मा समझने वाली हृदय की गांठ महात्माओं में नहीं होती। सब प्राणियों को ही अपना मित्र और अपनी आत्मा समझते हैं। किसीसे वैर नहीं रखते। क्योंकि अपने निर्भय चरणमूल के आश्रय में रहने वाले ज्ञानी भक्तों की रक्षा में भगवान् देव शत्रुओं का नाश करने वाले अपने चक्र से करते हैं तथा उनकी रक्षा के लिये वे और भी अनेक उपाय करते हैं॥ २० ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवे स्कन्ध का नवाँ अध्याय समाप्त

—

दसवाँ अध्याय

जड़ भरत और राजा रहूगण

श्री शुकदेव बोले—सींधु और सौवीर देश के राजा रहूगण जारहे थे। इक्षुमती नदी के तीर पर कुलियों के जमादार ने पालकी ढोने वाले पुरुषों को ढूढते हुए, अकस्मात् उस ब्राह्मण जड़ भरत को पाया और यह समझकर कि यह जवान, मोटा और गठीले वदन का है, बैल और गधों के समान भार ढो सकेगा, बेगार मे पहले से पकडे हुओं के साथ इसे भी पकड लिया। यद्यपि ये पालकी ढोना नहीं जानते थे, फिर भी पालकी ढोने लगे। जड़भरत चींटी आदि बचाने के लिए एक एक धनुष जमीन कूदकर चलते थे, जिससे दूसरे पालकी ढोनेवालों के साथ उनका मिलान नहीं हो पाता था। इससे पालकी हिलती डुलती थी। राजा रहूगण यह देखकर पालकी ढोने वालों से बोले—'ठीक-ठीक ले चलो, क्यों हिला रहे हो,' वे ढोने वाले स्वामी का क्रोध वचन सुनकर दण्ड के भय से भीत होकर बोले-नरदेव ! हम लोग असावधान नहीं हैं और न आपकी आज्ञा के बाहर हैं, हम लोग तो ठीक-ठीक ले चल रहे है, पर यह जो अभी लगाया गया है, वह तेज नहीं चलता, अतएव इसके साथ हम लोग नहीं ढो सकते। राजा रहूगण ने सोचा कि

श्रीशुक उवाच—

१—अथ सिंधुसौवीरपते रहूगणस्य व्रजत इक्षुमत्यास्तटे तत्कुलपतिना शिबिकावाहपुरुषान्वेषणसमये दैवेनोपसादितः स द्विजवर उपलब्ध एष पीवा युवा संहननाङ्गो गोखरवद्धुरं वोढुमलमिति पूर्वविष्टिगृहीतैः सह गृहीतः प्रसभमतदर्ह उवाह शिबिकां स महानुभावः ॥

२—यदा हि द्विजवरस्येषुमात्रावलोकानुगतेर्न समाहिता पुरुषगतिस्तदा विषमगतां स्वशिबिकां रहूगण उपधार्य पुरुषानधिवहत आहहे वोढारः साध्वतिक्रमत किमिति विषममुह्यते यानमिति ॥

३—अथ त ईश्वरवचः सोपालम्भमुपाकर्ण्योपाय तुरीयाच्छङ्कितमनसस्तं विज्ञापयां बभूवुः ॥

४—न वयं नरदेव प्रमत्ता भवन्नियमानुपथाः साध्वेव वहामः अयमधुनैव नियुक्तोऽपि न द्रुतं व्रजति नानेन सह वोढुमु ह वयं पारयाम इति ॥

५—सांसर्गिको दोष एव नूनमेकस्यापि सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुमर्हतीति निश्चित्य निशम्य कृपणवचो

ठीक है, एक का दोष सब साथ रहने वालों को लगता है, अतएव इनका दोष न होगा। ऐसा निश्चय करके और उनके दीन वचन सुनकर राजा रहूगण को थोड़ा सा क्रोध आ गया। यद्यपि उन्होंने बूढ़ों का साथ किया था, तथापि स्वभाव से लाचार थे। वे छिपी आग के समान अप्रकट ब्रह्मतेज वाले जड़भरत से बोले—भाई, बड़ा कष्ट है तुमको, सचमुच बहुत थक गये हो, बहुत दूर और देर से अकेले तुम्हीं तो ढो रहे हो, तुम बहुत मोटे भी नहीं हो? न तुम्हारे अंग ही गठीले हैं और न ये तुम्हारे साथी तुम्हारे समान हैं, इस प्रकार रहूगण ने उनका बड़ा उपहास किया। फिर भी वे पहले के समान पालकी ढोते रहे, क्योंकि उनका देहाभिमान नष्ट हो चुका था। पंचभूत, इन्द्रिय और अन्तःकरणरूप माया से यह बना है, यह यथार्थ नहीं है, अतएव इसका सम्बन्ध यथार्थ कैसे हो सकता है। उनको स्वयं ब्रह्म-ज्ञान भी था, इससे उन्होंने राजा को कोई उत्तर न दिया। पालकी फिर हिली इससे क्रोध करके राजा रहूगण बोले—अरे, क्या तू जीता हुआ मरा है? मुझे कुछ न समझकर तू मेरी आज्ञा का तिरस्कार कर रहा है? अब तुम्हारे प्रमाद की मैं उचित चिकित्सा करता हूं, यमराज जनता कि जैसी चिकित्सा करते हैं, जिससे तुम ठीक हो जाओगे। राजा रजोगुण और तमोगुण के मद से उन्मत्त होकर और भगवान के निवास स्थान, उनके भक्तों का तिरस्कार करके स्वयं अपने को ही बड़ा पण्डित समझने वाला, बहुत देर तक ऐसी ही अनर्थक बाते बोलता रहा, जिनसे उसके राजापन का

राजारहूगण उपासितवृद्धोऽपि निसर्गेण बलात्कृत ईषदुत्थितमन्युरविस्पष्टब्रह्मतेजसं जातवेदसमिव रजसावृतमतिराह ॥

६—अहो कष्टं भ्रातर्व्यक्तमुरुपरिश्रान्तो दीर्घमध्वानमेकएव उहिवान्सुचिरं नातिपीवानसंहननाङ्गो जरसा चोपद्रुतो भवान्सखेनो एवापरएते संघट्टिन इति बहुविप्रलब्धोऽप्यविद्ययाविहितद्रव्यगुणकर्माशयस्व चरमकलेवरेऽवस्तुनिसंस्थानविशेषेऽहं ममेत्यनध्यारोपितमिथ्याप्रत्ययो ब्रह्मभूतस्तूष्णीं शिबिकापूर्ववदुवाह ॥

७—अथपुनः स्वशिबिकाया विषमगतायां प्रकुपित उवाच रहूगणः किमिदमरेत्वं जीवन्मृतो मां कदर्थी कृत्यभर्तृशासनमतिचरसि प्रमत्तस्य च ते करोमि चिकित्सां दण्डपाणिरिव जनताया यथाप्रकृतिं स्वां भजिष्यस इति ॥

८—एवं बह्वबद्धमपि भाषमाणं नरदेवाभिमानं रजसा तमसाऽनुविद्धेन मदेन तिरस्कृताशेष भगवत्प्रिय

अभिमान टपकता था। उस राजा से ब्रह्मज्ञानी,निरहकार,सर्व-जन मित्र,सर्वात्मा और योगेश्वरों के आचरण मे निपुण, भरत निर्भय होकर और हंसकर बोले ॥ ८ ॥

ब्राह्मण बोला—आपने जो कहा है, वह ठीक है। उसमें थोड़ा भी असत्य नहीं है। इसमे मेरा उपहास नहीं है। आपने कहा है कि तुम थके नहीं हो, यह सच है,क्योंकि भार नाम का यदि कोई पदार्थ होता और वह भार उसको ढोने वाले शरीर को होता तो आपका कहना उपहास समझा जाता, इसी प्रकार यदि चलने की कोई राह होती और उसका सम्बन्ध चलने वाले शरीर से होता तो आपकी बात उपहास समझी जाती और आपने मोटा होने की जो बात कही है, वह शरीर के लिये ठीक हो सकती है, मेरे लिये नहीं। मेरे लिये मोटा कहना बुद्धिमानी नहीं है। स्थूलता, कृशलता, रोग, चिन्ता, क्षुधा, पिपासा, भय,कलह, इच्छा, बुढ़ाई निद्रा, अनुराग, क्रोध,अहंकार, मद और शोक, ये सब शरीर के साथ उत्पन्न होने वालों को हो सकते हैं, मुझे नहीं ! क्योंकि मै शरीर के साथ उत्पन्न नहीं हुआ हूँ। राजन् ! आपने कहा कि तू जीता हुआ मृतक है, पर ऐसा अकेला मैं ही नहीं हूँ क्योंकि इस परिणामी संसार का जीना और मरना हमेशा लगा रहता है, प्रतिक्षण ससार के पदार्थों में विकार उत्पन्न होता रहता है। महाराज ! आपने कहा है कि स्वामी की आज्ञा का अपमान करते हो,क्योंकि यह स्वामी और सेवक का भाव स्थायी नहीं है। आज का स्वामी कल सेवक हो सकता है, और सेवक कल स्वामी

निकेत पडितमानिनं स भगवान्ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः सर्वभूतसुहृदात्मायोगेश्वरचर्यायां नातिव्युत्पन्नमतिं स्मयमानइव विगतस्मय इदमाह ॥

ब्राह्मण उवाच—

९—त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धं भर्तुः समेस्याद्यदिवीरभारः।
गन्तुर्यदिस्यादधिगम्य मध्वा पीवेतिराशौ नविदांप्रवादः॥

१०—स्थौल्यं कार्श्यं व्याधय आधयश्च क्षुतृड्भयं कलिरिच्छाजरा च।
निद्रा रतिर्मन्युरह मदः शुचो देहेन जातस्य हि मे नसंति ॥

११—जीवन्मृतत्वं नियमेन राजन्नाद्यन्तवद्यद्विकृतस्य दृष्टम्।
स्वस्वाम्यभावो ध्रुव ईड्य यत्र तर्ह्युच्यतेऽसौ विधिकृत्ययोगः।

हो सकता है। अतएव आपका यह कहना ठीक नहीं है। राजन्! स्वामी और सेवक के भेद का अवसर व्यवहार के अतिरिक्त विचार में कुछ भी नहीं है। अर्थात् व्यवहार में ही स्वामी और सेवक का भेद किया जाता है। विचार करने पर न कोई किसी का सेवक है और न कोई किसीका स्वामी है। यदि आप अपने राजा होने का अहंकार रखते हों तो कहिए, हम लोग क्या करें? राजन्! आपने कहा है कि तुम्हारे प्रमाद का चिकित्सा करूँगा, पर मैं तो उन्मत्त और जड के समान आचरण करने वाला हूँ, जीवन्मुक्त हूँ। आपकी चिकित्सा से मुझे क्या लाभ और मेरी क्या हानि होगी? यदि आप मुझे पागल ही समझें, उन्मत्त ही समझें तो भी आपकी चिकित्सा व्यर्थ होगी। पिसे हुए को पिसना होगा। आपके दण्ड से मेरा कोई लाभ न होगा ॥ १३ ॥

श्रीशुकदेव बोले—इस प्रकार राजा की कही बातों का उत्तर देकर वे मुनिश्रेष्ठ, जो स्वभाव से शान्त थे, जिनकी अविद्या नष्ट हो गई थी, केवल प्रारब्ध कर्म का फल भोग रहे थे, वे जडभरत पहले के समान राजा की पालकी ढोने लगे। हे परीक्षित! वे सिन्धु सौवीर के राजा रहूगण ब्रह्मज्ञान में श्रद्धा रखते थे। अतएव वे ब्रह्मज्ञान के अधिकारी थे। जडभरत की बातें सुनकर जिनसे हृदय के बहुत से सन्देह दूर होते थे और योग के अनेक ग्रन्थों के अनुकूल थीं, राजा रहूगण शीघ्र ही पालकी से उतरे और मुनि के चरणों पर

१२—विशेषबुद्धेर्विवरं मनाक्च पश्यामयन्नव्यवहारतोऽन्यत्।
क ईश्वरस्तत्र किमीशितव्यं तथापि राजन्करवाम किं ते ॥

१३—उन्मत्त मत्तजडवत्स्वसंस्थां गतस्य मे वीर चिकित्सितेन।
अर्थः कियान्भवता शिक्षितेन स्तब्धप्रमत्तस्य च पिष्टपेषः ॥

श्रीशुकउवाच—

१४—एतावदनुवादपरिभाषया प्रत्युदीर्य मुनिवर उपशमशील उपरतानात्म्यनिमित्त उपभोगेन कर्मारब्धं व्यपनयन् राजयानमपि तथोवाह ॥

१५—स चापि पाण्डवेय सिन्धुसौवीरपतिस्तत्त्वजिज्ञासायां सम्यक् श्रद्धयाऽधिकृताधिकारस्तद् हृदयग्रन्थिमोचनं द्विजवच आश्रुत्य बहुयोगग्रन्थसमतं त्वरयाऽवरुह्य शिरसा पादमूलमुपसृतः क्षमापयन्विगतनृपदेवस्मय उवाच ॥

सिर रखकर क्षमा कराते हुए, राजा का अभिमान छोड़कर बोले—आप ब्राह्मणों में कौन हैं, जो इस वेश में छिपकर रहते हैं ? क्योंकि आपने यज्ञोपवीत धारण कर रखा है। आप किसके पुत्र हैं ? कहां रहते हैं ? कहां से आये हैं ? यदि आप हमारे कल्याण के लिये आये हैं, तो क्या कपिलदेव मुनि हैं ? मैं इन्द्र के वज्र के भय से भयभीत नहीं होता, महादेव के शूल से भयभीत नहीं होता और न यमराज के दण्ड से, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु और कुवेर के अस्त्रों से भी मैं नहीं डरता, केवल डरता हूँ तो ब्राह्मणकुल के अपमान से डरता हूं। अतएव संसार में आसक्ति-रहित विज्ञान के प्रभाव को छिपाकर मूर्ख के समान विचरण करने वाले अन्य कौन हैं ? भगवान् आपकी महिमा अपार है। आपके ज्ञानयुक्त वचनों का अर्थ मैं समझ नहीं सकता। मैं योगेश्वर आत्मवेत्ता मुनियों के आदिगुरु भगवान् की ज्ञानशक्ति से अवतीर्ण, भगवान् कपिल के यहाँ यह पूछने जा रहा था— इस संसार में सच्चा शरण कौन है ? मैं समझता हूँ कि आप वे ही कपिलदेवजी हैं और लोकों को देखने के लिये इस रूप में छिपकर भ्रमण कर रहे हैं। हम लोगों के समान विवेकहीन बुद्धि वाले और घर में फंसे मनुष्य योगीश्वर की गति कैसे जान सकते हैं ? आपने कहा है कि थकावट ही नहीं है। पर यह बात मेरी समझ में नहीं आती, क्योंकि युद्ध आदि कर्म करने में स्वयं थक जाता हूं, इससे अनुमान करता हूं कि पालकी उठाने

१६—कस्त्वं निगूढश्चरसि द्विजानां बिभर्षि सूत्रं कतमोऽवधूतः ।
कस्यासि कुत्रत्य इहापि कस्मात्क्षेमाय नश्चेदसि नोत शुक्लः ॥

१७—नाहं विशङ्के सुरराजवज्रान्न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दण्डात् ।
नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तेशास्त्राच्छङ्के भृशं ब्रह्मकुलावमानात् ॥

१८—तद्ब्रूह्यसङ्गो जडवन्निगूढ विज्ञानवीर्यो विचरस्यपारः ।
वचांसि योगग्रथितानि साधो न नः क्षमन्ते मनसाऽपि भेत्तुम् ॥

१९—अहं च योगेश्वरमात्मतत्त्व विदां मुनीनां परमं गुरुं वै ॥
प्रष्टुं प्रवृत्तः किमिहारणं तत्साक्षाद्धरिं ज्ञानकलावतीर्णम् ॥

२०—स वै भवाँल्लोकनिरीक्षणार्थं मव्यक्तलिङ्गो विचरत्यपिस्वित् ।
योगेश्वराणां गतिमन्धबुद्धिः कथं विचक्षीत गृहानुबन्धः ॥

के कारण आप भी थक गये होंगे। आप कहते हैं कि यह व्यवहार है, पर वह भी तो समूल है, प्रामाणिक है। जो पदार्थ असत्य है उससे तो कुछ काम नहीं हो सकता। जो झूठा घड़ा है, उससे न जल लाया जा सकता और न कोई काम हो सकता है। पर व्यवहार में तो सब काम होता है। बटलोई आग पर रखने से तप जाती है, उसके तपने से जल गरम हो जाता है और जल के गरम होने से चांवल पक जाता है। यह सब बातें तो असत्य नहीं हैं। इसी तरह शरीर के दुःख-सुख होने से इन्द्रियों को दुःख-सुख होता है। उनसे मन को दुःख-सुख होता है और मन से निकट सम्बन्ध होने के कारण पुरुष को दुःख-सुख का अनुभव होता है। उसका जन्म-मरण होता है। अतएव आपके थकने की जो बात पूछी वह तो मेरी समझ से ठीक ही है। जो जब तक राजा है तबतक वह शासन करता है, रक्षा करता है, अतएव वह राजा है, लोग उसके सेवक हैं और जो भगवान् का सेवक है, वह पीसा नहीं पीसता, वह निष्फल काम नहीं करता, वह अपने धर्म का पालन ईश्वर-आराधन समझता है, अतएव उसके कार्यों का फल न होने पर भी वह भगवान् की आज्ञा पालन करना समझकर प्रसन्न होता है और उसके सब पाप दूर हो जाते हैं। अतएव भगवान् राजा के अभिमान से आपके समान सज्जनों का तिरस्कार करने वाले मुझ पर आपकी मैत्री की दृष्टि पड़नी चाहिये। हे आर्तबन्धो! जिससे मैं सज्जनों के अपमान करने के पाप

२१—दृष्टः श्रमः कर्मत आत्मनोवै भर्तुर्गन्तुर्भवतश्चानुमन्ये।

यथाऽसतोदानयनाद्य भावात्समूल इष्टो व्यवहारमार्गः॥

२२—स्थाल्यग्नितापात्पयसोऽभिताप स्तत्तापतस्तण्डुलगर्भरन्धिः।

देहेन्द्रियास्वाशय सन्निकर्षात्तत्संसृतिः पुरुषस्यानुरोधात्॥

२३—शास्ताऽभिगोप्ता नृपतिः प्रजाना यः किंकरो वै नपिनष्टिपिष्टम्।

स्वधर्ममाराधनमच्युतस्य यदीहमानो विजहात्यघौघम्॥

२४—तन्मेभवान्नरदेवाभिमान मदेन तुच्छीकृतसत्तमस्य।

कृपीष्टमैत्री दृशमार्तबंधो यथातरेसदवध्यानमंहः॥

जब तक मनुष्य का मन रहता है। तबतक वह निरंकुश रहता है, यथेच्छाचारी रहता है और तभी तक ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों के द्वारा धर्माधर्म किया करता है। इस प्रकार आत्मा के सहित वह मन वासनारूप बन जाता है विषयानुरागी बन जाता है, त्रिगुणों के अधीन होकर इधर-उधर भटका करता है, काम क्रोध आदि का विकार उत्पन्न होता रहता है और पञ्चभूत तथा ग्यारह इन्द्रियों से युक्त होकर अनेक नामों का अनेक उत्तम और अधम शरीर धारण करता है। पुनः यह काल प्राप्त सुख-दुःख और तीव्र मोहरूपी फल उत्पन्न करता है। यद्यपि मन जड है और उसके द्वारा सृष्टि नहीं हो सकती अतएव वह देही जीव से मिल जाता है अर्थात् जीव में अपने रूप का आभास करा देता और उसे संसार प्रपंच में भटकाता रहता है। यह जाग्रत और स्वप्न भेदवाला संसार तभी तक वर्तमान रहता है जब तक यह जीव के द्वारा आलोकित रहता है। अर्थात् संसार का उत्पादक मन है, जीव तो केवल उसका साक्षी है। जिस प्रकार पुरुष मन के कारण अपने को गुणाभिमानी समझ लेता है, उसी प्रकार वह अपने को निर्गुण भी समझता है, अर्थात् जो मन बन्धन का कारण है, वही बन्धन दूर करने का भी कारण बनता है। एक ही मन अवस्था भेद से बन्ध और मोक्ष का कारण होता है। जब वह सगुण रहता है अर्थात् त्रिगुण के अधीन रहता है, तब वह बन्धन का कारण होता है और जब वह गुणों से अपने को भिन्न समझने लग जाता है अर्थात् गुणों का सम्बन्ध

५—स वासनात्मा विषयोपरक्तो गुणप्रवाहो विकृतः षोडशात्मा।
विभ्रत्पृथङ्नामभिरूपभेदमन्तर्बहिष्ट्वं च पुरैस्तनोति॥

६—दुःख सुख व्यतिरिक्त चतीव्रं कालोपपन्न फलमाव्यनक्ति।
आलिंग्य मायारचितान्तरात्मा स्वदेहिन ससृतिचक्रकूटः॥

७—तावानयं व्यवहारः सदाविः क्षेत्रज्ञसाक्ष्यो भवतिस्थूलसूक्ष्मः।
तस्मा मनो लिंगमदो वदंति गुणागुणत्वस्य परावरस्य॥

८—गुणानरक्त व्यसनायजतोः क्षेमाय नैर्गुण्यमथो मन स्यात्।
यथा प्रदीपो घृतवर्तिमश्नन् शिखाः सधूमा भजति ह्यन्यदास्वम्॥

पद तथा गुणकर्मानुबद्ध वृत्तीर्मनः श्रयतेन्यत्र तत्त्वम्॥

ग्यारहवाँ अध्याय

जडभरत के द्वारा ब्रह्मज्ञान का उपदेश

ब्राह्मण बोले—राजन, आप विद्वान् न होने पर भी विद्वानों के समान बातें करते है । इससे आपकी गणना विद्वानों मे न होगी । क्योकि यह् सासारिक व्यवहार विद्वानों की विचार-दृष्टि मे सत्य नहीं है । इसी प्रकार लौकिक कर्मो के समान वेदोक्त कर्म भी सत्य नहीं हैं । क्योंकि वेद गृहसम्बन्धी यज्ञों के विस्तार की विद्या से भरे हुए, हैं अतएव उनमे तत्वज्ञान का प्रकाश नही पाया जाता । तत्वज्ञान मे न तो हिंसा होती है और न राग-द्वेष आदि । पर वैदिक कर्मों में हिंसा भी है, राग द्वेष भी है । अतएव वे भी सत्य नहीं हो सकते । जिसने स्वप्न के दृष्टान्त से गृहस्थसुख को हेय नहीं समझ लिया है उसको यथार्थ तत्वज्ञान कराने वाले वेदान्तोपदेश भी ज्ञान नहीं करा सकते हैं। अर्थात् जिस प्रकार स्वप्न दृश्य और अनित्य होने से मिथ्या है, उसी प्रकार यह गृहस्थ-सुख भी दृश्य और अनित्य होने से मिथ्या है ॥ ३ ॥

इसी प्रकार यह ससार भी मिथ्या ही है । रजोगुण, सत्वगुण और तमोगुण के वश में

ब्राह्मण उवाच—

१—अकोविद: कोविदवादवादान्वदस्यथो नातिविदा वरिष्ठ. ।

न सूरयोहि व्यवहारमेन तत्त्वावमर्शेन सहाऽऽमनन्ति ॥

२—तथैव राजन्नुरुगार्हमेध वितानविद्योरुविजृम्भितेषु ।

न वेदवादेषु हि तत्त्ववाद. प्रायेण शुद्धोनुचकास्ति साधु' ॥

३—न तस्य तत्त्वग्रहणाय साक्षाद्वरीयसीरपि वाच. समासन् ।

स्वप्ने निरुक्त्या गृहमेधिसौख्य न यस्य हेयानुमितं स्वय स्यात् ॥

४—यावन्मनोरजसा पूरुषस्य सत्त्वेन वा तमसावाऽनुरुद्धम् ।

चेतोभिराकूतिभिरातनोति निरकुश कुशल चेतर वा ॥

जब तक मनुष्य का मन रहता है। तबतक वह निरकुश रहता है, यथेच्छाचारी रहता है और तभी तक ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों के द्वारा धर्माधर्म किया करता है। इस प्रकार आत्मा के सहित वह मन वासनारूप बन जाता है विषयानुरागी बन जाता है, त्रिगुणों के अधीन होकर इधर-उधर भटका करता है, काम क्रोध आदि का विकार उत्पन्न होता रहता है और पञ्चभूत तथा ग्यारह इन्द्रियों से युक्त होकर अनेक नामों का अनेक उत्तम और अधम शरीर धारण करता है। पुनः यह काल प्राप्त सुख-दुःख और तीव्र मोहरूपी फल उत्पन्न करता है। यद्यपि मन जड है और उसके द्वारा सृष्टि नहीं हो सकती अतएव वह देही जीव से मिल जाता है अर्थात् जीव मे अपने रूप का आभास करा देता और उसे ससार प्रपंच में भटकाता रहता है। यह जाग्रत और स्वप्न भेदवाला ससार तभी तक वर्तमान रहता है जब तक यह जीव के द्वारा आलोकित रहता है। अर्थात् ससार का उत्पादक मन है, जीव तो केवल उसका साक्षी है। जिस प्रकार पुरुष मन के कारण अपने को गुणाभिमानी समझ लेता है, उसी प्रकार वह अपने को निर्गुण भी समझता है, अर्थात् जो मन बन्धन का कारण है, वही बन्धन दूर करने का भी कारण बनता है। एक ही मन अवस्था भेद से बन्ध और मोक्ष का कारण होता है। जब वह सगुण रहता है अर्थात निगुण के अधीन रहता है, तब वह बन्धन का कारण होता है और जब वह गुणों से अपने को भिन्न समझने लग जाता है अर्थात् गुणों का सम्बन्ध

५—स वासनात्मा विषयोपरक्तो गुणप्रवाहो विकृतः षोडशात्मा।

विभ्रत्पृथङ्नामभिरूपभेदं मन्तर्बहिष्ट्वं च पुरैस्तनोति ॥

६—दुःख सुख व्यतिरिक्त चतीव्रं कालोपपन्नं फलमाव्यनक्ति।

आलिंग्य मायारचितान्तरात्मा स्वदेहिन ससृतिचक्रकूटः ॥

७—तावानय व्यवहारः सदाविः क्षेत्रज्ञसाक्ष्यो भवतिस्थूलसूक्ष्म.।

तस्मान्मनो लिंगमदो वदति गुणागुणत्वस्य परावरस्य ॥

८—गुणानरक्त व्यसनायजतोः क्षेमाय नैर्गुण्यमथो मन स्यात्।

यथा प्रदीपो घृतवर्तिमश्नन् शिखाः सधूमा भजति ह्यन्यदास्वम् ॥

पद तथा गुणकर्मानुबद्ध वृत्तीर्मनः श्रयतेन्यत्र तत्त्वम् ॥

टूट जाता है, तब वह मनुष्यों के मोक्षरूप कल्याण का कारण होता है। जिस प्रकार दीप घी और वत्ती खाता रहता है, तब तक उसकी शिखा धूएँ के साथ निकलती है और जब वह इनका खाना छोड़ देता है तब अपने तेजरूप मे स्थित हो जाता है। इसी प्रकार मन जबतक गुणकर्मो मे बँधा रहता है तबतक वह वृत्तियों के रूप मे प्रकाशित होता है और गुणकर्मो का सम्बन्ध टूट जाने पर उसको अपना स्वरूप प्राप्त होता है और उसी रूप मे प्रकाशित होता है। मन की ग्यारह वृत्तियाँ हैं। इनमे पाँच कर्म करने वाली हैं और पाच ज्ञानेन्द्रिय हैं और ग्यारहवाँ अहकार है। राजन्! पाँच कर्म,पाँच ज्ञान और ग्यारहवाँ अहंकार इनके रहने का स्थान है। इस प्रकार ये वृत्तियाँ ग्यारह कही गयी हैं। गन्ध, रूप, रस स्पर्श और श्रोत्र ये पाँच इन्द्रियों के विषय हैं, अर्थात् मन की वृत्तियाँ ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा इनमे वास करती हैं। त्याग, अनुराग गति, भाषण और निर्माण ये पाँच कर्मेन्द्रियों के विषय हैं, अर्थात् इन पाँचों में कर्मेन्द्रियों के द्वारा मन की वृत्तियों के निवास स्थान हैं। ग्यारहवाँ पुर कहा गया है, जो अहकार है और वह मन की वृत्तियों का निवास स्थान है जिसे शरीर समझते हैं। कई लोग इसीको (अहकार को) बारहवी वृत्ति कहते हैं क्योंकि यह मेरा है, इस प्रकार वह भोगायतन समझा जाता है। पदार्थ, स्वभाव, संस्कार, कर्म और काल के कारण ये वृत्तियाँ अपने अवान्तर भेदों से सैकड़ों, हजारों और करोड़ों हैं, पर इनकी उत्पत्ति जीव से नहीं होती। क्योंकि वह

९—एकादशाऽऽसन्मनसो हि वृत्तय आकूतयः पञ्चधियोऽभिमानः।
मात्राणि कर्माणि पुरं च तासां वदन्ति हैकादश वीर धूमीः ॥

१०—गन्धाकृतिः स्पर्शरसश्रवांसि विसर्गरत्यर्त्यभिजल्पशिल्पाः।
एकादशं स्वीकरणं ममेति शय्यामहं द्वादशमेक आहुः ॥

११—द्रव्यस्वभावाशय कर्म कालैरेकादशामी मनसो विकाराः।
[illegible] ॥

१२—क्षेत्रज्ञ एता मनसो विभूतीर्जीवस्य मायारचितस्य नित्याः।
आविर्हिताः क्वापि तिरोहिताश्च शुद्धो विचष्टे ह्यविशुद्धकर्तुः ॥

निर्विकार है और न ये एक दूसरी से उत्पन्न हुई हैं। इनके स्वय उत्पन्न होने की बात तो मानी ही नहीं जा सकती, अतएव ये असत्य है। माया के द्वारा रचित जीवोपाधि और अविशुद्ध मन से ये वृत्तियां सदा उठती रहती है और कभी ये तिरोहित हो जाती हैं, अर्थात् जाग्रत और स्वप्न दशा मे मन की वृत्तियां उठती हैं और सुषुप्ति अवस्था मे इनका नाश हो जाता है। इन वृत्तियों को शुद्ध और क्षेत्रज्ञ आत्मा देखता है। अर्थात् आत्मा साक्षी है, भोक्ता नहीं। क्षेत्रज्ञ आत्मा के दो भेद बतलाये गये हैं। एक 'त्वं' पद का अर्थ जीव और दूसरा 'तत्' पद का अर्थ ईश्वर। जीव क्षेत्र का निरूपण करके और ईश्वर चेतन का निरूपण करते हैं। वह क्षेत्रज्ञ आत्मा पुराणपुरुष है। जगत् का कारण है। पूर्ण है, सर्वत्र व्यापक है, स्वयं प्रकाश है, सर्वेश्वर है और नारायण वासुदेवरूप वह भगवान अपनी माया क्रिया के द्वारा जीव में वर्तमान रहता है। जिस प्रकार वायु स्थावर-जंगम प्राणियों में आत्मारूप से वर्तमान रहकर उनका संचालन करता है, उसी प्रकार भगवान क्षेत्रज्ञ वासुदेव आत्मारूप से इस जीव में प्रविष्ट हैं और इसका नियमन करते है। राजन, प्राणी जबतक ज्ञान से माया का प्रभाव नहीं हटाता, आसक्ति दूर नहीं करता, छः शत्रुओं को नहीं जीत लेता, आत्मतत्त्व नहीं जान लेता, तबतक वह घूमता रहता है। उसका जन्म-मरण होता रहता है। जबतक वह प्राणी यह नहीं जान लेता कि आत्मा का उपाधि मन संसार-ताप का प्रधान क्षेत्र है तबतक वह शोक, मोह, रोग, अनुराग,

---

१३—क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः साक्षात्स्वयं ज्योतिरजः परेशः।
नारायणो भगवान्वासुदेवः स्वमाययाऽऽत्मन्यवधीयमानः ॥

१४—यथाऽनिलः स्थावरजंगमानामात्मस्वरूपेण निविष्ट ईशेत्।
एवं परो भगवान्वासुदेवः क्षेत्रज्ञ आत्मेदमनुप्रविष्टः ॥

१५—न यावदेतां तनुभृन्नरेंद्र विधूयमाया वयुनोदयेन।
विमुक्तसंगो जितषट्सपत्नो वेदाऽऽत्मतत्त्वं भ्रमतीह तावत् ॥

१६—न यावदेकन्मन आत्मलिंग संसारतापावपनं जनस्य।
यच्छोकमोहामय रागलोभ वैरानुबन्धं ममतां विधत्ते ॥

लोभ, वैर, तथा ममता आदि किया करता है। अतएव इस शत्रु का, जो बड़ा ही बली है और उपेक्षा के कारण, इसकी ओर ध्यान न देने के कारण यह बहुत बढ़ गया है, यह असत्य और आत्मस्वरूप को दूषित करने वाला है, भगवान के चरणोपासनरूप अस्त्र लेकर तुम इसका नाश करो ॥ १७ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कंध का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त

—०—

१७—भ्रातृव्यमेनं तददभ्रवीर्यमुपेक्षयाऽध्येधितमप्रमत्तः।

गुरोर्हरेश्चरणोपासनास्त्रो जहि व्यलीकं स्वयमात्ममोषम् ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेपञ्चमस्कन्धेरहूगणसंवादेएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

—ःः—

बारहवाँ अध्याय

सन्देहापनयन

राजा रहूगण बोले—महराज, आप कारणरूप ईश्वर के शरीर हैं। अर्थात् लोकरक्षा के लिए स्वयं ईश्वर ही आपके रूप में उत्पन्न हुए है। अतएव स्वरूप के प्रकाश से, परमानन्द के प्रकाश से इस भौतिक शरीर को आप तुच्छ समझ रहे हैं। हे योगेश्वर, ब्राह्मण के शरीर से आपने अपने नित्यानुभव को छिपा लिया है। आपको नमस्कार है। महाराज, ज्वर आदि रोगों से पीडित के लिये जिस प्रकार औषध होता है, धूप से तपे हुए के लिए जिस प्रकार ठण्डा जल होता है, ब्रह्मन्, शरीर के मिथ्याभिमान रूपी सर्प के द्वारा जिन लोगों की ज्ञान-शक्ति नष्ट हो गयी है, वैसे हम लोगों के लिए आपके वचन अमृत के समान हैं। मैं अपने सन्देह के विषय में पीछे पूछूँगा। इस समय आपने जो वचन कहे हैं, वे अध्यात्म योग के है अर्थात् आपने आत्मज्ञान की बाते बतलायी हैं। मैं उन बातों को समझ नहीं सका हूँ। कृपया समझाइए। उन बातों को समझने का मेरे मन मे बड़ा कुतूहल है।

रहूगण उवाच—

१—नमो नमः कारणविग्रहाय स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय।

नमोऽवधूतद्विजबंधुलिंग निगूढनित्यानुभवाय तुभ्यम् ॥

२—ज्वरामयार्तस्य यथा गदसन्निदाघदग्धस्य यथा हिमाम्भः।

कुदेहमाना हि विदष्टदृष्टेर्ब्रह्मन्वचस्तेऽमृतमौषधं मे ॥

३—तस्माद्भवंत मम संशयार्थं प्रक्ष्यामि पश्चादधुना सुबोधम्।

अध्यात्मयोगग्रथित तवोक्त माख्याहि कौतूहलचेतसो मे ॥

४—यदा ह योगेश्वरदृश्यमानं क्रियाफलं सद्व्यवहारमूलम्।

नह्यंजसा तत्त्वविमर्शनाय भवानमुष्मिन् भ्रमते मनो मे ॥

ब्राह्मण बोले—पार्थिव शरीरधारी हम लोग किसी कारण से पृथ्वी पर चलते हैं। हमारा शरीर पृथ्वी का विकार है। पत्थर, वृक्ष आदि भी पृथ्वी के विकार है। हम लोग चलते हैं। वे नहीं चलते। इसके अतिरिक्त और कोई भेद नहीं है। पत्थर आदि पृथ्वी के विकार नहीं थकते, फिर हम लोगों को क्यों थकना चाहिये? यदि कहा जाय कि वे जड़ हैं, इसलिये उनको भार मालूम नहीं पडता, तो यह वतलाना पड़ेगा कि भार का आश्रय कौन है। किसको भार मालूम पडता है? यदि यह शरीर कहा जाय तो यह शरीर कोई एक पदार्थ नहीं है। कई अंगों का यह समूह है। अतएव, इसका परिचय पाने के लिए उन अंगों का परिचय जानना चाहिए और इसका पता लगाना चाहिए कि उन अंगों में किस अग को पोड़ा मालूम होती है। शरीर के सबसे नीचे पैर हैं, पैर के ऊपर घुट्टी है, उसके ऊपर जाँघ, पुनः क्रम से जानु, जघन, कमर, छाती, कन्धा, गला है। कन्धे पर पालकी रखी हुई है, पालकी मे सौवीर देश के राजा के नाम से परिचित होने वाला एक पृथ्वी का विकार बैठा हुआ है। जो सिन्धुदेश के राजा होने के अभिमान से अन्धा बना हुआ है। इन अंगों में किस अग को भार मालूम पडता है इसका निश्चय कैसे किया जा सकता है। अंग ही तो शरीर है। इसके अलावा शरीर तो कुछ रह नहीं जाता। अतएव, भार का आश्रय कौन है? भार किसको लगता है, इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। तुम सिंधु देश के राजा होने के मिथ्याभिमान से अन्धे होकर अनेक कष्टों के कारण दीन बने इन गरीबों को बेगार मे पकडते हो, अतएव, तुम बडे निर्दय हो, फिर भी, तुम कहते हो, मैं जनता का रक्षक हूँ। तुम्हारी यह बात विद्वानों की सभा मे नहीं शोभती। ज्ञानी पुरुषों के सामने ऐसी धृष्ट बात कहने से तुम्हारी शोभा नहीं हो सकती।

ब्राह्मण उवाच—

५—अथ जनो नाम चलन्पृथिव्यां यः पार्थिवः पार्थिव कस्य हेतोः।
तस्यापि चांघ्र्योरधिगुल्फजंघाजानूरुमध्योरशिरोधरांसाः॥

६—असेऽधिदार्वी शिबिका च यस्यां सौवीरराजेत्यपदेश आस्ते।
यस्मिन्भवान्रूढनिजाभिमानो राजाऽस्मि सिंधुष्विति दुर्मदांधः॥

७—शोच्यानिमांस्त्वमधिकष्टदीनान्विष्ट्यानिगृह्णन्निरनुग्रहोऽसि।
जनस्य गोप्ताऽस्मि विकत्थमानो न शोभसे वृद्धसभासु धृष्टः॥

८—यदा क्षितावेव चराचरस्य विदाम निष्ठां प्रभवं च नित्यम्।
तन्नामतोऽन्यद्व्यवहारमूलं निरूप्यतां सत्क्रिययानुमेयम्॥

यदि कहा जाय कि ऊपर के अंगों का भार नीचे के अगों पर पडता है, तो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि शरीर के समान अंग भी तो कोई पदार्थ सिद्ध नहीं होते। इस समस्त स्थावर-जगम रूप ससार की उत्पत्ति और नाश इस पृथ्वी मे ही होते हैं। अतएव ये अवयव पृथ्वी के ही विकार हो सकते हैं, पर इनकी सत्ता पृथ्वी से अलग नहीं है, ये पृथ्वी से अतिरिक्त पदार्थ नहीं माने जा सकते। केवल व्यवहार के लिए भिन्न-भिन्न नामों से इनका परिचय होता है और किसी भी कारण-कार्य के द्वारा इनका अनुमान नहीं होता। इन अंगों के ऐसे कोई कार्य और कारण नहीं दिखायी पड़ते, जिनसे इनकी सत्ता पृथ्वी से अतिरिक्त मानी जाय। यदि तुम्हारी समझ मे कुछ हो तो कहो। इससे नहीं समझ लेना चाहिये कि पृथ्वी ही सत्य है, क्योंकि वास्तविक विचार करने पर उसकी भी सत्ता प्रमाणित नही होती। क्योंकि पृथ्वी की उत्पत्ति परमाणुओं से हुई है, उसका नाश भी उन्हीं परमाणुओं के रूप में होता है। अतएव, परमाणुओं के अतिरिक्त पृथ्वी की पृथक् सत्ता सिद्ध नहीं होती तो क्या परमाणु सत्य हैं ? नहीं,ये केवल कल्पित हैं। इनके समूहरूप पृथ्वी का परिचय देने के लिए ही,इन परमाणुओं की कल्पना की गई है। अतएव, जिस प्रकार सृष्टि के अन्य पदार्थों की अविद्या के द्वारा कल्पित होने के कारण कोई सत्ता नहीं है, उसी प्रकार इन महा परमाणुओं की भी कोई सत्ता नहीं हो सकती। ये भी सत्य नहीं माने जा सकते। अतएव राजन्, दुबला, मोटा, छोटा, बडा, कारण कार्य, चेतन, अचेतन, ये समस्त द्वैत माया के ही कार्य हैं। द्रव्य, स्वभाव, संस्कार, काल और अदृष्ट ये सब माया के ही नाम हैं, उसीने इस द्वैत की रचना कर रखी है। यह अज्ञान कल्पित है, भ्रम है॥ १०॥

केवल परब्रह्म परमात्मा ही सत्य हैं, वे ही परमज्ञानमय हैं। वे अविद्या से रहित शुद्ध हैं। बाहर और भीतर किसी अन्य तत्व से उनका सम्बन्ध नहीं है। वे परिपूर्ण और सत्य

९—एव निरुक्त क्षितिशब्दवृत्त मसन्निधानात्परमाणवो ये ।
अविद्यया मनसा कल्पितास्ते येषा समूहेन कृतोविशेषः॥

१०—एव कृश स्थूलमणुर्बृहद्यदसच्चसज्जीवमजीवमन्यत् ।
द्रव्यस्वभावाशयकालकर्म नाम्नाऽजयाऽवेहि कृत द्वितीयम्॥

११—ज्ञान विशुद्ध परमार्थमेकमनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् ।
प्रत्यक् प्रशान्त भगवच्छब्दसञ्ज्ञ यद्वासुदेव कवयो वदन्ति॥

स्वरूप हैं। सासारिक विपयों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है और उनमें कोई विकार नहीं होता। वे ही भगवान् कहे जाते है। कविगण उन्हींको वासुदेव कहते हैं। रहूगण, इस ज्ञान स्वरूप वासुदेव की प्राप्ति, तपस्या से, वेदोक्त यज्ञ आदि से, अन्न आदि के दान से, परोपकार से, वेदाध्ययन से जल, अग्नि और सूर्य की उपासना से नहीं होती, किन्तु महान पुरुषों की चरणरज की सेवा से ही उस तत्व की प्राप्ति होती है। क्योंकि वे महापुरुष उत्तम कीर्ति भगवान् का सदा गुणानुवाद किया करते है, जिस गुणानुवाद से सासारिक बाते नष्ट हो जाती है, वे दब जाती हैं और प्रतिदिन सेवन करने से वह गुणानुवाद भगवान् के विषय का यथार्थ ज्ञान, मोक्ष चाहने वालों को देता है॥ १३॥

मैं पहले भरत नाम का राजा था, लौकिक और पारलौकिक विपयों मे अनुराग छोड़कर मैं भगवान् की आराधना करता था। वहा एक मृगा के साथ से मेरे सभी मनोरथ नष्ट हो गये और मुझे मृगयोनि मे जन्म लेना पड़ा। वीर,कृष्णार्चन के प्रभाव से मृगशरीर में भी मेरी पूर्व स्मृति बनी रही। सासारिक वासना के कारण मेरी वह दुर्गति हुई थी, यह बात मैं जानता था। इसी कारण इस जन्म मे भी मैं लोक-सग से अलग ही रहता हूं, क्योंकि उससे मुझे बड़ा भय

१२—रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।
नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोऽभिषेकम्॥

१३—यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवाद. प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः।
निषेव्यमाणोऽनुदिन मुमुक्षोर्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे॥

१४—अहं पुरा भरतो नाम राजा विमुक्तदृष्टश्रुतसगबन्ध.।
आराधन भगवत ईहमानो मृगोऽभव मृगसगाद्धतार्थः॥

१५—सा मां स्मृतिर्मृगदेहेऽपि वीर कृष्णार्चनप्रभवानो जहाति।
अथो अह जनसगादसगो विशकमानोऽविवृतश्चरामि॥

है, अतएव इस प्रकार छिपकर विचर रहा हूँ। विरक्त महात्माओं के सत्सङ्ग से उत्पन्न ज्ञानरूपी तलवार के द्वारा मोह को नष्ट कर देना चाहिए। पुनः भगवान् की लीला का कीर्तन और स्मरण करना चाहिये। ऐसा करने से मनुष्य को यथार्थ ज्ञान होता है और वह संसार के मार्ग को पार कर जाता है॥ १६॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कंध का बारहवाँ अध्याय समाप्त

—०—

१६—तस्मान्नरोऽसङ्गसुसङ्गजात ज्ञानासिनेहैव विवृक्णमोहः।
हरिं तदीहाकथनश्रुतिभ्यां लब्धस्मृतिर्यात्यति पारमध्वनः॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेपञ्चमस्कन्धेब्राह्मणरहूगणसंवादेद्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

—※—
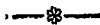
तेरहवाँ अध्याय

संसार वन का परिचय

ब्राह्मण बोले—यह प्रवृत्ति-मार्ग बड़ा ही दुस्तर है, इसमे चलना बड़ा ही कठिन है। पर माया के द्वारा तम, रज तथा सत्व के कर्मो को ही अपना कर्तव्य समझने वाला जीव, सुख की इच्छा से इस प्रवृत्ति नामक मार्ग से संसाररूपी वन मे भ्रमण करता है, जिस प्रकार कोई सौदागर कई साथियों के साथ लाभ की आशा से भ्रमण करता है। पर उस जीव को सुख नहीं मिलता। नरदेव, इस ससाररूपी वन में छः (छः इन्द्रिय) चोर हैं, ये चोर उस जीवरूपी सौदागर को बलपूर्वक लूट लेते हैं, क्योंकि इनका सारथि (बुद्धि) अच्छा नहीं होता। जिस प्रकार भेड़िये यूथ में घुसकर भेड़ को उठा ले आते है। उसी प्रकार असावधान जीव को भी ये सब उठा ले जाते हैं। जैसे घास, पात, लता,गुल्म आदि से भरे, किसी गढ़े मे कोई मनुष्य डास और मच्छरों का उपद्रव सहता हुआ निवास करता है, उसी प्रकार वह जीव भी

ब्राह्मण उवाच—

१—दुरत्ययेऽध्वन्यजयानिवेशितो रजस्तमः सत्त्वविभक्तकर्मदृक्।

२—यस्यामिमेषण्नरदेव दस्यवः सार्थविलुपंति कुनायक बलात्।
गोमायवो यन हरति सार्थिक प्रमत्तमाविश्य यथोरणां वृका.॥

३—प्रभूत वीरुत्तृणगुल्मगह्वरे कठोरदंशैर्मशकैरुपद्रुतः।
क्वचित्तु गंधर्वपुरं प्रपश्यति क्वचित्क्वचिच्चाशुरयोल्मुकग्रहम्॥

४—निवासतो दृष्टविणास्मबुद्धिरनतस्ततो धावति भो अटव्याम।
क्वचित्तु गन्धर्वपुरं प्रपश्यति क्वचित्क्वचिच्चाशुरथोल्मुकग्रहम्॥

काम, क्रोध आदि से भरे गृहस्थाश्रम में रहता है और लोगों के द्वारा पीडित होता है। कभी यह गन्धर्व-नगर के समान असत्य शरीर आदि को ही सत्य समझने लगता है और वेग से चलने वाले, अग्निपिण्ड के समान भूत को ही लेना चाहता है। अति चचल धन पाने की इच्छा करता है। निवासस्थान, जल और धन के लालच से वह जीव इस भवाटवी में इधर से उधर मारा-मारा फिरा करता है। कभी आँधी से उड़ायी धूल से भरी दिशाओं का ही उसे पता नहीं लगता, क्योंकि उसकी आँखें भी धूल से भरी हुई होती हैं। अर्थात् वह जीव रजोगुण से विवेकहीन होकर स्त्री के पीछे अपना कर्तव्य भुला देता है। कभी दिखायी न पड़ने वाली झिल्लियों के शब्द से कान फटने लगते हैं, कभी उल्लुओं के शब्द से मन भयभीत हो जाता है और ऐसे वृक्षों के पास जाता है, जिनकी छाया में भी नहीं जाना चाहिए, क्योंकि वह भूख से व्याकुल होता है और कभी सूर्य की किरणों में जल समझकर उनकी ही ओर दौड़ता है। अर्थात् निन्दकों से घबराकर वह आश्रय ढूढता है और जिसके आश्रम में जाता है वह भी वैसा ही होता है। अपने सुख के लिये वह उनसे आशा करता है जिनको वह निरर्थक-निष्फल समझता है। कभी वह जलहीन नदी के पास जल की आशा से जाता है और अन्नहीन होकर अपने ही समान अन्नहीनों से अन्न माँगता है, कभी दावानल के पास पहुंचता है और आग की लपटों से तप्त हो जाता है, अर्थात् गृहस्थाश्रम में रहकर शोकपीड़ित होता है।

५—अदृश्य झिल्लीस्वनकर्णशूल उलूकवाग्भिर्व्यथितान्तरात्मा।
अपुण्यवृक्षान् श्रयते क्षुधाऽर्दितो मरीचितोयान्यभिधावति क्वचित्॥

६—क्वचिद्वितोयाः सरितोऽभियाति परस्परं चालषते निरन्धः।
आसाद्य दावं क्वचिदग्नितप्तो निर्विद्यते क्व च यक्षैर्हृतासुः॥

७—शूरैर्हृतस्वः क्व च निर्विण्णचेताः शोचन्विमुह्यन्नुपयाति कश्मलम्।
क्वचिच्च गंधर्वपुरं प्रविष्टः प्रमोदते निर्वृतवन्मुहूर्तम्॥

८—चलन् क्वचित्कण्टकशर्कराङ्घ्रिर्नगारुरुक्षुर्विमना इवाऽऽस्ते।
पदे पदेऽभ्यन्तरवह्निनाऽर्दितः कौटुम्बिकः क्रुध्यति वै जनाय॥

९—क्वचिन्निगीर्णोऽजगराहिनाजनो नावैति किंचिद्विपिनेऽपविद्धः।

कभी वह यक्ष-राक्षसों के द्वारा मार डाला जाता है। अर्थात् राक्षसों के समान क्रूर राजाओं के द्वारा उसके प्राण के समान प्रिय धन ले लिया जाता है। कहीं वीर लोग उसका धन लूट लेते हैं जिससे वह बहुत दुखी होता है, शोक करने लगता है और मूर्छित हो जाता है, और कहीं गन्धर्व-नगर के समान धन-धान्य, पुत्र पौत्र पूर्ण घर में जाकर थोड़ी देर आनन्द करता है। कभी चलते २ काँटे और कंकड़ियों से पैर छिद जाने के कारण ऊँचे पर्वत पर नहीं चढ़ पाता और दुखी होता है, विघ्नों के कारण कोई बड़ा काम नहीं कर पाता, जिससे वह दुखी होता है। सदा भीतर की आग से, क्रोध से या भूख से वह जला करता है और वह अपने आदमियों पर क्रोध करता है। कभी अजगर सर्प उसे निगल लेता है, जीव सो जाता है और उसे कुछ भी मालूम नहीं पड़ता। कभी वह जंगल में अकेला छोड़ दिया जाता है और उसे सर्प आदि हिंस्र जन्तु काटते हैं, इन हिंस्र जन्तुओं के द्वारा पीड़ित होने से उसका विवेक नष्ट हो जाता और वह मोहरूपी अन्धकूप में गिर जाता है तथा दुख में पड़ा रहता है। कभी वह पर स्त्री आदि के छोटे छोटे सुखों को चाहता है, मधुमक्खीरूप उन के स्वामी के द्वारा तिरस्कार होकर दुखी होता है। यदि बड़े परिश्रम और दैवयोग से ये सुख उसे प्राप्त भी हो जाते हैं, तो उन सुखों को दूसरे उससे लूट ले जाते है। उस सुख का वह उपभोग नहीं कर सकता। कभी

दष्टः स्मशेते क्वच दंदशूकैरन्धोऽन्धकूपे पतितस्तमिस्रे ॥

१०—कर्हिस्मचित्क्षुद्ररसान्विचिन्वंस्तन्मक्षिकाभिर्व्यथितो विमानः।

तत्रातिकृच्छ्रात्प्रतिलब्धमानो बलाद्विलुम्पन्त्यथ ततोऽन्ये ॥

११—क्वचिच्च शीतातपवातवर्षप्रतिक्रिया कर्तुमनीश आस्ते।

क्वचिन्मिथो विपणन्यच्च किंचिद्विद्वेषमृच्छत्युतवित्तशाठ्यात् ॥

१२—क्वचित्क्वचित्क्षीणधनस्तु तस्मिन् शय्यासनस्थानविहारहीनः।

याचन्परादप्रतिलब्धकामः पारक्यदृष्टिर्लभतेऽवमानम् ॥

१३—अन्योन्यवित्तव्यतिषङ्गवृद्धवैरानुबन्धो विवहन्मिथश्च।

अध्वन्यमुष्मिन्नुरुकृच्छ्रवित्तबाधोपसर्गैर्विहरन्विपन्नः ॥

शीत, आतप और वात से दुःख उठाता है, इनसे बचने का कोई उपाय नहीं कर सकता। कभी खरीद-बिक्री करने मे धनलोभ से आपस मे द्वेष कर लेता है। कभी वह धनहीन हो जाता है, खाट-बिछौना, रहने की जगह, चलने की सवारी आदि नहीं रह जाती, अतएव वह इन चीजों को दूसरों से माँगता है, पर मिलता नहीं। दूसरे को वस्तु पर दृष्टि रखने के कारण उसका अपमान होता है। इस प्रकार परस्पर धन के आदान प्रदान से वह आपस में वैर कर लेता है, तथापि उन्हीं वैरियों के साथ विवाह आदि सम्बन्ध करता है और बड़े कष्टों तथा विघ्नों से हत मनोरथ होकर वह मृतप्राय हो जाता है। इस भवाटवी के मार्ग में जो मर जाते हैं उनको वह जीव वहीं छोड़ देता है और नये साथी, नया जन्म लेकर पुनः उसी मार्ग मे- प्रवृत्ति-मार्ग मे आगे बढ़ता है, जिस उपाय से इस मार्ग का अन्त होता है, उस उपाय की ओर नहीं आता, इस मार्ग से हटने का उद्योग नहीं करता,जो सब प्रकार से समर्थ हैं। मनस्वी है, जिन्होंने दिशाओं को जीत लिया है, यह भूमि मेरी है, इस अभिप्राय से जिन लोगों ने आपस मे वैर बाध लिया है, ऐसे मनुष्य भी आपसी वैर के कारण परस्पर युद्ध करते है और मारे जाते हैं पर वे उस मार्ग पर नहीं आते जिस मार्ग पर वैर त्याग करके सन्यासी चलते हैं। ससार के दुःखों के छूटने का उपाय नहीं करते। कभी वह जीव, लता के समान कोमल भुजावाली स्त्री पर आसक्त हो जाता है, उसी स्त्री से उत्पन्न अस्फुट बोलने वाले पुत्र आदि मे स्नेह रखने लगता है, पर सिंहरूपी काल से डरता रहता है और उससे रक्षा पाने के लिये बगला,गीध आदि से मित्रता

१४—तांस्तान्विपन्नान्सहि तत्रतत्र विहाय जातं परिगृह्य सार्थः ॥

आवर्ततेऽद्यापि न कश्चिदत्र वीराध्वनः पारमुपैति योगम् ॥

१५—मनस्विनो निर्जित दिग्गजेन्द्रा ममेति सर्वे भुवि बद्धवैराः ।

मृधे शयीरन्नतु तद् व्रजन्ति यन्न्यस्तदण्डो गतवैरोऽभियाति ॥

१६—प्रसजति क्वापि लताभुजाश्रयस्तदाश्रयाव्यक्तपदद्विजस्पृहः ।

क्वचित्कदाचिद्धरिचक्रतस्त्रसन्सख्यं विधत्ते बककंकगृध्रैः ॥

१७—तैर्वंचितो हंसकुलं समाविशन्नरोचयन् शीलमुपैति वानरान् ।

तज्जाति रासेन सुनिर्वृतेंद्रियः परस्परोद्वीक्षणविस्मृतावधिः ॥

करता है। अर्थात् मृत्यु-भय दूर करने के लिये अनेक पाखण्ड-कर्मों में फँस जाता है। वहां जब ठगा जाता है, जब उसे मालूम हो जाता है कि इनसे कोई लाभ नहीं है, तब वह हंसकुल में आता है, ब्राह्मणकुल में जन्म लेता है। पर उनके नियम-पालन तथा सदाचार-पालन से घबड़ाकर वह वानरों-शूद्रों के दल में आजाता है और वानरी-लीला से, स्त्री समागम से प्रसन्न हो जाता है, तृप्त हो जाता है। स्त्री का मुँह देखता रहता है तथा मृत्यु को भूल जाता है। लौकिक सुखों में ही रमण करना चाहता है, स्त्री और पुत्र आदि पर स्नेह रखता है, स्त्री-प्रसग करने के लिये दीन बना रहता है, जिस बन्धन में उसने अपने को फँसा लिया है उसका त्याग नहीं कर सकता। कभी असावधानी के कारण पर्वत के खण्ड में गिर पड़ता है, और उस खण्ड में रहने वाले हाथी से भयभीत होकर वहीं किसी छोटी-मोटी वल्ली का सहारा लेकर खड़ा रहता है। अर्थात् जीव जब किसी बड़े रोग में फंस जाता है तब वह हाथीरूप मृत्यु से भयभीत हो जाता है, और कठिन प्राचीन कर्मों के सहारे बना रहता है। राजन्, इस आपत्ति से किसी प्रकार उसका छुटकारा होता है तो वह पुनः जाकर उसी दल में मिल जाता है, उसी प्रवृत्ति-मार्ग से चलने लगता है। माया-कल्पित इस मार्ग में जीव बहुत दिनों से घूम रहा है, अभी तक इसे ज्ञान-मार्ग का पता नहीं लगा है। राजन्, तुम भी इसी प्रवृत्ति-मार्ग में चल रहे हो, अब इसको छोड़ दो, समस्त प्राणियों को मित्रता की दृष्टि से देखो, सांसारिक विषयों की आसक्ति छोड़ो, भगवान की सेवा से, तीक्ष्ण ज्ञानरूपी तलवार लेकर इस भवाटवी से पार हो जाओ, इस संसाररूपी वन से निकल जाओ॥ २०॥

१८—द्रुमेषु रंस्यन्सुतदारवत्सलो व्यवायदीनो विवशः स्वबन्धने।
क्वचित्प्रमादाद्गिरिकन्दरे पतन्वल्लीं गृहीत्वा गजभीत आस्थितः॥

१९—अतः कथंचित्स विमुक्त आपदः पुनश्च सार्थं प्रविशत्यरिंदम।
अध्वन्यमुष्मिन्नजयानिवेशितो भ्रमन् जनोऽद्यापि न वेद कश्चन॥

२०—रहूगण त्वमपि ह्यध्वनोऽस्य संन्यस्तदण्डः कृतभूतमैत्रः।
असज्जितात्मा हरिसेवयाशितं ज्ञानासिमादाय तरातिपारम्॥

राजारहूगण बोले—सब जन्मों मे श्रेष्ठ यह मनुष्य जन्म धन्य है। स्वर्ग में भी यदि जन्म मिले तो उससे क्या लाभ, क्योंकि वहां भगवत् यश के कीर्तन, श्रवण आदि से जिनका मन निर्मल हो गया है वैसे आपके समान महात्माओं का समागम नहीं होता। वहां आपके समान हरि-भक्त महात्मा नहीं मिलते, अतएव वहां जन्म लेना निरर्थक है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि आपके चरण-कमल की सेवा से मनुष्यों के पाप दूर हो जाते हैं और उन्हे भगवान् की निर्मल भक्ति प्राप्त होती है। क्योंकि थोड़ी देर के आपके समागम से कुतर्कों से उत्पन्न मेरा अविवेक नष्ट हो गया। फिर सदा आपके साथ रहने वाले तो अवश्यही ज्ञानी हो जाते होंगे। (ब्रह्मज्ञानियों के वेष का निश्चय न होने से राजा सभी को नमस्कार करते है) बडे, बालकों, युवको को नमस्कार! बालक से लेकर वृद्ध तक सभी को नमस्कार! जो ब्राह्मण अवधूत के वेश मे पृथिवी मे भ्रमण करते हैं उन सभी को नमस्कार! इन सबके द्वारा राजाओं का कल्याण हो, राजा लोग इनसे यथार्थ ज्ञान का उपदेश ले. उनका अहंकार दूर हो। ॥ २३ ॥

श्रीशुकदेव बोले—हे, उत्तरा के पुत्र राजा, सिन्धुराज रहूगण ने उस ब्रह्मर्षि पुत्र का ऐसा अपमान किया तथापि उन्होंने उस अपमान की ओर कुछ ध्यान न दिया और उसे उन्होंने ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया, क्योंकि वे महानुभाव थे, दयालु थे। अनन्तर रहूगण ने अत्यन्त दीनतापूर्वक उनके चरणों की पूजा की और मुनि पृथ्वी पर भ्रमण के लिये निकल गये, उनके हृदय की वृत्तियाँ शान्त हो गयी थी अतएव वे भरे-पूरे समुद्र के समान निस्तरंग मालूम पड़ते थे। राजा रहूगण को भी सज्जन के समागम से यथार्थ तत्त्व का ज्ञान हो गया

राजोवाच—

२१—अहो नृजन्माखिल जन्मशोभनं किं जन्मभिस्त्वपरैरप्यमुष्मिन् ॥

न यद्धृषीकेशयश. कृतात्मनां महात्मनां व प्रचुर. समागमः ॥

२२—न ह्यद्भुत त्वच्चरणाब्जरेणुभिर्हतांहसो भक्तिरधोक्षजेऽमला ॥

मौहूर्तिकाद्यस्य समागमाच्च मे दुस्तर्कमूलोऽपहतोऽविवेकः ॥

२३—नमो महद्भ्योऽस्तु नम· शिशुभ्यो नमोयुवभ्यो नम आवटुभ्य ॥

ये ब्राह्मणा गामवधूतलिंगाश्चरन्ति तेभ्यः शिवमस्तु राज्ञाम् ॥

श्रीशुक उवाच—

२४—इत्येवमुत्तरामात· स वै ब्रह्मर्षिसुत· सिन्धुपतय आत्मसतत्त्वं विगणयतः परानुभाव परमकारुणिकतयोप दिश्यरहूगणेन सकरुणमभिवन्दितचरण आपूर्णार्णव इव निभृतकरणोर्म्याशयो धरणिमिमां विचचार ॥

और उन्होंने अविद्या के द्वारा आरोपित देश मे आत्मबुद्धि का, देहाभिमान का त्याग कर दिया राजन्, यह भगवद्‌भक्त के आश्रय का प्रभाव है। भगवद्‌भक्त जडभरत के आश्रय से राजा रहूगण का देहाध्यास छूट गया ।

राजा परीक्षित बोले—महा विद्वान् ! आपने जो बातें कही है, वह रूपक के रूप मे कही हैं। संसार को वन का रूप दिया है, और जीव को सौदागर का रूप दिया है। अतएव यह साक्षात् वर्णन नहीं है, किन्तु परोक्ष है। यह कल्पना गम्भीर बुद्धि से की गई है अतएव साधारण मनुष्यों की समझ मे नहीं आ सकती। अतएव उन लोगों के लिये आप इन विषयों का साक्षात् रूप से वर्णन करें, रूपक के रूप मे नहीं ॥ २६ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवे स्कंध का तेरहवाँ अध्याय समाप्त

२५—सौवीरपतिरपि सुजनसमवगतपरमार्थसतत्त्व आत्मन्यविद्याऽध्यारोपितां च देहात्ममतिं विससर्ज एवं हि नृपभगवदाश्रिताश्रितानुभावः ॥

राजोवाच—

२६—यो ह वा इह बहुविदा महाभागवत त्वयाऽभिहितः परोक्षेण वचसा जीवलोकभवाध्वा स ह्यार्यमनीषया कल्पितविषयो नाञ्जसाऽव्युत्पन्नलोकसमधिगमः अथ तदेवैतद्दुरवगमं समवेतानुकल्पेन निर्दिश्यतामिति ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेपञ्चमस्कन्धेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

भवाटवी का यथार्थ परिचय

शरीर को ही आत्मा समझने वाले इस जीव को, सत्व आदि त्रिगुण के भेद से विभक्त उत्तम, अधम और मिश्रित कर्मों के द्वारा, अनेक योनियों में अवतार धारण करना पड़ता है और जीवन-मरण-रूप इस अनादि ससार के अनुभव के द्वारभूत अपनी छः इन्द्रियों के द्वारा भगवान् के अधीनस्थ-माया के द्वारा प्रेरित होकर वह जीव दुर्गम मार्ग के समान कठिन इस संसार में फँस गया है। जिस प्रकार कोई सौदागर धन-लोभ से व्यापार के लिये जाता हुआ, कई जंगली रास्तों में भटक जाता है, इसी प्रकार श्मशान के समान अमंगलरूप इस संसार के जंगली मार्ग में भटकता रहता है और अपने शरीर के द्वारा अर्जित कर्मों का फल भोगता रहता है। अनेक प्रकार के उद्योग करता है। उनमें इसके बहुत से उद्योग विफल होते हैं, पर विष्णुरूप गुरु के चरणों के सेवकों के भक्ति-मार्ग को ग्रहण नहीं करता, जिसके ग्रहण से ये समस्त सांसारिक ताप शान्त हो जाते हैं। इस संसार-मार्ग में ये छः इन्द्रियां चोर हैं, क्योंकि ये चोर का काम करती हैं। पुरुष का जो कुछ धन है, वह परमपुरुष भगवान् का आराधन

सहोवाच—

१—य एष देहात्ममानिना सत्त्वादिगुणविशेषविकल्पितकुशलाकुशलसमवहारविनिर्मित विविधदेहावलिभि वियोगसंयोगाद्यनादि ससारानुभवस्य द्वारभूतेन षडिंद्रियवर्गेण तस्मिन्दुर्गाध्ववदसुगमेऽध्वन्यापतित ईश्वरस्य भगवतो विष्णुर्वशवर्तिन्या मायया जीवलोकोऽयं यथावणिक्सार्थोऽर्थपरः स्वदेहनिष्पादितक र्मानुभवः श्मशानवदशिवतमायां ससाराटव्यां गतो नाद्यापि विफलबहुप्रतियोगेहस्तत्तापोपशमनीं हरि गुरुचरणारविंद मधुकरानुपदवीमवरुन्धे यस्यामुहवा एतेषड्विद्रियनामानः कर्मणादस्यव एवते ॥

२—तद्यथा पुरुषस्य धन यत्किंचिद्धर्मौपयिक बहुकृच्छ्राधिगत साक्षात्परमपुरुषाराधन लक्षणोयोऽसौधर्म स्तत्तु सांपराय उदाहरति तद्धर्म्यं धनं दर्शनस्पर्शनश्रवणास्वादनावघ्राणसंकल्पव्यवसायगृहग्राम्यो पभोगेन कुनाथस्याजितात्मनो यथासार्थस्य तथाऽजितात्मनो विलुपति ॥

है, यह धर्म का साक्षात् कारण है तथा बड़े कष्टों से प्राप्त होता है और उसके द्वारा परलोक में सुख होता है, ऐसा कहा जाता है। इन्द्रियों को वश में न रखने वाले मनुष्यों को दर्शन, स्पर्श, श्रवण, आस्वाद, घ्राण, सङ्कल्प और उद्योग, इनके द्वारा होने वाले सांसारिक-सुख में फसाकर ये इन्द्रियां उनके उस धन को हर लेती हैं, जिस प्रकार इन्द्रियों के अधीन रहने वाला कुबुद्धि सौदागर जंगली रास्ते में मारा जाता है। स्त्री-पुत्र आदि जो उसके कुटुम्बी हैं, उनके काम भेड़िये और शृगाल के समान हैं। ये सब उस मनुष्य के रक्षित धन को किसी बहाने से भेड़िये के समान हर लेते हैं। जो खेत प्रत्येक वर्ष जोता जाता है, उसमे बीज डाला जाता है, पर बीज उगता नहीं, उस खेत मे फिर बीज बोने के समय झाडी, घास, पात आदि हो जाते हैं, वैसे ही यह गृहस्थाश्रम कर्मक्षेत्र है। इसमें कभी कर्मों की समाप्ति नहीं होती, क्योंकि यह आश्रम कर्म की पिटारी है, कर्म समाप्त होने पर भी कर्म की वासना बनी रहती है। इस संसार-रूप गृहस्थाश्रम में आया हुआ जीव, डांस और मच्छर के समान नीच प्रकृति के मनुष्यों तथा कीड़े मकोड़े, पक्षियों, चोरों चूहों आदि से दुःख पाया करता है, धनरूप उसके प्राण बाहर ही रहते हैं और वह इधर-उधर भटका करता है। यद्यपि यह ससार गन्धर्व-नगर के समान मिथ्या है इसको वह अविद्या, वासना और कर्मों से रगे मन के कारण सत्य समझ लेता है। क्योंकि उसकी दृष्टि मिथ्या हो जाती है।

३—अथ च यत्र कौटुम्बिका दारापत्यादयो नाम्ना कर्मणा वृकसृगाला एवानिच्छतोऽपि कदर्यस्य कुटुम्बिन उरणकवत्संरक्ष्यमाणं मिषतोऽपि हरन्ति ॥

४—यथा ह्यनुवत्सरं कृष्यमाणमप्यदग्धबीजं क्षेत्रं पुनरेवाऽऽवपनकाले गुल्मतृणवीरुद्भिर्गह्वरमिव भवत्येवमेव गृहाश्रमः कर्मक्षेत्रं यस्मिन्न हि कर्माण्युत्सीदन्ति यदयं कामकरण्ड एष आवसथः ॥

५—तत्रगतो दंशमशकसमापसदैर्मनुजैः शलभशकुन्ततस्करमूषकादिभिरुपरुध्यमानबहिःप्राणः क्वचित्परिवर्तमानोऽस्मिन्नध्वन्यविद्याकामकर्मभिरुपरक्तमनसाऽनुपपन्नार्थं नरलोकं गन्धर्वनगरमुपपन्नमिति मिथ्यादृष्टिरनुपश्यति ॥

६—तत्र च क्वचिदातपोदकनिभान्विषयानुपधावति पानभोजनव्यवायादिव्यसनलोलुपः ॥

वह जो कुछ देखता है, जो कुछ समझता है, असत्य देखता है, असत्य समझता है। पान भोजन और मैथुन आदि व्यसनों के लोभ से, सूर्यकिरण मे भासित होने वाले जल के समान असत्य विषयों की ओर दौड़ता है। कभी वह सासारी जीव रजोगुणी बुद्धि से प्रेरित होकर अग्नि से उत्पन्न और समस्त दोषों के स्थान सुवर्ण पाने के लिए दौड़ा करता है, जिस प्रकार शीत से ठिठुरा मनुष्य अग्नि को ढूढ़ता हुआ, आग के गोले रूप मे घूमने वाले पिशाच का पीछा करता है, उसकी इष्ट सिद्धि तो होती नहीं, आग उसको मिलती नहीं, कभी-कभी वह पिशाच ही उसे खा डालता है। कभी जीवन के साधन निवास-स्थान,पान, धन आदि की प्राप्ति के लिए इस संसार के जगली मार्ग मे वह भटका करता है। कभी आंधी तुल्य कोई स्त्री उसको अपनी अँकवार मे ले लेती है और तात्कालिक अनुराग से उसकी आँखे ढप जाती हैं। रात्रि के समय वह अन्धकारमय हो जाता है, आँखों मे धूल भर जाने के कारण वह सज्जनों की मर्यादा छोड देता है। उसकी बुद्धि भी रजोगुणी हो जाती है,जिससे दिग्देवता और लोकपालों को भी नहीं देख सकता। अर्थात् कर्मसाक्षी देवताओं का भी भय उसे नहीं रह जाता। कभी कभी इन सांसारिक पदार्थों की असत्यता उसे मालूम हो जाती है, वह इन विषयो से ऊब जाता है, पर देहाध्यास के कारण उसकी यह बुद्धि देर तक नहीं रहती, शीघ्र ही नष्ट हो जाती है और उसी भ्रष्टबुद्धि के कारण मृगजल-तुल्य असत्य विषयो की ओर दौड़ा करता है॥ १०॥

७—क्वचिच्चाशेषदोषनिषदनं पुरीषविशेषं तद्वर्णगुणनिर्मितमतिः सुवर्णमुपादित्सत्यग्निकाम कातर इवोल्मुकपिशाचम्॥

८—अथकदाचिन्निवासपानीय द्रविणाद्यनेकात्मोपजीवनाभिनिवेश एतस्यासमा सराण्यामितस्ततः परिधावति॥

९—क्वचिच्च वात्यौपम्यया प्रमदयाऽऽरोहमारोपितस्तत्कालरजसा रजनीभूता इवासाधुमर्यादो रजस्वलाक्षोपि दिग्देवता अतिरजस्वलमतिर्न विजानाति॥

१०—क्वचित्सकृदवगत विषयवैतथ्यः स्वय पराभिध्यानेनविभ्रंशितस्मृतिस्तयैवमरीचितोयप्रायांस्तानेवाभिधावति॥

कभी उल्लू और झिल्ली के शब्द के समान कठोर, सामने या परोक्ष में उत्साह-पूर्वक कहे गये शत्रुओं या राजाओं के तिरस्कार-वचनों से उसके कान फटने लगते हैं और हृदय दुखी हो जाता है। जब उसके पूर्व पुण्य का फल समाप्त हो जाता है, तब वह जीता हुआ भी मृतक के समान हो जाता है और अपने ही समान जो निन्द्य मनुष्य के पास जाता है, जो मनुष्य उन वृक्षों और लताओं के समान होते है जिनकी छाया भी मनुष्य को अशुद्ध बना देती है। वे उस विष भरे कुएं के समान होते हैं, जो निरर्थक होते है, जिनका कोई उपयोग नहीं हो सकता। कभी नीचों के साथ से वह ठगा जाता है और जलहीन नदी के समान वेदविरुद्ध पाखण्डमतों का आश्रय लेता है, जिससे न तो इस लोक में और न परलोक में कल्याण होता है। किसी बाधा विघ्न के कारण जब इस संसारी जीव को अन्न नहीं मिलता है, इन्द्रियों के विषय प्राप्त नहीं होते तब यह अपने पिता-पुत्रों अथवा उनकी कोई तुच्छ वस्तु जिनके पास रहती है, उनको खाने लगता है। कभी यह गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करता है, जो दावानल के समान होता है, उससे दुख के अतिरिक्त सुख नहीं होता। कोई वस्तु प्रिय नहीं होती और उसका परिणाम दुःखदायी होता है। वहाँ यह जीव शोकाग्नि से जलता रहता है तथा विरक्त हो जाता है। कभी समय के कारण राक्षसरूपी राजा क्रोध करके इस जीव के प्राणरूप धन का हरण कर लेता

११—क्वचिदुलूकझिल्लीस्वनवदतिपरुषरभसाटोपं प्रत्यक्षं परोक्षं वा रिपुराजकुलनिर्भर्त्सितेनातिव्यथितकर्णमूलहृदयः ॥

१२—स यदा दुग्धपूर्वसुकृतस्तदा कारस्करकाकतुण्डाद्यपुण्यद्रुमलताविषोदपानवदुभयार्थशून्यद्रविणान्जीवन्मृतान्स्वयं जीवन्म्रियमाण उपधावति ॥

१३—एकदाऽसत्प्रसङ्गान्निकृतमतिर्व्युदकस्रोतःस्खलनवदुभयतोऽपि दुःखदं पाखण्डमभियाति ॥

१४—यदा तु परबाधयाऽन्ध आत्मने नोपनमति तदा हि पितृपुत्रबर्हिष्मतः पितृपुत्रान्वा स खलु भक्षयति ॥

१५—क्वचिदासाद्य गृहं दाववत्प्रियार्थविधुरमसुखोदर्कं शोकाग्निना दह्यमानो भृशं निर्वेदमुपगच्छति ॥

१६—क्वचित्कालविषमितराजकुलरक्षसाऽपहृतप्रियतमधनासुः प्रमृतक इव विगतजीवलक्षण आस्ते ॥

१७—कदाचिन्मनोरथोपगतपितृपितामहाद्यसत्सदिति स्वप्ननिर्वृतिलक्षणमनुभवति ।

१८—क्वचिद् गृहाश्रमकर्मचोदनाऽतिभरगिरिमारुरुक्षमाणो लोकव्यसनकर्षितमनाः कण्टकशर्कराक्षेत्रं प्रविशन्निव सीदति ॥

१९—क्वचिच्च दुःसहेन कायाभ्यंतरवह्निना गृहीतसारः स्वकुटुंबाय क्रुध्यति ॥

है और यह जीव मृतक के समान चेष्टाहीन हो जाता है। कभी-कभी मनोरथ करने से पिता-पितामह आदि असत्य वस्तुओं को सत्य समझ लेता है और स्वप्न के आनन्द के समान आनन्दित होता है। कभी गृहस्थाश्रम के पर्वतरूपी विविध कर्मों के करने की इच्छा करता है। पर लौकिक व्यसनों से स्वर्ग आदि की प्राप्ति की इच्छा से रुक जाता है, जिस प्रकार सौदागर काँटे और कंकड़ी के खेत में जाते हुये दुखी होता है, वैसे ही वह भी दुखी हो जाता है। कभी असहनीय शरीर के भीतर की आग से अर्थात् भूख से व्याकुल हो जाता है और परिवार वालों पर क्रोध करता है। पुनः उसी जीव को निद्रारूपी अजगर पकड़ लेता है, तब वह गहरे अन्धकार में डूब जाता है। मानो वह निर्जन वन में सो जाता है। वह न कुछ जानता है, न कुछ सुनता है। जंगल में पड़े मृतक के समान निश्चेष्ट हो जाता है॥ २०॥

जब दुर्जनरूपी सर्प आदि हिंस्र जन्तुओं के कारण उसके सम्मान की दाढ़ तोड़ दी जाती है—उसका मान भंग हो जाता है, तब वह एक क्षण के लिये भी सुख की नींद नहीं सोता, हृदय व्यथित हो जाता है, जिससे उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है और अन्धे के समान अन्धकूप में वह गिर जाता है। कभी विषयरूपी मधु की बूंद ढूंढता हुआ पर स्त्री और पर द्रव्य पर हाथ बढ़ाता है, तब वह उस वस्तु के स्वामी के द्वारा अथवा राजा के द्वारा मारा जाता है और वह अपार नरक में गिर पड़ता है। अतएव इस प्रवृत्ति-मार्ग के लौकिक तथा पार-

---

२०—सएव पुनर्निद्राऽजगरगृहीतोऽन्धेतमसि मग्नः शून्यारण्यइव शेते नान्यत्किंचन वेद शव इवापविद्धः॥

२१—कदाचिद्भग्नमानदंष्ट्रो दुर्जनदंदशूकैरलब्ध निद्राक्षणो व्यथितहृदयेनानुक्षीयमाण विज्ञानोऽन्धकूपेऽन्धवत्पतति॥

२२—कर्हिस्मचित्काममधुलवान्विचिन्वन्यदापरदारपरद्रव्याण्यवरुन्धानो राज्ञा स्वामिभिर्वानिहतः पतत्यपारे निरये॥

२३—अथच तस्मादुभयथाऽपि हि कर्मास्मिन्नात्मनः संसारावपन मुदाहरंति॥

२४—मुक्तस्ततो यदि बन्धाद्देवदत्त उपाच्छिनत्ति तस्मादपि विष्णुमित्र इत्यनवस्थितिः॥

२५—क्वचिच्च शीतवाताद्यनेकाधिदैविक भौतिकात्मीयानादशानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरंतचिंतया विषण्ण आस्ते॥

२६—क्वचिन्मिथो व्यवहरन्यत्किंचिद्धनमन्येभ्योवाकाकिणिकामात्र मप्यपहरन्यत्किंचिद्वा विद्वेषमेति वित्तशाठ्यात्॥

लौकिक जो कर्म हैं, वे आत्मा के संसार में जन्म-मरण के कारण हैं, ऐसा विद्वानों का मत है। अर्थात् उन्हीं कर्मों के द्वारा आत्मा का इस लोक और परलोक में जन्म-मरण होता है। यदि वह किसी प्रकार इस संसार से छूट जाय, उसे भोग की सामग्री मिल जाय तो उस भोग की सामग्री को उससे कोई दूसरा पुरुष छीन लेता है और दूसरे से तीसरा छीन लेता है। इस प्रकार कोई भी उसका भोग नहीं कर सकता। कभी सर्दी-गर्मी से उत्पन्न दुखों, दैविक और भौतिक दुखों को स्वयं दूर करने में असमर्थ होने से वह निश्चित चिन्तन्त हो जाता है और दुखी रहने लगता है। कभी वह दूसरों के साथ व्यापार में उससे कौड़ी के बराबर थोड़ा धन ठग लेता है और इस धन लोभ के कारण वह दूसरे के विद्वेष का पात्र बनता है। इस संसाररूप प्रवृत्ति-मार्ग में इतने दुख हैं और इनके अतिरिक्त सुख-दुख, राग-द्वेष, भय, अभिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक, मोह, लोभ, मत्सर ईर्ष्या, अपमान, भूख-प्यास, मन और शरीर की पीड़ा, जन्म, बुढ़ाई और मृत्यु आदि और भी हैं। कभी लता के समान सुकुमार भुजाओं से कोई स्त्री उसका आलिंगन करती है, जिससे उसका विवेक नष्ट हो जाता है और वह उस स्त्री के साथ विहार करने के लिए गृह आदि के बनाने में व्याकुल हो जाता है। स्त्री के सम्बन्ध से होने वाले पुत्र, कन्याओं के मधुर वचनों, चेष्टाओं तथा अवलोकन से उसका हृदय आकृष्ट हो जाता है और,

---

२७—अथान्ये च सुखदुःखरागद्वेषभयाभिमान उपसर्गास्तथा सुखदुःखरागद्वेषभयाभिमानप्रमादोन्मादशोकमोहलोभमात्सर्येर्ष्याऽवमान क्षुत्पिपासाधिव्याधिजन्मजरामरणादयः ॥

२८—क्वापि देवमायया स्त्रिया भुजलतोपगूढः प्रस्कन्नविवेकविज्ञानो यद्विहारगृहारम्भाकुलहृदयस्तदाश्रयावसक्त सुतदुहितृकलत्रभाषितावलोक विचेष्टितापहृतहृदय आत्मानमजितात्माऽपारेऽन्धे तमसि प्रहिणोति ॥

२९—कदाचिदीश्वरस्य भगवतो विष्णोश्चक्रात्परमाण्वादि द्विपरार्धापवर्गकालोपलक्षणात्परिवर्तितेन वयसा रंहसा हरत आब्रह्मतृणस्तम्बादीनां भूतानामनिमिषतो मिषतां वित्रस्तहृदयस्तमेवेश्वरं कालचक्रनिजायुधं साक्षाद्भगवंतं यज्ञपुरुषमनादृत्य पाखंडदेवताः कङ्कगृध्रबकवटप्राया आर्यसमयपरिहृताः साङ्केत्येनाभिधत्ते ॥

इन्द्रियों के वशवर्ती वह मनुष्य, अपार अज्ञानान्धकार में डूब जाता है। भगवान् विष्णु का जो कालचक्र, परमाणु से लेकर ब्रह्मा के दो परार्ध तक में पूरा होता है और जिस की शीघ्र गति के कारण ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त बाल्य आदि अवस्था में घूमते हुए काल के ग्रास में चले जाते हैं। उस काल से भयभीत होकर, उससे बचने के लिये उसी यज्ञपुरुष भगवान् का, जिनका वह काल चक्र आयुध है, अनादर कर देता है और बक, गीध, आदि पक्षियों के समान पाखण्ड-देवताओं को भजता है, जिनका वेदों और वेदानुसारी शास्त्रों में उल्लेख नहीं है। अनन्तर स्वयं ठगे हुए उन पाखंडियों के द्वारा वह भी ठगा जाता है और ब्राह्मणों के पास जाता है। वहाँ ब्राह्मण उसको उपनयन आदि संस्कार, शील, श्रौत-स्मार्त-कर्म की शिक्षा देकर भगवान् की आराधना करने का उपदेश देते है, पर वह उसको अच्छा नहीं लगता और वह शूद्रों के पास चला जाता है, जिन लोगों में वैदिक आचारों के पालन करने की योग्यता नहीं होती। अतएव, वह भी वानरों के समान सदा स्त्री प्रसंग और कुटुम्ब-पालन में लग जाता है ॥ ३० ॥

वहाँ शूद्रों में मिलकर, यह बुद्धिहीन जीव किसी प्रकार की मर्यादा न रह जाने से, स्वेच्छापूर्वक विहार करता है और स्त्री-पुरुष एक दूसरे का मुँह देखते हुए, पशु धर्म में लगे हुए मृत्यु को भूल जाते हैं। कभी यह वृक्ष के समान अचेतन जीव सांसारिक सुखों का ही भोग करता है और वानर के समान स्त्री-प्रसंग में ही आनन्द मानता है और स्त्री

३०—यदा पाखण्डिभिरात्मवञ्चितैस्तैरुरु वञ्चितो ब्रह्मकुलं समावसंस्तेषां शीलमुपनयनादिश्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानेन भगवतो यज्ञपुरुषस्याऽऽराधनमेव तदरोचयन् शूद्रकुलं भजते निगमाचारेऽशुद्धितो यस्य मिथुनीभावः कुटुम्बभरणं यथा वानरजातेः ॥

३१—तत्रापि निरवरोधः स्वैरेण विहरन्नति कृपणबुद्धिरन्योऽन्यमुखनिरीक्षणादिना ग्राम्यकर्मणैव विस्मृतकालावधिः ॥

३२—क्वचिद्द्रुमवदैहिकार्थेषु गृहेषु रंस्यन्यथा वानरः सुतदारवत्सलो व्यवायक्षणः ॥

३३—एवमध्वन्यवरुन्धानो मृत्युगजभयात्तमसि गिरिकन्दरप्राये ॥

३४—क्वचिच्छीतवाताद्यनेकदैविकभौतिकात्मीयानां दुःखानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरन्तविषयविषण्ण आस्ते ॥

३५—क्वचिन्मिथो व्यवहरन्यत्किञ्चिद्धनमुपयाति वित्तशाठ्येन ॥

३६—क्वचित्क्षीणधनः शय्यासनाशनाद्युपभोगविहीनो यावदप्रतिलब्धमनोरथोपगतादानेऽवसितमतिस्ततस्ततोऽवमानादीनि जनादभिलभते ॥

तथा पुत्रों पर प्रेम रखता है । इस प्रकार संसार-मार्ग मे सुख दुख भोगता हुआ यह जीव, पर्वत की गुफा के समान अन्धकारमय रोग आदि आपत्तियों में फसता है और वहा मृत्यु रूपी हाथी के भय से भयभीत होता है । कभी शीत, वात आदि अनेक दैविक और भौतिक दुखों को दूर करने मे असमर्थ होकर, परिणाम दुख-दायी विषयों से खिन्न होकर बैठ जाता है । कभी परस्पर व्यवहार करके धन-लोभ के कारण थोडा धन पा जाता है । कभी धन के नाश हो जाने पर बिछौना, आसन, अन्न आदि उपयोग की वस्तु उसे नहीं मिलती, जो वह चाहता है, वह पूरा नहीं होता । अपनी गयी सम्पत्ति को पुनः पाना चाहता है और इस कारण चारों तरफ से उसका अपमान होने लगता है । इस प्रकार धन के लेन-देन से उनमे परस्पर विरोध बढ़ जाता है, तथापि पूर्व वासना के कारण वह आपस मे लेन-देन चलाता रहता है, इस संसाररूप मार्ग में अनेक कष्ट और विघ्न होते रहते हैं । जो यहाँ आपत्ति में फँस जाता है, अथवा मर जाता है, उसको छोडकर नये जन्मे हुए साथी को लेकर अर्थात् नया शरीर प्राप्त कर यह जीव आगे चलता है । कभी शोक करता है, कभी मोहित होता है, कभी भयभीत होता है, कभी विवाद करता है, कभी गाता है, कभी रोता है, कभी प्रसन्न होता है,और इसी में फँस जाता है । साधुओं को छोड़कर अभीतक कोई भी मनुष्यों का समुदाय वहाँ नहीं पहुँचा है, जहाँ से इस ससार का प्रारभ होता है और जिसे इस मार्ग का अन्त महर्षि कहते है । सब प्राणियों को अभय-दान देने वाले, शान्त और विरक्त मन वाले मुनि जिस योग के उपदेश का पालन करते हैं, उसका पालन दूसरे नहीं करते, अतएव वे ससार-मार्ग में भटकते रहते है । जो बडे-बडे दिग्विजयी राजर्षि हो गये है, जिन्होंने अनेक यज्ञ किये है, उनकी मृत्यु भी युद्ध में ही हुई है, पृथ्वी को अपनी समझकर उन लोगों ने अनेक मनुष्यों से वैर किया था और अन्त में इस पृथ्वी को छोडकर वे स्वय यहा से चले गये है ॥ ४० ॥

३७—एव वित्तव्यतिषगविवृद्धवैरानुबन्धोऽपि पूर्ववासनया मिथ उद्वहत्यथापवहति ॥

३८—एतस्मिन्ससाराध्वनि नाना क्लेशोपसर्गबाधित आपन्नविपन्नो यत्र यस्तमु ह वावेतरस्तत्र विसृज्य जातं जातमुपादाय शोचन्मुह्यन्बिभ्यद्विवदन् क्रन्दन्संहृष्यन्गायन्नह्यमान साधुवर्जितो नैवावर्ततेऽद्यापि यत आरब्ध एष नरलोकसार्थो यमध्वनः पारमुपदिशन्ति ॥

३९—यदिदं योगानुशासन न वा एतदवरुन्धते यन्न्यस्तदण्डा मुनय उपशमशीला उपरतात्मानः समवगच्छन्ति ॥

४०—यदपि दिगिभजयिनो यज्विनो ये वै राजर्षय. किंतु परं मृधे शयीरन्नस्यामेव ममेयमिति कृतवैरानुबन्धायां विसृज्य स्वयमुपसंहृता ॥

अपने शुभ कर्मों की सहायता से यदि किसी प्रकार नरक से उसका उद्धार भी हो जाता है, तो वह इसी संसार में आकर जीवों के दल के साथ मिल जाता है। यदि वह स्वर्ग में जाता है तो वहाँ से भी गिरकर उसी दल में मिल जाता है। भरत के चरित्र के सम्बन्ध मे लोगों में यह प्रसिद्ध है कि ऋषभ के पुत्र राजर्षि भरत के चरित्र का अनुसरण, मनुष्य मन से भी नहीं कर सकता। उनके चरित्र का अनुसरण करने की वह कल्पना भी नहीं कर सकता, जिस प्रकार नकली गरुड़ की गति की कल्पना नहीं कर सकती। जिस महात्मा ने न छोड़ने योग्य स्त्री-पुत्र, मित्र और राज्य का युवावस्था मे ही मल के समान त्याग कर दिया था। क्योंकि वे भगवद्-भजन के अनुरागी थे। त्याग करने के अयोग्य पृथ्वी, पुत्र, स्वजन, धन और स्त्री का जिन्होंने त्याग किया था। जिस लक्ष्मी की प्रार्थना देवता भी करते हैं, वही लक्ष्मी इनकी कृपा-दृष्टि चाहती थी। पर इन्होंने उसका भी त्याग कर दिया। यह सब उन्हींके समान महात्माओं के योग्य है, क्योंकि भगवान की चरण-सेवा में अनुराग रखने वालों के लिए मोक्ष का सुख भी तुच्छ है। यज्ञ स्वरूप, धर्मस्वामी, धर्मों के अनुष्ठान करने वाले, अष्टांग योग स्वरूप, माया के स्वामी, प्राणियों के अन्तर्यामी नारायण को मैं नमस्कार करता हूँ। यह बात भरत ने मृगा का शरीर छोडते समय हँसकर कही थी। ऐसा कौन दूसरा कर सकता है? ॥ ४५ ॥

भगवद् भक्तों के द्वारा जिन राजर्षि भरत के गुण और चरित्र प्रशंसित होते हैं, वे गुण और चरित्र मनुष्यों के कल्याण करने वाले, आयु बढ़ाने वाले, धन, यश, स्वर्ग और मोक्ष देने वाले हैं। इस चरित को जो सुनता है, वर्णन करता है और प्रशसा करता है, उसके समस्त मनोरथ आपही आप बिना किसी की सहायता से प्राप्त होते हैं ॥ ४६ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवे स्कध का चौदहवाँ अध्याय समाप्त

४१—कर्मवल्लीमवलंब्य तत आपदः कथंचिन्नरकाद्विमुक्तः पुनरप्येवं संसाराध्वनि वर्तमानो नरलोकसार्थमुपयाति एवमुपरिगतोऽपि ॥ तस्येदमुपगायन्ति —

४२—आर्षभस्येह राजर्षेर्मनसाऽपि महात्मनः। नानुवर्त्मार्हति नृपो मक्षिकेव गरुत्मतः ॥

४३—यो दुस्त्यजान्दारसुतान्सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः। जहौ युवैव मलवदुत्तमश्लोकलालसः ॥

४४—यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान्प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम्।

नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट् सेवाऽनुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ॥

४५—यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय योगाय सांख्यशिरसे प्रकृतीश्वराय।

नारायणाय हरये नम इत्युदारं हास्यन्मृगत्वमपि यः समुदाजहार ॥

४६—य इदं भागवतसभाजितावदातगुणकर्मणो राजर्षेर्भरतस्यानुचरितं स्वस्त्ययनमायुष्यं धन्यं यशस्यं स्वर्ग्यापवर्ग्यं वाऽनुशृणोत्याख्यास्यत्यभिनन्दति च सर्वा एवाशिष आत्मन आशास्ते न काञ्चन परत इति ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भरतोपाख्याने पारोक्ष्यविवरणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

भरतवंशी राजा

श्री शुकदेव बोले—भरत के पुत्र सुमति थे, जिन्होंने समस्त पृथ्वी को जीता था। ये सुमति अपने पितामह ऋषभदेवजी के समान आचरण करते थे। अर्थात् जीवन्मुक्त के समान रहते थे, इस कारण कलियुग के कितने ही अनार्य, पाखण्डी अपनी पापिनी बुद्धि के कारण इनको देवता की पदवी देंगे अर्थात् देवता मानेंगे। यद्यपि वेदों में इनका देवत्व स्वीकार नहीं किया गया है, देवता नहीं माने गये हैं। राजा सुमति के उनकी वृद्धसेना नाम की स्त्री से देवता-जित् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। देवताजित् के आसुरी नाम की स्त्री से देवद्युम्न नामक पुत्र हुआ देवद्युम्न के धेनुमती नामकी स्त्री से परमेष्ठी नाम का पुत्र हुआ। परमेष्ठी के सुवर्चला नाम की स्त्री से प्रतीह नाम का पुत्र हुआ। इस प्रतीह ने अनेक लोगों को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया था और स्वयं शुद्ध होने के कारण उन्हें आत्मसाक्षात्कार हुआ था। प्रतीह के सुवर्चला के गर्भ से प्रतिहर्ता, प्रस्तोता, और उद्गाता नाम के तीन पुत्र हुए। ये तीनों कर्मकाण्ड में बड़े निपुण थे। प्रतिहर्ता के स्तुति नाम की स्त्री से अज और भूमा नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। भूमा के ऋषिकुल्या नाम की स्त्री से उद्गीथ नाम का पुत्र हुआ। उद्गीथ के देवकुल्या नामकी स्त्री से प्रस्ताव नाम का पुत्र हुआ। प्रस्ताव के नियुत्सा नाम की स्त्री से विभु नाम का पुत्र हुआ। विभु के रति नाम की स्त्री से पृथुसेन नाम का पुत्र हुआ। पृथुसेन के आकूति नाम की स्त्री से नक्त नाम का पुत्र हुआ। नक्त के द्रुति नाम की स्त्री से बड़ा राजर्षि, प्रसिद्ध यशस्वी गय नाम का पुत्र हुआ। यह जगत

श्रीशुक उवाच—

१—भरतस्यात्मजः सुमतिर्नामाभिहितोयमुहवावकेचित्पाखण्डिन ऋषभपदवीमनुवर्तमान चानार्या अवेदसमाम्नातां देवता स्वमनीषया पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यन्ति ॥

२—तस्माद्वृद्धसेनायां देवताजिन्नामपुत्रोऽभवत् ॥

३—अथासुर्यां तत्तनयोदेवद्युम्नस्ततो धेनुमत्यां सुत. परमेष्ठी तस्य सुवर्चलायां प्रतीह उपजातः ॥

४—य आत्मविद्यामाख्याय स्वयं संशुद्धो महापुरुषमनुसस्मार प्रतीहात्सुवर्चलाया प्रतिहर्त्रादयस्त्रय आस न्निज्याकोविदाः सूनवः प्रतिहर्तुः स्तुत्यामजभूमानो अजनिषाताम् ॥

५—भूम्न ऋषिकुल्यायामुद्गीथः सुतः प्रस्तावोदेवकुल्याया प्रस्तावान्नियुत्साया हृदयज आसीद्विभुर्विभो रत्या च पृथुषेणस्तस्मान्नक्त आकूत्या जज्ञेनक्ताद्द्रुतिपुत्रो गयो राजर्षिप्रवर उदारश्रवा अजायत साक्षाद्भगवतो विष्णोर्जगद्रिरक्षिषया गृहीतसत्त्वस्य कलात्मवत्त्वादि लक्षणेन महापुरुषतां प्राप्तः ॥

की रक्षा के लिए सत्त्वगुण से उत्पन्न भगवान् विष्णु का साक्षात् अंश था और ज्ञान-सम्पन्न होने के कारण यह महापुरुष समझा जाता था। वे राजा अपना धर्म समझकर प्रजा का पालन, पोषण, प्रसन्न रखना, स्नेह करना, शिक्षा देना आदि राज्य-धर्म और यज्ञ आदि, गृहस्थ-धर्म का पालन करते थे और इन दोनों धर्मों के आचरण के फल को सर्वात्मा भगवान में अर्पित कर देते थे। इस परमार्थ लक्षण-धर्म के पालन करने से तथा ब्रह्मज्ञानियों की सेवा से प्राप्त भगवद्-भक्ति से उनकी बुद्धि अत्यन्त शुद्ध हो गयी थी। उनका देहाभिमान नष्ट हो गया था। वे ब्रह्म से अभेद का अनुभव करने लगे थे, अर्थात् "अहं ब्रह्माऽस्मि" यह ज्ञान राजा गय को दृढ़ हो गया था, तथापि वे निरभिमान थे और पृथ्वी की रक्षा करते थे। हे पाण्डुवंशी परीक्षित! पुराणवेत्ता राजा गय का इतिहास इस प्रकार कहते हैं। गय राजा के समान दूसरा कौन राजा हो सकता है। वे भगवान के अंश, यज्ञ करने वाले, लोकों के सम्मानपात्र, बहुज्ञ, धर्म-रक्षक, लक्ष्मी के स्वामी, सत्पुरुषों की सभा के अध्यक्ष, सत्पुरुषों के सेवक, भगवान के अंश राजा गय के अतिरिक्त दूसरा कौन हो सकता है? जिन राजा गय का राज्याभिषेक सत्य आशीर्वाद देने वाली, सती, श्रद्धा, मैत्री आदि दक्ष कन्याओं ने नदियों के जल से किया था। राजा के निराश होने पर भी उनके गुणरूपी बछड़ों से वत्सला होकर पृथ्वीरूपी गौ ने उनकी प्रजाओं के समस्त मनोरथों को पूर्ण किया था। राजा स्वयं निष्काम थे, तथापि वेद और उनके वैदिक कर्म उनकी आवश्यक वस्तुओं को पूरा करते थे। युद्ध में बाणों से अर्चित होकर राजा उन्हें कर देते थे। पालन और दक्षिणा से पूजित ब्राह्मणगण उनको अपने

६—सवै स्वधर्मेण प्रजापालनपोषणप्रीणनोपलालनानुशासन लक्षणेन च भगवति महापुरुषे परावरे ब्रह्मणि सर्वात्मन्यर्पितपरमार्थलक्षणेन ब्रह्मविच्चरणानुसेवयापादित भगवद्भजनेज्यादिभक्तियोगेन चाभीक्ष्णश. परिभावितातिशुद्धमतिपरतानात्मये आत्मनि स्वयमुपलभ्यमान ब्रह्मात्मानुभवोऽपि निरभिमान एवावनिमजूगुपत् तस्येमा गाथा पाण्डवेय पुराविद उपगायति ॥

७—गय नृपः कः प्रतियाति कर्मभिर्यज्वाऽभिमानी बहुविद्धर्मगोप्ता।

समागतश्रीः सदसः पतिः सतां सत्सेवकोऽन्योभगवत्कलामृते ॥

८—यमभ्यषिंचन्परयामुदासतीः सत्याशिषो दक्षकन्याः सरिद्भिः।

यस्य प्रजानां दुदुहे धराशिषो निराशिषो गुणवत्सस्नुतोधाः ॥

९—छंदांस्य कामस्य च यस्य कामान् दुदूहुराजह्रुरथो बलि नृपाः।

प्रत्यंचिता युधि धर्मेण विप्रा यदाशिषां षष्ठमंश परेत्य ॥

धर्माचरण का छठा भाग देते थे। जिस राजा गय के यज्ञों में इन्द्र अधिक सोमपान करके मतवाला हो जाते थे और श्रद्धा से विशुद्ध दृढभक्ति के द्वारा अर्पित राजा का यज्ञफल भगवान् स्वय ग्रहण करते थे। जिस भगवान् के कुश पर दिये भाग के द्वारा प्रसन्न करने से पशु पक्षी, मनुष्य देवता, पौधे- घास से लेकर, ब्रह्मा तक प्रसन्न होते हैं, वे विश्व के अन्तर्यामी भगवान् गय के यज्ञ मे स्वय प्रसन्न होते थे॥ १३ ॥

इस राजा गय के गयन्ती नामकी स्त्री से चित्ररथ, सुगति और अवरोधन नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। चित्ररथ के ऊर्णा नाम की स्त्री से सम्राट नाम का पुत्र हुआ। सम्राट के उत्कला नाम की स्त्री से मरीचि नामक पुत्र हुआ। मरीचि के विंदुमती नाम की स्त्री से विन्दुमान् नामकपुत्र उत्पन्न हुआ। विंदुमान् के सरधा नाम की स्त्री से मधु नाम का पुत्र हुआ। मधु के सुमना नाम की स्त्री से वीरव्रत नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वीरव्रत के भोजा नाम की स्त्री से मंथु और प्रमथु दो पुत्र उत्पन्न हुये। मंथु के सत्या नाम की स्त्री से भौवन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। भौवन के दूषणा नाम की स्त्री से त्वष्टा नाम का पुत्र हुआ। त्वष्टा के विरोचना नाम की स्त्री से विरज नाम का पुत्र हुआ। विरज के विपूची नामकी स्त्री से सौ पुत्र हुए। इनमे शर्तजित सबसे बड़ा था। पुत्रों के अतिरिक्त एक कन्या भी हुई थी। इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि जिस प्रकार विष्णु अपनी कीति से देवताओं को शोभित करते है, उसी प्रकार प्रियव्रत के वंश को उसके अन्तिम वंशज विरज ने अपनी कीर्ति से सुशोभित किया था॥ १६ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवे स्कध का पंद्रहवाँ अध्याय समाप्त

१०—यस्याध्वरे भगवानध्वरात्मा मघोनि माद्यत्युरुसोमपीथे ।
श्रद्धा विशुद्धाचलभक्तियोग समर्पितेज्याफलमाजहार ॥

११—यत्प्रीणनाद् बर्हिष्मदेवतिर्यङ् मनुष्यवीरुत्तृणमाविरंच्यात् ॥
प्रीयेत सद्यः सहविश्वजीव: प्रीत. स्वय प्रीतिमगाद्गयस्य ॥

१२—गयाद्गयन्त्यां चित्ररथः सुगतिर वरोधन इतित्रयः पुत्रा बभूवुश्चित्ररथादूर्णायां सम्राडजनिष्ट ॥

१३—तत उत्कलाया मरीचिर्मरीचेर्विंदुमत्यां बिंदुमानुदपद्यत तस्मात्सरघायाम्मधुर्नामाऽभवन्मधोः सुमन सिर्वीरव्रतस्ततो भोजाया मंथुप्रमथूजज्ञातेमंथो सत्याया भौवनस्ततो दूषणाया त्वष्टाऽजनिष्टत्वष्टुर्विरो चनाया विरजो।विरजस्य शर्तजित्प्रवर पुत्रशत कन्याच विपूच्या किल जातं ॥

तत्रायश्लोक —

१४—प्रैयव्रत वंशमिमविरजश्चरमोद्भव. । अकरोदत्यलं कीर्त्या विष्णुः सुरगणं यथा ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधे प्रियव्रतवंशानुकीर्तननामपंचदशोऽध्याय. ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

जम्बुद्वीप के नव खण्ड और मेरुपर्वत

राजा परीक्षित बोले—आपने भूमण्डल का वहाँ तक परिमाण बतलाया है, जहाँ तक सूर्य का प्रकाश जाता है और जहाँ तक चन्द्रमा नक्षत्रों के साथ दिखाई पड़ते हैं। वहाँ राजा प्रियव्रत के रथ के पहियो के चिन्ह से सात समुद्र बन गये है। भगवन्! जिन सात समुद्रों के कारण आपने पृथ्वी को सात भागों मे बाँटा है। भगवन्, इन्हीं सबों का मैं परिमाण और लक्षण जानना चाहता हूँ। पहले भगवान् के सगुण, स्थूलरूप ब्रह्माण्ड मे मन लगाने से ही उनके अत्यन्त सूक्ष्म, स्वयप्रकाश और सर्वव्यापक परब्रह्म मे भी मन लगाया जा सकता है। अतएव, गुरो! आप इस स्थूल ब्रह्माण्ड का वर्णन करे ॥ ३ ॥

ऋषि बोले—महाराज! भगवान् की माया के गुणों की विभूति का यथार्थ ज्ञान, मनुष्य, देवताओं की आयु के तुल्य समय मे भी मन या वचन के द्वारा नहीं लगा सकता। अतएव प्रधान २ भूगोल की रचना, उनके नाम और लक्षण आपको बतलाऊँगा। भूमण्डलरूपी कमल के बीच का कोप इस जम्बुद्वीप मे नवखण्ड हैं और प्रत्येक का विस्तार नव-नव हजार योजन है और ये खण्ड आठ पर्वतों से विभक्त हैं, अर्थात् इनकी सीमा आठ पर्वतों से बाँटी गयी है। इन नव खण्डों के बीच में इलावृत नामका खण्ड है। इस इलावृत खण्ड के बीच में

राजोवाच—

१—उक्तस्त्वया भूमंडलायामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषांगणैश्चन्द्रमावासहदृश्यते ॥

२—तत्रापि प्रियव्रतरथचरणपरिखातैः सप्तभिः सप्तसिंधव उपक्लृप्तायतएतस्याः सप्तद्वीपविशेषविकल्पस्त्वया भगवन् खलु सूचित एतदेवाखिलमहमानतो लक्षणतश्च सर्वं विजिज्ञासामि ॥

३—भगवतो गुणमये स्थूलरूप आवेशित मनोह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतम आत्मज्योतिषि परेब्रह्मणि भगवति वासुदेवाख्ये क्षममावेशितुं तदुहैतद् गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति ॥

ऋषिरुवाच—

४—न वै महाराज भगवतो मायागुणविभूते. काष्ठां मनसा वचसावाऽधिगंतुमल विबुधायुषाऽपि पुरुषस्त स्मात्प्राधान्येनैव भूगोलकविशेषं नामरूपमानलक्षणतो व्याख्यास्यामः ॥

५—योवाऽयंद्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यंतरकोशो नियुतयोजनविशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रं ॥

नारायणनामसे अजामिलकी मुक्ति

(भाग० स्कं० ६ अ० २)

सोलहवाँ अध्याय

जम्बुद्वीप के नव खण्ड और मेरुपर्वत

राजा परीक्षित बोले—आपने भूमण्डल का वहाँ तक परिमाण बतलाया है, जहाँ तक सूर्य का प्रकाश जाता है और जहाँ तक चन्द्रमा नक्षत्रों के साथ दिखाई पड़ते हैं। वहाँ राजा प्रियव्रत के रथ के पहियों के चिन्ह से सात समुद्र बन गये हैं। भगवन्! जिन सात समुद्रों के कारण आपने पृथ्वी को सात भागों मे बाँटा है। भगवन्, इन्हीं सबों का मैं परिमाण और लक्षण जानना चाहता हूँ। पहले भगवान् के सगुण, स्थूलरूप ब्रह्माण्ड मे मन लगाने से ही उनके अत्यन्त सूक्ष्म, स्वयंप्रकाश और सर्वव्यापक परब्रह्म मे भी मन लगाया जा सकता है। अतएव, गुरो! आप इस स्थूल ब्रह्माण्ड का वर्णन करें॥ ३॥

ऋषि बोले—महाराज! भगवान् की माया के गुणों की विभूति का यथार्थ ज्ञान, मनुष्य, देवताओं की आयु के तुल्य समय मे भी मन या वचन के द्वारा नहीं लगा सकता। अतएव प्रधान २ भूगोल की रचना, उनके नाम और लक्षण आपको बतलाऊँगा। भूमण्डलरूपी कमल के बीच का कोष इस जम्बुद्वीप मे नवखण्ड हैं और प्रत्येक का विस्तार नव-नव हजार योजन है और ये खण्ड आठ पर्वतों से विभक्त हैं, अर्थात् इनकी सीमा आठ पर्वतों से बाँटी गयी है। इन नव खण्डों के बीच में इलावृत नामका खण्ड है। इस इलावृत खण्ड के बीच में

राजोवाच—

१—उक्तस्त्वया भूमण्डलायामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषांगणैश्चन्द्रमावासहदृश्यते॥

२—तत्रापि प्रियव्रतरथचरणपरिखातैः सप्तभिः सप्तसिन्धव उपक्लृप्तायवएतस्याः सप्तद्वीपविशेषविकल्पस्त्वया भगवन् खलु सूचित एतदेवाखिलमहमानतो लक्षणतश्च सर्वं विजिज्ञास्यामि॥

३—भगवतो गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनोह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतम आत्मज्योतिषि परेब्रह्मणि भगवति वासुदेवाख्ये क्षममावेशितुं तदु हैतद् गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति॥

ऋषिरुवाच—

४—न वै महाराज भगवतो मायागुणविभूतेः काष्ठां मनसा वचसावाऽधिगन्तुमलं विबुधायुषाऽपि पुरुषस्तस्मात्प्राधान्येनैव भूगोलकविशेषं नामरूपमानलक्षणतो व्याख्यास्यामः॥

५—योवाऽयंद्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तरकोशो नियुतयोजनविशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रं॥

एक बहुत बडा, पर्वतों का राजा मेरुपर्वत है । यह समूचा सुवर्ण का है । इसकी ऊँचाई एक लाख योजन है । यह पृथ्वीरूप कमल की कर्णिका के समान है । इस मेरुपर्वत के ऊपर का भाग बत्तीस हजार योजन लम्बा-चौडा है और इसका मूल सोलह हजार योजन में है और सोलह ही हजार योजन यह पृथ्वी के भीतर है । इलावृत खण्ड के उत्तर क्रम से नील, श्वेत और श्रृंगवान नाम के तीन पर्वत हैं । ये तीनों पर्वत क्रम से रम्यक, हिरण्मय और कुरु खण्ड की सीमा हैं । ये पर्वत पूर्व की ओर लम्बे हैं और दोनों तरफ क्षारसमुद्र तक पहुँचे है । ये दो-दो हजार योजन लम्बे हैं । इन पर्वतों में एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे दशांश से थोडा अधिक लम्बाई में कम हैं ।

इसी प्रकार इलावृत खण्ड के दक्षिण की ओर निषध, हेमकूट और हिमालय नाम के तीन पर्वत हैं जो क्रम से हरिवर्ष, किम्पुरुष और भरतखण्ड की सीमा रूप हैं । इनका विस्तार पूर्व की ओर है । इनकी ऊँचाई नील आदि पर्वतों के समान दस-दस योजन है और ये दो-दो हजार योजन चौड़े हैं । इसी प्रकार इलावृत खण्ड के पश्चिम और पूर्व की ओर माल्यवान और गंधमादन नाम के पर्वत हैं । ये नील और निषधपर्वत तक चले गये हैं । इनकी चौडाई दो-दो हजार योजन तक है । ये पर्वत केतुमाल और भद्राश्व खण्ड की सीमा निर्देश करते हैं । मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद नाम के पर्वत मेरुपर्वत के चारो ओर वर्तमान हैं, इनकी लम्बाई चौड़ाई दस-दस हजार योजन बतलाई जाती है । इन चारों पर्वतो पर क्रम से आम, जामुन, कदम्ब और बड़ के बड़े-बडे चार वृक्ष है । ये उन पर्वतों की ध्वजा के समान मालूम होते हैं । इनकी ऊँचाई हजार योजन से कुछ अधिक है । इनकी शाखाएँ बहुत दूर-दूर तक फैली हुई हैं ।

६—यस्मिन्नव वर्षाणि नवयोजन सहस्रायामान्यष्टभिर्मर्यादागिरिभिः सुविभक्तानि भवन्ति ॥

७—एषां मध्ये इलावृतं नामाभ्यन्तरवर्षं यस्य नाभ्यामवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरुर्द्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूत कुवलयकमलस्य ॥

८—मूर्द्धनि द्वात्रिंशत्सहस्र योजनविततो मूले षोडशसहस्र तावतान्तर्भूम्यां प्रविष्ट उत्तरोत्तरेणेलावृतं नीलः श्वेतः श्रृंगवानिति त्रयो रम्यकहिरण्मयकुरूणां वर्षाणां मर्यादागिरयः प्रागायता उभयतः क्षारोदावधयो द्विसहस्रपृथव एकैकशः पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो दशांशाधिकांशेन दैर्घ्य एव ह्रसन्ति ॥

९—एवं दक्षिणेनेलावृतं निषधो हेमकूटो हिमालय इति प्रागायता यथा नीलादयः अयुतयोजनोत्सेधा हरिवर्षकिंपुरुषभारतानां यथासंख्यम् ॥

१०—तथैवेलावृतमपरेण पूर्वेण च माल्यवद्गन्धमादनावानीलनिषधायतौ द्विसहस्रं पप्रथुः ॥

११—केतुमालभद्राश्वयोः सीमानं विदधाते ॥

वे सौ-सौ योजन की मोटी हैं। इन पर्वतों पर दूध, मधु, ईख के रस तथा मीठे जल के चार तालाब हैं जिनके सेवन से गन्धर्व, यक्ष आदि देवयोनि वाले स्वभावतः योग की सिद्धियाँ पा जाते हैं। इनकी प्राप्ति के लिये उन्हें कुछ उद्योग नहीं करना पड़ता। इन पर्वतों पर क्रम से नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र नाम के चार देवताओं के चार उद्यान हैं। जिनमें देवगण देवाङ्गनाओं के साथ मिलकर विहार करते हैं और गन्धर्व आदि उनके यश का गान करते हैं। मन्दरपर्वत के ऊपर ग्यारह सौ योजन ऊँचा जो देवताओं का आम्रवृक्ष है, उसके पर्वत के शिखर के समान बड़े-बड़े और अमृत के समान स्वादिष्ट फल नीचे गिरते हैं। ये फल नीचे गिरकर फट जाते हैं और उनके अत्यन्त मधुर, सुगन्धिपूर्ण, लाल रंग के जल से अरुणोदा नाम की नदी मन्दरपर्वत के शिखर से प्रवाहित होकर नीचे गिरती है और पूर्व की ओर से इलावृतखण्ड को सींचती है। पार्वती की दासी दक्ष स्त्रियाँ जो इस फल के रस का उपयोग करती हैं, उनके अंगो के स्पर्श से वहाँ की वायु सुगन्धित हो जाती है और चारों ओर दस योजन तक वह सुगन्ध फैलाती है ॥ १९ ॥

इसी प्रकार छोटी गुठली वाली, हाथी के समान बड़ी जामुन बहुत ऊँचे से गिरने के कारण फट जाती है और उसके रस से जम्बु नाम की नदी मेरुमन्दर पर्वत के शिखर पर बहती हुई वहाँ से दस हजार योजन नीचे गिरती है और अपने दक्षिण तीर से इलावृतखण्ड तक

१२—मदरो मेरुमदरः सुपार्श्वः कुमुद इति अयुतयोजनविस्तारोन्नाहामेरोश्चतुर्दिशमवष्टंभ गिरय उपक्लृप्ताः॥

१३—चतुर्ष्वेतेषु चूत जबू कदब न्यग्रोधाश्चत्वारः पादपप्रवराः पर्वतकेतव इवाधिसहस्रयोजनोन्नाहास्तावद्वि टपवितत्यः शतयोजनपरिणाहाः ॥

१४—ह्रदाश्चत्वारः पयोमध्विक्षुरसमृष्टजलायदुपस्पर्शिन उपदेवगणायोगैश्वर्याणि स्वाभाविकानि भरतर्षभ धारयंति ॥

१५—देवोद्यानानि च भवंति चत्वारि नदनं चैत्ररथ वैभ्राजकं सर्वतोभद्रमिति ॥

१६—येष्वमरपरिवृढाः सह सुरललनाललामयूथपतय उपदेवगणैरुपगीयमान महिमानः किल विहरति ॥

१७—मंदरोत्संग एकादश शतयोजनोत्तुंग देवचूतशिरसो गिरिशिखरस्थूलानि फलान्यमृतकल्पानि पतंति ॥

१८—तेषा विशीर्यमाणानामतिमधुरसुरभिसुगंधिबहुलारुणरसोदेनारुणोदानामनदीमंदरगिरिशिखरान्निपतंतीपूर्वेणेलावृतमुपप्लावयति ॥

१९—यदुपजोषणाद्भवान्या अनुचरीणा पुण्यजनवधूनामवयवस्पर्शसुगंधवातो दशयोजनं समंतादनुवासयति ॥

बहती है। इतनी दूर तक उसके दोनों तीर की मिट्टी, उस जम्बुरस के साथ मिलने से, सूर्य और वायु के संयोग से पक कर, जम्बुनद नामक सोना बन जाती है, जिस सोने के आभूषण देवताओं के उपयोग में आते हैं। अपनी स्त्रियों के साथ इस सोने के मुकुट, कड़े और करधनी धारण करते हैं ॥ २२ ॥

सुपार्श्वपर्वत पर जो बहुत बड़ा कदम्ब का वृक्ष है, उसके पाँच कोटरों से पाँच धाराएँ निकलती हैं। उनकी चौड़ाई पाँच व्याम है। दोनों हाथ के एक सीध में फैलाने से जो लम्बाई होती है, उसे व्याम कहते हैं। वे सुपार्श्वपर्वत से नीचे गिरकर अपने पश्चिम तट से इलावृत-खण्ड को आनन्दित करती है। इन मधु की धाराओं का उपयोग करने वाली स्त्रियों के निःश्वास से सुगन्धित वायु चारों ओर सौ योजन तक सुगन्ध फैलाती है ॥ २४ ॥

इसी प्रकार कुमुदपर्वत पर शतवल्श नाम का एक बड़ा वटवृक्ष है। उसके स्कन्धों से (शाखा फूटने का स्थान) दूध, दही, मधु, घी, गुड़, अन्न, वस्त्र, बिछौना, आसन, आभरण आदि सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले नद निकलते हैं और कुमुदपर्वत से नीचे गिरकर इलावृतखण्ड के उत्तरीय भाग के उपयोग में आते हैं। इन नदों के पदार्थों के उपयोग करने वाले स्त्री-पुरुष बूढ़े नहीं होते। इनके चेहरे पर झुर्रियाँ नहीं पड़तीं और सफेद बाल नहीं होते। थकावट, पसीने की दुर्गन्धि; वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, शीत, उष्णता, विवर्णता तथा अन्य बाधा-विघ्न नहीं होते। वे जीवनपर्यन्त सुख से रहते हैं ॥ २६ ॥

२०—एवं जम्बूफलानामत्युच्चनिपातविशीर्णानामनस्थिप्रायाणामिभकायनिभानां रसेन जम्बू नाम नदी मेरुमन्दरशिखरादयुतयोजनादवनितले निपतन्ती दक्षिणेनात्मानं यावदिलावृतमुपस्यन्दयति ॥

२१—तावदुभयोरपि रोधसोर्या मृत्तिका तद्रसेनानुविध्यमाना वाय्वर्कसंयोगविपाकेन सदाऽमरलोकाभरणं जाम्बूनदं नाम सुवर्णं भवति ॥

२२—यदु ह वाव विबुधादयः सह युवतिभिर्मुकुटकटककटिसूत्राद्याभरणरूपेण खलु धारयन्ति ॥

२३—यस्तु महाकदम्बः सुपार्श्वनिरूढो यास्तस्य कोटरेभ्यो विनिःसृताः पञ्चायामपरिणाहाः पंचमधुधाराः सुपार्श्वशिखरात्पतन्त्योऽपरेणात्मानमिलावृतमनुमोदयन्ति ॥

२४—या ह्युपयुञ्जानानां मुखनिर्वासितो वायुः समन्ताच्छतयोजनमनुवासयति ॥

२५—एवं कुमुदनिरूढो यः शतवल्शो नाम वटस्तस्य स्कन्धेभ्यो नीचीनाः पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यम्बरशय्यासनाभरणादयः सर्व एव कामदुघा नदाः कुमुदाग्रात्पतन्तस्तमुत्तरेणेलावृतमुपयोजयन्ति ॥

२६—यानुपजुषाणानां न कदाचिदपि प्रजानां वलीपलितक्लमस्वेददौर्गन्ध्यजरामयमृत्युशीतोष्णवैवर्ण्योपसर्गादयस्तापविशेषा भवन्ति यावज्जीवं सुखं निरतिशयमेव ॥

कुरंग, कुरर, कुसुभ, वैकंक, त्रिकुट, शिशिर, पतग, रुचक, निपध, शिनि, वास, कपिल, शख, वैदूर्य, जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालञ्जर और नारद-ये बीस पर्वत मेरुपर्वत के मूल भाग में चारों ओर हैं। जिस प्रकार कमल की कर्णिका के चारों ओर केशर होते है। मेरु पर्वत के पूर्व की ओर जठर और देवकूट नामक दो पर्वत है। ये उत्तर की ओर अट्ठारह हजार योजन लम्बे है। इनकी चौडाई और ऊंचाई दो-दो हजार योजन है। इसी प्रकार मेरुपर्वत के पश्चिम की ओर पवन और पारियात्र नाम के पर्वत हैं। दक्षिण की ओर कैलाश और करवीर नामके पर्वत हैं। इनकी लम्बाई पूर्व की ओर है। मेरुपर्वत के उत्तर की ओर मठर और त्रिशृंग नाम के पर्वत है। इन आठ पर्वतों के बीच में सुवर्ण का मेरुपर्वत अग्नि के समान शोभा शाली है। यह मेरुपर्वत अग्नि के समान शोभित होता है। मेरुपर्वत के शिखर पर ब्रह्मा की नगरी है, जो सुवर्ण की, समतल और दस हजार योजन मे बनी हुई है। ऐसा मुनिगण कहते हैं। इस ब्रह्मा की नगरी के समान आठ लोकपालों की भी आठ नगरियाँ उन-उन लोकपालों की दिशाओं मे बतलायी जाती है। उन आठों नगरियों के वर्ण भी उनके स्वामी लोकपालों के समान ही हैं। इनका परिमाण ब्रह्मा की नगरी का चौथाई है॥ ३०॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवे स्कंध का सोलहवाँ अध्याय समाप्त

२७—कुरंगकुररकुसुभवैकंकत्रिकूटशिशिरपतगरुचकनिषधशिनीवासकपिलशङ्खवैदूर्यजारुधिहंसर्षभनागकालञ्जरनारदादयो विंशतिगिरयो मेरोः कर्णिकाया इव केसरभूता मूलदेशे परित उपक्लृप्ताः॥

२८—जठरदेवकूटौ मेरुं पूर्वेणाष्टादशयोजनसहस्रमुदगायतौ द्विसहस्रं पृथुतुङ्गौ भवतः एवमपरेण पवनपारियात्रौ दक्षिणेन कैलासकरवीरौ प्रागायतावेवमुत्तरतस्त्रिशृङ्गमकरावष्टभिरेतैः परिसृतोऽग्निरिव परितश्चकास्ति काञ्चनगिरिः॥

२९—मेरोर्मूर्धनि भगवत आत्मयोनेर्मध्यत उपक्लृप्तां पुरीमयुतयोजनसाहस्रीं समचतुरस्रां शातकौम्भीं वदन्ति॥

३०—तामनुपरितो लोकपालानामष्टानां यथादिशं यथारूपं तुरीयमानेन पुरोऽष्टावुपक्लृप्ताः॥

इति श्री भा० म० पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

गंगा का चारों दिशाओं में जाना और रुद्र के द्वारा संकर्षण की सेवा

श्रीशुकदेव बोले—साक्षात् यज्ञमूर्ति, भगवान् विष्णु ने, वामनरूप से बलि के यज्ञ में दाहिने पैर से पृथ्वी को दबाकर बायां पैर ऊंचा किया था। उस चरण के अंगूठे के नख से ब्रह्माण्ड के ऊपर वाला ढक्कन फट गया और उस छिद्र से बाहर की जल-धारा भीतर आयी। वह जल-धारा एक हजार युग तक स्वर्ग में रही। भगवान के चरणों को धोने से,वह जल उनके चरण के केशर मिल जाने से, रंग गया। वह जल स्वयं पवित्र और संसार के पापों को दूर करने वाला था। उस धारा का नाम उस समय 'भगवत्पदी' था। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई नाम नहीं था। जिस स्थान पर वह धारा आयी थी, उसे विष्णुपद कहते हैं। जहा दृढ संकल्प ध्रुव रहते हैं। परम विष्णुभक्त ध्रुव ने इस जल-धारा को अपने कुलदेवता के चरणारविंद का जल समझकर आज तक बड़े आदर से अपने मस्तक पर धारण करते हैं। जिन ध्रुव का हृदय प्रतिक्षण बढ़ने वाली भगवद्भक्ति से द्रवित होता रहता है। उत्कण्ठा से विवश होने के कारण जिनकी आँखें कमल-कली के समान बन्द हो जाता हैं और उनसे आँसू टपकने लगते है और उनके समस्त शरीर में रोमाञ्च हो जाता है। ध्रुवजी के नीचे रहने वाले सप्तऋषि उस धारा को बड़े सम्मान के साथ अपनी जटा में आज भी धारण करते हैं। वे सप्तर्षि, गंगा के प्रभाव को जानते हैं। वे भगवद्भक्ति के लाभ हो जाने से अन्य पुरुषार्थों तथा आत्मज्ञान को भी तुच्छ समझते

श्रीशुक उवाच—

१—तत्र भगवतः साक्षाद्यज्ञलिंगस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादांगुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वांडकटाहविवरेणांतः प्रवि
ष्टायाबाह्य जलधारा तच्चरणपंकजावनेजनारुणकिंजल्कोपरंजिताखिलजगदघमलापहोपस्पर्शनाऽमला
साक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोऽभिधीयमानाऽति महताकालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवो मूर्द्धन्यवत
तार ॥

२—यत्तद्विष्णुपदमाहुः यत्र ह वाव वीरव्रत औत्तानपादिः परमभागवतोऽस्मत्कुलदेवता चरणारविंदोदकमिति
यामनुसवनमुत्कृष्यमाणभगवद्भक्तियोगेन दृढं क्लिद्यमानांतर्हृदय औत्कण्ठ्य विवशामीलितलोचनयुगल
परमादरेण शिरसा बिभर्ति ॥
कुड्मलविगलितामलबाष्पकलयाऽभिमुदगायतनरोमपुलकोऽद्युनापि

३—तत ऋषयस्तत्प्रभावाभिज्ञा नन्वियं तपस आत्यन्तिकी सिद्धिरेतावती भगवति सर्वात्मनि वासुदेवेऽनुपरतभ
क्तियोगलाभेनैवोपेक्षितान्यार्थात्मगतयो मुक्तिमिवागतां मुमुक्षव इव सबहुमानमद्यापि जटाजूटैरुद्वहन्ति ॥

हैं। मुमुक्षुपुरुष जिस आदर के साथ मुक्ति को धारण करते हैं, उसी प्रकार गंगा की प्राप्ति को ही अपनी तपस्या का सर्वोत्तम फल समझकर उन लोगों ने धारण किया है। वह धारा वहां से नीचे उतरी, जहां का आकाश-मार्ग हज़ारों तथा करोड़ों विमानों के कारण सँकरा हो गया है। उस से होती हुई चन्द्रमण्डल को भिगाती हुई, मेरुपर्वत के शिखर पर वर्तमान ब्रह्मा की नगरी में आयी। वहां आने पर इसके चार भाग हो गये और चार नामों से प्रसिद्ध होकर यह चारों दिशाओं में होती हुई समुद्र में मिलती है। उसके चार नाम ये हैं—सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा। सीता नाम की धारा ब्रह्मलोक से चलकर केशराचल पर्वतों के शिखरों से होती हुई नीचे उतर कर गंधमादन पर्वत के शिखर पर आती है और वहां से भद्राश्वखण्ड के बीच में होती हुई पूर्व दिशा के क्षारसमुद्र मे मिलती है। चक्षु नाम की धारा माल्यवानपर्वत के शिखर से होकर केतुमालखण्ड की तरफ गिरती है और वहां से बड़े वेग से चलकर पश्चिम दिशा के समुद्र मे मिलती है। भद्रा नाम की धारा मेरुपर्वत के शिखर से नीलपर्वत के शिखर पर गिरती है। वहां से श्वेतपर्वत के शिखर पर और वहां से शृंगवान पर्वत के शिखर पर गिर-कर नीचे उतरती है और उत्तर कुरुखण्ड मे होती हुई, उत्तर दिशा के क्षारसमुद्र में मिल जाती है। इसी प्रकार अलकनन्दा नाम की धारा ब्रह्मा की नगरी से दक्षिण की ओर चलकर अनेक पर्वतों के शिखरों से होती हुई हेमकूटपर्वत पर आती है और अपने प्रखर वेग से हेमकूट के शिखरों को तोड़ती हुई भरतखंड से होती हुई दक्षिण समुद्र मे मिलती है। उस गंगा मे स्नान और जलपान करने के लिये आने वालों को प्रतिपद पर अश्वमेध और राज-

---

४—ततोऽनेकसहस्रकोटिविमानानीकसङ्कुलदेवयानेनावतरन्तीन्दुमण्डलमावार्य ब्रह्मसदने निपतति ॥

५—तत्र चतुर्धाभिद्यमाना चतुर्भिर्नामभिश्चतुर्दिशमभिस्पन्दन्ती नदनदीपतिमेवाभिनिविशति ॥

६—सीताऽलकनंदा चक्षुर्भद्रेति सीता तु ब्रह्मसदनात्केशराचलादिगिरिशिखरेभ्योऽधोऽधः प्रस्रवंती, गंधमादन मूर्द्धसु पतित्वा अंतरेण भद्राश्ववर्षं प्राच्या दिशि क्षारसमुद्र मभिप्रविशति ॥

७—एवं माल्यवच्छिखरान्निष्पतन्ती ततोऽनुपरत वेगा केतुमालमभि चक्षुः प्रतीच्यां दिशि सरित्पतिं प्रविशति ॥

८—भद्राचोत्तरतो मेरुशिरसो निपतिता गिरिशिखराद्गिरिशिखरमतिहाय शृंगवतः शृंगादवस्यन्दमाना उत्तरांस्तु कुरूनभित उदीच्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति ॥

९—तथैवालकनन्दा दक्षिणेन ब्रह्मसदनाद् बहूनि गिरिकूटान्यतिक्रम्य हेमकूटाद्धैमकूटान्यतिरभसतररंहसा लुठयन्ती भारतमभिवर्षं दक्षिणस्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति ॥

१०—यस्यां स्नानार्थं चागच्छतः पुंसः पदे पदेऽश्वमेधराजसूयादीनां फलं न दुर्लभमिति अन्येच नदानद्यश्च वर्षे वर्षे सन्ति बहुशो मेर्वादिगिरिदुहितरः शतशः ॥

सूय यज्ञ के फल दुर्लभ नहीं होते। अर्थात् गंगा जाने के लिये एक-एक पैर चलना, इन यज्ञों के बराबर फल देने वाला है। इन नदियों के अतिरिक्त प्रत्येक खड मे मेरु आदि पर्वतों से निकलती हुई अनेक नदियां और नद है ॥ १० ॥

इन नवखडों मे भरतखड ही कर्मक्षेत्र है। अन्य आठ खड पृथ्वी वासियों के स्वर्ग कहे जाते है। देवताओं के स्वर्ग के फल-भोग से बचे पुण्य का भोग इन लोकों मे होता है। भारत के अतिरिक्त अन्य खडों मे मनुष्य की गणना से दस हजार वर्ष की आयु वहां के रहने वालों की होती है। इन खडों में देव तुल्य मनुष्य रहते है जिनमे हजार हाथियो का बल होता है। उनके शरीर वज्र के समान दृढ होते है, वे सदा युवा और प्रसन्न रहते है, वे दम्पत्ति सुख सदा भोगते रहते है। उनकी स्त्रिया एक वर्ष तक गर्भ धारण करती है।। वहा का समय त्रेतायुग के समान बीतता है। अपने-अपने सेवको के द्वारा विधिपूर्वक पूजित बड़े-बडे देवता आश्रमों मे, पर्वतो की गुफाओं मे तथा निर्मल जलाशयों मे जलक्रीडा आदि इच्छानुसार अनेक क्रीडाएं करते हुए, उन खण्डों मे विहार करते है। सब ऋतुओं मे फल, फूल तथा नये पत्तों की अधिकता से जिनकी शाखाएँ झुक गयी हैं, ऐसे लता वेष्टित वृक्षों से वहा के आश्रम और पर्वत के वन, बहुत ही शोभित होते रहते हैं। सद्य विकसित अनेक प्रकार के कमलों की गध से मत्त राजहंस, कारण्डव, सारस, चक्रवाक आदि पक्षी तथा अनेक प्रकार के भ्रमर वहा के सुन्दर जलाशयों मे गूजते रहते हैं। अत्यन्त सुन्दरी देवागनाओं के काम विलास, पूर्णहास और लीलाकटाक्ष से देवताओं के मन और दृष्टि आकृष्ट हो जाते है। इन नवों खडो मे महापुरुष भगवान् नारायण

११—तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्र मन्यान्यष्ट वर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्ग पदानि व्यपदिशन्ति ॥

१२—एषु पुरुषाणामयुत पुरुषायुर्वर्षाणां देवकल्पानां नागायुतप्राणानां वज्रसंहनन बलवयो मोदप्रमुदित महासौरत मिथुनव्यवायापवर्गवर्षधृतैकगर्भकलत्राणां तत्र तु त्रेता युगसमः कालो वर्तते ॥

१३—यत्र ह देवपतयः स्वैः स्वैर्गणनायकैर्विहितमहार्हणाः सर्वर्तुकुसुमस्तबक फलकिसलयश्रियाऽऽनम्यमान विटपलताविटपिभिरुपशुम्भमान रुचिरकाननाश्रमायतन वर्षगिरिद्रोणीषु तथा चामलजलाशयेषु विकच विविधनववनरुहामोद मुदितराजहंसजलकुक्कुटकारण्डवसारसचक्रवाकादिभिर्मधुकरनिकराकृतिभिरुपकूजितेषु जलक्रीडादिभिर्विचित्रविनोदैः सुललितसुरसुन्दरीणां कामकलिलविलासहासलीलावलोकाकृष्टमनो दृष्टयः स्वैरं विहरन्ति ॥

१४—नवस्वपि वर्षेषु भगवान्नारायणो महापुरुषः पुरुषाणां तदनुग्रहायात्मतत्त्वव्यूहेनात्मनाद्यापि संनिधीयते ॥

अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये अपने अंश, कलाओं के साथ स्वयं उन लोकों में विविध मूर्तियों से निवास करते है । इलावृतखण्ड में स्वयं भगवान् शिव ही एक पुरुष है। वहा दूसरा कोई पुरुष, पार्वती का शाप जानने वाला, नहीं जा सकता। यदि जाय तो वह स्त्री हो जाय। यह बात आगे कही जायगी। उस इलावृतखण्ड मे पार्वती की हजारों अरब दासिया सदाशिव की सेवा करती हैं और स्वयं सदाशिव शेषनाग की सेवा करते है, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध उन चार मूर्तियों वाले महापुरुष भगवान् की सकर्षण नाम की चौथी मूर्ति तमोगुणमय है, जिससे स्वयं सदाशिव उत्पन्न हुए हैं। उस मर्ति को ध्यान के द्वारा अपने पास लाकर वे सदाशिव सदा नीचे का मन्त्र जपते रहते है ॥ १६ ॥

भगवान् सदाशिव इस मन्त्र का जप करते हैं-" ओ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुण सख्यानायानन्तायाऽव्यक्ताय नम इति । " समस्त गुणों के प्रकाशक, अनन्त और स्वय अव्यक्त महापुरुष भगवान् को नमस्कार ! हे भजनीय परमात्मन् ! आप समस्त ऐश्वर्यों के आश्रय हैं । भक्तों के दया-परवश होकर आप उन्हे अपना दर्शन देत हैं। ससार के कष्टों को दूर करने वाले आपके चरणारविन्द ही एक शरण है । मै आपका भजन करता हू। भगवन् ! जगत को नियमित रखने के लिये आप इसको देखा करते है, फिर भी क्रोध को न जीतने वाले हम लोगों की दृष्टि के समान आपकी दृष्टि विषयों से लिप्त नहीं होती। आपकी दृष्टिपर विषयों और चित्त-वृत्तियों का कुछ भी प्रभाव नहीं पडता। ऐसे आपका भजन मुक्ति चाहने वाला कौन मनुष्य न करेगा। जो भगवान् मिथ्या दृष्टि वालो को मतवालों के समान भयङ्कर दीख पडते हैं । मदिरा,

---

१५—इलावृतेतु भगवान् भव एकएव पुमानह्यन्यस्तत्रापरो निविशति भवान्याः शापनिमित्तज्ञो यत्प्रवेक्ष्यतः स्त्रीभावस्तत्पश्चाद्वक्ष्यामि ॥

१६—भवानीनाथैः स्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो भगवतश्चतुर्मूर्तेर्महापुरुषस्य तुरीयां तामसीं मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः सङ्कर्षणसंज्ञामात्मसमाधिरूपेण सन्निधाप्यैतदभिगृणन् भव उपधावति ॥

श्रीभगवानुवाच —

१७—ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसङ्ख्यानायानन्तायाऽव्यक्ताय नम इति ॥

१८—भजे भजन्यारणपादपङ्कजं भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ।
भक्तेष्वलम्भावितभूतभावनं भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ॥

१९—न यस्य मायागुणचित्तवृत्तिभिर्निरीक्षतो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ।
ईशे यथा नोऽजितमन्युरंहसा कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ॥

२०—असद्दृशो यः प्रतिभाति मायया क्षीबेव मध्वासवताम्रलोचनः ।
न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेन्द्रियाः ॥

आसव के सेवन से जिनकी आंखे लाल हो गयी हैं, उनका मुक्ति चाहने वाला कौन पुरुष भजन नहीं करेगा ! मिथ्या दृष्टि रखने वाली नागिनिया भी जिनके चरणस्पर्श से कामातुर हो गयी थीं, अतएव लज्जावश वे उनकी पूरी पूजा न कर सकीं। वेदमन्त्र आपको इस जगत के, उत्पत्ति,स्थिति और प्रलय करने वाले बतलाते हैं और उत्पत्ति-स्थिति और प्रलयरहित तथा अनन्त आपके हजारों मस्तकों मे से एक किसी मस्तक पर यह भूमण्डल सरसों के समान रहता है, जिसका आपको पता भी नहीं है। सत्वगुण के आश्रय महत्तत्व (आप के गुण) से संयुक्त होकर आपका प्रथम शरीर बना। इस शरीर से ब्रह्मा उत्पन्न हुए और ब्रह्मा से मैं उत्पन्न हुआ हूँ। मै त्रिगुणात्मक अहकार के द्वारा देवताओं, पंचभूतों और इन्द्रियों की रचना करता हूँ। यह महत्तत्व, अहंकार, देवता, पञ्चभूत और इन्द्रियाँ आपके वश मे हैं, जिस प्रकार डोरी में बँधा पक्षी किसी मनुष्य के वश मे रहता है। उसी प्रकार हम लोग भी आप महात्मा की क्रियाशक्ति से बंधे हुए हैं और आपके अनुग्रह से इस जगत की रचना करते हैं। मोहमुग्ध यह जीव, आपकी बनायी और कर्मरूपबन्धन से बाधने वाली, इस माया को जान लेता है, पर उससे उद्धार का उपाय फिर भी नहीं जानता। अतएव मैं आपको नमस्कार करता हूँ। इस जगत की उत्पत्ति और नाश आपके स्वरूप मे ही वर्तमान हैं।। २४।।

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कंध का सत्रहवाँ अध्याय समाप्त

२१—यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयमं त्रिभिर्विहीनं यमनन्तमृषयः।
न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितं भूमण्डलं मूर्धसहस्रधामसु॥

२२—यस्याद्य आसीद् गुणविग्रहो महान्विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल।
यत्सम्भवोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकं तामसमैन्द्रियं सृजे॥

२३—एते वयं यस्य वशे महात्मनः स्थिताः शकुन्ता इव सूत्रयन्त्रिताः।
महानहं वैकृततामसेन्द्रियाः सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम्॥

२४—यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं मायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः।
न वेद निस्तारणयोगमञ्जसा तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेपञ्चमस्कंधेसप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

छः खण्डों के देवता और भक्त

श्रीशुकदेव बोले—भद्राश्वखण्ड में धर्मपुत्र भद्रश्रवा, उनके कुल के प्रधानपुरुष तथा उनके सेवक भगवान के प्रिय और धर्मस्वरूप हयग्रीव नामक अवतार का भजन एकाग्र चित्त होकर करते है और उसी एकाग्रता से उनको चित्त मे लाकर नीचे लिखे मन्त्र से स्तुति करते हैं—

भद्रश्रवस् बोले—" ओं नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति।" अन्तःकरण को शुद्ध करने वाले धर्मस्वरूप भगवान को हम लोग नमस्कार करते हैं। भगवन्, आपकी लीला बड़ी विचित्र है। यह मनुष्य अपने पुत्र अथवा पिता को श्मशान में जला देता और उसके धन से स्वय जीने की इच्छा करता है और जीकर पापकर्म करना चाहता है। इसके समाने मृत्यु होती है और यह उसे देखता है, पर अनदेखे के समान उधर ध्यान नहीं देता। यह सब आपकी ही तो लीला है। विद्वान मनुष्य शास्त्रों के अनुसार इस जगत को विनाशी बतलाते हैं और योगीगण इस बात को अपनी समाधि के द्वारा प्रत्यक्ष करते हैं, तथापि ये सब आपकी माया के द्वारा

श्रीशुक उवाच—

१—तथाच भद्रश्रवानाम धर्मसुतस्तत्कुलपतयः पुरुषाभद्राश्ववर्षे साक्षाद्भगवतो वासुदेवस्य प्रिया तनूं धर्ममयीं हयशीर्षाभिधानीं परमेण समाधिना सन्निधाप्येदमभिगृणात उपधावति ॥

भद्रश्रवस ऊचुः—

२—ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥

३—अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं घ्नंतं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति।
ध्यायन्नसद्यर्हि विकर्म सेवितुं निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषुः॥

४—वदंति विश्वं कवयः स्म नश्वरं पश्यंति चाध्यात्मविदो विपश्चितः।
तथाऽपि मुह्यंति तवाज मायया सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तं॥

५—विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते ह्यकर्तुरंगीकृतमप्यपावृतः।
युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः॥

मोहित हो रहे हैं। भगवन्, आपके कार्य बड़े विचित्र हैं अतएव सबका त्याग करके हम लोग अजन्मा आपको नमस्कार करते हैं। भगवन्, आप अकर्ता हैं,उपाधिरहित हैं, पर वेद कहते हैं कि आप ससार की सृष्टि,स्थिति और प्रलय करते हैं उसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है,क्योंकि माया के कारण आप सर्व स्वरूप और सब कार्यों के कर्त्ता हैं, अतएव आप सृष्टि के कर्त्ता भी हो सकते और तात्त्विक दृष्टि से अकर्ता और उपाधिरहित भी हो सकते है। प्रयलकाल में दैत्यरूपी तमोगुण ने वेदों को नष्ट कर दिया था। ब्रह्मा की प्रार्थना से हयग्रीव का अवतार धारण करके आप पाताल से वेदों को ले आये। अतएव सत्यसकल्प आप को हम लोग नमस्कार करते हैं। हरिवर्ष खण्ड में भगवान नृसिंह-रूप से वर्तमान रहते हैं, इस अवतार धारण का कारण आगे कहूँगा। महापुरुष के लक्षणों से युक्त, महावैष्णव, शील और चरित्र के द्वारा दानवकुल को पवित्र करने वाले प्रह्लाद इस खण्ड के अन्य वासियों के साथ निष्काम और दृढभक्ति के द्वारा भगवान के प्रिय अवतार की उपासना करते हैं और नीचे लिखे अनुसार उनकी स्तुति करते हैं—'ओं नमो भगवते नर-सिंहाय नमस्तेजस्तेजसे, आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ओं स्वाहा अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठा' ओं क्ष्रौम्।" तेज के भी तेज भगवान नरसिंह को मैं नमस्कार करता हूँ। हे वज्र के समान नख और दाढ वाले देव! आप प्रकट हों, प्रकट हों। कर्म की वासनाओं का नाश करें, अन्धकार को दूर कर दे और अन्त करण मे अभयलोक से विराजमान हों। ससार का कल्याण हो। दुष्ट अपनी दुष्टता छोड़ दे। मनुष्य परस्पर कल्याण की इच्छा करे। मन शान्ति आदि सद्गुणों से युक्त हो और

६—वेदान्युगाते तमसा तिरस्कृतान् रसातलाद्योनृतुरगविग्रहः।

प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते तस्मै नमस्तेऽवितथेहिताय त इति ॥

७—हरिवर्षे चापि भगवान्नरहरिरूपेणास्ते तद्रूपग्रहणनिमित्त मुत्तरत्राभिधास्ये तद्दयित रूप महापुरुषगुण भाजनो महाभागवतो दैत्यदानवकुलतीर्थीकरणशीलाचरितः प्रह्लादोऽव्यवधानानन्य भक्तियोगेन सह तद्वर्षपुरुषैरुपास्ते इद चोदाहरति ॥

८—ॐनमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रनखवज्रदंष्ट्रकर्माशयान् रन्धयरन्धयतमो ग्रस ॐस्वाहा अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठा ॐक्ष्रौं ॥

९—स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायतु भूतानि शिव मिथो धिया।

मनश्च भद्र भजतादधोऽक्षज आवेश्यता नोमतिरप्यहैतुकी ॥

१०—माऽगारदारात्मज वित्तबन्धुषु सगो यदिस्याद्भगवत्प्रियेषु नः।

यः प्राणवृत्त्यापरितुष्ट आत्मवान् सिध्यत्यदूरान्न तथेंद्रियप्रियः ॥

हमारी बुद्धि निष्काम होकर भगवान में लगे। स्त्री, पुत्र, धन, बन्धु, गृह आदि में हमारी आसक्ति न हो। यदि आसक्ति हो ही तो भगवान के प्रिय भक्तों में हो, क्योंकि आहार मात्र से सन्तुष्ट रहने वाले ज्ञानियों को जैसी शीघ्रता से मुक्ति प्राप्त होती है, वैसी शीघ्रता से दूसरों को नहीं। जो इन्द्रियों को प्रसन्न रखते हैं, उनको मोक्ष नहीं प्राप्त होता। अन्य तीर्थ बार-बार स्नान आदि करने वालों के शरीर का मल दूर करते है, पर भगवान के भक्तों के संग से असाधारण भगवत्कथा वाला, जो प्रभावरूप तीर्थ प्राप्त होता है, वह सुनने वालों के मन में कान के द्वारा समस्त पापों को दूर कर देता है। ऐसे भगवद्भक्तों की सेवा कौन नहीं करेगा। भगवान के निष्काम भक्तों के हृदय में सब गुणों के साथ देवता निवास करते हैं। जो भगवान के भक्त नहीं हैं, खोटे विषयों के लिए इधर-उधर दौड़ते रहते हैं, उनमें ज्ञान, वैराग्य आदि महान् गुण कैसे प्राप्त हो सकते हैं। भगवान प्राणियों के प्रिय आत्मारूप है। जिस प्रकार मछलियों का प्रिय और आत्मा पानी है। जो लोग भगवान में भक्ति नहीं रखते और घर आदि सांसारिक विषयों में आसक्त रहते हैं, वे बड़े समझे जाते भी हों तो उनकी बड़ाई-छोटाई, स्त्री-पुरुषों की उमर से समझनी चाहिए। अर्थात् वे गुण और ज्ञान से बड़े नहीं हैं, किन्तु उमर के बड़े हैं, अतएव, हे मनुष्यों, इस घर को छोड़ दो, जो तृष्णा, राग, दुख, क्रोध, अभिमान, स्पृहा, भय, दीनता और मानसिक पीडाओं का मूल है और जिनके कारण जन्म-मरण होता रहता है। उस घर को छोड़कर भगवान् नृसिंह का निर्भय चरणारविंद भजो ॥ १४ ॥

११—यत्सङ्गलब्धं निजवीर्यवैभवं तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसं।

हरत्यघोऽतः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गजं को वै न सेवेत मुकुंदविक्रमं ॥

१२—यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।

हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥

१३—हरिर्हि साक्षाद्भगवाञ्छरीरिणामात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितं।

हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे तदा महत्त्वं वयसा दम्पतीनां ॥

१४—तस्माद्रजो रागविषादमन्यु मानस्पृहाभयदैन्याधिमूलं।

हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं नृसिंहपादं भजताकुतो भयमिति ॥

केतुमालखण्ड मे भगवान्, लक्ष्मी, संवत्सर नामक प्रजापति के पुत्र और पुत्रियों को प्रसन्न करने के लिये कामदेवरूप से वर्तमान रहते हैं, ये प्रजापति के पुत्र उस खण्ड के स्वामी हैं। सौ वर्ष के दिन और रात की जितनी संख्या होती है, उतनी संख्या प्रजापति की इन पुत्रियों तथा पुत्रों की है। अर्थात् उनकी संख्या छत्तीस हजार है। इस खण्ड में अधिक स्त्रियों की संख्या बढ़ती नहीं है, क्योंकि भगवान् के चक्र (काल) के तेज से संवत्सर प्रजापति की पुत्रियों का मन व्याकुल हो जाता है, और उनके गर्भ निष्प्राण होकर गिर जाते हैं। सुललित गति और विलास से शोभित होनेवाले मनोहर-मन्द-हास के साथ कटाक्ष के द्वारा और थोड़े टेढे भ्रूमण्डल से अधिक सुशोभित मुखकमल की शोभा के द्वारा भगवान् कामदेव, लक्ष्मी को आनन्द देते हैं और इन्द्रियों को तृप्त करते है। वे लक्ष्मी देवी वर्ष की रातों मे प्रजापति की कन्याओं के साथ और दिन में प्रजापति के पुत्रों के साथ, चित्त की अत्यन्त एकाग्रता के साथ भगवान् के मायामयरूप-कामदेव की उपासना करती हैं और वे इस प्रकार उनकी स्तुति करती हैं ॥ १७ ॥

इन्द्रियों के स्वामी कामदेवरूप भगवान् को इस लोक तथा परलोक मे नमस्कार करती हूँ। समस्त सुन्दर वस्तुओं से आप सूचित होते हैं। क्रिया, ज्ञान, संकल्प तथा विषयों के आप स्वामी हैं। ग्यारह इन्द्रियों और पाँच विषय, ये सोलह आपकी कला हैं। वेदोक्त कर्मों द्वारा

१५—केतुमालेऽपि भगवान्कामदेवस्वरूपेण लक्ष्म्याः प्रियचिकीर्षया प्रजापतेर्दुहितॄणां पुत्राणां तद्वर्षपतीनां पुरुषायुषाऽहोरात्र परिसंख्यानानां यासां गर्भा महापुरुषमहास्त्रतेजसोद्वेजित मनसां विध्वस्ता व्यसवः संवत्सरान्ते विनिपतन्ति ॥

१६—अतीव सुललितगति विलासविलसितरुचिर हासलेशावलोकलीलया किंचिदुत्तंभितसुंदरभ्रू मंडलसुभग वदनारविंदश्रिया रमां रमयन्निन्द्रियाणि रमयते ॥

१७—तद्भगवतो मायामयरूपं परमसमाधियोगेन रमादेवी संवत्सरस्य रात्रिषु प्रजापतेर्दुहितृभिरुपेताऽहस्सु च तद्भर्तृभिरुपास्ते इद चोदाहरति ॥

१८—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ओं नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ॥

आपकी प्राप्ति होती है। प्रभो! उनके द्वारा आपकी उत्पत्ति होती है, आप परमानन्द रूप हैं, आप सर्वमय हैं। व्रतों के द्वारा आपको आराधना करके स्त्रियाँ लोक में दूसरे पति की कामना करती हैं। पर वे पति इन स्त्रियों, इनकी प्रिय सन्तानों, धन और आयु की रक्षा नहीं कर सकते। क्योंकि वे स्वयं पराधीन होते हैं। पति तो ऐसा होना चाहिये जो स्वय निर्भय होकर अन्य भयभीतों से सब तरह से रक्षा करे। वैसे पति तो एक आप ही हैं। क्योंकि आप स्वस्वरूप लाभ से कुछ अधिक नहीं चाहते। जिसको दूसरे के द्वारा सुख की आशा हो, वह स्वतन्त्र कैसे कहा जा सकता है और अस्वतत्र मनुष्य निर्भय नहीं हो सकते, उनमें परस्पर का भय बना रहता है। जो स्त्री केवल आपके चरणों को आराधना करना चाहती है और दूसरा कुछ नहीं चाहती, उसे सुख के सभी पदार्थ प्राप्त होते हैं और जो फल की कामना से तुम्हारी पूजा करती है, उसे उतना ही फल मिलता है, जितना वह चाहती है। भोग के अनन्तर उस फल का भी नाश हो जाता है और उसे दुःख उठाना पडता है। हे अजित! विषय-सुख मे आसक्त ब्रह्मा, शिव, देवता और असुर आदि मुझे पाने के लिये कठोर तप करते है। पर आपके चरणों की शरण गये बिना वे मुझे पा नहीं सकते, क्योंकि मेरा हृदय सदा आप में लगा रहता है। भगवन्! आप अपना जो हस्तकमल अपने भक्तों के मस्तक पर रखते हैं, वह मेरे मस्तक पर रखिए। आप अपना चिन्ह बनाकर मुझे अपने शरीर में धारण करते हैं। इससे यह मालूम होता है कि आप

१९—स्त्रियो व्रतैस्त्वा हृषिकेश्वरं स्वतो ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यं ।

तासां न ते वै परिपान्त्यपत्यं प्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतंत्रा ॥

२०—स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं समतत. पाति भयातुर जनं ।

स एक एवेतरथा मिथोभयं नैवात्मलाभादधिमन्यते परं ॥

२१—या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं निकामयेत्साऽखिलकामलंपटा ।

तदेव रासीप्सित मीप्सितोऽर्चितो यद्भग्नयाञ्चा भगवन्प्रतप्यते ॥

२२—मत्प्राप्तयेऽजेश सुरासुरादयस्तप्यंत उग्रं तप ऐंद्रियेधियः ।

ऋते भवत्पादपरायणान्न मां विंदंत्यहं त्वद्धृदयायतोऽजित ॥

२३—स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वन्दित कराम्बुज यत्त्वदधायि सात्वतां ।

बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया क ईश्वरस्ये हितमूहितुं विभुरिति ॥

भक्तों पर तो कृपा करते हैं और मेरा आदर करते है, मुझ पर कृपा नहीं करते। आप ईश्वर हैं, अपने द्वारा जो करना विचारते हैं, उसका पता किसे हो सकता है ! ॥ २३ ॥

रम्यकखण्ड में भगवान अपने अत्यन्त प्रिय मत्स्यावतार के रूप मे वर्तमान रहते हैं। उस खण्ड के प्रधान पुरुष मनु को भगवान ने अपना वह रूप दिखाया था। वे मनु आजतक दृढ़ भक्ति के द्वारा उस स्वरूप की आराधना करते है और नीचे लिखे अनुसार उसकी स्तुति करते हैं—सबसे मुख्य सत्वस्वरूप प्राण, शरीर, मन, इन्द्रिय और बलरूप महामत्स्य भगवान को नमस्कार है। आप का रूप लोकपाल देख नहीं सकते, आपका शब्द दूर तक फैलने वाला होता है। जिस प्रकार लकड़ी की पुतली को मनुष्य अपने वश में रखता है, उसी प्रकार अपने वेदरूपी वचनों के विधि-निषेध से समस्त विश्व को वश में रखने वाले भगवान आप ही है। परस्पर अहंकार रूपी ज्वर से ग्रस्त लोकपालों ने अलग-अलग और मिलकर इस ससार की रक्षा के लिए प्रयत्न किया था, पर वे द्विपद, चतुष्पद, रेंगकर चलने वाले तथा स्थावर, इनमे किसी एक की भी वे रक्षा न कर सके। प्रलयकाल के समय समुद्र में ऊंची लहरियाँ उठ रही थीं। उस समय आपने औषधियों और लताओं के भाण्डाररूप इस पृथ्वी की तथा मेरी रक्षा की थी और उस भयंकर लहरियों वाले समुद्र में विचरण किया था। आप जगत के प्राणों को नियन्त्रित करने वाले हैं, आपको नमस्कार ! ॥ २८ ॥

हिरण्मयखण्ड मे भगवान कच्छपावतार के रूप मे रहते हैं। भगवान के इस प्रियरूप को पितरों के अधिपति अर्यमा उस लोक के अधिवासियों के साथ भजते हैं और नीचे लिखे

२४—रम्यके च भगवतः प्रियतमं मात्स्यमवताररूप तद्वर्षपुरुषस्य मनोः प्राक् प्रदर्शित स इदानीमपि महता भक्तियोगेनाराधयतीद चोदाहरति ॥

२५—ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्वाय प्राणायौजसे सहसेबलाय महामत्स्याय नम इति ॥

२६—अंतर्बहिश्चाखिललोकपालकैरदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः।
स ईश्वरस्त्व य इदं वशे नयन्नाम्ना यथादारुमयीं नरः स्त्रिय ॥

२७—य लोकपालाः किल मत्सरज्वरा हित्वा यततोऽपि पृथक् समेत्यच।
पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः सरीसृप स्थाणुयदत्र दृश्यते ॥

२८—भवान्युगान्तार्णवऊर्मिमालिनि क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिं ॥
मयासहोरुक्रमतेज ओजसातस्मैजगत्प्राणगणात्मने नमइति ॥

२९—हिरण्मयेऽपि भगवान्निवसति कूर्मतनु बिभ्राणस्तस्य तत्प्रियतमां तनुमर्यमासहवर्षपुरुषैः पितृगणाधिपतिरुपधावति मन्त्रमिमं चानुजपति ॥

मन्त्र का जप करते हैं—"ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुण विशेषणाय नोपलक्षित स्थानाय नमो वर्ष्मणे भूम्ने नमो नमोऽ वस्थानाय नमस्ते।"

शुद्ध सत्वमय कच्छपरूप आपको नमस्कार ! आपका स्थान अज्ञात है। काल के द्वारा आप जाने नहीं जा सकते। आप सर्वव्यापक और समान विश्व के आधाररूप हैं, आपको बारम्बार नमस्कार। आपकी माया के द्वारा प्रकाशित और विविध रूपों में दीख पड़ने वाले पृथ्वी आदि समस्त दृश्य आप के ही रूप है, आपसे भिन्न उनकी कोई सत्ता नहीं है। वे केवल दिखायी पड़ते है, वस्तुतः वे मिथ्या हैं, अतएव उनकी गणना नहीं हो सकती। अतएव अनिर्वचनीय स्वरूप आपको नमस्कार। जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, स्थावर-जंगम, देवता, ऋषि, पितर, पंचभूत, इन्द्रियवर्ग, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, नदियाँ, समुद्र, द्वीप ग्रह-नक्षत्र आदि नामों से आप एक ही परिचित होते हैं। अनन्त भेद वाले, नामरूप और आकृति वाले चौबीस तत्वों की कल्पना कपिल आदि मुनियों ने आपमें कल्पित की है। तत्त्वज्ञान के द्वारा उन चौबीस तत्वों का भेदज्ञान मिट जाता है, आप वही तत्वज्ञान स्वरूप हैं, आपको नमस्कार॥ ३३ ॥

उत्तर कुरुखण्ड मे यज्ञपुरुष भगवान् शूकर का अवतार धारण करके वर्तमान है। वहाँ के निवासियों के साथ ये पृथ्वी देवी दृढ़ भक्ति-योग से भगवान् के उस अवतार की आराधना करती हैं और इस प्रकार स्तुति करती हैं।

मन्त्रों के द्वारा आप के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है, आप यज्ञ और क्रतुरूप हैं। बड़े-बड़े यज्ञ आपके शरीर के अवयव हैं। तीन युगों में आप प्रगट होते है और आप स्वयं यज्ञ करने

३०—ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणाय नोपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे भूम्ने नमो नमोऽव स्थानाय नमस्ते ॥

३१—यद्रूपमेतन्निजमाययाऽर्पित मर्थस्वरूप बहुरूपरूपितं।
संख्यानयस्यास्य यथोपलम्भनात्तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥

३२—जरायुज स्वेदजाण्डजोद्भिदं चराचरं देवर्षिपितृभूतमैंद्रियं।
द्यौः खंक्षितिः शैलसरित्समुद्रद्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः ॥

३३—यस्मिन्नसंख्येय विशेषनाम रूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयं।
संख्यायया तत्त्वदृशाऽपनीयते तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय त इति ॥

३४—उत्तरेषु च कुरुषु भगवान् यज्ञपुरुषः कृतवराह रूप आस्ते तं तु देवीहैषाभूः सहकुरुभिरस्खलित भक्ति योगेनोपधावति इमां च परमामुपनिषदमावर्त्तयति ॥

३५—ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिंगाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ॥

वाले हैं। निपुण विद्वान आपके रूप को गुणों में, देह, इन्द्रिय आदि में देखना चाहते हैं, जिस प्रकार लकड़ी में आग मथी जाती है। कर्म और उनके फल के द्वारा प्रकाशित न होने वाले आपके स्वरूप को वे अपने विवेकी मन के द्वारा शरीर आदि मे देखना चाहते हैं और वे देख लेते हैं। ऐसे आपको नमस्कार। विषय, इन्द्रियव्यपार, इन्द्रियों के देवता, देह, काल और अहंकार, माया के इन कार्यों के द्वारा आपके यथार्थ स्वरूप का परिचय होता है। यम, नियम आदि साधनों द्वारा निश्चयात्मक बुद्धि वाले मनुष्य आपमें माया द्वारा कल्पित नाम-रूप को आपमें से अलग कर देते है अर्थात् आपके शुद्ध स्वरूप का दर्शन करते हैं, ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ। अपने लिये नहीं, किन्तु जीवों के कर्मफल भोग के लिये आपकी माया गुणों के द्वारा विश्व की रचना, पालन और संहार करती है। वह जड़ माया आपके समीप होने के कारण ऐसा करती है। जिस प्रकार चुम्बक के साथ से लोहा घूमने लगता है। इसी प्रकार आपकी चेतनता के सम्बन्ध मे माया भी सभी काम किया करती है। आप माया के इन गुणों के और जीव के अदृष्टों के साक्षी हैं, आपको नमस्कार। जगत् के कारणरूप शूकर का अवतार धारण करके मुझे (पृथ्वी को) अपने दाँत की नोक पर उठाकर आप समुद्र से बाहर निकले। हाथी के समान क्रीड़ा करते हुए, खेल-ही-खेल मे अपने प्रतिद्वन्दी हाथीरूप दैत्य को आपने मार डाला था। आप (विष्णु) को मैं नमस्कार करती हूँ॥ ३९॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवे स्कंध का अठारहवाँ अध्याय समाप्त

३६—यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो गुणेषु दारुष्विव जातवेदसं॥
मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो गूढ क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने॥

३७—द्रव्यक्रियाहेत्वयनेश कर्तृभिर्मायागुणैर्वस्तु निरीक्षितात्मने॥
अन्वीक्षयाऽङ्गातिशयात्मबुद्धिभिर्निरस्तमायाकृतये नमो नमः॥

३८—करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं यस्येप्सितं नेप्सितमीक्षितुर्गुणैः।
माया यथाऽयो भ्रमते तदाश्रयं ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे॥

३९—प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जगदादिसूकर।
कृत्वाऽग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः क्रीडन्निवेभः प्रणताऽस्मि तं विभुमिति॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेपञ्चमस्कंधेभुवनकोशवर्णननामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

भरतखण्ड के इष्टदेव तथा उनके सेवक

श्रीशुकदेव बोले—भगवान् रामचन्द्र के चरणों में निरत रहने वाले परम वैष्णव हनुमान किंपुरुषखंड मे, वहाँ के निवासियों के साथ भगवान्, आदिपुरुष, लक्ष्मण के बड़े भाई, सीतापति रामचद्र की अखंडित भक्ति सहित उपासना करते हैं। गधर्वों के साथ आर्ष्टिसेन के द्वारा गायी जाने वाली, अपने स्वामी रामचंद्र की परम कल्याणमयी, कथा को वे सुनते हैं और स्वय भी इस प्रकार गाते हैं ॥ २ ॥

पुण्यश्लोक भगवान् को मैं नमस्कार करता हूं। उत्तम लक्षण और शील-व्रत वाले को मैं नमस्कार करता हूँ। संयतात्मा और लोकधर्म के अनुसरण करने वाले को नमस्कार करता हूँ। सज्जनता की कसौटी को नमस्कार करता हूं। ब्रह्मण्यदेव, महापुरुष और महाराज (रामचन्द्र) को नमस्कार करता हूं। जो शुद्ध अनुभवरूप हैं, शात हैं, जिन्होंने अपने तेज से गुणों की जाग्रत् आदि विविध अवस्थाओं का नाश कर दिया है, जो दृश्य पदार्थों से भिन्न हैं, नाम-रूप-रहित परब्रह्म हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूं। भगवान् रामचन्द्र ने जो मर्त्यलोक में जन्म धारण किया, वह केवल राक्षसों का वध करने के लिये नहीं, किन्तु स्त्री-संगति से उत्पन्न दुःख

श्रीशुक उवाच—

१—किंपुरुषे वर्षे भगवतमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिराम तच्चरणसन्निकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान्सह किंपुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते ॥

२—आर्ष्टिषेणेन सह गंधर्वैरनुगीयमाना परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं चेदं गायति ॥

३—ॐनमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मने उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ॥

४—यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थं ॥
प्रत्यक् प्रशांतं सुधियोपलम्भनं ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥

५—मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैवनकेवलं विभोः ।
कुतोऽन्यथास्यूरमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥

अटल हैं, मर्त्यलोक निवासियों को यह शिक्षा देने के लिये भी, नहीं तो आत्मस्वरूप में रमण करने वाले, जगत् की आत्मा भगवान् को सीता के कारण दुःख सहना किस प्रकार सभव होता ? ॥ ५ ॥

मनुष्यों की आत्मा तथा परम सम्बन्धी भगवान् रामचन्द्र त्रैलोक्य मे कहीं आसक्त नहीं हैं, अत. स्त्री के कारण उन्हे दु ख न होना चाहिये था तथा लक्ष्मण का त्याग भी न करना चाहिये था। महात्मा पिता के द्वारा जन्म, सुंदर रूप, वाणी, बुद्धि अथवा जाति से भगवान् प्रसन्न नहीं होते, क्योंकि इन गुणों से विहीन वनचरों को भी लक्ष्मणाग्रज रामचंद्र ने अपना मित्र बनाया था। (तात्पर्य यह कि भगवान् केवल भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं) ॥ ७ ॥ सुर, असुर, नर अथवा वानर, चाहे जो हो, उसे मनुष्यरूपधारी उन भगवान् रामचन्द्र का सब प्रकार से भजन करना चाहिये, जो थोडी भक्ति को भी बहुत मानते हैं और जो समस्त अयोध्या-वासियो को वैकुण्ठ ले गये थे ॥ ८ ॥

भारतवर्ष मे भी भगवान् नर-नारायण अप्रगट रूप से रहे हैं, वे कल्प के अन्त तक, दयापरवश होकर, धीर पुरुषों पर अनुग्रह करने के निमित्त. बढते हुए धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, सहित और अहंकार-रहित होकर आत्मस्वरूप को प्रगट करने वाली तपस्या करते हैं। महात्मा नारद मुनि, जो भगवान् के प्रभाव के वर्णनरूप, पचरात्र शास्त्र का, भगवान् ही के कहे हुये साख्य और योग के सहित, सावर्णि मनु को उपदेश करने वाले हैं, वे स्वय वर्णाश्रम-धर्म का पालन करने वाली भरतखण्ड की प्रजा के सहित, अत्यन्त भक्तिपूर्वक नर-नारायण की सेवा करते और इस प्रकार कहते हैं ॥ ९-१० ॥

६—न वै स आत्मात्मवतां सुहृत्तमः सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान्वासुदेवः ।
न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥

७—न जन्म नूनं महतो न सौभग न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतु ।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥

८—सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नर. सर्वात्मना य सुकृतज्ञमुत्तमं ।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति ॥

९— भारतेऽपि वर्षे भगवान्नरनारायणाख्य [illegible] [illegible]
[illegible] ॥

१०—[illegible]
[illegible] ॥

स्वभाव से ही शांत और अहंकार-रहित भगवान् को नमस्कार, त्यागियों के धनरूप, ऋषियों में श्रेष्ठ, परमहंसों के उत्तम गुरु और ज्ञानियों के अधिपति नरनारायण को बारम्बार नमस्कार। पुन: नारद जी इस प्रकार स्तुति करते हैं—जो जगत् की सृष्टि का कर्ता होते हुए भी अहंकार नहीं करता, शरीर में रहते हुए भी शरीर के क्षुत्पिपासादि धर्मों से पराभूत नहीं होता, द्रष्टा होते हुए भी संसार के दृश्य पदार्थों से जिसमें विकार नहीं उत्पन्न होता, उस आसक्ति-रहित, शुद्ध और सब के साक्षी रूप भगवान् को नमस्कार। हे योगेश्वर! अंत समय में इस दुष्ट देह का अभिमान छोड़कर आपके निर्गुण स्वरूप में भक्तियुक्त चित्त को लगाना, यही ब्रह्मा की कही हुई योग-निपुणता है। जिस प्रकार इह तथा परलोक के सुखों में आसक्त तथा पुत्र-स्त्री और धन आदि की चिंता में रत मूर्ख मनुष्य इस अधम शरीर की मृत्यु से शंकित होता है। उसी प्रकार यदि विद्वान भी शंकित हो तो उसने विद्या आदि के लिये जो उद्योग किया वह केवल श्रम ही समझना चाहिये। अतः प्रभो! आपही हमें ऐसा योग दें, जिससे और जिसके द्वारा हम आप ही में सहज वासना बुद्धि रख सकें और अधम देह में आपकी माया से उत्पन्न अत्यन्त दुर्भेद्य अहंभाव की ममता को तोड़ सकें॥ १५॥

इस भारतवर्ष में भी अनेक नदी और पर्वत हैं-मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कुटक, कोलक, सैह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकट, महेंद्र, वारिधार, विंध्य, शुक्तिमान,

---

११—ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिंचनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नम इति॥

गायति चेद—

१२—कर्ताऽस्य सर्गादिषु यो न बध्यते न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः॥
द्रष्टुर्नदृग्यस्य गुणैर्विदूष्यते तस्मै नमोऽसक्त विविक्तसाक्षिणे॥

१३—इद हि योगेश्वरयोगनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवान् जगादयत्।
यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो भक्त्यादधीतोज्झितदुष्कलेवरः॥

१४—यथैहि कामुष्मिककामलंपटः सुतेषु दारेषु धनेषु चिंतयन्।
शंकेत विद्वान्कुकलेवरात्ययाद्यस्तस्यथत्नः श्रमएव केवलं॥

१५—तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पिता त्वन्मायया ऽहंममतामधोक्षज।
भिंद्यामयेनाशुवयं सुदुर्भिदां विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावमिति।॥

१६—भारतेऽप्यस्मिन्वर्षे सरिच्छैलाः संति बहवोमलयो मंगलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः

ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गोकामुख, इंद्रकील, कामगिरि और अन्य सैकड़ों-हजारों पर्वत तथा उनके कटिदेश से निकली असंख्य नदियाँ हैं जिन नदियों के नाम लेने से ही मनुष्य पवित्र हो जाता है, भारतवर्ष के लोग उनके जल को स्वयं स्पर्श करते हैं। चंद्रवशा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावर्ता, तुंगभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिंधु, और अंध तथा शोण-ये दो नद, महानदी, वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, गंगा, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रू, चंद्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी और विश्वा- ये बड़ी नदियाँ हैं। जन्म पाये हुए समस्त प्राणी स्वकृत (सात्विक, राजस और तामस) कर्मों के अनुसार क्रम से स्वर्ग, पृथ्वी और नरक सम्बन्धी अनेक अवतार पाता है, किन्तु वर्णाश्रम धर्म इसी भारतवर्ष में है और मोक्ष के भिन्न-भिन्न अनेक साधन हैं तथा उन साधनों के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति भी सम्भव है। अनेक योनियों में जन्म लेने वाले, देहाभिमान छूट जाने पर समस्त प्राणियों के आत्मा भगवान् वासुदेव, जो रागादिक से रहित, वाणी के अगोचर और आत्माश्रय परमात्मा हैं, उनमें निष्काम भक्ति का होना ही मोक्ष का सच्चा स्वरूप है और यह मोक्ष उसे ही मिलता है, जिसे भलीभाँति भगवान् के भक्तों का समागम प्राप्त होता है। देवगण भी यही कहते हैं, जिन्हें भगवान् की सेवा के लिये उपयोगी मनुष्य जन्म इस भारतवर्ष में मिला है,

---

सह्यो देवगिरिऋ‍ष्यमूकः श्रीशैलो वेंकटो महेंद्रो वारिधारो विंध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्द्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इंद्रकीलः कामगिरिरिति चान्येच शतसहस्रशः शैलास्तेषां नितम्बप्रभवानदानद्यश्च सन्त्यसंख्याताः ॥

१७—एतासामपोभारत्यः प्रजानामभिरेवपुनती नामात्मनाचोपस्पृशंति ॥

१८—चन्द्रवशा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुंगभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिंधुः अंधः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृती ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मदाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रूश्चंद्रभागा मरुद्वृधा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः ॥

१९—अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैर्लब्धजन्मभिः शुक्ललोहितकृष्णवर्णेन स्वारब्धेन कर्मणा दिव्यमानुषनारकगतयो बह्वय आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वाह्येव सर्वेषां विधियते यथावर्णविधानमपवर्गश्चापि भवति ॥

२०—योऽसौ भगवति सर्वभूतात्मन्यनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयने परमात्मनि वासुदेवेऽनन्यनिमित्तभक्तियोग लक्षणो नानागति,निमित्ताऽविद्याग्रथिरधनद्वारेण यदाहि महापुरुषपुरुषप्रसगः ॥

उन्होंने कौन-सा पुण्य किया होगा ? अथवा भगवान् उन पर स्वयं ही प्रसन्न हो गये होंगे ? ऐसे अवतार की इच्छा तो हमें भी रहती है। दुष्कर यज्ञ, तप, व्रत और दान आदि के द्वारा जो यह तुच्छ स्वर्ग हमें प्राप्त हुआ है, उससे क्या लाभ है ? —जहाँ नारायण के चरण-कमलों का ध्यान नहीं होता,इद्रियों को अत्यत विषय-सुख प्राप्त होने के कारण भूल गया है। स्वर्गलोक मे एक कल्प तक तक जीवीत रहकर हमे पुनः जन्म लेना पड़ेगा, इसकी अपेक्षा भारतवर्ष मे क्षणजीवी होकर जन्म लेना अच्छा है। क्योंकि अनेक मनस्वी पुरुष क्षण काल मे ही समस्त कर्मों का त्याग करके भगवान के अभयपद को प्राप्त कर लेते हैं। जहा भगवान् की कथा-रूपी अमृत की नदी नहीं बहती, जहा भगवान् के ही आश्रय में रहने वाले सज्जन वैष्णव नहीं हैं और जहाँ बडे उत्सववाली भगवान् की पूजा नहीं होती, वह यदि ब्रह्मा का लोक भी हो तो भी वहाँ नहीं रहना चाहिये। जो लोग ज्ञान, ज्ञान के लिए क्रिया और क्रियाओं के लिए सहायक पदार्थों से पूर्ण मनुष्य का जन्म पाकर भी मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयत्न नहीं करते, वे उन पक्षियों की भाँति पुन. बंधन को प्राप्त होते हैं, जो एकबार बहेलिये के जाल से छूटकर फिर प्रमाद से उसीके निकट जाते है। भारतवर्ष के लोग भाग्यशाली हैं, क्योंकि विधि और मंत्र से युक्त तथा पुरोडाश आदि वस्तुओं के भेद से, भिन्न-भिन्न देवताओं के लिए श्रद्धापूर्वक होम किया हुआ पदार्थ भगवान् स्वीकार करते हैं, जो पूर्ण काम हैं तथा एक होते हुए भी इन्द्रादि भिन्न-भिन्न नामों से पुकारे जाते है। प्रार्थना करने पर भगवान् माँगी हुई वस्तु देते हैं, यह सच है, किंतु वे मोक्ष नहीं देते, क्योंकि एक वस्तु माँगने पर पुनः दूसरे

एतदेवहि देवा गायति —

२१—अहो अमीषां किमकारिशोभन प्रसन्नएषां स्विदुतस्वय हरि. ।
यैर्जन्मलब्ध नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहाहिनः ॥

२२—किंदुष्करैर्न. क्रतुभिस्तपो व्रतैर्दानादिभिर्वाद्युजयेन फल्गुना ॥
न यत्र नारायणपादपंकजस्मृति. प्रमुष्टाऽतिशयेंद्रियोत्सवात् ॥

२३—कल्पायुषा स्थान जयात्पुनर्भवात्क्षणायुषां भारतभूजयो वर ।
क्षणेन मर्त्येन कृत मनस्विन. सन्यस्य सयात्यभयं पद हरे ॥

२४—न यत्र वैकुंठकथा सुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यतां ॥

२५—प्राप्तान्नृजाति स्विह ये च जंतवो ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसंभृतां ।
न वै यतेरन्नपुनर्भवाय ते भूयो वनौका इव यांति बंधन ॥

का माँगना भी सम्भव है; परन्तु जो लोग निष्कामभाव से भगवान् का भजन करते हैं, उन्हें भगवान् स्वयं अपने पाद-पल्लव का आश्रय देते हैं, जिनसे समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यहां हम लोगों के इतना स्वर्ग-सुखभोग कर लेने के उपरांत, यदि विधिपूर्वक यज्ञ करने, प्रवचन करने अथवा अन्य किन्हीं सत्कर्मों का फल शेष हो तो उससे भगवान् का इस प्रकार (निष्काम भाव) से भजन करने वाला हमारा जन्म भारतवर्ष में हो, क्योंकि यहाँ जन्म लेने वालों को भगवान् परम सुख देते हैं॥ २८॥

श्रीशुकदेव बोले—राजन्! कुछ लोग कहते हैं कि जंबूद्वीप के आठ अन्य उपद्वीप हैं। सगर के पुत्र जब (यज्ञ के) घोड़े की खोज में गये थे, उस समय उन्होंने धरती को चारों ओर से खोदकर आठ उपद्वीप बना दिये। वे इस प्रकार हैं स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्र, आवर्तन, रमणक, मंदरहरिण, पांचजन्य, सिंहल और लंका। भारतोत्तम! मुनियों के कहे अनुसार जंबूद्वीप के खंडों का विभाग इस प्रकार मैंने आपको बतलाया॥ ३१॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कंध का उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त

२६—यैः श्रद्धयाबर्हिषि भागशो हविर्निरुप्तमिष्टं विधिमन्त्र[illegible]।
[illegible]॥

२७—[illegible]।
[illegible]॥

२८—यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं [illegible]।
[illegible]॥

श्रीशुक उवाच—

२९—[illegible]
[illegible]॥

३०—[illegible]।

३१—[illegible]॥

[illegible]

बीसवाँ अध्याय

प्लक्ष आदि छः द्वीपों, सात समुद्रों तथा लोकालोक

पर्वत का परिमाण

श्रीशुकदेव बोले—अनंतर विस्तार, लक्षण और स्थिति सहित प्लक्ष आदि द्वीपों के खंड का विभाग कहता हूँ ॥ १ ॥ यह जंबूद्वीप एक लाख योजन तक फैला हुआ है और इतने ही विस्तृत खारे समुद्र के द्वारा घिरा हुआ है। जिस प्रकार एक लाख योजन ऊँचा मेरुपर्वत एक लाख योजन विस्तृत जंबूद्वीप के द्वारा घिरा हुआ है, उसी प्रकार जबूद्वीप भी अपने बराबर फैलाव वाले समुद्र के द्वारा घिरा हुआ है और समुद्र भी अपने दुगने विस्तार वाले प्लक्षद्वीप के द्वारा खाई से उपवन तक घिरा हुआ है। इस द्वीप में एक लाख योजन ऊँचा पीपल का एक सुनहला वृक्ष है, इसी कारण इसे प्लक्षद्वीप कहते है। इस वृक्ष मे सात जीभों वाले अग्नि का निवास है। इस द्वीप का स्वामी राजा प्रियव्रत का पुत्र इध्मजिह्व था। उसने अपने द्वीप को सात खडों में बाँट दिया और सप्तवर्ष नाम वाले अपने पुत्रो मे उसे बाँटकर स्वयं योग के द्वारा मरण को प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ शिव, यवयस, सुभद्र, शात, क्षेम, अमृत और अभय, यह उन सात खंडों का नाम है। उन खडों में सात पर्वत और सात ही नदियाँ प्रसिद्ध हैं ॥ ३ ॥ पर्वतों का नाम मणिकूट, वज्रकूट, इंद्रसेन, ज्योतिष्मान, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाल तथा नदियों

श्रीशुक उवाच—

१—अतः परं प्लक्षादीना प्रमाणलक्षणसंस्थानतो वर्षविभाग उपवर्ण्यते ॥

२—जम्बूद्वीपोऽयावत्प्रमाणविस्तारस्तावताक्षारोदधिना परिवेष्टितो यथा मेरुर्जम्ब्वाख्येन लवणोदधिरपि तोत द्विगुणविशालेन प्लक्षाख्येन परिक्षिप्तो यथा परिखाबाह्योपवनेन प्लक्षो जम्बूप्रमाणो द्वीपाख्याकरो हिरण्मय उत्थितो यत्राग्निरुपास्ते सप्तजिह्वस्याधिपतिः प्रियव्रतात्मज इध्मजिह्वः स्वंद्वीपं सप्तवर्षाणि विभज्य सप्तवर्षनामभ्य आत्मजेभ्य आकलय्य स्वयमात्मयोगेनोपरराम ॥

३—शिवं यवयसं सुभद्रं शातं क्षेमममृतमभयमिति वर्षाणि तेषु गिरयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः ॥

४—मणिकूटो वज्रकूट इंद्रसेनो ज्योतिष्मान्सुपर्णो हिरण्यष्ठीवो मेघमालइति सेतुशैलाःअरुणानृम्णाङ्गिरसी सावित्री सुप्रभाता ऋतम्भरा सत्यम्भराइति महानद्यः यासांजलोपस्पर्शनविधूतरजस्तमसो हंस

का अरुणा, नृम्णा, आंगीरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतंभरा और सत्यंभरा है। इस द्वीप में हंस, पतंग, ऊर्ध्वायन और सत्यांग नाम के चार वर्ण हैं। इन नदियों के जल के स्पर्श-मात्र से इन चारों वर्णों के लोगों के रजोगुण तथा तमोगुण मिट जाते हैं। वहाँ के लोगों की आयु हजार वर्षों की है। उनकी संतानोत्पत्ति देवताओं के समान होती है तथा वे देखने में भी देव-तुल्य मालूम पड़ते हैं। ये लोग स्वर्ग के द्वार रूप तीन वेदों से युक्त भगवान् सूर्य का पूजन (निम्नोक्त मन्त्र से) करते हैं ॥ ४ ॥ प्रचलित धर्म, आनुमानिक धर्म, वेद और शुभ तथा अशुभ फलों के अधिष्ठाता जो सूर्यनारायण विष्णु के रूप हैं, हम उनकी शरण जाते हैं ॥ ५ ॥ प्लक्षादि पाच द्वीपों के निवासियों मे आयुष्य, इन्द्रियसुख, शरीर, मन तथा इद्रियों का बल, बुद्धि और पराक्रम, ये स्वाभाविक सिद्धिया समान रूप से रहती है ॥ ६ ॥ जिस प्रकार उसके बाद का और उससे दुगुने विस्तार वाला शाल्मलीद्वीप भी अपने ही बराबर मदिरा के समुद्र से घिरा हुआ है ॥ ७ ॥ इस द्वीप मे उपरोक्त पीपल के वृक्ष के बराबर एक शाल्मली (सेमल) वृक्ष है। कहा जाता है कि उसपर पक्षियों के राजा गरुड का, जो वेद के द्वारा भगवान् की स्तुति किया करते है, निवास है। इस वृक्ष से ही इस द्वीप का शाल्मली द्वीप यह नाम पड़ा है ॥ ८ ॥ इस द्वीप के स्वामी राजा प्रियव्रत के पुत्र यज्ञबाहु थे। उन्होंने अपने सात लड़कों में उन्हींके नाम वाले सात खण्ड बाट दिये थे। इन सात खण्डों का नाम सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन और अविज्ञात था ॥ १० ॥ इनमे सात शृंगों वाले पर्वत

पतंगोर्ध्वायनसत्यांगसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः सहस्रायुषो विबुधोपमसन्दर्शनप्रजननाः स्वर्गद्वारं त्रय्याविद्यया भगवन्तं त्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजन्ते।

५—प्रत्नस्य विष्णोरूपं च सत्यस्य ऋतस्य ब्रह्मणोऽमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति ॥

६—प्लक्षादिषु पचसु पुरुषाणामायुरिन्द्रियमोजः सहोबलं बुद्धिविक्रम इतिच सर्वेषामौत्पत्तिकी सिद्धिरविशेषेण वर्तते ॥

७— प्लक्षः स्वसमानेनेक्षुरसोदेनावृतो यथा तथाद्वीपोऽपिशाल्मलोद्विगुणविशालः समानेन सुरोदेनावृतः परिवृङ्क्ते ॥

८—यत्र हवै शाल्मली प्लक्षायामायस्या वाव किल निलयमाहुर्भगवतश्छंदः स्तुत. पतत्रिराजस्य साद्वीपहूतये उपलक्ष्यते ॥

९—तद्द्वीपाधिपतिः प्रियव्रतात्मजो यज्ञबाहुः स्वसुतेभ्यः सप्तभ्यस्तन्नामानि सप्तवर्षाणि व्यभजत्सुरोचनं सौमनस्यं रमणकं देववर्षं पारिभद्रमाप्यायनमविज्ञातमिति ॥

१०—तेषु वर्षाद्रयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः स्वरसः शतशृंगो वामदेवः कुन्दो मुकुन्दः पुष्पवर्षः सहस्रश्रुतिरिति अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहू रजनी नन्दा राकेति ॥

तथा सात नदियां विख्यात हैं। सात पर्वतों का नाम स्वरस, शतशृंग, वामदेव, कुंद, मुकुन्द, पुष्पवर्ष और सहस्रश्रुति है तथा सात नदियों का नाम अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका है ॥ १० ॥ इन खण्डों के निवासी श्रुतधर, वीर्यधर वसुधर और इषंधर नामक वर्ण के हैं। ये वेदमय चद्रमारूपी भगवान् की पूजा वेद के द्वारा करते हैं ॥ ११ ॥ शुक्ल और कृष्ण पक्ष मे अपनी किरणोंसे देवताओं तथा पितरों को अन्न पहुंचाने वाले और समस्त प्रजा के राजा चद्रमा हमारे अनुकूल रहे ॥ १२ ॥ इस प्रकार मदिरा के समुद्र से बाहर तथा उससे दुगुने विस्तार वाला, पूर्वोक्त रीति से घी के समुद्र से घिरा हुआ कुशद्वीप है, इस द्वीप मे देवताओं के द्वारा लगाया हुआ कुश के बराबर दर्भ का एक पौधा है, इसीसे इस द्वीप का नाम कुशद्वीप पड़ा है। दूसरे अग्नि के समान यह कुश का पौधा अपनी कोमल शिखाओं की दीप्ति से दिशाओं को शोभित करता है ॥ १३ ॥ इस द्वीप के स्वामी राजा प्रियव्रत के पुत्र हिरण्यरेता थे। उन्होंने उस द्वीप को सात भागों में विभक्त करके वसु, वसुदान, दृढ़रुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और वामदेव नामक अपने सात पुत्रों में यथाभाग बाँट दिया और स्वयं वे तपस्या करने चले गये ॥ १४ ॥ इन खण्डों की सीमाओं पर सात पर्वत और सात ही नदियां हैं। पर्वतों का नाम चक्र, चतुःशृंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक ऊर्ध्वरोमा और द्रविण तथा नदियों का रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविंदा, श्रुतविंदा, देवगर्भा, घृतच्युता और मन्त्रमाला है ॥ १५ ॥ इन नदियों के जल से पवित्र हुए कुशद्वीप के कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक नामक वर्ण वाले व्यक्ति कर्म की कुशलता के

११—तद्वर्षपुरुषाः श्रुतधर वीर्यधर वसुधरेषधर सञ्ज्ञाभगवंत वेदमय सोम मात्मानं वेदेन यजते ॥

१२—स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन् कृष्णशुक्लयोः। प्रजाना सर्वासां राजाऽधः सोमोन आस्त्विति ॥

१३—एव सुरोदाद्बहि स्तद्द्विगुणः समानेनावृतो घृतोदेन यथापूर्वः कुशद्वीपो यस्मिन्कुशस्तंबो देवकृत स्तद्द्वीपाख्याकरोज्वलन इवापरः स्वशष्परोचिषादिशो विराजयति ॥

१४—तद्द्वीपपतिः प्रैयव्रतो राजा हिरण्यरेतो नाम स्वंद्वीपं सप्तम्यः स्वपुत्रेभ्यो यथाभागं विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत ॥

१५—वसुवसुदानदृढरुचिनाभिगुप्तस्तुत्यव्रतविविक्तवामदेव नामभ्यस्तेषा वर्षेषु सीमागिरयो नद्यश्चाभिज्ञाताः सप्तैव चक्रश्चतुः शृंगः कपिलश्चित्रकूटो देवानीक ऊर्ध्वरोमाद्रविण इति ॥

१६—रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविंदा श्रुतविंदा देवगर्भा घृतच्युता मंत्रमालेति यासां पयोभिः कुशद्वीपौकसः कुशल कोविदाभियुक्तकुलकसंज्ञा भगवंतं जातवेदसरूपिणं कर्मकौशलेन यजते ॥

साथ अग्निरूपी भगवान् की पूजा करते हैं, ॥ १६ ॥ हे अग्नि ! आप साक्षात् भगवान् को हव्य पहुँचाने वाले हैं, अतः भगवान् के अंगरूप देवताओं के नाम पर की हुई पूजा को भगवान् के निकट पहुँचाइये ॥ १७ ॥ इस प्रकार कुशद्वीप के बाहर उससे दुगुने विस्तार वाला क्रौंचद्वीप है। जिस प्रकार कुशद्वीप घी के समुद्र से घिरा हुआ है उसी प्रकार यह भी अपने बराबर वाले दूध के समुद्र से चारों ओर से घिरा हुआ है। इस द्वीप में क्रौंच नामक एक बड़ा पर्वत है। इसीसे इसका क्रौंचद्वीप यह नाम पड़ा है॥ १८ ॥ स्वामी कार्तिक ने अपने शस्त्र से उस (पर्वत) का नितंब और कुंज काट डाला था फिर भी दूध के समुद्र से सिंचित होने के कारण तथा वरुण देवता के द्वारा रक्षित होकर वह निर्भय हुआ ॥ १९ ॥ इस द्वीप के स्वामी प्रियव्रत के पुत्र घृतपृष्ठ ने भी अपने द्वीप का सात खंड किया और अपने सात पुत्रों के नाम पर उनका नाम रखा। उनमें पुत्रों का राज्य स्थापित करके उन्होंने भगवान् के चरणारविंद को प्राप्त किया, जो भगवान सर्वभूतों की आत्मा और अत्यन्त कल्याणरूप कीर्ति वाले हैं ॥ २० ॥ घृतपृष्ठ के पुत्रों का नाम आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति इन खण्डों की सीमा पर सात पर्वत और सात नदियाँ हैं। पर्वतों का नाम शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपबर्हिण, नंद, नन्दन और सर्वतोभद्र तथा नदियों का नाम अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्ति, रूपवती, पवित्रवती और शुक्ला है ॥ २१ ॥ इन नदियों के पवित्र और निर्मल जल का उपयोग करने वाले पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक

१७—परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट। देवाना पुरुषांगाना यज्ञेन पुरुष यजेति ॥

१८—तथा बहिः क्रौंचद्वीपो द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन परित उपक्लृप्तो वृतो यथा कुशद्वीपो घृतोदेन यस्मिन् क्रौंचो नाम पर्वतराजो द्वीपनामनिर्वर्तक आस्ते ॥

१९—योऽसौ गुहप्रहरणोन्मथितनितम्बकुञ्जोऽपि क्षीरोदेनासिच्यमानो भगवता वरुणेनाभिगुप्तो विभयो बभूव ॥

२०—तस्मिन्नपि प्रैयव्रतो घृतपृष्ठो नामाधिपतिः स्वे द्वीपे वर्षाणि सप्त विभज्य तेषु पुत्रनामसु सप्त रिक्थादान् वर्षपान्निवेश्य स्वयं भगवान् भगवतः परमकल्याणयशस आत्मभूतस्य हरेश्चरणारविंदमुपजगाम ॥

२१—आमो मधुरुहो मेघपृष्ठो सुधामा भ्राजिष्ठो लोहितार्णो वनस्पतिरिति घृतपृष्ठसुतास्तेषां वर्षगिरयः सप्त सप्तैव नद्यश्चाभिख्याताः शुक्लो वर्द्धमानो भोजन उपबर्हिणो नंदो नंदन सर्वतोभद्र इति ॥

२१—अभया अमृतौघा आर्यका तीर्थवती वृत्ति रूपवती पवित्रवती शुक्लेति यासामम्भः पवित्रममलमुपयुंजानाः पुरुष ऋषभ द्रविण देवक संज्ञा वर्षपुरुषा आपोमयं देवमपां पूर्णेनाञ्जलिना यजंते ॥

नामक वर्णों के, इस खंड के, लोग, जल की अंजलि से जलरूप भगवान की पूजा करते हैं ॥ २२ ॥ —हे जल, ईश्वर के द्वारा तुम्हें सामर्थ्य प्राप्त है, तुम त्रैलोक्य के पापों को नष्ट करनेवाले हो। तुम्हारे जल का स्पर्श करनेवाले हम लोगों के शरीरों को तुम पवित्र करो ॥ २३ ॥ इसी प्रकार दूध के समुद्र से बाहर शाकद्वीप है। यह बत्तीस लाख योजन तक विस्तृत है। यह अपने ही बराबर वाले मट्ठे (छाछ) के समुद्र से घिरा हुआ है। इस द्वीप में शाक नामक एक वृक्ष है, इसीसे इसका नाम शाकद्वीप पड़ा है। यह वृक्ष अपनी महासुगंधि से इस द्वीप को सुवासित किये हुए है ॥ २४ ॥ इस द्वीप का अधिपति राजा प्रियव्रत का पुत्र मेधातिथि था। उसने पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप और विश्वधार नामक अपने सात पुत्रों के, उन्हीं के नाम के अनुसार सात खंड करके, अपने द्वीप को बाँट दिया और स्वयं भगवान् में अपना मन लगाकर तपोवन में गया ॥ २५ ॥ इस खण्ड की सीमा पर सात पर्वत और सात ही नदियाँ हैं। पर्वतों का नाम ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल और महानस तथा नदियों का अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पंचपदी, सहस्रस्रुति और निजधृति है ॥ २६ ॥ ऋत, सत्यव्रत, दानव्रत तथा अनुव्रत नामक इस खण्ड के चार वर्ण वाले लोग प्राणायाम के द्वारा रजोगुण तथा तमोगुण को नष्ट करके अत्यंत एकाग्रता से वायुरूप भगवान् की पूजा करते हैं ॥ २७ ॥ —साक्षात् ईश्वररूप वायु, जो सब भूतों में प्रविष्ट होकर प्राण तथा अपान आदि अपनी वृत्तियों के द्वारा प्राणियों की रक्षा करते हैं और समस्त संसार जिनके वश में है, वे हमारी रक्षा करें ॥ २८ ॥ इसी प्रकार मट्ठे (छाछ) के समुद्र के बाहर उससे दुगने विस्तार वाला पुष्करद्वीप स्थापित है। यह द्वीप अपने ही बराबर वाले मीठे पानी के समुद्र से घिरा

२३—आपः पुरुषवीर्याःस्थपुनन्तीर्भूर्भुवः स्वः। तान. पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुव इति ॥

२४—एवं पुरस्तात्क्षीरोदात्परित उपवेशितः शाकद्वीपो द्वात्रिंशल्लक्षयोजनायामः समानेन च दधिमण्डोदेन परितो यस्मिन् शाको नाम महीरुहः स्वक्षेत्रव्यपदेशको यस्य ह महासुरभिगन्धस्तं द्वीपमनुवासयति ॥

२५—तस्यापि प्रैयव्रत एवाधिपतिर्नाम्ना मेधातिथिः सोऽपि विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु स्वात्मजान् पुरोजव मनोजव पवमान धूम्रानीक चित्ररेफ बहुरूप विश्वधार संज्ञान्निधाप्याधिपतीन् स्वयं भगवत्यनन्त आवेशितमतिस्तपोवनं प्रविवेश ॥

२६—एतेषां वर्षमर्यादा गिरयो नद्यश्च सप्त सप्तैव ईशान उरुशृंगो बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतो देवपालो महानस इति ॥

२७—अनघायुर्दा उभयस्पृष्टि रपराजिता पंचपदी सहस्रस्रुतिर्निजधृतिरिति ॥

२८—तद्वर्षे पुरुषा ऋत सत्य व्रतदान व्रतानुव्रत नामानो भगवन्तं वाय्वात्मकं प्राणायामविधुतरजस्तमसः परमसमाधिना यजंति ॥

२९—अंतः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः। अंतर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नोयद्वशे स्फुटं ॥

हुआ है। इसमें भगवान् ब्रह्मा का आसनरूप एक बड़ा कमल है, जिसकी करोड़ों पखड़ियाँ अग्नि की शिखा के समान स्वच्छ हैं॥ २९॥ इस द्वीप के बीच में मानसोत्तर नामक एक ही पर्वत है। यही अगले और पिछले खण्डों की सीमा के समान है। यह दस हजार योजन ऊँचा और इतना ही फैला हुआ है। इस पर्वत पर चार दिशाओं मे इंद्र आदि लोकपालों के चार पुर हैं। मेरु के चारों ओर घूमनेवाला सूर्य का रथ अपने वर्षरूपी चक्र के द्वारा उत्तरायण और दक्षिणायन होकर इस पर्वत पर फिरा करता है॥ ३०॥ प्रियव्रत का पुत्र वीतिहोत्र ही इस द्वीप का भी स्वामी था। रमणक तथा धातकि नाम के अपने दो पुत्रों को इन दो खण्डों का अधिपति बनाकर वह भी अपने बड़े भाइयों के समान भगवान् के पूजन में लग गया॥ ३१॥ इस खण्ड के निवासी सकाम कर्म के द्वारा ब्रह्मरूप भगवान् की पूजा किया करते हैं॥ ३२॥ कर्मों के फल-स्वरूप, परब्रह्म को बतलाने वाले, परब्रह्म में ही समाप्त होने वाले जिस अद्वैत तथा शांतरूप की लोग पूजा करते हैं, उन्हें नमस्कार॥ ३३॥

श्रीशुकदेव बोले—इस मीठे पानी के समुद्र के अनन्तर लोकालोक नामक एक पर्वत है, वह लोक और अलोक (अर्थात् सूर्य आदि से प्रकाशित और उससे रहित देश) के मध्य में उनका विभाग करने के निमित्त स्थित है॥ ३४॥ मानसोत्तर और मेरुपर्वत के बीच में जितना अन्तर है, उतने ही विस्तार वाली (डेढ़ करोड़ साढ़े सात लाख योजन वाली) दूसरी भूमि मीठे पानी के समुद्र के अनन्तर आती है। उसमें प्राणियों का निवास भी है। उसके अनन्तर सुवर्ण वाली भूमि आती है, वह उनतालीस लाख योजन की और दर्पण के समान

३०—एवमेव दधिमण्डोदात्परतः पुष्करद्वीपस्ततो द्विगुणायामः समन्तत उपकल्पितः समानेन स्वादूदकेन समुद्रेण बहिरावृतो यस्मिन् बृहत्पुष्करं ज्वलनशिखामल कनकपत्रायुतायुतं भगवतः कमलासनस्याध्यासनं परिकल्पितं तद्द्वीपमध्ये मानसोत्तर नामैक एवार्वाचीनपराचीनवर्षयोर्मर्यादा चलोऽयुतयोजनोच्छ्रायायामो यत्र तु चतसृषु दिक्षु चत्वारि पुराणि लोकपालानामिन्द्रादीनां यदुपरिष्टात्सूर्यरथस्य मेरुं परिभ्रमतः संवत्सरात्मकं चक्रं देवानामहोरात्राभ्यां परिभ्रमति॥

३१—तद्द्वीपस्याप्यधिपतिः प्रैयव्रतो वीतिहोत्रो नामैतस्यात्मजौ रमणक धातकि नामानौ वर्षपती नियुज्य स स्वयं पूर्वजवद्भगवत्कर्मशील इत्यास्ते॥

३२—तद्वर्षपुरुषा भगवंतं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेन कर्मणाराधयंति इदं चोदाहरंति॥

३३—यत्तत्कर्ममयं लिंगं ब्रह्मलिंग जनोऽर्चयेत्। एकांतमद्वयं शांतं तस्मै भगवते नम इति॥

ऋषिरुवाच—

३४—ततः परस्ताल्लोकालोकनामाऽचलो लोकालोकयोरंतराले परित उपक्षिप्तः॥

है। उसमें डाली हुई कोई चीज पुनः प्राप्त नहीं होती, इसीसे सब प्राणियों ने उसका त्याग कर दिया है॥ ३५॥ इसके अनन्तर लोकालोक पर्वत आता है। लोक और अलोक में स्थित होने के कारण उसका यह नाम पड़ा है॥ ३६॥ त्रैलोक्य का चारों ओर से वेष्टित करके ईश्वर ने इस पर्वत को बनाया है। यह पर्वत इतना ऊँचा और विस्तृत है कि सूर्य से लेकर ध्रुव तक जिन ज्योतिश्चक्रों की किरणें लोकालोक के मध्य में स्थित तीनों लोकों को प्रकाशित करती हैं, वे भी इस पर्वत की दूसरी ओर नहीं पहुंच पातीं॥ ३७॥ विद्वानों ने प्रमाण, लक्षण और स्थिति के द्वारा इसी प्रकार लोक-रचना का निश्चय किया है। समस्त भूमण्डल पचास करोड़ योजन का है, यह लोकालोक पर्वत उसका चौथाई (अर्थात् साढ़े बारह करोड़ योजन) है॥ ३८॥ समस्त जगतों के गुरु ब्रह्माजी ने इस पर्वत पर चारों दिशाओं में ऋषभ, पुष्करचूड़, वामन और अपराजित नामक दिग्गजों की स्थापना समस्त लोकों की स्थिति के लिये की॥ ३९॥ इन दिग्गजों तथा अपने अंशभूत इन्द्र आदि दिक्पालों के बल-वीर्य की वृद्धि और लोकों का मङ्गल करने के लिये भगवान् परमपुरुष उस पर्वत पर निवास करके अपने शुद्ध सत्व का प्रकाश करते हैं। विष्वक्सेन आदि पार्षद उन्हें घेरे रहते हैं, उनकी चार भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और पद्म शोभित होते हैं। वे परम ऐश्वर्य के स्वामी हैं। ज्ञान, धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य आदि आठ महासिद्धियाँ उनकी विशुद्ध सत्व मूर्ति के लक्षण हैं॥ ४०॥ अपनी योगमाया से निर्मित अनेक प्रकार के लोकों की रक्षा करने के लिये, कल्प पूरा होने तक, भगवान् ऐसी ही लीला धारण करते हैं॥ ४१॥ लोक का जितना अन्तर्विस्तार है,

---

३५—यावन्मानसोत्तरमेर्वोरन्तरं तावती भूमिः काञ्चन्यन्यादर्शतलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथंचित्पुनः प्रत्युपलभ्यते तस्मात्सर्वसत्त्वैः परिहृतासीत्॥

३६—लोकालोक इति समाख्यायदनेनाचलेन लोकालोकस्यान्तर्वर्तिनाऽवस्थाप्यते॥

३७—स लोकत्रयान्ते परित ईश्वरेण विहितो यस्मात्सूर्यादीनां ध्रुवापवर्गाणां ज्योतिर्गणानां गभस्तयोऽर्वाचीनांस्त्रीन् लोकानावितन्वाना न कदाचित्पराचीना भवितुमुत्सहन्ते तावदुन्नहनायामः॥

३८—एतावाँल्लोकविन्यासो मानलक्षणसंस्थाभिर्विचिन्तितः कविभिः स तु पञ्चाशत्कोटिगणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः॥

३९—तदुपरिष्टाच्चतसृष्वाशास्वात्मयोनिनाऽखिलजगद्गुरुणाऽधिनिवेशिता ये द्विरदपतय ऋषभः पुष्करचूडो वामनोऽपराजित इति सकललोकस्थितिहेतवः॥

४०—तेषां स्वविभूतीनां विविधवीर्योपबृंहणाय भगवान्परममहापुरुषो महाविभूतिपतिरन्तर्याम्यात्मनो विशुद्धसत्त्वं धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याद्यष्टमहासिद्ध्युपलक्षणं विष्वक्सेनादिभिः स्वपार्षदप्रवरैः परिवारितो निजवरायुधोपशोभितैर्निजभुजदण्डैः सन्धारयमाणस्तस्मिन् गिरिवरे समन्तात्सकललोकस्वस्तय आस्ते॥

४१—आकल्पमेव वेषगत एष भगवानात्मयोगमायया विरचितविविधलोकयात्रागोपीयायेति॥

उतना ही अलोक का विस्तार भी कहा गया है। यह अलोक लोकालोक पर्वत से बाहर है। इस अलोक के परले पार योगेश्वर लोगों की ही शुद्ध गति है, ऐसा कहा जाता है ॥ ४२ ॥ ब्रह्माण्ड के मध्य में सूर्य स्थित है। स्वर्ग और पृथ्वी में जो अन्तर है, वही ब्रह्माण्ड का मध्यभाग है। सूर्य और अण्डगोल के मध्य में पचीस करोड़ योजन का अन्तर है ॥ ४३ ॥ जब यह ब्रह्माण्ड अचेतन था, उस समय वैराजरूप से सूर्य ने उसमें प्रवेश किया था, इसलिये उसका मार्तण्ड यह नाम पड़ा और सुवर्ण के समान प्रकाशमान ब्रह्माण्ड उसमें से उत्पन्न हुआ है। इसलिये उसे हिरण्यगर्भ भी कहते हैं ॥ ४४ ॥ दिशा, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, पृथिवी, स्वर्ग-सुख भोगने का स्थान, मोक्ष का स्थान, नरक, पाताल और अन्य समस्त विभाग सूर्य ही के द्वारा हुए हैं ॥ ४५ ॥ देवता, पशु पक्षी, मनुष्य, सर्प और लता आदि समस्त जीवों की आत्मा और नेत्रों का अधिष्ठाता सूर्य ही है ॥ ४६ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध का बीसवाँ अध्याय समाप्त

४२—योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणं च व्याख्यातं यद्बहिर्लोकालोकाचलात् ततः परस्ताद्योगेश्वर गतिं विशुद्धामुदाहरति ॥

४३—अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरं । सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पंचविंशतिः ॥

४४—मृतेऽण्ड एष एतस्मिन् यदभूत्ततो मार्तण्ड इति व्यपदेशः । हिरण्यगर्भ इति यद्धिरण्याण्डसमुद्भवः ॥

४५—सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्मही भिदा । स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः ॥

४६—देवतिर्यङ् मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधां । सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥

इतिश्रीमागवतेमहापुराणेपंचमस्कन्धेभुवनकोशवर्णनेसमुद्रद्वीपवर्षसन्निवेशपरिमाण लक्षणोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

राशियों में सूर्य का भ्रमण और जगत् की मर्यादा

श्रीशुकदेव बोले—शास्त्रकारों ने प्रमाण और लक्षण के द्वारा भूमंडल का विस्तार इतना ही कहा है और खगोल का विस्तार भी इतना ही है, ऐसा इस विषय के जानने वाले कहते हैं ॥ १ ॥ जिस प्रकार दाल के दोनों टुकड़े बराबर होते हैं, उसी प्रकार भूगोल और खगोल, इन दोनों का परिमाण बराबर ही है। इन दोनों के बीच में अन्तरिक्ष है, जो दोनों से लगा हुआ है ॥ २ ॥ इस अन्तरिक्ष के मध्य मे स्थित, प्रकाश करने वालों के स्वामी, भगवान् सूर्य धूप से त्रैलोक्य को तपाते हैं और अपने प्रकाश से प्रकाशित करते हैं। यह सूर्य उत्तरायण, दक्षिणायन और वैषुवत नामक मन्द, शीघ्र और समान गति के द्वारा समयानुसार ऊपर चढने वाले, नीचे उतरने वाले और मध्य मे रहने वाले स्थान पर आकर मकर आदि राशियों में दिन तथा रातों को बड़ा, छोटा तथा समान बनाते हैं ॥ ३ ॥ सूर्य जब मेष और तुला राशि मे रहते हैं तब दिन और रातें बराबर होती है, जब मिथुन, कर्क, सिंह और कन्या, इन पाँच राशियों में रहते हैं, तब दिन बड़े होते हैं और प्रति मास एक-एक घड़ी करके रात घटती है और जब वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ और मीन, इन पाँच राशियों मे रहते हैं, तब दिन छोटा और रातें

श्रीशुक उवाच—

१—एतावानेव भूवलयस्य सन्निवेश प्रमाण लक्षणतो व्याख्यात एतेनहि दिवोमंडलमानतद्विद उप दिशति ॥

२—यथा द्विदलयोर्निष्पावादीनाते अन्तरेणान्तरिक्ष तदुभयसधितं ॥

३—सन्मध्यगतो भगवास्तपतां पतिस्तपन आतपेन त्रिलोकीं प्रतपत्यवभासयत्यात्मभासा स एष उदगयन दक्षिणायन वैषुवत सज्ञाभिर्मान्द्य शैघ्रयसमानाभिर्गतिभिरारोहणावरोहण समानस्थानेषु यथा सवनमभि पद्यमानोमकरादिषु त्रिष्वहोरात्राणि दीर्घह्रस्वसमानानि विधत्ते ॥

४—यदा मेषतुलयोवर्तते तदाऽहोरात्राणि समानानि भवंति यदा वृषभादिषु पचसुच राशिषु चरति तदा ऽहान्येव वर्द्धंते ह्रसतिच मासिमास्येकैका घटिका रात्रिषु ॥

बड़ी होती हैं ॥ ४-५ ॥ (सूर्य) जब तक दक्षिणायन मे रहते हैं,दिन बड़े होते हैं और उत्तरायण में रहते हैं तो रातें बड़ी होती हैं ॥ ६ ॥ कहते हैं कि इस प्रकार मानसोत्तर पर्वत की परिक्रमा करने में सूर्य को नौ करौड इक्यावन लाख योजन का रास्ता तय करना पड़ता है। इस मानसोत्तर मे मेरु की पूर्व की ओर देवधानी नामक इंद्र की पुरी है, दक्षिण की ओर यम की संयमनी नामक पुरी है, पश्चिम की ओर वरुण की निम्लोचनी नामक पुरी है और उत्तर की ओर सोम की विभावरी नामक पुरी है, समय के अनुसार जब सूर्य इन पुरियों में आते हैं तो उदय, मध्याह्न (दो पहर) अस्त और मध्यरात्रि, ये चार काल होते हैं। ये चारों प्राणियों की प्रवृत्ति के कारणरूप हैं। इनमें मेरु के दक्षिण की ओर रहने वालों के यहा इन्द्र की पुरी से, पश्चिम में रहने वालों के यहां यमपुरी से उत्तर मे रहने वालों के यहा, वरुण की पुरी से और पूर्व में रहने वालों के यहां, सोम की पुरी से उदयादि होता है, ऐसा कहा जाता है ॥ ७ ॥ मेरु में रहने वालों के यहां निरंतर मध्याह्नकाल का सूर्य ही तपा करता है। नक्षत्रों के अभिमुख अपनी गति से मेरु की बाईं ओर रखता हुआ भी सूर्य, प्रवह नामक वायु की चारों ओर भ्रमण करने के कारण ज्योतिश्चक्र की गति से उसे (मेरुपर्वत को) प्रतिदिन अपनी दाहिनी ओर ही रखता है ॥ ८ ॥ जहां उदय होता है, वहां से समानांतर रेखा पर अस्त होता है और जहां मध्याह्न होता है, वहां से समानांतर रेखा पर मध्यरात्रि होती है। जो लोग सूर्य को देख पाते हैं, वे भी समानांतर रेखा पर जाने पर उसे नहीं देख पाते ॥ ९ ॥ सूर्य, इन्द्र की पुरी से चलकर पंद्रह

५—यदा वृश्चिकादिषु पंचसु वर्तते तदाऽहोरात्राणि विपर्ययाणि भवंति ॥

६—यावद्दक्षिणायनमहानि वर्द्धंते यावदुदगयन रात्रयः ॥

७—एवं नवकोटय एकपंचाशल्लक्षाणि योजनाना मानसोत्तरपरिवर्तनस्योपदिशंति तस्मिन्नैंद्रींपुरीं पूर्वस्मान्मेरोर्देवधानीं नाम दक्षिणतो याम्या संयमनीं नाम पश्चाद्वारुणी निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम तासूदयमध्याह्नास्तमय निशीथानीति भूताना प्रवृत्तिनिमित्तानि समय विशेषेण मेरोश्चतुर्दिशं ॥

८—तत्रत्याना दिवसमध्यगत एव सदादित्यस्तपति सव्येनाचलं दक्षिणेन करोति ॥

९—यत्रोदेति तस्य ह समानसूत्रनिपाते निम्लोचति यत्र क्वचनस्यन्देनाभितपति तस्य हैवसमानसूत्रनिपाते प्रस्वापयति तत्र गतं न पश्यति ये तं समनुपश्येरन् ॥

१०—यदा चैंद्रयाः पुर्याः प्रचलते पंचदश घटिकाभिर्याम्यां सपादकोटिद्वयं योजनानां सार्धद्वादशलक्षाणि साधिकानि चोपयाति ॥

घड़ी में यम की पुरी मे आता है, इतने में उसे सवा दो करोड़, साढ़े चार लाख, पचीस हजार योजन मार्ग तय करना पड़ता है ॥ १० ॥ इस प्रकार यम की पुरी से वरुण की, वरुण की पुरी से सोम की और सोम की पुरी से पुनः इन्द्र की पुरी मे जाते हुए सूर्य को उतना ही समय लगता और उतना ही पथ अतिक्रम (तय) करना पड़ता है। उसी प्रकार चद्र आदि दूसरे ग्रह भी नक्षत्रों के साथ ही ज्योतिश्चक्र में उदय और अस्त होते हैं ॥ ११ ॥ वेदमय इस सूर्य का रथ चारों पुरियों में घूमता है और एक मुहूर्त मे उसे चौंतीस लाख आठ सौ योजन का मार्ग तय करना पड़ता है ॥ १२ ॥ सूर्य के रथ का सवत्सररूपी एक चक्र है। उसमें बारह (मास) अरा हैं, छः (ऋतुएँ) नेमी हैं और तीन (चौमासे) नाभि है, ऐसा कहा जाता है। इसकी धुरी का एक भाग सुमेरु के शिखर पर तथा दूसरा मानसोत्तर मे स्थापित है। यह अक्षचक्र मे ग्रथित होकर तैल-यत्र (कोल्हू) के समान मानसोत्तर पर्वत पर भ्रमण करता है। उसमे एक और भी धुरी है, जिसका मूल का भाग प्रथम अक्ष से बँधा हुआ है। उसका परीमाण पहले अक्ष से चौथाई है और कोल्हू के समान उसके ऊपर का हिस्सा वायु-पाश मे बँधा हुआ है ॥ १३-१४ ॥ रथ मे बैठने का स्थान छत्तीस लाख योजन लम्बा और उसका चौथाई चौड़ा है। रथी के बैठने का स्थान भी उतना ही बड़ा है, जिसे अरुण के द्वारा जोते हुए छंद नामक सात घोड़े खींचते हैं ॥ १५ ॥ सूर्य का सारथी अरुण, सूर्य के आगे बैठता है, फिर भी उसका आगा अस्ताचल की ओर ही रहता है ॥ १६ ॥ अँगूठे के पोर के बराबर ऊँचाई वाले साठ हजार बालखिल्य ऋषि सूर्य की स्तुति के लिये नियुक्त हैं, वे सुभाषित के द्वारा आगे-आगे सूर्य की स्तुति करते चलते हैं ॥ १७ ॥ इसी प्रकार अन्य ऋषि, गंधर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस और देवता

११—एवं ततो वारुणीं सौम्यामैंद्रीं च पुनस्तथाऽन्येच ग्रहाः सोमादयो नक्षत्रैः सहज्योतिश्चक्रे समभ्युद्यंति सहवानिम्लोचन्ति ॥

१२—एवं मुहूर्तेन चतुस्त्रिंशल्लक्षयोजनान्यष्टशताधिकानि सौरोरथस्त्रयीमयोऽसौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु॥

१३—यस्यैक चक्रं द्वादशार षण्नेमि त्रिणाभिसंवत्सरात्मक समामनंति तस्याक्षोमेरोर्मूर्द्धनिकृतेतरभागो यत्र प्रोतंरविरथचक्रं तैलयत्रचक्रवद् भ्रमन्मानसोत्तरगिरौ परिभ्रमति ॥

१४—तस्मिन्नक्षे कृतमूलो द्वितीयोऽक्षस्तुर्यमानेन समितस्तैलयन्त्राक्षवत् ध्रुवेकृतोपरिभागः ॥

१५—रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीय भागविशालस्तावान् रविरथयुगो यत्र हयाश्छंदो नामान सप्तारुणयोजिता वहंति देवमादित्यं ॥

१६—पुरस्तात्सवितुररुणः पश्चाच्च नियुक्तः सौत्येकर्मणि किलास्ते ॥

१७—तया बालखिल्या ऋषयोऽगुष्ठपर्वमात्राः षष्टिसहस्राणि पुरतः सूर्यं सूक्तवाकायनियुक्ताः संस्तुवंति ॥

जो एक देखने पर चौदह हैं और जोड़ा देखने पर सात हैं, प्रतिमास भिन्न-भिन्न नाम वाले सूर्य की सेवा भिन्न-भिन्न कार्यों के द्वारा करते हैं, उन सबों के नाम भी अलग-अलग हैं ॥ १८ ॥ साढ़े नौ करोड़ एक लाख योजन के भूमण्डल की प्रतिदिन प्रदक्षिणा करने में वह सूर्य एक क्षण में दो हजार योजन और दो कोस का मार्ग अतिक्रम (पार) करता है ॥ १९ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कंध का इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त

——

१८—तथान्ये च ऋषयो गंधर्वाप्सरसो नागा ग्रामण्यो यातुधाना देवा इत्येकैकशो गणाः सप्तचतुर्दश मासिमासि भगवंत सूर्यमात्मानं नाना नामानं पृथङ् नाना नामान. पृथक्कर्मभिर्द्वंदश उपासते ॥

१९—लक्षोत्तरं सार्द्ध नवकोटियोजन परिमण्डल भूवलयस्य क्षणेन सगव्यूत्युत्तर द्विसहस्र योजनानि स भुङ्क्ते ॥

इतिश्रीमा०म०पंचमस्कंधेज्योतिश्चक्रसूर्यरथमण्डलवर्णनंनामैक विंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

—❀—

बाईसवाँ अध्याय

चन्द्र और शुक्र आदि ग्रहों की गति के अनुसार मनुष्यों के शुभ और अशुभ का विचार

राजा परीक्षित बोले—आपने कहा कि भगवान् सूर्य सुमेरु और ध्रुव की प्रदक्षिणा करके चलते चलते राशियों के सम्मुख अग्रसर होते हैं और उनकी भी प्रदक्षिणा करते हैं, सो इस बात को हम किस प्रकार समझें ? ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव बोले—जिस प्रकार कुम्हार के चाक पर चलते हुए कीड़े घूमते हुए चाक के साथ घूमा करते हैं, फिर भी उनकी गति भिन्न होती है, क्योंकि देखा जाता है कि वे चाक के एक हिस्से को छोड़कर दूसरे हिस्से में चले जाते हैं। इसी प्रकार नक्षत्र-राशियों से जान पड़ने वाला कालचक्र, जो ध्रुव तथा मेरु को दाहिनी ओर रखकर घूमा करता है, और साथ चलते रहने वाले सूर्य आदि ग्रह भी घूमा करते हैं फिर भी इन ग्रहों की अपनी अलग-अलग गति है, क्योंकि कालचक्र के एक भाग को छोड़कर दूसरे नक्षत्र और दूसरी राशियों में आते हुए वे देखे जाते हैं। इसलिये कालचक्र की गति से मेरु तथा ध्रुव उनका दाहिना ओर रहता है तथा निज की गति से राशियों के सामने चलने के कारण मेरु तथा ध्रुव उनको बाईं ओर रहता है ॥ २॥ साक्षात् आदिपुरुष भगवान् ही लोकहित के निमित्त, कर्म शुद्धि के कारणरूप, अपनी वेदमय आत्मा को बारह भागों में विभक्त करके वसन्त आदि छः ऋतुओं में कर्म भोग के अनुसार शीत-उष्ण आदि का विधान करते हैं। पंडित लोग वेद शास्त्र के अनुसार भगवान् के इस चरित्र को जानने का प्रयत्न करते हैं ॥ ३ ॥ वर्णाश्रम के आचारों का अनुसरण करने वाले लोग वेदों के अनुसार छोटे-बड़े कर्मों

राजोवाच—

१—यदेतद्भगवत आदित्यस्य मेरुं ध्रुवं च प्रदक्षिणेन परिक्रामतो राशीनामभिमुखं च प्रचलितं चाप्र दक्षिणं भगवतोपवर्णितममुष्य वयं कथमनुमिमीमहीति ॥

सहोवाच—

२—यथा कुलालचक्रेण भ्रमता सह भ्रमतां तदाश्रयाणां पिपीलिकादीनां गतिरन्यैव प्रदेशान्तरेष्वप्युपलभ्यमानत्वात् एवं नक्षत्रराशिभिरुपलक्षितेन कालचक्रेण ध्रुवं मेरुं च प्रदक्षिणेन परिधावता सह परिधावमानानां तदाश्रयाणां सूर्यादीनां ग्रहाणां गतिरन्यैव नक्षत्रान्तरे राश्यन्तरे चोपलभ्यमानत्वात् ॥

३—स एष भगवानादिपुरुष एव साक्षान्नारायणो लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धिनिमित्तं कविभिरपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानो द्वादशधा विभज्य षट्सु वसन्तादिषु ऋतुषु यथोपजोषमृतुगुणान्विदधाति ॥

तथा योग के अंगों के द्वारा श्रद्धा पूर्वक उस सूर्य की पूजा करते हैं, इससे अनायास ही उनका कल्याण होता है ॥ ४ ॥ स्वर्ग और पृथ्वी के बीच में जो अंतरिक्ष है, उसके अंदर कालचक्र में स्थित और लोकों की आत्मा यह सूर्य, वर्ष के अवयवरूप और राशियों के नाम पर जिनका नाम पड़ा है, ऐसे बारह महीनों का भोग करते हैं। दो पक्षों का जो महीना गिना जाता है, वह चांद्र मास होता है। सूर्य सवा दो नक्षत्रों का भोग करता है, तब एक महीना हुआ कहा जाता है। ऐसा एक महीना पितरों का एक दिन-रात कहा जाता है। सूर्य जितने समय में दो राशियों को भोगता है, उतने समय को ऋतु कहते हैं। ये ऋतु वर्ष के अवयवरूप हैं ॥ ५ ॥ सूर्य जितने समय में आकाश के आधे भाग में घूमता है, उतने समय को अयन कहते हैं। (उत्तरायण और दक्षिणायन नाम के वर्ष में दो अयन होते हैं) ॥ ६ ॥ स्वर्ग तथा पृथ्वी मंडल के बीच में स्थित समस्त आकाश में सूर्य जितने समय में घूम लेता है, उतने समय को वर्ष कहते हैं। एक वर्ष में मंद, शीघ्र और समान - ऐसी तीन प्रकार की सूर्य की गति होती है और उससे वर्ष के संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर, और वत्सर, ये पाँच भेद माने जाते हैं ॥ ७ ॥ इस प्रकार चंद्रमा सूर्य की किरणों के ऊपर एक लाख योजन दूर दीख पड़ता है। सूर्य एक वर्ष में जितना चलता है, चंद्रमा उतना दो पखवारों में चलता है, सूर्य महीने भर में जितना चलता है, चंद्रमा उतना सवा दो दिनों में चलता है और सूर्य एक पखवारे में जितना चलता है, चंद्रमा उतना एक दिन में चलता है, क्योंकि चंद्रमा की ऐसी ही तीव्र और उग्र गति है ॥ ८ ॥ चंद्रमा की कलाएँ पूर्ण होती जाती हैं, उसे शुक्ल पक्ष और क्षीण होती जाती हैं, उसे कृष्ण पक्ष

४—तमेतमिह पुरुषास्त्रय्याविद्यया वर्णाश्रमाचारानुपथा उच्चावचैः कर्मभिराम्नातैर्योगवितानैश्च श्रद्धया यजन्तोऽञ्जसा श्रेयः समधिगच्छन्ति ॥

५—अथ स एष आत्मलोकानां द्यावापृथिव्योरन्तरेण नभो वलयस्य कालचक्रगतो द्वादशमासान् भुंक्ते राशिसंज्ञान्संवत्सरावयवान्मासः पक्षद्वयं दिवानक्तं चेति सपादर्क्षद्वयमुपदिशन्ति यावताषष्ठमंशं भुंजीत सवै ऋतुरित्युपदिश्यते संवत्सरावयवः ॥

६—अथच यावताऽर्द्धेन नभो वीथ्यां प्रचरतितं कालमयनमाचक्षते ॥

७—अथच यावन्नभोमंडलं सहद्यावा पृथिव्योर्मंडलाभ्यां कार्त्स्न्येन सह भुंजीत तं कालं संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सर-मनुवत्सरं वत्सरमिति भानोर्मान्द्यशैघ्र्यसमगतिभिःसमामनन्ति ॥

८—एवं चन्द्रमा अर्कगभस्तिभ्य उपरिष्ठाल्लक्षयोजनत उपलभ्यमानोऽर्कस्य संवत्सरभुक्तिं पक्षाभ्यां मासभुक्तिं सपादर्क्षाभ्यां दिनेनैव पक्षभुक्तिमग्रचारीद्रुततरगमनो भुङ्क्ते ॥

कहते हैं। शुक्लपक्ष के द्वारा देवताओं और कृष्णपक्ष के द्वारा पितरों को दिन-रात होती है। अन्न रूप होने के कारण समस्त जीवों का प्राणरूप और समस्त जीवों को जीवन देनेवाला यह चंद्रमा साठ घड़ियों में एक-एक नक्षत्र का भोग करता है ॥ ९ ॥ सोलह कलाओं से युक्त, मनोमय, अन्नमय और अमृतमय, इस चंद्रमा का स्वभाव देव, पितृ, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सर्प और लताओं को तृप्ति तथा जीवन देने वाला होने के कारण, वह सर्वमय कहा जाता है ॥ १० ॥ चंद्रमा से तीन लाख योजन ऊपर नक्षत्र है। ईश्वर के द्वारा कालचक्र में नियोजित ये नक्षत्र, मेरु की प्रदक्षिणा किया करते हैं। अभिजित के साथ इनकी संख्या अट्ठाईस है ॥ ११ ॥ नक्षत्रों से दो लाख योजन ऊपर शुक्र दीख पड़ता है। यह शुक्र सूर्य के आगे पीछे अथवा साथ ही शीघ्र, मंद और समान गति से सूर्य की ओर घूमता है, उसकी गति ऊपर से ऐसी ही जान पड़ती है। यह शुक्र लोकों के लिये सदा अनुकूल है और जो ग्रह वृष्टि को रोक रखते है, उनका भी शमन करने वाला है ॥ १२ ॥ बुध भी शुक्र के समान ही है। शुक्र के दो लाख योजन ऊपर चंद्रमा का पुत्र बुध स्थित है, वह शुभ करने वाला है, किंतु जब वह सूर्य से अलग होता है तो उसका अतिचार (विशेष क्रम) होने के कारण बदली और अनावृष्टि होने की सूचना मिलती है ॥ १३ ॥ बुध से दो लाख योजन ऊपर मंगल है। वह यदि वक्र गति में नहीं होता तो तीन-तीन पखवारों में प्रत्येक राशि का भोग करता है और प्रायः अशुभ तथा दुःख की सूचना देने वाला है ॥ १४ ॥ मंगल से दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति है, वह वक्रगति में नहीं होता तो

९—अथ चापूर्यमाणाभिश्च कलाभिरमराणां क्षीयमाणाभिश्च कलाभिः पितॄणामहोरात्राणि पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यां वितन्वानः सर्वजीवनिवहप्राणो जीवश्च एकमेकं नक्षत्रं त्रिंशता मुहूर्तेन भुंक्ते ।

१०—य एष षोडशकलः पुरुषो भगवान्मनोमयोऽन्नमयोऽमृतमयो देवपितृमनुष्यभूतपशुपक्षिसरीसृपवीरुधां प्राणाप्यायनशीलत्वात् सर्वमय इति वर्णयन्ति ॥

११—तत उपरिष्टात्त्रिलक्षयोजनतो नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेनैव कालायन ईश्वरयोजितानि सहाभिजिताऽष्टाविंशतिः ॥

१२—तत उपरिष्टादुशना द्विलक्षयोजनत उपलभ्यते पुरतः पश्चात्सहैव वार्कस्य शैघ्र्यमान्द्यसाम्याभिर्गतिभिरर्कवच्चरति लोकानां नित्यदाऽनुकूल एव प्रायेण वर्षयंश्चारेणानुमीयते स वृष्टिविष्टम्भग्रहोपशमनः ॥

१३—उशनसा बुधो व्याख्यातस्तत उपरिष्टाद् द्विलक्षयोजनतो बुधः सोमसुत उपलभ्यमानः प्रायेण शुभकृद्यदाऽर्काद् व्यतिरिच्येत तदाऽतिचाराऽभ्रप्रायानावृष्ट्यादिभयमाशंसते ॥

१४—अत ऊर्ध्वमङ्गारकोऽपि योजनलक्षद्वितय उपलभ्यमानस्त्रिभिस्त्रिभिः पक्षैरेकैकशो राशीन् द्वादशानुभुंक्ते यदि न वक्रेणाभिवर्तते प्रायेणाशुभग्रहोऽघशंसः ॥

एक-एक वर्ष में प्रत्येक राशि का भोग करता है और ब्राह्मण-कुल के लिये अनुकूल रहता है ॥ १५ ॥ बृहस्पति से दो लाख योजन ऊपर शनैश्चर है। वह प्रत्येक राशि के भोग में तीस महीने लगाता है और उतने अनुवर्षों में सब ग्रहों के ऊपर से हो आता है। यह प्राय सभी को अशांति देने वाला है॥ १६ ॥ शनैश्चर से ग्यारह लाख योजन ऊपर रहकर सप्तर्षि लोकों का कल्याण करते हैं और ध्रुव के स्थानरूप भगवान् के परमपद की प्रदक्षिणा किया करते हैं ॥ १७ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवे स्कंध का बाईसवाँ अध्याय समाप्त

१५—तत उपरिष्टाद् द्विलक्षयोजनान्तरगतो भगवान् बृहस्पतिरेकैकस्मिन् राशौ परिवत्सरं चरति यदि न वक्रः स्यात्प्रायेणानुकूलो ब्राह्मणकुलस्य ॥

१६—तत उपरिष्टाद्योजनलक्षद्वयात्प्रतीयमानः शनैश्चर एकैकस्मिन् राशौ त्रिंशन्मासान्विलम्बमानः सर्वानेवानुपर्येति तावद्भिरनुवत्सरैः प्रायेण हि सर्वेषामशान्तिकरः ॥

१७—तत उत्तरस्मादृषय एकादश लक्षयोजनान्तर उपलभ्यन्ते ।
य एव लोकानां शमनुभावयन्तो भगवतो विष्णोर्यत्परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कंधेज्योतिश्चक्रवर्णनेद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

तेईसवाँ अध्याय

ध्रुव का स्थान ; बैल के रूप में भगवान की स्थिति

श्रीशुकदेव बोले—सप्तर्षियों से तेरह लाख योजन दूर, लोकप्रसिद्ध विष्णु का परम-पद है, ऐसा कहा जाता है। इस विष्णुपद में महावैष्णव और राजा उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव जो एक कल्प तक जीवित रहनेवालों के आधाररूप हैं तथा जिनके प्रभाव का वर्णन किया जाचुका है, रहते हैं। इन ध्रुव की, इनके साथ एक ही समय जुड़े हुए (नक्षत्ररूप में स्थित), अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, कश्यप और धर्म, अभी तक प्रदक्षिणा किया करते हैं ॥ १ ॥ कभी न रुकनेवाला और अव्यक्त वेग वाला, महासमर्थ काल जिनको घुमाया करता है, ऐसे ग्रह-नक्षत्र आदि तेज-समूहों को बाँध रखने के लिये ईश्वर ने मानो एक खूँटा बनाया हो, ऐसा यह ध्रुव निरन्तर प्रकाशित रहता है। जिस प्रकार बैल आदि पशु मेढ़ी के खम्भे (अन्न को कुचलने के लिये बैल आदि पशुओं को जिस खूँटे में बाँधकर दँवरी कराते हैं) में बँधकर सवेरे से शाम तक घूमा करते हैं, उसी प्रकार ग्रह आदि तारागण अपने स्थान के अनुसार ध्रुव की चारों ओर भ्रमण किया करते हैं। इस प्रकार ग्रह और नक्षत्र कालचक्र के बाहर और भीतर ध्रुव का अवलंबन करके और वायु के वेग से चालित होकर कल्पांत तक भ्रमण किया करते हैं ॥ २ ॥ जिस प्रकार बादल और बाज आदि पक्षी अपने अपने कर्मों की सहायता से वायु के अधीन रहकर आकाश में उड़ा करते हैं, पर गिरते नहीं, उसी प्रकार ग्रह भी परमपुरुष के अनुग्रह

श्रीशुक उवाच—

१—अथ तस्मात्परतस्त्रयोदश लक्षयोजनान्तरतो यत्तद्विष्णोः परमं पदमभिवदन्ति यत्र ह महाभागवतो ध्रुव औत्तानपादिरग्निनेन्द्रेण प्रजापतिना कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानीमपि कल्पजीविनामाजीव्य उपास्ते तस्येहानुभाव उपवर्णितः ॥

२—स हि सर्वेषां ज्योतिर्गणानां ग्रहनक्षत्रादीनामनिमिषेणाव्यक्तरंहसा भगवता कालेन भ्राम्यमाणानां स्थाणुरिवावष्टम्भ ईश्वरेण विहितः शश्वदवभासते यथा मेढीस्तम्भ आक्रमणपशवः संयोजितास्त्रिभिस्त्रिभिः सवनैर्यथास्थानं मण्डलानि चरन्ति ॥

३—एवं भगणा ग्रहादय एतस्मिन्नन्तर्बहिर्योगेन कालचक्र आयोजिता ध्रुवमेवावलम्ब्य वायुनोदीर्यमाणा आकल्पान्तं परिचङ्क्रमन्ति नभसि यथा मेघाः श्येनादयो वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तन्ते एवं ज्योतिर्गणाः प्रकृतिपुरुषसंयोगानुगृहीताः कर्मनिर्मितगतयो भुवि न पतन्ति ॥

से आकाशमंडल में भ्रमण करते हैं, भूमिपर नहीं गिरते ॥ ३ ॥ कितने ही विद्वानों का कहना है कि ये ज्योतिश्चक्र भगवान की योगधारणा मे बैल के रूप में वर्तमान है ॥ ४ ॥ सिर नीचा करके और कुंडली बाँधकर बैठे हुए इस ज्योतिश्चक्ररूपी बैल की पूँछ के अग्रभाग मे ध्रुव, पूँछ में प्रजापति, अग्नि, इंद्र और धर्म, पूँछ के मूल मे धाता और और विधाता तथा कमर में सप्तर्षि हैं। दक्षिणावर्त में कुडली मारकर बैठे हुए इस बैल के दाहिने पार्श्व मे अभिजित से पुनर्वसु तक चौदह नक्षत्र और बाएँ पार्श्व में पुष्य से उत्तराषाढ़ तक चौदह नक्षत्र मिले हुए हैं। कुंडली के अकार में फैले हुए इस बैल के दोनों पार्श्वों के अवयवों की सख्या भी इसी में शामिल है। उसकी पीठ मे अजवीथी और पेट मे आकाशगंगा है ॥ ५ ॥ क्रम से पुनर्वसु और पुष्य दाहिने और बाए नितंब मे, आर्द्रा और अश्लेषा, दाहिने तथा बाएं पिछले पैरों मे, अभिजित और उत्तराषाढ़, दाहिनी तथा बाई नाक में, श्रवण और पूर्वाषाढ़ दाहिनी तथा बाई आँख में हैं, धनिष्ठा और मूल दाहिने तथा बाएँ कान मे हैं, मघा आदि आठ दक्षिण-चारी नक्षत्र बाईं ओर की अस्थियों मे और मृगशिर आदि उत्तर-चारी नक्षत्र अपनी दिशा से उलटे होने के कारण दाहिनी ओर की अस्थि मे हैं। शतभिषा और ज्येष्ठा दाहिने तथा बाएँ कंधे में हैं ॥ ६ ॥ उपरोष्ठ में अगस्त, अधरोष्ठ मे यम, मुख मे मगल, उपस्थ में शनैश्चर, कठ में बृहस्पति, वक्षःस्थल मे सूर्य, हृदय मे नारायण, मन में चद्रमा, नाभि में शुक्र, स्तनों में अश्विनीकुमार, प्राण और अपान मे बुध, गले मे राहु, समस्त अगों में केतु और रोंओं में ताराओं का समूह है ॥ ७ ॥ प्रतिदिन सध्या समय मौनव्रत धारण करके भगवान के ज्योतिश्चक्र

४—केचनैतज्ज्योतिरनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योगधारणायामनुवर्णयंति ॥

५—यस्य पुच्छाग्रेऽवाक् शिरसः कुंडलीभूत देहस्य ध्रुव उपकल्पितः तस्य लांगूले प्रजापतिरग्निरिंद्रो धर्म इति पुच्छमूले धाता-विधाता च कट्या सप्तर्षयस्तस्य दक्षिणावर्त कुंडलीभूत शरीरस्य यान्युदगयनानि दक्षिणपार्श्वे तु नक्षत्राण्युपकल्पयंति दक्षिणायनानि तु सव्ये यथा शिशुमारस्य कुडलाभोगसन्निवेशस्य पार्श्वयोरुभयोरप्यवयवाः समसंख्याभवति पृष्ठे त्वजवीथी आकाशगगा चोदरतः ॥

६—पुनर्वसु पुष्यौदक्षिणवामयोः श्रोण्योरार्द्राश्लेषे च दक्षिणवामयोः पश्चिमयोः पादयोरभिजिदुत्तराषाढे दक्षिण वामयोर्नासिकयोर्यथासंख्य श्रवणपूर्वाषाढे दक्षिणवामयोर्लोचनयोर्धनिष्ठामूल च दक्षिण वामयोः कर्णयोर्मघादीन्यष्टनक्षत्राणि दक्षिणायनानि वामपार्श्ववंक्रिषु युंजीत तथैव मृगशीर्षादी न्युदगयनानि दक्षिणपार्श्ववंक्रिषु प्रातिलोम्येन प्रयुंजीत शतभिषा ज्येष्ठेस्कंधयोर्दक्षिणवामयोर्न्यसेत् ॥

७—उत्तराहनावगस्तिरधराहनौ यमोमुखेषु चांगारकः शनैश्चर उपस्थे बृहस्पतिः ककुदिवक्षयस्यादित्यो हृदये नारायणो मनसि चंद्रो नाभ्यामुशनास्तनयोरश्विनौ बुध. प्राणापानयोराहुर्गले केतवः सर्वांगेषु रोमसु सर्वे तारागणाः ॥

(नक्षत्र ग्रहादि समूह) रूपी सर्वदेवमय इस रूप का दर्शन करना और उनकी स्तुति करनी चाहिये—" तेज के आश्रयभूत कालचक्ररूपी देवताओं के स्वामी महापुरुष को नमस्कार ! हम उनका ध्यान करते हैं ॥ ८ ॥ ग्रह, नक्षत्र और ताराओं से युक्त, सर्व देवरूप और तीनों समय उक्त मंत्र के जप करने वालों के पापों के नाश करने वाले इस शिशुमार-चक्र को, जो लोग नमस्कार करते अथवा उसका स्मरण करते हैं, उनके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं" ॥ ९ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कंध का तेईसवाँ अध्याय समाप्त

—✿—

८—एतदु हैव भगवतो विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपमहरहः संध्यायां प्रयतो वाग्यतो निरीक्षमाण उपतिष्ठेत
नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषाय धीमहीति ॥

९—ग्रहर्क्षतारामयमाधिदैविकं पापापहं मन्त्रकृतां त्रिकालं ।
नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं नश्येत तत्कालजमाशु पापं ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेपञ्चमस्कंधेशिशुमारसंस्थाननामत्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

—

चौबीसवाँ अध्याय

सूर्य से नीचे के ग्रहों तथा सात पातालों का वर्णन

श्रीशुकदेव बोले—कुछ लोग कहते हैं कि सूर्य से दस लाख योजन नीचे राहु नामक ग्रह, नक्षत्र के समान विचरण करता है। सिंहिका का पुत्र, दैत्यों मे अधम राहु देवत्व और ग्रहत्व पाने के योग्य नहीं था, फिर भी भगवान् की कृपा से उसने अमरत्व और ग्रहत्व पाया। इसके जन्म और कर्म के बारे मे मै आगे कहूँगा ॥ १ ॥ सबको तपाने वाले सूर्य का मण्डल दस हजार योजन का, चन्द्रमा का मण्डल बारह हजार योजन का और राहु का तेरह हजार योजन का है, ऐसा कहा जाता है। यह राहु जो अमृत पीने के समय सूर्य और चन्द्रमा के बीच मे बैठा था, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन पुराने वैर के कारण सूर्य और चन्द्रमा की ओर दौड़ता है ॥ २ ॥ यह देखकर भगवान ने दोनों को रक्षा के लिये अपने प्रिय अस्त्र सुदर्शन चक्र का प्रयोग किया। उस चक्र का तेज अत्यन्त असहनीय है। वह सदा घूमता रहता है। राहु एक मुहूर्त मात्र इस चक्र के सन्मुख स्थित रहकर डर जाता और चकित हो जाता है और दूर से ही वापस लौट जाता है। राहु जितने समय तक स्थित रहता है, उतने समय को लोग 'ग्रहण' कहते है ॥ ३ ॥ राहु से दस हजार योजन नीचे सिद्ध, चारण और विद्याधरों का स्थान है ॥ ४ ॥ उसके नीचे यक्ष, राक्षस, पिशाच प्रेत और भूतों के विचरण करने का स्थान अंतरिक्ष है। अंतरिक्ष तक ही वायु बहती है और बादल दीख पडते हैं ॥ ५ ॥ उससे सौ योजन नीचे

श्रीशुक उवाच—

१—अधस्तात्सवितुर्योजनायुते स्वर्भानुर्नक्षत्रवच्चरतीत्येके योऽसावमरत्वं ग्रहत्वं चाऽलभत भगवदनुकम्पया स्वयमसुरापसदः सैंहिकेयो ह्यतदर्हं तस्य तात जन्म कर्माणि चोपरिष्टाद्वक्ष्यामः ॥

२—यददस्तरणेर्मंडलं प्रतपतस्तद्विस्तरतो योजनायुतमाचक्षते द्वादशसहस्रं सोमस्य त्रयोदश सहस्रं राहोर्यःपर्वणि तद्व्यवधानकृद्वैरानुबन्धः सूर्याचन्द्रमसावभिधावति ॥

३—तन्निशम्योभयत्रापि भगवता रक्षणाय प्रयुक्तं सुदर्शनं नाम भागवतं दयितमस्त्रं तत्तेजसा दुर्विषहं मुहुः परिवर्तमानमभ्यवस्थितो मुहूर्तमुद्विजमानश्चकितहृदय आरादेव निवर्तते तदुपरागमिति वदन्ति लोकाः ॥

४—ततोऽधस्तात्सिद्धचारणविद्याधराणां सदनानि तावन्मात्र एव ॥

५—ततोऽधस्ताद्यक्षरक्षः पिशाच प्रेत भूत गणानां विहाराजिरमन्तरिक्षं यावद्वायुः प्रवाति यावन्मेघा उपलभ्यन्ते ॥

यह पृथ्वी है। हंस, भास, बाज, गरुड आदि बड़े पक्षी इस सौ योजन तक ही उड़ सकते हैं। पृथ्वी की जैसी स्थिति है, उसका वर्णन मैं कर चुका हूँ। पृथ्वी के सात पाताल है। इनमें से प्रत्येक दस-दस हजार योजन की ऊँचाई और चौड़ाई से बनाए गए है। अतल, वितल, सुतल तलातल, महातल, रसातल और पाताल, यह सात पातालों का नाम है ॥ ७ ॥ पृथ्वी के गुफा-रूपी इन स्वर्गो (अर्थात् पातालो) मे स्वर्ग से भी अधिक कामभोग, ऐश्वर्य, आनन्द और विभूति है। इनके कारण घर, बगीचे, क्रीडा करने की जगहों और विहार-स्थलों मे अत्यन्त समृद्धि छाई रहती है। इन स्थानो मे गृहपति, दैत्य, दानव और सर्पगण माया से अनेक प्रकार के विनोद करते हुए निवास करते है। उनकी इच्छा मे ईश्वर भी बाधक नहीं हो सकते। इन सबो की स्त्रियाँ, सन्तान, बन्धु, मित्र और अनुचर सदा प्रसन्न और अनुरक्त रहते हैं ॥ ८ ॥ महाराज, इन पातालों मे मायावी मय दानव के द्वारा बनाई हुई सुन्दर नगरियों मे विचित्र भवन, गढ़, दरवाजे, सभा, चैत्य, चत्वर और आयतन आदि अनेक प्रकार की उत्तम और प्रधान मणियो के बने हुये है। पातालों के स्वामियो के उत्तमभवनों की कृत्रिम भूमि नाग और असुरों के मिथुन, कबूतर, शुक और सारिकाओं के द्वारा व्याप्त है ॥ ९ ॥ वहाँ के देव-लोकों की शोभा को भी नीचा दिखाने वाले बगीचे हैं। ये बगीचे मन तथा इन्द्रियों को आनन्द देने वाले हैं। इनमे फूल, फल, स्तवक और कोंपलों के भार से झुकी हुई सुन्दर शाखाओं वाले तथा लताओं के द्वारा आलिंगित वृक्ष हैं। निर्मल जल से भरे जलाशयों मे अनेक प्रकार के पक्षियों के जोड़े शोभित हो रहे है। मछलियों के उछलने से उनका जल कंपित होता रहता है,

---

६—ततोऽधस्ताच्छतयोजनांतर इय पृथिवी यावद्धंसभासश्येन सुपर्णादयः पतत्रिप्रवरा उत्पतंतीति ॥

७—उपवर्णित भूमेर्यथा सन्निवेशावस्थान मवनेरप्यधस्तात्सप्त भू विवरा एकैकशो योजनायुतांतरेणायामविस्तारेणोपक्लृप्ताः अतल वितल सुतल तलातल महातल रसातल पातालमिति ॥

८—एतेषु हि बिलस्वर्गेषु स्वर्गादप्यधिककामभोगैश्वर्यानंदविभूतिभिः सुसमृद्धभवनोद्यानाक्रीडविहारेषु दैत्यदानवकाद्रवेया नित्य प्रमुदितानुरक्तकलत्रापत्यबंधुसुहृदनुचरा गृहपतय ईश्वरादप्यप्रतिहतकामा मायाविनोदा निवसंति ॥

९—येषु महाराजमयेन मायाविना विनिर्मिताः पुरो नाना मणिप्रवरप्रवेकविरचित विचित्र भवनप्राकारगोपुर सभा चैत्य चत्वरायतनादिभिर्नागासुरमिथुन पारावतशुक सारिकाकीर्ण कृत्रिम भूमिभिर्विवरेश्वरगृहोत्तमैः समलंकृताश्चकासति ॥

१०—उद्यानानि चातितरां मन इन्द्रियानंदिभिः कुसुमफलस्तवकसुभग किसलयावनतरुचिरविटपविटपिनां लताऽङ्गालिंगितानां श्रीभिः समिथुनविविधविहंगम जलाशयानाममल जलपूर्णानां झषकुलोल्लंघन

उसमें कमल, कुमुद, कुवलय, कल्हार, नीलोत्पल और रक्तकमल आदि खिले हुए हैं। उन पुष्प-वनों में रहने वाले पक्षियों के विहार में अनेक प्रकार के मधुर और निरंतर होने वाले शब्दों के द्वारा इंद्रियों को अत्यन्त आनंद प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ इन पातालों में सूर्य आदि के न होने के कारण काल के दिन-रात आदि विभागों का भय नहीं रहता ॥ ११ ॥ बड़े-बड़े नागों के मस्तक में रहने वाली मणियों के द्वारा वहाँ का अन्धकार दूर होता है ॥ १२ ॥ औषधि, रस, रसायन, अन्न, पान और स्नान की दिव्यता के कारण इन पातालों में रहने वालों को आधि, व्याधि, वली, पलित तथा जरा आदि शरीर की अवस्थाएं और विवर्णता, दुर्गन्धि, पसीना, परिश्रम अथवा ग्लानि भी नहीं होती ॥ १३ ॥ इन भाग्यशाली लोगों की मृत्यु भगवान् के तेजस्वी चक्र के अतिरिक्त और किसी से नहीं होती ॥ १४ ॥ पाताल में उस चक्र के प्रवेश करने पर भय से दैत्यों की स्त्रियों का गर्भस्राव अथवा गर्भपात हो जाता है ॥ १५ ॥ अतल नामक पहले पाताल में मय दानव का पुत्र बलासुर रहता है। इसके द्वारा छियानवे मायाएं उत्पन्न हुई हैं, जिनमें से अनेक मायाओं को मायावी लोग अभीतक धारण करते हैं। एक बार बलासुर के जँभाई लेने पर, उसके मुँह में से स्वैरिणी (अपने वर्ण में रत) कामिनी (दूसरे वर्णों में भी रति रखने वाली) और पुंश्चली (वेश्या) नामकी तीन प्रकार की स्त्रियां उत्पन्न हुईं। ये स्त्रियां पाताल में आये हुए पुरुष को 'हाटक' नामक रस पिलाकर उससे संभोग की

क्षुभितनीरनीरजकुमुदकुवलयकह्लारनीलोत्पललोहितशतपत्रादिवनेषु कृतनिकेतनानामेकविहाराकुल-
मधुरविविधस्वनादिभिरिन्द्रियोत्सवैरमरलोकश्रियमतिशयितानि ॥

११—यत्र ह वाव न भयमहोरात्रादिभिः कालविभागैरुपलक्ष्यते ॥

१२—यत्र हि महाहिप्रवरशिरोमणयः सर्वं तमः प्रबाधन्ते ॥

१३—न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसरसायनान्नपानस्नानादिभिराधयो व्याधयो वलीपलितजरादयश्च देहवैवर्ण्य-
दौर्गन्ध्यस्वेदक्लमग्लानिरिति वयोऽवस्थाश्च भवन्ति ॥

१४—न हि तेषां कल्याणानां प्रभवति कुतश्चन मृत्युर्विना भगवत्तेजसश्चक्रापदेशात् ॥

१५—यस्मिन् प्रविष्टेऽसुरवधूनां प्रायः पुंसवनानि भयादेव स्रवन्ति पतन्ति च ॥

१६—अथातलेऽपि मयपुत्रोऽसुरो बलो निवसति येन ह वा इह सृष्टाः षण्णवतिर्मायाः काश्चनाद्यापि मायाविनो धारयन्ति
यस्य च जृम्भमाणस्य मुखतस्त्रयः स्त्रीगणा उदपद्यन्त स्वैरिण्यः कामिन्यः पुंश्चल्यो

सामर्थ्य उत्पन्न करती है और अपने विलास, दृष्टि, स्नेहयुक्त मन्दहास, बातचीत और आलिंगन आदि से इच्छानुकूल क्रीडा कराती हैं। इस रस को पीने से पुरुष में दस हजार हाथियों का बल उत्पन्न होता है और 'मैं ईश्वर हूं' 'मैं सिद्ध हूं' इस प्रकार अभिमान में भरकर वह मदान्ध के समान बकने लगता है ॥ १६ ॥

अतल के नीचे, वितल नामक पाताल है। वहाँ भगवान् हाटकेश्वर शिव, प्रजापति की सृष्टि की वृद्धि करने के लिये पार्वती के साथ मिलकर रहते हैं। पार्षदरूपी भूत की टोली सदा उन्हें घेरे रहती है। वहाँ शिव और पार्वती के वीर्य से उत्पन्न हाटकी नामक नदी बहती है। पवन के द्वारा उत्तेजित अग्नि इस वीर्य को तेजी से पी जाती है और पुनः उगल देती है। उससे हाटक नामक सुवर्ण बनता है। बड़े-बड़े दैत्यों की अन्तःपुरी में स्त्री और पुत्र इस सुवर्ण को आभूषण के रूप में पहनते हैं ॥ १७ ॥ वितल के नीचे सुतल नाम का पाताल है। वहां पवित्र कीर्ति वाले विरोचन के पुत्र बलि राजा रहते हैं। इन्द्र का प्रिय करने की इच्छा से भगवान् ने अदिति के गर्भ से वामन के रूप में अवतार लेकर तीनों लोकों का राज्य हर लिया था और दया के वश उन्होंने बली को सुतल पाताल में रख लिया था। इन्द्रादि के पास भी जैसी समृद्धि नहीं, वैसी बड़ी समृद्धि वाली लक्ष्मी उनके पास है। अपने धर्म के अनुसार वे आराध्य भगवान् की ही भक्ति किया करते हैं और निर्भय होकर अबतक वहीं निवास करते हैं ॥ १८ ॥ समस्त जीवों के नियता, आत्माराम, उत्तम पात्र, सर्वभूतों के जीवरूप और स्वरूपभूत परमात्मा को दान का

बिलायनं प्रविष्टं पुरुषं रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा स्वविलासावलोकनानुरागस्मितसंलापोपगूहनादिभिः स्वैरं किल रमयन्ति यस्मिन्नुपयुक्ते पुरुष ईश्वरोऽहं सिद्धोऽहमित्ययुतमहागजबलमात्मानमभिमन्यमानः कत्थते मदान्ध इव ॥

१७—ततोऽधस्ताद्वितले हरो भगवान् हाटकेश्वरः स्वपार्षदभूतगणावृतः प्रजापतिसर्गोपबृंहणाय भवान्या सह मिथुनीभूत आस्ते यतः प्रवृत्ता सरित्प्रवरा हाटकी नाम भवयोर्वीर्येण यत्र चित्रभानुर्मातरिश्वनासमिध्यमान ओजसा पिबति तन्निष्ठ्यूतं हाटकाख्यं सुवर्णं भूषणेनासुरेन्द्रावरोधेषु पुरुषाः सह पुरुषीभिर्धारयन्ति ॥

१८—ततोऽधस्तात्सुतले उदारश्रवाः पुण्यश्लोको विरोचनात्मजो बलिर्भगवता महेन्द्रस्य प्रियं चिकीर्षमाणेनादितेर्लब्धकायो भूत्वा वटुवामनरूपेण पराक्षिप्तलोकत्रयो भगवदनुकम्पयैव पुनः प्रवेशित इन्द्रादिष्वविद्यमानया सुसमृद्धया श्रियाऽभिजुष्टः स्वधर्मेणाराधयंस्तमेव भगवन्तमाराधनीयमपगतसाध्वस आस्तेऽधुनापि ॥

१९—नो एवैतत्साक्षात्कारो भूमिदानस्य यत्तद्भगवत्यशेषजीवनिकायानां जीवभूतात्मभूते परमात्मनि वासुदेवे

पात्र पाकर बलि राजा ने बड़े आदर से, चित्त को सावधान करके, उन्हें पृथ्वी का दान दिया, जो साक्षात् मोक्ष का द्वार है। उसके फल स्वरूप उन्हें पाताल का राज्य मिला, यह सोचना भ्रम है, क्योंकि क्षुधा से, गिर पड़ने से अथवा ठोकर खाकर भी यदि मनुष्य विवश होकर एक बार भी भगवान् का नाम लेता है तो वह कर्म-बंधनों से छूट जाता है, जिससे छूटने के लिए मुमुक्षु लोग योग और सांख्य आदि साधनों का आश्रय लेकर अनेक प्रकार के दुःख भोगते हैं। जो भगवान् भक्तों को स्वरूप देने वाले तथा ज्ञानियों को ज्ञान देने वाले और अत्यंत प्रिय हैं, उन्हें पृथ्वी का दान देने का फल मोक्ष ही है॥ १९–२१॥ वास्तव में विचार करें तो भगवान् ने बलि राजा पर कुछ कृपा नहीं की, क्योंकि मायामय राज्य का ऐश्वर्य, जो आत्मस्वरूप का विस्मरण कराने वाला है, वह उन्होंने उन्हें दिया है॥ २२॥ और कोई उपाय न मिलने के कारण भगवान् ने भीख माँगने के बहाने केवल उनके शरीर को छोड़कर समस्त त्रैलोक्य का राज्य हरण कर लिया, वरुण, पाश से उन्हें बाँधा और पर्वत की गुफा के समान पाताल में डाल दिया, उस समय भी बलि राजा ने केवल इतना ही कहा—इन्द्र देव ने परामर्श लेने के लिए बृहस्पति को अपना गुरु बनाया है, पर इन्द्र अपने स्वार्थ-साधन में निपुण नहीं है। याच्ञा करने के योग्य भगवान् है, पर उन्होंने भगवान् को ही मेरे पास माँगने के लिए भेजकर राज्य-सुख माँगा, पर भगवान् का दासत्व नहीं माँगा। एक मन्वंतर में निरुद्ध त्रैलोक्य का जो राज्य उन्हें इतने परिश्रम से मिला, वह अत्यंत गंभीर वेगवाले काल के लिए क्या है?॥ २३–२४॥ हमारे

तीर्थतमेऽस्मै जीवनिगतयां मार्गमे पात्र उपगते परया श्रद्धया परमादरसमाहितमनसा सम्प्रतिपादितस्य साक्षादपवर्गद्वारस्य यद्बिलनिलयैश्वर्यं ॥

२०—यस्य ह वाव क्षुतपतनप्रस्खलनादिषु विवशः सकृन्नामाभिगृणन्पुरुषः कर्मबन्धनमञ्जसा विधुनोति यस्य हैव प्रतिबाधनं मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभन्ते ॥

२१—तद्भगवतामात्मवतां सर्वेषामात्मन्यात्मद आत्मतयैव ॥

२२—न वै भगवान्नूनममुष्यानुजग्राह यदुत पुनरात्मानुस्मृतिमोषणं मायामयभोगैश्वर्यमेवातनुतेति ॥

२३—यत्तद्भगवतानधिगतान्योपायेन याच्ञाच्छलेनापहृतस्वशरीरावशेषितलोकत्रयो वरुणपाशैश्च सम्प्रतिमुक्तो गिरिदर्यां चापविद्ध इति होवाच ॥

२४—नूनं बतायं भगवानर्थेषु न निष्णातो योऽसाविन्द्रो यस्य सचिवो मन्त्राय वृत एकान्ततो बृहस्पतिस्तमतिहाय स्वयमुपेन्द्रेणात्मानमयाचतात्मनश्चाशिषो नो एव तद्दास्यमतिगम्भीरवयसः कालस्य मन्वन्तरपरिवृत्तं कियल्लोकत्रयमिदं ॥

पितामह प्रह्लादजी ही अपने स्वार्थ में पारगत थे, क्योंकि उनके पिता हिरण्यकशिपु की मृत्यु के अनंतर जब भगवान् ने उन्हे पिता का निष्कटक राज्य देना चाहा था तो उसे अनित्य और भगवान् से भिन्न समझकर उन्होंने उसे अस्वीकार करके भगवान् की दासता माँग ली थी ॥ २५ ॥ हमारे राग-द्वेष आदि क्षीण नहीं हुए इसीसे हम भगवान् के कृपापात्र नहीं हो सके, अतः हमारे समान कौन व्यक्ति उन प्रभावशाली प्रह्लादजी के मार्ग मे चलने की इच्छा कर सकता है ? ॥ २६॥ समस्त जगत के गुरु और भक्तों पर अत्यन्त कृपा रखने वाले भगवान् नारायण हाथ में गदा लेकर इन बलिराजा के द्वार पर निरन्तर खडे रहते है। जिस समय दस मस्तकों वाला रावण दिग्विजय करता हुआ सुतल पाताल मे आया था, उस समय भगवान् ने अपने पैर के अंगूठे से उसे लाखों योजन दूर फेंक दिया था ॥ २७ ॥

सुतल के नीचे तलातल है। वहाँ त्रिपुर का अधिपति मय नामक बडा दानव रहता है। तीनों लोकों का कल्याण करने की इच्छा से भगवान् सदाशिव ने उसके तीनों पुरों को भस्म कर डाला, पुनः कृपा करके उसे यह स्थान दिया। मायावियों का आचार्य यह मय दानव तलातल में पूजित होता है। महादेव उसके रक्षक हैं, इसलिए उसे सुदर्शन-चक्र का भी भय नहीं है ॥ २८ ॥ तलातल के नीचे महातल है। वहां अनेक फणों वाले, क्रोधी, कद्रूपुत्र सर्पों का निवास है। इनमे कुहक, तक्षक, कालिय और सुषेण आदि सर्प प्रमुख माने जाते हैं। बडे शरीर वाले ये सर्प यद्यपि भगवान् के वाहन गरुडजी से हमेशा भयभीत रहते हैं, फिर भी समय-समय पर असावधान होकर अपनी स्त्री, संतान, सम्बन्धी और कुटुम्ब को लेकर आनन्द किया करते है ॥ २९ ॥ महातल के नीचे रसातल है। यहाँ निवातकवच, कालेय

२५—यस्यानुदासमेवास्मत्पितामह किल वव्रे न तु स्वपित्र्य यदुताकुतोभय पद दीयमान भगवतः पर मिति भगवतो परते खलु स्वपितरि ॥

२६—तस्य महानुभावस्यानुपथममृजितकषाय. कोवाऽस्मद्विध. परिहीण भगवदनुग्रह उपजिगमिषत ति ॥

२७—अथ तस्यानुचरितमुत्तरमाद्धि तदिध्यते यस्य भगवान् स्वयमखिलजगद्गुरुर्नारायणो द्वारि गदापाणि रवतिष्ठने निजजनानुकम्पितहृदयो येनाङ्गुष्ठेन पदादशकधरो योजनायुतायुत दिग्विजय उच्चाटित. ॥

२८—ततोऽधस्तात्तलातले मयो नाम दानवेन्द्रस्त्रिपुराधिपतिर्भगवता पुरारिणा त्रिलोकीश द्विकीर्षुणानिर्दग्ध स्वपुरत्रयस्तत्प्रसादाल्लब्धपदो मायाविनामाचार्यो महादेवेन परिरक्षितो विगत सुदर्शनभयो महीयते ॥

२९—ततोऽध स्तान्महातले काद्रवेयाणा सर्पाणा नैकशिरसा क्रोधवशो नाम गणः कुहकतक्षककालियसुषेणा दिप्रधानामहाभोगवतः पतत्रिराजाधिपतेः पुरुषवाहादनवरतमुद्विजमानाः स्वकलत्रापत्य सुहृत्कुटुंब सगेन क्वचित्प्रमत्ता विहरति ॥

और हिरण्यपुरवासी, इन तीन विभागो मे विभक्त पणि नाम वाले दैत्य और दानव रहते हैं। ये देवताओं के शत्रु है। जन्म से ही ये अत्यत पराक्रमी और साहसी है। जिसका समस्त लोकों में अखंड प्रभाव है, ऐसे भगवान के सुदर्शन चक्र से उनका अभिमान नष्ट हो जाने के कारण वे इस रसातल नामक पाताल में रहते है, जैसे सर्प बिल में रहता है। इन्द्र की दूती एक कुतिया की मन्त्ररूपी वाणी सुनकर ये लोग इन्द्र से भयभीत रहते है ॥३०॥ रसातल के नीचे पाताल है। इस सातवे पाताल मे बड़े-बड़े शरीर वाले और अत्यत क्रोधी सर्प रहते है। इनके राजा वासुकि नामक नाग हैं। शख, कुलिक, महाशख, श्वेत, धनजय, धृतराष्ट्र, शखचूड़, कबल, अश्वतर और देवदत्त आदि नाग इनमें प्रमुख माने जाते है। पांच, सात, दस, सौ और हजार माथे वाले इन नागों के फणों पर रहने वाली, अत्यन्त प्रकाश वाली मणियाँ अपनी कान्ति से पाताल के घने अन्धकार को दूर कर देती है ॥ ३१ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवे स्कन्ध का चौबीसवाँ अध्याय समाप्त

—०—

३०—ततोऽधस्ताद्रसातले दैतेया दानवाः पणयो नाम निवातकवचाः कालेया हिरण्यपुरवासिन इति विबुधप्रत्यनीका उत्पत्त्यामहौजसो महासाहसिनो भगवतः सकललोकानुभावस्य हरेरेव तेजसा प्रतिहतबलावलेपाविलेशया इव वसंति ये वै सरमयेन्द्रदूत्यावाग्भिर्मन्त्रवर्णाभिरिन्द्राद् बिभ्यति ॥

३१—ततोऽधस्तात्पाताले नागलोकपतयो वासुकि प्रमुखाः शखकुलिकमहाशखश्वेतधनजयधृतराष्ट्रशखचूडकबलाश्वतरदेवदत्तादयो महाभोगिनो महामर्षा निवसति तेषामुह वै पचसप्तदश शतसहस्रशीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयो रोचिष्णवः पातालविवरतिमिरनिकर स्वरोचिषा विधमति ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेपचमस्कधेचतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

—※—

पच्चीसवाँ अध्याय

शेषनाग की स्थिति और रुद्रों की उत्पत्ति

श्रीशुकदेव बोले—पाताल से तीस हजार योजन नीचे श्रीभगवान् की एक तामसी कला है, जिसे अनन्त (शेषनाग) कहते हैं। भगवान के भक्त इन्हें संकर्षण कहते हैं, क्योंकि इन्हीं से 'मैं' यह अहङ्कार उत्पन्न होता और दृश्य तथा द्रष्टा का आकर्षण करता है ॥ १ ॥ अनन्त मूर्तियों वाले और हजार मस्तक वाले जिन शेषनाग के एक मस्तक पर स्थित यह भूमण्डल सरसों के दाने के समान जान पडता है और जो शेषनाग प्रलय काल में इस जगत् का संहार करते हैं क्रोध से तिरछी हुई उनकी भृकुटि के मध्य से तीन आँखों वाले सांकर्षण नामक ग्यारह रुद्र त्रिशूल उठाकर उत्पन्न हुए ॥ २-३ ॥ जिनके कपोलों की शोभा उज्वल कुण्डलों की प्रभा से मनोहर हो गई है, ऐसे सुंदर मुख वाले नाग गण, उत्तम भक्तों के सहित अत्यन्त भक्ति पूर्वक शेषनाग के चरणों में प्रणाम करते हुए, उनके लाल और स्वच्छ मणि के समान नखरूपी दर्पण में अपना मुँह देखते हैं ॥ ४ ॥ सांसारिक सुखों की इच्छा रखने वाली नागलोक की कुमारियां, कंकण से सुशोभित, स्वच्छ, विशाल, गौरवर्ण और अत्यन्त सुन्दर, रजत स्तंभ के समान शेषनाग के हाथों में अगरु, चन्दन और केसर का लेप करती हैं तो उनके स्पर्श से उन

श्रीशुक उवाच—

१—तस्य मूलदेशे त्रिंशद्योजन सहस्रांतर आस्तेया वैकला भगवतस्तामसी समाख्याताऽनन्त इति सात्वतीया द्रष्टृदृश्ययोः सकर्षणमहमित्यभिमानलक्षणं सकर्षणमित्याचक्ष्यते ॥

२—यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेव शीर्षाणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥

३—यस्य ह वा इदं कालेनोपसंजिहीर्षतोऽमर्षविरचित रुचिरभ्रमद्भ्रुवोरन्तरेण सांकर्षणो नाम रुद्र एकादश व्यूहस्त्र्यक्षस्त्रिशिख शूलमुत्तंभयन्नुदतिष्ठत ॥

४—यस्यांघ्रिकमल युगलारुणविशदनखमणिखण्डमण्डलेष्वहिपतयः सहसात्वतर्षभैरेकांतभक्तियोगेनावनमतः स्ववदनानि परिस्फुरत्कुण्डल प्रभामण्डलमण्डित गण्डस्थलान्यतिमनोहराणि प्रमुदितमनसः खलु विलोकयंति ॥

५—यस्यैव हि नागराजकुमार्य आशिष आशासानाश्चांगवलयविलसित विशदविपुलधवलं सुभगरुचिर

लोगों के मन में विकार उत्पन्न होता और काम का उद्रेक होता है। वे अत्यन्त मनोहर रूप से मद-मद हास्य करके, लज्जित होती हुई शेषनाग की ओर देखने लगती हैं। शेषनाग भी अनुराग और मद के हर्ष से खिली हुई लाल रंग वाली आँखों को घुमाकर उनकी ओर करुणा भरी दृष्टि से देखते हैं॥५॥ अनन्त गुणों के समुद्ररूप ये अनन्त शेषनाग अपनी असहिष्णुता और क्रोध के वेग को रोककर लोकों का कल्याण करने के निमित्त इस प्रकार विराजमान रहते हैं॥६॥ सुर, असुर, नाग, सिद्ध, विद्याधर और मुनिगण उनका ध्यान करते हैं। मद भरे उनके नेत्र विकारयुक्त, विह्वल और आनन्द से ओतप्रोत रहते हैं। वे अपने मधुर वचनरूपी अमृत से अपने पार्षदों और देवताओं के अधिपतियों को आनन्दित किया करते हैं। ऐरावत जिस प्रकार अपने गले मे सुवर्ण की रस्सी धारण करता है, उसी प्रकार नीला वस्त्र पहनने वाले एक कुण्डल वाले और हलके मस्तक पर अपना अत्यन्त सुन्दर हाथ रखकर बैठे हुए ये महात्मा शेषनाग, वैजयन्ती नामक माला को, लीलापूर्वक धारण किए हुए हैं, जिसकी कान्ति कभी मलिन नहीं होती, ऐसी नवीन तुलसी की सुगन्ध को मदिरा के रस से मत्त हुए मधुकर इस माला पर मँडराते हुए, अपनी मधुर गुंजार से उसे शोभित करते हैं। जो शेषनाग इस प्रकार सुनने अथवा ध्यान करने से मुमुक्षुओं के हृदय में प्रवेश करके उनके देहाभिमान को, जो सत्व, रज और तमोगुण से युक्त, अविद्यामय तथा अनादि काल से कर्म की वासनाओं से ग्रथित रहता है, नष्ट कर देते हैं। नारद जी ने तुंबुरु नामक गंधर्व के साथ उनके प्रभाव का श्लोक ब्रह्मा की सभा में गाया था॥७-८॥—इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारणरूप

भुजगलतरमेव्वगुरुचंदन कुंकुम पंकानुलेपेनावलिंपमानास्तदभिमर्शनोन्मथित हृदयमकरध्वजावेश रुचिर ललित स्मितास्तदनुरागमद मुदित मदविघूर्णितारुणकरुणाऽवलोकनयन वदनारविंद सव्रीड किल विलोकयंति॥

६—स एव भगवाननंतोऽनंतगुणार्णव आदिदेव उपसंहृतामर्षरोषवेगो लोकानां स्वस्तय आस्ते॥

७—ध्यायमानः सुरासुरोरग सिद्ध गंधर्व विद्याधरमुनिगणैरनवरत मदमुदितविकृतविह्वललोचनः सुललित मुखरिकामृतेनाप्याययमानः स्वपार्षदविबुधयूथपतीनपरिम्लानराग नवतुलसिकामोद मध्वासवेन माद्यन्मधुकरव्रात मधुरगीतश्रियं वैजयंतीं स्वां वनमालां नीलवासा एककुंडलो हलककुदि कृतसुभग सुंदरभुजो भगवान्माहेंद्रो वारणेंद्र इव कांचनीं कक्षामुदारलीलो बिभर्ति॥

८—य एष एवमनुश्रुतो ध्यायमानो मुमुक्षूणामनादिकाल कर्म वासनाग्रथितमविद्यामयं हृदयग्रंथिं सत्त्वरजस्तमोमयमंतर्हृदयंगत आशु निर्भिनत्ति तस्यानुभावान् भगवान्स्वायंभुवो नारदः सह तुंबुरुणा सभायां ब्रह्मणः संश्लोकयामास॥

सत्व आदि माया के गुण, जिनकी दृष्टि पड़ने से ही अपना-अपना कार्य करने में समर्थ हुए हैं और अनंत और अनादिरूप से एक होते हुए भी जिसने अपने में अनेक प्रकार के कार्य-प्रपंच उत्पन्न किये हैं, उन परब्रह्मरूपी शेषनाग के तत्व को लोग कैसे जान सकते हैं ? ॥ ९ ॥ भक्तों के अंतःकरणों को वश करने के निमित्त की हुई जिनकी उत्तम लीला का अनुकरण सिंह भी करता है,ऐसे उदार पराक्रम वाले और जिनके स्वरूप में कार्य-कारणरूप यह जगत् दीख पड़ता है, ऐसे शेषनाग ने हम लोगों के प्रति अत्यन्त कृपालु होकर शुद्ध सत्वगुणी मूर्ति धारण की है ॥ १० ॥ दूसरे के मुख से उनका नाम सुनकर आर्त अथवा पतित मनुष्य यदि अचानक या हँसी में भी केवल एक ही बार उस नाम का उच्चारण करे तो उस नाम के प्रभाव से उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। अतः मोक्ष की इच्छा रखने वाले मनुष्य भगवान् शेषनाग के अतिरिक्त और किसका आश्रय लें ? ॥ ११ ॥ जिन विश्वरूप भगवान् के एक हजार मस्तकों में से केवल एक ही मस्तक पर पर्वत, नदियां, समुद्र और समस्त जीवों के सहित यह विशाल ब्रह्मांड स्थित है, हजार जिह्वा से भी उनके पराक्रम का वर्णन कौन कर सकता है ? ॥ १२ ॥ ऐसे प्रभाव वाले, अनन्त-अपारबली स्वतन्त्र और अनेक गुणों से युक्त तथा प्रतापी इन शेषनाग भगवान् ने

९—उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयाऽऽसन् ।

यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन्नानाधात्कथमु ह वेद तस्य वर्त्म ॥

१०—मूर्तिं नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र ।

यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्यामादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः ॥

११—यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मादार्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा ।

हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥

१२—मूर्धन्यर्पितमणुवत्सहस्रमूर्ध्नो भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम् ।

आनन्त्यादनिमितविक्रमस्य भूम्नः को वीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः ॥

१३—एवंप्रभावो भगवाननन्तो दुरन्तवीर्योरुगुणानुभावः ॥

पाताल के मूल में रहकर, जगत् की रक्षा करने के निमित्त लीलापूर्वक इस पृथ्वी को धारण कर रखा है ॥ १३ ॥ सांसारिक सुखों की इच्छा रखने वाले मनुष्य अपने-अपने कर्मों के द्वारा जिन लोकों को प्राप्त करते है, वे इतने ही हैं, जिनका वर्णन मैंने शास्त्रोक्त प्रमाण से आपको सुनाया ॥ १४ ॥ राजन्! पुरुषों की, प्रवृत्तिरूप धर्म से मिलने वाली और एक दूसरे से भिन्न प्रकार की, इतनी ही गतियाँ (स्थान) हैं, जिनका वर्णन मैंने आपके पूछने पर किया। अब दूसरी कौन कथा मैं आपको सुनाऊँ ? ॥ १५ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कंध का पचीसवाँ अध्याय समाप्त

—*—

मूलेरसाया' स्थित आत्मनो यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति ॥

१४—एता ह्येवेह नृभिरुपगन्तव्या गतयो यथा कर्मविनिर्मिता यथोपदेशमनुवर्णिताः कामान्कामयमानैः ॥

१५—एतावतीर्हि राजन्पुंसः प्रवृत्तिलक्षणस्य धर्मस्य विपाकगतय उच्चावचा विसदृशा यथा प्रश्नं व्याचख्ये किमन्यत्कथयाम इति ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेपंचमस्कन्धेभूविवरविध्युपवर्णनंनामपंचविंशतितमोऽध्यायः ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

पातालों में स्थित नरकों का वर्णन

राजा परीक्षित बोले—हे महर्षि ! संसार की यह सुख-दु:खात्मक विचित्रता क्यों है ? ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव बोले—जो मनुष्य सात्विक श्रद्धा से कर्म करता है, उसे सुख, जो राजसी श्रद्धा से कर्म करता है, उसे सुख और दु:ख दोनों; तथा तामसी श्रद्धा से कर्म करता है, उसे केवल दु:ख और मूर्खता ही मिलती है। श्रद्धा के तारतम्य के अनुसार कर्म की गति का भी तारतम्य होता है। इसी प्रकार अधर्म, जिनका वेद और शास्त्रों ने निषेध किया है, का आचरण करने वालों की श्रद्धा में भी वैषम्य होने के कारण उनकी भी भिन्न-भिन्न गति होती है। अनादिकाल की अविद्या के कारण उत्पन्न हुई इच्छाओं के परिणामस्वरूप जो हज़ारों नरक हैं, अब मैं उनका विशेष रूप से वर्णन करूँगा ॥ २—३ ॥

राजा परीक्षित बोले—महाराज, जिसे नरक कहते हैं, वह क्या पृथ्वी के ऊपर का कोई स्थान है, या ब्रह्मांड के बाहरी आवरणों में है, अथवा ब्रह्मांड के अंदर ही पृथ्वी के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान में है ? ॥ ४ ॥

राजोवाच—

१—महर्ष एतद्वैचित्र्यं लोकस्य कथमिति ॥

ऋषिरुवाच—

त्रिगुणत्वात्कर्तुः श्रद्धया कर्मगतयः पृथग्विधाः सर्वा एव सर्वस्य तारतम्येन भवन्ति ॥

२—अथेदानीं प्रतिषिद्धलक्षणस्याधर्मस्य तथैव कर्तुः श्रद्धाया वैसादृश्यात्कर्मफलं विसदृशं भवति या ह्यनाद्यविद्यया कृतकामानां तत्परिणामलक्षणाः सृतयः सहस्रशः प्रवृत्तास्तासां प्राचुर्येणानुवर्णयिष्यामः ॥

राजोवाच—

३—नरका नाम भगवन्किं देशविशेषा अथवा बहिस्त्रिलोक्या आहोस्विदन्तराल इति ॥

ऋषिरुवाच—

४—अंतराल एव त्रिजगत्यास्तु दिशि दक्षिणस्यामधस्ताद्भूमेरुपरिष्टाच्च जलाद्यस्यामग्निष्वात्तादयः पितृगणा दिशि स्वानां गोत्राणां परमेण समाधिना सत्या एवाशिष आशासाना निवसंति ॥

श्रीशुकदेव बोले—ये नरक त्रैलोक्य के अन्दर ही हैं। दक्षिण दिशा में यह स्थान पृथ्वी के नीचे और जल के ऊपर है, जहाँ अग्निष्वात्त आदि पितर-गण सच्चे हृदय से अपने गोत्र वालों को सदा आशीर्वाद देते हुए निवास करते हैं ॥ ५ ॥ पितरों के अधिपति सूर्यपुत्र यमराज भगवान् की इच्छा के अनुसार अपने दूतों के द्वारा ले आए हुए मृतकों के पाप-पुण्य का विचार करके अपने अनुचरों के द्वारा उन्हें दंडित करते हैं ॥ ६ ॥ कुछ लोग यहाँ इक्कीस नरकों का होना बतलाते हैं। क्रम से इन नरकों का नाम, रूप और लक्षण मैं आपसे कहता हूँ। तामिस्र, अन्ध-तामिस्र, रौरव, महारौरव, कुंभीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकर, अंधकूप, कृमि-भोजन, संदंश, तप्तसूर्मि, वज्रकण्टक शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि और अयःपान, ये इक्कीस नरक कहे जाते हैं। इनके अतिरिक्त क्षारकर्दम, रक्षोगणभोजन, शूलप्रोत, दंदशूक, अवटनिरोधन, पर्यावर्तन और सूचीमुख नाम के सात और भी नरक कहे जाते हैं। ये अट्ठाईस नरक अनेक प्रकार के दुःखों को भोगने के स्थान हैं ॥ ७ ॥ जो लोग दूसरे के धन, संतान और स्त्री का हरण करते हैं, अत्यन्त भयानक यमदूत उन्हें नागपाश से बाँधकर जबर्दस्ती तामिस्र नामक नरक में डाल देते हैं। इस नरक में भोजन नहीं मिलता, पीने के लिए जल नहीं मिलता, डंडे की मार पड़ती है और तिरस्कार होता है। इस प्रकार यमदूतों के द्वारा पीड़ित होकर जीव इस अन्धकारमय स्थान में एकदम मूर्छित हो जाता है ॥ ८ ॥ इसी प्रकार जो व्यक्ति पति को धोखा देकर उसकी स्त्री का उपयोग करता है,

---

५—यत्र ह वाव भगवान्पितृराजो वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैर्जन्तुषु सम्परेतेषु यथाकर्मावद्यं दोषमेवानुल्लंघित भगवच्छासनः सगणो दमं धारयति ॥

६—तत्र हैके नरकानेकविंशतिं गणयन्ति अथ तांस्ते राजन्नामरूपलक्षणतोऽनुक्रमिष्यामस्तामिस्रोऽन्धतामिस्रो रौरवो महारौरवः कुंभीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं सूकरमन्धकूपः कृमिभोजनः संदंशस्तप्तसूर्मिर्वज्रकण्टकशाल्मली वैतरणी पूयोदः प्राणरोधो विशसनं लालाभक्षः सारमेयादनमवीचिरयःपानमिति किंच क्षारकर्दमो रक्षोगणभोजनः शूलप्रोतो दंदशूकोऽवटनिरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखमित्यष्टाविंशति नरका विविधयातनाभूमयः ॥

७—तत्र यस्तु परवित्तापत्यकलत्राण्यपहरति स हि कालपाशबद्धो यमपुरुषैरतिभयानकैस्तामिस्रे नरके बलान्निपात्यते अनशनानुदपानदंडताडनसंतर्जनादिभिर्यातनाभिर्यात्यमानो जंतुर्यत्र कश्मलमासादित एकदैव मूर्च्छामुपयाति तामिस्रप्राये ॥

८—एवमेवान्धतामिस्रे यस्तु वंचयित्वा पुरुषं दारादीनुपयुंक्ते यत्र शरीरी निपात्यमानो यातनास्थो वेदनया नष्टमतिर्नष्टदृष्टिश्च भवति यथा वनस्पतिर्वृश्च्यमानमूलस्तस्मादन्धतामिस्रं तमुपदिशन्ति ॥

वह अन्धतामिस्र नामक नरक में पड़ता है। इस नरक में गिरे हुए और कष्ट पाते हुए व्यक्ती की दृष्टि और मति वेदना के कारण नष्ट हो जाती है। जड़ कटे हुए वृक्ष की जो दशा होती है, वही यहां पड़े हुए जीव की भी होती है। इसी कारण इसका अन्धतामिस्र यह नाम पड़ा है। जो व्यक्ति "यह शरीर" 'मैं' हूं" और यह धन आदि मेरा है ऐसा समझकर दूसरों से बैर रखता और केवल अपने ही कुटुम्ब का पोषण करता है, वह कुटुम्ब को वहीं छोड़कर, इस पाप के कारण रौरव नामक नरक में पड़ता है ॥ ९-१० ॥ इस व्यक्ति ने यहां जिस व्यक्ति को जिस प्रकार मारा होगा, 'रुरु' नामक प्राणी बनकर इस स्थान के कष्ट में आने पर वह भी वैसे ही मारा जायगा, इसलिये इस नरक का नाम रौरव पड़ा है 'रुरु' सर्प से भी अधिक क्रूर प्राणी का नाम है ॥ ११ ॥ इसी प्रकार जिस मनुष्य ने केवल अपने ही शरीर का पालन किया है, वह महा रौरव नरक में पड़ता है। इस नरक में पड़े हुए मनुष्य को क्रव्याद नाम के रुरु मांस की इच्छा से काट डालते हैं ॥ १२ ॥ जो क्रूर मनुष्य पशु अथवा पक्षियों को जीते-जी ही पका डालते हैं, उन निर्दय तथा राक्षसों के द्वारा भी धिक्कार योग्य मनुष्यों को यमपुरी में यम के दूत, जिसमें तेल उबला करता है, ऐसे कुम्भीपाक नरक में उबाल देते हैं ॥ १२ ॥ जिस मनुष्य ने पिता, ब्राह्मण अथवा वेद का द्रोह किया हो वह कालसूत्र नामक नरक में पड़ता है। इस नरक का विस्तार दस हजार योजन है। उसकी भूमि तांबे की और समतल है। ऊपर से सूर्य के और नीचे से अग्नि के द्वारा वह तपा करती है। इस नरक में पड़ा हुआ, भूख तथा प्यास से बाहर और

९—यस्त्विहवाएतदहमिति ममेदमिति भूतद्रोहेण केवलं स्वकुटुम्बमेवानुदिनं प्रपुष्णाति स तदिह विहाय स्वय मेव तदशुभेन रौरवे निपतति ॥

१०—ये त्विह यथैवामुना विहिंसिताजन्तवः परत्र यमयातनामुपगतं तएव रुरवो भूत्वा तथा तमेव विहिंसन्ति तस्मा द्रौरवमित्याहुः रुरुरिति सर्पादतिक्रूरसत्त्वस्यापदेशः ॥

११—एवमेव महारौरवो यत्र निपतितं पुरुषं क्रव्यादानामरुरवस्तं क्रव्येण घातयन्ति यः केवलं देहंभरः ॥

१२—यस्त्विहवाउग्रः पशून्पक्षिणोवाप्राणत उपरन्धयति तमपकरुणं पुरुषादैरपि विगर्हितममुत्र यमानुचराः कुम्भीपाके तप्ततैले उपरन्धयन्ति ॥

१३—यस्त्विह पितृविप्रब्रह्मध्रुक्स कालसूत्रसंज्ञके नरके अयुतयोजनपरिमण्डले ताम्रमये तप्तखले उपर्यधस्तादग्न्यर्काभ्यामतितप्यमानेऽभिनिवेशितः क्षुत्पिपासाभ्यां च दह्यमानान्तर्बहिः शरीर आस्ते शेते चेष्टते अव तिष्ठति परिधावति च यावन्ति पशुरोमाणि तावद्वर्षसहस्राणि ॥

१४- यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यपगतः पाखण्डं चोपगतस्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरन्ति तत्र हासा

भीतर जलता हुआ मनुष्य, पशु के शरीर में जितने रोएँ होते है, उतने हजार वर्षों तक वहीं बैठता, सोता, हिलता, खड़ा रहता और दौड़ता है ॥ १४ ॥ जो मनुष्य आपत्काल के बिना ही वेदमार्ग को छोड़कर पाखंड में लिप्त होता है, वह असिपत्रवन नामक नरक में डालकर कोड़े से पीटा जाता है। मार खाने के कारण वह नरक में चारों ओर दौड़ता है। उस समय ताल के वन में, दोनों ओर धार वाले ताड़ के पत्ते उसके ऊपर गिरकर उसे काट डालते हैं। 'हाय मरे' 'हाय मरे' कहकर चिल्लाता और अत्यंत पीड़ा के कारण पग-पग पर मूर्च्छित होकर गिर जाता है। स्वधर्म का त्याग करके पाखंड का आश्रय लेने वाले मनुष्य को ऐसा ही फल मिलता है ॥ १५ ॥ यहाँ जो राजा अथवा राजपुरुष निरपराध को दंड देता अथवा ब्राह्मण को प्राणदंड देता है, वह पापी इस सूकरमुख नामक नरक में पड़ता है। इस नरक में महा बली यमदूत उसके शरीर के अवयवों को, जैसे कोल्हू में ईख पेरा जाता हो, पीसते हैं। भयानक पीड़ा से वह चीखता है और कभी-कभी मूर्च्छित हो जाता है। जिस प्रकार उसके द्वारा निरपराधी लोगों ने कैद होकर दुःख पाया था, उसी प्रकार वह बहुतेरे दुःख पाता है ॥ १६ ॥ ईश्वर ने मनुष्य को दूसरे की पीड़ा समझने का ज्ञान दिया है और खटमल आदि कितने ही जीवों को इसका ज्ञान नहीं दिया, बल्कि दूसरे को पीड़ा पहुँचाकर (रक्त चूसकर) ही उनकी आजीविका चलती है, फिर भी अर्थात् दूसरे की पीड़ा का ज्ञान रखता हुआ भी जो मनुष्य खटमल आदि को पीड़ा पहुँचाता है, वह मृत्यु के अनंतर इस पाप के कारण अंधकूप नामक

वितस्ततो धावमान उभयतो धारैस्तालवनासिपत्रैश्छिद्यमानसर्वांगो हाहतोऽस्मीति परमया वेदनया मूर्छितः पदेपदे निपतति स्वधर्महा पाखंडानुगतं फलं भुंक्ते ॥

१५—यस्त्विह वै राजा राजपुरुषो वा अदण्ड्ये दण्डं प्रणयति ब्राह्मणे वा शरीरदण्डं स पापीयान्नरकेऽमुत्र सूकरमुखे निपतति तत्रातिबलैर्विनिष्पिष्यमाणावयवो यथैवेहेक्षुखण्ड आर्तस्वरेण स्वनयन् क्वचिन्मूर्छितः कश्मलमुपगतो यथैवेहादृष्टदोषा उपरुद्धाः ॥

१६—यस्त्विह वै भूतानामीश्वरकल्पितवृत्तीनामविविक्तपरव्यथानां स्वयं पुरुषोपकल्पितवृत्तिर्विविक्तपरव्यथो व्यथामाचरति स परत्रान्धकूपे तदभिद्रोहेण निपतति तत्र हासौ तैर्जन्तुभिः पशुमृगपक्षिसरीसृपैर्मशकयूकामत्कुणमक्षिकादिभिर्ये केचाभिद्रुग्धास्तैः सर्वतोऽभिद्रुह्यमाणस्तमसि विहतनिद्रानिर्वृतिरलब्धावस्थानः परिक्रामति यथा कुशरीरे जीवः ॥

१७—यस्त्विह वा असंविभज्याश्नाति यत्किंचनोपनतमनिर्मितपञ्चयज्ञो वायससंस्तुतः स परत्र कृमिभोजने नरकाधमे निपतति तत्र शतसहस्रयोजने कृमिकुण्डे कृमिभूतः स्वयं कृमिभिरेव भक्ष्यमाणः कृमिभोजनो यावत्तदप्रत्ताप्रहुतादोऽनिर्वेशमात्मानं यातयते ॥

नरक में पड़ता है। इस नरक में पशु, पक्षी, मृग, सर्प, मच्छर, जूँ, खटमल और मक्खियाँ जिन्हें उसने दुःख दिया था, उसे पीड़ा पहुंचाती हैं। उसे निद्रा का सुख और एक जगह रहना नहीं मिलता। जिस प्रकार वृद्ध शरीर में निवास करके जीव दुःख पाता है, वह भी उसी प्रकार इस अंधकारमय नरक में दुःख पाता है। जो मनुष्य भोजन आदि की सामग्री पाकर दूसरों को बाँटे बिना खा जाय अथवा वैश्वदेवादि पंचयज्ञ न करे, कौए के समान वह मनुष्य मृत्यु के अनन्तर कृमिभोजन नामक अधम नरक में पड़ता है। लाख योजन विस्तृत इस कीड़ाओं के कुण्डरूप नरक में मनुष्य कीड़ा बनकर गिरता है। अन्य कीड़े उसे भी अन्य खाते हैं तथा उसे कीड़ों को खाना पड़ता है। बाटे बिना और होम किये बिना खाने तथा उसका प्रायश्चित्त न करने वाले को जितना उसका पाप होता है,उतनी पीड़ा भोगनी पड़ती है॥ १७॥ जो मनुष्य चोरी से या ब्राह्मण का सुवर्ण या रत्न आदि हरण करता है अथवा कष्ट में पड़े बिना ही दूसरे के सुवर्ण आदि का हरण करता है, मृत्यु के अनन्तर वह्सन्दन्श नामक नरक में पड़ता है। राजन्, वहां यमदूत गरम लोहे की चिमटियों से उसकी चमड़ी छिन्न-भिन्न कर देते हैं॥ १८॥ जो पुरुष इस लोक में अगम्य स्त्री में गमन करता है अथवा जो स्त्री अगम्य पुरुष में गमन करती है, वे दोनों तप्तसूर्मि नामक नरक में पड़ते हैं। वहां यमदूत उनको कोड़ों से पीटते हैं। गर्म लोहे की स्त्री के साथ पुरुष को और वैसे ही पुरुष के साथ स्त्री को चिपटाते हैं॥ १९॥ जो पुरुष पशु आदि में गमन करता है,वह मृत्यु के अनन्तर वज्रकटक और शाल्मली नामक नरक में पड़ता है। वहां वज्र के समान कांटे वाले शाल्मली वृक्ष पर चढ़ाकर यमदूत उसे खींचते हैं॥ २०॥ जो राजा

१८—यस्त्विहवै स्तेयेन बलाद्वाहिरण्य रत्नादीनि ब्राह्मणस्य वाऽपहरत्यन्यस्य वाऽनापदिपुरुषस्तममुत्र राजन्यमपुरुषाअयस्मयैरग्निपिंडैः संदंशैस्त्वचिनिष्कुषंति॥

१९—यस्त्विहवा अगम्या स्त्रियमगम्य वापुरुषं योषिदभिगच्छति तावमुत्र कशया ताडयंतस्तिग्मयासूर्म्यालोहमय्या पुरुषमालिंगयति स्त्रियं च पुरुषरूपया सूर्म्या॥

२०—यस्त्विहवै सर्वाभिगमस्तममुत्रनिरये वर्तमानं वज्रकंटक शाल्मलीमारोप्यनिष्कर्षंति॥

२१—येत्विह वै राजन्या राजपुरुषावा अपाखंडा धर्मसेतून् भिंदंति ते संपरेत्य वैतरण्या निपतंति भिन्नमर्यादास्तस्यां निरयपरिखा भूतायां नद्यां यादोगणैरितस्ततो भक्ष्यमाणा आत्मना न वियुज्यमानाश्चासुभिरुह्यमानाः स्वाघेन कर्मपाकमनुस्मरंत उपतप्यंतो विण्मूत्रपूयशोणितकेशनखास्थिमेदो मांसवसावाहिन्यामुपतप्यंते॥

अथवा राजपुरुष अच्छे कुल में उत्पन्न होने पर भी धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करते हैं, वे नरकों की खाई के समान वैतरनीनदी नामक नरक में पड़ते हैं। मर्यादा का उल्लंघन करने वाले इन लोगों को वहां चारों ओर से पानी के जीव जतु भक्षण करते है। उनके प्राण नहीं निकलते, जीवित रहने के लिए वे नदी में इधर-उधर छट-पटाते रहते हैं, अपने पापों का स्मरण कर कर के अत्यत पश्चाताप करते है और विष्टा, मूत्र, पीप, रक्त, केश, नख, अस्थि, मेद, मांस और चरबी की नदी मे दु:ख पाया करते हैं॥ २१ ॥ जो शूद्रपति इस लोक मे लज्जा को त्याग कर पवित्रता, आचार तथा नियमों का नाश कर देते है और पशु के समान यथेष्ट आचरण करते हैं, मृत्यु के अनतर वे पूयोद नामक नरक में पड़ते हैं। यह नरक पीव, विष्ठा, मूत्र, श्लेष्म और मल से भरे हुए समुद्र के समान है। इस नरक मे पड़ कर उन्हें इन सब घृणित पदार्थों को खाना पड़ता है॥ २२ ॥ इस लोक मे जो ब्राह्मण आदि कुत्ता और गध्या वगैरह पालते हैं तथा मृगया को मनोरजन समझ कर शास्त्रोक्त समय के बिना ही पशुओं को मारते हैं, मृत्यु के अनन्तर वे प्राणरोध नामक नरक में पड़ते हैं। वहा यमदूत उन्हे निशाना बना कर बाणों से छेद डालते हैं॥ २३ ॥ जो दंभी लोग झूठे यज्ञ में पशुओं की हत्या करते हैं, मृत्यु के अनन्तर वे विशसन नामक नरक में पड़ते है। नरक के अधिपति वहां उन्हे काटकर मार डालते हैं॥ २४॥ इस लोक में द्विजवर्ण का जो पुरुष काम से मोहित होकर अपने वर्ण की स्त्री को वीर्य पिलाता है, वह पापी मृत्यु के अनन्तर लालाभक्ष नामक नरक में पड़ता है। वहा यम-यमदूत उसे वीर्य की नदी में डालकर वीर्य ही पिलाते हैं॥ २५ ॥ इस लोक में जो

२२—येत्विह वै वृषलीपतयो नष्टशौचाचारनियमास्त्यक्तलज्जाः पशुचर्यां चरंति ते चापि प्रेत्य पूयविण्मूत्रश्लेष्ममलापूर्णार्णवे निपतंति तदेवाति बीभत्सितमश्नंति॥

२३—येत्विह वै श्वगर्दभपतयो ब्राह्मणादयो मृगया विहारा अतीर्थे च मृगान्निघ्नंति तानपि सम्परेतांल्लक्ष्यभूतान्यमपुरुषा इषुभिर्विध्यंति॥

२४—येत्विह वै दाम्भिका दम्भयज्ञेषु पशून्विशसंति तानमुष्मिंल्लोके वैशसे नरके पतितान्निरयपतयो यातयित्वा विशसंति॥

२५—यस्त्विह वै सवर्णां भार्यां द्विजो रेतः पाययति काममोहितस्तं पापकृतममुत्र रेतः कुल्यायां पातयित्वा रेतः संपाययंति॥

२६—येत्विह वै दस्यवोऽग्निदा गरदा ग्रामान्सार्थान्वा विलुंपंति राजानो राजभटास्तांश्चापि हि परेत्य यमदूता वज्रदंष्ट्राः श्वानः सप्तशतानि विंशतिश्च सरभसं खादंति॥

चोर घर में आग लगाता है, विष देता है और जो राजा अथवा राजपुरुष गाँव या सपत्ति को लूटता है, मृत्यु के अनन्तर वह सारमेयादन नामक नरक में पड़ता है। वहाँ यम के दूतरूपी सात सौ बीस कुत्ते, जिनके डाढ वज्र के समान हैं, आकर अत्यत शीघ्रता से उसका भक्षण करते हैं॥ २६॥ जो मनुष्य यहाँ गवाही देने में, धन के लेन-देन मे अथवा दान मे किसी प्रकार झूठ बोलता है, वह अवीचि नामक नरक में गिरता है। इस नरक मे अवलंबन का कोई स्थान नहीं है। वहाँ सौ योजन ऊँचे पर्वत शिखर से उसे औंधे मुँह गिराते हैं। इस नरक मे पत्थर की जमीन भी जल के समान मालूम पड़ती है, इसीसे इसका नाम अवीचि पड़ा है। यहाँ तिल-तिल करके शरीर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। फिर भी मनुष्य के प्राण नहीं निकलते, अतः उसे पुन. पर्वत-शिखर पर चढाकर गिराया जाता है॥ २७॥ जो ब्राह्मण या ब्राह्मणी अथवा अन्य कोई व्रती भूल से भी मदिरा पी लेता है, अथवा जो क्षत्रिय या वैश्य सोमरस का पान करता है, वह अयःपान नामक नरक मे पड़ता है। वहाँ नरक से भयभीत उस मनुष्य की छाती पर पैर रखकर यमदूत उसके मुँह में अग्नि से पिघलाया हुआ गरम लोहा छोड़ते हैं॥ २८॥ जो मनुष्य स्वयं अधम होकर भी अपने को ही उत्तम समझता है और जन्म, तपस्या, विद्या, आचार तथा वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाला अपने से बड़ों का सम्मान नहीं करता, मृत्यु के अनंतर वह क्षारकर्दम नामक नरक मे औंधे मुँह गिरता है और वहाँ अत्यत कष्ट पाता है॥ २९॥ जो पुरुष नरबलि के द्वारा पूजन करता है और जो स्त्री उस नर-

२७—यस्त्विहवा अनृत वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वाकथचित्स वै प्रेत्य नरकेऽवीचिमत्यधः शिरानि रवकाशे योजनशतोच्छ्रायाद् गिरिमूर्ध्नः संपात्यते यत्र जलमिवस्थलमश्मपृष्ठमवभासते तदवीचिमत्ति लशो विशीर्यमाणा शरीरो न म्रियमाणः पुनरारोपितो निपतति॥

२८—यस्त्विह वै विप्रो राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथस्तत्कलत्रवा सुरां व्रतस्थोऽपि वापिबति प्रमादतस्तेषा निरयमीतानामुरसि पदाक्रम्यास्ये वह्निना द्रवमाणा कार्ष्णायं सनिषिचति॥

२९—अथच यस्त्विहवा आत्मसमावनेन स्वयमधमो जन्म तपो विद्याचारवर्णाश्रमवतो वरीयसो न बहुमन्येत समृतक एव मृत्वा क्षारकर्दमे निरयेऽवाक्शिरानिपातितो दुरन्तायातनाह्यश्नुते॥

३०—येत्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजते याश्चस्त्रियो नृपशून्खादंति ताश्च ते पशव इव निहता यमसदने यातयंतो रक्षोगणाः सौनिका इव स्वधितिनाऽवदायासृक् पिबंति नृत्यंति च गायंति च हृष्यमाणा यथेह पुरुषादाः॥

अथवा राजपुरुष अच्छे कुल में उत्पन्न होने पर भी धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करते हैं, वे नरकों की खाई के समान वैतरनीनदी नामक नरक मे पड़ते हैं। मर्यादा का उल्लंघन करने वाले इन लोगों को वहां चारों ओर से पानी के जीव जतु भक्षण करते हैं। उनके प्राण नहीं निकलते, जीवित रहने के लिए वे नदी में इधर-उधर छट-पटाते रहते हैं, अपने पापों का स्मरण कर कर के अत्यत पश्चाताप करते हैं और विष्ठा, मूत्र, पीप, रक्त, केश, नख, अस्थि, मेद, मांस और चरबी की नदी में दु:ख पाया करते हैं॥ २१॥ जो शूद्रपति इस लोक में लज्जा को त्याग कर पवित्रता, आचार तथा नियमों का नाश कर देते हैं और पशु के समान यथेष्ट आचरण करते हैं, मृत्यु के अनतर वे पूयोद नामक नरक में पडते हैं। यह नरक पीब, विष्ठा, मूत्र, श्लेष्म और मल से भरे हुए समुद्र के समान है। इस नरक में पड कर उन्हे इन सब घृणित पदार्थों को खाना पड़ता है॥ २२॥ इस लोक में जो ब्राह्मण आदि कुत्ता और गध्या वगैरह पालते हैं तथा मृगया को मनोरजन समझ कर शास्त्रोक्त समय के विना ही पशुओं को मारते है, मृत्यु के अनन्तर वे प्राणरोध नामक नरक में पडते हैं। वहा यमदूत उन्हें निशाना बना कर बाणों से छेद डालते हैं॥ २३॥ जो दंभी लोग झूठे यज्ञ में पशुओं की हत्या करते हैं, मृत्यु के अनन्तर वे विशसन नामक नरक में पडते हैं। नरक के अधिपति वहा उन्हे काटकर मार डालते हैं॥ २४॥ इस लोक मे द्विजवर्ण का जो पुरुप काम से मोहित होकर अपने वर्ण की स्त्री को वीर्य पिलाता है, वह पापी मृत्यु के अनन्तर लालाभक्ष नामक नरक में पडता है। वहां यम-यमदूत उसे वीर्य की नदी में डालकर वीर्य ही पिलाते हैं॥ २५॥ इस लोक में जो

२२—येत्विह वै वृषलीपतयो नष्टशौचाचारनियमास्त्यक्तलज्जा: पशुचर्यां चरति ते चापि प्रेत्य पूयविण्मूत्रश्लेष्ममलापूर्णार्णवे निपतंति तदेवाति बीभत्सितमश्नति॥

२३—येत्विह वैश्वगर्दभपतयो ब्राह्मणादयो मृगया विहारा अतीर्थे च मृगान्निघ्नन्ति तानपि सपरेतांल्लक्ष्यभूतान्यमपुरुषा इषुभिर्विध्यन्ति॥

२४—येत्विह वैदाम्भिका दंभयज्ञेषु पशून्विशसंति तानमुष्मिंल्लोके वैशसे नरके पतितान्निरयपतयो यातयित्वा विशसंति॥

२५—यस्त्विह वै सवर्णां भार्यां द्विजोरेत: पाययति काममोहितस्त पापकृतममुत्र रेत: कुल्यायां पातयित्वा रेत: संपाययति॥

२६—येत्विह वै दस्यवोऽग्निदागरदाग्रामान्सार्थान्वा विलुंपति राजानो राजभटास्त चापि हिपरेत्य यमदूता वज्रदंष्ट्रा: श्वान: सप्तशतानि विंशतिश्च सरभस खादति॥

चोर घर में आग लगाता है, विष देता है और जो राजा अथवा राजपुरुष गाँव या सपत्ति को लूटता है, मृत्यु के अनन्तर वह सारमेयादन नामक नरक में पड़ता है। वहाँ यम के दूतरूपी सात सौ बीस कुत्ते, जिनके डाढ़ वज्र के समान हैं, आकर अत्यंत शीघ्रता से उसका भक्षण करते हैं॥ २६॥ जो मनुष्य यहां गवाही देने में, धन के लेन-देन मे अथवा दान मे किसी प्रकार झूठ बोलता है, वह अवीचि नामक नरक में गिरता है। इस नरक मे अवलंबन का कोई स्थान नहीं है। वहाँ सौ योजन ऊँचे पर्वत-शिखर से उसे औंधे मुँह गिराते हैं। इस नरक मे पत्थर की जमीन भी जल के समान मालूम पड़ती है, इसीसे इसका नाम अवीचि पड़ा है। यहाँ तिल-तिल करके शरीर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। फिर भी मनुष्य के प्राण नहीं निकलते, अत: उसे पुनः पर्वत-शिखर पर चढाकर गिराया जाता है॥ २७॥ जो ब्राह्मण या ब्राह्मणी अथवा अन्य कोई व्रती भूल से भी मदिरा पी लेता है, अथवा जो क्षत्रिय या वैश्य सोमरस का पान करता है, वह अयःपान नामक नरक मे पड़ता है। वहाँ नरक से भयभीत उस मनुष्य की छाती पर पैर रखकर यमदूत उसके मुँह मे अग्नि से पिघलाया हुआ गरम लोहा छोडते हैं॥ २८॥ जो मनुष्य स्वयं अधम होकर भी अपने को ही उत्तम समझता है और जन्म, तपस्या, विद्या, आचार तथा वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाला अपने से बड़ों का सम्मान नहीं करता, मृत्यु के अनंतर वह क्षारकर्दम नामक नरक मे औंधे मुँह गिरता है और वहाँ अत्यंत कष्ट पाता है॥ २९॥ जो पुरुष नरबलि के द्वारा पूजन करता है और जो स्त्री उस नर-

---

२७—यस्त्विहवा अनृतं वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वाकथचित्स वै प्रेत्य नरकेऽवीचिमत्यधः शिरानिरवकाशे योजनशतोच्छ्रायाद् गिरिमूर्ध्नः संपात्यते यत्र जलमिवस्थलमश्मपृष्ठमवभासते तदवीचिमत्तिलशो विशीर्यमाण शरीरो न म्रियमाणः पुनरारोपितो निपतति॥

२८—यस्त्विह वै विप्रो राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथस्तत्कलत्रंवा सुरां व्रतस्थोऽपि वापिबति प्रमादतस्तेषां निरयमीतानामुरसि पदाक्रम्यास्ये वह्निना द्रवमाणं कार्ष्णायं सनिषिंचति॥

२९—अथच यस्त्विहवा आत्मसंभावनेन स्वयमधमो जन्मतपो विद्याचारवर्णाश्रमवतो वरीयसो न बहुमन्येत समृतक एव मृत्वा क्षारकर्दमे निरयेऽवाक्शिरानिपातितो दुरंतायातनाह्यश्नुते॥

३०—येत्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजते याश्चस्त्रियो नृपशून्खादंति तांश्च ते पशव इव निहता यमसदने यातयतो रक्षोगणाः सौनिका इव स्वधितिनाऽवदायासृक् पिबंति नृत्यंति च गायंति च हृष्यमाणा यथेह पुरुषादाः॥

पशु का मांस खाती है, वे दोनों रक्षोगणभोजन नामक नरक मे पड़ते हैं। यम के इस स्थान में बलि दिए हुए मनुष्य का रूप धारण करके यमदूतगण उन्हें दुःख देते हैं और कसाइयों के समान अपने हथियारों से उन्हें काटकर उनका रक्त पीते हैं, नाचते हैं, गाते हैं और मनुष्य का मांस खाकर जिस तरह वे प्रसन्न हुए थे, वैसे ही प्रसन्न होते हैं॥ ३० ॥ जो मनुष्य वन अथवा गाँव में निरपराधी और जीने की इच्छा रखने वाले प्राणियों को, विश्वास के उपायों से विश्वास उपजाकर, पुनः शूल या रस्सी में फँसाकर क्रीड़ा के निमित्त उन्हें दुःख देता है, मृत्यु के अनन्तर वह शूलप्रोत नामक नरक में पड़ता है। वहाँ यम के दूत उसे शूलों पर चढ़ाते और भूख-प्यास से पीड़ित करते हैं। तीखी चोंच वाले गिद्ध और बगले चारों ओर से उसे चोंच मारते हैं और वह पापी अनेक पापों को याद करता है॥ ३१ ॥ साँपों के समान क्रूर स्वभाव वाले जो मनुष्य यहाँ प्राणियों को उद्विग्न करते हैं, वे मृत्यु के अनन्तर दन्दशूक नामक नरक में पड़ते हैं। वहाँ पाँच और सात मुख वाले साँप झपाटा मारकर उन्हें चूहे के समान निगल जाते हैं॥३२॥ जो लोग यहाँ पर प्राणियों को अंधे कुँओं, अन्न रखने की कोठियों और गुफाओं में बन्दकर रखते हैं, मृत्युओं के अनन्तर वे अवटनिरोधन नामक नरक मे पड़ते हैं। वहा यमदूत उन्हें इसी प्रकार के अन्धे कुओं में बन्द करके जहरीले धुँएँ वाले अग्नि से भूनते हैं॥ ३३ ॥ जो गृहपति अतिथि तथा अभ्यागतों पर बारम्बार क्रोध करके उनको ओर ऐसी क्रूरता से देखता है, जैसे उसे जलाकर भस्म कर देगा, वह पर्यावर्तन नामक नरक मे पड़ता है। वहा वज्र के समान

३१—येत्विहवा अनागसोऽरण्ये ग्रामे वा वैश्रंभिकैरुपसृतानुपविश्रंभय्य जिजीविषून् शूलसूत्रादिषूपप्रोतान् क्रीडनकतया यातयंति तेऽपि च प्रेत्य यमयातनासु शूलादिषु प्रोतात्मानः क्षुत्तृड्भ्यां चाऽभिहताः कंकवटादिभिश्चेतस्ततस्तिग्मतुडैराहन्यमाना आत्मशमलं स्मरति॥

३२—येत्विह वै भूतान्युद्वेजयंति नरा उल्बण स्वभावा यथा दंदशूकास्तेऽपि प्रेत्य नरके दंदशूकाख्ये निपतंति यत्र नृप दंदशूकाः पंचमुखाः सप्तमुखा उपसृत्य ग्रसंति यथा बिलेशयान्॥

३३—येत्विहवा अंधावटकुसूलगुहादिषु भूतानि निरुंधंति तथाऽमुत्र तेष्वेवोपवेश्य सगरेण वह्निना धूमेन निरुंधंति॥

३४—यस्त्विहवा अतिथीनभ्यागतान्वा गृहपतिरसकृदुपगतमन्युर्दिधक्षुरिव पापेन चक्षुषा निरीक्षते तस्य चाऽपि निरये पापदृष्टे रक्षिणी वज्रतुंडा गृध्राः कंककाकवटादयः प्रसह्योरुबलादुत्पाटयंति॥

३५—यस्त्विहवा आढ्याभिमतिरहंकृतिस्तिर्यक्प्रेक्षणः सर्वतोऽभिविशंकी अर्थव्ययनाशचिंतया परिशुष्यमाण

चोंच वाले गिद्ध, बगले, कौए और वट आदि पक्षी बलपूर्वक उस क्रूर दृष्टि वाले मनुष्य की आँखें निकाल लेते हैं ॥ ३३ ॥ धन का अभिमान रखने वाला, अपने को ही श्रेष्ठ समझने वाला, तिरछा देखने वाला, सबसे शंकित रहने वाला और धन के खर्च या नष्ट हो जाने की चिंता से हृदय और मुँह सूखा रहता है, ऐसा जो मनुष्य निश्चिंत न रहकर यक्ष के समान धन की रक्षा किया करता है, मृत्यु के अनन्तर वह मनुष्य सूचीमुख नामक नरक मे पड़ता है। धन के उपार्जन और रक्षण में ही लगे रहने के पाप के कारण यम के दूत जुलाहे के समान उसके सब अंगों में सूत पिरो देते हैं ॥ ३५ ॥ यमपुरी में ऐसे सैकड़ों-हजारों नरक हैं। इन मे समस्त पापात्मा, जिनमे से बहुतो का वर्णन मैंने किया और बहुतों का नहीं किया, क्रम से डाले जाते हैं। इसी प्रकार धर्म का आचरण करने वाले लोग स्वर्ग आदि लोकों मे जाते हैं और बचे हुए पाप-पुण्य का फल भोगने के लिये पुनर्जन्म पाकर पुन. यहीं मृत्युलोक मे आते हैं। निवृत्ति-धर्म के पालन करने के मार्ग का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। राजन्, पुराणों में चौदह प्रकार के भुवन-कोशों का जो वर्णन आया है, वह इतना ही है। साक्षात महापुरुष भगवान् नारायण की माया के गुण से निर्मित जो स्थूल रूप (ब्रह्माण्ड) है, उसका वर्णन मैं आपसे कर चुका हूँ। जो मनुष्य आदर के सहित इसे पढ़ता, सुनता या सुनाता है, श्रद्धा और भक्ति से उसकी बुद्धि शुद्ध होती है और इस कारण वह परमात्मा के अत्यन्त गूढ़ सत्यस्वरूप को जानने मे समर्थ हो सकता है ॥ ३६ ॥

हृदयवदनो निर्वृतिमनवगतोग्रह इवार्थमभिरक्षति स चापि प्रेत्य तदुत्पादनोत्कर्षण संरक्षणशमलग्रहः सूची मुखे नरके निपतति यत्रह वित्तग्रहं पापपुरुषं धर्मराजपुरुषा वायका इव सर्वतोऽङ्गेषु सूत्रैः परिवयन्ति ॥

३६—एवं विधा नरका यमालये संति शतशः सहस्रशस्तेषु सर्वेषु च सर्व एवाधर्मवर्तिनो ये केचिदिहोदिता अनुदिताश्चावनिपते पर्यायेण विशन्ति तथैव धर्मानुवर्तिन इतरत्र इह तु पुनर्भवे त उभयशेषाभ्यां निविशन्ति निवृत्तिलक्षणमार्ग आदावेव व्याख्यातः एतावानेवाण्डकोशो यश्चतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पित उपगीयते यत्तद्भगवतो नारायणस्य साक्षान्महापुरुषस्य स्थविष्ठं रूपमात्ममाया गुणमयमनुवर्णित आदृतः पठति शृणोति श्रावयति स उपगेयं भगवतः परमात्मनोऽग्राह्यमपि श्रद्धा भक्ति विशुद्ध बुद्धिर्वेद ॥

सन्यासि-गण भगवान के स्थूल तथा सूक्ष्मरूप को सुनकर पहले स्थूलरूप के ध्यान के द्वारा मन को वश मे करते, पुनः बुद्धि के द्वारा क्रमशः सूक्ष्म स्वरूप मे प्रवेश करते हैं ॥ ३७ ॥ राजन्, पृथ्वी, द्वीप, खंड, नदी, पर्वत, आकाश, समुद्र, पाताल, दिशा, नरक, ज्योतिश्चक्र तथा अन्य कितने ही लोकों की स्थिति, जो समस्त प्राणि-समूह के निवास का स्थान तथा ईश्वर का अद्भुत और स्थूल शरीर-रूप है, मैंने आपको कह सुनाया ॥ ३८ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कंध का छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त

पाँचवाँ स्कंध समाप्त

—::—

३७—श्रुत्वा स्थूलं तथा सूक्ष्मं रूपं भगवतो यतिः ।
स्थूले निर्जितमात्मानं शनैः सूक्ष्मं धिया नयेदिति ॥

३८—भूद्वीपवर्ष सरिदद्रिनभः समुद्र पाताल दिङ्नरक भागण लोकसंस्था ।
गीतामया तव नृपाद्भुतमीश्वरस्य स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेपारमहंस्यांसंहितायांपंचमस्कन्धेनरकानुवर्णनोनामषड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

—::—

श्रीमद्भागवत षष्ठ-स्कंध

❀ श्री हरिः ❀

श्रीमद्भागवत–षष्ठ स्कंध

पहला अध्याय

नारायण का नाम लेने से अजामिल की मुक्ति

यमदूतों और विष्णुदूतों का संवाद

परीक्षित बोले—आरंभ में आपने यथार्थ रूप से निवृत्ति मार्ग का उपदेश किया है, जिस मार्ग के द्वारा क्रम से ब्रह्मा के सहित मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ मुनि ! आपने प्रवृत्तिमार्ग का भी निरूपण किया है, जिससे स्वर्ग आदि के सुख प्राप्त होते हैं और जिसके द्वारा अविद्यायुक्त पुरुष को भोग के निमित्त बार-बार शरीर प्राप्त होता है ॥ २ ॥ अधर्म से मिलने वाले अनेक नरकों और स्वायंभुव मनु के पहले मन्वंतर का वर्णन भी आपने किया है ॥ ३ ॥ प्रियव्रत तथा उत्तानपाद के वंश और उनके चरित्र तथा द्वीप, खंड, समुद्र, नदियों,

---

❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

राजोवाच—

१—निवृत्तिमार्गः कथित आदौ भगवता यथा । क्रमयोगोपलब्धेन ब्रह्मणा यदसंसृतिः ॥

२—प्रवृत्तिलक्षणश्चैव त्रैगुण्यविषयो मुने । योऽसावलीन प्रकृतेर्गुणसर्गः पुनः पुनः ॥

३—अधर्मलक्षणा नाना नरकाश्चानुवर्णिताः । मन्वन्तरश्च व्याख्यात आद्यः स्वायंभुवो यतः ॥

उद्यान और वनस्पतियों के सबध मे भी आपने कहा है ॥ ४ ॥ भाग्य, लक्षण और परिमाण के सहित भूमण्डल की स्थिति तथा ज्योतिश्चक्र और पातालों का दर्शन भी आपने उसी प्रकार किया, जैसा भगवान् ने उन्हें बनाया है ॥ ५ ॥ महाभाग ! अब आप मुझ से वह उपाय कहे, जिससे मनुष्य इन उग्र यातना वाले नरकों मे न पड़े ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेव बोले—मन, वचन और शरीर से जो पाप किए हों, उसका प्रायश्चित्त यदि मनुष्य अपने मन, वचन और शरीर ही के द्वारा न करे तो मृत्यु के अनन्तर उसे अवश्य ही उन नरकों में जाना पड़ता है, जिन तीव्र यातना वाले नरकों का वर्णन मैं आप से कर चुका हूँ ॥ ७ ॥ अतः मनुष्य को मृत्यु के प्रथम ही पापों की निवृत्ति का यत्न करना चाहिए और वह भी शरीर पर विपत्ति आने के पहले ही शीघ्र ही और सावधान होकर करना चाहिए। निदान जानने वाला वैद्य जिस प्रकार वात-पित्त आदि दोषों की कमी-बेशी देखकर चिकित्सा करता है, उसी प्रकार मनुष्य को भी पापों की कमी-बेशी के अनुकूल प्रायश्चित्त करना चाहिए ॥ ८ ॥

राजा परीक्षित बोले—राजदंड आदि प्रत्यक्ष तथा नरकवास आदि सुनी हुई बातों से मनुष्य जानता है कि पाप हमारे लिए हानिकारक है, फिर भी प्रायश्चित्त करने के बाद

४—प्रियव्रतोत्तानपदोर्वंशस्तच्चरितानि च । द्वीप वर्ष समुद्राद्रि नद्युद्यान वनस्पतीन् ॥

५—धरामण्डलसंस्थानं भागलक्षण मानतः । ज्योतिषां विवराणां च यथेदमसृजद्विभुः ॥

६—अधुनेह महाभाग यथैव नरकान्नरः । नानोग्रयातनां नेयात्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥

श्रीशुक उवाच

७—न चेदिहैवापचितिं तथांऽहसः कृतस्य कुर्यान्मन उक्तिपाणिभिः ।

ध्रुवं स वै प्रेत्य नरकानुपैति ये कीर्तिता मे भवतस्तिग्मयातनाः ॥

८—तस्मात्पुरैवाश्विह पापनिष्कृतौ यतेत मृत्योरविपद्यतात्मना ।

दोषस्य दृष्ट्वा गुरुलाघवं यथा भिषक् चिकित्सेत रुजां निदानवित् ॥

राजोवाच

९—दृष्टश्रुताभ्यां यत्पापं जानन्नप्यात्मनोऽहितम् । करोति भूयो विवशः प्रायश्चित्तमथो कथम् ॥

विवश होकर वह पुनः पाप करता है अतः यह प्रायश्चित्त कैसे हुआ ? क्योंकि उस से तो पाप निर्मूल नहीं होता। निर्मूल होता भी हो तो पुनः उसका संग्रह हो जाता है, अतः मेरी समझ से तो प्रायश्चित्त हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है॥ ९-१०॥

श्रीशुकदेव बोले—कठिन प्रायश्चित्तों से पाप समूल नष्ट हो जाता हो, ऐसी बात नहीं है। जो मनुष्य ज्ञानी न हो, प्रायश्चित्त करने का अधिकारी वही है, अतः प्रायश्चित्त करने से पाप का नाश होने पर भी अज्ञान का नाश नहीं होता और उस संस्कार के कारण बार-बार पाप का उद्भव होता है। सच्चा प्रायश्चित्त तो ज्ञान ही है॥ ११॥ राजन्! जिस प्रकार पथ्य अन्न खाने वाले को व्याधियाँ नहीं पछाड़तीं, उसी प्रकार नियमों के पालन करने वाले को भी राग-द्वेष आदि पराभूत नहीं करते और वह तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करता है।॥ १२॥ तपस्या, ब्रह्मचर्य, मन का निग्रह, इंद्रियों का दमन, दान, सत्य, पवित्रता और अहिंसा आदि यम तथा जप आदि नियमों से धर्म को जानने वाला, श्रद्धावान् और धीर पुरुष अपने शरीर, वाणी और बुद्धि से हुए बड़े पापों को भी भस्म कर देता है, जैसे अग्नि बाँस के समूह को भस्म कर देती है॥ १३—१४॥ भगवान् में अनुरक्त कुछ लोग केवल भक्ति के द्वारा ही समस्त पापों को नष्ट कर देते हैं, जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट कर देता है॥ १५॥ राजन्! वैष्णवों की सेवा के द्वारा भगवान् में ही अपने इन्द्रियों को तत्पर रखने वाला मनुष्य जिस प्रकार पापों से मुक्त होता है, उस प्रकार तपस्या आदि करने से नहीं होता॥ १६॥ यह भक्तिमार्ग सुख रूप और विघ्न आदि

१०—क्वचिन्निवर्ततेऽभद्रात् क्वचिच्चरति तत्पुनः। प्रायश्चित्तमतोऽपार्थं मन्ये कुंजरशौचवत्॥

श्रीशुक उवाच—

११—कर्मणा कर्मनिर्हारो नह्यात्यन्तिक इष्यते। अविद्वदधिकारित्वात्प्रायश्चित्तं विमर्शनम्॥

१२—नाश्नतः पथ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवन्ति हि। एवं नियमकृद्राजन् शनैः क्षेमाय कल्पते॥

१३—तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च। त्यागेन सत्यशौचाभ्यां यमेन नियमेन च॥

१४—देहवाग्बुद्धिजं धीरा धर्मज्ञाः श्रद्धयान्विताः। क्षिपन्त्यघं महदपि वेणुगुल्ममिवानलः॥

१५—केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः। अघं धुन्वन्ति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः॥

१६—न तथा ह्यघवान् राजन् पूयेत तप आदिभिः। यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पूरुषनिषेवया॥

१७—सध्रीचीनो ह्ययं लोके पंथाः क्षेमो कुतोभयः। सुशीलाः साधवो यत्र नारायणपरायणाः॥

से रहीत होने के कारण अत्यत सरस है। दयालु और निष्काम भगवत् भक्त इस मार्ग पर चलते हैं ॥ १७ ॥ राजन्! नदियां जिस प्रकार मदिरा के घड़े को पवित्र नहीं बना सकतीं, उसी प्रकार भगवान् से विमुख मनुष्य को प्रायश्चित्त भी पवित्र नहीं कर सकते, किंतु भक्ति थोड़ी हो तो भी पवित्र बनाती है ॥ १८ ॥ मनुष्य ने यदि एक बार भी केवल भगवान के गुणों में प्रीति रखने वाले मन को उनके चरणारविंदों में लगाया हो, तो वह स्वप्न में भी यम को अथवा पाश धारण करने वाले दूतों को नहीं देखता, क्योंकि उतने से ही उसके समस्त पापों का प्रायश्चित हो जाता है ॥ १९ ॥ इस संबंध की, विष्णु और यम के दूतों के सम्वाद के रूप में एक पुरानी कथा कही जाती है, वह आप मुझसे सुनें ॥ २० ॥ कन्नौज में एक दासी का पति अजामिल नामक ब्राह्मण रहता था। दासी के ससर्ग से दूषित होने के कारण उसके सदाचार नष्ट हो गए थे ॥ २१ ॥ लोगों को बन्दी बनाकर, जुआ खेलकर और ठगी आदि नीच वृत्तियों के द्वारा वह अपनी आजीविका चलाता था। अपवित्र उपायों से अपने कुटुंब का पोषण करता हुआ यह अजामिल प्राणियों को दुःख देता था ॥ २२ ॥ इस प्रकार रहते हुए और उस दासी के पुत्रों का लालन-पालन करते हुए उसकी आयु का अट्ठासी वर्ष का लम्बा समय व्यतीत हो गया ॥ २३ ॥ उसके दस पुत्र थे, जिनमें सब से छोटे का नाम नारायण था। वह माता-पिता को अत्यन्त प्रिय था ॥ २४ ॥ तोतली और मीठी बोली बोलने वाले इस बच्चे में वृद्ध का हृदय अत्यन्त आसक्त था और वह उसकी बाल-क्रीडाओं को देखकर बहुत प्रसन्न होता था ॥ २५ ॥ खाते-पीते और खिलाते-पिलाते बालक के स्नेह में बँधे हुए उस मूढ ने निकट आई हुई मृत्यु को नहीं जाना

१८—प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायण पराङ्मुखम्। न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराकुम्भमिवापगाः ॥

१९—सकृन्मनः कृष्णपदारविंदयोर्निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह।

न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान् स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः ॥

२०—अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। दूतानां विष्णुयमयोः सम्वादस्तन्निबोध मे ॥

२१—कान्यकुब्जे द्विजः कश्चिद्दासीपतिरजामिलः। नाम्ना नष्टसदाचारो दास्याः संसर्गदूषितः ॥

२२—बंद्यक्षकैतवैश्चौर्यैर्गर्हितां वृत्तिमास्थितः। बिभ्रत्कुटुंबमशुचिर्यातयामास देहिनः ॥

२३—एवं निवसतस्तस्य लालयानस्य तत्सुतान्। कालोऽत्यगान्महान् राजन्नष्टाशीत्यायुषः समाः ॥

२४—तस्य प्रवयसः पुत्रा दश तेषां तु योऽवमः। बालो नारायणो नाम्ना पित्रोश्च दयितो भृशम् ॥

२५—स बद्धहृदयस्तस्मिन्नर्भके कलभाषिणि। निरीक्षमाणस्तल्लीलां मुमुदे जरठो भृशम् ॥

२६—भुंजानः प्रपिबन् खादन् बालकस्नेहयन्त्रितः। भोजयन्पाययन्मूढो न वेदागतमंतकम् ॥

॥ २६ ॥ इस प्रकार वर्तमान उस मूर्ख ने मृत्यु-काल उपस्थित होने पर नारायण नामक उस बालक में मन लगाया । पाश लेकर उसे लेजाने के लिए अत्यन्त दारुण तीन पुरुष आए। उनके मुख टेढ़े थे और शरीर के रोम खड़े थे। उन्हें आया देखकर व्याकुल और ऊँचे स्वर से अजामिल अपने नारायण नामक पुत्र को पुकारने लगा, जो कुछ दूर पर खेल में लगा हुआ था ॥ २८-२९ ॥ महाराज ! मरते हुए उस बूढ़े को भगवान् का कीर्तन करते सुनकर भगवान् के पार्षद शीघ्र ही वहां आ पहुँचे ॥ ३० ॥ यम के दूत दासी-पति अजामिल को उसके हृदय से खींच रहे थे। विष्णु के दूतों ने बलपूर्वक उन्हें रोक दिया। रोके हुए यम के उन दूतों ने पार्षदों से कहा कि यमराज की आज्ञा को रोकने वाले तुम कौन हो ? किसके हो ? कहां से आए हो ? और इसको ले जाने से हमें क्यों रोकते हो ? तुम क्या कोई देवता हो ? उपदेवता हो ? अथवा कोई बड़े सिद्ध हो ? ॥ ३२-३३ ॥ तुम सभी कमल की पखड़ियों के समान आखों वाले हो, तुमने पीला वस्त्र पहन रखा है, किरीट पहना है, कुंडल धारण किया है, तुम कमल की मालाओं से शोभित हो, युवक हो और सुंदर चार हाथों से युक्त हो । तुम धनुष, तर्कस, तलवार, गदा, शंख, चक्र और कमल से शोभित हो ॥ ३४-३५ ॥ तुमने अपनी कांति से दिशाओं का अन्धकार दूर करके उन्हें प्रकाशित किया है। तुम धर्मराज के अनुचर हम लोगों को क्यों रोकते हो ? ॥ ३६ ॥

२७—स एवं वर्तमानोऽज्ञो मृत्युकाल उपस्थिते । मतिं चकार तनये बाले नारायणाह्वये ॥

२८—स पाशहस्तांस्त्रीन् दृष्ट्वा पुरुषान् भृश दारुणान् । वक्रतुण्डानूर्ध्वरोम्ण आत्मानं नेतुमागतान् ॥

२९—दूरे क्रीडनकासक्तं पुत्रं नारायणाह्वयम् । प्लावितेन स्वरेणोच्चैराजुहावाकुलेन्द्रियः ॥

३०—निशम्य म्रियमाणस्य मुखतो हरिकीर्तनम् । भर्तुर्नाम महाराज पार्षदाः सहसाऽऽपतन् ॥

३१—विकर्षतोऽन्तर्हृदयाद्दासीपतिमजामिलम् । यमप्रेष्यान्विष्णुदूता वारयामासुरोजसा ॥

३२—ऊचुर्निषेधितास्तांस्ते वैवस्वतपुरः सराः । के यूयं प्रतिषेद्धारो धर्मराजस्य शासनम् ॥

३३—कस्य वा कुत आयाताः कस्मादस्य निषेधथ । किं देवा उपदेवा वा यूयं किं सिद्धसत्तमाः ॥

३४—सर्वे पद्मपलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः । किरीटिनः कुण्डलिनो लसत्पुष्करमालिनः ॥

३५—सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः । धनुर्निषङ्गासि गदा शङ्ख चक्राम्बुज श्रियः ॥

३६—दिशो वितिमिरालोकाः कुर्वन्तः स्वेन रोचिषा । किमर्थं धर्मपालस्य किंकरान्नो निषेधथ ॥

श्रीशुकदेव बोले—इस प्रकार यमदूतों का कहना सुनकर भगवान् के पार्षद हँसते हुए मेघ की ध्वनि के समान गंभीर वाणी से इस प्रकार बोले ॥ ३७ ॥

पार्षद बोले—तुम यदि धर्मराज के दूत हो तो धर्म का जो तत्त्व और लक्षण है, वह मुझ से कहो ॥ ३८ ॥ किस नियम से दण्ड दिया जाता है? जो कोई कर्म करने वाले हैं, वे सभी दण्डनीय हैं अथवा केवल मनुष्य ही? और उन मनुष्यों में भी सभी या कुछ ही लोग? ॥ ३९ ॥

यमदूत बोले—वेदों में जो विहित कहा गया है, वह धर्म और उसका विपरीत अधर्म है। हम लोग सुनते हैं कि वेद नारायण के निःश्वास-से स्वयं ही उत्पन्न हुए हैं और वे साक्षात् नारायण के ही समान हैं ॥ ४० ॥ जो अपने ही स्वरूप में सत्व,रज और तमोमय इन प्राणियों का गुण, (शांति आदि), नाम (ब्राह्मण आदि), क्रिया (अध्ययन आदि) और रूप (वर्णाश्रम आदि) के द्वारा यथायत् विभाग करते हैं, वही नारायण हैं॥ ४१ ॥ सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, गाय, चन्द्रमा, सन्ध्या, रात, दिन, जल, पृथ्वी, काल तथा धर्म, ये प्राणियों के द्वारा किए हुए अधर्म के साक्षी हैं ॥ ४२ ॥ इनके द्वारा ज्ञात हुआ अधर्म दण्ड का स्थान है। कर्म करने वाले समस्त प्राणी अपने-अपने कर्मों के अनुसार दण्ड पाते हैं ॥ ४३ ॥ अनघ! कर्म करने वालों को पुण्य भी होता है और पाप भी, क्योंकि उन्हें गुणों का संग लगा हुआ है। यदि कोई अकर्ता हो तो उसे पाप नहीं लगता, किंतु जो देहधारी है, वह कर्म किए बिना नहीं

श्रीशुक उवाच—

३७—इत्युक्ते यमदूतैस्तैर्वासुदेवोक्तकारिणः। तान् प्रत्यूचुः प्रहस्येदं मेघनिर्ह्रादया गिरा ॥

विष्णुदूता ऊचुः—

३८—यूयं वै धर्मराजस्य यदि निर्देशकारिणः। ब्रूत धर्मस्य नस्तत्त्वं यच्च धर्मस्य लक्षणम् ॥

३९—कथं स्विद्ध्रियते दण्डः किंवास्यस्थानमीप्सितम्। दंड्याः किंकारिणः सर्वे आहोस्वित्कतिचिन्नृणाम् ॥

यमदूता ऊचुः—

४०—वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः। वेदो नारायणः साक्षात्स्वयंभूरिति शुश्रुम ॥

४१—येन स्वधाम्न्यमी भावा रजःसत्त्वतमोमयाः। गुण नाम क्रिया रूपैर्विभाव्यन्ते यथातथम् ॥

४२—सूर्योऽग्निः खं मरुद्गावः सोमः संध्याऽहनी दिशः। कं कुः कालो धर्म इति ह्येते दैह्यस्य साक्षिणः ॥

४३—एतैरधर्मो विज्ञातः स्थानं दंडस्य युज्यते। सर्वे कर्मानुरोधेन दंडमर्हन्ति कारिणः ॥

४४—संभवंति हि भद्राणि विपरीतानि चानघाः। कारिणां गुणसंगोऽस्ति देहवान्न ह्यकर्मकृत् ॥

रह सकता और कर्म करने वाले से पाप भी अवश्य होता है, अतः सभी प्राणी दण्ड के योग्य हैं ॥ ४४ ॥ इस लोक में जिसने जितना और जिस प्रकार का धर्म अथवा अधर्म किया होगा, मृत्यु के उपरांत परलोक में उसे उतना ही और वैसा ही फल प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ गुण के वैचित्र्य से, जैसे इस लोक में प्राणियों के तीन प्रकार देखे जाते है, वैसे ही जन्मांतर में भी तीन प्रकारों का अनुमान किया जाता है ॥ ४६ ॥ जिस प्रकार वर्तमान काल की वसंत आदि ऋतुएँ, भूतकाल के और भविष्य काल की वसंत आदि ऋतुओं के फूल फल आदि गुणों को बताती हैं और उनसे अनुमान होता है कि वर्तमान वसंतऋतु मे जैसे फूल-फल दीख पडते हैं,वैसे ही वसंतऋतु में थे और वैसे ही भविष्य की वसंतऋतु मे भी होंगे। उसी प्रकार वर्तमान जन्म में जो प्राणी शांत, सुखी और धार्मिक है, वह भूत काल में भी वैसा ही था और भविष्य में भी वैसा ही होगा और जो प्राणी वर्तमान जन्म मे मूर्ख, दुखी और अधार्मिक है, वह भूत जन्म में भी वैसा ही था और भविष्य में भी वैसा ही होगा इत्यादि अनुमान होता है। इस प्रकार वर्तमान जन्म से भी मनुष्य के भूत और भविष्य जन्म की परीक्षा की जा सकती है ॥ ४७ ॥ किंतु यमराज अपनी-नगरी में बैठे-ही-बैठे मन के द्वारा जीवों के पूर्व जन्म की स्थिति जान जाते हैं और भविष्य जन्म की स्थिति का भी भली भांति विचार कर सकते हैं, क्योंकि वे अजन्मा भगवान् हैं ॥ ४८ ॥ अविद्या की उपाधि से युक्त जीव तो केवल वर्तमान शरीर को ही जानता है, भूत-भविष्य शरीर को नहीं जान सकता, क्योंकि उसकी अन्य जन्मों की स्मृति हो जाती है ॥ ४९ ॥ पांच कर्मेंद्रिय, पांच ज्ञानेंद्रिय, ज्ञानेंद्रियों से जाने जानेवाले पांच विषय और मन,

---

४५—येन यावान् यथा धर्मोऽधर्मो वेह समीहितः। स एव तत्फलं भुंक्ते तथा तावदमुत्र वै ॥

४६—यथेह देवप्रवरास्त्रैविध्यमुपलभ्यते। भूतेषु गुणवैचित्र्यात्तथाऽन्यत्रानुमीयते ॥

४७—वर्तमानोऽन्ययोः कालो गुणाभिज्ञापको यथा। एवं जन्मान्ययोरेतद् धर्माधर्म निदर्शनम् ॥

४८—मनसैव पुरे देवः पूर्वरूप विपश्यति। अनुमीमांसते पूर्वं मनसा भगवानजः ॥

४९—यथाऽज्ञस्तमसायुक्त उपास्ते व्यक्तमेव हि। न वेद पूर्वमपरं नष्टजन्मस्मृतिस्तथा ॥

५०—पंचभिः कुरुते स्वार्थान् पंचवेदाथ पंचभिः। एकस्तु षोडशेन त्रीन् स्वयं सप्तदशोऽश्नुते ॥

इन सोलह उपाधियों में स्थित स्वयं सत्रहवां एक ही जीव ज्ञानेंद्रिय और मन के विषयों को प्राप्त करता है ॥ ५० ॥ यह सोलह कलावाला और तीन गुणों से निर्मित लिंग शरीर ही जीव के संसार का कारण होता है, जिससे हर्ष, शोक, भय और पीड़ाएँ हुआ करती हैं ॥ ५१ ॥ जिससे जिसने छः इन्द्रियों को नहीं जीता ऐसे अज्ञानी जीव से, उसकी इच्छा के बिना ही लिंग शरीर कर्म करवाता है और वह जीव रेशम के कीड़े के समान अपने को कर्म-जाल में बाँध कर उससे निकलने का मार्ग नहीं देख पाता ॥ ५२ ॥ कोई प्राणी कर्म किए बिना क्षण भर भी नहीं रह सकता। पूर्व कर्मों के संस्कार से उत्पन्न हुए रागादि उसको बलपूर्वक वश में करके उससे कार्य कराते हैं ॥ ५३ ॥ प्रारब्ध को निमित्त पाकर प्राणी उसके अनुकूल स्थूल अथवा सूक्ष्म शरीर प्राप्त करता है यद्यपि सब वीर्य और रुधिर समान ही है फिर भी कर्म की प्रबल वासना के कारण प्राणियों को माता-पिता के समान शरीर प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥ प्राणी की यह अवस्था देहाभिमान के कारण होती है और भगवान् का भजन करने से वह देहाभिमान शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ ५५ ॥ पहले यह अजामिल शास्त्रों का ज्ञाता, अच्छे स्वभाववाला और सदाचार तथा सद्गुणों के भंडार के समान था। यह समस्त प्राणियों पर स्नेह रखने वाला, सज्जन, कम बोलने वाला और ईर्ष्या-रहित था। मंत्रों को जानने वाला, पवित्र, कोमल स्वभाव वाला, जितेंद्रिय, नियमों का पालन करने वाला और अहंकार रहित था। यह गुरु अग्नि, अतिथि और वृद्धों की सेवा करता था ॥ ५६ ५७ ॥ एक दिन यह ब्राह्मण पिता की आज्ञा से वन में गया। वहाँ से फल-फूल, समिध और कुश लेकर लौटते हुए इसने एक कामी शूद्र को किसी दासी के साथ देखा। मदिरा पीने के कारण नशे से उस दासी की आंखे घूम रही थीं ॥ ५८ ५९ ॥

५१—तदेतत् षोडशकलं लिंगं शक्तित्रयं महत्। धत्तेऽनुसंसृतिं पुंसि हर्षशोकभयार्तिदाम् ॥

५२—देह्यज्ञो जितषड्वर्गो नेच्छन्कर्माणि कार्यते। कोशकार इवात्मानं कर्मणाच्छाद्य मुह्यति ॥

५३—नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवशः कर्म गुणैः स्वाभाविकैर्बलात् ॥

५४—लब्ध्वा निमित्तमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं भवत्युत। यथायोनि यथाबीजं स्वभावेन बलीयसा ॥

५५—एष प्रकृतिसंगेन पुरुषस्य विपर्ययः। आसीत्स एव नचिरादीशसंगाद्विलीयते ॥

५६—अयं हि श्रुतसंपन्नः शीलवृत्तगुणालयः। धृतव्रतो मृदुर्दान्तः सत्यवान्मंत्रविच्छुचिः ॥

५७—गुर्वग्न्यतिथिवृद्धानां शुश्रूषुरनहंकृतः। सर्वभूतसुहृत्साधुर्मितवागनसूयकः ॥

५८—एकदाऽसौ वनं यातः पितृसंदेशकृद् द्विजः। आदाय तत आवृत्तः फलपुष्पसमित्कुशान् ॥

५९—ददर्श कामिनं कंचिच्छूद्रं सहभुजिष्यया। पीत्वा च मधुमैरेयं मदाघूर्णितनेत्रया ॥

मत्त होने के कारण उस दासी की नीवी (अधोवस्त्र) खुली जा रही थी। अपने आचार से भ्रष्ट और निर्लज्ज वह कामी उसके साथ क्रीड़ा करता जाता और हँसता था। चन्दन आदि से लिप्त अपने बाहु से उसने उस शूद्रा का आलिंगन किया था। उन्हें देखकर यह अजामिल मोह के कारण शीघ्र ही कामदेव के वश हो गया ॥ ६०-६१ ॥ अपने धैर्य तथा ज्ञान के द्वारा वह कामदेव से झकझोरे गए अपने मन का समाधान करने लगा, किन्तु उसे रोक नहीं सका ॥ ६२ ॥ उस शूद्र और दासी को देखने से उत्पन्न कामदेवरूपी ग्राह ने उसका ग्रास कर लिया। उसकी चेतना जाती रही। मन से उन्हींका ध्यान करते हुए उसने अपने धर्म का त्याग कर दिया ॥ ६३ ॥ पिता की जो सपत्ति थी, उसके द्वारा वह उन्हींको सन्तुष्ट करने लगा। मनोरम और अच्छी-अच्छी वस्तुएँ देकर वह उस दासी को अनेक प्रकार से प्रसन्न करने लगा ॥ ६४ ॥ उस कुलटा के कटाक्षों से जिसकी बुद्धि घायल हो गई थी, उस पापी अजामिल ने ब्राह्मण-जाति की, छोटे वयस की और ऊँचे कुल की अपनी विवाहिता पत्नी का शीघ्र ही त्याग कर दिया ॥ ६५ ॥ इस मंदबुद्धि ने जहाँ-तहाँ से न्याय अथवा अन्याय से धन ले आकर इस दासी के परिवार का ही पालन किया है ॥ ६६ ॥ इस अजामिल ने स्वेच्छाचार किया है यह आर्य लोगों के द्वारा निंदित है, इसका जीवन पापमय रहा है, इसने अपवित्र तथा मलिन पदार्थों का भोजन किया है, शास्त्र-मार्ग का उलंघन करके इसने बहुत समय व्यतीत किया है और अपने पापों का प्रायश्चित भी नहीं किया, अतः हम लोग इसे यमराज के पास ले जाते हैं, जहां दंड पाने से प्राणियों के पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ६७ ६८ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवें स्कंध का पहला अध्याय समाप्त

६०—मत्तया विश्लथन्नीव्या व्यपेतं निरपत्रपम् । क्रीडन्तमनुगायंतं हसंतमनयां ऽतिके ॥

६१—दृष्ट्वा तां कामलिप्तेन बाहुना परिरंभितां । जगाम हृच्छयवशं सहसैव विमोहितः ॥

६२—स्तंभयन्नात्मनात्मानं यावत्सत्त्वं यथाश्रुतं । न शशाक समाधातुं मनो मदनवेपितं ॥

६३—तन्निमित्तस्मरव्याज ग्रहग्रस्तो विचेतनः । तामेव मनसा ध्यायन् स्वधर्माद्विरराम ह ॥

६४—तामेव तोषयामास पित्र्येणार्थेन यावता । ग्राम्यैर्मनोरमैः कामैः प्रसीदेत यथा तथा ॥

६५—विप्रां स्वभार्यामप्रौढां कुले महति लंभितां । विससर्जाचिरात्पापः स्वैरिण्यापांगविद्धधीः ॥

६६—यतस्ततश्चोपनिन्ये न्यायतोऽन्यायतो धनं । बभारास्याः कुटुम्बिन्याः कुटुंबं मंदधीरयं ॥

६७—यदसौ शास्त्रमुल्लंघ्य स्वैरचार्यतिगर्हितः । अवर्तत चिरंकालमघायुरशुचिर्मलात् ॥

६८—ततएनं दंडपाणेः सकाशं कृतकिल्बिषम् । नेष्यामोऽकृतनिर्वेशं यत्र दण्डेन शुध्यति ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेअजामिलोपाख्यानेप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

—※—

दूसरा अध्याय

अजामिल का पश्चात्ताप और उसकी मुक्ति

श्रीशुकदेव बोले—राजन् ! यम के दूतों की ये बातें सुन कर विष्णु के नीति निपुण दूतों ने इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

विष्णुदूत बोले—अहा, खेद है कि धार्मिकों की सभा को अधर्म स्पर्श कर रहा है, जहाँ निष्पाप अतएव अदंडनीय लोगों को भी व्यर्थ दंड दिया जाता है ॥ २ ॥ न्याय करने वाले प्रजा के माता-पिता के समान होते हैं, अतः उन्हें सज्जन और समदर्शी होना चाहिए, क्योंकि वे यदि ऐसे न हुए तो प्रजा किसकी शरण जायगी ? ॥ ३ ॥ न्याय करने वाले ही यदि अधर्म करने लगें तो दूसरे भी वैसा ही करते हैं, क्योंकि बड़े लोग जो करते हैं, दूसरे उसका अनुकरण करते हैं और वे जिसको प्रमाण मानते हैं, दूसरे भी उसीको प्रमाण मानते हैं ॥ ४ ॥ लोग जिस की गोद में सिर रखकर निश्चिंत होकर सोते हैं, वह भी यदि धर्म और अधर्म को नहीं जानता तो वह पशु के समान है ॥ ५ ॥ लोगों का विश्वसनीय न्याय करने वाला यदि दयालु होतो उन लोगों का द्रोह वह कैसे कर सकता है, जिन्होंने विश्वास तथा अज्ञान से अपने शरीर को उन्हें सौंप दिया है ? ॥ ६ ॥ इस अजामिल ने करोड़ों जन्मों के पापों का प्रायश्चित्त कर लिया है, क्योंकि इसने

श्रीशुक उवाच—

१—एवं ते भगवद्दूता यमदूताभिभाषितं । उपधार्याथ तान् राजन् प्रत्याहुर्नयकोविदाः ॥

विष्णुदूता ऊचुः—

२—अहो कष्टं धर्मदृशामधर्मः स्पृशते सभां । यत्रादण्ड्येष्वपापेषु दण्डो यैर्ध्रियते वृथा ॥

३—प्रजानां पितरो ये च शास्तारः साधवः समाः । यदि स्यात्तेषु वैषम्यं कं यान्ति शरणं प्रजाः ॥

४—यद्यदाचरति श्रेयानितरस्तत्तदीहते । स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

५—यस्याङ्के शिर आधाय लोकः स्वपिति निर्वृतः । स्वयं धर्ममधर्मं वा नहि वेद यथा पशुः ॥

६—स कथं न्यर्पितात्मानं कृतमैत्रमचेतनं । विस्रम्भणीयो भूतानां सघृणो द्रोग्धुमर्हति ॥

विवश होकर अत्यत मंगलमय भगवान् का नाम लिया है ॥ ७ ॥ यद्यपि इसने 'नारायण' इस चार अक्षर के द्वारा आभास मात्र से भगवान् का ही नाम लिया है, किंतु इतने से ही इसके समस्त पाप निवृत्त हो चुके हैं ॥ ८ ॥ चोर, मदिरा पीने वाला, मित्र का द्रोह करने वाला, ब्रह्म हत्या करने वाला, गुरु-पत्नी से भोग करने वाला, स्त्री, राजा, पिता और गाय की हत्या करनेवाल तथा अन्य समस्त पापियों के लिए भगवान का नाम लेना ही उत्तम प्रायश्चित्त है, क्योंकि नाम लेने से भगवान उस पर कृपा करते हैं ॥ ९—१० ॥ भगवान का नाम लेने से पापी की जैसी शुद्धि होती है, वैसी वेदज्ञ मनु आदि के कहे चान्द्रायण आदि व्रतों से भो नहीं होती, क्योंकि भगवान् का नाम पापों के नाश करने के अतिरिक्त भगवान के गुणों को भी प्रकट करने वाला है ॥ ११ ॥ प्रायश्चित्त से पापों की जड़ नहीं जाती, क्योंकि प्रायश्चित्त करने के बाद भी मन कुमार्ग मे जाता है, अतः पापों का सर्वथा नाश करने की इच्छा रखने वालों के लिए भगवान् के गुणों का वर्णन करना ही प्रायश्चित्त है, क्योंकि इससे अंत.करण शुद्ध होता है ॥ १२ ॥ अजामिल ने मरते समय भगवान् के नाम का सपूर्ण रूप से उच्चारण किया था, अत. इसके समस्त पाप नष्ट हो गये है, आपको इसे नहीं ले जाना चाहिये ॥ १३ ॥ पुत्र आदि के नाम से, परिहास से, गीत का आलाप पूर्ण करने के लिए अथवा उपेक्षा से भी यदि भगवान का नाम लिया जाय तो वह समस्त पापों को नष्ट करता है, ऐसा सिद्धात है ॥ १४ ॥ गिरने से, फिसलने से, अग टूटने से, सर्प आदि के काटने से, जलने से, अथवा मार खाने से विवश होकर भी यदि मनुष्य भगवान का नाम ले तो उसे यमलोक का कष्ट नहीं भोगना पड़ता ॥ १५ ॥ बड़े-बड़े ऋषियों ने

७—अयहि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्य हसामपि । यद्व्याजहार विवशो नामस्वस्त्ययनं हरेः ॥

८—एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृत स्यादघनिष्कृत । यदानारायणायेति जगादचतुरक्षर ॥

९—स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग्ब्रह्महा गुरुतल्पगः । स्त्रीराजपितृगोहंता ये च पातकिनोऽपरे ॥

१०—सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृत । नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मति. ॥

११—न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभिस्तथा विशुद्ध्यत्यघवान् व्रतादिभिः ॥
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतैस्तदुत्तमश्लोक गुणोपलम्भक ॥

१२—नैकांतिक तद्धि कृतेऽपि निष्कृत मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे ।
तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरेर्गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः ॥

१३—अथैन माऽपनयत कृताशेषाघनिष्कृतं । यदसौ भगवन्नाम म्रियमाणः समग्रहीत् ॥

१४—साकेत्यं पारिहास्य वा स्तोभं हेलनमेव वा । वैकुंठनाम ग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥

१५—पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः । हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातना ॥

विचार करके बड़े पापों के लिए बड़े और छोटे पापों के लिए छोटे प्रायश्चित्तों की व्यवस्था की है ॥१६॥ तप, दान और जप आदि प्रायश्चित्तों के द्वारा उन्हीं पापों का नाश होता है, जिनके उद्देश्य से वे किए जाते हैं, किंतु उनके सूक्ष्म संस्कार नष्ट नहीं होते। भगवान् के कीर्त्तन से ये संस्कार भी नष्ट हो जाते हैं ॥ १७ ॥ ज्ञान अथवा अज्ञान से भी लिया हुआ भगवान् का नाम प्राणियों के पापों को भस्म कर देता है, जैसे अग्नि काष्ठ समूह को भस्म कर देती है ॥ १८ ॥ जिस प्रकार इच्छा और अवस्था के बिना ही खाई हुई तीव्र औषधि अपना गुण दिखाए बिना नहीं रहती, उसी प्रकार यदि बिना किसीके उपदेश के और बिना श्रद्धा के भी भगवान् के नामरूपी मंत्र का उच्चारण हो जाय तो वह अपना काम किये बिना नहीं रहता ॥ १९ ॥

श्रीशुकदेव बोले—राजन्! इस प्रकार विष्णु के दूतों ने भगवत् सबंधी धर्म का निरूपण करके उस अजामिल को यमदूतों के पाश से छुडाया और मृत्यु से भी ॥ २० ॥ अरिंदम! इस प्रकार विष्णु के दूतों के द्वारा लौटाए गए यमदूतों ने यमराज के पास जाकर सब बातें ज्यों की त्यों कहीं ॥ २१ ॥ पाश से छूटे हुए, निर्भय और प्रकृतिस्थ हुए अजामिल ने विष्णुदूतों के दर्शन से अत्यंत प्रसन्न होकर सिर झुकाकर उन्हें नमस्कार किया ॥ २२ ॥ अनघ! अजामिल कुछ कहना चाहता है। यह जानकर वे विष्णुदूत उसके देखते ही देखते सहसा अंतर्धान हो गये ॥ २३ ॥ यम के दूतों से वेद मे प्रतिपादित सगुण धर्म तथा विष्णुदूतों से भगवान् के द्वारा प्रति

१६—गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघूनि च प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वोक्तानि महर्षिभिः ॥

१७—तैस्तान्यघानि पूयन्ते तपोदानजपादिभिः। नाधर्मजं तद्धृदयं तदपीशाङ्घ्रिसेवया ॥

१८—अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनामयत्। संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथाऽनलः ॥

१९—यथाऽगदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया। अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः ॥

श्रीशुक उवाच—

२०—त एवं सुविनिर्णीय धर्मं भागवतं नृप। तं याम्यपाशान्निर्मुच्य विप्रं मृत्योरमूमुचन् ॥

२१—इति प्रत्युदिता याम्या दूता यात्वा यमान्तिके। यमराज्ञे यथा सर्वमाचचक्षुररिंदम ॥

२२—द्विजः पाशाद्विनिर्मुक्तो गतभीः प्रकृतिं गतः। ववन्दे शिरसा विष्णोः किंकरान् दर्शनोत्सवः ॥

२३—तं विवक्षुमभिप्रेत्य महापुरुषकिंकराः। सहसा पश्यतस्तस्य तत्रान्तर्दधिरेऽनघ ॥

पादित शुद्ध निर्गुण धर्म सुनने तथा भगवान की महिमा सुनने से शीघ्र ही अजामिल के हृदय में भक्ति उत्पन्न हुई और वह अपने पापों का स्मरण करके अत्यंत पश्चाताप करने लगा ॥२४-२५॥ हाय, मैंने अपने मन को नहीं जीता। मुझे बड़ा कष्ट हुआ। शूद्रा में पुत्र उत्पन्न करके मैंने अपना ब्राह्मणत्व नष्ट कर दिया ॥ २६ ॥ सत्पुरुषों के द्वारा निंदित, पापी और कुल में काजल के समान मुझे धिक्कार है, जिसने छोटी अवस्थावाली अपनी पतिव्रता स्त्री का त्याग करके मदिरा पीने वाली इस दुराचारिणी से गमन किया है ॥ २७ ॥ मेरे तपस्वी माता-पिता वृद्ध हैं; अनाथ हैं, उनका दूसरा कोई सहायक नहीं है, मैं कृतघ्न हूँ, मैंने नीच के समान उनका भी त्याग कर दिया है ॥ २८ ॥ अतः मैं अत्यन्त दारुण नरक में अवश्य पड़ूँगा, जहाँ धर्म का नाश करने वाले कामी लोग यम यातना पाते हैं ॥ २९ ॥ यह क्या स्वप्न था, अथवा मैंने जाग्रत अवस्था में ही यह अद्भुत बात देखी ? पाश में बाँधकर जो लोग मुझे खींचते थे, वे कहाँ गए ? पाश से बाँधकर नरक में लेजाने से जिन्होंने मुझे छुड़ाया, वे चारों सुन्दर सिद्ध कहाँ गए ? ॥ ३०-३१ ॥ यद्यपि इस जन्म में मैंने पाप ही किए है, किन्तु पूर्व जन्म का मेरा कुछ पुण्य रहा होगा, नहीं तो इन देवताओं का दर्शन मुझे कैसे होता, जिनके दर्शन से अन्तःकरण पवित्र होता है ? ॥ ३२ ॥ पूर्व पुण्य न होता तो मुझ अपवित्र और दासी के पति के मुख से, मृत्यु के समय, भगवान् के नाम का उच्चारण कैसे होता ? ॥ ३३ ॥ कहा जुआरी, पापी ब्रह्मघाती और निर्लज्ज मैं, और कहा मंगलमय भगवान् का नाम ! ॥ ३४ ॥ अब मैं चित्त, इन्द्रिय और प्राण-

---

२४—अजामिलोऽप्यथाकर्ण्य दूतानां यमकृष्णयोः । धर्मं भागवतं शुद्धं त्रैविद्यं च गुणाश्रयम् ॥

२५—भक्तिमान् भगवत्याशु माहात्म्यश्रवणाद्धरेः । अनुतापो महानासीत्स्मरतोऽशुभमात्मनः ॥

२६—अहो मे परमं कष्टमभूदविजितात्मनः । येन विप्लावितं ब्रह्म वृषल्यां जायतात्मना ॥

२७—धिङ्मां विगर्हितं सद्भिर्दुष्कृतं कुलकज्जलम् । हित्वा बालां सतीं योऽहं सुरापामसतीमगाम् ॥

२८—वृद्धावनाथौ पितरौ नान्यबन्धू तपस्विनौ । अहो मयाऽधुना त्यक्तावकृतज्ञेन नीचवत् ॥

२९—सोऽहं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे । धर्मघ्नाः कामिनो यत्र विन्दन्ति यमयातनाः ॥

३०—किमिदं स्वप्न आहोस्वित्साक्षाद्दृष्टमिहाद्भुतम् । क्व याता अद्य ते ये मां व्यकर्षन्पाशपाणयः ॥

३१—अथ ते क्व गताः सिद्धाश्चत्वारश्चारुदर्शनाः । व्यमोचयन्नीयमानं बद्ध्वा पाशैरधो भुवः ॥

३२—अथापि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तमदर्शने । भवितव्यं मङ्गलेन येनात्मा मे प्रसीदति ॥

३३—अन्यथा म्रियमाणस्य नाशुचेर्वृषलीपतेः । वैकुण्ठनामग्रहणं जिह्वा वक्तुमिहार्हति ॥

३४—क्व चाहं कितवः पापो ब्रह्मघ्नो निरपत्रपः । क्व च नारायणेत्येतद्भगवन्नाम मङ्गलम् ॥

वायु को जीतकर ऐसा यत्न करूगा, जिससे मैं पुनः अपने को मोह के अन्धकार में न डूबने दूँ ॥ ३५ ॥ अविद्या, तृष्णा तथा कर्म से उत्पन्न इस बन्धन को मैं तोड डालूंगा । मैं समस्त प्राणियों से स्नेह करूँगा, शांत, दयालु, मित्रतापूर्ण और धैर्यवान् बनूंगा तथा स्त्रीरूपिणी भगवान् की माया से ग्रस्त अपने को मुक्त करूँगा, जो माया अबतक मुझे अधम बन्दर के समान नचाती रही है ॥ ३६-३७ ॥ देह आदि मे जा मैं और मेरा यह खोटी बुद्धि लगी हुई है, उसे मैं दूर कर दूगा । भगवान् के कीर्तन से मेरा मन शुद्ध हो गया है। उसे मैं भगवान् में लगाऊँगा ॥ ३८ ॥

श्रीशुकदेव बोले—साधु पुरुषों के क्षण मात्र सग से अजामिल को वैराग्य उत्पन्न हुआ । वह समस्त बधनों से मुक्त हो गया और हरद्वार चला गया ॥ ३९ ॥ हरद्वार देव लोक के समान है । अजामिल योग का आश्रय लेकर वहा बैठा । उसने विषयों से अपनी इद्रियों को हटा लिया और मन को आत्मा मे लगाया ॥ ४० ॥ अनन्तर अपनी आत्मा को देह और इद्रियों से अलग करके अपने हृदय को एकाग्र करके अनुभवरूप और परब्रह्मरूप भगवान् के स्वरूप में जोड़ दिया ॥ ४१ ॥ भगवान् के स्वरूप मे जब उसकी बुद्धि निश्चल हो गई तो भगवान् के दूत उसके पास आए । उन लोगों को सम्मुख आया हुआ देख कर अजामिल ने सिर झुकाकर उनका अभिवादन किया ॥ ४२ ॥ उनका दर्शन करने के बाद उसने उस तीर्थ मे गगा में, अपना शरीर त्याग करके शीघ्र ही भगवान् के पार्षदों के समान रूप पाया ॥ ४३ ॥ अनन्तर वह भगवान् के दूतों के साथ सुवर्ण के सिंहासन पर बैठकर आकाश-मार्ग से वैकुंठ में गया, जहां

३५—सोऽहं तथा यतिष्यामि यतचित्तेंद्रियानिलः । यथानुभूय आत्मनमधे तमसि मज्जये ॥
३६—विमुच्यतमिम बधमविद्याकामकर्मजं । सर्वभूतसुहृच्छान्तो मैत्रः करुणा आत्मवान् ॥
३७—मोचये ग्रस्तमात्मानं योषिन्मय्यात्ममायया । विक्रीडितो ययैवाह क्रीडामृग इवाधमः ॥
३८—ममाहमिति देहादौ हित्वाऽमिथ्याऽर्थधीर्मतिं । धास्ये मनो भगवति शुद्ध तत्कीर्तनादिभिः ॥
३९—इति जातसुनिर्वेदः क्षणसगेन साधुषु । गगाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबधनः ॥

श्रीशुक उवाच—

४०—स तस्मिन् देवसदन आसीनो योगमाश्रितः । प्रत्याहृतेंद्रियग्रामो युयोज मन आत्मनि ॥
४१—ततो गुणेभ्य आत्मान वियुज्यात्मसमाधिना । युयोज भगवद्धाम्नि ब्रह्मण्यनुभवात्मनि ॥
४२—यर्ह्युपारतधीस्तस्मिन्नद्राक्षीत्पुरुषान्पुरः । उपलभ्योपलब्धान्प्राग्ववंदे शिरसा द्विजः ॥
४३—हित्वा कलेवरं तीर्थे गंगायां दर्शनादनु । सद्यः स्वरूप जगृहे भगवत्पार्श्ववर्तिनां ॥
४४—साकं विहाय सा विप्रो महापुरुषकिंकरैः । हैम विमानमारुह्य ययौ यत्र श्रियः पतिः ॥

लक्ष्मी के पति नारायण वास करते हैं ॥ ४४ ॥ इस प्रकार जिसने समस्त धर्मों को नष्ट कर कर दिया था, जो दासी का पति था, पतित था, दुष्ट कर्म करनेवाला था और नियमों को न मानने वाला था और जो नरक मे ले जाया जा रहा था, वह भगवान् का नाम लेने के कारण शीघ्र ही मुक्त हो गया ॥ ४५ ॥ भगवान् के कीर्तन के अतिरिक्त मोक्ष की इच्छा रखने वालों के कर्मों को समूल नष्ट करने वाला और कुछ नहीं है, क्योंकि भगवान का कीर्तन करने से मन पुनः कर्म में ही लगता, किंतु अन्य प्रायश्चित्तों के करने से वह रजोगुण तथा तमोगुण से मलिन ही रहता है ॥ ४६ ॥ परम गोपनीय और पापों का नाश करने वाले इस इतिहास को जो श्रद्धापूर्वक सुनता है या भक्ति से इसका कीर्त्तन करता है, वह नरक मे नहीं जाता। यमदूत उसकी ओर देख नहीं सकते। वह पापी होतो भी विष्णुलोक में पूजित होता है ॥ ४८ ॥ मृत्यु के समय पुत्र को पुकारते हुए नारायण नाम लेने से अजामिल को मुक्ति मिली। वह नाम यदि श्रद्धा से लिया जाय तो क्या पूछना है ? ॥ ४९ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवे स्कध का दूसरा अध्याय समाप्त

—— ❀ ——

४५—एवं स विप्लावितसर्वधर्मा दास्याः पतिः पतितो गर्ह्यकर्मणा ।
निपात्यमानो निरये हतव्रतः सद्यो विमुक्तो भगवन्नाम गृह्णन् ॥

४६—नातः परं कर्मनिबंधकृंतनं मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात् ।
न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ॥

४७—य एतं परमं गुह्यमितिहासमघापहं । शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो यश्च भक्त्यानुकीर्तयेत् ॥

४८—न वै स नरकं याति नेक्षितो यमकिंकरैः । यद्यप्यमंगलो मर्त्यो विष्णुलोके महीयते ॥

४९—म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रोपचारितं । अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेअजामिलोपाख्यानेद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

यमराज का अपने दूतों को भक्तिमार्ग का सिद्धान्त समझाना

राजा परीक्षित बोले—समस्त प्राणी यमराज के अधीन हैं। भगवान् के दूतों ने उनकी आज्ञा टालकर उनके दूतों को मार भगाया था। उन अपने दूतों के मुह से सब बातें सुनकर यमराज ने पुनः उनसे क्या कहा ? ॥ १ ॥ मुनि ! मैंने यमराज की आज्ञा को टलते कभी नहीं सुना, अतः इस बारे में लोगों का सदेह आप ही दूर कर सकते हैं, ऐसा मैं समझता हूँ ॥ २ ॥

श्रीशुकदेव बोले—राजन, भगवान् के दूतों ने जिनके उद्योग में बाधा दी थी, ऐसे यमदूतों ने अपने और यमपुरी के स्वामी यमराज से इस प्रकार कहा ॥ ३ ॥

यमदूत बोले—प्रभो ! सात्विक, राजस और तामस कर्म करने वाले प्राणियों को उनके कर्मों का फल देने वाले शासक कितने हैं ? ॥ ४ ॥ यदि ससार मे दण्ड देने वाले शासक अनेक हैं तो किसीको भी सुख या दुःख नहीं होना चाहिये, क्योंकि उनके विचार परस्पर भिन्न होने के कारण एक शासक जिसे दण्डनीय समझेगा, दूसरा उसे ही अदण्डनीय समझ सकता है ॥ ५ ॥ कर्म करने वाले बहुत से लोगों के शासक भी यदि अनेक हों तो करद राजाओं के समान उनका शासन केवल कहने ही भर का होगा ॥ ६ ॥ हम लोग तो राजाओं के सहित

राजोवाच—

१—निशम्य देवः स्वभटोपवर्णितं प्रत्याह किं तान् प्रतिधर्मराजः ।
एवं हताज्ञो विहतान्मुरारेर्नैदेशिकैर्यस्य वशे जनोऽयं ॥

२—यमस्य देवस्य न दण्डभङ्गः कुतश्चनर्षे श्रुतपूर्व आसीत् ।
एतन्मुने वृश्चति लोकसंशयं नहि त्वदन्यो इति मे विनिश्चितम् ॥

श्रीशुक उवाच—

३—भगवत्पुरुषैराजन्याम्याः प्रतिहतोद्यमाः । पतिं विज्ञापयामासुर्यम संयमिनीपतिम् ॥

यमदूता ऊचुः—

४—कति सन्तीह शास्तारो जीवलोकस्य वै प्रभो । त्रैविध्यं कुर्वतः कर्म फलाभिव्यक्तिहेतवः ॥
५—यदि स्युर्बहवो लोके शास्तारो दण्डधारिणः । कस्य स्यातां नवा कस्य मृत्युश्चामृतमेव वा ॥
६—किन्तु शास्तृ बहुत्वे स्याद् बहूनामिह कर्मिणाम् । शास्तृत्वमुपचारो हि यथा मंडलवर्तिनाम् ॥

समस्त प्राणियों के स्वामी, आज्ञा देने वाले, दंड देने वाले और मनुष्यों के पाप-पुण्य का विचार करने वाले एक आप ही को जानते है ॥ ७ ॥ उन आपके द्वारा दिया हुआ दण्ड भी अब संसार मे पालित नहीं होता। चार अद्भुत सिद्धों ने आपकी आज्ञा टाल दी है ॥ ८ ॥ हम लोग आपकी आज्ञा के अनुसार अजामिल को नरक मे ले जा रहे थे, उन सिद्धों ने बल पूर्वक हमारा पाश काटडाला और उसे छुड़ा दिया ॥ ९ ॥ यदि आप हमारा हित समझें तो हम जानना चाहते हैं कि वे कौन थे ? अजामिल के नारायण का नाम लेते ही वे सिद्ध 'मत डरो' ऐसा कहते हुए शीघ्र वहाँ आए थे ॥ १० ॥

श्रीशुकदेव बोले—प्रजा का नियन्त्रण करने वाले यमराज अपने दूतों का यह प्रश्न सुनकर प्रसन्न हुए और भगवान् के चरण कमल का ध्यान करते हुए बोले ॥ ११ ॥

यमराज बोले—स्थावर तथा जंगम इन दोनों ही के स्वामी मुझसे भिन्न है। मैं तो केवल जंगमों का, उनमे भी मनुष्यों का और मनुष्यों मे भी पापियों का ही स्वामी हूं। मैं ईश्वर के अधीन रहकर शासन करता हूँ, जिनके अंशरूप ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश के द्वारा इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय आदि होते है। नाथे हुए बैल के समान समस्त लोक जिनके वश में है, वे सब के स्वामी परमेश्वर तो समस्त जग मे, कपडे में ताने-बाने के समान ओत प्रोत हैं ॥ १२ ॥ बैलों के समान उन्होंने ब्राह्मण आदि नामों के द्वारा अपने वचन रूपी रस्सी में प्राणियों को बांध रखा है। वे समस्त प्राणी नाम और कर्म के बंधन मे बँधकर भय से

७—अतस्त्वमेको भूताना सेश्वराणामधीश्वरः। शास्ता दण्डधरो नॄणां शुभाशुभविवेचनः ॥

८—तस्य ते विहितो दण्डो न लोके वर्ततेऽधुना। चतुर्भिरद्भुतैः सिद्धैराज्ञा ते विप्रलम्भिता ॥

९—नीयमानं तवादेशादस्माभिर्यातना गृहान्। व्यमोचयन्पातकिन छित्त्वा पाशान् प्रसह्य ते ॥

१०—तांस्ते वेदितुमिच्छामो यदि नोमन्यसे क्षमम्। नारायणेत्यभिहिते माभैरित्याययुर्द्रुतं ॥

श्रीशुक उवाच—

११—इति देवः स आपृष्टः प्रजासंयमनो यमः। प्रीतः स्वदूतान् प्रत्याह स्मरन्पादाम्बुजं हरेः ॥

यम उवाच—

१२—परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वं।

यदंशतोऽस्य स्थितिजन्मनाशा नस्योतवद्यस्य वशे च लोकः ॥

उनके अधीन रहकर कर्म करते हैं ।। १३ ।। मैं इन्द्र, निऋ ति, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि, शिव, पवन, सूर्य, ब्रह्मा, अदिति के पुत्र, विश्वेदेव, वसु, साध्य, मरुद् गण, सिद्ध और अन्य भृगु आदि प्रजापति तथा देवताओं के स्वामी, जिनमें रजोगुण तथा तमोगुण का स्पर्श भी नहीं है अथवा सत्वगुण ही जिनमें प्रधान है, माया का स्पर्श होने के कारण वे भी भगवान् की इच्छा को नहीं जान सकते, दूसरों की तो बात ही क्या है ? ।। १४-१५ ।। रूप जिस प्रकार अपने को देखने वाली आंखों को नहीं जान सकता, उसी प्रकार प्राणी भी भगवान् को इंद्रिय, मन, प्राण, हृदय अथवा वाणी से नहीं जान सकता जो अन्तर्यामी तथा सब जीवों के द्रष्टा हैं । इस जगत के परमेश्वर मुझ से भिन्न है ।। १६ ।। स्वतन्त्र, सबसे उत्तम, महात्मा और माया के स्वामी इन भगवान् के मनोहर दूत संसार में घूमते हैं । उनका रूप, गुण और स्वभाव प्रायः भगवान् के समान ही होता है ।। १७ ।। विष्णु के दूत देवताओं के द्वारा भी पूजित होते हैं । उनकादर्शन दुर्लभ है । वे अत्यन्त अद्भुत है,वे अपने भक्त मर्त्यलोक के निवासियों की मुझसे,शत्रुओं से तथा सब से रक्षा करते है ।। १८ ।। साक्षात भगवान के द्वारा प्रतिष्ठित धर्म को ऋषि, देवता प्रमुख सिद्ध, असुर और मनुष्य भी नहीं जानते, फिर विद्याधर और चारण आदि की तो बात ही क्या है ? ।। १९ ।। ब्रह्मा, नारद, शिव, सनत्कुमार, कपिल, मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, बलि, शुकदेव और मैं,ये बारह लोग ही गुप्त, शुद्ध और दुर्बोध भगवद्धर्म को जानते हैं जिसके जानने से मुक्ति

१३—यो नामभिर्वाचि जनान्निजाया बध्नाति तंत्यामिव दामिमर्गाः ।
यस्मै बलिं त इमे नामकर्म निबन्धबद्धा श्चकिता वहति ।।

१४—अहं महेन्द्रो निऋ तिः प्रचेताः सोमोऽग्निरीशः पवनोर्को विरिञ्चः ।
आदित्यविश्वे वसवोऽथ साध्या मरुद्गणा रुद्रगणाः ससिद्धाः ।।

१५—अन्येच ये विश्वसृजोऽमरेशा भृग्वादयोऽस्पृष्टरजस्तमस्काः ।
यस्येहितं न विदुः स्पृष्टमायाः सत्त्वप्रधाना अपि किं ततोन्ये ।।

१६—यं वै न गोभिर्मनसाऽसुभिर्वाहृदा गिरा वाऽसुभृतो विचक्षते ।
आत्मानमन्तर्हृदि सन्तमात्मना चक्षुर्यथैवाकृतयस्ततः परं ।।

१७—तस्यात्मतन्त्रस्य हरेरधीशितुः परस्य मायाऽधिपतेर्महात्मन. ।
प्रायेण दूता इह वैमनोहराश्चरति तद्रूपगुणस्वभावाः ।।

१८—भूतानि विष्णोः सुरपूजितानि दुर्दर्शलिंगानि महाद्भुतानि ।।
रक्षति तद्भक्तिमतः परेभ्यो मत्तश्च मर्त्यानथ सर्वतश्च ।।

१९—धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतं न वै विदुर्ऋषयो नापि देवाः ।
न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः कुतश्च विद्याधरचारणादयः ।।

प्राप्त होती है ॥ २०—२१ ॥ इस लोक में मनुष्यों के लिए यही सबसे बड़ा धर्म कहा गया है। भगवान् का नाम लेना ही श्रेष्ठ भक्तियोग है ॥ २२ ॥ वत्स ! भगवान के नाम लेने की महिमा देखो, जिससे अजामिल भी मृत्यु के पाश से छूट गया। भगवान् के गुण, कर्म और नाम का श्रद्धा तथा भक्ति के सहित बार-बार कीर्त्तन किया जाय तभी मनुष्यों के पाप नष्ट होते हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिए, क्योंकि अजामिल अत्यत पापी था, फिर भी मृत्यु के समय नारायण का नाम लेकर अपने पुत्र को पुकारने से वह पाप से छूट गया। इतना ही नहीं किंतु उसे मोक्ष भी प्राप्त हुआ ॥ २३—२४ ॥ जो वैद्य मृत-सजीवनी औषधि को नहीं जानते, वे रोग को मिटाने के लिए त्रिकटु और नीम आदि का व्यवहार करते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मा और शिव आदि बारह व्यक्तियों के अतिरिक्त अन्य ऋषि नाम के इस अत्यत गोपनीय प्रभाव को न जानने के कारण बड़े-बड़े प्रायश्चित्तों का निर्देश करते हैं, अथवा समस्त प्राणी माया से मोहित हैं तथा फूल के समान ऊपर से ही मधुर लगने वाले स्तुति-वाक्यों से युक्त वेद में आग्रही होने के कारण जड़ हो गए हैं तथा यज्ञ के समान बड़े-बड़े कामो मे लगे हुए हैं इसी से वे लोग उन्हे बड़े-बडे प्रायश्चित्त बतलाते हैं कि भगवान् के नाम लेने के समान छोटा प्रायश्चित्त बतलाने पर लोगोंको उसमें श्रद्धा नहीं होगी, अथवा यदि सिंह अपने वश मे हो तो उसे कुत्ते अथवा शृगालों को मारने के लिए नियुक्त नहीं किया जाता, उसी प्रकार अत्यंत तुच्छ पाप के निवारण के लिए मंगलमय भगवान् के नाम का उपयोग करना ठीक नहीं है,यह समझकर लोगों ने बडे बडे प्रायश्चित्त बतलाए हैं, अथवा भगवान का नाम जानने से उससे सब लोगों को मुक्ति मिल जाएगी, यह ठीक नहीं है, इसलिए उन्होंने बड़े-बडे प्राय-श्चित्त बतलाए ॥२५॥ ऐसे विचार से बुद्धिमान् मनुष्य सब तरह भगवान् के भक्तिरूप उपाय ही करते

२०—स्वयंभूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः। प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥

२१—द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः। गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥

२२—एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां धर्मः परः स्मृतः। भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥

२३—नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः। अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥

२४—एतावताऽलमघनिर्हरणाय पुंसां संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम् ॥

विक्रुश्य पुत्रमघवान्यदजामिलोऽपि नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥

२५—प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं देव्या विमोहितमतिर्बत माययाऽलम् ॥

त्रय्यां जडीकृतमतिर्मधुपुष्पितायां वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः ॥

२६—एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनन्ते सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम्।

ते मे न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यमीषां स्यात्पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः ॥

है,ऐसे मनुष्य हमारे द्वारा दण्डनीय नहीं है,क्योंकि उन्हे पाप नहीं होता और कदाचित् पाप हो भी तो भगवान् का कीर्तन ही उसे नष्ट कर देता है ॥ २६ ॥ समदर्शी जो साधु-पुरुष केवल भगवान् की ही शरण मे रहते हैं, उनकी पवित्र कथा का ज्ञान देवता और सिद्ध लोग भी करते हैं। भगवान् की गदा के द्वारा रक्षित ऐसे पुरुषों के पास तुम लोग न जाना, क्योंकि हम उनको दण्ड देने मे समर्थ नहीं हैं और काल भी नहीं है ॥ २७ ॥ जो लोग भगवान् के चरण-कमल के मकरंद-रूपी रस, से जिसका निष्किंचन और रसज्ञ परमहंस लोग निरन्तर सेवन करते हैं, विमुख और नरक के द्वारा रूप घर में तृष्णा लगाए हुए हों, उन दुष्ट मनुष्यों को यहां ले आना ॥ २८ ॥ जिनकी जीभ भगवान् का गुणानुवाद नहीं करती हो, जिनका चित्त भगवान् के चरणारविंदों का स्मरण न करती हो, जिनका माथा भगवान् के सामने एक बार भी न झुकता हो और जिन्होंने भगवान् का व्रत न किया हो, उन दुष्टों को यहां ले आना ॥ २९ ॥ हमारे दूतों ने अजामिल को दुःख देकर जो अन्याय किया है, उसके लिए पुराणपुरुष भगवान् नारायण क्षमा करें। हम लोग अज्ञान हैं। हम हाथ जोड कर खडे रहने वाले भक्त हैं। ये महात्मा भगवान् हमे क्षमा करने ही के योग्य है। महापुरुष भगवान को नमस्कार ॥ ३० ॥

श्रीशुकदेव बोले—राजन्! इसलिए महा मंगलमय भगवान् का नाम ही संसार में बड़े से बडे पापों को भी नष्ट कर देनेवाला प्रायश्चित्त है, ऐसा आप समझें ॥ ३१ ॥ भगवान् के उद्दाम पराक्रमों को बार-बार सुनने तथा कहने से उत्पन्न हुई सुदृढ़ भक्ति के द्वारा अंतःकरण जैसा शुद्ध होता है, वैसा व्रत आदि के द्वारा नहीं होता ॥ ३२ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमलों का रस पीनेवाले मनुष्य एक बार विषयों का त्याग करके पुनः उसमें आसक्त नहीं होते

२७—ते देवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः ।
तान्नोपसीदत हरेर्गदयाऽभिगुप्तान्नैषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे ॥

२८—तानानयध्वमसतो विमुखान्मुकुन्द पादारविंद मकरंदरसादजस्रम् ।
निष्किंचनैः परमहंसकुलैरसङ्गैर्जुष्टाद्गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान् ॥

२९—जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदाऽपि तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥

३०—तत्क्षम्यतां स भगवान्पुरुषः पुराणो नारायणः स्वपुरुषैर्यदसत्कृतं नः ।
स्वानामहो न विदुषां रचिताञ्जलीनां क्षान्तिर्गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने ॥

३१—तस्मात्संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम् । महतामपि कौरव्य विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतम् ॥

३२—शृण्वतां गृणतां वीर्याण्युद्दामानि हरेर्मुहुः । यथा सुजातया भक्त्या शुद्ध्येन्नात्मा व्रतादिभिः ॥

और दूसरे लोग तृष्णा से परास्त हो कर अपने पापों को नष्ट करने के लिए कर्मरूप प्रायश्चित्त ही करते है, जिससे पाप के मूलरूप विषयों मे आसक्ति उत्पन्न होती है ॥ ३३ ॥ राजन् ! इस प्रकार अपने स्वामी के द्वारा कहे गये भगवान की महिमा को सुनकर यमदूत विस्मित नहीं हुए, अर्थात् उन्होंने यमराज की बात को सच ही माना और तब से वे भगवान् के आश्रित मनुष्यों से शंकित होते है और उनकी ओर देखते भी डरते है। महात्मा अगस्त्य मुनि ने मलयाचल पर बैठ कर भगवान की पूजा करते हुए इस गोपनीय इतिहास को कहा था ॥ ३५ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवें स्कन्ध का तीसरा अध्याय समाप्त

३३—कृष्णाङ्घ्रिपद्ममधुलिण्न पुनर्विसृष्ट मायागुणेषु रमते वृजिनावहेषु ।
अन्यस्तु कामहत आत्मरजः प्रमार्ष्टुमीहेत कर्म यत एव रजः पुनः स्यात् ॥

३४—इत्थं स्वभर्तृगदितं भगवन्महित्वं संस्मृत्य विस्मितधियो यमकिङ्करास्ते ।
नैवाच्युताश्रय जनं प्रतिशङ्कमाना द्रष्टुं च बिभ्यति ततः प्रभृतिस्म राजन् ॥

३५—इतिहासमिमं गुह्यं भगवान् कुम्भसम्भवः । कथयामास मलय आसीनो हरिमर्चयन् ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कन्धेतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

प्रचेता के पुत्र का हंसगुह्य स्तोत्र के द्वारा भगवान को प्रसन्न करना

राजा परीक्षित बोले—स्वायम्भुव मन्वंतर में देव, असुर, नर, नाग, मृग और पक्षियों की जिस सृष्टि का वर्णन आपने संक्षेप में किया है, मैं उन्हें विस्तारपूर्वक यथावत् आप से सुनना चाहता हूँ। भगवन् ! उसी प्रकार मैं यह भी जानना चाहता हूँ कि ब्रह्मा ने किस शक्ति के द्वारा किस प्रकार सृष्टि की और उसके अनंतर कैसे सृष्टि हुई॥ १-२ ॥

सूत बोले—राजा परीक्षित का प्रश्न सुनकर महायोगी और मुनियों में श्रेष्ठ शुकदेवजी ने उनका अभिनंदन किया और वे इस प्रकार बोले ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेव बोले—राजा प्राचीनबर्हि के प्रचेता नामके दस पुत्र जब समुद्र के बाहर निकले तो उन्होंने पृथ्वी को वृक्षों से ढकी हुई देखा ॥ ४ ॥ तपस्या के कारण उनका क्रोध बढ़ गया ! वृक्षों पर क्रोधित होकर उन्हें जला देने की इच्छा से उन लोगों ने अपने मुख से वायु और अग्नि की सृष्टि की ॥ ५ ॥ इस वायु और अग्नि के द्वारा वृक्षों को जलता हुआ देखकर वनस्पतियों के स्वामी चंद्रमा ने उन लोगों का क्रोध शांत करने के लिए इस प्रकार कहा—महाभाग ! इन दीन वृक्षों को आपलोगों को न जलाना चाहिए, क्योंकि आप लोग प्रजा की वृद्धि चाहने वाले प्रजापति कहे जाते हैं॥ ६—७ ॥ प्रजापतियों के स्वामी अविनाशी और सर्व व्यापक

राजोवाच

१—देवासुरनृणां सर्गो नागानां मृगपक्षिणाम् । सामासिकस्त्वया प्रोक्तो यस्तु स्वायम्भुवेंतरे ॥

२—तस्यैव व्यासमिच्छामि ज्ञातुं ते भगवन्यथा । अनुसर्गं यया शक्त्या ससर्ज भगवान्परः ॥

सूत उवाच—

३—इति सम्प्रश्नमाकर्ण्य राजर्षेर्बादरायणिः । प्रतिनंद्य महायोगी जगाद मुनिसत्तमः ॥

श्रीशुक उवाच

४—यदा प्रचेतसः पुत्रा दशप्राचीनबर्हिषः । अतः समुद्रादुन्मग्ना ददृशुर्गां द्रुमैर्वृताम् ॥

५—द्रुमेभ्यः क्रुद्ध्यमानास्ते तपो दीपितमन्यवः । मुखतो वायुमग्निं च ससृजुस्तद्दिधक्षया ॥

६—ताभ्यां निर्दह्यमानांस्तानुपलभ्य कुरूद्वह । राजोवाच महान् सोमो मन्युं प्रशमयन्निव ॥

७—माद्रुमेभ्यो महाभागा दीनेभ्यो द्रोग्धुमर्हथ । विवर्धयिषवो यूयं प्रजानां पतयः स्मृताः ॥

भगवान ने प्रजा के लिए अन्न उत्पन्न करने की इच्छा से वनस्पतियों और औषधियों की सृष्टि की है ॥ ८ ॥ जंगम जीवों के अन्न स्थावर जीव है, पैर से चलने वालों के अन्न, बिना पैर वाले हैं, हाथ वालों के अन्न बिना हाथ वाले हैं और दो पैर वालों के अन्न चार पैर वाले जीव हैं ॥ ९ ॥ अनघ ! आपके पिता और ब्रह्मा ने आपको प्रजा की सृष्टि करने की आज्ञा दी है। आप वृक्षों को क्यों जला देना चाहते हैं ॥ १० ॥ आपका क्रोध बढ गया है, उसे आप शांत करें तथा अपने पिता, पितामह और प्रपितामह के द्वारा सेवित सज्जनों के मार्ग पर चलें ॥ ११ ॥ बालकों के रक्षक माता-पिता है, आंखों की रक्षक पलकें है, स्त्रियों का रक्षक पति है, भिक्षुओं का रक्षक गृहस्थ है, अज्ञानियों का रक्षक ज्ञानी है और प्रजा का रक्षक प्रजापति है ॥ १२ ॥ भगवान् समस्त प्राणियों में अंतर्यामी रूप से वर्त्तमान हैं, अतः आप समस्त जगत को भगवान् का निवासस्थान समझें, ऐसा जानकर ही आप भगवान् को प्रसन्न कर सकेंगे ॥ १३ ॥ शरीर में अकस्मात् उत्पन्न हुए भयंकर क्रोध को जो मनुष्य आत्म-विचार के द्वारा शांत कर देता है, वह संसार के बन्धनों से छूट जाता है ॥ १४ ॥ दीन वृक्षों को जलाना अब आप बन्द करें। आपका और इन वृक्षों का कल्याण हो। वृक्षों के द्वारा पालिता इस श्रेष्ठ कन्या को आप पत्निरूप से ग्रहण करें ॥ १५ ॥ इस प्रकार उन्हें शांत कर के और अप्सरा की उस सुन्दरी कन्या को देकर चन्द्रमा चले गए। अनन्तर उन प्रचेताओं ने धर्मपूर्वक उस कन्या से विवाह किया ॥ १६ ॥ उन प्रचेताओं के द्वारा उस स्त्री के गर्भ से दक्ष नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके द्वारा की हुई सृष्टि से तीनों लोक भरे हुए हैं ॥ १७ ॥ कन्याओं पर स्नेह रखने वाले

८—अहो प्रजापतिपतिर्भगवान् हरिरव्यय.। वनस्पतीनोषधीश्च ससर्जोर्जमिषं विभुः ॥

९—अन्नं चराणामचरा ह्यपदः पादचारिणाम्। अहस्ता हस्तयुक्ताना द्विपदां च चतुष्पदः ॥

१०—यूयं च पित्राऽन्वादिष्टा देवदेवेन चानघा। प्रजासर्गाय हि कथं वृक्षान्निर्दग्धुमर्हथ ॥

११—आतिष्ठत सतां मार्गं कोपं यच्छत दीपितम्। पित्रा पितामहेनापि जुष्टं वः प्रपितामहैः ॥

१२—तोकाना पितरौ बन्धू दृशः पक्ष्म स्त्रिया पतिः। पतिः प्रजाना भिक्षूणां गृह्यज्ञानामबुधः सुहृत् ॥

१३—अन्तर्देहेषु भूतानामात्मास्ते हरिरीश्वरः। सर्वं तद्धिष्ण्यमीक्षध्वमेवं वस्तोषितो ह्यसौ ॥

१४—यः समुत्पतितं देह आकाशान्मन्युमुल्बणम्। आत्मजिज्ञासया यच्छेत्स गुणानतिवर्तते ॥

१५—अलं दग्धैर्द्रुमैर्दीनैः खिलानां शिवमस्तु वः। वार्क्षी ह्येषा वरा कन्या पत्नीत्वे प्रतिगृह्यताम् ॥

१६—इत्यामन्त्र्य वरारोहां कन्यामाप्सरसीं नृप। सोमो राजा ययौ दत्त्वा ते धर्मेणोपयेमिरे ॥

१७—तेभ्यस्तस्यां समभवद्दक्षः प्राचेतसः किल। यस्य प्रजाविसर्गेण लोका आपूरितास्त्रयः ॥

उन दक्ष ने वीर्य और मन के द्वारा जिस प्रकार सृष्टि, की वह मुझसे सावधान होकर आप सुनें ॥ १८ ॥ पहले प्रजापति ने देवता, असुर और मनुष्य आदि तथा आकाश, पृथ्वी और जल में रहने वाली प्रजा की सृष्टि मन से ही की, किंतु जब उस सृष्टि को उन्होंने बढती हुई नहीं देखा तो वे विंध्याचल के समीप वाले पर्वत पर जाकर कठोर तपस्या करने लगे ॥ १९-२० ॥ वहां अघमर्षण नामक एक तीर्थ था । वह उत्तम और पापों को नष्ट करने वाला था । उस मे स्नान करके वे अपनी तपस्या के द्वारा भगवान् को प्रसन्न करने लगे ॥ २१ ॥ उन्होंने जिस स्तोत्र के द्वारा भगवान् की स्तुति करके उन्हें प्रसन्न किया था, वह हंसगुह्य नामक स्तोत्र में आप से कहता हूं ॥ २२ ॥

प्रजापति बोले—जिनकी शक्ति सफल है, जो जीव तथा माया के नियता हैं, स्वय प्रकाश हैं, और जिनके स्वरूप को देह आदि को सत्य मानने वाले जी नही जानते, उन सर्वोत्तम को मै नमस्कार करता हूँ ॥ २३ ॥ समस्त दृश्य विषय जैसे द्रष्टा इंद्रिय आदि को नहीं देख सकते उसी प्रकार जीव इस शरीर मे निवास करते हुए भी जिनके इंद्रिय चालनादि कार्यो को नहीं देख सकता, उन महेश को मै नमस्कार करता हूँ ॥ २४ ॥ शरीर, प्राण, इंद्रिय, अन्त.करण, पचभूत और पचभूतों के विषय, ये स्वय अपने को, अपने स्वरूप को प्रकाशित करने वाली इंद्रियों को को और उनके नियता देवताओं को नहीं जानते, किंतु जीव इन तीनों को तथा इनके मूल रूप गुणों को भी जानता है, फिर भी वह अपने स्वरूप को, जो सर्वज्ञ और अनत है, नहीं जानता, मैं उस स्वरूप की स्तुति करता हू ॥ २५ ॥ नाम और रूप को पैदा करने वाला मन जब समाधि

१८—यथा ससर्ज भूतानि दक्षो दुहितृवत्सलः । रेतसा मनसा चैव तन्ममावहितः शृणु ॥

१९—मनसैवासृजत्पूर्वं प्रजापतिरिमाः प्रजाः । देवासुरमनुष्यादीन्नभस्स्थलजलौकसः ॥

२०—तमबृंहितमालोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः । विंध्यपादानुपव्रज्य सोऽचरद्दुष्करं तपः ॥

२१—तत्राघमर्षणं नाम तीर्थं पापहरं परम् । उपस्पृश्यानुसवनं तपसातोषयद्धरिं ॥

२२—अस्तौषीद्धंसगुह्येन भगवन्तमधोक्षजं । तुभ्यं तदभिधास्यामि कस्यातुष्यद्यतो हरिः ॥

प्रजापतिरुवाच

२३—नमः परायावितथानुभूतये गुणत्रयाभासनिमित्तबन्धवे ।
अदृष्टधाम्ने गुणतत्त्वबुद्धिभिर्निवृत्तमानाय दधे स्वयंभुवे ॥

२४—न यस्य सख्यं पुरुषोऽवैति सख्युः सखा वसन् संवसतः पुरेऽस्मिन् ।
गुणो यथा गुणिनो व्यक्तदृष्टेस्तस्मै महेशाय नमस्करोमि ॥

२५—देहोऽसवोऽक्षा मनवो भूतमात्रानात्मानमन्यं च विदुः परं यत् ।
सर्वं पुमान्वेद गुणांश्च तज्ज्ञो न वेद सर्वज्ञमनंतमीडे ॥

अवस्था में, संसार के दर्शन तथा स्मरण के नाश हो जाने से, शांत हो जाता है तो जो परमात्मा केवल अपने स्वरूप से ही ज्ञात होता है, उस शुद्ध और शुद्ध हृदय मे रहने वाले परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूं ॥ २६ ॥ जिस प्रकार यज्ञ करने वाले लोग सामिधेनी नामक पंद्रह मत्रों के द्वारा प्रकाश करने वाली अग्नि को अरणी में से खींच लेते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मवेत्ता पुरुष विचार के द्वारा अपनी गूढ आत्मा को हृदय मे स्थिर करके प्रकृति, पुरुष, महत्तत्व, अहंकार, पाँच विषय, तीन गुण, ग्यारह इंद्रियों और पाँच महाभूतों मे से खींच लेते हैं। सब प्रकार की माया का त्याग करके कैवल्य-सुख में प्रतीत होने वाले, समस्त नामों वाले तथा समस्त रूपों वाले तथा जिनकी माया शक्ति का निरूपण सत् अथवा असत् के द्वारा नहीं हो सकता, ऐसे भगवान् प्रसन्न हों ॥ २७—२८ ॥ जो वचन से कहा जाता है, बुद्धि से जिसका निश्चय किया जाता है, इंद्रियों से जिनका ग्रहण किया जाता है और मन से जिसका सकल्प किया जाता है, वह भगवान् का स्वरूप नहीं है, क्योंकि वे सब गुणों के ही स्वरूप हैं। भगवान् तो गुणों के प्रलय तथा उत्पत्ति के द्वारा प्रतीत होते हैं। यदि चैतन्यरूपी अधिष्ठान न होतो सृष्टि अथवा प्रलय का होना ही संभव न हो ॥ २९ ॥ जिसमे जगत स्थित है, जिससे जगत की उत्पत्ति हुई हैं, जिस साधन से जगत उत्पन्न हुआ है, यह जगत जिसका है और जिस के लिए है— वह सब ब्रह्म है। जो किया जाता है, जो करता है, करने के लिए किसीके द्वारा जो प्रेरित होता है तथा क्रियाओं आदि का जो सम्बन्ध और प्रकार है, वह सब ब्रह्म है। इसके अतिरिक्त और जो कुछ है वह सब ब्रह्म ही है। वह ब्रह्म सबका कारण है, सबसे पहले प्रसिद्ध है, पहले से उत्पन्न

२६—यदोपरामो मनसो नाम रूप रूपस्य दृष्टस्मृतिसंप्रमोषात् ।
य ईयते केवलया स्वसंस्थया हंसाय तस्मै शुचिसद्मने नमः ॥

२७—मनीषिणोऽन्तर्हृदि संनिवेशितं स्वशक्तिभिर्नवभिश्च त्रिवृद्भिः ।
वन्हिं यथा दारुणि पांचदश्यं मनीषया निष्कर्षन्ति गूढं ॥

२८—स वै ममाशेषविशेषमाया निषेधनिर्वाणसुखानुभूतिः ।
स सर्वनामा स च विश्वरूपः प्रसीदतामनिरुक्तात्मशक्तिः ॥

२९—यद्यन्निरुक्त वचसा निरूपितं धियाऽक्षभिर्वा मनसावोत यस्य ।
माभूत्स्वरूपं गुणरूपं हि तं सवै गुणापायविसर्गलक्षणः ॥

३०—यस्मिन्यतो येन च यस्य यस्मै यद्यो यथा कुरुते कार्यते च ।
परावरेषा परमं प्राक् प्रसिद्धं तद्ब्रह्म तद्धेतुरनदन्यदेकं ॥

हुए और वाद मे उत्पन्न हुओं का मूल है, उससे भिन्न या उसका सजातीय और कुछ नहीं है, विवाद करने वाले लोगों का जो कुछ विवाद है अथवा जो उनकी सहमति है, वह समस्त परब्रह्म की माया और अविद्या आदि कल्पित शक्तियों में ही है। ब्रह्मवेत्ता लोगों के समझाने पर भी ये विवाद करने वाले लोग माया और अविद्या आदि से वार वार भूल जाते हैं, उन पर-ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३०-३१ ॥ योगशास्त्र मे कहा है कि भगवान् सावयव हैं और वेदांत मे कहा है कि वे निरवयव है, परस्पर विरुद्ध यह विवाद भगवान् के अवयवों मे ही है, उनके स्वरूप मे नहीं, विवाद का विषय भिन्न-भिन्न होने पर भी वह एक ही तत्त्व में रहता है। अस्ति और नास्ति अर्थात् है और नहीं है। यह दोनों ही भगवान् के अवयवों मे ही हैं, भगवान् मे कोई विवाद नहीं, क्योंकि इन दोनों शास्त्रों में से कोई भी यह नहीं कहता कि भगवान् अर्थात् आत्मा नहीं है। यह विवाद भगवान् को स्पर्श नहीं करता, क्योंकि उस विवाद के विषय अवयव ही हैं। भगवान् का स्वरूप इस विवाद का विषय नहीं है, किंतु उसका अधिष्ठान है। अधिष्ठान न हो तो अवयवों की कल्पना और उनका निषेध ही न हो सके, अतः जो स्वरूप इन दोनों विवादों का आश्रय है, इनके अनुकूल है। इनसे भिन्न है और इनके समान है, वही ब्रह्म है ॥ ३२ ॥ जो अनन्त भगवान् स्वयं नाम-रूप रहित होने पर भी अपने चरणों की भक्ति करने वालों पर अनुग्रह करने के निमित्त भिन्न-भिन्न जन्म धारण करके और कर्म करके नाम तथा रूप ग्रहण करते हैं, वे परमेश्वर मुझ पर प्रसन्न हों ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार वायु

३१—यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै विवादसंवादभुवो भवन्ति ।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने ॥

३२—अस्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठयोरेकस्थयोर्भिन्नविरुद्धधर्मणो ।
अवेक्षितं किंच न योगसांख्ययो समं परं ह्यनुकूलं बृहत्तत् ॥

३३—योऽनुग्रहार्थं भजतां पादमूलमनामरूपो भगवाननन्त ।
नामानि रूपाणि च जन्म कर्मभिर्भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु ॥

३४—यः प्राकृतैर्ज्ञानपथैर्जनानां यथाशयं देहगतो विभाति ।
यथानिलः पार्थिवमाश्रितो गुणं स ईश्वरो मे कुरुतान्मनोरथ ॥

एक होने पर भी भिन्न-भिन्न पुष्प आदि पदार्थों के सम्बन्ध से अनेक प्रकार की गन्धवाली जान पड़ती है और भिन्न-भिन्न रंगों वाली धूल के सम्बन्ध से अनेक प्रकार के रूप वाली जान पड़ती है, उसी प्रकार अन्तर्यामी भगवान् एक होने पर भी उपासना के भिन्न भिन्न मार्गों से और उनकी वासनाओं के अनुसार लोगों को भिन्न-भिन्न देवताओं के रूप में मालूम पड़ते हैं, वे भगवान् हमारा मनोरथ पूर्ण करें ॥ ३४ ॥

श्रीशुकदेव बोले—राजन्! इस प्रकार स्तुति करने पर भक्त-वत्सल भगवान् ने उस अघमर्षण तीर्थ में स्तुति करते हुए दक्ष प्रजापति को प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥ ३५ ॥ वे भगवान् गरुड़ पर विराजमान थे। उनकी बड़ी और लंबी आठ भुजाएं थीं, जिनमें उन्होंने चक्र, शंख, तलवार ढाल, बाण, धनुष, पाश और गदा धारण की थी ॥ ३६ ॥ वे पीला वस्त्र पहने हुए थे। उनकी कांति मेघ के समान श्याम थी। उनके मुख और नेत्र प्रसन्न थे। उन्होंने अंग में वनमाला धारण कर रखी थी। वे श्रीवत्स और कौस्तुभ मणियों से शोभित थे ॥ ३७ ॥ उन्होंने बड़ा मुकुट और कुंडल धारण किया था। मकर के समान आकृति वाला उनका कुंडल चमक रहा था और वे करधनी, अंगूठी, वलय, नूपुर और बाजूबंद पहने हुए थे ॥ ३८ ॥ उन्होंने त्रैलोक्य को मोहित करने वाला पुरुषोत्तम रूप धारण कर रखा था। नारद तथा नंद आदि पार्षदों और श्रेष्ठ देवताओं ने उन्हें घेर रखा था ॥ ३९ ॥ उनके पीछे गीत गाने वाले सिद्ध, गंधर्व और चारण स्तुति करते थे। त्रैलोक्य के स्वामी भगवान का अत्यन्त आश्चर्य जनक ऐसा रूप देखकर

श्रीशुक उवाच—

३५—इति स्तुतः संस्तुवतः स तस्मिन्नघमर्षणे। आविरासीत्कुरुश्रेष्ठ भगवान् भक्तवत्सलः ॥

३६—कृतपादः सुपर्णांसे प्रलम्बाष्टमहाभुजः। चक्रशङ्खासिचर्मेषुधनुःपाशगदाधरः ॥

३७—पीतवासा घनश्यामः प्रसन्नवदनेक्षणः। वनमालानिवीताङ्गो लसच्छ्रीवत्सकौस्तुभः ॥

३८—महाकिरीटकटकः स्फुरन्मकरकुण्डलः। काञ्च्यङ्गुलीयवलयनूपुराङ्गदभूषितः ॥

३९—त्रैलोक्यमोहनरूपं बिभ्रत्त्रिभुवनेश्वरः। वृतो नारदनन्दाद्यैः पार्षदैः सुरयूथपैः ॥

४०—स्तूयमानोऽनुगायद्भिः सिद्धगन्धर्वचारणैः। रूपं तन्महदाश्चर्यं विचक्ष्यागतसाध्वसः ॥

दक्ष प्रजापति प्रसन्न हुए और आनन्द से काँपने लगे। उन्हों ने पृथ्वी पर पड़कर भगवान् को दण्डवत् नमस्कार किया, जिस प्रकार झरने से छोटी नदियाँ भर जाती हैं, उसी प्रकार अत्यंत आनंद के कारण उनका मन भर गया, अर्थात् गद्गद् हो गया, वे कुछ बोल नहीं सके। भगवान् सब प्राणियों का हृदय जानने वाले हैं, उन्होंने प्रजा की इच्छा रखने वाले दक्ष प्रजापति को इस प्रकार अवनत देखकर कहा ॥ ४०—४२ ॥

भगवान बोले—महाभाग, प्रचेता के पुत्र! तपस्या के द्वारा तुम ने सिद्धि पाई, क्योंकि परिपूर्ण श्रद्धा से तुमने मुझमें परम भक्ति पाई है ॥ ४३ ॥ प्रजापति! तुम्हारी तपस्या जगत की वृद्धि के लिए है, इससे मैं प्रसन्न हूँ। प्रजाओं की वृद्धि हो। यह मेरी इच्छा है ॥ ४४ ॥ ब्रह्मा, सदाशिव, तुम, मनु और बड़े-बड़े देवता, जो जगत को उत्पन्न करने वाले हैं, वे हमारी विभूति रूप ही हैं ॥ ४५ ॥ ध्यान मेरा हृदय, मन्त्रों का जप मेरा शरीर, क्रिया मेरी आकृति, यज्ञ मेरे अंग, धर्म मेरा मन और देवता मेरे प्राण हैं ॥ ४६ ॥ सृष्टि के पहले मैं ही था, भीतर या बाहर और कुछ नहीं था। चैतन्यमात्र, अव्यक्त और चारों ओर प्रसुप्त के समान उस समय मेरा स्वरूप ही था ॥ ४७ ॥ अनन्त और अनन्त गुण वाले मेरे स्वरूप में जब ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ, उसी समय सब के आदि ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जो अजन्मा कहे जाते हैं ॥ ४८ ॥ मेरी शक्ति से बढे हुए महादेव ब्रह्मा जब सृष्टि करने के लिए उद्यत हुए और उन्होंने अपने को असमर्थ देखा, तो मेरे कहने से उन्होंने कठोर तपस्या की, जिससे उन्होंने आरम्भ में तुम नौ

४१—ननाम दण्डवद्भूमौ प्रहृष्टात्मा प्रजापतिः। न किंचनोदीरयितुमशकत्तीव्रया मुदा ॥

४२—आपूरितमना उद्रेकैर्हृदिन्य इव निर्झरैः। तं तथाऽवनतं भक्तं प्रजाकामं प्रजापतिं ॥
चित्तज्ञः सर्वभूतानामिदमाह जनार्दनः ॥

श्रीभगवानुवाच—

४३—प्राचेतस महाभाग संसिद्धस्तपसा भवान्। यच्छ्रद्धया मत्परया मयि भावः परं गतः ॥

४४—प्रीतोऽहं ते प्रजानाथ यत्तेऽस्योद्बृंहणं तपः। ममैष कामो भूतानां यद्भूयासुर्विभूतयः ॥

४५—ब्रह्मा भवो भवन्तश्च मनवो विबुधेश्वराः। विभूतयो मम ह्येता भूतानां भूतिहेतवः ॥

४६—तपो मे हृदयं ब्रह्मंस्तनुर्विद्या क्रियाकृतिः। अङ्गानि क्रतवो जाता धर्म आत्माऽसवः सुराः ॥

४७—अहमेवासमेवाग्रे नान्यत्किंचान्तरं बहिः। संज्ञानमात्रमव्यक्तं प्रसुप्तमिव विश्वतः ॥

४८—मय्यनन्तगुणेऽनन्ते गुणतो गुणविग्रहः। यदासीत्तत एवाद्यः स्वयम्भूः समभूदजः ॥

प्रजापतियों को उत्पन्न किया था ॥ ४९-५० ॥ दक्ष प्रजापति ! पंचजन नामक प्रजापति की इस असिक्नी नामकी कन्या को तुम पत्नी रूप से ग्रहण करो ॥ ५१ ॥ मैथुन धर्मवाली इस स्त्री मे मैथुन धर्मवाली तुम बहुत-सी प्रजा की सृष्टि करना ॥ ५२ ॥ तुम्हारे अनन्तर मेरी माया के प्रभाव से समस्त प्रजा मैथुनधर्म से उत्पन्न होगी और मेरी इच्छा के अनुसार चलेगी ॥ ५३ ॥

श्रीशुकदेव बोले—त्रैलोक्य के पालक भगवान्, दक्ष प्रजापति से इस प्रकार कहकर, उनके देखते ही देखते, स्वप्न मे देखे हुए पदार्थ के समान, वहीं अन्तर्धान हो गए ॥ ५४ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवें स्कन्ध का चौथा अध्याय समाप्त

—*—

४९—उवै यदा महादेवो मम वीर्योपबृंहितः । मेने खिलमिवात्मानमुद्यतः सर्गकर्मणि ॥

५०—अथमेऽभिहितो देवस्तपो तप्यत दारुणम् । नवविश्वसृजो युष्मान्येनादावसृजद्विभुः ॥

५१—एषा पंचजनस्यागदुहिता वै प्रजापतेः । असिक्नी नाम पत्नीत्वे प्रजेश प्रतिगृह्यताम् ॥

५२—मिथुनव्यवाय धर्मस्त्वं प्रजासर्गमिमं पुनः । मिथुनव्यवाय धर्मिण्यां भूरिशो भावयिष्यसि ॥

५३—त्वत्तोऽधस्तात्प्रजाः सर्वा मिथुनीभूय मायया । मदीयया भविष्यन्ति हरिष्यन्ति च मे बलिं ॥

श्रीशुक उवाच—

५४—इत्युक्त्वा मिषतस्तस्य भगवान्विश्वभावनः । स्वप्नोपलब्धार्थ इव तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कन्धेचतुर्थोऽध्यायः॥ ४ ॥

—*—

पाँचवाँ अध्याय

नारद का दक्ष के पुत्रों को मोक्ष-मार्ग में प्रेरित करना
दक्ष का नारद को शाप देना

श्रीशुकदेव बोले—भगवान् की माया से प्रेरित होकर उन दक्ष प्रजापति ने पंचजन प्रजापति की उस असिक्नी नाम की पुत्री में हर्यश्व नाम के दस हजार पुत्र उत्पन्न किए ॥ १ ॥ राजन्! दक्ष के वे समस्त पुत्र समान धर्म और शीलवाले थे। पिता के द्वारा प्रजा की सृष्टि की आज्ञा पाकर वे पूर्व दिशा में गए ॥ २ ॥ उस दिशा मे जहाँ सिंधु और समुद्र का सगम हुआ है वहाँ बड़े मुनि और सिद्धों के द्वारा सेवित नारायण-सर नामक तीर्थ है ॥ ३ ॥ उस नारायण सर में स्नान करने से उन लोगों के मन के मल मिट गए और परमहंस-धर्म मे उनकी आस्था उत्पन्न हुई ॥ ४ ॥ पिता की आज्ञा से प्रजा की वृद्धि के निमित्त वे उग्र तप कर रहे थे। उन्हें देवर्षि नारद ने दर्शन दिया ॥ ५ ॥ वे बोले-हर्यश्वगण! तुम प्रजा के पालक होने पर भी अज्ञानी हो। तुम लोग पृथ्वी का अन्त और एक पुरुषवाला देश देखे बिना सृष्टि कैसे करोगे? जिसमें से निकलने का मार्ग नहीं दीख पडता, ऐसी गुफा, अत्यन्त रूपवती स्त्री, पुंश्चली के पति पुरुष, दोनों ओर प्रवाहित होनेवाली नदी, पचीस वस्तुओं से अद्भुत लगने वाला घर, किसी समय विचित्र कथा कहने वाला हंस, स्वतन्त्र रूप से घूमने वाला और छुरे तथा वज्र से बना हुआ तीक्ष्ण चक्र तथा अपने सर्वज्ञ पिता की योग्य आज्ञा को जाने बिना तुम मूर्ख लोग किस प्रकार सृष्टि करोगे? ॥ ६—९ ॥

श्रीशुक उवाच

१—तस्यां सपाचजन्यां वै विष्णुमायोपबृंहित. । हर्यश्वसज्ञानयुत पुत्रान जनयद्विभुः ॥
२—अपृथक् धर्मशीलास्ते सर्वे दाक्षायणा नृप । पित्रा प्रोक्ता. प्रजासर्गे प्रतीचीं प्रययुर्दिश ॥
३—तत्र नारायणसरस्तिर्थं सिंधुसमुद्रयोः । सगमो यत्र सुमहन्मुनिसिद्धनिषेवित ॥
४—तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूत मलाशया. । धर्मे पारमहंस्ये च प्रोत्पन्नमतयोऽप्युत ॥
५—तेपिरे तप एवोग्र पित्रादेशेन यन्त्रिताः । प्रजाविवृद्धयेयत्तान्देवर्षिस्तान्ददर्श ह ॥
६—उवाचचाथहर्यश्वाः कथ स्त्रक्ष्यथ वै प्रजा· । अदृष्ट्वा त भुवो यूय बालिशा बत पालकाः ॥
७—तथैकपुरुष राष्ट्र बिल चादृष्टनिर्गम । बहुरूपा स्त्रियचापि स पुमान्स पुंश्चलीपतिम् ॥
८—नदीमुभयतो वाहा पचपचाद्भुत गृह । क्वचिद्ध स चित्रकथ क्षौरपव्य स्वयं भ्रमि ॥
९—कथ स्वपितुरादेश नविद्वांसो विपश्चित । अनुरूपमविज्ञाय अहो सर्गं करिष्यथ ॥

श्रीशुकदेव बोले— हर्यश्वगण ये बातें सुनकर अपनी सहज विचारशील बुद्धि से नारदजी की कूट बातों का विचार करने लगे ॥ १० ॥ अनादि और आत्मा को जन्म देने वाला जो लिंग शरीर है, उसे पृथ्वी समझना चाहिए। जीव नामक इस लिंग शरीर का नाश देखे बिना, मोक्ष के लिए अनुपयोगी, कर्म करने से क्या लाभ है ? ॥ ११ ॥ सबके साक्षी स्वाश्रयी और सबसे परे एक ईश्वर ही इस ब्रह्माण्ड अथवा शरीररूपी देश में है, इस नित्यमुक्त पुरुष के देखे बिना, उनको अर्पित न होने वाले कर्म करने से क्या लाभ है ? ॥ १२ ॥ जिस प्रकार पातालरूपी गुफा में जाकर मनुष्य पुनः वापस नहीं आता, उसी प्रकार इस स्वयं प्रकाश परब्रह्म में पहुँच कर मनुष्य वापस नहीं आता, उस पर ब्रह्मरूपी गुफा को जाने बिना, नाशवान् स्वर्ग आदि के साधनरूप कर्मों को करने से क्या लाभ है ? ॥ १३ ॥ अनेक प्रकार के रूप और गुणवाली अपनी बुद्धि ही व्यभिचारिणी स्त्री है, विवेक के बिना उसके द्वारा अशात कर्मों के करने से क्या लाभ है ? ॥ १४ ॥ जीव जो व्यभिचारिणी स्त्री के पति के समान, व्यभिचारिणी बुद्धि के द्वारा दिए हुए दुःख-सुख को भोगता है और उसके संग से अपनी स्वतन्त्रता खो बैठा है, उसे जाने बिना बुद्धि के अविवेक से प्राप्त हुए कर्मों को करने से क्या लाभ है ? ॥ १५ ॥ दोनों ओर प्रवाहित होने वाली नदी माया है, क्योंकि माया सृष्टि और प्रलय यह दोनों ही काम करती है और अपने में पड़े हुए मनुष्य को किनारे जाने देने में बड़े अड़चन डालती है, अतः उस माया को जाने बिना मूढ़ मनुष्य के मलिन कर्मों के करने से क्या लाभ है ? ॥ १६ ॥ कार्य कारण से बने हुए शरीर का अधिष्ठाता अन्तर्यामी पुरुष ही पचीस तत्वों का आश्रयरूप अद्भुत घर है, उसे

श्रीशुक उवाच—

१०—तन्निशम्याथ हर्यश्वा औत्पत्तिकमनीषया । वाचः कूटं तु देवर्षेः स्वयं विममृशुर्धिया ॥

११—भूः क्षेत्रं जीवसंज्ञं यदनादि निजबन्धनम् । अदृष्ट्वा तस्य निर्वाणं किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥

१२—एक एवेश्वरस्तुर्यो भगवान् स्वाश्रयः परः । तमदृष्ट्वाभवं पुंसः किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥

१३—पुमान्नैवैति यद्गत्वा बिलस्वर्गं गतो यथा । प्रत्यग्धामाविद इह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥

१४—नानारूपात्मनो बुद्धिः स्वैरिणीव गुणान्विता । तन्निष्ठामगतस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥

१५—तत्सङ्गभ्रंशितैश्वर्यं संसरन्तं कुभार्यवत् । तद्गतीरबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥

१६—सृष्ट्यप्ययकरीं मायां वेलाकूलान्तवेगिताम् । मत्तस्य तामविज्ञस्य किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥

१७—पञ्चविंशतितत्त्वानां पुरुषोऽद्भुतदर्पणः । अध्यात्ममबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥

करने से उनके मन की मैल दूर हो गई। वे परम ब्रह्म को जपते हुए महान तपस्या करने लगे ॥ २६ ॥ कुछ महीनों तक जल पीकर, पुनः कुछ महीनों तक वायु पीकर इस मंत्र का जप करते हुए वे भगवान् की आराधना करने लगे ॥ २७ ॥ महात्मा पुरुष नारायण को मैं नमस्कार करता हूँ और शुद्ध सत्वगुण के आश्रयरूप उन परमहंस भगवान् का स्मरण करता हूँ ॥ २८ ॥ राजन ! इस प्रकार सृष्टि करने की इच्छा रखने वाले उन सबलाश्वों के पास भी नारद आए और उन्होंने उनसे भी पहले ही के समान कूट वचन कहे ॥ २९ ॥ दक्ष के पुत्रों ! तुम लोग मुझसे उपदेश सुनो। तुमलोग भ्रातृवत्सल हो अर्थात् अपने भाइयों पर तुम्हारा स्नेह है, तुमलोग भी अपने भाइयों के मार्ग का अनुसरण करो ॥ ३० ॥ धर्म को जानने वाला जो भाई अपने भाइयों के मार्ग का अनुसरण करता है, वह अपने पुण्य से मरुतों के सहित आनंद प्राप्त करता है। मरुद्गण भी भाइयों पर प्रीति रखने वाले हैं ॥ ३१ ॥ राजन् ! ऐसा कहकर नारद, जिनका दर्शन निष्फल नहीं होता, वहाँ से चले गए और उन सबलाश्वों ने भी अपने भाई के मार्ग का अनुसरण किया ॥ ३२ ॥ अत्यत उत्तम और अन्तर्वृत्ति से प्राप्त होने वाले परब्रह्म के मार्ग का अनुसरण करने वाले वे सबलाश्व पुनः वापस नहीं आए, जैसे बीती हुई रात वापस नहीं आती ॥ ३३ ॥ इस समय अत्यत उत्पात देखते हुए प्रजापति दक्ष ने पहले ही के समान नारद के द्वारा अपने पुत्रों के नष्ट हो जाने की बात सुनी ॥ ३४ ॥ पुत्रों के शोक से दक्ष दुखी हो गए थे। क्रोध के कारण उनके होंठ फड़कने लगे थे। वे नारद को समीप आया देखकर कहने लगे ॥ ३५ ॥

२६—तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः। जपन्तो ब्रह्म परमं तेपुस्तत्र महत्तपः ॥

२७—अब्भक्षाः कतिचिन्मासान्कतिचिद्वायुभोजनाः। आराधयन्मन्त्रमिममभ्यस्यन्त इडस्पतिम् ॥

२८—ओं नमोनारायणाय पुरुषाय महात्मने। विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ॥

२९—इति तानपि राजेन्द्र प्रतिसर्गधियो मुनिः। उपेत्य नारदः प्राह वाचः कूटानि पूर्ववत् ॥

३०—दाक्षायणाः संशृणुत गदतो निगमं मम। अन्विच्छतानुपदवीं भ्रातॄणां भ्रातृवत्सलाः ॥

३१—भ्रातृणां प्रायणं भ्राता योऽनुतिष्ठति धर्मवित्। स पुण्यबन्धुः पुरुषो मरुद्भिः सह मोदते ॥

३२—एतावदुक्त्वा प्रययौ नारदोऽमोघदर्शनः। तेऽपि चान्वगमन्मार्गं भ्रातॄणामेव मारिष ॥

३३—सध्रीचीनं प्रतीचीनं परस्यानुपथं गताः। नाद्यापि ते निवर्तन्ते पश्चिमा यामिनीरिव ॥

३४—एतस्मिन्काल उत्पातान्बहून्पश्यन्प्रजापतिः। पूर्ववन्नारदकृतं पुत्रनाशमुपाशृणोत् ॥

३५—चुक्रोश नारदायासौ पुत्रशोकविमूर्च्छितः। देवर्षिमुपलभ्याह रोषाद्विस्फुरिताधरः ॥

दक्ष बोले—दुष्ट ! साधु के समान वेष वाले ! तुमने स्वधर्म में प्रवृत्त मेरे पुत्रों का अमंगल किया। तुमने उन्हें भिक्षुओं का मार्ग दिखलाया ॥ ३६ ॥ मेरे पुत्र अभी तीनों ऋणों (ऋषि-ऋण, देव-ऋण और पितृ-ऋण) से उऋण नहीं हुए थे, उन्होंने अपने कर्मों की मीमांसा नहीं की थी। तुमने उनके दोनों लोकों के कल्याण का नाश कर दिया ॥ ३७ ॥ तुम निर्दय हो। तुमने बालकों की बुद्धि फेर दी है। तुम भगवान् की कीर्ति को नष्ट करने वाले हो फिर भी तुम लज्जा का त्याग करके भगवान के पार्षदों के साथ घूमते फिरते हो ॥ ३८ ॥ तुम स्नेह का नाश करने वाले हो। जिनमें आपस मे वैर-भाव नहीं होता, उनमें भी तुम वैर उत्पन्न कर देते हो। तुम्हारे अतिरिक्त भगवान् के अन्य सभी भक्त प्राणियों पर दया रखने वाले हैं ॥ ३९ ॥ यदि तुम समझते होओ कि स्नेह-पाश को काटना उपशम है,तो भी तुम्हें इस प्रकार मिथ्या उपदेश नहीं देना चाहिये, क्योंकि ज्ञानी न होने पर भी तुमने ज्ञानियों-जैसा वेष बना रखा है ॥ ४० ॥ बिना अनुभव के मनुष्य विषयों की तीक्ष्णता को नहीं जानता, अतः विषयों का भोग करने के अनंतर मनुष्य को स्वय ही वैराग्य उपन्न होता है, दूसरों के बहकाने से नहीं ॥ ४१ ॥ कर्म ही हमारी मर्यादा है, हम सज्जन हैं, गृहस्थ हैं, तुमने हमारा बहुत अप्रिय किया, लेकिन उसे हमने सहन कर लिया किंतु संतति का नाश करने वाले तुमने फिर भी मेरा अपकार किया, अत मूर्ख ! लोकों में भटकते हुए कहीं भी तुम्हे ठिकाना न मिले ॥ ४२-४३ ॥

श्री शुकदेव बोले—साधुओं में जिनका सम्मान है, उन नारद ने दक्ष के इस शाप को स्वीकार कर लिया। वे स्वय भी दक्ष को शाप दे सकते थे, किंतु उन्होंने दक्ष के शाप को स्वीकार कर लिया, क्योंकि यही सज्जनों के रीति है ॥ ४४ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवें स्कन्ध का पाँचवाँ अध्याय समाप्त

दक्ष उवाच—

३६—अहो असाधो साधूना साधुलिंगेन नस्त्वया । असाध्वकार्यर्भकाणां भिक्षोर्मार्गः प्रदर्शित ॥
३७—ऋणैस्त्रिभिरमुक्तानां अमीमांसित कर्मणा । विघात श्रेयस पाप लोकयोरुभयो. कृतः ॥
३८—एव त्व निरनुक्रोशो बाल ना मतिभिद्धरे । पार्षदमध्ये चरसि यशो हानिरपत्रपः ॥
३९—ननु भागवता नित्य भूतानुग्रहकातरा । ऋते त्वा सौहृदघ्न वै वैरकरमवैरिणा ॥
४०—नेत्थ पुसा विराग. स्यात्त्वया केवलिना मृषा । मन्यसे यद्युपशम स्नेहपाशनिकृन्तनम् ॥
४१—नानुभूय न जानाति पुमान्विषयतीक्ष्णताम् । निर्विद्यन स्वय तस्मान्न तथाभिन्नधी परै. ॥
४२—यन्नस्त्व कर्मसधाना साधूना गृहमेधिनाम् । कृतवानसि दुर्मर्ष विप्रिय तव मर्षितम् ॥
४३—त तु कृंतनयन्नस्त्वमभद्रमचर पुन । तस्माँल्लोकेषु ते मूढ न भवेद्भ्रमत पद ॥

श्रीशुक उवाच—

४४—प्रतिजग्राह तद्बाढ नारद. साधुसम्मतः । एतावान्साधुवादो हि तितिक्षेतेश्वरः स्वय ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कन्धेदक्षनारदशापोनामपञ्चमोऽध्याय. ॥

छठवाँ अध्याय

दक्ष की कन्याओं के वंश का वर्णन

श्रीशुकदेव बोले—अनतर ब्रह्मा के द्वारा सांत्वना पाकर दक्ष प्रजापति ने अपनी स्त्री असिक्नि में पितृ-वत्सला साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं ॥ १ ॥ उनमें से दश कन्याएँ उन्होंने धर्म को दीं, तेरह कश्यप को, सत्ताइस चन्द्रमा को तथा भूत, अंगिरा और विशाख को दो-दो कन्याएँ दीं, शेष चार तार्क्ष्य नामधारी कश्यप को दीं ॥ २ ॥ दक्ष की इन कन्याओं के पुत्र-पौत्रादि से तीनों लोक भरे हुए हैं। राजन्! उन कन्याओं और उनकी सतानों का नाम आप मुझसे सुनें ॥ ३ ॥ भानु, लंबा, ककुभ, जमि, विश्वा, साध्या, मरुत्वति, वसु, मुहूर्ता और संकल्पा—ये धर्म की स्त्रियाँ हैं। अब उनके पुत्रों का नाम सुनिये ॥ ४ ॥ भानु का पुत्र देवऋषभ और उसका पुत्र इंद्रसेन हुआ। लंबा का पुत्र विद्योत और उसका स्तनयित्नु नाम का पुत्र हुआ ॥ ५ ॥ ककुभ को संकट नाम का पुत्र हुआ, संकट का कीकट और उसका पुत्र दुर्ग हुआ। जामि का स्वर्ग और उसका पुत्र नदि हुआ ॥ ६ ॥ विश्वा के विश्वदेव नामक पुत्र हुए। वे सन्तान-हीन कहे जाते हैं। साध्या के साध्य नामक गण उत्पन्न हुए, उनके पुत्र का नाम अर्थसिद्धि था ॥ ७ ॥ मरुत्वति के मरुत्वान् और जयंत नाम के दो पुत्र हुए। उनमें से जयंत भगवान् का अंश है, जिसे उपेंद्र भी कहते हैं ॥ ८ ॥ मुहूर्ता के मौहूर्तिक देवता उत्पन्न हुए, जो प्राणियों

श्रीशुक उवाच—

१—ततः प्राचेतसोऽसिक्न्यामनुनीतः स्वयम्भुवा। षष्टिं संजनयामास दुहितॄः पितृवत्सलाः ॥

२—दश धर्माय कायेन्दोर्द्विषट् त्रिणव दत्तवान्। भूताङ्गिरःकृशाश्वेभ्यो द्वे द्वे तार्क्ष्याय चापराः ॥

३—नामधेयान्यमूषां त्वं सापत्यानां च मे शृणु। यासां प्रसूतिप्रसवैर्लोका आपूरितास्त्रयः ॥

४—भानुर्लम्बा ककुब्जामिर्विश्वा साध्या मरुत्वति। वसुर्मुहूर्ता सङ्कल्पा धर्मपत्न्यः सुताञ्छृणु ॥

५—भानोस्तु देवऋषभ इन्द्रसेनस्ततो नृप। विद्योत आसील्लम्बायास्ततश्च स्तनयित्नवः ॥

६—ककुभः सङ्कटस्तस्य कीकटस्तनयो यतः। भुवो दुर्गाणि जामेयः स्वर्गो नन्दिस्ततोऽभवत् ॥

७—विश्वेदेवास्तु विश्वाया अप्रजांस्तान्प्रचक्षते। साध्यो गणस्तु साध्याया अर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः ॥

८—मरुत्वांश्च जयन्तश्च मरुत्वत्या बभूवतुः। जयन्तो वासुदेवांश उपेन्द्र इति यं विदुः ॥

को अपने अपने समय का फल देते हैं ॥ ९ ॥ संकल्पा का संकल्प नामक पुत्र हुआ। उसके पुत्र का नाम कामदेव है। वसु के पुत्र अष्टावसु हुए। उन सबों के नाम आप मुझसे सुनें ॥ १० ॥ द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और विभावसु, ये आठ वसु कहे जाते हैं। उनमें द्रोण की स्त्री अभिमति के गर्भ से हर्ष, शोक और भय आदि पुत्र उत्पन्न हुए। प्राण की स्त्री का नाम उर्जस्वती था। उसके गर्भ से सह, आयु और पुरोजव नाम के पुत्र उत्पन्न हुए। ध्रुव की स्त्री धरणी ने अनेक प्रकार के पुत्र उत्पन्न किये ॥ १२ ॥ अर्क की स्त्री वासना थी, उससे तर्ष आदि पुत्र हुए। अग्नि की स्त्री वसोर्धारा नाम की स्त्री से द्रविणक आदि पुत्र हुए ॥ १३ ॥ कृत्तिका के पुत्र स्कन्द भी अग्नि के ही पुत्र हैं। इनके विशाख आदि पुत्र उत्पन्न हुए। दोष नामक वसु की स्त्री का नाम शर्वरी था। शिशुमार नामक उसका पुत्र भगवान् का अंश था ॥ १४ ॥ वसु की आंगिरसी नाम की स्त्री के गर्भ से शिल्पियों में श्रेष्ठ विश्वकर्मा उत्पन्न हुए। विश्वकर्मा के पुत्र का नाम चाक्षुषमनु था। उनके पुत्र का नाम विश्व और साध्य था। विभावसु की स्त्री उषा ने व्युष्ट, रोचिष और आतप नाम के पुत्र उत्पन्न किये। आतप का पुत्र पंचयाम हुआ, जिससे प्राणी अपने कार्यों में जागृत रहते हैं ॥ १५ १६ ॥ भूत की स्त्री सुरूपा ने करोड़ों रुद्र उत्पन्न किये। रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप और महान् ये ग्यारह मुख्य रुद्र हैं और उनके पार्षद भी रुद्र कहे जाते हैं। भूत की दूसरी स्त्री से भयंकर भूत और विनायक उत्पन्न हुए ॥ १७-१८ ॥ अंगिरा प्रजापति की स्त्री स्वधा से पिता उत्पन्न हुए। उनकी दूसरी स्त्री सती ने अथर्ववेद को अपना पुत्र माना ॥ १९ ॥ कृशाश्व

९—मौहूर्तिका देवगणा मुहूर्तायाश्च जज्ञिरे। ये वै फलं प्रयच्छन्ति भूतानां स्वस्वकालजं ॥

१०—संकल्पायाश्च संकल्पः कामः संकल्पजः स्मृतः। वसवोऽष्टौ वसोः पुत्रास्तेषां नामानि मे शृणु ॥

११—द्रोणः प्राणो ध्रुवोऽर्कोऽग्निर्दोषो वसुर्विभावसुः। द्रोणस्याभिमतेः पत्न्या हर्षशोकभयादयः ॥

१२—प्राणस्योर्जस्वती भार्या सह आयुः पुरोजवः। ध्रुवस्य भार्या धरणिरसूत विविधाः पुरः ॥

१३—अर्कस्य वासना भार्या पुत्रास्तर्षादयः स्मृताः। अग्नेर्भार्या वसोर्धारा पुत्राद्रविणकादयः ॥

१४—स्कंदश्च कृत्तिकापुत्रो ये विशाखादयस्ततः। दोषस्य शर्वरीपुत्रः शिशुमारो हरेः कला ॥

१५—वसोरांगिरसीपुत्रो विश्वकर्मा कृतीपतिः। ततो मनुश्चाक्षुषो भूद्विश्वेसाध्या मनोः सुताः ॥

१६—विभावसोरसूतोषा व्युष्टं रोचिषमातपम्। पंचयामोऽथ भूतानि येन जाग्रति कर्मसु ॥

१७—सरूपासूतभूतस्य भार्यारुद्रांश्च कोटिशः। रैवतोऽजो भवो भीमो वाम उग्रो वृषाकपिः ॥

१८—अजैकपादहिर्बुध्न्यो बहुरूपो महानिति। रुद्रस्य पार्षदाश्चान्ये घोरा भूत विनायकाः ॥

१९—प्रजापतेरंगिरसः स्वधा पत्नी पितॄनथ। अथर्वांगिरसं वेदं पुत्रत्वे चाकरोत्सती ॥

ने अपनी अर्चि नाम की स्त्री से धूम्रकेश और धिषणा नामकी दूसरी स्त्री से वेदशिरा, देवल, वयुन और मनु नाम के चार पुत्र उत्पन्न किये ॥ २० ॥ तार्क्ष्य की विनता, कद्रु, पतंगी और यामिनी नाम की चार स्त्रियाँ थीं। उनमें से पतगी ने पक्षियों को, यामिनी ने कीड़ों को, विनता ने भगवान् के वामनरूप गरुड़ तथा सूर्य के सारथी अरुण को और कद्रू के अनेक सर्पों को उत्पन्न किया ॥ २१-२२ ॥ भारत ! कृत्तिका आदि सत्ताईस नक्षत्र चन्द्रमा की स्त्रियाँ हैं। चन्द्रमा केवल एक रोहिणी से प्रेम करता था, अन्य स्त्रियों से नहीं, इससे क्रोधित होकर दक्ष ने उसे शाप दे दिया। शाप के कारण उसे क्षयरोग हो गया और उसे सन्तान नहीं हुई ॥ २३ ॥ अनन्तर दक्ष को प्रसन्न करके चन्द्रमा ने अपनी कला पुनः प्राप्त करली। अब आप जगत् की मातृ-रूपिणी कश्यप की स्त्रियों के शुभ नाम सुने, जिनसे यह समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है। अदिति दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभी, सरमा और तिमि, ये तेरह कश्यप की स्त्रियाँ थीं। तिमि के पुत्र जल जंतु हुए, सरमा के श्वापद (हिंसक जंतु) सुरभि के भैसा, बैल और अन्य दो खुर वाले जानवर हुए। राजन् ! ताम्रा के बाज और गिद्ध आदि पुत्र हुए, मुनि के गर्भ से अप्सराएं हुईं और क्रोधवशा के पुत्र दन्दशूक आदि सर्प हुए। इला के वृक्ष हुए, सुरसा के राक्षस, अरिष्टा के गन्धर्व और काष्ठा के एक खुर वाले जानवर हुए। दनु के इकसठ पुत्र हुए, उनमें जो प्रधान है, उनके नाम आप सुनें द्विमूर्द्धा, शम्बर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावसु, अयोमुख, शङ्कुशिरा, स्वर्भानु, कपिल, अरुण, पुलोमा, वृषपर्वा, एकचक्र, अनुतापन, धूम्रकेश, विरूपाक्ष विप्रचित्ति और दुर्जय, ये अठारह मुख्य

२०—कृशाश्वोऽर्चिषि भार्यायां धूम्रकेशमजीजनत्। धिषणायां वेदशिरो देवलं वयुनं मनुम् ॥

२१—तार्क्ष्यस्य विनता कद्रूः पतङ्गी यामिनी इति। पतङ्गयसूत पतगान्यामिनी शलभानथ ॥

२२—सुपर्णाऽसूत गरुडं साक्षाद्यज्ञेशवाहनम्। सूर्यसूतमनूरुं च कद्रूर्नागाननेकशः ॥

२३—कृत्तिकादीनि नक्षत्राणीन्दोः पत्न्यस्तु भारत। दक्षशापात्सोऽनपत्यस्तासु यक्ष्मग्रहार्दितः।

पुनः प्रसाद्य तं सोमः कला लेभे क्षयेदिताः ॥

२४—शृणु नामानि लोकानां मातॄणां शङ्कराणि च। अथ कश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदं जगत् ॥

२५—अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठारिष्टा सुरसा इला। मुनिः क्रोधवशा ताम्रा सुरभिः सरमा तिमिः ॥

२६—तिमेर्यादोगणा आसन् श्वापदाः सरमासुताः। सुरभेर्महिषा गावो ये चान्ये द्विशफा नृप ॥

२७—ताम्रायाः श्येनगृध्राद्या मुनेरप्सरसां गणाः। दन्दशूकादयः सर्पा राजन् क्रोधवशात्मजाः ॥

२८—इलाया भूरुहाः सर्वे यातुधानाश्च सौरसाः। अरिष्टायाश्च गन्धर्वाः काष्ठाया द्विशफेतराः ॥

२९—सुता दनोरेकषष्टिस्तेषां प्राधानिकान् शृणु। द्विमूर्धा शम्बरोऽरिष्टो हयग्रीवो विभावसुः ॥

३०—अयोमुखः शङ्कुशिराः स्वर्भानुः कपिलोऽरुणः। पुलोमा वृषपर्वा च एकचक्रोऽनुतापनः ॥

हैं। स्वर्भानु की सुप्रभा नाम की कन्या से नमुचि ने विवाह किया। नहुष के पुत्र बलवान् ययाति ने वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा को ब्याहा उपदानवी, हयशिरा, पुलोमा और कालका, ये चार वैश्वानर की सुंदरी कन्याएं थीं। उनमें से उपदानवी को हिरण्याक्ष ने, हयशिरा को क्रतु ने और पुलोमा तथा कालका को कश्यप प्रजापति ने ब्रह्मा की आज्ञा से ब्याहा था। इन पुलोमा और कालका के पौलोम और कालकेय नाम के साठ हजार बलवान् दैत्य उत्पन्न हुए। यज्ञ मे विघ्न करने वाले इन दैत्यों को आपके पिता के पिता ने इंद्र का प्रिय करने की इच्छा से स्वर्ग मे अकेले ही मार डाला था॥ २४—१४॥ विप्रचित्ति नामक दैत्य ने सिंहिका नाम की स्त्री के गर्भ से एक सौ पुत्र उत्पन्न किए थे। उनमें राहु बड़ा और शेष छोटे केतु नाम से प्रसिद्ध हुए, जिन्हें ग्रह की पदवी मिली॥ ३५॥ अब मैं अनुक्रम से अदिति का वंश कहता हूं,जिस अदिति के गर्भ से स्वयं भगवान् ने अंशावतार धारण किया था, आप उसे सुनें॥ ३६॥ विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र और उरुक्रम, ये बारह अदिति के पुत्र हुए॥ ३७॥ उनमें विवस्वान् की महाभागा स्त्री संज्ञा ने श्राद्धदेव मनु तथा जुड़वे यम और यमुना को उत्पन्न किया। यही संज्ञा घोड़ी रूप धारण करके पृथ्वी पर गई थी और इसने अश्विनीकुमार नाम के दो पुत्र उत्पन्न किए थे॥ ३८॥ यही संज्ञा अपनी छाया को सूर्य के पास छोड़ गई थी। उस छाया से शनैश्चर, सावर्णि नाम के मनु और तपती नाम की कन्या उत्पन्न हुई थी। इस कन्या ने संवरण नामक राजा को ब्याहा था॥ ३९॥ अर्यमा की मातृका नाम की स्त्री ने चर्षणी नाम के पुत्र उत्पन्न किए। इनमे आत्मविचार होने

३१—धूमकेशो विरूपाक्षो विप्रचित्तिश्च दुर्जय.। स्वर्भानोः सुप्रभा कन्यामुवाह नमुचिः किल॥

३२—वैश्वानरसुतायाश्च चतस्रश्चारु दर्शनाः। उपदानवी हयशिरा पुलोमा कालका,तथा॥

३३—उपदानवीं हिरण्याक्षः क्रतुर्हयशिरा नृप। पुलोमा कालकां च द्वे वैश्वानरसुतेतुकः॥
उपयेमेऽथ भगवान्कश्यपो ब्रह्मचोदितः॥

३४—पौलोमाः कालकेयाश्च दानवा युद्धशालिनः। तयोः षष्टिसहस्राणि यज्ञघ्नांस्ते पितुः पिता॥
जघान स्वर्गतो राजन्नेक इंद्र प्रिय करः॥

३५—विप्रचित्तिः सिंहिकायां शतं चैकमजीजनत्। राहुज्येष्ठ केतुशतं ग्रहत्व य उपागतः॥

३६—अथात श्रूयतां वंशो योऽदितेरनुपूर्वशः। यत्र नारायणो देवः स्वांशेनावतरद्विभुः॥

३७—विविस्वानर्यमापूषात्वष्टाऽथ सविता भगः। धाता विधाता वरुणो मित्रः शक्र उरुक्रमः॥

३८—विवस्वतः श्राद्धदेवं संज्ञा सुषुवे मनुम्। मिथुनं च महाभागा यमं देवं यमीं तथा॥
सावै भूत्वाऽथ वडवा नासत्यौ सुषुवे भुवि॥

३९—छाया शनैश्चर लेभे सावर्णिं च मनु तत। कन्या च तपतीं यावै वव्रे संवरणं पतिम्॥

के कारण ब्रह्मा ने इन्हें मनुष्यों की सञ्ज्ञा दी है ॥ ४० ॥ पूषा संतान रहित थे। प्राचीन समय में जब शिवजी ने दक्ष प्रजापति पर क्रोध किया था, उस समय दाँत निकालकर उन्होंने शिव का उपहास किया था, इससे उनके दाँत टूट गए हैं। ये पिष्ट पदार्थों का भक्षण करते हैं ॥ ४१ ॥ त्वष्टा की रचना नामकी स्त्री दैत्यों की छोटी बहन थी। उसके सन्निवेश और विश्वरूप नामके दो बलवान् पुत्र हुए थे ॥ ४२ ॥ देवताओं के द्वारा अपमानित होकर बृहस्पति ने जब देवताओं का त्याग कर दिया था, उस समय देवताओं ने, अपने शत्रु दैत्यों का दौहित्र होने पर भी, इन विश्वरूप को ही अपना गुरु बनाया था ॥ ४३ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवें स्कंध का छठवाँ अध्याय समाप्त

४०—अर्यम्णो मातृकापत्नी तयोश्चर्षणयः सुता. । यत्र वै मानुषी जातिर्ब्रह्मणा चोपकल्पिता ॥

४१—पूषाऽनपत्यः पिष्टादो भग्नदंतोऽभवत्पुरा । योऽसौ दक्षाय कुपितं जहास विवृतद्विज ॥

४२—त्वष्टुर्दैत्यानुजा भार्या रचना नाम कन्यका । सन्निवेशस्तयोर्जज्ञे विश्वरूपश्च वीर्यवान् ॥

४३—तं वव्रिरे सुरगणा दौहित्रं द्विषतामपि । विमतेन परित्यक्ता गुरुणांगिरसेन यत् ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

इंद्र के द्वारा बृहस्पति का तिरस्कार, बृहस्पति का अदृश्य होना

और देवताओं के द्वारा विश्वरूप को पुरोहित वरण करना

राजा परीक्षित बोले—बृहस्पति ने अपने शिष्य देवताओं का त्याग किस लिए किया? इन शिष्यों ने अपने गुरु का जो अपराध किया हो, वह आप मुझ से कहें ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव बोले—राजन्! त्रिभुवन के ऐश्वर्य के अभिमान से जिसने सत्पथ का त्याग कर दिया था, ऐसे इन्द्र एक समय अपनी सभा मे ऊंचे सिंहासन पर बैठे हुए थे। मरुद्गण, वसु, रुद्र, आदित्य, ऋभु, विश्वदेव, साध्य और अश्विनीकुमार उनके चारों ओर खड़े थे। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, वेद कहने वाले मुनि, विद्याधर अप्सरा, किन्नर पक्षी और सर्प, उन इन्द्रदेव की सेवा कर रहे थे, उनकी स्तुति कर रहे थे और मनोहर-गीत गा रहे थे। चन्द्र-मण्डल के समान सुन्दर श्वेत छत्र लगा हुआ था तथा चक्रवर्तित्व के चामर-व्यजन आदि अन्य चिन्ह भी थे। इन्द्र के साथ आधे आसन पर इन्द्राणी बैठी हुई शोभित हो रही थीं ॥ २-६ ॥ इसी समय देवताओं के तथा इन्द्र के भी श्रेष्ठ गुरु बृहस्पति सभा मे आए। उन्हे आया देखकर अभ्युत्थान अथवा आसन आदि देकर इन्द्र ने उनका सत्कार नहीं किया ॥ ७ ॥ देवता और असुर जिनको नमस्कार करते हैं, उन मुनश्रेष्ठ बृहस्पति को सभा मे आया हुआ देख कर भी इद्र अपने आसन से नहीं उठे ॥ ८ ॥

राजोवाच—

१—कस्य हेतोः परित्यक्ता आचार्येणात्मनः सुराः। एतदाचक्ष्व भगवन् शिष्याणामक्रमं गुरौ ॥

श्रीशुक उवाच—

२—इन्द्रस्त्रिभुवनैश्वर्यमदोल्लङ्घितसत्पथः। मरुद्भिर्वसुभीरुद्रैरादित्यैर्ऋभुभिर्नृप ॥

३—विश्वेदेवैश्च साध्यैश्च नासत्याभ्यां परिश्रितः। सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥

४—विद्याधराप्सरोभिश्च किन्नरैः पतगोरगैः। निषेव्यमाणो मघवान् स्तूयमानश्च भारत ॥

५—उपगीयमानो ललितमास्थानाध्यासनाश्रितः। पाण्डुरेणातपत्रेण चन्द्रमण्डलचारुणा ॥

६—युक्तश्चान्यैः पारमेष्ठ्यैश्चामरव्यजनादिभिः। विराजमानः पौलोम्या सहार्धासनया भृशम् ॥

७—स यदा परमाचार्यं देवानामात्मनश्च ह। नाभ्यनन्दत सम्प्राप्तं प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥

८—वाचस्पतिं मुनिवरं सुरासुरनमस्कृतम्। नोच्चचालासनादिन्द्रः पश्यन्नपि सभागतम् ॥

बृहस्पति ने समझा कि इसे लक्ष्मी के मद का विकार हो गया है, अतः वे झटपट सभा से निकल कर चुपचाप अपने घर चले आए ॥ ९ ॥ इसी समय अपने द्वारा गुरु का अपमान हुआ जानकर इन्द्र अपनी सभा मे स्वयं अपने को ही धिक्कार देने लगे॥ १० ॥ खेद, अल्प बुद्धि वाले मैंने बुरा किया । मैंने ऐश्वर्य के अभिमान से सभा में गुरु का अपमान किया ॥ ११ ॥ त्रैलोक्य के राज्य की लक्ष्मी की भी कौन विद्वान् कामना करेगा कि जिस लक्ष्मी ने मुझ देवताओं के स्वामी को भी असुर के समान स्वभाव वाला बना दिया ? ॥ १२ ॥ जो लोग यह कहते हैं कि सिंहासन पर बैठे हुए राजा को किसीको अभ्युत्थान नहीं देना चाहिए, अर्थात् किसीके सम्मान के लिए उठकर खड़ा नहीं होना चाहिए, वे सत्य धर्म को नहीं जानते ॥ १३ ॥ कुपथ बतलाने वाले इन नरक-गामियों की बातों पर जो लोग विश्वास करते हैं, वे पत्थर की नौका पर बैठे हुओं के समान डूब जाते हैं ॥ १४ ॥ अब मैं मस्तक से उनके चरणों का स्पर्श करके दुष्टता छोड़कर,उन महा बुद्धिमान् गुरु को प्रसन्न करूंगा ॥ १५ ॥ इन्द्र इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि बृहस्पति अपनी माया के प्रभाव से घर में से भी अदृश्य हो गए ॥ १६ ॥ बहुत उपाय करने पर भी जब बृहस्पति का पता न मिला तो चिंता में पड़े हुए देवताओं के साथ इन्द्र ने अपने मन में शांति नहीं पाई ॥ १७ ॥ यह समाचार सुनते ही समस्त असुर शुक्राचार्य की सलाह से शस्त्र लेकर देवताओं पर चढ दौडे ॥ १८ ॥ असुरों के छोड़े हुए तीखे बाणों से इंद्र के सहित समस्त देवताओं के मस्तक, जाँघ और हाथ बिंध गए । वे लोग सिर झुकाकर इंद्र के पास गए ॥ १९ ॥ उन लोगों को इस प्रकार पीड़ित देखकर आत्मयोनि भगवान् ब्रह्मा दुखित हुए और उन्हें आश्वासन देते हुए बोले ॥ २० ॥

९—ततो निर्गत्य सहसा कविराङ्गिरसः प्रभुः । आययौ स्वगृहं तूष्णीं विद्वाञ्छ्रीमदविक्रियाम् ॥
१०—तर्ह्येव प्रतिबुध्येन्द्रो गुरुहेलनमात्मनः । गर्हयामास सदसि स्वयमात्मानमात्मना ॥
११—अहो बत ममासाधु कृतं वै दभ्रबुद्धिना । यन्मयैश्वर्यमत्तेन गुरुः सदसि कात्कृतः ॥
१२—को गृध्येत्पंडितो लक्ष्मीं त्रिविष्टपपतेरपि । ययाऽहमासुरं भावं नीतोऽद्य विबुधेश्वरः ॥
१३—ये पारमेष्ठ्यं धिषणमधितिष्ठन्न कंचन । प्रत्युत्तिष्ठेदिति ब्रूयुर्धर्मं ते न परं विदुः ॥
१४—तेषां कुपथदेष्टॄणां पततां तमसि ह्यधः । ये श्रद्दध्युर्वचस्ते वै मज्जन्त्यश्मप्लवा इव ॥
१५—अथाहममराचार्यमगाधधिषणं द्विजम् । प्रसादयिष्ये निशठः शीर्ष्णा तच्चरणं स्पृशन् ॥
१६—एवं चिन्तयतस्तस्य मघोनो भगवान् गृहात् । बृहस्पतिर्गतोऽदृष्टां गतिमध्यात्ममायया ॥
१७—गुरोर्नाधिगतः संज्ञां परीक्षन्भगवान् स्वराट् । ध्यायन् धिया सुरैर्युक्तः शर्म नालभतात्मनः ॥
१८—तच्छ्रुत्वैवासुराः सर्वे आश्रित्यौशनसं मतं । देवान्प्रत्युद्यमं चक्रुर्दुर्मदा आततायिनः ॥
१९—तैर्विसृष्टेषुभिस्तीक्ष्णैर्निर्भिन्नाङ्गोरुबाहवः । ब्रह्माणं शरणं जग्मुः सहेन्द्रा नतकंधराः ॥
२०—तांस्तथाऽभ्यर्दितान्वीक्ष्य भगवानात्मभूरजः । कृपया परया देव उवाच परिसान्त्वयन् ॥

ब्रह्मा बोले—देवश्रेष्ठ ! खेद है कि ऐश्वर्य के मद से आप लोगों ने ब्रह्मवेत्ता और जितेंद्रिय ब्राह्मण का अपमान किया। यह आप लोगों ने बड़ा अनुचित किया ॥ २१ ॥ आप समर्थ थे और आपके शत्रु असुर क्षीण थे, किंतु फिर भी इसी अनीति के फल से आप लोगों की उनके द्वारा पराजय हुई ॥ २२ ॥ इंद्र ! आप अपने शत्रुओं को देखें, वे गुरु का अपराध करने के कारण क्षीण हो गये थे, पुनः उन्होंने भक्ति पूर्वक उनकी सेवा करके वृद्धि पाई। शुक्राचार्य को अपने इष्टदेव के समान मानने वाले ये असुर इस समय तो हमारा स्थान ले लेने में भी समर्थ हो गए हैं ॥ २३ ॥ असुरों को शुक्राचार्य ने शिक्षा दी है, उनकी मन्त्रणा गुप्त रहती है, वे स्वर्ग को क्या समझते हैं अर्थात् कुछ भी नहीं गिनते। ब्राह्मण, भगवान् और गायों की जिन पर कृपा रहती है, उन राजाओं का अकल्याण नहीं होता ॥ २४ ॥ अतः आप लोग शीघ्र तपस्वी और धैर्यवान् त्वष्टा-पुत्र विश्वरूप का अनुसरण करें। आप लोग यदि उनका सत्कार करेंगे और असुरों के प्रति उनके पक्षपात को सहन करेंगे तो वे आपका मनोरथ पूर्ण करेंगे ॥ २५ ॥

श्रीशुकदेव बोले—राजन् ! इस प्रकार ब्रह्मा की बातें सुनकर देवताओं का कष्ट दूर हुआ। वे त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप के पास गए और उनका आलिंगन करके इस प्रकार बोले ॥ २६ ॥

देवता बोले—हम लोग आज आपके आश्रम में अतिथि होकर आए हैं। आपकाक ल्याण हो। तात ! आप पितरों का समयोचित कार्य करें ॥ २७ ॥ ब्रह्मन् ! सज्जन पुत्रों का यह धर्म

ब्रह्मोवाच—

२१—अहो बत सुरश्रेष्ठा ह्यभद्रं वः कृतं महत् । ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं दान्तमैश्वर्यान्नाभ्यनंदत ॥

२२—तस्यायमनयस्यासीत्परेभ्यो वः पराभवः । प्रक्षीणेभ्यः स्ववैरिभ्यः समृद्धानां च यत्सुराः ॥

२३—मघवन् द्विषतः पश्य प्रक्षीणान् गुर्वतिक्रमात् । सम्प्रत्युपचितान्भूयः काव्यमाराध्य भक्तितः ॥

आददीरन्निलयनं ममापि भृगुदेवताः ॥

२४—त्रिविष्टपं किं गणयन्त्यभेद्य मंत्रा भृगूणामनुशिक्षितार्थाः ।

न विप्रगोविंदगवीश्वराणां भवन्त्यभद्राणि नरेश्वराणां ॥

२५— तद्विश्वरूपं भजताशु विप्रं तपस्विनं त्वाष्ट्रमथात्मवंतं ।

सभाजितोऽर्थान्स विधास्यते वो यदि क्षमिष्यध्वमुतास्यकर्म ॥

श्रीशुक उवाच—

२६—तएवं मुदिता राजन्ब्रह्मणा विगतज्वराः । ऋषिं त्वाष्ट्रमुपव्रज्य परिष्वज्येदमब्रुवन् ॥

देवा ऊचु —

२७—वयं तेऽतिथयः प्राप्ता आश्रमं भद्रमस्तु ते । कामः सम्पाद्यतां तात पितॄणां समयोचितः ॥

है कि स्वयं पुत्रवान् होने पर भी वे पितरों की सेवा करें, फिर जो ब्रह्मचारी हैं, उनकी तो बात ही क्या है, अर्थात् पितरों की सेवा करना तो उनका धर्म है ही ॥ २८ ॥ आचार्य ब्रह्मा की, पिता प्रजापति की, भाई इन्द्र की, माता साक्षात् पृथ्वी की, बहन दया की, अतिथि स्वयं धर्म की, अभ्यागत अग्नि की तथा समस्त प्राणी भगवान् की मूर्ति हैं ॥ २९—३० ॥ अतः आपको तपस्या के द्वारा शत्रुओं के द्वारा पराजित होने से उत्पन्न हमारी पीड़ा दूर करके हमारी आज्ञा का पालन करना चाहिए ॥ ३१ ॥ आप वेद को जानने वाले हैं, ब्राह्मण हैं, हम लोग आपको अपने गुरु के रूप में वरण करना चाहते हैं, जिससे हम आपके तेज से सहसा ही अपने शत्रुओं को जीत लेंगे ॥ ३२ ॥ प्रयोजन सिद्ध करने के लिए छोटों का अभिवादन करना भी निंदनीय नहीं है । अन्य बातों में अवस्था से बड़प्पन समझा जाता है, किंतु विद्या में नहीं समझा जाता ॥ ३३ ॥

श्री शुकदेव बोले—इस प्रकार देवताओं के द्वारा पुरोहित बनने की प्रार्थना किए जाने पर महातपस्वी विश्वरूप प्रसन्न होकर उन लोगों से मधुर वाणी बोले ॥ ३४ ॥

विश्वरूप बोले—पौरोहित्य धर्मात्माओं के द्वारा निंदित और ब्रह्मतेज का नाश करनेवाला है, फिर भी जब लोकपालों ने उसकी याचना की है, तो मैं उसे अस्वीकार कैसे कर सकता हूँ ? आप लोग मुझे शिक्षा देने के योग्य हैं । बड़ों की आज्ञा का पालन करना ही स्वार्थ कहा जाता है ॥ ३५ ॥ शिल (खेत में गिरे हुए अन्न को चुनना) तथा उञ्छ (बाजार में अन्न बिक जाने पर गिरे हुए अन्न के दानों को चुनना) ये ही दो वृत्तियाँ अकिंचन पुरुषों का धन हैं । मैं इन्हींके द्वारा साधुओं का सत्कार करता हूँ, अतः स्वामियो ! जो पौरोहित्य निंदनीय है

२८—पुत्राणां हि परोधर्मः पितृशुश्रूषणं सतां । अपि पुत्रवतां ब्रह्मन्किमुत ब्रह्मचारिणां ॥

२९—आचार्यो ब्रह्मणोमूर्तिः पितामूर्तिः प्रजापतेः । भ्राता मरुत्पतेर्मूर्तिः माता साक्षात् क्षितेस्तनुः ॥

३०—दया या भगिनीमूर्तिर्धर्मस्यात्मातिथिः स्वयं । अग्नेरभ्यागतोमूर्तिः सर्वभूतानिचात्मनः ॥

३१—तस्मात्पितॄणामार्तानामार्तिं परपराभवं । तपसापनयंस्तात संदेशं कर्तुमर्हसि ॥

३२—वृणीमहेत्वोपाध्यायं ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं गुरुम् । यथाऽञ्जसा विजेष्यामः सपत्नांस्तव तेजसा ॥

३३—न गर्हयंति ह्यर्थेषु यविष्ठाङ्घ्र्यभिवादनं । छन्दोभ्योऽन्यत्र न ब्रह्मन्वयोज्यैष्ठ्यस्य कारणं ॥

ऋषिरुवाच—

३४—अभ्यर्थितः सुरगणैः पौरोहित्ये महातपाः । स विश्वरूपस्तानाह प्रसन्नः श्लक्ष्णया गिरा ॥

विश्वरूप उवाच—

३५—विगर्हितं धर्मशीलैर्ब्रह्मवर्च उपव्ययं । कथंनुमद्विधोनाथा लोकेशैरभियाचितं ॥

प्रत्याख्यास्यति तच्छिष्यः सएव स्वार्थ उच्यते ॥

तथा दुर्बुद्धि पुरुष जिससे प्रसन्न होता है, उसे मैं कैसे करूं ? ।। ३६ ।। फिर भी आप लोग बड़े हैं, आपने मांगा ही कितना है ? मैं आपकी प्रार्थना अस्वीकार न करूंगा, उसे प्राण और धन से पूरा करूंगा ।। ३७ ।।

श्रीशुकदेव बोले—महातपस्वी विश्वरूप उन लोगों को इस प्रकार अश्वासन देकर अत्यन्त मनोयोग से पौरोहित्य करने लगे ।। ३८ । यद्यपि असुरों की लक्ष्मी शुक्राचार्य की विद्या से रक्षित थी, फिर भी विश्वरूप ने उन्हें विष्णु के नारायण कवच-रूपी विद्या के प्रभाव से उनसे छीनकर इन्द्र को दे दिया ।। ३९ ।। उदार बुद्धिवाले विश्वरूप ने इन्द्र को वह विद्या दी, जिसके प्रभाव से रक्षित और शक्तिमान् इन्द्र ने असुरों की सेना को जीत लिया ।। ४० ।।

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवें स्कंध का सातवां अध्याय समाप्त

—※—

३६—अकिंचनानां हि धनं शिलोञ्छनं तेनेह निर्वर्तित साधुसत्क्रियः ।

कथं विगर्ह्यं नु करोम्यधीश्वराः पौरोधसं हृष्यति येन दुर्मतिः ।।

३७—तथापि न प्रतिब्रूयां गुरुभिः प्रार्थितं कियत् । भवतां प्रार्थितं सर्वं प्राणैरर्थैश्च साधये ।।

श्रीशुक उवाच—

३८—तेभ्य एवं प्रतिश्रुत्य विश्वरूपो महातपाः । पौरोहित्यं वृतश्चक्रे परमेण समाधिना ।।

३९—सुरद्विषां श्रियं गुप्तामौशनस्यापि विद्यया । आच्छिद्यादान्महेन्द्राय वैष्णव्या विद्यया विभुः ।।

४०—यया गुप्तः सहस्राक्षो जिग्येऽसुरचमूर्विभुः । तां प्राह स महेन्द्राय विश्वरूप उदारधीः ।।

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कन्धेसप्तमोऽध्यायः ।। ७ ।।

आठवाँ अध्याय

विश्वरूप का इंद्र को नारायण-कवच का उपदेश देना

राजापरीक्षित बोले—जिस विद्या से रक्षित होकर इन्द्र ने सर्वस्व हरण करने वाले शत्रुओं की सेना को खेल ही खेल में जीतकर त्रैलोक्य की लक्ष्मी का भोग किया था, भगवन्! जिससे सहज ही उन्होंने आततायी शत्रुओं को जीत लिया था, उस नारायण-कवच को आप मुझसे कहें ॥ १-२ ॥

श्रीशुकदेव बोले—विश्वरूप पुरोहित चुन लिए गए। उन्होंने इंद्र के पूछने पर जो नारायण-कवच कहा, उसे आप एकाग्र चित्त से सुनें ॥ ३ ॥

विश्वरूप बोले—कोई कष्ट पड़े तो हाथ पैर धोकर, आचमन करके, पवित्री धारण करके उत्तर की ओर मुँह करके, अष्टाक्षर तथा द्वादशाक्षर मंत्र से अंगन्यास और करन्यास करके, वाणी को संयत रखकर, पवित्र होकर नारायणाय-कवच पहन लेना चाहिए। 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मंत्र के ॐ कार आदि अक्षरों के अनुक्रम से दोनों पैर, दोनों जानु, दोनों जंघा पेट, हृदय, छाती, मुख और मस्तक में न्यास करे, अथवा विपरीत अक्षरों के क्रम से विपरीत अंगों में अर्थात् मस्तक से आरम्भ करके पैर तक न्यास करे ॥ ४-६ ॥ अनन्तर 'ॐ नमो भगवते

राजोवाच—

१—यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान्। क्रीडन्निव विनिर्जित्य त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥

२—भगवंस्तन्ममाख्याहि वर्म नारायणात्मकम्। यथाततायिनः शत्रून्येन गुप्तोऽजयन्मृधे ॥

श्रीशुक उवाच—

३—वृतः पुरोहितस्त्वाष्ट्रो महेंद्रायानुपृच्छते। नारायणाख्यं वर्माह तदिहैकमनाः शृणु ॥

विश्वरूप उवाच—

४—धौताङ्घ्रिपाणिराचम्य सपवित्र उदङ्मुखः। कृतस्वाङ्गकरन्यासो मंत्राभ्यां वाग्यतः शुचिः ॥
नारायणमयं वर्म सन्नह्येद्भय आगते ॥

५—पादयोर्जानुनोरूर्वोरुदरे हृद्यथोरसि। मुखे शिरस्यानुपूर्व्यादोंकारादीनि विन्यसेत् ॥
ओं नमो नारायणायेति विपर्ययमथापि वा ॥

६—करन्यासं ततः कुर्याद्द्वादशाक्षर विद्यया। प्रणवादि यकारांतमंगुल्यंगुष्ठपर्वसु ॥

वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मन्त्र के ॐ कार से सपुट किए हुए एक-एक अक्षर के द्वारा हाथों की ऊँगलियों और अगूठों के पोरों में न्यास करे अर्थात् दाहिने हाथ की तर्जनी से आरंभ करके बाएँ हाथ की तर्जनी तक ॐ से लेकर वा तक आठ अक्षरों का न्यास करे और शेष चार अक्षरों का दोनों अगूठों के चारों पोरों में 'ॐ विष्णवे नमः' इस मन्त्र के ॐकार का हृदय मे, वि का मस्तक मे, ष का भ्रूकुटि के मध्य में, ण का शिखा मे, वे का नेत्र में और न का समस्त सधियों मे न्यास करे, पुनः शेष रहे मकार को म. अस्त्राय फट् कहकर समस्त दिशाओं मे निक्षेप करे। ध्यान करने योग्य, ऐश्वर्य आदि छः शक्तियों से युक्त तथा विद्या, तेज और तप मूर्ति भगवान् का ध्यान करके यह नारायण-कवच कहना चाहिये ॥ ९ ॥

ॐ गरुड़ की पीठ पर जिन्होंने अपने चरण-कमल रखे हैं, जो अणिमा आदि आठ ऐश्वर्यों से युक्त हैं, आठ भुजाओं वाले हैं तथा शंख, चक्र, ढाल, तलवार, गदा, बाण, धनुष और पाश को धारण करने वाले हैं, वे भगवान् सब प्रकार से हमारी रक्षा करे ॥ १० ॥ फिर जल में भगवान् मत्स्यमूर्ति जल-जतु रूपी वरुण के पाश से हमारी रक्षा करें, स्थल में माया से ब्राह्मण बने हुए वामन और आकाश मे विश्वरूप त्रिविक्रम हमारी रक्षा करे ॥ ११ ॥ जिसके महा अट्टहास से दिशाएँ कांप उठी थीं और गर्भ गिर गए थे, असुरों के शत्रु वे नृसिंह भगवान् वन तथा युद्ध आदि के उपक्रम रूपी संकट से हमारी रक्षा करे ॥ १२ ॥ जिन्होंने अपनी दाढ़ से वसुधरा का उद्धार किया था, यज्ञकल्प वे वराह भगवान् मार्ग में हमारी रक्षा करे, पर्वत शिखरों पर परशुराम और प्रवास में लक्ष्मण के

७—न्यसेद्धृदयमोंकारं विकारमनुमूर्धनि । षकारं तु भ्रुवोर्मध्ये णकारं शिखयादिशेत् ॥
वेकारं नेत्रयोर्युञ्ज्यान्नकारं सर्वसधिषु ॥

८—मकारमस्त्रमुद्दिश्य मन्त्रमूर्तिर्भवेद्बुधः । स विसर्गं फडंततत्सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् ॥
ॐविष्णवे नम इति ॥

९—आत्मानं परमं ध्यायेद्ध्येयं षट्शक्तिभिर्युतम् । विद्यातेजस्तपो मूर्तिमिमं मंत्रमुदाहरेत् ॥

१०—ॐहरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षान्यस्तांघ्रिपद्मः पतगेंद्रपृष्ठे ।
दरारिचर्मासि गदेषु चापपाशान् दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः ॥

११—जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिर्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात् ।
स्थलेषु मायावटुवामनोऽव्यात्त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः ॥

१२—दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु प्रभुः पायान्नृसिंहोऽसुरयूथपारिः ।
विमुञ्चतो यस्य महाट्टहासं दिशो विनेदुर्न्यपतंश्च गर्भाः ॥

सहित रामचन्द्र हमारी रक्षा करें ॥ १३ ॥ अभिचार आदि समस्त उग्र धर्मों से, प्रमाद से नारायण तथा अभिमान से नर हमारी रक्षा करे योगभ्रष्ट होने से योगेश्वर दत्तात्रेय और कर्म-बन्धनों से गुणों के स्वामी कपिलदेव हमारी रक्षा करें ॥ १४ ॥ सनत्कुमार कामदेव से, हयग्रीव मार्ग मे देवताओं की अवहेलना करने से, नारद भगवान् के पूजन मे बाधा पड़ने से और समस्त नरकों से भगवान् कच्छप हमारी रक्षा करे ॥ १५ ॥ भगवान् धन्वन्तरी कुपथ्य से, जितेंद्रिय ऋषभदेव काम-क्रोध आदि के भय से, यज्ञावतार लोकापवाद से, बलदेव लौकिक अपघात से और शेषनाग सर्पों से हमारी रक्षा करे ॥ १६ ॥ भगवान् वेदव्यास अज्ञान से, बुद्ध प्रमाद उत्पन्न करनेवाले पाखंडों से और धर्म की रक्षा के निमित्त जिसने अवतार लिया है, वे कल्कि काल के मल के समान कलियुग से हमारी रक्षा करें ॥ १७ ॥ भगवान् केशव गदा से प्रातःकाल, वेणुधारी गोविंद संगम काल तक, शक्ति धारण करने वाले नारायण पूर्वाह्न में, चक्र धारण करने वाले विष्णु मध्याह्न मे, उग्र धनुर्धारी भगवान् मधुहा अपराह्न मे और ब्रह्मा विष्णु महेश,। इन तीन मूर्तियों वाले माधव सायकाल हमारी रक्षा करे। प्रदोष में हृषीकेश आधीरात तक और निशीथ में अकेले पद्मनाभ हमारो रक्षा करे। पिछली रात में श्रीवत्सधाम ईश, उप.काल में खड्गधारी जनार्दन, प्रभात मे दामोदर और समस्त संधियों में कालमूर्ति

१३—रक्षत्वसौ माऽध्वनि यज्ञकल्पः स्वदंष्ट्रयोन्नीतधरो वराहः ॥

रामोऽद्रिकूटेष्वथ विप्रवासे सलक्ष्मणोऽव्याद्भरताग्रजोऽस्मान् ॥

१४—मामुग्रधर्मादखिलात्प्रमादान्नारायणः पातुनरश्च हासात् ।

दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथ. पायाद् गुणेश' कपिलः कर्मबन्धात् ॥

१५—सनत्कुमारोऽवतुकामदेवाद्धयशीर्षामा पथि देवहेलनात् ।

देवर्षिवर्य. पुरुषार्चनान्तरात्कूर्मो हरिर्मां निरयादशेषात् ॥

१६—धन्वतरिर्भगवान्पात्वपथ्याद्द्वंद्वाद्भयादृषभोनिर्जितात्मा ।

यज्ञश्च लोकादवताज्जनाताद् बलो गणात्क्रोधवशादहींद्रः ॥

१७—द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद् बुद्धस्तु पाखण्डगणात्प्रमादात् ।

कल्कि' कलेः कालमलात्प्रपातु धर्मावनायोरुकृतावतारः ॥

१८—मा केशवो गदया प्रातरव्याद्गोविंद आसगवमात्तवेणु. ।

नारायणः प्राह्ण उदात्त शक्तिर्मध्यंदिने विष्णुररींद्रपाणिः ॥

१९—देवोऽपराह्णे मधुहो ग्रधन्वा साय त्रिधामाऽवतु माधवो मा ।

दोषे हृषीकेश उतार्धरात्रे निशिथ एकोऽवतु पद्मनाभः ॥

भगवान् विश्वेश्वर हमारी रक्षा करें ॥ १८-२० ॥ हे प्रलयकालीन अग्नि के समान तीक्ष्ण चक्र ! भगवान् के द्वारा छोड़े जाकर चारों ओर घूमते हुए तुम शीघ्र ही शत्रु-सेना को भस्मकर डालो, जैसे वायु की सहायता से अग्नि फूस को भस्म कर डालती है ॥ २१ ॥ हे गदा ! तुम्हारे स्फुलिंग वज्र के स्पर्श के समान हैं। तुम भगवान् की प्रिया हो। तुम ब्रह्माण्ड, वैनायक, यक्ष राक्षस, भूत और ग्रह आदि शत्रुओं को पीसकर चूर चूर कर डालो ॥ २२ ॥ हे शंख ! कृष्ण के द्वारा फूँके जाकर भयंकर शब्द करते तथा शत्रुओं के हृदयों को कँपाते हुए तुम राक्षस प्रमथ, प्रेत, मातृगण, पिशाच, ब्रह्मराक्षस और अन्य भयानक आकार वाले प्राणियों को नष्ट करदो ॥ २३ ॥ हे तीक्ष्ण धार वाले श्रेष्ठ खड्ग, भगवान् के द्वारा प्रस्तुत होकर तुम हमारे शत्रुओं को काट डालो। हे चन्द्रमा के समान सौ मण्डल वाली ढाल ! तुम पापी शत्रुओं की आँखो को ढँक दो और दुष्टदृष्टि वालों की दृष्टियों को हरण करलो ॥ २४ ॥ जिनसे हमें भय होता है तथा जो हमारे कल्याण के बाधक हैं वे ग्रह, केतु, मनुष्य, सर्प, दाढवाले जानवर तथा पाप ये सब भगवान के नाम और रूप के कीर्तन अस्त्र से शीघ्र ही नष्ट हो जायँ ॥ २५-२६ ॥ वैदिक स्तोत्रों से जिनकी स्तुति होती है तथा जो वेदमय और समर्थ हैं। वे गरुड़ भगवान् समस्त कष्टों से हमारी रक्षा करें, विश्वक्सेन अपने नामों से हमारी रक्षा करें ॥ २७ ॥

२०—श्रीवत्सधामाऽपरराञ्च ईशः प्रत्यूष ईशोऽसिधरो जनार्दनः ।
दामोदरोऽव्यादनुसन्ध्य प्रभाते विश्वेश्वरो भगवान् कालमूर्तिः ॥

२१—चक्र युगांतानलतिग्मनेमि भ्रमत्समताद्भगवत्प्रयुक्त ।
दन्दग्धि दग्ध्यरिसैन्यमाशु कक्ष यथावातसखो हुताशः ॥

२२—गदेऽशनिस्पर्शन विस्फुलिंगे निष्पिंढि निष्पिंढ्यजितप्रियाऽसि ।
कूष्माण्डवैनायकयक्षरक्षो भूतग्रहांश्चूर्णय चूर्णयारीन् ॥

२३—त्वं यातुधानप्रमथप्रेतमातृ पिशाच विप्रग्रहघोरदृष्टीन् ।
दरेन्द्र विद्रावय कृष्णपूरितो भीमस्वनोऽरेर्हृदयानि कम्पयन् ॥

२४—त्वं तिग्मधाराऽसि वरारिसैन्यमीशप्रयुक्तो मम छिन्धि छिन्धि ।
चक्षूंषि चर्मन् शतचन्द्रछादय द्विषामघोनां हर पापचक्षुषा ॥

२५—यन्नोभय ग्रहेभ्योऽभूत केतुभ्यो नृभ्यएव च । सरीसृपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यस्तथा ऽहोभ्यएव वा ॥

२६—सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपास्त्रकीर्तनात् । प्रयातु संक्षय सद्यो ये नः श्रेयः प्रतीपकाः ॥

२७—गरुडो भगवान् स्तोत्रस्तोभश्छन्दो मयः प्रभुः । रक्षत्वशेषकृच्छ्रेभ्यो विष्वक्सेनः स्वनामभिः ॥

भगवान् के नाम, रूप, वाहन और आयुध समस्त आपत्तियों से हमारी रक्षा करें। भगवान् के श्रेष्ठ पार्षद हमारी बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राण की रक्षा करें ॥ २८ ॥ वास्तव में सत्-असत् जो कुछ हैं, वह भगवान् ही है, इस सत्य के द्वारा हमारे समस्त उपद्रव नष्ट हों ॥ २९ ॥ अभेद दृष्टि वालों के लिये भगवान् भेद-रहित हैं, फिर भी वे अपनी माया से भूषण, आयुध और चिह्न नाम की शक्तियों को धारण करते हैं ॥ ३० ॥ इसी सत्य के द्वारा सर्वज्ञ भगवान् अपने समस्त स्वरूपों से सदा सर्वत्र और समस्त देशों में हमारी रक्षा करे ॥ ३१ ॥ नृसिंह के नाम के गर्जन से लोकों का भय दूर करने वाले तथा अपने तेज से समस्त तेजों को क्षीण करने वाले प्रह्लाद विदिशाओं में, दिशाओं में, ऊपर, नीचे और चारों ओर हमारी रक्षा करे ॥ ३२ ॥ भगवन्! यह नारायणात्मक कवच मैं ने कहा, जिससे रक्षित होकर आप सहज ही असुरों को जीत लेंगे ॥ ३३ ॥ इस कवच को धारण करने वाला आँख उठाकर जिसकी ओर देखे अथवा चरण से भी जिसे स्पर्श करे, वह भय से मुक्त हो जाता है ॥ ३४ ॥ इस विद्या के धारण करने वाले को राजा, चोर, ग्रह, अथवा बाघ आदि से कभी भय नहीं होगा ॥ ३५ ॥ प्राचीन समय में कौशिक गोत्र के किसी ब्राह्मण ने इस विद्या को धारण करके योग की धारणा के द्वारा निर्जन देश में देह त्याग किया था ॥ ३६ ॥ एक दिन स्त्रियों से घिरा हुआ गंधर्वाधिपति चित्ररथ विमान पर बैठकर उसके ऊपर से

२८—सर्वापद्भ्यो हरेर्नाम रूपयानायुधानि नः । बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् पान्तु पार्षदभूषणाः ॥

२९—यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत् । सत्येनानेन नः सर्वे यान्तु नाशमुपद्रवाः ॥

३०—यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम् । भूषणायुधलिंगाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया

३१—तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान् हरिः । पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥

३२—विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधः समंतादन्तर्बहिर्भगवान्नारसिंहः ।
प्रहापयल्लोकभयं स्वनेन स्वतेजसा ग्रस्तसमस्ततेजाः ॥

३३—मघवन्निदमाख्यातं वर्म नारायणात्मकं । विजेष्यस्यञ्जसा येन दंशितोऽसुरयूथपान् ॥

३४—एतद्धारयमाणस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा । पदा वा संस्पृशेत्सद्यः साध्वसात्स विमुच्यते ॥

३५—न कुतश्चिद्भयं तस्य विद्यां धारयतो भवेत् । राजदस्युग्रहादिभ्यो व्याघ्रादिभ्यश्च कर्हिचित् ॥

३६—इमां विद्यां पुरा कश्चित्कौशिको धारयन् द्विजः । योगधारणया स्वांगं जहौ स मरुधन्वनि ॥

३७—तस्योपरि विमानेन गंधर्वपतिरेकदा । ययौ चित्ररथः स्त्रीभिर्वृतो यत्र द्विजक्षयः ॥

जा रहा था, जहाँ उस ब्राह्मण की मृत्यु हुई थी। ३७॥ वहाँ वह आकाश से विमान के सहित औंधे मुँह गिर पड़ा। अनंतर बालखिल्य ऋषियों के कहने से उसकी अस्थियों को लेकर उसने प्राची सरस्वती में डाला और स्नान करके विस्मित होता हुआ अपने धाम को गया॥ ३८॥

श्री शुकदेव बोले— जो मनुष्य इस नारायण-कवच को समय पर सुनाता है अथवा जो इसे धारण करता है, समस्त प्राणी उसके सम्मुख नत होते हैं और उसके समस्त भय दूर हो जाते हैं। इंद्र ने विश्वरूप के द्वारा इस विद्या को प्राप्त करके युद्ध मे असुरों को जीता और त्रैलोक्य की लक्ष्मी का भोग किया॥ ३९-४०॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवें स्कन्ध का आठवाँ अध्याय समाप्त

—•—

३८—गगनान्न्यपतत्सद्यः सः विमानो ह्यवाक्शिराः। स बालखिल्यवचनादस्थीन्यादाय विस्मितः॥
प्रास्यप्राची सरस्वान्यां स्नात्वा धामस्वमन्वगात्॥

श्रीशुक उवाच—

३९—य इदं शृणुयात्काले यो धारयति चादृतः। तं नमस्यन्ति भूतानि मुच्यते सर्वतो भयात्॥

४०—एतां विद्यामधिगतो विश्वरूपाच्छतक्रतुः। त्रैलोक्य लक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान्॥

इतिश्रीभा०म०ष०नारायणवर्मनामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

नवाँ अध्याय

विश्वरूप का वध; वृत्रासुर की उत्पत्ति देवताओं की स्तुति से भगवान् का प्रसन्न होना

श्रीशुकदेव बोले—भारत ! सुना है कि इस विश्वरूप के तीन सिर थे, एक सोमपान के लिए, दूसरा सुरापान के लिए और तीसरा अन्न खाने के लिए ॥ १ ॥ राजन् ! ये यज्ञों में देवताओं को भाग देने का मंत्र ऊँचे स्वर से, प्रकट रूप से तथा विनयपूर्वक कहते थे। इनके पितर देवता थे ॥ २ ॥ ये ही मातृ-स्नेह के वश होकर यज्ञ में गुप्त रूप से असुरों को भी भाग देते थे ॥ ३ ॥ धर्म के प्रतिकूल देवताओं के प्रति उनकी यह अवहेलना देखकर डरे हुए इंद्र ने क्रोध से शीघ्र ही उनका मस्तक काट लिया ॥ ४ ॥ सोम पीने वाला उनका जो सिर था, उससे कपिंजल, सुरा पीने वाले से कलविंक और अन्न खाने वाले से तित्तिर नाम के पक्षी उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ यद्यपि इंद्र इस ब्रह्म-हत्या को दूर कर सकते थे, किंतु उन्होंने इसे धारण किया और एक वर्ष के अनंतर लोकापवाद मिटाने के लिए उस ब्रह्म-हत्या का चार भाग करके भूमि, जल, वृक्ष और स्त्रियों में बाँट दिया ॥ ६ ॥ भूमि ने उस पाप का चौथा भाग इस वर के साथ स्वीकार किया कि हमारे गढ़े अपने आप भर जाया करें। पृथ्वी में जितना ऊसर देख पड़ता है, वह इस ब्रह्म-हत्या का

श्रीशुक उवाच—

१—तस्यासन्विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत। सोमपीथं सुरापीथ मन्नादमिति शुश्रुम ॥

२—स वै बर्हिषि देवेभ्यो भागं प्रत्यक्षमुच्चकैः। अवदद्यस्य पितरो देवाः सप्रश्रयं नृप ॥

३—सएव हि ददौ भागं परोक्षमसुरान्प्रति। यजमानो वहद्भागं मातृस्नेहवशानुगः ॥

४—तद्देवहेलनं तस्य धर्मालीकं सुरेश्वरः। आलक्ष्य तरसा भीतस्तच्छीर्षाण्यच्छिनद्रुषा ॥

५—सोमपीथं तु यत्तस्य शिर आसीत्कपिंजलः। कलविंकः सुरापीथमन्नादं यत्स तित्तिरिः ॥

६—ब्रह्महत्यामंजलिना जग्राह यदपीश्वरः। संवत्सरांते तदघं भूतानां सविशुद्धये।

भूम्यंबुद्रुमयोषिद्भ्यश्चतुर्धा व्यभजद्धरिः ॥

७—भूमिस्तुरीयं जग्राह खातपूरवरेण वै। ईरिणं ब्रह्महत्याया रूपं भूमौ प्रदृश्यते ॥

ही रूप है ॥ ७ ॥ वृक्षों ने चौथे भाग के साथ यह वर माँगा कि काटे जाने पर हम पुनः उग आवें। उनमें यह ब्रह्म-हत्या गोंद के रूप में दीख पड़ती है ॥ ८ ॥ स्त्रियों ने इस वर के साथ चौथा भाग स्वीकार किया कि प्रसव-काल तक किया हुआ सम्भोग गर्भ के लिए हानिकारक न हो। उन में प्रतिमास रजस्राव के रूप में यह ब्रह्म-हत्या दीख पड़ती है ॥ ९ ॥ जल ने इस प्रकार के साथ चौथा भाग स्वीकार किया कि कुएँ अथवा नदी आदि से हमको निकाल देने पर भी हम उसमें ज्यों के त्यों बने रहें। जल में जो बुद्-बुद् और फेन दीख पड़ता है, वह ब्रह्महत्या का ही स्वरूप है! जल से इन्हें दूर करने वाला ब्रह्म-हत्या के पाप को दूर करता है ॥ १० ॥ जिनका पुत्र मारा गया था, ऐसे त्वष्टा ने इन्द्र का शत्रु उत्पन्न करने के निमित्त हे, इंद्रशत्रु ! वृद्धि पाओ और शीघ्र ही शत्रु का नाश करो, इस अर्थ का मन्त्र कहकर अग्नि में होम किया ॥ ११ ॥उस होम के प्रभाव से दक्षिणाग्नि में से एक भयंकर रूप वाला पुरुष उत्पन्न हुआ मानों प्रलय-काल में लोकों का काल उत्पन्न हुआ हो ॥ १२ ॥ फेंका हुआ बाण जितनी दूर गिरता है, यह पुरुष प्रतिदिन उतनाही बढ़ने लगा। यह जले हुए पहाड़ के समान काले रंग वाला था। इसका तेज सन्ध्याकाल के बादलों के समान था ॥ १३ ॥ तपाए हुए ताँबे के समान इसकी शिखा और मूँछें थीं और आँखें मध्याह्न-काल के सूर्य के समान प्रखर थीं ॥ १४ ॥ देदीप्यमान तीन फल वाले शूल में मानो पृथ्वी और आकाश का भेद कर, वह नाचता था, गर्जन करता था और पैरों से पृथ्वी को कम्पित करता था ॥ १५ ॥ बड़े और भयानक दाढ़ वाला वह पुरुष गुफा के समान अपने गंभीर मुख से बार-बार जँभाई लेते हुए मानों आकाश को पाता, जीभ से तारा-गणों को चाटता और तीनों लोकों को ग्रास बनाता था। उसे देखकर त्रस्त हुए सब लोग

८—क्षुर्ये छेदविरोहेण वरेण जगृहुर्द्रुमाः। तेषां निर्यासरूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते ॥

९—शश्वत्कामवरेणांहस्तुरीयं जगृहुः स्त्रियः। रजो रूपेण तास्वंहो मासि मासि प्रदृश्यते ॥

१०—द्रव्यभूयो वरेणापस्तुरीयं जगृहुर्मलं। तासुबुद्बुदफेनाभ्यां दृष्टं तद्धरति क्षिपन् ॥

११—हतपुत्रस्ततस्त्वष्टा जुहावेंद्राय शत्रवे। इन्द्रशत्रो विवर्धस्व माचिरं जहि विद्विषम् ॥

१२—अथान्वाहार्य पचनादुत्थितो घोरदर्शनः। कृतांत इव लोकानां युगांतसमये यथा ॥

१३—विष्वग्विवर्धमानं तमिषुमात्रं दिने दिने। दग्धशैलप्रतीकाशं संध्याऽभ्रानीकवर्चसं ॥

१४—तप्तताम्रशिखा श्मश्रुं मध्याह्नार्कोग्रलोचनं ॥

१५—देदीप्यमाने त्रिशिखे शूल आरोप्य रोदसी। नृत्यंतमुन्नदंतं च चालयंतं पदा महीम् ॥

१६—दरी गभीरवक्त्रेण पिबताच नभस्तलम्। लिहताजिह्वयर्क्षाणि ग्रसता भुवनत्रयम् ॥

दसों दिशाओं में भागने लगे ॥ १६-१७ ॥ त्वष्टा के पुत्र रूपी इस अन्धकार ने समस्त लोकों को ढक लिया, इसलिये इस अत्यन्त दारुण तथा पापी पुरुष का नाम वृत्र हुआ ॥ १८ ॥ अपने गणों के सहित श्रेष्ठ देवता दौड़कर अपने-अपने दिव्य अस्त्र-शस्त्रों से उसे मारने लगे, लेकिन वह उन सबों को खा गया ॥ १९ ॥ अनन्तर विस्मित दुखी और तेजहीन ये सब देवता एकाग्र चित्त से अन्तर्यामी भगवान् की स्तुति करने लगे ॥ २० ॥

देवता बोले—वायु, आकाश, अग्नि, जल, पृथ्वी, तीनोंलोक, ब्रह्मा आदि तथा हम लोग जिनसे भय खाते हैं, जिनकी आज्ञा के अनुसार चलते हैं तथा काल भी जिनसे भयभीत होता है, वे भगवान् हमारे रक्षक हों ॥ २१ ॥ अहङ्कार-रहित शांत अपने स्वरूप के लाभ से ही संतुष्ट तथा उपाधि-रहित इन भगवान् को छोड़कर जो दूसरे का शरण जाता है, वह मूर्ख कुत्ते की पूँछ पकड़कर समुद्र के पार जाना चाहता है ॥ २२ ॥ जिसको बड़ी सींगों में पृथ्वीरूपी अपनी नौका को बाँधकर मनु सङ्कट से पार हो गए थे, वे भगवान् मत्स्यावतार वृत्ररूपी महा सङ्कट से हमारी रक्षा भी अवश्य ही करेंगे ॥ २३ ॥ प्राचीन काल में तीव्र वायु के झकोरों से, उठी हुई लहरों के शब्दों से नाभिकमल से विकराल प्रलय के जल में गिरे हुए ब्रह्मा अकेले ही थे, उस सङ्कट से जिन्होंने उनकी रक्षा की, वे ही भगवान् हमारे सहायक हों ॥ २४ ॥ जिन्होंने अपनी माया से अकेले ही हम लोगों को उत्पन्न किया है, जिनकी कृपा से हम लोग जगत् की सृष्टि करते हैं, जो हमारे पहले ही अंतर्यामिरूप से कार्य करते हैं, किंतु भिन्न-भिन्न स्वामित्व

१७—महता रौद्रदंष्ट्रेण जृम्भमाणं मुहुर्मुहुः । वित्रस्तादुद्रुवुर्लोका वीक्ष्य सर्वे दिशो दश ॥

१८—येनावृता इमे लोकास्तमसा त्वाष्ट्रमूर्तिना । स वै वृत्र इति प्रोक्तः पापः परमदारुणः ॥

१९—तं निजघ्नुरभिद्रुत्य सगणा विबुधर्षभाः । स्वैः स्वैर्दिव्यास्त्रशस्त्रौघैः सोऽग्रसत्तानि कृत्स्नशः ॥

२०—ततस्ते विस्मिताः सर्वे विषण्णा ग्रस्ततेजसः । प्रत्यञ्चमादिपुरुषमुपतस्थुः समाहिताः ॥

देवा ऊचुः—

२१—वाय्वम्बराग्न्यप्क्षितयस्त्रिलोका ब्रह्मादयो ये वयमुद्विजन्तः ।
हराम यस्मै बलिमन्तकोऽसौ बिभेति यस्मादरणं ततो नः ॥

२२—अविस्मितं तं परिपूर्णकामं स्वेनैव लाभेन समं प्रशान्तम् ।
विनोपसर्पत्यपरं हि बालिशः श्वलाङ्गुलेनातितितर्ति सिन्धुम् ॥

२३—यस्योरुशृङ्गे जगतीं स्वनावं मनुर्यथाबध्य ततार दुर्गम् ।
स एव नस्त्वाष्ट्रभयाद् दुरन्तात् त्राताश्रितान् वारिचरोऽपि नूनम् ॥

२४—पुरा स्वयम्भूरपि संयमाम्भस्युदीर्णवातोर्मिरवैः कराले ।
एकोऽरविन्दात् पतितस्ततार तस्माद् भयाद् येन स नोऽस्तु पारः ॥

का अभिमान रखने वाले हम लोग जिनके स्वरूप को नहीं जानते, जो प्रत्येक युग में स्वयं नित्य होते हुए भी देवता, ऋषि, पशु, पक्षी तथा मनुष्यों मे अवतार लेकर हम लोगों को आत्मसात् करके पीडाओं से हमारी रक्षा करते हैं। जो हमारे आत्मारूप, इष्टदेव, सर्वरूप, सबसे भिन्न सबके परम कारण रूप,प्रधान पुरुषरूप और शरणागत को रक्षा करने वाले हैं, हम सब उन परमेश्वर की शरण जाते हैं। वे महात्मा शरण आए हुए हम लोगों का कल्याण करेंगे, क्योंकि हम लोग उन्हींके है ॥ २५-२७ ॥

श्रीशुकदेव बोले—महाराज! इस प्रकार उन देवताओं के स्तुति करने पर शंख, चक्र और गदा को धारण करने वाले भगवान् ने पहले उन के हृदय मे और पुनः बाहर उन लोगों को दर्शन दिया ॥ २८ ॥ श्रीवत्स तथा कौस्तुभ मणि के अतिरिक्त भगवान् के ही समान रूपवाले सोलह पार्षद चारों ओर से उनकी सेवा कर रहे थे। राजन्! शरत्काल के विकसित कमल के समान नेत्रवाले उन भगवान् को देखकर दर्शन के आह्लाद से विह्वल हुए उन समस्त देवताओं ने पहले पृथ्वी पर दण्डवत किया। पुनः धीरे-धीरे उठकर वे स्तुति करने लगे ॥ २९-३० ॥

देवता बोले—आप यज्ञरूपी सामर्थ्य वाले हैं, आप को नमस्कार। आप कालरूप हैं, दैत्यों पर चक्र चलाने वाले हैं और अनेक सुंदर नामों वाले हैं, आप को नमस्कार ॥ ३१ ॥ धातः! आप सत्व, रज, तम, इन तीन गुणों के स्वामी हैं। इस त्रिगुणात्मिका तीन गतियों के परमपद निर्गुण स्वरूप को जानने में वर्त्तमान समय का कौन मनुष्य समर्थ हो सकता

२५—य एक ईशो निजमायया नः ससर्ज येनानुसृजाम विश्वं।
वयं न यस्यापि पुरः समीहतः पश्याम लिंगं पृथगीशमानिनः ॥

२६—यो नः सपत्नैर्भृशमर्द्यमानान्देवर्षितिर्यङ्नृषु नित्य एव।
कृतावतारस्तनुभिः स्वमायया कृत्वात्मसात्पाति युगे युगे च ॥

२७—तमेव देवं वयमात्मदैवतं परं प्रधानं पुरुषं विश्वमन्यं।
व्रजाम सर्वे शरणं शरण्यं स्वानां स नो धास्यति शं महात्मा ॥

श्रीशुक उवाच—

२८—इति तेषां महाराज सुराणामुपतिष्ठतां। प्रतीच्यां दिश्यभूदाविः शंखचक्रगदाधरः ॥

२९—आत्मतुल्यैः षोडशभिर्विना श्रीवत्सकौस्तुभौ। पर्युपासितमुन्निद्र शरदम्बुरुहेक्षणं ॥

३०—दृष्ट्वा तमवनौ सर्वे ईक्षणाह्लादविक्लवाः। दण्डवत्पतिता राजन् शनैरुत्थाय तुष्टुवुः ॥

देवा ऊचु.—

३१—नमस्ते यज्ञवीर्याय वयसे उतते नमः। नमस्ते ह्यस्तचक्राय नमः सुपुरुहूतये ॥

है ? ॥ ३२ ॥ हे भगवन् ! नारायण ! वासुदेव ! आदिपुरुष ! महानभाव ! परम मंगलमय ! परम कल्याण ! परम कारुणिक ! एकमात्र जगदाधार ! समस्त लोकों के एक मात्र स्वामी ! सर्वेश्वर ! लक्ष्मीनाथ ! परमहंस-सन्यासियों ने अष्टांग योग की समाधि के द्वारा चित्त को एकाग्र करके भगवद्भजन के द्वारा अपने हृदय के अज्ञानरूप कपाट को खोल दिया है, उनके हृदय में प्रत्यक्ष जान पडने वाले अपने रूप के प्रकाश में अपने ही समान जो स्वरूप-सुख प्राप्त होता है, आप उसके अनुभव के समान हैं ॥ ३३ ॥ आपकी लीला का क्रम दुर्बोध्य है। क्योंकि आश्रय-रहित, शरीर-रहित, और गुण-रहित आप हमारी सहायता की अपेक्षा के बिना ही निर्विकार स्वरूप से इस जगत् की सृष्टि करते, पालन करते तथा संहार करते हैं ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार प्राकृत पुरुष घर-गृहस्थी फैलाकर अपने शुभ और अशुभ कर्मों का फल भोगता है, उसी प्रकार आप भी सृष्टि करके और उसमे जीवरूप से निवास करके परतंत्रत पूर्वक अपने पाप-पुण्यों का फल भोगते हैं अथवा आत्माराम, उपशमशील और अखड चैतन्य-रूप से साक्षी होकर रहते हैं, यह हम लोग नहीं जानते ॥ ३५ ॥ किन्तु आप के स्वरूप में इन दोनों बातों का विरोध नहीं होता, क्योंकि आप अपरिमित गुण वाले और अनन्त महिमामय ईश्वर हैं, जो शास्त्र आपके स्वरूप का वर्णन करने जाकर अत्यन्त भ्रम में पड़े हैं, वे सब दुष्ट अन्तःकरण और कुतर्कों के आश्रयरूप हैं। जो लोग उन कुतर्कों का आश्रय लेकर विवाद करते हैं, आप उन सब विवादों के अगोचर हैं। यह समस्त मायामय जगत् आप ही में लीन हो रहा है। केवल आप की माया से ही समस्त कार्य होते हैं, वास्तव में यदि आप ही

३२—यत्ते गतीनां तिसृणा मीशितुः परमं पद । नार्वाचीनो विसर्गस्य धातर्वेदितुमर्हति ॥

३३—ओंनमस्तेऽस्तुभगवन्नारायण वासुदेवादिपुरुष महापुरुष महानुभाव परममगल परमकल्याण परमकारुणिक केवलजगदाधार लोकैकनाथ सर्वेश्वर लक्ष्मीनाथ परमहंस परिव्राजकैः परमेणात्मयोगसमाधिना परिभावित परिस्फुट पारमहस्य धर्मेणोद्घाटिततमः कपाटद्वारे चित्तेऽपावृत आत्मलोके स्वयमुपलब्ध निजसुखानुभवो भवान् ॥ १ ॥

३४—दुरवबोध इव तवाय विहारयोगो यदशरणोऽशरीर इदमनवेक्षितास्मत्समवाय आत्मनैवाविक्रियमाणेन सगुणमगुणः सृजसि पासि हरसि ॥ २ ॥

३५—अथ तत्र भवान्किंदेवदत्तवदिह गुणविसर्गपतितः पारतंत्र्येण स्वकृतकुशलाऽकुशलं फलमुपाददात्याहो स्विदात्माराम उपशमशीलः समंजसदर्शन उदास्त इतिहवाव न विदामः ॥ ३ ॥

३६—नहि विरोध उभयं भगवत्यपरिगणित गुणगण ईश्वरेऽनवगाह्यमाहात्म्येऽर्वाचीन विकल्पवितर्कविचार प्रमाणाभास कुतर्कशास्त्रकलिलान्तःकरणाश्रय दुरवग्रहवादिनां विवादानवसर उपरतसमस्तमायामये केवलएवात्ममायामन्तर्धाय कोन्वर्थो दुर्घट इव भवति स्वरूपद्वयाभावात् ॥ ४ ॥

कर्त्ता होते तो विरोध की संभावना थी, क्योंकि आपका स्वरूप दो प्रकार का नहीं है ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार रस्सी का एक ही टुकड़ा भिन्न-भिन्न देखने वालों को सर्प आदि भिन्न-भिन्न रूपों में दीख पड़ता है, उसी प्रकार आप भी, जो एक ही हैं, सम-विषम बुद्धिवालों को कृपा करने वाले और दण्ड देनेवाले आदि भिन्न-भिन्न रूपों में दीख पड़ते हैं ॥ ३७ ॥ जो अनेक रूपों में दीख पड़ते हैं, वह एक मात्र आप सत्स्वरूप, सर्वेश्वर तथा समस्त जगत् के कारणों के भी कारण हैं। सबके अन्तर्यामी होने के कारण समस्त विषयों को प्रकाशित करने से ज्ञात होने वाले आपका श्रुतियों ने एक ही रूप निश्चित किया है ॥ ३८ ॥ इस लिए आपके महिमा रूपी अमृत-रस के समुद्र के एक बार चखे हुए बिन्दु से, मन में निरन्तर झरते हुए अखंड सुख ने जिनके इस तथा परलोक के अल्प और तुच्छ विषम-सुख को भुला दिया है, ऐसे सच्चे साधु; स्वार्थ में कुशल और आपको ही अपना प्रिय बन्धु मानने वाले भक्त, जिनका मन समस्त प्राणियों के प्रिय सखा और सर्वात्मा-रूप आप में ही निरन्तर रहने के कारण परम सुख के कारण हो गए हैं, आपके चरण-कमल की सेवा को बार-बार क्यों छोड़ दें, जिस सेवा से पुनः इस संसार में नहीं आना पड़ता ? ॥ ३९ ॥ हे त्रैलोक्य के आत्मा तथा आश्रयरूप ! त्रिविक्रम ! तीनों लोकों का सचालन करने वाले ! त्रैलोक्य के लिए प्रिय प्रभाव वाले ! दण्ड देने वाले ! यद्यपि दैत्य और दानव आदि आपके विभूतिरूप हैं, फिर भी यह उनके उद्यम का समय नहीं है, ऐसा समझकर जैसे आपने प्राचीन समय में अपनी माया से सुर नर, पशु, मिश्रित, और जलचरों का अवतार धारण करके उन्हें दण्ड दिया था, वैसे ही यदि आप की इच्छा हो तो इस समय भी इस वृत्रासुर का नाश करें ॥ ४० ॥ हे पिता ! पितामह ! दोष-रहित हम आपके हैं,

---

३७—समविषममतीनां मतमनुसरसि यथा रज्जुखण्डः सर्पादि धियाम् ॥ ५ ॥

३८—स एव हि पुनः सर्ववस्तुनिवस्तु स्वरूपः सर्वेश्वरः सकलजगत्कारणकारणभूतः सर्वप्रत्यगात्मत्वात्सर्वगुणा भासोपलक्षित एक एव पर्यवशेषितः ॥ ६ ॥

३९—अथ ह वाव तव महिमामृतरससमुद्रविप्रुषा सकृदवलीढया स्वमनसि निष्यन्दमानानवरतसुखेन विस्मारितदृष्टश्रुतविषयसुखलेशाभासाः परमभागवता एकान्तिनो भगवति सर्वभूतप्रियसुहृदि सर्वात्मनि नितरां निरन्तरं निर्वृतमनसः कथमु ह वा एते मधुमथन पुनः स्वार्थकुशला ह्यात्मप्रियसुहृदः साधवस्त्वच्चरणाम्बुजानुसेवां विसृजन्ति न यत्र पुनरयं संसारपर्यावर्तः ॥ ७ ॥

४०—त्रिभुवनात्मभवन त्रिविक्रम त्रिनयन त्रिलोकमनोहरानुभाव तवैव विभूतयो दितिजदनुजादयश्चापि तेषामनुपक्रमसमयोऽयमिति स्वात्ममायया सुरनरमृगमिश्रितजलचराकृतिभिर्यथापराधं दण्डं दण्डधर दधर्थ एवमेनमपि भगवन् जहि त्वाष्ट्रमुत यदि मन्यसे ॥ ८ ॥

आपके सम्मुख नत हैं.हमारे हृदय आप के चरण कमलों के ध्यान की शृंखला में बँधे हुए हैं। आपने दर्शन देकर हम लोगों को अपनाया है, अतः आप हमारे अन्तःकरण के ताप को दया पूर्वक स्वच्छ,सुंदर और शीतल हँसी के सहित देखकर तथा अपने मुखनि:सृत मधुर और सरस वाणी रूपी अमृत की कला से दूर करें ॥ ४१ ॥ भगवन्! आप समस्त जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय काल में निमित्त रूप हुई माया से विनोद करने वाले हैं, समस्त जीव समूह के अंतः करणों में ब्रह्मरूप और अतर्यामिरूप से तथा बाहर प्रधानरूप से सबके मूल कारण होने के कारण देश, काल तथा देह की अवस्थाओं का अनुभव करने वाले हैं। आप बुद्धि आदि समस्त पदार्थों के साक्षी, निरजन रूप, परमात्मा और परब्रह्म हैं, आपको हम आपनी कौन-कौन सी वात वतावें ? जिस प्रकार अग्नि के समीप चिनगारियों को प्रकाश करने की आवश्यकता नहीं होती,उसी प्रकार आपके निकट हमें भी अपनी वात कहने की आवश्यकता नहीं है ॥ ४२ ॥ अतएव अनेक प्रकार के दु:खों से उत्पन्न सांसारिक परिश्रम को मिटाने वाली, परम गुरु आप भगवान् के चरण- कमल की छाया में हम लोग जिस कार्य की इच्छा से उपस्थित हुए हैं, उसे आप स्वय ही कर डालें ॥ ४३ ॥ भगवान्! तीनों लोकों का ग्रास करते हुए वृत्रासुर का आप शीघ्र ही नाश करें, जिसने हमारे तेज, अस्त्र और आयुधों को ग्रस्त कर लिया है ॥ ४४ ॥ शुद्ध,

---

४१—अस्माकं तावकना तव नतानामतततामहतव चरणनलिनयुगलध्यानानुबद्ध हृदयनिगडाना स्वलिंगविवरणेनात्मसात्कृतानामनुकंपाऽऽनुरंजित विशदरुचिर शिशिरस्मितावलोकेन विगलित मधुरमुखरसामृतकलयाचातरतापमनघार्हसि शमयितुं ॥ ६ ॥

४२—अथ ह भगवंस्तवास्माभिरखिलजगदुत्पत्तिस्थितिलयनिमित्ताय मानदिव्यमायाविनोदस्य सकलजीवनिकायानामंतर्हृदयेषु बहिरपि च ब्रह्मप्रत्यगात्मस्वरूपेण प्रधानरूपेणाच यथादेशकालदेहावस्थानविशेषंतदुपादानोपलम्भकतयाऽनुभवतः सर्वप्रत्ययसाक्षिण आकाशशरीरस्य साक्षात्परब्रह्मणःपरमात्मनः कियानिहवा अर्थविशेषो विज्ञापनीयः स्याद्विस्फुलिंगादिभिरिव हिरण्यरेतसः ॥ १० ॥

४३—अतएव स्वटा तदुपकल्पयास्माकं भगवनः परमगुरोस्तवचरणशतपलाशच्छायां विविधवृजिन संसारपरिश्रमोपशमनीमुपसृताना वय यत्कामेनोपसादिताः ॥ ११ ॥

४४—अथो ईशजहि त्वाष्ट्रं ग्रसत भुवनत्रयम्। ग्रस्तानि येन नः कृष्ण तेजांस्यस्त्रायुधानि च ॥

हृदयाकाश निवासी, बुद्धि आदि के साक्षी, सदानंदरूप, शोभन यश वाले, अनादि, सत्पुरुषों के द्वारा ग्रहण करने योग्य और संसार-मार्ग में चलने वाले पुरुषों के शरण आने पर उनके लिए अंतिम और श्रेष्ठ फलरूप आप भगवान को हम नमस्कार करते हैं ॥ ४५ ॥

श्रीशुकदेव बोले—राजन् ! इस प्रकार देवताओं ने आदर सहित भगवान की स्तुति की । अपनी स्तुति सुनकर भगवान प्रसन्न हुए और उन्होंने उन लोगों से कहा ॥ ४६ ॥

श्रीभगवान बोले—सुरश्रेष्ठ ! आप लोगों ने जो हमारी स्तुति की है, उस आप के स्तुति-ज्ञान से मैं प्रसन्न हूँ, जिससे मनुष्यों को अपनी असांसारिकता की स्मृति और मुझमें भक्ति उत्पन्न होती है ॥ ४७ ॥ देवगण ! मेरे प्रसन्न होने पर क्या वस्तु दुर्लभ है ? किंतु एकमात्र मुझमें ही मनोनिवेश करने वाले ज्ञानी लोग मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहते ॥ ४८ ॥ विषय सुखों को सत्य समझने वाला अज्ञानी पुरुष अपने कल्याण को नहीं समझता,अतः विषय-सुखों की इच्छा रखने वाले उसको यदि उसका इष्टदेव विषय-सुख ही दे तो उसे भी अज्ञानी ही समझना चाहिये ॥ ४९ ॥ स्वयं कल्याण-मार्ग को जानने वाला विद्वान अज्ञानी पुरुष को कर्म-मार्ग का उपदेश नहीं देता,जैसे अच्छा वैद्य माँगने पर भी रोगी को कुपथ्य नहीं देता ॥५०॥ मघवन् ! आप का कल्याण हो ! ऋषिश्रेष्ठ दधीचि के विद्या, व्रत और तपस्या से दृढ़ हुए शरीर को आप माँगें, विलंब न करें ॥ ५१ ॥ ये दधीचि मुनि शुद्ध और निर्विकार ब्रह्म को जान चुके हैं और घोड़े के मस्तक के द्वारा उन्होंने अश्विनीकुमारों को ब्रह्म विद्या का उपदेश किया है, जिस ब्रह्म-विद्या के उपदेश के द्वारा वे जीवन्मुक्त हो गए हैं ॥ ५२ ॥ इंद्र ! अथर्ववेद के ज्ञाता ये

४५—हंसायदहनिलयाय निरीक्षकाय कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय ।

सत्संग्रहायभवपाथनिजाश्रमाप्ता वंतेपरीष्टगतये हरये नमस्ते ॥

श्रीशुक उवाच—

४६—अथैवमीडितो राजन् सादरं त्रिदशैर्हरिः । स्वमुपस्थानमाकर्ण्य प्राहतानभिनंदितः ॥

श्रीभगवानुवाच —

४७—प्रीतोहं वः सुरश्रेष्ठा मदुपस्थानविद्यया । आत्मैश्वर्यस्मृतिः पुंसां भक्तिश्चैव यया मयि ॥

४८—किंदुरापं मयि प्रीते तथाऽपि विबुधर्षभाः । मय्येकांतमतिर्नान्यन्मत्तो वांछति तत्त्ववित् ॥

४९—न वेदकृपणः श्रेय आत्मनो गुणवस्तुदृक् । तस्य तानिच्छतो यच्छेद्यदि सोऽपि तथाविधः ॥

५०—स्वयं निःश्रेयसं विद्वान्न वक्त्यज्ञाय कर्महि । नरातिरोगिणोऽपथ्यं वांछतो हि भिषक्तमः ॥

५१—मघवन्यात भद्रं वो दध्यंचमृषिसत्तमम् । विद्याव्रततपः सारं गात्रं याचत मा चिरम् ॥

दधीचि मुनि अभेद्य और मद्रूप नारायण-कवच को भी जानते हैं। यह नारायण कवच दधीचि ने त्वष्टा को, त्वष्टा ने विश्वरूप को और विश्वरूप ने आप को दिया है ॥ ५३ ॥ आप लोग माँगेंगे तो धर्मज्ञ दधीचि मुनि, अश्विनीकुमारों पर प्रीति होने के कारण आप लोगों को अपनी अस्थि दे देंगे और उस अस्थि के द्वारा विश्वकर्मा वज्र नामक श्रेष्ठ आयुध बना देंगे ॥ ५४ ॥ मेरे तेज से वर्धित आप लोग इस आयुध से वृत्रासुर का सिर काट डालेंगे। इस वृत्रासुर का वध हो जाने पर आप लोगों को पुनः तेज, आयुध और संपत्ति की प्राप्ति होगी। मेरे भक्तों को कोई मार नहीं सकता। आप लोगों का कल्याण हो ॥ ५५ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवें स्कंध का नवां अध्याय समाप्त

५२—स वा अधिगतो दध्यङ्गः अश्विभ्यां ब्रह्मनिष्कलम्। यद्वा अश्वशिरो नाम तयोरमरतां व्यधात् ॥

५३—दध्यङ्ङाथर्वणस्त्वष्ट्रे वर्माभेद्यं मदात्मकम्। विश्वरूपाय यत्प्रादात्त्वष्टा यत्त्वमधास्ततः ॥

५४—युष्मभ्यं याचितोऽश्विभ्यां धर्मज्ञोऽङ्गानि दास्यति। ततस्तैरायुधश्रेष्ठो विश्वकर्मविनिर्मितः ॥

५५—येन वृत्रशिरो हर्ता मत्तेज उपबृंहितः। तस्मिन् विनिहते यूयं तेजोऽस्त्रायुधसम्पदः ॥
भूयः प्राप्स्यथ भद्रं वो न हिंसन्ति च मत्परान् ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कन्धेनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

देवताओं का वज्रपाना और असुरों से युद्ध करना
'दधीचि का आत्मोत्सर्ग'

श्रीशुकदेव बोले—विश्वभावन भगवान इंद्र को इस प्रकार आज्ञा देकर देवताओं के देखते-देखते वहीं अंतर्धान हो गए ॥ १ ॥ राजन्! उन देवताओं के द्वारा भगवान् की आज्ञा के अनुसार याचना करने पर श्रेष्ठ ऋषि दधीचि प्रसन्न होकर हँसते-हँसते बोले ॥ २ ॥ देवगण! मृत्यु-काल मे प्राणियों को जो असहनीय और चेतना को नष्ट करने वाला दुःख होता है, उसे आप लोग नहीं जानते ॥ ३ ॥ जीवन की इच्छा रखने वाले प्राणियों को ससार में अपना शरीर सबसे अधिक प्रिय होता है। इस शरीर को स्वय विष्णु भी मागने आवे तो कौन उसे प्रसन्नता से दे देगा? ॥ ४ ॥

देवता बोले—ब्रह्मन्! आप प्राणियों पर दया रखने वाले हैं। यशस्वी लोग आप की प्रशसा करते हैं,आप जैसे महात्मा पुरुष के लिये किस वस्तु का त्याग करना असभव है? ॥५॥ स्वार्थी लोग पराया सकट नहीं जानते, यदि जानते हैं तो याचना नहीं करते। इसी प्रकार समर्थ पुरुष भी माँगने वाले का सकट जानने पर 'ना' नहीं करते ॥ ६ ॥

श्रीशुक उवाच—

१—इन्द्रमेवं समादिश्य भगवान्विश्वभावनः। पश्यतामनिमेषाणां तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥

२—तथाऽभियाचितो देवैर्ऋषिराथर्वणो महान्। मोदमान उवाचेदं प्रहसन्निव भारत ॥

३—अपि वृन्दारका यूयं न जानीथ शरीरिणाम्। संस्थायां यस्त्वभिद्रोहो दुःसहश्चेतनापहः ॥

४—जिजीविषूणां जीवानामात्मा प्रेष्ठ इहेप्सितः। क उत्सहेत तं दातुं भिक्षमाणाय विष्णवे ॥

देवा ऊचु—

५—किं नु तद्दुस्त्यजं ब्रह्मन्पुंसां भूतानुकम्पिनाम्। भवद्विधानां महतां पुण्यश्लोकेड्यकर्मणाम् ॥

६—ननु स्वार्थपरो लोको न वेद परसङ्कटम्। यदि वेद न याचेत नेति नाह यदीश्वरः ॥

दधीचि बोले—आप लोगों से धर्म की यह बात सुनने के लिये ही मैंने अस्वीकार किया था। यह शरीर किसी दिन मुझे छोड़ देगा, अतः आप लोगों का प्रिय करने के लिए मैं इसका त्याग करता हूँ। देवगण! यदि मनुष्य प्राणियों पर दया रखकर इस अनित्य शरीर से धर्म और यश का अर्जन न करे तो वह स्थावरों के द्वारा भी शोचनीय है ॥ ८ ॥ प्राणियों का शोक देखकर दुखी होना और हर्ष देखकर प्रसन्न होना, यही महात्माओं के द्वारा सेवित अविनाशी धर्म है ॥ ९ ॥ अपने उपयोग में न आने वाले, कुत्ते और शृगालों के भक्ष्य इस क्षण-भंगुर शरीर और धन, पुत्र आदि से यदि दूसरे का उपकार न किया तो यह अत्यन्त दुख और दीनता की बात है ॥ १० ॥

श्रीशुकदेव बोले—इस प्रकार निश्चय करके महर्षि दधीचि ने परब्रह्म भगवान् मे अपनी आत्मा को लगाकर शरीर छोड़ दिया ॥ ११ ॥ इंद्रिय, प्राण, मन और बुद्धि को नियम में स्थित रखने वाले, तत्वदर्शी और बन्धन-रहित दधीचि ने उत्तम योग मे स्थित होकर शरीर का छूटना नहीं जाना ॥ १२ ॥ अनंतर दधीचि की अस्थियों से विश्वकर्मा के द्वारा बनाए हुए वज्र को उठाकर वृद्धि पाए हुए और भगवान् के तेज से युक्त इन्द्र ऐरावत हाथी पर बैठे। वे देवताओं से घिरे हुए थे और मुनिगण उनकी स्तुति कर रहे थे। त्रैलोक्य को हर्षित करते हुए क्रोधित होकर इन्द्र श्रेष्ठ असुरों से घिरे हुए वृत्रासुर पर वेग से दौड़े, जैसे रुद्र काल पर दौड़े हों ॥ १३-१५ ॥ अनन्तर पहले चतुर्युग मे से त्रेतायुग के आरंभ मे नर्मदा के तट पर देवताओं और असुरों का अत्यन्त घोर युद्ध हुआ ॥ १६ ॥ रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विनी-कुमार, पितर,

---

ऋषिरुवाच—

७—धर्मं वः श्रोतुकामेन यूयं मे प्रत्युदाहृताः । एष वः प्रियमात्मानं त्यजंतं संत्यजाम्यहं ॥

८—योऽध्रुवेणात्मनानाथा न धर्मं न यशः पुमान् । ईहेत भूतदयया स शोच्यः स्थावरैरपि ॥

९—एतावानव्ययो धर्मः पुण्यश्लोकैरुपासितः । यो भूतशोकहर्षाभ्यामात्मा शोचति हृष्यति ॥

१०—अहो दैन्यमहोकष्ट पारक्यैः क्षणभंगुरैः । यन्नोपकुर्यादस्वार्थैर्मर्त्यः स्वज्ञातिविग्रहैः ॥

श्रीशुक उवाच—

११—एवं कृतव्यवसितो दध्यङ्ङाथर्वणस्तनुम् । परे भगवति ब्रह्मण्यात्मानं सन्नयन् जहौ ॥

१२—यताक्षासुमनो बुद्धिस्तत्त्वदृक् ध्वस्तबन्धन: । आस्थितः परमं योगं न देहं बुबुधे गतं ॥

१३—अथेंद्रो वज्रमुद्यम्य निर्मितं विश्वकर्मणा । मुनेः शक्तिभिरुत्सिक्तो भगवत्तेजसाऽन्वितः ॥

१४—वृतो देवगणैः सर्वैर्गजेन्द्रोपर्यशोभत । स्तूयमानो मुनिगणैस्त्रैलोक्यं हर्षयन्निव ॥

१५—वृत्रमभ्यद्रवच्छेत्तुमसुरानीकयूथपै: । पर्यस्तमोजसा राजन् क्रुद्धो रुद्र इवांतकं ॥

१६—ततः सुराणामसुरैरणः परमदारुणः । त्रेतामुखे नर्मदायामभवत्प्रथमे युगे ॥

अग्नि, वायु, ऋभु, साध्य और विश्वदेवों से घिरे हुए तथा अपनी माया से शोभित वज्र धारण करने वाले इन्द्र को युद्ध मे देखकर वृत्र आदि असुर उन्हे सहन नहीं कर सके ॥ १७-१८ ॥ नमुचि, शम्बर, अनर्वा, द्विमूर्धा, ऋषभ, अम्बर, हयग्रीव, शंकुशिरा, विप्रचित्ति, अयोमुख पुलोमा, वृषपर्वा, प्रहेति, हेति, उत्कल तथा अन्य असुर, दानव, यक्ष, सुमाली और माली आदि सहस्रों राक्षस, जिन्होंने सुनहले कवच आदि युद्ध के आभूषण पहन रखे थे, जिस तक मृत्यु की भी पहुँच नहीं थी, ऐसी इन्द्र की प्रमुख सेना को रोक कर उसे पीड़ित करने लगे। सभ्रमहीन और सिंहनाद से उन्मत्त हुए इन असुरों ने गदा, परिघ, बाण, प्रास, मुद्गर, तोमर शूल, फरसा, तलवार शतघ्नि तथा भुशुंडि आदि अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करके देवताओं को ढक दिया ॥ १९-२३ ॥ एक के बाद दूसरे फेके हुए बाणों के जाल के द्वारा चारों ओर से घिरे हुए वे देवता दीख न पड़ने लगे, जैसे आकाश मे घिरे हुए बादलों से नक्षत्र नही दीख पड़ते ॥ २४ ॥ अस्त्र और शस्त्रों की वर्षा का वह समूह देवताओं की सेना तक नहीं पहुच सका, फुर्तीले हाथों वाले देवताओं ने आकाश में ही उनके सहस्रों टुकड़े कर डाले ॥ २५ ॥ अनंतर जिनके अस्त्र-शस्त्रों के समूह क्षीण हो गए थे, ऐसे असुर देवताओं पर पर्वतों के शिखर, वृक्ष और पत्थर बरसाने लगे, किंतु देवताओं ने पहले ही की तरह उन्हे भी काट डाला ॥ २६ ॥ वृत्र के अनुगत असुर, इंद्र-सेना को शस्त्र और अस्त्रों के समूह से अक्षत और सुखी देखकर तथा वृक्षों, पत्थरों और विविध पर्वत-शिखरों से घायल होते हुए न देखकर त्रस्त हुए ॥ २७ ॥ भगवान् देवताओं

१७—रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां पितृवन्हिभिः । मरुद्भिर्ऋभुभिः साध्यैर्विश्वेदेवैर्मरुत्पतिम् ॥

१८—दृष्ट्वा वज्रधरं शक्रं रोचमानं स्वमायया । नामृष्यन्नसुरा राजन्मृधे वृत्रपुरः सराः ॥

१९—नमुचिः शम्बरोऽनर्वा द्विमूर्धा ऋषभोऽम्बरः । हयग्रीवः शंकुशिरा विप्रचित्तिरयोमुखः ॥

२०—पुलोमा वृषपर्वा च प्रहेतिर्हेतिरुत्कलः । दैतेया दानवा यक्षा रक्षांसि च सहस्रशः ॥

२१—सुमालि मालि प्रमुखाः कार्तस्वरपरिच्छदाः । प्रतिषि ध्येन्द्रसेनाग्रं मृत्योरपि दुरासदं ॥

२२—अभ्यर्दयन्न संभ्रान्ताः सिंहनादेन दुर्मदाः । गदाभिः परिघैर्बाणैः प्रासमुद्गरतोमरैः ॥

२३—शूलैः परश्वधैः खड्गैः शतघ्नीभिर्भुशुंडिभिः । सर्वतोऽवाकिरञ्छस्त्रैरस्त्रैश्च विबुधर्षभान् ॥

२४—नतेऽदृश्यत सञ्छन्नाः शरजालैः समन्ततः । पुंखानुपुंखपतितैर्ज्योतींषीव नभो घनैः ॥

२५—न ते शस्त्रास्त्रवर्षौघाह्यासेदुःसुरसैनिकान् । छिन्नाः सिद्धपथे देवैर्लघुहस्तैः सहस्रधा ॥

२६—अथ क्षीणास्त्र शस्त्रौघा गिरिशृंगद्रुमोपलैः । अभ्यवर्षन्सुरबलं चिच्छिदुस्तांश्च पूर्ववत् ॥

२७—तानक्षतान् स्वस्तिमतो निशम्य शस्त्रास्त्रपूगैरथ वृत्रनाथाः ।

द्रुमैर्दृषद्भिर्विविधाद्रिशृंगैरविक्षतांस्तत्रसुरिन्द्रसैनिकान् ॥

पर प्रसन्न थे। इसलिए दैत्यों के बार-बार किए हुए समस्त प्रयत्न विफल हुए, जैसे क्षुद्रों के दुष्ट और कठिन वचन सज्जनों के निकट व्यर्थ होते हैं॥ २८॥ जो भगवान् के भक्त नहीं थे, युद्ध में जिनका घमंड चूर हो गया था तथा शत्रुओं ने जिनका धैर्य हरण कर लिया था,ऐसे असुर अपने प्रयत्नों को विफल देखकर रणक्षेत्र में अपने स्वामी को छोड़कर भागने का विचार करने लगे॥ २९॥ मनस्वी और वीर वृत्रासुर ने इस प्रकार अपने पक्ष के असुरों को भागते हुए देखकर तथा सेना को तीव्र भय से पहले ही भगी तथा तितर-बितर हुई देखकर हँसते हुए यह कहा॥ ३०॥ पुरुष-श्रेष्ठ वृत्र ने समयोचित और मनस्वियों को अच्छी लगने वाली बात कही—हे विप्रचित्ति! पुलोमा! मय! अनर्वा! शंबर! हमारी बात सुनो॥ ३१॥ जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु सदा ही निश्चित्त है। इसका कोई प्रतिकार नहीं। उस मृत्यु से यदि यश और स्वर्ग की प्राप्ति होती हो तो ऐसी श्रेष्ठ मृत्यु को उचित समझकर कौन न ग्रहण करेगा?॥ ३२॥ दो प्रकार की मृत्यु शास्त्रों में उत्तम कही गई है और दुर्लभ है। एक तो योगस्थ होकर प्राणायाम करके भगवान् का ध्यान करते हुए शरीर त्याग करना और दूसरा युद्ध-भूमि में अग्रसर होकर पीछे पैर न रखते हुए शरीर त्याग करना॥ ३३॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवें स्कंध का दसवाँ अध्याय समाप्त

२८—सर्वे प्रयासा अभवन्विमोघाः कृताः कृतादेवगणेषु दैत्यैः।
कृष्णानुकूलेषु यथामहत्सु क्षुद्रैः प्रयुक्ताऽरुशती रूक्षवाचः॥

२९—ते स्वप्रयासं वितथं निरीक्ष्य हरावभक्ताहतयुद्धदर्पाः।
पलायनायाजिमुखे विसृज्य पतिं मनस्ते दधुरात्तसाराः॥

३०—वृत्रोऽसुरास्ताननुगान्मनस्वी प्रधावतः प्रेक्ष्य बभाष एतत्।
पलायितं प्रेक्ष्य बलं च भग्नं भयेन तीव्रेण विहस्य वीरः॥

३१—कालोपपन्नां रुचिरां मनस्विनामुवाच वाचं पुरुषप्रवीरः।
हे विप्रचित्ते नमुचे पुलोमन्मयानर्वन् शंबर मे शृणुध्वं॥

३२—जातस्य मृत्युर्ध्रुव एव सर्वतः प्रतिक्रिया यस्य न चेह क्लृप्ता।
लोकोयशश्चाथ ततो यदि ह्यमु मृत्युं वरं को न वृणीतयुक्तं॥

३३—द्वौ संमताविहमृत्यूदुरापौ यद्ब्रह्मसंधारणयाजितासुः।
कलेवरं योगरतो विजह्याद्यदग्रणीर्वीरशयेऽनिवृत्तः॥

इ० भा० म० प० दशमोऽध्यायः॥ १०॥

—※—

देवर्षि नारद और धर्मराज युधिष्ठिर

तत्रासीनं सुरऋषिं राजा पाण्डुसुतः क्रतौ । पप्रच्छ विस्मितमना मुनीनां श्रृण्वतामिदम् ॥

(श्रीमद्भागवत ७ । १ । १४)

GITA PRESS GORAKHPUR

ग्यारहवाँ अध्याय

इन्द्र और वृत्रासुर का युद्ध, वृत्रासुर के द्वारा भगवान की भक्ति का निरूपण

श्री शुकदेव बोले—राजन्! भय से त्रस्त और भागते हुए उन मूर्ख असुरों ने इस प्रकार धर्म की बात कहते हुए अपने स्वामी की बात नहीं सुनी ॥ १ ॥ काल का अनुवर्तन करने वाले देवताओं के द्वारा अपनी असुर-सेना को अनाथ के समान नष्ट होती और तितर-बितर होती देखकर इन्द्र का शत्रु वृत्र अत्यंत दुखित हुआ। राजन्! असहनशील और क्रुद्ध होकर वृत्रासुर ने बल-पूर्वक देवताओं को रोका और उनकी भर्त्सना करते हुए यह कहा ॥ २-३ ॥

वृत्र बोला—भागते हुए और माता की विष्ठा के समान इन असुरों को पीठ पीछे से मारने में तुम्हारी क्या बड़ाई है? अपने को वीर कहने वालों के लिए भयभीतों का वध करना न तो सराहनीय है और न स्वर्ग देने वाला हो ॥ ४ ॥ हे क्षुद्रो! यदि तुम में युद्ध करने की इच्छा हो और तुम्हारे हृदय में धैर्य हो और तुम सांसारिक सुखों की इच्छा न रखते हो तो क्षण भर मेरे सामने खड़े रहो ॥ ५ ॥ इस प्रकार अत्यन्त बली वृत्र ने क्रुद्ध होकर अपने शरीर से शत्रुओं को भयभीत करते हुए गर्जन किया। उसके गर्जन से लोग चेतनाहीन हो गए ॥ ६ ॥ वृत्रासुर के उस गर्जन से समस्त देवता मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े, मानो उन पर वज्र गिर पड़ा हो ॥ ७ ॥ जिस प्रकार मदोन्मत्त हाथी तिनकों के वन को रौंद डालता

श्रीशुक उवाच—

१—स एवं शंसतो धर्मं वचः पत्युरचेतसः। नैवागृह्णन् भयत्रस्ताः पलायनपरा नृप ॥

२—विशीर्यमाणां पृतनामासुरीमसुरर्षभः। कालानुकूलैस्त्रिदशैः काल्यमानामनाथवत् ॥

३—दृष्ट्वाऽतप्यत संक्रुद्ध इन्द्रशत्रुरमर्षितः। तान्निवार्यौजसा राजन्निर्भर्त्स्येदमुवाच ह ॥

४—किं व उच्चरितैर्मातुर्धावद्भिः पृष्ठतो हतैः। नहि भीतवधः श्लाघ्यो न स्वर्ग्यः शूरमानिनाम् ॥

५—यदि वः प्रधने श्रद्धा सारं वा क्षुल्लका हृदि। अग्रे तिष्ठत मात्रं मे नचेद् ग्राम्यसुखे स्पृहा ॥

६—एवं सुरगणान् क्रुद्धो भीषयन्वपुषा रिपून्। व्यनदत्सुमहाप्राणो येन लोका विचेतसः ॥

७—तेन देवगणाः सर्वे वृत्रविस्फोटनेन वै। निपेतुर्मूर्छिता भूमौ यथैवाशनिना हताः ॥

है, उसी प्रकार रण-रंग में मतवाला वृत्रासुर शूल उठाकर अपने पराक्रम से धरती को कँपाता हुआ देवताओं की उस सेना को, जो आतुर थी और जिसने आँखे मूंद ली थीं, पैरों से रौंदने लगा ॥८॥ वज्रधारी और अत्यन्त कोपित हुए इन्द्र ने दौड़ कर आते हुए अपने उस शत्रु को देखा और उस पर एक बड़ी गदा चलाई। अत्यन्त असहनीय उस आती हुई गदा को वृत्र ने सहज ही बाएँ हाथ से पकड़ लिया ॥ ९ ॥ राजन्! अत्यन्त कुपित और उग्र पराक्रम वाले इन्द्र के शत्रु वृत्रासुर ने रणक्षेत्र में गर्जन करते हुए उस गदा से इन्द्र के हाथी के कुम्भस्थल पर प्रहार किया। उसके इस कार्य की सब लोगों ने प्रशंसा की ॥ १० ॥ वज्र से घायल हुए पर्वत के समान वृत्र की गदा से घायल हुआ ऐरावत चकरा गया। उसका मुँह टूट गया था, वह अत्यन्त पीड़ित हो गया और रक्त वमन करते हुए इन्द्र के सहित सात धनुष (एक धनुष चार हाथ के बराबर होता है) पीछे हट गया ॥ ११ ॥ इन्द्र विषाद-युक्त हो गए थे और उनका वाहन आहत हो गया था, अतः उस महात्मा वृत्रासुर ने पुनः गदा न चलाई। अनन्तर अमृत झरने वाले अपने दोनों हाथों के स्पर्श से उस घायल हाथी की पीड़ा दूर करके इन्द्र सम्मुख खड़े हुए ॥ १२ ॥ राजन्! इस प्रकार युद्ध की इच्छा से खड़े वज्रधारी और भ्रातृहन्ता अपने शत्रु को देख कर और उनके अत्यन्त क्रूर पाप कर्मों का स्मरण करके मोह तथा शोक से युक्त वृत्रासुर हँसता हुआ बोला ॥१३॥

८—ममर्द पद्भ्या सुरसैन्यमातुरं निमीलिताक्षं रणरङ्गदुर्मदः ।
गां कम्पयन्नुद्यतशूल ओजसा नालं वनं यूथपतिर्यथोन्मदः ॥

९—विलोक्य तं वज्रधरोऽत्यमर्षितः स्वशत्रवेऽभिद्रवते महागदाम् ।
चिक्षेप तामापततीं सुदुःसहां जग्राह वामेन करेण लीलया ॥

१०—स इन्द्रशत्रुः कुपितो भृशं तया महेन्द्रवाहं गदयोरुविक्रमः ।
जघान कुम्भस्थल उन्नदन्मृधे तत्कर्म सर्वे समपूजयन्नृप ॥

११—ऐरावतो वृत्रगदाऽभिमृष्टो विघूर्णितोऽद्रिः कुलिशाहतो यथा ।
अपासरद्भिन्नमुखः सहेन्द्रो वमन्नसृक्सप्तधनुर्भृशार्तः ॥

१२—न सन्नवाहाय विषण्णचेतसे प्रायुङ्क्त भूयः स गदां महात्मा ।
इन्द्रोऽमृतस्यन्दि कराभिमर्श वीतव्यथः क्षतवाहोऽवतस्थे ॥

१३—स तं नृपेन्द्राहव काम्यया रिपुं वज्रायुधं भ्रातृहणं विलोक्य ।
स्मरंश्च तत्कर्म नृशंसमंहः शोकेन मोहेन हसन् जगाद ॥

वृत्र बोला—दुष्ट ! तुमने ब्रह्म-हत्या की है, तुमने गुरु की हत्या की है और मेरे भाई की हत्या की है। तुम मेरे शत्रु हो। तुम मेरे सम्मुख खड़े हो, यह प्रसन्नता की बात है। आज शीघ्र ही मैं अपने शूल से तुम्हारी छाती को छेदकर भ्रातृऋण से उऋण हो जाऊँगा, यह प्रसन्नता की बात है ॥ १४ ॥ जिस प्रकार स्वर्ग की इच्छा रखने वाला निर्दय यजमान तलवार से पशु का मस्तक काट डालता है,उसी प्रकार विश्वासघात करके तुमने भी ब्राह्मण, गुरु, आत्मदर्शी, निर्दोष और दीक्षित मेरे बड़े भाई का मस्तक काट डाला था ॥ १५ ॥ लज्जा, लक्ष्मी, दया और कीर्ति से हीन अपने कर्मों के लिए तुम दैत्यों से भी धिक्कार पाने योग्य हो। मेरे कठोर शूल से छिन्न-भिन्न और अग्नि का स्पर्श भी न पाए हुए तुम्हारे शरीर को गिद्ध खा जायगे ॥ १६ ॥ तुम्हारे शरीर क्रूर के अनुवर्त्तन करने वाले जिन अन्य मूर्खों ने अस्त्र उठाकर यहाँ हम लोगों पर प्रहार किया है, मैं अपने तीक्ष्ण धार वाले शूल से उनकी गर्दन काटकर गणों के सहित भैरव आदि को बलिदान दूँगा ॥ १७ ॥ हे वीर इंद्र ! यदि तुमने ही बलपूर्वक यहाँ वज्र के द्वारा मेरा मस्तक काट डाला तो कर्म-बन्धनों से मुक्त होकर प्राणियों के लिए अपने शरीर की बलि देकर मैं वीरों का पद प्राप्त करूंगा ॥ १८ ॥ सुरेश ! अपने सम्मुख खड़े हुए मुझ शत्रु पर तुम अमोघ-वज्र क्यों नहीं चलाते ? गदा के समान तुम्हारा वज्र भी निष्फल होगा, जैसे कृपण से की हुई याचना निष्फल होती है, इस बात की शंका न करो ॥१९॥इन्द्र ! तुम्हारा यह वज्र भगवान् के तेज और

वृत्र उवाच—

१४—दिष्ट्या भवान्मे समवस्थितो रिपुर्यो ब्रह्महा गुरुहा भ्रातृहा च ।

दिष्ट्याऽनृणोऽद्याहमसत्तम त्वया मच्छूलनिर्भिन्नदृषद्धृदाचिरात् ॥

१५—यो नोऽग्रजस्यात्मविदो द्विजातेर्गुरोरपापस्य च दीक्षितस्य ।

विश्रभ्य खड्गेन शिरांस्यवृश्चत्पशोरिवाऽकरुणः स्वर्गकामः ॥

१६—ह्रीश्रीदयाकीर्तिभिरुज्झितं त्वां स्वकर्मणा पुरुषादैश्च गर्ह्यम् ।

कृच्छ्रेण मच्छूलविभिन्नदेहमस्पृष्टवह्निं समदन्ति गृध्राः ॥

१७—अन्येऽनुयेत्वेह नृशंसमज्ञा ये ह्युद्यतास्त्राः प्रहरन्ति मह्यम् ।

तैर्भूतनाथान्सगणान्निशात त्रिशूलनिर्भिन्नगलैर्यजामि ॥

१८—अथो हरे मे कुलिशेन वीर हर्ता प्रमथ्यैव शिरो यदीह ।

तत्रानृणो भूतबलिं विधाय मनस्विनां पादरजः प्रपत्स्ये ॥

१९—सुरेश कस्मान्न हिनोषि वज्रं पुरः स्थिते वैरिणि मय्यमोघम् ।

मा संशयिष्ठा न गदेव वज्रः स्यान्निष्फलः कृपणार्थेव याच्ञा ॥

दधीचि की तपस्या से तेजो युक्त है, भगवान् ने ही मेरा बध करने के लिए तुम्हें प्रेरित भी किया है, अतः इस वज्र से मुझ शत्रु को मार डालो। क्योंकि जिधर भगवान रहते हैं, विजय, लक्ष्मी, और गुण भी उधर ही रहते हैं॥ २०॥ अपने स्वामी सकर्षण के आदेश के अनुसार उनके चरण-कमलों में अपना मन लगाकर, तुम्हारे वज्र के वेग से विषय-भोग रूपी पाश के टूट जाने पर शरीर का त्याग करके मैं योगियों की गति प्राप्त करूँगा॥२१॥ भगवान् अपने अनन्य भक्तों को स्वर्ग, पाताल अथवा पृथ्वी की सपत्ति नहीं देते, क्योंकि इससे तो द्वेष, उद्वेग, मानसिक पीड़ा, मद, कलह, व्यसन और परिश्रम ही होता है ॥ २२ ॥ इन्द्र! हमारे स्वामी तो अपने भक्तों के धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी परिश्रम को मिटा देते हैं। जब यह परिश्रम न रहे तभी समझना चाहिए कि भगवान् की कृपा हुई है, किन्तु ऐश्वर्य पाकर उसे भगवान् की कृपा न समझनी चाहिए। भगवान् की यह कृपा निरभिमान मनुष्यों को ही प्राप्त होती है, दूसरों के लिए यह दुर्लभ है॥ २३॥ हे भगवान्! मैं आपके चरण-कमलों के आश्रय में रहने वालों के दासों का दास पुन. होता हूँ। आप प्राणों के स्वामी हैं। मेरा मन आपके गुणों का स्मरण करे, मेरी वाणी आप के गुणों का गान करे तथा मेरा शरीर आपका ही काम करे॥ २४॥ हे समस्त सौभाग्यों के स्वामी! आपको छोड़कर मै स्वर्ग का राज्य, ब्रह्मलोक, चक्रवर्तित्व, पाताल का राज्य, योग-सिद्धि, अथवा मोक्ष की भी इच्छा नहीं करता॥ २५॥ हे कमल-नयन! जिस प्रकार बिना पख के पक्षि-शावक बहेलियों से पीड़ित

२०—नन्वेष वज्रस्तव शक्रतेजसा हरेर्दधीचेस्तपसा च तेजितः।
तेनैव शत्रु जहि विष्णुयन्त्रितो यतो हरिर्विजयः श्रीर्गुणास्ततः॥

२१—अहं समाधाय मनो यथाह सकर्षणस्तच्चरणारविंदे।
त्वद्वज्ररंहो लुलितग्राम्यपाशो गतिं मुनेर्याम्यपविद्ध लोकः॥

२२—पुंसां किलैकान्त धियां स्वकानां याः संपदो दिवि भूमौ रसायां।
नराति यद्द्वेष उद्वेग आधिर्मदः कलिर्व्यसन सम्प्रयासः॥

२३—त्रैवर्गिकायास विघातमस्मत्पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र।
ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो यो दुर्लभोऽकिंचन गोचरोऽन्यैः॥

२४—अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक्कर्म करोतु कायः॥

२५—ननाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाऽधिपत्यं।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जसत्वा विरहय्य काङ्क्षे॥

होकर माता की ओर देखते हैं अथवा भूख से व्याकुल हुआ बछड़ा जिस प्रकार दूध की इच्छा करता है अथवा दुःखिनी पत्नी प्रवासी पति को देखने की इच्छा करती है, उसी प्रकार मेरा मन आप को देखना चाहता है ॥ २६ ॥ नाथ ! मैं अपने कर्मों से संसार-रूपी चक्र में घूम रहा हूँ, आप की माया से मेरा मन, अपने शरीर, पुत्र, स्त्री, और घर मे आसक्त है। मेरी मित्रता पुण्य-श्लोक लोगों के सहित हो, किंतु पुनः देह आदि में आसक्ति न हो ॥ २७ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवें स्कंध का दसवाँ अध्याय समाप्त

२६—अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथावत्सतराः क्षुधार्ताः ।
प्रियं प्रियेवव्युषितं विषण्णा मनोऽरविंदाक्ष दिदृक्षते त्वां ॥

२७—ममोत्तमश्लोक जनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ।
त्वन्माययात्मात्मजदारगेहेष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

वृत्रासुर का मोक्ष पाना

श्रीशुकदेव बोले—राजन् ! इस प्रकार युद्ध में शरीर त्याग करने की इच्छा रखने वाला और विजय की अपेक्षा मृत्यु को ही श्रेष्ठ समझने वाला वृत्रासुर त्रिशूल लेकर इंद्र की ओर दौड़ा, जैसे प्रलयकालीन जल में कैटभासुर विष्णु की ओर दौड़ा था ॥१॥ अनन्तर-प्रलयकाल की अग्नि के समान भयानक ज्योतिवाले शूल को वेग-पूर्वक घुमाकर वृत्रासुर ने इंद्र पर फेंका और गर्जन करते हुए क्रोध-पूर्वक उस वीर ने कहा कि 'हे पापी ! तू मरा' ॥ २ ॥ आकाश में चक्कर खाते हुए आते और ग्रह तथा उल्का के समान देखे न जा सकने वाले उस शूल को देखकर वज्र धारण करने वाले इन्द्र विकल नहीं हुए। उन्होंने सौ धारों वाले वज्र से उसे अर्थात् शूल को और वासुकी के शरीर के समान मोटे वृत्रासुर के हाथ को भी काट डाला ॥ ३ ॥ जिसका एक हाथ कट गया था, ऐसे वृत्र ने क्रोध पूर्वक वज्र धारण करने वाले इद्र के पास जाकर उनकी ठोड़ी में परिघ से प्रहार किया और ऐरावत पर भी प्रहार किया, जिससे इद्र के हाथ से वज्र छूट पड़ा ॥४॥ वृत्र के इस अत्यंत अद्भुत कार्य को देखकर देवता, असुर, चारण तथा सिद्धों के समूह उसकी प्रशंसा करने लगे और इंद्र का यह संकट देखकर अत्यत हाहाकार करने लगे ॥ ५ ॥ इद्र ने लज्जित

ऋषिरुवाच—

१—एवं जिहासुर्नृपदेहमाजौ मृत्युं वरं विजयान्मन्यमानः ।
शूलं प्रगृह्याभ्यपतत्सुरेंद्रं यथा महापुरुषं कैटभोऽप्सु ॥

२—ततो युगान्ताग्निकठोरजिह्वमाविध्य शूलं तरसा सुरेंद्रः ।
क्षिप्त्वा महेंद्राय विनद्य वीरो हतोऽसि पापेति रुषा जगाद ॥

३—स आपतत्तद्विचलद्ग्रहोल्कवन्निरीक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमजातविक्लवः ।
वज्रेण वज्री शतपर्वणाच्छिनद्भुजं च तस्योरगराजभोगं ॥

४—छिन्नैकबाहुः परिघेण वृत्रः संरब्ध आसाद्य गृहीतवज्रं ।
हनौ तताडेंद्रमथामरेभं वज्रं च हस्तान्न्यपतन्मघोनः ॥

५—वृत्रस्य कर्मातिमहाद्भुतं तत्सुरासुराश्चारणसिद्धसंघाः ।
अपूजयंस्तत्पुरुहूतसंकटं निरीक्ष्य हाहेति विचुक्रुशुर्भृशं ॥

होकर गिरे हुए वज्र को शत्रु के सम्मुख पुनः नहीं उठाया। वृत्र ने उनसे कहा—हे इंद्र! वज्र लेकर अपने शत्रु का वध करो। यह विपाद करने का समय नहीं है ॥ ६ ॥ युद्ध की इच्छा रखने वाले देहाभिमानी लोगों की सदा विजय ही नहीं होती, कभी उनकी विजय होती है, कभी नहीं होती। सब जगह तो केवल नारायण की ही विजय होती है, जो उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय के स्वामी हैं, सर्वज्ञ हैं, नित्य हैं और आदिपुरुष है ॥ ७ ॥ जाल में फँसे हुए पक्षियों के समान परवश लोकपालों के सहित ये समस्त लोक जिसके आधीन जीवित रहते हैं, वह काल ही जय और पराजय का कारण है ॥ ८ ॥ शारीरिक बल, मानसिक बल, इंद्रियों का बल, प्राण, अमरत्व और मरण का कारण भी काल ही है, किंतु उसे न जानकर लोग इस जड़ शरीर को ही इनका कारण मानते है ॥ ९ ॥ इंद्र! जिस प्रकार लकडी की पुतली और यंत्र का मृग नचाने वाले के वश में रहते हैं, उसी प्रकार समस्त प्राणी ईश्वर के वश में रहते हैं, ऐसा समझो ॥ १० ॥ पुरुष, प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, इंद्रिय तथा अतःकरण, ये जिनके अनुग्रह के बिना इस जगत की सृष्टि आदि कार्यों में समर्थ नहीं होते, उन्हींके वश मे यह ससार है ॥ ११ ॥ इस प्रकार अज्ञानी मनुष्य अपने परतंत्र शरीर को स्वतंत्र समझ लेता है। ईश्वर एक प्राणी के द्वारा दूसरे प्राणी की सृष्टि कराता और दूसरे के द्वारा तीसरे का नाश कराता है, अतः वास्तव में वह स्वय ही यह सब करता है ॥ १२ ॥ आयु, लक्ष्मी, कीति, ऐश्वर्य और मनुष्यों के जो अन्य सुख हैं, वे अपने समय पर होते ही है। जैसे इच्छा न होने पर भी इनके प्रतिकूल दुःख आदि अपने समय पर होते हैं ॥ १३ ॥ इसलिए यश और अपयश, जय और पराजय, सुख और दुःख तथा जीवन और मृत्यु में समान भाव रखना चाहिये ॥ १४ ॥ सत्व, रज और तम ये प्रकृति के गुण

६—इंद्रो न वज्रं जगृहे विलज्जितश्च्युतं स्वहस्तादरिसन्निधौ पुनः।
तमाह वृत्रो हर आत्तवज्रो जहि स्वशत्रुं न विषादकालः ॥

७—युयुत्सतां कुत्र चिदाततायिनां जयः सदैकत्र न वै परात्मना।
विनैकमुत्पत्तिलयस्थितीश्वरं सर्वज्ञमाद्यं पुरुषं सनातनम् ॥

८—लोकाः सपाला यस्येमे श्वसन्ति विवशा वशे। द्विजा इव शिचाबद्धाः स काल इह कारणं ॥

९—ओजः सहोबलं प्राणममृतं मृत्युमेव च। तमज्ञाय जनो हेतुमात्मानं मन्यते जडं ॥

१०—यथा दारुमयी नारी यथा यन्त्रमयो मृगः। एवं भूतानि मघवन्नीशतन्त्राणि विद्धि भोः ॥

११—पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमात्माभूतेंद्रियाशयाः। शक्नुवन्त्यस्य सर्गादौ न विनायदनुग्रहात् ॥

१२—अविद्वानेवमात्मानं मन्यतेऽनीशमीश्वरं। भूतैः सृजति भूतानि ग्रसते तानि तैः स्वयं ॥

१३—आयुः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यमाशिषः पुरुषस्य याः। भवंत्येव हि तत्काले यथाऽनिच्छोर्विपर्ययाः ॥

१४—तस्मादकीर्तियशसोर्जयापजययोरपि। समः स्यात्सुखदुःखाभ्यां मृत्युजीवितयोस्तथा ॥

हैं, आत्मा के नहीं। जो यह समझता है कि आत्मा केवल इनका साक्षी है, वह हर्ष और शोक से नहीं बँधता ॥१५॥ इन्द्र मुझे देखो कि मैं हार गया हूँ और मेरा हाथ तथा मेरा शस्त्र कट गया है, फिर भी मैं तुम्हारे प्राण लेने की इच्छा से अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न कर रहा हूँ ॥ १६ ॥ यह युद्ध जुए के समान है,इस जुए में बाण ही पासा है, वाहन इसके मोहरे हैं और प्राण इसकी बाजी है। इसमें किसकी विजय होगी और किस की पराजय, यह नहीं जाना जाता ॥ १७ ॥

श्रीशुकदेव बोले—इंद्र ने वृत्रासुर की बातें सुनकर निष्कपट भाव से उसका सत्कार किया। उन्होंने वज्र उठा लिया और गर्व-रहित होकर हँसते हुए उससे कहा ॥ १८ ॥

इन्द्र बोले— हे दानव ! तुम जीवन्मुक्त हो ; तुम जगत् के ईश्वर तथा प्रिय आत्मा भगवान् के सब प्रकार से भक्त हो; क्योंकि तुम्हारी ऐसी बुद्धि है ॥ १९ ॥ तुम लोगों को मोहित करने वाली भगवान् की माया से मुक्त हो चुके हो, क्योंकि तुम्हारे आसुर-भाव दूर हो गए हैं और तुम महापुरुष हो गए हो ॥ २० ॥ तुम्हारी रजोगुणी प्रकृति है, फिर भी सत्व-गुणमय भगवान् में तुम्हारी बुद्धि दृढ हुई, यह सचमुच ही बड़ा आश्चर्य है ॥ २१ ॥ जिसे मोक्ष के स्वामी भगवान् में भक्ति होती है, उसे स्वर्ग आदि के क्षुद्र सुखों का क्या प्रयोजन है ? अमृत के समुद्र में विहार करने वाले को गड्ढों के जल से क्या प्रयोजन है ? ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेव बोले—राजन् ! इस प्रकार धर्म की जिज्ञासा से परस्पर बातचीत करते हुए अत्यन्त पराक्रमी और युद्ध के स्वामी इन्द्र तथा वृत्रासुर युद्ध करने लगे ॥ २३ ॥ राजन् ! शत्रुहंता वृत्रासुर ने बाएँ हाथ से भयकर परिघ घुमाकर इन्द्र पर चलाया, किन्तु इंद्र ने सौ धारवाले वज्र के द्वारा वृत्रासुर के परिघ और उसके विशाल हाथ को एक साथ ही काट डाला

१५—सत्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः। तत्र साक्षिणमात्मानं यो वेद न स बध्यते ॥

१६—पश्य मां निर्जितं शक्र वृक्णायुधभुजं मृधे। घटमानं यथाशक्ति तव प्राणजिहीर्षया ॥

१७—प्राणग्लहोऽयं समर इष्वक्षो वाहनासनः। अत्र न ज्ञायतेऽमुष्य जयोऽमुष्य पराजयः ॥

श्रीशुक उवाच—

१८—इन्द्रो वृत्रवचः श्रुत्वा गतालीकमपूजयत्। गृहीतवज्रः प्रहसंस्तमाह गतविस्मयः ॥

१९—अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मतिरीदृशी। भक्तः सर्वात्मनात्मानं सुहृदं जगदीश्वरम् ॥

२०—भवानतार्षीन्मायां वै वैष्णवीं जनमोहिनीम्। यद्विहायासुरं भावं महापुरुषतां गतः ॥

२१—खल्विदं महदाश्चर्यं यद्रजः प्रकृतेस्तव। वासुदेवे भगवति सत्त्वात्मनि दृढा मतिः ॥

२२—यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे। विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः ॥

श्रीशुकउवाच

२३—इति ब्रुवाणावन्योन्यं धर्मजिज्ञासया नृप। युयुधाते महावीर्याविन्द्रवृत्रौ युधां पती ॥

२४—आविध्य परिघं वृत्रः कार्ष्णायसमरिन्दमः। इन्द्राय प्राहिणोद्घोरं वामहस्तेन मारिष ॥

॥ २४-२५ ॥ कटे हुए वृत्रासुर के दोनों हाथों के मूल से रक्त बहने लगा। वह उस पर्वत के समान शोभित होने लगा, जिसके दोनों पंख इन्द्र ने काट डाले थे और जो आकाश से गिर पड़ा था ॥ २६ ॥ अनन्तर वृत्र अपने उपरोष्ठ को आकाश में और अधरोष्ठ को धरती पर रखकर, आकाश के समान गहरे अपने मुख को फैलाकर इन्द्र की ओर दौड़ा। सर्प की जिह्वा के समान उसकी जीभ लप-लपा रही थी, काल के समान उसकी दाढ़े थीं और ऐसा मालूम होता था कि वह त्रैलोक्य को निगल जायगा। उसका शरीर अत्यन्त भयानक था, उसके चलने के वेग से पर्वत उखड़े जा रहे थे और पैदल चलते हुए वह पर्वत के समान मालूम होता था। अपने पैरों से धरती को चूर-चूर करता हुआ, वह शीघ्र ही इंद्र के पास पहुँचा और ऐरावत के सहित उनको निगल गया ॥ २८—२९॥ अजगर मानों हाथी को निगल गया हो, इस प्रकार अत्यत बली और प्रभावशाली वृत्रासुर के द्वारा इंद्र को निगला गया देखकर प्रजापतियों और महर्षियों के सहित देवता दुखी होकर 'हा कष्ट" कहकर चीखने लगे। इंद्र वृत्रासुर के द्वारा निगले जाने पर भी अपनी योगमाया के बल से और नारायण-कवच से रक्षित होने के कारण मरे नहीं ॥ ३०—३१ ॥ बलवान् इंद्र वज्र से उसका पेट फाड़कर निकल आए और उन्होंने बल-पूर्वक शत्रु का सिर काट डाला, जैसे पर्वत का शिखर काट डाला हो ॥ ३२ ॥ अत्यंत वेगवान वह वज्र वृत्रासुर का गला काटने के लिए चारों ओर घूमते हुए तीन सौ साठ दिनों में उसके मस्तक को नीचे गिरा सका ॥३३॥ उस समय आकाश में दुन्दुभि बजने लगी और वृत्रासुर के मारने के वर्णन वाले मंत्रों से स्तुति करता हुआ गन्धर्व, सिद्ध और श्रेष्ठ ऋषियों का समूह आनन्द से पुष्प-वर्षा करने लगा ॥ राजन्! वृत्र के शरीर से निकली हुई आत्म-ज्योति सब लोगों के देखते-देखते लोकातीत भगवान् में मिल गई ॥ ३५ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवे स्कन्ध का बारहवाँ अध्याय समाप्त

२५—स तु वृत्रस्य परिघं करं च करभोपमं। चिच्छेद युगपद्देवो वज्रेण शतपर्वणा ॥

२६—दोर्भ्यामुत्कृत्तमूलाभ्यां बभौ रक्तस्रवोऽसुरः। छिन्नपक्षो यथा गोत्रः खाद्भ्रष्टो वज्रिणा हतः ॥

२७—कृत्वाऽधरां हनुं भूमौ दैत्यो दिव्युत्तरां हनुम्। नभो गम्भीरवक्त्रेण लेलिहोल्बणजिह्वया ॥

२८—दंष्ट्राभिः कालकल्पाभिर्ग्रसन्निव जगत्त्रयम्। अतिमात्रमहाकाय आक्षिपंस्तरसा गिरीन् ॥

२९—गिरिराट् पादचारीव पद्भ्यां निर्जरयन्महीम्। जग्रास स समासाद्य वज्रिणं सहवाहनम् ॥

३०—महाप्राणो महावीर्यो महासर्प इव द्विपं। वृत्रग्रस्तं तमालक्ष्य सप्रजापतयः सुराः ॥

३१—हा कष्टमिति निर्विण्णाश्चुक्रुशुः समहर्षयः। निगीर्णोऽप्यसुरेन्द्रेण न ममारोदरं गतः ॥
महापुरुषसन्नद्धो योगमायाबलेन च ॥

३२—भित्त्वा वज्रेण तत्कुक्षिं निष्क्रम्य बलभिद्विभुः। उच्चकर्त शिरः शत्रोर्गिरिशृङ्गमिवौजसा ॥

३३—वज्रस्तु तत्कन्धरमाशुवेगः कृन्तन् समन्तात्परिवर्तमानः।
न्यपातयत्तावदहर्गणेन यो ज्योतिषामयने वार्त्रहत्ये ॥

३४—तदा च खे दुन्दुभयो विनेदुर्गन्धर्वसिद्धाः समहर्षिसंघाः।
वार्त्रघ्नलिङ्गैस्तमभिष्टुवाना मन्त्रैर्मुदा कुसुमैरभ्यवर्षन् ॥

३५—वृत्रस्य देहान्निष्क्रान्तमात्मज्योतिररिंदम। पश्यतां सर्वलोकानामलोकं समपद्यत ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कन्धेवृत्रवधोनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्म हत्या के भय से इंद्र का जल में छिपना, पुनः यज्ञ का अनुष्ठान करके ब्रह्म-हत्या के पाप से छुटकारा पाना

श्रीशुकदेव बोले—राजन् ! वृत्रासुर का वध होने पर इंद्र के अतिरिक्त तीनों लोकों, लोकपालों और देवताओं का दुःख मिट गया और वे अत्यंत प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ देवता, ऋषि, पितर भूत, दैत्य और देवताओं के अनुचर अपने-अपने स्थानों को गए और उसके बाद ब्रह्मा, शिव, और इंद्र आदि भी गए ॥ २ ॥

राजा परीक्षित बोले—मुनि ! मैं इंद्र के दुःख का कारण जानना चाहता हूँ। जिससे समस्त देवता प्रसन्न हुए, उस से इंद्र को दुःख कैसे हुआ ? ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेव बोले—वृत्रासुर के पराक्रम से उद्विग्न हुए समस्त देवताओं और ऋषियों ने जब इंद्र से वृत्रासुर का वध करने को कहा तो ब्रह्म-हत्या के भय से इंद्र ने वैसा न करना चाहा ॥ ४ ॥

इंद्र बोले—विश्वरूप की हत्या से मुझे जो पाप लगा था, वह तो मुझ पर कृपा करके स्त्री, भूमि, जल तथा वृक्षों ने बाँट लिया, किंतु वृत्र की हत्या का पाप मैं कैसे छुड़ाऊँगा ॥ ५ ॥

श्रीशुक उवाच—

१—वृत्रे हते त्रयो लोका विनाशक्रेण भूरिद । सपाला ह्यभवन्सद्यो विज्वरा निर्वृतेंद्रियाः ॥

२—देवर्षिपितृभूतानि दैत्यादेवानुगाः स्वयं । प्रतिजग्मुः स्वधिष्ण्यानि ब्रह्मेशेंद्रादयस्ततः ॥

राजोवाच—

३—इंद्रस्यानिर्वृतेर्हेतुं श्रोतुमिच्छामि भो मुने । येनासन्सुखिनो देवा हरेर्दुःखं कुतोऽभवत् ॥

श्रीशुक उवाच—

४—वृत्रविक्रमसंविग्नाः सर्वे देवाः सहर्षिभिः । तद्वधायार्थयन्निंद्रं नैच्छद्भीतो बृहद्वधात् ॥

इंद्र उवाच

५—स्त्रीभूजलद्रुमैरेनो विश्वरूपवधोद्भवम् । विभक्तमनुगृह्णद्भिर्वृत्रहत्यां क्वमार्ज्म्यहम् ॥

श्रीशुकदेव बोले—इन्द्र को ऐसा कहते सुनकर ऋषियों ने कहा–आपका कल्याण हो, आप भयभीत न हों, हम लोग आपके द्वारा अश्वमेध यज्ञ करावेंगे। अश्वमेध यज्ञ के द्वारा परमात्मा भगवान् की पूजा करके ब्रह्म-हत्या तो क्या समस्त जगत् की हत्या का पातक आप मिटा सकेंगे ॥ ६-७ ॥ जिनके कीर्तन से ब्रह्म-हत्या, पितृ-हत्या, गो-हत्या, मातृ-हत्या तथा आचार्य की हत्या का भी दोष छूट जाता है, जिनके कीर्तन से चांडाल, पुलकस, अथवा चाहे जैसा पापी भी पवित्र हो जाता है। यदि आप हम लोगों के द्वारा कराए हुए श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ के द्वारा उनकी पूजा करेंगे तो ब्राह्मणों के सहित समस्त स्थावर-जंगमों की हत्या का भी पाप आपको नहीं लगेगा, फिर दुष्टों को दंड देने की बात ही क्या है ॥ ८-९ ॥

श्रीशुकदेव बोले—इस प्रकार ब्राह्मणों के द्वारा प्रेरित होकर इंद्र ने वृत्रासुर का वध किया और उसके मारे जाने पर इंद्र को ब्रह्महत्या ने घेर लिया ॥ १० ॥ इस ब्रह्महत्या के के दुःख से इंद्र को सुख नहीं मिला, क्योंकि सलज्ज व्यक्ति यदि निन्दा का पात्र हो जाता है तो उसे अन्य कोई गुण सुख नहीं दे सकता ॥ ११ ॥ चांडालिनी के समान रूप वाली और अपने पीछे दौड़ती आती हुई उस ब्रह्म-हत्या को इंद्र ने देखा। वृद्धावस्था के कारण उसके अंग काँप रहे थे, उसे यक्ष्मा का रोग हो गया था, उसके वस्त्र रक्त से भींगे हुए थे, उसके केश बिखरे हुए थे, और वह "ठहरो! ठहरो!" ऐसा कह रही थी। उसको मछली की सी

श्रीशुक उवाच—

६—ऋषयस्तदुपाकर्ण्य महेंद्रमिदमब्रुवन्। याजयिष्याम भद्रं ते हयमेधेन मास्मभैः ॥

७—हयमेधेन पुरुषं परमात्मानमीश्वरम्। इष्ट्वा नारायणं देव मोक्ष्यसेऽपि जगद्वधात् ॥

८—ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाचार्यहाऽघवान्। श्वादः पुल्कसको वाऽपि शुद्ध्येरन् यस्य कीर्तनात् ॥

९—तमश्वमेधेन महामखेन श्रद्धाऽन्वितोऽस्माभिरनुष्ठितेन।

हत्वाऽपि सब्रह्मचराचरं त्वं न लिप्यसे किं खलनिग्रहेण ॥

श्रीशुक उवाच—

१०—एवं संचोदितो विप्रैर्मरुत्वानहनद्रिपुम्। ब्रह्महत्याहते तस्मिन्नाससाद वृषाकपिम् ॥

११—तयेंद्रः स्मासहत्ताप निर्वृतिर्नामुमाविशत्। ह्रीमंतं वाच्यतां प्राप्तं सुखयन्त्यपि नो गुणाः ॥

१२—तां ददर्शानुधावंतीं चांडालीमिव रूपिणीम्। जरया वेपमानांगीं यक्ष्मग्रस्तामसृक्पटाम् ॥

१३—विकीर्य पलितान् केशांस्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणीम्। मीनगंधसुगंधेन कुर्वतीं मार्गदूषणम् ॥

दुर्गंधि से रास्ते भर गये थे ॥ १२-१३ ॥ राजन्! इन्द्र समस्त दिशाओं और आकाश मे भागते फिरे और अन्त में ईशान कोण मे जाकर शीघ्र ही मानसरोवर में प्रविष्ट हुए ॥ १४ ॥ इंद्र वहाँ कमलनाल के तन्तुओं में गुप्त रूप से एक हजार वर्ष तक बैठे रहे और मन ही मन ब्रह्म-हत्या से छुटकारा पाने की चिंता करते रहे। अग्नि जल मे प्रवेश नहीं कर सकता, इसलिये उन्हें यज्ञ का भाग भी न मिलता था ॥ १५ ॥ जब तक इन्द्र कमल में रहे, तबतक विद्या, तपस्या, योग, तथा बल से समर्थ हुए नहुष राजा ने स्वर्ग का शासन किया। अनंतर संपत्ति तथा ऐश्वर्य के मद से अंधे उन नहुष को इंद्राणी ने सर्प बना दिया ॥ १६ ॥ भगवान् का ध्यान करने से इंद्र के पाप नष्ट हो गए थे, वे ब्राह्मणों के द्वारा बुलाए जाने पर स्वर्ग में गए। जब तक वे मानसरोवर में रहे, तब तक ईशान कोण के देवता, रुद्र और लक्ष्मी ने इनकी रक्षा की थी, इसलिए ब्रह्म-हत्या उन्हें नहीं पछाड सकी ॥ १७ ॥ भारत! ब्रह्मर्षियों ने आकर विधिपूर्वक इंद्र को अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा दी, जिस यज्ञ के द्वारा भगवान् की आराधना होती है ॥ १८ ॥ ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों के द्वारा कराए गए इस अश्वमेध यज्ञ में इंद्र ने सर्व वेदमय परमात्मा का पूजन किया। जिस प्रकार सूर्य से कुहासा दूर हो जाता है, उसी प्रकार इस पूजन के द्वारा पापों का समूह रूपी इंद्र की वह ब्रह्महत्या दूर हो गई ॥ १९—२० ॥ मरीचि आदि ऋषियों के द्वारा

१४—नभो गतो दिशः सर्वाः सहस्राक्षो विशांपते। प्रागुदीचीं दिशं तूर्णं प्रविष्टो नृपमानस ॥

१५—स आवसत्पुष्करनालतंतू न लब्धभोगो यदिहाग्निदूतः।

वर्षाणि साहस्रमलक्षितोऽन्तः स चिंतयन् ब्रह्मवधाद्विमोक्षं ॥

१६—तावत्त्रिणाकं नहुषः शशास विद्या तपो योगबलानुभावः।

स संपदैश्वर्यमदांधबुद्धिर्नीतस्तिरश्चां गतिमिंद्रपत्न्या ॥

१७—ततो गतो ब्रह्मगिरोपहूत ऋतंभरध्याननिवारिताघः।

पापस्तु दिग्देवतया हतौजास्तंनाभ्यभूदवित विष्णुपत्न्या ॥

१८—तं च ब्रह्मर्षयोऽभ्येत्य हयमेधेन भारत। यथावद्दीक्षयां चक्रुः पुरुषाराधनेन ह ॥

१९—अथेज्यमाने पुरुषे सर्वदेवमयात्मनि। अश्वमेधे महेंद्रेण वितते ब्रह्मवादिभिः ॥

२०—स वै त्वाष्ट्रवधो भूयानपि पापचयो नृप। नीतस्तेनैव शून्याय नीहार इव भानुना ॥

कराए गए अश्वमेध से यज्ञों के स्वामी पुराणपुरुष भगवान् की पूजा करने के कारण इंद्र के समस्त पाप नष्ट हो गए और वे पुनः महान् हुए ॥ २१ ॥ जिससे इन्द्र के समस्त पाप नष्ट होगए और वे पुनः महान् हुए ॥ २१ ॥ जिसमें इन्द्र की विजय और पाप से उनके छुटकारे का वर्णन है, ऐसी यह श्रेष्ठ कथा बल देने वाली, शत्रुओं को परास्त करने वाली तथा धन, यश, कल्याण और आयुष्य देने वाली है। इस कथा में भगवान् का कीर्तन और भक्तों का वर्णन है। बुद्धिमान पुरुषों को पापों का नाश करने वाली इस कथा का सदा प्रत्येक पर्व में पाठ करना तथा इसे सुनना चाहिए ॥ २२-२३ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवें स्कंध का तेरहवां अध्याय समाप्त

२१—स वाजिमेधेन यथोदितेन वितायमानेन मरीचिमिश्रैः ।

इष्ट्वाधियज्ञं पुरुषं पुराणमिन्द्रो महानास विधूतपापः ॥

२२—इदं महाख्यानमशेषपाप्मनां प्रक्षालनं तीर्थपदानुकीर्तनं ।

भक्त्युच्छ्रयं भक्तजनानुवर्णनं महेन्द्रमोक्षं विजयं मरुत्वतः ॥

२३—पठेयुराख्यानमिदं सदा बुधाः शृण्वन्त्यथो पर्वणि पर्वणीन्द्रियं ।

धन्यं यशस्यं निखिलाघमोचनं रिपुञ्जयं स्वस्त्ययनं तथाऽऽयुषं ॥

इ० भा० म० षष्ठस्कंधे इन्द्रविजयोनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

वृत्र के पूर्व जन्म की कथा

राजा परीक्षित बोले—ब्रह्मन्! वृत्रासुर पापी था, वह रजोगुण और तमोगुण से युक्त स्वाभाव वाला था, उसकी भगवान् नारायण मे अविचल भक्ति कैसे हुई? ॥ १ ॥ शुद्ध सतोगुणी देवताओं और निर्मल हृदय वाले ऋषियों को भी प्रायः भगवान् के चरणों में भक्ति नहीं होती ॥ २ ॥ पृथ्वी पर धूलि के जितने कण हैं, उतने ही जीव भी हैं ऐसा कहा जाता है। उनमें से मनुष्य आदि कुछ ही प्राणी धर्म का आचरण करते हैं ॥ ३ ॥ धर्माचरण करने वालों में भी कतिपय उत्तम ब्राह्मण ही मोक्ष की इच्छा करते हैं और मोक्ष की इच्छा रखने वालों में भी हजारों में एक-आध ही घर आदि की आसक्ति छोड़कर सत्य को जानते हैं ॥ ४ ॥ महामुनि! जीवन्मुक्त करोड़ों सिद्धों मे भी भगवत् परायण और शांत अन्तःकरण वाले लोग दुर्लभ होते हैं ॥ ५ ॥ वृत्र तो पापी था। वह समस्त लोकों को पीड़ा पहुँचाने वाला था। भयकर सग्राम में भी भगवान् मे उसकी ऐसी दृढ बुद्धि कैसे हुई? ॥ ६ ॥ प्रभु! हम लोगों के मन में इस बात का बड़ा सन्देह है, इसका कारण जानने का हमारे मन में बड़ा कौतूहल है, क्योंकि वृत्र ने युद्ध में अपने पराक्रम से इन्द्र को प्रसन्न किया था, अतः यह भी नहीं कहा जा सकता कि इन्द्र के भय से वह भगवान् की शरण गया ॥ ७ ॥

सूत बोले—भगवान् शुकदेव ने श्रद्धायुक्त राजा परीक्षित का यह प्रश्न सुनकर उनका सत्कार किया और वे बोले ॥ ८ ॥

परीक्षिदुवाच—

१—रजस्तमः स्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः। नारायणे भगवति कथमासीद् दृढामतिः ॥

२—देवाना शुद्धसत्वानामृषीणा चामलात्मना। भक्तिर्मुकुंदचरणे न प्रायेणोपजायते ॥

३—रजोभिः समसंख्याताः पार्थिवैरिह जंतवः। तेषा ये केचने हंते श्रेयो वै मनुजादयः ॥

४—प्रायो मुमुक्षवस्तेषा केचनैवद्विजोत्तमाः। मुमुक्षूणा सहस्रेषु कश्चिन्मुच्येत सिद्ध्यति ॥

५—मुक्तानामपि सिद्धाना नारायणपरायणः। सुदुर्लभः प्रशातात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥

६—वृत्रस्तु स कथं पापः सर्वलोकोपतापनः। इत्थ दृढमतिः कृष्णआसीत्सग्राम उल्बणे ॥

७—अत्र नः संशयो भूयान् श्रोतुं कौतूहल प्रभो। यः पौरुषेण समरे सहस्राक्षमतोषयत् ॥

सूत उवाच—

८—परीक्षितोऽथ संप्रश्न भगवान्बादरायणिः। निशम्य श्रद्दधानस्य प्रतिनद्य वचोऽब्रवीत् ॥

श्रीशुकदेव बोले—राजन्! यह इतिहास जैसा है, उसे आप ध्यानपूर्वक सुनें। मैंने इस को द्वैपायन, नारद और देवल के मुँह से सुना था॥ ९॥ राजन्! शूरसेन देश में चित्रकेतु नाम का विख्यात चक्रवर्ती राजा था। उसकी समस्त इच्छाओं को पृथ्वी पूर्ण करती थी॥ १०॥ उसके एक करोड़ स्त्रियाँ थीं। सन्तान के लिए समर्थ होते हुए भी उन स्त्रियों से उसे कोई सन्तान न हुई। रूप, उदारता, अवस्था, अच्छे कुल में जन्म, विद्या, ऐश्वर्य और लक्ष्मी आदि समस्त गुणों से संपन्न होते हुए भी वन्ध्याओं का पति होने के कारण अर्थात् पुत्रहीन होने के कारण वह चिन्तित हुआ॥ १२॥ सपत्ति,सुन्दर आँखोंवाली समस्त स्त्रियां और यह भूमि, उस चक्रवर्ती राजा की प्रसन्नता का कारण न हो सकीं॥ १३॥ एक दिन महात्मा अंगिरा ऋषि समस्त लोकों में भ्रमण करते हुए इच्छापूर्वक उनके घर गए॥ १४॥ प्रत्युत्थान और पूजन आदि के द्वारा उनका सत्कार और आतिथ्य करके चित्रकेतु ने उन्हें भली भांति बैठाया और स्वयं भी सावधान होकर बैठे॥ १५॥ राजन्! अपने निकट भूमि पर बैठे हुए और विनय से झुके हुए उन राजा का सत्कार करके उन्हें सम्बोधन करते हुए अंगिरा ऋषि इस प्रकार बोले॥ १६॥

अंगिरा बोले—आप और आप के राज्य के अन्य प्राणी आरोग्य तो हैं? आप लोगों का कल्याण तो है? जिस प्रकार महत्तत्त्व आदि सात प्रकृतियों से गुप्त (रक्षित) रहकर जीव उन प्रकृतियों के ही आधीन रहता है, उसी प्रकार राजा भी सात प्रकृतियों (स्वामी,

---

श्रीशुक उवाच—

९—शृणुष्वावहितो राजन्नितिहासमिमं यथा। श्रुतं द्वैपायनमुखान्नारदाद्देवलादपि॥

१०—आसीद्राजा सार्वभौमः शूरसेनेषु वै नृप। चित्रकेतुरिति ख्यातो यस्यासीत्कामधुङ् मही॥

११—तस्य भार्या सहस्राणां सहस्राणि दशाभवन्। सांतानिकश्चापि नृपो न लेभे तासु संततिम्॥

१२—रूपौदार्य वयो जन्म विद्यैश्वर्यश्रियादिभिः। संपन्नस्य गुणैः सर्वैश्चिता वन्ध्यापतेरभूत्॥

१३—न तस्य संपदः सर्वा महिष्यो वामलोचनाः। सार्वभौमस्य भूश्चेयमभवन्प्रीतिहेतवः॥

१४—तस्यैकदा तु भवनमङ्गिरा भगवानृषिः। लोकाननु चरन्नेतानुपागच्छद्यदृच्छया॥

१५—स पूजयित्वा विधिवत्प्रत्युत्थानार्हणादिभिः। कृतातिथ्य मुपासीदत्सुखासीन समाहितः॥

१६—महर्षिस्तमुपासीन प्रश्रयावनतं क्षितौ। प्रतिपूज्य महाराज समाभाष्येदमब्रवीत्॥

अंगिरा उवाच—

१७—अपि तेऽनामयं स्वस्ति प्रकृतीनां तथात्मनः। यथा प्रकृतिभिर्गुप्तः पुमान् राजापि सप्तभिः॥

अर्थात् गुरु, मंत्री, ग्राम, दुर्ग, धन, दण्ड और मित्र) अर्थात् परामर्श देनेवाले से गुप्त अर्थात् रक्षित रहकर उन्हींके आधीन रहता है तो उसे राज्य का सुख प्राप्त होता है, जिस प्रकार राजा का सुख कर्मचारियों के अधीन है, उसी प्रकार कर्मचारियों का सुख भी राजा के अधीन है ॥ १७—१८ ॥ आपकी स्त्रियाँ, प्रजा, मन्त्री, नौकर, व्यवसायी, परामर्शदाता, नागरिक नगरों के अधिकारी , आप के अधीन राजा और आप के पुत्र आपके वशवर्ती तो हैं ? ॥१९॥ जिसका मन अपने वश मे रहता है, उसके वश मे ये सब भी रहते हैं और लोक तथा लोकपाल आलस्यहीन होकर उसे कर दिया करते हैं ॥ २० ॥ आप प्रसन्न नहीं दीख पड़ते ! यह अप्रसन्नता किसी दूसरे के कारण है अथवा अपने ही? जान पड़ता है कि आपकी कोई इच्छा पूरी नहीं हुई। क्योंकि आप का मुख चिंता से मलिन दीख पड़ता है ॥ २१ ॥ राजन् ! सर्वज्ञ अंगिरा ऋषि के इस प्रकार पूछने पर विनय से अवनत और सन्तान की कामना वाले उन राजा ने उनसे कहा ॥ २२ ॥

चित्रकेतु बोले—महाराज ! तपस्या, ज्ञान, तथा समाधि से पापरहित हुए योगियों के निकट प्राणियों के मन की और बाहर की कौन सी बात अज्ञात है ? ॥ २३ ॥ ब्रह्मन् ! फिर भी जब आपने जान बूझकर पूछा है तो आपकी आज्ञा से मैं अपनी चिन्ता का कारण आप से कहता हूँ ॥ २४ ॥ मेरे साम्राज्य के ऐश्वर्य और उसकी सम्पत्ति की कामना लोकपाल भी करते हैं, किन्तु जिस प्रकार भूखे और प्यासे मनुष्य को दूसरी चीजे प्रसन्न नहीं कर सकतीं, उसी प्रकार मुझ सन्तान-हीन को यह साम्राज्य भी सुख नहीं देता ॥ २५ ॥ महाभाग ! पुत्रहीन होने के कारण मैं अपने पूर्वजों के सहित नरक मे पड़ा हुआ हू। आप हमारी रक्षा करे। आप ऐसा उपाय करे, जिससे हमे पुत्र की प्राप्ति हो और हम इस दुस्तर नरक से तर सकें ॥ २६ ॥

१८—आत्मानं प्रकृतिष्वद्धा निधाय श्रेय आप्नुयात् । राजा तथा प्रकृतयो नरदेवाहिताधयः ॥

१९—अपि दाराः प्रजामात्या भृत्याः श्रेण्योऽथ मन्त्रिण । पौरा जानपदा भूपा आत्मजा वशवर्तिनः ॥

२० -यस्यात्माऽनुवशश्चेत्स्यात् सर्वे तद्वशगा इमे । लोका सपाला यच्छन्ति सर्वे बलिमतन्द्रिताः ॥

२१—आत्मनः प्रीयतेनात्मा परतः स्वतएव वा । लक्षयेलब्धकाम त्वा चिन्तया शबल मुख ॥

२२—एव विकल्पितो राजन्विदुषा मुनिनापि स. । प्रश्रयावनतोऽभ्याह प्रजाकामस्ततो मुनि ॥

चित्रकेतुरुवाच—

२३—भगवन् किं न विदित तपो ज्ञानसमाधिभिः । योगिनां ध्वस्तपापनां बहिरत. शरीरिषु ॥

२४ - अथापि पृच्छतो ब्रूया ब्रह्मन्नात्मनि चिंतित । भवतो विदुषश्चापि चोदितस्त्वदनुज्ञया ॥

२५—लोकपालैरपि प्रार्थ्याः साम्राज्यैश्वर्यसंपदः । ननन्दयन्त्यप्रज मा क्षुत्तृट्कामिवापरे ॥

२६—ततः पाहि महाभाग पूर्वैः सहगत तमः । यथा तरेम दुस्तार प्रजया तद्विधेहि नः ॥

श्रीशुकदेव बोले—राजा के इस प्रकार प्रार्थना करने पर उन दयालु अंगिरा मुनि ने त्वष्टा सम्बन्धी चरु पकाकर उस से त्वष्टादेव की पूजा की ॥ २७ ॥ भारत ! राजा की जो सब से बड़ी और श्रेष्ठ कृतद्युति नाम की रानी थी, उसे उन्होंने यज्ञ का उच्छिष्ट चरु दिया ॥ २८ ॥ अनन्तर उन्होंने राजा से कहा कि राजन् ! इससे आपको एक पुत्र होगा। वह आप को हर्ष और शोक दोनों ही देगा। ऐसा कहकर ब्रह्मा के पुत्र अंगिराऋषि चले गए ॥ २९॥ उस चरु के खाने के बाद ही देवी कृतद्युति ने चित्रकेतु के द्वारा गर्भ धारण किया, मानो अग्नि के द्वारा कृत्तिका ने गर्भ धारण किया हो ॥३०॥ राजन् ! शूरसेन देश के स्वामी चित्रकेतु के द्वारा स्थित कृतद्युति का वह गर्भ शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान धीरे-धीरे प्रतिदिन बढने लगा ॥ ३१ ॥ समय आने पर कुमार उत्पन्न हुआ, जिससे शूरसेन देश के निवासियों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई ॥३२॥ राजा ने प्रसन्न होकर स्नान हो जाने पर पवित्र हुए तथा अलकृत कुमार को ब्राह्मणों से आशीर्वाद दिलवाया और उसका जात-कर्म सस्कार कराया ॥ ३३ ॥ उन्होंने उन ब्राह्मणों को सुवर्ण, चांदी, वस्त्र, आभूषण, गाव, घोड़े, हाथी और साठ करोड गाएँ दीं ॥ ३४ ॥ कुमार के धन, यश और आयुष्य की वृद्धि के लिए उदार हृदय राजा ने मेघ के समान दूसरों को भी उनके इच्छित पदार्थ दिए ॥ ३५ ॥ जिस प्रकार कठिनाई से प्राप्त हुए धन पर कगाल की प्रीति बढती है, राजर्षि उसी प्रकार कठिनाई से प्राप्त हुए उस पुत्र पर दिन-दिन पिता की ममता बढ़ने लगी ॥ ३६ ॥ माता के मन मे पुत्र के प्रति मोह जनित अत्यन्त अधिक स्नेह उत्पन्न हुआ और कृतद्युति की सौते पुत्र की इच्छा से दुखी हो गई ॥ ३७ ॥ प्रति-दिन बालक को खिलाते

श्रीशुक उवाच—

२७—इत्यर्थितः स भगवान्कृपालुर्ब्रह्मणः सुतः । श्रपयित्वा चरुं त्वाष्ट्रं त्वष्टारमयजद्विभुः ॥

२८—ज्येष्ठा श्रेष्ठा च या राज्ञो महिषीणां च भारत । नाम्ना कृतद्युतिस्तस्यै यज्ञोच्छिष्टमदाद् द्विजः ॥

२९—अथाह नृपतिं राजन्भवितैकस्तवात्मजः । हर्षशोकप्रदस्तुभ्यमिति ब्रह्मसुतो ययौ ॥

३०—सापि तत्प्राशनादेव चित्रकेतोरधारयत् । गर्भं कृतद्युतिर्देवी कृत्तिकाऽग्नेरिवात्मज ॥

३१—तस्या अनुदिन गर्भः शुक्लपक्ष इवोडुपः । ववृधे शूरसेनेश तेजसा शनकैर्नृप ॥

३२—अथ काल उपावृत्ते कुमारः समजायत । जनयन् शूरसेनाना शृण्वता परमा मुद ॥

३३—हृष्टो राजा कुमारस्य स्नातः शुचिरलंकृत. । वाचयित्वाऽऽशिषो विप्रैः कारयामास जातकं ॥

३४—तेभ्यो हिरण्यं रजत वासास्याभरणानि च । ग्रामान्हयान्गजान्प्रादाद्धेनूनामर्बुदानि षट् ॥

३५—ववर्ष काममन्येषां पर्जन्य इव देहिना । धन्यं यशस्य मायुष्य कुमारस्य महामनाः ॥

३६—कृच्छ्रलब्धेऽथराजर्षेस्तनयेऽनुदिनं पितुः । यथा निःस्वस्य कृच्छ्राप्ते धने स्नेहोऽन्ववर्धत ॥

३७—मातुस्त्वतितरा पुत्रेस्नेहो मोहसमुद्भवः । कृतद्युतेः सपत्नीनां प्रजाकामज्वरोऽभवत् ॥

हुए चित्रकेतु के मन मे पुत्रवती पत्नी के प्रति जितनी अधिक प्रीति थी, उतनी दूसरी स्त्रियों में न रही ॥ ३८ ॥ ईर्ष्या से, सन्तान हीन होने के दुःख से और राजा के अनादर से वे अपने को धिक्कार देती हुई परिताप करने लगीं ॥ ३९ ॥ सन्तान-हीना और पतिगृह मे असम्मानित पापिनी स्त्रियों को धिक्कार है। सुदर सन्तान-वाली सौते दासियों के समान उनका तिरस्कार करती हैं ॥ ४० ॥ जिनका सदा सम्मान होता है, ऐसी दासियों का स्वामी की सेवा करने मे क्या दुःख है ? किन्तु हम लोग तो दासियों की भी दासी के समान भाग्यहीना हैं ॥ ४१ ॥ जिनका जीवित रहना भी राजा को पसन्द नहीं था और जो सौत की पुत्ररूपी सपत्ति को देखकर जल रही थीं, ऐसी उन वध्या रानियों का द्वेष बड़ा प्रबल हो गया ॥ ४२ ॥ द्वेष के कारण जिनकी बुद्धि नष्ट हो गई थी, जिनका हृदय अत्यन्त कठोर था और जो राजा के प्रति असहनशील थीं, उन स्त्रियों ने कुमार को विप दे दिया ॥ ४३ ॥ सौतों का यह बड़ा पाप कृतद्युति ने न जाना बालक को सोया हुआ समझकर वह घर मे घूमती रही ॥ ४४ ॥ बालक को बहुत देर तक सोया जानकर चतुरा कृतद्युति ने धात्री से कहा कि भद्रे ! मेरे पुत्र को ले आओ ॥ ४५ ॥ शय्या के पास जाकर उसने देखा कि कुमार की आँखे उलट गई है. शरीर से प्राण निकल गया है। यह देखकर 'मैं मारी गई' ऐसा कहकर वह भूमि पर गिर पडी ॥ ४६ ॥ दोनों हाथों से बल-पूर्वक छाती पीटती हुई उस धाय का अत्यन्त आतुर स्वर सुनकर रानी शीघ्र ही पुत्र के समीप आई और सहसा मरे हुए अपने बालक पुत्र को देखा ॥ ४७ ॥ बढे हुए शोक के कारण वे

३८—चित्रकेतो रतिप्रीतिर्यथा दारे प्रजावति । न तथाऽन्येषु सञ्जज्ञे बालं लालयतोऽन्वहं ॥

३९—ताः पर्यतप्यन्नात्मानं गर्हयन्त्योऽभ्यसूयया । आनपत्येन दुःखेन राज्ञोऽनादरणेन च ॥

४०—धिगप्रजां स्त्रियं पापां पत्युश्चागृहसम्मताम् । सुप्रजाभिः सपत्नीभिर्दासीमिव तिरस्कृताम् ॥

४१—दासीनां कोनुसंतापः स्वामिनः परिचर्यया । अभीक्ष्णं लब्धमानानां दास्यादासीव दुर्भगाः ॥

४२—एवं सन्दह्यमानानां सपत्न्याः पुत्रसम्पदा । राज्ञोऽसम्मतवृत्तीनां विद्वेषो बलवानभूत् ॥

४३—विद्वेषनष्टमतयः स्त्रियो दारुणचेतसः । गरं ददुः कुमाराय दुर्मर्षा नृपतिं प्रति ॥

४४—कृतद्युतिरजानंती सपत्नीनामघं महत् । सुप्त एवेति संचिन्त्य निरीक्ष्य व्यचरद् गृहे ॥

४५—शयानं सुचिरं बालमुपधार्य मनीषिणी । पुत्रमानय मे भद्रे इति धात्रीमचोदयत् ॥

४६—सा शयानमुपव्रज्य दृष्ट्वा चोत्तारलोचनं । प्राणेन्द्रियात्मभिस्त्यक्तं हताऽस्मीत्यपतद्भुवि ॥

४७—तस्यास्तदाकर्ण्य भृशातुरं स्वरं घ्नन्त्याः कराभ्यामुर उच्चकैरपि ।

प्रविश्य राज्ञी त्वरयात्मजान्तिकं ददर्श बालं सहसा मृतं सुतं ॥

भूमि पर गिर पड़ीं,उन्हे मूर्छा आ गई और उनके केश तथा वस्त्र बिखर गए। अनन्तर राजा के अन्तःपुर वासी स्त्री और पुरुष रोना सुनकर वहाँ आए और वे भी अत्यन्त दुखी होकर उन्हीं के समान रोने लगे। जिन्होने अपराध किया था, वे सौते भी आकर झूठ-मूठ रोने लगीं ॥ ४८-४९ ॥ सहसा कुमार की मृत्यु हो गई, यह सुनकर अन्धे के समान हुए, गिरते-पड़ते और स्नेहानुबन्ध के कारण बढे हुए शोक से भली भाँति घिरे राजा चित्रकेतु ब्राह्मणों के सहित वहां आए और उनके पीछे उनके कर्मचारी भी आए ॥ ५० ॥ वे मरे हुए बालक के पैरों के पास गिर पडे, उनके केश और वस्त्र बिखर गए, वे लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगे, आंसुओं की अधिकता से उनका गला रुँध गया था, अत. वे कुछ बोल न सके ॥ ५१ ॥ तब अपने एक मात्र पुत्र को मरा हुआ तथा पति को अत्यन्त शोक से व्याकुल देखकर रानी कृतद्युति अनेक प्रकार से विलाप करने लगीं। उनका वह विलाप लोगों का और कर्मचारियों का हृदय विदीर्ण करनेवाला था ॥ ५२ ॥ कुंकुम के गन्ध से मण्डित दोनों स्तनों को काजल-युक्त आसू से सींचती हुई तथा जिनके फूल गिर गए थे, ऐसे केशों को बिखराकर ऊँचे स्वर से कुररी के समान अनेक प्रकार से पुत्र का शोक करने लगीं ॥ ५३ ॥ हे विधाता ! तुम अत्यन्त मूर्ख हो, क्योंकि तुम अपनी सृष्टि के लिए प्रतिकूल आचरण करते हो। बड़ों के जीते जी छोटों की मृत्यु होना अत्यन्त विपरीत बात है। यदि ऐसा है तो निश्चय ही तुम प्राणियों के शत्रु हो ॥ ५४ ॥ यदि प्राणियों के कर्मों के कारण ही जन्म और मरण का उचित क्रम न रहता हो तो

४८—पपात भूमौ परिवृद्धयाशुचा मुमोह विभ्रष्टशिरोरुहा वरा ॥

४९—ततो नृपान्तःपुरवर्तिनो जना नराश्च नार्यश्च निशम्य रोदनम् ।
आगत्य तुल्यव्यसनाः सुदुःखितास्ताश्च व्यलीक रुरुदुः कृतागसः ॥

५०—श्रुत्वा मृतं पुत्रमलक्षितान्तकं विनष्टदृष्टिः प्रपतन् स्खलन् पथि ।
स्नेहानुबन्धैधितया शुचा भृशं विमूर्छितोऽनुप्रकृतिर्द्विजैर्वृतः ॥

५१—पपात बालस्य सपादमूले मृतस्य विस्रस्तशिरोरुहाम्बरः ।
दीर्घं श्वसन् बाष्पकलोपरोधतो निरुद्धकण्ठो न शशाक भाषितुम् ॥

५२—पतिं निरीक्ष्योरुशुचार्पितं तदा मृतं च बालं सुतमेकसन्ततिं ।
जनस्य राज्ञी प्रकृतेश्च हृद्रुजं सती दधाना विललाप चित्रधा ॥

५३—स्तनद्वयं कुंकुमगन्धमण्डितं निषिंचती सांजनबाष्पबिंदुभिः ।
विकीर्य केशान् विगलत्स्रजः सुतं शुशोच चित्रं कुररीव सुस्वरं ॥

५४—अहो विधातस्त्वमतीव बालिशो यस्त्वात्मसृष्ट्यप्रतिरूपमीहसे ।
परेऽनुजीवत्यपरस्य यामृतिर्विपर्ययश्चेत्त्वमसि ध्रुवः परः ॥

तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? यदि यह कहो कि तुम्हारे बिना केवल कर्मों से ही कुछ नहीं होता तो अपनी सृष्टि बढाने के निमित्त इस स्नेहरूपी पाश को, जो तुम्हारा ही बनाया हुआ है, स्वय तुम्हीं काटते हो ॥५५॥ हे पुत्र ! मुझ अनाथिनी और कगालिनी का तुम्हें त्याग न करना चाहिये। अपने शोकाकुल पिता को तुम देखो। संतानहीन के लिए जो दुस्तर है, उस नरक से हम लोग तुम्हारे द्वारा तर जाएँगे। तुम निष्ठुर यम के साथ दूर न जाओ ॥ ५६ ॥ हे राजकुमार ! हे तात ! उठो, तुम्हारे समवयस्क सखा खेलने के लिए तुम्हे बुला रहे हैं। तुम बहुत देर से सो रहे हो। तुम्हे भूख लगी होगी। मेरे स्तन का दूध पीओ और हम लोग, जो तुम्हारे अपने हैं, उनका शोक दूर करो ॥५७॥ पुत्र ! मुझ हतभागिनी ने तुम्हारी मोहक मुस्कान और प्रसन्न दृष्टि वाला मुख-कमल नहीं देखा। मैं तुम्हारी मनोहर वाणी नहीं सुन पाती। जहाँ से लौटा नहीं जा सकता, क्या तुम उस परलोक में गए हो ? क्या निर्दय यम तुम्हे ले गया है ? ॥ ५८ ॥

श्रीशुकदेव बोले—इस प्रकार मरे हुए पुत्र के लिए अनेक प्रकार से शोक करती हुई कृतद्युति के विलाप से अत्यत दुःखी होकर राजा चित्रकेतु भी गला फाड कर रोने लगे ॥५९॥ इस प्रकार विलाप करते हुए उस दंपति को देखकर उनके अनुगामी स्त्री और पुरुष भी रोने लगे और चेतना-हीन हो गए ॥ ६० ॥ इस प्रकार राजा चित्रकेतु को सकटापन्न, चेतनाहीन और अनाथ जानकर नारद के सहित अंगिरा नामक मुनि वहाँ आए ॥ ६१ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवे स्कध का चौदहवाँ अध्याय समाप्त

—※—

५५—नहि क्रमश्चेदिह मृत्युजन्मनोः शरीरिणामस्तु तदात्मकर्मभिः ।
यः स्नेहपाशो निजसर्गवृद्धये स्वयं कृतस्ते तमिमं विवृश्चसि ॥

५६—त्वं तात नार्हसि च मां कृपणामनाथां त्यक्तुं विचक्ष्व पितरं तव शोकतप्तम् ।
अञ्जस्तरेम भवताऽप्रजदुस्तरं यद्ध्वान्तं न याह्यकरुणेन यमेन दूरम् ॥

५७—उत्तिष्ठ तात त इमे शिशवो वयस्यास्त्वामाह्वयन्ति नृपनन्दन संविहर्तुम् ।
सुप्तश्चिरं ह्यशनया च भवान् परीतो भुङ्क्ष्व स्तनं पिब शुचो हर नः स्वकानाम् ॥

५८—नाहं तनूज ददृशे हतमंगला ते मुग्धस्मितं मुदितवीक्षणमाननाब्जम् ।
किं वा गतोऽस्यपुनरन्वयमन्यलोकं नीतोऽघृणेन न शृणोमि कला गिरस्ते ॥

श्रीशुक उवाच—

५९—विलपन्त्या मृतं पुत्रमिति चित्रविलापनैः । चित्रकेतुर्भृशं तप्तो मुक्तकंठो रुरोद ह ॥

६०—तयोर्विलपतोः सर्वे दम्पत्योस्तदनुव्रताः । रुरुदुः स्म नरा नार्यः सर्वमासीदचेतनम् ॥

६१—एवं कश्मलमापन्नं नष्टसंज्ञमनायकम् । ज्ञात्वाऽङ्गिरा नाम मुनिराजगाम सनारदः ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कन्धेचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

शोक से व्याकुल हुए राजा चित्रकेतु को नारद और अंगिरा के द्वारा तत्वज्ञान का उपदेश। राजा चित्रकेतु का शोक-निवारण

श्रीशुकदेव बोले—मृतक के पास मृतक के समान पड़े हुए, शोक से अभिभूत राजा को सुंदर उक्तियों से समझाते हुए, वे दोनों बोले॥ १ ॥ राजन्! आप जिसका शोक कर रहे हैं, वह यह बालक आपका कौन है? और इस सृष्टि मे आप इसके कौन हैं? पूर्व जन्म में, वर्त्तमान में और भविष्य जन्म मे आपका और इसका संबध कैसा था, कैसा है और कैसा रहेगा? ॥२॥ जिस प्रकार स्रोत के प्रवाह से बालू अलग हो जाता और इकट्ठा हो जाता है, उसी प्रकार काल के वेग से प्राणी मिलते और बिछुड़ते हैं॥ ३ ॥ जिस प्रकार बीज से बीज उत्पन्न होते हैं, किसी बीज से बीज उत्पन्न ही नहीं होता और किसी से उत्पन्न होकर भी नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार प्राणियों से (पिता आदि से) प्राणी (पुत्र आदि) उत्पन्न होते हैं, किसी प्राणी से प्राणी उत्पन्न नहीं होते और किसीसे उत्पन्न प्राणी भी नष्ट हो जाते हैं अतः बीजों में जनक और जनित का सम्बन्ध होने पर भी जिस प्रकार उनमें पिता और पुत्र का भाव नहीं होता, उसी प्रकार प्राणियों में भी पिता पुत्र आदि का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह सम्बन्ध भगवान् की माया की प्रेरणा से ही होता है, पर वास्तव में यह कुछ भी नहीं है॥ ४ ॥ हम, आप और वर्तमान काल के ये स्थावर-जङ्गम जिस प्रकार जन्म के पहिले नहीं थे और मृत्यु के बाद नहीं होंगे, उसी प्रकार ये वर्तमान काल मे भी नहीं है॥ ५ ॥ अजन्मा भगवान् स्वयं निरपेक्ष होते हुए भी बालक के समान अपने द्वारा उत्पन्न और परतन्त्र प्राणियों से दूसरे प्राणियों को उत्पन्न

श्रीशुक उवाच—

१—ऊचतुर्मृतकोपान्ते पतितं मृतकोपमम्। शोकाभिभूतं राजानं बोधयन्तौ सदुक्तिभिः॥

२—कोऽयं स्यात्तव राजेन्द्र भवान् यमनुशोचति। त्वं चास्य कतमः सृष्टौ पुरेदानीमतः परम्॥

३—यथा प्रयाति संयाति स्रोतोवेगेन बालुका। संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः॥

४—यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च। एवं भूतेषु भूतानि चोदितानीशमायया॥

५—वयं च त्वं च ये चेमे तुल्यकालाश्चराचराः। जन्ममृत्योर्यथा पश्चात्प्राङ्नैवमधुनापि भो॥

६—भूतैर्भूतानि भूतेशः सृजत्यवति हन्त्यजः। आत्मसृष्टैरस्वतन्त्रैरनपेक्षोऽपि बालवत्॥

कराते, उनका पालन कराते और नाश कराते हैं ॥ ६ ॥ राजन्! जिस प्रकार एक बीज से दूसरा बीज उत्पन्न होता है, उसी प्रकार माता-पिता के शरीर से पुत्र का शरीर उत्पन्न होता है। जिस प्रकार बीज में पृथ्वी आदि पदार्थ नित्य हैं, उसी प्रकार देह मे देही (आत्मा) भी नित्य है ॥ ७ ॥ जिस प्रकार एक ही वस्तु में जाति और आकृति के विभाग की कल्पना हुई है। उसी प्रकार देह और देही के विभाग की कल्पना भी अनादि काल के अज्ञान से एक वस्तु में हुई है ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेव बोले—इस प्रकार इन ब्राह्मणों की उक्तियों से आश्वासन पाकर राजा चित्रकेतु ने दुःख से म्लान हुए अपने मुख को हाथों से पोंछकर कहा ॥ ९ ॥

राजा चित्रकेतु बोले—ज्ञानयुक्त और श्रेष्ठ अवधूत के वेश मे छिपकर यहाँ आए हुए आप लोग कौन हैं?॥१०॥ भगवान् के प्रिय बहुत से ब्राह्मण उन्मत्तों के समान वेश बनाकर मेरे जैसे अज्ञानियों को शिक्षा देने के निमित्त घूमा करते हैं ॥११॥ सनत्कुमार, नारद, ऋभु, अंगिरा, देवल, अपांतरतम, व्यास, मार्कंडेय, गौतम, वशिष्ठ, परशुराम, कपिल, शुकदेव, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, जातूकर्ण्य, आरुणी, रोमश, च्यवन, दत्तात्रेय, आसुरि, पतंजलि, वेदशिरा, बोध्य, पंचशिरा, हिरण्यनाभ कौशल्य, श्रुतदेव, ऋतध्वज और अन्य अनेक श्रेष्ठ सिद्ध ज्ञान का उपदेश देने के लिये घूमा करते हैं ॥ १२-१५ ॥ अतः मुझ मूर्ख और ग्राम्यपशु के लिए आप लोग रक्षक के समान हैं।

७—देहेन देहिनो राजन्देहाद्देहोऽभिजायते। बीजादेव यथा बीज देहार्थ इव शाश्वतः ॥

८—देहदेहिविभागोऽयमविवेककृतः पुरा। जातिव्यक्तिविभागोऽयं यथा वस्तुनिकल्पितः ॥

श्रीशुक उवाच—

९—एवमाश्वासितो राजा चित्रकेतुर्दिजोक्तिभिः। प्रमृज्य पाणिना वक्त्रमाधिम्लानमभाषत ॥

राजोवाच—

१०—कौ युवां ज्ञानसंपन्नौ महिष्ठौ च महीयसाम्। अवधूतेन वेषेण गूढाविह समागतौ ॥

११—चरंति ह्यवनौकामं ब्राह्मणा भगवत्प्रियाः। मादृशां ग्राम्यबुद्धीनां बोधायोन्मत्तलिंगिनः ॥

१२—कुमारो नारद ऋभु रंगिरा देवलोऽसितः। अपान्तरतमो व्यासो मार्कंडेयोथ गौतमः ॥

१३—वसिष्ठो भगवान् रामः कपिलो बादरायणः। दुर्वासा याज्ञवल्क्यश्च जातूकर्ण्यस्तथाऽरुणिः ॥

१४—रोमशश्च्यवनो दत्त आसुरिः सपतंजलिः। ऋषिर्वेदशिरा बोध्यो मुनिः पंचशिरास्तथा।

१५—हिरण्यनाभः कौशल्यः श्रुतदेव ऋतध्वजः। एते परे च सिद्धेशाश्चरंति ज्ञानहेतवः ॥

भयानक अन्धकार में डूबे हुए मुझको आप लोग ज्ञान का दीपक दिखावें ॥ १६ ॥

अंगिरा बोले—राजन् ! पुत्र की इच्छा रखने वाले आपको पुत्र देने वाला मैं अंगिरा हूँ और ये ब्रह्मा के पुत्र साक्षात् भगवान् नारद ऋषि हैं ॥ १७ ॥ आप भगवान् के भक्त हैं, आपके लिये शोक करना उचित नहीं है। आपको पुत्र-शोक के मोह में पड़ा हुआ देखकर हम लोग आप पर कृपा करने के निमित्त यहाँ आए हैं, क्योंकि ब्राह्मणों का सम्मान करने वाले भगवद्-भक्तों को मोह नहीं होना चाहिये। ॥ १८-१९ ॥ जब मैं आपके यहा आया था, तभी मैंने आपको सत्य-ज्ञान देना चाहा था, किंतु यह जानकर कि ससार में आपकी आसक्ति है, मैंने आपको पुत्र ही दिया ॥ २० ॥ अब आपको इस बात का अनुभव हो गया कि पुत्रवानों को कैसा दुःख होता है। स्त्री, पुत्र, घन और अनेक प्रकार के ऐश्वर्य और सम्पत्तियों का दुःख भी ऐसा ही होता है ॥ २१ ॥ शब्द आदि विषय और राज्य की विभूतियां चञ्चल हैं। राजन् ! भूमि, राज्य, सेना, कोष, भृत्य, अमात्य तथा सम्बन्धी, ये सभी शोक, मोह, भय तथा पीड़ा देने वाले और गन्धर्व-नगर के समान हैं। ये स्वप्न,माया और मनोरथ के समान मिथ्या हैं ॥ २२-२३ ॥ ये केवल मन से उत्पन्न हुए और सत्य-स्वरूप के बिना ही दीख पड़ने वाले हैं, यदि ये सत्य होते तो एक क्षण में दीखकर दूसरे ही क्षण में लुप्त न हो जाते। कर्म की वासनाओं के द्वारा विषयों का चिंतन करने वाले पुरुष के कर्म मन से उत्पन्न हुए हैं, अतः कर्मों के द्वारा निर्मित पदार्थ भी मन से ही उत्पन्न हुए हैं ॥ २४ ॥ द्रव्य, ज्ञान और क्रिया से युक्त यह शरीर ही देही

१६—तस्मात्युवां प्रोऽयपशोर्मम मूढधियः प्रभू। अन्धे तमसि मग्नस्य ज्ञानदीप उदीर्यताम् ॥

अंगिरा उवाच—

१७—अहं ते पुत्रकामस्य पुत्रदोऽस्म्यंगिरा नृप। एष ब्रह्मसुतः साक्षान्नारदो भगवानृषिः ॥

१८—इत्थं त्वां पुत्रशोकेन मग्नं तमसि दुस्तरे। अतदर्हमनुस्मृत्य महापुरुषगोचरं ॥

१९—अनुग्रहाय भवतः प्राप्तावावामिह प्रभो। ब्रह्मण्यो भगवद्भक्तो नावसीदितुमर्हति ॥

२०—तदैव ते परं ज्ञानं ददामि गृहमागतः। ज्ञात्वाऽन्याभिनिवेशं ते पुत्रमेव ददावह ॥

२१—अधुना पुत्रिणां तापो भवतैवानुभूयते। एवं दारा गृहा रायो विविधैश्वर्यसंपदः ॥

२२—शब्दादयश्च विषयाश्चला राज्यविभूतयः। मही राज्यं बलं कोशा भृत्यामात्याः सुहृज्जनाः ॥

२३—सर्वेऽपि शूरसेनेमे शोकमोहभयार्तिदाः। गन्धर्वनगरप्रख्याः स्वप्नमाया मनोरथाः ॥

२४—दृश्यमाना विनाऽर्थेन न दृश्यन्ते मनोभवाः। कर्मभिर्ध्यायतो नाना कर्माणि मनसोऽभवन् ॥

को अनेक प्रकार का क्लेश और सन्ताप देने वाला है ॥२५॥ इसलिये आप अपने मन को स्वस्थ करके अपने स्वरूप का विचार करे और द्वैत पदार्थ में सत्यता का विश्वास और स्नेह छोड़ दें तथा शान्ति प्राप्त करे ॥ २६ ॥

नारद बोले—परम कल्याणकारी इस मन्त्र-विद्या को आप सावधान होकर मुझसे ग्रहण करे। सात रात्रियों तक इस विद्या का निरन्तर ध्यान करके आप भगवान् सकर्षण (शेष नाग) को देख पावेंगे ॥ २७ ॥ राजन् ! सदाशिव आदि पूर्वपुरुषों ने जिनके चरण-कमलों की शरण जाकर इस भ्रमात्मक द्वैत को छोड़कर उस ब्रह्मस्वरूप को पाया था, जिसके बराबर अथवा जिससे अधिक और कुछ नहीं है, उन सर्वोत्तम भगवान् को आप शीघ्र ही पावेंगे ॥ २८ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवे स्कन्ध का पन्द्रहवा अध्याय समाप्त

—❀—

२५—अयं हि देहिनो देहो द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः। देहिनो विविधक्लेश संतापकृदुदाहृतः ॥

२६—तस्मात्स्वच्छेनमनसा विमृश्य गतिमात्मनः। द्वैते ध्रुवार्थविश्रम्भं त्यजोपशममाविश ॥

नारद उवाच

२७—एतां मन्त्रोपनिषदं प्रतीच्छ प्रयतो मम। यां धारयन् सप्तरात्राद् द्रष्टा संकर्षणं प्रभुम् ॥

२८—यत्पादमूलमुपसृत्य नरेन्द्र पूर्वे शर्वादयो भ्रममिमं द्वितयं विसृज्य।
सद्यस्तदीयमतुलानधिकं महित्वं प्रापुर्भवानपि परं न चिरादुपैति ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कन्धेपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

नारद की आज्ञा से जीवात्मा का उपदेश देना; चित्रकेतु को वैराग्य होना,

नारद का उपदेश पाकर चित्रकेतु का अनंत भगवान् की शरण में जाना

श्रीशुकदेव बोले—अनन्तर नारद ने अपने योगबल से शोक करते हुए सबधियों को, उस मरे हुए राजकुमार को प्रत्यक्ष दिखलाया और उससे कहा ॥ १ ॥

नारद बोले—जो तुह्मारे शोक से अत्यन्त व्याकुल हैं, जीवात्मा ! तुम अपने उन माता-पिता, मित्र और बांधवों को देखो ॥ २ ॥ अपने इस शरीर में प्रवेश करके तुम अपनी शेष आयु और पिता के द्वारा दिए हुए सुखों को सम्बंधियों के सहित भोगो और राज्यासन पर बैठो ॥ ३ ॥

जीव बोला—अपने कर्मों के कारण मै देवता, पशु, पक्षी और मनुष्यों की योनि में भटकता फिरता हूँ। ये लोग किस जन्म मे हमारे माता-पिता थे ? ॥ ४ ॥ मेरे मर जाने पर यदि पुत्र जानकर ये मेरा शोक कर रहे हैं तो शत्रु समझकर प्रसन्न क्यों नहीं होते ? क्योंकि क्रमानुसार सब लोग सभी लोगों के सम्बन्धी, सपिंड, शत्रु, मध्यस्थ, मित्र, उदासीन और द्वेषी होते हैं ॥ ५ ॥ जिस प्रकार क्रय-विक्रय के लिए सुवर्ण अनेकव्यवसायियों के पास फिरता है उसी प्रकार जीव भी अनेक योनियों मे घूमता रहता है ॥ ६ ॥ मनुष्यों में जीवित पदार्थों (पशु आदि) का सम्बन्ध भी अनित्य ही दीख पडता है क्योंकि जबतक सम्बन्ध रहता है,

---

श्रीशुक उवाच

१—अथ देवऋषी राजन् सपरेत नृपात्मजं । दर्शयित्वेति होवाच ज्ञातीमामनुशोचतां ॥

नारद उवाच

२—जीवात्मन् पश्य भद्र ते मातरं पितरं च ते । सुहृदो बाधवास्तसान् शुचात्वत्कृतया भृशं ॥

३—कलेवरं स्वमाविश्य शेषमायुः सुहृद्वृतः । भुंक्ष्व भोगान् पितृप्रत्तानधितिष्ठ नृपासनं ॥

जीव उवाच—

४—कस्मिन् जन्मन्यमी मह्य पितरो मातरोऽभवन् । कर्मभिर्भ्राम्यमाणस्य देव तिर्यङ् नृयोनिषु ॥

५—बधुज्ञात्यरिमध्यस्थ मित्रोदासीन विद्विषः । सर्वएव हि सर्वेषा भवंति क्रमशो मिथः ॥

६—यथा वस्तूनि पण्यानि हेमादीनि ततस्ततः । पर्यटंति नरेष्वेवं जीवो योनिषु कर्तृषु ॥

तभी तक उसके प्रति ममता भी रहती है ॥ ७ ॥ इसी प्रकार जीव जबतक शरीर में रहता है, उस शरीर पर तभी तक उसका अधिकार रहता है। मरने के अनन्तर वह अधिकार नहीं रहता अतः अब यह शरीर मेरा नहीं है ॥ ८ ॥ यह (जीव) नित्य, अव्यय, जन्म-मरण से रहित, सबका आश्रय और स्वयं प्रकाश है। यह अपनी माया के गुण से अपने को ही जगत् के रूप में सृजन करता है ॥ ९ ॥ इस जीव का न तो कोई प्रिय है और न अप्रिय। न कोई अपना है, न पराया। यह संग-रहित तथा हित और अहित करने वाले मित्र आदि की विचित्र बुद्धियों का साक्षी है ॥ १० ॥ आत्मा, सुख, दुःख और राज्य आदि का भोग नहीं करता, वह कार्य कारण का साक्षी होकर उदासीन रूप से स्थित रहता है ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेव बोले—इस प्रकार कहकर उस जीव के चले जाने पर उसके समस्त सम्बंधी विस्मित हुए। उन्होंने अपने स्नेह की शृंखला तोड़ दी और शोक का त्याग कर दिया ॥ १२ ॥ सम्बन्धियों ने उसके शरीर का दाह किया तथा अन्य उचित क्रियाएँ कीं। अनन्तर शोक, मोह, भय और पीड़ा देनेवाले तथा अत्यन्त कठिनता से त्याग करने योग्य स्नेह का उन लोगों ने त्याग कर दिया ॥ १३ ॥ महाराज! बालक को हत्या करनेवाली वे स्त्रियाँ बाल-हत्या के कारण निस्तेज और लज्जित हो गई थीं, उन्होंने अंगिरा की बातों का स्मरण करते हुए यमुना के तट पर जाकर ब्राह्मणों के कहने के अनुसार बाल-हत्या का प्रायश्चित्त किया ॥ १४ ॥ राजा चित्रकेतु नारद तथा अंगिरा की बातों से सान्त्वना पाकर घररूपी अन्धे कुएं से निकल गए, मानों सरोवर के कीचड़ से हाथी निकल गया हो ॥ १५ ॥ उन्होंने यमुना में विधिपूर्वक स्नान किया, तर्पण

७—नित्यस्यार्थस्य संबन्धो ह्यनित्यो दृश्यते नृषु। यावद्यस्य हि संबन्धो ममत्वं तावदेव हि ॥

८—एवं योनिगतो जीवः स नित्यो निरहङ्कृतः। यावद्यत्रोपलभ्येत तावत्स्वत्वं हि तस्य तत् ॥

९—एष नित्योऽव्ययः सूक्ष्म एष सर्वाश्रयः स्वदृक्। आत्ममाया गुणैर्विश्वमात्मानं सृजते प्रभुः ॥

१०—न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वपरोऽपि वा। एकः सर्वधियां द्रष्टा कर्तृणां गुणदोषयोः ॥

११—नादत्त आत्मा हि गुणं न दोषं न क्रियाफलम्। उदासीनवदासीनः परावरदृगीश्वरः ॥

श्रीशुक उवाच—

१२—इत्युदीर्य गतो जीवो ज्ञातयस्तस्य ते तदा। विस्मिता मुमुचुः शोकं छित्वात्मस्नेहशृङ्खलाम् ॥

१३—निर्हृत्य ज्ञातयो देहं तथा कृत्वोचिताः क्रियाः। तत्यजुर्दुस्त्यजं स्नेहशोकमोहभयार्तिदम् ॥

१४—बालघ्न्यो व्रीडितास्तत्र बालहत्याहतप्रभाः। बालहत्याव्रतं चेरुर्ब्राह्मणैर्यन्निरूपितं ॥
यमुनायां महाराज स्मरन्त्यो द्विजभाषितं ॥

१५—स इत्थं प्रतिबुद्धात्मा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः। गृहान्धकूपान्निष्क्रान्तः सरः पङ्कादिव द्विपः ॥

किए और मौन धारण करके तथा जितेंद्रिय होकर उन्होंने नारद तथा अंगिरा को प्रणाम किया ॥ १६ ॥ अनन्तर शरण आए हुए भक्त और जितेंद्रिय उन राजा पर प्रसन्न होकर नारद ने उन्हें यह विद्या दी ॥ १७ ॥ ॐ भगवान् वासुदेव, प्रद्युम्न और संकर्षण को नमस्कार ! हम आपका ध्यान करते हैं ॥ १८ ॥ अनुभवरूप परमानन्दमूर्ति, आत्माराम, शांत और द्वैत दृष्टि से रहित आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १९ ॥ आत्मानन्द की अनुभूति से ही जिसने माया के निमित्तभूत राग-द्वेषादि को परास्त कर दिया है, उसको नमस्कार। विश्वमूर्ति महात्मा हृषीकेश को नमस्कार ॥ २० ॥ मन और इन्द्रियाँ जहाँ न पहुँच सकने के कारण विरत हो जाती हैं, जो नाम-रूप-रहित है, चैतन्य मात्र है और कार्य-कारण रूप से जो एक ही प्रकाशित होता है, वह हमारी रक्षा करे ॥ २१ ॥ यह जगत् जिसमे वर्त्तमान है, जिसमें लय होता है और जिससे उत्पन्न होता है तथा घड़े आदि पदार्थों मे मिट्टी के समान जो सबमें वर्तमान है, उस आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ २२ ॥ मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ जिसे नहीं जानतीं, प्राण जिसका स्पर्श नहीं कर सकता तथा जो आकाश के समान बाहर-भीतर व्याप्त है, उसको हम नमस्कार करते हैं ॥ २३ ॥ यह शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि जिसके चैतन्यांश के आवेश होने से अपने-अपने कामों मे नियुक्त हो सकते हैं और जिस प्रकार बिना अग्नि के लोहा गरम नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार सुषुप्ति और मूर्छा आदि मे जिसके चैतन्यांश के बिना काम नहीं किया जा सकता तथा जाग्रत आदि अवस्थाओं मे जिसका नाम जीव कहा जाता है, उसे हम नमस्कार करते हैं ॥ २४ ॥ हे सर्वेश्वर ! सर्वोत्कृष्ट ! आप भगवान् महा-

---

१६—कालिंद्यां विधिवत्स्नात्वा कृतपुण्यजलक्रियः । मौनेन संयतप्राणो ब्रह्मपुत्राववंदत ॥

१७—अथ तस्मै प्रपन्नाय भक्ताय प्रयतात्मने । भगवान्नारदः प्रीतो विद्यामेतामुवाच ह ॥

१८—नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥

१९—नमो विज्ञानमात्राय परमानंदमूर्तये । आत्मारामाय शांताय निवृत्तद्वैतदृष्टये ॥

२०—आत्मानंदानुभूत्यैव न्यस्तशक्त्यूर्मये नमः । हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्वमूर्तये ॥

२१—वचस्युपरते प्राप्य यएको मनसा सह । अनाम रूपश्चिन्मात्रः सोऽव्यान्नः सदसत्परः ॥

२२—यस्मिन्निदं यतश्चेदं तिष्ठत्यप्येति जायते । मृन्मयेष्विव मृज्जातिस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥

२३—यं न स्पृशंति न विदुर्मनो बुद्धींद्रियासवः । अंतर्बहिश्च विततं व्योमवत्तं नतोऽस्म्यहम् ॥

२४—देहेंद्रियप्राणमनो धियोऽमी यदंशविद्धाः प्रचरंति कर्मसु ।

नैवान्यदालोहमिवाप्रतप्तं स्थानेषु तद्‌द्रष्टपदेशमेति ॥

पुरुष हैं, अत्यन्त प्रभावशाली हैं। आप श्रेष्ठ विभूति के स्वामी हैं और समस्त श्रेष्ठ भक्तों का संमूह अपने कर-कमल के दलों से आपके चरण-कमलों को सहलाया करता है, हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ २५ ॥

श्रीशुकदेव बोले—राजन्! शरण आए हुए भक्तियुक्त चित्रकेतु को इस विद्या का उपदेश देकर अंगिरा के सहित नारद ब्रह्मलोक मे गये ॥ २६ ॥ अनन्तर चित्रकेतु ने नारद की कही हुई उस विद्या को विधिपूर्वक धारण किया ॥ २७ ॥ राजन्! उसके बाद सात रात्रियों तक उस विद्या का धारण करके चित्रकेतु ने विद्या-धर्म का अखण्ड स्वामित्व पाया ॥ २८ ॥ उस विद्या के प्रभाव से चित्रकेतु की गति वहा तक हो गई थी, जहाँ तक मन की गति है, (कुछ दिनों के बाद वे भगवान् शेषनाग के चरणों के निकट गये ॥ २९ ॥ मृणाल के समान गोरे-नीले वस्त्र वाले, जगमगाते हुए किरीट, केयूर, कटि-मेखला तथा कंकण पहिने हुए, प्रसन्न मुखवाले और लाल नेत्रों वाले उन शेषनाग को राजा ने सिद्धेश्वरों के समूह से घिरा हुआ देखा ॥ ३० ॥ उनके दर्शन से चित्रकेतु के समस्त पाप नष्ट हो गए। उनका अन्तःकरण पवित्र हो गया, भक्ति के अतिरेक से आँसू गिरने लगे और उन्हें रोमाच हो आया। उन्होंने आदिपुरुष भगवान् को नमस्कार किया और वे उनकी शरण गए ॥ ३१ ॥ भगवान् के चरण-कमलों के आसन को वे प्रेमाश्रुओं से बार-बार सींचने लगे। प्रेम के कारण उनका गला रुँध गया था और वे एक अक्षर भी न बोल सकते थे, इस कारण बहुत देर तक वे भगवान् की स्तुति भी न कर सके ॥ ३२ ॥ अनन्तर बुद्धि के द्वारा मन को स्थिर करके और वाणी प्राप्त करके चित्रकेतु ने

२५—ओं नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सकलसात्वतपरिवृढनिकरकरकमलकुड्मलोपलालितचरणारविंदयुगल परमपरमेष्ठिन्नमस्ते ॥

श्रीशुक उवाच—

२६—भक्तायैतां प्रपन्नाय विद्यामादिश्य नारदः। ययावंगिरसा साकं धामस्वायम्भुवं प्रभो ॥

२७—चित्रकेतुस्तु विद्यां तां यथा नारदभाषिताम्। धारयामास सप्ताहमब्भक्षः सुसमाहितः ॥

२८—ततश्च सप्तरात्रांते विद्यया धार्यमाणया। विद्याधराधिपत्यं स लेभेऽप्रतिहतं नृप।

२९—ततः कतिपयाहोभिर्विद्ययेद्धमनो गतिः। जगाम देवदेवस्य शेषस्य चरणांतिकं ॥

३०—मृणालगौरं शितिवाससंस्फुरत्किरीटकेयूरकटित्रकंकणं।
प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनं तं ददर्श सिद्धेश्वरमण्डलैः प्रभुं ॥

३१—तद्दर्शनध्वस्तसमस्तकिल्बिषः स्वच्छामलांतःकरणोऽभ्ययान्मुनिः।
प्रवृद्धभक्त्या प्रणयाश्रुलोचनः प्रहृष्टरोमाऽनमदादिपूरुषं ॥

समस्त इन्द्रियों की बहिर्वृत्ति रोककर जगद्गुरु शेषनाग से, जिनके शरीर का आकार भक्ति-शास्त्र के वर्णन के अनुकूल था, यह कहा ॥ ३३ ॥

चित्रकेतु बोले—आप अजित है, फिर भी समदर्शी और जितेंद्रिय पुरुषों ने आपको जीत लिया है। आप निष्काम भक्तों को स्व-स्वरूप देनेवाले और दयाशील हैं। फिर भी आपने उन भक्तों को जीत लिया है ॥ ३४ ॥ महाराज ! जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय आपकी लीला है। जगत की सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा आदि तो आपके अंश के भी अंश हैं और वे भिन्न-भिन्न ईश्वरता के अभिमान से सृष्टि आदि के कार्यों में व्यर्थ की स्पर्धा रखते है ॥ ३५ ॥ आप सूक्ष्म और स्थूल ब्रह्मांड के आदि,अन्त और मध्य से रहित हैं। कार्य के आदि,अन्त और मध्य में जो तत्त्व रहता है, वही अविनाशी कहा जाता है ॥ ३६ ॥ उत्तरोत्तर दस गुना बढ़ते हुए पृथ्वी आदि आवरणों से घिरा हुआ यह ब्रह्मांड और इस प्रकार के करोड़ों ब्रह्मांड आप के स्वरूप में परमाणु के समान भ्रमित होते रहते हैं ॥ ३७ ॥ विषयों की तृष्णा रखने वाले जो नर-पशु आप की पूजा न करके आपके विभूतिरूप इन्द्र आदि देवताओं की पूजा करते हैं, उनका सुख उन देवताओं के नाश के बाद नष्ट हो जाता है, जैसे राजकुल के नष्ट हो जाने पर उस के सेवकों का सुख नष्ट हो जाता है, ॥ ३८ ॥ परमेश्वर ! विषयों की कामना भी यदि आपको ही अर्पित कर दी जाय तो जिस प्रकार भुना हुआ बीज दूसरे बीज को उत्पन्न नहीं कर सकता,उसी प्रकार जिन्होंने विषयों की कामना आप में अर्पित कर दी है, वे भी दूसरे शरीर को उत्पन्न नहीं कर सकते; क्योंकि निर्गुण और ज्ञानमय आपके स्वरूप मे जीवों के गुण के कारण ही सुख-दु ख आदि के द्वंद्व का

---

३२ —स उत्तमश्लोकपदाब्जविष्टर प्रेमाश्रुलेशैरुपमेहयन्मुहुः ।
प्रेमोपरुद्धाखिलवर्णनिर्गमो नैनाशकत्त प्रसमीडितुं चिरं ॥

३३—ततः समाधाय मनो मनीषया बभाष एतत्प्रतिलब्धवागसौ ।
नियम्य सर्वेंद्रियबाह्यवर्तन जगद्गुरु सात्वतशास्त्रविग्रहं ।

चित्रकेतुरुवाच —

३४—अजितजितः सममतिभिर्भवान् जितात्मभिर्भवता ।
विजितास्तेऽपि च भजतामकामात्मना य आत्मदोऽतिकरुणः ॥

३५—तव विभवः खलु भगवन् जगदुदयस्थितिलयादीनि ।
विश्वसृजस्तेंऽशांशास्तत्र मृषास्पर्धंते पृथगभिमत्या ॥

३६—परमाणुपरममहतोस्त्वमाद्यंतान्तरवर्ती त्रयविधुरः ।
आदावन्तेऽपि च सत्त्वानां यध्रुवं तदेवांतरालेऽपि ॥

३७—क्षित्यादिभिरेष किलावृत. सप्तभिर्दशगुणोत्तरैरांडकोशः ।
यत्र पतत्यणुकल्पः सहांडकोटिकोटिभिस्तदनंतः ॥

३८—विषयतृषो नरपशवो य उपासते विभूतीर्नपरंत्वां ।
तेपामाशिष ईशतदनुविनश्यंति यथा राजकुलं ॥

समूह उत्पन्न होता है ॥ ३९ ॥ निष्किंचन और आत्माराम सनकादि मुनि, मोक्ष के लिए जिसका सेवन करते हैं, ऐसा निर्दोष वैष्णव-धर्म आप ने कहा है, इसीसे आप सबकी अपेक्षा उत्कृष्ट हैं ॥ ४० ॥ अन्य सकाम धर्मों में जैसी मैं 'तुम' और 'मेरा' तुम्हारा यह विषमबुद्धि रहती है, वैसी इस वैष्णव-धर्म में नहीं होती। जो धर्म, शत्रु आदि के मरण की कामना जैसी विषमबुद्धि से निर्मित होता है, वह राग और द्वेष आदि के कारण अशुद्ध, नाशवान फल देनेवाला और बड़ा अधार्मिक होता है ॥ ४१ ॥ अपना और पराए का द्रोह करने वाले धर्म का पालन करने से अपना अथवा पराए का क्या लाभ होता है और कौन सा कार्य सिद्ध होता है ? इस धर्म की रीति के अनुसार शरीर को अत्यन्त क्लेश देने से आत्मारूप अपने को पीड़ा होती है और दूसरे को पीड़ा पहुँचाने से आत्मा का पीडन तो होता ही है, अधर्म भी होता है ॥ ४२ ॥ जिस आपकी दृष्टि ने भागवत-धर्म का प्रकाश किया है, वह परमार्थ से रहित नहीं है, क्योंकि स्थावर-जंगम प्राणियों में समबुद्धि रखने वाले वैष्णव इसी धर्म का पालन करते हैं ॥ ४३ ॥ भगवन् ! आपके दर्शनों से मनुष्यों के समस्त पाप नष्ट हो जायँ तो इसमें क्या आश्चर्य है ? क्योंकि यदि चाण्डाल भी एक बार आपका नाम सुने तो वह संसार से मुक्त हो जाता है ॥ ४४ ॥ भगवन् ! आपके दर्शनों से मेरे मन की मैल दूर हो गई है। आपके भक्त नारद ने जो कहा था, वह अन्यथा कैसे होता ? ॥ ४५ ॥ अनन्त आप जगत की आत्मा हैं, अतः प्राणियों के

३९—कामधियस्त्वयि रचितानपरमरोहन्ति यथाकरंभबीजानि ॥ ।
ज्ञानात्मन्यगुणमये गुणगणतोऽस्य द्वंद्वजालानि ॥

४०—जितमजित तदा भवता यदाह भागवतं धर्ममनवद्यम् ।
निष्किंचना ये मुनय आत्मारामा यमुपासतेऽपवर्गाय ॥

४१—विषम मतिर्नयत्र नृणां त्वमहमिति मम तवेति च यदन्यत्र ।
विषमधिया रचितो यः स ह्यविशुद्धः क्षयिष्णुरधर्मबहुलः ॥

४२—कः क्षेमो निजपरयोः कियानर्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण ।
स्वद्रोहात्तव कोपः परसंपीडया च तथाऽधर्मः॥

४३—न व्यभिचरति तवेक्षायया ह्यभिहितो भागवतो धर्मः ।
स्थिरचर सत्त्व कदम्बेष्वपृथग्धियो यमुपासते त्वार्याः ॥

४४—नहि भगवन्नघटितमिदं त्वद्दर्शनान्नृणामखिल पापक्षयः ।
यन्नाम सकृच्छ्रवणात्पुल्कसकोऽपि विमुच्यते संसारत् ॥

४५—अथ भगवन्वयमधुना त्वदवलोकपरिमृष्टाशयमलाः ।
सुर ऋषिणा यदुदितं तावकेन कथमन्यथा भवति ॥

समस्त आचरण आपको विदित हैं। जुगनू जिस प्रकार सूर्य के सामने कुछ प्रकाशित नहीं कर सकता। उसी प्रकार मनुष्य के लिए आपके निकट भी कुछ प्रकाशित करने को नहीं रहता ॥ ४६ ॥ आप समस्त जगत की स्थिति, लय और सृष्टि के स्वामी है, जो योगी नहीं हैं, भेददृष्टि के कारण वे आपका तत्व नहीं जानते। आप परमहंस हैं, आप भगवान् को नमस्कार ॥ ४७ ॥ जिसके श्वास लेने के अनन्तर प्रजापति-गण श्वास लेते हैं, जिसके देख लेने पर ज्ञानेंद्रियाँ देखती हैं और जिसके मस्तक पर भूमण्डल सरसों के समान जान पड़ता है, उन सहस्रमूर्धा भगवान् को नमस्कार! ॥ ४८ ॥

श्रीशुकदेव बोले—कुरुराज! विद्याधरों के स्वामी चित्रकेतु के इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान अनन्त प्रसन्न होकर उनसे बोले ॥ ४९ ॥

श्रीभगवान् बोले—राजन्! नारद और अंगिरा ने तुम्हें मेरे विषय का जो उपदेश दिया था, उस विद्या तथा मेरे दर्शन के द्वारा तुम कृतार्थ हुए हो ॥ ५० ॥ समस्त स्थावर-जंगम मैं ही हूँ। सबका भोक्ता और सबका कारण भी मैं ही हूँ। वेद और परब्रह्म ये दोनों मेरे ही नित्य स्वरूप हैं ॥ ५१ ॥ इसलिये तुम ऐसा समझो कि मैं जगत् में व्याप्त हूँ और जगत् मुझमें व्याप्त है और परमात्मा इन दोनों ही में व्याप्त है और परमात्मा में 'मैं' और यह 'जगत' दोनों ही कल्पित हैं ॥ ५२ ॥ जिस प्रकार सोया हुआ मनुष्य (स्वप्न में) अपने में ही विश्व को देखता है और स्वप्न से जागकर अपने को एक ही स्थान पर देखता है, उसी प्रकार बुद्धि की जाग्रत आदि

४६—विदित मनंतसमस्तं तव जगदात्मनो जनैरिहाचरितम् ॥
विज्ञाप्यं परमगुरोः कियदिव सवितुरिव खद्योतैः ॥

४७—नमस्तुभ्य भगवते सकल जगत्स्थिति लयोदयेशाय।
दुरवसितात्म गतये कुयोगिना भिदा परमहंसाय ॥

४८—य वैश्वसत मनुविश्वसृजः श्वसंति य चेकितान मनुचितय उच्चकंति।
भूमण्डलं सर्षपायति यस्य मूर्ध्नि तस्मै नमो भगवतेऽस्तु सहस्रमूर्ध्ने ॥

श्रीशुक उवाच—

४९—संस्तुतो भगवानेवमनंतस्तमभाषत। विद्याधरपतिं प्रीतश्चित्रकेतुं कुरूद्वह ॥

श्रीभगवानुवाच—

५०—यन्नारदाङ्गिरोभ्यां ते व्याहृत मेऽनुशासनं। संसिद्धोसि तया राजन्विद्यया दर्शनाच्च मे ॥

५१—अहं वै सर्वभूतानि भूतात्मा भूतभावनः। शब्दब्रह्म परंब्रह्म ममोभे शाश्वती तनू ॥

५२—लोके वितत मात्मन लोकं चात्मनि संतत। उभयं च मया व्याप्त मयि चैवोभयं कृत ॥

प्रसिद्ध तीन अवस्थाएँ भी केवल माया ही हैं और उनका द्रष्टा आत्मा उन अवस्थाओं से भिन्न है, ऐसा समझना चाहिये ॥ ५३, ५४ ॥ सोया हुआ प्राणी जिस रूप से उस समय अपने अज्ञान और निर्गुण सुख को जानता है। वह आत्मा ब्रह्म मैं हूँ, ऐसा समझो ॥ ५५ ॥ सुषुप्ति और जाग्रत, इन दोनों ही अवस्थाओं का अनुभव करने वाली आत्मा एक ही है, क्योंकि ऐसा न होता तो स्वप्न में देखी हुई बात का स्मरण जाग्रत अवस्था में न होता, अतः दोनों ही अवस्थाओं को प्रकाशित करने वाला और दोनों ही से भिन्न जो ज्ञान है, वह मैं हूँ और मैं ही परब्रह्म हूँ ॥ ५६ ॥ मनुष्य यदि मेरे इस स्वरूप को भूल जाता है, तो वह अपने से भिन्न हो जाता है और इससे उसे बार-बार जन्म और मरण रूप संसार की प्राप्ति होती है ॥ ५७ ॥ जिसमें शास्त्रिय और अपरोक्ष ज्ञान दोनों ही हो सकते हैं, वैसी मनुष्य की योनि पाकर भी जिसको अपने स्वरूप का बोध नहीं होता, उसे कहीं शांति नहीं मिलती ॥५८॥ प्रवृत्ति में क्लेश और विपरीत फल की प्राप्ति है और निवृत्ति में ये दोनों ही नहीं हैं,ऐसा समझकर बुद्धिमान् पुरुष को संकल्प से विरत होना चाहिये ॥ ५९ ॥ दंपति अर्थात् स्त्री और पुरुष, सुख की प्राप्ति और दुःख के निवारण के लिये क्रियाएँ करते हैं,किन्तु उन क्रियाओं से न तो दुख मिटता है और न सुख ही प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ विज्ञता के अभिमानी लोग भी सुख-दुःख के सम्बन्ध में भ्रम रहते हैं,ऐसा समझकर तथा यह जानकर कि सूक्ष्म आत्मस्वरूप तीनों अवस्थाओं से विलक्षण है। मेरे भक्तों को विवेक के बल से इष्ट तथा परलोक के विषयों का त्याग करके ज्ञान तथा विज्ञान में ही संतुष्ट रहना चाहिये ॥ ६१, ६२ ॥ योग में जिनकी बुद्धि निपुण है, उन्हें समझना

५३—यथा सुषुप्तः पुरुषो विश्वं पश्यति चात्मनि। आत्मानमेकदेशस्थं मन्यते स्वप्न उत्थितः।

५४—एवं जागरणादीनि जीवस्थानानि चात्मनः। माया मात्राणि विज्ञाय तद्द्रष्टारं परं स्मरेत् ॥

५५—येन प्रसुप्तः पुरुषः स्वाप वेदात्मनस्तदा। सुखं च निर्गुणं ब्रह्म तमात्मानमवेहि मां ॥

५६—उभयं स्मरतः पुंसः प्रस्वाप प्रतिबोधयोः। अन्वेति व्यतिरिच्येत तज्ज्ञानं ब्रह्मतत्परं ॥

५७—यदेतद्विस्मृतं पुंसो मद्भावं भिन्नमात्मनः। ततः संसार एतस्य देहाद्देहो मृतेर्मृतिः ॥

५८—लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञान संभवां। आत्मानं यो न बुध्येत न क्वचिच्छममाप्नुयात् ॥

५९—स्मृत्वेहायां परिक्लेशं ततः फलविपर्ययं। अभयं चाप्यनीहाया संकल्पाद्विरमेत्कविः ॥

६०—सुखाय दुःखमोक्षाय कुर्वाते दंपती क्रियाः। ततो निवृत्तिरप्राप्तिर्दुःखस्य च सुखस्य च ॥

६१—एवं विपर्ययं बुद्ध्वा नृणां विज्ञाभिमानिनां। आत्मनश्च गतिं सूक्ष्मां स्थानत्रयविलक्षणां ॥

६२—दृष्टश्रुताभिर्मात्राभिर्निर्मुक्तः स्वेन तेजसा। ज्ञानविज्ञानसंतुष्टो मद्भक्तः पुरुषो भवेत् ॥

चाहिये कि जीवात्मा और परमात्मा एक ही है,यह जान लेना ही सच्चा स्वार्थ है ॥ ६३ ॥ राजन् ! शास्त्र-ज्ञान तथा अपरोक्ष ज्ञान से सम्पन्न रहकर और सावधान होकर यदि तुम मेरी बातों को धारण करोगे तो शीघ्र ही तुम्हें मोक्ष प्राप्त होगा ॥ ६४ ॥

श्रीशुकदेव बोले—अनन्तर जगद्गुरु विश्वात्मा भगवान् इस प्रकार चित्रकेतु को आश्वासन देकर उन के देखते ही देखते वहाँ से अन्तर्धान हो गए ॥ ६५ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवें स्कन्ध का सोलहवाँ अध्याय समाप्त

६३—एतावानेव मनुजैर्योगनैपुणबुद्धिभिः । स्वार्थः सर्वात्मना ज्ञेयो यत्परात्मैकदर्शनं ॥

६४—त्वमेतच्छ्रद्धया राजन्नप्रमत्तो वचो मम । ज्ञानविज्ञानसंपन्नो धारयन्नाशु सिध्यसि ॥

श्रीशुक उवाच

६५—आश्वास्य भगवानित्थं चित्रकेतुं जगद्गुरुः । पश्यतस्तस्य विश्वात्मा ततश्चान्तर्दधे हरिः ॥

इ० भा० म० षष्ठस्कन्धेषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

चित्रकेतु के द्वारा शिव का उपहास, पार्वती का चित्रकेतु को शाप देना और चित्रकेतु का वह शाप स्वीकार करना

श्रीशुकदेव बोले—जिस दिशा में भगवान् अनन्त अन्तर्धान हुए थे, उस दिशा को नमस्कार करके विद्याधर चित्रकेतु आकाश मे घूमने लगे ॥ १ ॥ लाखों वर्षों तक उनकी इन्द्रियों की सामर्थ्य कम नहीं हुई। महायोगी, मुनि, सिद्ध और चारण उनकी स्तुति करते थे ॥ २ ॥ विद्याधरों की स्त्रियों के द्वारा भगवान् का कीर्तन कराते हुए वे उन प्रसिद्ध पर्वतों की गुफाओं में घूमते-फिरते थे, जहा केवल संकल्प के द्वारा ही अनेक सिद्धिया प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥ एक दिन भगवान् विष्णु के दिये हुए तेजस्वी विमान पर बैठकर जाते हुए चित्रकेतु ने सिद्धों तथा चारणों के द्वारा घिरे हुए शिव को देखा ॥ ४ ॥ उस समय शिव जी मुनियों की सभा मे बैठे हुए थे। वे पार्वती को गोद में बैठाकर हाथों से उनका आलिंगन किए हुए थे। चित्रकेतु उनके निकट आकर बड़े जोर से हँसे और बोले। उनकी बातें पार्वती भी सुन रही थीं ॥ ५ ॥

चित्रकेतुबोले—धर्म का उपदेश देनेवाले, प्राणियों मे प्रमुख और लोकों के साक्षात् गुरु ये शिव, सभा के मध्य में स्त्री को साथ लेकर बैठे हैं। ॥ ६ ॥ जटाधारी, उग्रतपस्या करनेवाले, ब्रह्मज्ञान की बातें करनेवाले और सभापति ये शिव, साधारण पुरुषों के समान लज्जा का त्याग करके स्त्री को गोद में लेकर बैठे हैं ॥ ७ ॥ साधारण पुरुष भी प्रायः एकांत में ही स्त्रियों को गोद

श्रीशुक उवाच—

१—यतश्चान्तर्हितोऽनन्तस्तस्यै कृत्वा दिशे नमः । विद्याधरश्चित्रकेतुश्चचार गगने चरः ॥

२—स लक्षं वर्षलक्षाणामव्याहत बलेन्द्रियः । स्तूयमानो महायोगी मुनिभिः सिद्धचारणैः ॥

३—कुलाचलेन्द्रद्रोणीषु नाना संकल्पसिद्धिषु । रेमे विद्याधरस्त्रीभिर्गापयन् हरिमीश्वरं ॥

४—एकदा स विमानेन विष्णुदत्तेन भास्वता । गिरिशं ददृशे गच्छन्परीतं सिद्धचारणैः ॥

५—आलिंग्यांकीकृतां देवीं बाहुना मुनिसंसदि । उवाच देव्याः शृण्वन्त्या जहासोच्चैस्तदन्तिके ॥

चित्रकेतुरुवाच—

६—एष लोकगुरुः साक्षाद्धर्मवक्ता शरीरिणां । आस्ते मुख्यः सभायां वै मिथुनीभूय भार्यया ॥

७—जटाधरस्तीव्रतपा ब्रह्मवादि सभापतिः । अंकीकृत्य स्त्रियं चास्ते गतह्रीः प्राकृतो यथा ॥

में बैठाते हैं, किन्तु इन महाव्रतधारी ने तो सभा में ही स्त्री को गोद में बैठाया है ॥ ८ ॥ राजन् ! चित्रकेतु की इन बातों को सुनकर महाबुद्धिमान् शिवजी सभा में हँसकर रह गए और उनके अनुगत सभासदों ने भी उन्हींका अनुसरण किया ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेव बोले—शिवजी के प्रभाव को न जानने वाले और जितेंद्रियता का अभिमान रखने वाले चित्रकेतु को इस प्रकार असंगत बातें कहते हुए देखकर पार्वती ने क्रोध करके उस धृष्ट से कहा ॥ १० ॥

पार्वती बोलीं—हमारे जैसे दुष्ट और निर्लज्जों का विरोध करने वाला तथा दंड देने वाला क्या आजकल संसार का स्वामी यह चित्रकेतु ही हुआ है ? ॥ ११ ॥ ब्रह्मा, प्रजापतिगण, नारद आदि, सनत्कुमार, कपिल और मनु को तो धर्म का ज्ञान ही नहीं है, क्योंकि वे धर्म का उल्लंघन करने वाले शिवजी का निषेध नहीं करते ॥ १२ ॥ स्वयं नीच क्षत्रिय होते हुए भी धृष्टता से विद्वानों को मूर्ख बनाकर यह चित्रकेतु जगद्गुरु, धर्ममूर्ति और ब्रह्मादि के द्वारा भी वंदनीय शिवजी को शिक्षा देता है, अतः यह दण्ड देने के योग्य है ॥ १३ ॥ अपनी श्रेष्ठता का अभिमान रखने वाला यह चित्रकेतु, साधुओं के द्वारा सेवित वैकुण्ठ के आस-पास फिरने के योग्य नहीं है ॥ १४ ॥ अतः हे दुर्बुद्धि-पुत्र ! तुम पाप-पूर्ण आसुरी योनि में जाओ, जिससे पुनः तुम बड़ों का अपराध न कर सको ॥ १५ ॥

श्रीशुकदेव बोले—राजन् ! पार्वती के इस प्रकार शाप देने पर चित्रकेतु विमान से

८—प्रायशः प्राकृताश्चापि स्त्रियं रहसि बिभ्रति । अयं महाव्रतधरो बिभर्ति सदसि स्त्रियम् ॥

९—भगवानपि तच्छ्रुत्वा प्रहस्यागाधधीर्नृप । तूष्णीं बभूव सदसि सभ्याश्च तदनुव्रताः ॥

श्रीशुक उवाच—

१०—इत्यतद्वीर्यविदुषि ब्रुवाणे बह्वशोभनम् । रुषाह देवी धृष्टाय निर्जितात्माभिमानिने ॥

पार्वत्युवाच—

११—अयं किमधुना लोके शास्ता दंडधरः प्रभुः । अस्मद्विधानां दुष्टानां निर्लज्जानां च विप्रकृत् ॥

१२—न वेद धर्मं किल पद्मयोनिर्न ब्रह्मपुत्रा भृगुनारदाद्याः ।

न वै कुमारः कपिलो मनुश्च ये नो निषेधन्त्यतिवर्तिनं हरम् ॥

१३—एषामनुध्येयपदाब्जयुग्मं जगद्गुरुं मङ्गलमङ्गलं स्वयम् ।

यः क्षत्रबन्धुः परिभूय सूरीन्प्रशास्ति धृष्टस्तदयं हि दण्ड्यः ॥

१४—नायमर्हति वैकुंठपादमूलोपसर्पणम् । संभावितमतिः स्तब्धः साधुभिः पर्युपासितम् ॥

१५—अतः पापीयसीं योनिमासुरीं याहि दुर्मते । यथेह भूयो महतां न कर्ता पुत्र किल्बिषम् ॥

उतर कर और मस्तक झुकाकर पार्वती की प्रार्थना करने लगा ॥ १६ ॥

चित्रकेतु बोला—माता ! मैं आपके शाप को स्वीकार करता हूं, क्योंकि देवता मनुष्यों को जो कुछ कहते हैं, वह उनके पूर्व कर्मों का ही परिणाम होता है, (अतः वह अन्यथा नहीं हो सकता) ॥ १७ ॥ अज्ञान से मोहित हुआ मनुष्य इस ससार-चक्र मे भ्रमित होता हुआ सदा और सब जगह सुख तथा दु ख का भोग करता है ॥ १८ ॥ सुख और दु ख का कर्ता न तो स्वयं मनुष्य है और न दूसरा कोई। मूर्ख लोग ही अपने को अथवा दूसरे को सुख-दु.ख का कर्ता मानते हैं ॥ १९ ॥ गुणों के इस प्रवाह अर्थात् मायामय ससार में शाप, अनुग्रह, स्वर्ग, नरक और सुख-दुःख क्या है ? अर्थात् कुछ भी नहीं है ॥ २० ॥ बंधनों से रहित एक परमेश्वर ही अपनी माया से प्राणियों की तथा उनके बंधन, मोक्ष, सुख और दुःख की सृष्टि करते हैं ॥ २१ ॥ ईश्वर सर्वत्र समान तथा निर्लेप हैं। उनका न तो को कोई प्रिय, न अप्रिय, न जाति भाई है, न बंधु, न पराया है, न अपना। सुख मे उनकी प्रीति नहीं है, अतः सुख से उत्पन्न होने वाला रोष उनमें कहाँ से हो ? ॥ २२ ॥ फिर भी ईश्वरीय मायामय सृष्टिरूपी पाप-पुण्य आदि कर्म ही प्राणियों को सुख-दुःख, हित-अहित, बंधन-मोक्ष, और जन्म-मरण रूप ससार को प्राप्त कराने मे समर्थ होता है ॥ २३ ॥ अत सती ! मैं शाप से मुक्त होने के लिये आपको प्रार्थना नहीं कर रहा हूँ। आपने मेरी बातों को अनुचित समझा है, अतः उसके लिये आप मुझे क्षमा करे ॥ २४ ॥

श्रीशुक उवाच—

१६—एवं शप्तश्चित्रकेतुर्विमानादवरुह्य सः। प्रसादयामास सतीं मूर्ध्ना नम्रेण भारत ॥

चित्रकेतुरुवाच—

१७—प्रतिगृह्णामि ते शाप मात्मनोऽञ्जलिनाऽम्बिके। देवैर्मर्त्याय यत्प्रोक्त पूर्वदिष्ट हि तस्य तत् ॥

१८—संसारचक्र एतस्मिन् जंतुरज्ञानमोहितः। भ्राम्यन्सुख च दु खं च भुंक्ते सर्वत्र सर्वदा ॥

१९—नैवात्मा न परश्चापि कर्ता स्यात्सुखदुःखयोः। कर्तार मन्यते प्राज्ञ आत्मान परमेव च ॥

२०—गुणप्रवाह एतस्मिन्कः शापः कोन्वनुग्रहः। कः स्वर्गो नरकः को वा किं सुख दुःखमेव वा ॥

२१—एकः सृजति भूतानि भगवानात्ममायया। एषां बंधं च मोक्षं च सुख दुःख च निष्कलः॥

२२—न तस्य कश्चिद्दयितः प्रतीपो न ज्ञातिबन्धुर्न परो न च स्वः।

समस्य सर्वत्र निरंजनस्य सुखेन रागः कुत एव रोषः ॥

२३—तथापि तच्छक्तिविसर्ग एषां सुखाय दुःखाय हिताहिताय।

बंधाय मोक्षाय च मृत्यु जन्मनोः शरीरिणां संसृतयेऽवकल्पते ॥

२४—अथ प्रसादये नत्वा शापमोक्षाय भामिनि। यन्मन्यसे ह्यसाधूक्तं मम तत्क्षम्यतां सति ॥

श्रीशुकदेव बोले इस प्रकार शिव और पार्वती को प्रसन्न करके, उन लोगों के विस्मित होकर देखते ही देखते चित्रकेतु अपने विमान पर बैठकर चले गए ॥ २५ ॥ अनन्तर भगवान् शिव ने पार्वती से यह कहा। उनकी बातें देवता, ऋषि, दैत्य, सिद्ध और पार्षद भी सुन रहे थे ॥ २६ ॥

श्रीशिव बोले—सुश्रोणि! तुमने अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् के निस्पृह तथा महात्मा दासानुदासों की महिमा देख ली? ॥ २७ ॥ स्वर्ग, मोक्ष, और नरक में समान प्रयोजन रखनेवाले वे (भगवद्दास) किसीसे भी भयभीत नहीं होते ॥ २८ ॥ प्राणियों के शरीर-संयोग से उत्पन्न हुए सुख-दुःख, जन्म-मरण तथा शाप और अनुग्रह आदि द्वन्द्व ईश्वर की माया से ही होते हैं ॥ २९ ॥ इन द्वन्द्वों में जो इष्ट और अनिष्ट के समान मालूम पड़ता है, वह समस्त विभिन्नता (स्वप्नावस्था में हुए पदार्थों के समान) माला में सर्प का भ्रम होने के समान, मनुष्य के अज्ञान से ही जान पड़ती है ॥ ३० ॥ ज्ञान और वैराग्य से शक्तिमान हुए तथा भगवान वासुदेव में भक्ति रखने वाले प्राणियों के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है ॥ ३१ ॥ मैं, ब्रह्मा, सनत्कुमार, नारद—ब्रह्मा के पुत्र, मुनि और देवता, ये भगवान् के अंश के भी अंश हैं, फिर भी भिन्न-भिन्न ईश्वरता का अभिमान रखने के कारण हम लोग ईश्वर के अभिप्राय को नहीं जानते, फिर उनके स्वरूप को जानने की तो बात ही क्या है? अर्थात् हम लोग जब उनकी चेष्टा नहीं जानते तो उनके स्वरूप को कैसे जान सकते हैं? ॥ ३२ ॥ भगवान का न तो कोई प्रिय है, न अप्रिय; न उनका

श्रीशुक उवाच—

२५—इति प्रसाद्य गिरिशौ चित्रकेतुररिंदम। जगाम स्वविमानेन पश्यतोः स्मयतोस्तयोः ॥

२६—ततस्तु भगवान् रुद्रो रुद्राणीमिदमब्रवीत्। देवर्षिदैत्यसिद्धानां पार्षदानां च शृण्वताम् ॥

श्रीरुद्र उवाच—

२७—दृष्टवत्यसि सुश्रोणि हरेरद्भुतकर्मणः। माहात्म्यं भृत्यभृत्यानां निःस्पृहाणां महात्मनाम् ॥

२८—नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति। स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥

२९—देहिनां देहसंयोगाद्द्वन्द्वानीश्वरलीलया। सुखं दुःखं मृतिर्जन्म शापोऽनुग्रह एव च ॥

३०—अविवेककृतः पुंसो ह्यर्थभेद इवात्मनि। गुणदोषविकल्पश्च भिदेव स्रजिवत्कृतः ॥

३१—वासुदेवे भगवति भक्तिमुद्वहतां नृणाम्। ज्ञानवैराग्यवीर्याणां नेह कश्चिद् व्यपाश्रयः ॥

३२—नाहं विरिंचो न कुमारनारदौ न ब्रह्मपुत्रा मुनयः सुरेशाः।
विदाम यस्येहितमंशकांशका न तत्स्वरूपं पृथगीशमानिनः ॥

कोई अपना है, न पराया, किन्तु समस्त प्राणियों की आत्मा होने के कारण वे सबको प्रिय हैं ॥ ३३ ॥ सर्वत्र समदृष्टि रखनेवाला, शांत और भाग्यशाली यह चित्रकेतु भगवान् का प्रिय सेवक है और मैं भी भगवान् का प्रिय हूँ, इसीसे मुझे इसके ऊपर क्रोध नहीं आया ॥ ३४ ॥ अतः शान्त,समदर्शी और भगवान् के भक्त महात्मा पुरुषों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का विस्मय न करना चाहिए ॥ ३५ ॥

श्रीशुकदेव बोले—राजन्! इस प्रकार शिव के वचन सुनकर पार्वती शांत हुईं और उनका विस्मय जाता रहा ॥ ३६ ॥ महावैष्णव चित्रकेतु भी पार्वती को प्रतिशाप दे सकने में समर्थ थे,फिर भी उन्होंने पार्वती का शाप सिर झुकाकर स्वीकार कर लिया,क्योंकि यही साधुओं का लक्षण है ॥ ३७ ॥ दैत्य की योनि पाकर चित्रकेतु त्वष्टा की दक्षिणाग्नि में से उत्पन्न हुआ। उसका वृत्र यह नाम पड़ा। दैत्य होने पर भी वह ज्ञान तथा विज्ञान से युक्त था ॥ ३८ ॥ आपने पूछा था कि असुर होकर भी वृत्र की मति भगवान् में कैसे रही,अतः उसका समस्त कारण मैंने आपसे कह सुनाया ॥ ३९ ॥ महात्मा चित्रकेतु के इस पवित्र इतिहास और वैष्णवों का माहात्म्य सुनने से मनुष्य सांसारिक बंधनों से छूट जाता है ॥ ४० ॥ प्रातःकाल उठकर, मौन होकर भगवान् का स्मरण करते हुए जो मनुष्य श्रद्धा पूर्वक इस इतिहास का पाठ करता है, उसे परम गति प्राप्त होती है ॥ ४१ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवें स्कंध का सत्रहवाँ अध्याय समाप्त

३३—न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपिवा। आत्मत्वात्सर्वभूतानां सर्वभूतप्रियो हरिः ॥
३४—तस्य चायं महाभागश्चित्रकेतुः प्रियोऽनुगः। सर्वत्र समदृक् शांतो ह्यहं चैवाच्युतप्रियः ॥
३५—तस्मान्न विस्मयः कार्यः पुरुषेषु महात्मसु। महापुरुषभक्तेषु शांतेषु समदर्शिषु ॥

श्रीशुकउवाच—

३६—इति श्रुत्वा भगवतः शिवस्योमाऽभिभाषितम्। बभूव शांतधी राजन् देवी विगतविस्मया ॥
३७—इति भागवतो देव्याः प्रतिशप्तुमलंतमः। मूर्ध्ना सजगृहे शापं एतावत्साधुलक्षणं ॥
३८—जज्ञे त्वष्टुर्दक्षिणाग्नौ दानवीं योनिमाश्रितः। वृत्र इत्यभिविख्यातो ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥
३९—एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि। वृत्रस्यासुरजातेश्च कारणं भगवन्मतेः ॥
४०—इतिहासमिमं पुण्यं चित्रकेतोर्महात्मनः। माहात्म्यं विष्णुभक्तानां श्रुत्वा बंधाद्विमुच्यते ॥
४१—य एतत्प्रातरुत्थाय श्रद्धया वाग्यतः पठेत्। इतिहासं हरिं स्मृत्वा स याति परमां गतिम् ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

सविता आदि के वंश का वर्णन, इन्द्र का बध करने वाले पुत्र की

कामना से दिति का पुंसवन व्रत करना, मरुतो की उत्पत्ति

श्रीशुकदेव बोले—अदिति के पाँचवे पुत्र सविता की स्त्री पृश्नि ने गायत्री, व्याहृति तीनों वेद, अग्निहोत्र, पशुयाग, सोमयाग, चातुर्मास्य और पंच महायज्ञों के देवताओं को उत्पन्न किया ॥ १ ॥ अदिति के छठे पुत्र भग की स्त्री सिद्धि ने महिमा, विभु और प्रभु, इन तीन पुत्रों तथा सदाचरणों से युक्त आशिष नामकी एक सुंदरी कन्या को उत्पन्न किया ॥ २ ॥ अदिति के सातवे पुत्र धाता की कुहू, सिनीवाली, राका तथा अनुमति नाम की स्त्रियों ने क्रम से साय, दर्श, प्रातः और पूर्णमास नाम के पुत्रों को उत्पन्न किया ॥ ३ ॥ अदिति के आंठवे पुत्र विधाताने क्रिया नामकी स्त्री के गर्भसे पुरीष्य नाम की अग्नियों को उत्पन्न किया। अदिति के नवे पुत्र वरुण की स्त्री चर्पणी थी, जिससे भृगु, जो पहले ब्रह्मा के पुत्र थे, पुन उत्पन्न हुए। महा योगी वाल्मीकि भी वल्मीक (मिट्टी की ढेर) से उत्पन्न कहे जाते हैं, वरुण के ही पुत्र हैं। मित्र और वरुण ने उर्वशी नाम की अप्सरा के सम्मुख गिरे हुए अपने-अपने वीर्य को उठाकर घड़े में रख लिया था, उससे अगस्त्य और वशिष्ठ उत्पन्न हुए। अदिति के दसवे पुत्र मित्र ने रेवती नाम की स्त्री के गर्भ से अरिष्ट, उत्सर्ग और पिप्पल नाम के पुत्र उत्पन्न किए ॥ ४, ६ ॥ अदिति के ग्यारहवे पुत्र पराक्रमी इंद्र ने पौलोमी नाम की स्त्री के गर्भ से जयंत, ऋषभ

श्रीशुक उवाच—

१—पृश्निस्तु पत्नी सवितुः सावित्रीं व्याहृतिं त्रयीम्। अग्निहोत्र पशु सोम चातुर्मास्य महामखान् ॥

२—सिद्धिर्भगस्य भार्याऽग महिमान विभु प्रभुम्। आशिष च वरारोहा कन्या प्रासूत सुव्रताम् ॥

३—धातुः कुहूः सिनीवाली राका चानुमतिस्तथा। साय दर्शमथ प्रात. पूर्णमासमनुक्रमात् ॥

४—चर्षणी वरुणस्यासीद्यस्या जातो भृगु. पुनः। वाल्मीकिश्च महायोगी वल्मीकादभवत्किल ॥
अग्नीन्पुरीष्यानाधत्त क्रियाया समनतरः ॥

५—अगस्त्यश्च वशिष्ठश्च मित्रावरुणयोरृषी। रेतः सिषिचतुः कुम्भे उर्वश्याः संनिधौ द्रुतम् ॥

६—रेवत्या मित्र उत्सर्गमरिष्ट पिप्पल व्यधात्।

७—६

और मीढुश नाम के तीन पुत्रों को उत्पन्न किया, ऐसा हम लोगों ने सुना है ॥ ७ ॥ अदिति के बारहवें पुत्र उरुक्रम देव ने, जिन्होंने माया से वामनरूप धारण किया था, कीर्ति नामक स्त्री के गर्भ से वृहतश्लोक नामक पुत्र उत्पन्न किया, जिसके पुत्र सौभग आदि हुए ॥ ८ ॥ महात्मा काश्यप अर्थात् वामनजी ने अदिति के गर्भ से जिस प्रकार जन्म पाया और उन्होंने जो कर्म, गुण तथा पराक्रम किए, उनका वर्णन मैं पीछे करूँगा ॥ ९ ॥ अब अर्थात् कश्यप के बारह पुत्रों का वर्णन कर चुकने के अनन्तर मैं उनके दायादों (भाई-बन्धुओं) का वर्णन करूँगा, जिनमें प्रह्लाद और बलि के समान भगवद्भक्त हुए हैं ॥ १० ॥ दिति के हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नाम के दो पुत्र थे। उनकी वन्दना देवता और दानव दोनों ही करते थे। उनका वर्णन पहले किया जा चुका है ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपु की स्त्री और जंभ की कन्या कयाधु ने संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद और प्रह्लाद नाम के चार पुत्र और सिंहिका नामकी एक पुत्री उत्पन्न की। यह कन्या विप्रचित्ति को ब्याही गई थी, जिससे उसे राहु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १२-१३ ॥ अमृत पीने के समय भगवान् ने इस राहु का मस्तक चक्र से काट डाला था। संह्लाद की कृति नाम की स्त्री के गर्भ से पचजन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ ह्लाद की स्त्री का नाम धमनी था। उसने वातापि और इल्वल नामके दो पुत्र उत्पन्न किए। अतिथि हुए अगस्त्य को भोजन कराने के निमित्त इल्वल ने वातापि का मांस पकाया था ॥ १५ ॥ अनुह्लाद की सूर्मि नाम की पत्नी के गर्भ से बाष्कल और महिष नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए, प्रह्लाद के पुत्र विरोचन हुए और विरोचन की स्त्री के गर्भ से बलि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १६ ॥ बलि की अशना नाम की स्त्री के गर्भ से सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें से बाणासुर सबसे

७—पौलोम्यामिन्द्र आधत्त त्रीन्पुत्रानिति नः श्रुतम्। जयंतमृषभं तात तृतीयं मीढुषं प्रभुः ॥

८—उरुक्रमस्य देवस्य मायावामनरूपिणः। कीर्तौ पत्न्यां बृहत् श्लोकस्तस्यासन् सौभगादयः ॥

९—तत्कर्मगुणवीर्याणि काश्यपस्य महात्मनः। पश्चाद्वक्ष्यामहेऽदित्यां यथैवाव ततार ह ॥

१०—अथ कश्यपदायादान् दैतेयान्कीर्तयामि ते। यत्र भागवतः श्रीमान् प्रह्लादो बलिरेव च ॥

११—दितेर्द्वावेव दायादौ दैत्यदानववन्दितौ। हिरण्यकशिपुर्नाम हिरण्याक्षश्च कीर्तितौ ॥

१२—हिरण्यकशिपोर्भार्या कयाधुर्नाम दानवी। जम्भस्य तनया दत्ता सुषुवे चतुरः सुतान् ॥

१३—संह्लादं प्रागनुह्लादं ह्लादं प्रह्लादमेव च। तत्स्वसा सिंहिका नाम राहुं विप्रचितोऽग्रहीत् ॥

१४—शिरोऽहरद्यस्य हरिश्चक्रेण पिबतोऽमृतम्। संह्लादस्य कृतिर्भार्याऽसूत पचजनं ततः ॥

१५—ह्लादस्य धमनिर्भार्याऽसूत वातापिं मिल्वलम्। योऽगस्त्याय त्वतिथये पेचे वातापिमिल्वलम् ॥

१६—अनुह्लादस्य सूर्म्यां बाष्कलो महिषस्तथा। विरोचनस्तु प्राह्लादिर्देव्यास्तस्यामभवद् बलिः ॥

बड़ा था। पुण्यात्मा बलि के प्रभाव का वर्णन पीछे किया जायगा ॥ १७ ॥ बाणासुर ने शिवजी की आराधना करके उनके गणों में प्रमुख पद पाया था। भगवान् शिव आजतक उनके नगर की रक्षा करते हैं ॥१८॥ उनचास मरुत भी दिति के ही पुत्र हैं। वे सतान-हीन हैं और उन्हें इन्द्र ने देवता बना लिया है ॥ १९ ॥

राजा परीक्षित बोले—गुरुदेव ! इन मरुतों का जन्मगत-आसुरी भाव मिटाकर इन्द्र ने कैसे उन्हें देवता बनाया ? उन लोगों ने कौन सा सत्कर्म किया था ? ॥ २० ॥ ब्रह्मन् ! मेरे सहित ये ऋषिगण इस बात को जानना चाहते हैं, अतः आप यह कहें ॥ २१ ॥

सूत बोले—शौनक ! राजा परीक्षित की आदर युक्त, सक्षिप्त और अर्थपूर्ण बात सुनकर सर्वज्ञ शुकदेव ने प्रसन्न होकर उनका सत्कार किया और बोले ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेव बोले—इन्द्र का पक्ष लेकर विष्णु ने दिति के पुत्रों को मार डाला था। शोक के कारण उसका क्रोध दीप्त हो गया था। वह उस क्रोध से जल रही थी उसने सोचा कि मैं भाइयों की हत्या करने वाले,विषय सुखों में आसक्त,क्रूर,पापी और कठिन हृदय वाले इन्द्र को मारकर कब सो सकूँगी ? ॥ २३-२४ ॥ राजा कहे जाने पर भी अन्त में जो शरीर कीडा, विष्ठा अथवा भस्म के रूप में परिणत होता है, उस शरीर के लिए प्राणियों का द्रोह करनेवाला मनुष्य क्या अपने स्वार्थ को जानता है ? ॥ २५ ॥ मुझे वह उपाय करना चाहिए, जिससे मुझे ऐसा पुत्र उत्पन्न हो, जो शरीर आदि पदार्थों को नित्य समझनेवाले तथा उच्छृंखल चित्तवाले इन्द्र का नाश करे ॥ २६ ॥ ऐसे भाव से वह अपने पति कश्यप को बार-बार प्रसन्न करने लगी। सेवा,

---

१७—बाणज्येष्ठं पुत्रशत मशनायां ततोऽभवत्। तस्यानुभावः सुश्लोक्यः पश्चादेवाभिधास्यते ॥
१८—बाण आराध्य गिरिशं लेभे तद्गणमुख्यतां। यत्पार्श्वे भगवानास्ते ह्यद्यापि पुरपालकः ॥
१९—मरुतश्चदितेः पुत्राश्चत्वारिंशन्नवाधिकाः। त आसन्न प्रजाः सर्वे नीता इन्द्रेण सात्मतां ॥

राजोवाच—

२०—कथं त आसुरं भावमपोह्यौत्पत्तिकं गुरो। इंद्रेण प्रापिताः सात्म्यं किं तत्साधुकृतं हि तैः ॥
२१—इमे श्रद्दधते ब्रह्मन्नृषयो हि मया सह। परिज्ञानाय भगवंस्तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥

सूत उवाच—

२२—तद्विष्णुरातस्य सबादरायणिर्वचो निशम्याहत मल्पमर्थवत्।
समाजयन् संनिभृते न चेतसा जगाद सत्रायण सर्वदर्शनः ॥

श्रीशुक उवाच—

२३—हतपुत्रादितिः शक्रपार्ष्णिग्राहेण विष्णुना। मन्युना शोकदीप्तेन ज्वलंती पर्यचिंतयत् ॥
२४—कदानुभ्रातृहंतारमिंद्रियाराममुल्बणं। अक्लिन्नहृदयं पापं घातयित्वाशये सुखं।
२५—कृमिविड्भस्मसंज्ञासीद्यस्येशाभिहितस्य च। भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥
२६—आशासानस्य तस्येदं ध्रुवमुन्नद्धचेतसः। मदशोषक इन्द्रस्य भूयाद्येन सुतो हि मे ॥

स्नेह, नम्रता, जितेंद्रियता, उत्तम भक्ति, मनोज्ञ तथा मधुर भाषण, सुन्दर-हास्य और कटाक्ष-पूर्वक देखने आदि उपायों के द्वारा, मन को जानने वाली उस दिति ने शीघ्र ही पति के मन को वशीभूत कर लिया ॥ २७-२८ ॥ इस प्रकार स्त्री के द्वारा वशीभूत हुए विद्वान कश्यप ने भी विवश होकर उसका मनोरथ पूर्ण करना स्वीकार किया, यह स्त्री-चरित्र के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं थी ॥ २९ ॥ आरम्भ में प्राणियों को निःसग देखकर ब्रह्मा ने अपने शरीर के आधे भाग से स्त्रियों को बनाया, जिन्होंने पुरुषों की बुद्धि का हरण कर लिया है ॥ ३० ॥ तात ! इस प्रकार स्त्री के द्वारा जिसकी सुश्रूषा की गई थी, ऐसे भगवान् कश्यप ने प्रसन्न होकर दिति का सत्कार किया और हँसते हुए बोले ॥ ३१ ॥

कश्यप बोले—सुन्दरी ! अनिंदिते ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ । तुम वर माँगो ! यदि स्त्री पर पति प्रसन्न हो तो ससार मे उसके लिए क्या दुर्लभ है ? ॥ ३२ ॥ पति ही स्त्रियों का परम गुरु कहा गया है । लक्ष्मी-पति भगवान् तो समस्त प्राणियों के मानसिक पति हैं ॥ ३३ ॥ पुरुष भिन्न-भिन्न नामों से कल्पित इन्हीं भगवान् का मूर्तियों के रूप में पूजन करते हैं और स्त्रियाँ पति के रूप मे पूजन करती है ॥ ३४ ॥ अत कल्याण की कामना रखनेवाली पतिव्रता स्त्रियाँ अनन्यभाव से पतिरूप परमात्मा का ही पूजन करती हैं ॥ ३५ ॥ भद्रे ! इस प्रकार तुमने भक्तिपूर्वक मेरी पूजा की है, अतः मैं तुम्हारी कामना पूर्ण करूँगा, जो असती स्त्रियों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ३६ ॥

दिति बोली—ब्रह्मन् ! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो मैं इन्द्र का वध करनेवाला अमर पुत्र मागती हूँ । मेरा पुत्र मारा गया है और इन्द्र ने मेरे पुत्रों की हत्या की है ॥ ३७ ॥

२७—इति भावेन सा भर्तुराचचारा सकृत् प्रियम् । शुश्रुषयाऽनुरागेण प्रश्रयेण दमेन च ॥
२८—भक्त्या परमया राजन् मनोज्ञैर्वल्गुभाषितैः । मनो जग्राह भावज्ञा सुस्मितापागवीक्षणैः ॥
२९—एव स्त्रिया जडीभूतो विद्वानपि विदग्धया । बाढमित्याह विवशो न तच्चित्रं हि योषिति ॥
३०—विलोक्यैकांतभूतानि भूतान्यादौ प्रजापतिः । स्त्रिय चक्रे स्वदेहार्धं यया पुसा मतिर्हृता ॥
३१—एवसुश्रूषितस्तात भगवान्कश्यप. स्त्रिया । प्रहस्य परमप्रीतो दितिमाहाभिनन्द्य च ॥

कश्यप उवाच—

३२—वर वरय वामोरु प्रीतस्तेऽहमनिंदिते । स्त्रिया भर्तरि सुप्रीते कः काम इह चागमः ॥
३३—पतिरेव हि नारीणां दैवत परमं स्मृतम् । मानसः सर्वभूतानां वासुदेवः श्रियः पतिः ॥
३४—स एव देवता लिंगैर्नामरूपविकल्पितैः । इज्यते भगवान्पुंभिः स्त्रीभिश्च पतिरूपधृक् ॥
३५—तस्मात्पतिव्रतानार्यः श्रेयस्कामाः सुमध्यमे । यजतेऽनन्यभावेन पतिमात्मानमीश्वर ॥
३६—सोऽहं त्वयाऽर्चितो भद्रे ईदृग्भावेन भक्तितः । तत्ते सपादये काममसतीना सुदुर्लभं ॥

दितिरुवाच—

३७—वरदो यदि मे ब्रह्मन्पुत्रमिंद्रहणं वृणे । अमृत्युं मृतपुत्राऽहं येन मे घातितौ सुतौ ॥

दिति की बातें सुनकर कश्यप दुखी होकर पश्चात्ताप करने लगे-हाय, आज मुझे बड़ा अधर्म प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ स्त्रीरूपिणी माया ने विषयों में आसक्त मुझ कृपण को वशवर्ती बना-लिया है। मैं अवश्य नरक मे पड़ूँगा ॥ ३९ ॥ स्त्री अपने स्वभाव के अनुसार ही आचरण करती है। उसका क्या दोष है ? किन्तु स्वार्थ को न जाननेवाले मुझको धिक्कार है, क्योंकि मैं जितेंद्रिय हूँ ॥४०॥ स्त्रियों का मुँह शरत्कालीन मेघ के समान प्रसन्न होता है। उनकी वाणी कानों के लिए अमृत के तुल्य होती है, किंतु उनका हृदय छुरे की धार के समान होता है। स्त्रियों की चेष्टा को कौन जान सकता है ? ॥ ४१ ॥ अपने ही स्वार्थ मे तत्पर रहने वाली स्त्रियों के लिये कुछ भी प्रिय नहीं है, क्योंकि वे अपने स्वार्थ के लिये पति, पुत्र और भाई पर प्रहार करतीं तथा उन्हें मार भी डालती हैं ॥ ४२ ॥ मैंने जो वचन दिया है, वह व्यर्थ न हो और इन्द्र भी-न मारा जाय (क्योंकि वह वध करने के योग्य नहीं है), अतः इसके लिये कुछ उपाय करना चाहिये ॥ ४३ ॥ कौरव ! भगवान् कश्यप ने ऐसा विचार करके, अपने को धिक्कार देते हुए, कुछ क्रोधित होकर कहा ॥ ४४ ॥

कश्यप बोले—भद्रे ! यदि तुम एक वर्ष तक इस व्रत का पालन विधि पूर्वक करोगी तो तुम्हें इन्द्र का वध करने वाला पुत्र उत्पन्न होगा, किंतु यदि इस मे कुछ व्यतिक्रम हुआ अर्थात् विधि का पालन तुमने ठीक तौर से नहीं किया तो वह पुत्र देवताओं का मित्र हो जायगा ॥ ४५ ॥

दिति बोली—ब्रह्मन् ! मैं उस व्रत का पालन करूँगी। मुझे जो करना होगा, वह आप बतलावें और वह भी बतलावे जिन्हें करना उचित नहीं है और जो व्रत को निष्फल कर देंगे ॥ ४६ ॥

३८—निशम्य तद्वचो विप्रो विमनाः पर्यतप्यत । अहो अधर्मः सुमहानद्य मे समुपस्थितः ॥
३९—अहो अर्थेंद्रियारामो योषिन्मय्येह मायया । गृहीतचेताः कृपणः पतिष्ये नरके ध्रुवम् ॥
४०—कोऽतिक्रमोऽनुवर्तन्त्याः स्वभावमिह योषितः । धिङ्मां बताबुध स्वार्थे यदहं त्वजितेंद्रियः ॥
४१—शरत्पद्मोत्सव वक्त्रं वचश्च श्रवणामृत । हृदय क्षुरधाराभ स्त्रीणा को वेद चेष्टित ॥
४२—नहि कश्चित्प्रियः स्त्रीणामंजसा स्वशिषात्मना । पतिं पुत्रं भ्रातरं वा घ्नत्यर्थे घातयंति च ॥
४३—प्रतिश्रुतं ददामीति वचस्तन्न मृषा भवेत् । वधं नार्हति चेंद्रोऽपि तत्रेदमुपकल्पते ॥
४४—इति संचिंत्य भगवान्मरीचः कुरुनंदन । उवाच किंचित्कुपित आत्मानं च विगर्हयन् ॥

कश्यप उवाच—

४५—पुत्रस्ते भविता भद्रे इंद्रहा देवबाधवः । संवत्सरं व्रतमिदं यद्यंजो धारयिष्यसि ॥

दितिरुवाच—

४६—धारयिष्ये व्रतं ब्रह्मन् ब्रूहि कार्याणि यानि मे । यानि चेह निषिद्धानि न व्रतं घ्नंति यानि तु ॥

कश्यप बोले—प्राणियों की हिंसा न करनी चाहिये, शाप न देना चाहिये, झूठ न बोलना चाहिये, नख और रोम नहीं काटना चाहिये और जो अमगल के पदार्थ हों (खोपड़ी और हड्डी आदि) उनका स्पर्श न करना चाहिये ॥ ४७ ॥ जल अर्थात् नदी,सरोवर आदि में पैठकर स्नान न करना चाहिये, क्रोध न करना चाहिये और दुष्टों से बात-चीत न करनी चाहिये, बिना धोये हुए वस्त्र को न पहनना चाहिये, पहनी हुई माला पुनः न पहननी चाहिये ॥ ४८ ॥ जूठा, चंडिका को चढ़ाया हुआ, शूद्रा के द्वारा लाया हुआ अथवा रजस्वला के द्वारा देखा हुआ भोजन नहीं करना चाहिये और अजली से पानी नहीं पीना चाहिये ॥ ४९ ॥ जूठे मुँह, जल से आचमन किए विना, सध्या के समय केश खोलकर, विना शृंगार किये, विना वाणी को जीते और वस्त्र से शरीर को ढके बिना बाहर नहीं घूमना चाहिये ॥ ५० ॥ बिना पैर धोये, असावधान होकर,भीगे पैर,पश्चिम और उत्तर की ओर सिर कर के दूसरों के सहित,नग्न और संध्या कालों में,न सोना चाहिये, ॥ ५१ ॥ धुले हुए वस्त्र पहनकर, निरतर पवित्र रहकर समस्त मंगल द्रव्यों के सहित प्रातःकाल भोजन के पहले गौ, ब्राह्मण, लक्ष्मी, और भगवान की पूजा करनी चाहिये ॥ ५२ ॥ फूल, धूप, भोजन के पदार्थ और आभूषणों के द्वारा सधवा स्त्रियों की पूजा करनी चाहिए, पुनः पति का पूजन करके गर्भस्थ उस पति का ध्यान करना चाहिये ॥ ५३ ॥ यदि तुम एक वर्ष तक पुसवन (पुत्र देने वाला) नामक इस व्रत का विधि-पूर्वक पालन करोगी तो तुम्हें इंद्र का बध करने वाला पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ५४ ॥

कश्यप उवाच—

४७—न हिंस्याद्भूतजातानि न शपेन्नानृतं वदेत् । न च्छिद्यान्नखरोमाणि न स्पृशेद्यदमंगलं ॥

४८—नाप्सुस्नायान्न कुप्येत न संभाषेत दुर्जनैः । न वसीता धौतवासः स्रजंच विधृतां क्वचित् ॥

४९—नोच्छिष्टं चंडिकाऽन्नं च सामिषं वृषलाहृत । मुंजीतोदक्ययाद्दष्टं पिबेदंजलिनात्वपः ॥

५०—नोच्छिष्टाऽस्पृष्टसलिला संध्यायां मुक्तमूर्धजा । अनर्चिताऽसंयतवागसंवीता यदिश्चरेत् ॥

५१—नाधौतपादाप्रयता नार्द्रपान्नोउदक्शिराः । शयीत नापराङ्नान्यैर्न नग्ना न च संध्ययोः ॥

५२—धौतवासाः शुचिर्नित्यं सर्वमंगलसंयुता । पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्गोविप्रान् श्रियमच्युतं ॥

५३—स्त्रियो वीरवतीश्चार्चेत्स्रगंधबलिमंडनैः । पतिं चार्च्योपतिष्ठेत ध्यायेत्कोष्ठगतं चतं ॥

५४—सांवत्सरं पुंसवनं व्रतमेतदविप्लुतं । धारयिष्यसि चेत्तुभ्यं शक्रहा भविता सुतः ॥

राजन् ! दिति ने कश्यप की बातें को स्वीकार कर लीं और उनके द्वारा गर्भ धारण किया तथा व्रत लिया ॥५५॥ व्यवहार-कुशल इन्द्र अपनी मौसी दिति का अभिप्राय जानकर उसके आश्रम में आए और उसकी सेवा-सुश्रूषा करने लगे ॥ ५६ ॥ प्रतिदिन वे समय-समय पर वन से फल, फूल, मूल, समिध, कुश, पत्ते, अंकुर तथा मिट्टी और जल लाकर दिया करते थे ॥ ५७ ॥ राजन् ! इस प्रकार दिति का व्रत भंग करने की इच्छा रखने वाले कुटिल इन्द्र, व्रत में स्थित उस दिति के पास रहकर उसकी सेवा करने लगे। वे मृग का वेश धारण किए हुए अहेरी के समान थे ॥ ५८ ॥ राजन् ! दोष ढूँढने मे तत्पर इन्द्र जब दिति का व्रत न भंग कर सके तो उन्हें इस बात की बड़ी चिन्ता हुई कि इस सम्बन्ध में मेरा कल्याण कैसे होगा ? ॥ ५९ ॥ व्रत के कारण दिति जूठे मुँह, बिना आचमन किए और बिना पैर धोए सन्ध्या के समय सो गई ॥ ६० ॥ यह मौका पाकर योगेश्वर इन्द्र ने अपनी योगमाया से निद्रा के कारण, जिसकी चेतना नष्ट हो गई थी, उस दिति के गर्भ में प्रवेश करके अपने वज्र से सुवर्ण के समान प्रभाव वाले उस गर्भ के सात टुकड़े कर दिए। रोते हुए उन टुकड़ों से मत रोओ, ऐसा कहकर उन्होंने उन सातों के भी सात-सात टुकड़े कर दिए ॥ ६१-६२ ॥ राजन् ! इन्द्र के द्वारा टुकड़े, टुकड़े किए जाते हुए उन सबों ने हाथ जोड़कर इन्द्र से कहा कि हे इन्द्र ! तुम हम लोगों की हत्या क्यों करते हो ? हम तो तुम्हारे भाई मरुत् हैं ॥ ६३ ॥ इन्द्र ने अपने सच्चे भक्त और पार्षद मरुद्गणों से कहा कि तुम लोग डरो मत ! तुम हमारे भाई हो ॥ ६४ ॥ वज्र के द्वारा बार-बार काटे जाने पर भी भगवान् की कृपा से

५५—बाढमित्यभिप्रेत्याथ दितीराजन्महामनाः । काश्यपं गर्भमाधत्त व्रतं चाञ्जो दधार सा ॥

५६—मातृष्वसुरभिप्रायमिन्द्र आज्ञाय मानद । शुश्रूषणेनाश्रमस्था दितिं पर्यचरत्कविः ॥

५७—नित्यं वनात्सुमनसः फलमूलसमित्कुशान् । पत्राङ्कुरमृदोऽपश्च काले काल उपाहरत् ॥

५८—एवं तस्या व्रतस्थाया व्रतच्छिद्रं हरिर्नृप । प्रेप्सुः पर्यचरज्जिह्मो मृगहेव मृगाकृतिः ॥

५९—नाध्यगच्छद् व्रतच्छिद्रं तत्परोऽथ महीपते । चिन्तां तीव्रां गतः शक्र. केन मे स्याच्छिवं त्विह ॥

६०—एकदा सा तु सन्ध्यायामुच्छिष्टा व्रतकर्शिता । अस्पृष्टवार्यधौताङ्घ्रिः सुष्वाप विधिमोहिता ॥

६ —लब्ध्वा तदन्तरं शक्रो निद्राऽपहृतचेतसः । दितेः प्रविष्ट उदरं योगेशो योगमायया ॥

६१—चकर्त सप्तधा गर्भं वज्रेण कनकप्रभं । रुदन्तं सप्तधैकैकं मारोदीरिति तान्पुनः ॥

६३—ते तमूचुः पाट्यमानाः सर्वे प्राञ्जलयो नृप । नो जिघांससि किं इन्द्र भ्रातरो मरुतस्तव ॥

६४—माभैष्ट भ्रातरो मह्यं यूयमित्याह कौशिकः । अनन्यभावान्पार्षदानात्मनो मरुतां गणात् ॥

वह गर्भ मरा नहीं, जैसे अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से आप नहीं मरे थे ॥ ६५ ॥ मनुष्य एक बार भी भगवान् का पूजन करके भगवत्स्वरूप को प्राप्त होता है, फिर दिति ने तो एक वर्ष से कुछ ही कम समय तक भगवान् का पूजन किया था ॥ ६६ ॥ वे इन्द्र के सहित पचास मरुत देवता हुए। इन्द्र ने उनकी माता का अपराध दूर करके, उन्हें सोम पीने वाला अर्थात् देवता बनाया ॥ ६७ ॥ जागकर दिति ने अग्नि के समान तेजस्वी कुमारों को इन्द्र के सहित देखा। अनिंदिता दिति उन्हें देखकर प्रसन्न हुई ॥ ६८ ॥ अनन्तर दिति ने इद्र से कहा कि तात! मैंने देवताओं के लिए भयानक एक पुत्र की कामना से अत्यन्त कठिन यह व्रत धारण किया था ॥ ६९ ॥ मैंने तो केवल एक ही पुत्र का संकल्प किया था, फिर ये उनचास कैसे हो गए? पुत्र! यदि तुम्हें यह बात मालूम हो तो सच-सच कहो। झूठ मत बोलना ॥ ७० ॥

इन्द्र बोले—माता! स्वार्थी और धर्म को न जानने वाला मैं तुम्हारा अभिप्राय जानकर तुम्हारे पास आ ठहरा था और समय पाकर मैंने तुम्हारे गर्भ को काट डाला ॥ ७१ ॥ मैंने गर्भ के सात टुकड़े किए, तो वे सात कुमार हो गए। उन सातों के भी मैंने सात-सात टुकड़े किए, किंतु फिर भी वे मरे नहीं ॥ ७३ ॥ निष्काम भाव से भगवान् की आराधना करने वाले जो लोग मोक्ष की भी इच्छा नहीं रखते, वे स्वार्थ मे कुशल कहे जाते हैं ॥ ७४ ॥ आत्म-स्वरूप देने वाले तथा आत्मारूप भगवान् की आराधना करके कौन बुद्धिमान् मनुष्य विषय-सुखों की कामना करेगा, क्योंकि विषय-सुख तो नरक में भी प्राप्त होते हैं ॥ ७५ ॥ माता! आप

६५—न ममार दितेर्गर्भः श्रीनिवासानुकम्पया। बहुधा कुलिशक्षुण्णो द्रौण्यस्त्रेण यथा भवान् ॥

६६—सकृदिष्ट्वादिपुरुष पुरुषो याति साम्यता। संवत्सर किंचिदून दित्यायद्धरिरर्चित. ॥

६७—सजूरिंद्रेण पंचाशद्देवास्ते मरुतो भवन्। व्यपोह्य मातृदोष ते हरिणा सोमपा. कृताः ॥

६८—दितिरुत्थाय ददृशे कुमाराननलप्रभान्। इन्द्रेण सहितान् देवी पर्यतुष्यदनिंदिता ॥

६९—अथेंद्रमाह ताताह मादित्याना भयावह। अपत्यमिच्छत्यचर व्रतमेतत्सुदुष्कर ॥

७०—एकः संकल्पितः पुत्रः सप्तसप्ताभवन्कथं। यदि ते विदितं पुत्र सत्य कथय मा मृषा ॥

इन्द्र उवाच—

७१—अब तेऽहं व्यवसितमुपधार्यागतोऽन्तिकम्। लब्ध्वान्तरोऽच्छिदं गर्भमर्थबुद्धिर्न धर्मवित् ॥

७२—कृतो मे सप्तधा गर्भ आसन्सप्तकुमारकाः। तेऽपि चैकैकशो वृक्णाः सप्तधानापि मम्रिरे ॥

७३—ततस्तत्परमाश्चर्यं वीक्ष्याध्यवसितं मया। महापुरुषपूजायाः सिद्धिः काप्यानुषंगिणी ॥

७४—आराधन भगवत ईहमाना निराशिषः। ये तु नेच्छंत्यपि पर ते स्वार्थकुशला. स्मृताः ॥

७५—आराध्यात्मप्रद देवं स्वात्मान जगदीश्वरं। को वृणीते गुणस्पर्शं बुध. स्यान्नरकेऽपि यत् ॥

श्रेष्ठ हैं। मुझ मूर्ख की यह दुर्जनता आपको क्षमा करनी चाहिये। प्रसन्नता की बात है कि गर्भ मरकर भी जी उठा है ॥ ७६ ॥

श्रीशुकदेव बोले—इन्द्र का शुद्ध भाव देखने से संतुष्ट हुई दिति के द्वारा आज्ञा पाकर, इन्द्र ने मरुतों के सहित उसको प्रणाम किया और वे स्वर्ग को चले गए ॥ ७७ ॥ आपने मुझसे जो पूछा था, वह मंगलमय मरुतों का जन्म वृत्तांत मैंने आपको सुनाया। अब और मैं क्या कहूँ ॥ ७८ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवें स्कंध का अठारहवाँ अध्याय समाप्त

—※—

७६—तदिदं मम दौर्जन्यं बालिशस्य महीयसि। क्षन्तुमर्हसि मातस्त्वं दिष्ट्या गर्भो मृतोत्थितः ॥

श्रीशुक उवाच—

७७—इन्द्रस्तयाऽभ्यनुज्ञातः शुद्धभावेन तुष्टया। मरुद्भिः सहता नत्वा जगाम त्रिदिवं प्रभुः ॥

७८—एवं ते सर्वमाख्यातं यन्मा त्वं परिपृच्छसि। मंगलं मरुता जन्म किं भूयः कथयामि ते ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

पुंसवन-व्रत की विधि

राजा परीक्षित बोले— ब्रह्मन् ! आपने जो पुंसवन-व्रत कहा, मैं उसके सम्बन्ध में जानना चाहता हूँ, भगवान् उस व्रत से प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव बोले— मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष के आरंभ से अर्थात् प्रतिपद के दिन से पति की आज्ञा लेकर तथा ब्राह्मणों से पूछकर मरुद्गणों के जन्म आदि की कथा सुनकर समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाला यह व्रत आरम्भ करना चाहिए ॥ २ ॥ स्नान करके, मुंह धोकर, शृंगार करके और धुले हुए दो वस्त्र धारण करके प्रातःकाल भोजन से पहले लक्ष्मी के सहित भगवान् का पूजन करना चाहिए ॥ ३ ॥ पूर्णकाम ! लक्ष्मी के पति, समस्त सिद्धियों के स्वरूप और अपेक्षा-रहित आपको नमस्कार ॥ ४ ॥ कृपा, वैभव, तेज, मामहि सामर्थ्य और अन्य समस्त उत्तम गुण आपमें हैं, अतः आप भगवान् और प्रभु हैं ॥ ५ ॥ हे विष्णुपत्नि ! महामाया ! महापुरुषों के लक्षणोंवाली ! महाभागे ! लोकों की माता ! आप मुझ पर प्रसन्न हों। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ६ ॥ (पुनः इन मन्त्रों से स्तुति करनी चाहिए) ॐ महापुरुष भगवान् को नमस्कार। महापुरुष, अत्यन्त प्रभावशाली और उत्तम विभूतियों के स्वामी! मैं

राजोवाच—

१—व्रतं पुंसवनं ब्रह्मन् भवता यदुदीरितं। तस्य वेदितुमिच्छामि येन विष्णुः प्रसीदति ॥

श्रीशुक उवाच—

२—शुक्ले मार्गशिरे पक्षे योषिद्भर्तुरनुज्ञया। आरभेत व्रतमिदं सार्वकामिकमादितः ॥

३—निशम्य मरुतां जन्म ब्राह्मणाननुमन्त्र्य च। स्नात्वा शुक्लदती शुक्ले वसीतालंकृताम्बरे।

पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्भगवन्तं श्रिया सह ॥

४—अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमोऽस्तु ते। महाविभूतिपतये नमः सकलसिद्धये ॥

५—यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा महिमौजसा। जुष्ट ईशगुणैः सर्वैस्ततोऽसि भगवान् प्रभुः ॥

६—विष्णुपत्नि महामाये महापुरुषलक्षणे। प्रीयेथा मे महाभागे लोकमातर्नमोऽस्तु ते ॥

आपको उत्तम विभूतियों के सहित वलि देता हूँ ' इस मन्त्र के द्वारा प्रतिदिन आवाहन, अर्घ्य, पाद्य,आचमन, स्नान, वस्त्र,यज्ञोपवीत, आभूषण, चन्दन, पुष्प धूप, दीप और नैवेद्य आदि उपचार सावधान होकर भगवान् को अर्पित करना चाहिए ॥ ७ ॥ ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहा" इस मन्त्र के द्वारा वेप पदार्थों से अग्नि मे बारह आहुतियाँ देनी चाहिएं । यदि समस्त सपदाओं की इच्छा हो तो प्रतिदिन वर देनेवाले और समस्त मनोरथों को पूर्ण करनेवाले भगवान् और लक्ष्मी का भक्ति के सहित पूजन करना चाहिए ॥ ८ ॥ भक्ति से नम्र हुए हृदय के द्वारा पृथ्वी पर पड़कर दण्डवत् नमस्कार करना,दस बार (उपरोक्त) मंत्र का जप करना और उसके बाद स्तुति करनी चाहिए ॥ ९ ॥ आप जगत् के स्वामी और एकमात्र कारण हैं । ये लक्ष्मी सूक्ष्म प्रकृति और अनिर्दिष्ट माया शक्ति हैं ॥ १० ॥ उनके अधीश्वर आप साक्षात् परमपुरुष हैं । आप समस्त यज्ञ हैं और ये लक्ष्मी इज्या (यज्ञ की भावनारूपिणी) हैं और ये क्रिया है और आप फलों के भोक्ता हैं ॥ ११ ॥ ये गुणों की अभिव्यक्ति हैं और आप गुण के अभिव्यंजक तथा उनके भोक्ता हैं । आप समस्त प्राणियों की आत्मा और लक्ष्मी शरीर, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण हैं । लक्ष्मी नामरूपात्मक हैं तथा आप उनको प्रकाशित करनेवाले तथा आधार हैं ॥ १२ ॥ उत्तम रीतिवाले ! आप दोनों वर देनेवाले और जगत् के स्वामी हैं, इस सत्य के द्वारा मेरे समस्त मनोरथ सफल हों ॥ १३ ॥ इस प्रकार वर देनेवाले और श्रीनिवास भगवान् की, लक्ष्मी के सहित, स्तुति करके नैवेद्य आदि हटा लेना चाहिए और आचमन करके

७—ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सहमहाविभूतिभिर्बलिमुपहराणीति अनेनाहरहर्मन्त्रेण विष्णोरावाहनार्घ्यपाद्योपस्पर्शनस्नानवास उपवीतविभूषणगंधपुष्पधूपदीपोपहाराद्युपचारांश्च समाहिता उपाहरेत् । हविः शेषं तु जुहुयादनले द्वादशाहुतीः ॥

८—ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहेति ।
श्रियं विष्णुं च वरदावाशिषां प्रभवावुभौ । भक्त्या संपूजयेन्नित्यं यदिच्छेत्सर्वसंपदः ॥

९—प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ भक्तिप्रह्वेण चेतसा । दशवारं जपेन्मन्त्रं ततस्तोत्र मुदीरयेत् ॥

१०—युवां तु विश्वस्य विभू जगतः कारणं परं । इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा मायाशक्तिर्दुरत्यया ॥

११—तस्या अधीश्वरः साक्षात्त्वमेव पुरुषः परः । त्वं सर्वयज्ञइज्येयं क्रियेयं फलभुग् भवान् ॥

१२—गुणव्यक्तिरियं देवी व्यंजको गुणभुग्भवान् । त्वं हि सर्वशरीर्यात्मा श्रीः शरीरेन्द्रियाशया ॥
नामरूपे भगवती प्रत्ययस्त्वमपाश्रयः ॥

१३—यथा युवां त्रिलोकस्य वरदौ परमेष्ठिनौ । तथाम उत्तमश्लोक संतु सत्यामहाशिषः ॥

१४—इत्यभिष्टूय वरदं श्री निवासं श्रियासह । तन्निःसार्योपहरणं दत्वा च मनमर्चयेत् ॥

पूजन कराना चाहिए ॥ १४ ॥ अनन्तर भक्ति से नम्र हुए हृदय के द्वारा स्तोत्र से स्तुति करनी चाहिए। यज्ञ के उच्छिष्ट पदार्थों को सूंघकर उन भगवान् की पूजा करनी चाहिए ॥ १५ ॥ पति को परमेश्वर जानकर उनके प्रिय पदार्थों के द्वारा, अत्यन्त भक्ति के सहित, उनकी सेवा करनी चाहिए। पति को भी स्नेहशील होकर छोटे-बड़े सभी कामों मे स्त्री की सहायता करनी चाहिए ॥ १६ ॥ दंपती अर्थात् स्त्री-पुरुष दोनों मे से किसीका भी किया हुआ काम, दोनों मे से किसी का भी किया हुआ काम दोनों का समझा जाता है, अतः रजस्वला आदि होने के कारण स्त्री जबतक पूजा करने के योग्य न रहे, तबतक पति को उसके समस्त कर्म (पूजा संबधी) करने चाहिये ॥ १७ ॥ विष्णु के इस व्रत को प्रारंभ करके किसी भी प्रकार बीच से तोडना नहीं चाहिये। ब्राह्मणों और बाल-बच्चे वाली स्त्रियों को फूल, धूप, बलि और आभूषणों के द्वारा पूजा करनी चाहिये तथा नियम मे रहकर प्रतिदिन भगवान् की पूजा करनी चाहिये ॥ १८ ॥ भगवान् की मूर्ति को उनके सिंहासन पर पधरा कर, उन्हें जो नैवेद्य अर्पित किया गया हो, उसे अन्तःकरण की शुद्धि और समस्त मनोरथों की सिद्धि के लिये, खाना चाहिए ॥ १९ ॥ पूजा की इस विधि के द्वारा बारह महीनों अथवा मलमास हो तो तेरह महीनों, तक पूजा करके पतिव्रता स्त्री को कार्तिक महीने में अंतिम दिन उपवास करना चाहिये ॥ २० ॥ प्रातःकाल जल का आचमन करके तथा पहले ही के समान भगवान् की पूजा करके, पाक यज्ञ विधान के अनुसार दूध मे पकाए हुए चरु की, घी के सहित, बारह आहुतियाँ पति को देनी चाहिये ॥ २१ ॥ राजन् !

१५—ततस्तु वीतस्तोत्रेण भक्तिप्रह्वेण चेतसा। यज्ञोच्छिष्टमवघ्राय पुनरभ्यर्चयेद्धरिम् ॥

१६—पतिं च परया भक्त्या महापुरुषचेतसा। प्रियैस्तैस्तैरुपनमेत्प्रेमशीलः स्वयं पतिः।
बिभृयात्सर्वकर्माणि पत्न्या उच्चावचानि च ॥

१७—कृतमेकतरेणापि दंपत्योरुभयोरपि। पत्न्यां कुर्यादनर्हायां पतिरेतत्समाहितः ॥

१८—विष्णोर्व्रतमिदं बिभ्रन्न विहन्यात्कथंचन। विप्रान् स्त्रियो वीरवतीः स्रग्गंधबलिमण्डनैः ॥
अर्चेदहरहर्भक्त्या देवं नियममास्थितः ॥

१९—उद्वास्य देवं स्वे धाम्नि तन्निवेदितमग्रतः। अद्यादात्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकामर्द्धये तथा ॥

२०—एतेन पूजाविधिना मासान् द्वादश हायनम्। नीत्वाऽथोपरमेत्साध्वी कार्तिके चरमेऽहनि ॥

२१—श्वोभूतेऽप उपस्पृश्य कृष्णमभ्यर्च्य पूर्ववत्। पयःशृतेन जुहुयाच्चरुणा सह सर्पिषा।
पाकयज्ञविधानेन द्वादशैवाहुतीः पतिः ॥

२२—आशिषः शिरसादाय द्विजैः प्रीतैः समीरिताः। प्रणम्य शिरसा भक्त्या भुञ्जीत तदनुज्ञया ॥

केशव आदि द्वादश मूर्तियों के लक्षणों को जानने वाले ब्राह्मणों को भक्ति के सहित अन्न आदि का भोजन कराकर उन्हें भूमि, जल के सहित पात्र और तिल का दान देना चाहिये। प्रसन्न होकर ब्राह्मणों ने जो आशीर्वाद दिए हों, उन्हें माथे चढ़ाकर, भक्ति पूर्वक उन्हें प्रणाम करके और उनकी आज्ञा लेकर स्वयं भोजन करना चाहिये ॥ २२ ॥ आचार्य को आगे करके वाणी को संयत रखकर तथा बांधवों के साथ रहकर सौभाग्य तथा उत्तम संतान देने वाले चरु का शेष भाग पत्नी को देना चाहिए ॥ २३ ॥ भगवान् के इस व्रत को विधिपूर्वक करके पुरुष इस लोक में मनवांछित फल प्राप्त करता और पतिव्रत को करने वाली स्त्री सौभाग्य, लक्ष्मी, संतान, यश, गृह और पति की बड़ी आयु प्राप्त करती है,॥ २४ ॥ इस व्रत को करने वाली कन्या समस्त शुभ लक्षणों से युक्त वर प्राप्त करती है, विधवा पापों से मुक्त होती और सद्गति प्राप्त करती है, मृतवत्सा जीवित पुत्रों वाली होती है, निर्धन धनवान् होता है, अभागिनी सौभाग्यशीला होती है, कुरूपा रूपवती होती है, इस व्रत को करने वाला रोगी रोगमुक्त होकर हृष्ट-पुष्ट होता है तथा शुभ कर्मों में इस कथा का पाठ करने से देवताओं तथा पितरों को अत्यन्त तृप्ति होती है ॥ २५, २६ ॥ यज्ञ के पूर्ण होने पर अग्नि, लक्ष्मी और भगवान् प्रसन्न होकर समस्त मनोरथ पूर्ण करते हैं। राजन्! महान मरुतों का पुण्यजन्म तथा दिति के द्वारा किए गए इस उत्तम व्रत की कथा मैंने आपको सुनाई ॥ २७ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के छठवें स्कंध का उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त

२३—आचार्यमग्रतः कृत्वा वाग्यतः सहबन्धुभिः। दद्यात्पत्न्यैचरोः शेषं सुप्रजास्त्वं सुसौभगम् ॥

२४—एतच्चरित्वा विधिवद्व्रतं विभोरभीप्सितार्थं लभते पुमानिह।

स्त्रीत्वे तदास्थाय लभेत सौभगं श्रियं प्रजां जीवपतिं यशो गृहं ॥

२५—कन्या च विंदेत समग्रलक्षणा वरं त्ववीराहतकिल्बिषागतिम्।

मृतप्रजा जीवसुता धनेश्वरी सुदुर्भगा सुभगारूपमग्र्यम् ॥

२६—विंदेद्विरूपा विरुजा विमुच्यते य आमयावींद्रियकल्पदेहं।

एतत्पठन्नाभ्युदये च कर्मण्यनंततृप्तिः पितृदेवतानां ॥

२७—तुष्टाः प्रयच्छंति समस्तकामान्होमावसाने हुतभुक् श्रीर्हरिश्च।

राजन्महन्मरुतां जन्मपुण्यं दितेर्व्रतं चाभिहितं महत्ते ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेषष्ठस्कंधेपुंसवनव्रतकथनंनामएकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीमद्भागवत-सप्तम स्कन्ध

—ॐ—

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीमद्भागवत-सप्तम स्कन्ध

पहला अध्याय

जय-विजय को कुमारों का शाप और उनके तीन जन्मों की कथा

राजा परीक्षित बोले—ब्रह्मन्! भगवान जीवमात्र को समान दृष्टि से देखते हैं, सबके प्रिय और मित्र हैं, फिर देवराज इन्द्र के लिये उन्होंने दैत्यों का वध क्यों किया? इन्द्र का पक्ष लेकर दैत्यों के मारने में भगवान् का स्पष्ट रूप से पक्षपात झलकता है, पर ईश्वर में इस बात का आरोप नहीं हो सकता, इसलिये यह जो विचित्र बात जान पड़ती है, उसका क्या कारण है? ॥ १ ॥ भगवान सच्चिदानन्दरूप, विमल और दिव्यात्मा हैं, उनको न तो देवताओं से किसी प्रकार की मित्रता है और न दानवों से शत्रुता, न उनका किसीसे रागद्वेष है, क्योंकि वे तो निर्गुण ब्रह्म हैं ॥ २ ॥ हे महाभाग! भगवान् नारायण के गुणों का विचार करके मेरे मन में बड़ा सन्देह उत्पन्न हुआ है कि उन्होंने ऐसा क्यों किया! आप कृपा करके मेरी शंका दूर कीजिये ॥ ३ ॥

❀ *श्रीगणेशायनमः* ❀

राजोवाच—

१—समः प्रियः सुहृद् ब्रह्मन् भूताना भगवान्स्वयं। इन्द्रस्यार्थे कथं दैत्यानवधीद्विषमो यथा ॥

२—न ह्यस्यार्थः सुरगणैः साक्षान्निःश्रेयसात्मनः। नैवासुरेभ्यो विद्वेषो नोद्वेगश्चागुणस्य हि ॥

३—इति नः सुमहाभाग नारायणगुणान्प्रति। संशयः सुमहान् जातस्तद्भवाञ्छेत्तुमर्हति ॥

श्रीशुकदेव बोले—महाराज ! भगवान् के अद्भुत चरित्रों के विषय में आपने मुझसे बहुत उत्तम प्रश्न किया ! जहाँ भागवत की महिमा होती है, वहाँ सदैव भगवान् की भक्ति बढ़ती है ॥४॥ भगवान् के परमपवित्र चरित्र को नारद आदि ऋषियों ने गाया है। मै महामुनि व्यासजी को प्रणाम करके भगवान् की कथा को तुम्हें सुनाता हूँ ॥ ५ ॥ वास्तव में भगवान तो अजन्मा हैं, अव्यक्त हैं और प्रकृति से परे हैं तथा निर्गुण हैं, किंतु अपनी माया के गुणों में प्रवेश कर मित्र-शत्रु-भाव को दर्शाते हैं और मारने वाले जान पड़ते हैं ॥ ६ ॥ सत, रज और तम, ये प्रकृति के तीन गुण हैं, आत्मा के नहीं, जो ये गुण परमात्मा के हों तभी प्रकृति की भांति उसमें विषमता उत्पन्न हो सकती है, अन्यथा नहीं ! क्योंकि उनमे कभी कोई गुण बढ जाता और कभी घट जाता है। जय के काल में सत्वगुण बढ़कर देवताओं को बढ़ाता है, पराजय के समय में रजोगुण बढ़कर असुरों की वृद्धि करता है और जब तमोगुण बढ़ता है, तब यक्ष और राक्षस, दोनों की अधिकता होती है। जिस समय जैसी आवश्यकता होती है, परमात्मा अपना स्वरूप भी वैसा बना लेते हैं ॥ ८ ॥ जैसे अग्नि का एक रूप है, परन्तु काठ आदि मे अनेक रूप से दिखलाई पड़ती है और जल का भी एक रूप है, परन्तु रंगों मे मिल कर कई तरह का जान पड़ता है। ऐसे ही परमात्मा भी एक रूप है, परन्तु ज्योति आदि की भांति अनेक रूप मे प्रकाशित होते हैं। उन रूपों से पृथक् प्रतीत नहीं होते, परन्तु देवता, दैत्य यक्ष-राक्षस मे अलग-अलग दिखाई देते हैं। महात्मा लोग आत्मा का मथन कर अपने हृदय मे स्थित उन परमात्मा का दर्शन करते हैं। जैसे बिना मथन किये काठ से आग नहीं निकलती, वैसे ही बिना आत्मा के मथन किये, परमात्मा नहीं

श्रीशुक उवाच

४—साधुपृष्टं महाराज हरेश्चरितमद्भुत । यत्र भागवर महात्म्यं भगवद्भक्तिवर्धनं ॥

५—गीयते परमं पुण्यमृषिभिर्नारदादिभिः । नत्वा कृष्णाय मुनये कथयिष्ये हरे. कथां ॥

६—निर्गुणोऽपिऽ ह्यजोऽव्यक्तो भगवान्प्रकृते परः । स्वमायागुणमाविश्य बाध्यबाधकतां गतः ॥

७—सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः । न तेषां युगपद्राजन् ह्रास उल्लास एव वा ॥

८—जयकाले तु सत्त्वस्य देवर्षीन् रजसोऽसुरान् । तमसो यक्षरक्षांसि तत्कालानुगुणोऽभजत् ॥

९—ज्योतिरादिरिवाभाति सघातान्न विविच्यते । विदंत्यात्मानमात्मस्थं मथित्वा कवयोऽन्ततः ॥

प्रकट होते ॥ ९ ॥

जीवात्मा के भोग के लिये जिस समय परमेश्वर की इच्छा सृष्टि रचने की होती है,उस समय वे अपनी माया मे शान्त भाव से स्थित होकर उससे भिन्न रजोगुण को रचते हैं,जब उनकी इच्छा पुरियों मे रमण करने की होती है,तब सत्वगुण की अधिकता करते हैं,जब शयन की इच्छा होती है, तब तमोगुण को बढ़ाते हैं॥ १० ॥ हे नरदेव ! प्रधानपुरुष,सत्यकर्ता और सबके आश्रय ईश्वर स्वतन्त्र रूप से विचरते हैं और काल को भी स्वयं रचते हैं। जब काल के ईश्वर सतोगुण की वृद्धि के समय देवताओं को रचकर बढ़ाते हैं, तब उन देवताओं का पक्ष करके असुरों के शत्रु होकर रजोगुण के समय उन्हें बढ़ाकर मारते हैं और वेही ईश्वर तमोगुण को बढ़ाकर यक्ष और राक्षसों को समयानुसार बढ़ाते और मारते हैं॥ ११ ॥ राजन् ! राजसूय यज्ञ में तुम्हारे पूर्वज धर्मराज युधिष्ठिर का कोई शत्रु न रह गया था। उस समय उन्होंने देवर्षि नारद से भी ऐसा ही प्रश्न किया था, जैसा कि तुमने मुझसे किया है और नारदजी ने प्रसन्न होकर धर्मराज युधिष्ठिर को यह इतिहास सुनाया था ॥ १२ ॥ राजसूय यज्ञ मे राजा युधिष्ठिर ने महा अद्भुतचरित्र देखा कि भगवान वासुदेव ने अपने चक्रसुदर्शन से चेदिदेश के नरेश शिशुपाल को मारडाला और उसने सायुज्य मोक्ष को प्राप्त किया ॥ १३ ॥ उसी समय, उस यज्ञ में मग्न मुनिजनों के सामने पाण्डु के पुत्र राजा युधिष्ठिर ने अत्यन्त विस्मित होकर वहाँ बैठे हुए देवर्षि नारदजी से यह प्रश्न पूछा ॥ १४ ॥

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! जो परम तत्वरूप भगवान वासुदेव की प्राप्ति परम एकान्त के सेवन करने वाले महात्माओं को दुर्लभ है,वह निरन्तर विद्वेष करने वाले तथा दुरात्मा शिशुपाल को क्यों प्राप्त हुई ? इसमे मुझे आश्चर्य है ॥ १५ ॥ हे मुने ! इस बात के जानने की मुझको बड़ी

१०—यदा सिसृक्षुः पुर आत्मनः परो रजः सृजत्येष पृथक् स्वमायया ।
सत्त्व विचित्रासु रिरंसुरीश्वरः शयिष्यमाणस्तम ईरयत्यसौ ॥

११—कालं चरंतं सृजतीश आश्रयं प्रधानपुम्भ्यां नरदेवसत्यकृत् ।
य एष राजन्नपि काल ईशिता सत्त्वं सुरानीकमिवैधयत्यजः ॥

तत्प्रत्यनीकानसुरान्सुरप्रियो रजस्तमस्कान् प्रमिणोत्युरुश्रवाः ॥

१२—अत्रैवोदाहृतः पूर्वमितिहासः सुरर्षिणा । प्रीत्या महाक्रतौ राजन् पृच्छतेऽजातशत्रवे ॥

१३—दृष्ट्वा महाद्भुतं राजा राजसूये महाक्रतौ । वासुदेवे भगवति सायुज्य चेदिभूभुजः ॥

१४—तत्रासीन सुरऋषिं राजा पाण्डुसुतः क्रतौ । पप्रच्छ विस्मितमना मुनीना शृण्वतामिदं ॥

युधिष्ठिर उवाच—

१५—अहो अत्यद्भुत ह्येतद् दुर्लभैकान्तिनामपि । वासुदेवे परे तत्त्वे प्राप्तिश्चैद्यस्य विद्विषः ॥

अभिलाषा है। देखिये, भगवान की निन्दा करने वाले राजा वेन को ब्राह्मणों ने नरक में डाल दिया था॥ १६॥ उसी प्रकार इस दमघोष के पुत्र महादुर्बुद्धि शिशुपाल को भी नरक में डालना चाहिये था। देखिये,इस चाण्डाल शिशुपाल और दंतवक्त्र ने जिस दिन से जन्म लिया, उसी दिन से दोनों ही आजतक भगवान से दुर्भाव ही रखते थे और बराबर उनकी निन्दा ही करते रहे॥ १७॥ और बार-बार साक्षात् अविनाशी परब्रह्म विष्णु को गालियां सुनाते थे। जब वे ऐसे क्रूरकर्मी थे तो उनकी जीभ कोढ़ से क्यों न गल कर गिर गई। वे नरक में नहीं गए, इसका क्या कारण?॥ १८॥ भगवान् के जिस स्वरूप की प्राप्ति, योगीजनों को भी बड़ी कठिनाई से होती है, वह उसे सहज में हुई। वह भगवान् में बिना प्रयत्न किए, सबके देखते ही देखते,लीन हो गया। क्या यह ध्यान देने योग्य बात नहीं?॥ १९॥ इस आश्चर्यमयी घटना को देखकर हमारी बुद्धि चक्कर में पड गई, जिस प्रकार दीपक की शिखा हवा के लगने से स्थिर रह सकती। भगवन्! इस बात का भेद मुझको निश्चित रूप से समझाइये! जिससे मेरे मन को शांति हो,क्योंकि इस तत्त्व को आपही समझाने में समर्थ हैं॥ २०॥

श्रीशुकदेव बोले—राजन्! देवर्षि नारदजी, राजा युधिष्ठिर की यह बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनकी शंका का निवारण करने के लिये सब ऋषि-मुनियों के सामने मनोहर कथा सुनाने लगे॥ २१॥

नारद बोले—महाराज! निंदा, स्तुति, सत्कार और तिरस्कार आदि बातें, परमात्मा की देह को मानने वाले लोगों के लिये(प्रकृति-पुरुष के अज्ञान से)कल्पित हैं॥ २२॥ हिंसा, अभि-

---

१६—एतद्वेदितुमिच्छामः सर्व एव वयं मुने। भगवन्निंदया वेनो द्विजैस्तमसि पातितः॥

१७—दमघोषसुतः पाप आरभ्य कलभाषणात्। सम्प्रत्यमर्षी गोविंदे दंतवक्त्रश्च दुर्मतिः॥

१८—शपतोरसकृद्विष्णुं यद् ब्रह्म परमव्ययं। श्वित्रो न जातो जिह्वायां नांध विविशतुस्तमः॥

१९—कथं तस्मिन् भगवति दुरवग्राह्यधामनि। पश्यतां सर्वलोकानां लयमीयतुरञ्जसा॥

२०—एतद् भ्राम्यति मे बुद्धिर्दीपार्चिरिव वायुना। ब्रूह्येतदद्भुततमं भगवांस्तत्र कारणं॥

श्रीशुक उवाच—

२१—राज्ञस्तद्वच आकर्ण्य नारदो भगवानृषिः। तुष्टः प्राहतमाभाष्य शृण्वंत्यास्तत्सदः कथाः॥

नारद उवाच—

२२—निंदनस्तव सत्कारन्यक्कारार्थं कलेवरं। प्रधानपरयो राजन्न विवेकेन कल्पितं॥

मान, दण्ड, कठोर वचन, ये सब बातें संसार के जीवों में होती हैं, ईश्वर में नहीं ॥ २३ ॥ जीवात्मा जिस शरीर में अपना अभिमान समझता है, वह उसीके कारण उसमें बँधा हुआ है। इसीसे वह समझता है कि मेरा वध हुआ,यह भाव परमेश्वर मे नहीं होता,क्योंकि वे स्वतंत्र और अखिल जगत की आत्मा हैं, उनमें देहाभिमान और विषमता नहीं है। भगवान् सदा दैत्यों को दण्ड देते और उनका नाश करते हैं। उनका यह कार्य भी दयापूर्ण है। वे शत्रुता की दृष्टि से ऐसा नहीं करते। ईश्वर के द्वारा जो कुछ होता है, वह अच्छे के लिये ही होता है ॥ २४ ॥ भगवान् दुष्टों के दमन करने वाले है, वे किसी की निंदा नहीं करते और न किसीका वध करते हैं। वे समदर्शी हैं,किसीको दुर्भावना से नहीं देखते। वे सबके साथ एकसा न्याय करते हैं। परमपद पाने के लिये और त्रिविध दुःखों से छूट जाने के लिये वैर, भक्ति, भय, प्रीति और सकाम उपासना—ये पाँच उपाय हैं ॥ २५ ॥ उपरोक्त किसी भी साधन का अवलंबन करने से मनुष्य परमात्मा के द्वारा सद्गति पा सकता है। मेरा तो यहाँ तक दृढ़ निश्चय है कि परमात्मा से वैर करने से जितने शीघ्र प्राणी उन्हें प्राप्त कर सकता है, उतने शीघ्र उनकी भक्ति से नहीं ॥ २६ ॥ यह बात लोकप्रसिद्ध है कि भौंरा जिस कीड़े को पकड़ ले जाता है, वह उससे द्वेष और भय करने से उसीका स्वरूप प्राप्त कर लेता है ॥ २७ ॥ इसी प्रकार पापी लोग भी मायामय भगवान् विष्णु से वैर-विरोध करने पर भी उन्हींमें लीन हो जाते हैं ॥ २८ ॥ भगवान् से वैर करने वाले अनेकों दुरात्मा अपने पापों का नाश कर सद्गति को प्राप्त हुए। इसलिये काम,वैर, भय,स्नेह,भक्ति आदि से जिस प्रकार हो सके,भगवान् में मन लगाना चाहिये ॥ २९ ॥ गोपियाँ काम से, कंस भय से, शिशुपाल आदि राजा वैर से, भगवान् में लीन हो गए। यादव

२३—हिंसा तदभिमानेन दंड पारुष्ययोर्यथा। वैषम्यमिह भूताना ममाहमिति पार्थिव ॥

२४—यन्निबद्धोऽभिमानोयं तद्वधात्प्राणिनां वधः। तथा न यस्य कैवल्यादभिमानोऽखिलात्मनः।
परस्यदमकर्तुर्हि हिंसा केनास्य कल्प्यते ॥

२५—तस्माद्वैरानुबंधेन निर्वैरेण भयेन वा। स्नेहात्कामेन वा युंयात्कथं चिन्नेक्षते पृथक् ॥

२६—यथा वैरानुबंधेन मर्त्यस्तन्मयतामियात्। न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः ॥

२७—कीटः पेशस्कृतारुद्धः कुड्यायां तमनुस्मरन्। संरंभभययोगेन विंदते तत्स्वरूपतां ॥

२८—एवं कृष्णे भगवति मायामनुज ईश्वरे। वैरेण पूतपाप्मानस्तमीयुरनुचिंतया ॥

२९—कामाद्द्वेषाद्भयात्स्नेहाद्यथा भक्त्येश्वरे मनः। आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद् गतिं गताः ॥

३०—गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः। संबन्धाद् वृष्णयस्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो ॥

३१—कतमोऽपि न वेनः स्यात्पंचानां पुरुषं प्रति। तस्मात्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ॥

लोग सम्बन्ध से वैकुठ को गए, स्नेह से तुम लोग (युधिष्ठिर आदि)जीवन्मुक्त हुए और हम लोग भक्ति से मुक्त हुए ॥ ३० ॥ इन पाँचों प्रकारों में राजा वेन किसीमें न था, इसीलिये उसकी अधोगति हुई अतएव भगवान विष्णु में किसी प्रकार मन का श्रेयस्कर है ॥ ३१ ॥ हे पाडव ! चेदिराज शिशुपाल और दतवक्त्र हुई ये दोनों तुम्हारी मासी के बेटे थे और भगवान विष्णु के पार्षदों में इनका प्रधान स्थान था। ये दोनों विप्रों के शाप से अपने स्थान से पतित हो गए ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! भगवान् के दास तो एकान्त मे रहते हैं। फिर उनको किसने और किस कारण से शाप दिया ? ॥ ३३ ॥ क्योंकि वैकुण्ठ के रहने वाले देह, इन्द्रिय और प्राणों से रहित होते हैं। उनके शरीर माया के बने नहीं होते। फिर उन का जन्म संसार में कैसे हुआ ? इसका मुझे आश्चर्य है, आप कृपा कर इस सम्बन्ध मे मेरे मन का भ्रम दूर कीजिये ! ॥ ३४ ॥

नारद बोले—एक बार ऐसा हुआ कि ब्रह्मा के पुत्र-सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार-विष्णुलोक जाने की इच्छा से तीनों लोकों का भ्रमण करते हुए भगवान् के वैकुंठ मे पहुँचे। वे मुनि लोग देखने में तो पाँच-छः वर्ष के बालक-से प्रतीत होते थे, पर वे मरीचि आदि महर्षियों से भी पहले उत्पन्न हो चुके थे। इसलिये सबसे बड़े थे। वे दिगम्बर-वेष मे थे। जिस समय वे वैकुण्ठ के द्वार पर पहुँचे, उस समय जय और विजय-दोनों ही द्वारपाल वहाँ खड़े थे। उन मुनियों को बालक और नग्न समझ कर उन दोनों ने अपने अधिकार से उनका ' प्रवेश निषेध ' किया। अर्थात् उन्हें भगवान् के पास भीतर नहीं जाने दिया। इस घटना से

३२—मातृष्वस्रेयोवश्चैद्यो दतवक्त्रश्च पाडव। पार्षदप्रवरौ विष्णोर्विप्रशापात्पदाच्च्युतौ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

३३—कीदृशः कस्य वा शापो हरिदासाभिमर्शन'। अश्रद्धेय इवाभाति हरेरेकान्तिनां भवः ॥

३४—देहेंद्रियासुहीनाना वैकुंठपुरवासिना। देहसंबधसबद्ध मे तदाख्यातुमर्हसि ॥

नारद उवाच—

३५—एकदा ब्रह्मणः पुत्राविष्णोर्लोक यदृच्छया। सनंदनादयो जग्मुश्चरन्तो भुवनत्रय ॥

३६—पंचषड्ढायनार्भाभाः पूर्वेषामपि पूर्वजाः। दिग्वाससः शिशून्मत्वा द्वास्थौ तान्प्रत्यषेधतां ॥

३७—अशपन्कुपिता एवं युवां वासं न चार्हथः। रजस्तमोभ्यां रहिते पादमूले मधुद्विषः ॥

पापिष्ठामासुरीं योनिं बालिशौ यातमाश्वतः ॥

उन लोगोंको बड़ा क्रोध हुआ,क्योंकि त्रिलोक और चौदह भुवन मे आजतक किसीने उन पर ऐसा 'गति-अवरोध' नहीं लगाया था। अपनी सर्वतंत्र-स्वतन्त्रता का अपहरण उनसे न सहा गया। अतः उन लोगों ने उन दोनों को शाप दे दिया कि मूर्खो ! भेद-भावशून्य भगवान के चरणों के समीप तुम जैसे नीचों का क्या काम ! ऐसे पवित्र स्थान पर, उत्तरदायित्व-पूर्ण रक्षक का कार्य तुम्हारे लिये योग्य नहीं ! अतः तुम दुष्टो ! मृत्युलोक मे जाकर पापमयी राक्षसयोनि मे विचरण करो ! सनकादिक के शाप से वे दोनों उसी समय वैकुण्ठ से नीचे गिरने लगे। पुनः क्षमा माँगने के कारण उन दयालु मुनियों ने उन्हे 'आश्वासन' दिया कि तीन जन्म के पश्चात् तुम्हारा दण्ड समाप्त होगा और पुनः तुम्हें अपने स्थान का अधिकार मिल जायगा ॥ ३५ ३८ ॥

यही कारण है कि वे जय-विजय दैत्य-दानवों से पूजित महर्षि कश्यप की स्त्री-दिति के गर्भ से उत्पन्न हुये, जिनमें हिरण्यकशिपु बड़ा और हिरण्याक्ष छोटा था। भगवान ने नृसिंहावतार धारण कर प्रह्लाद की रक्षा के लिये हिरण्यकशिपु को और शूकर अवतार लेकर पृथ्वी का उद्धार करने के लिये हिरण्याक्ष को मारा था। हिरण्यकशिपु के पुत्र का नाम प्रह्लाद था। ये भगवान के परम-भक्त थे, किन्तु वह उनका विरोधी अर्थात् नास्तिक था। वह ईश्वर और धर्म को कुछ भी नहीं मानता था। अत उसने प्रह्लाद को नाना-प्रकार के क्लेश देकर मारना चाहा, पर भगवद्-भक्ति,समदर्शिता और तेजस्विता के कारण भगवान ने उनकी रक्षा की और हिरण्य कशिपु उनका एक भी बाल बांका न कर सका। अन्त मे स्वयं मारा गया। पुन ये दोनों रावण और कुम्भकर्ण नाम से विश्रवा ऋषि की पत्नी केशिनी के गर्भ से जनमे। इस जन्ममें भी उनके

३८—एवं शप्तौ स्वभवनात्पतन्तौ तौ कृपालुभिः। प्रोक्तौ पुनर्जन्मभिर्वां त्रिभिर्लोकाय कल्पताम् ॥

३९—जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्यदानववन्दितौ। हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः ॥

४०—हतो हिरण्यकशिपुर्हरिणा सिंहरूपिणा। हिरण्याक्षो धरोद्धारे बिभ्रता शौकरं वपुः ॥

४१—हिरण्यकशिपुः पुत्रं प्रह्लादं केशवप्रियं। जिघांसुरकरोन्नाना यातना मृत्युहेतवे ॥

४२—सर्वभूतात्मभूतं तं प्रशान्तं समदर्शनं। भगवत्तेजसा स्पृष्टं नाशक्नोद्धन्तुमुद्यमैः ॥

४३—ततस्तौ राक्षसौ जातौ केशिन्यां विश्रवःसुतौ। रावणः कुम्भकर्णश्च सर्वलोकोपतापनौ ॥

४४—तत्रापि राघवो भूत्वा न्यहनच्छापमुक्तये। रामवीर्यं श्रोष्यसि त्वं मार्कण्डेयमुखात्प्रभो ॥

४५—तावेव क्षत्रियौ जातौ मातृष्वस्रात्मजौ तव। अधुना शापनिर्मुक्तौ कृष्णचक्रहतांहसौ ॥

अमानुषिक अत्याचार और आतंक से सब लोग कँप गये। उस समय भगवान ने महाराज दशरथ की महारानी कौशल्या के गर्भ से जन्म लेकर शाप से मुक्त करने के लिये उन दोनों का बध किया। राजन्! यह कथा तुम मार्कंडेय ऋषि के मुख से सुनोगे! पुनः वे दोनों क्षत्रिय-वंश में तुम्हारी माता की बहन के पुत्र हुये और उनका नाम शिशुपाल और दन्तवक्त्र हुआ। इस बार वे भगवान कृष्ण के चक्र-सुदर्शन से मारे गये और परम वैर के कारण उनका मन भगवान मे लीन रहता था। इसलिये वे फिर अपने तीनों जन्मों के पापों से मुक्त होकर वैकुण्ठ मे विष्णु के पार्षद हुये॥ ३९-४६॥

युधिष्ठिर बोले—भगवन्! हिरण्यकशिपु ने अपने ऐसे बुद्धिमान और महात्मा पुत्र के साथ ऐसा विद्वेष और दुष्ट व्यवहार क्यों किया तथा प्रह्लाद की भगवान् मे ऐसी दृढ़ निष्ठा किस प्रकार हुई! आप कृपा कर मुझे यह कथा सुनावें!॥ ४७॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कंध का पहला अध्याय समाप्त

४६—वैरानुबंधतीव्रेण ध्यानेनाच्युतसात्मता। नीतौ पुनर्हरेः पार्श्वं जग्मतुर्विष्णुपार्षदौ॥

युधिष्ठिर उवाच—

४७—विद्वेषो दयिते पुत्रे कथमासीन्महात्मनि। ब्रूहि मे भगवन्येन प्रह्लादस्याच्युतात्मता॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कन्धेप्रथमोऽध्यायः॥ १॥

दूसरा अध्याय

दिति के शोक का निवारण, उशीनर देश के राजा का उपाख्यान और कुलिज दंपती की कथा

नारद बोले—राजन्! इन्द्र का पक्ष लेकर वाराहरूप धारी भगवान् विष्णु ने हिरण्याक्ष को मार डाला। इस प्रकार अपने भाई के मारे जाने का समाचार सुनकर हिरण्यकशिपु को बड़ा दुःख हुआ॥ १॥ क्रोध के कारण उसकी आँखों से अग्नि-ज्वाला निकलने लगी, दाँतों से वह अपने ओंठों को दाबने लगा और अपने लाल-लाल नेत्रों से धुएँ से भरे हुए आकाश को देखने लगा॥ २॥ बड़े-बड़े और तीखे दाँत, भयंकर दृष्टि और चढ़ी हुई भौंहों के कारण उसके मुँह की ओर देखना कठिन था। अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसने अपना शूल उठाया और सभा में पहुंच कर उसने दानवों को ललकार कर कहा॥ ३॥ अरे! ओ दानवों और दैत्यों! ओ द्विमूर्धा त्र्यक्ष! शंबर! शतबाहु! हयग्रीव! नमुचे! पाक! इल्वल! हे विप्रचित्ते! पुलोमन! और शकुनादि! तुम सब मेरी 'घोषणा' पर ध्यान दो! तुमलोग मेरी घोषणा के अनुसार शीघ्र तैयार हो जाओ और जरा भी देर न करो!॥ ४-५॥ मेरे विरोधी देवताओं ने विष्णु को प्रसन्न कर अपने पक्ष में कर लिया। अतः उन्होंने नीच शूकर का रूप धारण कर मेरे प्रिय भाई (हिरण्याक्ष) को छल से मार डाला। इस प्रकार उन्होंने मुझे युद्ध की चुनौती दी है॥ ६॥ भगवान विष्णु ने अपने भक्त देवताओं का पक्ष लेकर अपना समदर्शी स्वभाव छोड दिया और उनके हित के लिये मायामय वाराहरूप धारण किया। वह अपने भजने वालों का पक्षपाती है और उसका मन बालकों की भाँति अनस्थिर है॥ ७॥ इसलिये जबतक मैं उस निर्दयी शत्रु

नारद उवाच—

१—भ्रातर्येवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना। हिरण्यकशिपू राजन्पर्यतप्यद्रुषा शुचा॥

२—आह चेदं रुषा पूर्णः संदष्टदशनच्छदः। कोपोज्ज्वलद्भ्यां चक्षुर्भ्यां निरीक्षन्धूम्रमम्बरं॥

३—करालदंष्ट्रोग्रदृष्ट्या दुष्प्रेक्ष्य भ्रुकुटीमुखः। शूलमुद्यम्य सदसि दानवानिदमब्रवीत्॥

४—भोभो दानव दैतेया द्विमूर्धन् त्र्यक्ष शम्बर। शतबाहो हयग्रीव नमुचे पाक इल्वल॥

५—विप्रचित्ते मम वचः पुलोमन् शकुनादयः। शृणुतानन्तरं सर्वे क्रियतामाशु मा चिरं॥

६—सपत्नैर्घातितः क्षुद्रैर्भ्राता मे दयितः सुहृत्। पार्ष्णिग्राहेण हरिणा समेनाप्युपधावनैः॥

७—तस्य त्यक्तस्वभावस्य घृणेर्मायावनौकसः। भजन्तं भजमानस्य बालस्येवास्थिरात्मनः॥

की गर्दन अपने त्रिशूल से काटकर, अपने मरे हुए और रक्त के प्यासे भाई का, उसकी रक्त-धार से तर्पण न करूँगा, तब तक मेरे मन को शान्ति न होगी ॥ ८ ॥ उस कपटी के मारे जाने पर, उसके आश्रय में रहनेवाले देवतागण, आपही नष्ट हो जायँगे, जिस प्रकार कि वनस्पति की जड़ कट जाने पर उसकी टहनियाँ बिना कुछ किये ही सूख जाती हैं ॥ ९ ॥ जब तक मैं उसके मारने का उपाय करूँ, तब तक तुम लोग ब्राह्मण और क्षत्रियों के समूह को नष्ट करो ! क्योंकि वे उसके समर्थक हैं । तुम लोग तप, यज्ञ, वेदपाठ, व्रत और दान करने वाले लोगों को बिना मारे मत छोड़ो ॥ १० ॥ क्योंकि विष्णु का मूल वैदिक अर्थात् ब्राह्मकर्म है । वह यज्ञ व धर्ममय है । देवता पितर, ऋषि और समस्त प्राणी का आधार-धर्म है और विष्णु-धर्म-स्वरूप है ॥ ११ ॥ जहाँ-जहाँ ब्राह्मण, गो, वेद, वर्णाश्रम और यज्ञ करने वाले हों, वहाँ-वहाँ जाकर तुम लोग आग लगा दो और उन्हें जानसे मार डालो ॥ १२ ॥ इस प्रकार अपने राजा का वक्तव्य सुनकर उसकी आज्ञा पालन करने के लिये, हिंसा में विश्वास करने वाले, दानव लोग, उसके प्रतिकूल जानेवाली प्रजा का नाश करने के लिये चल पड़े ॥ १३ ॥ वे लोग नगरों, ग्रामों सुन्दर स्थानों, बगीचों, खेतों, फुलवारियों, आश्रमों, खानों, किसानों के झोपड़ों, पर्वत की कन्दराओं, पहाड़ी के नीचे बसे हुए ग्रामों, अहीरों की बसी हुई टोलियों और राजधानियों में आग लगाने लगे ॥ १४ ॥ कई दानवों ने कुदाली से नदियों पर के पुल तोड़ डाले, नगरों के परकोटे गिरा दिये,, गोपुरों को खोदकर पृथ्वी के बराबर कर दिये, कई ने हाथ में फावडे लेकर आम जामुन, केले आदि जैसे मनुष्यों के लिये उपयोगी वृक्षों को काटकर गिरा दिये और बहुतों ने प्रजा (जनता) के घरों को लुकाटियों (जलती हुई लकड़ियों) से जला दिये ॥ १५ ॥ दैत्यराज

८—मच्छूलभिन्नग्रीवस्य भूरिणा रुधिरेण वै । रुधिरप्रियं तर्पयिष्ये भ्रातरं मे गतव्यथः ॥

९—तस्मिन्कूटेऽहिते नष्टे कृत्तमूले वनस्पतौ । विटपा इव शुष्यन्ति विष्णुप्राणा दिवौकसः ॥

१०—तावद्यात भुवं यूयं ब्रह्मक्षत्रसमेधिताम् । सूदयध्वं तपो यज्ञस्वाध्यायव्रतदानिनः ॥

११—विष्णुर्द्विजक्रियामूलो यज्ञो धर्ममयः पुमान् । देवर्षिपितृभूतानां धर्मस्य च परायणम् ॥

१२—यत्र यत्र द्विजा गावो वेदा वर्णाश्रमाः क्रियाः । तं तं जनपदं यात संदीपयत वृश्चत ॥

१३—इति ते भर्तृनिर्देशमादाय शिरसाऽऽदृताः । तथा प्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः ॥

१४—पुरग्रामव्रजोद्यानक्षेत्रारामाश्रमाकरान् । खेटखर्वटघोषांश्च ददहुः पत्तनानि च ॥

१५—केचित्खनित्रैर्बिभिदुः सेतुप्राकारगोपुरान् । आजीव्यांश्चिच्छिदुर्वृक्षान्केचित्परशुपाणयः ।
प्रादहञ्छरणान्यन्ये प्रजानां ज्वलितोल्मुकैः ॥

हिरण्यकशिपु के दूतों ने जब इस प्रकार का उपद्रव संसार में मचाया, तब बेचारे देवगण, गुप्त रूप से अपने स्थानों को त्याग कर पृथ्वी में इधर-उधर भटकने लगे ॥ १६ ॥

भाई के मारे जाने से हिरण्यकशिपु अत्यन्त दुखी हो गया था। उसने उसकी दाह-क्रिया कर उसे तिलांजलि दी और अपने भतीजों को सान्त्वना देकर,सतुष्ट किया। इसके उपरात शकुनि, शबर, धृष्ट, भूतसंतापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरि, श्मश्रु और उत्कच नाम के असुरों-अपने भतीजों और उनकी माता रुषाभानु तथा अपनी माता दिति को, देश-काल के जानने वाले उस असुरसम्राट ने युक्तियुक्त बातों से समझाया। फिर वह इस प्रकार बोला ॥१७-१९॥

हिरण्यकशिपु बोला—हे माता! हे वधू! हे पुत्रों! उस वीर का शोक मत करो। वीरों का शोक करना अनुचित है। क्योंकि जिस वीर का शत्रु के सामने समर-भूमि में शरीर छूटता है, वह धन्य है! वीरों के द्वारा उसकी प्रशसा होती है। मैं भी ऐसी मृत्यु का स्वागत करता हूँ ॥२०॥ ऐ सुव्रते! इस ससार में लोगों का सम्बन्ध और वियोग कर्म के अनुसार होता है। यह सम्बन्ध और वियोग इस प्रकार का है, जिस प्रकार किसी प्याऊ पर पानी पीने के लिये लोग इकट्ठे होते और पानी पी लेने पर अलग हो जाते हैं ॥ २१ ॥ यह आत्मा तो नित्य है, अव्यय है, शुद्ध है और सबको जानने वाला है। यह परमात्मा की माया से अपने वास्तविक गुणों को छोड़कर नाम-रूपात्मक शरीर धारण करता है ॥ २२ ॥ जिस प्रकार जल में नाव पर चढ़कर चलने वाले लोगों को नदी के किनारे के पेड़ चलते हुए जान पड़ते हैं और जैसे मनुष्य गोल बाँधकर, घुमरी करते हुए अपने नेत्रों को घूमते हुए देखते हैं और पृथ्वी घूमती हुई जान पड़ती है, इसी प्रकार गुणों की उपाधि से लिंगशरीर घूमता फिरता है। मन के चञ्चल होने से जीवात्मा अनस्थिर जान पड़ता है। आत्मा तो अविनाशी है! पर अज्ञानियों ने उसे जीवन-मरण रूप समझा है। हे भद्रे! आत्मा लिंगशरीर से भिन्न है ॥ २३, २४ ॥

१६—एवं विप्रकृते लोके दैत्येंद्रानुचरैर्मुहुः। दिवं देवाः परित्यज्य भुवि चेरुरलक्षिताः ॥

१७—हिरण्यकशिपुर्भ्रातुः सपरेतस्य दुःखितः। कृत्वा कटोदकादीनि भ्रातृपुत्रानसान्त्वयत् ॥

१८—शकुनिं शबरं धृष्टं भूतसंतापनं वृकं। कालनाभं महानाभं हरिश्मश्रुमथोत्कचं ॥

१९—तन्मातरं रुषाभानुं दितिं च जननीं गिरा। श्लक्ष्णया देशकालज्ञ इदमाह जनेश्वर ॥

हिरण्यकशिपुरुवाच—

२०—अंबांब हे वधूः पुत्रा वीरं मार्हथ शोचितुं। रिपोरभिमुखे श्लाघ्यः शूराणां वध ईप्सितः ॥

२१—भूतानामिह संवासः प्रपायामिव सुव्रते। दैवेनैकत्र नीतानामुन्नीतानां स्वकर्मभिः ॥

२२—नित्य आत्माऽव्ययः शुद्धः सर्वगः सर्ववित्परः। धत्तेऽसावात्मनो लिंगं मायया विसृजन् गुणान् ॥

२३—यथाऽम्भसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव। चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलतीव भूः ॥

२४—एवं गुणैर्भ्राम्यमाणे मनस्यविकलः पुमान्। याति तत्साम्यतां भद्रे ह्यलिंगो लिंगवानिव ॥

यह आत्मा नामरूप भेद से भिन्न है, शरीर से इसका सम्बन्ध मान लेना, यह अज्ञान है। प्रिय और अप्रिय वस्तु का संयोग और वियोग यही बंधन है और इसीके कारण जीव अनेक योनियों में भटकता फिरता है। जन्म लेना, मृत्यु होना, शोक करना, नाना प्रकार की बातों का स्मरण करना, सोच-विचार करना, चिंता करना, इत्यादि देहाभिमान के विकार रूप हैं। ये ही माया के बंधन हैं ॥ २५, २६ ॥ यहां इस प्रसंग पर मैं एक पुराने इतिहास का दृष्टांत सुनाता हूँ। यह यमराज और मृतक शरीर के पास बैठे हुए, उसके सगे सम्बन्धियोंका सवाद है, उसे तुम ध्यान से सुनो ! ॥ २७ ॥

पुराने समय की बात है कि उशीनर देश में सुयज्ञ नाम के एक राजा थे, उनके शत्रुओं ने उन्हे युद्ध मे मार डाला था। इससे उनके सम्बन्धी लोग उन्हें घेरकर खड़े थे। उसका सोने का कवच टुकड़े-टुकड़े हो गया था, आभूषण नष्ट-भ्रष्ट हो गये थे, माला छिन्न-भिन्न हो गई थी, घाणों से उसका हृदय बिंध गया था, रक्त से सारा शरीर रँग गया था, बाल बिखर।गये थे, थे, आखे उलट,गई थीं, दात होठों मे चुभ गये थे, मुखकमल धूल से भर गया था,उसके अस्त्र-शस्त्र और ह थ लड़ाई में कट गये थे ॥ २८-३० ॥ दैवयोग से राजा सुयज्ञ की यह दुर्गति हुई। उसकी महारानियाँ, अपने पति की यह करुण दशा देख कर ओर-जोर से रोने लगीं और कहने लगीं-हा नाथ ! हम सब मारी गई । फिर अपने दोनों हाथों से छाती पीटती हुई, मृतराजा के पैरों पर गिर पड़ीं। उनके उच्चस्वर से रोने के कारण उनकी आँखों से अश्रुधार निकलती थी। उससे उनके कुचों का कुकुम धुलकर राजा के पैरों पर गिरता था। काजल से मिला हुआ आँसू।कुंकुम के मिलने से लाल हो जाता था। जान पड़ता था कि वे रानियां जले हुये खून को अपने वीर पति के चरणों पर गिराकर उसका तर्पण कर रही थीं। उनके केश और आभूषण बिखरेहुये थे, उनके ऐसे भयंकर विलाप को सुनकर सुनने वालों का हृदय दुख से भर आता था ॥ ३१-३२ ॥

२५—एष आत्मविपर्यासो ह्यलिंगे लिंगभावना। एष प्रियाप्रियैर्योगो वियोग : कर्मसंसृतिः ॥

२६—संभवश्च विनाशश्च शोकश्च विविधः स्मृतः। अविवेकश्च चिंता च विवेकास्मृतिरेव च ॥

२७—अत्राप्युदाहरतीम मितिहास पुरातनं। यमस्य प्रेतबंधूनां सवाद त निबोधत ॥

२८—उशीनरेष्वभूद्राजा सुयज्ञ इति विश्रुतः। सपत्नैर्निहतो युद्धे ज्ञातयस्तमुपासत ॥

२९—विशीर्णरत्नकवच विभ्रष्टाभरणस्रजं। शरनिर्भिन्नहृदयं शयानमसृगाविलं ॥

३०—प्रकीर्णकेश ध्वस्ताक्षं रभसा दष्टच्छद। रजः कुण्ठमुखांभोजं छिन्नायुधभुजं मृधे ॥

३१—उशीनरेंद्र विधिना तथाकृत पतिं महिष्यः प्रसमीक्ष्य दु.खिताः।
हताः स्मनाथेति करैरुरोभृशं घ्नंत्यो मुहुस्तत्पदयोरुपाऽपतन् ॥

३२—रुदत्य उच्चैर्दयिताङ्घ्रिपंकजं सिंचत्यस्रैः कुचकुंकुमारुणैः।
विस्रस्तकेशाभरणाः शुच नृणां सृजत्य आक्रंदनया विलेपिरे ॥

अरे, निर्दयी विधाता ! तूने हमारे देखते ही हमारे स्वामी को ऐसी दशा कर डाली ! हाय ! जो उशीनर देश के महाराज होकर पहले लोगों को वृत्ति (आजीविका) देते थे,वे ही आज उन सब को शोक दे रहे हैं ! महाराज ! हम सब तुम्हारे जैसे प्रिय के बिना जीकर क्या करेंगी ! इसलिये हे नाथ ! आप जहाँ जाना चाहते हैं,वहाँ हम दासियों को भी अपनी सेवा-सुश्रूषा के लिये लेते चलिये ! ॥ ३३,३४ ॥ इस प्रकार वे रानियाँ अपने पति के शव को पकड़ कर रो-पीट रही थीं और उसे छोड़ना नहीं चाहती थीं । इसी शोक के समुद्र मे सूर्य भी डूब गया अर्थात् रात्रि हो गई, वहाँ उस समय मृतक के कुटुंबियों का रोना सुनकर यमराज आये और वे बालक स्वरूप धर कर उनसे बोले ॥ ३५-३६ ॥

यमराज बोले—ऐ शोक मनाने वाले लोगों ! तुम लोग क्यों ऐसा कर रहे ? तुम सभी मुझसे अवस्था में बड़े हो ! तुम लोगों ने बहुतों को संसार में जन्मते और मरते देखा है ! यह मनुष्य जहाँ से आया था, वहाँ चला गया । फिर उसका मोह करने से क्या लाभ ? तुम्हारा शोक करना व्यर्थ है ! ॥ ३७॥ देखो, तुम लोगों से तो हमीं धन्य हैं ! हमारे माता-पिता ने हमें बचपन में ही इस वन मे अकेला त्याग दिया और इस प्रकार घूम रहे हैं । फिर भी हमें कोई चिंता नहीं ! निस्सहाय होने पर भी हमें भेड़िये, सिंह आदि कोई नहीं खाते तो यह दृढ़ विश्वास है कि जिसने हमारी गर्भ मे रक्षा की थी, वही (ईश्वर) यहां भी हमारी रक्षा करने वाला है, ॥ ३८ ॥ जो अविनाशी पुरुष अपनी इच्छा से इस संसार को सृष्टि करता है, वही इसकी रक्षा करता है और वही इसका नाश भी करता है । हे स्त्रियों ! यह चराचरमय जगत् उस परमात्मा

३३—अहो विधात्राऽकरुणेन नः प्रभो भवान्प्रणीतो दृगगोचरां दशां ।

उशीनराणामसि वृत्तिदः पुरा कृतोऽधुना येन शुचां विवर्धनः ॥

३४—त्वयाकृतज्ञेन वयं महीपते कथं विनास्याम सुहृत्तमेन ते ।

तत्रानुयानं तव वीरपादयोः शुश्रूषतीनां दिश यत्र यास्यसि ॥

३५—एवं विलपतीनां वै परिगृह्य मृतं पतिं । अनिच्छतीनां निर्हारमर्कोऽस्तं सन्न्यवर्तत ॥

३६—तत्र ह प्रेतबन्धूनामाश्रुत्य परिदेवितं । आह तान्बालको भूत्वा यमः स्वयमुपागतः ॥

यम उवाच—

३७—अहो अमीषां वयसाऽधिकानां विपश्यतां लोकविधिं विमोहः ।

यत्रागतस्तत्र गतं मनुष्यं स्वयं सधर्मा अपि शोचन्त्यपार्थं ॥

३८—अहो वयं धन्यतमा यदत्र त्यक्ताः पितृभ्यां न विचिंतयामः ।

अभक्ष्यमाणा अबला वृकादिभिः स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे ॥

का खिलौना है। इसलिये सबको जिलाने वाला तथा मारने वाला वही एक प्रभु (ईश्वर) है। अर्थात् दूसरा कोई नहीं। बाहर मार्ग मे पड़ा हुआ, जिसकी वह(ईश्वर) रक्षा करता है, उसे कोई मार नहीं सकता और भीतर-घर मे सुरक्षित होने पर भी जिसे वह (परमात्मा) मारना चाहता है, उसे कोई भी बचा नहीं सकता। जिस पर भगवान् की दया-दृष्टि है, वह बिना किसी के आश्रय भी, निर्जन वन में जीता रहता है और जिस पर उस जगदीश्वर की अकृपा हो जाती है, वह घर में सबके द्वारा सहायता पाने पर भी मर जाता है ॥ ३९-४०॥ प्राणीमात्र अपने-अपने कर्मानुसार समय-समय पर नाना प्रकार की योनियों मे जन्म लेते और मरते हैं। यह निश्चित सिद्धान्त है कि आत्मा मायामय शरीर में स्थित होने पर भी, वह प्रकृति (माया) के गुणों के बधन मे नहीं बँधता ॥ ४१ ॥ जीवात्मा इस शरीर को मोह (अज्ञान) के वश अपना समझता है, पर यह उसका नहीं। जिस प्रकार मनुष्य मिट्टी के घर मे रहता है और उसका स्वामी अपने को जानता है, पर वह उसका नहीं। वह उससे भिन्न है। यह शरीर भी आत्मा से भिन्न है, जो जल के बुल्ले, मिट्टी के घड़े, सोने के गहने आदि के समान समयानुकूल बना-बिगड़ा करता है, अर्थात शरीर के बनने-बिगड़ने से आत्मा का कुछ नहीं बनता-बिगड़ता ॥ ४२ ॥ जैसे आग काठ मे होने पर भी उससे भिन्न जान पड़ती है, हवा देह में रहने पर भी उससे पृथक् रहती है और आकाश सर्वव्यापी होने पर भी किसीमे लिप्त नहीं, वैसे ही आत्मा भी शरीर धारण करने पर भी वह उसके गुणों मे आबद्ध नहीं। वह सर्वदा मुक्त है ॥ ४३ ॥ ऐ अज्ञानियों ! तुम लोगों का स्वामी सुयज्ञ तो सामने ही सो रहा है। फिर तुम

३९—य इच्छयेशः सृजतीदमव्ययो य एव रक्षत्यवलुम्पते च यः।
तस्याबलाः क्रीडनमाहुरीशितुश्चराचरं निग्रहसंग्रहे प्रभुः ॥

४०—पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं गृहेस्थितं तद्विहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षितो वने गृहेऽपि गुप्तोऽस्य हतो न जीवति ॥

४१—भूतानि तैस्तैर्निजयोनि कर्मभिर्भवंति काले न भवंति सर्वशः ॥
न तत्र हात्मा प्रकृतावपि स्थितस्तस्या गुणैरन्यतमो निबध्यते ॥

४२—इदं शरीरं पुरुषस्य मोहजं यथा पृथग्भौतिकमीयते गृहं।
यथौदकैः पार्थिवतैजसैर्जनः कालेन जातो विकृतो विनश्यति ॥

४३—यथानलो दारुषु भिन्न ईयते यथाऽनिलो देहगतः पृथक् स्थितः।
यथा नभः सर्वगतं न सज्जते तथा पुमान्सर्वगुणाश्रयः परः ॥

लोग शोक किसका कर रहे हो ? यदि यह कहो कि जो इसमें सुनता और बोलता था, वह अब दिखाई नहीं देता, तो हमारा कहना है कि सुनने वाले और बोलने वाले को तो तुम लोगों ने देखा ही नहीं, फिर उसके लिये पश्चात्ताप से क्या होगा ! ॥ ४४ ॥

इस शरीर में न तो कोई सुनने वाला है और न कोई बोलने वाला है। केवल इसमें एक महाप्राण है जो इन्द्रियों की वासनाओं का भोगने वाला है, वही प्राण और देह का सञ्चालक है। वही आत्मा है, जो इन सब से मुक्त है ॥ ४५ ॥ वही भूत, इन्द्रिय, मन, लिंग और उच्च तथा नीच शरीर को धारण करता एवं त्याग करता है। वह इन सबसे पृथक है, फिर भी इनके सम्बन्ध से अपने को बँधा हुआ मानता है। जब तक वह इस अज्ञान में पड़ा रहता है, तभी तक बन्धन में बँधता है, इस शरीर का विकार दूर होते ही स्वतन्त्र हो जाता है ॥ ४६ ॥ यह आत्मा जब तक शरीर के साथ रहता है, तबतक वह कर्मों के बंधन में होता है। कर्म के बन्धन में होने से ही मायायोग से नाना प्रकार के क्लेश होते हैं ॥ ४७ ॥ सुनना, बोलना, देखना, भूख-प्यास, सुख-दुःख आदि व्यापार इन्द्रिय और मन के हैं, जो अनित्य हैं, अर्थात् नष्ट होने वाले हैं, जैसे स्वप्न में देखे हुये मनोरथ मिथ्या होते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियों और मन के व्यापार अनित्य होते हैं। आत्मा के ये व्यापार नहीं। इसलिये यह शरीर से भिन्न है ॥ ४८ ॥ एतदर्थ जो नित्य और अनित्य के भेद को जानते हैं, वे लोग किसीके संयोग और वियोग पर ध्यान नहीं देते। क्योंकि जो भवितव्य है, वह किसी प्रकार मिट नहीं सकता। अतः शोक-सन्ताप करना व्यर्थ है ॥ ४९ ॥ माया-मोहित लोगों के चित्त को धीरज रखने के लिये एक दृष्टान्त है :—

किसी वन में लुब्धक नाम का कोई व्याध था। वह पक्षियों को मारा करता था। वह उस वन में स्थान-स्थान पर जाल बिछाकर पक्षियों को दाने के लोभ से फँसाया करता था। एक

४४—सुयज्ञो नन्वयं शेते मूढा यमनु शोचथ । यः श्रोता योऽनुवक्तेह स न दृश्येत कर्हिचित् ॥

४५—न श्रोता नानुवक्तायं मुख्योऽप्यत्र महानसुः । यस्त्विहेन्द्रियवानात्मा स चान्यः प्राणदेहयोः ॥

४६—भूतेन्द्रियमनोलिंगान्देहानुच्चावचान्विभुः । भजत्युत्सृजति ह्यन्यस्तच्चापि स्वेन तेजसा ॥

४७—यावल्लिंगान्वितो ह्यात्मा तावत्कर्मनिबंधनम् । ततो विपर्ययः क्लेशो मायायोगोऽनुवर्तते ॥

४८—वितथाभिनिवेशोऽयं यद्गुणेष्वर्थदृग्वचः । यथा मनोरथः स्वप्नः सर्वमैन्द्रियकं मृषा ॥

४९—अथ नित्यमनित्यं वा नेह शोचन्ति तद्विदः । नान्यथा शक्यते कर्तुं स्वभावः शोचतामिति ॥

५०—लुब्धको विपिने कश्चित्पक्षिणां निर्मितोऽन्तकः । वितत्य जालं विदधे तत्र तत्र प्रलोभयन् ॥

५१—कुलिंगमिथुनं तत्र व्यचरत्समदृश्यत । तयोः कुलिंगी सहसा लुब्धकेन प्रलोभिता ॥

बार उसने कुलिंग पक्षी का एक जोड़ा उस वनमें विचरता हुआ देखा। उस लुब्धक ने कुलिंजी को तो तत्काल लोभ में डाल दिया। काल-विवश वह बेचारी मादा उसके फैलाये हुए जाल में दाना खाने गई और फँस गई। उसका नर कुलिंग अपनी स्त्री को जाल में फँसी हुई देखकर बड़ा दुखी हुआ। स्नेह के कारण, वह बेचारा अपने को उस दुःखिनी पत्नी को छुड़ाने मे असमर्थ समझकर जोर-जोर से रोने लगा-अरे दुर्दैव ! तुझे मेरे ऊपर दया न आई। तुझे मेरी ऐसी भली स्त्री से वियोग कराने में क्या मिला ? भला, तू मुझे सोचने वाली उस दुखिया को क्या करेगा ! अब मैं उसके बिना आधे शरीर से (अकेला) क्या कर सकूँगा। इसलिये ईश्वर मुझे भी ले चले ! पत्नीहीन(विधुर)होकर उसके दुःख मे दीन बनकर मैं जीकर ही क्या करूँगा ! मैं मातृहीन अपने उन बच्चों का कैसे भरण-पोषण कर सकूँगा, जिनके कि अभी पंख भी नहीं उगे हैं। हाय ! वे भाग्यहीन मेरे बच्चे घोंसले मे बैठे हुये अपनी माता की बाट देख रहे होंगे ! इस प्रकार वह कुलिंग, अपनी प्यारी कुलिंजी के वियोग से विलाप करता हुआ और आँखों से आँसु बहाता हुआ तुरन्त उस जाल के पास पहुँचा। बधिक तो देख ही रहा था, उसने उस काल-प्रेरित पक्षी को भी बाण से मार गिराया ! ॥ ५६ ॥

हे बुद्धिहीन लोगों ! तुम्हारी भी ऐसी ही गति होगी। इस मरे हुए के मोह में क्यों पड़े हुये हो ? अब से भला है, चेतो ! तुम सैकड़ों वर्षों तक शोक करते रहने पर भी उसे नहीं पा सकते ! ॥ ५७ ॥

हिरण्यकशिपु बोला—उस छोटे बच्चे की ऐसी बात सुनकर शोक करने वाले सभी (स्त्री-पुरुष) बड़े आश्चर्य मे पड़ गये। उन लोगों को बोध हो गया कि जिसके लिये हम लोग ऐसा कर रहे हैं, वह नाशवान था। मिथ्या मोह मे पड़कर शोक करने से कोई लाभ नहीं ! ॥ ५८ ॥

५२—साऽसज्जत शिचरं तस्या महिषी कालयन्त्रिता। कुलिङ्गस्तां तथापन्नां निरीक्ष्य भृशदुःखितः।
स्नेहादकल्पः कृपणः कृपणां पर्यदेवयत् ॥
५३—अहो अकरुणो देवः स्त्रियाऽऽकरुणया विभुः। कृपणं माऽनुशोचन्त्या दीनया किं करिष्यति ॥
५४—कामं नयतु मां देवः किमर्धेनात्मनो हि मे। दीनेन जीवता दुःखमनेन विधुरायुषा ॥
५५—कथं त्वजातपक्षांस्तान्मातृहीनान्बिभर्म्यहं। मन्दभाग्याः प्रतीक्षन्ते नीडे मे मातरं प्रजाः ॥
५६—एवं कुलिङ्गं विलपन्तमारात्प्रियावियोगातुरमश्रुकण्ठं।
स एव तं शाकुनिकः शरेण विव्याध कालप्रहितो विलीनः ॥
५७—एवं यूयमपश्यन्त्य आत्मापायमबुद्धयः। नैनं प्राप्स्यथ शोचन्त्यः पतिं वर्षशतैरपि ॥

हिरण्यकशिपुरुवाच—

५८—बाल एवं प्रवदति सर्वे विस्मितचेतसः। ज्ञातयो मेनिरे सर्वमनित्यमयथोत्थितं ॥

बालकरूप यमराज तो यह ज्ञानोपदेश देकर वहीं अन्तर्धान हो गए और राजा सुयज्ञ के कुटुम्ब और जाति वालों ने उसका यथोचित दाह-संस्कार आदि किया ॥ ५९ ॥ इसलिये तुम लोग भी शोक मत करो। जीवात्मा सबसे परे है, उसके लिये अपना पराया कोई नहीं है। अपना कौन है और पराया कौन है? यह अज्ञान के कारण होता है। वास्तव में न कोई अपना है और न पराया। अपना और पराया भाव अज्ञान से होता है। जो तत्वदर्शी और ज्ञानी पुरुष होते हैं, वे अपने ज्ञान से इस आत्मा का दर्शन करते हैं ॥ ६० ॥

नारद बोले—दैत्यराज का यह आध्यात्मिक विचार सुन कर उसकी माता दिति अपनी पुत्र-वधू के साथ, अपने पुत्र के शोक को क्षण भर में छोड़ कर, तत्त्व चिंतन मे लीन हो गई ॥ ६१ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवे स्कंध का दूसरा अध्याय समाप्त

५९—यम एतदुपाख्याय तत्रैवांतरधीयत। ज्ञातयोऽपि सुयज्ञस्य चक्रुर्यत्सांपरायिकं ॥

६०—ततः शोचत मायुष्य परं चात्मानमेव च। क आत्मा कः परो वाऽत्र स्वीयः पारक्यएव वा ॥

स्वपराभिनिवेशेन विनाशानेन देहिना ॥

नारद उवाच—

६१—इति दैत्यपतेर्वाक्यं दितिराकर्ण्य सस्नुषा। पुत्र शोकं क्षणात्त्यक्त्वा तत्त्वे चित्तमधारयत् ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेदितिशोकापनयननामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

हिरण्यकशिपु का घोर-तप करना और ब्रह्मा से वर पाना

नारद बोले—राजन् ! (युधिष्ठिर) हिरण्यकशिपु ने अपने को अभिमान के वश होकर अजर-अमर समझ लिया और उसने सोचा कि पृथ्वी में मेरा प्रतिद्वन्द्वी कोई राजा न रह जाय। इस इच्छा से उसने मन्दराचल(पर्वत) की गुफा में घोर-तप करना प्रारम्भ कर दिया। उसने अपने दोनों हाथ ऊपर उठा लिये, अपनी दृष्टि आकाश की ओर करली और वह अपने पैर के अँगूठे के बलपर तप करने को खड़ा हो गया॥ १-२ ॥ इस प्रकार तपस्या करते हुए कुछ समय बीत गया। उसकी जटा से तपस्या की अग्नि इस प्रकार दमकने लगी, जिस प्रकार से कि प्रलय-काल के सूर्य की ज्योति तपती है। उसके इस तप से भयभीत होकर देवता लोग अपने-अपने स्थान छोड़कर हट गये॥ ३ ॥ उसके ब्रह्माण्ड से पैदा हुई तपस्या की अग्नि की ज्वाला धुएँ के साथ चारों ओर फैलकर तीनों लोकों को तपाने लगी। हिरण्यकशिपु के तप से नदियों और समुद्रों में उथल-पुथल मच गयी। द्वीपों के साथ पर्वत हिल गये और पृथ्वी डाँवाडोल हो गई। ग्रहों के साथ तारे टूट-टूट कर गिरने लगे और दशों दिशाओं में आग लगने लगी॥ ४-५ ॥ उसके तप से तप्त होकर देवता लोग देवलोक छोड़कर ब्रह्मलोक में पधारे। उन्होंने वहाँ पहुँचकर पितामह ब्रह्मा को इसकी सूचना दी। वे ब्रह्मा की इस प्रकार प्रार्थना करने लगे ! हे देव-देव ! हे जगत्पति ! हम लोग दैत्यराज हिरण्यकशिपु के उग्र तप से थर्रा गये हैं। इसलिये देवलोक से भागकर आपके यहाँ निवेदन करने आये हैं। हे भूमन् ! यदि आप उसकी शान्ति का उपाय शीघ्र करेंगे तो अच्छा होगा। आपके देर करने में, लोकों के निवासी, आपको बलि देने वाले उसके तपोबल से नष्ट हो जायँगे, इसलिये हम आपको चेतावना दे रहे हैं॥ ६-७ ॥ उसका यह

नारद उवाच

१—हिरण्यकशिपू राजन्नजेयमजरामरं। आत्मानमप्रतिद्वंद्वमेकराज व्यधित्सत॥

२—स तेपे मन्दरद्रोण्यां तपः परमदारुणं। ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादाङ्गुष्ठाश्रितावनिः॥

३—जटादीधितिभीरेजे सनर्त्तार्क इवांशुभिः। तस्मिंस्तपस्तप्यमाने देवाः स्थानानि भेजिरे॥

४—तस्य मूर्ध्नः समुद्भूतः सधूमोऽग्निस्तपोमयः। तिर्यगूर्ध्वमधोलोकानतपद्विष्वगीरितः॥

५—चुक्षुभुर्नद्युदन्वन्तः सद्वीपाद्रिश्चचाल भूः। निपेतुः सग्रहास्तारा जज्वलुश्च दिशो दश॥

६—तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुः सुराः। धात्रे विज्ञापयामासुर्देवदेव जगत्पते॥

७—दैत्येंद्र-तपसा तप्ता दिवि स्थातुं न शक्नुमः। तस्य चोपशमं भूमन् विधेहि यदि मन्यसे॥
लोका न यावन्नंक्ष्यंति बलिहारास्तवाभिभो॥

घोर तप किस लिये है ! उसने ऐसा सकल्प क्यों किया है ! इसे तो आप भली-भांति जानते हैं, तथापि हम लोग आपको उसका निवेदन कर देना अपना कर्तव्य समझते हैं। इसके रहस्य के विषय में हम लोग पहिले भी निवेदन कर चुके हैं, अर्थात् वह स्वयं ब्रह्मा बनना चाहता है, ॥ ८ ॥ जगद्गुरो ! उसे यह मालूम हो गया है कि ब्रह्मा (आप) ने आदिकाल में तप, योग और समाधि के द्वारा इस चराचरमय जगत को रचा था और सब स्थानों से श्रेष्ठ स्थान पाया था। अतः वह भी चाहता है कि मैं भी उसी यम, नियम आदि का पालन कर, ब्रह्मा के आसन पर विराजमान हो जाऊँ ! ॥ ९ ॥ अतएव मैं तप, योग और समाधि के बल से वैसा ही प्रतापी अपने को बनाऊँगा, जैसा कि ब्रह्मा ने अपने को बनाया था। जब मैं स्वय कालात्मा हो जाऊँगा, तब मुझे मृत्यु का भय न रह जायगा। फिर मुझे कौन मार सकेगा ॥ १० ॥ मैं कालात्मा होकर अपने प्रभाव से काल को झूठा सिद्ध कर दूँगा और अपनी इच्छा के अनुकूल त्रिलोकी पर शासन करूंगा। (मै देवताओं को राक्षस और राक्षसों को देवता पदवी दूँगा। स्वर्ग को नरक और नरक को स्वर्ग बनाऊंगा। दिन को रात्रि, रात्रि को दिन, पुण्य को पाप, पाप को पुण्य आकाश को पाताल, पाताल को आकाश और देवताओं को मरने वाला तथा दानवों को मृत्यु-विजयी करके छोड़ूगा। अपने शत्रु देवताओं को पाताल में बसा दूँगा और अपने मित्र दानवों को आकाश-लोक मे स्थान दूँगा।) इस प्रकार महा भयकर विश्व-क्रान्ति कर लेने पर ही मेरे मन को शांति मिल सकेगी। फिर कल्पान्त स्थित होने वाले वैष्णवादिक और काल के आधीन रहने वाले मेरा क्या कर सकेंगे ! अर्थात् मैं स्वय ब्रह्मपदवी प्राप्त कर सब लोकों का सर्वे सर्वा बन जाऊँगा हे त्रिभुवनेश्वर ! हम लोगों को ऐसा विदित हुआ है कि वह ऊपर कहे गये निर्बंधों (शर्तों) के साथ महा विकट तप मे लगा है। अत दूसरे आवश्यक कार्यों को छोड कर पहले आप युक्तियुक्त इसकी उचित व्यवस्था करे ! ॥ १२ ॥ हे ससार के स्वामी ! गो और ब्राह्मण- ये दोनों ही आपके प्रधान स्थान हैं। आप उत्पत्ति, कल्याण, समृद्धि, सुख और विजय, इन पांचों के कर्त्ता हैं, अर्थात् जब आप पर ही सकट आ जायगा, तब हमारी (आपके भक्तों की) क्या गिनती ! ॥ १३ ॥

८—तस्याय किल सकल्पश्चरंतो दुश्चर तपः। श्रूयता किं न विदितस्तथापि निवेदितं ॥

९—सृष्ट्वा चराचरमिद तपोयोगसमाधिना। अध्यास्ते सर्वधिष्ण्येभ्यः परमेष्ठी निजासनं ॥

१०—तदहं वर्धमानेन तपोयोगसमाधिना। कालात्मनोश्च नित्यत्वात्साधयिष्ये तथात्मनः ॥

११—अन्यथेदं विधास्येऽहमयथा पूर्वमोजसा। किमन्यैः कालनिर्धूतैः कल्पान्ते वैष्णवादिभिः ॥

१२—इति शुश्रुम निर्बंधं तपः परममास्थितः। विधत्स्वानन्तर युक्तं स्वयं त्रिभुवनेश्वर ॥

१३—तवासन द्विजगवां पारमेष्ठ्यं जगत्पते। भवाय श्रेयसे भूत्यै क्षेमाय विजयाय च ॥

नारद बोले—अपने भक्त और भयभीत देवताओं द्वारा यह सूचना पाकर भगवान् स्वयम्भु भृगु, दक्ष आदि प्रजापतियों के साथ उस आश्रम मे गये,जिसमे दैत्यों का सम्राट हिरण्य-कशिपु तप का अनुष्ठान कर रहा था ॥ १४ ॥

ब्रह्मा आदि ने वहां उस दानव को नहीं देखा ! उसका शरीर दीमक की मिट्टी से ढँक गया था। उस मिट्टी के ढूहे पर तृण (कुश) जमे हुये थे। उसमे बाँबी बन गई थी। उन लोगों को आश्चर्य हुआ। उस मिट्टी के ढूहे मे दो छेद दिखलाई पड़े, जिसमे चमक थी। वही ऐसी जान पडती थी कि जैसी घडे मे सूर्य की रोशनी झलकती थी।)

उसके शरीर की चर्बी, चमड़े, मास और खून चींटी, माटे आदि कीडे मकोड़े चाट गए। केवल हड्डियाँ बच गई थीं ॥ १५ ॥ फिर भी अपने उग्र तप के तेज से वह सब लोकों को इस प्रकार जला रहा था, जिस प्रकार कि बादल से ढँका हुआ सूर्य संसार को उद्विग्न कर डालता है। उसे इस प्रकार देखकर विधाता विस्मित हुए और हंस पर चढने वाले वे इस प्रकार हँसकर बोले ॥ १६ ॥

ब्रह्मा बोले—ऐ महर्षि कश्यप का पुत्र ! तू उठ जा ! तेरा तप पूर्ण हो गया ! तू उठ ! तेरा कल्याण हो ! तेरे इस कठिन तप से मैं प्रसन्न हो,तुझे वर देने के लिये आया हूँ। तू जो चाहता हो सो मुझसे माँगले ॥ १७ ॥ तूने अद्भुत धैर्य धारण किया ! मैंने तेरे हृदय का तत्व समझ लिया। तू ने ऐसा तप किया कि तेरी देह को मच्छर और पिस्सू खा गये। केवल तेरे प्राण हड्डियों मे छिपे रह गए है ॥ १८॥ वाह ! तेरी जैसी तपस्या न तो अबतक किसीने की और न भविष्य में किसीके द्वारा होने की आशा है। भला, कौन ऐसा है, जो बिना जल के दिव्य सौ वर्षो तक जी सकता है ! ॥१९॥ तेरे जैसा निश्चय कर कठोर व्रत करने वाला कोई विरला ही हो सकता है ! ऐ दितिनन्दन ! तेरे जैसे मनस्वी और तपोनिष्ठ ने मुझे जीत लिया ॥ २० ॥ ऐ दैत्यों में श्रेष्ठ ! मैं

१४—इति विज्ञापितो देवैर्भगवानात्मभूर्नृप। परीतो भृगुदक्षाद्यैर्ययौ दैत्येश्वराश्रम ॥

१५—न ददर्श प्रतिच्छन्न वल्मीकतृणकीचकैः। पिपीलिकाभिराचीर्णं मेदस्त्वङ्मासशोणित ॥

१६—तपंत तपसा लोकान् यथाऽभ्रापिहितं रविं। विलक्ष्य विस्मितः प्राह प्रहसन् हसवाहनः ॥

ब्रह्मोवाच—

१७—उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तपः सिद्धोऽसि काश्यप। वरदोऽहमनुप्राप्तो व्रियतामीप्सितो वरः ॥

१८—अद्राक्षमहमेतत्ते हृत्सार महदद्भुत। दशभक्षितदेहस्य प्राणाह्यस्थिषु शेरते ॥

१९—नैतत्पूर्वर्षयश्चक्रुर्न करिष्यंति चापरे। निरम्बुर्धारयेत्प्राणान् को वै दिव्यसमाः शत ॥

२०—व्यवसायेन तेऽनेन दुष्करेण मनस्विनां। तपोनिष्ठेन भवता जितोऽहं दितिनंदन ॥

तुझे सच्चा वचन देता हूँ। तू मेरे पर विश्वास कर, मैं तेरे सब मनोरथ पूर्ण करूँगा। तू मुझसे जो याचना करेगा, मैं उसे ही पूर्ण करूँगा। तू मरने वाला है और मैं मृत्यु से परे हूँ। यह तू समझ ले कि मेरा दर्शन तेरे लिये कभी निष्फल नहीं हो सकता॥ २१॥

नारद बोले—राजन्! इतना आश्वासन देकर ब्रह्माजी ने हिरण्यकशिपु की देह को फिर देखा! उन्होंने जब देखा कि इतने पर भी वह ज्यों-का त्यों उसी रूप मे बैठा है, उसका सर्वांग चींटी आदि के द्वारा चाट लिया गया है, तब उन्होंने उस पर कृपा कर अपने अमोघ तेज वाले कमंडलु के जल को छिड़क दिया॥ २२॥ उनके कमंडलु के जलबिन्दु के पड़ते ही, वह दैत्येन्द्र उस बमौटे (मिट्टी के गुम्मट) से ऊपर खड़ा हुआ। वह ओजस्वी और बलवान हो गया। उसके सर्वांग ठीक हो गये। उसका शरीर वज्र के समान हो गया। उसकी युवावस्था आ गई। वह तपाये हुये सोने के समान कान्तिमान होकर, अग्नि के समान तेज धारण कर, उठकर खड़ा हो गया॥ २३॥ उठते ही उसने आकाश मे, हंस पर चढ़े हुये, देवों के देव ब्रह्मा को देखा उन्हे देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उनके दर्शन से परम आनन्दित होकर पृथ्वी पर शिर से दण्डवत होकर प्रणाम किया॥ २४॥ हर्ष के कारण उसका शरीर पुलकित हो गया और उसकी आँखों मे आँसु आ गये। ब्रह्माजी के साथ भृगु दक्ष आदि को देख कर उसने अपने को धन्य माना। साष्टांग प्रणाम कर लेने पर वह पुनः दोनों हाथों की अञ्जलि बाँध कर उनकी (ब्रह्मा की) प्रार्थना करने को खड़ा हुआ। वह गद्गद् वाणी से भगवान ब्रह्मा की यों स्तुति करने लगा—॥ २५॥

हिरण्यकशिपु बोला—कल्पान्त (प्रलय के समय) में यह संसार कालपुरुष के रचे हुये घोर अन्धकार मे ढँका हुआ था। इसका कोई आकार-प्रकार ही न था। उस विश्व को आपने अपने तेज से प्रकाशित किया। उससे पहले आप ज्योति स्वरूप प्रकट हुये थे॥२६॥ जो प्रकृति

२१—ततस्त आशिषः सर्वा ददाम्यसुरपुंगव। मर्त्यस्यते अमर्त्यस्य दर्शन नाफलं मम॥

नारद उवाच—

२२—इत्युक्त्वादिभवो देवो भक्षिताङ्गं पिपीलिकैः। कमण्डलुजलेनौक्षद्दिव्येनामोघराधसा॥

२३—सतत्कीचकवल्मीकात्सह ओजो बलान्वितः। सर्वावयवसम्पन्नो वज्रसंहननो युवा॥

उत्थितस्तप्तहेमाभो विभावसुरिवैधसः॥

२४—स निरीक्ष्याम्बरे देवं हंसवाहमवस्थितं। ननाम शिरसा भूमौ तद्दर्शनमहोत्सवः॥

२५—उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व ईक्षमाणो दृशा विभुं। हर्षाश्रुपुलकोद्भेदो गिरा गद्गदयाऽगृणात्॥

हिरण्यकशिपुरुवाच—

२६—कल्पान्ते कालसृष्टेन योऽन्धेन तमसावृत। अभिव्यनक् जगदिदं स्वयंज्योतिः स्वरोचिषा॥

के तीन गुणों में आवद्ध होकर इस समस्त संसार को रचता, पालता और नष्ट करता है। जो सत्व,रज और तम के परे होते हुये भी उनका तेज धारण करताहै , इसलिये वह महान है, अतः उसे मेरा नमस्कार है ॥ २७ ॥ जो बीज-रूप से प्रारम्भ मे विद्यमान था, जो ज्ञान-विज्ञान-मूर्ति है और पंच प्राणों, दशेन्द्रियों, मन और बुद्धि के विकारों का अस्तित्व है, उस परमात्मा को मेरा नमस्कार है ॥ २८ ॥ भगवन् ! आप ही जगत् (स्थावर,जंगम) के प्राणियों के स्वामी हैं। आप समस्त प्रजा के पति और प्रधान प्राण हैं, आप चित्त के भी चित्त, इन्द्रियों के पति,मन और आकाशादि पच महाभूतों और उनकी तन्मात्राओं अर्थात् प्रकृति के गुणों के अभिप्राय रूप और अध्यक्ष हैं ॥२९॥ आप ही वेदो (ऋक, यजु, साम) के कर्ता, चार प्रकार के यज्ञों के होता सात प्रकार के यागों के कर्ता हैं। अर्थात् आप ही वेद-विद्या, यज्ञ तथा वैदिक कर्मों के प्रधान कारण हैं। आप ही प्राणिसमूह के अन्तरात्मा हैं और आप ही अनादि, अनन्त, अपार तथा सर्वान्तर्यामी हैं ॥ ३० ॥ आप ही सर्वदा चलायमान काल हैं। आपको इस सत्ता के अन्तर्गत सब कुछ विद्यमान है, इससे परे कुछ भी नहीं । सब प्राणियों के आयुर्बल के कर्ता-हर्ता आप हैं। आप ही जीवों के जीवनाधार हैं। आपके उदर मे यह ब्रह्माण्ड निवास करता है । आप सबसे बड़े और सबसे ऊँचे स्थान के रहने वाले हैं और अजन्मा हैं ॥३१॥ आप परम तत्व हैं, आप की शक्ति के परे एक तृण भी नहीं और आपके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, आपके शरीर मे सम्पूर्ण विद्याये और सब कलाएँ वर्तमान हैं। इसीसे आपका नाम हिरण्यगर्भ है और तीनों गुणों के सर्वोपरि मूलाधार हैं ॥ ३२ ॥ हे प्रभो ! आपही अपने स्थान में रहकर अव्यक्त (अप्रकट) आत्मस्वरूप, परमपुरुष और सबसे प्राचीन हैं। इस नाशवान शरीर मे इन्द्रिय, प्राण और मन के द्वारा विषयों के प्रकटरूप से भोक्ता आपही हैं ॥ ३३ ॥ अनन्त और अव्यक्त

२७—आत्मना त्रिवृताचेदं सृजत्यवति लुपति । रजः सत्वतमोधाम्ने पराय महते नमः ॥

२८—नम आद्याय बीजाय ज्ञानविज्ञानमूर्तये । प्राणेंद्रियमनो बुद्धिविकारैर्व्यक्तिमीयुषे ॥

२९—त्वमीशिषे जगतस्तस्थुषश्च प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानां ।
चित्तस्य चित्तर्मन इ द्रियाणा पतिर्महान् भूतगुणाशयेशः ॥

३०—त्वं सप्ततंतून्वितनोषि तन्वा त्रय्या चातुर्होत्रक विद्यया च ।
त्वमेक आत्मात्मवतामनादिरनन्तपारः कविरन्तरात्मा ॥

३१—त्वमेव कालो निमिषो जनानामायुर्लवाद्यावयवैः क्षिणोषि ।
कूटस्थ आत्मा परमेष्ठ्यजो महांस्त्वं जीवलोकस्य च जीवआत्मा ॥

३२—त्वत्तः पर नापरमप्यनेजदेजच्च किंचिद् व्यतिरिक्तमस्ति ।
विद्याकलास्ते तनवश्च सर्वा हिरण्यगर्भोऽसि बृहत्त्रिपृष्ठः ॥

३३—व्यक्त विभोस्थूलमिदं शरीरं येनेंद्रियप्राणमनो गुणांस्त्वं ।
भुंक्ते स्थितो धामनि पारमेष्ठ्य अव्यक्त आत्मा पुरुषः पुराणः ॥

रूप से जिसके द्वारा इस संसार का चमत्कार दिखालाया गया है और जो मनुष्य के मन, वचन और कर्म से जाँना नहीं जाता, उस ,इच्छाशक्ति वाले भगवान को मेरा बारंबार नमस्कार है।। ३४ ।। हे उत्तम वरदेने वाले ! यदि आप मुझे मेरी इच्छा के अनुसार वर देना चाहते हों तो मैं आपसे वर माँगता हूँ कि मैं आपके बनाये हुए किसी पदार्थ या किसी जीव से मारा न जाऊँ ।। ३५ ।। न तो भीतर, न बाहर, न दिन मे, न रात मे, न किसी शस्त्र से, न भूमि पर, न आकाश में, न किसी मनुष्य से, न पशु से, उपरोक्त किसीसे मेरी मृत्यु न हो और साथ ही युद्ध मे किसी प्राणी या अप्राणी, किसी देवता या दानव, या किसी महासर्प आदि से मेरा पराजय न हो। अर्थात् समस्त भूमडल के लोगों मे मेरा एक ही साम्राज्य स्थापित हो ।।३६-३७।। भगवन् ! सभी लोकपालों मे जैसी आपकी महिमा है, वैसी ही मेरी भी हो। तप, योग, और मेरा प्रभाव कभी नष्ट न हो, मैं आपसे यही वरदान चाहता हूँ ।। ३८ ।।

श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवे स्कध का तीसरा अध्याय समाप्त

३४—अनंताव्यक्तरूपेण येनेदमखिलं ततं । चिदचिच्छक्तियुक्ताय तस्मै भगवते नमः ।।

३५—यदि दास्यस्यभिमतान्वरान्मेवरदोत्तम । भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्माभून्मम प्रभो ।।

३६—नातर्बहिर्दिवानक्तमन्यस्मादपिचायुधैः । न भूमो नाम्बरे मृत्युर्ननरैर्न मृगैरपि ।।

३७—व्यसुभिर्वाऽसुमद्भिर्वा सुरासुरमहोरगैः । अप्रतिद्वद्वता युद्धे ऐकपत्यं च देहिना ।।

३८—सर्वेषां लोकपालानां महिमानं यथात्मनः । तपो योगप्रभावाणां यन्नरिष्यति कर्हिचित् ।।

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कधेहिरण्यकशिपोर्वरप्रदाननामतृतीयोऽध्यायः ।। ३ ।।

चौथा अध्याय

ब्रह्मा से वर पाकर हिरण्यकशिपु का दिग्विजय करना

नारद बोले—राजन्! इस प्रकार की याचना करने पर, ब्रह्माजी ने हिरण्यकशिपु के तप से प्रसन्न होकर ऐसे वर दिये, जो बड़े २ सत्पुरुषों के लिये भी दुर्लभ थे॥ १॥

ब्रह्मा बोले—हे तात! जिन वरों को तुमने मुझसे माँगा है,वे मनुष्यों के लिये परम कठिन हैं, किन्तु मैं तुमसे प्रतिज्ञा-बद्ध हो चुका हूँ। इसलिये स्वीकार करता हूँ। क्योंकि तुमने बड़ा कठिन तप किया है॥२॥ हिरण्यकशिपु ने मनोनुकुल वर पाकर ब्रह्माजी का पूजन किया। उससे पूजित होकर अत्यन्त अनुग्रह करने वाले भगवान् ब्रह्मा अपने ब्रह्मलोक को चले गये॥ ३॥ इस प्रकार का वरदान पाकर हिरण्यकशिपु सोने की भाँति कान्ति वाला होकर चमकने लगा। प्रतापी होने पर उसे अपने मारे गये भाई का मरण हो आया और वह भगवान् विष्णु से बदलाने के लिये द्वेष करने लगा॥ ४॥ उस दानव ने दशों दिशाओं और तीनों लोकों के लोगों को जीत लिया। देव, असुर, मनुष्य, इन्द्र, गरुड, सर्प,सभी उसके अधिकार में आ गये॥ ५॥ सिद्ध, चारण, विद्याधर, ऋषि, पितृपति, मनु, कुबेर, राक्षस, प्रेत, भूत और पिशाचों के स्वामी, सभी उससे पराजित हो गये॥ ६॥ सब जीवों के अधीश्वरों को जीतकर उसने अपने वश में करलिया। पुनः उस विश्व-विजयी दानव सम्राट् ने लोक-पालों को अपने तेज से स्थानच्युत कर दिया॥७॥ इसके उपरान्त देवताओं के उद्यान और मन्दिरों से सज्जित,सम्पत्तियों से पूरित, जहाँ तीनों लोक की लक्ष्मी वास करती है और जो स्वय विश्वकर्मा के हाथ का बनाया है,जिसमें

नारद उवाच

१—एवं वृतः शतधृतिर्हिरण्यकशिपोरथ। प्रादात्तत्तपसा प्रीतो वरांस्तस्य सुदुर्लभान्॥

ब्रह्मोवाच—

२—तातेमे दुर्लभाः पुंसां यान्वृणीषे वरान्मम। तथाऽपि वितराम्यंग वरान्यदपि दुर्लभान्॥

३—ततो जगाम भगवानमोघानुग्रहो विभुः। पूजितोऽसुरवर्येण स्तूयमानः प्रजेश्वरैः॥

४—एवं लब्धवरो दैत्यो बिभ्रद्धेममयं वपुः। भगवत्यकरोद्द्वेषं भ्रातुर्वधमनुस्मरन्॥

५—स विजित्य दिशः सर्वा लोकांश्च त्रीन्महासुरः। देवासुरमनुष्येन्द्रान् गन्धर्वगरुडोरगान्॥

६—सिद्धचारणविद्याध्रानृषीन्पितृपतीन्मनून्। यक्षरक्षः पिशाचेशान् प्रेतभूतपतीनथ॥

७—सर्वसत्त्वपतीन् जित्वा वशमानीय विश्वजित्। जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा॥

स्वयं देवराज इन्द्र निवास करते है, उसने उस पर अधिकार प्राप्त कर लिया। वह इन्द्रपुरी का सुखोपभोग करने लगा ॥ ८ ॥ जहाँ पर विद्रुम (मूँगा) की बनी हुई सीढ़ियां थी, सुन्दर मरकत मणियों(जवाहिरात)की फर्श थी,स्फटिकमणि(बिल्लोर)की दीवारे और वैदूर्यमणि के बने हुए खंभे की पांती थी, जो देखने में बड़ी भली मालूम होती थी,जहा चित्रों से चित्रित रग-बिरग के चँदवे तने थे, पद्मराग मणियों के बिछौने और आसन बिछे थे। दूध के फेन के समान उजली और कोमल शय्या शोभित हो रही थीं और उनकी चारों तरफ मोतियों की झालरें झूल रही थीं ॥१०॥ वह पुरी चमकीले रत्नों से जड़ी हुई थी। वहां देवताओं की परम सुन्दरी अनेकों स्त्रियां, जिनके दांतों की पंक्ति कुन्दकली की पांती सी जान पड़ती थी, जो अपने सुन्दर मुखों को उन जड़े हुये रत्नों में आइने की तरह देख कर हर्षित होती थीं और वे अपने पाजेब (नूपुर) को झन-झनाती हुई, इधर-उधर फिर रही थीं ॥ ११ ॥ ऐसे सुशोभित इन्द्र के भवन में महाबली, महामना, पूर्णप्रतापी, विश्वविजयी और प्रचण्ड शासन करने वाला हिरण्यकशिपु,जिसके चरणों की वन्दना देवता आदि करते थे, अशंक होकर आनन्द करने लगा ॥ १२॥ राजन्! वह अत्यन्त तीव्र सुगन्ध वाला मद्य पीकर मतवाला बना रहता था। इससे उसके दोनों विकराल नेत्र लाल-लाल हुये रहते थे, जिन्हें देख कर और उसके तप, योग और पराक्रम से सभी स्थानों के अधिकारी और लोकपाल थर-थर काँपते रहते थे। सब उसे उपहार (नजर) देते थे। ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर - ये ही तीन देवता केवल उसके 'अनुशासन' में नहीं आ सके थे। इसीसे उन्होंने उसकी सेवा नहीं की ॥ १३ ॥

८—देवोद्यानश्रिया जुष्टमध्यास्तेस्म त्रिविष्टप। महेंद्रभवन साक्षान्निर्मित विश्वकर्मणा ॥
त्रैलोक्य लक्ष्म्यायतनमध्युवासाखिलर्द्धिमत् ॥

९—यत्र विद्रुमसोपाना महामारकता भुवः। यत्र स्फाटिककुड्यानि वैदूर्यस्तम्भपंक्तय. ॥

१०—यत्र चित्रवितानानि पद्मरागासनानि च। पय फेननिभा शय्या मुक्तादामपरिच्छदाः ॥

११—कूजद्भिर्नूपुरैर्देव्य. शब्दयन्त्य इतस्तत.। रत्नस्थलीषु पश्यन्ति सुदती सुदर मुख ॥

१२—तस्मिन्महेंद्रे भवने महाबलो महामना निर्जितलोक एकराट्।
रेमेऽभिवन्द्याङ्घ्रियुगः सुरादिभिः प्रतापितैरूर्जितचंडशासनः ॥

१३—तमग मत्त मधुनोरुगन्धिना विवृत्त ताम्राक्षमशेषधिष्ण्यपाः।
उपासतो पायनपाणिभिर्विना त्रिभिस्तपो योगबलौजसाऽऽद "

हे पांडव ! अपनी तेजस्विता से वह इन्द्र के सिंहासन पर बैठ गया था। उस हिरण्यकशिपु के सामने विश्वावसु, तुम्बुरु और मेरे जैसे अनेक गायनाचार्य और नृत्याचार्य गाया और नाचा करते थे। उसी प्रकार गंधर्व, सिद्ध, ऋषि लोग तथा विद्याधर उसके गुणों की स्तुति करते थे और मनोहारिणी अप्सरायें उसे अपने अनुपम संगीत और हाव, भाव, कटाक्ष पूर्ण नृत्य से रिझाया करती थीं ॥ १४ ॥ इतना ही नहीं, वह संसार के वर्णाश्रम-धर्म के अनुयायियों और यज्ञ करने वालों के द्वारा भूरि दक्षिणा (धार्मिककर) आदि के द्वारा पूजित होने लगा। लोग भय के मारे पहले इस नये इन्द्र की पूजा करके तब यज्ञ और श्राद्धादिक कर्म करते थे। वह अपने तेज से यज्ञ का हविर्भाग ग्रहण करता था ॥ १५ ॥ उसके प्रताप से भयभीत होकर सातो द्वीपों की पृथ्वी बिना जोते-बोये ही भाँती-भाँति के अन्न और फल उपजाती थी। आकाश अनेक प्रकार के आश्चर्यजनक पदार्थों को देकर मनोरथ पूर्ण करता था ॥ १६ ॥ समुद्र अपनी पत्नी-लहरियों द्वारा रत्न निकाल कर बाहर डालने लगे। नदियाँ नमक, मधु,घी,दही,दूध आदि से बहने लगीं। अर्थात् जल के स्थान पर ये पदार्थ उनमें बहते थे ॥१७॥ पर्वतों की कन्दराओं में अत्यन्त सुखदायी क्रीड़ा करने के स्थान बन गये। वृक्ष छहों ऋतुओं में फूल और फलों से लदे रहते थे। एक ही हिरण्यकशिपु ने भिन्न-भिन्न (दश) दिक्पालों के गुणों को धारण कर रखा था ॥ १८ ॥ इस प्रकार वह दिग्विजयी दैत्य-सम्राट् सबको जीत कर नाना प्रकार के प्रिय विषयों का उपभोग करने लगा। किन्तु अपने शरीर की इन्द्रियों और मन को न जीत सकने के कारण सदा अतृप्त ही रहा,अर्थात् कभी उसके चित्त को शान्ति न मिल सकी ॥१९॥ इस तरह अपने ऐश्वर्य के मद से मत्त और महा अभिमानी वह अत्याचारी बराकर अत्याचार करता रहा। ब्राह्मणों के शाप से दानव-शरीर पाने वाले दैत्य को समस्त लोकों पर एकच्छत्र तथा आतंक पूर्ण शासन करते हुये बहुत वर्ष व्यतीत हो गये ॥ २० ॥ उसकी कठोर दमन नीति

१४—जगुर्महेंद्रासनमोजसास्थित विश्वावसुस्तुंबुरुरस्मदादयः।
गंधर्वसिद्धा ऋषयोऽस्तुवन्मुहुर्विद्याधरा अप्सरसश्च पांडव ॥

१५—स एव वर्णाश्रमिभिः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः। इज्यमानो हविर्भागानग्रहित्स्वेन तेजसा ॥

१६—अकृष्टपच्यतस्यासीत्सप्तद्वीपवती मही। तथा कामदुघाद्यौस्तु नानाश्चर्यपदं नभः ॥

१७—रत्नाकराश्च रत्नौघास्तत्पत्न्यश्चोहुरूर्मिभिः। क्षारसिंधुघृतक्षौद्रदधिक्षीरामृतोदकाः ॥

१८—शैलाद्रोणीभिराक्रीडं सर्वर्तुषु गुणान्द्रुमाः ; दधार लोकपालानामेक एव पृथग्गुणान् ॥

१९—स इत्थं निर्जितककुबेकराड् विषयान्प्रियान्। यथोपजोषं भुंजानो नातृप्यदजितेंद्रियः ॥

२०—एवमैश्वर्यमत्तस्य दृप्तस्योच्छास्त्रवर्तिनः। कालोमहान्व्यतीयाय ब्रह्मशापमुपेयुषः ॥

के कारण सब लोकों के निवासी अपने नरेशों के सहित विकल हो गये और अन्य-अन्य देशों मे जहाँ, उसकी शक्ति नहीं पहुँच सकी थी, वहाँ जाकर उन लोगों ने शरण ली। जब उन लोगों ने देखा कि किसी प्रकार उससे छुटकारा पाना सहज नहीं, तब वे समूह बाधकर भगवान विष्णु की शरण में प्रार्थना करने के लिये चले॥ २१ ॥

जहां परम पुरुष परमात्मा निवास करते हैं और जहा उनके भक्त शान्त-स्वभाव वाले, सर्वत्यागी एव शुद्धान्तःकरण वाले जाकर फिर इस ससार मे लौटकर नहीं आते, उस ओर हमारा नमस्कार है॥ २२ ॥ ऐसी सद्भावना प्रकट कर वे अपने ऊपर अधिकार रखने वाले एवं सब प्रकार से पवित्र जीवन विताने वाले (देवता लोग) जो निद्रा को जीत चुके थे और भूख प्यास की बात ही क्या ! जो हवा पीकर भी रह सकते थे, वे भगवान् हृषीकेश की उपासना करने लगे॥ २३ ॥ इसके अनन्तर उन्हे वहां एक आकाश-वाणी सुन पड़ी। जिसका किसीको अनुमान नहीं हो सकता था, जो बादलों की गर्जना की भाँति थी, जो सब दिशाओं मे गूँज गई और जो भगवान के भक्तों को अभय वचन या आश्वासन देने वाली थी॥ २४ ॥ वह इस प्रकार की थी:-

"ऐ श्रेष्ठ देवों ! तुम लोग मत डरो ! तुम सभी लोगों का कल्याण (मगल) हो ! प्राणियों के लिये मेरा दर्शन सब प्रकार से सुख-शान्ति देनेवाला है। (आकाशवाणी के द्वारा जो आश्वासन देता हूँ, वह कभी असत्य नहीं होता। मैं जो कुछ जिसे वचन देता हूँ, वही उसके लिये करता हूँ।) मैं उस दुरात्मा दानव की दुष्टता भली भाति जानता हूँ। उसका उम शासन बहुत तप चुका, अब उसका अन्त ही होने वाला है।) मैं उसकी शान्ति यथासम्भव शीघ्र करूँगा। कुछ काल तक तुम लोग और धैर्य धारण करो ! (क्योंकि समय से पहले कोई कार्य नहीं होता और भाग्य से अधिक किसीको कुछ नहीं मिलता।) इस बात को तुम लोग ध्यान से सुनो और निश्चित समझो कि जो देवता, वेद, गो, ब्राह्मण,साधु, धर्म अथवा मुझ भगवान से विद्वेष करता है, वह तत्काल वि नष्ट हो जाता है। यदि वह दुष्ट अपने पुत्र प्रह्लाद

२१—तस्योग्रदंडसंविग्नाः सर्वे लोकाः सपालकाः। अन्यत्रालब्धशरणाः शरणं ययुरच्युतं ॥

२२—तस्यै नमोस्तु काष्ठायै यत्रात्माहरिरीश्वरः। यद्गत्वा न निवर्तते शान्ताः सन्यासिनोऽमलाः ॥

२३—इति ते संयतात्मानः समाहित धियोऽमलाः। उपतस्थु हृषीकेशं विनिद्रा वायुभोजनाः ॥

२४—तेषामाविरभूद्वाणी अरूपा मेघनिःस्वना। सन्नादयंती ककुभः साधूनामभयंकरी ॥

से द्रोह करेगा तो मैं उसे बिना मारे नहीं छोड़ूँगा। ब्रह्मा ने उसे वरदान भी दिया है तो भी कोई चिन्ता नहीं। वह मेरे हाथों मारा जायगा। क्योंकि प्रह्लाद न तो किसीसे वैर रखता है न किसी का अनिष्ट चाहता है। वह तो सच्चा सत्याग्रही, अहिंसा में विश्वास रखनेवाला और सविनय अवज्ञा से उसकी दमन-नीति का विरोध करने वाला महात्मा है। अतः उनकी रक्षा का भार मेरे ऊपर है। तुम लोग निश्चिन्त रहो!"॥ २५—२८॥

नारद बोले—महाराज! देवता गण लोक-गुरु परमात्मा से ऐसा आश्वासन पाकर प्रसन्न हुये और उनके मन का उद्वेग नष्ट हो गया। उन्हें उसी समय जान पड़ा कि हिरण्यकशिपु भगवान के द्वारा मारा गया। वे लोग भगवान को प्रणाम कर अपने-अपने स्थान को गये॥२९॥ उस दैत्यराज हिरण्यकशिपु के बड़े अद्भुत कर्म करने वाले चार पुत्र थे। उनमें से केवल प्रह्लाद सब गुणों में श्रेष्ठ और भगवान के सच्चे उपासक हुये॥ ३०॥ प्रह्लाद ब्राह्मणों के हितैषी, बड़े शील वान, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, सब जीव मात्र को अपने आत्मा के समान मानने वाले और सबके प्रिय सखा थे॥ ३१॥ वे सेवक की भांति सज्जनों के चरणों की सेवा करते थे, पिता की भांति दीन-दुखियों पर दया रखते थे भाई,के समान बराबर के साथ बर्ताव करते थे और बड़े लोगों में ईश्वर की भावना रखकर उनसे नम्रता दरसाते थे। उत्तम विद्या,प्रचुर धन-सम्पत्ति, सुन्दर रूप और अच्छे कुलमें जन्म होने भी प्रह्लाद के मन में तनिक भी अभिमान न था। वे परम साधु के समान भगवद् भजन में लीन रहते थे। वे कभी मन में उद्विग्न नहीं होते थे। वे सब प्रकार के व्यसनों से दूर रहा करते थे। वे जो कुछ अपने कानों से सुनते थे,या आँखों से देखते थे,उनमें कभी लीन नहीं होते थे। वे सब पदार्थों को अनित्य जानते थे। वे सदैव इन्द्रिय,प्राण,शरीर और

२५—मा भैष्ट विबुधश्रेष्ठाः सर्वेषां भद्रमस्तु वः। मद्दर्शनं हि भूतानां सर्वश्रेयोपपत्तये॥

२६—ज्ञातमेतस्य दौरात्म्यं दैतेयापसदस्य च। तस्य शांतिं करिष्यामि कालं तावत्प्रतीक्षत॥

२७—यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु। धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति॥

२८—निर्वैराय प्रशान्ताय स्वसुताय महात्मने। प्रह्लादाय यदा द्रुह्येद्धनिष्येऽपि वरोर्जितं॥

नारद उवाच—

२९—इत्युक्ता लोकगुरुणा तं प्रणम्य दिवौकसः। न्यवर्तंत गतोद्वेगा मेनिरे चासुरं हत॥

३०—तस्य दैत्यपतेः पुत्राश्चत्वारः परमाद्भुताः। प्रह्लादोऽभून्महांस्तेषां गुणैर्महदुपासकः॥

३१—ब्रह्मण्यः शीलसंपन्नः सत्यसंधो जितेंद्रियः। आत्मवत्सर्वभूतानामेकः प्रियसुहृत्तमः॥

बुद्धि की साधना करते रहते थे। इसलिये उनके काम, क्रोध, मद, लोभ आदि विकार शान्त हो गये थे। यद्यपि उनका असुर के घर में जन्म हुआ था, तथापि उनका आचार-विचार देवताओं के समान था ॥ ३२—३३ ॥

राजन्! प्रह्लादजी में ऐसे दिव्य गुण थे कि बड़े-बड़े तत्त्वदर्शी विद्वान लोग भी जिन्हें ग्रहण करते हैं। जैसे परमात्मा के गुण छिपाने से नहीं छिपते, उसी प्रकार प्रह्लाद के गुण भी आजतक संसार में प्रकट हैं ॥ ३४ ॥ महाराज! यही कारण है कि देवता लोग दानवों के शत्रु होने पर भी दैत्यराज-पुत्र प्रह्लाद की प्रशंसा करते हैं। जहां साधु और भक्त पुरुषों की कथा गाई जाती है, वहां प्रह्लाद का पहले नाम आता है। फिर आप जैसे सज्जनों के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं है ॥ ३५ ॥

यह तो भक्त प्रह्लाद के गुणों की संक्षिप्त महिमा कही गई। वास्तव में उनके गुणों का वर्णन करना बड़ा कठिन है। वह धन्य है, जिसको भगवान वासुदेव में स्वाभाविक भक्ति है, फिर ऐसे पुरुष में क्यों न असंख्य गुण हों ॥३६॥ उन्होंने अपने बचपन में बाल-सुलभ कोई-खेल न खेला। किसी खिलौने में भी उनकी प्रीति न थी। भगवान की मूर्ति ही उनके खेलने की वस्तु थी। उसीमें मन लगाते थे। वे जड़ की भांति संसार को कुछ भी नहीं समझते थे। केवल भगवान-रूपी ग्रह ने उनकी आत्मा को ग्रस लिया था। वे इसीसे स्वतन्त्र होकर उन्हींमें लीन रहा करते थे ॥ ३७ ॥ बैठते-चलते, खाते-पीते, सोते-जागते, बातचीत करते भी, अर्थात् प्रत्येक अवस्था में उनका मन भगवान के चरणारविंद में लीन रहता था। अर्थात् उन्हें भक्ति के आगे किसी बात की चेतना नहीं रहती थी ॥ ३८ ॥ वे कभी-कभी अपने परम प्रिय आराध्यदेव की

३२—दासवत्सन्नतार्यांघ्रिः पितृवद्दीनवत्सलः। भ्रातृवत्सदृशे स्निग्धो गुरुष्वीश्वरभावनः।

विद्यार्थरूपजन्माढ्यो मानस्तम्भविवर्जितः ॥

३३—नोद्विग्नचित्तो व्यसनेषु निःस्पृहः श्रुतेषु दृष्टेषु गुणेष्ववस्तुदृक्।

दान्तेन्द्रियप्राणशरीरधीः सदा प्रशान्तकामो रहितासुरोऽसुरः ॥

३४—यस्मिन्महद्गुणा राजन् गृह्यन्ते कविभिर्मुहुः। न तेऽधुनापि धीयन्ते यथा भगवतीश्वरे ॥

३५—यं साधुगाथासदसि रिपवोऽपि सुरा नृप। प्रतिमानं प्रकुर्वन्ति किमुतान्ये भवादृशाः ॥

३६—गुणैरलमसंख्येयैर्माहात्म्यं तस्य सूच्यते। वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः ॥

३७—न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत्तन्मनस्तया। कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम् ॥

३८—आसीनः पर्यटन्नश्नञ्शयानः प्रपिबन्ब्रुवन्। नानुसंधत्त एतानि गोविन्दपरिरम्भितः ॥

चिन्ता में खूब रोते थे, कभी-कभी वे परमात्मा के ध्यान मे खूब हँसते थे। और कभी-कभी वे भगवच्चिंतन में उनकी लीलाओं का गान करते हुये आनन्द-सागर में गोते खाते थे ॥ ३९॥ कभी-कभी वे भक्ति के उद्रेक से 'नारायण'! नारायण!' हरे! हरे!' त्राहि मा शरणागतं दीन-बन्धो! अशरणशरण! भक्त-भव-भय-भजन! इत्यादि शब्द कह कर पुकारने लगते थे। अर्थात् अनेक नामों से भगवान का कीर्तन करते थे। कभी-कभी वे लज्जा त्याग कर आनन्द के मारे नाचने लगते थे। कभी कभी वे परमात्मा के ध्यान मे अपनी सुधिबुधि खोकर तन्मय हो जाते थे ॥ ४०॥ कभी कभी वे कीर्तन करते-करते मौन धारण कर लेते थे। उनका शरीर पुलकायमान हो जाता था। कभी-कभी वे आनन्दित होकर अपनी आखों से अश्रुधार बहाते और नेत्र बन्द कर भगवान की मनोहारिणी मूर्ति की शोभा हृदय मे देखा करते थे ॥ ४१ ॥ वे उत्तम यश देने वाले भगवान के चरण-कमलों की सेवा से अपने को सर्व-सम्पन्न कर अपने को परम धन्य मानते थे और बुरे सग से दूषित लोगों के मन को भी अपने उपदेश आदि से शान्ति प्रदान करते थे ॥ ४२ ॥ हे राजन्! ऐसे महाभागवत (भगवद्-भक्त) सौभाग्य-शाली और महात्मा प्रह्लाद (अपने पुत्र) से उनका पिता दैत्यराज हिरण्यकशिपु अकारण द्वेष करने लगा ॥ ४३ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे सुन्दर व्रत करने वाले और देवों में श्रेष्ठ ऋषि नारद जी! इस बात के जानने की मेरे मन मे बड़ी प्रबल इच्छा है कि हिरण्यकशिपु प्रह्लाद का पिता अपने शुद्ध चित्त वाले और परम साधु पुत्र से क्यों इतना जलता था तथा उसे नाना प्रकार के कष्ट देता था? ॥ ४४ ॥ ससार मे यह देखा जाता है कि अयोग्य, दुर्बुद्धि और प्रतिकूल पुत्रों के माता-पिता

३९—क्वचिद्रुदति वैकुंठचिंता शबलचेतनः। क्वचिद्धसति तच्चिंताह्लादउद्गायति क्वचित् ॥

४०—नदति क्वचिदुत्कंठो विलज्जो नृत्यति क्वचित्। क्वचित्तद्भावनायुक्तस्तन्मयोऽनुचकार ह ॥

४१—क्वचिदुत्पुलकस्तूष्णीमास्ते संस्पर्शनिर्वृतः। अस्पद प्रणयानंदसलिलामीलितेक्षणः ॥

४२—स उत्तमश्लोक पदारविंदयोर्निषेवयाऽकिंचन संगलब्धया।

तन्वन्परां निर्वृतिमात्मनो मुहुर्दुःसंगदीनान्यमनः शम व्यधात् ॥

४३—तस्मिन्महाभागवते महाभागे महात्मनि। हिरण्यकशिपू राजन्नकरोदघमात्मजे ॥

युधिष्ठिर उवाच—

४४—देवर्षि एतदिच्छामो वेदितुं तव सुव्रत। यदात्मजाय शुद्धाय पिताऽदात्साधवे ह्यघ ॥

भी उन्हें शत्रु के समान जानकर दुःख नहीं देते। शिक्षा देने के लिये क्रुद्ध होने परभी उनके साथ ऐसा बुरा व्यवहार नहीं करते ॥४५॥ और जो पुत्र कुल में सुपात्र उत्पन्न हुआ हो ! जो माता-पिता और गुरु की आज्ञा पालन करने वाला तथा सेवा-शुश्रूषा करने वाला हो और सज्जन स्वभाव का हो, उसके साथ कोई कैसे वैर कर सकता है ? ब्रह्मन् ! इस बात में मेरे मन को बड़ा कौतूहल है। इस शंका का निवारण कर आप मुझे सन्तुष्ट करिये ! क्योंकि अपने पुत्र के द्वेष करने के कारण ही प्रह्लाद का पिता हिरण्यकशिपु, भगवान के द्वारा मारा गया। इसमें कुछ रहस्य अवश्य है। आप जानते होंगे ! अतः वह इतिहास अवश्य आप के द्वारा प्रकट होगा॥ ४६ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कंध का चौथा अध्याय समाप्त

४५—पुत्रान्विप्रप्रतिकूलान्स्वान्पितरः पुत्रवत्सलाः। उपालभन्ते शिक्षार्थं नैवाघमपरो यथा ॥

४६—किमुतानुवश्यान्साधूंस्तादृशान् गुरुदेवतान्। एतत्कौतूहलं ब्रह्मन्नस्माकं विषम प्रभो ॥
पितुः पुत्राय यद्द्वेषो मरणाय प्रयोजितः ॥

इतिश्रीभागवतमहापुराणेसप्तमस्कंधेप्रह्लादचरितेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पांचवाँ अध्याय

प्रह्लाद के द्वारा नवधा भक्ति का वर्णन और
हिरण्यकशिपु के द्वारा क्लेश पाना

नारद बोले—दैत्यों ने शुक्राचार्य को अपना पुरोहित बनाया था। उनके दो पुत्र थे, जिनका नाम शंड और आमर्क था। उन दोनों का घर दैत्यराज के समीप ही था॥ १॥ शडामर्क नीति के अच्छे ज्ञाता थे, अतः हिरण्यकशिपु ने उन दोनों को अपने पुत्र प्रह्लाद को पढ़ाने के लिये नियुक्त किया। वे राजकुमार के अतिरिक्त दूसरे दैत्य-बालकों को भी शिक्षा देते थे॥ २॥ गुरु के आगे तो प्रह्लाद जो पढ़ाया जाता था, वही पाठ सुनते व पढते थे। लेकिन उसपर ध्यान नहीं देते थे। पीछे वे नित्य-अनित्य और सत-असत के विचारों मे लीन हो जाया करते थे, क्योंकि उन्हे सांसारिक बातों की शिक्षा उचित और अच्छी नहीं जान पड़ती थी॥ ३॥

हे पांडव! एक दिन हिरण्यकशिपु ने अपने बेटे प्रह्लाद को गोद में लेकर बड़े प्यार से पूछा कि बेटा! बताओ तो तुम्हें क्या वस्तु अच्छी लगती है? मैं उसे तुम्हारे लिये अभी मँगा दूँ॥ ४॥

प्रह्लाद बोले—पिताजी! मुझे तो एकान्त में भगवान् की भक्ति अच्छी लगती है। हे असुरों के राजा! यह घर तो शरीर-धारियों का आत्महनन कराने वाला अन्धकूप है। इसमें पड़कर लोगों की बुद्धि सदा अशान्त रहती है और यह नरक मे ले जाता है। इसलिये उसे त्याग कर वन मे भगवान् की शरण मे जाना चाहिये। वास्तव मे उनके भजन से ही मन को शान्ति हो सकती है, उन्हींके चिन्तन से आत्मा का निस्तार होता है और उन्हींका आश्रय लेने से भवसागर से बेडा पार होता है॥ ५॥

नारद उवाच—

१—पौरोहित्याय भगवान्वृत. काव्य' किलासुरै.। शंडामर्कौ सुतौ तस्य दैत्यराजगृहान्तिके॥

२—तौ राज्ञा प्रापित बाल प्रह्लाद नयकोविद। पाठयामासतु: पाठ्यानन्यांश्चासुरबालकान्॥

३—यत्तत्र गुरुणा प्रोक्त शुश्रुवेऽनुपपाठ च। न साधु मनसा मेने स्वपरासद्ग्रहाश्रयं॥

४—एकदाऽसुरराट् पुत्रमङ्कमारोप्य पांडव। पप्रच्छ कथ्यता वत्स मन्यते साधु यद्भवान्॥

प्रह्लाद उवाच—

५—तत्साधु मन्येऽसुरवर्यदेहिनां सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात्।
हित्वात्मपातं गृहमंधकूप वन गतो यद्धरिमाश्रयेत॥

नारद बोले—अपने पुत्र को शत्रुओं के पक्ष में बोलते हुए सुनकर दैत्य हँसा (और बोला)—' शत्रुओं की बुद्धि से बच्चों की मति फिर जाती है ।। ६ ।। अतः गुरु के घर में इस बालक के रहने की अच्छी व्यवस्था करनी चाहिए, जिसमें विष्णु के भक्त वेष बदलकर इसकी बुद्धि न फेर सकें ।। ७ ।। दैत्य के पुरोहितों ने घर लाए गए प्रह्लाद को बुलाकर और मधुर-वाणी से उसकी प्रशंसा करके उससे पूछा कि 'वत्स प्रह्लाद, तुम्हारा कल्याण हो, सच बतलाओ, झूठ न कहना कि और बालकों में बुद्धि का जो विपर्यय (उलट-फेर) नहीं होता, वह तुम्हारी बुद्धि में कैसे होता है ? ।। ८-९ ।। तुम्हारी बुद्धि किसी और ने फेर दी है कि वह स्वयं ही फिर गई है ? हे कुलनन्दन ! सुनने की इच्छा रखनेवाले गुरुओं से तुम यह कहो ।। १० ।।

प्रह्लाद बोला—जिनकी माया से मनुष्यों में अपने और पराए का असत् आग्रह उत्पन्न होता है और जिनकी माया से मोहित हुई बुद्धिवाले तुम लोगों में वह दीख पड़ता है, उन भगवान् को नमस्कार ।। ११ ।। भगवान् जब अनुकूल होते हैं तभी पशुओं के समान 'मैं दूसरा हूँ तथा यह दूसरा है, यह सांसारिक भेद-बुद्धि नष्ट होती है ।। १२ ।। जिसका वर्णन करना कठिन है तथा जिसके मार्ग में वेदवादी ब्रह्मा आदि भी भूला करते है, उन भगवान् को ही अविवेकी लोग अपना और पराया कहते हैं और वे भगवान् ही मेरी मति फिरा देते हैं ।। १३ ।। ब्रह्मन् ! चुम्बक के समीप जैसे लोहा अपने आप ही घूमता है, उसी प्रकार भगवान् की समीपता से मेरी मति फिर जाती है । यह समीपता मुझे कैसे मिली,यह मैं नहीं जानता ।। १४ ।।

नारद उवाच—

६—श्रुत्वा पुत्रगिरो दैत्यः परपक्षसमाहिताः । जहास बुद्धिर्बालानां भिद्यते परबुद्धिभिः ।।

७—सम्यग्विधार्यतां बालो गुरुगेहे द्विजातिभिः । विष्णुपक्षैः प्रतिच्छन्नैर्नभिद्येतास्य धीर्यथा ।।

८—गृहमानीतमाहूय प्रह्लादं दैत्ययाजकाः । प्रशस्य श्लक्ष्णया वाचा समपृच्छन्त सामभिः ।।

९—वत्स प्रह्लाद भद्रं ते सत्यं कथय मा मृषा । बालानति कुतस्तुभ्यमेष बुद्धिविपर्ययः ।।

१०—बुद्धिभेदः परकृत उताहो ते स्वतोऽभवत् । भण्यतां श्रोतुकामानां गुरूणां कुलनन्दन ।।

प्रह्लाद उवाच—

११—स्वः परश्चेत्यसद्ग्राहः पुंसां यन्मायया कृतः । विमोहितधियां दृष्टस्तस्मै भगवते नमः ।।

१२—स यदानुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिर्विभिद्यते । अन्य एष तथान्योऽहमिति भेदगतासती ।।

१३—स एष आत्मा स्वपरेत्यबुद्धिभिर्दुरत्ययानुक्रमणो निरूप्यते ।
मुह्यन्ति यद्वर्त्मनि वेदवादिनो ब्रह्मादयो ह्येष भिनत्ति मे मतिम् ।।

१४—यथा भ्राम्यत्ययो ब्रह्मन् स्वयमाकर्षसन्निधौ । तथा मे भिद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यदृच्छया ।।

नारद बोले—महामति प्रह्लाद ब्राह्मणों से इतना कहकर चुप हो गया। उस दीन राजा के सेवक (अर्थात् गुरु) ने क्रोधित होकर प्रह्लाद की भर्त्सना की और कहा कि " अरे, बेंत तो लाना, हम लोगों की अपकीर्ति कराने वाले, कुलांगार और दुर्बुद्धि इस बालक को दंड देने का ही समय आया है। दैत्यों के कुलरूपी चन्दन के वन में यह काँटे का वृक्ष उगा है, क्योंकि दैत्यों के मूल को खोदने के लिए विष्णुरूपी कुल्हाड़े का यह बालक डण्डा बन रहा है ॥ १५-१७ ॥ इस प्रकार प्रह्लाद को अनेक प्रकार से डरा-धमकाकर वे उसे धर्म,अर्थ और कामशास्त्र के ग्रन्थ पढ़ाने लगे ॥ १८ ॥ अनन्तर साम, दाम, दण्ड और भेद आदि नीतियों में निपुण हुआ जानकर, माता के द्वारा नहलाए और सिंगारे गए प्रह्लाद को वे दैत्यराज के पास ले गये ॥ १९ ॥ पैर पर पड़े हुए पुत्र को आशीर्वाद से अभिनन्दित करके तथा देर तक हृदय से लगाकर हिरण्यकशिपु ने अत्यन्त सुख पाया ॥ २० ॥ युधिष्ठिर ! पुत्र को गोद मे बैठाकर, उसका माथा सूँघकर तथा आंसू से उसे नहलाते हुए हिरण्यकशिपु ने प्रसन्न मुख वाले प्रह्लाद से यह कहा ॥ २१ ॥

हिरण्यकशिपु बोला—प्रह्लाद ! बेटा ! इतने समय मे तुमने गुरु के निकट जो सीखा हो और जिस विषय का तुम्हे अच्छा अभ्यास हो, वह तुम मुझे सुनाओ ॥ २२ ॥

प्रह्लाद बोला – विष्णु का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरण सेवा, पूजा, वदन, दासता, मित्रता और उन्हें अपने शरीर का अर्पण, यह नौ प्रकार की भक्ति यदि मनुष्य कर सके और भगवान् को अर्पण करके करे तो इसे मैं सब से श्रेष्ठ विद्या समझता हूँ ॥ २३-२४ ॥

१५—एतावद् ब्राह्मणायोक्त्वा विरराम महामतिः। त निर्भर्त्स्याथ कुपित- स दीनो राजसेवकः ॥

१६—आनीयतामरे वेत्रमस्माकमयशस्करः। कुलागारस्य दुर्बुद्धेश्चतुर्थोऽस्योदितो दम. ॥

१७—दैतेयचदनवने जातोऽय कटकद्रुमः। यन्मूलोन्मूलपरशोर्विष्णोर्नालायितोऽर्भकः ॥

१८—इति त विविधोपायैर्भीषयस्तर्जनादिभिः। प्रह्लाद ग्राहयामास त्रिवर्गस्योपपादन ॥

१९—तत एन गुरुर्ज्ञात्वा ज्ञातज्ञेय चतुष्टय। दैत्येन्द्र दर्शयामास मातृमृष्टमलंकृत ॥

२०—पादयोः पतित बालं प्रतिनद्याशिषाऽसुर.। परिष्वज्यचिर दोर्भ्यां परमामाप निर्वृतिं ॥

२१—आरोप्याङ्कमवघ्राय मूर्धन्यश्रुकलाम्बुभिः। आसिञ्चन्विकसद्वक्त्र मिदमाह युधिष्ठिर ॥

हिरण्यकशिपुरुवाच—

२२—प्रह्लादानूच्यता तात स्वधीत केनचिदुत्तम। कालेनैतावताऽऽयुष्मन्यदशिक्षद् गुरोर्भवान ॥

प्रह्लाद उवाच —

२३— श्रवण कीर्तन विष्णोः स्मरणं पादसेवन। अर्चन वंदन दास्य सख्य मात्मनिवेदनं ॥

२४—इति पुंसाऽर्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा। क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तम ॥

पुत्र की ये बातें सुनकर हिरण्यकशिपु के ओठ क्रोध से फड़कने लगे। उसने गुरु-पुत्र से यह कहा- ॥ २५ ॥ हे अधम ब्राह्मण! हे दुर्मति! तुमने मेरा अनादर करके मेरे शत्रु के पक्ष में रहते हुए इस बालक को यह बुरी शिक्षा क्यों दी? संसार में झूठी मित्रता और कपट का वेष रखनेवाले दुष्ट होते हैं, किन्तु समय पाकर उनकी कलई खुल जाती है, जैसे पापी को रोग होने पर उसका पाप प्रकट हो जाता है ॥ २६-२७ ॥

गुरुके पुत्र बोले—हे इंद्रशत्रु! तुम्हारा यह पुत्र न तो मेरी सिखाई बात कहता है, न किसी और की, यह तो इसकी स्वभाविक बुद्धि है, अतः क्रोध दूर करो और हमें अनुचित दोष न दो ॥ २८ ॥

नारद बोले—गुरु के ऐसा उत्तर देने पर हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद से पुन. पूछा कि "हे दुष्ट! यदि गुरु के उपदेश से तेरी यह दुष्ट बुद्धि नहीं हुई तो कहाँ से हुई है" ॥ २९ ॥

प्रह्लाद बोला—घर की चिंता में ही आसक्त, भोगने वाले विषयों को ही बार२ भोगते हुए और न जीती हुई इंद्रियों के द्वारा जन्म-मरण पाते हुए मनुष्यों की बुद्धि गुरु के उपदेश से, अपने आप अथवा परस्पर की बातों से भी भगवान् को नहीं प्राप्त करती ॥ ३० ॥ ब्राह्मण आदि नामों वाली वेदवाणी रूप ईश्वर की डोरी में बँधे हुए, विषय-वासनाओं में आसक्त और ऐसों ही को गुरु मानने वाले लोग भगवान् को नहीं जानते और अंधा जिस प्रकार अंधे को लेकर चलने पर रास्ता भूलकर गढे में जा गिरता है, वैसे ही वे भी गढ़े में गिरते हैं ॥ ३१ ॥

२५—निशम्यैतत्सुतवचो हिरण्यकशिपुस्तदा। गुरुपुत्रमुवाचेदं रुषा प्रस्फुरिताधरः ॥

२६—ब्रह्मबंधो किमेतत्ते विपक्षं श्रयतासता। असारं ग्राहितो बालो मामनादृत्य दुर्मते ॥

२७—संति ह्यसाधवो लोके दुर्मैत्राश्छद्मवेषिणः। तेषामुदेत्यघं काले रोगः पातकिनामिव ॥

गुरुपुत्र उवाच—

२८—नमत्प्रणीतं न पर प्रणीतं सुतो वदत्येष तवेंद्रशत्रो।

नैसर्गिकीयं मतिरस्य राजन्नियच्छ मन्युं कददाः स्ममानः ॥

नारद उवाच—

२९—गुरुणैवं प्रतिप्रोक्तो भूय आहासुरः सुतं। न चेद् गुरुमुखीयं ते कुतोऽभद्राऽसती मतिः ॥

प्रह्लाद उवाच—

३०—मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानां।

अदांत गोभिर्विशतां तमिस्रं पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानां ॥

३१—न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं दुराशया ये बहिरर्थमानिन।

अंधा यथांधैरुपनीयमाना वाचीशतंत्र्यामुरुदाम्नि बद्धा. ॥

सब प्रकार के अहकारों से रहित महात्माओं के चरण-कमलों की धूलि में जब तक ये लोग स्नान नहीं करते, तब तक इनकी बुद्धि भगवान् के चरणों तक नहीं पहुँचती और इस कारण संसाररूपी अनर्थ का नाश नहीं होता ॥ ३२ ॥

पुत्र के ऐसा कहकर चुप हो जाने पर क्रोध से अंधे हुए हिरण्यकशिपु ने उसे गोद से भूमि पर पटक दिया ॥ ३३ ॥ असहनशीलता और क्रोध से युक्त होने के कारण उसकी आँखे लाल हो गई थीं। उसने कहा "हे दैत्यो! इसे ले जाओ और शीघ्र ही मार डालो, क्योंकि यह मार डालने के योग्य है ॥ ३४ ॥ यही अधम मेरे भाई को मारने वाला है, क्योंकि अपने सम्बंधियों को छोड़कर यह अपने चाचा को मारने वाले विष्णु के चरणों की दास के समान पूजा करता है ॥ ३५ ॥ न छोड़ा जा सकने वाला माता-पिता के स्नेह को जिसने पाँच वर्ष की अवस्था में ही छोड़ दिया है, वह भला विष्णु की क्या भलाई करेगा? ॥ ३६ ॥ पराया होने पर भी जो औषधि के समान हितकारी हो, उसे पुत्र समझना चाहिये और अपने शरीर से उत्पन्न पुत्र भी यदि अनिष्ट करने वाला होतो उसे रोग के समान जानना चाहिए। यदि अपने शरीर के अग भी दुःख देने वाले हों तो उन्हे भी काट डालना चाहिए, जिससे बाकी शरीर सुख से रह सके ॥ ३७ ॥ मुनियों की दुष्ट इन्द्रियों के समान अपना होते हुए भी यह छोकरा शत्रु का काम कर रहा है। अतः खाते-सोते अथवा बैठे हुए इसको विष देने आदि समस्त उपायों से मार डालना चाहिये ॥ ३८ ॥ स्वामी के द्वारा आज्ञा पाकर शूल धारण करने वाले, तीक्ष्ण डाढ वाले, विकराल मुख और लाल बालों वाले वे राक्षस 'मारो, काटो' यह भयङ्कर नाद करते हुए प्रह्लाद के समस्त मर्मस्थानों मे शूल से प्रहार करने लगे ॥ ३९-४० ॥ सब के अगोचर और सर्वस्वरूप परब्रह्म मे

३२—नैषां मतिस्तावदुरुक्रमांघ्रिं स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं निष्किंचनानां न वृणीत यावत् ॥

३३—इत्युक्त्वोपरतं पुत्रं हिरण्यकशिपू रुषा । अन्धीकृतात्मा स्वोत्सङ्गान्निरस्यत महीतले ॥

३४—आहामर्षरुषाविष्टः कषायीभूतलोचनः । वध्यतामाश्वयं वध्यो निःसारयत नैऋताः ॥

३५—अयं मे भ्रातृहा सोऽयं हित्वा स्वान्सुहृदोऽधमः । पितृव्यहन्तुर्यः पादौ विष्णोर्दासवदर्चति ॥

३६—विष्णोर्वा साध्वसौ किंनु करिष्यत्यसमञ्जसः । सौहृदं दुस्त्यजं पित्रोरहाद्यः पञ्चहायनः ॥

३७—परोऽप्यपत्यं हितकृद्यथौषधं स्वदेहजोऽप्यामयवत्सुतोऽहितः ।
छिंद्यात्तदंगं यदुतात्मनोऽहितं शेषं सुखं जीवति यद्विवर्जनात् ॥

३८—सर्वैरुपायैर्हंतव्यः सम्भोजशयनासनैः । सुहृल्लिंगधरः शत्रुर्मुनेर्दुष्टमिवेंद्रियं ॥

३९—नैऋतास्ते समादिष्टा भर्त्रा वै शूलपाणयः । तिग्मदंष्ट्र करालास्यास्ताम्रश्मश्रुशिरोरुहाः ॥

४०—नदंतो भैरवान्नादांश्छिन्धि भिन्धीति वादिनः । आसीनं चाहनञ्छूलैः प्रह्लादं सर्वमर्मसु ॥

जिसका चित्त जुड़ा हुआ था ऐसे प्रह्लाद के ऊपर दैत्यों के सब प्रहार व्यर्थ गये, जैसे पापी मनुष्यों के द्वारा किए गये सत्कर्म व्यर्थ होते हैं ॥४१॥ युधिष्ठिर ! इस प्रयत्न को व्यर्थ होता देख मन में शंकित हुआ हिरण्यकशिपु बड़े आग्रह से प्रह्लाद को मारने का उपाय करने लगा ॥ ४२ ॥ उसने प्रह्लाद को दिग्गजों के पास छोड़ा, सांप से डसवाया, अभिचार (मारणकृत्य आदि का प्रयोग किया, पर्वत के शिखरों पर से गिराया, माया का प्रयोग किया, खड्ढे वगैरह में रोक रखा, विष दिया, खाना नहीं दिया, बर्फ मे, वायु मे, अग्नि मे और, पानी में डाला, पर्वत उखाड़कर उसके ऊपर पटका, इस प्रकार के अनेक उपाय करके भी जब वह अपने निर्दोष पुत्र को नहीं मार सका तो उसे बड़ी चिन्ता हुई और कोई उपाय नहीं सूझा ॥ ४३-४४ ॥ इसको मैंने बहुत कठोर बातें कहीं, मार डालने के उपाय किए, किन्तु यह अपने तेज से समस्त द्रोहों तथा अभिचार प्रयोगों आदि से भी बच गया ॥ ४५ ॥ यह मेरे पास रहता है, बालक है, फिर भी निर्भयचित्त और समर्थ होने के कारण मेरी शत्रुता को नहीं भूलता अर्थात् मुझसे शत्रुता करता है, जिस प्रकार अजीगर्त के मझले बेटे शुनःशेप ने माता-पिता के द्वारा बेचा जाकर उनका अपकार नहीं भुलाया और उनके विपक्षी विश्वामित्र के आश्रय में जाकर दूसरे गोत्र का बन गया, अथवा जिस प्रकार कुत्ते की पूँछ अपना स्वभाव नहीं छोड़ती, कितना भी उपाय करने पर टेढ़ी की टेढ़ी ही रहती है, उसी प्रकार यह प्रह्लाद भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता ॥ ४६ ॥ यह बड़ा प्रभावशाली है और किसीसे भी नहीं डरता और अमर भी है तो क्या इसके विरोध से ही मेरी मृत्यु होगी ? लेकिन नहीं, मेरी तो मृत्यु हो ही नहीं सकती ॥ ४७ ॥ इस प्रकार की चिन्ता से जिसकी कांति कुछ मलिन हो गई थी और जो नीचा मुँह करके बैठा था, उस हिरण्यकशिपु से शुक्राचार्य के पुत्र शंड और अमर्क ने एकान्त में कहा ॥ ४८ ॥ आपने अकेले ही त्रैलोक्य को जीत लिया है और आपकी भौंहों के टेढ़ी होते ही

४१—परे ब्रह्मण्यनिर्देश्ये भगवत्यखिलात्मनि । युक्तात्मन्यफला आसन्न पुण्यस्येवसत्क्रियाः ॥

४२—प्रयासेऽपहृते तस्मिन्दैत्येंद्रः परिशंकितः । चकार तद्वधोपायान्निर्बंधेन युधिष्ठिर ॥

४३—दिग्गजैर्दंदशूकैश्च अभिचारावपातनैः । मायाभिः सन्निरोधैश्च गरदानैरभोजनैः ॥

४४—हिमवाय्वग्निसलिलैः पर्वताक्रमणैरपि । न शशाक यदा हंतुमपापमसुरः सुतं ॥
चिंता दीर्घतमा प्राप्तस्तत्कर्तुं नाभ्यपद्यत ॥

४५—एष मे बह्वसाधूक्तो वधोपायाश्च निर्मिताः । तैस्तैर्द्रोहैरसद्धर्मैर्मुक्तः स्वेनैव तेजसा ॥

४६—वर्तमानोऽविदूरे वै बालोप्यजडधीरयं । न विस्मरति मेऽनार्यं शुनः शेप इव प्रभुः ॥

४७—अप्रमेयानुभावोयमकुतश्चिद्भयोऽमरः । नूनमेतद्विरोधेन मृत्युर्मे भविता न वा ॥

४८—इति तं चिंतया किंचिन्म्लानश्रियमधोमुखं । शंडामर्कावौशनसौ विविक्त इति होचतुः ॥

समस्त लोकपाल घबरा जाते हैं, अतः हम आपके चिन्तित होने का कारण नहीं देखते और बालक के गुण-दोष को भी इतना महत्त्व नहीं देना चाहिए। फिर भी जबतक शुक्राचार्य नहीं आ जाते, तब तक आप इसे वरुण पाश से बाँधकर रखे, जिससे यह डरकर कहीं भाग न जाय। अवस्था होने पर तथा आर्यो की सेवा से मनुष्यों की बुद्धि सुधर जाती है ॥ ४९-५० ॥ गुरु-पुत्रों के ऐसा करने पर उन्हें वैसा ही कहने की आज्ञा देकर हिरण्यकशिपु ने कहा कि गृहस्थाश्रम मे रहने वा राजाओं का जो धर्म हो उसकी शिक्षा आप इसे दे ॥५१॥ राजन्! अनतर विनयी और नम्र प्रह्लाद को वे क्रम से धर्म, अर्थ और काम की शिक्षा देने लगे॥ ५२ ॥ गुरुओं ने भली भाति प्रह्लाद को उन विषयों की शिक्षा दी, किन्तु उसे यह शिक्षा अच्छी न लगी, क्योंकि संसार के सुख मे लिप्त मनुष्यों ने उन विषयों की रचना की थी॥ ५३ ॥ घर के कामकाज से जब गुरु लोग बाहर चले जाते थे, उस समय अवकाश पाकर समान अवस्थावाले दूसरे बालक खेलने के लिए प्रह्लाद को बुलाते थे॥ ५४ ॥ तब उनकी जन्म-मरण आदि की स्थिति को जानने वाला महापडित प्रह्लाद उन्हे ही अपने पास बुलाकर हँसते हुए कृपापूर्वक उन्हें उपदेश देता था॥ ५५ ॥ विषयी पुरुषों के वचनों अथवा चेष्टाओं से जिनकी बुद्धि दूषित नहीं हुई थी, ऐसे वे बालक प्रह्लाद की श्रेष्ठता के कारण खिलौनो आदि को छोडकर तथा उसमे मन और आँखें लगाकर उसके पास बैठते थे। राजन्! दयालु सबका मित्र और महावैष्णव प्रह्लाद उन बालकों से इस प्रकार कहता था॥ ५६-५७ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवे स्कंध का पाचवां अध्याय समाप्त

४९—जित त्वयैकेन जगत्त्रयं भ्रुवोर्विजृम्भणत्रस्तसमस्तधिष्ण्यप।
न तस्य चिन्त्यं तव नाथ चक्ष्महे न वै शिशूनां गुणदोषयोः पदं ॥
५०—इमं तु पाशैर्वरुणस्य बध्वा निधेहि भीतो न पलायते यथा।
बुद्धिश्च पुंसो वयसार्यसेवया यावद् गुरुर्भार्गव आगमिष्यति ॥
५१—तथेति गुरुपुत्रोक्त मनुज्ञायेदमब्रवीत्। धर्मोह्यस्योपदेष्टव्यो राज्ञां यो गृहमेधिनां ॥
५२—धर्ममर्थं च कामं च नितरां चानुपूर्वशः। प्रह्लादायोचतू राजन्प्रश्रयावनताय च ॥
५३—यथात्रिवर्गं गुरुभिरात्मने उपशिक्षितं। न साधु मेने तच्छिक्षां द्वन्द्वारामोपवर्णितां ॥
५४—यदाचार्यः परावृत्तो गृहमेधीयकर्मसु। वयस्यैर्बालकैस्तत्र सोपहूतः कृतक्षणैः ॥
५५—अथ तान् श्लक्ष्णया वाचा प्रत्याहूय महाबुध। उवाच विद्वांस्तन्निष्ठां कृपया प्रहसन्निव ॥
५६—ते तु तद्गौरवात्सर्वे त्यक्तक्रीडापरिच्छदाः। बाला नदूषितधियो द्वन्द्वारामेरितेहितैः ॥
५७—पर्युपासत राजेन्द्र तन्न्यस्तहृदयेक्षणाः। तानाह करुणो मैत्रो महाभागवतोऽसुरः ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

छठवाँ अध्याय

प्रह्लाद का बालकों को उपदेश देना

प्रह्लाद बोला—ज्ञानी पुरुषों को बचपन से ही वैष्णवधर्म का पालन करना चाहिये, क्योंकि मनुष्य का जन्म पुरुषार्थ का देनेवाला है, अनित्य है और दुर्लभ है ॥ १ ॥ ससार में मनुष्यों को भगवान के चरणों की सेवा मे ही रहना चाहिये, क्योंकि भगवान सबकी आत्मा होने के कारण प्रिय और मित्र हैं ॥२॥ हे दैत्यों! देह धारण करने पर विषय का सुख तो पशु आदि सब योनियों में मिलता है। जिस प्रकार दैवगति से बिना प्रयत्न के ही दु ख मिलता है, उसी प्रकार सुख भी मिलता है, अतः उस विषय सुख के लिए प्रयत्न न करना चाहिये, जिसमे केवल आयु का व्यय होता है, क्योंकि उससे परम कल्याण रूप भगवान् के चरणों की प्राप्ति नहीं होती ॥ ३—४ ॥ ससार मे जाकर जबतक यह शरीर परिपूर्ण हो और असमर्थ न हो जाय इतने ही में शीघ्रता पूर्वक विज्ञ लोगों को कल्याण के लिए प्रयत्न करना चाहिये ॥ ५ ॥ मनुष्य की आयु सौ वर्ष की है, किंतु अजितेंद्रिय पुरुषों की आयु उससे आधी ही है, क्योंकि आधी आयु तो वह निद्रारूपी महा मोह में पडकर सोया ही रहता है ॥६॥ बीस वर्ष बचपन के अज्ञान में और किशोर अवस्था की क्रीडा मे बीत जाते हैं। बीस वर्ष वृद्धावस्था से ग्रस्त असमर्थता मे बीतते हैं और शेष आयु चारों ओर से दु.ख से भरी हुई तृष्णा से और बलवान् मोह से घर में आसक्त तथा कर्तव्यज्ञान शून्य अवस्था मे व्यर्थ ही बीत जाती है ॥७—८॥ जिसने इंद्रियों को जीत न लिया हो

प्रह्लाद उवाच—

१—कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान्भागवतानिह । दुर्लभ मानुष जन्म तदप्यध्रुवमर्थदं ॥

२—यथाहि पुरुषस्येह विष्णोः पादोपसर्पण । यदेश सर्वभूताना प्रिय आत्मेश्वरः सुहृत् ॥

३—सुखमैन्द्रियक दैत्या देहयोगेन देहिना । सर्वत्र लभ्यते दैवाद्यथा दु खमयत्नत ॥

४—तत्प्रयासो न कर्तव्यो यत आयुर्व्यय' पर । न तथा विंदते क्षेम मुकुंदचरणाम्बुज ॥

५—ततो यतेत कुशलः क्षेमाय भयमाश्रितः । शरीर पौरुष यावन्न विपद्येत पुष्कलं ॥

६—पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदर्धं चाजितात्मनः । निष्फलं यदसौ रात्र्या शेतेऽन्ध प्रापितस्तमः ॥

७—मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीडतो याति विंशति. । जरया ग्रस्तदेहस्य यात्यकल्पस्य विंशतिः ॥

८—दुरापूरेण कामेन मोहेन च बलीयसा । शेष गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्यापयाति हि ॥

ऐसा कौन मनुष्य घर मे आसक्त तथा स्नेह के दृढ़ पाशों से बँधे हुए अपने आप को मुक्त कर सकता है ? ॥ ९ ॥ जो धन प्राणों से भी अधिक प्रिय है । तथा जिसे चोर नौकर और वणिक् अपने प्राणों का त्याग करना स्वीकार करके भी लेते हैं, उस धन की तृष्णा को कौन छोड सकता है ॥१०॥ लड़के, सुदर लडकियाँ, भाई, दीन पिता-माता, अत्यत सुदर सामनों से युक्त घ र, कुल परपरा की अजीविका, घर के पशु तथा नौकरों को याद करता, स्नेह से बँधा, लोभ के कारण अतृप्त, तृष्णा वाला, उपस्थ तथा जिह्वा के स्वाद को ही प्रधान मानने वाला तथा अत्यधिक मोह के कारण उसमे लिप्त हुआ प्राणी रेशम के कीड़े के समान अपने ही कार्यों से अपने को फँसा लेता है, वह भला अनुकपायुक्त पत्नी के साथ एकान्त विहार और मनोहर बातचीत करना कैसे छोड़ सकता है ? संबन्धियों तथा मधुर-भाषी बच्चों का संग कैसे छोड सकता है ? ॥ ११-१३ ॥ मोह में पड़ा हुआ मनुष्य कुटुंब आदि के पोषण में आयु का क्षीण होना और पुरुषार्थ का नष्ट होना नहीं जान पाता । कुटुब में प्रीति रखने वाला मनुष्य सब जगह तीन प्रकार के तापों से दुखी होते रहने पर भी उसे दुख नहीं मानता ॥ १४ ॥ जिनने इन्द्रियों को नहीं जीता है तथा जिसका चित्त धन मे ही लगा हुआ है, ऐसा कुटुम्बी मनुष्य यह जानता है कि पराया धन चुराने वाले को इस लोक तथा परलोक में क्या-क्या कष्ट होता है, किन्तु तृष्णा शांत न होने के कारण वह फिर भी चोरी करता है ॥ १५ ॥ हे दैत्यों ! यदि विद्वान पुरुष भी अपने और पराए मे इस प्रकार की भेद-बुद्धि रखकर कुटुम्ब का पोषण करता है तो वह आत्म-विचार करने में समर्थ नहीं होता और मूढ़ के समान अन्धकार मे पड़ा रहता है ॥१६॥ पुत्र-पौत्र आदि की शृंखला से

९—को गृहेषु पुमान्सक्त मात्मानमजितेंद्रियः । स्नेहपाशैर्दृढैर्बद्धमुत्सहेत विमोचितु ॥

१०—कोन्वर्थं तृष्णा विसृज्येत्प्राणेभ्योपि य ईप्सितः । य क्रीणात्यसुभिः प्रेष्ठैस्तस्करः सेवको वणिक् ॥

११—कथ प्रियाया अनुकंपितायाः संग रहस्य रुचिराश्च मन्त्रान् ।
सुहृत्सु च स्नेहसितः शिशूना कलाक्षराणामनुरक्तचित्तः ॥

१२—पुत्रान् स्मरस्तादुहितॄर्हृदय्या भ्रात्रीन् स्वसॄर्वा पितरौ च दीनौ ।
गृहान्मनोज्ञोरुपरिच्छदाश्च वृत्तीश्च कुल्याः पशुभृत्यवर्गान् ॥

१३—त्यजेत कोशस्कृदिवेहमानः कर्माणि लोभादवितृप्तकामः ।
औपस्थ्यजैह्व्यं बहुमन्यमानः कथ विरज्येत दुरन्तमोहः ॥

१४—कुटुंबपोषाय वियन्निजायुर्न बुध्यतेऽर्थं विहत प्रमत्त. ।
सर्वत्र तापत्रयदुःखितात्मा निर्विद्यते न स्वकुटुबरामः ॥

१५—वित्तेषु नित्याभिनिविष्टचेता विद्वाश्च दोष परवित्तहर्तुः ।
प्रेत्येह चाथाप्यजितेंद्रियस्तदशान्तकामो हरते कुटुंबी ॥

१६—विद्वानपीत्थं दनुजाः कुटुम्ब पुष्णन्स्वलोकाय न कल्पते वै ।
यः स्वीयपारक्य विभिन्न भावस्तमः प्रपद्येत यथा विमूढः ॥

बँधी हुई स्त्रियों के निकट जो लोग क्रीड़ामृग के समान दीन हुए रहते हैं, वे कभी भी और कहीं भी अपने को मुक्त करने मे समर्थ नहीं होते ॥ १७ ॥ अतः विषयों में लिप्त रहने वाले दैत्यों का साथ छोड़कर आदिदेव भगवान् का भजन करो, क्योंकि असग पुरुष नारायण के भजन को ही मोक्षरूप मानते हैं ॥ १८ ॥ हे दैत्यपुत्रो ! भगवान को प्रसन्न करने के लिये बहुत प्रयत्न नहीं करना पड़ता, क्योंकि वे सबकी आत्मा और सर्वप्रसिद्ध हैं ॥ १९ ॥ स्थावर से लेकर ब्रह्मा तक जीवों में, पचभूत से बने हुए निर्जीव पदार्थों में, पच महाभूतों में, तीन गुणों में, प्रकृति में, महत्तत्व आदि विकारों मे भी परमात्मा, ईश्वर और अविनाशी भगवान् एक ही हैं ॥२०-२१॥ परमात्मा स्वयं एक होते हुए भी भोक्तारूप से व्यापक और भोगरूप से व्याप्य हैं, ऐसा कहा जाता है ॥ २२ ॥ केवलअनुभव रूप आनन्द ही जिसका स्वरूप है, उन भगवान् के सर्वज्ञत्व आदि ऐश्वर्य, माया के गुणों से अन्तर्हित हुए से जान पड़ते हैं ॥ २३ ॥ अतः तुम लोग दैत्य का स्वभाव छोड़कर समस्त प्राणियों पर दया और स्नेह रखो, क्योंकि उससे भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ २४ ॥ अनन्त और आदि भगवान् के प्रसन्न होने पर कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती, पर भगवान् के चरणों का अमृत पीने वाले और उसीका गुणगान करने वाले हम लोगों को धर्म, अर्थ अथवा काम से क्या प्रयोजन है, क्योंकि प्रारब्ध कर्मों के द्वारा वे तो स्वय ही प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार धर्म आदि का प्रयोजन नहीं है, उसी प्रकार मोक्ष की इच्छा रखने की भी आवश्यकता नहीं है ॥ २५ ॥ धर्म, अर्थ और काम रूपी त्रिवर्ग, आत्मविद्या,कर्मविद्या, तर्कविद्या,

---

१७—यतो न कश्चित्क्व च कुत्रचिद्वा दीनः स्वमात्मानमलं समर्थः ।
विमोचितुं कामदृशां विहार क्रीडामृगो यन्निगडो विसर्गः ॥

१८—ततो विदूरात्परिहृत्य दैत्या दैत्येषु संगं विषयात्मकेषु ।
उपेत नारायणमादिदेवं स मुक्तसङ्गैरिषितोऽपवर्गः ॥

१९—न ह्यच्युतं प्रीणयतो बह्वायासोऽसुरात्मजाः । आत्मत्वात्सर्वभूतानां सिद्धत्वादिह सर्वतः ॥

२०—परावरेषु भूतेषु ब्रह्मान्तस्थावरादिषु । भौतिकेषु विकारेषु भूतेष्वथ महत्सु च ॥

२१—गुणेषु गुणसाम्ये च गुणव्यतिकरे तथा । एक एव परो ह्यात्मा भगवानीश्वरोऽव्ययः ॥

२२—प्रत्यगात्मस्वरूपेण दृश्यरूपेण च स्वयं । व्याप्य व्यापकनिर्देश्यो ह्यनिर्देश्योऽविकल्पितः ॥

२३—केवलानुभवानन्दस्वरूपः परमेश्वरः । माययान्तर्हितैश्वर्य ईयते गुणसर्गया ॥

२४—तस्मात्सर्वेषु भूतेषु दयां कुरुत सौहृदम् । आसुरं भावमुन्मुच्य यया तुष्यत्यधोक्षजः ॥

२५—तुष्टे च तत्र किमलभ्यमनन्त आद्ये किं तैर्गुणव्यतिकरादिह ये स्वसिद्धाः ।
धर्मादयः किमगुणेन च काङ्क्षितेन सारं जुषां चरणयोरुपगायतां नः ॥

दण्डनीति और वेदों में वर्णित आजीविका रूपी अन्य समस्त विषय यदि अपने अन्तर्यामी रूप भगवान् को आत्मार्पण करने के साधन बनें तो मैं उन्हें सार्थक मानता हूं ॥२६॥ इस दुर्लभ और निर्मल ज्ञान को नरनारायण ने नारदजी से कहा था। देहाभिमान से रहित सच्चे भगवद् भक्त के चरण-रज मे स्नान करने वालों को यह ज्ञान मिलता है ॥ २७ ॥ इस अनुभव पर्यंत ज्ञान तथा भगवत्संबन्धी शुद्ध धर्म को पहले मैंने देवदर्शन नारदजी के द्वारा सुना था ॥ २८ ॥

दैत्यों के पुत्र बोले—प्रह्लाद ! हम लोग और तुम गुरु के इन दो पुत्रों (शण्ड और अमर्क) के सिवा दूसरे गुरु को नहीं जानते, क्योंकि बचपन से ही हम लोग इन्हींके वश में रहे हैं ॥ २९ ॥ तुम बालक हो और अन्तःपुर मे रहने वाले हो। महात्मा पुरुषों का समागम तुम्हारे लिये संभव नहीं है, अतः इस सम्बन्ध के हमारे सशय को, तुम विश्वास करने योग्य उत्तर से, दूर करो ॥ ३० ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कध का छठवाँ अध्याय समाप्त

२६—धर्मार्थकाम इति योऽभिहितस्त्रिवर्ग ईक्षात्रयी नयदमौ विविधा च वार्ता ।
मन्येतदेतदखिलं निगमस्य सत्यं स्वात्मार्पणं स्वसुहृदः परमस्य पुंसः ॥

२७—ज्ञानं तदेतदमलं दुरवापमाह नारायणो नरसखः किल नारदाय ।
एकान्तिनां भगवतस्तदकिंचनानां पादारविंदरजसाप्लुत देहिनां स्यात् ॥

२८—श्रुतमेतन्मया पूर्वं ज्ञानं विज्ञानसंयुतं । धर्मं भागवतं शुद्धं नारदाद्देवदर्शनात् ॥

दैत्यपुत्रा ऊचुः—

२९—प्रह्लाद त्वं वयं चापि नर्तेऽन्यं विद्महे गुरुं । एताभ्यां गुरुपुत्राभ्यां बालानामपि हीश्वरौ ॥

३०—बालस्यातः पुरस्थस्य महत्संगो दुरन्वयः । छिंधि नः सशयं सौम्य स्याच्चेद्विश्रम्भकारणं ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कन्धेप्रह्लादानुचरितेषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

प्रह्लाद का नारद के उपदेश को बालकों से कहना

नारद बोले—दैत्य-पुत्रों के इस प्रकार पूछने पर महावैष्णव प्रह्लाद ने हँसते हुए उन बालकों से मेरी बातों का स्मरण करते हुए कहा ॥ १ ॥

प्रह्लाद बोला—मेरे पिता तपस्या करने के लिए जब मन्दराचल को गए तो देवताओं ने दैत्यों से युद्ध करने की बड़ी तैयारी की ॥ २ ॥ इन्द्र आदि कहने लगे कि सर्प जिस प्रकार कीड़ों को खा जाता है, उसी प्रकार पापी हिरण्यकशिपु को उसका पाप खा गया, यह बड़ा अच्छा हुआ ॥ ३ ॥ देवताओं के द्वारा मारे जाते हुए अतएव डरे हुए दैत्यों के यूथपति, देवताओं के युद्ध की बड़ी तैयारियां देखकर सब दिशाओं में भागने लगे ॥ ४ ॥ स्त्री, पुत्र, मित्र, सगे-सम्बन्धी, घर, पशु और दूसरे सामानों की चिन्ता न करके प्राण बचाने की इच्छा से वे भागने लगे। विजय की इच्छा रखनेवाले देवता मेरे पिता का दरबार लूटने लगे। इंद्र ने राजमहिषी मेरी माता को पकड़ा ॥५-६॥ कुररी के समान रोती और भय से उद्विग्न हुई मेरी माँ को पकड़कर इन्द्र ले जारहे थे, इसी समय मार्ग में इच्छा पूर्वक विचरण करते हुए नारद को वहाँ आया हुआ उन्होंने देखा ॥ ७ ॥ नारद ने कहा—"देवराज ! इस निरपराध स्त्री को ले जाना तुम्हें उचित नहीं है। महाभाग ! पराथी सती स्त्री को छोड़ दो २ ॥ ८ ॥

नारद उवाच—

१—एवं दैत्यसुतैः पृष्टो महाभागवतोऽसुरः । उवाच स्मयमानास्तान् स्मरन्मदनुभाषितं ॥

प्रह्लाद उवाच—

२—पितरि प्रस्थितेऽस्माकं तपसे मंदराचलं । युद्धोद्यमं परं चक्रुर्विबुधा दानवान्प्रति ॥

३—पिपीलिकैरहिरिव दिष्ट्या लोकोपतापनः । पापेन पापोऽभक्षीति वादिनो वासवादयः ॥

४—तेषामतिबलोद्योगं निशम्यासुरयूथपाः । वध्यमानाः सुरैर्भीता दुद्रुवः सर्वतोदिशं ॥

५—कलत्र पुत्र मित्राप्तान् गृहान्पशु परिच्छदान् । नावेक्षमाणास्त्वरिताः सर्वे प्राणपरिप्सवः ॥

६—व्यलुंपन् राजशिबिरममरा जयकांक्षिणः । इन्द्रस्तु राजमहीषीं मातरं मम चाग्रहीत् ॥

७—नीयमानां भयोद्विग्नां रुदतीं कुररीमिव । यदृच्छया गतस्तत्र देवर्षिर्ददृशे पथि ॥

८—प्राहैनां सुरपते नेतुमर्हस्यनागसं । मुंच मुंच महाभाग सतीं परपरिग्रहं ॥

इन्द्र बोले—इसके गर्भ में देवताओं के शत्रु हिरण्यकशिपु का असहनीय वीर्य है, अतः प्रसव होने तक मैं इसे कैद रखूंगा और जब इसे प्रसव होगा तो बच्चे को मारकर इसे छोड़ दूँगा ॥ ९ ॥

नारद बोले—इसके गर्भ में निष्पाप और साक्षात् श्रेष्ठ महावैष्णव है। वह तुम्हारे द्वारा नहीं मरेगा, क्योंकि भगवान् का भक्त बलवान् होता है ॥ १० ॥

प्रह्लाद बोला—नारद के ऐसा कहने पर उनकी बात मानकर इन्द्र ने मेरी माँ को छोड़ दिया और भगवान् के भक्त पर श्रद्धा होने के कारण उसकी प्रदक्षिणा करके स्वर्ग को गए ॥ ११ ॥ अनन्तर नारद मेरी माँ को अपने आश्रम में ले आए और उसे दिलासा देकर कहा कि "बेटी, जबतक तुम्हारे पति नहीं आते, तबतक तुम यहीं रहो ॥ १२ ॥ इस प्रकार मेरी माँ निर्भय होकर तबतक नारदजी के पास रही, जबतक मेरे पिता घोर तपस्या करके वापस नहीं आए ॥ १३ ॥ गर्भवती मेरी पतिव्रता माता ने गर्भ की रक्षा के लिए और पति के लिए और पति के लौट आने पर प्रसव की इच्छा से भक्तिपूर्वक नारदजी की सेवा की ॥ १४ ॥ दयालु और समर्थ नारद मुनि ने मेरी माँ को धर्म का तत्त्व और निर्मल ज्ञान दिया और उसका बोध मुझे भी हो, इसका ध्यान रखा ॥ १५ ॥ बहुत समय बीतने के कारण और स्त्री होने के कारण मेरी मा को तो वह ज्ञान भूल गया, किन्तु नारदजी की कृपा से मुझे वह सब अभी तक स्मरण है ॥ १६ ॥ तुम लोग भी यदि मेरी बातों पर श्रद्धा रखो तो तुम्हें भी उसका बोध हो सकता है। श्रद्धावान स्त्रियों और बालकों को भी मेरे ही समान ब्रह्मविद्या प्राप्त हो सकती है ॥ १७ ॥

इन्द्र उवाच—

९—आस्तेऽस्या जठरे वीर्यमविषह्यं सुरद्विषः। आस्यतां यावत्प्रसवं मोक्ष्येऽर्थपदवीं गतः ॥

नारद उवाच—

१०—अयं निष्किल्बिषः साक्षान्महाभागवतो महान्। त्वया न प्राप्स्यते संस्थामनन्तानुचरो बली ॥

११—इत्युक्तस्तां विहायेन्द्रो देवर्षेर्मानयन्वचः। अनन्तप्रियभक्त्यैनां परिक्रम्य दिवं ययौ ॥

१२—ततो नो मातरमृषिः समानीय निजाश्रमं। आश्वास्येहोष्यतां वत्से यावत्ते भर्तुरागमः ॥

१३—तथेत्यवात्सीद्देवर्षेरन्ति साऽप्यकुतोभया। यावद्दैत्यपतिर्घोरात्तपसो न न्यवर्तत ॥

१४—ऋषिं पर्यचरत्तत्र भक्त्या परमया सती। अन्तर्वत्नी स्वगर्भस्य क्षेमायेच्छाप्रसूतये ॥

१५—ऋषिः कारुणिकस्तस्याः प्रादादुभयमीश्वरः। धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलं ॥

१६—तत्तु कालस्य दीर्घत्वात्स्त्रीत्वान्मातुस्तिरोदधे। ऋषिणाऽनुगृहीतं मां नाधुनाप्यजहात्स्मृतिः ॥

१७—भवतामपि भूयान्मे यदि श्रद्दधते वचः। वैशारदी धीः श्रद्धातः स्त्रीबालानां च मे यथा ॥

महासमर्थ काल के द्वारा जन्म होना, वर्तमान रहना, बड़ा होना, रूपान्तरित होना, क्षीण होना और नाश होना, ये छः विकार शरीर को ही होते हैं, आत्मा को नहीं होते, किन्तु जिस प्रकार वृक्ष के होने पर ही फल में ये विकार होते हैं, उसी प्रकार आत्मा के होने पर ही शरीर में भी ये विकार होते हैं ॥ १८ ॥ आत्मा नित्य है और शरीर अनित्य, आत्मा क्षीण नहीं होती, पर शरीर क्षीण होता है, आत्मा शुद्ध है और शरीर अशुद्ध, आत्मा एक है और शरीर अनेक, आत्मा शरीर आदि को जानती है, पर शरीर जड है, आत्मा सबका आश्रय है और शरीर उसका आश्रित, आत्मा निर्विकार है और शरीर विकारयुक्त, आत्मा स्वयंप्रकाश है और शरीर दूसरे से प्रकाशित होता है, आत्मा सब का कारण है और शरीर कार्यपदार्थ, आत्मा है और शरीर स्थल-विशेष में रहनेवाला, आत्मा असंग है और शरीर संगयुक्त आत्मा किसी से ढकी नहीं जा सकती, पर शरीर अनेक प्रकार के वस्त्रों से ढक जाता है ॥ १९ ॥ ऊपर कहे बारह श्रेष्ठ लक्षणों के द्वारा आत्मा को देह आदि से भिन्न जानकर मोह से उत्पन्न हुई अहंता और ममता रूपी खोटी बुद्धि का त्याग कर देना चाहिए ॥ २० ॥ जिस प्रकार सुनार खान के पत्थरों में से सोना निकाल लेता है, उसी प्रकार विवेकी पुरुष ऊपर कहे गए आत्मप्राप्ति के उपायों से देहरूपी क्षेत्रों में से आत्मा को अलग कर लेता है अर्थात् आत्मस्वरूप को पहचान लेता है ॥ २१ ॥ माया, महत्तत्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध, ये आठ प्रकृतियाँ कही जाती हैं, सत्व, रज और तम, ये तीन माया के ही गुण हैं (अर्थात् इनकी अलग गणना नहीं होती) ग्यारह इन्द्रियाँ और पाँच महाभूत मिलकर सोलह विकार कहे जाते हैं । इस प्रकार आठ प्रकृति और सोलह विकार मिलाकर कुल चौबीस तत्व हैं, जिनका साक्षीरूप आत्मा एक ही है ॥ २२ ॥ इन चौबीस तत्वों के इकट्ठे होने को शरीर कहते हैं। यह शरीर

१८—जन्माद्याः षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मनः । फलानामिव वृक्षस्य कालेनेश्वरमूर्तिना ॥

१९—आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्ध एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः । अविक्रियः स्वदृग्हेतुर्व्यापकोऽसंग्यनावृतः ॥

२०—एतैर्द्वादशभिर्विद्वानात्मनो लक्षणैः परैः । अहं ममेत्यसद्भावं देहादौ मोहजं त्यजेत् ॥

२१—स्वर्णं यथा ग्रावसु हेमकारः क्षेत्रेषु योगैस्तदभिज्ञ आप्नुयात् ।
क्षेत्रेषु देहेषु तथात्म योगैरध्यात्मविद् ब्रह्मगतिं लभेत ॥

२२—अष्टौप्रकृतयःप्रोक्तास्त्रय एव हि तद्गुणाः । विकाराः षोडशाचार्यैः पुमानेकः समन्वयात् ॥

स्थावर और जगम दो प्रकार का है। इस देह मे ही आत्मा को ढूँढ लेना चाहिए। यह आत्मा नहीं है ऐसा कहकर जड़ पदार्थों को अपने से अलग करती हुई आत्मा स्वय ही जान पड़ती है ॥२३॥ शरीर आदि आत्मा से भिन्न नहीं हैं,किन्तु आत्मा शरीर से भिन्न है,फिर भी वह मणियों मे सूत के समान सर्वत्र व्याप्त है,इस प्रकार के विवेक से अन्तःकरण को शुद्ध करके सृष्टि, स्थिति और प्रलय का निरूपण करने वाले वेदवाक्यों का विचार करके आत्मा को ढूँढना चाहिये ॥ २४ ॥ जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, ये बुद्धि की वृत्तियाँ हैं। जो इन वृत्तियों को जानने वाला है, वही सबका साक्षी और सबसे भिन्न आत्मा है ॥ २५ ॥ कर्म से उत्पन्न हुई, बुद्धि की इन त्रिगुणात्मक वृत्तियों को अनात्म धर्म के द्वारा दूर करके आत्मा के स्वरूप को जानना चाहिये, जिस प्रकार फूल के धर्म गध के द्वारा उसका आश्रयरूप वायु भिन्न समझी जाती है, उसी प्रकार बुद्धि के धर्मरूप इन तीन अवस्थाओं के द्वारा उनको जानने वाली आत्मा भी भिन्न समझी जाती है ॥ २६ ॥ बुद्धि ही संसार का द्वार है, क्योंकि उसीके गुण और कर्मों के द्वारा ससार की रचना हुई है। इसका मूल अज्ञान है, अतः असार होने पर भी यह स्वप्न के समान दीख पड़ता है ॥ २७ ॥ अतः तुम लोगों को योग करना चाहिये, जो त्रिगुणात्मक, कर्म का बीज रूप, अज्ञान को नष्ट करने वाला और तीन अवस्थाओं वाली बुद्धि के प्रवाह को मिटाने वाला है ॥ २८ ॥ जिन धर्मों के द्वारा भगवान् मे सहज प्रीति उत्पन्न हो, उन धर्मों का पालन करना ही हजारों उपायों में श्रेष्ठ उपाय है, ऐसा नारदजी ने कहा है ॥ २९ ॥ गुरु की सेवा, भक्ति, मिले हुए सब पदार्थों का अर्पण, साधु भक्तों का सग, भगवान् की आराधना, उनकी कथा में श्रद्धा, उनके गुण और कर्मों का कीर्तन, उनके चरण-कमलों का ध्यान तथा उनकी

२३—देहस्तु सर्वसंघातो जगत्तस्थुरिति द्विधा। अत्रैव मृग्यः पुरुषो नेति नेतीत्यतत्त्यजन् ॥

२४—अन्वयव्यतिरेकेण विवेकेनोशतात्मना। सर्गस्थान समाम्नायैर्विमृशद्भिरसत्वरैः ॥

२५—बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति वृत्तयः। तायेनैवानुभूयते सोऽध्यक्षः पुरुषः परः ॥

२६—एभिस्त्रिवर्णैः पर्यस्तैर्बुद्धिभेदैः क्रियोद्भवैः। स्वरूपमात्मनो बुध्येद् गन्धैर्वायुमिवान्वयात् ॥

२७—एतद्द्वारोहि संसारो गुणकर्मनिबन्धनः। अज्ञानमूलोऽपार्थोऽपि पुंसः स्वप्न इवेष्यते ॥

२८—तस्माद्भवद्भिः कर्तव्यं कर्मणां त्रिगुणात्मना। बीजनिर्हरणं योगः प्रवाहो परमो धियः ॥

२९—तत्रोपाय सहस्राणामयं भगवतोदितः। यदीश्वरे भगवति यथायैरञ्जसा रतिः ॥

३०—गुरुशुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च। सगेन साधु भक्तानामीश्वराराधनेन च ॥

३१—श्रद्धया तत्कथाया च कीर्तनैर्गुणकर्मणां। तत्पादाम्बुरुहध्यानात्तल्लिंगे क्षार्हणादिभिः ॥

मूर्ति का दर्शन और पूजन करना, ये धर्म अत्यन्त अन्तरंग हैं। सब प्राणियों में भगवान् वर्तमान हैं, ऐसा जानकर हृदय से तथा इच्छित पदार्थ देकर उनका सत्कार करना चाहिये ॥ ३०-३२ ॥ जितेंद्रिय लोग इस प्रकार भगवान् की भक्ति करते हैं, जिससे भगवान् वासुदेव में प्रीति उत्पन्न होती है ॥ ३३ ॥ भगवान् के कर्मों, अतुलनीय गुणों और लीला से अवतार धारण करके किए हुए पराक्रमों का वर्णन सुनकर अत्यन्त आनन्द हो, रोंगटे खड़े हो जायें, आँसू से चित्त गद्गद् हो जाय, गला खोलकर मनुष्य गाने लगे, शब्द करने लगे, नाचने लगे, ग्रहग्रस्त के समान कभी हँसने लगे, कभी रोने लगे, ध्यान करे, मनुष्यों को प्रणाम करने लगे और बार बार उसाँसें लेकर तथा लज्जा त्याग करके 'हे हरि ! हे जगत्पति ! हे नारायण !' ऐसा कहने लगे, तभी जानना चाहिये कि उसे भगवान् में सच्ची प्रीति उत्पन्न हुई है ॥ ३४-३५ ॥ इस प्रकार की प्रीति होने पर ही मनुष्य समस्त बन्धनों से छूटकर, मन तथा शरीर से भगवद्भावना से युक्त होकर तथा कर्म के बीजरूप अज्ञान और वासनाओं को नष्ट करके श्रेष्ठ भक्तियोग के द्वारा भगवान् को प्राप्त करता है ॥ ३६ ॥ मन के द्वारा भगवान् का स्पर्श होते ही मलिन मन वाले प्राणियों के जन्म-मरण-रूपी फेरे को मिटाने वाला तथा मोक्ष-सुख है, ऐसा विद्वानों का निश्चय है, अतः तुम लोग हृदय में भगवान् का भजन करो ॥ ३७ ॥ हे दैत्य-पुत्रो ! भगवान् की उपासना करने में कुछ अधिक परिश्रम नहीं है, क्योंकि वे हृदय में आकाश के समान व्याप्त हैं, अपनी आत्मा हैं और समस्त प्राणियों के सखा हैं। अन्य समस्त प्राणियों के साधारण विषयों को सम्पन्न करने से क्या लाभ है ? विषयों में आसक्ति रखना तो कुत्ते और सुअर के समान है ॥ ३८ ॥ धन, स्त्रियां, पशु, पुत्रादि, घर, पृथ्वी, हाथी, भांडार, वैभव और

३२—हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त ईश्वरः । इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत् ॥

३३—एवं निर्जितषड्वर्गैः क्रियते भक्तिरीश्वरे । वासुदेवे भगवति यया संलभते रतिं ॥

३४—निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि ॥

यदाऽतिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं प्रोत्कंठ उद्गायति रौति नृत्यति ॥

३५—यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धसत्याक्रंदते ध्यायति वंदते जनं ।

मुहुः श्वसन्वक्ति हरे जगत्पते नारायणेत्यात्मगतिर्गतत्रपः ॥

३६—तदा पुमान्मुक्तसमस्तबन्धनस्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः ।

निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा भक्तिप्रयोगेन समेत्यधोक्षजं ॥

३७—अधोक्षजालम्भमिहाशुभात्मनः शरीरिणः संसृतिचक्रशातनं ।

तद् ब्रह्म निर्वाणसुखं विदुर्बुधास्ततो भजध्वं हृदये हृदीश्वरम् ॥

३८—कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका हरेरुपासने स्वे हृदि छिद्रवत्सतः ।

स्वस्यात्मनः सख्युरशेषदेहिनां सामान्यतः किं विषयोपपादनैः ॥

इनके अतिरिक्त समस्त चचल अर्थ और कामनाएँ क्षणभगुर आयुवाले मनुष्य का कितना हित करती हैं ? ॥ ३९ ॥ यज्ञ करने से मिलने वाले स्वर्ग आदि लोकों के सम्बन्ध मे भी यही बात है, क्योंकि वे ईर्षा आदि दोषों से युक्त, पुण्यों के हेर-फेर से बढने और कम होने वाले, सुखों से युक्त और क्षय होनेवाले हैं, अत. जिनमे कोई दोष देखने तथा सुनने में नहीं आता, उन एक मात्र भगवान् को ही अपने स्वरूप की प्राप्ति के लिए तुम लोग भजो ॥ ४० ॥ विद्वत्ता का अभिमान रखने वाला मनुष्य जिस फल की इच्छा से कर्म करता है, उससे उलटे ही फल की उसे प्राप्ति होती है, यह निश्चित है ॥ ४१ ॥ कर्म करने वाले मनुष्य का सकल्प, सुख की प्राप्ति और दुःख से छूटने के निमित्त होता है, किन्तु कर्म करने से निरन्तर दु.ख की प्राप्ति होती है और कर्म न करने से ही सुख मिलता है ॥ ४२ ॥ सकाम कर्म करने के द्वारा मनुष्य जिसे सुख देना चाहता है, वह शरीर तो पराया है और कुत्ते आदि के काम मे आने वाला है, क्षणभगुर है और आने तथा जाने वाला है ॥ ४३ ॥ जब शरीर भी पराया है तो सतान, स्त्री, घर, धन आदि राज्य, भांडार, हाथी, अमात्य, भृत्य और सम्बन्धी, जो शरीर से भिन्न और ममता के स्थान-रूप हैं, वे यदि पराए हों तो कहना ही क्या ? ॥ ४४ ॥ आत्मा को, जो अविनाशी आनन्द का समुद्र है, तुच्छ शरीर के साथ नष्ट होने वाले और गलती से पुरुषार्थ रूप जान पडने वाले सन्तान आदि अनर्थों से क्या प्रयोजन है ? ॥ ४५ ॥ हे दैत्यो ! कर्म के कारण गर्भ आदि स्थितियों मे क्लेश पाते हुए प्राणियों को उपरोक्त पदार्थों से कितना और क्या सुख मिलता है,

---

३९—रायः कलत्र पशवः सुतादयो गृहा मही कुञ्जर कोश भूतयः ।
सर्वेऽर्थकामाः क्षणभगुरायुष. कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत्प्रियं चलाः ॥

४० —एवंहि लोकाः क्रतुभिः कृता अमी क्षयिष्णवः सातिशयानिर्मलाः ॥
तस्माददृष्ट श्रुतदूषणा पर भक्त्यैकयेशं भजतात्मलब्धये ॥

४१— यदर्थ्यर्थेह कर्माणि विद्वान्मान्यसकृन्नरः । करोत्यतो विपर्यास ममोघ विन्दते फल ॥

४२— सुखाय दु खमोक्षाय सकल्प इह कर्मिणः । सदाप्नोतीह यादुःखमनीहायाः सुखावृतः ॥

४३—कामान्कामयते काम्यैर्यदर्थमिह पूरुषः । सवै देहस्तु पारक्यो भगुरो यात्युपैति च ॥

४४—किमु व्यवहितापत्य दारागार धनादयः । राज्यं कोश गजामात्य भृत्याप्तामम तास्पदाः ॥

४५ —किमेतैरात्मनस्तुच्छैः सहदेहेन नश्वरैः । अनर्थैरर्थसंकाशैर्नित्यानद महोदधे ॥

४६—निरूप्यतामिह स्वार्थं कियान् देहभृतोऽसुराः । निषेकादिष्ववस्थासु क्लिश्यमानस्य कर्मभिः ॥

तुम लोग इसका विचार करो ॥ ४६ ॥ शरीर को आत्मरूप मानकर मनुष्य कर्म करता है और कर्म करने के कारण शरीर धारण करता है, अत: सुख भोगने का अवसर उसे नहीं मिलता । सच पूछो तो कर्म और शरीर यह दोनों ही अज्ञान से होते हैं, अतः अर्थ, काम और धर्म,ये सभी जिनके अधीन है, उन क्रिया-रहित भगवान् का क्रियाहीन होकर भजन करो ॥ ४७—४८॥ भगवान् ने जिन्हें स्वय उत्पन्न किया है,उन पंचभूतों के द्वारा निर्मित समस्त प्राणियों की आत्मा अंतर्यामी, ईश्वर और प्रिय भगवान् ही हैं ॥ ४९ ॥ देवता, दैत्य,मनुष्य, यक्ष अथवा गधर्व, चाहे जो भी हो, भगवान के चरणों का भजन करने से मेरे ही समान सबका कल्याण होता है ॥५०॥ दैत्यपुत्रो ! ब्राह्मणत्व, देवत्व, ऋषित्व, सदाचार, बहुज्ञता, दान,तप, यज्ञ, पवित्रता, अथवा व्रत, इनमे से कोई भी भगवान् को प्रसन्न करने मे समर्थ नहीं है । भगवान् तो केवल निर्मल भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं । शेष सब कुछ विडंबना मात्र है ॥ ५१, ५२ ॥ अत: दैत्यो ! सबको अपने ही समान जानकर सबकी आत्मा और परमेश्वर भगवान् की ही भक्ति तुम लोग करो ॥ ५३ ॥ दैत्य, यक्ष, राक्षस, स्त्री. शूद्र, गुफा मे रहने वाले, पक्षी, मृग और अन्य पापी जीवों ने भी भक्ति के द्वारा मोक्ष पाया है ॥ ५४ ॥ भगवान् की अखडित भक्ति करना और सबमे भगवान् की सत्ता जानना ही इस संसार में मनुष्य का सबसे बडा स्वार्थ कहा जाता है ॥ ५५ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवे स्कध का सातवाँ अध्याय समाप्त

४७—कर्माण्यारभते देही देहेनात्मानुवर्तिना । कर्मभिस्तनुते देहमुभयं त्वविवेकतः ॥
४८—तस्मादर्थाश्च कामाश्च धर्माश्च यदपाश्रयाः । भजतानीहयात्मानमनीहं हरिमीश्वरं ॥
४९—सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्मेश्वरः प्रिय. । भूतैर्महद्भिः स्वकृतैः कृतानां जीवसंज्ञितः ॥
५०—देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गन्धर्व एवच । भजन्मुकुंदचरणं स्वस्तिमान्स्याद्यथा वयं ॥
५१—नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः । प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ॥
५२—न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च । प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्विडंबनं ॥
५३—ततो हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवा. । आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनीश्वरे ॥
५४—दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रिय.शूद्रा व्रजौकसः । खगा मृगाः पापजीवाः सन्ति ह्यच्युततां गताः ॥
५५—एतावानेवलोकेऽस्मिन्पुंसः स्वार्थः पर स्मृतः । एकांत भक्तिर्गोविंदे यत्सर्वत्र तदीक्षण ॥

इतिश्रीभा०म०सप्तमस्कंधेदैत्यपुत्रानुशासनंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

नृसिंह भगवान् के द्वारा हिरण्यकशिपु का वध

नारद बोले—उन सब दैत्य के पुत्रों ने प्रह्लाद की बात सुनकर, निर्दोष होने के कारण उसकी शिक्षा ग्रहण की, गुरु की शिक्षा उन लोगों के मन में नहीं बैठी ॥ १ ॥ इस प्रकार इन सब बालकों की बुद्धि परब्रह्म मे लगी हुई देखकर भयभीत शुक्राचार्य के पुत्रों ने सभी बातें शीघ्र ही हिरण्यकशिपु से कहीं ॥ २ ॥ पुत्र की यह अप्रिय और असहनीय अनीति सुनकर हिरण्य कशिपु का शरीर क्रोध के आवेश से काँपने लगा। उसने पुत्र को मार डालने की ठानी ॥ ३ ॥ स्वभाव से ही दारुण वह दैत्य पैर से कुचले हुए सर्प की तरह फुँकार मारता हुआ, जितेंद्रिय, नम्रता से हाथ जोड़कर, खडे हुए तथा तिरस्कार न करने योग्य प्रह्लाद का कठोर वचनों से तिरस्कार करता हुआ तथा टेढ़ी और क्रोधयुक्त आँखों से उसकी ओर देखता हुआ बोला—"हे अविनयी! मंदात्मा! कुलभेदक! अधम! अविनयी और मेरी आज्ञा का उल्लघन करने वाले तुझे मैं आज यमपुरी में भेज दूँगा ॥ ४-६ ॥ जिसके क्रोध से लोकपालों के सहित तीनों लोक काँपते हैं, निर्भय होकर उसकी आज्ञा का उल्लंघन तू किस बल पर करता है? ॥ ७ ॥

प्रह्लाद बोला—राजन्! आगे और पीछे के स्थावर-जंगमों तथा ब्रह्मा आदि को भी जिन्होंने वश में किया है, वे भगवान् ही मेरे बल हैं। और वे केवल मेरे ही नहीं किन्तु आपके तथा अन्य बलियों के भी बल हैं ॥ ८ ॥ अत्यन्त पराक्रमी ये भगवान् ही

नारद उवाच—

१—अथ दैत्य सुताः सर्वे श्रुत्वा तदनुवर्णितं । जगृहुर्निरवद्यत्वान्नैव गुर्वनुशिक्षितम ॥

२—अथाचार्यसुतस्तेषां बुद्धिमेकान्त संस्थितां । आलक्ष्य भीतस्त्वरितो राज्ञ आवेदयद्यथा ॥

३—श्रुत्वा तदप्रियं दैत्यो दुःसहं तनयानयं । कोपावेशचलद् गात्रः पुत्रं हन्तुं मनो दधे ॥

४—क्षिप्त्वा परुषया वाचा प्रह्लादमतदर्हण । आहेक्षमाणः पापेन तिरश्चीनेन चक्षुषा ॥

५—प्रश्रयावनत दांत बद्धाञ्जलिमवस्थित । सर्पः पदाहत इव श्वसन्प्रकृतिदारुणः ॥

६—हे दुर्विनीत मंदात्मन्कुलभेदकराधम । स्तब्ध मच्छासनोद्धृत नेष्येत्वाद्ययमक्षय ॥

७—क्रुद्धस्य यस्य कंपते त्रयो लोकाः सहेश्वराः ।

तस्य मेऽभीतवन्मूढ शासनं किं बलोऽत्यगाः ॥

प्रह्लाद उवाच—

८—न केवल मे भवतश्च राजन्स वै बलं बलिना चापरेषां ।

परेऽवरेऽमी स्थिरजंगमा ये ब्रह्मादयो येन वशं प्रणीताः ॥

कालरूप कहे जाते हैं। शरीर तथा मन की शक्ति, धैर्य, बल और इन्द्रियों के नियता भी वे ही हैं। त्रिगुणों के स्वामी, ये भगवान् ही अपनी शक्ति से जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं॥ ९॥ आप यह असुर भाव छोड दें और मन मे समता रखे। अजित और कुमार्ग गामी मन के अतिरिक्त दूसरा कोई शत्रु नहीं है। मन में समता रखना ही भगवान् की श्रेष्ठ पूजा है, ऐसा आप जाने॥ १०॥ कुछ लोग ऐश्वर्य आदि धन को लूटने वाली छः इन्द्रियों रूपी शत्रुओं को जीते बिना ही समझते हैं कि उन्होंने दसों दिशाओं को जीत लिया। जो विद्वान् हैं, मन को जीतने वाले हैं और प्राणियों मे समता रखने वाले हैं, अज्ञान के द्वारा कल्पित उनके शत्रु कहाँ से होंगे?॥ ११॥

हिरण्यकशिपु बोला—मदात्मा! बहुत बोलने वाला तू, मरने की इच्छा रखता है, ऐसा जान पड़ता है। जिसकी मृत्यु निकट होती है, वह ऊट-पटाँग बोलने लगता है॥१२॥ मंदभागी! तूने जो कहा कि मेरे अतिरिक्त दूसरा ईश्वर है, तो वह कहा है? प्रह्लाद ने कहा, वह सभी जगह है। हिरण्यकशिपु बोला, यदि सभी जगह है तो खभे में क्यों नहीं दीखता॥ १३॥ प्रह्लाद ने कहा वह यह दीखता है, लेकिन हिरण्यकशिपु ने खभे में ईश्वर को न देखकर कहा, मैं तेरा सिर धड़ से अलग करता हूँ। तू जिसे शरणरूप मानता है, वह तेरी रक्षा करे!॥ १४॥

नारद बोले—इस प्रकार क्रोधयुक्त दुर्वचनों से महावैष्णव पुत्र को बार-बार पीड़ित करता हुआ वह अत्यन्त बलवान् असुर तलवार लेकर अपने श्रेष्ठ आसन से उछला और उसने खंभे में घूसा मारा॥ १५॥ राजन्! उस समय उस खम्भे मे से महाभयकर शब्द हुआ, जिससे

९—स ईश्वरः काल उरुक्रमोऽसावोजः सहः सत्त्वबलेंद्रियात्मा।
स एव विश्वं परमः स्वशक्तिभिः सृजत्यवत्यत्ति गुणत्रयेशः॥

१०—जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनः समं मनो धत्स्व न संति विद्विषः।
ऋतेऽजितादात्मन उत्पथस्थितात्तद्धि ह्यनंतस्य महत्समर्हणं॥

११—दस्यून्पुरा षण्णविजित्य लुंपतो मन्यंत एके स्वजिता दिशो दश।
जितात्मनोज्ञस्य समस्य देहिनां साधोः स्वमोहप्रभवाः कुतः परे॥

हिरण्यकशिपुरुवाच—

१२—व्यक्तं त्वं मर्तुकामोऽसि योतिमात्रं विकत्थसे। मुमूर्षूणां हि मंदात्मन्ननुस्युर्विक्लवा गिरः॥

१३—यस्त्वया मंदभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः। क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात्स्तंभे न दृश्यते॥

१४—सोऽहं विकत्थमानस्य शिरः कायाद्धरामिते। गोपायेत हरिस्त्वाद्य यस्ते शरणमीप्सितं॥

१५—एवं दुरुक्तैर्मुहुरर्दयन् रुषा सुतं महाभागवतं महासुरः।
खड्गं प्रगृह्योत्पतितो वरासनात् स्तंभं तताडातिबलः स्वमुष्टिना॥

यह ब्रह्मांड फूट गया। अपने लोक में उस शब्द को सुनकर ब्रह्मा आदि ने अपने लोक में प्रलय हुआ-सा जाना ॥ १६ ॥ पराक्रम के द्वारा बलपूर्वक पुत्र को मार डालने की इच्छा रखने वाले हिरण्यकशिपु ने उस अपूर्व तथा अद्भुत शब्द को सुना, जिसे सुनकर बड़े-बड़े दैत्य भी दहल गए थे, किंतु उसने अपनी सभा में उस शब्द करने वाले को नहीं देखा। अपने सेवक प्रह्लाद की बात को सत्य प्रमाणित करने के लिए, भगवान् सब जगह व्याप्त हैं, इसे सत्य करने के लिए अपने भक्त सनकादिकों के द्वारा जय विजय को दिये गए शाप सम्बन्धी बात को सत्य करने के लिए, अपने सेवक ब्रह्मा के द्वारा हिरण्यकशिपु को दिए गए वरदान को सत्य करने के लिए, अपने दास हिरण्यकशिपु की इस बालक के विरोध से ही कहीं मेरी मृत्यु न हो, इस चिंता को सत्य करने लिए, अपने भक्त नारदजी के द्वारा इंद्र से कहे गए यह गर्भ तुम्हारे द्वारा नहीं मारा जायगा तथा सबसे निर्भय रहेगा, इस बात को सत्य करने के लिये तथा स्वयं अपने भक्तों से बार-बार कही हुई 'मैं अपने भक्तों की रक्षा करता हूँ' इस बात को सत्य करने के लिए जो न पशु थे न मनुष्य, ऐसे अत्यंत अद्भुत रूप वाले नृसिंह भगवान् खंभा फाड़कर सभा में प्रकट हुए ॥१७-१८॥ हिरण्यकशिपु इस अद्भुत शब्द को चारों ओर देख रहा था कि यह शब्द किसने किया। इसी समय खंभे में से निकलते हुए इस स्वरूप को देखकर वह सोचने लगा कि अरे, यह न तो सिंह ही है, न मनुष्य ही, फिर मनुष्य और सिंह का मिश्रित रूप यह कौन है ? ॥ १९ ॥ हिरण्यकशिपु इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि उसने अपने आगे नृसिंह भगवान् का महा भयानक रूप देखा। उनकी आंखें तपाए हुए सोने के समान भयंकर थीं, जटाएँ तथा खड़रोम कन्धे पर लटक रहे थे। उनकी डाढ़ें विकराल थीं, छुरे की धार के समान जीभ तलवार की तरह लपक

१६—तदैव तस्मिन्निनदोऽतिभीषणो बभूव येनाण्डकटाहमस्फुटत् ।
यं वै स्वधिष्ण्योपगतं त्वजादयः श्रुत्वा स्वधामात्ययमङ्ग मेनिरे ॥

१७—स विक्रमन्पुत्रवधेप्सुरोजसा निशम्य निर्ह्रादमपूर्वमद्भुतम् ।
अन्तः सभायां न ददर्श तत्पदं वितत्रसुर्येन सुरारियूथपाः ॥

१८—सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः ।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन् स्तंभे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥

१९—स सत्त्वमेनं परितो विपश्यन् स्तम्भस्य मध्यादनुनिर्जिहानम् ।
नायं मृगो नापि नरो विचित्रमहो किमेतन्नृमृगेन्द्ररूपम् ॥

२०—मीमांसमानस्य समुत्थितोऽग्रतो नृसिंहरूपस्तदलं भयानकम् ।
प्रतप्तचामीकरचण्डलोचनं स्फुरत्सटाकेशरजृम्भिताननम् ॥

रही थी, भ्रुकुटी माथे पर चढी हुई थी, कान खडे थे, फैलाया हुआ मुँह और नाक पर्वत की गुफा के समान अद्भुत जान पडती थी, मुख-गह्वर कान तक फैला हुआ था, स्वर्ग को स्पर्श करता हुआ सा (अर्थात् बहुत लम्बा शरीर था, गर्दन छोटी और पुष्ट थी, छाती विशाल थी, पेट छोटा था, चन्द्र-किरणों के समान श्वेत रोम सारे शरीर मे उगे हुए थे, हजारों हाथ समस्त दिशाओं में फैले हुए थे, नाखून शस्त्र के समान थे, कोई उनके निकट जा नहीं सकता था, चक्र आदि अपने शस्त्र तथा वज्र आदि अन्य देवताओं के शस्त्र उन्होंने धारण कर रखे थे, जिससे दैत्य और दानव भागे जा रहे थे। भगवान् के ऐसे रूप को देखकर " सम्भवतः बड़े मायावी विष्णु भगवान् ने इस प्रकार मुझे मारने का निश्चय किया है " ऐसा कहता हुआ वह महा दैत्य हिरण्यकशिपु गदा लेकर नृसिंह भगवान् पर दौडा । उस समय अग्नि मे पड़े हुए पतग की तरह वह हिरण्यकशिपु दीख ही नहीं पडा ॥२०-२४॥ सृष्टि के आरम्भ में जिन्होंने अपने तेज से प्रलय के अन्धकार को पी लिया था, उन सत्वप्रकाश भगवान् के तेज मे पड़ा हुआ हिरण्यकशिपु दीख नहीं पडा, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अनन्तर हिरण्यकशिपु ने क्रोध पूर्वक अत्यन्त वेग वाली अपनी गदा से नृसिंह जी की छाती पर प्रहार किया ॥ २५ ॥ पराक्रम दिखलाते हुए और गदा लिए हुए उस हिरण्यकशिपु को गदाधर भगवान ने वैसे ही पकड़ लिया, जैसे गरुड़ सर्प को पकड़ लेता है, किन्तु क्रीडा करते हुए भगवान के हाथों से वह वैसे ही छूट गया, जैसे गरुड की चोंच से सर्प छूट जाता है ॥ २६ ॥ भारत !

२१—करालदंष्ट्रं करवालचचलक्षुरान्तजिह्वं भ्रुकुटीमुखोल्बणम् ।
स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरिकंदराद्भुत व्यात्तास्य नासं हनुभेदभीषणम् ॥

२२—दिविस्पृशत्काय मदीर्घपीवरग्रीवोरुवक्षःस्थलमल्पमध्य ।
चन्द्रांशुगौरैश्छुरितं तनूरुहैर्विष्वक् भुजानीकशतं नखायुध ॥

२३—दुरासद सर्वनिजेतरायुध प्रवेक विद्रावित दैत्य दानवं ।
प्रायेण मेऽयं हरिणोरुमायिना वधः स्मृतोऽनेन समुद्यते न किं ॥

२४—एवं ब्रुवंस्त्वभ्यपतद्गदायुधो नदन्नृसिंहं प्रतिदैत्यकुञ्जरः ।
अलक्षितोऽग्नौ पतितः पतंगमो यथा नृसिंहौजसि सोऽसुरस्तदा ॥

२५—न तद्विचित्रं खलु सत्वधामनि स्वतेजसा योनुपुरापिबत्तमः ।
ततोऽभिपद्याभ्यहनन्महासुरो रुषा नृसिंहं गदयोरुवेगया ॥

२६—तं विक्रमं तं सगद गदाधरो महोरगं तार्क्ष्यसुतो यथाऽग्रहीत् ।
स तस्य हस्तोत्कलितस्तदाऽसुरो विक्रीडतो यद्वदहिर्गरुत्मतः ॥

जिनका स्थान हिरण्यकशिपु ने छीन लिया था, ऐसे समस्त लोकपाल बादलों की ओट से यह सब देख रहे थे। भगवान के हाथों से हिरण्यकशिपु को छूटा हुआ देखकर उन लोगों ने बुरा माना। भगवान के हाथों से छूट जाने के कारण युद्ध मे न थकने वाले हिरण्यकशिपु ने भगवान को अपने पराक्रम से हारा हुआ जाना और पुनः ढाल-तलवार लेकर उसने उन पर आक्रमण किया ॥ २७ ॥ हिरण्यकशिपु ढाल-तलवार लेकर बाज के समान वेग से इस तरह पैतरा बदलने लगा कि वह चारों ओर से ढक सा गया, लेकिन भयकर शब्द वाले अपने तीव्र अट्टहास से उसकी आखे मीचकर नृसिंहजी ने पुनः उसे पकड लिया ॥ २८ ॥ सॉप के द्वारा पकड़े गए चूहे के समान आतुर होकर चारों ओर छटपटाते हुए वज्र से भी जिसका चमड़ा न कटा था, ऐसे हिरण्यकशिपु को सभा में (न अन्दर न बाहर) अपनी जाघ पर (न पृथ्वी पर, न आकाश में) रखकर लीला मात्र से सायकाल के समय नख (न जीवित न मृत) के द्वारा फाड डाला, जैसे गरुड़ अत्यन्त विषैले सर्प को फाड़ डालता है ॥ २९ ॥ क्रोध के कारण जिनकी आँखें ऐसी विकराल हो गई थीं कि उनकी ओर देखा नहीं जाता था, जो फाड़े हुए मुँह को अपनी जीभ से चाट रहे थे, अतडियों की जिन्होंने माला पहन रखी थी तथा हाथी को मारने वाला सिंह के समान जिनके गले का केसर (केश) और मुँह रक्त के विंदुओं के लाल हो गया था, उन नृसिह भगवान ने हिरण्यकशिपु को जिसके हृदय-कमल को उन्होंने नख से फाड डाला था, फेक दिया और शस्त्र लेकर उद्यत हुए उसके सहस्रों अनुचरों तथा पक्षपातियों को उन्होंने अपने नखों शस्त्रों और पैरों से मार डाला। उनकी सेना तो उनके हजारों हाथ ही थे ॥ ३०—३१ ॥ उनकी जटाओं

२७—असाध्वमन्यन्त हृतौकसोऽमरा घनच्छदा भारत सर्वधिष्ण्यपाः ।

तं मन्यमानो निजवीर्यशङ्कितं यद्धस्तमुक्तो नृहरिं महासुरः ॥

पुनस्तमासज्जत खड्गचर्मणी प्रगृह्य वेगेन जितश्रमो मृधे ॥

२८—तं श्येनवेगं शतचन्द्रवर्त्मभिश्चरंतमच्छिद्रमुपर्यधो हरिः ।

कृत्वाऽट्टहासं खरमुत्स्वनोल्बणं निमीलिताक्षं जगृहे महाजवः ॥

२९—विष्वक् स्फुरन्तं ग्रहणातुरं हरिर्व्यालो यथाऽऽखुं कुलिशाक्षतत्वचं ॥

द्वार्यूरुआपात्य ददारलीलया नखैर्यथाऽहिं गरुडो महाविषं ॥

३०—संरंभ दुष्प्रेक्ष्य करालशोचनो व्यात्ताननान्तं विलिहन्स्वजिह्वया ।

असृग्लवाक्तारुण केसराननो यथान्त्रमाली द्विपहत्यया हरिः ॥

३१—नखां कुरोत्पाटितहृत्सरोरुहं विसृज्य तस्यानुचरानुदायुधान् ।

अहन्समस्तान्नखशस्त्रपार्ष्णिभिर्दोर्दण्डयूथोऽनुपथान्सहस्रशः ॥

को देखकर कांपते हुए, बादल फट गए उनकी दृष्टि से ग्रहों की कान्ति फीकी पड़ गई श्वास की वायु से समुद्र में तूफान आ गया, उनके गर्जन से घबराकर दिग्गज चिग्घाड़ मारने लगे, उनकी जटा के प्रक्षेप से आकाश में देवताओं के विमान उड़ने लगे, पैर के भार से धरती कांपने लगी, उनके वेग से पर्वत उड़ने लगे, और उनके तेज से आकाश तथा दिशाओं की शोभा नष्ट हो गई ॥ ३२—३३ ॥ अनन्तर भगवान् नृसिंह सभा में राजा के श्रेष्ठ आसन पर बैठे। महातेजस्वी, महाक्रोधी भयानक मुंह वाले और जिनके सम्मुख कोई भी शत्रु नहीं दीखता था, ऐसे नृसिंह के सम्मुख कोई नहीं जा सका ॥ ३४ ॥ तीनों लोकों के लिए शिर पीडा के समान उस आदिदैत्य हिरण्यकशिपु को भगवान् ने युद्ध में मार डाला, यह सुनकर देवताओं की स्त्रियों का मुँह प्रसन्नता से खिल उठा और उन्होंने बार-बार फूलों की वृष्टि की ॥ ३५ ॥ सब देखने की इच्छा रखने वाले देवताओं के विमानों से आकाश भर गया। देवता ढोल तथा दुन्दुभि बजाने लगे, बड़े-बड़े गन्धर्व गाने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं ॥३६॥ ब्रह्मा, इन्द्र और महेश आदि देवता, ऋषि, पितर, सिद्ध, विद्याधर, श्रेष्ठ सर्प, मनु, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सराएँ, चारण, यक्ष, किंपुरुष, वैताल, सिद्ध, किन्नर तथा सुनन्द और कुमुद आदि भगवान् के समस्त पार्षद वहाँ आए। उन्होंने कुछ दूर खड़े होकर माथे से लगाकर हाथ जोडा और सभा में बैठे हुए अत्यन्त तेजस्वी नृसिंह भगवान् की वे अलग-अलग स्तुति करने लगे ॥ ३७-३९ ॥

३२—सटाऽव धूता जलदाः परापतन् ग्रहाश्च तद्दृष्टिविमुष्ट रोचिषः।
अंभोधयः श्वासहताविचुक्षुभुर्निर्ह्रादभीतादिगिभाविचुक्रुशुः ॥

३३—द्यौस्तत्सटोत्क्षिप्त विमानसङ्कुला प्रोत्सर्पतक्ष्मा च पदाऽति पीडिता।
शैलाः समुत्पेतुरमुष्यरंहसा तत्तेजसा खं ककुभो नरेजिरे ॥

३४—ततः सभायामुपविष्ट मुत्तमे नृपासने संभृततेजसं विभुं।
अलक्षितद्वैरथ मत्यमर्षणं प्रचण्डवक्त्रं न बभाज कश्चन ॥

३५—निशम्य लोकत्रय मस्तकज्वरं तमादिदैत्यं हरिणा हत मृधे।
प्रहर्षवेगोत्कलितानना मुहुः प्रसूनवर्षैर्ववृषुः सुरस्त्रियः ॥

३६—तदा विमानावलिभिर्नभस्तलं दिदृक्षतां सङ्कुलमासनाकिनां।
सुरानका दुन्दुभयोऽथ जघ्निरे गन्धर्व मुख्या ननृतुर्जगुः स्त्रियः ॥

३७—तत्रोपव्रज्य विबुधा ब्रह्मेन्द्रगिरिशादयः। ऋषयः पितरः सिद्धा विद्याधरमहोरगाः ॥

३८—मनवः प्रजानां पतयो गन्धर्वाप्सरचारणाः। यक्षाः किंपुरुषास्तात वैतालाः सिद्धकिन्नराः ॥

३९—ते विष्णुपार्षदाः सर्वे सुनंदकुमुदादयः। मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटा आसीनं तीव्रतेजसं।
ईडिरे नरशार्दूलं नातिदूरचराः पृथक् ॥

ब्रह्मा बोले—आप अनन्त हैं, असीम शक्तिशाली हैं, विचित्र प्रभाव वाले हैं, आपके कार्य पवित्र हैं, आप अपनी लीला से गुणों के द्वारा इस जगत की सृष्टि, स्थिति और संहार करते हुए भी अखण्डित स्वरूपवाले हैं आपको नमस्कार ॥ ४० ॥

रुद्र बोले--आपके कुपित होने का समय प्रलय-काल है । इस समय तो आपने इस तुच्छ असुर को मारा है । भक्तवत्सल ! देव ! आप क्रोध दूर करें और अपनी शरण आए हुए तथा अपने भक्त इस प्रह्लाद की रक्षा करें ॥ ४१ ॥

इन्द्र बोले—भगवन् ! आपने हम लोगों की रक्षा करके इस दैत्य से हम लोगों का भाग हमें दिलाया है और आपका ध्यान करने का स्थान हम लोगों के हृदय-कमलों को, जो इस दैत्य के भय से व्याप्त हो गया था, आपने मुक्त किया है । काल के द्वारा जिसका नाश हो जाता है, ऐसे इस त्रैलोक्य का राज्य आपके भक्तों के लिए क्या है ? अर्थात् कुछ भी नहीं है । उन्हें तो मुक्ति भी प्रिय नहीं है, फिर अन्य सुखों की तो बात ही क्या ? ॥ ४२ ॥

ऋषिगण बोले—हे आदिपुरुष ! शरणागतवत्सल ! आपने प्रभाव से युक्त ध्यान-रूप तप आपने ही हम लोगों को बतलाया था जिसके द्वारा अपने में स्थित जगत् की सृष्टि की है । उस तप को इस दैत्य ने विलुप्त कर दिया था, किन्तु हमारी रक्षा के लिए आपने यह अवतार धारण करके पुनः हमें वह तप करने की आज्ञा दी है ॥ ४३ ॥

पितरलोग बोले—हमारे पुत्रों के द्वारा किए गए श्राद्ध तथा तीर्थों में दिये गये तिलोदक को यह दैत्य बलपूर्वक ले लेता था, आपने नख के द्वारा इसका पेट फाड़कर हम लोगों को पुनः यह सब दिलवाया है, अतः समस्त धर्मों की रक्षा करनेवाले आपको हम लोग नमस्कार करते हैं ॥ ४४ ॥

ब्रह्मोवाच—

४०—नतोऽस्म्यनंताय दुरंतशक्तये विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ।
विश्वस्य सर्गस्थितिसंयमान्गुणैः स्वलीलया संदधतेऽव्ययात्मने ॥

श्रीरुद्र उवाच—

४१—कोपकालो युगांतस्ते हतोऽयमसुरोऽल्पकः । तत्सुतं पाह्युपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥

इंद्र उवाच—

४२—प्रत्यानीताः परमभवता त्रायता नः स्वभागा । दैत्याक्रांतं हृदयकमलं त्वद्गृहं प्रत्यबोधि ।
कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां ते । मुक्तिस्तेषां नहि बहुमता नारसिंहापरैः किं ॥

ऋषय ऊचुः—

४३—त्वं नस्तपः परममात्थ यदात्मतेजो येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्ज ।
तद्विप्रलुप्तममुनाऽद्य शरण्यपाल रक्षागृहीतवपुषा पुनरन्वमंस्थाः ॥

पितर ऊचु —

४४—श्राद्धानि नोऽधिबुभुजे प्रसभं तनूजैर्दत्तानि तीर्थसमयेऽपि तिलाम्बुसम्यः ।
तस्योदरान्नखविदीर्णवपाद् य आर्च्छत्तस्मै नमो नृहरयेऽखिल धर्मगोप्त्रे ॥

सिद्ध बोले—हे नृसिंह ! जिस दुष्ट दैत्य ने योग से प्राप्त हुई हम लोगों की सिद्धियों को अपनी तपस्या और बल के द्वारा छीन लिया था, उसे नख से विदीर्ण करने वाले आपको हम लोग प्रणाम करते हैं ॥ ४५ ॥

विद्याधर बोले—बल तथा पराक्रम से अभिमानयुक्त जिस दैत्य ने भिन्न २ ध्यानों से मिलने वाली हमारी विद्या का निषेध कर दिया था, उसको आपने युद्ध में पशु के समान मार डाला, अतः माया से नृसिंह-रूप धारण करनेवाले आपको हम बार-बार नमस्कार करते हैं ॥ ४६ ॥

नाग बोले—जिस पापी ने हमारे रत्नों तथा स्त्री-रत्नों का हरण कर लिया था, उसका हृदय चीरकर आपने हम लोगों को आनन्द दिया है। हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ४७ ॥

मनु बोले—हम मनु हैं। हम आपके आज्ञापालक हैं। इस असुर ने हमारी समस्त मर्यादाओं को नष्ट कर दिया था। प्रभु ! आपने उसका संहार किया हम किंकरों को आप आज्ञा दीजिए कि हम आपका क्या काम करें ? ॥ ४८ ॥

प्रजापति बोले—परमेश्वर ! आपके द्वारा प्रजा की सृष्टि के लिए प्रेरित हम लोग जिसके निषेध से प्रजा की सृष्टि नहीं करते थे, वह दैत्य आपके द्वारा छाती के फाड डाले जाने पर यह सो रहा है, अतः हमलोग पुनः प्रजा की सृष्टि करेंगे। सत्वमूर्ति ! आपका अवतार जगत् के कल्याण के लिए हुआ है ॥ ४९ ॥

सिद्धा ऊचुः—

४५—यो नो गतिं योगसिद्धामसाधुरहार्षीद्योगतपोबलेन ।
नाना दर्पं तन्नखैर्निर्ददार तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो नृसिंह ॥

विद्याधरा ऊचुः—

४६—विद्यां पृथग्धारणयानुराद्धां न्यषेधदज्ञो बलवीर्यदृप्तः ।
स येन सङ्ख्ये पशुवद्धतस्तं मायानृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम् ॥

नागा ऊचुः—

४७—येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः । तद्वक्षःपाटनेनासां दत्तानन्द नमोऽस्तु ते ॥

मनव ऊचुः—

४८—मनवो वयं तव निदेशकारिणो दितिजेन देवपरिभूतसेतवः ।
भवता खलः स उपसंहृतः प्रभो करवाम ते किमनुशाधि किङ्करान् ॥

प्रजापतय ऊचुः—

४९—प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा नयेन प्रजा वै सृजामो निषिद्धाः ।
स एष त्वया भिन्नवक्षानुशेते जगन्मङ्गलं सत्त्वमूर्तेऽवतारः ॥

गंधर्व बोले—प्रभु ! हम आपके नट तथा नाचने-गानेवाले हैं, जिस दैत्य ने अपने पराक्रम तथा बल से हमलोगों को अपने अधीनकर लिया था, उसकी आपने यह गति कर दी है। बुरे मार्ग पर चलने वाले का कल्याण कैसे हो सकता है ? ॥ ५० ॥

चारण बोले—सज्जनों को कष्ट देनेवाले इस दैत्य को आपने समाप्त कर डाला है, अतः हम भव-बंधन से मुक्त करने वाले आपके चरण-कमलों की शरण आए हैं ॥ ५१ ॥

यक्ष बोले— आप चौबीस तत्वों के अधिपति हैं। मनोज्ञ कार्यों के द्वारा आपकी सेवा करने वाले हमलोगों को इसने अपना वाहक बना लिया था। लोकों को इस दैत्य ने जो दुःख दिया था, उसे जानकर आपने इसे मारा डाला है ॥ ५२ ॥

किंपुरुष बोले— हमलोग किंपुरुष हैं और आप महापुरुष। इस नीच पुरुष हिरण्यकशिपु को जब सज्जनों ने धिक्कारा तो इसकी मृत्यु हो गई, अर्थात् सज्जनों के धिक्कार के कारण ही इसकी मृत्यु हुई ॥ ५३ ॥

वैतालिक बोले— सभाओं तथा यज्ञों में आपकी निर्मल कीर्ति गाकर हम लोग बहुत-सी पूजा (अर्थात् धन आदि) पाते हैं जो दुर्जन उस पूजा को हमसे छीन लेता था, उसे मारकर आपने बड़ा अच्छा किया ॥ ५४ ॥

गंधर्वा ऊचुः—

५०—वय विभो ते नटनाट्यगायका येनात्मसाद्वीर्यबलौजसा कृताः ।

स एष नीतो भवता दशामिमां किमुत्पथस्थः कुशलाय कल्पते ॥

चारणा ऊचुः—

५१—हरे तवांघ्रिपंकज भवापवर्ग माश्रिताः । यदेश साधुहृच्छ्रयस्त्वयाऽसुरः समापितः ॥

यक्षा ऊचुः—

५२—वयमनुचरमुख्याः कर्मभिस्ते मनोज्ञैस्त इह दितिसुतेन प्रापितावाहकत्वम् ।

स तु जनपरितापं तत्कृतं जानताते नरहर उपनीतः पचतां पचविंश ॥

किंपुरुषा ऊचुः—

५३— वय किंपुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः । अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा ॥

वैतालिका ऊचुः—

५४—सभासु सत्रेषु तवामलं यशो गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे ।

यस्तामनैषीद्वशमेष दुर्जनो दिष्ट्या हतस्ते भगवन्यथामयः ॥

किन्नर बोले—ईश ! हम लोग किन्नर हैं। आपके अनुगामी हैं। यह दुष्ट हम लोगों से बेगारी कराता था। इसे आपने मारडाला। नरसिंह ! हे नाथ ! आप हम लोगों का कल्याण करें ॥ ५५ ॥

विष्णु के पार्षद बोले—हे शरणद ! समस्त लोकों को सुख देनेवाला आपका यह अद्भुत नृसिंह-रूप हम लोगों ने आज ही देखा है। ब्राह्मणों ने जिसे शाप दिया था, उस अपने दास हिरण्यकशिपु को मारकर आपने उस पर कृपा ही की है, ऐसा हम लोग मानते हैं ॥ ५६ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कंध का आठवाँ अध्याय समाप्त

किन्नरा ऊचुः—

५५—वयमीश किन्नरगणास्तवानुगा दितिजेन विष्टिममुनाऽनुकारिताः।
भवता हरे सवृजिनोऽवसादितो नरसिंह नाथ विभवाय नो भव॥

विष्णुपार्षदा ऊचुः—

५६—अद्यैतद्धरिनररूपमद्भुतं ते दृष्टं नः शरणद सर्वलोक शर्म।
सोऽयं ते विधिकर ईश विप्रशप्तस्तस्येदं निधनमनुग्रहाय विद्मः॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कंधेप्रह्लादानुचरितेदैत्यवधेनृसिंहस्तवोनामअष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

प्रह्लाद के द्वारा की गई नृसिंह भगवान् की स्तुति

नारद बोले— इस प्रकार क्रोध के आवेश से युक्त और कठोर नृसिंहजी की स्तुति करते हुए ब्रह्मा और रुद्र आदि समस्त देवता उनके समीप नहीं जा सके ॥ १ ॥ देवताओं ने साक्षात् लक्ष्मी को उनके पास भेजा, किन्तु जिसे पहले न कभी देखा, न सुना, भगवान् के उस ऐसे अत्यन्त अद्भुत रूप को देखकर वे भी भय के कारण उनके समीप नहीं गईं ॥ २ ॥ तब ब्रह्मा ने अपने पास खड़े हुए प्रह्लाद से कहकर उसे नृसिंहजी के पास भेजा कि " तात ! जाओ, अपने पिता पर क्रोधित हुए भगवान् को शान्त करो " ॥ ३ ॥ राजन् ! ब्रह्माजी की बात मानकर महावैष्णव प्रह्लाद धीरे-धीरे उनके पास गया और हाथ जोड़कर तथा पृथ्वी पर दण्डवत् पड़ कर उन्हें प्रणाम किया ॥ ४ ॥ उस बालक को अपने पैरों पर पड़ा हुआ देखकर कृपा से व्याप्त भगवान् ने उसे उठा लिया और अपना कर-कमल उसके माथे पर रखा जो कालरूपी सर्प से भयभीत प्राणियों को अभय देनेवाली है ॥ ५ ॥ भगवान् के हाथों के स्पर्श से प्रह्लाद के समस्त अमङ्गल दूर हो गए, क्षणमात्र में ब्रह्मदर्शन अपरोक्ष हो गया, हृदय में परम आनद हुआ, रोंगटे खड़े हो गए, अन्तःकरण प्रेम से भीग गया, आँखों में आँसू भर आए और वह भगवान् का ध्यान करने लगा ॥ ६ ॥ सावधान और एकाग्र चित्तवाला प्रह्लाद, अपनी आँखों और हृदय को भगवान् में लगाकर प्रेम से गद्गद हुई वाणी के द्वारा उनकी स्तुति करने लगा ॥ ७ ॥

नारद उवाच—

१—एवं सुरादयः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरः सराः । नोपैतुमशकन्मन्यु संरंभ सुदुरासद ॥

२—साक्षाच्छ्रीः प्रेषिता देवैर्दृष्ट्वा तन्महदद्भुतं । अदृष्टाश्रुतपूर्वत्वात्सानोपेयाय शंकिता ॥

३—प्रह्लादं प्रेषयामास ब्रह्माऽवस्थितमंतिके । तात प्रशमयोपेहि स्वपित्रे कुपित प्रभुं ॥

४—तथेति शनकैराजन् महाभागवतोऽर्भकः । उपेत्य भुवि कायेन ननाम विधृताञ्जलिः ॥

५—स्वपादमूले पतित तमर्भकं विलोक्य देवः कृपयापरिप्लुतः ।

उत्थाप्य तच्छीर्ष्ण्यदधात्कराम्बुज कालाहिवित्रस्तधियां कृताभयं ॥

६—स तत्करस्पर्श धुताखिलाशुभः सपद्यभिव्यक्त परात्मदर्शनः ।

तत्पादपद्मे हृदि निर्वृतो दधौ हृष्यत्तनुः क्लिन्नहृदश्रुलोचनः ॥

७—अस्तौषीद्धरिमेकाग्र मनसा सुसमाहितः । प्रेमगद्गदया वाचा तन्न्यस्त हृदयेक्षणः ॥

प्रह्लाद बोला—सत्वगुण के विस्तारवाले ब्रह्मा आदि देवता, मुनि तथा सिद्ध अपने वचनों के प्रवाह तथा श्रेष्ठ गुणों के द्वारा अबतक जिनकी आराधना करने मे समर्थ नहीं हुए, वे भगवान् असुर जातिवाले मुझपर कैसे प्रसन्न हो सकते हैं ? ॥८॥ मैं ऐसा समझता हूँ कि धन, उत्तम कुल मे जन्म, रूप, तपस्या, विद्वत्ता, इन्द्रियों की निपुणता, कान्ति, प्रताप, बल, उद्यम, बुद्धि और अष्टाग योग, इनमे से कोई भी भगवान् को प्रसन्न करने में समर्थ नहीं है। भगवान् केवल भक्ति से ही गजराज पर प्रसन्न हुए थे ॥ ९ ॥ उत्तम ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न तथा उपरोक्त बारह गुणों से युक्त होकर भी जो व्यक्ति भगवान् के चरण-कमलों से विमुख रहता है, उसकी अपेक्षा अपने मन, वचन, कर्म धन और प्राण को भगवान् को अर्पित कर देनेवाले चाण्डाल को मैं श्रेष्ठ मानता हूँ, क्योंकि वह चाण्डाल अपने समस्त कुल को पवित्र कर देता है, किन्तु अत्यन्त अभिमानी ब्राह्मण अपने आपको भी पवित्र नहीं कर सकता। ऊपर कहे हुए बारह गुण केवल उसके अभिमान के ही कारण होते है ॥ १० ॥ अपने स्वरूप के लाभ से ही पूर्ण भगवान् अज्ञानी पुरुषों के द्वारा पूजित होने की इच्छा नहीं रखते, किन्तु दयालु होने पर वे उसकी इच्छा रखते हैं। भगवान् को मनुष्य जिन पदार्थों से मान देता है, वह सब उसीके लिये होता है, जिस प्रकार मुँह का जितना शृंगार किया जाता है, उतनाही प्रतिबिम्ब को मिलता है, उसी प्रकार भगवान् की जितनी पूजा की जाती है, वह अपनेको ही प्राप्त होती है ॥११॥ अतः नीच होने पर भी शंकारहित होकर मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सब प्रकार से आपकी महिमा का वर्णन करता हूँ, जिसका वर्णन करनेसे अज्ञान के द्वारा देह धारण करनेवाला मनुष्य पवित्र हो जाता है ॥ १२ ॥ ये सब उद्विग्न होते हुए ब्रह्मा आदि सत्वमूर्ति आपके भक्त हैं। ये

प्रह्लाद उवाच—

८—ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः।
नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापिपिप्रुः किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्र जातेः ॥

९—मन्ये धनाभिजनरूप तपः श्रुतौजस्तेजः प्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय ॥

१०—विप्राद्द्विषड् गुणयुतादरविंदनाभ पादारविंद विमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठं।
मन्येतदर्पित मनो वचने हितार्थं प्राणं पुनाति सकुलं नतु भूरिमानः ॥

११—नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो मानजनादविदुषः करुणो वृणीते।
यद्यज्जनो भगवते विदधीतमान तच्चात्मने प्रतिमुखस्य, यथामुखश्रीः ॥

१२—तस्मादहं विगतविक्लव ईश्वरस्य सर्वात्मना महिगृणामि यथा मनीषं।
नीचोऽजयागुणविसर्गं मनुप्रविष्टः पूयेत येन हि पुमाननुवर्णितेन ॥

हम लोगों के समान वैर-भाव से आपका भजन नहीं करते। सुदर अवतारों के द्वारा आपकी लीला जगत का कल्याण करने तथा उसे सुख,और ऐश्वर्य देने के निमित्त होती है, भय उत्पन्न करने के लिए नहीं, अतः आप क्रोध दूर करे। आपने आज असुर का नाश किया, अतः अब क्रोध का कोई कारण नहीं है। सज्जन लोग भी बिच्छू और सांप आदि के मारे जाने पर प्रसन्न होते हैं (अत. हिरण्यकशिपु के मारे जाने परभी सज्जन प्रसन्न हुए हैं)। अब आनन्दित हुए सबलोग आपके क्रोधके दूर होने की बाट जोह रहे हैं। हे नृसिंह! अपने भयको दूरकरने के लिए लोग जब आपके रूप का स्मरण करते हैं तो उनका भय दूर हो जाता है, अतः अब क्रोध करने की आवश्यकता नहीं है ॥१३-१४॥ अजित! मैं आपके इस रूप से भयभीत नहीं होता,जिस मे मुँह, जीभ, सूर्य के समान आंखे, भ्रुकुटी तथा उग्र डाढ अत्यन्त भयकर हैं, जिसने अन्तड़ियों की माला है, केसर रुधिर से भीगे हुए हैं, कान ऊँचे और खड़े हैं, नख का अग्रभाग शत्रुओं को फाड़ डालनेवाला है तथा जिसकी हुँकार से दिग्गज भी भयभीत हो जाते हैं। दीनवत्सल! मैं असत्य तथा ससाररूपी चक्रके दुःख से डरता हूँ। मेरे कर्मों ने मुझे बाँधकर हिंसक प्राणियों के बीच डाल दिया है,अतः हे प्रिय! आप प्रसन्नहोकर कब मुझे मोक्षरूप तथा आश्रयरूप अपने चरण-कमलोंमें बुलावेंगे? ॥१५-१६॥ प्रिय पदार्थके वियोग तथा अप्रिय पदार्थके सयोगसे उत्पन्न हुई शोकरूपी अग्नि में मैं समस्त जन्मों मे जला करता हूँ। ससार मे दुखों के मिटने के जो उपाय हैं,वे भी दुःखरूप ही हैं उनके अतिरिक्त देहके अभिमान से भी मैं भटका करता हूँ। अतः प्रभु! अपना दास बनाने का जो उपाय हो,वह आप मुझसे कहे॥१७॥ नृसिंह! गुणके बन्धनों से छूटकर

१३—सर्वे ह्यमीविधिकरास्तव सत्त्वधाम्नो ब्रह्मादयो वयमिवेश नचोद्विजतः।
क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य विक्रीडितं भगवतो रुचिरावतारैः॥

१४—तद्यच्छमन्युमसुरश्च हतस्त्वयाऽद्य मोदेत साधुरपि वृश्चिकसर्पहत्या।
लोकाश्च निर्वृतिमिताः प्रतियन्ति सर्वे रूपं नृसिंह विभयाय जनाः स्मरन्ति॥

१५—नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्य जिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात्।
आन्त्रस्रजः क्षतजकेसरशंकुकर्णान्निर्ह्रादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात्॥

१६—त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्र संसारचक्र कदनाद् ग्रसतां प्रणीतः।
बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु॥

१७—यस्मात्प्रियाप्रिय वियोगसयोगजन्म शोकाग्निना सकल योनिषु दह्यमानः।
दुःखौषधं तदपि दुःखमतद्धियाऽहं भूमन् भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगं॥

तथा आपके चरणारविंद मे रहनेवाले ज्ञानी लोगों का संग करके, परम सम्बन्धी तथा परम देव आपकी लीला-सम्बन्धी उन कथाओं का अभ्यास करके, जिन्हें ब्रह्मा ने गाया है, मैं बड़े दु खों को भी सहज ही पार कर जाऊँगा ॥ १८ ॥

नृसिंह ! दुःखों को दूर करने के जो उपाय इस ससार मे जाने जाते हैं, वे तभी तक काम आते हैं, जबतक आपकी उपेक्षा नहीं होती, आपकी उपेक्षा होने पर माता-पिता भी बालक की रक्षा नहीं करते, औषधि रोगी की रक्षा नहीं करती और नौका समुद्र में डूबते हुए की रक्षा नहीं करती ॥ १९ ॥ भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले पहले उत्पन्न हुए ब्रह्मा आदि अथवा बाद में उत्पन्न हुए पिता आदि जिसमें, जिस कारण से, जब, जिसके द्वारा, जिसका, जिसके निमित्त, जिस प्रकार, जिसकी प्रेरणा से और जिसको उत्पन्न करते हैं तथा रूपातरित करते हैं, वह सभी आपका ही स्वरूप है ॥ २० ॥ मन जो कर्म करनेवाला, बलवान्,वेदोक्त कर्म-प्रधान और अविद्या से उत्पन्न सोलह विकारोंवाला है,उसे कालके द्वारा क्षुब्ध गुणों वाली माया आपके अशरूप पुरुष की दृष्टि से उत्पन्न करती है । इस ससार के चक्ररूपी मन को आपकी कृपा के बिना कौन तर सकता है ? ॥ २१ ॥ विभो ! चैतन्यशक्ति के द्वारा सदा बुद्धि के गुणों को जीतने वाले, माया के प्रेरक तथा कार्यों और साधनों की शक्तियों को वश मे रखने वाले आप,माया के सोलह दाँतों (विकारों) वाले संसार-चक्र में पड़े हुए पीड़ित और शरणागत मुझको अपने समीप ले लें ॥ २२ ॥ प्रभु ! ससारी लोग स्वर्ग मे जिन वस्तुओं की कामना करते हैं, उन समस्त लोक-पालों की आयु,लक्ष्मी और ऐश्वर्यों को मैंने देख लिया है— वे सभी मेरे पिता के अट्टहासपूर्वक भ्रुकुटि चढाने मात्र से नष्ट हो गए थे और उन मेरे पिता को भी आपने मार डाला ॥ २३ ॥

---

१८ सोऽहं प्रियस्य सुहृद· परदेवताया लीला कथास्तवनृसिंह विरचगीताः ।
अञ्जस्तितर्म्यनुगृणन् गुणविप्रमुक्तो दुर्गाणि ते पदयुगालयहससगः ॥

१९—बालस्य नेह शरणा पितरौ नृसिंह नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौ ।
तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्टस्तावद्विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानां ॥

२०—यस्मिन्यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद्यस्मै यथा यदुतयस्त्वपर. परो वा ।
भावः करोति विकरोति पृथक् स्वभावः सञ्चोदितस्तदखिल भवत स्वरूपं ॥

२१—मायामन सृजति कर्ममयं बली यः कालेन चोदितगुणानुमतेन पुसः ।
छन्दोमय यदजयाऽर्पित षोडशार ससार चक्र मजकोऽतितरेत्त्वदन्य ॥

२२—स त्व हि नित्य विजितात्मगुण. स्वधाम्ना कालो वशीकृत विसृज्य विसर्गशक्तिः ।
चक्रे विसृष्ट मजयेश्वरषोडशारे निष्पीड्यमान मुपकर्ष विभो प्रपन्नं ॥

२३—दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपाना मायु श्रियो विभव इच्छति यान् जनो य ।
येऽस्मत्पितुः कुपितहास विजृम्भितभ्रू विस्फूर्जितेन लुलिता सतु ते निरस्तः ॥

अतः परिणाम को जानने-वाला मैं ब्रह्मा पर्यंत प्राणियों की आयु, लक्ष्मी तथा इंद्रियजनित सुखों को भोगने की इच्छा नहीं रखता, कालरूप आपके श्रेष्ठ पराक्रम से नष्ट होने वाली सिद्धियों की इच्छा भी नहीं रखता। आप मुझे अपने सेवकों के पास रखे ॥२४॥ सुनने में अच्छे लगने वाले, किंतु परिणाम में मृगतृष्णा के समान सांसारिक सुखों में क्या सार है ? लोग यह बात समझकर भी परिश्रम से मिलने वाले दुख के लेशों से कामना रूपी अग्नि को बुझाया करते है, अतः उन्हें वैराग्य नहीं होता, आपकी माया का यह व्यापार अद्भुत है ॥ २५ ॥ ईश ! कहाँ तो रजोगुण से रचित शरीर वाला तथा तमोगुण की अधिकता वाले दैत्य के कुल में उत्पन्न मैं और कहा आपकी कृपा, कि जिस कृपा से परम पुरुषार्थ रूप आपके कर-कमल मेरे माथे पर रखे गए, जो ब्रह्मा, शिव और लक्ष्मी के मस्तक पर भी नहीं रखे गए थे, ॥ २६ ॥ ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ हैं और यह दैत्य नीच है, पामरों के समान आपकी ऐसी बुद्धि नहीं है, क्योंकि आप समस्त जगत् की आत्मा और मित्र हैं। सेवा करने से कल्पवृक्ष के समान मनुष्य आपकी कृपा प्राप्त करता है। कल्पवृक्ष सबके लिए समान है। जो उसके नीचे बैठता है, उसे मनवांछित फल मिलता है। उसी प्रकार आपके लिए भी सभी समान हैं। जो भी आपकी सेवा करता है, उसे इसकी सेवा के परिमाण के अनुसार फल मिलता है, अतः आपमें विषम बुद्धि नहीं कही जाती ॥२७॥ इसी प्रकार संसार रूपी सर्पों वाले कुएँ में पड़े हुए तथा विषय-सुखों की इच्छा रखने वाले लोगों के संसर्ग से उसी कुँएँ मे पड़ते हुए मुझको पहले नारदजी ने अपनाया था, अतः मैं आपके दासों की सेवा कैसे छोड़ूँ ? ॥ २८ ॥ अनत ! आपने जो मेरे प्राणों की रक्षा और मेरे पिता का वध किया, यह

२४—तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषोज्ञ आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरिंचात् ।

नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम् ॥

२५—कुत्राशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः क्वेदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः ।

निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान्कामानलं मधुलवैः शमयन्दुरापैः ॥

२६—क्वाहं रजः प्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मिन् जातः सुरेतरकुले क्व तवानुकम्पा ।

न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः ॥

२७—नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्याज्जन्तोर्यथात्मसुहृदो जगतस्तथापि ।

संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम् ॥

२८—एवं जनं निपतितं प्रभवाहिकूपे कामाभिकाममनु यः प्रपतन्प्रसङ्गात् ।

कृत्वात्मसात्सुरर्षिणा भगवन् गृहीतः सोऽहं कथं नु विसृजे तव भृत्यसेवाम् ॥

अपने दासों और ऋषियों की बात सच्ची करने के लिये किया, ऐसा मैं मानता हूँ। अनुचित करने की इच्छा से तलवार लेकर मेरे पिता ने कहा था कि 'मुझसे भिन्न कोई ईश्वर हो तो वह तेरी रक्षा करे,मैं तेरा माथा काटे लेता हूँ।' उस समय भक्तों को अभय देने की अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के निमित्त आपने यह प्रयास किया, ऐसा मैं मानता हूँ, इस समस्त जगत् रूप आप एक ही हैं। क्योंकि जगत् के आदि और अंत में आप ही बच रहते हैं, अतः उसके मध्य में भी आप ही हैं। अपनी माया के गुणों के परिणामरूप इस जगत् की सृष्टि करके अन्तर्यामी रूप से उसमें रहने वाले आप, गुण के कारण किसीकी रक्षा करने वाले तथा किसीको मारने वाले के रूप में भिन्न-भिन्न जान पड़ते हैं ॥२९—३०॥ कार्य-कारण रूप यह जगत आपसे भिन्न नहीं है,किंतु आप उससे भिन्न हैं। अतः अपने-पराए की भेद-बुद्धि मायाजनित और निंदित है। वृक्ष जैसे पृथ्वीमय बीजरूप है, बीज सूक्ष्मभूतरूप है और सूक्ष्मभूत परब्रह्मरूप है, उसी प्रकार यह समस्त जगत् पंचभूतरूप है, पंचभूत सूक्ष्मभूतरूप हैं, और सूक्ष्मभूत परब्रह्मरूप हैं। जिससे जिसका जन्म होता है, जिससे स्थिति होती है और जिससे नाश होता है, वह तद्रूप ही होता है ॥३१॥ स्वयं ही इस जगत् को अपने में लीन करके,स्वरूप-सुख का अनुभव करते हुए,क्रियारहित होकर आप प्रलय कालीन जल में शयन करते हैं। उस समय योग के द्वारा आँखे मींचकर तथा स्वरूप के प्रकाश से निद्रा को जीतकर आप तीनों अवस्थाओं से भिन्न स्वरूप में रहते हैं, फिर भी अज्ञान अथवा जाग्रत-स्वप्न के विषयों को नहीं देखते ॥ ३२ ॥ आप जल में शयन करनेवाले

२९—मत्प्राणरक्षणमनन्त पितुर्वधश्च मन्ये स्वभृत्यऋषिवाक्यमृतं विधातुम्।

खड्गं प्रगृह्य यदवोचदसद्विधित्सुस्त्वामीश्वरो मदपरोऽवतु कं हरामि ॥

३०—एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत्त्वमाद्यन्तयोः पृथगवस्यसि मध्यतश्च।

सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं निजमाययेदं नानेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः ॥

३१—त्वं वा इदं सदसदीश भवांस्ततोऽन्यो मायायदात्मपरबुद्धिरियं ह्यपार्था।

यद्यस्य जन्म निधनं स्थितिरीक्षणं च तद्वैतदेव वसुकालवदष्टितर्वोः ॥

३२—न्यस्येदमात्मनि जगद्विलयाम्बुमध्ये शेषेत्मना निजसुखानुभवो निरीहः।

योगेन मीलितदृगात्मनिपीतनिद्रस्तुर्ये स्थितो न तु तमो न गुणांश्च युङ्क्षे ॥

और अपनी कालशक्ति के द्वारा माया के गुणों के प्रेरक हैं। यह समस्त जगत् आपही का स्वरूप है। शेषनागरूपी पलंग पर सोने वाले आपकी समाधि के टूटने पर आपके नाभि-कमल से प्रलय कालीन जल में लोकरूपी श्रेष्ठ कमल उत्पन्न हुआ, जैसे छोटे-से बीज से बट का बड़ा वृक्ष उत्पन्न होता है। वह लोकरूपी कमल पहले आपके ही स्वरूप में छिपा हुआ था ॥ ३३ ॥ इस कमल में उत्पन्न हुए और कमल के अतिरिक्त और कुछ न देखते हुए ब्रह्मा ने बीजरूप आपको सौ वर्षों तक पानी में डूबकर ढूँढने पर भी नहीं पाया। आप यद्यपि उन्हींमें व्याप्त थे, किंतु उन्होंने आपको अपने से भिन्न जाना। अङ्कुर उत्पन्न होने पर बीज का पता कैसे लग सकता है ? ॥ ३४ ॥ तब ब्रह्मा अत्यंत विस्मित होकर पुनः कमल पर आ बैठे और बहुत दिनों तक कठोर तपस्या करके उन्होंने अपने हृदय को शुद्ध किया। हृदय के शुद्ध होने पर उन्होंने भूत, इंद्रिय और अंतःकरण रूपी अपने शरीर में व्याप्त आपको जानपाया जिस प्रकार पृथ्वी में अत्यंत सूक्ष्म गंध व्याप्त रहती है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार लोकरूपी अवयव वाले आपके विराट् रूप को देखकर ब्रह्मा आनंदित हुए थे। उस विराट् रूप में हजारों मुख, पैर, मस्तक, हाथ,जांघ, नाक, कान और आँखें थीं ॥ ३६ ॥ उस समय आपने हयग्रीव नामक अवतार धारण करके वेदद्रोही, महाबलवान् और तमोगुण तथा रजोगुण रूपी मधु-कैटभ नामक दैत्यों को मार कर वेदों का उद्धार किया था, क्योंकि सत्वगुण ही आपका प्रिय शरीर रूप कहा जाता है ॥ ३७ ॥

३३—तस्यैव ते वपुरिदं निजकालशक्त्या संचोदितप्रकृतिधर्मण आत्मगूढं।

अंभस्यनंत शयनाद्विरमत्समाधेर्नाभेरभूत्स्वकणिका वटवन्महाब्जं ॥

३४—तत्संभवः कविरतोऽन्यदपश्यमानस्त्वांबीजमात्मनिततं स्वबहिर्विचिंत्य।

नाविंददब्दशतमप्सु निमज्जमानो जातेंऽकुरे कथमुहोपलभेत बीजं ॥

३५—स त्वात्मयोनिरतिविस्मित आस्थितोऽब्जं कालेन तीव्रतपसा परिशुद्धभावः।

त्वामात्मनीशभुविगंधमिवातिसूक्ष्मं भूतेंद्रियाशयमये विततं ददर्श ॥

३६—एवं सहस्रवदनांघ्रिशिरः करोरु नासास्य कर्ण नयनाभरणायुधाढ्यं।

मायामयं सदुपलक्षित सन्निवेशं दृष्ट्वा महापुरुषमाप मुदं विरिंचः ॥

३७—तस्मै भवान्हयशिरस्तनुवंच बिभ्रद्वेदद्रुहावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ।

हत्वाऽनयच्छ्रुतिगणांस्तु रजस्तमश्च सत्वं तव प्रियतमां तनुमामनंति ॥

महापुरुष ! इस प्रकार मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता तथा मत्स्य का अवतार धारण करके आप लोकों का पालन करते हैं, उनके शत्रुओं का नाश करते हैं तथा युग के अनुसार धर्म की रक्षा करते हैं । कलियुग में गुप्त रहने के कारण आप वैसा नहीं करते । तीन ही युगों में आप प्रकट दीख पड़ते हैं । इसलिए आपका नाम 'त्रियुग' पड़ा है वैकुंठनाथ ! पापों के कारण जो दुष्ट हो गया है, जो बहिर्मुख है, तीव्र है, कामना से आतुर है तथा हर्ष, शोक भय और तृष्णा से आर्त है, वह मेरा मन आपकी कथा में नहीं लगता । मैं दीन ऐसे मन से आपके तत्व का निरूपण किस प्रकार करूँ ? ॥ ३९ ॥ अच्युत ! एक ओर से मेरी अतृप्त जिह्वा मुझे खींचती है, एक ओर से शिश्न इन्द्रिय, एक ओर से स्पर्श-सुख के लिए त्वचा खींचती है और एक ओर से भोजन के लिए पेट, एक ओर से सुन्दर शब्द सुनने के लिए कान खींचते हैं और एक ओर से सुगन्ध के लिए नाक तथा एक ओर से सुन्दर रूप देखने के लिए चंचल दृष्टि खींचती है और इसी प्रकार कर्मेन्द्रिय भी मुझे चारों ओर से खींचती हैं । बहुतसी सौतें जिस प्रकार पति को व्याकुल कर देती हैं, उसी प्रकार बहुत-सी इन्द्रियाँ मुझे व्याकुल कर रही हैं ॥ ४० ॥ मेरे ही समान और सब लोग भी दुखी हैं । सभी संसाररूपी वैतरणी में पड़े हुए हैं, एक-दूसरे से होनेवाले जन्म-मरण और भक्षण से भयभीत हैं, अपने और परायों के साथ मैत्री और शत्रुता रखते हैं, हे नित्यमुक्त ! ऐसे मूर्खों पर दया करके आप संसाररूपी वैतरणी से उनका उद्धार करें ॥ ४१ ॥ आप स॰ त जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते

३८—इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारैर्लोकान्विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान् ।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वं ॥

३९—नैतन्मनस्तव कथासु विकुंठनाथ सम्प्रीयते दुरितदुष्टमसाधुतीव्रं ।
कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं तस्मिन्कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥

४०—जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति माऽवितृप्ता शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनंति ॥

४१—एवं जनं निपतितं भववैतरण्यां अन्योऽन्यजन्ममरणाशनभीतभीतं ।
पश्यन् जनं स्वपरविग्रहवैरमैत्रं हंतेति पारचरपीपृहि मूढमद्य ॥

हैं, अतः सब लोगों का उद्धार करने में आपको क्या प्रयास होगा? दीनबन्धु! मूर्खों पर दया करना ही बड़ी श्रेष्ठता है, अपने भक्तों की सेवा करनेवाले हम लोगों का उद्धार करने में आपकी क्या बड़ाई है? ॥ ४२ ॥ मेरा चित्त आपकी महिमा के गायनरूपी अमृत में डूबा हुआ है, अतः मैं इस संसार रूपी वैतरणी से नहीं डरता, किन्तु दूसरे मूर्ख लोग, जिनका चित्त आपसे विमुख है और जो तुच्छ विषय-सुख के लिए कुटुम्ब आदि का बोझा ढोया करते हैं, मैं उनके लिए शोक करता हूँ ॥ ४३ ॥ देव! मुनि लोग प्रायः अपनी मुक्ति के लिए ही वन में जाकर तपस्या किया करते हैं। वे दूसरों के स्वार्थ के लिए कुछ नहीं करते, पर मैं तो इन दीन लोगों को छोड़कर अकेला मुक्ति की इच्छा नहीं रखता। इसीसे मैं आपसे यह आग्रह कर रहा हूँ, क्योंकि आपके अतिरिक्त इन भटकते हुए मनुष्यों को शरण देनेवाला दूसरा कोई मुझे नहीं दीखता। गृहस्थाश्रम के मैथुन आदि सुख अत्यन्त तुच्छ हैं। हाथ से शरीर को खुजलाने में जिस प्रकार एक दुःख को छुड़ाने में दूसरा दुःख होता है, उसी प्रकार विषय-भोग में भी एक दुःख मिटाने में दूसरा दुःख भोगना पड़ता है। ऐसे सुख की इच्छा रखने वाले संसारी लोग बहुत दुःख भोगने पर भी उन सुखों से तृप्त नहीं होते। कोई धीर पुरुष ही खाज के समान विषय-वासनाओं का दमन कर सकता है ॥ ४५ ॥ यह ठीक है कि मौन, व्रत, शास्त्रों का सुनना, तपस्या, अध्ययन, स्वधर्म, व्याख्यान, एकांत वास, जप और समाधि, ये मोक्ष के उपाय हैं, किन्तु ये उपाय अजितेन्द्रिय लोगों के पेट भरने का साधन बनते हैं और दंभी लोगों के लिए तो ये पेट भरने का साधन भी बन सकते हैं या नहीं, इसमें सन्देह है ॥ ४६ ॥ बीज से अंकुर और अंकुर से बीज

४२—कोन्वत्रतेऽखिलगुरो भगवन्प्रयास उत्तारणेऽस्य भवसम्भवलोपहेतोः ।
मूढेषु वै महदनुग्रह आर्तबंधो किं तेन ते प्रियजनाननु सेवतां नः ॥

४३—नैवोद्विजे परदुरत्यय वैतरण्यास्त्वद्वीर्यगायनमहामृत मग्नचित्तः ।
शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थमायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान् ॥

४४—प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा मौनं चरंति विजने न परार्थनिष्ठाः ।
नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ॥

४५—यन्मैथुनादि गृहमेधि सुखं हि तुच्छं कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखं ।
तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः कंडूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः ॥

४६—मौनव्रत श्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म व्याख्यारहो जपसमाधय आपवर्ग्याः ।
प्रायः परं पुरुषतेत्वजितेंद्रियाणां वार्ता भवंत्युतनवाऽत्र तु दांभिकानां ।

के समान प्रवाहरूप से चलनेवाले कार्य और कारण, ये दोनों प्राकृत-रूप से रहित आप ही के स्वरूप हैं। वे आपसे भिन्न नहीं हैं,ऐसा वेद कहते हैं। जिस प्रकार रगड़ से काष्ठ में अग्नि दीख पड़ती है, उसी प्रकार जितेंद्रिय पुरुष भक्तियोग के द्वारा कार्य और कारण में आपको ही देखते हैं। आपके अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ के द्वारा कार्य और कारण की उत्पत्ति सम्भव नहीं है ॥ ४७ ॥ भूमन्! वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल, शब्द आदि विषय, प्राण, इन्द्रिय, मन, चित्त, अहंकार, देवता तथा स्थूल और सूक्ष्म, यह सब आपही हैं। मन और वचन के द्वारा जो कुछ प्रकट हो सकता है, वह आपसे भिन्न नहीं है ॥ ४८ ॥ गुण, गुणवान्, महत्तत्त्व आदि, मन आदि और देवता तथा मनुष्य, जो आदि-अन्तवाले है, उनमे से कोई भी आदि-अन्त से रहित आपके स्वरूप को नहीं जानते, ऐसा विचार करके ज्ञानी पुरुष अध्ययन आदि समस्त कर्मों का त्याग करके समाधि के द्वारा आपकी उपासना करते हैं ॥ ४९ ॥ अतः पूज्यश्रेष्ठ! प्रणाम, स्तुति, समस्त कर्मों का अर्पण, पूजन, चरणों की स्मृति और कथा का श्रवण, इस प्रकार को छः अंगोंवाली आपकी सेवा के बिना, परमहंसों की गतिरूप आपकी भक्ति मनुष्य को किस प्रकार मिल सकती है? भक्ति के बिना मोक्ष नहीं होता और सेवा के बिना भक्ति नहीं मिलती, अतः आप अपना दासत्व हमें दें ॥ ५० ॥

नारद बोले—प्रह्लाद ने जब इस प्रकार भक्तिपूर्वक भगवान् के गुणों का वर्णन किया तो निर्गुण भगवान् ने प्रसन्न होकर क्रोध का त्याग कर दिया और झुके हुए प्रह्लाद से वे बोले ॥ ५१ ॥

४७—रूपे इमे सदसती तव वेदसृष्टे बीजाङ्कुराविव नचान्यदरूपकस्य।

युक्ताः समक्षमुभयत्र विचिन्वते त्वां योगेन वन्हिमिव दारुषु नान्यतः स्यात् ॥

४८—त्वं वायुरग्निरवनिर्वियदंबुमात्राः प्राणेंद्रियाणि हृदयं चिदनुग्रहश्च।

सर्वं त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमन्नान्यत्त्वदस्त्यपि मनो वचसा निरुक्तं ॥

४९—नैते गुणा न गुणिनो महदादयो ये सर्वे मनः प्रभृतयः सहदेवमर्त्याः।

आद्यन्तवन्त उरुगाय विदन्ति हि त्वामेवं विमृश्य सुधियो विरमंति शब्दात् ॥

५०—तत्तेऽर्हत्तम नमः स्तुतिकर्मपूजाः कर्मस्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायां।

संसेवया त्वयि विनेति षडंगया किं भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत ॥

नारद उवाच—

५१—एतावद्वर्णित गुणो भक्त्या भक्तेन निर्गुणः। प्रह्लादं प्रणतं प्रीतो यतमन्युरभाषत ॥

श्रीभगवान् बोले—असुरश्रेष्ठ प्रह्लाद ! भद्र ! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम इच्छित वर माँग लो ! क्योंकि मैं मनुष्यों की कामना पूरी करने वाला हूँ ॥५२॥ चिरंजीव ! जिसने मुझे प्रसन्न नहीं किया, उसे मेरा दर्शन नहीं होता और जिसे मेरा दर्शन होता है, उसे किसी प्रकार का ताप नहीं रह जाता ॥ ५३ ॥ अतः कल्याण की इच्छा रखने वाले, भाग्यशाली और धैर्यवान् साधु पुरुष, समस्त सुखों के स्वामी मुझे सब प्रकार के भावों से प्रसन्न करते हैं ॥ ५४ ॥

इस प्रकार लोकों को लुब्ध करने वाले वरों के द्वारा भगवान ने प्रह्लाद को लुभाया, किंतु भगवान् के निष्काम भक्त प्रह्लाद ने किसी भी वर की इच्छा नहीं की ॥ ५५ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कध का नवाँ अध्याय समाप्त

श्रीभगवानुवाच—

५२—प्रह्लाद भद्र भद्र ते प्रीतोऽहं ते सुरोत्तम। वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणां ॥

५३—मामप्रीणत आयुष्मन्दर्शनं दुर्लभं हि मे। दृष्ट्वा मां न पुनर्जन्तुरात्मानं तप्तुमर्हति ॥

५४—प्रीणन्ति ह्यथ मां धीराः सर्वभावेन साधवः। श्रेयस्कामा महाभागाः सर्वासामाशिषां पतिं ॥

५५—एवं प्रलोभ्यमानोऽपि वरैर्लोकप्रलोभनैः। एकान्तित्वाद्भगवति नैच्छत्तानसुरोत्तमः ॥

इतिश्रीमा०म०सप्तमस्कंधेप्रह्लादचरितेभगवत्स्तवोनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

प्रह्लाद पर नृसिंह भगवान् का अनुग्रह करना,
महादेव द्वारा त्रिपुर-विजय

नारद बोले—इन सब को भक्तियोग में विघ्नरूप जानकर बालक प्रह्लाद हँसते हुए भगवान से बोला ॥ १ ॥

प्रह्लाद बोला—जन्म से ही विषयों में आसक्त मुझे आप वरदानों से न लुभावें। विषयों के संग से भीत तथा कातर मैं मोक्ष की इच्छा से आपकी शरण में आया हूँ ॥ २ ॥ प्रभो! सांसारिक विषय संसार के बीजरूप हैं और हृदय की गाँठ के समान हैं, अतः उनमें प्रवृत्त होने की आपने मुझे जो प्रेरणा दी, वह मैं सच्चा भक्त हूँ कि नहीं, इसकी परीक्षा लेने के लिए दी है, ऐसा मैं मानता हूं, क्योंकि ऐसा न होता तो जगद्गुरु तथा करुणामय आपके द्वारा इसकी प्रेरणा न होती। जिसे आपके द्वारा विषय-सुखों के पाने की इच्छा होती है, वह आपका सेवक नहीं है। वह तो वणिक् है। इसी प्रकार जो स्वामी अपने सेवक से सेवा की इच्छा रखकर उसे इच्छित पदार्थ दे, वह भी स्वामी नहीं, वणिक् ही है ॥ ३—४ ॥ मैं आपका निष्काम भक्त हूँ और आप मेरे निष्काम स्वामी हैं। राजा और दास में जो स्वार्थ का सम्बन्ध होता है, वह हमारे आपके बीच नहीं है ॥ ५ ॥ हे वर देने वालों में श्रेष्ठ! यदि आप मुझे मुँहमाँगा वर देना चाहते हैं तो

नारद उवाच—

१—भक्तियोगस्य तत्सर्वमन्तरायतयार्भकः । मन्यमानो हृषीकेशं स्मयमान उवाच ह ॥

प्रह्लाद उवाच—

२—मा मां प्रलोभयोत्पत्त्याऽऽसक्तं कामेषु तैर्वरैः । तत्सङ्गभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः ॥

३—भृत्यलक्षणजिज्ञासुर्भक्तं कामेष्वचोदयत् । भवान् संसारबीजेषु हृदयग्रन्थिषु प्रभो ॥

नान्यथा तेऽखिलगुरो घटेत करुणात्मनः ॥

४—यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ।

आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ॥

न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः ॥

५—अहं त्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः । नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव ॥

६—यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ । कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ॥

मैं आपसे यही मांगता हूँ कि मेरे मन में किसी प्रकार की कामना का अंकुर न उत्पन्न हो ॥ ६ ॥ कामना के उत्पन्न होने से इन्द्रिय, मन, प्राण, देह, धर्म, धैर्य, बुद्धि, लज्जा, लक्ष्मी, तेज, स्मृति और सत्य,ये सभी नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥ पुंडरीकाक्ष ! मनुष्य जब मन में रहनेवाली समस्त इच्छाओं का त्याग कर देता है,तभी वह मुक्ति के योग्य होता है ॥८॥ महापुरुष, परमात्मा, परब्रह्म तथा अद्भुत सिंहरूपी विष्णु आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥

नृसिंह बोले– तुम्हारे ही समान मेरे सच्चे भक्त इहलोक तथा परलोक संबंधी सुखों की कभी इच्छा नहीं करते,फिर भी तुम मेरी आज्ञा से एक मन्वन्तर तक दैत्यों के इस राज्य का सुख-भोग करो ॥ १० ॥ तुम मेरी प्रिय कथाओं को सुनते हुए, सब पदार्थों में व्याप्त, एक मात्र ईश्वर तथा यज्ञों के अधिष्ठाता मुझमें चित्त लगाकर यज्ञरूप कर्म करो तथा उन कर्मों को मुझे अर्पित करके उनका भी त्याग करदो ॥ ११ ॥ सुख भोगने के द्वारा पुण्य का, पुण्य के द्वारा पाप का और कालवेग के द्वारा शरीर का त्याग करके तथा देवता भी जिसका गान करें ऐसी पवित्र कीर्ति का विस्तार करके और बंधनों से मुक्त होकर तुम मुझे पाओगे ॥ १२ ॥ तुम्हारे द्वारा की गई मेरी इस स्तुति का जो मनुष्य पाठ करेगा तथा तुम्हारा और मेरा स्मरण करेगा,वह संसार के समस्त कर्म-बंधनों से छूट जायगा ॥ १३ ॥

७—इंद्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः । ह्रीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना ॥

८—विमुंचति यदाकामान्मानवो मनसि स्थितान् । तर्ह्येव पुंडरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते ॥

९—नमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने । हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥

नृसिंह उवाच—

१०—नैकान्तिनो मे मयि जात्विहाशिष आशासतेऽमुत्र च ये भवद्विधाः ।

अथाऽपि मन्वन्तरमेतदत्र दैत्येश्वराणामनुभुंक्ष्व भोगान् ॥

११—कथा मदीया जुषमाणः प्रियास्त्वमावेश्य मामात्मनि संतमेकं ।

सर्वेषु भूतेष्वधियज्ञमीशं जयस्व योगेन च कर्महिन्वन् ॥

१२—भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं कलेवरं कालजवेन हित्वा ।

कीर्तिं विशुद्धां सुरलोकगीतां वितायमामेष्यसि मुक्तबंधः ॥

१३—य एतत्कीर्तयेन्मह्यं त्वया गीतमिदं नरः । त्वां च मां च स्मरन्काले कर्मबंधात्प्रमुच्यते ॥

प्रह्लाद बोला—महेश्वर! वर देनेवालों के भी स्वामी आपसे मैं एक वर मांगता हूँ। जो ईश्वर की महिमा नहीं जानता था, जिसके मन में क्रोध व्याप्त हो रहा था तथा जो यह समझता था कि आप उसके भाई को मारने वाले हैं, उन मेरे पिता ने समस्त लोकों के स्वामी आपकी निंदा की थी तथा आपके भक्त, मेरा अपराध किया था, उस दुरंत तथा दुस्तर पाप से आप मेरे पिता को मुक्त करें। यद्यपि आपकी दृष्टि पड़ने मात्र से हो पवित्र हो गया था, फिर भी दीनवत्सल! मैं दानता के कारण आप से इतना मांगता हूँ॥ १४—१६॥

श्रीभगवान बोले—साधु! कुल को पवित्र करने वाले तुम जिसके यहां उत्पन्न हुए हो, वह तुम्हारा पिता अकेला नहीं, किंतु अपनी इक्कीस पीढ़ियों के सहित पवित्र हो गया है॥ १७॥ शान्त, समदर्शी, साधु तथा सदाचारी मेरे भक्त जहाँ-जहाँ उत्पन्न होते हैं, वहां के लोग अत्यन्त नीच हों तो भी पवित्र हो जाते हैं॥ १८॥ दैत्येन्द्र! मेरी भक्ति के द्वारा कामना-रहित मेरे भक्त अनेक प्रकार के प्राणियों में किसीको भी किसी प्रकार की पीड़ा नहीं पहुँचाते॥ १९॥ तुम्हारा अनुकरण करने वाले अन्य लोग इसी प्रकार मेरे भक्त होंगे। तुम मेरे सब भक्तों के लिये आदर्श रूप होओगे॥ २०॥ तुम्हारा पिता मेरे स्पर्श के कारण पवित्र हो गया है, फिर भी तुम उसके समस्त प्रेत-कर्म करो, जो पुत्र को अवश्य करना चाहिये। तुम्हारे जैसी उत्तम सन्तान के कारण उसे उत्तम स्थान की प्राप्ति होगी॥ २१॥ तुम अपने पिता के सिंहासन पर बैठो और मुझमें चित्त लगाकर ब्रह्मवादियों के आदेश के अनुसार मत्परायण होकर कर्म करो!॥ २२॥

प्रह्लाद उवाच—

१४—वरं वरय एतत्ते वरदेशान्महेश्वर। यदनिंदत्पिता मे त्वामविद्वांस्तेज ऐश्वरं॥

१५—विद्धामर्षाशयः साक्षात्सर्वलोकगुरुं प्रभुं। भ्रातृहेति मृषा दृष्टिस्त्वद्भक्ते मयि चाघवान्॥

१६—तस्मात्पिता मे पूयेत दुरंताद्दुस्तरादघात्। पूतस्तेपाङ्ग संदृष्टस्तदा कृपणवत्सल॥

श्रीभगवानुवाच—

१७—त्रिः सप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सहतेऽनघ। यत्साधोऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावनः॥

१८—यत्रयत्र च मद्भक्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः। साधवः समुदाचारास्ते पूयंत्यपि कीकटाः॥

१९—सर्वात्मना न हिंसंति भूतग्रामेषु किंचन। उच्चावचेषु दैत्येंद्र मद्भावेन गतस्पृहाः॥

२०—भवंति पुरुषा लोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः। भवान्मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक्॥

२१—कुरु त्वं प्रेतकार्याणि पितुः पूतस्य सर्वशः। मदंगस्पर्शनेनांग लोकान् यास्यति सुप्रजाः॥

२२—पित्र्यं च स्थानमातिष्ठ यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः। मय्यावेश्य मनस्तात कुरु कर्माणि मत्परः॥

नारद बोले—राजन्! ब्राह्मणों के द्वारा जिसका अभिषेक किया गया था, उस प्रह्लाद ने भगवान् के कहने के अनुसार अपने पिता के श्राद्ध आदि कर्म किए ॥ २३ ॥ अनंतर भगवान् को प्रसन्न हुआ देखकर देवताओं आदि से घिरे हुए ब्रह्मा ने पवित्र वचनों से भगवान् की स्तुति करते हुए कहा ॥ २४ ॥

ब्रह्मा बोले—देवादिदेव! सबके स्वामी! भूतभावन! पूर्वज! लोकों को पीड़ित करनेवाले पापी दैत्य को आपने मार डाला, यह अच्छा हुआ ॥ २५ ॥ मेरे द्वारा वर पाकर यह दैत्य मुझसे उत्पन्न पदार्थों से न मरनेवाला हो गया था तथा अपनी तपस्या, योग, और बल से उन्मत्त होकर उसने समस्त कर्मों का नाश कर दिया था ॥ २६ ॥ उसके सज्जन और महावैष्णव पुत्र को आपने मृत्यु से बचा लिया और अब उसने आपको पा लिया, यह बड़ा अच्छा हुआ ॥ २७ ॥ आपका ध्यान करनेवाले तथा जितेंद्रिय आपके भक्त को मारने के लिए यदि स्वयं काल भी आवे तो उसके त्रास से भी आपका यह शरीर उसे बचा लेगा ॥ २८ ॥

नृसिंह बोले—पद्मसंभव! दैत्यों को ऐसा वरदान आपको न देना चाहिए, क्योंकि क्रूर स्वभाववालों को वरदान देना, साँप को दूध पिलाने के समान है ॥ २९ ॥

नारद बोले—राजन्! ब्रह्मा के द्वारा पूजित भगवान् नृसिंह इतना कह कर वहीं अन्तर्धान हो गए और सब लोगों की आखों से ओझल हो गए ॥ ३० ॥ अनन्तर प्रह्लाद ने भगवान् के अंशरूप ब्रह्मा, शिव, प्रजापति, तथा देवताओं की पूजा करके उन्हें प्रणाम किया ॥ ३१ ॥ तब ब्रह्मा ने शुक्राचार्य आदि मुनियों के साथ प्रह्लाद को दैत्यों और दानवों का स्वामी

नारद उवाच—

२३—प्रह्लादोऽपि तथा चक्रे पितुर्यत्सांपरायिकं । यथाह भगवान् राजन्नभिषिक्तो द्विजोत्तमैः ॥

२४—प्रसाद सुमुखं दृष्ट्वा ब्रह्मा नरहरिं हरिं । स्तुत्वा वाग्भिः पवित्राभिः प्राह देवादिभिर्वृतः ॥

ब्रह्मोवाच—

२५—देवदेवाखिलाध्यक्ष भूतभावन पूर्वज । दिष्ट्या ते निहतः पापो लोकसंतापनोऽसुरः ॥

२६—योऽसौ लब्धवरो मत्तो न वध्यो मम सृष्टिभिः । तपो योगबलोन्नद्धः समस्तनिगमानहन् ॥

२७—दिष्ट्याऽस्य तनयः साधुर्महाभागवतोऽर्भकः । त्वया विमोचितो मृत्योर्दिष्ट्या त्वां समितोऽधुना ॥

२८—एतद्वपुस्ते भगवन्ध्यायतः प्रयतात्मनः । सर्वतो गोप्तृ संत्रासान्मृत्योरपि जिघांसतः ॥

नृसिंह उवाच—

२९—मैवं वरोऽसुराणां ते प्रदेयः पद्मसंभव । वरः क्रूरनिसर्गाणां अहीनाममृतं यथा ॥

नारद उवाच—

३०—इत्युक्त्वा भगवान् राजंस्तत्रैवान्तर्दधे हरिः । अदृश्यः सर्वभूतानां पूजितः परमेष्ठिना ॥

३१—ततः संपूज्य शिरसा ववन्दे परमेष्ठिनं । भवं प्रजापतीन् देवान्प्रह्लादो भगवत्कलाः ॥

३२—ततः काव्यादिभिः सार्धं मुनिभिः कमलासनः । दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादमकरोत्पतिं ॥

बनाया ॥ ३२ ॥ राजन्! उसके अनन्तर प्रह्लाद के द्वारा भली-भाँति पूजित होकर ब्रह्मा आदि देवता प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रह्लाद को उत्तम आशीर्वाद दिया और वे अपने अपने स्थानों को चले गए। ३३ ॥ इस प्रकार जय-विजय नामक भगवान् के पार्षद, जो सनकादि के शाप से दिति के पुत्र हुए थे, उन्हें उनके वैर-भाव के कारण, उनके हृदय में स्थित भगवान् ने मार डाला ॥ ३४ ॥ अनन्तर वे दोनों ब्राह्मणों के शाप के कारण रावण और कुम्भकर्ण नामक राक्षस हुए, जिन्हें रामचन्द्र ने अपने पराक्रम से मार डाला ॥३५॥ रामचन्द्र के बाणों से जिनका हृदय बिंध गया था, वे रावण और कुम्भकर्ण युद्ध में सोये और पूर्व जन्मों के समान ही हृदय में भगवान् का चिंतन करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुए॥ ३६ ॥ ये ही दोनों तीसरे जन्म में शिशुपाल और दन्तवक्त्र हुए, जिन्होंने अपने वैर के कारण आपके देखते-देखते भगवान् को प्राप्त किया ॥ ३७ ॥ भगवान् के वैरी राजाओं ने यद्यपि भगवान् की निंदाकर पाप किया, किन्तु उस पाप से मुक्त होकर उन्होंने भगवान् को प्राप्त किया, क्योंकि वैर की तीव्रता के कारण वे सदा भगवान् का ही चिंतन करते रहे। भ्रमरी का चिंतन करता हुआ कीड़ा जिस प्रकार भ्रमरी रूपी ही हो जाता है, उसी प्रकार वे भी भगवद्रूप हो गये ॥ ३८ ॥ भेद रहित भगवान् की भक्ति करने से जिस प्रकार भगवान् के स्वरूप की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार भगवान् का चिंतन करने के कारण ही शिशुपाल आदि राजाओं को भी भगवत्स्वरूप की प्राप्ति हुई है ॥ ३९ ॥ शिशुपाल आदि राजाओं को भगवान् का द्वेष करने पर भी भगवान् की प्राप्ति हुई, इस सम्बन्ध में आपने जो कुछ पूछा, वह सब मैंने आपको कह सुनाया ॥ ४० ॥ ब्रह्मण्यदेव महात्मा भगवान् के इस नृसिंहावतार की कथा भी मैंने आपको सुनाई, जिसमें दैत्यों के वध का प्रसंग है॥ ४१ ॥ महावैष्णव प्रह्लाद का चरित्र, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सृष्टि, स्थिति

३३—प्रतिनन्द्य ततो देवाः प्रयुज्य परमाशिषः । स्वधामानि ययू राजन् ब्रह्माद्याः प्रतिपूजिताः ॥

३४—एवं तौ पार्षदौ विष्णोः पुत्रत्वं प्रापितौ दितेः । हृदि स्थितेन हरिणा वैरभावेन तौ हतौ ॥

३५—पुनश्च विप्रशापेन राक्षसौ तौ बभूवतुः । कुम्भकर्णदशग्रीवौ हतौ तौ रामविक्रमैः ॥

३६—शयानौ युधि निर्भिन्नहृदयौ रामसायकैः । तच्चित्तौ जहतुर्देहं यथा प्राक्तन जन्मनि ॥

३७—ताविहाथ पुनर्जातौ शिशुपालकरूषजौ । हरौ वैरानुबन्धेन पश्यतस्ते समीयतुः ॥

३८—एनः पूर्वकृतं यत्तद्राजानः कृष्णवैरिणः । जहुस्त्वन्ते तदात्मानः कीटः पेशस्कृतो यथा ॥

३९—यथा यथा भगवतो भक्त्या परमयाऽभिदा । नृपाश्चैद्यादयः सात्म्यं हरेस्तच्चिन्तया ययुः ॥

४०—आख्यातं सर्वमेतत्ते यन्मां त्वं परिपृष्टवान् । दमघोषसुतादीनां हरेः सात्म्यमपि द्विषाम् ॥

४१—एषा ब्रह्मण्यदेवस्य कृष्णस्य च महात्मनः । अवतारकथा पुण्या वधो यत्रादिदैत्ययोः ॥

४२—प्रह्लादस्यानुचरितं महाभागवतस्य च । भक्तिर्ज्ञानं विरक्तिश्च याथात्म्यं चास्य वै हरेः ॥

और प्रलय के नियामक भगवान् का तत्व, उनके गुण और कर्मों का वर्णन, देवताओं और दैत्यों आदि के स्थानों की काल के द्वारा होने वाली उलट फेर, भगवान् की प्राप्ति का साधनरूप वैष्णवों का धर्म तथा ब्रह्मज्ञान, यह सभी मैंने आपसे कह सुनाया ॥ ४३—४४ ॥ जो मनुष्य भगवान् के पराक्रमों के वर्णन से युक्त इस पवित्र कथा का श्रद्धापूर्वक कीर्तन अथवा श्रवण करता है, वह कर्म के पाश से मुक्त हो जाता है ॥ ४५ ॥ दैत्यों के यूथपति हिरण्यकशिपु के वध रूपी भगवान् के नृसिंहावतार की लीला तथा महात्माओं में श्रेष्ठ प्रह्लाद के इस पवित्र चरित्र का जो मनुष्य पाठ करेगा अथवा श्रवण करेगा, वह वैकुण्ठ लोक पावेगा ॥ ४६ ॥ लोक में आप लोग भी अत्यन्त भाग्यशाली हैं, क्योंकि आपके यहाँ मनुष्याकार से गूढ़ भगवान् परब्रह्म श्रीकृष्ण निवास करते हैं और इसी कारण जगत्को पवित्र करने वाले मुनिगण भी आपके यहाँ आते हैं ॥ ४७ ॥ जो श्रीकृष्ण आपके प्रिय सम्बन्धी हैं, ममेरे भाई हैं, आत्मा हैं, पूज्य हैं, आज्ञानुवर्ती हैं और हितकारी उपदेश देनेवाले हैं, वे उपाधिरहित तथा परमानन्द के अनुभवरूप परब्रह्म हैं, जिन्हें श्रेष्ठ पुरुष ढूँढा करते हैं ॥ ४८ ॥ शिव तथा ब्रह्मा आदि देवता भी अपनी बुद्धि के प्रभाव से इनका स्वरूप ऐसा ही है, यह नहीं बतला सकते। हम लोगों को तो उन्हें मौन, भक्ति और शान्ति आदि साधनों से प्रसन्न करना पड़ता है। ये भक्तों के रक्षक भगवान् प्रसन्न हों ॥ ४९ ॥ राजन्! अनन्त मायावी मय नामक दैत्य ने प्राचीन समय में भगवान् शिव की कीर्ति को नष्ट कर दिया था, इन भगवान् ने ही उनकी कीर्ति का पुनः विस्तार किया था ॥ ५० ॥

४३—सर्गस्थित्यप्ययेशस्य गुणकर्मानुवर्णनं । परावरेषां स्थानानां कालेन व्यत्ययो महान् ॥

४४—धर्मो भागवतानां च भगवान्येन गम्यते । आख्यानेऽस्मिन्समाम्नातमाध्यात्मिकमशेषतः ॥

४५—य एतत्पुण्यमाख्यानं विष्णोर्वीर्योपबृंहितं । कीर्तयेच्छ्रद्धया श्रुत्वा कर्मपाशाद्विमुच्यते ॥

४६—एतद्य आदिपुरुषस्य मृगेन्द्रलीलां दैत्येन्द्रयूथपवधं प्रयतः पठेत ।
दैत्यात्मजस्य च सतां प्रवरस्य पुण्यं श्रुत्वाऽनुभावमकुतोभयमेति लोकं ॥

४७—यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियंति ।
येषां गृहानावसतीति साक्षाद् गूढं परं ब्रह्ममनुष्यलिंगं ॥

४८—स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्यं कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ।
प्रियः सुहृद्वः खलु मातुलेय आत्माऽर्हणीयो विधिकृद् गुरुश्च ॥

४९—न यस्य साक्षाद्भवपद्मजादिभी रूपं धियावस्तुतयोपवर्णितं ।
मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः ॥

५०—स एष भगवान् राजन् व्यतनोद्विहतं यशः । पुरा रुद्रस्य देवस्य मयेनानंतमायिना ॥

राजा युधिष्ठिर बोले—मय नामक दैत्य ने किस कार्य में जगत् के स्वामी शिव की कीर्ति को नष्ट किया था तथा भगवान् ने पुनः किस प्रकार उसका विस्तार किया, यह आप कहें ॥५१॥

नारद बोले—भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा सम्वर्धित देवताओं ने जब युद्ध में दैत्यों को जीत लिया तो वे मायावियों के श्रेष्ठ आचार्य मय नामक दानव की शरण में गए॥ ५२॥ उस समर्थ दानव ने सोना, चाँदी और लोहे के तीन ऐसे नगर बनाकर दैत्यों को दिए, जिनका आना-जाना कोई नहीं जान सकता था और उसमें के उपकरण किस प्रकार के हैं, इसे भी कोई नहीं जान सकता था॥ ५३॥ पुरानी शत्रुता का स्मरण करते हुए दैत्यों के सेनापति इन नगरों में निवास करने लगे तथा अलक्षित रूप से तीनों लोकों और लोकपालों का नाश करने लगे॥ ५४॥ तब लोकपालों के सहित उन समस्त लोकों ने शिव के पास जाकर प्रार्थना की कि 'हे देव! त्रिपुर में रहनेवाले दैत्यों के द्वारा हम लोग मारे जा रहे हैं। आप हमारी रक्षा करें'॥ ५५॥ भगवान् शिव ने उन लोगों पर अनुग्रह करके कहा कि, डरो मत, और धनुष पर बाण का सधान करके उन्होंने तीनों नगरों पर छोड़ा॥ ५६॥ सूर्य-मण्डल से जिस प्रकार किरणें निकलती हैं, उसी प्रकार शिव के धनुष से बहुत से बाण निकले, जिनसे वे तीनों नगर ढक गए॥ ५७॥ इन बाणों के स्पर्श से उन नगरों में रहनेवाले दैत्य मरने लगे, जिन्हें महायोगी मय दानव अपने बनाए हुए कुएँ में लाकर डालने लगा॥ ५८॥ अमृत के सिद्ध रस-के स्पर्श से वज्र के समान हुए तथा अत्यंत बल पाए हुए वे दैत्य, बादलों को नष्ट करने वाली बिजली की आग के समान पुनः जी उठे॥ ५९॥ जिसका प्रयत्न व्यर्थ हो गया था, उन महादेव को उदास

राजोवाच—

५१—कस्मिन्कर्मणि देवस्य मयोऽहन् जगदीशितुः। यथा चोपचिता कीर्तिः कृष्णेनानेन कथ्यताम्॥

नारद उवाच—

५२—निर्जिता असुरा देवैर्युद्धेनेनोपबृंहितैः। मायिनां परमाचार्यं मयं शरणमाययुः॥

५३—स निर्माय पुरस्तिस्रो हैमी रौप्यायसीर्विभुः। दुर्लक्ष्यापाय संयोगादुर्वितर्क्यं परिच्छदाः॥

५४—ताभिस्तेऽसुरसेनान्यो लोकांस्त्रीन्सेश्वरान्नृप। स्मरन्तो नाशयांचक्रुः पूर्ववैरमलक्षिताः॥

५५—ततस्ते सेश्वरा लोका उपासाद्येश्वरं विभो। त्राहि नस्तावकान्देव विनष्टांस्त्रिपुरालयैः॥

५६—अथानुगृह्य भगवान्माभैष्टेति सुरान्विभुः। शरं धनुषि संधाय पुरेष्वस्त्रं व्यमुंचत॥

५७—ततोऽग्निवर्णा इषव उत्पेतुः सूर्यमण्डलात्। यथा मयूखसंदोहा नादृश्यन्त पुरो यतः॥

५८—तैः स्पृष्टा व्यसवः सर्वे निपेतुः स्म पुरौकसः। तानानीय महायोगी मयः कूपरसेऽक्षिपत्॥

५९—सिद्धामृतरसस्पृष्टा वज्रसारा महौजसः। उत्तस्थुर्मेघदलना वैद्युता इव वह्नयः॥

६०—विलोक्य भग्नसंकल्पं विमनस्कं वृषध्वजम्। तदाऽयं भगवान्विष्णुस्तत्रोपायमकल्पयत्॥

देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने उस समय इसका उपाय किया ॥ ६० ॥ ब्रह्मा ने बछड़े का तथा विष्णु ने गाय का रूप धारण करके मध्याह्न के समय त्रिपुर मे प्रवेश किया और अमृत-कूप का सारा अमृत वे पी गए ॥ ६१ ॥ दैत्य यह सब देख रहे थे, किन्तु मोह में पड़े हुए उन लोगों ने इन्हे मना नहीं किया । इस बात को जानकर दैवगति का स्मरण करते हुए शोकरहित महायोगी मय दानव ने शोक से पीड़ित होनेवाले अमृत के रक्षकों से कहा कि " अपने, दूसरे के अथवा दोनों के सम्बन्ध मे दैव-गति को देवता, असुर, मनुष्य अथवा दूसरा कोई भी टाल नहीं सकता ।" अनन्तर भगवान ने धर्म, ज्ञान, वैराग्य, समृद्धि, तप, विद्या और क्रिया आदि अपनी शक्तियों से महादेवजी के लिए रथ, सारथी, ध्वजा, घोड़ा, धनुष, कवच और बाण आदि युद्ध की समस्त सामग्री जुटा दी ॥ ६२ ६५ ॥ महादेवजी ने मध्याह्न के समय धनुष पर बाण चढ़ाकर उससे उन तीनों दुर्भेद्य नगरों को जला डाला । उस समय आकाश में दुन्दुभि बजने लगी और सैकड़ों विमानों से आकाश भर गया। देवता , ऋषि , पितर तथा श्रेष्ठ सिद्धगण जय जयकार करते हुए फूल बरसाने लगे और अप्सराएँ प्रसन्न होकर नाचने तथा गाने लगीं ॥ ६६-६७ ॥ राजन ! इस प्रकार तीनों नगरों को जलाकर भगवान् महादेव, जिनकी स्तुति ब्रह्मा आदि कर रहे थे, अपने लोक को गए ॥ ६८ ॥ अपनी माया से मनुष्यों के समान लीला करनेवाले जगद्गुरु इन भगवान् के जगत् को पवित्र करनेवाले ऐसे पराक्रमों का ऋषि लोग गान किया करते हैं । अब और मैं आपसे क्या कहूँ ? ॥ ६९ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कंध का दसवाँ अध्याय समाप्त

६१—वत्स आसीत्तदा ब्रह्मा स्वय विष्णुरथ हि गौ. । प्रविश्य त्रिपुर काले रसकूपामृत पपौ ।
तेऽसुराह्यपि पश्यंतो नन्यपेधन्विमोहिताः ॥

६२—तद्विज्ञाय महायोगी रसपालानिद जगौ । स्वय विशोकः शोकार्तान्स्मरन दैवगति च ता ॥

६३—देवोऽसुरो नरोऽन्योवा नेश्वरोऽस्तीह कश्चन । आत्मनोऽन्यस्य वादिष्टं दैवेनापोहितुं द्वयोः ॥

६४—अथासौ शक्तिभिः स्वाभिः शभोः प्राधानिक व्यधात् । धर्मज्ञानविरक्त्यद्धि तपो विद्या क्रियादिभिः ॥

६५—रथ सूतं ध्वज वाहान्धनुर्वर्म शरादियत । सन्नद्धो रथमास्थाय शर धनुरुपाददे ॥

६६—शर धनुषि संधाय मुहूर्तेऽभिजितीश्वरः । ददाह तेन दुर्भेद्याहरोऽथ त्रिपुरो नृप ॥

६७—दिवि दुंदुभयो नेदुर्विमानशतसंकुलाः । देवर्षिपितृसिद्धेशा जयेति कुसुमोत्करै. ॥
अवाकिरन् जगुर्हृष्टा ननृतुश्चाप्सरो गणाः ॥

६८—एवं दग्ध्वा पुरस्तिस्रो भगवान्पुरहा नृप । ब्रह्मादिभि. स्तूयमानः स्वधामप्रत्यपद्यत ॥

६९—एवं विधान्यस्य हरे. स्वमायया विडम्बमानस्य नृलोकमात्मनः ।
वीर्याणि गीतान्यृषिभिर्जगद्गुरोर्लोकान् पुनानान्यपर वदामि किं ॥

इतिश्रीभा०म०सप्तमस्कंधेयुधिष्ठिरनारदसंवादेत्रिपुरविजयोनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

सदाचार और चातुर्वर्ण्य के धर्मों का वर्णन

श्रीशुकदेव बोले—राजन्! प्रह्लाद महात्माओं मे श्रेष्ठ थे। उनका चित्त केवल भगवान् मे ही लगा हुआ था। उनकी कथा का सज्जनों की सभा में आदर होता था। उस कथा को सुनकर प्रसन्न हुए राजा युधिष्ठिर ने ब्रह्मा से पुनः पूछा ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—महाराज! मुझे वर्ण और आश्रमों के आचारयुक्त सनातन धर्म को सुनने की इच्छा है, जिस धर्म का पालन करने से मनुष्य को ज्ञान और भक्ति प्राप्त होती है ॥ २ ॥ आप साक्षात् ब्रह्मा के पुत्र हैं और अपनी तपस्या तथा योग समाधि के कारण आप उनके समस्त पुत्रों मे श्रेष्ठ माने जाते हैं ॥ ३ ॥ भगवान् के भक्त, दयालु, साधु और शांत आपके समान ब्राह्मणों को जिस प्रकार उत्तम तथा गुह्य परमधर्म का ज्ञान होता है, वैसा दूसरों को नहीं होता ॥ ४ ॥

नारद बोले—लोगों को धर्म में प्रेरित करनेवाले तथा धर्म की स्त्री, मूर्ति में, अपने अंश से अवतार धारण करके लोकों का कल्याण करने के लिए बद्रिकाश्रम में तपस्या करनेवाले भगवान् को प्रणाम करके उनके मुँह से सुना हुआ सनातन धर्म मैं आपसे कहता हूँ ॥ ५-६ ॥ राजन्! धर्म के विषय मे सब से पहले प्रमाण सर्व वेदमय भगवान् ही हैं। वेदज्ञों का स्मरण तथा जिससे आत्मा प्रसन्न हो, वह भी धर्म के सम्बन्ध मे प्रमाण है ॥ ७ ॥ सत्य, दया, व्रत,

---

श्रीशुक उवाच—

१—श्रुत्वेहितं साधुसभासभाजितं महत्तमाग्रण्य उरुक्रमात्मनः ।
युधिष्ठिरो दैत्यपतेर्मुदायुतः पप्रच्छ भूयस्तनयं स्वयंभुवः ॥

युधिष्ठिर उवाच—

२—भगवन् श्रोतुमिच्छामि नृणां धर्मं सनातनं । वर्णाश्रमाचारयुतं यत्पुमान्विन्दते परं ॥
३—भवान्प्रजापतेः साक्षादात्मजः परमेष्ठिनः । सुतानां संमतो ब्रह्मंस्तपोयोगसमाधिभिः ॥
४—नारायणपरा विप्रा धर्मं गुह्यं परं विदुः । करुणाः साधवः शांतास्त्वद्विधा न तथाऽपरे ॥

नारद उवाच—

५—नत्वा भगवतेऽजाय लोकानां धर्मसेतवे । वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायणमुखात् श्रुतं ॥
६—योऽवतीर्यात्मनोंऽशेन दाक्षायण्यां तु धर्मतः । लोकानां स्वस्तयेऽध्यास्ते तपो बदरिकाश्रमे ॥
७—धर्ममूलं हि भगवान् सर्ववेदमयो हरिः । स्मृतं च तद्विदां राजन् येन चात्मा प्रसीदति ॥

पवित्रता, सहनशीलता, योग्य और अयोग्य का विवेक, मन का संयम, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, दान, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, महापुरुषों की सेवा, क्रमशः प्रवृत्ति के कर्मों से निवृत्ति, मनुष्यों की निष्फल होती क्रियाओं का विचार, व्यर्थ भाषण का त्याग, देह आदि से आत्मा की भिन्नता का अनुसन्धान, अपने अन्न में से दूसरों को यथायोग्य भाग देना, समस्त प्राणियों को, विशेषतः मनुष्यों को, आत्मा तथा देवरूप जानना, महात्माओं के गतिरूप भगवान् का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, पूजन, नमस्कार, दासत्व, सख्य तथा शरीर का समर्पण, इन तीस लक्षणों से युक्त धर्म सब मनुष्यों के लिए साधारण कहा गया है। इस धर्म से भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ ८-१२ ॥ वेद के मन्त्रों से जिनके गर्भाधान आदि संस्कार हुए हों, वे द्विज कहे जाते हैं और ये संस्कार उन्हींके होते हैं, जिनके लिए ब्रह्मा ने कहा है। जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) कुल तथा आचार से शुद्ध होते हैं, उन्हें यज्ञ, वेदाध्ययन और दान, इन तीन कर्मों को करने की आज्ञा है ॥१३॥ उक्त तीन प्रकार के कर्म, अध्यापन, यज्ञ कराना तथा प्रतिग्रह लेना, ये छः कर्म ब्राह्मणों के लिए हैं। इनमें अन्तिम तीन उनकी अजीविका है। आपत्ति के समय क्षत्रिय के लिए प्रतिग्रह लेना छोड़कर यज्ञ कराने तथा पढ़ाने का विधान है। क्षत्रिय यदि राजा हो तो उसकी आजीविका कर आदि लेना है। कर आदि ब्राह्मणों से नहीं लिए जाते ॥ १४ ॥ वैश्यों को कृषि तथा व्यापार आदि के द्वारा अपनी आजीविका कमानी चाहिए, तथा सदा ब्राह्मणों के अनुगत रहना चाहिए। शूद्रों को द्विजों का अनुसरण करना चाहिए तथा जो द्विज उसका स्वामी हो उससे मजूरी आदि लेकर अपनी आजीविका चलानी चाहिए ॥ १५ ॥ कृषि आदि, बिना मांगे मिली हुई वस्तुएँ, प्रतिदिन धान्य आदि माँगना तथा

८—सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः । अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवं ॥

९—सन्तोषः समदृक्सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः । नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनं ॥

१०—अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः । तेष्वात्मदेवता बुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥

११—श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः । सेवेज्याऽवनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणं ॥

१२—नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः । त्रिंशल्लक्षणवान् राजन्सर्वात्मा येन तुष्यति ॥

१३—संस्कारा यत्र विच्छिन्नाः स द्विजोऽजो जगादयं । इज्याऽध्ययन दानानि विहितानि द्विजन्मनां ॥

जन्मकर्मावदातानां क्रियाश्चाश्रमचोदिताः ॥

१४—विप्रस्याध्ययनादीनि षडन्यस्या प्रतिग्रहः । राज्ञो वृत्तिः प्रजागोप्तुरविप्राद्वाकरादिभिः ॥

१५—वैश्यस्तु वार्ता वृत्तिश्च नित्यं ब्रह्मकुलानुगः । शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा वृत्तिश्च स्वामिनो भवेत् ॥

खेतों में गिरे हुए धान आदि को बटोरना, अन्य युगों में ये चार प्रकार की वृत्तियाँ ब्राह्मणों के लिए थीं तथा क्रम से एक दूसरे से उत्तम समझी जाती थीं ॥ १६ ॥

निम्न वर्णों को, आपत्ति का समय छोड़कर, अपने से ऊँचे वर्ण वालोंकी आजीविका नहीं करनी चाहिए। केवल क्षत्रिय को प्रतिग्रह लेने के अतिरिक्त ब्राह्मणों के अन्य कर्मों को करने का अधिकार है ॥ १७ ॥ ऋत से, अमृत से, मृत से, प्रमृत से अथवा सत्यानृत से जीना चाहिए, किंतु कुत्ते की वृत्ति से न जीना चाहिए ॥ १८ ॥ खेतों में पड़े हुए धान को चुन लाना ऋत कहा जाता है, बिना माँगे मिली हुई वस्तु अमृत कही जाती है, प्रतिदिन माँगने को मृत कहते हैं और खेती-बारी को प्रमृत कहते हैं, व्यापार सत्यानृत है और नीचों की सेवा कुत्तों की वृत्ति कही जाती है। इस अत्यंत निंदित कुत्ते की वृत्ति का ब्राह्मणों तथा राजाओं को त्याग कर देना चाहिए। क्योंकि ब्राह्मण समस्त वेदमय तथा राजा देवमय होते है ॥ १९—२० ॥ शम, दम, तप, पवित्रता, संतोष, क्षमा, सरलता, ज्ञान, दया, भगवत-परायणता और सत्य, ये ब्राह्मणों के लक्षण है ॥ २१ ॥ शूरता, वीरता, धैर्य, तेज, दान अपने मन को जीतना, क्षमा, ब्राह्मणपरायण होना, प्रसन्नता तथा रक्षा करना, ये क्षत्रियों के लक्षण हैं ॥ २२ ॥ देवता, गुरु और भगवान् की भक्ति करना धर्म, धन और सांसारिक सुखों का पोषण करना, आस्तिकता, उद्योग और निपुणता, ये वैश्य के लक्षण हैं ॥ २३ ॥ अपने से उत्तम वर्णों के सम्मुख नत होना, पवित्रता रखना, निष्कपट होकर स्वामी की सेवा करना, मन्त्रहीन यज्ञ करना, चोरी न करना चाहिये, सच बोलना और गौ तथा ब्राह्मणों की रक्षा करना, यह शूद्र का लक्षण है ॥२४॥ पति की सेवा करना, पति के अनुकूल रहना

१६—वार्ता विचित्रा शालीन यायावरशिलोञ्छनं। विप्रवृत्तिश्चतुर्धेयं श्रेयसी चोत्तरोत्तरा ॥

१७—जघन्यो नोत्तमां वृत्तिमनापदि भजेन्नरः। ऋते राजन्यमापत्सु सर्वेषामपि सर्वशः ॥

१८—ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा। सत्यानृताभ्यां जीवेत न श्ववृत्त्या कथंचन ॥

१९—ऋतमुञ्छशिलं प्रोक्तममृतं यदयाचितं। मृतं तु नित्ययाच्ञा स्यात्प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥

२०—सत्यानृतं तु वाणिज्यं श्ववृत्तिर्नीचसेवनं। वर्जयेत्तां सदा विप्रो राजन्यश्च जुगुप्सितां ॥

सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो नृपः ॥

२१—शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षान्तिरार्जवं। ज्ञानं दयाऽच्युतात्मत्वं सत्यं च ब्रह्मलक्षणं ॥

२२—शौर्यं वीर्यं धृतिस्तेजस्त्याग आत्मजयः क्षमा। ब्रह्मण्यता प्रसादश्च रक्षा च क्षत्रलक्षणं ॥

२३—देवगुर्वच्युते भक्तिस्त्रिवर्गपरिपोषणं। आस्तिक्यमुद्यमो नित्यं नैपुण्यं वैश्यलक्षणं ॥

२४—शूद्रस्य संनतिः शौचं सेवा स्वामिन्यमायया। अमंत्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्यं गोविप्ररक्षणं ॥

पति के बधुओं के अनुगत रहना तथा पति के नियमों का पालन करना, ये पतिव्रता स्त्रियों के लक्षण हैं ॥२५॥ स्त्रियों को घर मे झाड़ू देना, घर लीपना, चौक पूरना, छोटे-बड़े, सुखों का ध्यान रखना, नम्र होना, जितेंद्रिय होना और सत्य तथा प्रिय वचनों से प्रेमपूर्वक पति की सेवा करनी चाहिये, उन्हे स्वय प्रतिदिन शृंगार करना चाहिए तथा घर की वस्तुओं को साफ-सुथरी रखना चाहिये ॥२६—२७॥ उन्हें जो कुछ मिले,उससे सतोष रखना चाहिये, मिले हुए पदार्थों को भोगने में भी लोलुपता न रखनी चाहिए, आलस्य न करना चाहिए, सत्य और प्रिय वचन बोलना चाहिए असावधान न रहना चाहिए और पति यदि पतित न हुआ होतो पवित्रता तथा स्नेह पूर्वक उसकी भक्ति करनी चाहिये ॥ २८ ॥ जो स्त्री पति मे भगवान् का भाव रखकर तथा तत्पर होकर लक्ष्मी के समान पति का भजन करती है,वह विष्णुलोक मे विष्णु-रूप हुए पति के साथ लक्ष्मी के समान ही आनंदित होती है ॥ २९ ॥ वर्णसंकरों को चोरी और पाप न करना चाहिए तथा अपने-अपने कुलों की जो आजीविका हो, उसके अनुसार चलना चाहिये। इसी प्रकार चाडाल आदि को भी करना चाहिए ॥ ३० ॥ राजन् ! सत्व आदि प्रकृतियों से प्रत्येक युग मे मनुष्यों के लिए जिन-जिन धर्मों का शास्त्रज्ञों ने निर्देश किया है, वे ही इस तथा परलोक मे सुख देने वाले हैं ॥ ३१ ॥ यथायोग्य वृत्तियों के द्वारा अपने अपने कर्मों को रखने वाले मनुष्य क्रम से कर्म के बधन से छूटकर निर्गुण पद पाते हैं ॥ ३२ ॥ बार-बार बोया जाने वाला खेत

२५—स्त्रीणा च पतिदेवानां तच्छुश्रूषाऽनुकूलता । तद्बन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणं ॥

२६—संमार्जनोपलेपाभ्यां गृहमंडलवर्तनैः । स्वयं च मडिता नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा ॥

२७—कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च । वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत्पतिं ॥

२८—संतुष्टाऽलोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक् । अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत् ॥

२९—या पतिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव तत्परा । हर्यात्मना हरेर्लोके पत्याश्रीरिव मोदते ॥

३०—वृत्तिः सकरजातीना तत्तत्कुलकृता भवेत् । अचौराणा मपापानामंत्यजान्तेऽवसायिनां ॥

३१—प्रायः स्वभावविहितो नृणां धर्मो युगे युगे । वेददृग्भिः स्मृतो राजन्प्रेत्य चेह च शर्मकृत् ॥

३२—वृत्त्या स्वभावकृतया वर्तमानः स्वकर्मकृत् । हित्वा स्वभावजं कर्म शनैर्निर्गुणतामियात् ॥

निर्वीर्य हो जाता है। वह अन्न नहीं उत्पन्न कर सकता और उसमे बोया हुआ बीज भी नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार कामनाओं से भरा हुआ चित्त विषयों का अत्यन्त भोग करने पर स्वयं ही वैराग्य को प्राप्त करता है, जिस प्रकार जलती हुई अग्नि में थोड़ा घी पड़ने से बुझ जाती है, उसी प्रकार विषय भोगों का थोड़ा-थोड़ा सेवन करने से वासनाएँ बढ़ती हैं, किंतु विषयों के बहुत अधिक भोग से नष्ट हो जाती हैं॥३३-३४॥ वर्णों के जो लक्षण कहे गए हैं, उनमे एक वर्ण का लक्षण यदि किसी दूसरे वर्ण वाले मे दीख पडे तो उसे उसी वर्ण का समझना चाहिए॥३५॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कंध का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त

३३—उप्यमानं मुहुः क्षेत्रं स्वयं निर्वीर्यतामियात्। न कल्पते पुनः सूत्यै उप्तं बीजं च नश्यति॥

३४—एवं कामाशयं चित्तं कामानामतिसेवया। विरज्येत यथा राजन्नग्निवत्काम बिंदुभिः॥

३५—यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकं। यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्॥

-इतिश्रीभा०म०स०युधिष्ठिरनारदसंवादेसदाचारनिर्णयोनामैकादशोऽध्यायः॥ ११ ॥-

बारहवाँ अध्याय

वर्णाश्रम के धर्मों का वर्णन

नारद बोले—ब्रह्मचारी को जितेन्द्रिय होकर गुरु के घर रहना चाहिए, गुरु का हित करना चाहिए, ॥ १ ॥ प्रातः और सायकाल गुरु, अग्नि, सूर्य और उत्तम देवताओं की उपासना करनी चाहिए, सावधान होकर गायत्री का त्रिकाल जप करना चाहिए तथा साय और प्रातःकाल मौन रखना चाहिए, ॥ २ ॥ पढ़ने के लिए गुरु जब बुलावें तो अत्यन्त ध्यानपूर्वक उनके द्वारा वेद पढ़ना चाहिए, तथा पढ़ने के आरम्भ और अन्त में गुरु के चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम करना चाहिए ॥ ३ ॥ शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार उसे मेखला, मृगचर्म, वस्त्र, जटा, दंड और कमडलु धारण करना चाहिए तथा हाथ में दर्भ रखना चाहिये ॥ ४ ॥ प्रातः और सायंकाल भिक्षा मांग लाकर गुरुको निवेदन करना चाहिए और गुरु आज्ञा दे तो स्वय भी भोजन कराना चाहिए, नहीं तो कभी-कभी उपवास ही रह जाना चाहिए ॥ ५ ॥ उसे अच्छे स्वभाववाला होना चाहिए, थोडा खानचाहिए, दक्ष होना चाहिए, श्रद्धावान् होना चाहिये, और स्त्रियों तथा स्त्रियों में आसक्त लोगों से भिक्षा लेने भर का ही सम्बन्ध रखना चाहिए ॥ ६ ॥ न केवल ब्रह्मचारियों को, किन्तु गृहस्थों के अतिरिक्त अन्य सब आश्रमवालों को स्त्रियों से से सम्बन्ध रखनेवाली बातें न करनी चाहिए, क्योंकि इन्द्रियाँ बलवान् हैं वे बलपूर्वक मनको हरण कर लेती हैं ॥ ७ ॥ युवक ब्रह्मचारियों को गुरुकी युवती स्त्री से केश न झड़वाना चाहिए,

---

नारद उवाच—

१—ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्दांतो गुरोर्हितं । आचरन्दासवन्नीचो गुरौ सुदृढसौहृदः ॥

२—सायं प्रातरुपासीत गुर्वग्न्यर्कसुरोत्तमान् । उभे सन्ध्ये च यतवाग् जपन् ब्रह्मसमाहितः ॥

३—छंदांस्य धीयीत गुरोराहूतश्चेत्सुयंत्रितः । उपक्रमेऽवसाने च चरणौ शिरसा नमेत् ॥

४—मेखलाजिनवासांसि जटादंडकमंडलून् । बिभृयादुपवीतं च दर्भपाणिर्यथोदितं ॥

५—साय प्रातश्चरेद्भैक्ष्यं गुरवे तन्निवेदयेत् । भुंजीत यद्यनुज्ञातो नोचेदुपवसेत्क्वचित् ॥

६—सुशीलो मितभुग् दक्षः श्रद्दधानोजितेंद्रियः । यावदर्थं व्यवहरेत्स्त्रीषु स्त्रीनिर्जितेषु च ॥

७—वर्जयेत्प्रमदागाथा मगृहस्थो बृहद्व्रतः । इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरंति प्रसभं मनः ॥

शरीर का मर्दन, स्नान अथवा अंजन न करना चाहिए, क्योंकि स्त्री अग्नि के समान है और पुरुष घी से भरे घड़े के समान। एकान्त मे अपनी पुत्री के साथ भी न रहना चाहिए, एकान्त न हो तोभी आवश्यक कार्यो के अतिरिक्त उससे अधिक सम्बन्ध न रखना चाहिए ॥ ८-९ ॥ भगवत्स्वरूप के साक्षात्कार से देह आदि को मिथ्या जानकर मनुष्य जबतक स्वतन्त्र न हो गया हो तबतक द्वैत की भावना नहीं मिटती और द्वैत की भावना मिटे विना विषयों मे आसक्ति होने की सम्भावना रहती है, अतः जहाँ तक हो सके स्त्रियों से अलग ही रहना चाहिए ॥ १० ॥ ब्रह्मचारी को अच्छे स्वभाववाला होना चाहिए, आदि जो बाते कही गई हैं,वे न केवल ब्रह्मचारी के लिए ही किन्तु गृहस्थ और सन्यासी के लिए भी समान हैं। गृहस्थ के लिए इतनी छूट है कि वह ऋतुस्नाता स्त्री का सग करे और हो सके तो गुरु की सेवा करे ॥ ११ ॥ ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थियों और सन्यासियों को अजन न लगाना चाहिए, शरीर में तेल आदि न लगाना चाहिए, मर्दन न करना चाहिए, तथा स्त्री को तथा स्त्री के चित्रों को भी न देखना चाहिए, उसे मद्य, मास, माला, सुगन्ध, लेपन तथा अलकार आदि का त्याग कर देना चाहिए, ॥ १२ ॥ इस प्रकार गुरु के घर रहकर अग और उपनिषदों के सहित तीनों वेदों का अपनी शक्ति और अधिकार के अनुसार अभ्यास करके तथा उसका अर्थ समझकर, शक्ति हो तो, मांगी हुई दक्षिणा गुरु को देनी चाहिये। अनन्तर गुरु की आज्ञा लेकर अधिकार के अनुसार गृहस्थाश्रम मे, वन में अथवा सन्यास आश्रम मे प्रवेश करना चाहिए, अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहना हो तो गुरु के घर ही रहना चाहिए ॥ १३-१४ ॥ अग्नि, गुरु, आत्मा तथा समस्त प्राणियों में,अपने आश्रम-रूप जीवोंके सहित,उनके नियता होनेके कारण, प्रवृष्ट के समान लगते हुये तथा वास्तव में प्रविष्ट न रहने वाले भगवान् का चिन्तन करना चाहिए ॥ १५ ॥ ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी,

---

८—केशप्रसाधनोन्मर्दस्नपनाभ्यञ्जनादिक । गुरुस्त्रीभिर्युवतिभिः कारयेन्नात्मनो युवा ॥

९—नन्वग्निः प्रमदानाम घृतकुम्भसमः पुमान् । सुतामपि रहोजह्यादन्यदा यावदर्थकृत् ॥

१०—कल्पयित्वात्मना यावदाभास मिदमीश्वर । द्वैत तावन्न विरमेत्ततो ह्यस्य विपर्यः ॥

११—एतत्सर्वं गृहस्थस्य समाम्नात यतेरपि । गुरुवृत्तिर्विकल्पेन गृहस्थस्यर्तुगामिनः ॥

१२—अंजनाभ्यञ्जनोन्मर्दस्त्र्यवलेखामिषं मधु । स्रग्गन्धलेपालङ्कारांस्त्यजेयुर्ये धृतव्रताः ॥

१३—उषित्वैव गुरुकुले द्विजोऽधीत्यावबुद्धय च । त्रयी सांगोपनिषद यावदर्थं यथाबल ॥

१४—दत्त्वा वरमनुज्ञातो गुरोः कामं यदीश्वरः । गृह वन वा प्रविशेत्प्रव्रजेत्तत्र वा वसेत् ॥

१५—अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेष्वधोक्षज । भूतैः स्वधामभिः पश्येदप्रविष्टं प्रविष्टवत् ॥

सन्यासी अथवा गृहस्थ इस प्रकार आचरण करते हुए ज्ञेय वस्तुको जानकर ब्रह्म को प्राप्त करते हैं ॥ १६ ॥ अब मैं वानप्रस्थ के नियम कहता हू, जिसे मुनि लोग स्वीकार करते हैं तथा जिनका पालन करने से अनायास ही उन्हे महर्लोक की प्राप्ति होती है ॥१७॥ खेत में पका हुआ अन्न उन्हे न खाना चाहिए। खेत से भिन्न स्थानों मे भी जो वस्तुएँ असमय में ही पकी हों, उन्हें न खाना चाहिए। सूर्य के द्वारा पके हुए फल आदि उन्हे खाने चाहिए और यह न होसके तो अन्न आदि को आग मे पकाकर अथवा कच्चा ही खाना चाहिए ॥१८॥ वन मे उत्पन्न होनेवाले नीवार से चरु और पुरोडाश का होम करना चाहिए तथा जब नया अन्न प्राप्त हो तो पुराने का त्यागकर देना चाहिए ॥ १९ ॥ अग्नि की रक्षा के लिए ही पर्णकुटी अथवा पर्वत की गुफा का आश्रय लेना चाहिए और स्वयं शीत, वायु, अग्नि,वर्षा तथा धूप सहन करना चाहिए ॥ २० ॥ उसे केश, नख, दाढ़ी तथा मूँछ न कटानी चाहिए और मैल न धोनी चाहिए। उसे जटा, कमण्डलु, मृग-चर्म, दण्ड, वल्कल और अग्निहोत्र का सामान रखना चाहिए ॥ २१ ॥ इस प्रकार उसे बारह, आठ, चार, दो अथवा एक वर्ष तक वन मे रहना चाहिए, जिसमे कठोर तपस्या के क्लेश से उसकी बुद्धि नष्ट न हो जाय ॥ २२ ॥ वानप्रस्थी जब व्याधि अथवा वृद्धावस्था के कारण अपनी क्रिया तथा ज्ञानका अभ्यास करने मे असमर्थ हो जाय तो उसे अनशन आदि व्रत करने चाहिये ॥ २३ ॥ यह व्रत धारण करने के पहिले अग्निहोत्र की अग्नियों का अपने शरीर में आरोप करना चाहिए, अहता और ममता का त्याग कर देना चाहिए तथा शरीर को उसकी उत्पत्ति के कारणों मे भली भाँति लीन कर देना चाहिए। उत्पत्ति के अनुसार शरीर के छिद्रों को आकाश में, निःश्वास को वायु में, उष्मा को तेज मे, रुधिर, श्लेष्म तथा मूत्र आदि को जल में तथा अस्थि आदि शेष कठिन पदार्थों को पृथ्वी में लीन करना चाहिये ॥ २४—२५ ॥ वाणी

१६—एव विधो ब्रह्मचारी वानप्रस्थो यतिर्गृही। चरन्विदित विज्ञानः परं ब्रह्माधि गच्छति ॥

१७—वानप्रस्थस्य वक्ष्यामि नियमान्मुनिसंमतान्। यानातिष्ठन्मुनिर्गच्छेदृषिलोकमिहाञ्जसा ॥

१८—न कृष्टपच्यमश्नीयादकृष्ट चाप्यकालतः। अग्निपक्वमथाम वा अर्कपक्वमुताहरेत् ॥

१९—वन्यैश्चरु पुरोडाशान्निर्वपेत्कालनोदितान्। लब्धेनवेनवेऽन्नाद्ये पुराणं तु परित्यजेत् ॥

२०—अग्न्यर्थमेव शरणमुटजं वाऽद्रिकंदरा। श्रयेत हिमवाय्वग्नि वर्षार्कातपषाट् स्वय ॥

२१—केश रोम नख श्मश्रु मलानि जटिलो दधत्। कमण्डल्वजिने दण्डवल्कलाग्निपरिच्छदान् ॥

२२—चरेद्वनेद्वादशाब्दानष्टौ वाचतुरो मुनिः। द्वावेक वा यथा बुद्धिर्नविपद्येत कृच्छ्रतः ॥

२३—यदाऽकल्पः स्वक्रियायां व्याधिभिर्जरयाऽथवा। आन्वीक्षिक्यां वाविद्याश कुर्यादनशनादिकं ॥

२४—आत्मन्यग्नीन्समारोप्य सन्यस्याह ममात्मता। कारणेषु न्यसेत्सम्यक् सघात तु यथार्हतः ॥

२५—खे खानिवायौनिःश्वासांस्तेजस्यूष्माणमात्मवान्। अप्स्वसृक् श्लेष्मपूयानि क्षितौ शेष यथोद्भव ॥

और उसके कर्म वचन को अग्नि में, हाथ और उसके कर्म शिल्प को इन्द्र में, पैर और उसके कर्म गति को विष्णु मे, उपस्थ तथा उसके कर्म रति को प्रजापति मे, गुदा और उसके कर्म मल-त्याग को मृत्यु मे कान और शब्द को दिशाओं मे, त्वचा और स्पर्श को वायु मे, चक्षु और रूप को तेज में, जिह्वा और वरुण को जल मे, घ्राण और अश्विनीकुमारों को गन्धवती पृथ्वी में, मन और मनोरथ को चन्द्रमा में, बुद्धि और उसके विषयों को ब्रह्मा मे तथा अहंकार और उसके कर्मों को शिव मे, जिनके द्वारा अहता और ममतापूर्वक क्रिया होती है, लीन करना चाहिए। चित्त और चेतना को क्षेत्र में लीन करना चाहिए तथा क्षेत्रज्ञ, गुण और देवताओं को परब्रह्म मे लीन करना चाहिए ॥ २६-२९ ॥ पृथ्वी को जल मे, जल को तेज मे, तेज को वायु में, वायु को आकाश मे आकाश को अहंकार में, अहंकार को महत्तत्त्व में, महत्तत्त्व को प्रकृति में तथा प्रकृति को परमात्मा में लीन करना चाहिए ॥ ३० ॥ इस प्रकार चैतन्यमात्र शेष आत्माओं को परब्रह्मरूप जानकर और अद्वैत होकर जिसकी लकड़ी जल गई हो, उस अग्नि के समान उसे स्वयं ही विराम पाना चाहिए ॥ ३१ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवे स्कध का बारहवा अध्याय समाप्त

२६—वाचमग्नौ सवक्तव्यामिन्द्रे शिल्पं करावपि । पदानि गत्यावयसिरत्योपस्थं प्रजापतौ ॥
२७—मृत्यौपायुं विसर्गं च यथा स्थान विनिर्दिशेत् । दिक्षुश्रोत्रं सनादेन स्पर्शं मध्यात्मनित्वचं ॥
२८—रूपाणि चक्षुषा राजन् ज्योतिष्यभिनिवेशयेत् । अप्सु प्रचेतसा जिह्वां घ्रेयैर्घ्राणं क्षितौ न्यसेत् ॥
२९—मनो मनोरथैश्चन्द्रे बुद्धिं बोध्यैः कवौ परे । कर्माण्यध्यात्मना रुद्रे यदह ममता क्रिया ।

सत्वेन चित्तं क्षेत्रज्ञे गुणैर्वैकारिकं परे ।.

३०—अप्सु क्षितिमपो ज्योतिष्यदो वायौ नभस्यमुं । कूटस्थे तच्च महति तदव्यक्तेऽक्षरेन तत् ॥
३१—इत्यक्षरतयात्मानं चिन्मात्र मवशेषितं । ज्ञात्वाऽद्वयोऽथ विरमेद्दग्धयोनिरिवानलः ॥

इतिश्रीभा॰म॰स॰द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

सन्यास-धर्म का वर्णन

नारद बोले—उपरोक्त नियमों का पालन उस वानप्रस्थी को करना चाहिए, जो ब्रह्म-विचार में असमर्थ हो, पर जो समर्थ हो, उसे सन्यास लेकर शरीर के अतिरिक्त अन्य सब वस्तुओं का त्याग करके तथा किसी प्रकार की इच्छा न रखते हुए, पृथ्वी पर घूमना चाहिए तथा एक गांव मे एक रात से अधिक न रहना चाहिए ॥ १ ॥ सन्यासी यदि वस्त्र पहने तो उसे केवल कौपीन पहनना चाहिये। उसे सब वस्तुओं का त्याग करना है, अतः निरापद समय में उसे दंड तथा सन्यास के चिह्नों के अतिरिक्त और कुछ न धारण करना चाहिए ॥२॥ सन्यासी को समस्त प्राणियोंसे मैत्री काभाव रखना चाहिये,शांत होना चाहिए,भगवत्परायण होना चाहिए,किसीके आश्रम मे नहीं रहना चाहिए और अकेला ही घूमना चाहिए ॥३॥ कार्य-कारण से भिन्न और अविनाशी आत्मा में समस्त जगत् व्याप्त है,तथा कार्य कारणमय समस्त जगत् में परब्रह्म आत्मा का निवास है, ऐसा समझना चाहिये ॥४॥ सुषुप्ति में तमोगुण के कारण आत्मस्वरूप ढका रहता है,जाग्रत' स्वप्न में विक्षेप के कारण उसका प्रकाश नहीं होता, किंतु इन दोनों अवस्थाओं की संधि में तमोगुण अथवा विक्षेप नहीं होता, अतः उस समय आत्मा को लक्ष्य करके आत्मास्वरूप देखने वाले तथा बन्धन और मोक्ष को मायामात्र जानने वाले सन्यासी सब जगह आत्मा को व्यापक देखते हैं ॥ ५ ॥ जिसका नाश निश्चित है, उस शरीर की इच्छा नहीं रखनी चाहिये। जो रहने वाला नहीं है, उस प्राण की भी इच्छा नहीं रखनी चाहिये, केवल प्राणियों की उत्पत्ति और नाश करने वाले काल की ही प्रतीक्षा करनी चाहिये ॥ ६ ॥ अनात्मा का प्रतिपादन करने वाले

नारदउवाच

१—कल्पस्त्वेवं परिव्रज्य देहमात्रावशेषितः । ग्रामैकरात्र विधिना निरपेक्षश्चरेन्महीं ॥

२—बिभृयाद्यद्यसौ वासः कौपीनाच्छादन पर । त्यक्त न दंडलिंगादेरन्यत्किंचिदनापदि ॥

३—एक एव चरेद्भिक्षुरात्मारामोऽनपाश्रयः । सर्वभूतसुहृच्छान्तो नारायणपरायणः ॥

४—पश्येदात्मन्यदो विश्वं परे सदसतोऽव्यये । आत्मानं च परं ब्रह्म सर्वत्र सदसन्मये ॥

५—सुप्त प्रबोधयोः सन्धावात्मनो गतिमात्मदृक् । पश्यन्बंध च मोक्ष च मायामात्रं न वस्तुतः ॥

६—नाभिनन्देद्ध्रुवं मृत्युमध्रुवं वाऽस्य जीवित । काल परं प्रतीक्षेत भूतानां प्रभवाप्ययं ॥

नाटक आदि शास्त्रों में आसक्ति नहीं रखनी चाहिये, शास्त्रों के द्वारा जीविका नहीं कमानी चाहिये, अनुचित वाद-विवाद और तर्क का त्याग कर देना चाहिये, किसीके पक्ष का आग्रह नहीं रखना चाहिये, शिष्य आदि बनाने की इच्छा नहीं रखनी चाहिये, बहुत से ग्रंथों का अभ्यास नहीं करना चाहिए, व्याख्यान न देना चाहिये और मठ आदि बनाने का उद्योग नहीं करना चाहिए, जबतक ज्ञान न हो, तबतक सन्यास के चिह्नों को धारण करते हुए अन्तःकरण की शुद्धि के निमित्त यम-नियम आदि का पालन करते हुए ज्ञान पाने का प्रयत्न करना चाहिए। ज्ञान होने पर नियमों की कोई आवश्यकता नहीं रहती, और यम अपने आप ही हो जाता है, अतः उस समय शांत और समचित्त वाले महात्मा सन्यासी को आश्रम के चिह्नों को धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। आश्रम के चिन्हों को धारण करने से सन्यासी को किसी फल आदि की प्राप्ति नहीं होती, अतः वह चाहे तो उन्हें धारण करे अन्यथा छोड़ दे ॥ ७—९ ॥ उसे बाहरी चिह्नों के रखने की आवश्ययकता नहीं है, किन्तु आत्मा का अनुसंधान रखना आवश्यक है। सन्यासी को विद्वान होने पर भी लोगों के सामने उन्मत्त बालक के समान रहना चाहिए, तथा वक्ता होने पर भी मूक के समान रहना चाहिए ॥ १० ॥ इस संबंध में प्रह्लाद और अजगर की वृत्तिवाले (एक जगह रहकर कर्म-भोगने की वृत्ति वाले) एक मुनि (गुरु दत्तात्रेय) के संवाद के रूप में एक पुरानी कथा कही जाती है ॥ ११ ॥ भगवान के प्रिय प्रह्लाद ने लोकतत्व जानने के लिये अपने मंत्रियों के सहित लोकों का भ्रमण करते हुऐ सह्याद्रि के पास, कावेरी नदी के किनारे भूमि पर सोए हुए उन योगी को देखा, जिनका तेज शरीर के धूलिधूसरित होने के कारण ढक गया था ॥ १२—१३ ॥ कर्म, आकृति, वाणी तथा वर्णाश्रम आदि के चिह्नों से लोग जिनके बारे में यह नहीं जान सकते कि यह वही हैं या नहीं, उन योगी को महावैष्णव प्रह्लाद ने प्रणाम किया, विधिवत् उनकी पूजा की, मस्तक से उनके चरणों का स्पर्श किया और जिज्ञासु होकर उनसे यह पूछा ॥ १४—१५ ॥

७—नासच्छास्त्रेषु सज्जेत नोपजीवेत जीविका। वादवादांस्त्यजेत्तर्कान्पक्षं कंचन संश्रयेत् ॥

८—न शिष्याननुबध्नीत ग्रन्थान्नैवाभ्यसेद्बहून्। न व्याख्यामुपयुञ्जीत नारंभानारभेत्क्वचित् ॥

९—न यतेराश्रमः प्रायो धर्महेतुर्महात्मनः। शान्तस्य समचित्तस्य बिभृयादुत वा त्यजेत् ॥

१०—अव्यक्तलिंगो व्यक्तार्थो मनीष्युन्मत्तबालवत्। कविर्मूकवदात्मानं स दृष्ट्या दर्शयेन्नृणां ॥

११—अत्राप्युदाहरंतीम मितिहासं पुरातनं। प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराजगरस्य च ॥

१२—तं शयानं धरोपस्थे कावेर्यां सह्यसानुनि। रजस्वलैस्तनूदेशैर्निगूढामलतेजसं ॥

१३—ददर्श लोकान्विचरँल्लोकतत्त्वविवित्सया। वृतोमात्यैः कतिपयैः प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥

१४—कर्मणा कृतिभिर्वाचा लिंगैर्वर्णाश्रमादिभिः। न विदंति जना यं वै सोऽसाविति न वेति च ॥

" उद्यम करने वाले और भोगने वाले के समान आपका शरीर पुष्ट है, क्योंकि उद्यम करने वालों को धन मिलता है, धन वालों को भोग का सुख मिलता है और जिन्हें सुख मिलता है, उनका शरीर पुष्ट होता है ॥१६॥ ब्रह्मन्! आप सोऐ हुये हैं और निरुद्यम हैं,अतः आपके पास धन नहीं है, जिससे भोग का सुख मिलता है, फिर भी जिससे आपका शरीर पुष्ट है, वह यदि मुझसे कहने योग्य हो तो आप कहे ॥ १७॥ धन पाने में असमर्थ होते हुऐ भी लोग उसके लिये उद्योग करते हैं, फिर समर्थ होते हुऐ भी आप उद्योग क्यों नहीं करते ? आप विद्वान हैं. समर्थ हैं, चतुर हैं और अपनी बातों से लोगों को प्रसन्न कर सकने वाले हैं, फिर भी सोऐ हुए हैं और लोगों को कर्म करते हुऐ देखकर भी उनकी निंदा अथवा प्रशंसा नहीं करते,, ॥ १८ ॥

नारद बोले—प्रह्लाद के ऐसा पूछने पर उनके वचनरूपी अमृत से वशीभूत हुऐ उन महामुनि ने उनसे यह कहा ॥ १९ ॥

ब्राह्मण बोले—असुरश्रेष्ठ! आप ज्ञानियों में विख्यात हैं। प्रवृत्ति और निवृत्ति के द्वारा मनुष्य को कैसा फल मिलता है, यह आप जानते हैं,क्योंकि शुद्ध भक्ति के कारण निरंतर आपके हृदय मे रहने वाले भगवान् आपका अज्ञान दूर करते हैं,जैसे सूर्य अन्धकार को दूर करते हैं,फिर भी जैसा हम लोगों ने सुना है, वैसा मैं आपके प्रश्न का उत्तर दूँगा, क्योंकि जो अपने-अपने अन्त करणों को शुद्ध करना चाहते हों, उन्हें आपका सम्मान करना चाहिए। जन्म-मरण के प्रवाह को चलाने वाली तथा उचित विषयों से भी शांत न हो सकने वाली तृष्णा ने कर्म कराकर मुझे अनेक योनियों मे डाला था ॥ २० —२३ ॥ कर्म के द्वारा भटकता हुआ मैं इस तृष्णा के

१५—त नत्वाऽभ्यर्च्य विधिवत्पादयोः शिरसा स्पृशन्। विवित्सुरिदमप्राक्षीन्महाभागवतोऽसुरः ॥

१६—बिभर्षि काय पीवान सोद्यमो भोगवान्यथा। वित्त चैवोद्यमवता भोगो वित्तवतामिह ॥
भोगिना खलु देहोय पीवा भवति नान्यथा ॥

१७—न ते शयानस्य निरुद्यमस्य ब्रह्मन्नुहार्थो यतएव भोगः।
अभोगिनोऽय तव विप्रदेहः पीवा यतस्तद्वदनः क्षमं चेतः ॥

१८—कविः कल्पो निपुणदृक् चित्रप्रियकथः समः। लोकस्य कुर्वतः कर्म शेषे तद्वीक्षिताऽपि वा ॥

नारद उवाच—

१९—स इत्थं दैत्यपतिना परिपृष्टो महामुनिः। स्मयमानस्तमभ्याह तद्वागमृतयन्त्रितः ॥

ब्राह्मण उवाच—

२०—वेदेदमसुरश्रेष्ठ भवान्नन्वार्यसंमतः। ईहोपरमयोर्नॄणां पदान्यध्यात्मचक्षुषा ॥

२१—यस्य नारायणो देवो भगवान्हृद्गतः सदा। भक्त्या केवलयाऽज्ञान धुनोति ध्वान्तमर्कवत् ॥

२२—अथापि ब्रूमहे प्रश्नांस्तव राजन्यथा श्रुत। संभावनीयो हि भवानात्मनः शुद्धिमिच्छता ॥

२३—तृष्णया भववाहिन्यायोग्यैः कामैरपूरया। कर्माणि कार्यमाणोऽहं नाना योनिषु योजितः ॥

द्वारा ही इच्छापूर्वक पुनः इस मनुष्य-शरीर में डाला गया हूँ, जो पुण्य के द्वारा स्वर्ग का, पाप के द्वारा नीच योनि का तथा पाप और पुण्य के मिश्रण से मनुष्य-शरीर का और निवृत्ति से मोक्ष का द्वार है ॥ २४ ॥ इस मनुष्य-जन्म में भी सुख पाने और दुखों को नष्ट करने के लिए अनेक प्रकार के कर्म करते हुए स्त्री-पुरुषों को उलटा फल पाते हुए देखकर मैंने निवृत्ति ही स्वीकार की है ॥ २५ ॥ सुख इस जीव का स्वरूप है और क्रियाओं के निवृत्त होने पर वह स्वयं ही प्रकाशित होता है। सब प्रकार के भोगों को मन के द्वारा कल्पित और अनित्य जानकर मैं निरुद्यमी ही रहता हूँ और प्रारब्ध के कारण जो मुझे मिलता है, उसे भोगता हूँ ॥२६॥ सुखरूप पुरुषार्थ अपने में ही है, इसे भूलकर मनुष्य द्वैत पदार्थों के मिथ्या होने पर भी भयंकर संसार के प्रवाह में भटका करता है ॥२७॥ सेवार आदि से ढके हुए जल को छोड़कर जल पीने की इच्छा से मृग-तृष्णा के जल की ओर दौड़ने वाले मूर्ख के समान मनुष्य अपने स्वरूप के अतिरिक्त दूसरी जगह सुख को जानता हुआ विषयों की ओर दौड़ा करता है ॥ २८ ॥ देह आदि पदार्थ दैव के अधीन हैं, उनसे सुख पाने और दुखों को दूर करने की इच्छा रखने वाले भाग्यहीन मनुष्य जो-जो क्रियाएँ करते हैं, वे सभी निष्फल हो जाती हैं ॥ २९ ॥ आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुखों से कभी मुक्त न होने वाले, मरणशील प्राणियों को यदि कठिनाई से कभी सुख मिल भी गया तो उससे क्या होता है ? ॥ ३० ॥ लोभी, अजितेंद्रिय, भय के कारण निद्राहीन तथा सब तरह से शंकित धनी लोगों को भी मैं दुखी देखता हूँ ॥ ३१ ॥

प्राणियों और धनियों को राजा का, चोर का, शत्रु का, स्वजनों का, पशु का, पक्षी का, काल का तथा अपना भी डर बना रहता है ॥ ३२ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य को उप धन और प्राण

२४—यदृच्छया लोकमिमं प्रापितः कर्मभिर्भ्रमन्। स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं तिरश्चां पुनरस्य च ॥

२५—अत्रापि दम्पतीनां च सुखायान्यापनुत्तये। कर्माणि कुर्वतां दृष्ट्वा निवृत्तोऽस्मि विपर्ययम् ॥

२६—सुखमस्यात्मनो रूपं सर्वेहोपरतिस्तनुः। मनः संस्पर्शजान् दृष्ट्वा भोगान् स्वप्स्यामि संविशन् ॥

२७—इत्येतदात्मनः स्वार्थं सन्तं विस्मृत्य वै पुमान्। विचित्रामसति द्वैते घोरामाप्नोति संसृतिं ॥

२८—जलं तदुद्भवैश्छन्नं हित्वाऽज्ञो जलकाम्यया। मृगतृष्णामुपाधावेद्यथाऽन्यत्रार्थदृक्स्वतः ॥

२९—देहादिभिर्दैवतन्त्रैरात्मनः सुखमीहतः। दुःखात्ययं चानीशस्य क्रिया मोघाः कृताः कृताः ॥

३०—आध्यात्मिकादिभिर्दुःखैरविमुक्तस्य कर्हिचित्। मर्त्यस्य कृच्छ्रोपनतैरर्थैः कामैः क्रियेत किं ॥

३१—पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानामजितात्मनः। भयादलब्धनिद्राणां सर्वतोऽभिविशङ्किनां ॥

३२—राजतश्चौरतः शत्रोः स्वजनात्पशुपक्षितः। अर्थिभ्यः कालतः स्वस्मान्नित्यं प्राणार्थवद्भयं ॥

की ही तृष्णा छोड देनी चाहिये, जिसके कारण उसे शोक, मोह, भय, क्रोध, प्रीति, दीनता और परिश्रम आदि होता है॥ ३३॥ मधुमक्खी और अजगर ही इस लोक मे हमारे श्रेष्ठ गुरु हैं जिनकी शिक्षा से हमने वैराग्य और सन्तोष पाया है ॥ ३४॥ मधुमक्खियों से हमने समस्त विषयों मे वैराग्य रखना सीखा है। मधुमक्खी बडी कठिनता से मधु इकट्ठा करती है, पर उसके इकट्ठे किए हुये धन को, उसे मारकर, दूसरा ही ले जाता है॥ ३५॥ उद्यमहीन मैं, अपने आप मिली हुई वस्तुओं से सन्तोष रखता हूँ और यदि कुछ नहीं मिलता तो धैर्य रखकर अजगर के समान बहुत दिनों तक पडा रह जाता हूँ ॥३६॥ कभी थोडा,कभी ज्यादा,कभी स्वादिष्ट,कभी निस्वादु अत्यन्त गुणकारी, कभी अवगुण करने वाला, कभी श्रद्धा से मिला हुआ और कभी अपमान से मिला हुआ अन्न खाकर इच्छानुसार दिन अथवा रात मे कहीं पडा रहता हूँ॥३७-३८॥ प्रारब्ध को भोगने तथा सतोष रखनेवाला मैं, रेशमी, सूती, चमडा, चीर, वल्कल अथवा और भी किसी प्रकार का जो कपडा मिल जाता है, उसे पहन लेता हूँ ॥ ३९॥ कभी भूमि पर दूब, पत्ते, पत्थर अथवा राख पर सो रहता हूँ और कभी दूसरे की इच्छा से महल मे बिछे हुए पलंग के गद्दे पर ॥ ४०॥ कभी स्नान करके, चन्दन लगाकर, अच्छे वस्त्र पहनकर, माला पहनकर, शृंगार करके रथ, हाथी अथवा घोडे पर चढकर चलता हूँ और कभी ग्रह के समान दिगम्बर होकर ॥ ४१॥ मनुष्यों का स्वभाव एक दूसरे से भिन्न होता है, अत मैं न तो किसी की निन्दा करता हूँ, न प्रशसा। मैं इतना ही चाहता हूँ कि सब का कल्याण हो और भगवान् में एकात्मता हो

३३—शोक मोह भय क्रोध राग क्लैब्य श्रमादयः। यन्मूलाः स्युर्नृणां जह्यात्स्पृहां प्राणार्थयोर्बुधः॥

३४—मधुकारमहासर्पौ लोकेस्मिन्नो गुरूत्तमौ। वैराग्यं परितोषं च प्राप्ताय च्छिक्षया वयं ॥

३५—विरागः सर्वकामेभ्यः शिक्षितो मे मधुव्रतात्। कृच्छ्राप्तं मधुवद्वित्तं हत्वाऽप्यन्यो हरेत्पतिं॥

३६—अनीहः परितुष्टात्मा यदृच्छोपनतादहं। नोचेच्छये बह्वहानि महाहिरिव सत्ववान्॥

३७—क्वचिदल्पं क्वचिद्भूरि भुंजेऽन्नं स्वाद्वस्वादु वा। क्वचिद्भूरिगुणोपेतं गुणहीनमुत क्वचित्॥

३८—श्रद्धयोपाहृतं क्वापि कदाचिन्मानवर्जितं। भुंजे भुक्त्वाऽथ कस्मिंश्चिद्दिवानक्तं यदृच्छया॥

३९—क्षौमं दुकूलमजिनं चीरं वल्कलमेव वा। वसेऽन्यदपि संप्राप्तं दिष्टभुक् तुष्टधीरहं॥

४०—क्वचिच्छये धरोपस्थे तृणपर्णाश्मभस्मसु। क्वचित्प्रासाद पर्यंके कशिपौ वा परेच्छया॥

४१—क्वचित् स्नातोऽनुलिप्तांगः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः। रथे भाश्वै श्वरे क्वापि दिग्वासा ग्रहवद्विभो॥

४२—नाहं निंदेन चस्तौमि स्वभावविषमं जनं। एतेषां श्रेय आशासे उतैकात्म्यं महात्मनि॥

॥ ४२ ॥ भेद का मन की वृत्तियों में, वृत्तियों का पदार्थोंरूपी विभ्रमवाले मन में, मन का अहंकार में तथा अहंकार का महत्तत्व के द्वारा माया में होम कर देना चाहिये ॥ ४३ ॥ सत्य स्वरूप को जाननेवाले मुनियों को माया के स्वरूप का अनुभव मे होम कर देना चाहिये ॥ ४४ ॥ मैंने अपनी अत्यन्त गुप्त तथा लोक और शास्त्र से उल्टी आत्मवृत्ति आपसे कह दी, क्योंकि आप भगवान् के भक्त हैं ॥ ४५ ॥

नारद बोले—असुरों के स्वामी प्रह्लाद मुनि के द्वारा परमहंसों का धर्म सुनकर प्रसन्न हुये। उन्होंने मुनि की पूजा की और उनकी आज्ञा लेकर घर वे आए ॥ ४६ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवे स्कन्ध का तेरहवाँ अध्याय समाप्त

४३—विकल्पं जुहुयाच्चित्तौ ता मनस्यर्थविभ्रमे। मनो वैकारिके हुत्वा तन्मायाया जुहोत्यनु ॥

४४—आत्मानुभूतौ ता मायां जुहुयात्सत्यदृङ् मुनि.। ततो निरीहो विरमेत्स्वानुभूत्यात्मनि स्थितः ॥

४५—स्वात्मवृत्तं मयेत्थं ते सुगुप्तमपि वर्णित। व्यपेत लोकशास्त्राभ्या भवान्हि भगवत्प्रियः ॥

नारद उवाच—

४६—धर्मं पारमहंस्यं वै मुनेः श्रुत्वाऽसुरेश्वर.। पूजयित्वा तत प्रीत आमन्त्र्य प्रययौ गृहं ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कन्धेयुधिष्ठिरनारदसंवादेयतिधर्मेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

गृहस्थ-धर्मों का वर्णन

राजा युधिष्ठिर बोले—देवर्षि ! घर में ही जिसकी बुद्धि मूढ बनी हुई है, उन मुझ - जैसे को जिस प्रकार सन्यास हो और मोक्ष मिले, वह आप मुझसे कहे ॥ १ ॥

नारद बोले—राजन् ! गृहस्थों को घर मे रहते हुए भगवदर्पण करके यथायोग्य क्रियाएँ करनी चाहिए तथा श्रेष्ठ मुनियों की सेवा करनी चाहिये ॥ २ ॥ उन्हें सदा भगवान् की अमृत-रूपी अवतार-कथाएँ सुननी चाहिए । श्रद्धावान् होकर यथासमय शात पुरुषों का समागम करना चाहिए ॥ ३ ॥ जिस प्रकार स्वप्न देखकर उठा हुआ मनुष्य स्वप्न की आसक्ति छोड़ देता है, उसी प्रकार गृहस्थ को सत्संग के बल से देह, स्त्री, पुत्र आदि को आसक्ति छोड़ देनी चाहिए जो एक दिन स्वय ही छूट जाने वाले हैं ॥ ४ ॥ विद्वान् मनुष्य को प्रयोजन के अनुसार ही शरीर तथा घर से सम्बन्ध रखना चाहिए तथा हृदय में वैराग्य रखकर बाहर से आसक्त मनुष्य के समान पुरुषार्थ करते रहना चाहिए ॥ ५ ॥ जातिवाले, माता-पिता पुत्र, भाई तथा अन्य सम्बन्धी जो कहे और जो चाहे उसमें आसक्ति न रखते हुए उसका अनुमोदन करना चाहिये ॥ ६ ॥ अन्न आदि पृथ्वी से उत्पन्न तथा अकस्मात मिला हुआ जो धन भगवान् दे, उन सबका उप-भोग करते हुए विद्वान पुरुष को ऊपर कहे हुए अनुसार आचरण करना चाहिए ॥ ७ ॥ जितने से पेट भरे, उतना ही प्राणियों का अपना है, उससे अधिक का जो अभिमान रखता है, वह चोर के समान दंडनीय है ॥ ८ ॥ मृग, ऊँट, गधा, बन्दर, चूहा, सर्प, पक्षी और मक्खियों को अपने पुत्र के समान जानना चाहिए, क्योंकि उनमें और पुत्रों मे बहुत अन्तर नहीं है ॥ ९ ॥ गृहस्थ होकर भी बहुत कष्ट उठाकर धर्म, अर्थ और काम का सेवन न

युधिष्ठिर उवाच—

१—गृहस्थ एता पदवीं विधिना येन चाञ्जसा । याति देवऋषे ब्रूहि मादृशो गृहमूढधीः ॥

नारद उवाच—

२—गृहेष्ववस्थितो राजन् क्रियाः कुर्वन्यथोचिताः । वासुदेवार्पणं साक्षादुपासीत महामुनीन् ॥

३—शृण्वन् भगवतोऽभीक्ष्ण मवतारकथाऽमृत । श्रद्दधानो यथाकालमुपशान्त जनावृतः ॥

४—सत्संगाच्छनकैः संगमात्मजायात्मजादिषु । विमुच्येन्मुच्यमानेषु स्वयं स्वप्नवदुत्थितः ॥

५—यावदर्थमुपासीनो देहे गेहे च पंडितः । विरक्तोरक्तवत्तत्र नृलोके नरतां न्यसेत् ॥

६—ज्ञातयः पितरौ पुत्रा भ्रातरः सुहृदोऽपरे । यद्वदन्ति यदिच्छेति चानुमोदेतनिर्मम ॥

७—दिव्यं भौमं चांतरिक्षम् वित्तमच्युतनिर्मितम् । तत्सर्वमुपभु जान एतत्कुर्यात्स्वतो बुधः ॥

८—यावद्भ्रियेत जठरं तावत्स्वत्वं हि देहिना । अधिकं योऽभिमन्येत सस्तेनो दण्डमर्हति ॥

९—मृगोष्ट्र खर मर्काखु सरीसृप् खग मक्षिकाः । आत्मनः पुत्रवत्पश्येत्तैरेषामंतर कियत् ॥

करना चाहिए, किन्तु देश-काल के अनुसार दैवयोग से जो मिले, उतने ही से सन्तुष्ट रहना चाहिए ॥ १० ॥ कुत्ते, पतित तथा चाण्डाल आदि को भी अपने अन्न में से यथायोग्य भाग देना चाहिए। स्त्री को भी, जो विशेषतः अपनी ही सेवा करनेवाली है तथा जिसे लोग 'यह मेरी है' ऐसा समझते हैं, धर्मशास्त्रों की आज्ञा के अनुसार अतिथियों की सेवा में नियुक्त करना चाहिए ॥ ११ ॥ पुरुष जिसके लिए अपने प्राणों का भी त्याग करदेता है तथा पिता और गुरु की भी हत्या करदेता है, उस स्त्री की आसक्ति जो छोड देता है, वह न जीते जा सकने वाले भगवान् को भी जीत लेता है ॥१२॥ कहाँ तो अन्त में कीडा, विष्ठा और भस्म हो जानेवाला यह शरीर, कहाँ वह स्त्री जिसमें शारीरिक सुखों के लिए प्रीति उत्पन्न होती है और कहाँ असग तथा सर्वव्यापक-आत्मा ! ॥ १३ ॥ प्रारब्ध-योग से जो अन्न आदि प्राप्त हो, उससे पचयज्ञ आदि करना चाहिए तथा बचे हुए अन्न से जीविका चलानी चाहिए। यदि इसके बाद भी कुछ बच रहे तो उसकी ममता छोड देनी चाहिये। ऐसा करनेवाले बुद्धिमान् लोग परमहंसों का पद पाते हैं ॥ १४ ॥ योग्य आजीविका से जो धन प्राप्त हो, उससे प्रतिदिन देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य और प्राणियों की पूजा करनी चाहिए तथा अपने शरीर को सन्तुष्ट करना चाहिए। इस प्रकार की गई पूजा अन्तर्यामी भगवान् की पूजा होती है ॥ १५ ॥ अधिकार आदि यज्ञ की समस्त सुविधाएँ हों तो मनुष्य को वेदों की आज्ञा के अनुसार अग्निहोत्र आदि विधियों के द्वारा यज्ञ करना चाहिए। राजन् ! समस्त यज्ञों के भोक्ता भगवान् ब्राह्मणों के मुँह में होम देने से जितने प्रसन्न होते हैं, उतने अग्नि में हविष्य देने से भी नहीं होते ॥ १६ १७ ॥ अतः ब्राह्मण

१०—त्रिवर्गं नातिकृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्यपि। यथादेशं यथाकालं यावद्दैवोपपादितम् ॥

११—आश्वाघान्ते वसायिभ्यः कामान्सम् विभजेद्यथा। अप्येकामात्मनो दारां नृणां स्वत्वग्रहो यतः ॥

१२—जह्याद्यदर्थे स्वप्राणान्हन्याद्वा पितरम् गुरुम्। तस्यां स्वत्वं स्त्रिया जह्याद्यस्तेन ह्यजितोजितः ॥

१३—कृमिविड्भस्मनिष्ठान्तक्वेदं तुच्छम् कलेवरम्। क्वतदीयरतिर्भार्या क्वायमात्मानभश्छदि ॥

१४—सिद्धैर्यज्ञावशिष्टार्थं कल्पयेद्वृत्तिमात्मनः। शेषे स्वत्वं त्यजन्प्राज्ञः पदवीं महतामियात् ॥

१५—देवानृषीन् भूतानि पितॄनात्मानमन्वह। स्ववृत्त्यागतवित्तेन यजेत पुरुषं पृथक् ॥

१६—यर्ह्यात्मनोऽधिकाराद्याः सर्वाः स्युर्यज्ञसम्पदः। वैतानिकेन विधिना अग्निहोत्रादिना यजेत् ॥

१७—न ह्यग्निमुखतोऽयं वै भगवान्सर्वयज्ञभुक्। इज्यते हविषा राजन् यथाविप्रमुखे हुतैः ॥

देवता, मनुष्य और अन्य प्राणियों को यथायोग्य दान देकर तथा उनका सत्कार करके उनमें अन्तर्यामी भगवान् की आप पूजा करें और इन अन्तर्यामी का मुख्य मुख ब्राह्मण है, ऐसा समझें ॥१८॥ द्विज वर्णों को भाद्रमास के कृष्णपक्ष में पितरों का महालय श्राद्ध करना चाहिए और सम्पत्ति हो तो उनके बन्धु-बान्धवों का भी श्राद्ध करना चाहिये ॥१९॥ दक्षिणायन, उत्तरायण, मेष और तुला, सक्रांति, व्यतीपात, क्षय दिवस, चंद्र-सूर्य के ग्रहण, श्रवण द्वादशी, वैशाख शुक्ल तृतिया, कार्तिक नवमी, हेमंत तथा शिशिर ऋतु की चार अष्टका (मार्गशीर्ष मास आदि चार महीनों के कृष्णपक्ष की सप्तमी, अष्टमी और नवमी, ये तीन तिथियां अष्टका कही जाती हैं) तिथियाँ, माघ शुक्ल सप्तमी, माघ की मघा नक्षत्रवाली पूर्णिमा और इसी प्रकार प्रत्येक मास की पूर्णिमा तथा महीनों के नाम वाले नक्षत्रों में श्राद्ध करना चाहिये ॥ २०—२२ ॥ द्वादशी को अनुराधा, श्रवण अथवा तीन उत्तरा नक्षत्रों में से किसी एक का योग हो अथवा एकादशी को तीन उत्तरा नक्षत्रों में से किसी एक का योग हो, अथवा जिस तिथि में जन्मनक्षत्र या श्रवण-नक्षत्र का योग हो, उसमें भी श्राद्ध करना चाहिये ॥ २३ ॥ ऊपरकहे गये समय न केवल श्राद्ध करने के लिये ही हैं, किंतु सब प्रकार के धर्मों की वृद्धि करने वाले हैं। अतः इन समयों में सब प्रकार के पुण्य करने चाहिये। यही आयुष्य की सफलता है ॥ २४ ॥ इन समयों में किया हुआ स्नान, जप, होम, व्रत, देवता और ब्राह्मणों की पूजा अक्षय होती तथा पितर, देवता, मनुष्य और भूतों को जो कुछ दिया जाता है, वह भी अक्षय होता है ॥२५॥ राजन्! स्त्री, संतान अथवा अपने संस्कार के समय, प्रेत के दाह आदि के समय, वार्षिक श्राद्ध के समय तथा अन्य मांगलिक कार्यों के अवसर पर पुण्य करना चाहिये ॥ २६ ॥ अब मैं आपसे कल्याण करने वाले देशों का

१८— तस्माद् ब्राह्मणदेवेषु मर्त्यादिषु यथार्हतः। तैस्तैः कामैर्यजस्वैनं क्षेत्रज्ञं ब्राह्मणाननु॥

१९—कुर्यादापरपक्षीयं मासि प्रौष्ठपदे द्विजः। श्राद्धं पित्रोर्यथावित्तं तद्बन्धूनां च वित्तवान्॥

२०—अयने विषुवे कुर्याद् व्यतीपाते दिनक्षये। चन्द्रादित्योपरागे च द्वादश्यां श्रवणेषु च॥

२१— तृतीयायां शुक्लपक्षे नवम्यामथ कार्तिके। चतसृष्वप्यष्टकासु हेमन्ते शिशिरे तथा॥

२२—माघे च सितसप्तम्यां मघा राकासमागमे। राकया चानुमत्या वा मासर्क्षाणि युतान्यपि॥

२३—द्वादश्यामनुराधा स्याच्छ्रवणस्तिस्र उत्तराः। तिसृष्वेकादशी वासु जन्मर्क्षश्रोणयोगयुक्॥

२४—त एते श्रेयसः काला नृणां श्रेयोविवर्धनाः। कुर्यात्सर्वात्मनैतेषु श्रेयोऽमोघं तदायुषः॥

२५—एषु स्नानं जपो होमो व्रतं देवद्विजार्चनम्। पितृदेवनृभूतेभ्यो यद्दत्तं तद्ध्यनश्वरम्॥

२६—संस्कारकालो जायाया अपत्यस्यात्मनस्तथा। प्रेतसंस्था मृताहश्च कर्मण्यभ्युदये नृप॥

नाम कहता हूँ। जहाँ चराचर के निवास की मूर्ति रूप सत्पात्र मिले, वह देश अत्यन्त पवित्र है। जहाँ तपस्वी दयावान और विद्वान् ब्राह्मण रहते हों, जहाँ भगवान् की प्रतिमा हो तथा जहाँ पुराणों में प्रसिद्ध गंगा आदि नदियाँ हों, वे देश धर्म करने के स्थान है ॥२७-२९॥ पुष्कर आदि तालाब, महात्माओं के रहने के स्थान, कुरुक्षेत्र, गया, प्रयाग, पुलह का आश्रम, नैमिषारण्य, फाल्गुन, सेतुबंध रामेश्वर, प्रभासतीर्थ, द्वारका, काशी, मथुरा, पंपापुरी, बिंदुसार, नारायण का आश्रम, सीता-राम के आश्रम आदि महेंद्र तथा मलय आदि समस्त श्रेष्ठ पर्वत और भगवान की स्थिर मूर्तिवाले देश अत्यन्त पवित्र हैं। कल्याण की इच्छा रखने वाले मनुष्यों को बारबार इन देशों का सेवन करना चाहिए। इन स्थानों में जो पुण्य किया जाता है, वह मनुष्यों को हजार गुना अधिक फल देने वाला होता है ॥ ३०—३३ ॥ राजन्! भली भाँति पात्रों को जानने वाले विद्वान एक मात्र भगवान् को ही पात्र कहते हैं, क्योंकि समस्त चराचर भगवान्मय ही हैं ॥ ३४ ॥ राजन्! आपके यज्ञ में देवता, ऋषि, महात्मा और ब्रह्मा के पुत्र आदि सभी थे, किंतु अग्रपूजा के समय यही निश्चित हुआ था कि भगवान ही सर्वोत्तम पात्र हैं ॥ ३५ ॥ प्राणियों के समूह से व्याप्त इस ब्रह्माण्डरूपी वृक्ष के मूल भगवान है, अतः भगवान् की पूजा से समस्त प्राणियों की तथा अपनी भी तृप्ति होती है ॥ ३६ ॥ मनुष्य, पशु पक्षी, ऋषि और देवता आदि पुरों (शरीरों) की सृष्टि भगवान ने की है। इन पुरों में वे जीव रूप से निवास करते हैं, इसीसे उन्हें पुरुष कहा जाता है ॥ ३७ ॥ राजन्! पशु-पादयों की अपेक्षा

२७—अथ देशान्प्रवक्ष्यामि धर्मादिश्रेय आवहान्। स वै पुण्यतमो देशः सत्पात्रं यत्र लभ्यते ॥

२८—बिंब भगवतो यत्र सर्वमेतच्चराचर। यत्र ह ब्राह्मणकुलं तपो विद्यादयान्वित ॥

२९—यत्रयत्र हरेरर्चा स देशः श्रेयसा पद। यत्र गंगादयो नद्यः पुराणेषु च विश्रुताः ॥

३०—सरांसि पुष्करादीनि क्षेत्राण्यर्हाश्रितान्युत। कुरुक्षेत्रं गयशिरः प्रयागः पुलहाश्रम. ॥

३१—नैमिषः फाल्गुन सेतु प्रभासोऽथ कुशस्थली। वाराणसी मधुपुरी पंपा बिंदुसरस्तथा ॥

३२—नारायणाश्रमो नंदा सीतारामाश्रमादयः। सर्वे कुलाचला राजन् महेंद्रमलयादय. ॥

३३—एते पुण्यतमा देशा हरेरर्चाश्रिताश्च ये। एतान्देशान्निषेवेत श्रेयस्कामो ह्यभीक्ष्णशः ॥
धर्मो ह्यत्रेहितः पुंसां सहस्राधिफलोदयः ॥

३४—हरिरेवैक उर्वीश यन्मयं वै चराचरं। पात्रं त्वत्र निरुक्तं वै कविभिः पात्रवित्तमैः ॥

३५—देवर्ष्यर्हत्सु वै सत्सु तत्र ब्रह्मात्मजादिषु। राजन्यदग्रपूजायां मतः पात्रतयाच्युतः ॥

३६—जीवराशिभिराकीर्ण आण्डकोशाङ्घ्रिपो महान्। तन्मूलत्वादच्युतेज्या सर्वजीवात्मतर्पणं ॥

३७—पुराण्यनेन सृष्टानि नृतिर्यगृषि देवता.। शेते जीवेन रूपेण पुरेषु पुरुषो ह्यसौ ॥

मनुष्य के शरीर में भगवान् का अधिक निवास है, अतः मनुष्य पूजनीय हैं। उनमे से जिन लोगों में तप आदि के कारण ज्ञान की मात्रा अधिक दीख पड़े, उन्हे उत्तम पात्र जानना चाहिए ॥ ३८ ॥ राजन ! पहले मनुष्य-शरीर में ही भगवान् की पूजा करने की प्रथा थी, किंतु उसमें मनुष्य एक-दूसरे का अपमान करने लगे, अतः त्रेतायुग से विद्वानों ने भगवान की प्रतिमा की पूजा करने का विधान किया ॥ ३९ ॥ तब से कितने ही लोग भगवान को मूर्ति मे ही मानकर उनकी पूजा करते हैं, किंतु मूर्ति की पूजा करते हुए भी जो मनुष्य दूसरों से द्वेष रखता है, उसकी पूजा निष्फल होती है ॥ ४० ॥ राजेंद्र ! मनुष्यों मे भी जो ब्राह्मण तपस्या विद्या और संतोष के सहित भगवान् के शरीररूपी वेदों का अभ्यास करते है, वे उत्तम पात्र कहे जाते हैं ॥ ४१ ॥ राजन् ! अपने चरण-रज से त्रैलोक्य को पवित्र करनेवाले ब्राह्मण इस जगत् की आत्मा भगवान् के भी श्रेष्ठ दैवत हैं ॥ ४२ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवे स्कंध का चौदहवाँ अध्याय समाप्त

३८—तेष्वेषु भगवान राजस्तारतम्येन वर्तते । तस्मात्पात्रं हि पुरुषो यावानात्म यथेयते ॥

३९—दृष्ट्वा तेषां मिथो नृणामवज्ञानात्मतां नृप । त्रेतादिषु हरेरर्चा क्रियायै कविभिः कृता ॥

४०—ततोर्चायां हरिं केचित्संश्रद्धाय विपर्यया । उपासत उपास्तापि नार्थदापुरुषद्विषा ॥

४१—पुरुषेष्वपि राजेंद्र सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः । तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेस्तनुं ॥

४२— नन्वस्य ब्राह्मणा राजन् कृष्णस्य जगदात्मन. । पुनत' पादरजसा त्रिलोकीं दैवतं महत् ॥

इति०भा०म०स०सदाचारनिर्णयेचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पंद्रहवां अध्याय

वर्णाश्रमों के प्रकार तथा मोक्ष का वर्णन

नारद बोले – कुछ ब्राह्मण कर्म में, कुछ तपस्या मे, कुछ वेदाध्ययन मे, कुछ व्याख्यान मे, कुछ ज्ञान मे और कुछ योग मे निष्ठा रखनेवाले होते हैं ॥ १ ॥ पितर और देव-सम्बंधी कार्यों में अनन्त फल की इच्छा उत्पन्न कराने वाले ज्ञानी ब्राह्मणों को ही भोजन कराना चाहिए। ज्ञानी ब्राह्मण न मिले तो अन्य ब्राह्मणों को उनकी योग्यता के अनुसार खिलना चाहिये ॥ २ ॥ बहुत समृद्धिशाली होने पर भी देवकार्यों मे दो, पितर-कार्यों (श्राद्ध आदि) मे तीन ब्राह्मणों को अन्य लोगों के कार्यो मे एक ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए। इससे अधिक विस्तार न करना चाहिए ॥ ३ ॥ विस्तार से स्वजनों को भोजन कराने से देशकालोचित श्रद्धा, पदार्थ, पात्र और विधि के साथ पूजा नहीं हो सकती ॥ ४ ॥ उचित देश और काल में भगवान को अर्पित किया हुआ मुनियों का अन्न (वन आदि से चुनकर लाया हुआ धान आदि) यदि पात्र को खिलाया जाय तो यह अक्षय होता है और समस्त कामनाओं को पूरा करने वाला होता है ॥५॥ देवता, ऋषि, पितर, प्राणी अपने शरीर तथा स्वजनों को अन्न देनेवाले सब लोगों को ईश्वर जानना चाहिये ॥ ६ ॥ धर्म का तत्व जानने वालो को न तो श्राद्ध मे मांस का व्यवहार करना चाहिये, न स्वयं खाना चाहिए। मुनि के अन्नों से पितरों को जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी पशु आदि की हिंसा करने से नहीं होती ॥७॥ मन,वचन और शरीर से किसी प्रकार किसी प्राणी

नारद उवाच—

१—कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित्तपो निष्ठा नृपापरे। स्वाध्यायेऽन्ये प्रवचने ये केचिज्ज्ञानयोगयोः ॥

२—ज्ञाननिष्ठाय देयानि कव्यान्यानन्त्यमिच्छता। दैवेच तदभावेस्यादितरेभ्यो यथाऽर्हतः ॥

३—द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैक मुभयत्र वा। भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि श्राद्धे कुर्यान्नविस्तर ॥

४—देशकालोचिता श्रद्धा द्रव्यपात्रार्हणानि च। सम्यग्भवति नैतानि विस्तरात्स्वजनार्पणात् ॥

५—देशे काले च सम्प्राप्ते मुन्यन्नं हरिदैवतम्। श्रद्धया विधिवत्पात्रे न्यस्तं कामधुगक्षय ॥

६—देवर्षि पितृ भूतेभ्य आत्मने स्वजनाय च। अन्नं संविभजन्पश्येत्सर्वं तत्पुरुषात्मक ॥

७—न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद्धर्म तत्त्ववित्। मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया ॥

को दुःख न देना चाहिये, उत्तम धर्म की इच्छा रखने वालों के लिये इससे उत्तम दूसरा कोई धर्म नहीं है ॥ ८ ॥ यज्ञों के ज्ञाता कितने ही ज्ञानी, ज्ञान से प्रदीप्त हुए मन के निग्रह में कर्म रूपी यज्ञों का होम करते हैं ॥ ९ ॥ द्रव्य यज्ञों को करने के लिए उद्यत मनुष्यों को देखकर प्राणी डर जाते हैं कि आत्मातत्व को न जानने वाला, पेट भरने वाला और निर्दय यह मनुष्य हम लोगों को मार डालेगा ॥ १० ॥ अतः धर्म जानने वाले मनुष्यों को प्रारब्ध कर्मों से मिले हुए मुनियों के अन्न से सतोष करके प्रतिदिन अपनी नित्य-नैमित्तिक क्रियाएँ करनी चाहिये ॥११॥ धर्मज्ञ मनुष्यों को विधर्म, परधर्म, आभास, उपमा और छल, अधर्म की इन पाँच शाखाओं को अधर्म के समान ही त्याग कर देना चाहिये ॥ १२ ॥ धर्म समझकर किए गए जिस कार्य से स्वधर्म में बाधा पड़े, उसे विधर्म कहते हैं, जो पराया धर्म हो, परधर्म कहते हैं, आश्रमों की व्यावस्था के अनुसार मनुष्यों के जिस धर्म का निर्देश है, उससे भिन्न, अपनी इच्छा से माने गए धर्म को आभास कहते हैं, पाखड को उपमा कहते हैं और ढोंगवाला तथा धर्मशास्त्र के वचनों का विपरीत अर्थ लगाकर माना जानने वाला धर्म छल कहा जाता है। स्वभाव के अनुसार धर्म-शास्त्रों के द्वारा निदिष्ट धर्म समस्त प्राणियों को शाति देनेवाला है ॥ १३—१४ ॥ निर्धन मनुष्य को धर्म के लिए अथवा निवाह के लिए भी धर्म की इच्छा न करनी चाहिये। निवृत्ति वाले मनुष्यों का, अजगर के समान, निवृत्ति ही निर्वाह किया करती है ॥ १५ ॥ सतोषी, आत्माराम और उद्यमहीन मनुष्य को जो सुख मिलता है, वह विषयों की तृष्णा से मन पाने के लिए चारों ओर दौड़ते फिरने वाले मनुष्य को कहाँ से मिल सकता है ? ॥ १६ ॥ जिस प्रकार पैर में जूता पहनने वाले को काँटो और ककड़ों से भरी जगह में भी

८—नैतादृशः परो धर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम्। न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनो वाक्कायजस्य यः ॥

९—एके कर्ममयान्यज्ञान् ज्ञानिनो यज्ञवित्तमाः। आत्मसंयमनेऽनीहा जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥

१०—द्रव्ययज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति। एष माकरुणो हन्यादतज्ज्ञो ह्यसुतृप् ध्रुवं ॥

११—तस्माद्दैवोपपन्नेन मुन्यन्नेनापि धर्मवित्। सन्तुष्टोऽहरहः कुर्यान्नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ॥

१२—विधर्मः परधर्मश्च आभास उपमा छलः। अधर्मशाखाः पञ्चेमा धर्मज्ञोऽधर्मवत्त्यजेत् ॥

१३—धर्मबाधो विधर्मः स्यात्परधर्मोऽन्यचोदितः। उपधर्मस्तु पाखण्डो दम्भो वा शब्दभिच्छलः ॥

१४—यस्त्विच्छया कृतः पुंभिराभासो ह्याश्रमात्पृथक्। स्वभावविहितो धर्मः कस्य नेष्टः प्रशान्तये ॥

१५—धर्मार्थमपि नेहेत यात्रार्थं वाऽधनो धनं। अनीहानीहमानस्य महाहेरिव वृत्तिदा ॥

१६—संतुष्टस्य निरीहस्य स्वात्मारामस्य यत्सुखं। कुतस्तत्कामलोभेन धावतोऽर्थेहया दिशः ॥

आराम मिलता है, उसी प्रकार सदा सतुष्ट रहने वाले मनुष्य को भी सब दिशाओं में सुख ही मिलता है ॥ १७ ॥

राजन् ! सन्तोषी मनुष्य केवल पानी के आधार पर भी क्यों नहीं रह सकता ? उपस्थ और जिह्वा के रस के लोभ से मनुष्य कुत्ते के समान दीन बन जाता है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण असन्तोषी होता है, उसका तेज, विद्या, तपस्या और यश, इन्द्रियों की लोलुपता के कारण नष्ट हो जाता है और उसका ज्ञान भी बिखर जाता है ॥ १९ ॥ भूख और प्यास से काम का अन्त हो जाता है, दूसरे को पीड़ा पहुँचाकर क्रोध का अन्त हो जाता है, किन्तु लोभ का अन्त दिशाओं को जीतकर तथा पृथ्वी का भोग करके भी नहीं होता ॥ २० ॥ राजन् ! बहुत से पण्डित, बहुज्ञ, दूसरों का सशय नष्ट करनेवाले और सभाओं के अध्यक्ष भी असन्तोष के कारण नरक में पड़ते हैं ॥ २१ ॥ संकल्पहीन होकर कामना को, कामना का त्याग करके क्रोध को, धन को अनर्थरूप जानकर लोभ को, स्वरूप के विचार से भय को, आत्मा और अनात्मा के विवेक से शोक तथा मोह को, महात्माओं की उपासना से दम्भ को तथा शरीर आदि के कार्यों का त्याग करके हिंसा को जीतना चाहिए। किसीके द्वारा दिए गये दु:ख को उस पर दया करके जीतना चाहिए। दैवगति से प्राप्त दु:ख को समाधि से, शरीर में उत्पन्न दुःख को योगबल से निद्रा को सत्वगुणवाले पदार्थों के सेवन से, रजोगुण तथा तमोगुण को सत्वगुण से, तथा दया आदि सत्वगुणों को शान्ति से जीतना चाहिए। ये भिन्न-भिन्न उपाय एक-एक को जीतने के लिए कहे गए हैं, किन्तु एकमात्र गुरु की भक्ति से अनायास ही इन सबों को जीता जा सकता है ॥ २२-२५ ॥ ज्ञानरूपी प्रकाश देनेवाले गुरु साक्षात् भगवान् के रूप हैं। अपनी दुर्बुद्धि से

१७—सदा संतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः । शर्कराकण्टकादिभ्यो यथोपानत्पदः शिवं ॥

१८—सतुष्टः केन वा राजन्वर्तेतापि वारिणा । औपस्थ्य जैह्व्य कार्पण्याद् गृहपालायते जनः ॥

१९—असंतुष्टस्य विप्रस्य तेजो विद्या तपो यश. । स्रवन्तींद्रियलौल्येन ज्ञानं चैवावकीर्यते ॥

२०—कामस्यान्तं चक्षुत्तृड्भ्यां क्रोधस्यैतत्फलोदयात् । जनो याति न लोभस्य जित्वा भुक्त्वा दिशो भुवः ॥

२१—पण्डिता बहवो राजन् बहुज्ञा. संशयच्छिदः । सदसस्पतयोऽप्येके असंतोषात्पतन्त्यधः ॥

२२—असंकल्पाज्जयेत्काम क्रोध कामविवर्जनात् । अर्थानर्थेक्षया लोभ भय तत्त्वावमर्शनात् ॥

२३—आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भ महदुपासया । योगान्तरायान्मौनेन हिंसा कायाद्यनीहया ॥

२४—कृपया भूतज दु ख दैवं जह्यात्समाधिना । आत्मज योगवीर्येण निद्रा सत्त्वनिषेवया ॥

२५—रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्व चोपशमेन च । एतत्सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यंजसा जयेत् ॥

जो व्यक्ति उन्हें मनुष्य के समान मानता है, उसका समस्त शास्त्र-ज्ञान हाथी के नहाने के समान व्यर्थ होता है ॥ २६ ॥ गुरु ही प्रधान पुरुष ईश्वर है और योगेश्वर भी जिसके चरणों को ढूँढा करते हैं, ऐसे साक्षात् भगवान् हैं, उन्हें ही मूर्ख लोग मनुष्य के समान समझते हैं ॥ २७ ॥ छः इन्द्रियों को जीतने के लिए नियमों के पालन करने की आज्ञा दी गई है। इन्द्रियों को जीत लेने पर भी यदि ध्यान, धारणा और समाधि न हो तो उन उन आज्ञाओं को व्यर्थ परिश्रम देनेवाली ही समझना चाहिए ॥ २८ ॥ जिस प्रकार खेती-बारी तथा व्यापार आदि आजीविकाएँ और उनके परिणाम योग का फलरूप मोक्ष नहीं दे सकते, बल्कि उसके विपरीत जन्म-मरण आदि के देनेवाले होते है, उसी प्रकार वहिर्मुख मनुष्य के द्वारा किए गए यज्ञ और तलाब कुआँ आदि बनाने के कार्य भी जन्म-मरण के ही देनेवाले होते हैं ॥ २९ ॥ जो मनुष्य चित्त को जीतने में यत्नवान् हो, उसे सन्यास लेकर अकेला घूमना चाहिए, निःसग रहना चाहिए, परिग्रह का त्याग कर देना चाहिए, एकान्त मे रहना चाहिए तथा भिक्षा माँगकर और थोड़ा खाकर निर्वाह करना चाहिए ॥ ३० ॥ पवित्र स्थान मे समतल भूमि पर, अपने लिए स्थिर और सम आसन बिछाकर, ॐकार का उच्चारण करते हुए उस पर सरल अग से सुखपूर्वक बैठना चाहिए ॥ ३१ ॥ जब तक मन कामनाओं का त्याग न कर दे, तबतक अपने नाक के अग्रभाग पर दृष्टि रखकर पूरक कुभक और रेचक के द्वारा प्राणवायु को रोकना चाहिए ॥ ३२ ॥ कामनाओं से ताड़ित और भटकता हुआ मन, जिन-जिन विषयों की ओर जाय, उधर से उसे लौटाकर बुद्धिमान् पुरुष को उसे धीरे-धीरे हृदय में रोकना चाहिए ॥ ३३ ॥ इस

२६— यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ । मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत् ॥

२७—एष वै भगवान्साक्षात्प्रधान पुरुषेश्वर' । योगेश्वरैर्विमृग्याङ्घ्रिर्लोको वै मन्यते नर ॥

२८—षड्वर्गसंयमैकान्ताः सर्वा नियमचोदना । तदन्ता यदि नो योगानावहेयु श्रमावहा' ॥

२९—यथा वार्तादयो ह्यर्था योगस्यार्थं न बिभ्रति । अनर्थाय भवेयुस्ते पूर्तमिष्ट तथाऽसतः ॥

३०—यश्चित्तविजये यत्त स्यान्निःसङ्गोऽपरिग्रह. । एको विविक्तशरणो भिक्षुर्भैक्ष्यमिताशन ॥

३१— देशे शुचौ समे राजन्संस्थाप्यासनमात्मन' । स्थिर सम सुखं तस्मिन्नासीतर्ज्वङ्ग ओमिति ॥

३२— प्राणापानौ संनिरुन्ध्यात्पूरकुम्भकरेचकै. । यावन्मनस्त्यजेत्कामान्स्वनासाग्रनिरीक्षणः ॥

३३— यतो यतो निःसरति मन' कामहतं भ्रमत् । ततस्तत उपाहृत्य हृदि रुन्ध्याच्छनैर्बुध ॥

प्रकार थोड़े दिनों में निरन्तर अभ्यास करनेवाले सन्यासी का मन, विना ईंधन की आग के समान, स्वयं ही शांत हो जाता है ॥ ३४ ॥ काम आदि से क्षुब्ध न होनेवाला तथा जिसकी समस्त वृत्तियाँ शान्त हो गई हैं, ऐसा मन, ब्रह्म-सुख का स्पर्श पाने के कारण कभी बाहरी वृत्तियों की ओर नहीं जाता ॥ ३५ ॥ जो व्यक्ति धर्म, अर्थ और काम के क्षेत्ररूप घर का एक बार त्याग करके पुन: उसमे आसक्त होता है, उसे वमन किए हुए को खानेवाला और निर्लज्ज समझना चाहिए ॥ ३६ ॥ जो अपने शरीर को अनात्मा, मरणशील तथा विष्ठा, कीड़ा और भस्मरूप होनेवाला जानते हैं, उन्हींमे से कितने ही नीच बनकर तथा इस शरीर को अपना मानकर इसकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३७ ॥ गृहस्थ यदि क्रिया छोड दे, ब्रह्मचारी यदि व्रत का पालन न करे, तपस्वी यदि गाव मे रहने लगे, सन्यासी यदि इन्द्रिय-लोलुप हो तो उनका यह कार्य आश्रमों को निन्दित बनानेवाला और उनकी विडम्बना करनेवाला है, अत देवमाया से मोहित हुए ऐसे लोगों की दयापूर्वक उपेक्षा करनी चाहिए ॥३८-३९॥ जो अपने को परब्रह्मरूप जानता हो, वह ज्ञान के द्वारा वासनाओं के मिट जाने पर पुनः किस इच्छा से और किस लिए लपट होकर शरीर का पोषण करता है ? ॥ ४० ॥ शरीर रथ के समान है, इन्द्रिया घोड़ों के समान हैं, इन्द्रियों का अधिपति मन लगाम के समान है, शब्द आदि गतव्य देश के समान हैं , बुद्धि सारथी के समान हैं, भगवान् के द्वारा उत्पन्न चित्त रथ के बन्धन के समान है,दस प्रकार के प्राण धुरी के समान है, धर्म और अधर्म दोनो पहियों के समान है । अहकार युक्त जीव रथ मे बैठनेवाले के समान है, ॐकार धनुष के समान है, शुद्ध जीव बाण के समान है और परब्रह्म लक्ष्य के समान है, ऐसा विद्वान लोग कहते है (अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार धनुष के द्वारा बाण लक्ष्य के पास पहुचता है, उसी प्रकार ॐकार के द्वारा शुद्धजीव परब्रह्म के पास पहुँचता है) ॥ ४१-४२ ॥ राग, द्वेष, लोभ, शोक, मोह भय, मद, मान, अपमान , असूया

३४—एवमभ्यसतश्चित्त कालेनाल्पीयसा यतेः । अनिशं तस्य निर्वाणं यात्यनिधनवह्निवत् ॥

३५—कामादिभिरनाविद्धं प्रशान्ताखिलवृत्तियत् । चित्तं ब्रह्मसुखस्पृष्टं नैवोत्तिष्ठेत कर्हिचित् ॥

३६—यः प्रव्रज्य गृहात्पूर्वं त्रिवर्गावपनात्पुनः । यदि सेवेत तान्भिक्षुः स वै वान्ताश्यपत्रपः ॥

३७—यैः स्वदेहः स्मृतोऽनात्मा मर्त्यो विट्कृमिभस्मसात् । त एनमात्मसात्कृत्वा श्लाघयन्ति ह्यसत्तमाः ॥

३८—गृहस्थस्य क्रियात्यागो व्रतत्यागो वटोरपि । तपस्विनो ग्रामसेवा भिक्षोरिन्द्रियलोलता ।

३९—आश्रमापसदा ह्येते खल्वाश्रमविडम्बकाः । देवमायाविमूढांस्तानुपेक्षेतानुकम्पया ॥

४०—आत्मानं चेद्विजानीयात्परं ज्ञानधुताशयः । किमिच्छन्कस्य वा हेतोर्देहं पुष्णाति लम्पटः ॥

४१—आहुः शरीरं रथमिन्द्रियाणि हयानभीषून्मन इन्द्रियेशम् ।

वर्त्मानि मात्रा धिषणां च सूतं सत्त्वं बृहद्बन्धुरमीशसृष्टम् ॥

(गुण में दोष का आरोप) माया, हिन्सा, मत्सर अभिनिवेश, प्रमाद, क्षुधा और निद्रा आदि रजोगुण तथा तमोगुण स्वभाव शत्रु के समान है। कभी-कभी सत्त्वगुण के स्वभाव परोपकार आदि भी शत्रुरूप हो जाते हैं॥ ४३-४४॥ जबतक इस मनुष्य देहरूपी रथ में इंद्रिय आदि अंग स्वाधीन हों, तब तक गुरु के चरणों की सेवा से सज्जित ज्ञानरूपी खड्ग से शत्रुओं का नाश करके, शान्त होकर तथा आत्मानन्द से सन्तुष्ट रहकर, भगवान का आश्रय लेकर ऊपर कहे रथ आदि की उपेक्षा करनी चाहिए ॥ ४५॥ नहीं तो वहिर्मुख हुए इन्द्रियरूपी घोड़े और बुद्धिरूपी सारथी असावधान मनुष्य को कुमार्ग (प्रवृत्ति-मार्ग) मे ले जाकर विषयरूपी चोरों की मण्डली में डाल देता है। अनन्तर वे चोर, घोडे और सारथी के सहित उस मनुष्य को ससाररूपी अन्धे कुएँ मे डाल देते हैं, जो मृत्यु के तीव्र भय से युक्त है ॥ ४६ ॥ प्रवृत्त और निवृत्त, ये दो प्रकार के कर्म वेदों मे कहे गए हैं। प्रवृत्त कर्म से ससार में आना जाना लगा रहता है तथा निवृत्त कर्मों से मोक्ष की प्राप्ति होती है॥ ४७॥ हिंसावाले श्येन आदि यज्ञ, अग्निहोत्र, दर्श, पूर्णमास, चातुर्मास्य, पशुयज्ञ, सोमयज्ञ, वैश्वदेव और बलिहरण आदि कर्म, जिनमें पदार्थों का उपयोग किया जाता है, इष्ट कर्म कहे जाते हैं। देवालय बनवाना, बगीचा लगवाना, कुआ खुदवाना तथा पौसरा आदि चलाना आदि को पूर्त कर्म कहते हैं। ये ही कर्म यदि सकाम और अत्यन्त आसक्ति रखकर किए जायँ तो प्रवृत्त कहे जाते हैं॥ ४८-४९॥

४२— शब्दब्रह्मप्रणवमधर्मधर्मौ चक्रेऽभिमान रथिन च जीव ।

धनुर्हितस्य प्रणव पठति शर तु जीवं परमेव लक्ष्यं ॥

४३—रागो द्वेषश्च लोभश्च शोकमोहौ भय मद' । मानोऽवमानोऽसूया च माया हिंसा च मत्सरः ॥

४४—रजः प्रमादः क्षुन्निद्रा शत्रवस्त्वेवमादयः । रजस्तम. प्रकृतयः सत्त्वप्रकृतयः क्वचित् ॥

४५—यावन्नृकाय रथमात्मवशोपकल्प धत्ते गरिष्ठचरणार्चनया निशात ।

ज्ञानासि मच्युतबलो दधदस्तशत्रुः स्वाराज्य तुष्ट उपशांत इद विजह्यात् ॥

४६—नोचेत्प्रमत्तमसदिन्द्रिय वाजिसूता नीत्वोत्पथ विषयदस्युषु हि क्षिपति ।

ते दस्यव. सह यसूतममुतमों ऽधे ससारकूप उरुमृत्युभये क्षिपवि ॥

४७ – प्रवृत्त च निवृत्त च द्विविध कर्म वैदिकं । आवर्तेत प्रवृत्तेन निवृत्तेनाश्नुतेऽमृत ॥

४८—हिस्र द्रव्यमय काम्यमग्निहोत्राद्यशान्तिद । दर्शश्च पूर्णमासश्च चातुर्मास्य पशुः सुतः ॥

४९—एतदिष्ट प्रवृत्ताख्यं हुत प्रहुतमेव च । पूर्तं सुरालयाराम कूपाजीव्यादि लक्षण ॥

प्रवृत्त कर्म करनेवाले, चरु और पुरोडाश के सूक्ष्म भाग से बना हुआ शरीर धारण कर के धूम के देवता के पास आते हैं, वहा से रात्रि के देवता के पास, वहा से कृष्णपक्ष के देवता के पास, वहा से दक्षिणायन के देवता के पास और वहा से चन्द्रलोक मे जाते हैं। यहा तक जाकर, भोग के क्षय से उत्पन्न हुई शोकाग्नि के द्वारा दुबल होकर, वे, वृष्टिरूप द्वारा से औषधि, लता, अन्न और वीर्य मे अनुक्रम से पुन इस ससार में जन्म लेते हैं। प्रवृत्त कर्म का मार्ग इस प्रकार पुनर्जन्म देता है ॥ ५०-५१ ॥ गर्भाधान से लेकर मरण पर्यंत तक के जिनके सस्कार हुए हों, ऐसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य, इस प्रवृत्त कर्म के करने के अधिकारी है। (इसके बाद निवृत्त कर्मों के सम्बन्ध मे कहते हैं।) ज्ञानी पुरुष इन्द्रियों के व्यापाररूप इष्ट तथा पूर्त कर्मो का इन्द्रियों मे होम करते है, अत. ये इष्ट आदि कर्म इन्द्रियों से भिन्न नहीं है, ऐसा जानते हैं ॥ ५२ ॥ इसी प्रकार वे इन्द्रियों का सकल्प-विकल्परूपी मन मे होम करते हैं। विकारयुक्त मन का वेद-वाणी मे होम करते हैं। वाणी का अक्षरों के समुदाय में, अक्षरों के समुदाय का अकारादि तीन वर्णो (अ-उ-म्) वाले ॐकार मे, ॐकार का बिन्दु में बिन्दु का नाद मे, नाद का प्राण में और प्राण का परब्रह्म मे होम करते है। इस प्रकार निवृत्त कर्म करके, ज्ञान मे निष्ठा रखनेवाला मनुष्य पहले अग्निदेव के पास जाता है, वहाँ से सूर्य देव के पास, वहां से दिवस के देवता के पास, वहा से दिवस के अन्त में होकर शुक्लपक्ष के देवता के पास, वहां से शुक्लपक्ष के अन्त में होकर उत्तरायण के देवता के पास और वहा से ब्रह्मा के पास जाता है। ब्रह्मलोक मे रहकर वहां के भोग भोगने के अनन्तर वह, जो स्थूल शरीर की उपाधि वाला विश्व है, स्थूल का सूक्ष्म में लय करके, सूक्ष्म उपाधिवाला तैजस होता है। अनन्तर सूक्ष्म को कारण में लीन करके कारणशरीर की उपाधि वाला प्राज्ञ होता है। कारणशरीर को तीन शरीरों में व्यापक साक्षीस्वरूप मे लीन करके स्वय चौथा अर्थात् सब से भिन्न हो जाता है। (अर्थात् दृश्य पदार्थों के लीन हो जाने पर शुद्ध आत्मा होकर मुक्त हो जाता है।) ॥ ५३-५४ ॥

५०—द्रव्यसूक्ष्म विपाकश्च धूमो रात्रिरपक्षयः। अयनं दक्षिणं सोमो दर्श ओषधिवीरुधः ॥

५१—अन्न रेत इति क्ष्मेश पितृयाणं पुनर्भवः। एकैकश्येनानुपूर्वं भूत्वा भूत्वेह जायते ॥

५२—निषेकादिश्मशानान्तैः सस्कारैः सस्कृतो द्विजः। इन्द्रियेषु क्रिया यज्ञान् ज्ञानदीपेषु जुह्वति ॥

५३—इन्द्रियाणि मनस्यूर्मौ वाचि वैकारिकं मनः। वाचं वर्णसमाम्नाये तमोंकारे स्वरे न्यसेत् ॥

५४—ओंकारं बिंदौ नादे तं तु प्राणे महत्यमुं। अग्निः सूर्यो दिवाप्राह्णः शुक्लो राकोत्तरं स्वराट् ॥

विश्वश्च तैजसः प्राज्ञस्तुर्य आत्मा समन्वयात् ॥

इस मार्ग को, जिसमें उक्त प्रकार से क्रमश प्राप्ति होती है, देवयान कहते हैं। आत्मा का ही यजन करने वाले, आत्मा में ही स्थित और जिन्होंने परम शान्ति पाई है, ऐसे पुरुष इस मार्ग में जाकर पुनः जन्म नहीं ग्रहण करते ॥ ५५ ॥ वेदोक्त इन पितृयान तथा देवयान नामक दो मार्गों को, शास्त्ररूपी आँखों से पुरुष देखते है, वे शरीर में रहने पर भी मोह नहीं पाते ॥५६॥ लोकों के आदि में रहने वाले अन्त मे रहने वाले, भोग्य, भोक्ता, ऊंच, नीच, ज्ञान, ज्ञेय, शब्द, अर्थ, अप्रकाश और प्रकाश, ज्ञानी पुरुष यह सभी स्वय ही हैं, अतः वह अपने से भिन्न कुछ नहीं देखता, जिससे मोह में पडे ॥ ५७ ॥ जिस प्रकार प्रतिबिंब आदि आभास पदार्थ तर्क से बाधित होने पर भी यथार्थ माने जाते है, उसी प्रकार इन्द्रियों के द्वारा जाना जानेवाला ससार भी किसी प्रकार के उचित तर्क से सिद्ध नही होता फिर भी वह यथार्थ के समान जाना जाता है ॥५८॥ पृथ्वी आदि पचभूतों की जिसमे एकता मानी जाती है, वह शरीर आदि पदार्थ पचभूतों का सघात, कार्यअथवा परिणाम, किसी प्रकार भी नहीं सिद्ध होता। जिस प्रकार वृक्षों के समूह को वन कहते हैं, उसी प्रकार शरीर भी यदि पचभूतों का समूह होतो शरीर का एक भाग खींचने से सारे शरीर का खिच जाना इस बात का विरोध करता है, क्योंकि एक वृक्ष को खींचने से सारा वन नहीं खिचता। शरीर यदि पचभूतो का कार्य, अतः उनसे बना हुआ विकाररूप हो तो वह अपने अवयवों से भिन्न है कि एकाकार,यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता और वह यदि पचभूतों का परिणाम हो, तब भी यही प्रश्न उठता है,अत शरीर मिथ्या है,यही निश्चय होता है। शरीर अपने अवयवो से भिन्न तो नहीं ही है , क्योंकि वैसा दीख नही पडता, उसी प्रकार उनमें मिला हुआ भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि मिला हुआ हो तो यह प्रश्न उठता है कि प्रत्येक अवयव मे सब मिले हुए है या अशरूप से ? और इसका भी ठीक उत्तर नहीं मिलता ! यदि कहें कि प्रत्येक अवयव मे सब मिला हुआ है, तब एक उंगली को भी शरीर कहना पड़ेगा और यदि कहें कि अशरूप से मिला है, तो अश के अश और उसके भी अश की कल्पना करने मे अनवस्था दोष होता है, अत शरीर मिथ्या है, इसी सिद्धात पर पहुँचना पड़ता है ॥ ५९ ॥ पचभूत भी अवयव वाले पदार्थ है, अत अवयववालों से भिन्न उनका निरूपण

५५—देवयानमिदं प्राहुर्भूत्वा भूत्वाऽनुपूर्वशः । आत्मयाज्युपशान्तात्मा ह्यात्मस्थो न निवर्तते ॥

५६—य एते पितृदेवानामयने वेदनिर्मिते । शास्त्रेण चक्षुषा वेद जनस्थोऽपि न मुह्यति ॥

५७—आदावन्ते जनानां सद् बहिरन्तः परावरम् । ज्ञानं ज्ञेयं वचो वाच्यं तमो ज्योतिस्त्वयं स्वयम् ॥

५८—आबाधितोऽपि ह्याभासो यथा वस्तुतया स्मृतः । दुर्घटत्वादैन्द्रियकं तद्वदर्थविकल्पितम् ॥

५९—क्षित्यादीनामिहार्थानां छाया न कतमापि हि । न सङ्घातो विकारोऽपि न पृथङ् नान्वितो मृषा ॥

नहीं हो सकता, इसलिए यह निश्चय होता है कि अवयववाले पदार्थ कोई वस्तु ही नहीं हैं, और अवयववान् यदि असत्य सिद्ध हुआ तो अवयव भी स्वतः ही असत्य हो गया, क्योंकि अवयववान् की प्रतीति के बिना अन्य किसी प्रमाण से अवयव सिद्ध हो ही नहीं सकता ॥६०॥ यद्यपि एक परमात्मा के अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु सत्य नहीं सिद्ध होती और ऐसी अवस्था मे उनमे भेद मानना व्यर्थ है, किंतु फिर भी यदि भेद माने तो वह तभी तक ठहरता है, जबतक अज्ञान की निवृत्ति नहीं हो जाती। इस प्रकार का भेद मानने पर भी किसी वस्तु का स्थायित्व सिद्ध नहीं होता, क्योंकि पदार्थ नदी के प्रवाह के समान क्षण-क्षण भर मे बदलते जाते हैं, ऐसा नित्य प्रलय का सिद्धांत है। इस सिद्धांत मे यह निश्चित हुआ है कि पदार्थों मे स्थायित्व न होने पर भी यह पदार्थ तो ज्यों का त्यों ही है। ऐसी जो भावना होती है, वह तो एक पदार्थ के समान दूसरा कहा जाता है, अतः वह समानता के कारण उत्पन्न हुई भ्रांति हुई। समानता की यह भ्रांति तभी तक रहती है, जबतक अज्ञान मिट नही जाता, अज्ञान के मिट जाने पर समस्त द्वैत ही मिथ्या सिद्ध हो जाता है, अतः उसके बाद भ्रांति का स्थान ही नहीं है। अद्वैत स्थिति में तो शास्त्रोक्त विधि-निषेध भी स्वप्न की जाग्रत और सुषुप्ति के समान मिथ्याभूत ही है ॥६१॥ भावाद्वैत, क्रियाद्वैत और द्रव्याद्वैत की यथार्थ भावना रखनेवाला मुनि अपने स्वरूप के अनुभव से जाग्रत आदि तीनों अवस्था का त्याग कर देता है ॥ ६२ ॥ जिस प्रकार वस्त्र कोई वस्तु नहीं है, किंतु सूत ही यथार्थ वस्तु है, उसी प्रकार जाग्रत कोई पदार्थ नहीं है, किंतु परब्रह्म ही यथार्थ पदार्थ है, इस प्रकार भेद को मिथ्या जानकर कार्य वस्तु और कारण वस्तु की एकता का विचार करना भावाद्वैत कहा जाता है, इस भावाद्वैत की भावना करने से वस्तुओं में भेदबुद्धि रूपी स्वप्न नष्ट हो जाता है ॥ ६३ ॥ मन, वाणी और शरीर के द्वारा किए हुए कर्मों का साक्षात् भगवान् को अर्पण कर देना क्रियाद्वैत कहा जाता है। इस क्रियाद्वैत की भावना करने से कर्म मे भेदबुद्धि रूपी स्वप्न नष्ट हो जाता है ॥ ६४ ॥ अपना, स्त्री-पुत्रादि का तथा अन्य समस्त प्राणियों का शरीर, पंचभूतात्मक होने के कारण एक रूप है, और उनके भोक्ता परमात्मा हैं, इस कारण भी वह एक रूप है, फलतः उनके अर्थ और काम भी एक रूप ही हैं, ऐसा समझने को द्रव्याद्वैत कहते हैं।

६०—धातवो वयवित्वाच्च तन्मात्रा वयवैर्विना। न स्युर्ह्यसत्यवयविन्यसन्न वयवोऽततः ॥

६१—स्यात्सादृश्य भ्रमस्तावद्विकल्पे सति वस्तुनः। जाग्रत्स्वापौ तथा स्वप्नेतथाविधिनिषेधता ॥

६२—भावाद्वैतं क्रियाद्वैतं द्रव्याद्वैत तथात्मनः। वर्तयन्स्वानुभूत्येह त्रीन्स्वप्नान्धुनुते मुनिः ॥

६३—कार्यकारणवस्त्वैक्य मर्शन पटतन्तुवत्। अवस्तुत्वाद्विकल्पस्य भावाद्वैतं तदुच्यते ॥

६४—यद्ब्रह्मणि परे साक्षात्सर्वकर्म समर्पणं। मनो वाक् तनुभि. पार्थ क्रियाद्वैतं तदुच्यते ॥

इस द्रव्याद्वैत की भावना रखने से मेरे कर्मों का यह फल मुझे ही भोगना है, इस बुद्धि रूपी तीसरे स्वप्न का नाश होता है ॥ ६५ ॥ राजन् ! जिस उपाय से, जिसके तथा जहाँ जिस पुरुष के लिए जिन द्रव्यों का शास्त्र में निषेध नहीं है, उस उपाय से उससे तथा वहां उस द्रव्य के द्वारा उस पुरुष को कर्म करना चाहिये। आपत्काल के अतिरिक्त इससे विपरीत आचरण नहीं करना चाहिए ॥६६॥ पूर्वोक्त तथा अन्य वेदोक्त कर्मों के अनुसार आचरण करने वाला तथा भगवान् की भक्ति करने वाला मनुष्य घर में रहते हुये भी भगवान की गति पाता है। ये बातें तो सर्व साधारण है, किंतु भक्त को तो भक्ति ही समस्त पुरुषार्थों को देनेवाली है ॥ ६७ ॥ किसी प्रकार न टलने-वाले कष्ट के समूहों से भगवान की सहायता के द्वारा आपलोग बच गये है और उनके चरण-कमलों की सेवा के प्रभाव से समस्त दिशाओं को जीतकर आपने श्रेष्ठ यज्ञ किया है। भगवान की यह सेवा महात्मा पुरुषों के तिरस्कार से छूट जाती है और उनकी कृपा से सिद्ध होती है, इस बात का मुझे निज का अनुभव है ॥ ६८ ॥

बीते हुए महाकल्प में मैं उपबर्हण नामक एक गन्धर्व था। दूसरे गन्धर्व मेरा सम्मान करते थे ॥६९॥ रूप, सुकुमारता, मधुरता, और सुगन्ध के कारण सब लोगों को मेरा दर्शन प्रिय लगता था। मैं स्त्रियों का अत्यन्त प्रिय, सदा मदोन्मत्त रहनेवाला तथा अत्यन्त लम्पट था ॥७०॥ एक दिन देवताओं की सभा में भगवान् की कथाओं का गायन करने के लिए प्रजापतियों ने गन्धर्वों और अप्सराओं को बुलाया था। मैं भी बुलाया गया था। मैं स्त्रियों के सहित गाता हुआ वहां गया। मेरे इस अपराधके कारण प्रजापतियों ने अपनी शक्ति से मुझे शाप दिया कि "अपने अपराध के कारण तू लक्ष्मी से हीन होकर शीघ्र ही शूद्र का जन्म ले" ॥ ७१-७२ ॥ इस शाप के

६५—आत्मजायासुतादीनामन्येषां सर्वदेहिनाम् । यत्स्वार्थकामयोरैक्यं द्रव्याद्वैतं तदुच्यते ॥

६६—यद्यस्य वाऽनिषिद्धं स्याद्येन यत्र यतो नृप । स तेनेहेत कर्माणि नरो नान्यैरनापदि ॥

६७—एतैरन्यैश्च वेदोक्तैर्वर्तमानः स्वकर्मभिः । गृहेऽप्यस्य गतिं यायाद्राजंस्तद्भक्तिभाङ् नरः ॥

६८—यथा हि यूयं नृप देववर्य दुस्त्यजादापदृगणादुत्तरतात्मनः प्रभो ॥

यत्पादपङ्केरुहसेवया भवानहारषीन्निर्जितदिग्गजः क्रतून् ॥

६९—अहं पुराऽभवं कश्चिद् गन्धर्व उपबर्हणः । नाम्नाऽतीते महाकल्पे गन्धर्वाणां सुसम्मतः ॥

७०—रूपपेशलमाधुर्यसौगन्ध्यप्रियदर्शनः । स्त्रीणां प्रियतमो नित्यं मत्तस्तु पुरलम्पटः ॥

७१—एकदा देवसत्रे तु गन्धर्वाप्सरसां गणाः । उपहूता विश्वसृग्भिर्हरिगाथोपगायने ॥

७२—अहं च गायंस्तद्विद्वान् स्त्रीभिः परिवृतो गतः । ज्ञात्वा विश्वसृजस्तन्मे हेलनं शेपुरोजसा ॥

याहि त्वं शूद्रतामाशु नष्टश्रीः कृतहेलनः ॥

द्वारा शीघ्र ही मैं दासी का पुत्र हुआ। उस अवतार में ब्रह्म-वादियों की सेवा और उनका संग करने के प्रभाव से मैं इस जन्म मे ब्रह्मा का पुत्र हुआ हूँ ॥ ७३ ॥ पाप को नष्ट करनेवाला गृहस्थों का धर्म मैंने आपसे कहा, जिसका पालन करने से गृहस्थों को अनायास ही सन्यासियों की पदवी प्राप्त होती है ॥ ७४ ॥ मनुष्य-लोक मे आप लोग भी अत्यन्त भाग्यशाली हैं, क्योंकि आपके यहां मनुष्यावतार से गूढ साक्षात परब्रह्म श्रीकृष्ण निवास करते हैं और इसी-कारण जगत् को पवित्र करनेवाले मुनिगण भी आपके यहा आते हैं ॥ ७५ ॥ जो श्रीकृष्ण आपके प्रिय सम्बन्धी हैं, ममेरे भाई हैं, आत्मा है, पूज्य है, आज्ञानुवर्ती हैं और हितकारी उपदेश देनेवाले हैं, वे उपाधि-रहित तथा परमानन्द के अनुभव-रूप परब्रह्म है, जिन्हे श्रेष्ठ पुरुष ढूंढ़ा करते है ॥ ७६ ॥ शिव तथा ब्रह्मा आदि देवता भी अपनी बुद्धि के प्रभाव से इनका स्वरूप ऐसा ही है, यह नही बतला सकते। हम लोगों को तो उन्हे मौन, भक्ति और शांति आदि साधनों से प्रसन्न करना पडता है। ये भक्तों के रक्षक भगवान् प्रसन्न हों ॥ ७७ ॥

श्रीशुकदेव बोले—इस प्रकार नारद की बाते सुनकर राजा युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए। प्रेम से विह्वल होकर उन्होंने नारद की तथा भगवान् की पूजा की ॥ ७८ ॥ पूजित होकर नारद भगवान् की तथा युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर वहा से गए।। युधिष्ठिर श्रीकृष्ण को परब्रह्मरूप

७३—तावद्दास्यामहं जज्ञे तत्रापि ब्रह्मवादिनां। शुश्रूषयाऽनुषङ्गेण प्राप्तोऽहं ब्रह्मपुत्रतां ॥

७४—धर्मस्ते गृहमेधीयो वर्णितः पापनाशनः। गृहस्थो येन पदवी मञ्जसा न्यासिनामियात् ॥

७५—यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियान्ति।

येषां गृहानावसतीति साक्षाद् गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिंगं ॥

७६—सवा अयं ब्रह्म महद्विमृग्य कैवल्यनिर्वाण सुखानुभूतिः।

प्रियः सुहृद्वः खलु मातुलेय आत्माऽर्हणीयो विधिकृद्गुरुश्च ॥

७७—न यस्य साक्षाद्भव पद्मजादिभी रूपं धियावस्तु तयोपवर्णितं।

मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः प्रसीद तामेष स सात्वतां पतिः ॥

श्रीशुक उवाच—

७८—इति देवर्षिणा प्रोक्तं निशम्य भरतर्षभः। पूजयामास सुप्रीतः कृष्णं च प्रेमविह्वलः ॥

७९—कृष्णपार्थावुपामन्त्र्य पूजितः प्रययौ मुनिः। श्रुत्वा कृष्णं परं ब्रह्म पार्थः परमविस्मितः ॥

सुनकर बड़े विस्मित हुए ॥ ७९ ॥ इस प्रकार दक्ष प्रजापति की पुत्रियों का अलग-अलग वंश मैंने आपसे कह सुनाया, जिनमे देवता, दैत्य और मनुष्य आदि तथा समस्त चराचर उत्पन्न हुए हैं ॥ ८० ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवे स्कंध का पन्द्रहवा अध्याय समाप्त

सप्तम स्कध समाप्त

८०—इति दाक्षायणीना ते पृथग्वशाः प्रकीर्तिताः । देवासुरमनुष्याद्या यत्र लोका चराचराः ॥

इतिश्रीभागवतेमहापुराणेसप्तमस्कधे प्रह्लादानुचरितेयुधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयोनामपंचदशोऽध्याय ॥ १५ ॥

समाप्तोय सप्तमः स्कध.
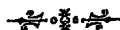
ज्ञान-मन्दिर, भानपुरा

का

विवरण-पत्र

प्रकाशक—

ज्ञान-मन्दिर

भानपुरा (इन्दौर स्टेट)

प्रकाशक—
ज्ञान-मन्दिर,
भानपुरा, इन्दौर स्टेट

मुद्रक—
अमरलाल सोनी
ज्ञान-मन्दिर प्रेस
भानपुरा, इन्दौर स्टेट

श्रीः

ज्ञान-मन्दिर, भानपुरा का

विराट् आयोजन

गत दस वर्षों में हिन्दी-भाषा के साहित्य ने जो ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण उन्नति की है, वह अभूतपूर्व है। इन वर्षों में इस साहित्य के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न विषयों पर अनेकों महत्वपूर्ण मौलिक और अनुवादित ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। फिर भी उनसे तेरह करोड़ हिन्दी-भाषा भाषियों की संख्या को मद्देनजर रखते हुए, गम्भीर साहित्य की अभी तक हिन्दी-भाषा में बहुत कमी है और इस दिशा में जितना भी प्रयत्न किया जाय, उतना थोड़ा है।

इसी दिशा में कुछ गम्भीर प्रयत्न करने के इरादे से अत्यन्त महान् महत्त्वाकांक्षाओं और उत्साह के बीच ज्ञान-मन्दिर की स्थापना हुई है। इस संस्था के द्वारा ज्ञान और विज्ञान को प्रकाशित करने-वाले महान् और दीप्तिमान साहित्य का प्रकाशन किया जायगा। जिन-जिन क्षेत्रों में अभी तक उत्तम ग्रन्थों का अभाव है, उन सब क्षेत्रों को ज्ञान-मन्दिर उत्तमोत्तम और बहुमूल्य उपहारों से सजाने का यथाशक्ति यत्न करेगा। इस सम्बन्ध में कार्य्य करने के पहले कुछ अधिक लिखकर आत्मश्लाघा करने का हम लोगों का विचार नहीं है। ज्ञान-मन्दिर का प्रकाशन अपनी कीर्ति को अपने आप घोषित करेगा।

ज्ञान-मन्दिर का पहला महत्वपूर्ण प्रयास

धार्मिक ग्रन्थ-माला

इस समय तीन क्षेत्रों में ज्ञान-मन्दिर का प्रकाशन प्रारम्भ हो रहा है। उनमें से पहला क्षेत्र धार्मिक ग्रन्थमाला का है। इस ग्रन्थमाला में सनातनधर्म, जैनधर्म तथा दूसरे धर्मों के प्रामाणिक और महान् ग्रन्थों को प्रकाशित करने की योजना हो रही है। इस धार्मिक ग्रन्थमाला का प्रथम ग्रन्थ श्रीमद्भागवत है।

ज्ञान-मन्दिर का दूसरा महत्त्वपूर्ण और महान् कार्य

आयुर्वेदिक ग्रन्थ-माला

का प्रकाशन है। इस शताब्दी में आयुर्वेद के प्रचार को जो भयङ्कर ठेस पहुँची है, वह किसीसे छिपी नहीं है, पर इसका कारण आयुर्वेद-विज्ञान की कमजोरी नहीं है। भारतवर्ष का आयुर्वेद आज से हजारों वर्ष पूर्व ऐसा वैज्ञानिक रूप धारण कर चुका है, जो विकास की इस दुनिया में भी ससार की अधिक-से-अधिक वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति के साथ टक्कर ले सकता है। इतने पर भी इसका पूर्णरूप से विकास न होने का कारण यही है कि हमलोग समयानुसार उचित विकास कर उसको सामयिक रूप नही देते, जमाना जिस परिवर्तन की माँग कर रहा है, उससे आँख मुंदकर हम लकीर-के-फकीर बने बैठे है। आयुर्वेद के जितने भी प्रामाणिक और वैज्ञानिक ग्रन्थ हैं, वे सब प्रायः सस्कृत में हैं, कुछ ग्रन्थों पर भाषा-टीकाएँ भी हुई है, लेकिन वे भी इतनी क्लिष्ट और अस्पष्ट हैं कि जनसाधारण उन्हें बिलकुल नहीं समझ सकते। राष्ट्र-भाषा के इस युग में भी आयुर्वेद की परीक्षायें सस्कृत-भाषा में होती हैं, जिससे साधारण विद्यार्थी लाभ नहीं उठा सकते। इसका कारण यह है कि सरल हिन्दी में ऐसे ग्रन्थ ही नहीं हैं, जो पाठ्यक्रम में रखे जा सकें। ऐसी हालत में आयुर्वेद की उन्नति कैसे हो सकती है? और कैसे वह संसार की प्रगतिशील चिकित्सा-पद्धतियों के सम्मुख ठहर सकता है।

इसी महान् कमी को पूर्ण करने के उद्देश्य से ज्ञान-मन्दिर ने आयुर्वेदिक प्रकाशन का बीड़ा उठाया है। इस ग्रन्थमाला में सरल-से-सरल हिन्दी-भाषा में—जिसे साधारण-से-साधारण आदमी भी आसानी से समझ सकता है—आयुर्वेद के प्रामाणिक और वैज्ञानिक ग्रन्थ प्रकाशित किये जावेंगे। केवल एक रुपया महीना खर्च करने से ही, हरएक महीने की पहली तारीख को, आपके घर पर एक ऐसी वस्तु, पुस्तक के रूप में पहुँचेगी, जिसे आप उपन्यास से भी अधिक दिलचस्पी से पढ़ेंगे, और सहज में ही आपका चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान बढ़ता चला जायगा और थोड़े ही समय में स्वयं अपने आपको एक वैद्य की तरह जानकार अनुभव करने लगेंगे।

इस ग्रन्थ-माला का प्रथम ग्रन्थ

वनौषधि-चन्द्रोदय

[करीब ५० भागों मे]

यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। आपके गाँव के बाहर के मैदानों मे, आपके मकानों के पास के खण्डहरों में, आपके खेतों और बगीचो में, कई ऐसी वनस्पतियाँ खड़ी हुई रहती है, जिनको प्राप्त करने में एक कौड़ी भी खर्च नहीं होती, मगर जिनमे ऐसे-ऐसे दिव्य गुणों का भण्डार भरा हुआ होता है, जो मरणशय्या पर पड़े हुए रोगी को भी पुनर्जीवन देने मे समर्थ है, मगर केवल जानकारी न होने की वजह से आप उनका उपयोग लेने में असमर्थ हैं और उसकी जानकारी के अभाव में आपको सैकड़ों रुपया खर्च कर देना पड़ता है।

वनौषधि-चन्द्रोदय—इसी प्रकार की हजारों वनस्पतियो, धातुओं, विषों और उपविषों से आपका परिचय करावेगा। एक-एक औषधि को लेकर यह आपको बतलावेगा कि अलग-अलग भाषाओं में इस औषधि के क्या-क्या नाम हैं। इस औषधि के सम्बन्ध मे हमारे प्राचीन आचार्यों ने क्या कहा है, यूनानी पद्धति के हकीम लोग इसके सम्बन्ध में क्या कहते हैं, आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान की खोज करनेवालों ने इसमें क्या-क्या गुणदोष पाये है, पहुँचे हुए साधु, महात्मा और फकीरो ने उसका किस प्रकार उपयोग किया है, रासायनिक विश्लेषण के द्वारा उसमें कौन-कौन से तत्त्व पाये गये हैं। कौन-कौन से रोगों में उसका उपयोग किस प्रकार से किया जाता है, किन-किन औषधियों के साथ मिलाने से उसकी अद्भुत और जगत्प्रसिद्ध बनावटें बनती हैं, इत्यादि, उस औषधि से सम्बन्ध रखनेवाला सम्पूर्ण ज्ञान आपको इस ग्रन्थ में मिलेगा। हजारों रुपये मूल्य के करीब, ३०० नवीन और प्राचीन ग्रन्थों से मन्थन कर इसकी सामग्री प्रस्तुत की गई है।

हमारा दावा है कि भारत की किसी भी भाषा मे भारतीय वनस्पतियों के सम्बन्ध में, इतना सरल, इतना सम्पूर्ण और इतनी विस्तृत जानकारी देनेवाला कोई भी निघण्टु या कोई भी ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ। जो एक दो ग्रन्थ मिलते भी है, उनकी भाषा इतनी कठिन है कि जन-साधारण तो क्या! साधारण दर्जे के वैद्य भी उसे समझने में असमर्थ रहते हैं।

हम आशा करते हैं कि भारतवर्ष के तमाम वैद्य, हकीम तथा जनसाधारण हमारी इस योजना का स्वागत कर हमें उत्साहित करेंगे। यह ग्रन्थ वैद्यो और हकीमो के गृह मे एक दिव्य अलङ्कार की तरह शोभा देगा और कई कठिन अवसरो पर उन्हे ऐसी सलाह देगा, जो बहुमूल्य साबित होगी। ऐसी कीमती वस्तु के लिए केवल १) मासिक खर्च करना किसी को भी भारी न जायगा। गरीब से गरीब व्यक्ति को भी अपनी कठिन कमाई में से बचतकर इस महान् ग्रन्थ को संग्रह करना चाहिए, क्योंकि न मालूम किस दिन यह कई गुने रुपयों की बचत कर प्राण-रक्षक साबित हो सकता है।

यह ग्रन्थ प्रतिमास डबलक्राउन अठपेजी साइज (सरस्वती साइज) के करीब १२५ से लेकर १५० पृष्ठों तक के भाग में, बढ़िया कागज, सुन्दर छपाई और उत्तम गेटअप के साथ प्रकाशित होगा। प्रत्येक भाग का मूल्य १) रहेगा। प्रतिमास वी० पी० होने से करीब ।=) पोस्टेज ज्यादा पड़ेगा। वर्षभर के लिए इकट्ठे ग्राहक बननेवालों को १२) वार्षिक में घर बैठे मिल जाया करेगा। इसका पहला अङ्क पूरी सजधज के साथ विजयादशमी के दिन ग्राहकों के पास पहुँच जावेगा।

इस ग्रन्थ के कुल कितने भाग होंगे, यह निश्चय नहीं कहा जा सकता, पर अनुमानतः चालीस से लेकर पचास भागों में यह पूरा हो जायगा।

हम विश्वास करते हैं कि हिन्दी-भाषा-भाषी वैद्यों, हकीमों और जनसाधारण का कोई गृह इसके प्रकाश से वञ्चित नहीं रहेगा।

ज्ञान-मन्दिर का तीसरा महत्त्वपूर्ण आयोजन

शिक्षा-पुस्तक-माला

इस पुस्तकमाला का आदर्श बहुत ऊँचा है। इसमें देश-कालोपयोगी ढंग से पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन होगा। भारतीय बालकों को अब तक ऐसी शिक्षा नहीं दी जाती थी, जिससे कि वे थोड़े ही समय और परिश्रम से अपने जीवनोपयोगी विषय को पढ सकें। स्कूलो में ऐसी कोर्स बुक्स (पाठ्य-पुस्तकें) निश्चित हैं, जो अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति के अनुकूल लिखी गई हैं, जिनसे हमारी वर्तमान शिक्षा की आवश्यकता पूरी नहीं हो सकती।

देश में इस समय राष्ट्रीय सरकारों की स्थापना हो जाने के कारण हमारी शिक्षा-पद्धति में महान परिवर्तन होने की आवश्यकता हो गई है। इस दृष्टिकोण को लक्ष्य में रखकर इस पुस्तकमाला का आयोजन किया गया है। इसमें राष्ट्रीय विद्यालयों, अर्धसरकारी और सरकारी स्कूलों के लिये पाठ्य-पुस्तकों (कोर्स बुक्स) का प्रकाशन होगा। इस ग्रन्थमाला का लेखन तथा सम्पादन उन्हीं विद्वान लेखकों के द्वारा कराया जा रहा है, जो बाल-साहित्य लिखने में विख्यात हो चुके हैं और बच्चों के मनोविज्ञान के अच्छे ज्ञाता हैं।

इस ग्रथमाला से छपनेवाले ग्रन्थों की सूची बहुत शीघ्र प्रकाशित की जा रही है।

ज्ञान-मन्दिर

भानपुरा (इन्दौर)